ओ३म्

दयानन्द-यजुर्वेदभाष्य-भास्कर



महर्षि दयानन्द का वेद-भाष्य
व्याख्या सहित

॥ ओ३म् ॥

दयानन्द-यजुर्वेदभाष्य-भास्कर

(महर्षि दयानन्द के वेदभाष्य की कुञ्जी)

प्रथम भाग (१-१० अध्याय)

व्याख्याता

श्री पण्डित सुदर्शनदेव आचार्य एम. ए.

प्रकाशक

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट

४५५ खारी बावली

दिल्ली–६

फोन–२६८३६०, २२६५४७

सर्वाधिकार प्रकाशक के अधीन है।

24.6.97

संवत् २०२९ वि०

सन् १९७३ ई०

प्रथमवार ११०० सृष्टि संवत् १९६०८५३०७३ मूल्य २८)

मुद्रक [illegible] केन्द्र ४०३ डी कमला नगर दिल्ली–७

294.113
SUD-D

1
92

प्रकाशकीय

परमेश्वर ने जहाँ मानव को अनेक पदार्थ प्रदान किये हैं वहाँ सबसे बड़ा उपकार यह किया है कि उसने कल्याणी वेद-विद्या का चार ऋषियों के हृदय में प्रकाश करके मनुष्य-मात्र के लिये उसका उपदेश किया है। यदि परमेश्वर इस वेदविद्या का प्रकाश नहीं करते तो आज तक सब मनुष्य मूर्ख ही रहते। सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर बहुत समय तक वेदों का ही पठन-पाठन चलता रहा। कुछ समय के पश्चात् ऋषि-जनों ने वेद के प्रचार एवं प्रसार के लिये वेद की व्याख्या में ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् आदि साहित्य की रचना की और वेद-धर्म का प्रसार किया। महाभारत काल पर्यन्त केवल एक वैदिक धर्म ही लोक में प्रचलित था। वेदार्थ के सम्बन्ध में भी कोई मत-भेद नहीं था। एक वेद-शिक्षा ही सर्वत्र प्रतिष्ठित थी। महाभारत काल के पश्चात् वेदादि सत्य शास्त्रों के पठन-पाठन के मन्द हो जाने से वाम-मार्ग आदि मत लोक में प्रचलित हुये। वाम-मार्ग आदि वेद-विरुद्ध सम्प्रदायों के लोक में फैल जाने से सायण, महीधर आदि अक्षरी-अक्षरी लोग वेद-भाष्यकार बन गये और वेदों के मिथ्या अर्थ कर डाले। जिससे वेदों का अत्यन्त अपमान हुआ। वेदों का सत्यार्थ लुप्त हो जाने से मनुष्य-जाति वेदविरुद्ध नाना मतों में विभक्त हो गई। मनुष्य-जाति का आधा भाग स्त्री-जाति को वेद अध्ययन के अधिकार से ही वञ्चित कर दिया गया। शेष पुरुषों के ब्राह्मण आदि चार भागों में से एक शूद्र भाग को भी वेदाध्ययन से रोक दिया गया। शेष द्विजों को भी कर्म के आधार पर द्विज न मानकर जन्म से द्विज स्वीकार करके वेदाध्ययन को भारी धक्का पहुँचाया। क्योंकि वे द्विज वेद पढ़ें वा न पढ़ें जन्म के कारण वे द्विज हैं ही। ऐसे विकट समय में भी कुछ एक लोगों ने वेद की रक्षा की जिन्हें महर्षि दयानन्द ने धन्यवाद के पात्र लिखा है।

महाभारत के लगभग पाँच सहस्र वर्ष पश्चात् वेद के सूर्य महर्षि दयानन्द सरस्वती का आविर्भाव हुआ। जिन्होंने लुप्त हुये सत्य-वेदार्थ के विज्ञान को परमेश्वर के अनुग्रह, गुरुवर विरजानन्द सरस्वती की कृपा एवं शिक्षा, तथा अपने अनुपम तपोबल से स्वयं समझकर लोक के हित के लिये पुन: प्रकाशित किया। लुप्त हुये सत्य-विज्ञान को पुन: प्राप्त करना अत्यन्त कठिन होता है। इस तथ्य को स्वयं अनुभव करते हुये महर्षि सत्यार्थप्रकाश में लिखते हैं—"विज्ञान लुप्त हुए का पुनर्मिलन सहज नहीं है"। महर्षि ने पुन: वेदों का नाद गुंजाया तथा वेदों के पठन-पाठन को मनुष्यमात्र का परम धर्म बतलाया। केवल इतना ही नहीं अपितु वेदों का मन्त्र क्रम से अनुपम भाष्य लिखा जिससे प्रत्येक मनुष्य अत्यन्त सरल रीति से वेदार्थ को समझ सके और वैदिक पथ का पथिक बन सके। महर्षि अपने वेदभाष्य के सम्बन्ध में लिखते हैं:—

(क) जब मेरा वेदभाष्य पूर्ण हो जायेगा तो यह पूर्णतया सिद्ध हो जायेगा कि मेरे सब सिद्धान्त वेदानुकूल हैं (**भ्रान्तिनिवारण पृ० ३**)॥

(ख) परमात्मा की कृपा से मेरा शरीर बना रहा और कुशलता से वह दिन देखने को मिला कि वेदभाष्य पूर्ण हो जाये तो निस्सन्देह आर्यावर्त्त देश में सूर्य का सा प्रकाश हो जायेगा कि जिसके मेटने और झाँपने को किसी का सामर्थ्य न होगा क्योंकि सत्य का मूल ऐसा नहीं है कि जिसको कोई

सुगमता से उखाड़ सके, और कभी भानु के समान ग्रहण में भी आ जावे तो थोड़े ही काल में फिर उग्रह अर्थात् निर्मल हो जायेगा (**भ्रान्तिनिवारण पृ० ३**) ॥

मानव-जाति का यह दुर्भाग्य है कि चारों वेदों का ऐसा अनुपम भाष्य महर्षि पूरा न कर सके। महर्षि का किया वेद भाष्य २०×२६÷८ के ११९७३ पृष्ठों में छपा है। उसका पठन-पाठन भी बहुत न्यून हुआ है।

महर्षि के वेदभाष्य का मैंने बड़ी श्रद्धा से स्वाध्याय किया किन्तु पढ़ते हुये यह अनुभव हुआ कि जैसे महर्षि के अन्य ग्रन्थ समझ में आते हैं वैसे वेदभाष्य समझ में नहीं आता। महर्षि के वेदभाष्य का अध्ययन करने वाले अन्य वेदपाठियों से भी यही सुनने में आया। इतने पर भी महर्षि के वेदभाष्य को पढ़ने की अभिलाषा बराबर मन में बनी रही। समय-समय पर विद्वानों से महर्षि के वेदभाष्य को समझने की कुञ्जी पूछता रहा। महर्षि के ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका आदि अन्य ग्रन्थों के समान उनका किया वेदभाष्य भी समझ में आना चाहिये यह इच्छा बढ़ती ही गई।

मैंने अन्य आर्य-विद्वानों के किये मन्त्रार्थों को भी पढ़ा और उन्हें महर्षि के किये वेदभाष्य के साथ मिलाया। उससे अन्यों के किये मन्त्रार्थ में भ्रान्ति प्रतीत हुई जिससे भ्रान्त एवं अप्रामाणिक मन्त्रार्थों में अश्रद्धा उत्पन्न हो गई। महर्षि के ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका आदि ग्रन्थों में सत्य-वेदार्थ सम्बन्धी स्पष्ट लेख प्राप्त हुये। जिनमें से कतिपय वचनों का उल्लेख इस ग्रन्थ की भूमिका में विद्यमान है। महर्षि के ग्रन्थों के स्वाध्याय से इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि वेदों का अर्थ करने वाले विद्वानों की योग्यता का माप-दण्ड आवश्यक है। महर्षि ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में वेदार्थ के लिये शास्त्रीय योग्यता का निर्धारण किया है। जिसके अनुसार आज वेदार्थ करने वाले विद्वानों की योग्यता अत्यन्त तुच्छ है। महर्षि दयानन्द तथा अन्य ऋषियों द्वारा निर्धारित शास्त्रीय योग्यता का माप-दण्ड मिथ्या नहीं हो सकता। जब अंग्रेजी पढ़े-लिखे भी वेदार्थ करने लगे तब महर्षि ने बरेली के लिखित शास्त्रार्थ में कहा—"वेदों में पाप का क्षमा होना नहीं लिखा। आश्चर्य यह है कि अंग्रेजी जानने वाले भी वेदार्थ का निर्णय करें।"

भाव यह है कि आजकल आर्यों और अनार्यों के किये कपोल-कल्पित वेदों के किये व्याख्यान को लोग पढ़ते और पढ़ाते हैं। प्रत्येक विद्वान् अपने विचारों को वेद-मन्त्रों से सिद्ध करने का प्रयत्न कर रहा है। वास्तविकता यह है कि जब तक प्रामाणिक वेदार्थ सामने न हो तब तक, वैदिक सिद्धान्त क्या है? इसका निर्णय नहीं हो सकता। यदि सिद्धान्त को पहले निर्धारित कर लिया और फिर तदनुसार वेदार्थ किया तो उस वेदार्थ की आवश्यकता ही क्या है। तथ्य तो यह है कि प्रामाणिक वेदार्थ से सिद्धान्त का निर्णय किया जाता है। जब शास्त्रार्थ में वेदभाष्य की प्रामाणिकता का प्रश्न आता है तब आर्य विद्वानों तथा अन्यों के किये वेदभाष्य मैदान छोड़कर भाग जाते हैं। क्योंकि उनमें दम नहीं केवल प्राचीन ऋषियों के किये ब्राह्मण ग्रन्थ आदि वेद-व्याख्यान तथा महर्षि दयानन्द सरस्वतीकृत वेदभाष्य ही मैदान में डटे रहते हैं क्योंकि वे सत्य के बल से परिपूर्ण हैं।

अब प्रश्न यह है कि महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा निर्धारित योग्यता से शून्य विद्वान् क्या करें। उत्तर अत्यन्त सरल है कि वे अप्रामाणिक अनर्थकारी वेदभाष्य न करें अपितु ऋषि दयानन्द के आदेशानुसार आर्ष वेदभाष्यों का अध्ययन करें। आज मन्त्र-क्रम से किया केवल महर्षि दयानन्द सरस्वती का भाष्य उपलब्ध है, उसका मनन करें।

जिन विद्वानों का ऐसा विचार है कि महर्षि ने तो केवल वेदभाष्य पद्धति को एक उदार एवं विस्तृत शैली प्रदान की है उनकी सेवा में निवेदन है कि यदि महर्षि का उद्देश्य केवल शैली बतलाना ही

था तो सब वेदों का भाष्य करने के लिये कमर कसने की क्या आवश्यकता थी ? एक विशाल ग्रन्थ के रूप में चारों वेदों की भूमिका (**ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका**) लिखने की भी कोई आवश्यकता नहीं थी। शैली तो दो-चार मन्त्रों के उदाहरण से भी बतलाई जा सकती है। आर्य-विद्वानों की इन मिथ्या कल्पनाओं ने महर्षि के सत्य वेदार्थ के प्रति घोर अनर्थ किया है। महर्षि ने कहीं नहीं लिखा कि मैं एक उदार वेदार्थ शैली समझाने के लिए यह वेदभाष्य प्रस्तुत कर रहा हूँ। देखिये महर्षि क्या लिखते हैं:—

"मेरा भाष्य उन ऐतरेय आदि ब्राह्मण-ग्रन्थों के प्रमाणों से युक्त होगा जिनमें ऋषि, मुनि, महर्षि, महामुनि आर्यों ने वेद का सत्यार्थप्रकाश परमात्मा की कृपा से लिखा है, क्योंकि बिना सत्यार्थ-प्रकाश के देखे मनुष्यों की भ्रम-निवृत्ति कभी नहीं हो सकती (**ऋग्वेदादि० प्रतिज्ञा०**) ॥

महर्षि के इस लेख के प्रकाश में कौन कह सकता है कि उन्होंने एक शैली मात्र के प्रदर्शन में वेदभाष्य किया है। वास्तविकता तो यह है कि प्राचीन ऋषि-मुनियों ने वेद का जो सत्यार्थ परमात्मा की कृपा से प्राप्त किया था महर्षि दयानन्द उसी सत्य वेदामृत का सबको पान कराना चाहते हैं।

महर्षि की वेदभाष्य-शैली को भी किसी वेदभाष्यकार ने नहीं अपनाया है। यदि महर्षि की शैली समझ में आ गई है तो आधुनिक वेदभाष्यकार शेष अढ़ाई वेद का भाष्य महर्षि की शैली के अनुरूप क्यों नहीं करते। जिससे महर्षि का भी कार्य पूरा हो और आर्य-जनता का भी कल्याण हो। सच्चाई तो यह है कि आर्य विद्वानों ने महर्षि की वेदभाष्य-शैली को समझा ही नहीं है। इसके कुछ उदाहरण इस ग्रन्थ की भूमिका में प्रस्तुत किये गये हैं।

वेदप्रेमी सभी स्वाध्यायशील आर्य-जनों को निश्चय करना चाहिये कि वे पहले महर्षि के किये सम्पूर्ण वेदभाष्य का अनुशीलन करके उनकी समीक्षा में अन्यों के किये वेदभाष्यों का अध्ययन करें। जैसे श्री पं० गुरुदत्त जी 'विद्यार्थी' जो अत्यन्त मेधावी थे उन्होंने महर्षि के सत्यार्थप्रकाश को चौदह बार पढ़कर यह लिखा था कि जब-जब मैं इस ग्रन्थ को पढ़ता हूँ तब-तब नई-नई बातें ही मुझको मिलती हैं, वैसे इसमें भी कुछ सन्देह नहीं कि ऋषि के वेदभाष्य को भी अनेक बार पढ़ने से पाठकों को अमूल्य रत्न अवश्य प्राप्त होंगे।

श्री पण्डित सुदर्शनदेव जी आचार्य एम० ए० ने यह दयानन्द-वेदभाष्य-भास्कर नामक ग्रंथ बड़े पुरुषार्थ और योग्यता से तैयार किया है। इससे महर्षि के वेदभाष्य को समझने में जो कठिनाई पाठकों के सामने थी वह सर्वथा दूर हो गई है। इस योग्यतापूर्ण एवं प्रशंसनीय कार्य के लिये मैं श्री आचार्य जी का हार्दिक धन्यवाद करता हूँ। श्री पण्डित वेदपाल जी शास्त्री तथा श्री पण्डित राजवीर जी शास्त्री एम० ए० ने इस कार्य में जो सहयोग प्रदान किया है तदर्थ उनका भी धन्यवाद है। जिन विद्वानों ने सम्मति देकर इस कार्य का सम्मान किया है वे भी धन्यवाद के पात्र हैं।

इस ग्रन्थ के समान शेष यजुर्वेदभाष्य-भास्कर और ऋग्वेदभाष्य-भास्कर सम्पूर्ण प्रकाशित किया जा रहा है। स्वाध्यायशील वेद-प्रेमी आर्य जनों से निवेदन है कि इस यजुर्वेदभाष्य-भास्कर के प्रथम भाग का अध्ययन करके सम्पूर्ण ग्रन्थ के ग्राहक बनें।

ऋषि-चरणों का अनुचर—
दीपचन्द आर्य
प्रधान—आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
२ एफ. कमलानगर, दिल्ली-७

२८-१२-१९७२ ई०

भूमिका

वेद और ऋषि दयानन्द

वेद और महर्षिकृत वेदभाष्य को जानने के लिये ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का अध्ययन आवश्यक है। इसके विना उनके भाष्य को नहीं समझा जा सकता। इसलिये ऋषि ने एक विज्ञापन ऋग्वेद और यजुर्वेदभाष्यों के पांचवे अङ्क में छपवाया था :—

"जो कोई भूमिका के विना केवल वेद ही लिया चाहे सो नहीं मिल सकते किन्तु भूमिका ५ रुपया देने से पृथक् मिल सकती है"।

किसी भी ग्रन्थ को समझने के लिये प्रथम उसकी भूमिका का गम्भीर अध्ययन आवश्यक होता है। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ऋषि के जीवनकाल में अङ्कों के रूप में छपी थी। यह ग्रन्थ बड़ा होने के कारण इसको वेदभाष्य के साथ नहीं लगाया गया है। पाठकों को ऋषि के आदेश का ध्यान रखना चाहिये। यहाँ उनकी कुछ मान्यताओं का ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका तथा सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों द्वारा उल्लेख किया जायेगा :—

१. वेदों का प्रादुर्भाव—वेद ईश्वरीय ज्ञान है। ईश्वर प्रत्येक सृष्टि के प्रारम्भ में अग्नि ऋषि को ऋग्वेद, वायु ऋषि को यजुर्वेद, आदित्य ऋषि को सामवेद तथा अङ्गिरा ऋषि को अथर्ववेद का ज्ञान देता है। यह चारों ऋषि परस्पर में वेदों का अध्ययन कर चारों वेदों का ज्ञान प्राप्त करते हैं। इन चारों ऋषियों से जो प्रथम पुरुष चारों वेदों का ज्ञान प्राप्त करता है उसका नाम 'ब्रह्मा' होता है। इस प्रकार ब्रह्मा से वेदों के अध्ययन की परम्परा सृष्टि में चालू हो जाती है। सृष्टि के प्रारम्भ में यदि ईश्वर वेदों का ज्ञान न दे तो कोई भी मनुष्य कभी भी कुछ भी ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। इसलिये ईश्वर ने मनुष्यों के कल्याण के लिये सूर्य, चन्द्रमा, पृथिवी आदि के समान वेदों का ज्ञान भी प्रदान किया। वेदों के प्रादुर्भाव के विषय में महर्षि दयानन्द सरस्वती सत्यार्थप्रकाश सप्तम समुल्लास में इस प्रकार लिखते हैं:—

यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन्।
सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखं स्कम्भन्तंब्रूहि
कतमः स्विदेव सः ॥ अथर्व ॥ का० १० प्रपा० २३ । अनु० ४ । मं० २० ॥

जिस परमात्मा से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद प्रकाशित हुए हैं, वह कौन सा देव है? इसका उत्तर—जो सबको उत्पन्न करके धारण कर रहा है वह परमात्मा है।

स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ यजु० ४० । ८ ॥

जो स्वयम्भू, सर्वव्यापक, शुद्ध, सनातन, निराकार परमेश्वर है वह सनातन जीव-रूप प्रजा के कल्याणार्थ यथावत् रीतिपूर्वक वेद द्वारा सब विद्याओं का उपदेश करता है।

(प्रश्न) परमेश्वर को आप निराकार मानते हो वा साकार ? **(उत्तर)** निराकार मानते हैं। **(प्रश्न)** जब निराकार है तो वेदविद्या का उपदेश विना मुख के वर्णोच्चारण कैसे हो सका होगा ? क्योंकि वर्णों के उच्चारण में ताल्वादि स्थान, जिह्वा का प्रयत्न अवश्य होना चाहिये।

(उत्तर) परमेश्वर के सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापक होने से जीवों को अपनी व्याप्ति से वेदविद्या के उपदेश करने में कुछ भी मुख आदि की अपेक्षा नहीं है, क्योंकि मुख, जिह्वा से वर्णोच्चारण अपने से भिन्न को बोध होने के लिये किया जाता है, कुछ अपने लिये नहीं, क्योंकि मुख, जिह्वा के व्यापार करे विना ही मन में अनेक व्यवहारों का विचार और शब्दोच्चारण होता रहता है। कानों को अंगुलियों से मूंद देखो, सुनो के विना मुख, जिह्वा, ताल्वादि स्थानों के कैसे-कैसे शब्द हो रहे हैं, वैसे जीवों को अन्तर्यामी रूप से उपदेश किया है, किन्तु केवल दूसरे को समझाने के लिये उच्चारण करने की आवश्यकता है। जब परमेश्वर निराकार, सर्वव्यापक है तो अपनी अखिल वेदविद्या का उपदेश जीवस्थ स्वरूप से जीवात्मा में प्रकाशित कर देता है। फिर वह मनुष्य अपने मुख से उच्चारण करके दूसरों को सुनाता है। इसलिये ईश्वर में यह दोष नहीं आ सकता।

(प्रश्न) किनके आत्मा में कब वेदों का प्रकाश किया ? **(उत्तर) अग्नेर्वा ऋग्वेदो जायते वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात् सामवेदः** ॥ शत० ॥ प्रथम सृष्टि की आदि में परमात्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य तथा अङ्गिरा इन ऋषियों के आत्मा में एक-एक वेद का प्रकाश किया।

(प्रश्न)**'यो वै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदाँश्च प्रहिणोति तस्मै'** यह उपनिषद् का वचन है—इस वचन से ब्रह्मा जी के हृदय में वेदों का उपदेश किया है। फिर अग्नि-आदि ऋषियों के आत्मा में क्यों कहा ? (उत्तर) ब्रह्मा के आत्मा में अग्नि आदि के द्वारा स्थापित कराया। देखो ! मनु ने लिखा हैः—

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम् ।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुः सामलक्षणम् ॥ मनु० ॥

जिस परमात्मा ने आदि सृष्टि में मनुष्यों को उत्पन्न करके अग्नि आदि चारों महर्षियों के द्वारा चारों वेद ब्रह्मा को प्राप्त कराये और उस ब्रह्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा से ऋग्, यजु, साम और अथर्ववेद का ग्रहण किया।

२. **ईश्वर पक्षपाती नहीं**—**(प्रश्न)** उन चारों ही में वेदों का प्रकाश किया; अन्य में नहीं इससे ईश्वर पक्षपाती होता है। **(उत्तर)** वे ही चार सब जीवों से अधिक पवित्र आत्मा थे। अन्य उनके सदृश नहीं थे, इसलिये पवित्र विद्या का प्रकाश उन्हीं में किया।

३. **संस्कृत में वेदों का प्रकाश**—**(प्रश्न)** किसी देश भाषा में वेदों का प्रकाश न करके संस्कृत में क्यों किया ? **(उत्तर)** जो किसी देशभाषा में करता तो ईश्वर पक्षपाती हो जाता, क्योंकि जिस देश की भाषा में प्रकाश करता उनको सुगमता और विदेशियों को कठिनता वेदों के पढ़ने-पढ़ाने की होती। इसलिये संस्कृत ही में प्रकाश किया, जो किसी देश की भाषा नहीं और वेदभाषा सब भाषाओं का कारण है, उसी में वेदों का प्रकाश किया। जैसे ईश्वर की पृथिवी आदि सृष्टि सब देश और देश वालों के लिये एकसी और सब शिल्पविद्या का कारण है, वैसे परमेश्वर की विद्या की भाषा भी एक-सी होनी चाहिये कि सब देश वालों को पढ़ने पढ़ाने में तुल्य परिश्रम होने से ईश्वर पक्षपाती नहीं होता और सब भाषाओं का कारण भी है।

४. **वेदों के ईश्वरकृत होने में प्रमाण**—**(प्रश्न)** वेद ईश्वरकृत हैं अन्यकृत नहीं, इसमें क्या प्रमाण ? **(उत्तर)** जैसे ईश्वर पवित्र, सर्वविद्यावित्, शुद्ध गुण कर्म स्वभाव, न्यायकारी, दयालु आदि

गुण वाला है, वैसे जिस पुस्तक में ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के अनुकूल कथन हो वह ईश्वरकृत; अन्य नहीं। और जिस में सृष्टिक्रम, प्रत्यक्षादि प्रमाण, आप्तों के और पवित्रात्मा के व्यवहार से विरुद्ध कथन न हो वह ईश्वरोक्त। जैसा ईश्वर का निर्भ्रम ज्ञान वैसा जिस पुस्तक में भ्रान्तिरहित ज्ञान का प्रतिपादन हो, वह ईश्वरोक्त। जैसा परमेश्वर है, और जैसा सृष्टिक्रम रखा है वैसा ही ईश्वर, सृष्टि, कार्य, कारण और जीव का प्रतिपादन जिसमें होवे वह परमेश्वरोक्त पुस्तक होता है, और जो प्रत्यक्षादि प्रमाण विषयों से अविरुद्ध शुद्धात्मा के स्वभाव से विरुद्ध न हो, इस प्रकार के वेद हैं। अन्य बाइबल, कुरान आदि पुस्तकें नहीं।

५. मनुष्य स्वयं पुस्तक नहीं बना सकते—**(प्रश्न)** वेद की ईश्वर से होने की आवश्यकता कुछ भी नहीं, क्योंकि मनुष्य लोग क्रमशः ज्ञान बढ़ाते जाकर पश्चात् पुस्तक भी बना लेंगे **(उत्तर)** कभी नहीं बना सकते, क्योंकि बिना कारण के कार्योत्पत्ति का होना असम्भव है। जैसे जङ्गली मनुष्य सृष्टि को देख कर भी विद्वान् नहीं होते, और जब उनको कोई शिक्षक मिल जाय तो विद्वान हो जाते हैं, और अब भी किसी से पढ़े बिना कोई भी विद्वान् नहीं होता। इस प्रकार जो परमात्मा उन आदि सृष्टि के ऋषियों को वेदविद्या न पढ़ाता और वे अन्य को न पढ़ाते तो सब लोग अविद्वान् ही रह जाते। जैसे किसी के बालक को जन्म से एकान्त देश, अविद्वानों वा पशुओं के संग में रख देवे तो वह जैसा संग है वैसा ही हो जायेगा। इसका दृष्टान्त जङ्गली भील आदि हैं।

जब तक आर्यावर्त देश से शिक्षा नहीं गई थी तब तक मिश्र, यूनान और यूरोप देश आदिस्थ मनुष्यों में कुछ भी विद्या नहीं हुई थी, और इङ्गलैण्ड के कुलुम्बस आदि पुरुष अमेरिका में जब तक नहीं गये थे तब तक वे भी सहस्त्रों, लाखों, क्रोडों वर्षों से मूर्ख अर्थात् विद्याहीन थे। पुनः सुशिक्षा के पाने से विद्वान् हो गये हैं। वैसे ही परमात्मा से सृष्टि की आदि में विद्या शिक्षा की प्राप्ति से उत्तरोत्तर काल में विद्वान् होते आये।

'स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्' ।। योग सू० ।। जैसे वर्तमान समय में हम लोग अध्यापकों से पढ़ ही के विद्वान् होते हैं वैसे परमेश्वर सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न हुये अग्नि आदि ऋषियों का गुरु अर्थात् पढ़ानेहारा है, क्योंकि जैसे जीव सुषुप्ति और प्रलय में ज्ञान रहित हो जाते हैं वैसा परमेश्वर नहीं होता। उसका ज्ञान नित्य है। इस लिये यह निश्चित जाना चाहिये कि बिना निमित्त से नैमित्तिक अर्थ सिद्ध कभी नहीं होता।

६. ईश्वर ने वेदार्थ जनाया—**(प्रश्न)** वेद संस्कृत में प्रकाशित हुये और वे अग्नि आदि ऋषि लोग उस संस्कृत भाषा को नहीं जानते थे, फिर वेदों का अर्थ उन्होंने कैसे जाना? **(उत्तर)** परमेश्वर ने जनाया। और धर्मात्मा योगी महर्षि लोग जब-जब जिस-जिस के अर्थ की जानने की इच्छा करके ध्यानावस्थित हो परमेश्वर के स्वरूप में समाधिस्थ हुये तब-तब परमात्मा ने अभीष्ट मन्त्रों के अर्थ जनाये। जब बहुतों के आत्माओं में वेदार्थ प्रकाश हुआ तब ऋषि मुनियों ने वह अर्थ और ऋषि मुनियों के इतिहासपूर्वक ग्रन्थ बनाये। उनका नाम ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्म जो वेद उसका व्याख्यान ग्रन्थ होने से ब्राह्मण नाम हुआ।

७. ऋषि मन्त्रों के कर्ता नहीं—'ऋषयो मन्त्रदृष्टयः मन्त्रान् सम्प्रादुः' जिस-जिस मन्त्रार्थ का दर्शन जिस-जिस ऋषि को हुआ और प्रथम ही जिसके पहले उस मन्त्र का अर्थ किसी ने प्रकाशित नहीं किया था; किया और दूसरों को पढ़ाया भी, इसलिए अद्यावधि उस-उस मन्त्र के साथ ऋषि का नाम स्मरणार्थ लिखा आता है। जो कोई ऋषियों को मन्त्रकर्त्ता बतलावें उनको मिथ्यावादी समझें, वे तो मन्त्रों के अर्थप्रकाशक हैं।

८. **ब्राह्मणग्रन्थ वेद नहीं**—(**प्रश्न**) वेद किन ग्रन्थों का नाम है ? (**उत्तर**) ऋक्, यजुः, साम और अथर्व मन्त्रसंहिताओं का; अन्य का नहीं । (**प्रश्न**) 'मन्त्र ब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्' इत्यादि कात्यायनादिकृत प्रतिज्ञासूत्रादि का अर्थ क्या करोगे ? (**उत्तर**) देखो ! संहिता पुस्तक के आरम्भ अध्याय की समाप्ति में 'वेद' यह सनातन से शब्द लिखा आता है, और ब्राह्मण पुस्तक के आरम्भ वा अध्याय की समाप्ति में कहीं नहीं लिखा। और निरुक्त में—इत्यपि निगमो भवति। इति ब्राह्मणम् ॥ छन्दो ब्राह्मणानि च तद्विषयाणि यह पाणिनीय सूत्र है । इससे भी स्पष्ट विदित होता है कि वेद-मन्त्र भाग और ब्राह्मण व्याख्या भाग हैं ।

इसमें जो विशेष देखना चाहें तो मेरी बनाई 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' में देख लीजिये । वहाँ अनेकशः प्रमाणों से विरुद्ध होने से यह कात्यायन का वचन नहीं हो सकता, ऐसा ही सिद्ध किया गया है । क्योंकि जो माने तो—वेद सनातन कभी नहीं हो सकें क्योंकि ब्राह्मण पुस्तकों में बहुत से ऋषि, महर्षि और राजादि के इतिहास लिखे हैं, और इतिहास जिसका हो उसके जन्म के पश्चात् लिखा जाता है । वह ग्रन्थ भी उसके जन्मे पश्चात् होता है । वेदों में किसी का इतिहास नहीं किन्तु विशेष जिस जिस शब्द से विद्या का बोध होवे उस उस शब्द का प्रयोग किया है । किसी मनुष्य की संज्ञा वा विशेष कथा का प्रसंग वेदों में नहीं है ।

९. **वेदों की शाखायें**—(**प्रश्न**) वेदों की कितनी शाखा हैं ? (**उत्तर**) एक हजार एक सौ सत्ताईस [११२७] । (**प्रश्न**) शाखा क्या कहाती हैं ? (**उत्तर**) व्याख्यान को शाखा कहते हैं (**प्रश्न**) संसार में विद्वान् वेद के अवयवभूत विभागों को शाखा मानते हैं (**उत्तर**) तनिक सा विचार करो तो ठीक, क्योंकि जितने शाखा हैं वे आश्वलायन आदि ऋषियों के नाम से प्रसिद्ध हैं और मन्त्रसंहिता परमेश्वर के नाम से प्रसिद्ध हैं । जैसा चारों वेदों को परमेश्वरकृत मानते हैं वैसे आश्वलायनी आदि शाखाओं को उस उस ऋषिकृत मानते हैं और सब शाखाओं में मन्त्रों की प्रतीक धरके व्याख्या करते हैं । जैसे तैत्तिरीय शाखा में "**इषे त्वोर्जे त्वेति**" इत्यादि प्रतीकें धर के व्याख्यान किया है, और वेदसंहिताओं में किसी की प्रतीक नहीं धरी, इसलिये परमेश्वरकृत चारों वेद मूल-वृक्ष और आश्वलायनादि सब शाखा ऋषि-मुनिकृत हैं; परमेश्वरकृत नहीं ।

जो इस विषय में विशेष व्याख्या देखना चाहें वे 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' में देख लेवें ।

१०. **परमात्मा की कृपादृष्टि**—जैसे माता-पिता अपने सन्तानों पर कृपा दृष्टि कर उन्नति चाहते हैं वैसे ही परमात्मा ने सब मनुष्यों पर कृपा करके वेदों को प्रकाशित किया है, जिससे मनुष्य अविद्यान्धकार, भ्रमजाल से छूटकर विद्या विज्ञान रूप सूर्य को प्राप्त होकर अत्यानन्द में रहें और विद्या तथा सुखों की वृद्धि करते जायें ।

११. **वेदों की नित्यता**—(**प्रश्न**) वेद नित्य हैं वा अनित्य ? (**उत्तर**) नित्य हैं, क्योंकि परमेश्वर के नित्य होने से उसके ज्ञानादि गुण भी नित्य हैं । जो नित्य पदार्थ हैं उनके गुण, कर्म, स्वभाव नित्य, और अनित्य द्रव्य के अनित्य होते हैं । (**प्रश्न**) क्या यह पुस्तक भी नित्य है ? (**उत्तर**) नहीं, क्योंकि पुस्तक तो पन्ने और स्याही का बना है, वह नित्य कैसे हो सकता है ? किन्तु—जो शब्द, अर्थ और सम्बन्ध हैं वे नित्य हैं ।

१२. **वेद परमेश्वर प्रोक्त हैं**—(**प्रश्न**) ईश्वर ने उन ऋषियों को ज्ञान दिया होगा और उस ज्ञान से उन लोगों ने वेद बना लिये होंगे ? (**उत्तर**) ज्ञान ज्ञेय के विना नहीं होता । गायत्र्यादि छन्द और षड्-

जादि और उदात्ताऽनुदात्तादि स्वर के ज्ञानपूर्वक गायत्र्यादि छन्दों के निर्माण करने में सर्वज्ञ के विना किसी का सामर्थ्य नहीं है कि इस प्रकार का सर्वज्ञानयुक्त शास्त्र बना सके। हाँ ! वेद को पढ़ने के पश्चात् व्याकरण, निरुक्त और छन्द आदि ग्रन्थ ऋषि मुनियों ने विद्याओं के प्रकाश के लिये किये हैं। जो परमात्मा वेदों का प्रकाश न करे तो कोई कुछ भी न बना सके, इसलिये वेद परमेश्वरोक्त हैं। इन्हीं के अनुसार सब लोगों को चलना चाहिये, और जो कोई किसी से पूछे कि तुम्हारा क्या मत है तो यही उत्तर देना कि हमारा मत वेद अर्थात् जो वेदों में कहा है हम उसको मानते हैं।

(सत्यार्थप्रकाश सप्तम समु०)

१३. प्राचीन ऋषि और वेद—(क) सभी प्राचीन ऋषि-मुनि विद्वान् वेदों के सामने नतमस्तक हैं। वेदों के सम्बन्ध में उनकी सम्मति इस प्रकार है। महाराज मनु ने वेद की महिमा इन शब्दों में गाई है—"वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं यथाकालमतन्द्रितः" अर्थात् प्रत्येक आर्य का यह कर्त्तव्य है कि वह आलस्य को छोड़कर नियमपूर्वक निश्चित समय पर प्रतिदिन वेद का स्वाध्याय करें। यही आर्यों का परम धर्म है। इसके विपरीत जो लोग वेद का स्वाध्याय नहीं करते उनकी महाराज मनु ने घोर निन्दा करते हुए यह लिखा है:—

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥
मनु० २ । १६८ ॥

अर्थ—जो द्विज वेद को न पढ़कर अन्य अनार्ष ग्रन्थों में पुरुषार्थ करता है वह इसी जीवन में शूद्र भाव को प्राप्त हो जाता है।

(ख) महर्षि कणाद लिखते हैं—'**बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे**' (वै० ६ । १ । १) अर्थात् वेद में सब रचना बुद्धिपूर्वक है। '**तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्**' (वै० १ । १ । ३) अर्थात् वेद ईश्वर प्रोक्त हैं, इनमें सब सत्य विद्या और पक्षपात रहित धर्म का ही प्रतिपादन है, अतः मैं वेदों को प्रमाण मानता हूँ।

(ग) महर्षि गोतम लिखते हैं—'**मन्त्रायुर्वेदप्रमाण्यवच्च तत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यात्**' (न्याय० २ । १ । ६७) इस सूत्र की व्याख्या में महर्षि दयानन्द ने लिखा है-"सृष्टि के आरम्भ से लेकर आज पर्यन्त ब्रह्मादि जितने आप्त होते आये हैं वे सब वेदों को नित्य और प्रामाणिक मानते आये हैं। वे आप्त प्रामाणिक हैं, क्योंकि आप्त लोग वे होते हैं जो धर्मात्मा, कपट, छल आदि दोषों से रहित, सब विद्याओं से युक्त, महायोगी और सब मनुष्यों के सुख के लिये सत्य का उपदेश करने वाले हैं। जिसमें लेश मात्र भी पक्षपात वा मिथ्याचार नहीं होता। उन्होंने वेदों का यथावत् नित्य गुणों से प्रमाण किया है" **(ऋग्वेदादि वेद नित्य०)** ।

महर्षि गोतम ने न्यायदर्शन के द्वितीय अध्याय में इस तथ्य को सिद्ध किया है कि वेद अनृत, व्याघात और पुनरुक्त दोषों से रहित हैं अतः सर्वथा प्रमाण के योग्य हैं।

(घ) महर्षि पतञ्जलि लिखते हैं—'**स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्**' (योग० १ । २६) इस सूत्र की व्याख्या में महर्षि दयानन्द लिखते हैं—"जो प्राचीन अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा और ब्रह्मादि पुरुष सृष्टि के आदि में उत्पन्न हुये थे उनसे ले के हम लोग पर्यन्त, और जो हम से आगे होने वाले हैं इन सबका गुरु परमेश्वर ही है। वेद द्वारा सत्य अर्थों का उपदेश करने से परमेश्वर का

नाम गुरु है……। जिस प्रभु में अनन्त विज्ञान सर्वदा एक रस बना रहता है उसी के द्वारा रचे वेदों का भी सत्यार्थपना और नित्यपना भी निश्चित है, ऐसा ही सब मनुष्यों को जानना चाहिये (**ऋग्वेदादि० वेदनित्य०**) ।

(ङ) महर्षि कपिल लिखते हैं--'**निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतः प्रामाण्यम्**' (सां० ५ । ५१) अर्थात् परमात्मा की ज्ञान-शक्ति एवं विद्या सामर्थ्य से वेद प्रकट हुये हैं अतः वेद स्वतः प्रमाण हैं। उनके प्रमाण में अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं ।

(**च**) श्री कृष्ण द्वैपायन व्यास मुनि लिखते हैं—'**शास्त्रयोनित्वात्**' (**वेदान्त० १ । १ । ३**) इस सूत्र की व्याख्या में महर्षि दयानन्द लिखते हैं—"ऋग्वेदादि जो चारों वेद हैं वे अनेक विद्याओं से युक्त हैं, प्रदीप के समान सब सत्य अर्थों का प्रकाश करने वाले हैं । उनका बनाने वाला सर्वज्ञादि गुणों से युक्त परब्रह्म है, क्योंकि सर्वज्ञ ब्रह्म से भिन्न कोई जीव सर्वज्ञगुणयुक्त इन वेदों को बना सके, ऐसा सम्भव कदापि नहीं हो सकता । किन्तु वेदार्थ विस्तार के लिये किसी जीव विशेष पुरुष से अन्य शास्त्र बनाने का सम्भव होता है, जैसे-पाणिनि आदि मुनियों ने व्याकरणादि शास्त्रों को बनाया है। उन में विद्या के एक २ देश का प्रकाश किया है ! वे भी वेदों के आश्रय से बना सके हैं। और जो सब विद्याओं से युक्त वेद हैं उनको सिवाय परमेश्वर के दूसरा कोई भी नहीं बना सकता, क्योंकि-परमेश्वर से भिन्न सब विद्याओं में पूर्ण कोई भी नहीं है। किञ्च-परमेश्वर के बनाये वेदों के पढ़ने, विचारने और उसी के अनुग्रह से मनुष्यों को यथाशक्ति विद्या का बोध होता है; अन्यथा नहीं। (**ऋग्वेदादि वेदनित्य०**) ।।

१४. वेद स्वतः प्रमाण हैं—ऋषि मुनि आप्त विद्वानों द्वारा बनाये सब शास्त्र परतः प्रमाण हैं, अर्थात् वे वेदानुसार होने से प्रामाणिक हैं किन्तु ईश्वर-प्रोक्त चारों वेद स्वतः प्रमाण हैं, अर्थात् उनके प्रमाण के लिये अन्य किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं। इस विषय में महर्षि दयानन्द लिखते हैं—"वेद ईश्वर के रचे हुये हैं और ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वविद्यायुक्त तथा सर्वशक्ति वाला है । इस कारण से उसका कथन भी निर्भ्रम और स्वतः प्रमाण के योग्य है, और जीवों के बनाये ग्रन्थ स्वतः प्रमाण के योग्य नहीं होते क्योंकि वे सर्वविद्यायुक्त और सर्वशक्तिमान के रचे हुये नहीं, इस लिये उनका कहना स्वतः प्रमाण के योग्य नहीं हो सकता। ऊपर के कथन से यह बात सिद्ध होती है कि वेद-विषय में जहाँ कहीं प्रमाण की आवश्यकता हो वहाँ सूर्य और दीपक के समान वेदों का ही प्रमाण लेना उचित है, अर्थात् जैसे सूर्य और दीपक अपने ही प्रकाश से प्रकाशमान होके सब क्रिया वाले द्रव्यों को प्रकाशित कर देते हैं वैसे ही वेद भी अपने प्रकाश से प्रकाशित होके अन्य ग्रन्थों का भी प्रकाश करते हैं । इससे यह सिद्ध हुआ कि जो २ ग्रन्थ वेदों से विरुद्ध हैं वे कभी प्रमाण या स्वीकार करने योग्य नहीं होते । यदि वेदों का अन्य ग्रन्थों के साथ विरोध भी हो तो तब भी वेद अप्रमाण के योग्य नहीं हो सकते क्योंकि वे तो अपने ही प्रमाण से प्रमाण युक्त हैं" (**ऋग्वेदादि० ग्रन्थप्रामाण्य०**) ।।

१५. वेदाध्ययन का अधिकार—ईश्वर के पवित्र ज्ञान वेद के अध्ययन का सब मनुष्य-मात्र को अधिकार है। इस विषय में महर्षि दयानन्द सत्यार्थप्रकाश (**समु० ३**) में लिखते हैं "आजकल के सम्प्रदायी और स्वार्थी ब्राह्मण आदि जो दूसरों को विद्या, सत्संग से हटा और अपने जाल में फंसा के उनका तन, मन, धन नष्ट कर देते हैं, और चाहते हैं कि जो क्षत्रियादि वर्ण पढ़ कर विद्वान् हो जायेंगे तो हमारे पाखण्डजाल से छूट और हमारे छल को जानकर हमारा अपमान करेंगे, इत्यादि विघ्नों को राजा और प्रजा दूर करके अपने लड़कों और लड़कियों को विद्वान् करने के लिये तन, मन, धन से प्रयत्न किया करें ।

(प्रश्न) क्या स्त्री और शूद्र भी वेद पढ़ें ? जो ये पढ़ेंगे तो हम फिर क्या करेंगे ? और इनके पढ़ने में प्रमाण भी नहीं है। जैसा यह निषेध है—'स्त्री शूद्रौ नाधीयातामिति श्रुतेः'–स्त्री और शूद्र न पढ़ें यह श्रुति है।

(उत्तर) सब स्त्री और पुरुष अर्थात् मनुष्य मात्र को पढ़ने का अधिकार है। तुम कुआँ में पड़ो और यह श्रुति तुम्हारी कपोल कल्पना से हुई है। किसी प्रामाणिक ग्रन्थ की नहीं। और सब मनुष्यों को वेदादि शास्त्र पढ़ने, सुनने के अधिकार का प्रमाण यजुर्वेद के छब्बीसवें अध्याय में दूसरा मन्त्र है:—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्याꣳ शूद्राय चार्य्याय च स्वाय चारणाय ॥ यजु० २६ । २ ॥

अर्थ—परमेश्वर कहता है कि **(यथा)** जैसे मैं **(जनेभ्यः)** सब मनुष्यों के लिये **(इमाम्)** इस **(कल्याणीम्)** कल्याण अर्थात् संसार और मुक्ति के सुख देने हारी **(वाचम्)** ऋग्वेदादि चारों वेदों की वाणी का **(आ+वदानि)** उपदेश करता हूँ, वैसे तुम भी किया करो।

यहाँ कोई ऐसा प्रश्न करे कि 'जन' शब्द से द्विजों का ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि—स्मृत्यादि ग्रन्थों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ही के वेदों के पढ़ने का अधिकार लिखा है, स्त्री और शूद्रादि वर्णों कानहीं।

(उत्तर)—**(ब्रह्मराजन्याभ्याꣳ)** इत्यादि देखो परमेश्वर स्वयं कहता है कि हमने ब्राह्मण, क्षत्रिय **(अर्याय)** वैश्य **(शूद्राय)** शूद्र (स्वाय) अपने भृत्य वा स्त्रियादि **(अरणाय)** और अतिशूद्रादि के लिये भी वेदों का प्रकाश किया है, अर्थात् सब मनुष्य वेदों को पढ़-पढ़ा और सुन-सुना कर, विज्ञान को बढ़ा के अच्छी बातों का ग्रहण और बुरी बातों का त्याग करके, दुःखों से छूट कर आनन्द को प्राप्त हों।

कहिये ! अब तुम्हारी बात मानें वा परमेश्वर की ? परमेश्वर की बात अवश्य माननीय है। इतने पर भी जो कोई इसको न मानेगा वह नास्तिक कहावेगा, क्योंकि—'नास्तिको वेद निन्दकः' वेदों का निन्दक और न मानने वाला नास्तिक कहाता है। क्या परमेश्वर शूद्रों का भला करना नहीं चाहता ? क्या ईश्वर पक्षपाती है कि वेदों के पढ़ने, सुनने का शूद्रों के लिये निषेध और द्विजों के लिये विधि करे ? जो परमेश्वर का अभिप्राय शूद्रादि के पढ़ाने, सुनाने का न होता तो इनके शरीर में वाक् और श्रोत्र इन्द्रिय क्यों रचता ? जैसे परमात्मा ने पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, चन्द्र, सूर्य और अन्नादि पदार्थ सब के लिये बनाये हैं वैसे ही वेद भी सब के लिये प्रकाशित किये हैं। और जहाँ कहीं निषेध किया है उसका यह अभिप्राय है कि जिसको पढ़ने-पढ़ाने से कुछ भी न आवे वह निर्बुद्धि और मूर्ख होने से शूद्र कहाता है। उसका पढ़ना-पढ़ाना व्यर्थ है।

१६. स्त्रियों को वेदाध्ययन का अधिकार—और जो स्त्रियों को पढ़ने का निषेध करते हो वह तुम्हारी मूर्खता, स्वार्थता और निर्बुद्धिता का प्रभाव है। देखो ! वेद में कन्याओं के पढ़ने का प्रमाण—

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् ॥ अथर्व० ३ । २४ । ११ । १८ ॥

अर्थ—जैसे लड़के ब्रह्मचर्य-सेवन से पूर्ण विद्या और सुशिक्षा को प्राप्त हो के युवति, विदुषी अपने अनुकूल, प्रिय, सदृश स्त्रियों के साथ विवाह करते हैं वैसे **(कन्या)** कुमारी **(ब्रह्मचर्येण)** ब्रह्मचर्य-सेवन से वेदादि शास्त्रों को पढ़, पूर्णविद्या और उत्तम शिक्षा को प्राप्त युवति हो के पूर्ण युवावस्था में अपने सदृश, प्रिय, विद्वान् **(युवानम्)** और पूर्ण युवावस्थायुक्त पुरुष को **(विन्दते)** प्राप्त होवे। इसलिये स्त्रियों को भी ब्रह्मचर्य और विद्या का ग्रहण अवश्य करना चाहिये।

(प्रश्न) क्या स्त्री लोग भी वेदों को पढ़े ? **(उत्तर)** अवश्य, देखो ! श्रौतसूत्रादि में—**'इमं मन्त्रं पत्नी पठेत्'** अर्थात्—स्त्री यज्ञ में इस मन्त्र को पढ़े । जो वेदादि शास्त्रों को न पढ़ी होवे तो यज्ञ में स्वरसहित मन्त्रों का उच्चारण और संस्कृत भाषण कैसे कर सके ? भारतवर्ष की स्त्रियों में भूषणरूप गार्गी आदि वेदादि शास्त्रों को पढ़ के पूर्ण विदुषी हुई थी, यह शतपथ ब्राह्मण में स्पष्ट लिखा है । भला जो पुरुष विद्वान् और स्त्री अविदुषी और स्त्री विदुषी और पुरुष अविद्वान् हो तो नित्यप्रति देवासुर संग्राम घर में मचा रहे, फिर सुख कहाँ ? इसलिये जो स्त्री न पढ़े तो कन्याओं की पाठशाला में अध्यापिका क्योंकर हो सकें तथा राजकार्य न्यायाधीशत्वादि, गृहाश्रम का कार्य जो पति को स्त्री और स्त्री को पति प्रसन्न रखना, घर के सब काम स्त्री के आधीन रहना, विना विद्या के इत्यादि काम अच्छे प्रकार कभी ठीक नहीं हो सकते ।

देखो ! आर्यावर्त्त के राजपुरुषों की स्त्रियाँ धनुर्वेद अर्थात् युद्धविद्या भी अच्छी प्रकार जानती थीं, क्योंकि—जो न जानती होती तो कैकेयी आदि दशरथ आदि के साथ युद्ध में क्योंकर जा सकती, और युद्ध कर सकती ? इसलिये ब्राह्मणी को सब विद्या क्षत्रिया को सब विद्या और युद्ध तथा राजविद्या विशेष, वैश्या को व्यवहारविद्या और शूद्रा को पाकादि सेवा की विद्या अवश्य पढ़नी चाहिये । वैसे पुरुषों को व्याकरण, धर्म और अपने व्यवहार की विद्या न्यून से न्यून अवश्य पढ़नी चाहिये वैसे स्त्रियों को भी व्याकरण, धर्म, वैद्यक, गणित, शिल्पविद्या तो अवश्य ही सीखनी चाहिये । क्योंकि—इनके सीखे विना सत्यऽसत्य का निर्णय, पति आदि से अनुकूल वर्तमान, यथायोग्य सन्तानोत्पत्ति, उनका पालन, वर्द्धन और सुशिक्षा करना, घरके सब कार्यों को जैसा चाहिये वैसा करना कराना, वैद्यक विद्या से औषधवत् अन्न पान बनाना और बनवाना नहीं कर सकती । जिससे घर में रोग कभी न आवे और सब लोग आनन्दित रहें । शिल्प विद्या के जाने विना घर का बनवाना, वस्त्र-आभूषण आदि का बनाना, बनवाना, गणित-विद्या के विना सबका हिसाब समझना समझाना, वेदादि शास्त्र विद्या के विना ईश्वर और धर्म को न जान के अधर्म से कभी नहीं बच सके ।

(सत्यार्थप्रकाश तृतीय समु०)

वेदोत्पत्तिकाल—"(१९६०८५२९७६) वर्ष वेदों की और जगत् की उत्पत्ति में हो गये हैं और (२३३३२२७०२४) वर्ष इस सृष्टि को भोग करने की बाकी रहे हैं। ··· यही इतिहास आज पर्य्यन्त सब आर्यावर्त्त देश में एकसा वर्तमान हो रहा है । ··· जैसे बही खाते में मिति डालते हैं वैसे ही महीना और वर्ष बढ़ाते घटाते चले आये हैं" । ऋ-भा-भू-वेदोत्पत्ति विषय ।

इस समय प्राय: ऋषि विरुद्ध १९७२९०४९०७३ सम्वत् का प्रयोग किया जाता है जो अशुद्ध है । महर्षि सृष्टि की आयु १००० चतुर्युगी और भुक्तकाल ९९४ चतुर्युगी मानते हैं। छ: चतुर्युगी काल सृष्टि उत्पत्ति में आता है इस सम्वत् को ऐतिहासिक और भुक्तकाल लिखते हैं, सृष्टि सम्वत् और वेदोत्पत्ति काल एक मानते हैं। जो लोग ऋषि को भूल से सन्धिकाल जोड़ना रह गया है ऐसा मानते हैं वह ऋषि के लेख की संगति कदापि नहीं लगा सकते । सन्धिकाल मानने पर चतुर्युगी संख्या तो ९९४ ही रहेगी एवं सृष्टि सम्वत् को ऐतिहासिक नहीं कह सकोगे इस सम्बन्ध में विस्तृत लेख हम आर्य पत्रिकाओं में लिख चुके हैं। विरुद्ध पक्ष रखने वाले उत्तर ही नहीं देते । कुछ स्थानों पर अवश्य ठीक किया गया है । ऋषि के सृष्टि सम्वत् में बिल्कुल भूल नहीं है। विचार कर भ्रान्त धारणा को छोड़ना चाहिये और सत्य का ग्रहण करना चाहिये ।

महर्षि दयानन्द के वेदभाष्य की विशेषतायें

१. महर्षि दयानन्द ने प्राचीन महर्षियों के किये वेद-व्याख्यानों का बड़ा ही सम्मान किया है, और उन्हीं के अनुकूल वेदभाष्य की रचना की है। उन्होंने अपने वेदभाष्य सम्बन्धी विषय को प्रश्नोत्तर के रूप में इस प्रकार स्पष्ट किया है :—

(क)—"(**प्रश्न**) क्यों जी तुम यह वेदों का भाष्य बनाते हो वह पूर्वाचार्यों के भाष्य के समान बनाते हो वा नवीन ? यदि पूर्व रचित भाष्यों के समान है तब तो व्यर्थ है क्योंकि वे तो पहले ही से बने बनाये हैं, और जो नया बनाते हो तो उसको कोई भी न मानेगा क्योंकि जो विना प्रमाण के केवल अपनी ही कल्पना से बनाना है, यह बात कब ठीक हो सकती है ?

(**उत्तर**) यह भाष्य प्राचीन आचार्यों के भाष्य के अनुकूल बनाया जाता है, परन्तु जो रावण, उवट, सायण और महीधर आदि ने भाष्य बनाये हैं वे सब मूल मन्त्र और ऋषिकृत व्याख्यानों से विरुद्ध हैं। मैं वैसा भाष्य नहीं बनाता क्योंकि उन्होंने वेदों की सत्यार्थता और अपूर्वता कुछ भी नहीं जानी। और जो यह मेरा भाष्य बनता है वह वेद, वेदाङ्ग, ऐतरेय, शतपथ ब्राह्मणादि ग्रन्थों के अनुसार है, क्योंकि जो-जो वेदों के सनातन व्याख्यान हैं उनके प्रमाणों से युक्त बनाया जाता है यही इसमें अपूर्वता है, क्योंकि जो-जो प्रामाण्याप्रमाण्य विषय में वेदों से भिन्न शास्त्र गिना आये हैं वे सब वेदों के ही व्याख्यान हैं। उन सब ग्रन्थों के प्रमाण से युक्त यह भाष्य बनाया जाता है। और दूसरा इसके अपूर्व होने का कारण यह भी है कि इसमें कोई बात अप्रमाण वा अपनी रीति से नहीं लिखी जाती। और जो-जो भाष्य उवट, सायण, महीधर आदि ने बनाये हैं वे सब मूलार्थ और सनातन-वेद व्याख्यानों से विरुद्ध हैं, तथा जो-जो इन नवीन भाष्यों के अनुसार अंग्रेजी, जर्मनी, दक्षिणी और बंगाली आदि भाषाओं में वेद व्याख्यान बने हैं, वे भी अशुद्ध हैं।"

(**ऋग्वेदादि० भाष्यकरण शंका०**) ॥

(ख)—"मेरा भाष्य उन ऐतरेयादि ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रमाणों से युक्त होगा जिन में ऋषि, मुनि, महर्षि, महामुनि आर्यों ने वेद का सत्यार्थ परमात्मा की कृपा से लिखा है क्योंकि विना सत्यार्थ-प्रकाश के देखे मनुष्यों की भ्रम निवृत्ति कभी नहीं हो सकती (**ऋग्वेदादि-प्रतिज्ञा०**) ॥

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में की गई महर्षि की इस प्रतिज्ञा के अनुसार महर्षि का भाष्य प्राचीन ऋषियों द्वारा किये गये भाष्यों के अनुसार है। महर्षि वेद के अतिरिक्त सब आर्ष शास्त्र शिक्षा, व्याकरण आदि ग्रन्थों को वेदों का व्याख्यान ग्रन्थ मानते हैं, वे सब वेदों की ही व्याख्या कर रहे हैं। उन्हीं वेदों के व्याख्यान रूप शास्त्रों के अनुसार महर्षि ने अपना वेदभाष्य लिखा है। सायण, महीधर आदि ने प्राचीन आर्ष ग्रन्थों को वेदव्याख्यान न मानकर इनके अनुसार अपना भाष्य नहीं रचा। अतः महर्षि का भाष्य सायण, महीधर आदि के किये वेदभाष्यों से अपूर्व है, प्राचीन वेदव्याख्यानों की दृष्टि से महर्षि के वेदभाष्य में कोई अपूर्वता नहीं। जो विद्वान् महर्षि के वेदभाष्य को बिलकुल निराला कहकर पुकारते हैं वे भ्रान्ति में हैं। वे महर्षि की ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के उक्त प्रकरण का गम्भीरतापूर्वक मनन करें।

२. महर्षि दयानन्द ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के अन्त में अपने वेदभाष्य के स्वरूप के बोध में एक बड़ा महत्त्वपूर्ण पद्य लिखा है। जिससे महर्षि के वेदभाष्य का स्वरूप एवं उसकी विशेषताओं पर पूर्ण प्रकाश पड़ता है। पद्य इस प्रकार है :—

"मन्त्रार्थभूमिकाह्यत्र मन्त्रस्तस्य पदानि च।
पदार्थान्वयभावार्थाः क्रमाद् बोध्या विचक्षणैः॥

इस मन्त्रभाष्य में इस प्रकार का क्रम रहेगा कि प्रथम तो मन्त्र में परमेश्वर ने जिस बात का प्रकाश किया है वह, फिर मूल मन्त्र, उसका पदच्छेद, क्रम से प्रमाण सहित मन्त्र के पदों का अर्थ, अन्वय अर्थात् पदों की सम्बन्धपूर्वक योजना और छटा भावार्थ अर्थात् मन्त्र का जो मुख्य प्रयोजन है, इस क्रम से मन्त्र-भाष्य बनाया जाता है। (**ऋग्वेदादि० ग्रन्थ संकेत०**) ॥

३. **मन्त्रार्थभूमिका**—महर्षि ने अपने वेदभाष्य में यह शैली स्वीकार की है कि सर्वप्रथम मन्त्र के ऋषि, देवता, छन्द और स्वर का निर्देश किया है। इनका निर्देश मूल संहिताओं में भी उपलब्ध होता है। इस प्राचीन परम्परा को महर्षि ने अपने वेदभाष्य में भी सुरक्षित रखा है। इसके पश्चात् महर्षि ने अपनी दिव्य दृष्टि से सर्वत्र मन्त्रों के ऊपर मन्त्र के प्रतिपाद्य विषय का उल्लेख किया है। जिसे महर्षि ने मन्त्रार्थभूमिका नाम दिया है। इससे वेद के पाठक को यह सरलता से विदित हो जाता है कि इस मन्त्र का प्रतिपाद्य विषय क्या है। विषय का प्रथम ज्ञान हो जाने पर मन्त्रार्थ के समझने में बड़ी सहायता मिलती है। मन्त्रार्थभूमिका के पश्चात् वेदभाष्य में सस्वर मन्त्रपाठ दिया गया है।

४. **पदच्छेद**—जिस प्रकार मन्त्रों पर अङ्कित उदात्तादि स्वर वेदार्थ के नियामक हैं एवं मन्त्र के अर्थ ज्ञान में अत्यन्त सहायक हैं इसी प्रकार मन्त्र के पद-पाठ का भी वेदार्थ के ज्ञान में अपना विशेष महत्त्व है। संहिता पाठ से पदपाठ की रचना करना प्रत्येक विद्वान् के वश की बात नहीं, क्योंकि पद पाठ बनाने के लिये मन्त्रार्थ का ज्ञान अपेक्षित है तथा मन्त्रार्थ जानने के लिये मन्त्र के पृथक्-पृथक् पदों का परिज्ञान आवश्यक है। अतः महर्षि ने मन्त्र पाठ के पश्चात् प्रत्येक मन्त्र का पद पाठ भी दिया है।

५. **पदार्थ**—पदपाठ के पश्चात् महर्षि ने 'पदार्थ' नामक सन्दर्भ में मन्त्र में विद्यमान पदक्रम से पदार्थों का सप्रमाण अर्थ प्रस्तुत किया है। वास्तव में यह पदार्थ नामक सन्दर्भ ही महर्षि के वेदभाष्य का आत्मा है। इसमें महर्षि ने अपने निर्मल ज्ञान एवं योगज परमात्मा के साक्षात्कार के बल पर वैदिक पदों का ऐसा मनोहारी अर्थ किया है जिसे विद्वान् देखते ही रह जाते हैं कि अमुक पद का यह अर्थ किस प्रकार सम्भव है। अत्यन्त गम्भीरता से विचार करने पर महर्षि के पदार्थ की सूक्ष्मता विदित होती है। महर्षि का समाधिज ज्ञान विद्वानों को नतमस्तक कर देता है।

इस पदार्थ नामक सन्दर्भ में महर्षि ने वैदिक पदों के अर्थों की सिद्धि में वेद के व्याख्यान ग्रन्थ अष्टाध्यायी, महाभाष्य, धातुपाठ, उणादिकोष, निघण्टु निरुक्त, ब्राह्मण ग्रन्थ आदि ग्रन्थों के यथास्थान प्रमाण दिये हैं। प्रमाणों के आधार पर एक पद के अनेक अर्थ भी दर्शाये हैं। यजुर्वेद के मन्त्रों का शतपथ ब्राह्मण में की गई व्याख्या के पते भी इसी सन्दर्भ में दर्शाये हैं। महर्षि ने मन्त्र का विनियोग नहीं दिखाया है क्योंकि वह तो शतपथ ब्राह्मण में दिखा ही रखा है। फिर उसे अपने भाष्य में दिखाना पिष्टपेषण है। अतः महर्षि ने उसके पते का निर्देश मात्र कर दिया है। जिससे जो विनियोग देखना चाहे वह उक्त पते पर सरलता से देख सकेगा।

६. **अन्वय**—पदार्थ के पश्चात् महर्षि ने अपने वेदभाष्य में मन्त्र का अन्वय दर्शाया है, जो मन्त्र के अर्थ ज्ञान में परम सहायक है। जैसे साधारण लौकिक पद्य का भी ठीक-ठीक अर्थ जानने के लिये अन्वय अपेक्षित है इसी प्रकार मन्त्र के अन्वय-ज्ञान से विना मन्त्रार्थ का परिज्ञान सम्भव नहीं। मन्त्र के अन्वय में महर्षि की यह शैली रही है कि उन्होंने मन्त्र का केवल अन्वय-मात्र ही नहीं किया है अपितु आवश्यकता के अनुसार मन्त्र-पदों के अर्थों को भी खोल दिया है। इसके अतिरिक्त मन्त्रार्थ की संगति के लिये दो वाक्यों के मध्य पदों का अध्याहार भी किया गया है जिससे मन्त्र का अर्थ और अधिक स्फुट हो गया है।

७. **अलङ्कार**—वेद ईश्वर का अनुपम काव्य है । अलङ्कार काव्य का प्रधान अङ्ग है । अतः महर्षि ने अपने वेदभाष्य में यत्र तत्र उपमा, वाचकलुप्तोपमा और श्लेष आदि अलङ्कारों का प्रदर्शन किया है । श्लेष अलङ्कार के आधार पर मन्त्र के एक से अधिक अर्थ भी जहाँ तहाँ दिखाये हैं । महर्षि ने उपमा एवं लुप्तोपमा आदि अलङ्कारों का मन्त्रार्थ में पर्याप्त उपयोग ग्रहण किया है । ईश्वर के अनुपम काव्य वेद में अलङ्कारों की अभिव्यक्ति से वेद काव्य की शोभा को बढ़ाया है ।

८. **भावार्थ**—महर्षि ने मन्त्र के अन्दर निहित भावों को भावार्थ नामक सन्दर्भ में प्रकाशित किया है । साधारणतया विद्वान् जब महर्षि के भाष्य में भावार्थ को पढ़ते हैं तब ऐसा अनुभव करते हैं कि महर्षि मूल मन्त्र की ओर ध्यान न देते हुये अपना मनोवाञ्छित भावार्थ लिख रहे हैं किन्तु गम्भीरतापूर्वक महर्षि के सम्पूर्ण मन्त्रभाष्य का मनन करने के पश्चात् यह धारणा मिथ्या सिद्ध होती है और तथ्य प्रत्यक्ष हो जाता है कि भावार्थ में प्रकाशित अर्थ महर्षि मूल मन्त्र में से ही ग्रहण करके लिख रहे हैं ।

९. **अध्याय का सार**—महर्षि प्रत्येक अध्याय के अन्त में सार रूप में अध्याय में आये विषयों का संक्षेप में वर्णन करते हैं । साधारण दृष्टि से देखने पर महर्षि का सार रूप में यह विषय वर्णन मन्त्रों में दृष्टिगोचर नहीं होता किन्तु गम्भीरता से भाष्य का मनन करने पर वे सभी विषय मन्त्रों में स्पष्ट दिखाई देने लगते हैं ।

१०. **पूर्वापर अध्याय की संगति**—महर्षि अध्याय के अन्त में सम्बन्धित अध्याय के सम्पूर्ण विषयों के आधार पर उत्तर अध्याय की पूर्व अध्याय के साथ संगति दिखलाते हैं । महर्षि यास्क लिखते हैं—"न तु पृथक्त्वेन मन्त्रा निर्वक्तव्याः, प्रकरणश एव तु निर्वक्तव्याः" (**निरुक्त १३ । १२**) । जिसकी व्याख्या महर्षि दयानन्द ने इन शब्दों में की है—"प्रकरणानुकूलतया पूर्वापरसम्बन्धेनैव नितरां वक्तव्याः" (**ऋग्वेदादि०**) अर्थात्—वेदभाष्य एवं मन्त्रों का अर्थ करते समय भाष्यकार एवं मन्त्रव्याख्याता को सर्वप्रथम प्रकरण का विचार करना चाहिये क्योंकि प्रकरण-ज्ञान के विना एवं पूर्व-अपर सम्बन्ध के विचार के विना किया गया वेदार्थ सर्वथा दोषपूर्ण होता है । अतः महर्षि ने वेदभाष्य करते समय केवल प्रकरण का ध्यान मात्र ही नहीं रखा अपितु वेदार्थ विषयक पूर्व-अपर सम्बन्ध को अपने वेदभाष्य में दर्शाया भी है ।

११. **समीक्षा**—महर्षि ने वेदों के सत्यार्थ को प्रकाशित करने के लिये तथा सायण, महीधर आदि के किये मिथ्यार्थ को हटाने के लिये अपने वेदभाष्य की रचना की । वैसे तो महर्षि के वेदभाष्य से ही जो सर्वथा सत्यार्थ से परिपूर्ण हैं; महीधर आदि के भाष्य का मिथ्या अर्थ खण्डित हो जाता है, किन्तु फिर भी महर्षि ने यत्र-तत्र महीधर आदि भाष्यकारों की व्याकरण एवं छन्द आदि से सम्बन्धित पर्वताकार त्रुटियों को यत्र-तत्र अपने भाष्य में प्रकट किया है । जिससे पाठक वास्तविकता को समझ सकें ।

१२. **महर्षि का वेदभाष्य मन्त्र के देवता के अनुरूप है ।** मन्त्र में विद्यमान विशेषणों के आधार पर मन्त्र के देवतार्थ को बड़ा स्पष्ट किया है । मन्त्रार्थभूमिका, पदार्थ, अन्वय और भावार्थ में मन्त्र के प्रतिपाद्य देवता (**मुख्य-अर्थ**) का कहीं भी परित्याग नहीं किया है । यह तथ्य इस भाष्य-भास्कर से पाठकों को भली-भाँति समझ में आ जायेगा । देवता-वाचक पद बहुत से मन्त्रों में तो स्पष्ट ही होता है किन्तु कुछ एक मन्त्रों में अनुवृत्त भी होता है । जहाँ नहीं होता वहाँ ऋषियों ने अपने समाधि-बल से जाना है । यह कार्य ऋषि लोग ही कर सकते हैं । मनुष्य कोटि के विद्वानों की वहाँ तक पहुँच कहाँ ?

१३. महर्षि की भाष्य-शैली प्राचीन वेद-व्याख्याता महर्षियों के अनुकूल है । व्याकरण शास्त्र के अनुसार वाक्य में आख्यात पद प्रधान होता है । प्राचीन ऋषियों के इस नियम का महर्षि ने अपने भाष्य

में पूर्ण परिपालन किया है ।

१४. महर्षि का वेदभाष्य प्राचीन महर्षियों के प्रमाणों से युक्त है और अपनी कल्पनाओं से रहित है । प्रायः अन्य भाष्यकारों के वेदभाष्यों एवं मन्त्र-व्याख्यानों में देखा जाता है कि उनमें मन्त्र के सब पदों के अर्थ सु-संगत नहीं हैं । वे कल्पना के आधार पर चलते हैं प्रमाण के बल पर नहीं । वे अपने काल्पनिक अर्थ को सिद्ध करने के लिये मन्त्र से बाहर के पदार्थ को अपने मन्त्रार्थ में अपना लेते हैं । जिससे मन्त्रार्थ शुद्ध नहीं रहता । महर्षि का भाष्य इत्यादि दूषणों से रहित होने से सर्वथा शुद्ध है ।

१५. महर्षि स्वयं अपने वेदभाष्य के विषय में लिखते हैं—(**क**) मैं वेदों में कोई बात युक्ति-विरुद्ध वा दोष की नहीं देखता । और उन्हीं पर मेरा विश्वास है । सो यह सब भेद मेरे वेदभाष्य में खुल जायेगा

(**ख**) मेरा वेदभाष्य तो नवीन रीति का नहीं ठहर सकता क्योंकि वह प्राचीन सत्य-ग्रन्थों के प्रमाण युक्त बनता है (**भ्रांति-निवारण पृ० ४ । ५**) ॥

१६. महर्षि का वेदभाष्य सर्वाङ्ग पूर्ण—महर्षि दयानन्द का किया वेदभाष्य सर्वाङ्ग-पूर्ण है, क्योंकि इसमें मन्त्रार्थभूमिका, पदार्थ, अन्वय, भावार्थ आदि भाष्य के सभी अङ्ग विद्यमान हैं । भाष्य का लक्षण इस प्रकार है:—

सूत्रार्थो वर्ण्यते यत्र पदैः सूत्रानुसारिभिः ।
स्वपदानि च वर्ण्यन्ते भाष्यं भाष्यविदो विदुः ॥
संक्षिप्तस्याप्यतोऽस्यैव वाक्यस्यार्थगरीयसः ।
सुविस्तरतरा वाचो भाष्यभूता भवन्तु मे ॥

अर्थ—जहाँ मूल में विद्यमान पदों का अर्थ दर्शाया जाये तथा उन पदों के आधार पर मूल का तात्पर्य समझाया जाये उसे भाष्य कहते हैं और जो बात मूल में संक्षेप से कही गई है उसे विस्तार के साथ वर्णन करना भाष्य कहलाता है ।

महर्षि के वेदभाष्य में यह उल्लिखित भाष्य का लक्षण पूर्ण रूप से घटता है । महर्षि ने प्रथम मन्त्र के पदों का सप्रमाण अर्थ दर्शाया है, और उसी पदार्थ के अनुसार मूल मन्त्र के अभिप्राय को 'भावार्थ' में खोला है । मूल मन्त्र में निहित संक्षिप्त अर्थ का विस्तृत वर्णन भी किया है । मन्त्र का अन्वय भी दर्शाया है । वेदकाव्य के अलङ्कारों को भी परिस्फुट किया है । विद्वान् तथा स्वाध्यायशील पाठक महर्षि के वेद-भाष्य को उक्त भाष्य लक्षण की कसौटी पर कस कर देखें ।

महर्षि के अतिरिक्त अन्य जितने भी वेदभाष्यकार हैं उनके किये वेदभाष्य में उक्त भाष्य का लक्षण पूरा नहीं घटता । किसी ने अन्वयपूर्वक पदार्थ मात्र करके भाष्यकार की उपाधि प्राप्त करने का प्रयास किया है, किसी ने पदार्थ को न छू कर भावार्थ मात्र लिखने का प्रयास किया है । उन्होंने अपने पदार्थ तथा भावार्थ में कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया । वेद में संक्षिप्त रूप में कही वस्तु को खोलकर समझाने का सामर्थ्य तो भाष्यकारों में पाया ही नहीं जाता । मन्त्र के प्रतिपाद्य विषय का भी कोई निर्देश नहीं करते । वेद के प्रकरण को तो जानते ही नहीं, पूर्व-अपर अध्याय की संगति के साथ तो उनकी कोई संगति ही नहीं । अतः केवल पदार्थ मात्र को भाष्य नहीं कहा जा सकता । कोई भावार्थ मात्र को भी भाष्य नहीं कहा जा सकता पदार्थ तथा भावार्थ तो भाष्य का एक अङ्ग है । विना प्रमाण के किया पदार्थ अप्रामाणिक है । अप्रामाणिक होने से ग्राह्य नहीं । अतः आधुनिक विद्वानों के किये पदार्थ रूप तथा भावार्थ रूप वेदार्थ भाष्य नहीं कहे जा सकते, क्योंकि वे भाष्य लक्षण पर पूरे नहीं उतरते अतः वे अधूरे हैं । महर्षि का किया वेदभाष्य सर्वाङ्ग-पूर्ण है ।

१७. **वेद में व्यत्यय**—महर्षि पाणिनि ने अपने व्याकरण-शास्त्र में लौकिक और वैदिक संस्कृत-भाषा के नियमों का उल्लेख किया है। संस्कृत भाषा लौकिक और वैदिक भेद से दो प्रकार की है। लौकिक संस्कृत भाषा के अनेक नियम वैदिक संस्कृत में चरितार्थ नहीं होते। वैदिक संस्कृत भाषा को महर्षि पाणिनि ने नियमबद्ध करने का प्रयत्न किया है। उन्होंने व्यत्यय का एक बड़ा व्यापक नियम बनाया। जिससे बहुत से वैदिक-पदों की बड़ी सरलता से सिद्धि हो जाती है। महर्षि पाणिनि का सूत्र है—'व्यत्ययो बहुलम्' (३।१।८५)। इस सूत्र को महर्षि पतञ्जलि ने योग विभाग करके और अधिक व्यापक बना दिया है। महर्षि पतञ्जलि लिखते हैं—योग विभागः कर्त्तव्यः। 'व्यत्ययः'—व्यत्ययो भवति स्यादीनामिति। आण्डा शुष्णस्य भेदति। भिनत्तीति प्राप्ते। स न च मरति। म्रियत इति प्राप्ते। (**महा० ३।१।८५**)। इसका अभिप्राय यह है कि वेद में 'स्य' आदि विकरण प्रत्ययों का व्यत्यय=व्यतिक्रम होता है। जैसे लौकिक संस्कृत में 'भिनत्ति' प्रयोग 'श्नम्' विकरण होकर बनता है किन्तु वेद में 'शप' विकरण होकर 'भेदति' प्रयोग होता है। यह श्नम् विकरण के स्थान में 'शप्' विकरण का व्यत्यय=व्यतिक्रम है। इसी प्रकार 'मियते' और 'मरति' आदि प्रयोगों में भी व्यत्यय समझ लेवें।

महर्षि पतञ्जलि 'बहुलम्' इस विभक्त योग की व्याख्या में लिखते हैं—"ततो बहुलम्। बहुलं छन्दसि सर्वे विधयो भवन्तीति। सुपां व्यत्ययः। तिङां व्यत्ययः। वर्ण व्यत्ययः। लिङ्ग व्यत्ययः। काल व्यत्यय। पुरुष व्यत्ययः। आत्मनेपद व्यत्ययः। परस्मैपदव्यत्ययः इति (**महा०** ३।१।८५)। इसका अभि-प्राय यह है कि वेद में लौकिक संस्कृतभाषा की सब विधियाँ बहुल करके होती हैं। जैसे—सुप्व्यत्यय' सुप् प्रत्ययों के नियम में वेद में व्यतिक्रम है युक्ता मातासीद् धुरि **दक्षिणायाः**। यहाँ 'दक्षिणायाम्' ऐसा प्रयोग प्राप्त है। तिङ्व्यत्यय—चषालं ये अश्वयूपाय **तक्षति**। यहां 'तक्षन्ति' ऐसा प्रयोग प्राप्त है। वर्णव्यत्यय—त्रिष्टुभौजः **शुभितमुग्रवीरम्**। यहां 'सुहितम्' ऐसा **प्रयोग** प्राप्त है। **मधोर्गृह्णाति**। **मधोस्तृप्ता** इवासते। यहां 'मधुनः' ऐसा प्रयोग प्राप्त है कालव्यत्यय— श्वोऽग्नीना **धास्यमानेन**। श्वः सोमेन **यक्ष्यमाणेन**। आधाता यष्टेति प्राप्ते। यहाँ 'आधाता' और 'यष्टा' प्रयोग प्राप्त है। पुरुषव्यत्यय—अधा स वीरैर्दशभि-र्वियूयाः। यहां 'वियूयात्' यह प्रयोग प्रात है। आत्मनेपद व्यत्यय—ब्रह्मचारिण**मिच्छते**। यहां 'इच्छति' यह प्रयोग प्राप्त है। परस्मैपदव्यत्यय—प्रतीपमन्य ऊर्मिर्यु**ध्यति**। यहां 'युध्यते' यह प्रयोग प्राप्त है। किन्तु वेद में व्यत्यय के नियम से (यहां काले टाइप में दिये हैं) अभीष्ट प्रयोग होते हैं।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने वेदभाष्य में महर्षि पाणिनि द्वारा प्रोक्त और महर्षि पतञ्जलि द्वारा व्याख्यात इस 'व्यत्यय' नामक नियम का प्रचुर प्रयोग किया है। और ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका (**वैदिक लौकिक शब्द सामान्यविशेष नियम**) में व्यत्यय एवं बहुल के वैदिक नियम को खोलकर समझाया है। पाठक इस नियम की विस्तृत व्याख्या ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में देख लेवें।

१८. **शतपथ में व्याख्यात**—महर्षि ने यजुर्वेदभाष्य के पदार्थ नामक सन्दर्भ के अन्त में शतपथ-ब्राह्मण का पता निर्देशपूर्वक यह उल्लेख किया है। यह मन्त्र शतपथ ब्राह्मण में व्याख्यात है। इस विषय में एक निर्देश महर्षि ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका (**भाष्यकरण शंकासमाधान विषय**) में दिया है जिससे महर्षि के इस लेख का अभिप्राय यह विदित होता है कि उन्होंने जिस जिस मन्त्र के पदार्थ में यह लिखा है उस उस मन्त्र की विनियोगात्मक व्याख्या शतपथ-ब्राह्मण में है। महर्षि ने अपने वेदभाष्य में शब्दार्थात्मक कर्मकाण्ड की व्याख्या की है मन्त्र की विनियोगात्मक व्याख्या नहीं कि क्योंकि वह ऋषियों ने शतपथ ब्राह्मण में की हुँई है। देखिये महर्षि क्या लिखते हैं:—

"इस वेदभाष्य में शब्द और उनके अर्थ द्वारा कर्मकाण्ड का वर्णन करेंगे, परन्तु ऋषि लोगों के कर्मकाण्ड में लगाये हुये वेद मन्त्रों में से जहाँ जहाँ जो जो कर्म अग्निहोत्र से ले के अश्वमेध के अन्त

पर्यन्त करने चाहिये उनका वर्णन यहाँ नहीं किया जायेगा क्योंकि उनके अनुष्ठान का यथार्थ विनियोग ऐतरेय शतपथादि ब्राह्मण, पूर्वमीमांसा, श्रौत और गृह्यसूत्रादिकों में कहा हुआ है। उसी को फिर कहने से पिसे को पीसने के समतुल्य अल्पज्ञ पुरुषों के लेख के समान दोष इस भाष्य में भी आ जा सकता है। इस लिये जो-जो कर्मकाण्ड वेदानुकूल युक्तिप्रमाण सिद्ध है उसी को मानना योग्य है; अयुक्त को नहीं" (**ऋग्वेदादि० भाष्यकरण०**) ॥

महर्षि ने अपने वेदभाष्य में जैसा कर्मकाण्ड का शब्दार्थ रूप में वर्णन किया है वैसे उपासना-काण्ड का भी वर्णन किया है किन्तु उसका एकत्र विशेष उल्लेख पातंजल योगशास्त्र आदि में बतलाया है। इस प्रकार ज्ञानकाण्ड का भी महर्षि ने वेदभाष्य में वर्णन किया है किन्तु एकत्र विशेष उल्लेख सांख्य, वेदान्त और उपनिषद् आदि ग्रन्थों में बतलाया है। इन तीनों काण्डों से सुख की सिद्धि तथा उपकार ग्रहण करना विज्ञान काण्ड कहलाता है। विज्ञान काण्ड का उल्लेख भी महर्षि के भाष्य में विद्यमान है। इस प्रकार महर्षि का वेदभाष्य कर्मकाण्ड आदि चारों काण्डों की व्याख्या से विभूषित है।

महर्षि के वेदभाष्य को समझने की अभिलाषा रखने वाले पाठक महानुभावों से मेरा निवेदन है कि वे महर्षिकृत ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका नामक ग्रन्थ को अवश्य पढ़ें। इससे महर्षि के वेदभाष्य का स्वरूप अत्यन्त स्पष्ट हो जायेगा और जो महर्षि के वेदभाष्य विषयक भ्रान्तियाँ हैं उनका सर्वथा निराकरण हो जायेगा।

१९. **यर्थाथार्थ**—आजकल के वेदभाष्यकार कल्पना के घोड़े पर आरूढ़ होकर वेद के नाम से अपने मन की बातें कहते हैं। मन्त्र के केवल एक, दो पदों को पकड़ कर व्याख्या करते हैं। मन्त्र में जो आख्यात पद प्रधान होता है उसे देखते ही नहीं, अथवा जानते ही नहीं। जबकि महर्षि ने आख्यात-पद को सर्वत्र प्रधानता दी है और जितने मन्त्र में आख्यात पद हैं उतने ही अन्वय में वाक्य बनाये हैं। क्योंकि वाक्य बनता ही आख्यात-पद है। विना क्रिया के वाक्य बन ही नहीं सकता। विना पूर्ण वाक्य के वक्ता अपने अभिप्राय को प्रकट कर ही नहीं सकता। इस मुख्य बात को छोड़ कर भी आज मन्त्रों की केवल अपने पद-व्याख्यायें चालू हैं। यह वेदार्थ के साथ अनर्थ नहीं तो क्या है ?

महर्षि की सप्रमाण पदार्थ, अन्वय, और भावार्थ की शैली को अपना कर कोई भी वेदभाष्य-कार वेद में इतिहास को सिद्ध नहीं कर सकता, कल्पना के घोड़े पर आरूढ़ होकर अपनी मनोवाँछित बातें नहीं कह सकता, कल्पना उड़ जायेगी, मूर्तिपूजा आदि मताग्रह की बातों को भी सिद्ध नहीं कर सकता। इस शैली के विना मिथ्या वेदार्थ का रोग कट नहीं सकता था।

आज १९७५ में होने वाली आर्यसमाज शताब्दी के उपलक्ष में विद्वानों में वेदभाष्य करने की बड़ी धुन है। चारों ओर वेदभाष्य की बाढ़ दिखाई देती है। उनसे मेरा निवेदन है कि महर्षि ने १½ डेढ़ वेद का भाष्य किया है। २½ अढ़ाई वेद का भाष्य महर्षि की वेदभाष्य-शैली के अनुसार अभी शेष है। यदि आर्य विद्वान् अपने आपको वेदभष्य करने में सर्वथा समर्थ समझते हैं तो बड़ी ही प्रसन्नता की बात है, और आर्यों का बड़ा अहोभाग्य है। कृपया वे इस आर्य समाज शताब्दी महोत्सव पर शेष २½ अढ़ाई वेद का भाष्य महर्षि की वेदभाष्य-शैली से आर्य जनता की सेवा में प्रस्तुत करने का अनुग्रह करें। आर्य जनता का बड़ा उपकार होगा और महर्षि का कार्य पूरा होगा। महर्षि की वेदभाष्य शैली उनके सामने विद्यमान है ही।

वेद-सम्बन्धी विविध विषयों पर विचार

आजकल के वेदभाष्यकार आर्य विद्वान् भी वेदार्थ के विषय में महर्षि दयानन्द के मन्तव्य के विरुद्ध कुछ अपनी मान्यतायें रखते हैं और उनका अपने वेदभाष्यों तथा मन्त्र-व्याख्यानों में भी उपयोग करते हैं। उनमें से यहाँ केवल चार विषयों पर क्रमशः विचार किया जाता है :—

मन्त्र का ऋषि और मन्त्रार्थ

आजकल कुछ विद्वानों में यह धारणा प्रचलित हो गई है कि जिस प्रकार मन्त्र का देवता मन्त्र का प्रतिपाद्य विषय बनकर मन्त्र के अर्थ को प्रकाशित करता है, इसी प्रकार रन्त्र का ऋषि भी अपने यौगिक अर्थ के आधार पर मन्त्र के अर्थ में सहायता प्रदान करता है। इसी धारणा के अनुसार अनेक आर्य विद्वानों ने मन्त्र-व्याख्या सम्बन्धी ग्रन्थ लिखते समय मन्त्रार्थ में मन्त्र से सम्बद्ध ऋषि के यौगिक अर्थों का भी उपयोग किया है। इसके अतिरिक्त प्रवचनों एवं उपदेशों में भी आर्य विद्वान् मन्त्र का व्याख्यान करने से पूर्व मन्त्र-देवता की भाँति मन्त्र के ऋषि का यौगिक अर्थ समझाते देखे गये हैं।

इस युग में महर्षि दयानन्द से बढ़ कर वेद के मर्म को समझने वाला कोई भी विद्वान् उत्पन्न नहीं हुआ। उनके समान वेदभाष्य भी किसी ने नहीं किया। प्राचीन वैदिक साहित्य का ज्ञाता भी उनसे बढ़कर कोई नहीं हुआ। सम्पूर्ण वैदिक साहित्य के मन्थन करने के पश्चात् महर्षि दयानन्द ने मन्त्रों के ऋषियों के सम्बन्ध में सत्यार्थप्रकाश सप्तमसमु० में इस प्रकार लिखा है :—

"ऋषयो मन्त्र दृष्टयो मन्त्रान् सम्प्रादुः" (**निरुक्त**) जिस-जिस मन्त्रार्थ का दर्शन जिस-जिस ऋषि को हुआ और प्रथम ही जिसके पहले उस मन्त्र का अर्थ किसी ने प्रकाशित नहीं किया था; किया और पढ़ाया भी, इसीलिये अद्यावधि उस-उस मन्त्र के साथ ऋषि का नाम स्मरणार्थ लिखा जाता है।

महर्षि की सम्मति स्पष्ट है। महर्षि मन्त्र के ऋषि को उस मन्त्र का प्रथम अर्थद्रष्टा और उस मन्त्र का अध्यापक मानते हैं। मन्त्रों के सब ऋषि ऐतिहासिक पुरुष हैं। उनका नाम इतिहास की सुरक्षा एवं पूर्वज ऋषियों की उक्त स्मृति के लिये मन्त्रों के साथ लिखा गया है न कि मन्त्रार्थ में सहायता के लिये। जो विद्वान् मन्त्र के ऋषि को मन्त्रार्थ में सहायक मानते हैं उनके पक्ष में निम्न दोष हैं :—

१. मन्त्र का ऋषि मन्त्रार्थ में सहायक है इस पक्ष में कोई आप्त प्रमाण नहीं।

२. मन्त्र का ऋषि किसी भाँति मन्त्रार्थ में सहायता करता है; कोई निश्चित सिद्धान्त नहीं।

३. यदि ऋषि मन्त्र के देवता के समान मन्त्र का प्रतिपाद्य विषय है तो निरुक्त में देवता-पदों के समान ऋषि पदों के निर्वचन भी उपलब्ध होने चाहिये।

४. जब देवता भी मन्त्र का विषय है और ऋषि भी, तब क्या दोनों में एकवाक्यता सम्भव है?

५. जैसे बहुत मन्त्रों की एक ही देवता है इसी प्रकार बहुत से मन्त्रों का ऋषि भी एक ही उपलब्ध होता है। क्या वह ऋषि समान रूप से जितने भी वेद में तत्सम्बन्धी मन्त्र हैं, सभी मन्त्रों के अर्थ में सहायक होगा?

६. बहुत से ऋषि पद अपत्य प्रत्ययान्त हैं जिनमें पिता का नाम स्पष्ट है। जो प्राचीन ऋषियों के वंश को स्पष्ट करते हैं। क्या किसी ऐतिहासिक पुरुष का नाम मन्त्रार्थ में सहायक हो सकता है?

यदि हाँ ! तो महर्षि दयानन्द ने भी अनेक नवीन मन्त्रों का अर्थ प्रकाशित किया है। क्या इस पक्ष के समर्थक विद्वान् उनके नाम की मन्त्रार्थ के साथ संगति दर्शाने का अनुग्रह करेंगे ?

७. क्या महर्षि दयानन्द को इस रहस्य का पता नहीं था ? महर्षि ने मन्त्र के ऋषि का मन्त्रार्थ में उपयोग क्यों नहीं किया । क्या महर्षि का वेदभाष्य अपूर्ण है ?

८. क्या इस पक्ष के समर्थक विद्वान् मन्त्रों के ऋषियों को ऐतिहासिक पुरुष नहीं मानते यह सप्रमाण स्पष्ट करने की कृपा करेंगे ?

मन्त्रार्थ और त्रिविध प्रक्रिया

आजकल कुछ एक आर्य-विद्वानों का ऐसा मन्तव्य है कि प्रत्येक मन्त्र के तीन प्रकार के अर्थ होते हैं। जैसे श्री पं० आचार्य वैद्यनाथ जी शास्त्री अपने सामवेदभाष्य की भूमिका में लिखते हैं :—

(क) "सभी वेदमन्त्रों का अर्थ तीन प्रक्रियाओं में हो सकता है" (पृ० ४८) ।।

(ख) आर्ष प्रक्रियानुसार प्रत्येक मन्त्र का तीन प्रकार का अर्थ होता है। वह तीन प्रकार आधियाज्ञिक, आधिदैविक और आधिभौतिक शब्दों से व्यवहृत होता है। इस प्रकार को ही निरुक्त आदि शास्त्रों में प्रतिपादित किया है। इस भाष्य में आध्यात्मिक प्रक्रिया को मुख्यता दी गई है" (पृ० २२) ।।

इस लेख में श्री आचार्य जी ने चार प्रक्रियाओं को स्वीकार कर लिया है। अपना सामवेद-भाष्य चौथी आध्यात्मिक प्रक्रिया में किया है। इन तीन वा चार प्रक्रियाओं की सिद्धि में श्री आचार्य जी ने निरुक्त आदि शास्त्रों का एक भी प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया है। क्या ही अच्छा होता कि श्री आचार्य जी इन प्रक्रियाओं को लक्षण और उदाहरण से स्पष्ट करते। विना लक्षण और प्रमाण के केवल आर्ष-प्रक्रिया लिख देना अपर्याप्त है।

स्वर्गीय वैदिक विद्वान् श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु द्वारा सम्पादित तथा रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित यजुर्वेदभाष्य को विवरण-भूमिका में इस त्रिविध-प्रक्रिया को प्रमाणों द्वारा सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। श्री माननीय जिज्ञासु जी ने वहाँ अधिक उद्धरण अनार्ष-ग्रन्थों के दिये हैं जो प्रमाण-कोटि में आते ही नहीं। श्री जिज्ञासु जी तो आर्ष-प्रणाली के अनन्य भक्त थे फिर ये अनार्ष उद्धरण क्यों दिये कुछ समझ में नहीं आया। निरुक्त आदि आर्ष ग्रन्थों का उन्होंने एक भी ऐसा प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया जिससे यह सिद्ध हो कि प्रत्येक मन्त्र के त्रिविध प्रक्रिया से तीन प्रकार के अर्थ होते हैं।

अपने इसी मन्तव्य की पुष्टि में यजुर्वेदभाष्य के विवरण में पहले दो अध्यायों में प्रत्येक मन्त्र के ऋषिभाष्य को इस त्रिविध प्रक्रिया में ढालने का असफल प्रयास भी किया गया है।

जैसे श्री आचार्य वैद्यनाथ जी तीन प्रक्रियाओं का प्रतिपादन करते हुये चार प्रक्रियायें लिख रहे हैं। इसी प्रकार श्री माननीय जिज्ञासु जी ने भी विवरण–भूमिका में "आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधियाज्ञिक ये तीन प्रक्रियायें बतलाई हैं किन्तु यजुर्वेदभाष्य विवरण (१। ३) में "आध्यात्मिक-आधि-दैविक-आधिभौतिक-भेदेन त्रिविधः" यहाँ एक आधिभौतिक चौथी प्रक्रिया को और स्वीकार कर लिया है। देखिये कितना अन्धेर है कि ये प्रक्रियावादी विद्वान् अभी तक यही निश्चय नहीं कर पाये हैं कि वे तीन प्रक्रियायें हैं कौन से और प्रत्येक मन्त्र को त्रिविध-प्रक्रिया के साँचे में ढालने के लिये उतारू हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि प्रत्येक मन्त्र को ये तीन सांचों में ढालेंगे अथवा चार में।

श्री माननीय जिज्ञासु जी ने भाष्य-विवरण में जितने भी मन्त्रों को इस त्रिविध प्रक्रिया में

ढालने का प्रयास किया है। वहाँ वे सर्वत्र असफल रहे हैं क्योंकि महर्षि का वेदभाष्य इस विधा में लिखा ही नहीं गया है। यहाँ स्थाली-पुलाक न्याय से एक उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है।

'वसोः पवित्रमसि०' यह यजुर्वेद (१। २) का मन्त्र है। इस मन्त्र का देवता यज्ञ है। महर्षि ने इसकी भूमिका में लिखा है—'स यज्ञः कीदृशो भवतीत्युपदिश्यते' अर्थात् यज्ञ कैसा होता है। इस विषय का उपदेश किया जाता है। यहाँ 'वसोः' पद की व्याख्या में महर्षि ने शतपथ ब्राह्मण के 'यज्ञो वै वसुः' (श० १। ७। १। ६) इस प्रमाण से वसु पद का अर्थ यज्ञ किया है और सम्पूर्ण मन्त्र की व्याख्या में यह बतलाया है कि यज्ञ कैसा होता है। जैसे कि वे भावार्थ में लिखते हैं:—

मनुष्याणां विद्याक्रियाभ्यां सम्यगनुष्ठितेन यज्ञेन पवित्रताप्रकाशः, पृथिवीराज्यं, वायुप्राणवद्राज्यनीतिः, प्रतापः, सर्वरक्षा, अस्मिँल्लोके परलोके च परमसुखवृद्धिः, परस्परमार्जवेन वर्तमानं, कुटिलतात्यागश्च जायते। अत एव सर्वैर्मनुष्यैः परोपकाराय विद्यापुरुषार्थाभ्यां प्रीत्या यज्ञो नित्यमनुष्ठातव्य, इति ॥ १ यजु० १। २॥

अर्थ—जो मनुष्य विद्या और पुरुषार्थ से यज्ञ का सम्यक् अनुष्ठान करते हैं उन्हें पवित्रता का प्रकाश, पृथिवी का राज्य, प्राणों के तुल्य राज्यनीति, प्रताप, सबकी रक्षा, इस लोक और परलोक में परम सुख की वृद्धि, परस्पर सरलता से व्यवहार और कुटिलता-परित्याग की प्राप्ति होती है। इसलिये सब मनुष्य परोपकार के लिए विद्या और पुरुषार्थ से प्रीतिपूर्वक यज्ञ का नित्य अनुष्ठान करें॥

यहाँ श्री माननीय जिज्ञासु जी ने 'वसु' शब्द का जगदीश्वर अर्थ करके आध्यात्मिक अर्थ दर्शाया है जो महर्षि के इस मन्त्र के भाष्य में है ही नहीं। इस प्रकार आधिदैविक अर्थ में पृथिवी आदि को वसु मानकर अर्थ किया है। और वसु का पृथक् अर्थ जल भी बतलाया है। यदि यहाँ पृथिवी आदि वसुओं का वर्णन है तो 'वसु' पद का अर्थ जल कदापि नहीं हो सकता। महर्षि के इस मन्त्र के भाष्य में न तो पृथिवी आदिकों को 'वसु' कहा गया है और न ही वसु पद का अर्थ जल किया गया है। ये सब अर्थ अपनी कल्पना के आधार पर किये गये हैं। महर्षि के भाष्य से इनका कोई सम्बन्ध नहीं है।

भाष्य विवरण की इस त्रिविध प्रक्रिया के सन्दर्भ में कहीं कोई अर्थ महर्षि के पदार्थ में दर्शाया जा रहा है और कोई अन्वय में तो कोई भावार्थ में और कोई भाषार्थ में। यह बात सर्वथा असङ्गत है कि एक भाष्यकार अपने भाष्य में इस प्रकार से मन्त्रार्थों को बखेर रहा कि पाठक उसका चयन ही न कर सके। कम से कम महर्षि के आर्ष भाष्य में यह बात कदापि सम्भव नहीं है। यह आर्ष ग्रन्थों की प्रणाली ही नहीं है।

श्री माननीय जिज्ञासु जी ने इस त्रिविध प्रक्रिया से तीन-चार प्रारम्भिक मन्त्रों के ही अर्थ दर्शाने का प्रयास किया है। आगे अत्यन्त संक्षिप्त निर्देश-मात्र करके स्वयं ऊहा करने का उल्लेख किया है। वह भी केवल दो अध्याय तक। श्री जिज्ञासु जी इस पथ में चल नहीं पाये क्योंकि उनका मन्तव्य महर्षि के सिद्धान्त और वेदभाष्य की शैली के विरुद्ध था।

श्री माननीय जिज्ञासु जी ने अपने मन्तव्य की पुष्टि में महर्षि दयानन्द को भी सम्मिलित करने का प्रयत्न किया है। वे लिखते हैं:—

(क) सायण से एक सहस्र वर्ष पूर्व तक वेदार्थ की यह प्रक्रिया विद्यमान थी। ऋषि दयानन्द ही इस युग में इसके पुनरुद्धारक हुये **(यजुर्वेदभाष्य विवरण पृ० ३०)** ॥

(ख) मन्त्रों के तीन प्रकार के अर्थ होते हैं इस विषय में आचार्य दयानन्द का ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के पृ० ६५ पर निम्न लेख है—(क) देवता के महामहिम होने से एक आत्मा की ही बहुत प्रकार

से (**वेद मन्त्रों में**) स्तुति की जाती है। (ख) ऋ० भू० पृ० ३६३ का भाषानुवाद—इस वेदभाष्य में जिस-जिस मन्त्र का पारमार्थिक तथा व्यावहारिक दोनों प्रकार का अर्थ होना सम्भव है। उस-उस का दोनों प्रकार का अर्थ किया जायेगा परन्तु किसी भी मन्त्र में ईश्वर का सर्वथा त्याग नहीं (**भाष्य विवरण पृ० ३०**) ॥

महर्षि के इन लेखों के आधार पर अपनी कल्पित त्रिविध प्रक्रिया को सिद्ध करना बालुका में तैल ढूंढ़ने के समान है। यहाँ महर्षि कितने स्पष्ट शब्दों में लिख रहे हैं कि वेद मन्त्रों के दो ही प्रकार के अर्थ होते हैं—एक पारमार्थिक और दूसरे व्यावहारिक। और इन दोनों अर्थों को भी प्रत्येक मन्त्र में स्वीकार नहीं किया है। जहाँ-जहाँ सम्भव है वहीं दोनों प्रकार का अर्थ हो सकता है और महर्षि ने श्लेषालङ्कार के आधार पर अपने वेदभाष्य में पारमार्थिक और व्यावहारिक दो प्रकार के अर्थ किये भी हैं। यही महर्षि का सिद्धान्त है।

प्रत्येक वेदमन्त्र का उक्त तीन प्रक्रियाओं से अर्थ होता है ऐसा लेख महर्षि के किसी भी **ग्रन्थ में** नहीं है। देखिये महर्षि दयानन्द सत्यार्थप्रकाश (**प्रथम समु०**) में क्या लिखते हैं—"**ओ३म् खं ब्रह्म,** इत्यादि प्रमाणों के ठीक-ठीक अर्थों के जानने से इन नामों करके **परमेश्वर ही का ग्रहण होता है।** 'ओ३म्' यह तो केवल परमात्मा ही का नाम है और अग्नि आदि नामों से परमेश्वर के ग्रहण में प्रकरण और विशेषण नियमकारक हैं। इससे क्या सिद्ध हुआ कि जहाँ-जहाँ स्तुति, प्रार्थना, उपासना, सर्वज्ञ, व्यापक, शुद्ध, सनातन और सृष्टिकर्त्ता आदि" विशेषण लिखे हैं वहीं-वहीं इन नामों से परमेश्वर का ग्रहण होता है और जहाँ ऐसे प्रकरण हैं कि—

ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः।
श्रोत्राद् वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत।
तेन देवा अयजन्त ॥

ऐसे प्रमाणों में विराट्, पुरुष, देव, आकाश, वायु, अग्नि, जल, भूमि आदि नाम लौकिक पदार्थों के होते हैं, क्योंकि जहाँ-जहाँ उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, अल्पज्ञ, जड़, दृश्य आदि विशेषण भी लिखे हों, वहाँ-वहाँ परमेश्वर का ग्रहण नहीं होता।······जहाँ-जहाँ इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और अल्पज्ञादि विशेषण हों वहाँ-वहाँ जीव का ग्रहण होता है। ऐसा सर्वत्र समझना चाहिये।

निरुक्तकार महर्षि यास्क ने भी यह उपदेश नहीं किया कि प्रत्येक मन्त्र के तीन प्रकार के अर्थ होते हैं। यास्क लिखते हैं—"तास्त्रिविधा ऋचः परोक्षकृताः प्रत्यक्षकृता आध्यात्मिक्यश्च। तत्र परोक्षकृता सर्वाभिर्नामविभक्तिभिर्युज्यन्ते प्रथमपुरुषैश्चाख्यातस्य। अथ प्रत्यक्षकृता मध्यमपुरुषयोगास्त्वमिति चैतेन सर्वनाम्ना······अथाध्यात्मिक्य उत्तमपुरुषयोगा अहामिति चैतेन सर्वनाम्ना ॥ निरु० अ० ७। खं० १। २ ॥

इस निरुक्त-वचन की व्याख्या में महर्षि ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में लिखते हैं—"वेदों के सब मन्त्र तीन प्रकार के अर्थों को कहते हैं कोई परोक्ष अर्थात् अदृश्य अर्थों को, कोई प्रत्यक्ष अर्थात् दृश्य अर्थों को और कोई अध्यात्म अर्थात् ज्ञान-गोचर आत्मा और परमात्मा को" (**ऋ० भू० प्रश्नोत्तर०**) ॥

यहाँ महर्षि का कितना स्पष्ट लेख है कि कोई मन्त्र दृश्य अर्थों का और कोई अदृश्य अर्थों का और कोई आत्मा-परमात्मा का वर्णन करते हैं। इतने स्पष्ट लेख के प्रकाश में भी यदि कोई हठ और दुराग्रह के वशीभूत होकर यह मानता रहे कि प्रत्येक मन्त्र के आध्यात्मिक आदि प्रक्रिया से तीन प्रकार के अर्थ होते हैं, उसे कौन समझा सकता है?

प्रत्येक मन्त्र के आध्यात्मिक और आधिभौतिक अर्थ भी असम्भव हैं क्योंकि पदार्थों में कुछ

सामान्य और कुछ विशेष गुण, कर्म, स्वभाव होते हैं। यदि अग्नि आदि मन्त्र के प्रतिपाद्य विषय के सर्वत्र सभी विशेषण द्वि-अर्थक हों तो प्रत्येक मन्त्र के ईश्वर, जीव और प्रकृति परक अर्थ सम्भव हो सकते थे, किन्तु ऐसा होने से ईश्वर, जीव और प्रकृति के गुणों में विशेषता कुछ भी नहीं रहेगी। जब विशेषता नहीं होगी तब सब सामान्य, अर्थात् एक समान ही गुण, कर्म, स्वभाव वाले हो जायेंगे। इससे बड़ा अनर्थ यह होगा कि जड़-चेतन आदि का कोई भेद नहीं रहेगा।

वैशेषिक दर्शन के अनुसार पदार्थों में कुछ समानता और कुछ विशेषता होती है। तदनुसार ही महर्षि ने अपने वेदभाष्य में 'अग्नि' आदि के विशेषणों को दृष्टि में रखते हुये कहीं ईश्वर और भौतिक दोनों अर्थ ग्रहण किये हैं और कहीं केवल ईश्वर और कहीं केवल भौतिक अर्थ ग्रहण किया है। यही ऋषियों का सिद्धान्त युक्तियुक्त है।

महर्षि ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका (**प्रतिज्ञा विषय**) में यह प्रतिज्ञा की है कि मैं वेदभाष्य में कर्मकाण्ड का, उपासना काण्ड का, ज्ञान काण्ड का और विज्ञान काण्ड का प्रकरणानुसार वर्णन करूँगा। इस विधि से महर्षि के अनुसार चार प्रकार का वेदार्थ बनता है, तीन प्रकार नहीं। किन्तु महर्षि ने यह कहीं नहीं लिखा कि प्रत्येक वेदमन्त्र का चार प्रकार का अर्थ करूँगा। हाँ! प्रकरणानुसार महर्षि ने चार प्रकार का वेदार्थ लिखने की प्रतिज्ञा की है जो सर्वथा ठीक है। महर्षि के शब्द इस प्रकार हैं:—

"अत्र वेदभाष्ये कर्मकाण्डस्य वर्णनं शब्दार्थतः करिष्यते। परन्त्वेतैर्वेदमन्त्रैः कर्मकाण्ड-विनियोजितैर्यत्राऽग्निहोत्राद्यश्वमेधान्ते यद्यत् कर्त्तव्यं तत्तदत्र विस्तरतो न वर्णयिष्यते। कुतः? कर्मकाण्डानुष्ठानस्यैतरेय शतपथ ब्राह्मण पूर्वमीमाँसा श्रौत सूत्रादिषु यथार्थं विनियोजितत्वात्। पुनस्तत्कथनेनानृषिकृत ग्रन्थवत् पुनरुक्तपिष्टपेषण दोषापत्तेश्च। तस्माद्युक्तिसिद्धो वेदादिप्रमाणानुकूलो मन्त्राथीनुसृतस्तदुक्तोऽपि विनियोगो ग्रहीतुं योग्योऽस्ति।

तथैवोपासना काण्डस्यापि **प्रकरण** शब्दानुसार तो हि प्रकाशः करिष्यते।……एवमेव ज्ञान काण्डस्यापि।……एवं काण्डत्रयेण बोधान्निष्पत्त्युपकारौ गृह्येते, तच्च विज्ञानकाण्डम्। परन्त्वेतत्काण्ड-चतुष्टयस्य **वेदानुसारेण** विस्तरतस्तद्व्याख्यानेषु ग्रन्थेष्वस्ति।

भाषार्थ—इस वेदभाष्य में शब्द और उनके अर्थ द्वारा कर्मकाण्ड का वर्णन करेंगे परन्तु लोगों के कर्मकाण्ड में लगाये हुये वेद मन्त्रों में से जहाँ-जहाँ जो-जो कर्म अग्निहोत्र से लेके अश्वमेध के अन्त पर्यन्त करने चाहिये उनका वर्णन यहाँ नहीं किया जायेगा। क्योंकि उनके अनुष्ठान का यथार्थ विनियोग ऐतरेय, शतपथ आदि ब्राह्मण, पूर्व मीमांसा, श्रौत और गृह्य सूत्रादिकों में कहा हुआ है। उसी को फिर कहने से पिसे को पीसने के सम तुल्य अल्पज्ञ पुरुषों के लेख के समान दोष इस भाष्य में भी आ जा सकता है। इसलिये जो-जो कर्मकाण्ड वेदनुकूल युक्ति प्रमाण सिद्ध है उसी को मानना योग्य है। अयुक्त को नहीं। (**ऋग्वेदादि० प्रतिज्ञा०**)

'तथैवोपासना०' इत्यादि का भाषार्थ इस प्रकार है—कर्मकाण्ड की भाँति उपासना काण्ड का प्रकरण के शब्दों के अनुसार ही प्रकाश किया जायेगा। और इसी प्रकार ज्ञान काण्ड का प्रकाश करेंगे। इस प्रकार उक्त तीनों काण्डों के बोध से जो सिद्धि और उपकारों को ग्रहण करना है वह विज्ञान काण्ड कहाता है। चारों काण्डों का वेदों के अनुसार विस्तार से वर्णन तो वेद के व्याख्यान ग्रन्थों में है।

मन्त्रों के अनेकार्थ के विषय में महर्षि ऋग्वेदादि० प्रतिज्ञाविषय में लिखते हैं:—

"अथात्र यस्य यस्य मन्त्रस्य पारमार्थिकव्यावहारिकमोरर्थयोः श्लेषालङ्कारादिना सप्रमाणः सम्भवोऽस्ति, तस्य द्वौ द्वावर्थौ विधास्येते । परन्तु नैवेश्वरस्यैकस्मिन्नपि मन्त्रार्थेऽत्यन्तं त्यागो भवति ॥ कुतः निमित्तकारणस्येश्वरस्यास्मिन् कार्ये जगति सर्वाङ्ग व्याप्तिमत्वात् । कार्यस्येश्वरेण सहान्वयाच्च ।

अर्थ—इस वेदभाष्य में जिस-जिस मन्त्र के पारमार्थिक और व्यावहारिक दो अर्थों का श्लेष अलङ्कार आदि से प्रमाणपूर्वक सम्भव है उस मन्त्र के दो-दो अर्थ किये जायेंगे । परन्तु ईश्वर का किसी भी मन्त्र में अत्यन्त त्याग नहीं है क्योंकि इस जगत् का निमित्त कारण ईश्वर कार्य जगत् में प्रत्येक अवयव में व्यापक है । और यह कार्य जगत् ईश्वर के साथ संयुक्त है ।

महर्षि ने प्रतिज्ञा विषय में ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में यह प्रतिज्ञा नहीं की है कि प्रत्येक मन्त्र के तीन अर्थ सम्भव हैं । बड़े ही स्पष्ट शब्दों में उन्होंने लिखा है कि प्रकरणानुसार उपासना काण्ड—आदि का वर्णन किया जायेगा । और जहाँ श्लेष अलङ्कार से एक मन्त्र के पारमार्थिक और व्यावहारिक अर्थों के प्रमाण-पूर्वक सम्भव है केवल वहीं दो अर्थ किये जायेंगे । ईश्वर अर्थ का कहीं त्याग नहीं है इससे भी प्रत्येक मन्त्र के तीन अर्थ सम्भव नहीं क्योंकि जहाँ 'स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रण०' इत्यादि में केवल ईश्वर-परक ही अर्थ है वहाँ व्यावहारिक अर्थों का सम्भव कैसे हो सकेगा । अतः प्रत्येक मन्त्र के तीन अर्थ होते हैं विद्वानों की यह धारणा कपोल-कल्पित है ।

इसी प्रकार की मिथ्या धारणायें विद्वान् लोग वेदार्थ के विषय में प्रचलित करते रहते हैं । विद्वानों और स्वाध्यायशील आर्यों से मेरा निवेदन है कि किसी विद्वान् की धारणा को तत्काल सिद्धान्त रूप में स्वीकार न करें क्योंकि किसी सिद्धान्त को स्वीकार करने के लिये विद्वान् प्रमाण नहीं महर्षि दयानन्द तथा अन्य ऋषि प्रमाण हैं । अतः वेदार्थ के सम्बन्ध में महर्षि का विशुद्ध दृष्टिकोण जानने के लिये महर्षि ने जो चारो वेदों की भूमिका 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' के नाम से अनुपम ग्रन्थ रचा है उसका अनुशीलन अवश्य करें । उसी के आधार पर विद्वानों की कही बातों का परीक्षण करें । प्रत्येक बात को परीक्षापूर्वक स्वीकार करें । यही आप्त-जनों का मार्ग है ।

३. **वेदभाष्य करने का अधिकार**—महर्षि दयानन्द के वेद के पठन-पाठन विषयक प्रचार से आर्य विद्वानों में वेदाध्ययन के प्रति अभिरुचि उत्पन्न हुई । उन्होंने महर्षि के किये वेदभाष्य को बड़े मनोयोग से पढ़ा । महर्षि की वेदार्थ के यौगिक शैली को भी समझने का प्रयास किया । वेदाध्ययन से उनके मन में अपना वेदभाष्य करने की धुन भी उत्पन्न हुई । श्री पं० जयदेव जी आदि अनेक आर्य विद्वानों ने वेदों पर अपना भाष्य रचा । किसी ने एक वेद का भाष्य किया तो किसी ने कुछ सूक्तों पर ही व्याख्या रच डाली । किसी ने अपने मनोवाञ्छित मन्त्रों का संग्रह करके उन पर व्याख्या लिखी । इसके अतिरिक्त आजकल उपदेशक आर्य विद्वान् किसी एक अपने अभीष्ट मन्त्र को लेकर व्याख्यान देते हैं और श्रोता लोग वेद व्याख्यान सुनते हैं । प्रायः व्याख्याता विद्वान् को भी यह पता नहीं होता कि व्याख्यातव्य मन्त्र का देवता (**प्रतिपाद्य विषय**) क्या है ? किन्तु वेद मन्त्र का व्याख्यान साधारण धातु-प्रत्यय एवं कल्पना के आधार पर चलता रहता है । अनेक बार तो ऐसा होता है कि व्याख्याता मन्त्र का निर्देश-मात्र करके अपने मन की ही बातें सुनाता रहता है । वेदमन्त्र को छूता भी नहीं । इस प्रकार आज वेदभाष्य तथा वेदमन्त्रों के व्याख्यान की अन्ध-प्रणाली चल रही है । वेदभाष्य एवं मन्त्र-व्याख्यान करने का किसी विद्वान् को अधिकार है, और इसके क्या-क्या नियम हैं इस विषय में महर्षि यास्क लिखते हैं :—

"अयं मन्त्रार्थाभ्यूहोऽभ्युढोऽपि श्रुतितोऽपि तर्कतो, न तु पृथक्त्वेन मन्त्रा निर्वक्तव्याः, प्रकरणश

एव तु निर्वक्तव्या, न ह्येषु प्रत्यक्षमस्त्यनृषेरतपसो वा। पारोवर्यवित्सु तु खलु वेदितृषु भूयोविद्यः प्रशस्यो भवति......। तस्माद् यदेव किं चानूचानोऽभ्यूहत्यार्षं तद् भवति" ॥ निरुक्त १३। १२ ॥

महर्षि यास्क के इस वेदार्थ सम्बन्धी महत्वपूर्ण वचन की महर्षि दयानन्द ने इस प्रकार व्याख्या की है :—

"इन मन्त्रों का अर्थ केवल श्रवण मात्र से अथवा शुष्क तर्क से, उन्हें अपने प्रकरण से पृथक् करके नहीं किया जा सकता, किन्तु—उन मन्त्रों का पूर्वापर सम्बन्ध देख कर प्रकरणानुकूल ही अर्थ करना चाहिये। इन मन्त्रों के अर्थ का प्रत्यक्ष वे लोग कभी नहीं कर सकते जो ऋषि नहीं और तपस्वी नहीं अर्थात् जिनका अन्तःकरण अशुद्ध है तथा जो अविद्वान् हैं। ......। वेदार्थज्ञ मनुष्यों में भी अधिक विद्यावान् मनुष्य ही प्रशस्त होता है और वही वेदाविरोधी सुतर्क के द्वारा ही मन्त्रों का उपयुक्त अर्थ कर सकता है। ......। यदि कोई पूर्ण विद्वान् पुरुष वेदार्थ का प्रकाश करता है तो वही ऋषि प्रोक्त व्याख्यान समझना चाहिये और जो अल्प बुद्धि पुरुष करता है वह अनार्ष होता है। उसका किसी को आदर नहीं करना चाहिये......क्योंकि वह अनर्थयुक्त है। उसका आदर करने से मनुष्यों की भी अनर्थापत्ति होगी" (**ऋग्वेदादि० वेदविषय०**)।

महर्षि दयानन्द के यास्क वचन के इस अत्युत्तम व्याख्यान से स्पष्ट है कि वेदभाष्य एवं मन्त्र व्याख्यान करने का अधिकार तपस्वी, शुद्ध अन्तःकरण वाले, विद्या से परिपूर्ण, साक्षात् द्रष्टा महर्षियों को ही है। तपस्या से रहित, मलिन अन्तःकरण वाले, अल्प विद्या से युक्त, पक्षपाती मनुष्य वेदभाष्य एवं वेद मन्त्रों का व्यख्यान करने का अधिकार नहीं रखते। ऐसे अनृषि लोगों के किये वेदभाष्य एवं मन्त्र व्याख्यान दोषरहित न होने से मनुष्यों के लिये अनर्थ का कारण बनते हैं। अतः महर्षि ने बड़े ही स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि ऐसे मनुष्यकृत वेदभाष्यों का कदापि आदर नहीं करना चाहिये। ऋषिकृत वेद-भाष्यों एवं मन्त्रव्याख्यानों का सब मनुष्य अध्ययन एवं मान करें।

ऋषियों को वेदार्थ का ज्ञान—प्राचीन ऋषियों को वेदार्थ का ज्ञान कैसे हुआ इस विषय में महर्षि दयानन्द सत्यार्थप्रकाश (**सप्तमसमुल्लास**) में लिखते हैं—"(**प्रश्न**) वेद संस्कृत में प्रकाशित हुये और वे अग्नि आदि ऋषि लोग उस संस्कृत भाषा को नहीं जानते थे फिर वेदों का अर्थ उन्होंने कैसे जाना? (**उत्तर**) परमेश्वर ने जनाया। और धर्मात्मा योगी महर्षि लोग जब २ जिस २ के अर्थ की जानने की इच्छा करके ध्यानावस्थित हो परमेश्वर के स्वरूप में समाधिस्थ हुये तब २ परमात्मा ने अभीष्ट मन्त्रों के अर्थ जनाये"।

स्वयं महर्षि दयानन्द की भी यह जीवन घटना प्रसिद्ध है कि जब महाराज जी पण्डितों को वेद-भाष्य लिखवाया करते थे उस समय जब कभी किसी मन्त्र का उन्हें अर्थ स्पष्ट नहीं होता था तब महर्षि एकान्त में जा, समाधिस्थ होकर अभीष्ट मन्त्र का अर्थ अपने आचार्य परमात्मा से समझ आते थे और पण्डितों को लिखवाया करते थे। महर्षि दयानन्द को परमात्मा का साक्षात्कार था। यह बात उनके जीवन तथा उनके अद्भुत लेखों से सिद्ध है। उन्होंने सत्यार्थप्रकाश के आरम्भ और समाप्ति पर ब्रह्म का प्रत्यक्ष स्वयं स्वीकार किया है। महर्षि वेद विद्या में पारङ्गत, परम तपस्वी, धार्मिक योगी विद्वान् थे। परमात्मा के साक्षात्कार से युक्त ऋषि थे। महर्षि के अपने जीवन तथा उनके सत्यार्थप्रकाश के उक्त लेख से यह तथ्य सर्वथा स्पष्ट हो जाता है कि वेदों का भाष्य तथा वेदमन्त्रों का व्याख्यान करने का अधिकार उन्हीं को है जिन्हें परमात्मा का साक्षात्कार हो एवं जो धार्मिक योगी विद्वान् हों। जो समाधि में स्थित होकर परमात्मा से वेदों के अर्थों को जान सकें।

अब प्रश्न उपस्थित होता है कि जिन्हें परमात्मा का साक्षात्कार नहीं अर्थात् जो योगी नहीं ऐसे विद्वान् क्या करें ? उत्तर अत्यन्त स्पष्ट है ऐसे विद्वान् प्राचीन तथा अर्वाचीन ऋषियों के किये वेद-भाष्यों का स्वाध्याय करें तथा उन्हीं के किये अर्थों का प्रचार एवं प्रसार करें।

वेदार्थ ज्ञान के १६ ग्रन्थ—परमात्मा के साक्षात्कार की बात तो बहुत दूर की है । आधुनिक वेदव्याख्याता विद्वान् तो विद्या-अध्ययन की दृष्टि से भी अधूरे हैं । देखिये महर्षि दयानन्द वेदार्थ ज्ञान के लिये ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका (पठनपाठन विषय) में कितने ग्रन्थों के अध्ययन का निर्देश करते हैं--"मनुष्य लोग वेदार्थ जानने के लिये अर्थयोजना सहित व्याकरण—अष्टाध्यायी, धातुपाठ, उणादिगण, गणपाठ और महाभाष्य, शिक्षा, कल्प, निघण्टु—निरुक्त, छन्द और ज्योतिष ये छः वेदों के अङ्ग; मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य और वेदान्त ये छः शास्त्र जो वेदों के उपाङ्ग अर्थात् जिनसे वेदार्थ ठीक २ जाना जाता है; तथा ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ ये चार ब्राह्मण; इन सब ग्रन्थों को क्रम से पढ़के अथवा जिन्होंने इन सम्पूर्ण ग्रन्थों को पढ़के जो सत्य २ वेद-व्याख्यान किये हों उनको देखके वेद का अर्थ यथावत् जान लेवें" (**ऋग्वेदादि० पठनपाठन०**)।

यहाँ महर्षि दयानन्द ने वेदार्थ ज्ञान के लिये ६ वेदांग, ६ उपांग और ४ ब्राह्मण अर्थात् १६ ग्रन्थों का उल्लेख किया है । जबकि आधुनिक वेद का व्याख्यान करने वाले विद्वान् एक विषय का भी पूर्ण ज्ञान नहीं रखते। साधारण व्याकरण के धातु-प्रत्यय विषयक ज्ञान के बल पर वेदार्थ में प्रवृत्त हो रहे हैं। इससे वेदार्थ का बड़ा अनर्थ दृष्टिगोचर हो रहा है । अतः सभी विद्वानों से निवेदन है कि वे वेदार्थ के लिये महर्षि दयानन्द द्वारा प्रदर्शित पथ पर चल कर वेदार्थ के गौरव को बढ़ावें । अपना मनोवाञ्छित वेदार्थ तुरन्त बन्द कर प्राचीन महर्षियों द्वारा तथा महर्षि दयानन्द द्वारा किये वेदार्थ का ही सर्वत्र उपयोग करें। उसी का प्रचार एवं प्रसार करें। स्वयं वेदार्थ करने के लिये ईश्वर का साक्षात्कार एवं उक्त १६ ग्रन्थों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करें।

महर्षि ने 'वेदविरुद्धमतखण्डन' ग्रन्थ में मनुस्मृति के 'अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते' श्लोक का प्रमाण देते हुये लिखा है—"सत्योपदेष्टा गुरु तुम में इससे नहीं हो सकते कि आप लोगों में वेदोक्त और ब्रह्मज्ञानी जन नहीं हैं। यदि कहो हैं तो तुम्हारा कहना असङ्गत है क्योंकि तुम लोगों की प्रीति विषयों की सेवा में प्रसिद्ध दीखती है। धर्मशास्त्रों में कहा है कि अर्थ और काम में जो आसक्त नहीं उनके लिये ही धर्म-ज्ञान का विधान है।" इस उल्लिखित ऋषियों के वचन से यह स्पष्ट है कि अर्थ और काम में न फंसा हुआ विद्वान् ही वेदवेत्ता हो सकता है। साक्षात्कृतधर्मा विद्वान् ही वेदार्थ को यथार्थ रूप में समझकर अन्यों को समझा सकता है।

वेदभाष्य में भाषार्थ ऋषि का नहीं

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका एवं वेदभाष्य की आर्यभाषा का एक रूप स्वीकार करना इन्हीं ग्रन्थों की आन्तरिक साक्षी के विरुद्ध है। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का भाषार्थ अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वहाँ जो भाव संस्कृत में संक्षेप से लिखे हैं, उन्हें आर्यभाषा में खोल कर समझाया है। बहुत से तथ्य तो संस्कृत में हैं ही नहीं जो केवल भाषा में ही उपलब्ध होते हैं। भाषार्थ में विषय को उदाहरणों द्वारा भी स्पष्ट किया गया है। भाषा में जहाँ कहीं विस्तार से लिखा है, वहाँ कहीं-कहीं आवश्यकता के अनुसार संक्षेप में भी लिखा है । ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का भाषार्थ तो भावात्मक तथा पदों को खोलकर समझाने वाला होने से भाष्य कहा जा सकता है, परन्तु वेदभाष्य का भाषार्थ अनुवाद-मात्र होने से दोनों में पर्याप्त अन्तर मानना पड़ता है।

वेदभाष्य में भाषार्थ के सब भाव संस्कृत में सुरक्षित हैं, किन्तु ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में सँस्कृतार्थ और भाषार्थ दोनों में विशिष्ट भाव विद्यमान हैं । ऋषि के वेदभाष्य के संस्कृतार्थ के आधार पर सुयोग्य विद्वान् भाषार्थ तैयार कर सकता है परन्तु, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के संस्कृतार्थ के आधार पर कोई भी विद्वान् वर्त्तमान् में छपे भाषार्थ के अनुरूप नहीं बना सकता ।

अपने वेदभाष्य के प्रारूप के विषय में स्वामी जी ने भूमिका के प्रारम्भ में लिखा है :—

संस्कृतप्राकृताभ्यां यद्भाषाभ्यामन्वितं शुभम् ।
मन्त्रार्थवर्णनं चात्र क्रियते कामधुङ् मया ॥

भाषार्थ—(संस्कृत प्रा०) **सो यह वेदभाष्य दो भाषाओं में किया जाता हैं । एक संस्कृत और दूसरी प्राकृत । इन दोनों भाषाओं में वेदमन्त्रों के अर्थ का वर्णन मैं करता हूँ ।**

यह बात विक्रम सम्वत् १९३३ के भाद्रपद शुक्लपक्ष की प्रतिपदा को ऋषि ने लिखी । तदनुसार ऋग्वेद के प्रथम-सूक्त का नमूने के रूप में जो भाष्य बना उसमें भाषार्थ भी महर्षि ने स्वयं ही किया । उसमें अन्वय पदार्थ और भावार्थ को मिलाकर भाषार्थ धारावाही लिखा है । उस नमूने के अंक की भाष्य शैली वर्त्तमान भाष्य से सर्वथा भिन्न है । प्रतीत होता है कि उसके पश्चात् काल्पनिक वेदार्थों की समीक्षा के लिये, जो कि उनका मुख्योद्देश्य था, ऋषि ने वेदभाष्य की शैली को परिवर्तित किया । अतः इस वर्त्तमान भाष्य का मूलरूप ऋषि ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के अन्त में लिखा :—

मन्त्रार्थभूमिका ह्यत्र मन्त्रस्तस्य पदानि च ।
पदार्थान्वय भावार्थाः क्रमाद् बोध्या विचक्षणैः ।

भाषार्थ—इस मन्त्र भाष्य में इस प्रकार का क्रम रहेगा कि प्रथम तो मन्त्र में परमेश्वर ने जिस बात का प्रकाश किया है, और फिर मूल-मन्त्र, उसका पदच्छेद, क्रम से प्रमाण सहित मन्त्र के पदों का अर्थ अन्वय अर्थात् पदों की सम्बन्ध पूर्वक योजना और छठा भावार्थ अर्थात् मन्त्र का जो मुख्य प्रयोजन है । इस क्रम से मन्त्रभाष्य बनाया जाता है ।

उपर्युक्त वचन में भाषार्थ की चर्चा बिलकुल भी नहीं । एवं छठा भावार्थ लिख कर भाष्य के मूल रूप का स्पष्ट कथन कर दिया है ।

ऋषि ने भाषार्थ को पण्डितों से अन्वय के साथ पदार्थ को मिला कर तैयार कराया है, जिसका कथन इस ग्रन्थ के मूलरूप को दर्शाते हुए नहीं लिखा । ऋषि निर्वाण के समय वेद-भाष्य का आर्य-भाषार्थ बहुत अधिक होना शेष था, जिसका पूरा विवरण परोपकारिणी सभा के कार्यालय में उपलब्ध है । ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका तो उनके जीवन काल में बहुत पहले छप चुकी थी ।

जिन पत्रों से भाषार्थ पण्डितों का सिद्ध होता है, वह सब पत्र वेदभाष्य के भाषार्थ सम्बन्धी हैं । उनका समय भूमिका के प्रकाशन के बाद का है । भूमिका के समय का भाषार्थ सम्बन्धो पत्र एक भी उपलब्ध नहीं ।

इन सब तथ्यों के होते हुए भी रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के सम्पादकीय में श्री युधिष्ठिर जी मीमांसक लिखते हैं :—

'हमारी मान्यता तो यह है कि ऋषि के मूल-संस्कृत-पाठ के अनुसार इस ग्रन्थ का भाषानुवाद होना चाहिये । यदि कभी अवकाश मिला तो इस प्रकार का प्रयास किया जायेगा ।'

इस धारणा की वास्तविकता को जानने के लिये निम्नलिखित तथ्य ध्यान देने योग्य हैं :—

१–यदि इस ग्रन्थ का केवल संस्कृत अंश ही रख लिया जाए, और भाषा अंश को निकाल दिया जावे, तो इस ग्रन्थ के अधिकतर स्थल अपूर्ण रह जायेंगे। ग्रन्थकर्त्ता के अभीष्ट और परमावश्यक भाव भी इस ग्रन्थ से पृथक् हो जायेंगे। यदि श्री मीमांसक जी नवीन अनुवाद करते तो पाठक हमारे इस तथ्य को प्रत्यक्ष अनुभव कर लेते।

२–इस ग्रन्थ की भाषा किस पण्डित ने बनाई श्री मीमांसक जी ने अपनी धारणा की पुष्टि में कोई प्रमाण नहीं दिया। जब कि ग्रन्थ के विद्यमान हस्तलेखों में विभिन्न लेखकों के अक्षर यह स्पष्ट कह रहे हैं कि लेखक महोदय अनुवादक नहीं अपितु प्रतिलिपि-कर्त्ता थे। एक ग्रन्थ का अनुवाद विभिन्न व्यक्ति कभी नहीं करते। हाँ, हस्त लेखों से स्पष्ट है कि ऋषि ने यह ग्रन्थ संस्कृत और भाषा में लेखकों से लिखवाया।

३–इस ग्रन्थ के आरम्भ में ही–'ओ३म् सह नाववतु' यह तैत्तिरोयारण्यक का वचन उद्धृत किया गया है। इसका संस्कृत में भाष्य नहीं केवल भाषा में ही अर्थ प्रकाशित किया गया है। इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ में ऋग्वेद के (२), यजुर्वेद का (१), शतपथ ब्राह्मण के (७), तैत्तिरीयारण्यक के (२), कठ के (५), मुण्डक के (१), छान्दोग्योपनिषद् के (८), न्याय दर्शन के (३), योग दर्शन के (३२), वेदान्त दर्शन के (३), व्याकरण महाभाष्य के (८), मनुस्मृति के (१३), इस प्रकार ८५ आर्ष वचनों एवं पाँच वचन तन्त्र ग्रन्थों के ऐसे हैं जिनका अर्थ केवल भाषा में ही उपलब्ध होता है। उक्त भाषार्थ को पढ़कर कोई नहीं कह सकता कि भाषार्थ पण्डितों का किया हुआ है। एवं यहाँ संस्कृत भाष्य तो है ही नहीं, फिर पण्डितों ने अनुवाद किसका किया?

४–उपासना विषयों में छान्दोग्योपनिषद् के सात वचनों को उद्धृत करने के पश्चात् ऋषि लिखते हैं–"**अस्य सर्वस्य भाषायामभिप्रायः प्रकाशयिष्यते**' अर्थात् इन सब वचनों का भाषा में अभिप्राय लिखेंगे। इस लेख से भी यही सिद्ध होता है कि भाषार्थ ऋषि का ही है। इसी प्रकार मुक्ति विषय में भी ऋषि लिखते हैं—'**अविद्यास्मितेत्यारभ्याध्यैरयन्तेत्यन्ते मोक्षस्वरूपनिरूपणमस्तीति वेदितव्यम्। एषामर्थः प्राकृतभाषायां प्रकाश्यते।**' अर्थात् 'अविद्यास्मिता' इत्यादि प्रमाणों से लेकर धाभन्नध्यैरर्यन्त, पर्यन्त मोक्षस्वरूप का निरूपण किया है। इन प्रमाणों का अर्थ प्राकृत भाषा में लिखा जाता है। श्री मीमांसक जी ने 'एषामर्थः प्राकृतभाषायां प्रकाश्यते, वाक्य पर टिप्पणी चढ़ाते हुये लिखा है—'यह वाक्य व्यर्थ-सा प्रतीत होता है।' (**पृष्ठ २१७ टि० २**) श्री मीमांसक जी को यह वाक्य व्यर्थ सा लगना ही था क्योंकि उनकी मान्यता इस वाक्य के प्रमाण के सामने धराशायी हो जाती है। यही नहीं अपितु सम्पूर्ण मुक्ति विषय में उद्धृत प्रमाणों का अर्थ केवल भाषा में ही लिखा है। ऋषि के कतिपय यह वाक्य भी सन्देह के निवारक हैं। मुक्ति जैसे गम्भीर विषय को ऋषि के अतिरिक्त कौन लिख सकता है?

५–इस ग्रन्थ का भाषार्थ भावार्थ रूप में है, अनुवाद-मात्र नहीं।

६–श्री मीमांसक जी जिस संस्कृत भाषा को इस ग्रन्थ की मूल भाषा स्वीकार करते हैं, उसमें भी १३० स्थल आपको पसन्द नहीं जिन पर आपने टिप्पणी चढ़ा दी है। भाषार्थ के आधार पर संस्कृत में भी कुछ पाठ बढ़ाये हैं। जब भाषार्थ ऋषि का है ही नहीं तो कम से कम ऋषि के संस्कृत भाग को तो पण्डितों के अनुसार करने का दुस्साहस नहीं करना चाहिए। भाषार्थ में ऋषि द्वारा हृदय का स्थान पण्डित जी की मान्यता के अनुसार ठीक न बैठा तो उस पर भी टिप्पणी चढ़ा दी। जिस धारणा को ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के सम्पादकीय में जो कि आर्ष साहित्य प्रचार-ट्रस्ट से प्रकाशित हुई है, मिथ्या सिद्ध किया है। जिसका उत्तर कई वर्ष हो गये अभी तक हमें प्राप्त नहीं हुआ है। इस ग्रन्थ के ऋषि के

भाषार्थ को कहीं भी भ्रान्त सिद्ध करने में पं० जी सफल नहीं हो सके हैं । किन्तु अपनी मान्यता के विरुद्ध कुछ स्थानों पर टिप्पणी देते हुए भाषार्थ को ऋषि पाठ स्वीकार कर चुके हैं ।

पण्डित जी की इस आर्यभाषा धारणा के विरुद्ध ४ वर्ष पूर्व आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के सम्पादकीय में विस्तृत लेख लिखा गया । जिसका उन्होंने आजतक उत्तर नहीं दिया ।

परस्पर वार्त्तालाप में भी उन से पूछा गया तो उत्तर दिया कि अभी तक विचार नहीं किया है । विद्वानों का कर्त्तव्य है कि सत्यासत्य को जानकर सत्य का ही ग्रहण करें और करावें ।

वेदभाष्य के भाषार्थ को ऋषि का बतलाने रूप भ्रान्त धारणा किसी प्रकार भी तो सिद्ध नहीं हो रही । ऋषि की संस्कृत भाषा अति सरल है । किन्तु पण्डितों का किया भाषानुवाद धाराप्रवाही न होने से प्रायः समझ में नहीं आता । इसी विषय को पुष्ट करने के लिये वेदभाष्य के भाषार्थ के सम्बन्ध में यहाँ महर्षि का पत्र-व्यवहार उद्धृत किया जाता है :—

१-२३ मार्च १८८२ को (पृष्ठ ३१७ पर) पं० सुन्दरलाल को ऋषि लिखते हैं :—

"भीम सेन अब भाषा बहुत ढीली बनाता है ।"

२-भाद्रपद वदी १२ सम्वत् १९३९ को (पृष्ठ ३६० पर) मुन्शी समर्थदान को महर्षि लिखते हैं :—

"जो कहीं पद छूट जाता है यह भाषा बनाने वाले और शुद्ध लिखने वाले की भूल है ।"

३–फा० सुदी ९ सं० १९३९ को (पृष्ठ ३९६ पर) मुन्शी समर्थदान को ऋषि लिखते हैं :—

"भीमसैन ने उदयपुर में जो भाषा बनाई है, सोधी गई तो कई एक के अर्थ में पदार्थ छोड़ दिया । कई एक पद अन्वय के छोड़ दिये और कई एक पद आगे पीछे भी कर दिये हैं ।"

४–आषाढ़वदी ६ सं० १९४० को (पृष्ठ ४३२ पर) मुन्शी समर्थदान को ऋषि लिखते हैं :—

"पं० ज्वालादत्त ने आठ दिन में ५० मन्त्र की भाषा बनाई, कुछ भी नहीं बनाई । ज्वालादत्त जो भाषा बनाता है, ऐसा नहीं हो कि कहीं पोपलीला घुसेड़ डाले, जैसी हमारी संस्कृत है, उसके अनुकूल करे और कुछ न करे ।"

५-अषाढ़ वदी ९ सं० १९४० को (पृष्ठ ४३४ पर) बाबू विश्वेश्वरसिंह को ऋषि लिखते हैं :—

"हमने यह लिखा था कि जो भाषा बनाने का कागज दूसरे पृष्ठ पर हो और मन्त्र, पदार्थ, अन्वय, भावार्थ दूसरे पर हो···। क्योंकि हर वार पत्र उलटाने में देर होती है, और विना पदार्थ अन्वय देखे भाषा नहीं बन सकती । इसलिये लिखा था कि उसी के सामने कि जिधर की ओर मन्त्र है उसी के सामने नीचे की ओर कागज चेपकर भाषा बनाने से शीघ्र बन सकती है । सो ज्वालादत्त ने उल्टा समझ कर सोलह मन्त्र की भाषा दो-दो बार लिख दी । यदि ऐसा न करता तो ८ दिन में ७० मन्त्र की भाषा आती । अब देखा जायगा कि अब के अठवाड़े में कितने मन्त्र की भाषा बनाता है । यदि वह हमारे संस्कृत और अभिप्राय के अनुकूल हैं तो ठीक है, नहीं तो जो पोपलीला की भाषा बनाकर वहाँ ही छपवा दे और हमको मालूम न हो पश्चात् प्रसिद्ध होने से कोलाहल होगा तो क्या होगा ।"

६-पृष्ठ ४५२ पर समर्थदान को ऋषि लिखते हैं:—

"कल ऋग्वेद के पृष्ठ १७६८ से १८०९ तक का पाकिट रजिस्ट्री कराके भेजा है । उनमें ५ या १० मन्त्र शिवदयाल को भाषा बनाने के लिये दे देना ।"

७—भाद्रपद बदी ५ सं० १९४० (पृष्ठ ४५६ पर) समर्थदान को ऋषि लिखते हैं :—

"अब ज्वालादत्त भाषा भी अच्छी नहीं बनाता, किन्तु घास सी काटता है । इसके नमूने के लिए एक पत्र भेजते हैं, जिसकी उसने भाषा बनाई है और बड़ी भूल की है, कि जिसका पदार्थ है कुछ और भाषा कुछ बनाई है और भावार्थ संस्कृत के अनुसार और पूरी भाषा भी नहीं बनाई है । छः मन्त्र की भाषा भी रोज नहीं बनाता । यह तो एक नमूना भेजते हैं । पुराणे बहुत से पत्र इसके बनाये भेजेंगे, उसमें इसके दोष सैंकड़ों दीख पड़ेंगे" । (ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन) ।।

इन सब प्रमाणों और ग्रन्थों की अन्तःसाक्षी से यही सिद्ध होता है कि ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का भाषार्थ ऋषि का और वेदभाष्य का भाषार्थ पण्डितों का है ।

भाषार्थ सम्बन्धी यह लेखांश आर्यमित्र (**साप्ताहिक**) के तीन दिसम्बर १९७२ के अङ्क में भी छपा है । श्री आचार्य विश्वश्रवाः जी ने आर्यमित्र में इसका उत्तर देने का असफल प्रयास किया है । वे हमारी एक भी बात का उत्तर नहीं दे सके हैं । अब श्री आचार्य जी के लेख की समीक्षा की जाती है :—

१. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का आर्यभाषार्थ और वेदभाष्य के आर्यभाषार्थ में रात-दिन का अन्तर है । इस तथ्य को लेख में और यहाँ भी ग्रन्थ की अन्तःसाक्षी के साथ खोलकर लिखा है । इसका श्री आचार्य जी ने कोई भी उत्तर नहीं दिया । इससे सिद्ध है कि श्री आचार्य जी ने आर्य भाषार्थ की इस अन्तःसाक्षी रूप प्रमाण को मौन में स्वीकार कर लिया है ।

मूल-लेखक के किये भाषार्थ और अन्यों द्वारा किये भाषानुवाद में बहुत अन्तर होता है । वेदभाष्य का भाषार्थ केवल अनुवाद-मात्र है और ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका एवं वेदभाष्य के नमूने के अङ्क का भाषार्थ अनुवाद मात्र नहीं अपितु भावार्थ-रूप है । उसमें पदों को खोलकर समझाया गया है जिसे भाष्य कहा जा सकता है । वास्तविकता यह है कि दोनों के भाषार्थ में रात-दिन का अन्तर है ।

२. श्री आचार्य जी ने महर्षि के पत्र और विज्ञापन के प्रमाणों का उत्तर दिया है कि पूर्वापर बात का पता न होने से पत्र का आशय भी गलत लगाया जा सकता है । और एक बात यह भी लिखी है कि महर्षि के पत्रों को छापकर भ्रान्ति फैलाई गई है । उत्तर में निवेदन है कि श्री आचार्य जी के यह दो प्रकार के उत्तर तो उनकी बात को स्वयं ही काट रहे हैं । श्री आचार्य जी के कथन से यह स्पष्ट है कि यदि पत्र का आशय श्री आचार्य जी के मन्तव्य के अनुसार हो तो पत्र ठीक है, अन्यथा पत्र ही झूठे छापे गये हैं । उनका यह मन्तव्य उचित नहीं । उनको चाहिये था कि वे पहले महर्षि के पत्रों को ध्यान से पढ़ते तत्पश्चात् सत्य अभिप्राय सर्वहित में प्रकाशित करते । पत्रों का आशय भी गलत लगाया जा सकता है, केवल इतना लिखना कदापि उचित नहीं है । महर्षि के पत्र व्यवहार से यह तथ्य सर्वथा निस्सन्देह और स्पष्ट सिद्ध है कि वेदभाष्य का भाषार्थ पण्डितों का बनाया हुआ है ।

३. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के अन्त में लिखित 'मन्त्रार्थभूमिका०' इत्यादि जो महर्षि का पद्य जिसको ग्रन्थ की अन्तःसाक्षी के रूप में प्रस्तुत किया गया था, उसका श्री आचार्य जी ने उत्तर दिया है कि—"आरम्भ में लिखी बात नमूने के अङ्क के लिये और अन्त में लिखी बात इस वेदभाष्य के लिये, यह अजीब तर्क है। यह बात गले से उतर नहीं सकती। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के लिखने में तीन मास से भी कम समय लगा" ।

उत्तर में निवेदन है कि ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का प्राक्कथन भाद्रपद १९३३ वि० में लिखा गया उस समय तक वेदभाष्य के नमूने का अङ्क ही छपा था; जिसमें पदार्थ, अन्वय और भावार्थ तीनों को

मिलाकर लिखा गया है। जबकि वर्तमान वेदभाष्य में पदार्थ, अन्वय और भावार्थ तीनों पृथक्-पृथक् हैं तथा नमूने के अङ्क में मन्त्रार्थभूमिका है ही नहीं जो वर्तमान वेदभाष्य में विद्यमान है। श्री आचार्य जी तो नमूने के अङ्क को विस्तृत भाष्य और वर्तमान वेदभाष्य को संक्षिप्त वेदभाष्य कहते हैं। इसको तो वही जानते होंगे।

ऋग्वेदभाष्य के नमूने के अङ्क और ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के वेद-विषय पर्यन्त पर महेशचन्द्र न्यायरत्न ने आक्षेप किये थे। जिनका उत्तर महर्षि ने 'भ्रान्तिनिवारण' पुस्तिका में दिया। तब तक यह वर्तमान वेदभाष्य नहीं बना था। वर्तमान ऋग्वेदभाष्य मार्गशीर्ष शुक्ला ६ सं० १९३४ वि० और यजुर्वेदभाष्य पौष शुक्ला १३ सं० १९३४ वि० को प्रारम्भ हुआ जिसका उल्लेख महर्षि ने वेदभाष्य के प्रारम्भ में स्वयं किया है। अतः ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के प्राक्कथन में वर्तमान वेदभाष्य की रूप-रेखा का उल्लेख कैसे किया जा सकता था।

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के जिस अन्तिम अङ्क के अन्त में ऋषि का उल्लिखित पद्य छपा है वह अङ्क वैशाख सं० १९३५ वि० में प्रकाशित हुआ है। अतः उसमें वर्तमान वेदभाष्य के स्वरूप का स्पष्ट निर्देश किया है। क्योंकि वर्तमान वेदभाष्य की रचना १९३४ वि० में प्रारम्भ हो चुकी थी। अतः हमारा यह कथन सर्वथा सत्य है। अजीब तर्क नहीं है। गले से उतरने वाली बात है किन्तु श्री आचार्य जी का कथन नितान्त निराधार है।

श्री आचार्य जी का यह लेख भी मिथ्या है कि ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के लिखने में तीन मास से भी कम समय लगा। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का प्राक्कथन भाद्रपद १९३३ वि० में लिखा गया। महर्षि इसी ग्रन्थ के वेदोत्पत्ति विषय में लिख रहे हैं कि "विक्रम सं० १९३३ फाल्गुन कृष्ण षष्ठी रविवार के दिन चतुर्थ प्रहर के आरम्भ में यह बात हमने लिखी"। इस ग्रन्थ की यह प्रबल अन्तःसाक्षी से ही सिद्ध है कि ६ मास तक तो इस ग्रन्थ के प्रारम्भ का 'वेदोत्पत्ति विषय' ही लिखा गया था। इसके अतिरिक्त ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका अङ्कों में प्रकाशित हुई। उसके अङ्कों में १५-१६ मास पीछे का कथन विद्यमान है।

४. वर्तमान वेदभाष्य की आर्यभाषा पण्डितों ने बनाई। इसके उत्तर में श्री आचार्य जी लिखते हैं—"भाषा बनाई का अर्थ उस काल में यह था कि आर्यभाषा की प्रैस-कापी बनाई"। उत्तर में निवेदन है कि इस प्रकार अपने मनोवाँछित अर्थों की कल्पना करना अनुचित है। क्या संस्कृत-भाष्य की प्रैस-कापी नहीं बनाई केवल आर्य भाषा की ही प्रैस-कापी बनाई जिसके लिये यह लिखने की आवश्यकता पड़ी कि आर्यभाषा पण्डितों ने बनाई। युक्ति-विरुद्ध होने से श्री आचार्य जी का उक्त कथन कपोल-कल्पित है।

जब आपकी दृष्टि में 'आर्यभाषा पण्डितों ने बनाई' इस वाक्य का यह अर्थ है कि 'पण्डितों ने प्रैस-कापी बनाई' अर्थात् यह वचन सत्य है फिर वेदभाष्यों के मुखपृष्ठ पर यह सत्य वचन जो छपता रहा कि "इस भाष्य की भाषा पण्डितों ने बनाई है और संस्कृत को भी उन्होंने शोधा है" इसे हटवाने की और छपे हुये वेदभाष्यों के मुख-पृष्ठों को फड़वाने की क्या आवश्यकता थी। इस वचन के अर्थ का स्पष्टीकरण करा देना चाहिये था। वास्तविकता यह है कि श्री आचार्य जी की आत्मा इस सत्य को स्वीकार कर रहा है कि उक्त वचन का यही अर्थ है कि वेदभाष्य की भाषा पण्डितों ने बनाई है।

'भाषा पण्डितों ने बनाई' इस वाक्य को मुखपृष्ठ से हटाने का कारण क्या यह है कि यह वाक्य तथ्य-रहित था अथवा कोई अन्य कारण था? इस वाक्य को हटाने के लिए सभा ने जिस प्रकार का

प्रस्ताव पारित किया होगा उसकी प्रतिलिपि से ही सत्य का निर्णय हो सकता है। यह वाक्य जो बहुत लम्बे समय तक वेदभाष्य के मुखपृष्ठ पर लिखा जाता रहा है उसके हटाने तथा हटवाने मात्र से यह वाक्य मिथ्या कदापि नहीं हो सकता।

महर्षि के निर्वाण के पश्चात् परोपकारिणी सभा में एक प्रस्ताव स्वीकृत हुआ जिसका विवरण इस प्रकार है—"एक पत्र इस विषय पर पढ़ा गया कि स्वर्गवासी स्वामी जी ऋग् और यजुर्वेदभाष्य का कौन सा भाग समाप्त और असमाप्त छोड़ गये हैं। सबकी सम्मति से यह स्वीकृत हुआ कि पण्डित भीमसेन तथा ज्वालादत्त प्रूफ शोधने और संस्कृत भाष्य का हिन्दी में अनुवाद करने के कार्य पर नियत किये जायें और प्रति व्यक्ति को २५) पच्चीस रुपया मुद्रा मासिक वेतन मिले"। जो पत्र सभा की अन्तरङ्ग में पढ़ा गया जब तक वह पत्र अथवा उसकी प्रमाणित प्रतिलिपि सामने न हो तब तक रामानन्द के उस पत्र को जाली कैसे स्वीकार किया जा सकता है?

परोपकारिणी सभा की ओर से प्रस्तावों की एक पुस्तक प्रकाशित हुई है। उस प्रस्ताव पुस्तक में यह प्रस्ताव छपा है। इस प्रमाण के प्रकाश में भी श्री आचार्य जी यदि यही रट रखें कि वेदभाष्य का भाषार्थ पण्डितों का नहीं है इसे केवल दुराग्रह ही कहा जा सकता है। और श्री आचार्य जी को सत्य का निश्चय कराना अपनी शक्ति से बाहर है।

५. श्री पं० देवेन्द्रनाथ उपाध्याय द्वारा संकलित महर्षि दयानन्द के जीवन चरित्र पृ० ३७५ पर लिखा है कि—स्वामी जी ने वेदभाष्य के कार्य में सहायता लेने के लिये फरुखाबाद से श्री पं० भीमसेन को अपने पास काशी बुलाया। एक मास तक धन-संग्रह का कार्य होता रहा तत्पश्चात् वेदभाष्य की रचना प्रारम्भ हुई।

श्री आचार्य जी ने भी स्वयं अपने लेख में स्वीकार किया है कि बड़े कार्यों में सहायता ली जाती है। महर्षि ने पं० भीमसेन आदि से भाषार्थ के कार्य में सहयोग प्राप्त किया।

६. 'दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मिते संस्कृतभाषाऽऽर्यभाषाभ्यां विभूषिते……यजुर्वेद—भाष्ये' इत्यादि अध्याय आदि समाप्ति द्योतक वाक्य में जो आर्यभाषा का उल्लेख है इससे यह बात सिद्ध नहीं होती कि आर्यभाषा महर्षि ने बनाई क्योंकि 'निर्मिते' यजुर्वेदभाष्य के लिये है। महर्षि ने यजुर्वेदभाष्य का निर्माण किया जो संस्कृत भाषा और आर्य भाषा से विभूषित है। कौन निषेध करता है कि महर्षि का वेदभाष्य आर्य भाषा से विभूषित नहीं है।

पुनरपि श्री आचार्य जी को यह आग्रह हो कि इस प्रमाण से भाषार्थ महर्षि का ही है। इसमें यह कथन है कि 'स्वतन्त्रः कर्ता' 'तत्प्रयोजको हेतुश्च' से महर्षि भाषार्थ के प्रयोजक (प्रेरणा करने वाला) कर्ता हैं। प्रयोजक कर्ता के इस प्रकार के लेख में कोई आपत्ति नहीं।

महर्षि के वेदभाष्य के भाषार्थ के विषय में पाठकों का कर्त्तव्य है कि वे वेदभाष्य की अन्तःसाक्षी से स्वयं भी निश्चय कर सकते हैं कि भाषार्थ किसका है? वे भी इसी निश्चय पर पहुँचेंगे कि वर्तमान भाषार्थ महर्षि का नहीं हो सकता। पण्डितों का बनाया हुआ है।

आजकल महर्षि के वेदभाष्य से पण्डितों के किये भाषार्थ को पृथक् करके महर्षि के नाम से वेदों के भाषा-भाष्य छापे जा रहे हैं। और उनका नाम महर्षि दयानन्द सरस्वतीकृत भाष्य रखा जा रहा है। यह अनुचित है। इस प्रकार के ग्रन्थों का नाम 'भाषानुवाद' रखना उचित है। इस प्रकार कार्य से महर्षि के मूल ग्रन्थ (**संस्कृत-भाष्य**) की सुरक्षा और प्रचार में बड़ी क्षति उत्पन्न होगी। अतः सभी आर्यबन्धुओं को महर्षि वेदभाष्य के भाषार्थ सम्बन्ध में गम्भीरता से विचार करके सत्य को ग्रहण करना चाहिये।

दयानन्द वेदभाष्य-भास्कर

व्याख्या की आवश्यकता--पहिले विद्वान् ऋषि लोग मूल वेदों को ही समझने की योग्यता रखते थे। कुछ काल के पश्चात् आवश्यकतानुसार ब्राह्मण ग्रन्थ तत्पश्चात् छः वेदाङ्ग और छः उपाङ्ग आदि भी वेदों की व्याख्या में लिखे गये। पुनः वेदाङ्गों और उपाङ्गों की व्याख्या की अपेक्षा हुई और वे लिखे गये। इसी प्रकार महर्षिकृत वेदभाष्य की व्याख्या की भी आवश्यकता है। महर्षि के वेदभाष्य को अत्यन्त सरल बनानेके उद्देश्य से यह भास्कर नामक व्याख्या लिखी है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि महर्षि दयानन्द का किया वेदभाष्य अनुपम है किन्तु साधारण जनता तो क्या विद्वान् भी महर्षि के वेदभाष्य को समझने में कुछ कठिनाई का अनुभव करते रहे हैं। कठिनाई यह है कि महर्षि के वेदभाष्य का स्वाध्याय करने वाला व्यक्ति मन्त्र में विद्यमान पदों का अर्थ भाष्य के 'पदार्थ' नामक सन्दर्भ में पढ़ लेता है। महर्षि ने इस सन्दर्भ में जहाँ मन्त्र-पदों का अर्थ किया है वहाँ साथ-साथ व्याकरण के सूत्र निर्देश पूर्वक मन्त्र-पदों की सिद्धियाँ भी दर्शा दी है, अर्थ के साथ निरुक्त शैली से पदों के निर्वचन भी दे दिये हैं, वेद में होने वाले व्यत्ययों का भी यथास्थान उल्लेख कर दिया है। पदार्थ की पुष्टि में निघण्टु, निरुक्त और ब्राह्मण-ग्रन्थ आदि के प्रमाण भी प्रस्तुत कर दिये हैं। इससे जिन की शास्त्रीय योग्यता न्यून है उन्हें मन्त्रार्थ समझने में कठिनाई का अनुभव होता है। और जिन्होंने आर्ष पद्धति से विधिपूर्वक आर्ष ग्रन्थों का अध्ययन किया है उन्हें महर्षि के वेदभाष्य के अध्ययन में अत्यन्त रसानुभूति होती है और महर्षि के ज्ञानसागर का पारावार न पाकर श्रद्धा से मस्तिष्क झुक जाता है। किन्तु जो ऋषि भक्त श्रद्धालु आर्य जन जिन्हें आर्ष पद्धति से आर्ष-ग्रन्थों के अध्ययन का अवसर प्राप्त नहीं हुआ किन्तु जो महर्षि के शब्दों में ही वेदभाष्य का स्वाध्याय करना चाहते हैं, व्याकरण आदि के प्रमाणों से उन्हें कोई अभिप्राय नहीं तो उनके लिये यह सरलतम सरणी है कि वे पदार्थ में विद्यमान प्रमाण-भाग को छोड़ कर महर्षि के वेदभाष्य में दिये मन्त्रान्वय के अनुसार केवल पदार्थमात्र की योजना करें। इससे पदार्थ वाक्यार्थ में परिवर्तित हो जायेगा, क्योंकि जब तक पदार्थ वाक्यार्थ में परिवर्तित न किया जाये तब तक केवल पदार्थमात्र से साधारणतया तात्पर्य ग्रहण नहीं होता। उक्त अन्वयपूर्वक पदार्थ योजना से आपके सामने महर्षि के वेदभाष्य में एक सुन्दर वाक्यरचना प्रस्तुत होती है। जिससे महर्षि का वेदभाष्य साधारण संस्कृत जानने वाले व्यक्ति को भी बड़ी सरलता से समझ में आता है।

अब प्रश्न यह है कि प्रत्येक व्यक्ति प्रत्येक वेदमन्त्र का सपदार्थन्वय तैयार करे और फिर महर्षि के वेदभाष्य को समझे यह भी एक बड़ी कठिनाई है। एक कठिनाई के समाधान में दूसरी एक और कठिनाई प्रस्तुत कर देना भी कोई बुद्धिमत्ता नहीं। इस प्रश्न के समाधान में ही यह वेदभाष्य-भास्कर और उसका धाराप्रवाह आर्य भाषा में भाषार्थ पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किया जा रहा है। वेदभाष्य-भास्कर लिखने का प्रधान उद्देश्य तो सपदार्थान्वय करना था, किन्तु लगे हाथों जो-जो कार्य हमने इस वेदभाष्य-भास्कर में किये हैं उनका विवरण इस प्रकार है :—

१. ऋषि, देवता आदि--महर्षि ने मन्त्रार्थ द्रष्टा ऋषियों के नाम प्रत्येक मन्त्र के साथ सप्रतीक लिखे हैं। हमने इस वेदभाष्य-भास्कर में लाघव के लिये सम्बन्धी मन्त्र के साथ केवल ऋषि का नाम उल्लेख किया है। महर्षि ने देवता वाचक शब्द के साथ 'देवता' शब्द भी लिखा है किन्तु हम ने केवल देवता वाचक शब्द को रखा है तथा उसका जो भाष्य में वाच्यार्थ है उसे देवतावाचक शब्द के आगे= ऐसा अर्थात्-चिह्न लगाकर सफेद में छापा है। देवतावाचक पद को विशेष टाईप में रखा है। देवता मन्त्र

का विषय होता है । जिसकी ओर आज के भाष्यकार एवं व्याख्याता कोई विशेष ध्यान नहीं देते । छन्द और स्वर शब्दों को लाघव के लिये हटा दिया है । केवल छन्द और स्वर का नाम दे दिया है । महर्षि ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में छन्द विषय में लिखा है कि पिंगल छन्द-शास्त्र के अनुसार छन्दों को लिखा है । मन्त्रपदों को गिनकर छन्द का निर्णय किया जाता है । प्रतीत होता है कि महर्षि ने इस कार्य में किसी से सहायता ली है अतः छन्दों में अनेक स्थानों पर भूल प्रतीत होती है । परोपकारिणी सभा द्वारा प्रकाशित मूल यजुर्वेद (सं० आठ) में पिंगल छन्दशास्त्र के अनुसार मन्त्र-पदों की ध्यानपूर्वक गणना करके छन्दों को शुद्ध छापा गया है । हमने भी बहुत से मन्त्रों के छन्दों की परीक्षा करके देखा तो परोपकारिणी सभा के उक्त यजुर्वेद (मूल) के छन्दों को शुद्ध पाया अतः तदनुसार छन्द दिये हैं ।

२. **मन्त्रार्थ भूमिका**—मन्त्रार्थ भूमिका को भी काले में छापा है तथा जहाँ मन्त्रार्थभूमिका में 'पुनस्तमेव विषयमाह' लिखा है उसके भाषार्थ में मन्त्र के प्रतिपाद्य विषय को भाष्य में देखकर स्पष्ट करके लिखा है । 'फिर उसी विषय का उपदेश किया है' केवल इतना भाषार्थ लिखना पर्याप्त नहीं समझा है ।

३. **मन्त्र पाठ**—मन्त्र पाठ को अपनी ओर से सर्वथा सस्वर शुद्ध छापने का प्रयास किया गया है । पद पाठ को लाघव के लिये हटा दिया है ।

४. **पदार्थ**—पदार्थ में मन्त्र पदों को काले में छापा है और पद के अर्थ को सफेद में । प्रमाण भाग को पृथक् टाईप में छापा गया है जिससे पाठक अर्थ और प्रमाणांश को पृथक्-पृथक् सरलता से ग्रहण कर सकें । पदार्थ में आये पर्यायवाचक शब्दों को=अर्थात्-चिह्न लगा कर भी स्पष्ट किया गया है । कुछ एक विद्वानों का मत है कि महर्षि के पदार्थ में मन्त्र के अनेकार्थ निहित हैं । यदि महर्षि के पदार्थ को सपदार्थान्वय के बन्धन में डाल दिया जाता है तो इससे महर्षि का पदार्थ सीमित हो जाता है । महर्षि के वेदभाष्य के अनुशीलन से मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि उक्त विद्वानों के मत में कोई सार नहीं फिर भी हमने 'पदार्थ' नामक सन्दर्भ को यहाँ अविकल रूप में प्रस्तुत किया है। जिससे ऋषि दयानन्द द्वारा अपनाई प्राचीन ऋषियों की शैली अक्षुण्ण रहे । महर्षि प्रदत्त इस पदार्थ शैली से मन्त्रों के काल्पनिक अर्थ समाप्त हो जाते हैं और मन्त्रों से काल्पनिक सिद्धान्तों की सिद्धि नहीं की जा सकती । यह शैली इतनी उत्तम है कि इससे वेदों का इतिहास तो सर्वथा समाप्त हो जाता है ।

५. **प्रमाणार्थ**—महर्षि ने पदार्थ नामक सन्दर्भ मेंजो अपने वेदार्थ की पुष्टि में शास्त्रों के प्रमाण दिये हैं उनका भाषार्थ आज तक किसी भी वेदभाष्य के संस्करण में प्रकाशित नहीं हुआ । वेद को भाषार्थ में पढ़ने वाले स्वाध्यायशील प्रमाणों के अर्थ से वञ्चित न रहें इसलिये यहाँ प्रमाणों का भाषार्थ भी 'पदार्थ' सन्दर्भ के पश्चात् प्रकाशित कर दिया है ।

६. **सपदार्थान्वय**—यजुर्वेदभाष्य-भास्कर का यह प्रधान कार्य है । इसमें महर्षि के मन्त्रान्वय पूर्वक पदार्थ को रखा गया है । इसमें अन्वय को प्रधान मानकर अन्वय में भी जो पदार्थ आया है उसे हमने= अर्थात् चिह्न के साथ पहले दिया है तत्पश्चात् पदार्थ नामक सन्दर्भ में मन्त्र-पद का जो अर्थ लिखा है सो दिया है । भाषा को धारावाही बनाने की दृष्टि से प्रमाण भाग को छोड़ दिया है । जो—प्रमाण देखना चाहें वे 'पदार्थ' में देख सकते हैं । मन्त्र के जो पद अन्वय में कहीं कहीं छूटे हुये थे उनको हमने [ ] इस कोष्ठक में डालकर यथास्थान संयुक्त किया है और उनका पदार्थ भी लिख दिया है । क्रिया पद के सहयोग से सन्दर्भ भी बनाये हैं । सपदार्थान्वय में मन्त्र के अन्वय और पदार्थ को पृथक्-पृथक् स्पष्ट देखा जा सकता है क्योंकि हमने अन्वयांश को काले में रखा है और पदार्थांश को सफेद में । सपदार्थान्वय में महर्षि के मन्त्रान्वय को बड़ी सरलता से पढ़ा जा सकता है लाघव की दृष्टि से हमने महर्षि का मन्त्रान्वय पृथक् नहीं

दिया है। किन्तु अन्वय के क्रम को कहीं भी नहीं बदला है और अन्वय का एक पद भी छोड़ा नहीं है। अपितु काले टाईप में। अन्वय अक्षुण्ण रखा है। फिर भी ११वें अध्याय के पश्चात् अन्वय पृथक् भी दे दिया है। महर्षि ने श्लेष अलङ्कार से जिन मन्त्रों के अन्वय में दो अर्थ किये हैं सपदार्थान्वय पक्ष के अनुसार पृथक्-पृथक दिया है।

७. **भावार्थ**—महर्षि के वेदभाष्य के भावार्थ नामक सन्दर्भ के विषय में विद्वानों की यह मिथ्या धारणा है कि महर्षि मूल-मन्त्र की ओर ध्यान न देकर अपना मनोवाञ्छित भावार्थ लिखते हैं। हमने पृथक् सन्दर्भ बनाकर मन्त्र के जिस अंश से सम्बन्धी भावार्थ झरता है उतना अन्वयांश [ ] कोष्ठक में भावार्थ के ऊपर अंकित कर दिया है। जब पाठक महर्षि के वेदभाष्य का स्वयं गम्भीर मनन करेंगे तब वे भी इसी परिणाम पर पहुँचेंगे कि भावार्थ का मूल वेद मन्त्र में सुस्पष्ट है।

८. **भावार्थ-पदार्थ**—मन्त्र के प्रत्येक पद का अर्थ महर्षि ने अपने वेदभाष्य के 'पदार्थ' नामक सन्दर्भ में किया है किन्तु इसके अतिरिक्त कुछ पदार्थांश 'अन्वय' में मिल जाता है जिसे हमने सपदार्थान्वय में=अर्थात् चिह्न लगा कर स्पष्ट कर दिया है तथा कुछ पदार्थांश भावार्थ में भी छुपा पड़ा था। उसे हमने भावार्थ के नीचे ही 'भा० पदार्थ' नामक पृथक् सन्दर्भ बनाकर प्रकाशित किया है। इससे मूल मन्त्र के अर्थ में और अधिक दीप्ति उत्पन्न करने का प्रयास किया है तथा इस धारणा को भी मिथ्या सिद्ध किया है कि भावार्थ मूल मन्त्र में विद्यमान नहीं है।

९. **भाष्यसार**—महर्षि के वेदभाष्य के मन्थन के उपरान्त जितने सार रूप तत्त्व हमें भाष्य में दृष्टिगोचर हुये हैं उन्हें सार रूप में भाष्यसार नामक सन्दर्भ में प्रकाशित किया है। इसमें भी विषय को अधिक स्पष्ट करने के लिये ईश्वर, भौतिक अग्नि, विद्युत्, राजा, विद्वान् आदि पृथक्-पृथक् सन्दर्भ बनाकर महर्षि के वेदभाष्य का नवनीत (**मक्खन**) पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करने का पूर्ण प्रयास किया है। जो कुछ है पाठकों के समक्ष है इस विषय में अधिक लिखना व्यर्थ है।

१०. **अलङ्कार**—महर्षि ने अपने वेदभाष्य में यत्र-तत्र उपमा, श्लेष आदि अलङ्कारों का निर्देश किया है। और उन अलङ्कारों का वेदार्थ में उपयोग भी किया है। हमने पाठकों को समझाने का प्रयास किया है यहाँ प्रस्तुत मन्त्र में उपमा, श्लेष आदि अलङ्कार कैसे हैं और उसका मन्त्रार्थ में महर्षि ने किस प्रकार उपयोग किया है।

११. **समीक्षा**—महर्षि ने वेदभाष्य में जहाँ तहाँ महीधर आदि भाष्यकारों की समीक्षा की है। हमने महर्षि की संक्षिप्त समीक्षा को खोलकर समझाने का प्रयास किया है जिससे पाठक महीधर आदि के किये वेदभाष्यों की मिथ्याता और महर्षि के वेदभाष्य की सत्यता को समझ कर असत्य के परित्याग और सत्य के ग्रहण करने में उद्यत हों।

१२. **अन्यत्र व्याख्यात**—महर्षि ने वेदभाष्य के अतिरिक्त सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, आर्याभिविनय आदि ग्रन्थों में मन्त्रों की व्याख्या की है। पाठक सम्बन्धी मन्त्र पर महर्षि के पूर्ण विचार जान सकें इस दृष्टि से हमने अन्यत्र व्याख्यात मन्त्र की व्याख्या भी वेदभाष्य के साथ जोड़ दी है। इससे पाठक मन्त्रार्थ से अधिक लाभ उठा सकेंगे। जिन लोगों को यह भ्रम है कि महर्षि के वेदभाष्य में किये मन्त्रार्थों और सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों में किये मन्त्रार्थों में विरोध है, इससे उनकी यह भ्रान्ति दूर हो जायेगी और वे देखेंगे कि महर्षि ने मन्त्र के मुख्यार्थ का कहीं परित्याग नहीं किया है। कहीं संक्षिप्त और कहीं विस्तृत रूप में मन्त्र का व्याख्यान किया है।

१३. **अध्यायसार**—महर्षि यजुर्वेद में अध्याय के अन्त में अध्याय में आये विषयों का सार रूप वर्णन करते हैं। और उसी के आधार पर उत्तर अध्याय की पूर्व अध्याय के साथ संगति लगाते हैं किन्तु

यह निर्देश नहीं करते कि अमुक विषय अमुक मन्त्र में है। हमने भाषार्थ में उस अध्याय की मन्त्र संख्या का निर्देश कर दिया है जिसमें वह विषय विद्यमान है। जिससे मन्त्र में विषय सरलता से देख सकेंगे।

१४. भाषार्थ—इस ग्रन्थ में सर्वत्र भाषार्थ मेरा है। महर्षि ने संस्कृत भाष्य में मन्त्र के पदार्थ और अन्वय को पृथक्-पृथक् किया है। जब तक पदार्थ और अन्वय को मिलाकर एक वाक्य में न पढ़ा जाये तब तक सर्व-साधारण वाक्यार्थ के तात्पर्य को ग्रहण नहीं कर सकता। महर्षि ने यह कार्य सर्व-साधारण के लिये भाषार्थ में पण्डितों से करवाया। किन्तु पण्डितों द्वारा किये भाषार्थ की वाक्य रचना धारावाही नहीं है बहुत स्थानों पर भाषार्थ की अशुद्धि तथा पदों का छूटना पाया जाता है। जिससे पाठक मन्त्रार्थ को भली-भांति नहीं समझते। अतः प्रायः पाठक भावार्थ को ही पढ़ते हैं। महर्षि का भावार्थ मन्त्र के किन पदों से स्रवित हो रहा है यह बात इसलिये पाठक के समझ में नहीं आती क्योंकि उसने पदार्थ को ठीक-ठीक नहीं समझा है अतः उसे प्रायः सन्देह बना रहता है। अतः प्रथम पदार्थ को भली-भांति समझना परम आवश्यक है। इसका यह परिणाम हुआ कि महर्षि के अनुपम वेदभाष्य का पठन-पाठन मन्द हो गया और वेद-प्रेमियों को वेदभाष्य समझ में न आने की शिकायत बनी रही। इस वेदभाष्य-भास्कर से सर्व-साधारण आर्यजन महर्षि के सत्यार्थप्रकाश आदि अन्य ग्रन्थों के समान इस अनुपम वेदभाष्य को बड़ी सरलता से हृदयङ्गम कर सकेंगे। क्योंकि इस ग्रन्थ में पदार्थ को अन्वय के अनुसार एकत्र करके 'सपदार्थान्वय' नामक सन्दर्भ तैयार किया गया है और ठीक उसके सामने धारावाही, भाषार्थ संस्कृत भाष्य के अनुसार बड़े पुरुषार्थ से तैयार किया है। धारावाही भाषार्थ वेदभाष्य-भास्कर के मुख्य कार्यों में से एक है।

संस्कृतभाषा का प्रचार कम है। अधिकतर लोग आर्य भाषा को ही समझते हैं। अतः स्वाध्याय-शील, वेदभक्त आर्यजनों ने महर्षि का वेदभाष्य उक्त अपूर्ण भाषार्थ के रूप में ही पढ़ा। पण्डितों द्वारा किया भाषार्थ अत्यन्त दोष-पूर्ण होने से महर्षि के वेदभाष्य के प्रति पाठकों के मन में उदासीनता उत्पन्न हो गई। इससे महर्षि के अनुपम वेदभाष्य को बड़ा भारी धक्का लगा। परिणाम यह हुआ कि आर्य लोग महर्षि के वेदभाष्य को छोड़ ही बैठे। अतः हमने महर्षि के वेदभाष्य का उत्तम भाषार्थ आर्यजनता की सेवा में प्रस्तुत करने का दृढ़ संकल्प किया।

इस वेदभाष्य-भास्कर में धारावाही तथा मूल संस्कृत-भाष्य के अनुरूप भाषार्थ बनाने का पूर्ण प्रयत्न किया है जैसा कि महर्षि दयानन्द पण्डित ज्वालादत्त आदि भाषाकार विद्वानों से आशा करते थे कि संस्कृतभाष्य का भावार्थ मेरे अभिप्राय और संस्कृत के अनुसार बनाया जाये। अतः हमने भाषार्थ को सपदार्थान्वय (**संस्कृतभाष्य**) के ठीक सामने रखा है। महर्षि की संस्कृत भाषा अत्यन्त सरल है। संस्कृत और भाषार्थ आमने-सामने होने से इस तथ्य को पाठक स्वयं भी अनुभव कर सकते हैं और भाषार्थ की सहायता से मूल संस्कृभाष्य का भी स्वाध्याय कर सकते हैं।

भाषार्थ तथा अन्य भी जो-जो कार्य इस भास्कर में किया है वह सब अत्यन्त श्रद्धा और पवित्र भावना के साथ किया गया है जिससे महर्षि का अनुपम, आर्ष वेदभाष्य प्रचार एवं प्रसार को प्राप्त हो तथा अनार्ष (**मनुष्य-कृत**), अनर्थयुक्त वेदभाष्यों का बहिष्कार हो।

१५. देवतार्थ-सूची—महर्षि के यजुर्वेदभाष्य का गम्भीर अनुशीलन करके बड़े पुरुषार्थ से यह देवतार्थ-सूची तैयार की गई है। पाठकों के लाभार्थ इसे इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में जोड़ दिया है। इससे महर्षि के किये देवतार्थ पाठकों के लिये अत्यन्त स्पष्ट हो जायेंगे। देवतार्थ को हमने प्रत्येक मन्त्र के साथ भी दिया है।

भूल-सुधार—इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में पृष्ठ १५ पंक्ति १९ में भूल से प्रतिपदा तिथि छप गया है। यहाँ त्रयोदशी तिथि चाहिये।

विद्वत्समाज से निवेदन—आर्य विद्वानों की पुरानी पीढ़ी ने महर्षि के वेदभाष्य का जितना समादर करना चाहिये था; नहीं किया। वर्तमान दशा तो उससे भी कहीं अधिक शोचनीय है। आज सर्वत्र महर्षि के वेदभाष्य के प्रति उपेक्षा वृत्ति दृष्टिगोचर हो रही है, जो अवाञ्छनीय है। उस उपेक्षा वृत्ति को अभिरुचि में परिवर्तित करने के लिये ही यह हमारा 'वेदभाष्य-भास्कर' नामक प्रयास विद्वत्समाज एवं स्वाध्याय प्रेमी आर्यजनों की सेवा में सादर समर्पित है। निवेदन है कि इस भास्कर द्वारा विशेषतः आर्य विद्वान् महर्षि के वेदभाष्य की महिमा को समझेंगे तथा अन्यों को समझावेंगे।

महर्षि के वेदभाष्य को स्वयं यथावत् समझना तथा उसकी व्याख्या करके समझाना किसी अनुभवी विद्यापारंगत महान् विद्वान् का ही कार्य है। मैं युवा होने से अनुभव शून्य हूँ तथा साधारण विद्या के बल पर अपार दयानन्द वेदभाष्य सागर को पार करने का प्रयास कर रहा हूँ। यह मेरा केवल दुःसाहस ही है। परमपिता परमात्मा से मैं प्रार्थना करता हूँ कि वे मुझे इस कार्य को पूरा करने का सामर्थ्य प्रदान करें तथा गुरुजनों से इस कार्य के लिये आशीर्वाद की कामना करता हूँ।

इस दिशा में इस अल्पमति ने जो यह प्रयास किया है आशा है विद्वत्समाज इसका अवश्य समादर करेगा। इस कार्य में जो भी कोई गुण दिखाई देता है वह सब मेरे गुरुजनों की अपार कृपा का फल है। और जितने भी छिद्र इस कार्य में दृष्टिगोचर हो रहे हैं वे सब मेरी अल्पज्ञता का परिणाम है। आशा है विद्वान् लोग इस कार्य में हुई भूलों को क्षमा न करके मेरा पथप्रदर्शन कर मुझ पर महान् अनुग्रह करेंगे।

धन्यवाद—सर्वप्रथम करुणा के सागर परम पिता परमात्मा की महान् दया का धन्यवाद है जिन्होंने इस वेदशून्य युग में महर्षि दयानन्द सरस्वती जैसा योगी, महात्मा वेद के मूल को समझने वाला एक देवता भेजा। जिसने लुप्त हुए वेदों के खजानों को फिर से खोज निकाला तथा वेद का अनुपम भाष्य करके मनुष्यमात्र का महान् कल्याण किया। उस महर्षि का भी हृदय से धन्यवाद है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती के अनन्य भक्त श्री ला० दीपचन्द जी आर्य, प्रधान, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट ने वेदभाष्य भास्कर के प्रकाशन के महान् कार्यभार को अपने कन्धों पर उठाया है, वे भी आर्य जनता के लिये धन्यवाद के पात्र हैं। इसके अतिरिक्त तथा इस वेदभाष्य-भास्कर के कार्य में श्री पं० मनुदेव जी शास्त्री (**डालावास**), एवं विशेषरूप से श्री पं० वेदपाल जी शास्त्री ने तथा श्री पं० राजवीर जी शास्त्री एम० ए० ने जो विविध प्रकार की इस श्रेष्ठतम कर्म रूप यज्ञ में अपनी सुगन्धित आहुतियाँ प्रदान की हैं तदर्थ वे भी धन्यवादार्ह हैं। जो गृह-कार्यों से इस शुभ कर्म के लिये अधिकाधिक समय निकाल कर देती हैं तथा समय-समय पर इस कार्य को पूरा करने के लिये मुझे प्रेरणा भी देती रहती हैं यह मेरी गृहलक्ष्मी सुशीला देवी भी धन्यवाद से कैसे वञ्चित की जा सकती हैं।

विनीतः—

सुदर्शनदेव आचार्य

२९. १२. १९७२ ई०

॥ इति भूमिका ॥

सम्मतियाँ

(श्री प्रो० रामसिंह, प्रधान—आर्य प्रतिनिधि सभा-पञ्जाब)

महर्षि दयानन्द सरस्वती का वेदभाष्य मानव-समाज की मूल्य निधि हैं। ऋषिवर ने यजुर्वेद-भाष्य में वेदार्थ को शुद्ध, निर्मल और विशद् आध्यात्मिक और आधिभौतिक व्याख्या रूप में प्रस्तुत किया है। याज्ञिक-प्रक्रिया शतपथ ब्राह्मण में होने से उसका यहाँ विनयोग नहीं दर्शाया है किन्तु मन्त्रों का यज्ञ-परक अनुपम व्याख्यान किया है। यही ऋषि का ऋषित्व है।

निस्सन्देह वैदिक वाङ्मय के विज्ञवर विद्वानों ने ऋषि द्वारा की गई संस्कृत-व्याख्या, (**मन्त्रों के पद, पदार्थ और भावार्थ**) से अनुपम लाभ उठाया; परन्तु साधारण वेद-प्रेमी जनता भाष्य के हिन्दी अनुवाद पर ही आश्रित थी! **यह अनुवाद ठीक ठीक समझ में नहीं आता था। कई स्थलों पर तो भाषा बड़ी अट-पटी थी न सामञ्जस्य प्रतीत होता था और न पूर्वापर सम्बन्ध।** ऐसी स्थिति में पाठक महानुभाव मन्त्रों के गम्भीर आशय को समझने में और हृदयङ्गम करने में कठिनाई अनुभव करते थे।

मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है कि मान्य श्री दीपचन्द जी आर्य ने इन असुविधाओं को अनुभव किया और महर्षि के वेदभाष्य के पद, पदार्थ और भावार्थ को अक्षुण्ण रखते हुये मन्त्रों का हिन्दी अनुवाद सरल और सुबोध भाषा में प्रस्तुत कराने का प्रयास किया है। इसके लिये वे बधाई के पात्र हैं।

श्री पण्डित सुदर्शनदेव आचार्य ने इस ग्रन्थ रत्न में भाषानुवाद आदि कार्यों में अपने अगाध पाण्डित्य और अपूर्वध्येय-निष्ठा का परिचय दिया है। अतः वह भी भूरि-भूरि प्रशंसा के योग्य हैं।

मुझे यजुर्वेद-भाष्य-भास्कर के प्रारम्भिक अध्यायों के अवलोकन का अवसर मिला है। वेद-मन्त्रों के क्रम और ऋषिवर के किये पदार्थ में कोई भी परिवर्तन नहीं। हाँ! पदार्थ के पश्चात् प्रमाणार्थ पृथक् कर दिया है। यह अत्युत्तम है। सपदार्थान्वय देकर उसके साथ-साथ हिन्दी भाषा का अनुवाद बड़ा हीं सरस और सरल है जिस से मन्त्रार्थ का बोध होने में कुछ भी कठिनाई नहीं रहती। भावार्थ भी ऋषि का ही है और उसको सुगम बनाने का प्रयास स्तुत्य है। भावार्थ पर सर्वत्र छोटे-छोटे जो नोट दिये हैं वे भावार्थ को समझने में बड़े ही उपादेय हैं। देवतार्थ, प्रमाणार्थ, भावार्थ-पदार्थ, भाष्यसार, अलङ्कार व्याख्या ये मन्त्रार्थ को हृदयङ्गम करने में बड़े सहायक हैं।

इतने बड़े दुष्कर, व्ययसाध्य और श्रमसाध्य कार्य को अपने कन्धों पर लेकर मान्य भाई दीपचन्द आर्य ने वेद के प्रति अपनी आस्था और ऋषि के प्रति गहरी श्रद्धा का प्रमाण दिया है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आर्य-जगत् इस अनूठे और अमूल्य ग्रन्थ-रत्न का समुचित आदर करेगा। आर्यसमाज को प्रथम शताब्दी के पावन अवसर पर जनता के लिये यह अनुपम उपहार है।

२९. १२. १९७२ ई०

—रामसिंह

श्री पण्डित ज्योतिःस्वरूप आचार्य गुरुकुल एटा [उ० प्र०]

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित यजुर्वेद-भाष्य भास्कर की शैली अत्युत्तम है। प्रमाणार्थ में मन्त्रगत शब्दों को शतपथ-ब्राह्मण, निरुक्त और व्याकरण-प्रक्रिया के द्वारा स्पष्ट करने का स्तुत्य प्रयास किया है।

भाषार्थ और भाष्यसार में मन्त्र के भाव को हृदयग्राही बनाने के लिये जिस शब्दावली का प्रयोग किया गया है। उससे साधारण व्यक्ति भी वेदाध्ययन में प्रवृत्त हो सकते हैं।

ट्रस्ट द्वारा किया गया वेदभाष्य का यह कार्य अत्यन्त प्रशंसनीय है।

—ज्योतिस्वरूप आचार्य

९. १२. १९७२ ई०

जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री सम्पादक, आर्य मर्यादा साप्ताहिक

१. परमेश्वर की अपार दया से ऋषिदयानन्द ने क्रियामय यजुर्वेद का भाष्य सम्पूर्ण कर दिया था।

२. भाष्य को सर्वथा सुरक्षित रखते हुए श्री पं० सुदर्शनदेव जी आचार्य ने इसका स्पष्टीकरण अपने भास्कर में किया है। भास्कर की कुछ विशेषताएँ हम आगे लिखते हैं :—

(क) मन्त्रों से पूर्व जो देवता नाम दिये हैं तथा भाष्य में उस देवता के जो अर्थ दिये हैं उन अर्थों को भास्कर में देवता नाम के साथ दे दिया गया है। जैसे अध्याय २, मन्त्र ३ में अग्निः देवता भाष्य में दिया है और उनके अर्थ भाष्य में सूर्य, विद्युत् और स्थूलाग्नि दिये हैं। इन अर्थों को देवता के साथ ही मन्त्र के ऊपर ही दे दिया है। यथा अग्निः=सूर्यः, विद्युत्, स्थूलाग्निः इस विशेषता से देवता के अर्थ भी उसी स्थान पर स्पष्ट कर दिये है।

(ख) संस्कृत पदार्थ में जो प्रमाण (व्याकरण और निघण्टु आदि के) भाष्य में हैं, उनको प्रमाणार्थ—करके भाषा में भास्कर मैं लिख दिया है।

(ग) सपदार्थान्वय सन्दर्भ में अन्वय और पदार्थ को ऋषि भाष्यानुसार ही मिलाकर उनके सामने ही भाषार्थ दे दिया गया है। साथ ही वाक्यों के पृथक् पृथक् सन्दर्भ भी कर दिये हैं, परन्तु भाष्य में कुछ भी परिवर्तन नहीं किया गया है।

(घ) इस क्रम के पश्चात् और संस्कृत भावार्थ तथा भाषा भावार्थ से पूर्व [विशिष्ट वाक्यार्थ भी दिये हैं [इस चिह्न के बीच में।]

(ङ) ततः पश्चात् भाष्य का सार भाषा में दिया गया है। इस सार में विशिष्ट कार्यों का उल्लेख भी किया गया है।

इसी क्रम से भाष्य का भास्कर तैयार कर दिया गया है। हमारा विचार है कि इस ढंग से भाष्य का सुन्दर ढंग से स्पष्टीकरण हो गया है।

इस योग्यतापूर्ण महान् परिश्रम के लिये भास्कर के रचयिता श्री पं० सुदर्शनदेव जी आचार्य एम० ए० को हम साधुवाद एवं बधाई देते हैं। आशा है इसी प्रकार आगे भी ऋषिकृत ग्रन्थों के स्पष्टीकरण में योगदान देते रहेंगे।

—जगदेवसिंह सिद्धान्ती

२३-२-१९७३

स्वामी श्रोमानन्द सरस्वती कुलपति श्रीमद्दयानन्द आर्ष विद्यापीठ गुरुकुल झज्जर (रोहतक)

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट २ एफ, कमला नगर दिल्ली की ओर से प्रकाशित दयानन्द-यजुर्वेद-भाष्य-भास्कर (प्रथम अध्याय) का कुछ भाग मैंने देखा है। इस भास्कर नामक व्याख्या के लेखक गुरुकुल झज्जर (रोहतक) के स्नातक श्रीयुत पण्डित सुदर्शनदेव जी आचार्य हैं। उन्होंने महर्षि के वेदभाष्य को साधारण जनता के लिये अत्यन्त सरलता से समझाने का पूर्ण प्रयत्न किया है। इसमें मन्त्र के देवतार्थ को स्पष्ट किया गया है। पदार्थ-नामक सन्दर्भ में विद्यमान निरुक्त आदि आर्ष ग्रन्थों के प्रमाणों का अर्थ भाषा में दर्शाया है। इसका 'सपदार्थान्विय' नामक सन्दर्भ अत्यन्त उपयोगी है। इससे महर्षि के वेदभाष्य के पठन-पाठन में उपाध्यायों और छात्रों को विशेष लाभ होगा। भाषार्थ धारावाही तथा संस्कृतभाष्य के सर्वथा अनुरूप है। भाष्यसार भी मन्त्रार्थ के समझने में बड़ा उपयोगी है। इस व्याख्या से दयानन्द-यजुर्वेदभाष्य अत्यन्त सरल हो गया है। यह स्वाध्यायशील आर्य सज्जनों तथा विद्वानों के लिये अत्यन्त उपादेय है। मैं इसका अधिकाधिक प्रचार चाहता हूँ।

२२-१-१९७३ ई०

ओमानन्द सरस्वती

रघुवीरसिंह शास्त्री कुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

श्री आचार्य सुदर्शनदेव जी द्वारा प्रणीत "दयानन्द-यजुर्वेदभाष्य-भास्कर" का कुछ अंश मैंने पढ़ा। महर्षि दयानन्द कृत यजुर्वेद-भाष्य ही इस का मूल एवं मुख्य आधार है। महर्षि के पदार्थ तथा भावार्थ दोनों मूल रूप में दिये गये हैं। महर्षि दयानन्द द्वारा संस्कृत पदार्थ में उद्धत प्रमाणों को प्रमाणार्थ शीर्षक के अन्तर्गत पृथक् रख कर आर्यभाषा में उनका सुन्दर रूपान्तर किया गया है। अन्वय के क्रम से पदार्थ को संयुक्त कर सपदार्थान्विय शीर्षक से पृथक् दिया गया है जिससे भाष्य का समझना सरल हो गया है। एवं संस्कृत तथा आर्य भाषा दोनों के एक दूसरे के सामने स्तम्भों में रख देने से अध्येता को विशेष सुविधा मिलेगी। भाषा के अर्थों को संस्कृत भाषा के अनुरूप बनाने का प्रयास मुझे बहुत अच्छा लगा।

प्रत्येक मन्त्र के अन्त में भाष्यसार जोड़ा गया है, जो आचार्य सुदर्शनदेव जी की अपनी कृति है।

इस प्रकार आचार्य सुदर्शनदेव जी ने महर्षि दयानन्द के भाष्य को एक नई शैली में अपने भाष्यसार के साथ बहुत सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है। छपाई एवं कागज भी उत्तम है। लेखक और प्रकाशक दोनों ही इस प्रयास के लिये धन्यवादार्ह हैं।

रघुबीर सिंह शास्त्री

आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

मैंने अष्टम-अध्याय के ऋषि दयानन्द के यजुर्वेदभाष्य का यह भास्कर-भाष्य आद्योपान्त देखा है। यह प्रयत्न बड़ा प्रशंसनीय है। ऋषि के भाष्य की शैली संक्षिप्त और कुछ जटिल है। इस कारण ऋषि का भाष्य सर्वसाधारण पाठकों के लिए कुछ दुर्बोध हो जाता है। यह भास्कर-भाष्य ऋषि के भाष्य की एक बड़ी उत्तम व्याख्या है। इस व्याख्या से ऋषि के भाष्य को सर्वसाधारण पाठकों के लिए समझना बहुत आसान हो जायेगा। व्याख्या सरल और स्पष्ट है। और इससे पं० सुदर्शनदेव आचार्य के अध्ययन और विद्वत्ता की स्पष्ट सूचना मिलती है। मैं ऋषि-भाष्य की ऐसी सुन्दर व्याख्या लिखने पर उनको हार्दिक बधाई देता हूँ। अपना एक छात्र ऐसा सुन्दर कार्य कर रहा है यह देख कर और भी अधिक प्रसन्नता होती है।

१६-२-७३ ई०

आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति

यजुर्वेद देवतार्थ-सूची (विषय-सूची)

अग्निः—ईश्वर १ । ५, ११, २ । २८, ३०, ३ । ११, २४—२७, ३६, ४ । ११, १७, २८, २९ ५।३५, ३६, १२ । २५, २९, १३ । २, १९ । ४१, ३६ । २०, ३७ । १५ ।। ईश्वर, भौतिक १ । ८, १७, १८, २ । ४, ९, १४, १७, ३ । १२, १५, १७-१९, २३, ३८, ३९, ४ । १५, १६ ।। ईश्वर विद्वान्, भौतिक २ । २७ ।। ईश्वर, विद्वान् ५ । ३१-३३ ।। ईश्वर, विद्युत् ३।१४, ५ । ६ ।। ईश्वर, प्राण, विद्युत् ४ । ३२ ।। भौतिक अग्नि १ । १९, २३, २ । ७, २९, ३ । १-४, ६, १६, ४०, ४ । १४, ११ । २४, २५, ४४, १२ । ३०, १३ । ३८, १५ । २१, २३, २४, २५, २९, ३३-३८, १७ । ८८, १८ । ५२, ६६, ७३, २२ । १५-१७, २७ । ११, २९ । १-३, ५, २०, ३५, ३९ । १०-१३ ।। विद्युत् ३ । ७, ८, २२, ५ । ८, ११ । १६, १७, २८, २९, १२ । २१, ५०, १०३, १३ । ४३, १५ । २२, २७, २९ । ४ ।। प्रसिद्ध अग्नि, सूर्य, विद्युत् २ । ३, ५ । ९ ।। विद्युत् भौतिक, राजा १० । २९ ।। विद्युत्, विद्वान् ५ । ४ ।। विद्वान् ५ । ४२, ९ । २८, ३७, ६ । २९, ११ । ३२-३४, ३६, ३७, ४१-४३, ४५, ७५, १२ । १, २, ७-१०, २६-२८, ३१, ३३, ४१, ४३, ४४, ४७, ५९, १०६, १११, ११५, १३ । १, ३६, ३९-४२, ४४, ४५, १५ । ३९-५०, ५३, ५५, ५६, १७ । २, ३, ७-९, १६, ६९, ७०, ७२, ७७, ७९, १८ । ४६, ५२, ५८, ७५, १९, ११, ६६, २० । १४, १५, २२, २४-२६, ७८, ७९, २१ । १२, २२ । ३, २६ । १३, १६, २६, २७ । १, ३, ३९, ४३, २८ । २२, २३, २४, ३९, २९ । ११, १३-१५, १७, २८, ३६, ३३ । ३, ४, ६, ९-११, १४, ३५ । २२, ३६ । १, ३८ । १७ ।। विद्वान्, ईश्वर ३४ । १२, ३५ । १६ ।। विद्वान्, पावक १८ । ५७ ।। राजा १२ । ११, १३, १५-२०, २२, २३, ३२, ११६, १३ । १२, १३-१५, ४९-५१, १५ । १, २, ५१, ६२, २७ । ४-७, ३३ । १५, १६, ३४।१३, १५, ३५ । १७ ।। राजा, विद्वान् १७ । १५, ३३ । १२ ।। राजपुरुष १७ । ६५ ।। राजपत्नी १३ । १६, १८, २६ । १२ ।। माता, पिता, आचार्य १२ । ५१, ५४, ५२ [पुत्र] ।। पित्रादि १२ । ५३, १९ । ४०, ६४, ६५ ।। पति ११ । ४९, ७०-७४, १९ । ४८ ।। सभापति ११ । १८, २७, १२ । ६, ११७, १७ । ४, ५, ११, १२, ६६, ३५ । १९ ।। सेनापति ११ । २६, ७६, ७७, १२ । ३४ १३ । ९-११, ३७, १७ । १०, ५०, १८ । ७४, २९ । १६ ।। सभापति, सेनापति ११ । ७८ ।। अध्यापक १२ । ४८, ४९ ।। अध्येता, अध्यापक १२ । ४६ ।। पुरुषार्थी ३ । ४७, १२ । १०९ ।। जीव १२ । ३६-३९ ।। अग्निविद्या ११ । १९, १२ । १०४, १५ । २६, ३०, ३२, २७ । १८ ।। सूर्य १७ । ५८, १८ । ६८, ७२, २२ । १९ ।। यज्ञ १७ । ५५, ५६, १८ । १, ६७ ।। योगी १७ । ६७, ६८, ७१, ७३, ७५, ७६ ।। उपदेशक १२ । ५८ ।। अध्यापक, उपदेशक २१ । ९, २५ । ४७ ।। शूरवीर ५ । ३७, २९ । १८ ।। विदुषी अध्यापिका १३ । २२ ।। आचार्य, शिष्य ५ । ४० ।। माता, पिता, १२ । ४० ।। स्त्री-पुरुष १२ । ५७, ६६, १३ । १९, १५, ५४, १६ । ६ ।। मनुष्य १३ । ४७, ४८, १७ । ८७, ८९, ९० ।। गृहस्थ ११ । ४० ।। आप्त-जन २७ । ४५ ।। जाठराग्नि १५ । २० ।। सन्तान ११ । ४६-४८, १२ । १०८ ।। श्रोता १२ । ४२ ।। युवा १३ । ५२ ।। रात्रि-दिवस ३३ । ५ ।। कारण १२ । २४ ।। युद्धजन्य क्रोधाग्नि ६ । १८ ।। पुरोहित, ऋत्विक्, यजमान १७ । ५२ ।। धर्मात्मा १५ । ५२ ।। आभ्यन्तर-बाह्य अग्नि १५ । २८ ।। प्रजारक्षक पुरुष २६ । ११ ।।

अग्निवायुसूर्याः—अग्नि, वायु, सूर्य ३ । ५ ।।

अग्निसरस्वत्यौ—ईश्वर, वेदवाणी २ । २० ।।

अग्निसूर्यौ—अग्नि, सूर्य ३ । ९, १० ।।

अग्निवरुणौ—विद्यार्थी, विद्वान् २१ । ३, ४ ।।

अग्निवायू—अग्नि, वायु २ । १६ ॥

अग्नीषोमौ—अग्नि, जल २ । १५ पूर्वा० ॥

अग्नयः—विद्युदादि पदार्थ ३३ । १, २ ॥

अग्नीयब्बृहस्पतयः—अग्नि, प्राण, ईवर ४ । ७ ॥

अग्न्यादयः—भौतिक आदि १४ । २० ॥ पावक २१ । ५६, २२ । ६, २५ । ४, २६ । १ ॥ जाठराग्नि २२ । २७ ॥ वह्नि २३ । १७ ॥ अग्नि, पृथिवी, वायु, सूर्य, मेघ २४ । ६ ॥ अग्नि आदि गुणयुक्त पशु २४ । ६, १२, १४, २६ । ५६ ॥ सेनापति आदि २४ । १६ ॥ अग्नि आदि गुणयुक्त कुक्कुट आदि पक्षी २४ । २३ ॥ अग्नि आदि गुणयुक्त पशु-पक्षी विशेष २४ । ३४ ॥ पाकादि प्रयोग २६ । ६० ॥

अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः—राजादि ६ । ३१ ॥ विद्युदादि १० । ५ ॥ धर्मविज्ञान युक्त गृहस्थ आदि १० । २३ ॥ पावकादि ११ । ६६ ॥

अग्न्यादयो लिङ्गोक्ताः—परमात्मादि ३४ । ३४ ॥ पावकादि ३६ । ८ ॥

अग्न्यश्वीन्द्रसरस्वत्याद्या लिङ्गोक्ताः—पावक, सूर्य, चन्द्र, ऐश्वर्य, जीव, सुशिक्षित वाणी आदि २१ । २६ ॥

अग्न्यादियुक्त आत्मा—पाकविद्या आदि का संगन्ता जन १८ । १४ ॥

अग्न्यादिविद्याविदात्मा—अग्नि आदि विद्या का वेत्ता १८ । १६ ॥

अघ्न्याः—गौ आदि पशु १२ । ७३ ॥

आङ्गिरसः—विद्वान् लोग १६ । ७३ ॥

अन्तरिक्षम्—आकाशवत् व्यापक ब्रह्म २६ । २६ ॥

अन्तरिक्षादयः—अन्तरिक्ष आदि गुणयुक्त पशु २४ । १० ॥

अन्तर्यामी जगदीश्वरः—स्पष्टार्थ ७ । ४३ ॥

अदितिः—अखण्डित आनन्द वाली स्त्री ११ । ५६ ॥ जननी ११ । ५७ ॥ विद्याप्रकाश ११ । ५६ ॥ नौका, जलयान २१ । ६ ॥

द्यावापृथिवी—प्रकाशस्वरूप ईश्वर और पृथिवी २१ । ११ ॥

अध्यापकः—सर्वशास्त्र वेत्ता कवि २३ । ३६ ॥ स्पष्टार्थ २३ । ४२ ॥

अध्यापकोपदेशकौ—अध्यापक और उपदेशक ११ । ८०, २० । १३ ॥

अध्यात्मं प्राणाः—ज्ञानेन्द्रिय, प्राण-अपान ३४ । ५५ ॥

अध्वर्यू—अहिंसा के इच्छुक दो विद्वान् ३३ । ७३ ॥

अनुमतिः—सभापति विद्वान् ३४ । ८, ६ ॥

अन्नम्—अन्न ३४ । ७ ॥

अन्नपतिः—अन्न का स्वामी १८ । ३३, ३४ ॥ **अन्नवान् विद्वान्**—स्पष्टार्थ १८ । ३२ ॥

अपां पतिः—प्राणों का रक्षक १० । ३ ॥ **अप्-सवितारौ**—जल, ईश्वर १ । १२ ॥

अबोषध्यौ—जल और ओषधियां ४ । १ ॥ **अब्-यज्ञ-सूर्याः**—जल, यज्ञ और सूर्य ६ । २३ ॥

अम्बा—माता ११ । ६८, ६६ ॥

अर्द्धमासादयः—अर्द्धमास आदि काल गुण वाले पशु-पक्षी ३४ । ३७ ॥

अर्यमादिमन्त्रोक्ताः—न्यायकर्त्ता आदि मनुष्य ६ । २७ ॥ न्यायाधीश आदि ६ । २६ ॥

अश्वः—बलवान् गृहस्थ ६ । ६ ॥

अश्विनौ—योग के अध्येता और अध्यापक ७ । ११ ॥ सभा और सेना के अध्यक्ष १० । ३३,

३४, २० । ८२, ८३, ३४ । ३० ॥ दम्पती १२ । ७४, ३८ । ६ ॥ सुशिक्षित स्त्री-पुरुष ३८ । १२, १३ ॥ अध्यापक-उपदेशक १४ । १-५, ३४ । २८, २६, ३८ । १० ॥ विद्याकुशल वैद्य १६ । ८२ ॥ बहुभोजी स्त्री-पुरुष १६ । ८६ ॥ सिद्ध और साधक विद्वान् १६ । ६३ ॥ विद्याकुशल योगी १६ । ६५ ॥ विद्यावृद्ध विद्वान् २० । ८१ ॥ विद्वान् ३३ । ५८ ॥ राजा, प्रजा ३३ । ८८, ३४ । ४७ ॥ श्रेष्ठ वैद्य २८ । ७ ॥ वायु-विद्युत् २८ । १७ ॥ अध्यापक-उपदेशक वा श्रोता-श्रावक २८ । ३० ॥ विद्यार्थी २६ । ७ ॥

अश्विन्यादयः—अश्विनी आदि गुणयुक्त पशु-पक्षी विशेष ३४ । ३६ ॥

अश्विसरस्वतीन्द्राः—स्त्री-पुरुष, वाणी, राजा २० । ५५ ॥ ज्ञानी स्त्री-पुरुष, राजा २० । ५६ ॥ वैद्य, वाणी, दुःखविदारण २० । ५७ ॥ वैद्य, पतिव्रता स्त्री, पति २० । ५८ ॥ वैद्य, गृहिणी, परमैश्वर्यसुख २० । ५६ ॥ सूर्य-चन्द्रमा, विदुषी, विद्युत् २० । ६० ॥ सूर्य-चन्द्रमा, वाणी, विद्युत् २० । ६१ ॥ अध्यापक-उपदेशक, माता-पिता, सोमरस २० । ६२ ॥ वैद्य, वाणी, ऐश्वर्य २० । ६३, ६५-६७ ॥ विद्या-शिक्षक, माता, परम-ऐश्वर्य २० । ५४ ॥ अध्यापक-उपदेशक, विदुषी, ऐश्वर्य २० । ६८, ७३, ७७ ॥ वैद्य अध्यापक-उपदेशक, विदुषी, सोम २० । ६६ ॥ अध्यापक—उपदेशक विदुषी, विद्वान् २० । ७४ ॥ वैद्य, विदुषी, ऐश्वर्य २० । ७५ ॥ रक्षक, प्रजा, ऐश्वर्य २० । ७६ ॥ अध्यापक-उपदेशक, विदुषी, सभापति २० । ८० ॥ अध्यापक-उपदेशक, वाणी, ऐश्वर्यवान् २० । ६० ॥

अश्वयादयः—वैद्य आदि २१ । ३०, ३१, ३३ ॥ इन्द्र, अग्नि आदि २१ । ३४ ॥ व्यापक सूर्य-चन्द्र आदि २१ । ३५, ३७, ४६, ५० ॥ अग्नि-वायु आदि २१ । ३६, ५५ ॥ वायु-विद्युत् आदि २१ । ३८, ४७, ५१, ५७, ५८ ॥ सभापति और सेनापति आदि २१ । ३६ ॥ राज्यस्वामी और पशुपाल आदि २१ । ४० ॥ वायु-सूर्य आदि २१ । ४६ ॥ अध्यापक-उपदेशक आदि २१ । ५२, ५४, २७ । ६ ॥ विद्याकुशल चिकित्सक आदि २१ । ५३ ॥ जल अग्नि आदि २१ । ५६ ॥ सूर्य-चन्द्र आदि गुणयुक्त पशु २४ । ३ ॥

असवादयः—प्राण आदि २२ । ३० ॥ **अहोरात्रम्**—दिन, रात २८ । १४ ॥

अहोरात्रे—दिन, रात २८ । २६ ॥

आतिथ्यादयो लिङ्गोक्ताः—अतिथि का सत्कार, सङ्ग और उपदेश आदि १६ । १४ ॥

आत्मा—परमेश्वर ७ । ४८, १६ । ६२, ३२ । ४ ॥ मनुष्य १८ । ८-१० ॥ विद्वान् और अविद्वान् जन ४० । ५ ॥ विद्वान् ४० । ६, ११ ॥ योगी ४० । ७ ॥ परमात्मा ४० । ८, १६, १७ ॥ जड़-चेतन के विभाग का ज्ञाता विद्वान् ४० । १३, १४ ॥ कर्म-कर्ता जीव ४० । १५ ॥ अन्धतमस को प्राप्त जन ४० । ६ ॥ कार्य-कारण वस्तु से उपकार ग्रहण करने वाला विद्वान् ४० । १० ॥ विद्या और अविद्या का उपासक जन ४० । १२ ॥

आदित्यः—ईश्वर ३ । ३२, ३३, १३ । ३, ३१ । १७-१६, २२ ॥ सूर्य १७ । ५६, ६० ॥

आदित्याः—विद्वान् लोग १५ । १२ ॥ सूर्यवत् तेजस्वी राजपुरुष ३३ । ६८ ॥ अखण्डित पृथिवी २१ । ५ ॥ तेजस्वी आचार्य गण ३४ । ५४ ॥

आदित्यादयः—सूर्य आदि से उत्पन्न काल के अवयवों के गुणों से युक्त पशु-पक्षी २४ । ३६ ॥

आदित्यो गृहपतिः—विद्यावान् गृहस्थ ८ । ३ ॥

आदित्यादयो लिङ्गोक्ताः—अध्यापिका आदि ११ । ६१ ॥

आपः—जल २ । ३४, ४ । २, ६ । १०, १७, १० । १, ११ । ३८, १२ । १३, ३६ । १२ ॥ ओषधि आदि पदार्थ ३ । २० ॥ सद्गुणों की अभिलाषी स्त्रियां ६ । १३ ॥ गुरुओं की पत्नियां ६ । २४ ॥ आप्त प्रजा ६ । २७ ॥ विद्वान् कुमार और कुमारियां १० । ६ ॥ स्त्रियां ११ । ५०—५२ ॥ कन्यायें १२ । ३५, ५५ ॥ गुरु और शिष्यगण १३ । ५३ ॥ प्रजा १५ । ६० ॥ प्राण २० । १६, ३८ । २३ ॥ विद्वान्

लोग २० । २० ॥ अपामार्ग आदि ओषधियां ३५ । ११ ॥ प्राण वा जल ३५ । १२ ॥ पतिव्रता स्त्रियां ३६ । १४-१६ ॥

आपो विष्णुश्च—जल और वायु १० । १६ ॥ **आयुरादयः**—आयु आदि २२ । ३३ ॥

आसन्दी राजपत्नी—न्याय, शिक्षा के आसन पर विराजमान राजपत्नी १० । २६ ॥

इडा—पृथिवी १९ । २९ ॥

इडादयो लिङ्गोक्ताः—प्रशंसनीय वाणी आदि २७ । १९ ।

इन्दुः—विद्वान् १८ । ५३-५५ ॥

इन्द्रः—ईश्वर, भौतिक अग्नि, यज्ञ १ । १३ ॥ ईश्वर २ । १०, ३ । ३४, १७ । ६१, ३२ । १३ ३३ । २३, २४, ७६, ३६ । ४-८ ॥ ईश्वर और सूर्य ३ । ५२ ॥ सूर्य २ । २२, २८ । १५, ३५, ३३ । ९६ ॥ परम-ऐश्वर्य १२ । ५६, १९ । ९१, २६ । १७, २७ । २२, २८ । ५, ६, ११, १३, १६, ३८ । ८ ॥ ईश्वर और सेनापति १७ । ६३ ॥ विद्युत्-अग्नि २८ । १, ३३ । २२ ॥ व्यवहार विद्या ३ । ५० ॥ सभापति ३ । ५१, ६ । ३७, ९ । २, ३, १० । २२, १५ । ६१, २० । ४७-५४, ८७, ८८, २६ । १०, ३३ । २६, २७ ॥ सेनापति ८ । ४४, १७ । ३३-४४, ५१, १८ । ७०, ७१, १९ । ३३, ७० ॥ मनुष्य १९ । ३२, ७६, २८ । ३९, ४०, ३४ । १६ ॥ विद्वान् पिता १९ । ३८ ॥ विद्वान् २० । २८-३१, ३६, ३८-४०, ८९, २१ । २५, २३ । ७, २६ । ४, २७ । ३८, ४०, ४१, २८ । १२, २०, २५-२८, ३२, ३३, ४२-४६, ३३ । २५, ३८ । २६ ॥ शुद्ध वायु २८ । ३६ ॥ वैद्यवत् स्त्री ३३ । ५९ ॥ आप्त जन वा राजा ३४ । १८ ॥ पालन-कर्त्ता ज्ञानी ३४ । १७ ॥ अन्नदाता २८ । ३८ ॥ ईश्वर और जीव २८ । २१ ॥ सेनापति वा सभापति १८ । ६९, २७ । ३७ ॥ राजपुरुष १९ । ६, ३३ । २८, २९ ॥ ऐश्वर्यवान् वैद्य २८ । ८, ९ ॥ सूर्यवत् तेजस्वी जन २८ । १८ ॥ ऐश्वर्य का इच्छुक जन २८ । १९, ३७ ॥ राजा २८ । २, ३, ४१, ३३ । ६३-६७, ९०, ९५, ३४ । १९, ३५ । १८ ॥

इन्द्रबृहस्पत्यादयः—ऐश्वर्य, ऐश्वर्य का इच्छुक जन, श्रेष्ठ पुरोहित २० । ७० ॥ ऐश्वर्य, प्रेरक जन, उत्तम मनुष्य २० । ७१ ॥ ऐश्वर्य, ऐश्वर्य का उत्पादक जन और उत्तम पुरुष २० । ७१ ॥

इन्द्राग्नी—वायु और विद्युत् २ । १५ ॥ वायु और अग्नि ३ । १३ ॥ विद्वान् सभापति और सभासद् ७ । ३१ ॥ विद्युत् और सूर्य १४ । ११ ॥ धनवान् और विद्वान् १५ । ५९ ॥ सभापति और सेनापति १७ । ६४, ३३ । ६१ ॥ सभापति और सेनापति, अध्यापक और उपदेशक ३३ । ७६ ॥ अध्यापक और उपदेशक ३३ । ९३ ॥

इन्द्राग्न्यादयः—वायु और अग्नि आदि गुणयुक्त पशु २४ । ८ ॥ वायु और विद्युत् से सम्बन्धित पशु आदि के पालन के उपाय २४ । १७ ॥

इन्द्रादयः—विद्युत् आदि ८ । ५५ ॥ जीव आदि विद्वान् पुरुष २२ । ५ ॥ वायु आदि गुणयुक्त पशु २४ । ७ ॥ इन्द्र आदि गुणयुक्त पशु २४ । १५ ॥ ऐश्वर्य आदि २५ । ३ ॥ वायु आदि २५ । ५ ॥ विद्युत् आदि २५ । २८ ॥

इन्द्राबृहस्पती—सम्राट् और जगदीश्वर ९ । १०, राजा और उपदेशक ९ । ११, पुरुषार्थ और वेदोपदेष्टा ९ । १२ ॥

इन्द्रमरुतौ—ईश्वर और वीर-ऋत्विक् पुरुष ३ । ४६ ॥ अध्यापक और शिष्य ३३ । ७८ ॥

इन्द्रवायू—योगोपदेष्टा और योगाभ्यासी ७ । ८ ॥ द्यौ और पृथिवी ३३ । १९ ॥ विद्युत् और पवन ३३ । ४५ ॥ विद्युत् और पवनविद्या का वेत्ता विद्वान् ३३ । ५६ ॥ राजपुरुष और प्रजाजन ३३ । ८६ ॥

इषुः—सेनापति १७ । ४५ ।। **ईशानः**—अधिष्ठाता ईश्वर ३१ । २ ।।

ईशानादयः—ईशान, मित्र, वरुण, बृहस्पति, त्वष्टा, समर्थ जन आदि २४ । २८ ।।

ईश्वरः—ईश्वर वा विद्वान् २ । २६ ।। जगत् स्रष्टा ईश्वर ४ । ८, ७ । ५, १३ । ५, १४ । २८, २९, २३ । ५०, ६४, ६५, २५ । ११, १२, १८, १९, २६ । २, ३, ३० । १३, ३५ । १५, ३६ । १७-१९, २१, २२, ३७ । ७, १४, १६-२१, ३८ । २५ ।।

ईश्वरसभाध्यक्षौ—ईश्वर और सभाध्यक्ष ५ । २९, ३० ।।

ईश्वरसभेशौ राजानौ—जगत्स्वामी परमात्मा, और सभापति राजा ८ । ४५ ।।

ईश्वरो राजा च—परमात्मा और प्रजापालक राजा १७ । ९९ ।।

उखा—कन्या ११ । ६४ ।।

उग्रादयो लिङ्गोक्ताः—तेज गुण वाले रुधिर (खून) आदि ३९ । ९ ।।

उपदेशकाः—उपदेश करने वाले लोग २० । ११ ।।

उषः—प्रभात वेला ३४ । ३३ ।।

उषाः—प्रभात वेलायें ३४ । ४० ।।

उषासानक्ता—प्रभात वेला और रात्रि वेला २० । ४१ ।।

ऋतवः—ऋतुयें १३ । २५, १४ । १५, १६, २७ ।।

ऋतुविद्याविद्, विद्वान्—ऋतुविद्या का ज्ञाता विद्वान् १८ । ३८ ।।

ऋत्विजः—विद्वान् लोग २१ । १० ।।

ऋभवः—मेधाबुद्धि से सम्पन्न लोग १४ । २६ ।।

ऋषयः—वेदादि शास्त्रों के ज्ञाता विद्वान् लोग ३४ । ४९ ।।

एकरुद्रः—वैद्यक-विद्या का ज्ञाता पुरुष १६ । ५ ।।

ओषधयः—ओषधि-विद्या १२ । ८० ।। ओषधियां १२ । ८२ ।

ओषधिः—स्पष्टार्थ १२ । ९९ ।।

कः—ईश्वर १२ । १०२ ।।

कालविद्याविदात्मा—काल-विद्या का वेत्ता पुरुष १८ । २३ ।।

कालाऽवयवाः—दिन-रात, सन्धिवेला, मास और वर्ष के अनुकूल क्रीड़ा करने वाले पक्षी २४ । २५ ।।

कृषीवलाः—किसान लोग १२ । ६९-७१, ३५ । १३ ।।

कृषीवलाः कवयः—विद्वान् किसान लोग १२ । ६७ ।।

कृषीवलाः कवयो वा—किसान वा विद्वान् लोग १२ । ६८ ।।

क्षत्रपतिः—राजा १० । १७, २१, ३१, ३२, ११ । १४, २० ।। स्त्री १३ । २६ ।।

गणपतिः—राजा ११ । १५ ।। प्राणिसमूह का पालक जगदीश्वर, २३ । १९ ।।

गरुत्मान्—विद्वान् पुरुष १२ । ४ ।।

गृहपतिः—घर का स्वामी=गृहस्थ ८ । १५, १६, २४, २५, ३४, १९ । १८ ।।

गृहपतयः—घर के स्वामी गृहस्थ लोग ८ । ५, १०-१२, १४, १८, २०-२३, २६, ३३, ५३ ।।

गृहपतयो राजादयः—घरों के पालक राजादि लोग ८ । ४० ।।

गृहपतयो विश्वेदेवाः—विद्वान् गृहस्थ लोग ८ । १३ ।।

गृहपतिर्मघवा—धन—सम्पन्न घर का स्वामी गृहस्थ ८ । २ ।।

ग्रीष्मर्तुः—गर्मी का मौसम १४ । ६, १५ । १६ ॥

चन्द्रमाः—चन्द्रलोक १८ । ४० ॥

चन्द्रादयः—चन्द्र, वनस्पति, सविता, वायु, अकूपार, ह्री (लज्जा) गुण वाले पशु-पक्षी विशेष २४ । ३५ ॥

चातुर्मास्या मरुतः—चतुर्मास सम्बन्धी वायु १७ । ८५ ॥

चिकित्सुः—चिकित्सा का इच्छुक जन १२ । ७८ ॥

छन्दांसि—आयु आदि १४ । १७ ॥ आनन्द आदि १४ । १८ ॥

जगदीश्वरः—स्पष्टार्थ १४ । ३० ॥ **जलादयः**—जल आदि पदार्थ २२ । २५ ॥

जातवेदाः—विद्वान् पुरुष १३ । ३४, ३५, ३५ । २० ॥

जायापती—स्त्री और पुरुष ११ । ३१ ॥

जिज्ञासुः—जानने का इच्छुक पुरुष २३ । ९, ११, ४५, ४७ ॥

जीवेश्वरौ—जीवात्मा और परमेश्वर १२ । १४ ॥

तनूनपात्—शरीर का रक्षक २० । ३७ ॥

तिस्रो देव्यः—तीन देवियां=वाणी, नाडी और धारणशक्ति २० । ४३ ॥

त्वष्टा—ईश्वर २ । १४, २७ । २० ॥ सभापति ६ । ७ ॥ सेनापति ६ । २० ॥ विद्वान् पुरुष २० । ४४, २९ । ९ ॥

दम्पती—विवाहित स्त्री-पुरुष ८ । २७-३२, ११ । ३०, १२ । ६०, १४ । ८, १५ । ३ ॥

दिक्—दिशा १७ । ५४ ॥

दिगादयो लिङ्गोक्ताः—दिशा, चन्द्रमा, नक्षत्र, समुद्र, नाभि, पवित्रता ३९ । २ ॥

दिशः—दिशायें ९ । २२, १४ । १३, २२ । २४ ॥ **देव्यः**—देदीप्यमान अग्नियां १३ । १६ ॥

दैव्याध्यापकोपदेशकौ—दिव्यगुणयुक्त अध्यापक और उपदेशक २० । ४२ ॥

द्यावापृथिवी—सूर्य-प्रकाश और भूमि २ । १६, ६ । १६ ॥ सूर्यलोक और पृथिवी ६ । ३५ ॥

द्यावापृथिव्यौ—सूर्यलोक और भूमि १३ । ३२, ३४ । ४५ ॥ अध्यापिका और उपदेशिका स्त्रियां ३७ । ३ ॥ भूमि और सूर्य के समान स्त्री-पुरुष ३८ । १४ ॥

द्युविद्युतौ—द्युलोक और विद्युत् १ । २४ ॥

द्यौरित्यादयः—कारण रूप प्रकाश आदि २५ । २३ ॥

द्रविणोदाः—धन देने वाला पुरुष ११ । २१, २२ ॥

धनादियुक्त आत्मा—वस्तुओं के उपभोग-सामर्थ्य आदि से युक्त मनुष्य ८ । १५ ॥

धनुर्वेदाध्यापकाः—धनुर्वेद के अध्यापक पुरुष २९ । ४७ ॥

धान्यदा आत्मा—व्रीहि आदि का दाता जन १८ । १२ ॥

नक्षत्रादयः—नक्षत्र=तारे आदि २२ । २८ ॥ **निर्ऋतिः**—स्त्री १२ । ६२-६४ ॥

न्यायाधीशः—राजा २३ । २१ ॥

पत्नी—स्त्री ८ । ४२, १३ । २०, २१ ॥ माता १२ । ६१ ॥

पदार्थविदात्मा—सूर्य के प्रकाश आदि को ग्रहण करने वाला पुरुष १८ । १९ ॥

परमात्मा—स्पष्टार्थ ४ । ४, १० । १५, १५ । ६४, २० । ३२, २५ । १३, ३२ । १, २, ६-८, १०-१२, १४ ॥

परमेश्वरः—स्पष्टार्थ ८ । ३६, २३ । १-५, ५२, २७ । ३६, ३० । ५, ६, ३२ । ५ ॥

परमेश्वरविद्वांसौ—ईश्वर और विद्वान् ३२ । १५ ॥

परमेष्ठी प्रजापतिः—उत्कृष्ट स्थान वाला गृहस्थ और सभापति ८ । ५४ ॥

पवमानः—अग्नि के समान पवित्र करने वाला मनुष्य २२ । १८ ॥

पशुपालनविद्याविदात्मा—पशुपालन विद्या का वेत्ता पुरुष १८ । २७ ॥

पशुविद्याविदात्मा—पशुविद्या का वेत्ता पुरुष १८ । २६ ॥

पितरः—विद्वान् लोग २ । ३१, ३३, १९ । ६० ॥ जनक आदि २ । ३२, १९ । ४७, ५६-५८, ६९ ॥ विद्वान् और अध्यापक आदि लोग १९ । ७० ॥ विद्वान्, अध्यापक और उपदेशक लोग १९ । ६७ ॥ विद्वान् और उपदेशक लोग १९ । ५९ ॥ माता, पिता और आचार्य १२ । ४५ ॥ पिता और सन्तानादि १९ । ३६ ॥ प्रजा के पालक लोग १९ । ४५ ॥ पालन-कर्त्ता पिता आदि १९ । ४९, ५०-५२, ५५ ॥ विद्या और आयु में बड़े पिता आदि १९ । ६१ ॥ ज्ञान-प्रदान करने वाले पिता आदि १९ । ६२ ॥ माननीय वृद्ध लोग १९ । ६३ ॥ ज्ञान-सम्पन्न पिता आदि १९ । ५१, २४ । १८ ॥ पिता, अध्यापक आदि १९ । ५३ ॥ प्रजा की शुद्धि करने वाले वृद्ध लोग १९ । ६८ ॥ पालक स्त्री-पुरुष १९ । ८७ ॥ आप्त विद्वान् लोग और परमेश्वर ३५ । १ ॥

पुरुषः—सर्वत्र पूर्ण परमेश्वर ३१ । १, ३, ४, ६, ८-१६ ॥

पुरुषेश्वरः—सर्वत्र पूर्ण परमात्मा २३ । ५१ ॥

पुरोहितयजमानौ—पुरोहित और यजमान पुरुष ११ । ८१ ॥

पूषा—ईश्वर और आप्त-पुरुष ३४ । ४१, ४२ ॥ भूमिवत् पालक स्त्री ३८ । ३ ॥

पूषादयः—पुष्टि आदि करने वाले २५ । ७, ९ ॥

पूषादयो मन्त्रोक्ताः—सबके पालक राजपुरुष एवं प्रजा पुरुष ९ । ३२ ॥

पूषादयो लिङ्गोक्ताः—पुष्टि आदि करने वाले स्त्री-पुरुष ३८ । १५ ॥

पृथिवी—भूमि के समान वर्तमान गृहिणी ३५ । २१ ॥ पतिव्रता स्त्री ३६ । १३ ॥ अच्छे लक्षणों से युक्त पत्नी ३७ । १२ ॥

पृथिव्यादयः—पृथिवी आदि १४ । १९ ॥

प्रजा—प्रजा के लोग ६ । २८, २३ । ३४, २५ । ४५ ॥ विद्वान् प्रजाजन २३ । ३५ ॥ स्त्री-पुरुष २३ । ४० ॥ बालकगण २३ । ५१ ॥

प्रजापतयः—गृहस्थ लोग ८ । ४८ ॥ राजा लोग ८ । ५० ॥

प्रजापतयो गृहस्थाः—प्रजापालक गृहस्थ लोग ८ । ५१ ॥

प्रजापतिः—ईश्वर १ । ६, २ । २१, २३, ३ । ३७, ७ । ३९, १० । २०, १३ । ४, १४ । ३१, १८ । ५९, ६०, १९ । ७७, २७ । २५, २६, ३५ । ६ ॥ न्यायाधीश पुरुष ७ । १८ ॥ सभापति राजा ७ । २९, ३०, ३५, ३६, ३८, ४५, ८ । ५२, ९ । ८, २३-२५, १३ । १७, १९ । ७५, २३ । २८ ॥ राजा और सेनाध्यक्ष ७ । ३७ ॥ श्रेष्ठ वैद्य ७ । ४९ ॥ धार्मिक राजा और विद्वान् ९ । १९, १० । ९ ॥ वायु ११ । २३ ॥ दम्पती=स्त्री-पुरुष १३ । २४, ४८, ५५-५८ ॥ विद्वान् पुरुष ९ । २०, १८ । ४५, ६१ ॥ ऋतु १३ । ३० ॥ पुरुष १५ । ८, ९ ॥ साधन सहित प्राणादि १८ । २ ॥ ओज आदि १८ । ३ ॥ प्रशंसित वस्तु आदि का समूह १८ । ४ ॥ सत्य आदि १८ । ५ ॥ यथार्थ विज्ञान आदि १८ । ६ ॥ शम-दम आदि गुण १८ । ७ ॥ गृहस्थ पुरुष १८ । ४४ ॥ प्रजा का पालक जीव ३९ । ५ ॥ प्रजापालक वेद-वेत्ता जीव १९ । ७८ ॥ प्रजा का स्वामी १९ । ७९ ॥ सूर्य आदि के गुणों से युक्त पशु २४ । १ ॥

प्रजापत्यादयः—प्रजापति आदि २२ । २०, २४ । २९, ३० ॥

प्रजासभ्यराजानः—प्रजा एवं सभ्य राजा लोग ६ । ३१ ॥

प्रयत्नवन्तो जीवादयः—प्रयत्नशील जीवगण २८ । ८ ॥

प्रष्टा—जिज्ञासु २३ । ५३, ५५, ५७, ५९, ६१ ॥

प्रष्टृ-समाधातारौ—जिज्ञासु और विद्वान् पुरुष २३ । ४९ ॥

प्राजापत्यादयः—ब्राह्मण आदि लोग १४ । ९ ॥ प्रजापति आदि के गुणों से युक्त शृगाल आदि पशु २४ । ३१ ॥

प्राणः—बाहर और भीतर का व्यवहार ७ । १ ॥ सन्यासी पुरुष १७ । १३ ॥ उत्तम विद्वान् १७ । १४ ॥

प्राणाः—बल १३ । ५४ ॥

प्राणादयः—प्राण आदि २२ । ७, २३, २५ । २ ॥ प्राण पोषण आदि २३ । १८ ॥

प्राणादयो लिङ्गोक्ताः—प्राण, पृथिवी, अन्तरिक्ष, वायु, द्युलोक और सूर्य ३९ । १ ॥

बहुरुद्राः—प्राण आदि वायु और जीवगण १६ । ५६ ॥

बृहस्पतिः—ईश्वर ३ । २८-३१, ३५ । २ ॥ परम विद्वान् जन ६ । ८ ॥ नीतिकुशल सेनापति ९ । १४, १५ ॥ राजा ९ । १६-१८ ॥ परीक्षक पुरुष १३ । २३ ॥ ईश्वर वा विद्वान् पुरुष १८ । ४७, ४८ ॥ आप्त विद्वान् १८ । ४९ ॥ विद्वान् जन २८ । १० ॥

बृहस्पतिस्सोमः—विद्वान् ब्रह्मचारी ८ । १ ॥

ब्रह्म—अद्वितीय ईश्वर ४० । ४ ॥

ब्रह्मणस्पतिः—धन का रक्षक विद्वान् पुरुष ३४ । ५६ ॥ वेदविद्या और ब्रह्माण्ड का पालक ईश्वर ३४ । ५७, ५८ ॥

ब्रह्मा—महान् योगी विद्वान् जन २३ । १४ ॥

ब्रह्मादयः—चारों वेदों के वेत्ता पुरुष आदि २३ । १३ ॥ सब से महान् अनन्त ईश्वर आदि २३ । ४८ ॥

भगः—ऐश्वर्य ३४ । ३५ ॥ ऐश्वर्य की उन्नति ३४ । ३७, ३९ ॥

भगवान्—परमेश्वर ३४ । ३६, ३८ ॥

भिषग्वराः—श्रेष्ठ वैद्य लोग १२ । ९७ ॥

भिषजः—वैद्य लोग १२ । ९५, १०१ ॥

भूमिसूर्यौ—माता-पिता २३ । २४, २५ ॥

भूम्यादयः—भूमि आदि गुणयुक्त मूषक आदि जीव जन्तु २४ । २६ ॥

मघवा—परम पूजनीय धनी पुरुष ७ । ४ ॥

मनः—संकल्प-विकल्प आदि युक्त मन ३ । ५३, ५४, ३४ । १-६ ॥ बुद्धि ३ । ५५ ॥

मनुष्यः—मननशील पुरुष २९ । १९ ॥

मनुष्याः—विद्वान् लोग २९ । ६, २१, २३, २४ ॥

मरुतः—विद्वान्, अतिथि और ऋत्विक् लोग ३ । ४४ ॥ गृहस्थ लोग ३ । ४५ ॥ वायु १५ । १३ ॥ मनुष्य गण १७ । १, ८०-८३ ॥ विद्वान् सेनापतिगण १७ । ४७ ॥ विद्वान् लोग १७ । ८६ ॥ राजा, प्रजा, ऋत्विक् और विद्वान् लोग १७ । ८६ ॥ मरणशील मनुष्य लोग ३४ । ४८ ॥ जीवगण ३९ । ७ ॥

मरुतादयः—मनुष्य आदि २५ । ६ ॥

महावीरः सेनापतिः—पूर्ण वीरतायुक्त सेनापति २९ । ५१ ॥

यज्ञपुरुषः—यजनशील मनुष्य १७ । ६२-६८ ॥ अग्निहोत्र वा शब्दशास्त्र १७ । ६१ ॥

यज्ञवानात्मा—यज्ञ करने वाला मनुष्य १८ । २२ ॥

यज्ञाङ्गवानात्मा—यज्ञ के अङ्गों का अनुष्ठान करने वाला पुरुष १८ । २१ ॥

यज्ञानुष्ठातात्मा—परमेश्वर और विद्वानों का सत्कार करने वाला मनुष्य १८ । २६ ॥

यज्ञानुष्ठानात्मा—यज्ञानुष्ठान करने वाला पुरुष १८ । २० ॥

यमः—मृत्यु ३५ । ७ ॥ **योगी**—योग विद्या का जिज्ञासु ७ । ६ ॥

योद्धा—सेनापति १७ । ४६ ॥

रक्षोघ्नः—दुष्टों का नाशक राजा ६ । ३८, ३६ ॥

रत्नवान् धनवानात्मा—हीरा आदि रत्न और धन का उपयोग करने वाला मनुष्य १८ । १३ ॥

रसविद्याविद् विद्वान्—रसविद्या का वेत्ता विद्वान् जन १८ । ३५, ३६ ॥

राजधर्मराजादयः—राजधर्म और राजादि लोग ६ । ४ ॥

राजप्रजे—राजा और प्रजा २३ । २०, २२, २३, ३१ ॥

राजा—स्पष्टार्थ २० । ७, २३ । ३०, ३२, ४३ ॥ **राजाः**—माता आदि जन २३ । ४४ ॥

राजादयो गृहपतयः—राजा आदि घर के पालक जन ८ । ३८ ॥

राजादयो गृहस्थाः—राजा आदि गृहस्थ लोग ८ । ३६ ॥

राजेश्वरौ—राजा और परमेश्वर ३० । १४-२२ ॥

राज्यवानात्मा—सब का आधार भूमि-निर्माता ईश्वर १८ । ३० ॥

राज्यैश्वर्यादियुक्तात्मा—राज्य-ऐश्वर्य आदि से युक्त पुरुष १८ । १८ ॥

रात्रिः—रात ३४ । ३२ ॥

रुद्रः—विद्वान् वा प्राण ३ । ५७ ॥ ईश्वर ३ । ५८, ६०, ६२ ॥ वीर सेनाध्यक्ष ३ । ६१ ॥ ईश्वर वा उपदेशक जन ३ । ६३ ॥ राजा १६ । १, ३, ७ ॥ शिक्षक पुरुष १६ । २ ॥ चिकित्सक जन १६ । ४ ॥ सेनापति १६ । ८-१४, १६, १७ ॥ युद्ध और सेना का अधिकारी विद्वान् १६ । १५ ॥ गृहस्थ पुरुष १६ । २६ ॥ मध्य कोटि का विद्वान् राजा २८ । ४ ॥

रुद्राः—बल युक्त प्राण आदि वायु ११ । ५४, १५ । ११, १६ । ५४, ५७, ६० ॥ राजा और प्रजा के लोग १६ । १८, १६-२६ ॥ विद्वान् लोग १६ । २७, ४८, २१ । २३ ॥ मनुष्य गण १६ । २८, ३१-३३, ३७-४७, ६१, ६२ ॥ गृहस्थ लोग १६ । ३० ॥ राजपुरुष लोग १६ । ३४, ५०, ५२, ५३ ॥ योद्धा लोग १६ । ३५ ॥ राजा और प्रजा के अध्यक्ष जन १६ । ३६ ॥ राजवैद्य आदि विद्वान् लोग १६ । ४६ ॥ सभा के अध्यक्ष आदि जन १६ । ५१ ॥ जीवगण और वायुगण १६ । ५५, ६३ ॥ सर्प आदि जन्तु १६ । ५८ ॥ सन्यासी वृन्द और ब्रह्मचारी गण १६ । ५६ ॥ वीर लोग १६ । ६४ ॥ शिल्पी लोग १६ । ६५ ॥ अन्न के याचक लोग १६ । ६६ ॥

रुद्रादयः—प्राण आदि वा जीव आदि ३८ । १६ ॥

लिङ्गोक्ताः—ग्राम, जंगल, सभा, मन, शूद्र, वैश्य, धर्म अपराध २० । १७ ॥ विद्वान् आदि २० । ३४, ३५ ॥ प्राण-अपान आदि २१ । ६० ॥ मन्त्रार्थ वेत्ता ऋषि लोग २१ । ६१ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, धेनु=गौ, बैल, घोड़ा, धर्मपत्नी, युवा वीरपुत्र, मेघ, ओषधि और योगक्षेम २२ । २२ ॥ पृथिवी आदि २२ । २६ ॥ पृथिवी आदि तैंतीस वसु, रुद्र और आदित्य नामक देवता ३४ । ४६ ॥ पृथिवी आदि पदार्थ ३४ । ५३ ॥ दिन-रात आदि ३६ । ११ ॥

वनस्पतिः—वृक्षसमूह का रक्षक पुरुष २० । ४५ ॥

वरुणः—ईश्वर, सूर्य और वायु ४ । ३०, ३१ ॥ प्रशंसनीय सभापति=राजा ६ । २२ ॥ वेदवेत्ता अध्यापक ७ । ४७ ॥ राजा १० । ७, २७, १२ । १२ ॥ वरण=स्वीकार करने योग्य गुण १३ । ३१ ॥ विद्वान् पुरुष १६ । ८१, २१ । १, २ ॥ वरप्रापक विद्वान् २० । १८ ॥ जल २४ । २१ ॥ उदानवत् उत्तम विद्वान् ३३ । ४६ ॥

वर्षर्तुः—वर्षा ऋतु १५ । १७ ॥

वर्षादयः—वर्षा आदि ऋतु गुणयुक्त पशु-पक्षी २४ । ३८ ॥

वसन्त ऋतुः—स्पष्टार्थ १५ । १५ ॥

वसन्तादयः—वसन्त आदि ऋतु गुणयुक्त पशु २४ । ११ ॥ वसन्त आदि ऋतु गुणयुक्त पक्षी २४ । २० ॥

वसवः—अग्नि आदि १५ । १० ॥

वसुरुद्रादित्यविश्वेदेवाः—वसु आदि संज्ञक विद्वान् लोग ११ ॥ ५८ ॥

वस्वादयः—वसु आदि के गुण युक्त मृग आदि पशु २४ । ४७ ॥

वस्त्रादयो मन्त्रोक्ताः—विद्या से युक्त विद्वान् राजा लोग ९ । ३४ ॥ आदिम विद्वान् लोग २१ । ६० ॥

वस्त्रादयो लिङ्गोक्ताः—अत्युत्तम विद्वान् लोग ११ । ६५ ॥ भौतिक अग्नि आदि वा विद्वान् लोग १४ । २५ ॥

वह्निः—भौतिक अग्नि २७ । १४ ॥

वाक्—वाणी ५ । १०, १२ ॥ वाणी और विद्वान् ५ । ११ ॥ क्रियाविधि का ज्ञापक विद्याधारण रूप सुन्दर उपदेश ३२ । ३३ ॥ विज्ञान सम्पन्न स्त्री ३८ । ५ ॥

वागादयो लिङ्गोक्ताः—वाणी, प्राण, आंख और कान ३९ । ३ ॥

वाग्विद्युतौ—वाणी और विद्युत् ४ । १८-२३ ॥ **वाजादयः**—अन्न आदि पदार्थ २२ । ३२ ॥

वाजी—विद्वान् पुरुष ११ । १२, १३ ॥

वाण्यः—कर्म, उपासना और ज्ञान की बोधक त्रिविध वाणियां २८ । ३१ ॥

वातः—वायु ६ । ११, १८ । ४१ ॥ सृष्टिविद्या ३८ । ७ ॥

वातादयः—वायु आदि २२ । २६, ३६ । १० ॥

वादयितारो वीराः—सेना की गर्जना वाले वीरपुरुष २९ । ५६, ५७ ॥

वायवः—वायु २९ । २२ ॥

वायुः—योगी जन ७ । ७ ॥ वायु ११ । ३९, १४ । १२, २५ । १७, २७ । ३४, ३३ । ४४ ॥ प्राण से प्रिय पति १४ । १४ ॥ वायुवत् दिव्यगुणयुक्त पशु २४ । १९ ॥ जीवन भूल प्राण वायु २७ । २३, २४ ॥ वायुवत् बलवान् विद्वान् २७ । २७, २८ ॥ ईश्वर २७ । २९ ॥ वायुवत् वर्ताव करने वाला मनुष्य २७ । ३० ॥ वायुवत् वर्तने वाला विद्वान् २७ । ३१-३३ ॥ प्राणादि लक्षणों वाला विद्वान् ३३ । ५५ ॥ प्राणवत् न्यायशील पिता और विद्वान् ३८ । ९ ॥ राजा ३३ । ७०, ८५, ३७ । ३५ ॥ आप्त पुरुष २७ । ४४ ॥

वायुः सविता—भौतिक वायु, सूर्य १ । १६ ॥ जीवात्मा और जगदीश्वर ३५ । ४ ॥

वायुसवितारौ—माता, पिता ३५ । ५ ॥ **वाय्वादयः**—वायु आदि २३ । ८ ॥

वास्तुपतिः—गृहस्थाश्रमी जन ३ । ४२, ४३ ॥—**वास्तुरग्निः**—गृहस्थ आश्रम ३ । ४१ ॥

विदुषी—विद्यायुक्त स्त्री १४ । २१, २२, १५ । ५८, ६३ ॥

विद्युत्—ईश्वर और बिजुली ५ । ५ ॥ **विद्युदादयः**—विद्युत् आदि २३ । १२ ॥

विद्वद्राजानो—ब्राह्मण और क्षत्रिय पुरुष ३२ । १६ ॥

विद्वान्—स्पष्टार्थ ४ । ६, २७, १२ । १०५, १०७, ११०, १५ । ६५, १६ । २४, २२ । २१, २३ । १५, २५ । ४८, २६ । १५, १६, १८, २६ । ३८, ३३ । ७५, ३७ । ६, १३ ॥ विद्वान् अध्यापक वा अध्यापिका २६ । २० ॥ प्रशंसनीय वाग्मी नेता विद्वान् २६ । २१ ॥ परम ऐश्वर्य का इच्छुक विद्वान् २६ । २३, २४ ॥ धार्मिक विद्वान् मनुष्य २६ । २५-२७ ॥ जगदीश्वर वा सभेश राजा ३० । ६-१२ ॥ पण्डित ३२ । ६ ॥ शिल्पी ३२ । ३४ ॥ राजा आदि मनुष्य ३३ । ३३ ॥ अध्यापक वा उपदेशक ३३ । ७२ ॥

विद्वांसः—विद्वान् लोग ६ । ६, १२, १४, १५, ७ । ३, ४६, १४ । १०, १५ । ४-७, १६ । १२, ३६, २१ । ११, १३-१६, २२, २७, ४१, ४४, २२ । २, २३ । २६, ३३, २५ । १५, २०-२२, २५, ३३ । १४ ॥ ऋषि लोग २५ । ३०, ३७, ३६, २६ । १६, २१, २७ ॥ शिल्पी लोग २६ । ३२, ३७, ५८, ३३ । ७, ८ ॥ विद्वान् राजपुरुष लोग ३० । ७, ८ ॥ विनय और साधुत्वसम्पन्न लोग ३७ । १० ॥

विराजादयः—विराट् आदि छन्दों के गुणों से युक्त पशु २४ । १३ ॥

विश्वकर्मा—परमेश्वर १७ । १८-२२, २६-३२, ७८ ॥ राजा १७ । २३-२५ ॥ पुरुषार्थी पुरुष १८ । ४३ ॥

विश्वकर्माऽग्निर्वा—विद्वान् वा अध्यापक एवं शिष्य १८ । ६२ ॥

विश्वकर्मेन्द्रः—समस्त ऐश्वर्य-दाता शिल्पी ८ । ४६ ॥ समस्त ऐश्वर्य-उत्पादक शिल्पी ८ । ४७ ॥

विश्वे देवाः—सब विद्वान् लोग २ । १८, ३ । २१, ६ । १६, ७ । १२-१७, २३, २४, ३२-३४, ८ । ५७-५६, ६ । ३६, १३ । २६, १८ । ३१, ७६, ७७, १६ । ४५, २० । १२, २१ । १६, २०, २२ । ४, ५, २५ । १६, ३१ । २१, ३३ । १३, ४७, ४८, ५३, ५४, ८१, ८६, ६४ ॥ राजा और राजसभासद् गण ७ । १६ ॥ विद्वान् वा द्रव्यगुण समूह ३ । ७ । २२ ॥ सब विद्वान् और दिव्य भोग समूह ८ । ६०॥ जगत् की उत्पत्ति के कारण ८ । ६१ ॥ सब राजविद्वान् लोग ६ । ३५ ॥ मधुरता आदि गुण १३ । २७, २८ ॥ सभी शुभ गुण और कर्म १४ । ७ ॥ सब के प्रकाशक पदार्थ १५ । १४ ॥ सब प्रकाशमान पृथिवी आदि २१ । १७ ॥ वैद्य लोग २१ । १८ ॥ प्रजा २१ । २१ ॥ दिव्यगुण युक्त मध्यम विद्वान् २१ । २४ ॥ उत्तम विद्वान् २१ । २६ ॥ दिव्य पदार्थ समूह २१ । २८ ॥ राजा आदि श्रेष्ठ लोग २५ । ३५ ॥ विद्वान् सभासद् गण २५ । ४६ ॥ राजसभा के उपदेशक लोग २७ । ८ ॥ दिव्यगुण युक्त वायु २७ । १२ ॥ पृथिवी, सूर्य आदि पदार्थ ३३ । ३६ ॥ अध्यापक और शिष्य गण ३३ । ४६ ॥ सब आर्य राज्य के रक्षक एवं सेवक ३३ । ८२ ॥ सृष्टि के वायु आदि पदार्थ समूह ३५ । ८, ६ ॥ सब मित्र लोग ३५ । १० ॥

विश्वेदेवा गृहपतयः—विद्वान् गृहस्थ लोग ८ । ८, ६, १७, १६ ॥

विश्वेदेवा गृहस्थाः—विद्वान् गृहस्थ लोग ८ । ५६ ॥

विश्वेदेवादयः—अखिल विद्वान् आदि गुणों से युक्त पशु-पक्षी २४ । ४० ॥

विश्वेदेवाः प्रजापतयः—विद्वान् गृहस्थ लोग ८ । ४६ ॥

विषमाङ्कगणितविद्याविदात्मा—विषम-अङ्कों की गणित-विद्या का वेत्ता जन १८ । २४ ॥

विष्णुः—व्यापक ईश्वर १ । ४, ५ । १५-२८, ६ । ३-५, १३ । ३३, ३४ । ४३, ४४ ॥ सूर्य १ । ६ ॥ यज्ञ २ । २५, ५ । १ ॥ ईश्वर और शूर जन ५ । ३८ ॥ विद्वान् ५ । ४१, १२ । ५ ॥

विष्णुर्यज्ञः—व्यापक यज्ञ ५ । २ ॥

वीरः—बहुत बल युक्त राजा १६ । ६, २६ । ५३, ५४ ॥

वीराः—वीर राजपुरुष लोग २६ । ३६-४६, ४८-५० ॥ वीर मनुष्य गण २६ । ५५ ॥

वृषा—विज्ञान, राज्य, वा सेनापति १० । २ ॥ **वेनः**—राजा ३३ । २१ ॥

वैद्यः—वैद्यक-विद्यायुक्त जन १२ । ७५-७७, ७९, ८१, ८३-८६ ॥

वैद्याः—वैद्य लोग १२ । ८७-९३, ९५, ९६, ९८, १०० ॥

वैश्वानरः—ईश्वर ७ । २५ ॥ राजा २६ । ६ ॥ सब विद्वानों में प्रकाशमान पुरुष २६ । ८, ९ ॥ विद्वान् ३३ । ९२ ॥

वैश्वानरोऽग्निः—संसार का नायक श्रेष्ठ राजा २६ । ७ ॥

शरदृतुः—शरद् ऋतु १५ । १८ ॥ **शिशिरर्तुः**—शिशिर ऋतु १५ । ५७ ॥

श्रीः—राज्य-लक्ष्मी १९ । ४६ ॥ राज्य लक्ष्मी से युक्त प्रजा २३ । २६, २७ ॥ प्रजा और धन धान्य आदि ३९ । ४ ॥

श्रीमदात्मा—शम आदि गुणों से युक्त योगी १८ । ११ ॥

सङ्ग्रामादिविदात्मा—सङ्ग्राम आदि का वेत्ता जन १८ । २८ ॥

समाङ्कगणितविद्याविदात्मा—सम अङ्कों की गणित-विद्या का वेत्ता जन १८ । २५ ॥

समाधाता—विद्वान् पुरुष २३ । ५४, ६०, ६२, ६३ ॥ **समित्**—ईश्वर २० । २३ ॥

समिधाः—ज्ञान आदि की प्रकाशक विद्यायें २३ । ५९ ॥ **सम्राट्**—राजा ९ । ३० ॥

सम्राड्माण्डलिकौ राजानौ—सम्राट् और माण्डलिक राजा ८ । ३७ ॥

सम्राड्राजा—सम्राट् राजा १८ । ३७ ॥ **संवत्सरः**—वर्ष २६ । १४ ॥

सामिधेन्यः—विद्यादि से प्रकाशित विद्वान् लोग २७ । २ ॥

सिनीवाली—हृदय को प्रिय लगने वाली कन्या ११ । ५५ ॥ कुमारी ३४ । १० ॥

सभापतिः—स्पष्टार्थ २० । ४-६ ॥ **सभापतियजमानः**—राजा और यजमान ११ । ८२ ॥

सभापती राजा—स्पष्टार्थ ६ । ३२ ॥ **सभासदः**—अध्यापक और शिष्य गण २३ । ३८ ॥

सभेशः—सभापति राजा २० । १-३, ९, १० ॥

सरस्वती—अच्छी शिक्षा १९ । ३७ ॥ प्रशंसनीय ज्ञान वाली विदुषी स्त्री १९ । ८३, ८८, २० । ८५, ८८ ॥ विदुषी माता १९ । ९० ॥ विदुषी पत्नी १९ । ९४, ३८ । २, ४ ॥ सुसंस्कृता वाणी २० । ८४, ८६, २९ । ८, ३४ । ११ ॥

सरस्वत्यादयः—वाणी आदि २१ । ३२, २५ । १ ॥ प्रशस्त ज्ञान युक्त स्त्री आदि २१ । ४८ ॥

सविता—ईश्वर १ । १, ३, १०, २५, ३ । ३५, ४ । ४३, ५ । १४, ६ । १, ३०, ९ । १३, ११ । ४-६, १२ । ३, १७ । ७४, २२ । १, ९-१४, २३ । १६, ३० । १, २-४, ३५ । २, ३६ । ३, ३७ । १, २, ३८ । २४ ॥ ईश्वर और सूर्यलोक १ । २० ॥ ईश्वर और सभाध्यक्ष ४ । २५ ॥ सम्राट् ९ । १ ॥ वीर सेनापति ९ । ५ ॥ ऐश्वर्य का इच्छुक जन ११ । १ ॥ योग और तत्त्वविद्या का जिज्ञासु ११ । २ ॥ योग पदार्थ के ज्ञान का प्रेरक उपदेशक ११ । ३ ॥ शिल्पी ११ । १०, ११ ॥ पतिदेव ११ । ६३ ॥ विद्वान् ११ । ६७ ॥ विद्या के व्यवहारों में प्रेरणा करने वाला विद्वान् १९ । ८०, ३४ । २७ ॥ प्रेरक सद्वैद्य १९ । ८५, ८६ ॥ राजा ३३ । १७, २०, ६९, ८४ ॥ सूर्यवत् विद्याप्रकाशक उपदेशक ३३ । ३४ ॥ सूर्य ३४ । २४-२६, ३५ । ३, ३८ । १ ॥ सज्जन ३७ । ११ ॥

सविता, अश्विनौ पूषा च—ऐश्वर्यवान् देव, सूर्य-चन्द्र, और पृथिवी ६ । ९ ॥

सविता गृहपतिः—सन्तान का इच्छुक गृहस्थ ८ । ७ ॥

सवित्रादयः—सूर्य-प्रकाश आदि ३९ । ६ ॥ **सवित्रादिमन्त्रोक्ताः**—वायु आदि १० । ३० ॥

सरस्वत्यादयः—वाणी आदि २१ । ३२ ॥ **स्त्रियः**—पत्नियां २३ । ३६, ३७ ॥

स्त्रीपुरुषो—स्त्री और पुरुष २९ । ३० ॥ दो स्त्री-पुरुषों की भाँति राजा और प्रजा २९ । ३१ ॥

सुवीरः—विद्वान् राजा २९ । ५२ ॥

सूर्यः—ईश्वर और सूर्य ४ । ३५, ३६ ॥ आदित्य और ब्रह्म ७ । ४१, ४२ ॥ जगदीश्वर ८ । ४१, १० । २४, २५, १३ । ४६, २० । २१, २७ । १०, ३३ । ३७, ३८, ४०, ४१, ३५ । १५, ३६ । २४ ॥ भौतिक सूर्य १३ । ८, १८ । ५०, २३ । ६, २९ । १०, ३१ । २०, ३३ । ३१, ३३ । ४३ ॥ सविता १८ । ३९, २३ । १० ॥ मेघहन्ता सूर्य के समान मनुष्य २६ । ५ ॥ विद्या और ऐश्वर्य का उत्पादक जन ३३ । ६५ ॥ वायु से सूर्य की भाँति वेग को प्राप्त राजपुरुष ३३ । ३० ॥ सूर्यवत् राजपुरुष ३३ । ३२ ॥ राजा ३३ । ३६ ॥ विद्युत् ३३ । ७४, ३४ । ३१ ॥

सूर्यादयः—सूर्यलोक आदि २३ । ४६ ॥

सूर्यादयो मन्त्रोक्ताः—न्याय और विद्या के प्रकाशक आदि १० । ४ ॥

सेनापतिः—स्पष्टार्थ ६ । २१, ९ । ७, ११ । ७९ ॥

सोमः—ईश्वर, ओषधिरस ३ । ५६ ॥ ईश्वरवत् धार्मिक जन ४ । ४२ ॥ ईश्वर, विद्युत् और विद्वान् ५ । ७ ॥ उपदेश ६ । २५ ॥ सब ऐश्वर्यों का दाता सभापति ६ । ३३ ॥ पिता आदि की सेवा ६ । ३६ ॥ ऐश्वर्य युक्त तेजस्वी विद्वान् ७ । २, १९ । ८, २० । ३३, २६ । २५ ॥ सोम्य गुण सम्पन्न शूरवीर राजा ७ । २१, १९ । ६, १०, ३४ । २१-२३ ॥ राजपुरुष १२ । ११२ ॥ योगाभ्यासी पुरुष १२ । ११३ ॥ सर्वहितकारी जन १२ । ११४ ॥ ऐश्वर्ययुक्त श्रेष्ठ वैद्य १९ । १, २६ । २२ ॥ सोमलता आदि ओषधियों का सार १९ । २-५, २५, ३५, ७४ ॥ महौषधियों का समूह १९ । ७ ॥ पुरुषार्थ में प्रेरणा करने वाला जन १९ । ३४, ७२ ॥ सुसन्तान वा चन्द्र लोक १९ । ५४ ॥ शुद्ध वीर्य १९ । ८४ ॥ ऐश्वर्य, आनन्द २० । २७ ॥ अध्यापक और शिष्य ३३ । ६२ ॥ राजा वा सेनापति ३४ । २० ॥ यव=जौ आदि ओषधि ३६ । २३ ॥

सोम-वरुण देवाः—सेनापति आदि १७ । ४९ ॥

सोम-सवितारौ—सभाध्यक्ष राजा और प्रजा ५ । ३९ ॥

सोमाग्न्यादित्यविष्णुसूर्यबृहस्पतयः—सोम आदि के गुणों से सम्पन्न राजा लोग ९ । ३६ ॥

सोमादयः—चन्द्र आदि के गुणों से युक्त पशु गण २४ । २ ॥ चन्द्र आदि गुण युक्त उत्तम पक्षी-समूह २४ । २२ ॥ ऐश्वर्य आदि गुणयुक्त पक्षी गण २४ । २४ ॥ सोम आदि गुणों वाले जङ्गली पशु २४।३२ ॥

सोमादयो लिङ्गोक्ताः—प्रशंसनीय ऐश्वर्य से युक्त राजा, प्रजा आदि ६ । २६ ॥

स्रष्टा— परमेश्वर ३१ । ५ ॥ **स्रष्टेश्वरः**—जगदुत्पादक ईश्वर ३१ । ७ ॥

स्वाहाकृतयः—सत्यक्रिया से आर्द्रचित्त मनुष्य गण २० । ४६ ॥

स्वर्ग्या नौः—बड़े आकार वाली नौका २१ । ७ ॥ **हिरण्यगर्भः**—परमेश्वर १३ । ६, ७, २५ । १० ॥

हिरण्यगर्भः परमात्मा—सूर्य, विद्युत् आदि पदार्थों का आधार ईश्वर ३२ । २ ॥

हिरण्यं तेजः—सुवर्ण आदि और विजय ३४ । ५० ॥ ब्रह्मचर्य ३४ । ५१, ५२ ॥

हेमन्तर्तुः—हेमन्त ऋतु १५ । १९ ॥ **होता**—विद्वान् पुरुष ११ । ३५ ॥

होत्रादयः—दाता जन आदि २१ । ४२ ॥ आदाता=लेने वाले याचक लोग २१ । ४३ ॥

विशेषः—यह यजुर्वेद-देवतार्थसूची (विषयसूची) मैं ने श्री पं० वेदपाल जी शास्त्री तथा श्री पं० सत्यकाम जी साहित्याचार्य के सहयोग से अत्यन्त पुषरार्थ से तैयार की है। महर्षि के यजुर्वेदभाष्य के अनुसार देवतार्थ का निर्णय किया गया है। इस में विद्यमान भूल को क्षमा न करके आर्य विद्वान् मुझे सूचित करने का अनुग्रह करेंगे।

—सुदर्शनदेव आचार्य २२ मई १९७२,

॥ इति यजुर्वेद देवतार्थ-सूची विषय-सूची ॥

॥ ओ३म् ॥

अथदयानन्द-यजुर्वेदभाष्य-भास्करारम्भः

ओ३म् ॥ अथ यजुर्वेदभाष्यारम्भः क्रियते ॥

अब यजुर्वेदभाष्य का आरम्भ किया जाता है।

यो जीवेषु दधाति सर्वसुकृतज्ञानं गुणैरीश्वर-
स्तं नत्वा क्रियते परोपकृतये सद्यः सुबोधाय च।
ऋग्वेदस्य विधाय वै गुणगुणिज्ञानप्रदातुर्वरं
भाष्यं काम्यमथो क्रियामययजुर्वेदस्य भाष्यं मया ॥१॥

भाषार्थ—जो परमेश्वर अपने गुणों के कारण सब जगत् का स्वामी है वह सब शुभ कर्मों को जनाने के लिये वेद का ज्ञान जीवों में स्थापित करता है। उस गुणनिधान परमेश्वर को नमस्कार करके परोपकार की दृष्टि से तथा शीघ्र एवं सरलता से वेद का बोध कराने के लिये गुण और गुणी का ज्ञान प्रदान करने वाले ऋग्वेद का उत्तम एवं सुन्दर भाष्य करके अब कर्मकाण्डमय यजुर्वेद का भाष्य किया जाता है ॥१॥

चतुस्त्र्यङ्कैरङ्कैरवनिसहितै र्विक्रमसरे
शुभे पौषे मासे सितदलभविश्वोन्मिततिथौ।
गुरोर्वारे प्रातः प्रतिपदमतीष्टं सुविदुषां
प्रमाणैर्निर्बद्धं शतपथनिरुक्तादिभिरपि ॥२॥

भाषार्थ—चार, तीन, नौ, एक=१९३४ विक्रमी संवत्सर में, शुभ पौषमास में, शुक्लपक्ष में, प्रतिपदा तिथि में, गुरुवार को प्रातःकाल यजुर्वेदभाष्य का आरम्भ किया जाता है, जिसका प्रत्येक पद श्रेष्ठ विद्वानों को अत्यन्त प्रिय है और यह भाष्य शतपथ तथा निरुक्त आदि के प्रमाणों से भी युक्त है ॥२॥

विश्वानि देव सवितार्दुरितानि परासुव।
यद् भद्रं तन्न आसुव ॥१॥ य० ३० । ३ ॥

ईश्वरेण जीवानां गुणगुणिविज्ञानोपदेशाय ह्यृग्वेदे सर्वान् पदार्थान् व्याख्यायेदानीं मनुष्यैस्तेभ्यो यथायथोपकारग्रहणाय क्रियाः कथं कर्त्तव्या इत्युपदिश्यते।

ईश्वर ने जीवों को गुण गुणी विज्ञान का उपदेश करने के लिये ऋग्वेद में सब पदार्थों की व्याख्या की। अब मनुष्यों को उनसे ठीक-ठीक उपयोग लेने के लिये कर्म करना चाहिये, इसका उपदेश किया जाता है।

तत्र यद्यदंगं यद्यत्साधनं चापेक्षितं तत्तदत्र यजुर्वेदे प्रकाश्यते। कुतः ? यावत् क्रियानिष्ठं ज्ञानं न भवति नैव तावच्छ्रेष्ठं सुखं जायते। विज्ञानस्य क्रियाहेतुत्व प्रकाशकारकत्वाविद्यानिवर्त्तकत्वधर्म प्रवर्त्तकत्वैर्धर्मपुरुषार्थयोः संयोजकत्वात्। यद्यत्कर्म विज्ञाननिमित्तं भवति तत्तत्सुखजनकं संपद्यते। तस्मान्मनुष्यैर्विज्ञानपुरःसरमेव कर्मानुष्ठानं कर्त्तव्यम्। कुतः ?

कर्म करने में जिस-जिस अङ्ग एवं साधन की आवश्यकता है, उस-उसका यहां यजुर्वेद में प्रकाश किया जाता है। क्योंकि--जब तक क्रियात्मक ज्ञान नहीं होता तब तक उत्तम सुख भी नहीं मिलता। विज्ञान, क्रिया का निमित्त, प्रकाशकारक और अविद्या को हटाने वाला है तथा धर्म में प्रवृत्त करके धर्म और पुरुषार्थ में लगाता है। जो-जो कर्म विज्ञानयुक्त होता है वह-वह सुख को उत्पन्न करने वाला बनता है। इसलिए मनुष्यों को विज्ञानपूर्वक ही कर्मों का अनुष्ठान करना चाहिये। क्योंकि—

जीवस्य चेतनत्वादकर्मतया स्थातुमशक्यत्वात्। नैव कश्चिदात्ममनःप्राणेन्द्रियचालनेन विना क्षणमपि स्थातुमर्हति। यजुर्भिर्यजन्तीत्युक्त-प्रामाण्यात्। येन मनुष्या ईश्वरं धार्मिकान् विदुषश्च पूजयन्ति, सर्वचेष्टासांगत्यं शिल्पविद्यासंगतिकरणं शुभविद्यागुणदानं यथायोग्यतया सर्वोपकारे शुभे व्यवहारे विद्वत्सु च द्रव्यादिव्ययं कुर्वन्ति तद्यजुः।

जीव चेतन होने से कर्म किये बिना रह नहीं सकता। कोई भी व्यक्ति आत्मा, मन, प्राण और इन्द्रियों की चेष्टा किये बिना क्षणभर भी नहीं रह सकता। जिससे मनुष्य ईश्वर की और धार्मिक विद्वानों की पूजा करते हैं, तथा सर्व क्रियाओं की संगति, शिल्पविद्या का संग, विद्यादि शुभ गुणों का दान, यथायोग्य सबके उपकार तथा, शुभ व्यवहार में और विद्वानों पर द्रव्य आदि का व्यय करते हैं उसे 'यजुः' कहते हैं।

अन्यत् सर्व भूमिकायां प्रकाशितं तत्र द्रष्टव्यम्। सा भूमिका चतुर्णां वेदानामेकैव वर्त्तते॥

शेष सब ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में प्रकाशित कर दिया है, वहां देख लेना। वह भूमिका चारों वेदों की एक ही है॥

अस्मिन् यजुर्वेदे चत्वारिंशदध्यायाः सन्ति। तत्रैकैकस्मिन्नध्याये मन्त्राः संख्यायन्ते—

इस यजुर्वेद में चालीस (४०) अध्याय हैं। अध्याय अनुसार मन्त्रों की गणना की जाती है—

अध्याय	मन्त्र	अध्याय	मन्त्र	अध्याय	मन्त्र	अध्याय	मन्त्र
१	३१	११	८३	२१	६१	३१	२२
२	३४	१२	११७	२२	३४	३२	१६
३	६३	१३	५८	२३	६५	३३	९७
४	३७	१४	३१	२४	४०	३४	५८
५	४३	१५	६५	२५	४७	३५	२२
६	३७	१६	६६	२६	२६	३६	२४
७	४८	१७	९९	२७	४५	३७	२१
८	६३	१८	७७	२८	४६	३८	२८
९	४०	१९	९५	२९	६०	३९	१३
१०	३४	२०	९०	३०	२२	४०	१७

चत्वारिंशदध्यायस्थाः सर्वे मन्त्रा एतावन्तः १९७५ एकोनविंशतिः शतानि पंचसप्ततिश्च सन्ति॥

चालीस (४०) अध्यायों में सब मन्त्र १९७५ उन्नीस सौ पिचहत्तर हैं॥

प्रथम अध्याय

परमेष्ठी प्रजापतिः। **सविता**=ईश्वरः। इषे त्वेत्यारभ्य भागपर्य्यन्तस्य
स्वराड्बृहतीछन्दः, मध्यमः स्वरः। अग्रे सर्वस्य ब्राह्म्युष्णिक्छन्दः, ऋषभः स्वरः॥

अथोत्तमकर्मसिद्ध्यर्थमीश्वरः प्रार्थनीय इत्युपदिश्यते॥

ऋग्वेद का भाष्य करने के पश्चात् यजुर्वेद के मन्त्रभाष्य का आरंभ किया जाता है। इसके प्रथम अध्याय के प्रथम मन्त्र में उत्तम कामों की सिद्धि के लिये मनुष्यों को ईश्वर की प्रार्थना अवश्य करनी चाहिये, इस बात का प्रकाश किया है॥

ओ३म् इषे त्वोर्ज्जे त्वा वायवः स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणऽआप्यायध्वमघ्न्याऽइन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवाऽअयक्ष्मा मा वस्तेनऽईशत माघशꣳसो ध्रुवाऽअस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून्पाहि॥१॥

पदार्थः—(इषे) अन्नविज्ञानयोः प्राप्तये। इषमित्यन्ननामसु पठितम्॥ निघं० २।७॥ इषतीति गतिकर्मसु पठितम्॥ निघं० २। १४॥ अस्माद्धातोः क्विपि कृते पदं सिध्यति (त्वा) विज्ञानस्वरूपं परमेश्वरम् (ऊर्ज्जे) पराक्रमोत्तमरसलाभाय। ऊर्ग्रसः॥ श० ५।१।२।८॥ (त्वा) अनन्तपराक्रमानन्दरसघनम् (वायवः) सर्वक्रियाप्राप्तिहेतवः स्पर्शगुणा भौतिकाः प्राणादयः। वायुरिति पदनामसु पठितम्॥ निघं० ५।४॥ अनेन प्राप्तिसाधका वायवो गृह्यन्ते। वा गतिगन्धनयोरित्यस्मात् कृवापा०॥ उ० १।१॥ अनेनाप्युक्तार्थो गृह्यते (स्थ) सन्ति। अत्र पुरुषव्यत्ययेन प्रथमपुरुषस्य स्थाने मध्यमपुरुषः। (देवः) सर्वेषां सुखानां दाता, सर्वविद्याद्योतकः। देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा द्युस्थानो भवतीति वा यो देवः सा देवता॥ निरु० ७। १५॥ (वः) युष्माकं (सविता) सर्वजगदुत्पादकः सकलैश्वर्य्यवान् जगदीश्वरः (प्रार्पयतु) प्रकृष्टतया संयोजयतु (श्रेष्ठतमाय) अतिशयेन प्रशस्तः सोऽतिशयितस्तस्मै यज्ञाय (कर्म्मणे) कर्तुं योग्यत्वेन सर्वोपकारार्थाय (आप्यायध्वम्) आप्यायामहे वा। अत्र पक्षे व्यत्ययः (अघ्न्याः) वर्धयितुमर्हा हन्तुमनर्हा गाव इन्द्रियाणि पृथिव्यादयः पशवश्च। अघ्न्या इति गोनामसु पठितम्॥ निघं० २। ११॥ (इन्द्राय) परमैश्वर्य्ययोगाय (भागम्) सेवनीयं, भागानां धनानां ज्ञानानां वा भाजनम् (प्रजावतीः) भूयस्यः प्रजा वर्त्तन्ते यासु ताः। अत्र भूम्न्यर्थे मतुप् (अनमीवाः) अमीवो व्याधिर्न विद्यते यासु ताः। अम रोगे इत्यस्माद्बाहुलकादौणादिक ईवन्प्रत्ययः (अयक्ष्माः) न विद्यते यक्ष्मा रोगराजो यासु ताः। यक्ष इत्यस्मात्। अर्त्तिस्तु०॥ उ० १। १३८॥ अनेन मन्प्रत्ययः (मा) निषेधार्थे (वः) ताः। अत्र पुरुषव्यत्ययः। (स्तेनः) चोरः (ईशत) ईष्टां समर्थो भवतु। अत्र लोडर्थे लङ्। बहुलं छन्दसीति शपो लुगभावः (मा) निषेधार्थे (अघशꣳसः) योऽघं पापं शंसति सः। (ध्रुवाः) निश्चलसुखहेतवः। (अस्मिन्) वर्त्तमाने प्रत्यक्षे (गोपतौ) यो गवां पतिः स्वामी तस्मिन् (स्यात) भवेयुः (बह्वीः) बह्व्यः। अत्र वा छन्दसि॥ अ० ६।१।१०६॥ अनेन पूर्वसवर्णदीर्घादेशः (यजमानस्य) यः परमेश्वरं सर्वोपकारं धर्मं च यजति तस्य विदुषः (पशून्) गोऽश्वहस्त्यादीन् श्रियः प्रजा वा। श्रीर्हि पशवः॥ श० १।६।३।३६॥ प्रजा वै पशवः॥ श० १।४।६।१७॥ (पाहि) रक्ष॥ अयं मंत्रः श० १।५।४।१–८ व्याख्यातः॥ १॥

प्रमाणार्थ—(इषे) 'इषम्' शब्द निघं० (२।७) में अन्न-नामों में पढ़ा गया है। 'इषति' पद निघं० (२।१४) में गत्यर्थक धातुओं में पढ़ा गया है। इस धातु से क्विप् प्रत्यय करने पर 'इष्' शब्द सिद्ध होता है। (ऊर्ज्जे) शतपथब्राह्मण (५।१।२।८) में 'ऊर्क्' का अर्थ 'रस' किया है। (वायवः) 'वायु' शब्द

निघं० (५ । ४) में पद-नामों में पढ़ा गया है । इससे प्राप्ति-साधक वायु गृहीत होते हैं । 'वा गतिगन्धनयोः' इस धातु से 'कृवापा०' (१ । १) उणादि सूत्र से वायु शब्द सिद्ध होने से उक्तार्थ का ग्रहण होता है । **(स्थ)** सन्ति । पुरुष-व्यत्यय से प्रथम पुरुष के स्थान में मध्यम पुरुष है । **(देवः)** निरुक्त (७ । १५) के अनुसार दान देने से, दीप्तिमान् होने से, द्योतित होने से अथवा द्युस्थानीय होने से 'देव' कहाता है । देव को ही देवता कहते हैं । **(आप्यायध्वम्)** आप्यायामहे । यहां पक्ष में पुरुष व्यत्यय है । **(अघ्न्याः)** यह शब्द निघं० (२ । ११) में गो-नामों में पढ़ा गया है । **(प्रजावतीः)** यहाँ आधिक्य अर्थ में मतुप् प्रत्यय है । **(अनमीवाः)** 'अम रोगे' इस धातु से बहुल करके औणादिक 'ईवन्' प्रत्यय है । **(अयक्ष्माः)** यक्ष धातु से अर्त्तिस्तु० (१ । १३८) उणादिसूत्र से मन् प्रत्यय है । **(वः)** ताः । यहां पुरुष व्यत्यय है । **(ईशत)** यहां लोट् अर्थ में लङ् लकार है तथा 'बहुलं छन्दसि' से शप् का लुक् नहीं हुआ । **(बह्वीः)** बह्व्यः । यहां 'वा छन्दसि' (अ० ६ । १ । १०६) से पूर्वसवर्ण दीर्घ-आदेश है । **(पशून्)** शतपथ ब्राह्मण (**काण्ड १, प्रपाठक ६, ब्राह्मण ३, खण्ड ३६**) में पशु का अर्थ श्री है । शत० (**खण्ड १, प्रपाठक ४, ब्राह्मण ६, खण्ड १७**) में पशु का अर्थ प्रजा है । इस मन्त्र की व्याख्या शतपथ ब्राह्मण (**काण्ड १ प्रपाठक ५ ब्राह्मण ४ खण्ड १-८**) में की गई है । (१ । १) ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः ! अयं सविता** सर्वजगदुत्पादकः सकलैश्वर्य्यवान् जगदीश्वरः, **देवः=भगवान्** सर्वेषां सुखानां दाता, सर्वविद्याद्योतकः, **वायव स्थ=यान्यस्माकं वः=युष्माकं च प्राणान्तःकरणेन्द्रियाणि सन्ति तानि** (वायवः=सर्वक्रियाप्राप्तिहेतवः स्पर्शगुणा भौतिकाः प्राणादयः) **श्रेष्ठतमाय** अतिशयेन प्रशस्तः सोऽतिशयितस्तस्मै यज्ञाय **कर्मणे** कर्तुं योग्यत्वेन सर्वोपकारार्थाय **प्रार्पयतु** प्रकृष्टतया संयोजयतु ।

वयमिषे=अन्नायोत्तमेच्छायै अन्नविज्ञानयोः प्राप्तये **सवितारं देवं त्वा=त्वां** विज्ञानस्वरूपं परमेश्वरं **तथोर्जे=पराक्रमोत्तम रसप्राप्तये** पराक्रमोत्तमरसलाभाय **भागं=भजनीयं** सेवनीयं भागानां=धनानां ज्ञानानां वा भाजनं **त्वा=त्वाम्** अनन्तपराक्रमानन्दरसघनं **सततमाश्रयामः । एवं भूत्वा यूयमाप्यायध्वं वयं चाप्यायामहे ।**

हे परमेश्वर ! **भवान् कृपयाऽस्माकमिन्द्राय=परमैश्वर्यप्राप्तये** परमैश्वर्य्ययोगाय **श्रेष्ठतमाय कर्मणे चेमाः प्रजावतीः** भूयस्यः प्रजा वर्तन्ते यासु ताः, **अनमीवाः** अमीवः=व्याधिर्न विद्यते यासु ताः, **अयक्ष्माः** न विद्यते यक्ष्मा रोगराजो यासु ताः [**अघ्न्याः**]=**गाः** वर्धयितुमर्हा हन्तुमनर्हा गावः, इन्द्रियाणि, पृथिव्यादयः, पशवश्च [**एतानि**] **सदैव प्रार्पयतु ।**

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! यह **(सविता)** सब जगत् का उत्पादक, सकल ऐश्वर्य-सम्पन्न जगदीश्वर **(देवः)** सब सुखों का दाता, सब विद्याओं का प्रकाशक भगवान् **(वायवः स्थ)** जो हमारे **(वः)** और तुम्हारे प्राण, अन्तःकरण और इन्द्रियां हैं एवं सब क्रियाओं की प्राप्ति के हेतु स्पर्श गुण वाले भौतिक प्राणादि हैं, उनको **(श्रेष्ठतमाय)** अत्यन्त श्रेष्ठ यज्ञ **(कर्मणे)** जो सबके उपकार के लिए कर्त्तव्य कर्म है उससे **(प्रार्पयतु)** अच्छे प्रकार संयुक्त करे ।

हम लोग **(इषे)** अन्न, उत्तम इच्छा तथा विज्ञान की प्राप्ति के लिए सविता देव रूप **(त्वा)** तुझ विज्ञानस्वरूप परमेश्वर को तथा **(ऊर्जे)** पराक्रम एवं उत्तम रस की प्राप्ति के लिए **(भागम्)** सेवनीय, धन और ज्ञान के पात्र **(त्वा)** अनन्त पराक्रम तथा आनन्द रस से भरपूर सदा आपकी शरण चाहते हैं । हे मनुष्यो ! ऐसे होकर तुम **(आप्यायध्वम्)** उन्नति को प्राप्त करो और हम उन्नति प्राप्त कर रहे हैं ।

हे परमेश्वर ! आप कृपा करके हमें **(इन्द्राय)** परमैश्वर्य की प्राप्ति के लिए और **(श्रेष्ठतमाय)** अत्यन्त श्रेष्ठ यज्ञ **(कर्मणे)** कर्म करने के लिए इन **(प्रजावतीः)** बहुत प्रजा वाली **(अनमीवाः)** व्याधि-रहित **(अयक्ष्माः)**, यक्ष्मा रोगराज से रहित [**अघ्न्याः**], बढ़ाने योग्य, अहिंसनीय गौ, इन्द्रियां, पृथिवी आदि और जो पशु हैं, उनसे सदैव **(प्रार्पयतु)** संयुक्त कीजिये ।

हे परमात्मन् ! भवत्कृपयास्माकं मध्ये **कश्चिदघशंसः=पापी** योऽघं=पापं शंसति सः, **स्तेनः=चोरश्च मेशत=कदाचिन्मोत्पद्यतां** मेष्टां= मा समर्थो भवतु । **तथा**—

हे परमात्मन् ! आपकी कृपा से हमारे मध्य में कोई (**अघशंसः**) पाप का प्रशंसक, पापी और (**स्तेनः**) चोर (**मा+ईशत**) कभी उत्पन्न न हो अथवा समर्थ न हो । और—

त्वमस्य यजमानस्य=जीवस्य यः परमेश्वरं सर्वोपकारं धर्मं च यजति तस्य विदुषः, **पशून्** गोऽश्वहस्त्यादीन्, श्रियः, प्रजा वा **पाहि=सततं रक्ष, यतो वः=ता गा, इमान् पशूँश्चाघशंसः स्तेनो मेशत=हन्तुं समर्थो न भवेत्, यतः**—

आप इस (**यजमानस्य**) जीव के एवं परमेश्वर और सर्वोपकारक धर्म के उपासक विद्वान् के (**पशून्**) गौ, घोड़े, हाथी आदि लक्ष्मी वा प्रजा की (**पाहि**) सदा रक्षा कीजिये, क्योंकि (**वः**) उन गौओं और इन पशुओं को (**अघशंसः**) पापी (**स्तेनः**) चोर (**मा+ईशत**) हनन करने में समर्थ न हो । जिससे—

अस्मिन् वर्तमाने प्रत्यक्षे **गोपतौ=पृथिव्यादि-रक्षणमिच्छुकस्य धार्मिक मनुष्यस्य समीपे** यो गवां पतिः स्वामी तस्मिन्, **बह्वीः=बह्वयो गावो ध्रुवाः** निश्चलसुखहेतवः **स्यात=भवेयुः** ॥ १ । १ ॥

(**अस्मिन्**) इस (**गोपतौ**) पृथिवी आदि की रक्षा के इच्छुक धार्मिक मनुष्य एवं गोस्वामी के पास (**बह्वीः**) बहुत सी गौवें (**ध्रुवाः**) स्थिर सुखकारक (**स्यात**) होवें ॥ १ । १ ॥

[**ऋग्वेदाध्ययनानन्तरं यजुर्वेदाध्ययन प्रयोजनमाह—अयं सविता देवः=भगवान् वायवःस्थ, श्रेष्ठतमाय कर्मणे प्रार्पयतु**]

भावार्थः—मनुष्यैः सदैव धर्म्यं पुरुषार्थमाश्रित्यर्ग्वेदाध्ययनेन गुणगुणिनौ ज्ञात्वा सर्वपदार्थानां संप्रयोगेण पुरुषार्थसिद्धये श्रेष्ठतमाभिः क्रियाभिः संयुक्तैर्भवितव्यम् ।

भावार्थ—मनुष्य सदा धर्मयुक्त पुरुषार्थ के आश्रय से, ऋग्वेद के अध्ययन से, गुण और गुणी को जानकर सब पदार्थों के प्रयोग से पुरुषार्थ सिद्धि के लिए अत्युत्तम क्रियाओं से संयुक्त रहें ।

[हे परमेश्वर ! भवान् कृपयाऽस्माकमिन्द्राय=**परमैश्वर्यप्राप्तये श्रेष्ठतमाय कर्मणे चेमाः प्रजावतीरनमीवा [अघ्न्याः] गाः सदैव प्रार्पयतु**]

यत ईश्वरानुग्रहेण सर्वेषां सुखैश्वर्यस्य वृद्धिः स्यात्, तथा-सम्यक् क्रियया प्रजाया रक्षणशिक्षणे सदैव कर्त्तव्ये ।

जिससे—ईश्वर की कृपा से सबके सुख और ऐश्वर्य की वृद्धि होवे, और शुभ कर्मों से प्रजा की रक्षा और शिक्षा सदा करें ।

[**अस्माकं मध्ये कश्चिदघशंसः=पापी स्तेनः=चोरश्च मेशत**]

यतो नैव कश्चिद् रोगाख्यो विघ्नश्चोरश्च प्रबलः कदाचिद् भवेत् ।

जिससे—कोई रोग-रूप विघ्न और चोर प्रबल न हो सके ।

[**अस्मिन् गोपतौ···बह्वीः=बह्वयो गावो ध्रुवाः स्यात=भवेयुः**]

प्रजाश्च सर्वाणि सुखानि प्राप्नुयुः ।

और—प्रजा सब सुखों को प्राप्त हो ।

[**त्वमस्य यजमानस्य=जीवस्य पशून् पाहि**]

येनेयं विचित्रा सृष्टी रचिता तस्मै जगदीश्वराय सदैव धन्यवादा वाच्याः । एवं कुर्वतो भवतः परमदयालुरीश्वरः कृपया सदैव रक्षयिष्यतीति मन्तव्यम् ॥ १ । १ ॥

जिसने यह विचित्र सृष्टि रची है, उस जगदीश्वर का आप सदैव धन्यवाद करें । ऐसा करने से आप की परमदयालु ईश्वर कृपा करके सदा रक्षा करेगा, ऐसा समझो ॥ १ । १ ॥

भावार्थ पदार्थः—कर्मणे=क्रियायै । इन्द्राय=सुखैश्वर्यस्य वृद्धये । ईशत=प्रबलो भवेत् ।

भाष्यसार—**१. ईश्वर का स्वरूप**—इस मन्त्र में सब जगत् का उत्पादक, सकल ऐश्वर्य

वाला होने से ईश्वर को 'सविता' तथा सब सुखों का दाता और सब विद्याओं का प्रकाशक होने से 'देव' कहा गया है ॥

२. **ईश्वर-प्रार्थना**—हे सविता देव ! आप हमारे प्राण, अन्तःकरण और इन्द्रियों को सब से श्रेष्ठ यज्ञकर्म में लगाइये। हम लोग अन्न और विज्ञान की प्राप्ति के लिए, बल-पराक्रम की सिद्धि के लिए आपको छोड़कर किसका आश्रय लेवें, क्योंकि आप ही सब प्रकार के ऐश्वर्य के देने वाले हैं। हे परमेश्वर ! आपकी कृपा से हमारे गौ आदि पशु, इन्द्रियाँ तथा पृथिवी आदि के सभी पदार्थ रोग-रहित हों। आपके अनुग्रह से हमारे मध्य में कोई पापी, चोर कभी उत्पन्न न हो, वा समर्थ न हो सके। आप परमेश्वर के पूजक, सर्वोपकारी धर्मात्मा विद्वान् के हाथी-घोड़े आदि पशुओं तथा लक्ष्मी और प्रजा की सदा रक्षा कीजिये। आपकी कृपा से पृथिवी आदि के रक्षक धार्मिक मनुष्य के पास स्थिर सुखकारक गौ आदि पदार्थ सदा रहें ॥

३. **उत्तम कर्म**—सर्वोपकारक, अत्यन्त प्रशंसनीय यज्ञ ॥

अन्यत्र व्याख्यात—महर्षि ने 'इषे त्वोर्जे०' मन्त्र का संस्कार-विधि के स्वस्ति-वाचन में उल्लेख किया है (संस्कार०, पृ० ९, द्वि० सं०)॥ महर्षि ने 'गोकरुणानिधि' में इस मन्त्र के एक अंश की व्याख्या इस प्रकार की है :—

"यजुर्वेद के प्रथम ही मन्त्र में परमात्मा की आज्ञा है कि—'अघ्न्या यजमानस्य पशून् पाहि' हे पुरुष ! तू इन पशुओं को कभी मत मार और यजमान अर्थात् सब के सुख देने वाले जनों के सम्बन्धी पशुओं की रक्षा कर, जिनसे तेरी भी पूरी रक्षा होवे और इसीलिए ब्रह्मा से ले के आज-पर्यन्त आर्य लोग पशुओं की हिंसा में पाप और अधर्म समझते थे और अब भी समझते हैं और इनकी रक्षा में अन्न भी महंगा नहीं होता क्योंकि दूध आदि के अधिक होने से दरिद्री को भी खान-पान में मिलने पर न्यून ही अन्न खाया जाता है और अन्न के कम खाने से मल भी कम होता है, मल के न्यून होने से दुर्गन्ध भी न्यून होता है, दुर्गन्ध के स्वल्प होने से वायु और वृष्टिजल की शुद्धि भी विशेष होती है। उससे रोगों की न्यूनता होने से सबको सुख बढ़ता है। इससे यह ठीक है कि—गो आदि पशुओं के नाश होने से राजा और प्रजा का भी नाश हो जाता है। क्योंकि जब पशु न्यून होते हैं तब दूध आदि पदार्थ और खेती आदि कार्यों की भी घटती होती है (दया० ल० ग्र० संग्रह, पृ० ४०५) ॥१॥

परमेष्ठी प्रजापतिः। **यज्ञः=स्पष्टम्**। स्वराडार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

स यज्ञः कीदृशो भवतीत्युपदिश्यते ॥

वह यज्ञ कैसा है, इस विषय का उपदेश किया है ॥

वसोः पवित्रमसि द्यौरसि पृथिव्यसि मातरिश्वनो घर्मोऽसि विश्वधाऽअसि।
परमेण धाम्ना दृꣳहस्व मा ह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत ॥२॥

पदार्थः—(**वसोः**) वसुः। अत्रार्थाद्विभक्तेर्विपरिणाम इति प्रथमा विभक्तिर्विपरिणम्यते। यज्ञो वै वसुः॥ श० १।५।४।६॥ (**पवित्रं**) पुनाति येन कर्मणा तत् (**असि**) भवति। अत्र सर्वत्र पुरुषव्यत्ययः। (**द्यौः**) विज्ञानप्रकाशहेतुः (**असि**) भवति (**पृथिवी**) विस्तृतः (**असि**) भवति (**मातरिश्वनः**) मातरि अन्तरिक्षे श्वसिति आश्वनिति वा तस्य वायोः। श्वन्नुक्षन्०॥ उ० १।१५७॥ अनेनायं शब्दो निपातितः। मातरिश्वा वायुर्मातर्य्यन्तरिक्षे श्वसिति मातर्य्याश्वनितीति वा॥ निरुक्त ७।२६॥ (**घर्मः**) अग्नितापयुक्तः शोधकः। घर्म इति

यज्ञनामसु पठितम् ॥ निघं० ३ । १७ ॥ (**असि**) भवति (**विश्वधाः**) विश्वं दधातीति (**असि**) भवति (**परमेण**) प्रकृष्टसुखयुक्तेन (**धाम्ना**) सुखानि यत्र दधति तेन । बाहुलकाड्डुधाञ्धातोर्मनिन् प्रत्ययः (**दृँहस्व**) वर्धते । अत्र पुरुषव्यत्ययो लडर्थे लोट् च (**मा**) निषेधार्थे (**ह्वाः**) ह्वरतु । अत्र लोडर्थे लुङ् (**मा**) निषेधार्थे (**ते**) तव (**यज्ञपतिः**) यज्ञस्य स्वामी यज्ञकर्त्ता यजमानः । धात्वर्थाद्यज्ञार्थस्त्रिधा भवति । विद्याज्ञानधर्मानुष्ठानवृद्धानां देवानां विदुषामैहिकपारमार्थिकसुखसम्पादनाय सत्करणं सम्यक्पदार्थगुणसंमेलविरोधज्ञानसंगत्या शिल्पविद्याप्रत्यक्षीकरणं नित्यं विद्वत्समागमानुष्ठानं शुभविद्यासुखधर्मादिगुणानां नित्यं दानकरणमिति (**ह्वार्षीत्**) ह्वरतु ह्वर वा । अत्रापि लोडर्थे लुङ् ॥ अयं मन्त्रः श० १ । ५ । ४ । ६—११ व्याख्यातः ॥ २ ॥

प्रमाणार्थ—(**वसोः**) वसुः । यहां 'अर्थ के कारण विभक्ति का विपरिणाम होता है' इस नियम के अनुसार 'वसोः' पद प्रथमा विभक्ति में विपरिणत किया जाता है । शत० (१ । ५ । ४ । ६) में वसु का अर्थ यज्ञ है । (**असि**) भवति । इस मन्त्र में सब जगह पुरुष-व्यत्यय है । (**मातरिश्वनः**) श्वन्नुक्षन् (उ० १ । १५७) में 'मातरिश्वा' शब्द निपातित है । निरुक्त (७ । २६) में मातरिश्वा का अर्थ वायु है । मातरि=आकाश में, श्वसिति=गमन करता है एवं आश्वनिति=शीघ्र गमन करता है, अतः वह 'मातरिश्वा' कहाता है । (**घर्मः**) 'घर्म' शब्द निघं० (३ । १७) में यज्ञ-नामों में पढ़ा है । (**धाम्ना**) यहां 'डुधाञ्' धातु से बहुल करके 'मनिन्' प्रत्यय है । (**दृँहस्व**) वर्धते । यहाँ पुरुष-व्यत्यय है और लट्-अर्थ में लोट्-लकार का प्रयोग है । (**ह्वाः**) ह्वरतु । यहां लोट् अर्थ में लुङ्-लकार है । (**ह्वार्षीत्**) ह्वरतु ह्वर वा । यहाँ भी लोट् अर्थ में लुङ् है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१ । ५ । ४ । ६—११) में की गई है । १ । २ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन्मनुष्य ! त्वं **यो वसोः=वसुरयं यज्ञः, पवित्र मसि=पवित्रकारकोऽस्ति** (पवित्रम्=पुनाति येन कर्मणा तत्, असि=भवति), **द्यौरसि=सूर्यरश्मिस्थो भवति** (द्यौः=विज्ञानप्रकाशहेतुः, असि=भवति), **पृथिव्यसि=वायुना सह विस्तृतो भवति** (पृथिवी=विस्तृतः, असि=भवति), **तथा—मातरिश्वनो घर्मोऽसि=वायोः शोधको भवति** (मातरिश्वनः=मातरि=अन्तरिक्षे श्वसिति आश्वनिति वा तस्य वायोः, घर्मः=अग्नितापयुक्तः शोधकः, असि=भवति) **विश्वधाअसि=संसारस्य सुखधारको भवति** (विश्वधाः=विश्वं दधातीति, असि=भवति) **परमेण** प्रकृष्टसुखयुक्तेन **धाम्ना** सुखानि यत्र दधति तेन **सह दृँहस्व=दृँहते=वर्धते ।**

भावार्थ—हे विद्वान् मनुष्य ! तू जो (**वसोः**) यज्ञ (**पवित्रम्**) पवित्र करने वाला (**असि**) है, अर्थात् पवित्र करने वाला कर्म है, (**द्यौः**) सूर्य की किरणों में स्थिर और विज्ञान प्रकाश का हेतु (**असि**) है, (**पृथिवी**) वायु के साथ देश-देशान्तरों में फैलने वाला (**असि**) है, तथा—(**मातरिश्वनः**) वायु का (**घर्मः**) शोधक (**असि**) है, अर्थात्—अन्तरिक्ष में गति करने से वायु का नाम मातरिश्वा है, उस वायु का (**घर्मः**) अग्निताप से शोधक है, (**विश्वधा**) संसार के सुख को धारण करने वाला (**असि**) है एवं विश्व का धारक है, (**परमेण**) उत्तम सुख से युक्त (**धाम्ना**) लोक के साथ (**दृँहस्व**) बढ़ता है ।

तमिमं यज्ञं मा ह्वाः=मा त्यज, (ह्वाः=ह्वरतु), **तथा—ते=तव यज्ञपतिः** यज्ञस्य स्वामी, यज्ञकर्ता=यजमानः । धात्वर्थाद्यज्ञार्थस्त्रिधा भवति—विद्याज्ञानधर्मानुष्ठानवृद्धानां देवानां विदुषामैहिकपारमार्थिकसुखसम्पादनाय सत्करणं, सम्यक्पदार्थगुणसंमेलविरोधज्ञानसंगत्या शिल्पविद्याप्रत्यक्षी-

उस यज्ञ का (**मा ह्वाः**) त्याग मत कर तथा (**ते**) तेरा (**यज्ञपतिः**) यज्ञ का स्वामी, यज्ञकर्ता=यजमान भी उसे (**मा ह्वार्षीत्**) न छोड़े । धात्वर्थ के कारण 'यज्ञ' शब्द का अर्थ तीन प्रकार का होता है :—

१—विद्या, ज्ञान और धर्माचरण से वृद्ध विद्वानों का इस लोक और परलोक के सुख की सिद्धि

करणं नित्यं विद्वत्समागमानुष्ठानं, शुभविद्यासुखधर्मादिगुणानां नित्यं दानकरणमिति, **तं मा ह्वार्षीत्=मा त्यजतु** (ह्वार्षीत्=ह्वरतु ह्वर वा) ॥ १ । २ ॥

के लिए सत्कार करना, २—अच्छी प्रकार पदार्थों के गुणों के मेल और विरोधज्ञान की संगति से शिल्प विद्या का प्रत्यक्ष करना एवं नित्य विद्वानों का संग करना; ३—शुभ विद्या, सुख धर्मादि गुणों का नित्य दान करना ॥ १ । २ ॥

[वसोः=वसुरयं यज्ञः पवित्रमसि······अस्ति, द्यौरसि···भवति, पृथिव्यसि, मातरिश्वनो घर्मोऽसि, विश्वधा असि]

भावार्थः—मनुष्याणां विद्याक्रियाभ्यां सम्यगनुष्ठितेन यज्ञेन पवित्रता, प्रकाशः, पृथिवी, राज्यं, वायुप्राणवद्राज्यनीतिः, प्रतापः, सर्वरक्षा—

भावार्थ—मनुष्यों को विद्या और क्रिया के द्वारा विधिपूर्वक किये यज्ञ से पवित्रता, प्रकाश, पृथिवी, राज्य, वायु अर्थात् प्राण के तुल्य राज्यनीति, प्रताप, सबकी रक्षा—

[परमेण धाम्ना सह दृंहस्व, मा ह्वाः]

अस्मिल्लोके परलोके च परमसुखवृद्धिः, परस्परमार्जवेन वर्त्तमानं, कुटिलतात्यागश्च जायते।

इस लोक और परलोक में परम सुख की वृद्धि, परस्पर सरलता से वर्ताव और कुटिलता-त्याग की प्राप्ति होती है।

[तात्पर्यमाह—]

अतएव सर्वैर्मनुष्यैः परोपकाराय, विद्यापुरुषार्थाभ्यां, प्रीत्या यज्ञो नित्यमनुष्ठातव्य इति ॥१ । २ ॥

इसलिए सब मनुष्यों को परोपकार के लिए विद्या और पुरुषार्थ से प्रीतिपूर्वक यज्ञ नित्य करना चाहिये ॥ १ । २ ॥

भा० पदार्थः—पवित्रम्=पवित्रता। द्यौः=प्रकाशः। पृथिवी=राज्यम्। धर्मः=प्रतापः। विश्वधाः=सर्वरक्षकः। धाम्ना=इहलोकेन, परलोकेन। मा ह्वाः=परस्परमार्जवेन वर्तमानं कुटिलतात्यागं च कुरु।

भाष्यसार—**१. यज्ञ**—सबको पवित्र करने वाला, सूर्य की किरणों में स्थित होने वाला, वायु के साथ विस्तार को प्राप्त होने वाला, वायु को शुद्ध करने वाला, विश्व के सब सुखों को धारण करने वाला यज्ञ सबसे श्रेष्ठ कर्म है।

२. ईश्वर-आज्ञा—हे विद्वान् मनुष्य ! तू इस सर्वश्रेष्ठ यज्ञ कर्म को कभी मत छोड़।

३. यज्ञपद की विशेष व्याख्या—महर्षि ने यहां यज्ञपति शब्द की व्याख्या में धातु-अर्थ के आधार पर यज्ञ शब्द की बड़ी सुन्दर व्याख्या की है। यज्ञ शब्द 'यज् देवपूजासंगतिकरणदानेषु' धातु से सिद्ध होता है। इस धातु के देवपूजा, संगतिकरण और दान यह तीन अर्थ हैं। अब क्रमशः इनकी महर्षि की व्याख्या देखिये—

(क) **देवपूजा**—विद्या, धर्म और धर्माचरण की दृष्टि से वृद्ध विद्वानों का इस लोक और परलोक के सुख की सिद्धि के लिए सत्कार करना।

(ख) **संगतिकरण**—अच्छी प्रकार पदार्थों के गुणों के मेल और विरोध-ज्ञान की संगति से शिल्पविद्या का प्रत्यक्ष करना एवं नित्य विद्वानों का संग करना।

(ग) दान—शुभ विद्या, सुख-धर्मादि गुणों का नित्य दान करना।

४. **यज्**—यजुर्वेद का 'यजुः' पद भी इसी 'यज्' धातु से बनता है। जैसे महर्षि द०। यजुर्वेदभाष्य के प्रारम्भ में लिखते हैं—"यजुर्भिर्यजन्तीत्युक्तप्रामाण्यात्—येन मनुष्या ईश्वरं धार्मिकान् विदुषश्च पूजयन्ति, सर्वचेष्टासांगत्यं शिल्पविद्यासंगतिकरणं, शुभविद्यागुणदानं यथायोग्यतया सर्वोपकारे शुभे व्यवहारे विद्वत्सु च द्रव्यादिव्ययं कुर्वन्ति तद्यजुः" जिससे मनुष्य—(**देवपूजा**) ईश्वर और धार्मिक विद्वानों की पूजा करते हैं, (**संगतिकरण**) सब क्रियाओं की संगति तथा शिल्पविद्या का संग करते हैं, (**दान**) विद्यादि गुणों का दान, यथायोग्य सबके उपकार तथा शुभ व्यवहार में और विद्वानों पर द्रव्य आदि का व्यय करते हैं उसे 'यजुः' कहते हैं।

यहाँ महर्षि की 'यजुः' शब्द की व्याख्या में भी यज् धातु का देव-पूजा, संगतिकरण और दान अर्थ स्पष्ट है। अतः यजुर्वेद का प्रतिपाद्य विषय भी यही है ॥२॥

परमेष्ठी प्रजापतिः। **सविता**=ईश्वरः॥ भुरिग्जगती। निषादः॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

वह यज्ञ कैसा है, यह फिर उपदेश किया है।

वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम्। देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्षः॥ ३॥

पदार्थः—(**वसोः**) वसुर्यज्ञः (**पवित्रम्**) शुद्धिकारकं कर्म (**असि**) अस्ति। अत्र सर्वत्र पुरुषव्यत्ययः (**शतधारम्**) शतं=बहुविधमसंख्यातं विश्वं धरतीति तम्। शतमिति बहुनामसु पठितम्॥ निघं० ३। १॥ (**वसोः**) वसुर्यज्ञः (**पवित्रम्**) शुद्धिनिमित्तम् (**असि**) अस्ति (**सहस्रधारम्**) बहुविधं ब्रह्माण्डं धरतीति तं यज्ञम्। सहस्रमिति बहुनामसु पठितम्॥ निघं०। ३। १॥ (**देवः**) स्वयंप्रकाशस्वरूपः परमेश्वरः (**त्वा**) तं यज्ञम् (**सविता**) सर्वेषां वसूनामग्निपृथिव्यादीनां त्रयस्त्रिंशतो देवानां प्रसविता। सविता वै देवानां प्रसविता॥ श० १। १। २। १७॥ (**पुनातु**) पवित्रीकरोतु (**वसोः**) पूर्वोक्तो यज्ञः (**पवित्रेण**) पवित्रनिमित्तेन वेदविज्ञानकर्मणा (**शतधारेण**) बहुविद्याधारकेण परमेश्वरेण वेदेन वा (**सुप्वा**) सुष्ठुतया पुनाति पवित्रहेतुर्वा तेन (**काम्**) कां कां वाचं (**अधुक्षः**) दोग्धुमिच्छसीति प्रश्नः। अत्र लडर्थे लुङ्॥ अयं मंत्रः श० १। ७। १। १४-१७ व्याख्यातः॥ ३॥

प्रमाणार्थ—(**शतम्**) 'शत' शब्द निघं० (३। १) में बहुनामों में पढ़ा गया है। (**सहस्रम्**) 'सहस्र' शब्द का निघं० (३। १) में बहुनामों में पाठ किया गया है। (**सविता**) शत० (१। १। २। १७) में 'सविता' का अर्थ 'देवों का उत्पन्न करने वाला' किया है। (**अधुक्षः**) यहाँ लट् अर्थ में लुङ् लकार है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१। ७। १। १४-१७) में की है॥ १। ३॥

सपदार्थान्वयः—**यो वसोः=वसुर्यज्ञः शतधारं पवित्रमसि=शतधा शुद्धिकारकोऽस्ति**(शतधारम्=बहुविधमसंख्यातं विश्वं धरतीति तं, पवित्रम्=शुद्धिकारकं कर्म), **सहस्रधारं पवित्रमसि=सुखदोऽस्ति** (सहस्रधारम्=बहुविधं ब्रह्माण्डं धरतीति तं यज्ञं, पवित्रम्=शुद्धिनिमित्तम्), **त्वा=तं,**

भाषार्थ—जो (**वसोः**) यज्ञ (**शतधारम्**) शतधा (**पवित्रम्**) शुद्धिकारक (**असि**) है अर्थात् बहुविध असंख्य विश्वों को धारण करने वाला, शुद्धिकारक कर्म है, (**सहस्रधारम्**) बहुविध ब्रह्माण्ड को धारण करने वाला, (**पवित्रम्**) सुखदायक एवं शुद्धि का निमित्त (**असि**) है, (**त्वा**) उस यज्ञ को

तं यज्ञं **सविता** सर्वेषां वसूनामग्निपृथिव्यादीनां त्रयस्त्रिंशतो देवानां प्रसविता **देवः** स्वयंप्रकाशस्वरूपः परमेश्वरः **पुनातु** पवित्रीकरोतु ।

(**सविता**) सब वसु अर्थात् अग्नि, पृथिवी आदि तैंतीस देवों का उत्पादक (**देवः**) स्वयं प्रकाशस्वरूप परमेश्वर (**पुनातु**) पवित्र करे ।

हे **जगदीश्वर ! भवान् तेनास्माभिरनुष्ठितेन पवित्रेण** पवित्रनिमित्तेन वेदविज्ञानकर्मणा **शतधारेण** बहुविद्याधारकेण परमेश्वरेण वेदेन वा **सुप्वा=यज्ञेन** सुष्ठुतया पुनाति पवित्रहेतुर्वा तेन **अस्मान् पुनातु** पवित्रीकरोतु ।

हे जगदीश्वर ! आप हम लोगों से सेवित (**पवित्रेण**) पवित्रताकारक वेद-विज्ञान-कर्म से (**शतधारेण**) बहुत विद्याओं के धारक परमेश्वर वा वेद से (**सुप्वा**) अच्छी प्रकार पवित्र करने वाले वा पवित्रता के हेतु यज्ञ से हमें (**पुनातु**) पवित्र कीजिये ।

हे विद्वन्, **जिज्ञासो वा ! त्वं कां** कां कां (वाचं) **वाचमधुक्षः**=**प्रपूरयसि, वा प्रपूरयितुमिच्छसि** दोग्धुमिच्छसीति प्रश्नः ॥ १ । ३ ॥

हे विद्वान् अथवा जिज्ञासु मनुष्य ! तू (**काम्**) कौन-कौन सी वाणी को (**अधुक्षः**) दुहना चाहता है ? ॥ १ । ३ ॥

[हे जगदीश्वर ! भवान् तेनास्माभिरनुष्ठितेन पवित्रेण शतधारेण सुप्वा=यज्ञेनास्मान् पुनातु]

भावार्थः—ये मनुष्याः पूर्वोक्तं यज्ञमनुष्ठाय पवित्रा भवन्ति तान् जगदीश्वरो बहुविधेन विज्ञानेन सह वर्त्तमानान् कृत्वैतेभ्यो बहुविधं सुखं ददाति । परन्तु—ये क्रियावन्तः परोपकारिणः सन्ति ते सुखमाप्नुवन्ति; नेतरेऽलसाः ।

भावार्थ—जो मनुष्य पूर्वोक्त यज्ञ का अनुष्ठान करके पवित्र होते हैं उनको परमेश्वर बहुत प्रकार के विज्ञान से युक्त करके उन्हें अनेक प्रकार का सुख प्रदान करता है । परन्तु—जो कर्मशील परोपकारी हैं वे सुख को प्राप्त करते हैं; दूसरे आलसी लोग नहीं ।

[कामधुक्षः]

अत्र कामधुक्ष इति प्रश्नोऽस्ति ॥ १ । ३ ॥

इस मन्त्र में 'कामधुक्षः' इन पदों से वाणी के विषय में प्रश्न है ॥ १ । ३ ॥

भाष्यसार—१. **यज्ञ**—असंख्य प्रकार के विश्व को धारण करने वाला यज्ञ शुद्धिकारक एवं सुखदायक कर्म है ।

२. **ईश्वर**—वसु अर्थात् अग्नि, पृथिवी आदि तैंतीस देवों को उत्पन्न करने वाला होने से यहाँ ईश्वर को 'सविता' तथा स्वयं प्रकाशस्वरूप होने से 'देव' कहा गया है ।

३. **तैंतीस देव**—महर्षि 'सत्यार्थप्रकाश' के सप्तम समुल्लास में लिखते हैं—तैंतीस देव अर्थात् पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्रमा, सूर्य और नक्षत्र सब सृष्टि के निवासस्थान होने से आठ वसु । प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय और जीवात्मा ये ग्यारह रुद्र इसलिए कहाते हैं कि जब शरीर को छोड़ते हैं तब रोदन कराने वाले होते हैं । संवत्सर के बारह महीने बारह आदित्य इसलिए हैं कि ये सबकी आयु को लेते जाते हैं । बिजली का नाम 'इन्द्र' इस हेतु से है कि परम ऐश्वर्य का हेतु है । यज्ञ को प्रजापति कहने का कारण यह है कि जिससे वायु, वृष्टि-जल, औषधि की शुद्धि, विद्वानों का सत्कार और नाना प्रकार की शिल्पविद्या से प्रजा का पालन होता है । ये तैंतीस पूर्वोक्त गुणों के योग से 'देव' कहाते हैं ॥ [वसु=८, रुद्र=११, आदित्य=१२, इन्द्र (विद्युत्)=१, प्रजापति (यज्ञ)=१, सर्व योग=३३] ॥

४. **ईश्वर-प्रार्थना**—हे जगदीश्वर ! आप पवित्रकारक वेद, विज्ञान तथा यज्ञ से हमें पवित्र कीजिये ।

५. प्रश्न—हे जिज्ञासु विद्वान् पुरुष ! तू किस वाणी को दुहना चाहता है अर्थात् किस वाणी को प्राप्त करके तृप्त होना चाहता है, ज्ञान से भरपूर होना चाहता है ? ॥ ३ ॥

परमेष्ठी प्रजापतिः । **विष्णुः**=व्यापकेश्वरः । अनुष्टुप् । गांधारः ॥

अथ त्रिविधस्य प्रश्नस्य त्रीण्युत्तराण्युपदिश्यन्ते ॥

अब तीन प्रकार के प्रश्नों के तीन उत्तरों का उपदेश किया जाता है ॥

सा वि॒श्वायुः सा वि॒श्वक॑र्मा सा वि॒श्वधा॑याः ।
इन्द्र॑स्य त्वा भा॒गꣳ सोमे॒नात॑नच्मि॒ विष्णो॑ ह॒व्यꣳ र॑क्ष ॥४॥

पदार्थः—(**सा**) वाक् । वाग् वै यज्ञः ॥ श० १ । १ । ४ । ११ ॥ (**विश्वायुः**) पूर्णमायुर्यस्यां सा ग्रहीतव्या (**सा**) शिल्पविद्यासंपादिका (**विश्वकर्मा**) विश्वं संपूर्णं क्रियाकाण्डं सिध्यति यया सा (**सा**) संपूर्णविद्याप्रकाशिका (**विश्वधायाः**) या विश्वं सर्वं जगद्विद्यागुणैः सह दधाति सा । विश्वोपपदे डुधाञ् धातोरसुन्प्रत्ययः बाहुलकाण्णिच्च (**इन्द्रस्य**) परमेश्वरस्य यज्ञस्य वा (**त्वा**) तम् । अत्र पुरुषव्यत्ययः (**भागम्**) भजनीयं शुभगुणभाजनं यज्ञम् (**सोमेन**) शिल्पविद्यया सम्पादितेन रसेनानन्देन वा (**आ**) समन्तात् (**तनच्मि**) संकोचयामि=दृढीकरोमि (**विष्णो**) वेवेष्टि व्याप्नोति चराचरं विश्वं तत्संबुद्धौ परमेश्वर (**हव्यम्**) पूर्वोक्तयज्ञसंबन्धि दातुं ग्रहीतुं योग्यं द्रव्यं विज्ञानं वा (**रक्ष**) पालय ॥ अयं मंत्रः श० १ । ७ । १ । १७-२१ व्याख्यातः ॥ ४ ॥

प्रमाणार्थ—(**वाक्**) शत० (१ । १ । ४ । ११) में 'वाक्' का अर्थ यज्ञ किया है । (**विश्वधायाः**) विश्व शब्द के उपपद रहते 'डुधाञ्' धातु से असुन् प्रत्यय और वह बहुल करके णित् है । (**त्वा**) तम् । यहाँ पुरुष-व्यत्यय है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१ । ७ । १ । १७-२१) में की गई है ॥ १ । ४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विष्णो !=**व्यापकेश्वर** ! वेवेष्टि=व्याप्नोति चराचरं विश्वं तत्सम्बुद्धौ, परमेश्वर ! **भवता या वाग् धार्यते, सा** वाग् **विश्वायुः** पूर्णमायुर्यस्यां सा ग्रहीतव्या, **सा** शिल्पविद्यासम्पादिका **विश्वकर्मा** विश्वं=सम्पूर्णं क्रियाकाण्डं सिध्यति यया सा, **सा** सम्पूर्ण-विद्याप्रकाशिका **विश्वधायाः** या विश्वं=सर्वं जगद्विद्यागुणैः सह दधाति सा, **अस्ति** ।

तया त्रिविधया गृहीतयैवाहं यमिन्द्रस्य परमेश्वरस्य यज्ञस्य वा **भागं=यज्ञं** भजनीयं शुभगुणभाजनं यज्ञं **सोमेन** शिल्पविद्यया सम्पादितेन रसेनाऽऽनन्देन वा **आतनच्मि** समन्तात् संकोचयामि=दृढीकरोमि ।

[**त्वा**]=**तं हव्यं=यज्ञं** पूर्वोक्तयज्ञसम्बन्धि दातुं ग्रहीतुं योग्यं द्रव्यं विज्ञानं वा **त्वं सततं रक्ष** पालय ॥ १ । ४ ॥

भावार्थ—हे (**विष्णो**) ! चराचर जगत् में व्यापक ईश्वर ! आप जिस वाणी को धारण करते हैं (**सा**) वह वाणी (**विश्वायुः**) पूर्ण आयु को देने वाली होने से ग्राह्य है (**सा**) वह शिल्पविद्यायुक्त होने से (**विश्वकर्मा**) सब कर्मकाण्ड को सिद्ध करने वाली है और (**सा**) वह सब विद्याओं की प्रकाशक होने से (**विश्वधायाः**) सब जगत् का विद्यादि गुणों से धारण-पोषण करने वाली है ।

उस तीन प्रकार की वाणी को ग्रहण करने से ही मैं जिस (**इन्द्रस्य**) परमेश्वर वा यज्ञ के (**भागं**) सेवनीय एवं शुभ गुणों के स्थान यज्ञ को (**सोमेन**) शिल्पविद्या से सिद्ध किये रस वा आनन्द से (**आतनच्मि**) सब ओर से अपने हृदय में दृढ़ करता हूँ ।

[**त्वा**] उस (**हव्यं**) यज्ञ एवं पूर्वोक्त यज्ञ-संबंधी देने वा ग्रहण करने योग्य द्रव्य अथवा विज्ञान की आप (**रक्ष**) सदा रक्षा कीजिए ॥ १ । ४ ॥

[सा विश्वायुः]

भावार्थः—त्रिविधा वाग् भवति—या ब्रह्मचर्याश्रमे पूर्णविद्यापठनाय पूर्णायुःकरणाय च सेव्यते सा प्रथमा,

भावार्थ—तीन प्रकार की वाणी होती है— प्रथम वह जो ब्रह्मचर्याश्रम में पूर्ण विद्या पढ़ने एवं पूर्ण आयु प्राप्त करने के लिए सेवन की जाती है,

[सा विश्वकर्मा]

या गृहाश्रमेऽनेक क्रिययोद्योगसुखप्रापकफला विस्तीर्य्यते सा द्वितीया,

दूसरी वह जो गृहाश्रम में अनेक क्रियाओं से उद्योग के सुखदायक फलों वाली विस्तृत की जाती है,

[सा विश्वधायाः]

या च सर्वमनुष्यैः सर्वमनुष्येभ्यः शरीरात्मसुखवर्धनायेश्वरादि पदार्थ विज्ञानप्रकाशिका वानप्रस्थसंन्यासाश्रमे खलूपदिश्यते सा तृतीया, न चैनया विना कस्यापि सर्वं सुखं भवितुमर्हति।

और—तीसरी वह जो सब मनुष्यों के द्वारा सब मनुष्यों के लिए शरीर और आत्मा की सुखवृद्धि के लिए ईश्वरादि पदार्थों के विज्ञान को प्रकाशित करने वाली वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम में उपदेश की जाती है, और इसके बिना किसी को भी सब सुख प्राप्त नहीं हो सकते।

[तया त्रिविधया गृहीतयैवाहं यमिन्द्रस्य भागं=यज्ञं—आतनच्मि]

अनयैव मनुष्यैः पूर्वोक्तो यज्ञोऽनुष्ठातव्यः, व्यापकेश्वरः स्तोतव्यः प्रार्थनीय उपासनीयश्च भवति।

इस उक्त तीन प्रकार की वाणी से ही मनुष्य पूर्वोक्त यज्ञ का अनुष्ठान करें और इसी से व्यापक ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करना योग्य है।

[त्वा=तं हव्यं=यज्ञं त्वं सततं रक्ष]

अनुष्ठितोऽयं यज्ञो जगति रक्षणहेतुः, प्रेम्णा सत्यभावेन प्राथितश्चेश्वरस्तान् सर्वदा रक्षति।

इस प्रकार सेवित यह यज्ञ जगत् में रक्षा का हेतु होता है, प्रेम और सच्ची भावना से प्रार्थना करने पर ईश्वर प्रार्थी की सदा रक्षा करता है।

[के सुखं प्राप्नुवन्तीत्याह—]

परन्तु—ये क्रियाकुशला धार्मिकाः परोपकारिणो जनाः सन्ति त ईश्वरं धर्मं च विज्ञाय सम्यक् क्रियया साधनेनैहिकं पारत्रिकं च सुखं प्राप्नुवन्ति, नेतरे॥ १। ४॥

परन्तु—जो कर्मकुशल, धार्मिक, परोपकारी लोग हैं वे ईश्वर और धर्म को जानकर ठीक कर्म और साधन से इस लोक और परलोक के सुखों को प्राप्त करते हैं, दूसरे नहीं॥ १। ४॥

भाष्यसार—१. **ईश्वर**—चर और अचर जगत् में व्यापक होने से यहाँ ईश्वर को 'विष्णु' कहा गया है। और परमैश्वर्य वाला होने से 'इन्द्र' भी बतलाया है। वह विश्वायु, विश्वकर्मा, विश्वधाया नामक तीन प्रकार की वाणियों को धारण करने वाला है।

२. **तीन प्रकार की वाणी**—इस अध्याय के तृतीय मन्त्र में जो जिज्ञासु विद्वान् से प्रश्न किया गया था कि तू किस वाणी को प्राप्त करना चाहता है, उसका इस मन्त्र में उत्तर दिया गया है।

विश्वायु, विश्वकर्मा और विश्वधाया नामक तीन प्रकार की वाणी जिज्ञासु विद्वान् के लिए कामधेनु है। इनकी विस्तृत व्याख्या महर्षि ने इस मन्त्र के भावार्थ में की है।

३. **यज्ञ**—परम ऐश्वर्य को देने वाला होने से यहाँ यज्ञ को 'इन्द्र' कहा गया है। सेवन करने योग्य और सब गुणों का भाजन (**पात्र**) होने से इसे 'भाग' तथा दान-प्रादान क्रिया वाला होने से इसे 'हव्य' भी कहा गया है।

४. **सोम**—शिल्पविद्या से सिद्ध रस वा आनन्द।

५. **ईश्वर-प्रार्थना**—हे विष्णु परमेश्वर ! आप विश्वायु, विश्वकर्मा और विश्वधाया नामक तीन प्रकार की वाणी को धारण करने वाले हो। मैं तीन प्रकार की वाणी को ग्रहण करके सोम से यज्ञ का अनुष्ठान करता हूँ। कृपा करके आप मेरे यज्ञ की रक्षा कीजिये।

●

परमेष्ठी प्रजापतिः। **अग्निः=ईश्वरः** ॥ आर्चीत्रिष्टुप्। धैवतः ॥

किंच तद्वाचो व्रतमित्युपदिश्यते ॥

उस वाणी का क्या व्रत है, यह उपदेश किया है ॥

अग्ने॑ व्रतपते व्रतं च॑रिष्यामि॒ तच्छ॑केयं॒ तन्मे॑ राध्यताम्। इ॒दम॒हमनृ॑तात् स॒त्यमुपै॑मि ॥ ५ ॥

पदार्थः—(**अग्ने**) हे सत्योपदेशकेश्वर ! (**व्रतपते**) व्रतानां=सत्यभाषणादीनां पतिः=पालकस्तत्संबुद्धौ (**व्रतम्**) सत्यभाषणं सत्यकरणं सत्यमानं च (**चरिष्यामि**) अनुष्ठास्यामि (**तत्**) व्रतमनुष्ठातुम् (**शकेयम्**) यथा समर्थो भवेयम् (**तत्**) तस्यानुष्ठानं पूर्त्तिश्च (**मे**) मम (**राध्यताम्**) संसेध्यताम् (**इदम्**) प्रत्यक्षमाचरितुं सत्यं व्रतम् (**अहम्**) धर्मादिपदार्थचतुष्टयं चिकीर्षुर्मनुष्यः (**अनृतात्**) न विद्यते ऋतं=यथार्थमाचरणं यस्मिन् तस्मान्मिथ्याभाषणान् मिथ्याकरणान्मिथ्यामानात्पृथग्भूत्वा (**सत्यम्**) यद्वेदविद्यया प्रत्यक्षादिभिः प्रमाणैः सृष्टिक्रमेण विदुषां संगेन सुविचारेणात्मशुद्धया वा निर्भ्रमं सर्वहितं तत्त्वनिष्ठं सत्प्रभवं सम्यक् परीक्ष्य निश्चीयते तत्। **सत्यं कस्मात् सत्सु तायते सत्प्रभवं भवतीति वा ॥ निरु० ३। १३ ॥** (**उपि**) क्रियार्थे (**एम**) ज्ञातुं प्राप्तुमनुष्ठातुं प्राप्नोमि ॥ **अयं मन्त्रः श० १। १। १। २-४ व्याख्यातः ॥ ५ ॥**

प्रमाणार्थ—(**सत्यम्**) निरुक्त (३। १३) में लिखा है कि सत्य का क्या अर्थ है ? सज्जनों में विस्तीर्ण होता है अथवा सज्जनों से ही जिसकी उत्पत्ति है, वह सत्य है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१। १। १। २-४) में की है। १। ५ ॥

सपदार्थान्वयः— हे व्रतपते ! व्रतानां=सत्यभाषणादीनां पतिः=पालकस्तत्सम्बुद्धौ **अग्ने** !=**सत्यधर्मोपदेशकेश्वर** ! **अहं** धर्माऽऽदि-पदार्थचतुष्टयं चिकीर्षुर्मनुष्यो **यदिदं** प्रत्यक्षमाचरितुं सत्यं व्रतम् **अनृतात्** न विद्यते ऋतं=यथार्थमाचरणं यस्मिन् तस्मान्मिथ्याभाषणान्मिथ्याकरणान्मिथ्या-मानात् (पृथग्भूत्वा) **पृथग्वर्तमानं सत्यं** यद् वेदविद्यया, प्रत्यक्षादिभिः प्रमाणैः, सृष्टिक्रमेण, विदुषां सङ्गेन सुविचारेणाऽऽत्मशुद्धया वा निर्भ्रमं

भाषार्थ—हे (**व्रतपते** !) सत्यभाषणादि व्रतों के पालक ! (**अग्ने** !) सत्य धर्म के उपदेशक ईश्वर ! (**अहम्**) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त करने की इच्छा वाला मैं जो (**इदम्**) इस सत्यव्रत को (**अनृतात्**) मिथ्याभाषण, मिथ्या आचरण, मिथ्या बात को मानने से अलग होकर (**सत्यम्**) जो वेद-विद्या, प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों, सृष्टिक्रम, विद्वानों का संग, श्रेष्ठ विचार और आत्म-शुद्धि के द्वारा जो भ्रान्ति से रहित, सबका हितकारक, तत्त्वनिष्ठ,

सर्वहितं तत्त्वनिष्ठं सत्प्रभवं सम्यक् परीक्ष्य निश्चीयते तद् **व्रतं** सत्यभाषणं सत्यकरणं सत्यमानं च **आचरिष्यामि** अनुष्ठास्यामि । **तत्** तस्यानुष्ठानं पूर्त्तिश्च **मे=मम भवता स्वकृपया राध्यताम्=संसेध्यताम्, यद् उपैमि=प्राप्नोमि** ज्ञातुं प्राप्तुमनुष्ठातुं प्राप्नोमि **यच्चाऽनुष्ठातुं शकेयं** यथा समर्थो भवेयं, **तदपि सर्वं राध्यताम्=संसेध्यताम्** ॥ १ । ५ ॥

सत्प्रभव है और जो अच्छी प्रकार परीक्षा करके निश्चय किया जाता है, जो (**व्रतम्**) सत्यभाषण, सत्याचरण, सत्य मानना रूप व्रत है, उसका (**चरिष्यामि**) पालन करूँगा, (**तत् मे**) मेरे उस व्रत का अनुष्ठान और पूरा होना आपकी कृपा से (**राध्यताम्**) सिद्ध हो । जिसे (**उपैमि**) जानने, प्राप्त करने और आचरण में लाने के लिए (**शकेयम्**) समर्थ होऊं, (**तत्**) वह व्रत भी सब आपकी कृपा से (**राध्यताम्**) सिद्ध होवे ॥ १ । ५ ॥

[हे—अग्ने != सत्यधर्मोपदेशकेश्वर ! अहं यदिदमनृतात् पृथग्वर्त्तमानं सत्यं व्रतमाचरिष्यामि]

भावार्थः—ईश्वरेण सर्वमनुष्यैरनुष्ठेयोऽयं धर्म उपदिश्यते—यो न्यायः, पक्षपातरहितः सुपरीक्षितः, सत्यलक्षणान्वितः, सर्वहिताय वर्त्तमान, ऐहिकपारमार्थिकसुखहेतुरस्ति स एव धर्मः सर्वमनुष्यैः सदाचरणीयः । यश्चैतस्माद् विरुद्धो ह्यधर्मः स नैव केनापि कदाचिदनुष्ठेयः । एवं हि सर्वैः प्रतिज्ञा कार्या—

भावार्थ—ईश्वर सब मनुष्यों के पालन करने योग्य धर्म का उपदेश करता है—जो न्याय, पक्षपातरहित, सुपरीक्षित, सत्य लक्षणों से युक्त, सर्वहितकारी, इस लोक और परलोक के सुख का हेतु है वही धर्म सब मनुष्यों के सदा आचरण करने योग्य है और जो इससे विरुद्ध अधर्म है उसका आचरण कभी किसी को नहीं करना चाहिये । इस प्रकार सब प्रतिज्ञा करें—

[तन्मे=मम भवता स्वकृपया राध्यताम्=संसेध्यताम्]

हे परमेश्वर ! वयं वेदेषु भवदुपदिष्टमिमं सत्यधर्ममाचरितुमिच्छामः । येयमस्माकमिच्छा सा भवत्कृपया सम्यक् सिध्येत् ।

हे परमेश्वर ! हम वेदों में आप से उपदिष्ट इस सत्यधर्म का आचरण करना चाहते हैं । यह हमारी इच्छा आपकी कृपा से अच्छी प्रकार सिद्ध होवे ।

[यदुपैमि=प्राप्नोमि यच्चानुष्ठातुं शकेयं तदपि सर्वं राध्यताम्]

यतो वयमर्थकाममोक्षफलानि प्राप्तुं शक्नुयाम, यथा चाधर्मं सर्वथा त्यक्त्वाऽनर्थकुकामबन्ध दुःखफलानि पापानि त्यक्तुं त्याजयितुं च समर्था भवेम ।

जिससे—हम अर्थ, काम, मोक्ष-रूप फलों को प्राप्त कर सकें और जिससे अधर्म को सर्वथा छोड़ कर अनर्थ, कुकाम, बन्ध रूप दुःख फल वाले पापों को छोड़ने और छुड़ाने में समर्थ होवें ।

[व्रतपते !]

यथा भवान् सत्यव्रतपालकत्वाद् व्रतपतिर्वर्तते तथैव वयमपि भवत्कृपया स्वपुरुषार्थेन यथाशक्ति सत्यव्रत पालका भवेम ।

जैसे आप सत्यव्रतों के पालक होने से व्रतपति हैं वैसे ही हम भी आपकी कृपा से, अपने पुरुषार्थ से यथाशक्ति सत्यव्रत के पालक बनें ।

एवं सदैव धर्मं चिकीर्षवः सत्क्रियावन्तो भूत्वा सर्वसुखोपेताः सर्वप्राणिनां सुखकारकाश्च भवेमेति सर्वैः सदैवेष्टितव्यम् ॥

इस प्रकार सदा धर्म करने के इच्छुक, शुभ कर्म करने वाले होकर सब सुखों से युक्त और सब प्राणियों को सुख देने वाले बनें । ऐसी इच्छा सब सदा किया करें ।

[देवासुरभेदमाह—]

शतपथब्राह्मणेऽस्य मन्त्रस्य व्याख्यायामुक्तं—मनुष्याणां द्विविधमेवाचरणं सत्यमनृतं च, तत्र ये वाङ्मनःशरीरैः सत्यमेवाचरन्ति ते देवाः। ये चैवानृतमाचरन्ति ते मनुष्या अर्थादसुरराक्षसाः सन्तीति वेद्यम् ॥ १ । ५ ॥

शतपथ ब्राह्मण में इस मन्त्र की व्याख्या में कहा है—मनुष्यों का दो प्रकार का ही आचरण है एक सत्य और दूसरा अनृत। जो वाणी, मन और शरीर से सत्य का ही आचरण करते हैं वे देव कहलाते हैं और जो मिथ्या आचरण करते हैं वे मनुष्य अर्थात् असुर एवं राक्षस हैं ॥ १ । ५ ॥

भाष्यसार—१. **ईश्वर**—सत्य-भाषण आदि सत्य व्रतों का पालक होने से यहाँ ईश्वर को 'व्रतपति' तथा सत्य धर्म का उपदेश करने वाला होने से 'अग्नि' कहा गया है।

२. **अनृत**—मिथ्या बोलना, मिथ्या करना और मिथ्या मानना।

३. **सत्य**—वेदविद्या, प्रत्यक्ष आदि प्रमाण, सृष्टिक्रम, विद्वानों के संग, सुविचार और आत्म-शुद्धि से भ्रान्तिरहित, तत्त्वनिष्ठ, सत्प्रभव ज्ञान का परीक्षापूर्वक निश्चय करना।

४. **व्रत**—सत्य बोलना, सत्य करना और सत्य मानना।

५. **ईश्वर-प्रार्थना**—हे व्रतपते अग्ने परमेश्वर ! मैं अनृत से अलग रहकर सत्य व्रत का पालन करूँगा। आपकी कृपा से मेरे इस व्रत का पालन और पूर्ति सिद्ध होवे तथा जिसे मैं जानने, प्राप्त करने और अनुष्ठान करने में समर्थ हो सकूं वह सब आपकी कृपा से सिद्ध होवे ॥

अन्यत्र व्याख्यात—महर्षि ने 'अग्ने व्रतपते०' मन्त्र की **ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका** (वेदोक्तधर्म-विषय) में इस प्रकार से व्याख्या की है :—

१. इस मन्त्र का अभिप्राय यह है कि सब मनुष्य लोग ईश्वर के सहाय की इच्छा करें, क्योंकि उसके सहाय के बिना धर्म का पूर्ण ज्ञान और उसका अनुष्ठान पूरा कभी नहीं हो सकता।

हे सत्यपते परमेश्वर ! (**व्रतं**) मैं जिस सत्य धर्म का अनुष्ठान किया चाहता हूँ उसकी सिद्धि आपकी कृपा से ही हो सकती है। इसी मन्त्र का अर्थ शतपथ ब्राह्मण में भी लिखा है कि—जो मनुष्य सत्य के आचरण रूप व्रत को करते हैं वे देव कहाते हैं और जो असत्य का आचरण करते हैं उनको मनुष्य कहते हैं। इससे मैं इस सत्य व्रत का आचरण किया चाहता हूँ। (**तच्छकेयं**) मुझ पर आप ऐसी कृपा कीजिये कि जिससे मैं सत्य धर्म का अनुष्ठान पूरा कर सकूं, (**तन्मे राध्यतां**) उस अनुष्ठान की सिद्धि करने वाले एक आप ही हो सो कृपा से सत्य रूप धर्म के अनुष्ठान को सदा के लिए सिद्ध कीजिये। (**इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि**) सो यह व्रत है कि जिसको मैं निश्चय से चाहता हूँ उन सब असत्य कामों से छूट के सत्य के आचरण करने में सदा दृढ़ रहूँ ॥ (**ऋग्वेदादि, पृ० ९९, प्र० सं०**) ॥

महर्षि ने 'आर्याभिविनय' में इस मन्त्र की व्याख्या इस प्रकार की है :—

२. हे सच्चिदानन्द स्वप्रकाशस्वरूप ईश्वराग्ने ! ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास आदि सत्यव्रतों का आचरण मैं करूँगा। इस व्रत को आप कृपा से सम्यक् सिद्ध करें तथा मैं अनृत=अनित्य देहादि पदार्थों से, इस यथार्थ सत्य जिसका कभी व्यभिचार=विनाश नहीं होता, उस विद्यादिलक्षण धर्म को प्राप्त होता हूँ। इस मेरी इच्छा को आप पूरी करें जिससे मैं सभ्य, विद्वान्, सत्याचरण तथा आपकी भक्ति से युक्त धर्मात्मा होऊँ ॥ (**आर्या० प्रकाश २, मं० ४७**) ॥

महर्षि ने 'व्यवहारभानु' में इस मन्त्र की आंशिक व्याख्या इस प्रकार की है :—

३. "इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि"। **अर्थ**—मनुष्य में मनुष्यपन यही है कि सर्वथा झूठ व्यवहारों को छोड़कर सत्यव्यवहारों को सदा ग्रहण करे ॥

परमेष्ठी प्रजापतिः। **प्रजापतिः=परमेश्वरः** ॥ आर्चीपंक्तिः। पंचमः ॥

केन सत्यमाचरितुमसत्यं त्यक्तुमाज्ञा दत्तेत्युपदिश्यते ॥

किसने सत्य ग्रहण करने और असत्य छोड़ने की आज्ञा दी है, सो इस मन्त्र में उपदेश किया है।

कस्त्वा युनक्ति स त्वा युनक्ति कस्मै त्वा युनक्ति तस्मै त्वा युनक्ति। कर्मणे वां वेषाय वाम् ॥ ६ ॥

पदार्थः—(**कः**) को हि सुखस्वरूपः (**त्वा**) क्रियानुष्ठातारं मनुष्यं पुरुषार्थे (**युनक्ति**) नियुक्तं करोति (**सः**) परमेश्वरः (**त्वा**) विद्यादिशुभगुणानां ग्रहणे विद्यार्थिनं विद्वांसं वा (**युनक्ति**) योजयति। अत्र सर्वत्रान्तर्गतो ण्यर्थः प्रयोजनाय (**त्वा**) त्वां सुखमिच्छुकम् (**युनक्ति**) योजयति (**तस्मै**) सत्यव्रताचरणाय यज्ञाय (**त्वा**) धर्मं प्रचारयितुमुद्योगिनम् (**युनक्ति**) योजयति (**कर्मणे**) पूर्वोक्ताय यज्ञाय (**वाम्**) कर्त्ताकारयितारौ (**वेषाय**) सर्वशुभगुणविद्याव्याप्तये (**वाम्**) अध्येत्र्यध्यापकौ ॥ अयं मंत्रः श० । १ । १ । १३ । व्याख्यातः ॥ ६ ॥

प्रमाणार्थ—(**युनक्ति**) इस मन्त्र में सर्वत्र 'युनक्ति' पद में प्रयोजक अर्थ के लिए अन्तर्भावित ण्यर्थ है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१ । १ । १ । १३ तथा १ । १ । २ । १) में की गई है। १ । ६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्य ! **कः** को हि सुखस्वरूपः [त्वा]=**त्वां** क्रियाऽनुष्ठातारं मनुष्यं पुरुषार्थे **युनक्ति** नियुक्तं करोति ? **सः** परमेश्वरः [त्वा]=**त्वां** विद्यादिशुभगुणानां ग्रहणे विद्यार्थिनं विद्वांसं वा **युनक्ति** योजयति।

कस्मै प्रयोजनाय [त्वा]=**त्वां** सुखमिच्छुकं **युनक्ति** योजयति ? **तस्मै** सत्यव्रताऽऽचरणाय यज्ञाय [त्वा]=**त्वां** धर्मं प्रचारयितुमुद्योगिनं **युनक्ति** योजयति।

स एव वां कर्त्ताकारयितारौ **कर्मणे** पूर्वोक्ताय (१-२) यज्ञाय **नियोजयति, एवं च वाम्** अध्येत्र्यध्यापकौ **वेषाय** सर्वशुभगुणविद्याव्याप्तये **आज्ञापयति** ॥ १ । ६ ॥

भावार्थ—हे मनुष्य ! (**कः**) कौन सुखस्वरूप (**त्वा**) कर्म का अनुष्ठान करने वाले तुझ मनुष्य को पुरुषार्थ करने की (**युनक्ति**) आज्ञा देता है ? (**सः**) वह परमेश्वर ही (**त्वा**) विद्यादि शुभ गुणों के ग्रहण करने के लिए तुझ विद्यार्थी वा विद्वान् को (**युनक्ति**) आज्ञा देता है।

(**कस्मै**) किस प्रयोजन के लिए (**त्वा**) तुझ सुख को इच्छुक विद्यार्थी को वह (**युनक्ति**) आज्ञा देता है ? (**तस्मै**) सत्याचरणस्वरूप यज्ञ करने के लिए (**त्वा**) धर्मप्रचार में पुरुषार्थी तुझ को वह (**युनक्ति**) आज्ञा देता है।

और—वही ईश्वर (**वाम्**) कर्म करने और कराने वालों को (**कर्मणे**) पूर्वोक्त यज्ञकर्म करने के लिए आज्ञा देता है, तथा (**वाम्**) विद्या पढ़ने-पढ़ाने वाले लोगों को (**वेषाय**) सब शुभ गुण एवं विद्याप्राप्ति के लिए आज्ञा देता है ॥ १ । ६ ॥

[कस्त्वा युनक्ति, स त्वा युनक्ति]

भावार्थः—अत्र प्रश्नोत्तराभ्यामीश्वरो जीवेभ्य उपदिशति—कश्चित् कंचित् प्रति ब्रूते—को मां सत्यक्रियायां प्रवर्त्तयतीति ? सोऽस्योत्तरं ब्रूयात्–ईश्वरः पुरुषार्थक्रियाकरणाय त्वामादिशतीति। एवं कश्चिद् विद्यार्थी विद्वांसं प्रति पृच्छेत्—को मदात्मन्यन्तर्यामिरूपतया सत्यं प्रकाशयतीति ? स उत्तरं दद्यात्—सर्वव्यापको जगदीश्वर इति।

भावार्थ—इस मन्त्र में प्रश्न-उत्तर के द्वारा ईश्वर जीवों को उपदेश करता है—कोई किसी से पूछता है—मुझे सत्यकर्म में कौन प्रवृत्त करता है ? वह इसका उत्तर देवे—ईश्वर पुरुषार्थ एवं कर्म करने के लिए तुझे आदेश देता है। इसी प्रकार कोई विद्यार्थी विद्वान् से पूछे—कौन मेरी आत्मा में अन्तर्यामी रूप से सत्य को प्रकाशित करता है ? विद्वान् उत्तर देवे—सर्वव्यापक जगदीश्वर।

[कस्मै त्वा युनक्ति, तस्मै त्वा युनक्ति]

कस्मै प्रयोजनायेति केनचित् पृच्छ्यते ? सुखप्राप्तये परमेश्वरप्राप्तये चेत्युत्तरं ब्रूयात्। पुनः कस्मै प्रयोजनाय मां नियोजयतीति पृच्छ्यते ? सत्यविद्याधर्मप्रचारायेत्युत्तरं ब्रूयात्।

कोई पूछता है कि किस प्रयोजन के लिए सत्य को प्रकाशित करता है ? उसको उत्तर देवे—सुख और परमेश्वर की प्राप्ति के लिए। फिर कोई पूछता है कि वह किस प्रयोजन के लिए मुझे आज्ञा देता है ? उसको उत्तर देवे---सत्य, विद्या और धर्म का प्रचार करने के लिए।

[स एव वां कर्मणे नियोजयति एवं च वां वेषायाज्ञापयति]

आवां किं करणायेश्वर उपदिशति ? यज्ञानुष्ठानायेति परस्परमुत्तरं ब्रूयाताम्। पुनः स किमाप्तय आज्ञापयतीति ? सर्वविद्यासुखेषु व्याप्तये तत्प्रचारायेत्युत्तरं ब्रूयात्।

हम दोनों को क्या करने के लिए ईश्वर उपदेश करता है ? इसका परस्पर उत्तर देवें कि यज्ञ करने के लिए। फिर, वह किस पदार्थ की प्राप्ति के लिए आज्ञा देता है ? उसको उत्तर देवे कि सब विद्या और सब सुखों की प्राप्ति के लिए तथा उनके प्रचार के लिए।

[कर्मणे, वेषाय]

मनुष्यैर्द्वाभ्यां प्रयोजनाभ्यां प्रवर्त्तितव्यम्—एकमत्यन्तपुरुषार्थशरीरारोग्याभ्यां चक्रवर्त्तिराज्यश्रीप्राप्तिकरणम्। द्वितीयं—सर्वा विद्याः सम्यक् पठित्वा तासां सर्वत्र प्रचारीकरणं चेति। नैव केनचिदपि कदाचित्पुरुषार्थं त्यक्त्वाऽऽलस्ये स्थातव्यमिति॥ १। ६॥

मनुष्यों को दो प्रयोजनों के लिए प्रवृत्त होना चाहिये, पहला---अत्यन्त पुरुषार्थ और शरीर की आरोग्यता से चक्रवर्त्तिराज्य-रूपी लक्ष्मी की प्राप्ति करना। दूसरा---सब विद्याओं को अच्छी प्रकार पढ़कर उनका सर्वत्र प्रचार करना। किसी मनुष्य को कभी भी पुरुषार्थ छोड़कर आलस्य में नहीं पड़े रहना चाहिये॥ १। ६॥

भा० पदार्थः—कः=ईश्वरः। युनक्ति=आदिशति। कस्मै=कस्मै प्रयोजनाय। तस्मै=सुखप्राप्तये, परमेश्वरप्राप्तये च, सत्यविद्याधर्मप्रचाराय। कर्मणे=यज्ञानुष्ठानाय, अत्यन्तपुरुषार्थशरीरारोग्याभ्यां चक्रवर्त्तिराज्यश्रीप्राप्तिकरणाय। वेषाय=सर्वविद्यासुखेषु व्याप्तये, सर्वा विद्याः सम्यक् पठित्वा तासां सर्वत्र प्रचारीकरणाय॥

भाष्यसार—**ईश्वर**—यहां सुखस्वरूप होने से ईश्वर को 'कः' नाम से कहा गया है। 'क' को

ही प्रजापति कहते हैं। वह प्रजापति ईश्वर ही मनुष्य को सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने की आज्ञा देता है।

"सत्य को ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये" (**आर्य समाज का चौथा नियम**)॥

●

परमेष्ठी प्रजापतिः। **यज्ञः=दुष्टगुणानां दुष्टमनुष्याणां च** निषेधः । प्राजापत्या जगती। निषादः॥

सर्वैर्दुष्टगुणानां दुष्टमनुष्याणां च निषेधः कर्त्तव्य इत्युपदिश्यते॥

सब मनुष्यों को उचित है कि दुष्ट गुणों और दुष्ट स्वभाव वाले मनुष्यों का निषेध करें, इस बात का उपदेश किया है॥

प्रत्युष्टꣳ रक्षः प्रत्युष्टाऽअरातयो निष्टप्तꣳ रक्षो निष्टप्ताऽअरातयः। उर्वन्तरिक्षमन्वेमि॥७॥

पदार्थः—(**प्रत्युष्टम्**) यत्प्रतीतं च तदुष्टं=दग्धं च तत् (**रक्षः**) रक्षःस्वभावो दुष्टो मनुष्यः (**प्रत्युष्टाः**) प्रत्यक्षतया उष्टा=दग्धव्यास्ते (**अरातयः**) अविद्यमाना रातिर्दानं येषु ते शत्रवः (**निष्टप्तं**) नितरां तप्तं=सन्तापयुक्तं च कार्य्यम् (**रक्षः**) स्वार्थी मनुष्यः (**निष्टप्ताः**) पूर्ववत् (**अरातयः**) कपटेन विद्यादान-ग्रहणरहिताः (**उरु**) बहुविधं सुखं प्राप्तुं प्रापयितुं वा। **उर्विति बहुनामसु पठितम्॥ निघं० ३।१॥** (**अन्तरिक्षम्**) सुखसाधनार्थमवकाशम् (**अन्वेमि**) अनुगतं प्राप्नोमि॥ **अयं मंत्रः श० १।१।२।२—४ व्याख्यातः॥७॥**

प्रमाणार्थ—(**उरु**) 'उरु' शब्द निघं० (३।१) में बहुनामों में पढ़ा गया है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१।१।२।२-४) में की गई है॥१।७॥

सपदार्थान्वयः—**मया रक्षो** रक्षः-स्वभावो दुष्टो मनुष्यः **प्रत्युष्टं** यत् प्रतीतं च तदुष्टं=दग्धं च तद्, **अरातयो** अविद्यमाना रातिः दानं येषु ते शत्रवः **प्रत्युष्टाः** प्रत्यक्षतया उष्टाः=दग्धव्यास्ते, **रक्षः** स्वार्थी मनुष्यो **निष्टप्तं** नितरां तप्तं=सन्ता-पयुक्तं च कार्य्यम्, **अरातयः** कपटेन विद्यादान-ग्रहणरहिताः **निष्टप्ता** पूर्ववद्=नितरां तप्ताः=सन्तापयुक्ताश्च **पुरुषार्थेन सदैव कार्य्याः**।

एवं कृत्वान्तरिक्षं सुखसाधनार्थमवकाशम् **उरु=बहुसुखं** बहुविधं सुखं प्राप्तुं प्रापयितुं वा **च अनु+एमि** अनुगतं करोमि॥१।७॥

भाषार्थ—मुझे चाहिये, मैं (**रक्षः**) दुष्ट मनुष्य के राक्षस-स्वभाव को जानकर उसके दुष्ट-स्वभाव को (**प्रत्युष्टम्**) दग्ध करूँ और (**अरातयः**) राति अर्थात् दानादि शुभ-कर्मों से रहित जो शत्रु हैं, उनको भी (**प्रत्युष्टः**) प्रत्यक्षतया भस्म कर दूँ और (**रक्षः**) जो स्वार्थी मनुष्य है, उसे (**निष्टप्तम्**) सर्वथा सन्ताप-युक्त करूँ तथा (**अरातयः**) छल से युक्त, विद्या के दान और ग्रहण से रहित जो दुष्ट हैं, उन्हें (**निष्टप्ताः**) अपने पुरुषार्थ से सदा सन्तापयुक्त करूँ।

ऐसा करके (**अन्तरिक्षम्**) सुख-सिद्धि के लिए उत्तम स्थान को (**उरु**) बहुत प्रकार के सुखों को प्राप्त करने-कराने के लिए (**अन्वेमि**) प्राप्त होऊँ॥१।७॥

[**मया रक्षः प्रत्युष्टम्, अरातयः प्रत्युष्टाः......पुरुषार्थेन सदैव कार्य्याः**]

भावार्थः—इदमीश्वर आज्ञापयति—सर्वैर्मनुष्यैः स्वकीयं दुष्टस्वभावं त्यक्त्वाऽन्येषामपि

भावार्थ—ईश्वर यह आज्ञा देता है कि सब मनुष्यों को अपना दुष्ट-स्वभाव छोड़कर तथा दूसरों

विद्याधर्मोपदेशेन त्याजयित्वा दुष्टस्वभावान् मनुष्यांश्च निवार्य्य,

का भी विद्या और धर्मोपदेश से छुड़ाकर, दुष्टस्वभाव वाले मनुष्यों को दूर हटाकर,

[अन्तरिक्षमुरु=बहुसुखं चाऽन्वेमि]

बहुविधं ज्ञानं सुखं च सम्पाद्य विद्याधर्मपुरुषार्थाऽन्विताः सुखिनः सर्वे प्राणिनः सदा सम्पादनीयाः ॥ १ । ७ ॥

बहुत प्रकार का ज्ञान और सुख सिद्ध करके, सब मनुष्यों को विद्या, धर्म और पुरुषार्थ से युक्त कर उन्हें सदा सुखी रखें ॥ १ । ७ ॥

भा० पदार्थ—रक्षः=स्वकीय-दुष्टस्वभावः । अरातयः=दुष्टस्वभावा मनुष्याः । उरु=बहुविधं ज्ञानं सुखं च । अन्वेमि=विद्याधर्मपुरुषार्थाऽन्वितं सम्पादयामि ॥

भाष्यसार—**दुष्ट मनुष्य**--जो राक्षस स्वभाव वाले मनुष्य हैं वे दुष्ट हैं। यज्ञ आदि शुभ कर्मों में दान न करने वाले मनुष्य 'अराति' कहलाते हैं, वे धार्मिक जनों के शत्रु हैं। वे कपट के कारण विद्या के दान और ग्रहण से रहित होने के कारण 'अराति' कहलाते हैं । यहाँ इन दुष्ट मनुष्यों के निषेध का उपदेश किया है ।

●

परमेष्ठी प्रजापतिः । **अग्निः**=**ईश्वरः, भौतिकोऽग्नि** ॥ निचृदतिजगती । निषादः ॥

अथ सर्वविद्याधारकेश्वरो विद्यासाधनीभूतो भौतिकोऽग्निश्चोपदिश्यते ॥

सब विद्या के धारण करनेवाले ईश्वर और पदार्थविद्या की सिद्धि के हेतु भौतिक अग्नि का उपदेश किया जाता है ॥

धूर॑सि॒ धूर्व॒ धूर्व॑न्तं॒ धूर्व॒ तं यो॒ऽस्मान् धूर्व॑ति॒ तं धूर्व॒ यं व॒यं धूर्वा॑मः ।
दे॒वाना॑मसि॒ वह्नि॑तम॒ꣳ सस्नि॑तमं॒ पप्रि॑तमं॒ जुष्ट॑तमं दे॒व॒हूत॑मम् ॥८॥

पदार्थः—(**धूः**) सर्वदोषनाशकोऽन्धकारनाशको वा (**असि**) अस्ति वा । **अत्र सर्वत्र भौतिकपक्षे व्यत्ययेन प्रथमपुरुषो गृह्यते** (**धूर्व**) हिंसय, धूर्वति=हिनस्ति वा (**धूर्वन्तम्**) हिंसाशीलं प्राणिनम् (**धूर्व**) हिंसय हिनस्ति वा (**तम्**) सर्वभूताभिद्रोग्धारम् (**यः**) अस्मद्द्वेष्टा (**अस्मान्**) धार्मिकान् सर्वेभ्यः सुखोपकर्तॄन् (**धूर्वति**) हिनस्ति (**तम्**) दुष्टं दस्युं चौरं वा (**धूर्व**) हिंसय हिनस्ति वा (**यम्**) पापिनम् (**वयम्**) विद्वांसः सर्वमित्राः (**धूर्वामः**) हिंसामः (**देवानाम्**) विदुषां पृथिव्यादीनां वा (**असि**) उत्पादको वर्त्तसे प्रकाशको वर्त्तते वा (**वह्नितमम्**) वहति=प्रापयति यथायोग्यं सुखानि स वह्निः सोऽतिशयितस्तम् (**सस्नितमम्**) अतिशयेन शुद्धं शुद्धिकारकं च । तथा शुद्धिहेतुं भौतिकं वा । अथवा स्वव्याप्त्या सर्वजगद्वेष्टयितारमीश्वरं शिल्पविद्याहेतुं व्यापनशीलं भौतिकं वा । **स्ना शौचे । अथवा ष्णं वेष्टने । इत्यस्य रूपम् ।** (**पप्रितमम्**) प्राति=प्रपूरयति सर्वाभिर्विद्याभिरानन्दैश्च जनान् स्वव्याप्त्या जगद्वा मूर्त्तं वस्तु शिल्पविद्यासाध्यांगानि च यः सोऽतिशयितस्तम् (**जुष्टतमम्**) धार्मिकैर्भक्तजनैः शिल्पिभिश्च यो जुष्यते स जुष्टः । अतिशयेन जुष्टस्तम् (**देवहूतमम्**) देवैर्विद्वद्भिः हूयते स्तूयते=शब्द्यते सोऽतिशयितस्तम् । **ह्वेञ् स्पर्धायाम् शब्दे चेत्यस्य रूपम्** ॥ अयं मंत्र श० १ । १ । २ । १०--१२ व्याख्यातः ॥ ८ ॥

प्रमाणार्थ—(**असि**) अस्ति । इस मंत्र में सर्वत्र भौतिक पक्ष में व्यत्यय से प्रथम पुरुष का ग्रहण किया गया है । (**सस्नितमम्**) 'स्ना शौचे' अथवा 'ष्णै वेष्टने' धातु का रूप है । (**देवहूतमम्**) 'ह्वेञ् स्पर्धायां शब्दे च' इस स्पर्धा और शब्द अर्थ वाली 'ह्वेञ्' धातु का रूप है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१ । १ । २ । १०—१२) में की गई है ॥ १ । ८ ॥

सपदार्थान्वय—हे परमेश्वर ! **यत**—त्वं **धूरसि**=**सर्वाभिरक्षकश्चासि** (धूः=सर्वदोषनाशकः, असि) **तस्माद् वयमिष्टबुद्ध्या, देवानां** विदुषां **[असि]** उत्पादको वर्त्तसे (तं) **वह्नितमं** वहति=प्रापयति यथायोग्यं सुखानि स वह्निः, सोऽतिशयितस्तं, **सस्नितमम्** अतिशयेन शुद्धं शुद्धिकारकं च, अथवा स्वव्याप्त्या सर्वजगद् वेष्टयितारमीश्वरं, **पप्रितमं** प्राति=प्रपूरयति सर्वाभिर्विद्याभिरानन्दैश्च जनान्, स्वव्याप्त्या जगद् वा मूर्त्तं वस्तु सोऽतिशयितस्तं, **जुष्टतमं** धार्मिकैर्भक्तजनैर्यो जुष्यते स जुष्टः, अतिशयेन जुष्टस्तं, **देवहूतमं** देवैः=विद्वद्भिः हूयते, स्तूयते=शब्द्यते सोऽतिशयितस्तं **त्वां नित्यमुपास्महे ।**

भाषार्थ—हे परमेश्वर ! क्योंकि आप (**धूः**) सब के रक्षक एवं सब दोषों के नाशक (**असि**) हो, इसलिये हम लोग इष्ट-बुद्धि से (**देवानाम्**) विद्वानों के उत्पादक (**वह्नितमम्**) यथायोग्य सुखों के प्रापक, (**सस्नितमम्**) अत्यन्त शुद्ध, और शुद्धिकारक अथवा अपनी व्याप्ति से सब जगत् में व्यापक (**पप्रितमम्**) सब विद्या और आनन्दों से लोगों को अथवा अपनी व्याप्ति से जगत् वा मूर्त्त वस्तुओं को पूरण करने वाले (**जुष्टतमम्**) धार्मिक भक्त जनों से अत्यन्त सेवनीय (**देवहूतमम्**) विद्वानों से अत्यन्त स्तुति करने योग्य हो (**त्वा**) उन आपकी हम नित्य उपासना करते हैं ।

यः अस्मद्द्वेष्टा **अस्मान्** धार्मिकान् सर्वेभ्यः सुखोपकर्तॄन् **धूर्वति** हिनस्ति **यं** पापिनं **च वयं** विद्वांसः सर्वमित्राः **धूर्वामः** हिंसामः **तं** दुष्टं दस्युं चोरं वा **धूर्व** हिंसय ।

(**यः**) जो कोई हमसे द्वेष करने वाला (**अस्मान्**) धार्मिक सुख-उपकारक हम लोगों की (**धूर्वति**) हिंसा करता है और (**यं**) और जिस पापी की (**वयम्**) सर्वमित्र विद्वान् लोग हम (**धूर्वामः**) हिंसा करते हैं (**तम्**) उस दुष्ट, दस्यु वा चोर की (**धूर्व**) हिंसा कर ।

यश्च सर्वद्रोही तं सर्वभूताभिद्रोग्धारम् **अपि, धूर्वन्तं**=**सर्वहिंसकं** हिंसाशीलं प्राणिनं **सदैव धूर्व** हिंसय, **इत्येकः** ॥

और जो सर्वद्रोही है (**तम्**) उस सब प्राणियों के द्रोही को भी एवं (**धूर्वन्तम्**) सबके हिंसक एवं हिंसाशील प्राणी की सदा (**धूर्व**) हिंसा कर । इस मन्त्र का एक अर्थ हुआ ॥

द्वितीयो भौतिक पक्षः—हे शिल्पविद्यां चिकीर्षो ! **त्वं यो भौतिकोऽग्निर्धूः**=**सर्वपदार्थच्छेदकत्वाद्धिंसकः,** अन्धकार-नाशकः, **[असि]**=**अस्ति, तं कलाकौशलेन यानेषु सम्प्रयोजनीयं, देवानां** पृथिव्यादीनाम् **[असि]** प्रकाशको वर्तते (तं) **वह्नितमं** वहति=प्रापयति यथायोग्यं सुखानि स वह्निः, सोऽतिशयितस्तं, **सस्नितमं** शुद्धिहेतुं भौतिकं, शिल्पविद्याहेतुं व्यापनशीलं भौतिकं, **पप्रितमं** प्राति=प्रपूरयति स्वव्याप्त्या जगद्, वा मूर्त्तं वस्तु, शिल्प विद्यासाध्यांगानि च यः सोऽतिशयितस्तं, **जुष्टतमं** शिल्पिभिर्यो जुष्यते स जुष्टः, अतिशयेन जुष्टस्तं, **देवहूतमम्**=**अग्निं** देवैः=विद्वद्भिः हूयते स्तूयते=शब्द्यते सोऽतिशयितस्तं, **वयं** विद्वांसः सर्वमित्राः **धूर्वामः**=**ताडयामः** हिंसामः ।

दूसरा भौतिक पक्ष में अर्थ—हे शिल्पविद्या के इच्छुक मनुष्य ! तू जो भौतिक अग्नि (**धूः**) सब पदार्थों का छेदक होने से हिंसक तथा अन्धकार-नाशक (**असि**) है उस कला-कौशल से यानों में प्रयोग करने योग्य तथा (**देवानाम्**) पृथिवी आदि का प्रकाशक है उस (**वह्नितमम्**) यथायोग्य सुखों के प्रापक (**सस्नितमम्**) शुद्धि के हेतु, शिल्प विद्या के हेतु, व्यापनशील (**पप्रितमम्**) अपनी व्याप्ति से जगत् वा मूर्त वस्तुओं को और शिल्पविद्या से साध्य अंगों को पूर्ण करने वाले (**जुष्टतमम्**) शिल्पी जनों से अत्यन्त सेवनीय (**देवहूतमम्**) देव अर्थात् विद्वानों से अत्यन्त स्तुति करने योग्य अग्नि का (**वयम्**) सर्वामित्र हम विद्वान् लोग (**धूर्वामः**) ताडन करते हैं ।

यः अऽयुक्त्यः सेवितोऽस्मान् धार्मिकान् सर्वेभ्यः सुखोपकर्तॄन् **धूर्वति** हिनस्ति **तं धूर्वन्तम्=अग्निं धूर्व** धूर्वति=हिनस्ति।

(**यः**) जो अग्नि बिना युक्ति से सेवन किया हुआ (**अस्मान्**) धार्मिक सबके सुखोपकारक हम लोगों का (**धूर्वति**) हिंसन करता है (**तम्**) उस (**धूर्वन्तम्**) अग्नि का (**धूर्व**) ताडन कर अर्थात् यान आदि में उपयोग कर।

हे वीर ! त्वं यो दुष्टशत्रुरस्मान् धार्मिकान् सर्वेभ्यः सुखोपकर्तॄन् **धूर्वति** हिनस्ति **तं** दुष्टं दस्युं चोरं वा **अप्याग्नेयास्त्रेण धूर्व** हिंसय। **यश्च दस्युरस्ति तमपि धूर्व** हिंसय॥ १। ८॥

हे वीर ! तू जो दुष्ट शत्रु (**अस्मान्**) धार्मिक, सबके सुखोपकारक हम लोगों की (**धूर्वति**) हिंसा करता है (**तम्**) उस दुष्ट दस्यु चोर की भी अग्नेयास्त्र से (**धूर्व**) हिंसा कर। और जो दस्यु है उसकी भी (**धूर्व**) हिंसा कर॥ १। ८॥

[**हे परमेश्वर ! यतस्त्वं धूरसि, ... योऽस्मान् धूर्वति—तं धूर्व, धूर्वन्तं...धूर्व**]

भावार्थः—यो धातेश्वरः सर्वं जगद्दधाति, पापिनो दुष्टान् जीवान् तत्कृतपापफलदानेन ताडयति, धार्मिकाँश्च रक्षति।

भावार्थ—जो धाता ईश्वर सब जगत् को धारण करता है, पापी दुष्ट जीवों को उनके किये पापों का फल देकर ताड़ना करता है, और धार्मिकों की रक्षा करता है। वह—

[**वह्नितमं, सस्नितमं, पप्रितमं, जुष्टतमं देवहूतमं त्वां नित्यमुपास्महे**]

सर्वसुखप्रापक, आत्मशुद्धिकारकः, पूर्णविद्याप्रदाता, विद्वद्भिः स्तोतव्यः प्रीत्येष्टबुद्धया च सेवनीयोऽस्ति, स एव सर्वैर्मनुष्यैर्भजनीयः।

सब सुखों का दाता, आत्मा की शुद्धि करने वाला, पूर्ण विद्या का दाता, विद्वानों से स्तुति करने योग्य, प्रीति और इष्ट बुद्धि से सेवनीय है, वही सब मनुष्यों का उपास्य है।

[**यो भौतिकोऽग्निर्धूः—असि=अस्ति, देवानामसि**]

योऽग्निः शिल्पविद्याक्रियासाधकतमः पृथिव्यादिपदार्थानां मध्ये प्रकाशकतमतया श्रेष्ठोऽस्ति।

जो भौतिक अग्नि शिल्पविद्या की क्रियाओं का अत्यन्त साधक और पृथिवी आदि पदार्थों में अत्यन्त प्रकाशक होने से श्रेष्ठ है।

[**हे वीर ! त्वं यो दुष्टशत्रुरस्मान् धूर्वति तमप्याग्नेयास्त्रेण धूर्व**]

यस्य प्रयोगेणाग्नेयास्त्रादि विद्यया शत्रूणां पराजयो भवति, स एव शिल्पिभिर्विद्यायुक्त्या होमयानक्रियासिद्धयर्थं सेवनीयः॥ १। ८॥

जिसके प्रयोग से आग्नेयास्त्र आदि विद्या के द्वारा शत्रुओं का पराजय होता है, उसी को शिल्पी लोग विद्यायुक्ति से होम और यानक्रिया की सिद्धि के लिये सेवन करें॥ १। ८॥

भा० पदार्थः—धूः=धातेश्वरः। धूर्वति=पापिनो दुष्टान् जीवान् तत्कृतफलदानेन ताडयति। वह्नितमम्=सर्वसुखप्रापकम्। सस्नितमम्=आत्मशुद्धिकारकम्। पप्रितमम्=पूर्णविद्याप्रदातारम्। जुष्टतम्=प्रीत्येष्ट बुद्धया च सेवनीयम्। देवहूतमम्=विद्वद्भिः स्तोतव्यम्। धूः=शिल्पविद्याक्रियासाधकतमोऽग्निः॥

भाष्यसार—१. **ईश्वर**—सब का रक्षक और सब दोषों का नाशक होने से ईश्वर 'धूः' कहलाता है।

२. **ईश्वर की सगुणोपासना**—हम लोग सब सुखों को यथायोग्य प्राप्त कराने वाले, अत्यन्त शुद्धि तथा शुद्धिकारक, अथवा अपनी व्याप्ति से सब जगत् को अपने में लपेटने वाले, सब विद्या और आनन्दों से भक्तजनों को तृप्त करने वाले, अपनी व्याप्ति से सब जगत् को भर देने वाले, धार्मिक भक्तजनों के अत्यन्त प्रिय, विद्वानों से स्तुति करने योग्य परमेश्वर की नित्य उपासना करें।

३. **ईश्वर-प्रार्थना**—हे सबके रक्षक और सब दोषों के नाशक परमेश्वर ! जो दुष्ट जन हम धार्मिक सब के उपकारक लोगों का हिंसन करता है और हम विद्वान् लोग जिस पापी का हिंसन करते हैं उस डाकू वा चोर की आप भी हिंसा करो। और जो सर्वद्रोही है उस हिंसक प्राणी की भी आप हिंसा कीजिये।

४. **भौतिक अग्नि**—सर्व पदार्थों का छेदक और अन्धकार का नाशक होने से भौतिक अग्नि 'धूः' कहलाता है। वह देव=पृथिवी आदि का प्रकाशक, यथायोग्य सुखों का प्रापक, शुद्धिकारक, शिल्पविद्या का साधक, सब मूर्त्तद्रव्यों में व्यापक, शिल्पी जनों का अत्यन्त प्रिय, और विद्वान् जनों से व्याख्येय है।

●

परमेष्ठी प्रजापतिः। **विष्णुः=सूर्यः** ॥ निचृत् त्रिष्टुप्ः। धैवतः॥

अथ यजमानभौतिकाग्निकृत्यमुपदिश्यते ॥

अब यजमान और भौतिक अग्नि के कर्म का उपदेश किया जाता है॥

अह्रुतमसि हविर्धानं दृꣳहस्व मा ह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत् ।
विष्णुस्त्वा क्रमतामुरु वातायापहतꣳ रक्षो यच्छन्तां पञ्च ॥९॥

पदार्थः—(**अह्रुतम्**) कुटिलतारहितम् (**असि**) अस्ति। अत्र व्यत्ययः (**हविर्धानम्**) हविषां धानं=स्थित्यधिकरणम् (**दृंहस्व**) वर्धयस्व वर्धयति वा। अत्र पक्षे व्यत्ययः (**मा ह्वाः**) मा त्यजेः। अत्र लिङर्थे लुङ् (**मा**) क्रियार्थे निषेधवाची (**ते**) तव (**यज्ञपतिः**) पूर्वोक्तस्य यज्ञस्य पतिः=पालकः (**ह्वार्षीत्**) त्यजतु। अत्र लोडर्थे लुङ् (**विष्णुः**) व्यापनशीलः सूर्य्यः (**त्वा**) तद्धोतव्यं द्रव्यम् (**क्रमताम्**) चालयति। अत्र लडर्थे लोट् (**उरु**) बहु। उर्विति बहुनामसु पठितम् ॥ निघं० ३। १॥ (**वाताय**) वायोः शुद्धये सुखवृद्धये वा (**अपहतम्**) विनाशितम् (**रक्षः**) दुर्गन्धादिदुःखजालम् (**यच्छन्ताम्**) निगृह्णन्तु (**पञ्च**) पञ्चभिरुत्क्षेपणादिभिः कर्मभिः। उत्क्षेपणमवक्षेपणमाकुंचनं प्रसारणं गमनमिति कर्माणि ॥ वैशे० १। ७॥ अत्र सुपां सुलुगिति भिसो लुक् ॥ अयं मंत्रः श० १। १। २। १२-१६ व्याख्यातः ॥ ६॥

प्रमाणार्थः—(**असि**) अस्ति। यहाँ पुरुष-व्यत्यय है। (**दृंहस्व**) वर्धयस्व, वर्धयतु वा। यहाँ पक्ष में व्यत्यय है। (**मा ह्वाः**) मा त्यजेः। यहाँ लिङ् अर्थ में लुङ् लकार है। (**ह्वार्षीत्**) त्यजतु। यहाँ लोट् अर्थ में लुङ् लकार है। (**क्रमताम्**) चालयति। यहाँ लट् अर्थ में लोट् है। (**उरु**) उरु शब्द निघं० (३। १) में बहुनामों में पढ़ा गया है। (**पञ्च**) कर्मभिः। वैशेषिक (१। ७) में उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुञ्चन, प्रसारण और गमन ये पाँच प्रकार के कर्म बताए हैं। 'पञ्च' शब्द में सुपां सुलुक्० (७। १। ३६) से भिस् का लुक् है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१। १। २। १२—१६) में की गई है॥ १। ६॥

सपदार्थान्वयः—हे ऋत्विक् ! त्वं **यदग्निना** दृंहितमह्रुतं कुटिलतारहितं **हविर्धानं** हविषां धानं स्थित्यधिकरणम् **असि=अस्ति, तद्**

भाषार्थ—हे ऋत्विक् ! तू जो अग्नि से बढ़ा हुआ (**अह्रुतम्**) कुटिलता रहित (**हविर्धानम्**) हवियों का आधार यज्ञ (**असि**) है, उसे (**दृंहस्व**)

दृंहस्व वर्धयस्व वर्धयति वा **किन्तु तत्कदाचिन्मा ह्वाः** =**मा त्यजेः । इदं ते**=**तव यज्ञपतिः** पूर्वोक्तस्य यज्ञस्य पति :=पालको **दृंहताम्, मा ह्वार्षीत्**=**मा त्यजतु ।**

एवं भवन्तः सर्वे मनुष्याः [पञ्च]=**पञ्चभिरुत्क्षेपणादिभिः कर्म्मभिर्यदग्नौ हूयते तन्नियच्छन्ताम्**=**निगृह्णन्तु ।**

यद् द्रव्यं विष्णुः=**व्यापनशीलः सूर्य्योऽपिहतं** विनाशितं **रक्षः** दुर्गन्धाऽऽदिदुःखजालं **यथा स्यात्, तथा उरु** बहु **वाताय** वायोः शुद्धये सुखवृद्धये वा **[क्रमताम्]**=**क्रमयति**=**चालयति ।**

त्वा=**तत्सर्वं** तद्धोतव्यं द्रव्यं **मनुष्या अग्नौ होमद्वारा यच्छन्ताम्**=**निगृह्णन्तु** ॥ १ । ६ ॥

बढ़ा, किन्तु उसे किसी काल में भी (**मा ह्वाः**) मत छोड़ । और इसे (**ते**) तेरा (**यज्ञपतिः**) यजमान भी (**मा ह्वार्षीत्**) न छोड़े ।

इस प्रकार सब मनुष्य [**पञ्च**] उत्क्षेपणादि पाँच कर्मों के द्वारा अग्नि में हवन करने योग्य द्रव्यों को (**नि+यच्छन्ताम्**) ग्रहण करें ।

उस हवन किए हुए द्रव्य को (**विष्णुः**) व्यापनशील सूर्य (**अपहतं रक्षः**) दुर्गन्ध आदि दुःखरूप जाल का नाश करके (**उरु**) अत्यधिक (**वाताय**) वायु की शुद्धि और सुख की वृद्धि के लिए (**क्रमताम्**) आकाश में फैलाता है ।

(**त्वा**) उस होम के योग्य द्रव्य को सब मनुष्य होम के द्वारा (**यच्छन्ताम्**) ग्रहण करें ॥ १ । ६ ॥

[हे ऋत्विक् ! त्वं यदग्निना दृंहितमहुतं हविर्धानमस्ति, तद् दृंहस्व, इदं ते यज्ञपतिर्दृंहताम्]

भावार्थः--यदा मनुष्याः परस्परं प्रीत्या कुटिलतां विहाय, शिक्षकशिष्या भूत्वा इमामग्निविद्यां विज्ञानक्रियाभ्यां ज्ञात्वाऽनुतिष्ठन्ति, तदा महतीं शिल्पविद्यां सम्पाद्य,

भावार्थ--जब मनुष्य परस्पर प्रीति से कुटिलता को छोड़ कर, शिक्षक और शिष्य बन कर इस अग्नि-विद्या को विज्ञान और क्रिया से जानकर, आचरण करते हैं, तब महान् शिल्पविद्या को सिद्ध करके--

[अपहतं रक्षः]

शत्रुदारिद्र्यनिवारणपुरःसरं सर्वाणि सुखानि प्राप्नुवन्तीति ॥ १ । ६ ॥

शत्रु और दरिद्रता को दूर भगाकर सब सुखों को प्राप्त करते हैं ॥ १ । ६ ॥

भा० पदार्थः--रक्षः =शत्रुः, दारिद्र्यम् ॥

भाष्यसार-- १. **यजमान का कृत्य**--कुटिलता को छोड़ कर यज्ञ को बढ़ाये, यज्ञ को कभी न छोड़े । पाँच कर्मों से अग्नि में होम किये द्रव्य को ग्रहण करे ।

२. **पंच कर्म**--उत्क्षेपण=ऊपर को चेष्टा करना । अवक्षेपण=नीचे को चेष्टा करना । आकुञ्चनम्=सिकोड़ना । प्रसारणम्=फैलाना । गमन=चलना ॥

३. **भौतिक अग्नि (सूर्य) का कृत्य**--व्यापनशील होने से सूर्य का नाम विष्णु है । सूर्य होम किये हुए द्रव्य को दुर्गन्ध आदि दुःखों को नष्ट करने, वायु की शुद्धि और सुखवृद्धि के लिये आकाश में फैलाता है ॥

●

परमेष्ठी प्रजापतिः । **सविता**=**ईश्वरः** ॥ भुरिग्बृहती । मध्यमः ॥

तस्य यज्ञफलस्य ग्रहणं केन कुर्वन्तीत्युपदिश्यते ॥

उस यज्ञ के फल का ग्रहण किस करके होता है इस विषय का उपदेश किया है ॥

दे॒वस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वे॒ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्या॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम् ।
अ॒ग्नये॒ जुष्टं॑ गृह्णाम्य॒ग्नीषोमा॑भ्यां जुष्टं॑ गृह्णामि ॥१०॥

पदार्थः—(**देवस्य**) सर्वजगत्प्रकाशकस्य सर्वसुखदातुरीश्वरस्य (**त्वा**) तत् (**सवितुः**) सविता वै देवानां प्रसविता ॥ श० १ । १ । २ । १७ ॥ तस्य सर्वजगदुत्पादकस्य सकलैश्वर्य्यप्रदातुः (**प्रसवे**) सवितृप्रसूतेऽस्मिन् जगति (**अश्विनोः**) सूर्य्याचन्द्रमसोरध्वर्य्वोर्वा । सूर्य्याचन्द्रमसावित्येके ॥ निरु० १२ । १ ॥ (**बाहुभ्यां**) बलवीर्य्याभ्याम् । वीर्यं वा एतद्राजन्यस्य यद्बाहू ॥ श० ५ । ३ । ३ । १७ ॥ (**पूष्णः**) पुष्टिकर्तुः प्राणस्य (**हस्ताभ्याम्**) ग्रहणविसर्जनाभ्याम् (**अग्नये**) अग्निविद्यासंपादनाय (**जुष्टम्**) विद्यां चिकीर्षुभिः सेवितं कर्म (**गृह्णामि**) स्वीकरोमि । (**अग्नीषोमाभ्याम्**) अग्निश्च सोमश्च ताभ्यामग्निजलविद्याभ्याम् (**जुष्टम्**) विद्वद्भिः प्रीतं फलम् (**गृह्णामि**) पूर्ववत् ॥ अयं मंत्रः श० १ । १ । २ । १७-१९ व्याख्यातः ॥ २० ॥

प्रमाणार्थ—(**सवितुः**) शत० (१ । १ । २ । १७) में 'सविता' का अर्थ 'देवों का उत्पन्न करने वाला' किया है । (**अश्विनोः**)निरुक्त (१२ । १) में 'अश्विनौ' का अर्थ सूर्य और चन्द्र किया है । (**बाहुभ्याम्**) शत० (५ । ३ । ३ । १७) में क्षत्रिय के बाहुओं को वीर्य कहा है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१ । १ । २ । १७-१९) में की गई है । १ । १० ॥

सपदार्थान्वयः—**यत् सवितुः** तस्य सर्वजगदुत्पादकस्य सकलैश्वर्यप्रदातुः **देवस्य** सर्वजगत् प्रकाशकस्य सर्वसुखदातुरीश्वरस्य **प्रसवे** सवितृप्रसूतेऽस्मिन् जगति **अश्विनोः** सूर्य्याचन्द्रमसोरध्वर्य्वोर्वा **बाहुभ्यां** बलवीर्य्याभ्यां **पूष्णः** पुष्टिकर्त्तुः प्राणस्य **हस्ताभ्यां** ग्रहणविसर्जनाभ्याम् **अग्नये** अग्निविद्यासम्पादनाय **जुष्टं** विद्यां चिकीर्षुभिः सेवितं कर्म्म **अस्ति, त्वा=तत्कर्माऽहं गृह्णामि** स्वीकरोमि ।

एवं च यद्विद्वद्भिरग्नीषोमाभ्याम् अग्निश्च सोमश्च ताभ्यामग्निजलविद्याभ्यां **जुष्टं=प्रीतं चारु फलं** विद्वद्भिः प्रीतं फलम् **अस्ति तदहं गृह्णामि** स्वीकरोमि ॥ १ । १० ॥

भाषार्थ—जो (**सवितुः**) सब जगत् के उत्पादक, सकल ऐश्वर्य्य के दाता (**देवस्य**) सब जगत् के प्रकाशक, सब सुखों के दाता ईश्वर के (**प्रसवे**) उत्पन्न किये हुए इस जगत् में (**अश्विनोः**) सूर्य चन्द्रमा के (**बाहुभ्याम्**) बल और वीर्य्य से (**पूष्णः**) पुष्टि करने वाले प्राण के (**हस्ताभ्याम्**) ग्रहण और त्याग से (**अग्नये**) अग्नि-विद्या को सिद्ध करने के लिए (**जुष्टम्**) विद्याभिलाषी जनों से सेवित कर्म है, (**त्वा**) उस कर्म को मैं (**गृह्णामि**) स्वीकार करता हूँ ।

और इस प्रकार जो विद्वानों ने (**अग्नीषोमाभ्याम्**) अग्नि और सोम अर्थात् अग्नि और जल विद्या के द्वारा (**जुष्टम्**) जिस सुन्दर फल की कामना की है, उसको मैं (**गृह्णामि**) स्वीकार करता हूँ ॥ १ । १० ॥

[**देवस्य प्रसवे, अग्नये, अश्विनोः अग्नीषोमाभ्यां, बाहुभ्याम्**]

भावार्थः— विद्वद्भिर्मनुष्यैर्विद्वत्संगत्या सम्यक् पुरुषार्थेनेश्वरेणोत्पादितायामस्यां सृष्टौ सकलविद्यासिद्धये सूर्याचन्द्राऽग्निजलादिपदार्थानां सकाशात् सर्वेषां बलवीर्य्यवृद्धये च सर्वा विद्याः संसेव्य प्रचारणीयाः ।

भावार्थ—विद्वान् मनुष्य विद्वानों की संगति से, उचित पुरुषार्थ से, ईश्वर की बनाई इस सृष्टि में सब विद्याओं की सिद्धि के लिए, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, जल आदि पदार्थों से, सब के बल और वीर्य की वृद्धि के लिए सब विद्याओं को पढ़ के उनका प्रचार करें ।

[**तात्पर्यमाह**—]

यथा जगदीश्वरेण सकलपदार्थानामुत्पादनधार-

जैसे ईश्वर ने सब पदार्थों की उत्पत्ति और

णाभ्यां सर्वोपकारः कृतोऽस्ति, तथैवाऽस्माभिरपि नित्यं प्रयतितव्यम् ॥ १ । १० ॥

उनका धारण करके सबका उपकार किया है, वैसे ही हमें भी नित्य प्रयत्न करना चाहिये ॥ १ । १० ॥

भा० पदार्थः—प्रसवे=उत्पादितायामस्यां सृष्टौ । अग्नये=सकलविद्यासिद्धये । बाहुभ्याम् =बलवीर्यवृद्धये ॥

भाष्यसार—१. **ईश्वर**—सब जगत् का उत्पादक और सकल ऐश्वर्य का दाता होने से ईश्वर 'सविता' तथा सब जगत् का प्रकाशक और सब सुखों का दाता होने से 'देव' कहलाता है ॥

२. **जगत्**—सविता ईश्वर ने जगत् को उत्पन्न किया है अतः यह जगत् 'प्रसव' कहलाता है ॥

३. **यज्ञकर्म**—विद्याप्रेमी विद्वान् लोग अग्नि-विद्या की सिद्धि के लिए सूर्य और चन्द्रमा अथवा अध्वर्यु लोगों के बल-वीर्य से तथा वायु की ग्रहण-विसर्जन शक्तियों से यज्ञकर्म को स्वीकार करते हैं ॥

४. **यज्ञफल का ग्रहण**—विद्वान् लोग अग्निविद्या और जलविद्या के द्वारा यज्ञ के प्रिय फल को ग्रहण करते हैं ॥

अन्यत्र व्याख्यात—महर्षि ने इस मन्त्र के प्रमाण से 'सविता' शब्द की व्याख्या पञ्च-महायज्ञ विधि में इस प्रकार की है—"(सवितु) सुनोति, सूयते, सुवति वोत्पादयति सृजति सकलं जगत् स सर्वपिता सर्वेश्वरः सविता परमात्मा, 'सवितुः प्रसवे' इति मन्त्रपदार्थादुत्पत्तेः कर्त्ता योऽर्थोऽस्ति स सवितेत्युच्यत इति मन्तव्यम्" (पञ्चमहा०, ल० ग्र० संग्रह, पृ० २३१) ॥ **भावार्थ**—सकल जगत् का उत्पादक होने से 'सविता' शब्द का अर्थ सब का पिता, सर्वेश्वर परमात्मा है । 'सवितुः प्रसवे' इस मन्त्र के अर्थ से उत्पत्तिकर्त्ता ईश्वर ही 'सविता' पद का अर्थ समझना चाहिये ॥

परमेष्ठी प्रजापतिः । **अग्निः=ईश्वरः, भौतिकोऽग्निः** ॥ स्वराड् जगती ॥ निषादः ॥

यज्ञशालादिगृहाणि कीदृशानि रचनीयानीत्युपदिश्यते ॥

यज्ञशाला आदि घर कैसे बनाने चाहिए, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

भूताय त्वा नारातये स्वरभिविख्येषं दृꣳहन्तां दुर्य्याः पृथिव्यामुर्वन्तरिक्षमन्वेमि ।
पृथिव्यास्त्वा नाभौ सादयाम्यदित्याऽउपस्थेऽग्ने हव्यꣳरक्ष ॥११॥

पदार्थः—(**भूताय**) उत्पन्नानां प्राणिनां सुखाय (**त्वा**) तं कृषिशिल्पादिसाधिनम् (**न**) निषेधार्थे (**अरातये**) रातिर्दानं न विद्यते यस्मिन् तस्मै शत्रवे बहुदानकरणार्थं दारिद्र्यविनाशाय वा (**स्वः**) सुखमुदकं वा । स्वरिति सुखनामसु पठितम् ॥ निघं० ३ । ६ ॥ उदकनामसु च ॥ १ । १२ ॥ (**अभिविख्येषम्**) अभितः=सर्वतो विविधं पश्येयम् । अत्राभिव्योरुपपदे चक्षिङ् इत्यस्याशीर्लिङ्यार्धधातुकसंज्ञामाश्रित्य ख्याञ् आदेशः । लिङ्याशिष्यङित्यङ् सार्वधातुकसंज्ञामाश्रित्य च या इत्यस्य इय् आदेशः । सकारलोपाभाव इति । (**दृꣳहन्ताम्**) दृंहन्तां वर्धयन्ताम् । अत्रान्तर्गतो ण्यर्थः (**दुर्य्याः**) गृहाणि । दुर्य्या इति गृहनामसु पठितम् ॥ निघं० ३ । ४ । (**पृथिव्याम्**) विस्तृतायां भूमौ (**उरु**) बहु (**अन्तरिक्षम्**) अवकाशं सुखेन निवासार्थम् (**अनु**) क्रियार्थे (**एमि**) प्राप्नोमि (**पृथिव्याः**) शुद्धाया विस्तृताया भूमेः (**त्वा**) तं पूर्वोक्तं यज्ञम् (**नाभौ**) मध्ये (**सादयामि**) स्थापयामि (**अदित्याः**) विज्ञानदीप्तेर्वेदवाचः सकाशादन्तरिक्षे मेघमंडलस्य मध्ये, अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमिति

मंत्रप्रामाण्यात् ॥ ऋ० १ । ८ । ६ । १० ॥ अदितिरिति वाङ्नामसु पठितम् ॥ निघं० १ । ११ ॥ पदनामसु च ॥ निघं० ४ । १ ॥ (उपस्थे) समीपे (अग्ने) परमेश्वर ! (हव्यम्) दातुं ग्रहीतुं योग्यं क्रियाकौशलं सुखं वा (रक्ष) पालय ॥ अयं मंत्रः श० १ । १ । २ । २०—२३ व्याख्यातः ॥ ११ ॥

प्रमाणार्थ—(स्वः) 'स्वः' शब्द निघं० (३ । ६) में सुख नामों में पढ़ा है और निघं० (१ । १२) में उदक (जल) नामों में भी पढ़ा है । (अभिविख्येषम्) यहां अभि-वि के उपपद रहते 'चक्षिङ्' धातु को आशीर्लिङ् में आर्धधातुक संज्ञा होने से 'ख्याञ्' आदेश है और 'लिङ्याशिष्यङ्' से अङ्, पुनः सार्वधातुक संज्ञा के आश्रय से 'या' को 'इय' हुआ एवं सकार का लोप नहीं है (दृंहन्ताम्) यहाँ अन्तर्भावित ण्यर्थ है (दुर्य्याः) 'दुर्य्याः' शब्द निघं० (३ । ४) में गृहनामों में पढ़ा है । (अदित्याः) 'अदिति' शब्द ऋ० (१ । ८ । ६ । १०) में द्यौ और अन्तरिक्ष अर्थ में आया है । निघं० (१ । ११) में 'अदिति' शब्द वाणी के नामों में पढ़ा है । निघं० (४ । १) में 'अदिति' शब्द पदनामों में पढ़ा है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१ । १ । २ । २०-२३) में की गई है । १ । ११ ॥

सपदार्थान्वयः—अहं यं भूताय उत्पन्नानां प्राणिनां सुखाय अरातये=अदानाय रातिः=दानं न विद्यते यस्मिन् तस्मै शत्रवे, बहुदानकरणार्थं, दारिद्र्यविनाशाय वा अदित्याः विज्ञानदीप्तेर्वेदवाचः सकाशादन्तरिक्षे मेघमण्डलस्य मध्ये उपस्थे समीपे यज्ञं सादयामि स्थापयामि [त्वा]=तं (तं) कृषिशिल्पादिसाधिनं [न] कदाचिन्न त्यजामि ।

हे विद्वांसो ! भवन्तः पृथिव्यां विस्तृतायां भूमौ दुर्य्याः गृहाणि दृंहन्तां=वर्धयन्ताम् । अहं पृथिव्याः शुद्धाया विस्तृताया भूमेः नाभौ=मध्ये, येषु गृहेषु स्वः सुखमुदकं वा अभिविख्येषम् अभितः सर्वतो विविधं पश्येयम्, यस्यां पृथिव्यां विस्तृतायां भूमौ उरु बहु अन्तरिक्षम् अवकाशं सुखेन निवासार्थं च, अन्वेमि प्राप्नोमि ।

हे अग्ने=जगदीश्वर ! परमेश्वर ! त्वमस्माकं हव्यं दातुं ग्रहीतुं योग्यं क्रियाकौशलं सुखं वा सर्वदा रक्ष पालय । इत्येकोऽन्वयः ॥

भावार्थ—मैं जिस यज्ञ को (भूताय) उत्पन्न प्राणियों के सुख के लिये (अरातये) शत्रु के लिये, बहुत दान करने के लिये अथवा दरिद्रता के विनाश के लिये (अदित्याः) विज्ञान के दीपक वेद की वाणी से आकाश में मेघमण्डल के (उपस्थे) मध्य में (सादयामि) स्थापित करूँ (त्वा) उस कृषि और शिल्प आदि के साधक यज्ञ को [न] कभी न छोड़ूँ ।

हे विद्वानो ! आप (पृथिव्याम्) इस विस्तृत भूमि पर (दुर्याः) घरों को (दृंहन्ताम्) बढ़ावें । मैं (पृथिव्याः) शुद्ध विस्तृत भूमि के (नाभौ) मध्य में जिन घरों में (स्वः) सुख एवं जल आदि सुख के साधन हों उन्हें (अभिविख्येषम्) सब ओर देखूँ, और जिस (पृथिव्याम्) विस्तृत भूमि पर (उरु) बहुत (अन्तरिक्षम्) सुख से निवास के लिये अवकाश हो उसे (अन्वेमि) प्राप्त करूँ ।

हे (अग्ने) जगत् के स्वामी परमेश्वर ! आप हमारे (हव्यम्) परस्पर देने-लेने योग्य क्रियाकौशल वा सुख की सदा (रक्ष) रक्षा करो ॥ यह मन्त्र का पहला अन्वय है ॥

अथ द्वितीयमन्वयमाह—हे अग्ने=जगदीश्वर ! अहं भूताय उत्पन्नानां प्राणिनां सुखाय अरातये रातिः=दानं न विद्यते यस्मिन् तस्मै शत्रवे बहुदानकरणार्थं, दारिद्र्यविनाशाय वा पृथिव्याः शुद्धाया विस्तृताया भूमेः

दूसरा अन्वय—हे (अग्ने) जगदीश्वर ! मैं (भूताय) उत्पन्न प्राणियों के सुख के लिये (अरातये) शत्रु के लिये, बहुत दान करने के लिये अथवा दरिद्रता के विनाश के लिये (पृथिव्याः) शुद्ध विस्तृत भूमि के (नाभौ)

नाभौ मध्ये ईश्वरत्वो पास्यत्वाभ्यां **स्वः**=सुख-रूपं सुखमुदकं वा [**त्वा**]=**त्वामभिविख्येषम्**=**प्रकाशयामि** अभितः सर्वतो विविधं पश्येयम ।

भवत्कृपयेमेऽस्माकं **दुर्याः**=गृहादयः पदार्था-स्तत्रस्था मनुष्यादयः प्राणिनो **दृंहन्ताम्**=नित्यं वर्धन्ताम् ।

अहं पृथिव्यां विस्तृतायां भूमौ **उरु** बहु **अन्त-रिक्षम्**=व्यापकम् अवकाशं सुखेन निवासार्थम् **उपस्थे** समीपे **त्वा**=त्वामन्वेमि=नित्यं **प्राप्नोमि** [**न**] न कदाचित् त्वा=त्वां त्यजामि । त्वमिद-मस्माकं हव्यं दातुं ग्रहीतुं योग्यं क्रियाकौशलं सुखं वा **सर्वदा रक्ष** पालय ।। **इति द्वितीयः** ।।

मध्य में ईश्वर और उपास्य होने से (**स्वः**) सुख-स्वरूप एवं सुख शान्ति के निमित्त [**त्वा**] आपको (**अभिविख्येषम्**) सब ओर विविध प्रकार से देखूँ ।

आपकी कृपा से ये हमारे (**दुर्याः**) गृह आदि पदार्थ और वहाँ रहने वाले मनुष्य आदि प्राणी (**दृंहन्ताम्**) नित्य वृद्धि को प्राप्त हों ।

मैं (**पृथिव्याम्**) विस्तृत भूमि पर (**उरु**) बहुत (**अन्तरिक्षम्**) व्यापक एवं सुख से निवास के लिये अवकाश (**उपस्थे**) में (**त्वा**) आपको (**अन्वेमि**) प्राप्त करू और (**त्वा**) आपको [**न**] कभी न छोड़ूँ । आप हमारे इस (**हव्यम्**) परस्पर देने-लेने योग्य क्रियाकौशल वा सुख की सदा (**रक्ष**) रक्षा कीजिये ।। यह मन्त्र का दूसरा अन्वय है ।।

अथ तृतीयमन्वयमाह—**अहं** शिल्पविद् **यजमानो भूताय** उत्पन्नानां प्राणिनां सुखाय **अरातये** रातिः=दानं न विद्यते यस्मिन् तस्मै शत्रवे, बहुदानकरणार्थं, दारिद्र्यविनाशाय वा **पृथिव्याः** शुद्धाया विस्तृताया भूमेः **नाभौ** मध्ये **त्वा**=तमग्निं होमार्थं शिल्पविद्यार्थं च **सादयामि** स्थापयामि ।

यतोऽयमग्निरदित्याः=**अन्तरिक्षस्य** विज्ञानदीप्ते र्वेदवाचः सकाशादन्तरिक्षे मेघमण्डलस्य मध्ये **उप-स्थे** समीपे हुतं द्रव्यं **रक्षति, तस्मात् तं पृथिव्यां** विस्तृतायां भूमौ **स्थापयित्वा उरु** बहु **अन्तरिक्षम्** अवकाशं सुखेन निवासार्थम् **अन्वेमि** प्राप्नोमि, **अत एव त्वा**=**तं पृथिव्यां** विस्तृतायां भूमौ **सादयामि** स्थापयामि ।

एवं कुर्वन्नहं स्वः सुखमुदकं वा **अभिविख्येषम्** अभितः सर्वतो विविधं पश्येयम्, **तथैवेमे दुर्याः**=**प्रासादास्तत्स्था मनुष्याश्च**, गृहाणि, **दृंहन्ताम्**=**शुभगुणै** र्वर्धन्तामिति **मत्वा तमिमभग्निं** [**न**] **कदा चिन्नाहं त्यजामि । इति तृतीयोऽन्वयः** ।। १ । ११ ।।

तीसरा अन्वय—मैं शिल्प का ज्ञाता यजमान (**भूताय**) उत्पन्न प्राणियों के सुख के लिये (**अरातये**) शत्रु के लिये, बहुत दान करने के लिये अथवा दरिद्रता के विनाश के लिये (**पृथिव्याः**) शुद्ध विस्तृत भूमि के (**नाभौ**) मध्य में (**त्वा**) उस अग्नि को होम और शिल्प विद्या के लिये (**सादयामि**) स्थापित करता हूँ ।

क्योंकि—यह अग्नि (**अदित्याः**) विज्ञान के दीपक वेद की वाणी से आकाश में मेघमण्डल के (**उपस्थे**) मध्य में होम किये हुए द्रव्य की रक्षा करता है, इसलिये उसे (**पृथिव्याम्**) विस्तृत पृथिवी पर (**उरु**) बहुत (**अन्तरिक्षम्**) सुख से निवास के लिये अवकाश को (**अन्वेमि**) प्राप्त करूँ और इसीलिये (**त्वा**) उस अग्नि को (**पृथिव्याम्**) विस्तृत भूमि पर (**सादयामि**) स्थापित करता हूँ ।

इस प्रकार करता हुआ मैं (**स्वः**) सुख वा शान्ति को (**अभिविख्येषम्**) सब ओर से देखूँ, वैसे ही ये (**दुर्याः**) प्रासाद महल, घर और वहाँ रहने वाले मनुष्य (**दृंहन्ताम्**) शुभ गुणों से वृद्धि को प्राप्त हों, ऐसा समझ कर उक्त इस अग्नि को [**न**] मैं कभी न छोड़ूँ । यह मन्त्र का तीसरा अन्वय है ।। १ । ११ ।।

[अहं...भूताय...अदित्या उपस्थे...सादयामि]

भावार्थः—अत्र श्लेषालङ्कारः । ईश्वरेण मनुष्य आज्ञाप्यते—हे मनुष्य ! अहं त्वां सर्वेषां भूतानां सुखदानाय पृथिव्यां रक्षयामि ।

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष अलंकार है । ईश्वर मनुष्य को आज्ञा देता है—हे मनुष्य ! मैं तुझे सब प्राणियों को सुख देने के लिये पृथिवी पर स्थापित करता हूँ ।

[हे विद्वांसो ! भवन्तः पृथिव्यां दुर्य्या दृंहन्ताम्=वर्धयन्ताम्,—गृहेषु स्वरभिविख्येषम्, उर्वन्तरिक्षं चान्वेमि]

त्वया वेदविद्याधर्मानुष्ठानयुक्तेन पुरुषार्थेन सुन्दराणि सर्वर्तुसुखयुक्तानि सर्वतो विशालावकाशसहितानि च गृहाणि रचयित्वा सुखं प्रापणीयम् ।

तू वेदविद्या धर्मानुष्ठान से युक्त पुरुषार्थ से सुन्दर, सब ऋतुओं में सुखदायक, सब ओर से विशाल अवकाश युक्त घरों को बना कर सुख को प्राप्त कर ।

[अहं शिल्पविद्यजमानो=पृथिव्या नाभौ त्वा=तमग्निं होमार्थं शिल्पविद्यार्थं च सादयामि]

तथा—मत्सृष्टौ यावन्तः पदार्थाः सन्ति तेषां सम्यग्गुणान्वेषणं कृत्वाऽनेका विद्याः प्रत्यक्षीकृत्य तासां रक्षणं प्रचारश्च सदैव संभावनीयः ।

तथा—मेरी सृष्टि में जितने पदार्थ हैं उनके ठीक-ठीक गुणां का अन्वेषण एवं अनेक विद्याओं का प्रत्यक्ष करके उनकी रक्षा और प्रचार सदा किया कर ।

[हे अग्ने=जगदीश्वर ! अहं—ईश्वरत्वेनोपास्यत्वाभ्यां स्वः—सुखरूपं [त्वा] त्वामभिविख्येषम्]

मनुष्येणात्रैवं मन्तव्यम्—सर्वत्राभिव्यापकं सर्वसाक्षिणं सर्वमित्रं सर्वसुखवर्द्धकमुपासितुमर्हं सर्वशक्तिमन्तं परमेश्वरं ज्ञात्वा,

मनुष्यों को यहां यह समझने योग्य है कि—वे सर्वव्यापक, सब के साक्षी, सब के मित्र, सब सुखों के वर्द्धक, उपासना के योग्य, सर्वशक्तिमान् परमेश्वर को जानकर ।

[भवत्कृपयेमेऽस्माकं दुर्य्या...दृंहन्ताम्, अहं...त्वामन्वेमि, [न] न कदाचित् त्वां त्यजामि, त्वमिमस्माकं हव्यं सर्वदा रक्ष]

सर्वोपकारो, विविधविद्यावृद्धिधर्मोपस्थापनमधर्माद् दूरे स्थितिः क्रियाकौशलसम्पादनं, यज्ञक्रियानुष्ठानं च कर्त्तव्यमिति ।।

सब का उपकार, विविध विद्या की वृद्धि, धर्म में प्रवृत्ति, अधर्म से निवृत्ति, क्रियाकौशल की सिद्धि, यज्ञक्रिया का अनुष्ठान करें ।

[महीधरभ्रान्तिमाह—]

अत्र महीधरेण भ्रान्त्या "अभिविख्येषमिति" पदं 'ख्या प्रकथने' इत्यस्य दर्शनार्थे गृहीतं, तत्—धात्वर्थादेव विरुद्धम् ।। १ । ११ ।।

इस मन्त्र में महीधर ने भ्रान्ति से 'अभिविख्येषम्' इस पद को 'ख्या प्रकथने' इस धातु को दर्शन अर्थ में ग्रहण करके सिद्ध किया है जो धात्वर्थ से विरुद्ध होने से अशुद्ध है ।। १ । ११ ।।

भा० पदार्थः—**भूताय**=सर्वेषां भूतानां सुखदानाय । अदित्याः=पृथिव्याः । सादयामि=रक्षयामि । दुर्याः=सुन्दराणि सर्वर्तुसुखयुक्तानि गृहाणि । उरु=विशालम् । अन्तरिक्षम्=अवकाशम् । स्वः=सर्वत्राभिव्यापकं सर्वसाक्षिणं सर्वमित्रं सर्वसुखवर्द्धकमुपासितुमर्हं सर्वशक्तिमन्तं परमेश्वरम् । हव्यम्=क्रियाकौशलसम्पादनम्, यज्ञक्रियानुष्ठानम् ।।

भाष्यसार—१. **यज्ञ**—सब प्राणियों के लिये सुखदायक, शत्रुओं का विनाशक, दान करने का स्थान, और दारिद्रय का विनाशक, कृषि और शिल्पविद्या का साधक है। उसे वेदवाणी से आकाश और मेघमण्डल में स्थापित करें। उस यज्ञ का कोई त्याग न करे।

२. **यज्ञशाला आदि घर**—विद्वान् लोग इस विशाल भूमि पर यज्ञशाला आदि घरों की रचना करें, जिनमें निवास के लिए पर्याप्त स्थान तथा जल आदि सब सुख के साधन हों।

३. **ईश्वर-प्रार्थना**—हे अग्ने जगदीश्वर! सब प्राणियों के सुख के लिए, शत्रु और दारिद्रय आदि दुःखों के विनाश के लिये, दान-भावना के विकास के लिये मैं आपको सब ओर देख रहा हूँ क्योंकि आप ही ईश्वर, उपासना के योग्य, सुखस्वरूप, सब सुखों के दाता और जल के समान शान्ति-प्रदाता हो। आपकी कृपा से हमारे घर, उनमें स्थित सब पदार्थ और प्राणी उन्नति को प्राप्त हों। मैं उनमें सुख से निवास के लिये पर्याप्ति अवकाश को प्राप्त करूँ तथा आपको सदा समीप समझूं। आपको कभी न छोड़ूँ। आप हमारे यज्ञ, क्रियाकौशल और सुखों की सदा रक्षा कीजिये।

४. **भौतिक अग्नि**—शिल्पविद्या के ज्ञाता विद्वान् लोग भौतिक अग्नि को होम और शिल्पविद्या की सिद्धि के लिये स्थापित करते हैं। यह भौतिक अग्नि सब प्राणियों के लिये सुखदायक, शत्रु और दारिद्रय का विनाशक, दान-भावना का विकासक है। यह अग्नि होम किये हुए द्रव्य को आकाश और मेघमण्डल में स्थापित कर देता है जिससे सब ओर सुख का विस्तार होता है। घर और उनमें रहने वाले मनुष्यों में शुभ गुणों की वृद्धि होती है।

५. **महीधर की भ्रान्ति**—महीधर ने 'अभिविख्येषम्' पद की सिद्धि 'ख्या प्रकथने' धातु से की है और अर्थ 'दर्शन' ग्रहण किया है। जब 'ख्या' धातु कहने अर्थ में है तो 'दर्शन' अर्थ कैसे लिया जा सकता है। महर्षि ने उक्त पद की सिद्धि 'दर्शन' अर्थ वाली 'चक्षिङ्' धातु के स्थान पर 'ख्यात्र्' आदेश से की है जो सर्वथा उचित है और महीधर की भारी भूल है॥

परमेष्ठी प्रजापतिः। **अप्सवितारौ**=**जलम्, ईश्वरः**। भुरिगत्यष्टिः। धैवतः॥

अग्नौ हुतं द्रव्यं मेघमंडलं प्राप्य कीदृशं भवतीत्युपदिश्यते॥

अग्नि में जिस द्रव्य का होम किया जाता है वह मेघमंडल को प्राप्त होके किस प्रकार का होकर क्या गुण करता है, इस बात का उपदेश ईश्वर ने किया है॥

पवित्रें स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसव उत्पुंनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेंण सूर्य्यस्य रश्मिभिः।
देवींरापोऽअग्रेगुवोऽअग्रेपुवोऽग्रंऽइममद्य यज्ञं नंयताग्रे यज्ञपतिꣳसुधातुं यज्ञपतिं देवयुवम्॥१२॥

पदार्थः—(**पवित्रे**) पवित्रकरणहेतू प्राणापानगती (**स्थः**) भवतः। अत्र व्यत्ययः (**वैष्णव्यौ**) यज्ञस्येमौ व्याप्तिकर्तारौ=पवनपावकौ तौ (**सवितुः**) जगदुत्पादकस्येश्वरस्य (**वः**) ताः। अत्र पुरुषव्यत्ययः (**प्रसवे**) उत्पन्नेऽस्मिन् जगति (**उद्**) धात्वर्थे। उदित्येतयोः प्रातिलोम्यं प्राह॥ निरु० १।३॥ (**पुनामि**) पवित्रीकरोमि (**अच्छिद्रेण**) छिद्ररहितैः (**पवित्रेण**) शुद्धिकरणहेतुभिः (**सूर्य्यस्य**) प्रत्यक्षलोकस्य (**रश्मिभिः**) किरणैः (**देवीः**) दिव्यगुणयुक्ताः। अत्र सुपां सुलुगिति पूर्वसवर्णादेशः (**आपः**) जलानि (**अग्रेगुवः**) अग्रे=समुद्रेऽन्तरिक्षे गच्छन्तीति ताः (**अग्रेपुवः**) प्रथमां पृथिवीस्थसोमौषधि सेविकाः (**अग्रे**) पुरःसरत्वे क्रियासंबंधे (**इमम्**) प्रत्यक्षम् (**अद्य**) अस्मिन्नहनि (**यज्ञम्**) पूर्वोक्तम् (**नयत**) प्रापयत (**अग्रे**) (**यज्ञपतिम्**) यज्ञस्या-

नुष्ठातारं स्वामिनम् (**सुधातुम्**) शोभना धातवः=शरीरस्था मन-आदयः सुवर्णादयो वा यस्य तम् (**यज्ञपतिम्**) यज्ञस्य कामयितारम् (**देवयुवम्**) देवान्=विदुषो दिव्यगुणान्वा यौति=प्राप्नोति प्रापयतीति वा तम् ।। **अयं मंत्रः श० १ । १ । ३ । १-७ व्याख्यातः ।। १२ ।।**

प्रमाणार्थ :—(**स्थः**) भवतः । यहाँ व्यत्यय है । (**वः**) ताः । यहाँ पुरुष-व्यत्यय है । (**उद्**) 'उद्' उपसर्ग निरु० (१ । ३) के अनुसार 'नि' और 'अव' के विपरीत अर्थ को कहता है । (**देवी**) दिव्यगुणयुक्ताः । यहाँ 'सुपां सुलुक्पूर्वसवर्ण०' से पूर्वसवर्ण आदेश है । इस मंत्र की व्याख्या शत० (१ । १ । ३ । १—७) में की गई है । १ । १२ ।।

सपदार्थान्वयः—हे **विद्वांसः** ! **यथा सवितुः**=**परमेश्वरस्य** जगदुत्पादकस्येश्वरस्य **प्रसवे**=**अस्मिन् संसारे** उत्पन्नेऽस्मिन् जगति **अच्छिद्रेण** छिद्ररहितैः [**पवित्रेण**] शुद्धिकरणहेतुभिः **सूर्यस्य** प्रत्यक्षलोकस्य **रश्मिभिः** किरणैः **पवित्रे**=शुद्धौ पवित्रकरणहेतू प्राणाऽपानगती **वैष्णव्यौ**=**पवनपावकौ** यज्ञस्येमौ व्याप्तिकर्त्तारौ पवनपावकौ तौ **स्थः**=**भवतः**, **यथा चैतैरग्रेगुवः** अग्रे=समुद्रेऽन्तरिक्षे गच्छन्तीति ता **अग्रेपुवः** प्रथमां पृथिवीस्थसोमौषधि सेविकाः **देवीः** दिव्यगुणयुक्ताः **आपः** जलानि **पवित्रा भवेयुस्तथा शुद्धानि द्रव्याण्यग्नौ** [**नयत**]=**प्रापयत**, **तथैवाऽहमद्य** अस्मिन्नहनि **इमं** प्रत्यक्षं **यज्ञं** पूर्वोक्तम् **अग्रे नीत्वाऽग्रे सुधातुं** शोभना धातवः=शरीरस्था मनआदयः सुवर्णादयो वा यस्य तं **यज्ञपतिं** वा यज्ञस्यानुष्ठातारं स्वामिनं **देवयुवं** देवान्=विदुषो दिव्यगुणान्वा यौति=प्राप्नोति प्रापयतीति वा तं **यज्ञपतिं** यज्ञस्य कामयितारं **चोत्पुनामि** पवित्री करोमि ।। १ । १२ ।।

भाषार्थ—हे विद्वानो ! जैसे (**सवितुः**) जगत् की उत्पत्ति करने वाले ईश्वर के (**प्रसवे**) उत्पन्न किए इस जगत् में (**अच्छिद्रेण**) दोष-रहित (**पवित्रेण**) शुद्धि के निमित्त (**सूर्यस्य**) इस प्रत्यक्ष सूर्य की (**रश्मिभिः**) किरणों से (**पवित्रे**) शुद्ध एवं पवित्रताकारक प्राण और अपान की गति (**वैष्णव्यौ**) यज्ञ को व्यापक बनाने वाले वायु और अग्नि (**स्थः**) हैं, और जैसे-- इन सूर्य-किरणों से (**अग्रेगुवः**) आगे समुद्र अर्थात् अन्तरिक्ष में जाने वाले (**अग्रेपुवः**) प्रथम पृथिवी में स्थित सोम ओषधि के सेवक (**देवीः**) दिव्य-गुणों से युक्त (**आप**) जल हैं, वे पवित्र हों, वैसे शुद्ध पदार्थों की अग्नि में [**नयत**] आहुति दो । वैसे ही मैं (**अद्य**) आज (**इमाम्**) इस (**यज्ञम्**) पूर्वोक्त यज्ञ को (**अग्रे**) आगे ले जाकर (**अग्रे**) प्रथम (**सुधातुम्**) जिसके शरीर में धातु तथा मन आदि उत्तम हैं, एवं जिसके पास सुवर्णादि धातु पुष्कल हैं, उस (**यज्ञपतिम्**) यज्ञ करने वाले स्वामी को (**देवयुवम्**) विद्वानों अथवा दिव्यगुणों को स्वयं प्राप्त तथा अन्यों को भी प्राप्त कराने वाले और (**यज्ञपतिम्**) यज्ञ की कामना करने वाले को (**उत्पुनामि**) पवित्र करता हूँ ।। १ । १२ ।।

[अच्छिद्रेण [पवित्रेण] सूर्यस्य रश्मिभिः पवित्रे=शुद्धौ वैष्णव्यौ=पवनपावकौ स्थः=भवतः]

भावार्थ :—अत्र लुप्तोपमालङ्कारः । ये पदार्थाः संयोगेन विकारं प्राप्नुवन्ति, अग्निना छिन्नाः पृथक्-पृथक् परमाणवो भूत्वा वायौ विहरन्ति, ते शुद्धा भवन्ति ।

यथा यज्ञानुष्ठानेन वायुजलानामुत्तमे शुद्धिपुष्टी जायेते, न तथाऽन्येन भवितुमर्हतः, तस्माद्धोमक्रियाशुद्धैर्वाय्वग्निजलादिभिः शिल्पविद्यया यानानि

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमा अलंकार है । जो पदार्थ संयोग से विकार को प्राप्त होते हैं वे अग्नि से छिन्न हुए पृथक्-पृथक् परमाणु बनकर वायु में घूमते हैं, वे शुद्ध होते हैं ।

जैसी यज्ञ करने से वायु और जल की उत्तम शुद्धि और पुष्टि होती है, वैसे अन्य प्रकार से नहीं हो सकती, इसलिये होम-क्रिया से शुद्ध किये हुए

साधयित्वा कामनासिद्धिं कुर्युः, कारयेयुश्च ।

वायु, अग्नि और जल आदि से शिल्पविद्या के द्वारा यानों को सिद्ध करके अपनी और दूसरों की भी कामना को सिद्ध करें ।

[अग्रेगुवः—अग्रेपुवो—आपः]

या आपोऽस्मात्स्थानादुत्थाय समुद्रम्=अन्तरिक्षं गच्छन्ति, ततः पुनः पृथिव्यादिपदार्थानागच्छन्ति ताः प्रथमाः संख्यायन्ते, या मेघस्थास्ता द्वितीया इति ।।

जो जल इस स्थान से उठकर समुद्र अर्थात् आकाश में जाते हैं, वहाँ से फिर पृथिवी आदि पदार्थों में आते हैं वे प्रथम जल कहलाते हैं और जो मेघस्थ हैं वे द्वितीय जल हैं ।।

[अत्र शतपथे मेघविद्यामाह—]

शतपथब्राह्मणे मेघस्य=वृत्रस्य सूर्यलोकस्य च युद्धाख्यायिकयाऽस्य मन्त्रस्य व्याख्याने मेघविद्योक्ता ।। १ । १२ ।।

शतपथब्राह्मण में मेघ अर्थात् वृत्र और सूर्यलोक की युद्ध-कथा से इस मन्त्र की व्याख्या में मेघविद्या बतलाई गई है ।। १ । १२ ।।

भा० पदार्थः—अग्रेग्रुवः=या आपोऽस्मात्स्थानादुत्थाय समुद्रम्=अन्तरिक्षं गच्छन्ति ततः पुनः पृथिव्यादिपदार्थानागच्छन्ति ताः प्रथमाः (**आपः**) । अग्रेपुवः=या मेघस्थास्ता द्वितीयाः (**आपः**) ।।

भाष्यसार— १. **ईश्वर**—जगत् को उत्पन्न करने वाला सविता ।

२. **हुत द्रव्य**—यज्ञ में होम किया हुआ द्रव्य पवित्र सूर्य की किरणों के द्वारा वायु और अग्नि को पवित्र करता है । और ये पवित्र किरणें आकाश को, पृथिवीस्थ सोम आदि औषधियों को मेघमण्डल में स्थित दिव्य जलों को पवित्र करता है तथा यज्ञपति को भी पवित्र करता है ।

३. **यज्ञपति**—जिसके शरीर की सब धातु तथा मन आदि भी श्रेष्ठ हैं, जो सुवर्ण आदि धातुओं वाला है, जो यज्ञ का अनुष्ठाता एवं स्वामी है, जो विद्वानों का संग करने वाला तथा दिव्यगुणों का प्रापक है और यज्ञ की कामना करने वाला है ।।

●

परमेष्ठी प्रजापतिः । **इन्द्रः=सूर्यः** । निचृदुष्णिक् । ऋषभः ।
अग्नये त्वेत्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्देवता (भौतिकः, परमेश्वरः) ।
भुरिगार्ची गायत्री छन्द । षड्जः स्वरः । दैव्याय कर्मणे इत्यस्य ऋष स एव ।
यज्ञो देवता । भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषिभः स्वरः ।।
पुनस्ताः कथंभूता आप इन्द्रवृत्रयुद्धं चेत्युपदिश्यते ।।

उक्त जल किस प्रकार के हैं तथा इन्द्र और वृत्र का युद्ध कैसे होता है, यह उपदेश किया है ।।

युष्मा ऽ इन्द्रोऽवृणीत वृत्रतूर्ये यूयमिन्द्रमवृणीध्वं वृत्रतूर्ये प्रोक्षिता स्थ ।
अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षाम्यग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ।
दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वं देवयज्यायै यद्वोऽशुद्धाः पराजघ्नुरिदं वस्तच्छुन्धामि ।।१३।।

पदार्थः—(**युष्माः**) ताः पूर्वोक्ता आपः । अत्र व्यत्ययः । वा छन्दसि सर्वे विधयो भवन्तीति शसः

सकारस्य नत्वाभावश्च (इन्द्रः) सूर्य्यलोकः (अवृणीत) वृणीते। अत्र लडर्थे लङ् (वृत्रतूर्य्ये) वृत्रस्य=मेघस्य तूर्य्यो=वधस्तस्मिन्। वृत्र इति मेघनामसु पठितम्॥ निघ० १। १०॥ तूरी गतित्वरणहिंसनयोरित्यस्मात्कर्मणि ण्यत्। वृत्रतूर्य्य इति संग्रामनामसु पठितम्॥ निघं० २। १७॥ (यूयम्) विद्वांसो मनुष्याः (इन्द्रम्) वायुम्। इन्द्रेण वायुना॥ ऋ० १। १४। १०॥ इतीन्द्रशब्देन वायोर्ग्रहणम् (अवृणीध्वम्) वृणते=स्वीकुरुध्वम्। अत्र प्रथमपक्षे लडर्थे लङ् (वृत्रतूर्य्ये) वृत्रस्य तूर्य्ये=शीघ्रवेगे। (प्रोक्षिताः) प्रकृष्टतया सिक्ताः सेचिता वा (स्थ) भवन्ति। अत्रापि व्यत्ययः (अग्नये) भौतिकाय परमेश्वराय वा (त्वा) तं यज्ञम् (जुष्टम्) विद्याप्रीतिक्रियाभिः सेवितम् प्रोक्षामि) सेचयामि (अग्नीषोमाभ्याम्) अग्निश्च सोमश्च ताभ्याम् (त्वा) तं वृष्टयर्थम् (जुष्टम्) प्रीतं प्रीत्या सेवनीयम् (प्रोक्षामि) प्रेरयामि (दैव्याय) दिवि भवं दिव्यं तस्य भावस्तस्मै (कर्मणे) पंचविधलक्षणचेष्टामात्राय। उत्क्षेपणमवक्षेपणमाकुंचनं प्रसारणं गमनमिति कर्माणि॥ वैशे० १। ७॥ इत्यत्र पञ्चविधं कर्म गृह्यते (शुन्धध्वम्) शुन्धन्ति शोधयत वा। अत्रापि व्यत्यय आत्मनेपदं च (देवयज्यायै) देवानां=विदुषां दिव्यगुणानां वा यज्या—सत्क्रिया तस्यै। छन्दसि निष्टर्क्य०॥ अ० ३। १। १२३॥ इति देवयज्याशब्दो निपातितः (यत्) यस्माद्यज्ञेन शोधितत्वात् (वः) तासां युष्माकं वा (अशुद्धाः) न शुद्धा=अशुद्धा गुणाः (पराजघ्नुः) पराहता=विनष्टा भवेयुः। अत्र लिङर्थे लिट् (इदम्) शोधनम् (वः) तासां युष्माकं वा (तत्) तस्मादशुद्धिनाशेन सुखार्थत्वात् (शुन्धामि) पवित्री करोमि॥ अयं मंत्रः श० १। १। ३। ८—१२ व्याख्यातः॥ १३॥

प्रमाणार्थ—(युष्माः) ताः पूर्वोक्ता आपः। यहाँ व्यत्यय है। 'वा छन्दसि' सूत्र से वेद में समस्त विधियां विकल्पित हो जाती हैं अतः शस के सकार को नकार नहीं हुआ। (अवृणीत) वृणीते। यहाँ लट् अर्थ में लङ् लकार है। (वृत्रतूर्य्ये) 'वृत्र' शब्द निघं० (१। १०) में मेघनामों में पढ़ा है। 'तूर्य्य' शब्द में गतित्वरण और हिंसन अर्थ वाली 'तूरी' धातु से कर्म में ण्यत् प्रत्यय है। 'वृत्रतूर्य्य' शब्द निघं० (२। १७) में संग्राम-नामों में पढ़ा है। (इन्द्रम्) वायुम्। ऋ० (१। १४। १०) में इन्द्र शब्द से वायु का ग्रहण किया है। (अवृणीध्वम्) वृणते, स्वीकुरुध्वम्। यहाँ प्रथम पक्ष में लट् अर्थ में लङ् लकार है। (स्थ) भवन्ति। यहां भी व्यत्यय है। (कर्मणे) पंचविधलक्षणचेष्टामात्राय। वैशेषिक (१। ७) में उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुञ्चन, प्रसारण और गमन ये पांच प्रकार के कर्म बताए गए हैं। (शुन्धध्वम्) शुन्धन्ति शोधयत वा। यहाँ भी व्यत्यय और आत्मनेपद है। (देवयज्यायै) 'देवयज्या' शब्द 'छन्दसि निष्टर्क्य०' (अ० ३। १। १२३) में निपातित है। (पराजघ्नुः) पराहता भवेयुः। यहां लिङ् अर्थ में लिट् लकार है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१। १। ३। ८—१२) में की गई है। १। १३॥

सपदार्थान्वयः—यथाऽयमिन्द्रः सूर्यलोकः **वृत्रतूर्ये** वृत्रस्य=मेघस्य तूर्यो=वधस्तस्मिन् **युष्माः=ताः पूर्वोक्ता अपः अवृणीत=वृणीते, यथा ता इन्द्रं=वायुम वृणीध्वं=वृणते तथैव ता अपो यूयं** विद्वांसो मनुष्या **वृत्रतूर्ये** वृत्रस्य तूर्ये=शीघ्रवेगे **प्रोक्षिताः** प्रकृष्टतया सिक्ताः सेचिता वा **वृणीध्वम्।**

यथा ता आपः शुद्धाः स्थ=भवेयुः भवन्ति **एतदर्थमहं यज्ञानुष्ठाता दैव्याय** दिवि भवं दिव्यं तस्य

भाषार्थ—जैसे यह (इन्द्रः) सूर्यलोक (वृत्रतूर्ये) मेघ के वध करने के लिये (युष्माः) उन पूर्वोक्त जलों को (अवृणीत) स्वीकार करता है, और जैसे वे जल (इन्द्रम्) वायु को (अवृणीध्वम्) स्वीकार करते हैं वैसे ही उन जलों को (यूयम्) तुम विद्वान् लोग (वृत्रतूर्ये) मेघ के शीघ्र वेग में (प्रोक्षिताः) उत्तम रीति से सींचे हुए (वृणीध्वम्) स्वीकार करो।

जैसे वे जल शुद्ध (स्थ) होवें इसलिये मैं यजमान (दैव्याय) दिव्य (कर्म) पांच प्रकार के कर्मों

भावस्तस्मै **कर्मणे** पंचविधलक्षणचेष्टामात्राय **देवयज्यायै** देवानां=विदुषां दिव्यगुणानां वा यज्या=सत्क्रिया तस्यै **अग्नये** भौतिकाय परमेश्वराय वा **जुष्टं** विद्याप्रीतिक्रियाभिः सेवितं **त्वा=तं यज्ञं प्रोक्षामि** सेचयामि । **एवमग्नीषोमाभ्याम्** अग्निश्च सोमश्चैताभ्यां [**जुष्टम्**] प्रीतं=प्रीत्या सेवनीयं **त्वा=तं** (तं) वृष्ट्यर्थं **यज्ञं प्रोक्षामि** प्रेरयामि ।

एवं यज्ञशोधितास्ता आपः शुन्धध्वम्=शुन्धन्ति शोधयत वा, **यत्** यस्माद् यज्ञेन शोधितत्वात् **वः=तासां अशुद्धा** न शुद्धा अशुद्धा (गुणाः) **गुणास्ते पराजघ्नुः** पराहताः=विनष्टा भवेयुः, **तत्—तस्मात्** अशुद्धिनाशेन सुखार्थत्वात् **वः=तासां इदं=शोधनं शुन्धामि** पवित्रीकरोमि ॥ **इत्येकोऽन्वयः** ॥

अथ द्वितीयमन्वयमाह—हे **यज्ञानुष्ठातारो मनुष्याः ! यद् यदिन्द्रः** सूर्यलोकः **वृत्रतूर्ये** वृत्रस्य=मेघस्य तूर्यो=वधस्तस्मिन् **युष्माः** ताः पूर्वोक्ता आप इन्द्रं वायुम् **अवृणीत** वृणीते **यत्=यस्माद्** यज्ञेन शोधितत्वात् **च इन्द्रेण वृत्रतूर्ये** वृत्रस्य तूर्ये=शीघ्रवेगे **ताः प्रोक्षिताः** प्रकृष्टतया सिक्ताः सेचिता वा **स्थ=भवन्ति, तस्माद् यूयं** विद्वांसो मनुष्याः **त्व=तं** (तं) वृष्ट्यर्थं **यज्ञं सदा वृणीध्वं** स्वीकुरुध्वम् ।

एवं च सर्वे जनाः—"**दैव्याय** दिवि भवं दिव्यं तस्य भावस्तस्मै **कर्मणे** पंचविधलक्षणचेष्टामात्राय **देवयज्यायै** देवानां=विदुषां दिव्यगुणानां वा यज्या=सत्क्रिया तस्यै **अग्नये** भौतिकाय परमेश्वराय वा **त्वा=तं** (तं) वृष्ट्यर्थं **जुष्टं** विद्याप्रीतिक्रियाभिः सेवितं **यज्ञं प्रोक्षामि** सेचयामि, **तथा च—अग्नीषोमाभ्यां** अग्निश्च सोमश्च ताभ्यां **जुष्टं** प्रीतं=प्रीत्या सेवनीयं **त्वा=तं यज्ञं प्रोक्षामि** प्रेरयामि," **एवं कुर्वन्तो यूयं** विद्वांसो मनुष्याः **सर्वान् पदार्थान् जनाँश्च शुन्धध्वं=शोधयत ।**

के लिए, (**देवयज्यायै**) विद्वानों वा दिव्य गुणों के सत्कार के लिए (**अग्नये**) परमेश्वर वा भौतिक अग्नि को जानने के लिए (**जुष्टम्**) विद्या और प्रीति से सेवित (**त्वा**) उस यज्ञ को (**प्रोक्षामि**) घृत से सींचता हूँ । तथा—(**अग्नीषोमाभ्याम्**) अग्नि और सोम से [**जुष्टम्**] प्रीति से सेवनीय (**त्वा**) वृष्टि के लिए उस यज्ञ को (**प्रोक्षामि**) प्रेरित करता हूँ ।

इस प्रकार यज्ञ से शुद्ध किये जल (**शुन्धध्वम्**) शुद्ध हो जाते हैं (**यत्**) यज्ञ से शुद्ध होने से (**वः**) उन जलों के (**अशुद्धाः**) अशुद्ध गुण अर्थात् दोष (**पराजघ्नुः**) नष्ट हो जाते हैं। (**तत्**) इस लिए अशुद्धि की निवृत्ति से सुखदायक होने से (**वः**) उन जलों के (**इदम्**) इस शोधन को (**शुन्धामि**) पवित्र करता हूँ। यह मन्त्र का पहला अन्वय है ॥

दूसरा अन्वय—हे यज्ञ करने वाले मनुष्यो ! (**यत्**) जिस कारण से (**इन्द्रः**) सूर्यलोक (**वृत्रतूर्ये**) मेघ के वध करने के लिये (**युष्माः**) उन पूर्वोक्त जलों को एवं (**इन्द्रम्**) वायु को (**अवृणीत**) स्वीकार करता है (**यत्**) क्योंकि यज्ञ से शुद्ध होने से सूर्य के द्वारा (**वृत्रतूर्ये**) मेघ के शीघ्र वेग में वे जल (**प्रोक्षिताः**) उत्तम रीति से सींचे गये (**स्थ**) हैं इसलिए (**यूयम्**) तुम विद्वान् लोग (**त्वा**) वृष्टि के लिए उस यज्ञ को सदा (**वृणीध्वम्**) स्वीकार करो।

और—"(**दैव्याय**) दिव्य (**कर्मणे**) पाँच प्रकार के कर्मों के लिए (**देवयज्यायै**) विद्वानों वा दिव्य गुणों के सत्कार के लिए (**अग्नये**) परमेश्वर वा भौतिक अग्नि को जानने के लिए, (**त्वा**) उस यज्ञ को वर्षा के लिए, जो (**जुष्टम्**) वा विद्या और प्रीति से सेवित है, (**प्रोक्षामि**) घृत से सींचता हूँ, तथा—(**अग्नीषोमाभ्याम्**) अग्नि और सोम से (**जुष्टम्**) प्रीति से सेवनीय (**त्वा**) उस यज्ञ को (**प्रोक्षामि**) प्रेरित करता हूँ" इस प्रकार करते हुए (**यूयम्**) तुम सब विद्वान् लोग सबप दार्थों को और जनों को (**शुन्धध्वम्**) शुद्ध करो ।

यत् यस्माद् यज्ञेन शोधितत्वाद् **वः** तासां युष्माकं वा **अशुद्धाः**=दोषाः न शुद्धा अशुद्धा गुणाः **ते सदैव पराजघ्नुः**=निवृत्ता भवेयुः पराहताः=विनष्टा भवेयुः, **तत्**=तस्मात् कारणात् अशुद्धि-नाशेन सुखार्थत्वाद् **अहं वः**=युष्माकमिदं=शोधनं **शुन्धामि** पवित्रीकरोमि ॥ इति द्वितीयोऽन्वयः ॥ १ । १३ ॥

(**यत्**) जिससे—यज्ञ से शुद्ध किये हुये (**वः**) उन जलों के और तुम्हारे (**अशुद्धाः**) अशुद्ध गुण अर्थात् दोष सदा के लिये (**पराजघ्नुः**) विनष्ट हो जायें (**तत्**) इस लिये अशुद्धि के नाश से सुखदायक होने से मैं (**वः**) तुम्हारे (**इदम्**) इस शोधन को (**शुन्धामि**) अत्यन्त पवित्र करता हूँ ॥ यह मन्त्र का दूसरा अन्वय है ॥ १ । १३ ॥

[**इन्द्रो वृत्रतूर्ये युष्माः=ताः—अप अवृणीत,···ता इन्द्रं=वायुमवृणीध्वं=वृणते तथैव ता अपो यूयं—प्रोक्षिता वृणीध्वम्; यथा ता आपः शुद्धाः स्थ=भवेयुः**]

भावार्थः—अत्र लुप्तोपमालङ्कारः । ईश्वरेणाग्निसूर्यावितदर्थौ रचितौ यदिमौ सर्वेषां पदार्थानां मध्ये प्रविष्टौ, जलौषधिरसान् छित्त्वा, वायुं प्राप्य, मेघमण्डलं गत्वाऽऽगत्य च शुद्धिसुख-कारका भवेयुः,

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमा अलंकार है । ईश्वर ने अग्नि और सूर्य को इसलिये रचा है कि ये सब पदार्थों के मध्य में प्रविष्ट होकर, जल और औषधि-रसों का छेदन करके, वायु को प्राप्त हो, मेघमण्डल में जाकर और वहाँ से पृथिवी पर आकर शुद्ध और सुख के करने वाले हों ।

[**एतदर्थमहं यज्ञानुष्ठाता दैव्याय कर्मणे···जुष्टं त्वा=तं यज्ञं प्रोक्षामि**]

तस्मात्—मनुष्यैरुत्तमसुखलाभायाग्नौ सुग-न्धयादिपदार्थानां होमेन वायुवृष्टिजलशुद्धिद्वारा दिव्यसुखानामुत्पादनाय संप्रीत्या नित्यं यज्ञः करणीयः ।

इसलिए—सब मनुष्य उत्तम सुख की प्राप्ति के लिए अग्नि में सुगन्धित पदार्थों के होम से वायु और वर्षा जल की शुद्धि कर दिव्य सुखों की उत्पत्ति के लिए प्रीतिपूर्वक नित्य यज्ञ किया करें ।

[**यद् वः—अशुद्धा गुणास्ते परा जघ्नुः**]

यतः सर्वे दोषा नष्टा भूत्वाऽस्मिन् विश्वे सततं शुद्धा गुणाः प्रकाशिता भवेयुः ।

जिससे—सब दोष नष्ट होकर इस संसार में शुद्ध गुण प्रकाशित हों ।

[**तत्=तस्मात्कारणादहं वः=तासामिदं शोधनं शुन्धामि**]

एतदर्थमहमीश्वर इदं शोधनमा दिशामि—यूयं परोपकारार्थानि शुद्धानि कर्माणि नित्यं कुरुतेति ।

इसलिए—मैं ईश्वर इस शुद्धि का आदेश देता हूँ—तुम लोग परोपकार के लिए शुद्ध कर्मों को नित्य किया करो ।

[**एवमग्नीषोमाभ्यां [जुष्टं] त्वा=तं यज्ञं प्रोक्षामि**]

एवं रीत्यैव वाय्वग्निजलगुणग्रहणप्रयोज-नाभ्यां शिल्पविद्ययाऽनेकानि यानानि यन्त्रकलाश्च रचयित्वा पुरुषार्थेन सदैव सुखिनो भवतेति ॥ १ । १३ ॥

इस रीति से ही वायु, अग्नि और जल के गुणों के ग्रहण और प्रयोग से शिल्पविद्या के द्वारा अनेक यान और यन्त्र-कलाओं को रचकर पुरुषार्थ से सदा सुखी रहो ॥ १ । १३ ॥

भा० पदार्थः—दैव्याय=उत्तमसुखलाभाय, दिव्यसुखानामुत्पादनाय । अशुद्धाः=सर्वे दोषाः । अग्नीषोमाभ्याम्=वाय्वग्निजलगुणग्रहणप्रयोजनाभ्याम् ॥

भाष्यसार—१. **यज्ञ**—पांच दिव्य कर्मों की सिद्धि कराने वाला, विद्वानों के सत्कार का साधन, दिव्य गुणों का प्रापक, भौतिक अग्निविद्या और परमेश्वर की प्राप्ति कराने वाला, अग्नि और सोम से प्रीतिपूर्वक सेवनीय और वर्षा का निमित्त है।

२. **जल**—यज्ञ से शुद्ध हुए जल सब अशुद्ध गुणों को नष्ट कर देते हैं और अशुद्धि के नाश से सर्वत्र सुख का विस्तार करते हैं।

३. **इन्द्र और वृत्र का युद्ध**—इन्द्र और वृत्र युद्ध का सच्चा स्वरूप महर्षि ने ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका (**ग्रन्थप्रामाण्याप्रामाण्य विषय**) में इस प्रकार प्रतिपादित किया है :—

(**क**) इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवोच० ॥ १ ॥ अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं० ॥ २ ॥ ऋ० १ । ३२ । १—२ ॥

तीसरी इन्द्र और वृत्रासुर की कथा है। उसको भी पुराण वालों ने ऐसी धर के लौटा है कि वह प्रमाण और युक्ति इन दोनों में विरुद्ध जा पड़ी है—देखो कि त्वष्टा के पुत्र वृत्रासुर ने देवों के राजा इन्द्र को निगल लिया, तब सब देवता लोग बड़े भययुक्त होकर विष्णु के समीप गये। विष्णु ने उसे मारने का उपाय बतलाया कि मैं समुद्र के फेन में प्रविष्ट होऊँगा। तुम लोग उस फेन को उठाके वृत्रासुर के मारना, वह मर जायेगा। यह पागलों की सी बनाई हुई पुराणग्रन्थों की कथा सब मिथ्या है। श्रेष्ठ लोगों को उचित है कि इनको कभी न मानें।

देखो—सत्य ग्रन्थों में यह कथा इस प्रकार से लिखी है कि (**इन्द्रस्य नु०**) यहां सूर्य का इन्द्र नाम है। उसके किये हुए पराक्रमों को हम लोग कहते हैं—जो कि परमैश्वर्य होने का हेतु अर्थात् बड़ा तेजधारी है, वह अपनी किरणों से वृत्र अर्थात् मेघ को मारता है। जब वह मरके पृथिवी पर गिर पड़ता है तब अपने जल-रूप शरीर को सब पृथिवी में फैला देता है। फिर उससे अनेक बड़ी-बड़ी नदियाँ परिपूर्ण हो के समुद्र में जा मिलती हैं। कैसी वे नदियाँ हैं कि—पर्वत अर्थात् मेघों से उत्पन्न होके जल ही बहने के लिए होती हैं। जिस समय इन्द्र मेघरूप वृत्रासुर को मारके आकाश से पृथिवी पर गिरा देता है, तब वह पृथिवी पर सो जाता है ॥ १ ॥ फिर वही मेघ आकाश में से नीचे गिरके पर्वत अर्थात् मेघमण्डल का पुनः आश्रय लेता है जिसको सूर्य अपनी किरणों से फिर हनन करता है। जैसे कोई लकड़ी को छील के सूक्ष्म कर देता है वैसे ही वह मेघ को भी बिन्दु-बिन्दु करके पृथिवी पर गिरा देता है और उसके शरीर रूप जल सिमट-सिमट कर नदियों के द्वारा समुद्र को ऐसे प्राप्त होते हैं कि जैसे अपने बछड़ों को गायें दौड़के मिलती हैं ॥ २ ॥

(**ख**) "अहन् वृत्र० ॥ ३ ॥ अपादहस्तो० ॥ ४ ॥ ऋ० १ । ३२ ॥

जब सूर्य उस अत्यन्त गर्जित मेघ को छिन्न-भिन्न करके पृथिवी पर ऐसे गिरा देता है कि जैसे कोई किसी मनुष्य आदि के शरीर को काट-काट कर गिराता है, तब वह वृत्रासुर भी पृथिवी पर गिरा हुआ मृतक के समान शयन करने वाला हो जाता है ॥ ३ ॥

निघण्टु में मेघ का नाम वृत्र है। (**इन्द्रशत्रु०**) वृत्र का शत्रु, अर्थात् निवारक सूर्य है। सूर्य का नाम त्वष्टा है। उसकी सन्तान मेघ है क्योंकि सूर्य की किरणों के द्वारा जल कण-कण होकर, ऊपर को जाकर, वहाँ मिलके, मेघ रूप हो जाता है। तथा मेघ का वृत्र नाम इसलिए है कि (**वृत्रो वृणोते०**) वह स्वीकार करने योग्य और प्रकाश का आवरण करने वाला है ॥

(**ग**) अतिष्ठन्तीनाम० ॥ ५ ॥ नास्मै विद्युन्० ॥ ६ ॥ ऋ० १ । ३२ । १० । १३ ॥

(अतिष्ठन्तीनाम्) वृत्र के इस जल रूप शरीर से बड़ी-बड़ी नदियाँ उत्पन्न होके अगाध समुद्र में जाकर मिलती हैं और जितना जल तालाब वा कूप आदि में रह जाता है, वह मानो पृथिवी पर शयन कर रहा है ॥ ५ ॥ (नास्मै) अर्थात् वह वृत्र अपने बिजली और गर्जन रूप भय से भी इन्द्र को कभी नहीं जीत सकता । इस प्रकार अलंकार रूप वर्णन से इन्द्र और वृत्र ये दोनों परस्पर युद्ध के समान करते हैं अर्थात् जब मेघ बढ़ता है तब तो वह सूर्य के प्रकाश को हटाता है और जब सूर्य का ताप अर्थात् तेज बढ़ता है तब वह वृत्र नाम मेघ को हटा देता है । परन्तु इस युद्ध के अन्त में इन्द्र नाम सूर्य की ही विजय होती है ॥ ६ ॥ (वृत्रो हवा०) जब-जब मेघ वृद्धि को प्राप्त होकर पृथिवी और आकाश में विस्तृत होके फैलता है, तब-तब सूर्य उसको हनन करके पृथिवी पर गिरा दिया करता है । पश्चात् वह अशुद्ध भूमि, सड़े हुए वनस्पति, काष्ठ, तृण तथा मलमूत्रादि युक्त होने से कहीं-कहीं दुर्गन्ध रूप भी हो जाता है । फिर उसी मेघ का जल समुद्र में जाता है । तब समुद्र का जल देखने में भयंकर मालूम पड़ने लगता है । इसी प्रकार बारंबार मेघ वर्षता रहता है । (उपर्य्यु पर्य्येति०) अर्थात् सब स्थानों से जल उड़-उड़ कर आकाश में बढ़ता है । वहाँ इकट्ठा होकर फिर-फिर वर्षा किया करता है । उसी जल और पृथिवी के संयोग से ओषध्यादि अनेक पदार्थ उत्पन्न होते हैं । उसी मेघ को वृत्रासुर के नाम से बोलते हैं । वायु और सूर्य का नाम इन्द्र है । वायु अन्तरिक्ष में और सूर्य प्रकाश स्थान में स्थित है । इन्हीं वृत्रासुर और इन्द्र का आकाश में युद्ध हुआ करता है कि जिसके अन्त में मेघ की पराजय और सूर्य की विजय निस्सन्देह होती है । इस सत्य ग्रन्थों को अलङ्कार रूप कथा को छोड़के छोकरों के समान अल्प-बुद्धि वाले लोगों ने ब्रह्मवैवर्त्त और श्रीमद्भागवतादि ग्रन्थों में मिथ्या कथा लिख रखी हैं, उनको श्रेष्ठ-पुरुष कभी न मानें ॥

●

परमेष्ठी प्रजापतिः । **यज्ञः=स्पष्टम्** ॥ स्वराड् जगती । निषादः ॥

पुनः स यज्ञः कीदृशोऽस्ति कथं कर्तव्यश्चेत्युपदिश्यते ॥

उक्त यज्ञ किस प्रकार का है और किस प्रकार करना चाहिये, इस विषय का उपदेश किया गया है ॥

शर्मा॑स्यव॑धूत॒ꣳ रक्षोऽव॑धूता॒ऽअरा॑त॒योऽदि॑त्या॒स्त्वग॑सि प्रति॒ त्वादि॑तिर्वेत्तु ।
अद्रि॑रसि वानस्प॒त्यो ग्रावा॑सि पृ॒थुबु॑ध्न॒ः प्रति॒ त्वादि॑त्या॒स्त्वग्वे॑त्तु ॥१४॥

पदार्थः—(शर्म) सुखकारकं गृहम् । शर्म इति गृहनामसु पठितम् ॥ निघं० । ३ । ४ ॥ (असि) भवति । अत्र सर्वत्र व्यत्ययः (अवधूतम्) दूरीकृतं=विचालितम् (रक्षः) दुष्टस्वभावो जन्तुः (अवधूताः) दूरीभूताः (अरातयः) दानशीलतारहिताः शत्रवः (अदित्याः) पृथिव्याः । अदितिरिति पृथिवीनामसु पठितम् ॥ निघं० १ । १ ॥ (त्वक्) त्वग्वत् (असि) भवति (प्रति) क्रियार्थे पश्चादर्थे । प्रतीत्येतस्य प्रातिलोम्यं प्राह ॥ निरु० ॥ १ । ३ ॥ (त्वा) ततं वा (अदितिः) नाशरहितो जगदीश्वरः । अदितिरिति पदनामसु पठितम् ॥ निघं० ५ । ५ ॥ अनेन ज्ञानस्वरूपोऽर्थो गृह्यते । अन्तरिक्षं वा (वेत्तु) जानातु ज्ञापयतु वा (अद्रिः) मेघः । अद्रिरिति मेघनामसु पठितम् ॥ निघं० १ । १० ॥ (असि) अस्ति (वानस्पत्यः) वनस्पतेर्विकारो रसमयः (ग्रावा) जलगृहीतो मेघः । ग्रावेति मेघनामसु पठितम् ॥ निघं० १ । १० ॥ (असि) अस्ति (पृथुबुध्नः) पृथु=विस्तीर्णं बुध्नमन्तरिक्षं निवासार्थं यस्य स पृथुबुध्नो मेघः । बुध्नमन्तरिक्षं बद्धा अस्मिन् धृता आप इति ॥ निरु० १० । ४४ ॥ (प्रति) उक्तार्थे (त्वा) तम् (अदित्याः) अन्तरिक्षस्य (त्वक्) त्वग्वत् सेविनम् (वेत्तु) जानातु ज्ञापयतु वा ॥ अयं मंत्रः श० १ । १ । ४ । ४—७ व्याख्यातः ॥ १४ ॥

प्रमाणार्थ—(**शर्म**) 'शर्म' शब्द निघं० (३ । ४) में गृह-नामों में पढ़ा है। (**असि**) भवति। इस मन्त्र में सर्वत्र 'असि' पद पर व्यत्यय है। (**अदितिः**) अदिति शब्द निघं० (१ । १) में पृथिवी नामों में पढ़ा है। (**प्रति**) प्रति उपसर्ग निरु० (१ । ३) में अभि के प्रतिकूल अर्थ को कहता है। (**अदितिः**) 'अदिति' शब्द निघं० (५ । ५) में पद नामों में पढ़ा है। इससे ज्ञानस्वरूप ईश्वर और अन्तरिक्ष का ग्रहण होता है। (**अद्रि**) अद्रि शब्द निघं० (१ । १०) में मेघ-नामों में पढ़ा है। (**ग्रावा**) 'ग्रावा' शब्द निघं० (१ । १०) में मेघ-नामों में पढ़ा है। (पृथुबुध्नः) निरुक्त (१० । ४४) में बुध्न का अर्थ अन्तरिक्ष है क्योंकि इसमें जल बंधे रहते हैं या इसमें जल धरे रहते हैं। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१ । १ । ४ । ४ —७) में की गई है । १ । १४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! **युष्मद्गृहं शर्म** सुखकारकं गृहम् **असि=भवतु** भवति, **तस्माद् गृहाद् रक्षः** दुष्टस्वभावो जन्तुः **अवधूतं** दूरीकृतं=विचलितम्, **अरातयः** दानशीलतारहिताः शत्रवः **अवधूताः** दूरीभूता **भवन्तु। तच्च गृहमदित्यास्त्वगसि=पृथिव्यास्त्वग्वदस्त्विति** (अदित्याः=पृथिव्याः, त्वक्=त्वग्वत्, असि=भवति) **सर्वो जनः प्रतिवेत्तु** जानातु।

यो वानस्पत्यः वनस्पतेर्विकारो रसमयः **अद्रिः** मेघः, **पृथुबुध्नः** पृथु=विस्तीर्णं बुध्नम्=अन्तरिक्षं निवासार्थं यस्य स पृथुबुध्नो=मेघः, **ग्रावा=मेघः** जलगृहीतो मेघः **असि=वर्त्तते, एतद्विद्यामदितिः=जगदीश्वरः** नाशरहितः **तुभ्यं वेत्तु=कृपया वेदयतु** ज्ञापयतु।

विद्वानप्यदित्या अन्तरिक्षस्य [**त्वक्**]=**त्वग्वत्** त्वग्वत् सेविनं **त्वा=तं व्यवहारं प्रति+वेत्तु** पश्चात् जानातु ज्ञापयतु वा ॥ १ । १४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो! तुम्हारा घर (**शर्म**) सुखकारक घर (**असि**) हो, उस घर से (**रक्षः**) दुष्ट स्वभाव वाले प्राणी (**अवधूतम्**) दूर रहें (**अरातयः**) दानशीलता से रहित शत्रु (**अवधूताः**) दूर रहें। और वह घर (**अदित्याः**) पृथिवी की (**त्वक्**) त्वचा के समान (**असि**) हो, इस प्रकार सब मनुष्य (**प्रतिवेत्तु**) जानें।

जो (**वानस्पत्यः**) वनस्पति से उत्पन्न होने वाला रसमय (**अद्रिः**) मेघ है, और जो (**पृथुबुध्नः**) विस्तृत आकाश में निवास करने वाला (**ग्रावा**) जल को ग्रहण करने वाला मेघ (**असि**) है, इस मेघविद्या को (**अदितिः**) नाशरहित जगदीश्वर तुझे (**वेत्तु**) कृपा करके जनावें।

विद्वान् पुरुष भी (**अदित्याः**) आकाश के [**त्वक्**] त्वचा के समान (**त्वा**) उस व्यवहार को (**प्रतिवेत्तु**) समझें तथा अन्यों को भी समझावें ॥ १ । १४ ॥

[हे मनुष्या ! युष्मद्गृहं शर्मासि=भवतु···तच्च गृहमदित्यास्त्वग्वदस्तु]

भावार्थः—ईश्वरेणाज्ञाप्यते — मनुष्यैः शुद्धाया सर्वतोऽवकाशयुक्तायाः पृथिव्या मध्ये सर्वेष्वृतुषु सुखदायकं गृहं रचयित्वा तत्र सुखेन स्थातव्यम्।

भावार्थ—ईश्वर आज्ञा देता है—मनुष्य शुद्ध एवं सब ओर से अवकाशयुक्त पृथिवी पर सब ऋतुओं में सुखदायक घर बनाकर वहाँ सुख से रहें।

[तस्माद् गृहाद्रक्षोऽवधूतमरातयोऽवधूताः]

तस्मात्सर्वे दुष्टा मनुष्या दोषाश्च निवारणीयास्तत्र सर्वाणि साधनान्यपि स्थापनीयानि। तत्रैव वृष्टिहेतुं यज्ञमनुष्ठाय सुखानि संपादनीयानि।

उस घर से सब दुष्ट मनुष्यों और दोषों को दूर हटावें और वहाँ सब साधनों को भी स्थापित करें और वहीं वृष्टि के हेतु यज्ञ का अनुष्ठान करके सुखों को सिद्ध करें।

[तात्पर्यमाह]

एवं कृते वायुवृष्टिजलशुद्धिद्वारा महत्सुखं जगति सिध्यतीति ॥ १ । १४ ॥

ऐसा करने से वायु और वर्षा-जल की शुद्धि से जगत् में महान् सुख की सिद्धि होती है ॥ १ । १४ ॥

भा० पदार्थः—शर्म=सर्वेष्वृतुषु सुखदायकं गृहम् । अदित्याः=शुद्धायाः सर्वतोऽवकाशयुक्तायाः पृथिव्याः । रक्षः= दुष्टो मनुष्यः । अरातयः=सर्वे दोषाः । अवधूताः=निवारिताः ॥

भाष्यसार—१. **यज्ञ**—गृह निर्माण रूप शिल्प यज्ञ सुखदायक है । जैसे त्वचा शरीर की रक्षा करती है, इसी प्रकार पृथिवी पर रहने वाले प्राणियों के लिए घर त्वचा के समान है । यज्ञ से दुष्ट स्वभाव वाले जन्तु घर से नष्ट हो जाते हैं तथा शत्रु भी दूर भाग जाते हैं ।

२. **ईश्वर-प्रार्थना**—जल से भरा हुआ मेघ वनस्पतियों से उत्पन्न होता है, विस्तृत आकाश उसका निवास-स्थान है । इस मेघविद्या का हे जगदीश्वर ! कृपा करके उपदेश कीजिये ।

३. मेघ आकाश की त्वचा के समान है। विद्वान् लोग भी इस मेघविद्या को समझें ।

परमेष्ठी प्रजापतिः । **यज्ञः=स्पष्टम्** । निचृज्जगती । निषादः स्वरः । हविष्कृदिति याजुषी पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

पुनः स यज्ञः कीदृशो भवतीत्युपदिश्यते ॥

उक्त यज्ञ किस प्रकार का होता है इस विषय का उपदेश किया है ॥

अ॒ग्नेस्त॒नूर॑सि वा॒चो वि॒सर्ज॑नं दे॒ववी॑तये त्वा गृह्णामि बृ॒हद्ग्रा॑वासि वानस्प॒त्यः स॑ऽइ॒दं दे॒वेभ्यो॑ ह॒विः श॑मीष्व सु॒शमि॑ शमीष्व । हवि॑ष्कृ॒देहि॒ हवि॑ष्कृ॒देहि॑ ॥१५॥

पदार्थः—(**अग्नेः**) भौतिकस्य (**तनूः**) शरीरवत्तस्य संयोगेन विस्तृतो यज्ञः (**असि**) भवति । अत्र सर्वत्र पुरुषव्यत्ययः (**वाचः**) वेदवाण्याः (**विसर्जनम्**) यजमानेन होतृभिश्च हविषस्त्यागो मौनं वा (**देववीतये**) देवानां=विदुषां दिव्यगुणानां वा वीतिर्ज्ञानं प्रापणं प्रजनं व्याप्तिः प्रकाशः, अन्येभ्य उपदेशनं विविधभोगो वा यस्यां तस्यै । वी गतिव्याप्तिप्रजनकांत्यसनखादनेषु (**त्वा**) तमिमं सम्यक् शोधितं हविःसमूहम् (**गृह्णामि**) स्वीकरोमि (**बृहद्ग्रावा**) बृहच्चासौ ग्रावा च सः (**असि**) अस्ति (**वानस्पत्यः**) यो वनस्पतेर्विकारस्तं हविःसंस्कारार्थम् (**सः**) त्वं यजमानः (**इदम्**) यत् प्रत्यक्षं हुतं तत् (**देवेभ्यः**) विद्वद्भ्यो दिव्यगुणेभ्यो वा (**हविः**) संस्कृतं सुगंध्यादियुक्तं द्रव्यम् (**शमीष्व**) दुःखनिवृत्तये सुखसम्पादनार्थं कुरुष्व । शमु उपशमे इत्यस्माद्बहुलं छन्दसीति श्यनो लुक् । तुरुस्तुशम्यमः० ॥ अ० ७ । ३ । ९५ ॥ इतीडागमः । महीधरेणात्र शपो लुगित्यशुद्धं व्याख्यातम् । (**सुशमि**) सुष्ठु दुःखं शमितुं शीलं धर्मः पदार्थानां साधुकरणं वा यस्य तत् । शमित्यष्टा० ॥ अ० ३ । २ । १४१ ॥ अनेन शमेर्घिनुण् । इदमपि पदमुवटमहीधराभ्यामन्यथैव व्याख्यातम् (**शमीष्व**) पुनरुच्चारणं हविषोऽत्यन्तसंस्कारद्योतनार्थम् (**हविष्कृत्**) हविः करोति अनया वेदवाण्या सा हविष्कृद्वाक् (**एहि**) अध्ययनेनैवैति प्राप्नोति (**हविष्कृत्**) अत्र यज्ञसंपादनाय ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राणां चतुर्विधा वेदाध्ययनसंस्कृता सुशिक्षिता वाग् गृह्यते ॥ अयं मंत्रः श० १ । १ । ४ । ८—१७ व्याख्यातः ॥ १५ ॥

प्रमाणार्थ—(**असि**) भवति । इस मन्त्र में सर्वत्र 'असि' पद पर पुरुष-व्यत्यय है (**देव-**

वीतये) 'देववीति' में 'वीति' पद गति, व्याप्ति, प्रजन, कान्ति, असन और खादन अर्थ वाली 'वी' धातु से सिद्ध होता है। (**शमीष्व**) यहाँ उपशम अर्थ वाली 'शम्' धातु से 'बहुलं छन्दसि' सूत्र से श्यन् का लुक् और 'तुरुस्तुशम्यमः' (अ० ७।३।९५) से ईट् का आगम हुआ है। (**सुशमि**) यह शब्द सुपूर्वक शम् धातु से 'शमित्यष्टा०' (अ० ३।२।१४१) से 'घिनुण' प्रत्यय से सिद्ध होता है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१।१।४।८—१७) में की गई है। १। १५॥

सपदार्थान्वयः—अहं—**सर्वो जनो यस्य हविषः संस्काराय बृहद्ग्रावा** बृहच्चासौ ग्रावा च सः, **असि**=**भवति, वानस्पत्यः** यो वनस्पतेर्विकारस्तं हविःसंस्कारार्थं **च, यदिदं** यत् प्रत्यक्षं हुतं तत् [**अग्नेः**] भौतिकस्य [**तनूः**] शरीरवत्तस्य संयोगेन विस्तृतो यज्ञः [**वाचः**] वेदवाण्याः [**विसर्जनम्**] यजमानेन होतृभिश्च हविषस्त्यागो मौनं वा **देवेभ्यः** विद्वद्भ्यो दिव्यगुणेभ्यो वा [**असि**] भवति **तं देववीतये** देवानां=विदुषां दिव्यगुणानां वा वीतिः=ज्ञानं, प्रापणं, प्रजनं, व्याप्तिः, प्रकाशः, अन्येभ्य उपदेशनं, विविधभोगो वा यस्यां तस्यै, **गृह्णामि** स्वीकरोमि।

हे विद्वन्! स=**त्वं** (त्वं) यजमानः **देवेभ्यः**=**विद्वद्भ्यः** दिव्यगुणेभ्यो वा **सुशमि** सुष्ठु दुःखं शमितुं शीलं, धर्मः, पदार्थानां साधुकरणं वा यस्य तत्, **तद्धविः** संस्कृतं सुगन्ध्यादियुक्तं द्रव्यं **शमीष्व** दुःखनिवृत्तये सुखसम्पादनार्थं कुरुष्व **शमीष्व** पुनरुच्चारणं हविषोऽत्यन्तसंस्कारद्योतनार्थम्।

ये मनुष्या वेदादीनि शास्त्राणि पठन्ति पाठयन्ति च तानियं वाग् "**हविष्कृत्** हविः करोति अनया वेदवाण्या सा हविष्कृद्वाक् **एहि** अध्ययनेनैवैति=प्राप्नोति, **हविष्कृत्** अत्र यज्ञसम्पादनाय ब्राह्मण क्षत्रियवैश्यशूद्राणां चतुर्विधा वेदाध्ययनसंस्कृता सुशिक्षिता वाग् गृह्यते **एहि** अध्ययनेनैवैति=प्राप्नोति" **इत्याह**॥ १। १५॥

भाषार्थ—मैं—सब लोगों की भाँति हवि के संस्कार के लिये जो (**बृहद्ग्रावा**) बड़ा पत्थर (**असि**) है और (**वानस्पत्यः**) जो हवि के संस्कार के लिये दारुमय मूसल है और जो (**इदम्**) यह प्रत्यक्ष होम किया [**अग्नेः**] भौतिक अग्नि के [**तनूः**] शरीर के तुल्य विस्तृत यज्ञ है एवं [**वाचः**] वेदवाणी से [**विसर्जनम्**] यजमान् वा होता के द्वारा हवि का त्याग वा मौन धारण है वह (**देवेभ्यः**) विद्वानों की सेवा अथवा दिव्यगुणों की प्राप्ति के लिये [**असि**] होता है उसे (**देववीतये**) विद्वानों वा दिव्य गुणों के ज्ञान, प्राप्ति, उत्पत्ति, व्याप्ति, प्रकाश, दूसरों को उपदेश और विविध भोगों के लिये (**गृह्णामि**) ग्रहण करता हूँ।

हे विद्वान् (**सः**) यजमान! तू (**देवेभ्यः**) विद्वानों का दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिये (**सुशमि**) दुःख को शान्त करने वाले शील, धर्म और साधुकरण से युक्त उस (**हविः**) शुद्ध सुगन्धित द्रव्य को (**शमीष्व**) दुःखनिवृत्ति और सुखसिद्धि के लिये संस्कृत कर (**शमीष्व**) दो बार कथन हवि के अत्यन्त संस्कार का द्योतक है।

जो लोग वेदादि शास्त्रों को पढ़ते और पढ़ाते हैं उनको यह वाणी (**हविष्कृत**) हवि को सिद्ध करने वाली वेदवाणी (**एहि**) अध्ययन से प्राप्त होती है, (**हविष्कृत**) यज्ञ की सिद्धि के लिये ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों की चार प्रकार की वेदाध्ययन से शुद्ध और सुशिक्षित वाणी (**एहि**) अध्ययन से प्राप्त होती है "यह उपदेश किया है"॥ १। १५॥

[**अहं—यदिदं [अग्नेः] [तनूः] [वाचः] [विसर्जनम्] देवेभ्यः [असि] तं देववीतये गृह्णामि; हे विद्वन्! स त्वं देवेभ्यः—सुशमि तद्धविः शमीष्व**]

भावार्थः—यदा मनुष्या वेदादिशास्त्रद्वारा

भावार्थ—जब मनुष्य वेदादि शास्त्रों के

यज्ञक्रियां फलं च विदित्वा सुसंस्कृतेन हविषा यज्ञं कुर्वन्ति तदा स सुगन्ध्यादि द्रव्यहोमद्वारा परमाणुमयो भूत्वा, वायौ वृष्टिजले च विस्तृतः सन्, सर्वान् पदार्थानुत्तमान् कुर्वन् दिव्यानि सुखानि सम्पादयति ।

द्वारा यज्ञ की क्रिया और उसके फल को जानकर विशुद्ध हवि से यज्ञ करते हैं तब वह सुगन्धि आदि द्रव्य होम से परमाणु रूप होकर वायु और वृष्टि-जल में फैलकर, सब पदार्थों को उत्तम बनाकर दिव्य सुखों को सिद्ध करता है ।

[ये मनुष्या वेदादीनि शास्त्राणि पठन्ति पाठयन्ति च तानियं वाग् हविष्कृदेहि हविष्कृदेहीत्याह]

यश्चैवं सर्वेषां प्राणिनां सुखाय पूर्वोक्तं त्रिविधं यज्ञं नित्यं करोति तं सर्वे मनुष्या "हविष्कृदेहि हविष्कृदेहीति" सत्कुर्युः ॥ १ । १५ ॥

जो इस प्रकार सब प्राणियों के सुख के लिए पूर्वोक्त तीन प्रकार के यज्ञ को नित्य करता है उस का सब लोग "हविष्कृदेहि हविष्कृदेहि' (**यज्ञकर्त्ता, आइये ! यज्ञकर्त्ता, आइये !**) ऐसा कहकर सत्कार करें ॥ १ । १५ ॥

भा० पदार्थ—तनुः=विस्तृतः । वाचः=वेदादिशास्त्रस्य । देववीतये=दिव्यसुखसम्पादनाय ॥

भाष्यसार—१. **यज्ञ**—होम किये हुए द्रव्य को अग्नि के संयोग से परमाणु बनाकर वायु और वृष्टिजल में विस्तृत करने वाला है, यजमान और होता लोग इसमें हवि का त्याग करते हैं, एवं वाणी का त्याग अर्थात् मौन आचरण करते हैं, यह यज्ञ विद्वानों और दिव्यगुणों का ज्ञापक, प्रापक, उत्पादक, व्यापक, प्रकाशक, उपदेशक तथा विविध भोगों का प्रदायक है । दुःखों को शान्त करने वाला, पदार्थों में दिव्यगुणों का आधान करने वाला और सब सुखों का सम्पादक है ॥

२. **वाणी**—वेद-मन्त्र उच्चारण करके यज्ञ में हवि दी जाती है । वह वेदवाणी 'हविष्कृत्' वाक् कहलाती है । और वह वेद के अध्ययन से प्राप्त होती है । यह वाणी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र पात्र के भेद से चार प्रकार की है । इन चारों वर्णों को यह वाणी अध्ययन से ही यज्ञसिद्धि के लिए प्राप्त होती है । जो नित्य यज्ञ करता है, उसका उक्त चारों वर्ण, हविष्कृत् आइये, हविष्कृत् आइये' ऐसा कहकर उसका सत्कार करते हैं ।

●

परमेष्ठी प्रजापतिः । **वायुः=भौतिको वायुः** ॥ स्वराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

देवो वः सवितेत्यस्य ऋषिः स एव । सविता=सूर्यः, देवता । विराड् गायत्री छन्दः ।

पुनः स यज्ञः कीदृशोऽस्तीत्युपदिश्यते ॥

फिर भी यह यज्ञ कैसा है, यह उपदेश किया है ॥

कुक्कुटोऽसि मधुजिह्वऽइषमूर्जमावद त्वया वयꣳ सङ्घातꣳ सङ्घातं जेष्म । वर्षवृद्धमसि प्रति त्वा वर्षवृद्धं वेत्तु परापूतꣳ रक्षः परापूता अरातयोऽपहतꣳरक्षो वायुर्वो विविनक्तु देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना ॥१६॥

पदार्थः—(कुक्कुटः) कुकं=परद्रव्यादातारं चोरं शत्रुं वा कुटति येन स यज्ञः (**असि**) अस्ति । अत्र सर्वत्र व्यत्ययः (मधुजिह्वः) मधुरगुणयुक्ता जिह्वा=ज्वाला प्रयुज्यते यस्मिन् सः (**इषम्**)

अन्नादिपदार्थसमूहम् । इषमित्यन्ननामसु पठितम् ॥ निघं० १।७॥ (**ऊर्ज्जम्**) विद्यादिपराक्रममनुत्तमरसं वा (**आ**) क्रियायोगे (**वद**) उपदिश (**त्वया**) परमेश्वरेण विदुषा वीरेण वा सह संगत्य (**संघातं संघातम्**) सम्यग्घ-न्यन्ते जना यस्मिन् तं संग्रामम् । संघात इति संग्रामनामसु पठितम् ॥ निघं० २ । १७ ॥ अत्र वीप्सायां द्विरुक्तिः (**जेष्म**) जयेम । अत्र लिङर्थे लुङ् । अड्वृद्ध्यभावश्च (**वर्षवृद्धम्**) शस्त्रास्त्राणां वर्धयितारम् (**असि**) भवति (**प्रति**) क्रियायोगे (**त्वा**) त्वां तं यज्ञं वा (**वर्षवृद्धम्**) वृष्टेर्वर्धकं यज्ञम् (**वेत्तु**) जानातु (**परापूतम्**) परागतं पूतं=पवित्रत्वं यस्मात्तत् (**रक्षः**) दुष्टस्वभावो मूर्खः (**परापूताः**) परागतः पूतः=पवित्रस्वभावो येभ्यस्ते (**अरातयः**) परपदार्थग्रहीतारः शत्रवः (**अपहतम्**) अपहन्यते यत् तत् (**रक्षः**) दस्युस्वभावः (**वायुः**) योऽयं भौतिको वाति (**वः**) तान् हुतान् परमाणुजलादिपदार्थान् (**वि**) विशेषार्थे (**विनक्तु**) वेचयति वेचयतु वा । अत्राद्ये पक्षे लडर्थे लोडन्तर्गतो ण्यर्थश्च (**देवः**) प्रकाशस्वरूपः (**सविता**) वृष्टिप्रकाशद्वारा दिव्यगुणानां प्रसवहेतुः (**हिरण्यपाणिः**) हिरण्यं=ज्योतिः पाणिर्हस्तः किरणव्यवहारो वा यस्य सः । ज्योतिर्हि हिरण्यम् ॥ श० । ४ । ३ । १ । २१ ॥ (**प्रतिगृभ्णातु**) प्रतिगृह्णाति । अत्र हृग्रहोर्भश्छन्दसि हस्य भत्वं वक्तव्यम् ॥ अ० । ५ । २ । ३२ ॥ इति हकारस्य स्थाने भकारः, लडर्थे लोट् च (**अच्छिद्रेण**) छिद्ररहितेनैकरसेन (**पाणिना**) किरणसमूहेन व्यवहारेण ॥ अयं मंत्रः श० । १ । १ । ४ । १८—२४ व्याख्यातः ॥ १६ ॥

प्रमाणार्थ—(**असि**) अस्ति । इस मन्त्र में सर्वत्र 'असि' पद पर व्यत्यय है । (**इषम्**) 'इष्' शब्द निघं० (१ । ७) में अन्न-नामों में पढ़ा है । (**संघातं संघातम्**) 'संघात' शब्द निघं० (२ । १७) में संग्राम-नामों में पढ़ा है । वीप्सा (**व्याप्ति**) अर्थ में संघाते शब्द का दो बार पाठ हुआ है । (**जेष्म**) जयेम । यहाँ लिङ् अर्थ में लुङ लकार है तथा अट् आगम और वृद्धि का अभाव है । (**विनक्तु**) वेचयति वेचयतु वा । यहाँ आद्य पक्ष में लट् अर्थ में लोट् और अन्तर्भावित ण्यर्थ है । (**हिरण्यपाणिः**) 'हिरण्य-पाणि' शब्द में 'हिरण्य' शब्द का अर्थ शत० (४ । ३ । १ । २१) में ज्योति किया है । (**प्रतिगृभ्णातु**) प्रतिगृह्णाति । यहाँ 'हृग्रहोर्भश्छन्दसि हस्य भत्वं वक्तव्यम्' (अ० ५ । २ । ३२) से हकार को भकार और लट् अर्थ में लोट् लकार है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१ । १ । ४ । १८—२४) में गई है । १ । १६ ॥

सपदार्थान्वयः—**यतोऽयं यज्ञो मधुजिह्वः** मधुरगुणयुक्ता जिह्वा=ज्वाला प्रयुज्यते यस्मिन् सः, **कुक्कुटः** कुकं=परद्रव्यादातरं चोरं शत्रुं वा कुटति येन स यज्ञः, **असि=अस्ति, इषम्** अन्नादिपदार्थसमूहम् **ऊर्जं** विद्यादिपराक्रममनुत्तमरसं वा **च प्रापयति, तस्मात्—स सदैवानुष्ठेयः ।**

हे विद्वन् ! त्वमस्य त्रिविधस्य यज्ञस्यानुष्ठानस्य गुणानां च वेदितासि, तस्मात्—प्रतिवद=प्रत्यक्षमुपदिश, यतो वयं त्वया परमेश्वरेण, विदुषा, वीरेण वा सह संगत्य (**सह**) **संघातं संघातमाजेष्म=सर्वान् संग्रामान् विजयेमहि** (संघातं संघातं=सम्यग्घन्यन्तेजना यस्मिन् तं संग्रामम्, आजेष्म=जयेम) ।

सर्वो मनुष्यो वर्षवृद्धं शस्त्रास्त्राणां बर्धयितारं

भावार्थ—जिस कारण से यह यज्ञ (**मधुजिह्वः**) मधुरगुणयुक्त जिह्वा=ज्वाला वाला है, (**कुक्कुटः**) पर द्रव्य को लेने वाले चोर वा शत्रु को नष्ट करने वाला (**असि**) है, तथा (**इषम्**) अन्नादि पदार्थों और (ऊर्जम्) विद्यादि बल वा अत्युत्तम रस को प्राप्त कराता है इसलिए वह सदा अनुष्ठान के योग्य है ।

हे विद्वान् मनुष्य ! तू इस तीन प्रकार के यज्ञ के अनुष्ठान और गुणों का ज्ञाता है इसलिए (**प्रतिवद**) हमें स्पष्ट उपदेश कर, जिससे हम लोग (**त्वया**) परमेश्वर, विद्वान् वा वीर पुरुष के साथ मिलकर (**संघात संघातम्**) जिनमें लोगों का संहनन होता है उन सब संग्रामों को (**आजेष्म**) सब ओर से जीतें ।

सब मनुष्य (**वर्षवृद्धम्**) शस्त्र अस्त्रों के बढ़ाने

त्वा=त्वां **तं** (तं) यज्ञं वा **वर्षवृद्धम्** वृष्टेर्वर्धकं यज्ञं **प्रतिवेत्तु** जानातु ।

एवं कृत्वा सर्वैर्जनैः परापूतं परागतं पूतं=पवित्रत्वं यस्मात् तत् **रक्षः** दुष्टस्वभावो मूर्खः, **परापूताः** परागतः पूतः=पवित्रस्वभावो येभ्यस्ते **अरातयः** परपदार्थग्रहीतारः शत्रवः, **अपहतम्** अपहन्यते यत् तत् रक्षः दस्युस्वभावः, **सदैव कार्यम्** ।

यथाऽयं हिरण्यपाणिः हिरण्यं=ज्योतिः, पाणिः=हस्तः किरणव्यवहारो वा यस्य सः, **वायुः** योऽयं भौतिको वाति **अच्छिद्रेण** छिद्ररहितेन=एकरसेन **पाणिना** किरणसमूहेन व्यवहारेण **यज्ञे संसारेऽग्निना सूर्येण विच्छिन्नान् पदार्थकणान्** [**प्रतिगृभ्णातु**]=**प्रतिगृभ्णाति** प्रतिगृह्णाति ।

यथा च हिरण्यपाणिः हिरण्यं=ज्योतिः पाणिः=हस्तः किरणव्यवहारो वा यस्य सः, **सविता** वृष्टिप्रकाश द्वारा दिव्यगुणानां प्रसवहेतुः **देवः** प्रकाशस्वरूपः [**वः**]=**तान्** तान्हुतान् परमाणु जलादि-पदार्थान् [**विविनक्तु**]=**विविनक्ति**=**पृथक्करोति** विशेषं वेचयति, वेचयतु वा **तथैव परमेश्वरो विद्वान् मनुष्यश्चाच्छिद्रेण** छिद्ररहितेन=एकरसेन **पाणिना** किरणसमूहेन व्यवहारेण **सर्वा विद्या विविनक्तु** विशेषं वेचयतु, **प्रतिगृभ्णातु** प्रतिगृह्णाति, **तथैव कृपया संप्रीत्या चैतौ वः**=**युष्मानानन्दकरणाय प्रतिगृह्णीतः** ।। १ । १६ ।।

वाले (**त्वा**) उस यज्ञ को तथा (**वर्षवृद्धम्**) वर्षा के बढ़ाने वाल यज्ञ को (**प्रतिवेत्तु**) समझें ।

इस प्रकार संग्राम एवं यज्ञ करके सब मनुष्य (**परापूतम्**) पवित्रता से रहित, (**रक्षः**) दुष्ट स्वभाव वाले मूर्ख को तथा (**परापूतः**) पवित्र स्वभाव से रहित (**अरातयः**) पर पदार्थ को ग्रहण करने वाले शत्रुओं को और (**अपहतम्**) विनाश के योग्य (**रक्षः**) डाकुओं को सदैव नष्ट करने का प्रयत्न करें ।

जैसे—यह (**हिरण्यपाणिः**) ज्योतिर्मय हाथ वाला व ज्योतिर्मय किरण व्यवहार वाला (**वायुः**) भौतिक वायु (**अच्छिद्रेण**) छिद्र-रहित अर्थात् एक रस (**पाणिना**) किरणों के व्यवहार से यज्ञ रूप संसार में अग्नि अर्थात् सूर्य से अति सूक्ष्म हुए पदार्थ-कणों को (**प्रतिगृभ्णातु**) ग्रहण करता है ।

और जैसे (**हिरण्यपाणिः**) ज्योतिर्मय हाथ वाला वा ज्योतिर्मय किरण व्यवहार वाला (**सविता**) वृष्टि और प्रकाश द्वारा दिव्यगुणों का उत्पादक (**देवः**) प्रकाशस्वरूप सूर्य (**वः**) उन परमाणु रूप जलादि पदार्थों को [**विविनक्तु**] विविक्त अर्थात् पृथक्-पृथक् करता है, वैसे ही परमेश्वर और विद्वान् मनुष्य (**अच्छिद्रेण**) छिद्र-रहित अर्थात् एकरस (**पाणिना**) उपदेश रूप किरणों के व्यवहार से सब विद्याओं का (**विविनक्तु**) विश्लेषण करें तथा (**प्रतिगृभ्णातु**) उन्हें ग्रहण करें और वैसे ही कृपा एवं प्रीतिपूर्वक यह दोनों (**वः**)तुम लोगों को, आनन्दित करने के लिए स्वीकार करें ।। १ । १६ ।।

[(१) **अयं यज्ञो—सर्देवानुष्ठेयः**, (२) **वयं संघातं संघातमाजेष्व**, (३) **सर्वो मनुष्यो वर्षवृद्धं प्रतिवेत्तु**, (४) परापूतं रक्षः परापूता अरातयः—**सदैव कार्यम्**, (५) **सविता देवः** (वः) **तान्** (विविनक्तु)=विविनक्ति=पृथक्करोति, (६) **वायुः—पदार्थकणान** [प्रतिगृभ्णातु]=**प्रतिगृभ्णाति**]

भावार्थः—अत्र श्लेषालंकारः ।। ईश्वरः सर्वान् मनुष्यानाज्ञापयति—(१) मनुष्यैर्यज्ञानुष्ठानं (२) संग्रामे दुष्टशत्रूणां विजयो (३) गुणज्ञानं विद्यावृद्धसेवनं (४) दुष्टानां मनुष्याणां दोषाणां वा निराकरणं (५) सर्वपदार्थच्छेदकोऽग्निः

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष अलंकार है । ईश्वर सब मनुष्यों को आज्ञा देता है कि—मनुष्य (१) यज्ञ का अनुष्ठान, (२) संग्राम में दुष्ट शत्रुओं पर विजय, (३) पदार्थों के गुणों का ज्ञान, विद्या—वृद्धजनों की सेवा, (४) दुष्ट मनुष्यों और

सूर्यो वा (६) तथा—सर्वपदार्थधारको वायुश्चास्तीति विज्ञानं,

दोषों का निराकरण, (५) सूर्य वा अग्नि सब पदार्थों को सूक्ष्म करने वाला है और (६) वायु सब पदार्थों को धारण करने वाला है, इस विज्ञान को,

[परमेश्वरो विद्वान् मनुष्यश्च—सर्वा विद्या विविनक्तु, कृपया संप्रीत्या चैतौ वः=युष्मानानन्दकरणाय प्रतिगृह्णीतः]

परमेश्वरोपासनां विद्वत्समागमं च कृत्वा सर्वा विद्याः प्राप्य सदैव सर्वार्था सुखोन्नतिः कार्येति ॥ १ । १६ ॥

परमेश्वर की उपासना और विद्वानों का संग करके, सब विद्याओं को प्राप्त कर सदा सब के लिए सुख की उन्नति करें ॥ १ । १६ ॥

भाष्यसार—१. **यज्ञ**—मधुर गुणयुक्त ज्वाला वाला, चोर वा शत्रु को नष्ट करने वाला, अन्न आदि पदार्थों, विद्या आदि बल वा अत्युत्तम रसों को प्राप्त कराने वाला है। परमेश्वर, विद्वान् और वीर पुरुषों के संग से प्रत्येक संग्राम में विजय प्राप्त कराने वाला है। शिल्पविद्या से शस्त्रास्त्रों को बढ़ाने वाला है। यह वर्षा का भी वर्द्धक है। पवित्रता-रहित दुष्ट स्वभाव वाले मूर्ख जनों तथा शत्रुओं और डाकू लोगों को नष्ट करने वाला है।

२. **वायु**—ज्योति को वहन करने वाला होने से वायु का नाम हिरण्यपाणि है। वह अविच्छिन्न भाव से यज्ञ रूप इस संसार में सूर्य से सूक्ष्म किये पदार्थों को वहन करने वाला है।

३. **सूर्य**—ज्योतिर्मय किरणें सूर्य के हाथ हैं इसीलिये उसे 'हिरण्यपाणि' कहा जाता है, वर्षा और प्रकाश के द्वारा दिव्य गुणों का उत्पादक होने से वह 'सविता' है, और प्रकाश स्वरूप होने से उसका नाम 'देव' है। यह सूर्य होम किये हुए पदार्थों का परमाणु रूप में विवेचक है।

परमेष्ठी प्रजापतिः । **अग्निः=परमेश्वरो भौतिकोऽग्निश्च** ॥ निचृद् ब्राह्मी पंक्तिः । पंचमः स्वरः ॥

अथाग्निशब्देन किं किं गृह्यते तेन किं किं च भवतीत्युपदिश्यते ॥

अब, अग्निशब्द से किस-किस का ग्रहण किया जाता और इससे क्या-क्या कार्य होता है, इस विषय का उपदेश किया है ॥

ध्रृष्टिर॒स्यपाऽग्ने ऽ अ॒ग्निमा॒मादं॑ जहि॒ निष्क्र॒व्याद॑ꣳ से॒धा दे॑व॒यजं॑ वह ।
ध्रु॒वम॑सि पृथि॒वीं दृ॑ꣳह ब्रह्म॒वनि॑ त्वा क्षत्र॒वनि॑ सजात॒वन्युप॑दधामि॒ भ्रातृ॑व्यस्य व॒धाय॑ ॥१७॥

पदार्थः—(**धृष्टिः**) प्रगल्भ इव यजमानः (**असि**) भवसि भवति वा । अत्र पक्षे व्यत्ययः (**अप**) क्रियायोगे (**अग्ने**) परमेश्वर धनुर्वेदविद्वान्वा (**अग्निम्**) विद्युदाख्यम् (**आमादम्**) आमानपक्वानत्ति तम् (**जहि**) हिंसय (**निष्क्रव्यादः**) क्रव्यं=पक्वमांसमत्ति तस्मान्निर्गतस्तम् (**सेध**) शास्त्राणि शिक्षय (**आ**) क्रियायोगे (**देवयजम्**) देवान्=विदुषो दिव्यगुणान् यजति=संगतान् करोति येन यज्ञेन स देवयट् तम् । अत्र अन्येभ्योऽपि दृश्यन्त इति सूत्रेण कृतो बहुलमिति वार्त्तिकेन करणे विच् प्रत्ययः (**वह**) प्रापय प्रापयति वा । अत्र सर्वत्र पक्षे व्यत्ययः (**ध्रुवम्**) निश्चलं सुखम् (**असि**) भवति (**पृथिवीम्**) विस्तृतां भूमिं तत्स्थान्प्राणिनश्च (**दृंह**) उत्तमगुणैर्वर्धय वर्धयति वा (**ब्रह्मवनि**) ब्राह्मणं=विद्वांसं वनति तम् । छन्दसि वनसनरक्षिमथाम् ॥ अ० ३ । २ । २७ ॥ अनेन ब्रह्मोपपदे वनधातोरिन्प्रत्ययः । सुपां=सुलुगित्यमो लुक् च (**त्वा**) त्वां तं वां (**क्षत्रवनि**) क्षत्रं=संभाजिनं वनति तम् । अत्राप्यमो लुक् (**सजातवनि**) जातं जातं वनति स जातवनिः समानश्चासौ

जातवनिस्तम् । समानस्य छन्दस्य मूर्द्धप्रभृत्युदर्केषु ॥ अ० ६ । ३ । ८४ ॥ अनेन समानस्य सकारादेशः (उपदधामि) हृदये वेद्यां विमानादियानेषु वा धारयामि (भ्रातृव्यस्य) द्विषतः शत्रोः (बधाय) नाशाय=हननाय ॥ अयं मंत्रः श० १ । १ । ५ । ३—८ व्याख्यातः ॥ १७ ॥

प्रमाणार्थ—(असि) भवसि भवति वा । यहाँ पक्ष में व्यत्यय है । (देवयजम्) यहाँ देवपूर्वक यज् धातु से 'अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते' इस सूत्र से तथा 'कृतो बहुलम्' वार्त्तिक से करण अर्थ में विच् प्रत्यय है । (वह) प्रापय प्रापयति वा । यहाँ सर्वत्र पक्ष में व्यत्यय है । (ब्रह्मवनि) यहाँ ब्रह्मपूर्वक वन् धातु से 'छन्दसि वनसनरक्षिमथाम्' (अ० ३ । २ । २७) से इन् प्रत्यय है । 'सुपां सुलुक्०' से अम् का लुक् है । (क्षत्रवनि) यहाँ भी 'अम्' का लुक् है । (संजातवनि) इस शब्द में 'समानस्य छन्दस्यमूर्द्धप्रभृत्युदर्केषु' (अ० ६ । ३ । ८४) से समान को सकार-आदेश है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१ । १ । ५ । ३—८) में की गई है । १ । १७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे अग्ने=परमेश्वर ! परमेश्वर धनुर्वेदविद्वन्वा ! त्वं धृष्टिः प्रगल्भ इव यजमानः असि भवसि, अतो निष्क्रव्यादं क्रव्यं=पक्वमांसमत्ति तस्मान्निर्गतस्तम् आमादम् आमान-पक्वानत्ति तं देवयजं देवान्=विदुषो दिव्यगुणान् यजति=संगतान् करोति येन यज्ञेन स देवयट् तम् अग्निं विद्युदाख्यं सेध शस्त्राणि शिक्षय । एवं मंगलाय शास्त्राणि शिक्षित्वा दुःखमपजहि हिंसय, सुखं च आवह प्रापय ।

तथा—हे परमेश्वर ! त्वं ध्रुवं निश्चलं सुखम् असि, अतः पृथिवीं विस्तृतां भूमिं तत्स्थान्प्राणिनश्च दृंह उत्तमगुणैर्वर्धय ।

हे जगदीश्वराऽग्ने ! परमेश्वर धनुर्वेदविद्वन्वा ! यत् ईदृशो भवान्, तस्मादहं भ्रातृव्यस्य द्विषतः=शत्रोः बधाय नाशाय=हननाय ब्रह्मवनि ब्राह्मणम्=विद्वांसं वनति तं, क्षत्रवनि क्षत्रं=संभाजिनं वनति तं सजातवनि जातं जातं वनति स जातवनिः, समानश्चासौ जातवनिस्तं, त्वा=त्वां उपदधामि हृदये धारयामि । इत्येकोऽन्वयः ॥

द्वितीयान्वयमाह—हे यजमान विद्वन् ! यतोऽयमग्निर्धृष्टिः प्रगल्भ इव यजमानो असि भवति, तथा चाऽऽमान्निष्क्रव्याद्देवयजं देवान्=विदुषो दिव्यगुणान् यजति=संगतान् करोति येन यज्ञेन स देवयट् तं यज्ञमावहति, तस्मात्

भाषार्थ—हे (अग्ने) परमेश्वर ! वा धनुर्वेदज्ञ विद्वान् पुरुष ! आप (धृष्टिः) निर्भय यजमान के समान (असि) हो, इसलिए (निष्क्रव्यादम्) पके हुए मांस को न खाने वाली (आमादम्) कच्चे पदार्थों को खाने वाली (देवयजम्) देव अर्थात् विद्वानों और दिव्यगुणों को प्राप्त कराने वाली (अग्निम्) विद्युत्-विद्या के (सेध) शास्त्रों की शिक्षा कीजिये । इस प्रकार कल्याण के लिए शास्त्रों की शिक्षा देकर दुःख को (अपजहि) दूर कीजिये और सुख को (आवह) प्राप्त कराइये ।

तथा—हे परमेश्वर ! आप (ध्रुवम्) निश्चल सुख रूप (असि) हो, अतः (पृथिवीम्) विस्तृत भूमि और उस पर रहने वाले प्राणियों को (दृंह) उत्तम गुणों से बढ़ाइये ।

हे (अग्ने) जगदीश्वर वा धनुर्वेदज्ञ विद्वान् ! पुरुष क्योंकि आप ऐसे उक्त गुण वाले हैं अतः मैं (भ्रातृव्यस्य) शत्रु के (बधाय) नाश के लिए (ब्रह्मवनिम्) ब्राह्मण अर्थात् विद्वानों के रक्षक (क्षत्रवनिम्) क्षत्रियों के रक्षक (सजातवनिम्) मेरे समान अन्य पुरुषों के भी रक्षक (त्वा) आपको वा उस धनुर्वेदज्ञ विद्वान् को (उपदधामि) हृदय में धारण करता हूँ ॥ (यह मन्त्र का पहला अन्वय है) ॥

दूसरा अन्वय—हे यजमान विद्वान् पुरुष ! जिस कारण यह अग्नि (धृष्टिः) निर्भय यजमान के समान दोषों का घर्षण करने वाला (असि) होता है, तथा—कच्चे पदार्थ और कच्चे मांस आदि को छोड़कर खाने वाला अग्नि

त्वमिममामादम् आमान्=अपक्वानत्ति तं निष्क्रव्यादं क्रव्यं=पक्वमांसमत्ति तस्मान्निर्गतस्तं देवयजं देवान्=विदुषो दिव्यगुणान् यजति=संगतान् करोति येन यज्ञेन स देवयट् तम् **अग्निं** विद्युदाख्यम् **आवह** प्रापय, **सेध**=**अन्येभ्यस्तमेवं शिक्षय, तदनुष्ठानेन दोषानयजहि** हिंसय।

(**देवयजम्**) देव अर्थात् विद्वानों और दिव्यगुणों को प्राप्त कराने वाले यज्ञ को प्राप्त कराता है, अतः आप इस (**आमादम्**) कच्चे पदार्थों को खाने वाली (**निष्क्रव्यादम्**) पके हुए मांस को न खाने वाली (**देवयजम्**) देव अर्थात् विद्वानों और दिव्यगुणों को प्राप्त कराने वाली (**अग्निम्**) विद्युत् नामक अग्नि को (**आवह**) प्राप्त कराइये (**सेध**) अन्यों को भी इस प्रकार शिक्षित कीजिये, उसके अनुष्ठान से दोषों को (**अपजहि**) दूर कीजिये।

यतोऽयमग्निः **सूर्यरूपेण [ध्रुवम्]**=**ध्रुवोऽसि**=**अस्ति** भवति, **तस्मादयमाकर्षणेन पृथिवीं** विस्तृतां भूमिं तत्स्थान्प्राणिनश्च **दंह**=**दंहति धरति** उत्तमगुणैर्वर्धयति, **तस्मात्तमहं ब्रह्मवनिं** ब्राह्मणं=विद्वांसं वनति तं **क्षत्रवनिं** क्षत्रं=संभाजिनं वनति तं **सजातवनिं** जातं जातं वनति स जातवनिः, समानश्चासौ जातवनिस्तं **भ्रातृव्यस्य** द्विषतः=शत्रोः **बधाय** नाशाय=हननाय **उपदधामि** वेद्यां विमानादिषु वा धारयामि। **इति द्वितीयः** ॥ १। १७॥

जिस कारण यह अग्नि सूर्यरूप में **[ध्रुवम्]** निश्चल (**असि**) है अतः यह आकर्षण शक्ति से (**पृथिवीम्**) विस्तृत भूमि और उस पर स्थित प्राणियों को (**दृंह**) धारण करता एवं उत्तम गुणों से बढ़ाता है, अतः मैं उस (**ब्रह्मवनिम्**) ब्राह्मण अर्थात् विद्वानों के रक्षक, (**क्षत्रवनिम्**) क्षत्रियों के रक्षक, (**सजातवनिम्**) मेरे समान अन्य पुरुषों के भी रक्षक अग्नि को (**भ्रातृव्यस्य**) शत्रु के (**वधाय**) हनन के लिए (**उपदधामि**) यज्ञवेदी वा विमान आदि में (**उपदधामि**) स्थापित करता हूँ (यह मन्त्र का दूसरा अन्वय है) ॥ १। १७॥

[हे अग्ने=परमेश्वर !···निष्क्रव्यादमामादं देवयजमग्निं सेध]

भावार्थः- अत्र श्लेषालङ्कारः॥ सर्वशक्तिमतेश्वरेण यतोऽयमामाद्=दाहकस्वभावोऽग्नी रचित स्ततो नायं भस्मादिकं दग्धुंसमर्थो भवति, येनामान् पदार्थान् पक्त्वाऽदन्ति, येनोदरस्थमन्नं पच्यते, (स आमात्) येन च मनुष्या मृतं देहं दहन्ति स क्रव्यात्संज्ञोऽग्निः।

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष अलंकार है॥ सर्वशक्ति सम्पन्न ईश्वर ने जिस कारण यह दाहक स्वभाव वाला अग्नि रचा है अतः यह भस्म आदि को दग्ध नहीं कर सकता जिससे कच्चे पदार्थों को पका कर खाते हैं, जिससे उदरस्थ अन्न पचता है वह 'आमात्' और जिससे मनुष्य मृत शरीर को जलाते हैं वह 'क्रव्यात्' नामक अग्नि है।

येनायं दिव्यगुणप्रापको विद्युदाख्यश्च रचितः,

और जिसने वह दिव्यगुणों को प्राप्त कराने वाला विद्युत् नामक अग्नि रचा है,

[अयमग्निः···पृथिवीं दृंह=दृंहति=धरति]

तथा येन पृथिवीधारणाकर्षण प्रकाशकः सूर्यो रचितः,

और जिसने पृथिवी का धारण, आकर्षण और प्रकाश करने वाले सूर्य को रचा है,

[ब्रह्मवनिं क्षत्रवनिं सजातवनिं त्वा=त्वामुपदधामि]

यश्च ब्रह्मभिः=वेदविद्भिर्ब्राह्मणैः क्षत्रियैः समानजन्मभिर्मनुष्यैश्च वन्यते=संसेव्यते,

और जो—ब्रह्म अर्थात् वेदज्ञ ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा हमारे समान अन्य पुरुषों से सेवन किया जाता है।

तथा—यः सर्वेषु जातेषु पदार्थेषु वर्तमानः परमेश्वरो भौतिकोऽग्निर्वा, स एव सर्वैरुपास्यो, भौतिकश्च क्रियासिद्ध्यर्थं सेवनीय इति ।। १ । १७ ।।

तथा—जो सब उत्पन्न पदार्थों में विद्यमान परमेश्वर वा भौतिक अग्नि है। परमेश्वर सबका उपास्य और भौतिक अग्नि क्रियासिद्धि के लिए सेवनीय है ।। १ । १७ ।।

भा० पदार्थः—निष्क्रव्यादम्=न भस्मादिकं दग्धुं समर्थम् । आमादम्=दाहकस्वभावम्, येनामान् पदार्थान् पक्त्वाऽदन्ति तम् । देवयजम्=दिव्यगुणप्रापकम् । ब्रह्मवनिम्=यो ब्रह्मभिः=वेदविद्भिर्ब्राह्मणैः वंन्यते=संसेव्यते तम् । क्षत्रवनिम्=यः क्षत्रियैर्वन्यते=संसेव्यते तम् । सजातवनिम्=यः समान जन्मभिर्मनुष्यैर्वन्यते=संसेव्यते तम् ।

भाष्यसार—१. **अग्नि शब्द के अर्थ**—ईश्वर । धनुर्वेद का विद्वान् । विद्युत् । सूर्य । भौतिक अग्नि ।।

२. **अग्नि के भेद**—क्रव्याद्=मृतक को जलाने वाली । आमात्—उदरस्थ अन्न को पकाने वाली । देवयट्=यज्ञीय अग्नि अथवा दिव्यगुणों का प्रापक विद्युत् ।।

३. **ईश्वर प्रार्थना**—हे अग्ने=परमेश्वर ! आप निर्भय यजमान हो । इसलिए मुझे उक्त तीनों प्रकार की अग्नि की शास्त्रों से शिक्षा कीजिये । आप निश्चल सुख स्वरूप हो अतः पृथिवी और प्राणियों को उत्तम गुणों से बढ़ाइये । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सब के रक्षक आपको मैं शत्रुओं के विनाश के लिए हृदय में धारण करता हूँ ।

४. **भौतिक अग्नि**—हे विद्वान् यजमान ! आप उक्त तीन प्रकार की अग्नि की मुझे शिक्षा कीजिये तथा उसकी सिद्धि से सब दोषों का निवारण कीजिये । यह भौतिक अग्नि सूर्य रूप में ध्रुव (**स्थिर**) है । सूर्य आकर्षण शक्ति से पृथिवी और पृथिवीस्थ प्राणियों को धारण कर रहा है एवं उन्हें उत्तम गुणों से बढ़ाता है । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सब की रक्षा के लिए तथा शत्रुओं के विनाश के लिए यज्ञ-वेदि और यानों में भौतिक अग्नि को स्थापित करें ।।

●

परमेष्ठी प्रजापतिः । **अग्निः=परमेश्वरो भौतिकोऽग्निश्च** ।। पूर्वस्य ब्राह्मी उष्णिक् ।
ऋषभः स्वरः । धर्त्रमसीति मध्यस्याच्र्चो त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।
विश्वाभ्य इत्युत्तरस्यार्चो पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ।।
पुनरग्निशब्देनोक्तावर्थावुपदिश्येते ।।

फिर भी, अग्नि शब्द से उक्त परमेश्वर और भौतिक अग्नि का उपदेश किया जाता है ।।

अग्ने ब्रह्म गृभ्णीष्व धरुणमस्यन्तरिक्षं दृꣳह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय । धर्त्रमसि दिवं दृꣳह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय । विश्वाभ्यस्त्वाशाभ्यऽउपदधामि चितं स्थोर्ध्वचितो भृगूणामङ्गिरसां तपसा तप्यध्वम् ।।१८।।

पदार्थः—(**अग्ने**) परमेश्वर भौतिको वा (**ब्रह्म**) वेदम् (**गृभ्णीष्व**) ग्राहय गृह्णाति वा । अत्र सर्वत्र पक्षे व्यत्ययः । हृग्रहोर्भश्छन्दसीति हकारस्य भकारः (**धरुणम्**)धरति सर्वलोकान् यत्तत् तेजश्च (**असि**) अस्ति । अत्र पक्षे प्रथमार्थे मध्यमः (**अन्तरिक्षम्**) आकाशस्थान् पदार्थान् । अन्तरात्मस्थमक्षयं ज्ञानं वा । अन्तरिक्षं कस्मादन्तरा क्षान्तं भवत्यन्तरेमे इति वा शरीरेष्वन्तरक्षयमिति वा ।। निरु० २ । १० ।। (**दृꣳह**) दृढीकुरु

करोति वा (**ब्रह्मवनि**) वेदं वनयति तम् (**त्वा**) त्वाम् (**क्षत्रवनि**) राज्यं वनयति तम् (**सजातवनि**) समाना जाता विद्याः समानं जातं राज्यं वा वनयति येन तम् (**उपदधामि**) धारयामि (**धर्त्रम्**) धरति यत् येन वा। **वायुर्वाव धर्त्रं चतुष्टोमः। स आभिश्चतसृभिर्दिग्भिः स्तुते तद्यतमाह धर्त्रमिति प्रतिष्ठा वै धर्त्रम्। वायुरु सर्वेषां भूतानां प्रतिष्ठा तदेव तद्रूपमुपदधाति स वै वायुमेव प्रथमनुपदधाति वायुमुत्तमं वायुनैव तदेतानि सर्वाणि भूतान्युभयतः परिगृह्णाति॥ श० ८। २। १। १६॥** अनेन प्रमाणेन धर्त्रशब्देन वायुरीश्वरश्च गृह्येते (**असि**) अस्ति वा (**दिवम्**) ज्ञानप्रकाशं सूर्य्यलोकं वा (**दृंह**) सम्यग्वर्धय, वर्धयति वा (**ब्रह्मवनि**) सर्वमनुष्यार्थं ब्रह्मणो वेदस्य विभाजितारम्। ब्रह्माण्डस्य मूर्त्तद्रव्यस्य प्रकाशकं वा (**त्वा**) त्वां तं वा (**क्षत्रवनि**) राजधर्मप्रकाशस्य विभाजितारं राजगुणानां दृष्टान्तेन प्रकाशयितारं वा (**सजातवनि**) समानान् जातान् वेदान् क्षत्रधर्मान् मूर्त्तान् जगत्स्थान् पदार्थान्वा वनयति=प्रकाशयति तम् (**विश्वाभ्यः**) सर्वाभ्यः (**त्वा**) त्वां तं वा (**आशाभ्यः**) दिग्भ्यः। **आशा इति दिङ्नामसु पठितम्॥ निघं० १। ६॥** (**उपदधामि**) उपदधाति वा सामीप्ये धारयामि तेन पुष्णामि वा (**चितः**) चेतयन्ति=संजानन्ति ये ते चितः। **अत्र वा शर्प्रकरणे खर्परे लोपो वक्तव्यः, इति वार्त्तिकेन विसर्जनीयलोपः** (**स्थ**) भवथ भवन्ति वा (**ऊर्ध्वचितः**) ऊर्ध्वानुत्कृष्टगुणान् चेतयन्ति ते मनुष्याश्चितानि कपालानि वा (**भृगूणाम्**) भृज्जन्ति यैस्तेषाम् (**अंगिरसाम्**) प्राणानामंगाराणां वा। **प्राणो वा अङ्गिराः॥ श० ६। ५। २। ३॥ अङ्गारेष्वंगिरा अङ्गारा अंकना अञ्चनाः॥ निरु० ३। १७॥** (**तपसा**) धर्मविद्याऽनुष्ठानेन तापेन तेजसा वा (**तप्यध्वम्**) तपन्तु तापयतु वा॥ **अयं मंत्रः श० १। २। १। ६--१३ व्याख्यातः॥ १८॥**

प्रमाणार्थ—(**गृभ्णीष्व**) ग्राह्य गृह्णाति वा। यहाँ सर्वत्र पक्ष में व्यत्यय है तथा 'हृग्रहोर्भश्छन्दसि' इस वार्त्तिक से हकार को भकार आदेश है। (**असि**) अस्ति। यहां पक्ष में प्रथम पुरुष के अर्थ में मध्यम पुरुष है। (**अन्तरिक्षम्**) निरुक्त (२। १०) में अन्तरिक्ष का अर्थ "द्युलोक और पृथिवी-लोक के मध्य में है एवं पृथिवी तक अवस्थित है, अतः वह अन्तरिक्ष है" किया है। (**धर्त्रम्**) शत० (८। २। ११। १६) के अनुसार 'धर्त्रम्' का अर्थ वायु है। चारों दिशाएँ उसकी स्तुति करती हैं इसलिए यह चतुष्टोम है। वह वायु इन चारों दिशाओं से स्तुति किया हुआ है इसलिए इसको 'धर्त्र' कहते हैं। 'धर्त्रम्' का अर्थ प्रतिष्ठा है, क्योंकि वायु ही उनके स्वरूप को धारण कर रहा है। वह ऋत्विक् वायु को ही प्रथम धारण करता है और वायु को ही बाद में। और वायु के द्वारा ही वह इन सब भूतों को दोनों ओर से ग्रहण करता है। इस शतपथ के प्रमाण से 'धर्त्र' शब्द से वायु और ईश्वर का ग्रहण होता है। (**आशाभ्यः**) 'आशा' शब्द निघं० (१। ६) में दिशा नामों में पढ़ा है। (**चितस्थ**) यहाँ 'वा शर्प्रकरणे खर्परे लोपो वक्तव्यः' इस वार्त्तिक से विसर्ग का लोप है। (**अंगिरसाम्**) शत० (६। ५। २। ३) के अनुसार 'अंगिरा' शब्द का अर्थ प्राण है। निरु० (३। १७) के अनुसार 'अंगिरा' का अर्थ 'अंगारों में होने वाला' है। अंगार को अंगार इसलिए कहते हैं क्योंकि वे चमकते हैं और जहाँ गिरते हैं उसी स्थान को चिह्नित कर देते हैं। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१। २। १। ६—१३) में की गई है। १। १८॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने** परमेश्वर! त्वं **धरुणं** धरति सर्वलोकान् यत्तत् तेजश्च **असि**। कृपयाऽस्मत्प्रयुक्तं **ब्रह्म** वेदं **गृभ्णीष्व** ग्राह्य, तथा **अस्मास्वन्तरिक्षम्**=**अक्षयं विज्ञानं** अन्तरात्मस्थमक्षयं ज्ञानं, वा **दृंह**=**वर्धय** दृढीकुरु।

भाषार्थ—हे (**अग्ने**) परमेश्वर! आप (**धरुणम्**) सब लोकों को धारण करने वाले और तेजःस्वरूप (**असि**) हो, कृपा करके हमारी (**ब्रह्म**) वैदिक स्तुति को (**गृभ्णीष्व**) स्वीकार कीजिये, तथा हमारे (**अन्तरिक्षम्**) अन्तरात्मा में स्थित नाशरहित ज्ञान-विज्ञान को (**दृंह**) बढ़ाइये एवं दृढ़ कीजिये।

अहं भ्रातृव्यस्य वधाय ब्रह्मवनि वेदं वनयति तं **क्षत्रवनि** राज्यं वनयति तं **सजातवनि** समाना जाता विद्या वनयति येन तं **त्वा** त्वाम् **उपदधामि** धारयामि ।

मैं (**भ्रातृव्यस्य**) शत्रु के (**वधाय**) विनाश के लिए (**ब्रह्मवनि**) वेद को प्रकाशित करने वाले (**क्षत्रवनि**) राज्य को बढ़ाने वाले (**सजातवनि**) सब विद्याओं को समान रूप से सबके लिए प्रदान करने (**त्वाम्**) आपको (**उपदधामि**) धारण करता हूँ ।

हे सर्वधर्तर्जगदीश्वर ! त्वं सर्वेषां लोकानां धर्त्रं धरति यद् येन वा **असि । कृपयाऽस्मासु दिवं**=**ज्ञान-प्रकाशं दृंह** सम्यग्वर्धय । **अहं भ्रातृव्यस्य वधाय ब्रह्मवनि** सर्वमनुष्यार्थं ब्रह्मणो=वेदस्य विभाजयितारं **क्षत्रवनि** राजधर्मप्रकाशस्य विभायितारं **सजातवनि** समानान् जातान् वेदान् क्षत्रधर्मान् वनयति प्रकाशयति तं **त्वा**=**त्वामुपदधामि** सामीप्ये धारयामि तेन पुष्णामि वा । **त्वां सर्वव्यापकं** ज्ञात्वा **विश्वाभ्यः** सर्वाभ्य **आशाभ्यः** दिग्भ्य **उपदधामि** सामीप्ये धारयामि तेन पुष्णामि वा ।

हे सबको धारण करने वाले जगदीश्वर ! आप लोकों के ((**धर्त्रम्**) धारण करने वाले (**असि**) हो, कृपा करके हमारे (**दिवम्**) ज्ञान प्रकाश को (**दृंह**) भली भाँति बढ़ाइये । मैं (**भ्रातृव्यस्य**) शत्रु के (**वधाय**) हनन के लिए (**ब्रह्मवनि**) सब मनुष्यों के लिए ब्रह्म=वेद के विभाजक (क्षत्रवनि) राजधर्म के प्रकाश के वितरक (**सजातवनि**) सब उत्पन्न हुए वेदों एवं क्षात्र धर्म के प्रकाशक, (त्वा) आपको (**उपदधामि**) हृदय में धारण करता हूँ वा आपसे पुष्टि को प्राप्त होता हूँ । आपको सर्वव्यापक समझ कर सब (**आशाभ्यः**) दिशाओं से (**उपदधामि**) आपको अपने हृदय में धारण करता हूँ वा आप से पुष्टि को प्राप्त होता हूँ ।

हे मनुष्याः ! यूयमथैवं विदित्वा चितः चेतयन्ति=संजानन्ति ये ते **ऊर्ध्वचितः** (**कपालानि**) ऊर्ध्वानुत्कृष्टगुणान् चेतयन्ति ते मनुष्याः **कृत्वा भृगूणाम्** भृज्जन्ति यैस्तेषाम् **अंगिरसान्** प्राणानां **तपसा** धर्मविद्याऽनुष्ठानेन तापेन **तप्यध्वं**=**यथा तपन्तु तथा तापयत** तापयत । **इत्येकोऽन्वयः** ॥

हे मनुष्यो ! तुम मुझे इस प्रकार जान कर (**चितः**) चेतन गुण वाले साधारण जनों को (**ऊर्ध्व-चितः**) उत्कृष्ट गुण वाले मनुष्य बनाकर (**भृगूणाम्**) दोषों को भस्म करने वाले (**अंगिरसाम्**) प्राणों के (**तपसा**) धर्म एवं विद्या अनुष्ठान रूप तप से (**तप्यध्वम्**) जैसे हो सके वैसे तप करो । यह मन्त्र का पहला अन्वय है ॥

द्वितीयान्वयमाह—हे विद्वन् ! **येनाऽग्निना धरुणं** धरति सर्वलोकान् यत्तत् तेजश्च **ब्रह्म** वेदम् **अन्तरिक्षम्** आकाशस्थान् पदार्थान् **गृह्यते दह्यते च, तं त्वं होमाऽर्थं** शिल्पविद्यासिद्धार्थं **गृभ्णीष्व** ग्राहय **दृंह** दृढीकुरु च । **तथैवाहमपि भ्रातृव्यस्य वधाय** [**त्वा**] **तं ब्रह्मवनि** वेदं वनयति तं **क्षत्रवनि** राज्यं वनयति तं **सजातवनि** समानं जातं राज्यं वनयति येन तम् **उपदधामि** धारयामि । **एवं सोऽग्निर्धत्तः** (धारितः) **सन् सुखमुपदधाति** ।

दूसरा अन्वय—हे विद्वान् पुरुष ! जिस अग्नि से (**धरुणम्**) सब लोकों को धारण करने वाला तेज (**ब्रह्म**) वेद (**अन्तरिक्षम्**) आकाश में स्थित पदार्थ ग्रहण किये जाते हैं और दृढ़ किये जाते हैं उसे आप होम के लिए और शिल्प विद्या की सिद्धि के लिए (**गृभ्णीष्व**) ग्रहण कराइये और (**दृंह**) दृढ़ कीजिये । वैसे ही मैं भी (**भ्रातृव्यस्य**) शत्रु के (**वधाय**) हनन के लिए (**ब्रह्मवनि**) ज्ञान के वर्द्धक (**क्षत्रवनि**) राज्य के रक्षक (**सजातवनि**) समान रूप से सब राज्य की रक्षा करने वाले उस अग्नि को (**उपदधामि**) धारण करता हूँ । इस प्रकार धारण किया हुआ वह अग्नि सुखदायक होता है ।

एवं यो वायुर्धर्त्रं=सर्वलोकधारको धरति यत् येन वा **असि** अस्ति, **दिवं** सूर्यलोकं **दृंहति तमहं यथा भ्रातृव्यस्य वधाय ब्रह्मवनि** सर्वमनुष्यार्थं ब्रह्माण्डस्य मूर्त्तद्रव्यस्य प्रकाशकं **क्षत्रवनि** राजगुणानां दृष्टान्तेन प्रकाशयितारं **सजातवनि** मूर्तान् जगत्स्थान् पदार्थान् वनयति प्रकाशयति तम् **उपदधामि** उपदधाति **तथैव त्वमप्येतं तस्मै प्रयोजनायोपदृंह** वर्धय ।

इसी प्रकार जो वायु (**धर्त्रम्**) सब लोकों को धारण करने वाला (**असि**) है, जो (**दिवम्**) सूर्य-लोक को दृढ़ करता है, मैं जिस प्रकार (**भ्रातृव्यस्य**) शत्रु के (**वधाय**) हनन के लिये (**ब्रह्मवनि**) सब मनुष्यों के लिये ब्रह्माण्ड के मूर्त द्रव्यों के प्रकाशक (**क्षत्रवनि**) राजगुणों को अपने दृष्टान्त से प्रकाशित करने वाले (**सजातवनि**) जगत् के मूर्त्त पदार्थों के प्रकाशक उस वायु को (**उपदधामि**) धारण करता हूँ वैसे आप भी उसे उक्त प्रयोजन के लिये (**उपदृंह**) बढ़ाइये ।

हे शिल्पविद्यां **चिकीर्षो विद्वन् ! येन वायुना पृथिवी द्यौः**=**सूर्यलोकश्च धार्य्यते दृह्यते च तं त्वं जीवनार्थं शिल्पविद्यायै च धारय दृंह** वर्धय **च**। **ब्रह्मवनि इत्यादि पूर्ववत् ।**

हे शिल्पविद्या की सिद्धि के इच्छुक विद्वान् पुरुष ! जिस वायु से पृथिवी और सूर्यलोक धारण किये जाते हैं और बढ़ाये जाते हैं उसे आप जीवन तथा शिल्प-विद्या के लिये धारण कीजिये और (**दृंह**) बढ़ाइये । ब्रह्मवनि इत्यादि पूर्ववत् ।

हे **मनुष्याः ! यथाऽहं वायुविद्यावित् त्वा=तम्** अग्निं वायुं च **विश्वाभ्यः** सर्वाभ्य **आशाभ्यो** दिग्भ्य **उपदधामि** सामीप्ये धारयामि तेन पुष्णामि वा **तथैव यूयमप्युपधत्त ।**

हे मनुष्यो ! जैसे मैं वायु विद्या का ज्ञाता (**त्वा**) उस अग्नि और वायु को (**विश्वाभ्यः**) सब (**आशाभ्यः**) दिशाओं से ग्रहण करके (**उपदधामि**) धारण करता हूँ वा उनसे पुष्टि को प्राप्त होता हूँ । वैसे तुम भी होओ ।

यज्ञार्थं=शिल्पविद्यार्थमुपरि **चितः**=**ऊर्ध्व-चितः**=कपालानि, चितानि कपालानि, **कला धारितवन्तः सन्तो भृगूणां** भृज्जन्ति यैस्तोषाम् **अङ्गिरसां** अंगाराणां **तपसा** तेजसा **तप्यध्वम्=तापयत च** [**इति द्वितीयः**] ॥ १ । १८ ॥

यज्ञ अर्थात् शिल्पविद्या की सिद्धि के लिये (**ऊर्ध्वचितः**) ऊपर चयन किये हुये कपालों को एवं कलाओं को धारण किये हुए आप लोग (**भृगूणाम्**) भस्म करने वाले (**अंगिरसाम्**) अंगारों के (**तपसा**) तेज से (**तप्यध्वम्**) उक्त पदार्थों को तपाओ ॥ [यह मन्त्र का दूसरा अन्वय है ।] ॥ १ । १८ ॥

[हे अग्ने=परमेश्वर ! त्वं—**अस्मास्वन्तरिक्षम्=अक्षयं विज्ञानं दृंह=वर्धय, अहं भातृव्यस्य वधाय ब्रह्मवनि क्षात्रवनि सजातवनि त्वोपदधामि**]

भावार्थः—अत्र श्लेषालङ्कारः । ईश्वरेणेदमादिश्यते—भवन्तो विद्वदुन्नतये, मूर्खत्व विनाशाय, सर्वशत्रूणां निवारणेन, राज्य—वर्धनाय च वेदविद्यां गृह्णीयुः ।

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषाअलंकार है । ईश्वर यह आदेश देता है कि हे मनुष्यो ! तुम, विद्वानों की उन्नति, मूर्खता का विनाश, सब शत्रुओं के निवारण से राज्य की वृद्धि के लिये वेदविद्या को ग्रहण करो ।

[**त्वं सर्वेषां लोकानां धर्त्रमसि,...त्वां सर्वव्यापकं ज्ञात्वा...उपदधामि**]

योऽग्नेर्वृद्धिहेतुः, सर्वधारको वायुः, अग्निमयः

जो अग्नि का वृद्धि का निमित्त, सबको धारण

सूर्य ईश्वरश्च स्थ=सन्ति तान् सर्वासु दिक्षु विस्तृतान्=व्यापकान् विदित्वा,

करने वाला वायु है, तथा अग्निमय सूर्य और ईश्वर हैं उनको सब दिशाओं में व्यापक जानकर,

[यज्ञार्थं=शिल्पविद्यार्थंमुपरिचित=ऊर्ध्वंचित:=कपालानि कला धारितवन्त:]

यज्ञसिद्धिं विमानादिरचनं तानि चालयित्वा, दुःखानि निवार्य, [भ्रातृव्यस्य वधाय] शत्रून् विजयन्ताम् ॥ १ । १८ ॥

यज्ञ की सिद्धि, विमान आदि रचना तथा उनका संचालन कर, दुःखों को हटाकर, शत्रुओं पर विजय प्राप्त करो ॥ १ । १८ ॥

भा० पदार्थः—अन्तरिक्षम्=वेदविद्याम् । ब्रह्मवनि=विद्वदुन्नतिम्, मूर्खत्वविनाशम् । क्षत्रवनि=राज्यवर्धनम् । भ्रातृव्यस्य=शत्रो: । वधाय=निवारणाय । धर्त्रम्=सर्वधारको वायुः ।

भावार्थ—१. अग्नि (ईश्वर)—सब लोकों को धारण करने वाला, तेजःस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, आकाशस्थ सब पदार्थों का धारक है । वेद ज्ञान का दाता और राज्य का रक्षक है । सब मनुष्यों के लिये ब्रह्माण्ड और मूर्त्त द्रव्यों का प्रकाशक, दृष्टान्त से राजगुणों का प्रकाशक और शत्रुओं का नाशक है ।

२. अग्नि (भौतिक)—सब लोकों का धारण करने वाला, प्रकाशस्वरूप, महान्, आकाशस्थ सब पदार्थों को ग्रहण और दृढ़ करने वाला, होम और शिल्पविद्या का साधक, मनुष्यों के लिये मूर्त्तद्रव्यों का प्रकाशक है । यान आदि में उपयोग से शत्रुओं का नाशक है ॥

३. वायु—सब लोकों को धारण करने वाला पृथिवी और सूर्य लोक का दृंहक (**आकाश में ठहराने वाला**), सब मनुष्यों के लिये मूर्त्त द्रव्यों को स्पर्श गुण से प्रकाशित करने वाला, दृष्टान्त से राज गुणों का प्रकाशक है । यान आदि में उपयोग से शत्रुओं का नाशक है ॥

परमेष्ठी प्रजापतिः । **अग्निः**=**भौतिकोऽग्निः** ॥ निचृद् ब्राह्मी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

अथ यज्ञस्य स्वरूपमंगानि चोपदिश्यन्ते ॥

अब यज्ञ के स्वरूप और उसके अंगों का उपदेश किया जाता है ॥

शर्मास्यवधूतꣳ रक्षोऽवधूता ऽ अरातयोऽदित्यास्त्वगसि प्रति त्वादितिर्वेत्तु । धिषणासि पर्वती प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु दिवः स्कम्भनीरसि धिषणासि पार्वतेयी प्रति त्वा पर्वती वेत्तु ॥१९॥

पदार्थः—(**शर्म**) सुखहेतुः (**असि**) भवति । **अत्र सर्वत्र व्यत्ययः** (**अवधूतम्**) विनाशितम् (**रक्षः**) दुःखं निवारणीयम् (**अवधूताः**) निवारणीया=विचालिता हताः । **अवेति विनिग्रहार्थीयः ॥ निरु० १ । ३ ॥** (**अरातयः**) अदानस्वभावाः=कृपणाः (**अदित्याः**) अन्तरिक्षस्य (**त्वक्**) त्वग्वत् (**असि**) भवति (**प्रति**) क्रियार्थे (**त्वा**) तं यज्ञम् (**अदितिः**) यज्ञस्यानुष्ठाता यज्ञमानः । **अदितिरिति पदनामसु पठितम् ॥ निघं० ५ । ५ ॥ इति यज्ञस्य ज्ञाता पालकार्थो गृह्यते** (**वेत्तु**) जानातु (**धिषणा**) वाक् वेदवाणी ग्राह्या । **धिषणेति वाङ्नामसु पठितम् ॥ निघं० १ । ११ ॥** धृष्णोति सर्वा विद्या यया सा । **धृषेर्धिष् च संज्ञायाम् ॥ उ० २ । ८२ ॥ अनेनायं शब्दः सिद्धः । महीधरेण धिषणेदं पदं धियं बुद्धिं कर्म वा सनोति व्याप्नोतीति भ्रान्त्या व्याख्यातम्** (**असि**) भवति (**पर्वती**) पर्वणां=पर्वहुज्ञानं विद्यतेऽस्यां क्रियायां सा पर्वती । **अत्र संपदादित्वात् क्विप् । भूम्नि मतुप्** (**उगितश्चेति**) **ङीप्** (**प्रति**) वीप्सार्थे (**त्वा**) तां ताम् (**अदित्याः**) प्रकाशस्य (**त्वक्**) त्वचति=संवृणोत्यनया सा (**वेत्तु**) जानातु (**दिवः**) प्रकाशवतः सूर्य्यादिलोकस्य (**स्कम्भनीः**) स्कम्भं=

प्रतिबद्धं नयतीति सा (**असि**) भवति (**धिषणा**) धारणावती द्यौः। **धिषणेति द्यावापृथिव्योर्नामसु पठितम्॥ निघं० ३। ३०॥** (**असि**) अस्ति (**पार्वतेयी**) पर्वतस्य मेघस्य दुहितेव या सा पार्वतेयी। **पर्वत इति मेघनामसु पठितम्॥ निघं० १। १०॥ पर्वतस्येयं घनपंक्तिः=पार्वती तस्यापत्यं दुहितेव पार्वतेयी वृष्टिः। स्त्रीभ्यो ढक्॥ अ० ४। १। १२०॥ अनेन ढक्** (**प्रति**) इत्थं भूताख्याने (**त्वा**) तामीदृशीम् (**पर्वती**) पः=प्रशस्तं प्रापणं यस्यां सा। **अत्र प्रशंसार्थे मतुप्** (**वेत्तु**) जानातु॥ **अयं मंत्रः श० १। २। १। १४—१७ व्याख्यातः॥ १९॥**

प्रमाणार्थ—(**असि**) भवति। यहां सर्वत्र व्यत्यय है। (**अवधूताः**) इस शब्द में 'अव' उपसर्ग है जिस का अर्थ निरु० (१।३) में नियन्त्रण (**दबाना**) है। (**अदितिः**) अदिति शब्द निघं० (५।५)। में पद-नामों में पढ़ा है। अतः यहां 'अदिति' शब्द का अर्थ यज्ञ का ज्ञाता और पालक ग्रहण किया है। (**धिषणा**) 'धिषणा' शब्द निघं० (१।११) में वाणी नामों में पढ़ा गया है। 'धृषेर्धिष् च संज्ञायाम्' उणादि (२।८२) से 'धिषणा' शब्द सिद्ध होता है। (**पर्वती**) यहां 'संपदादि' से क्विप् प्रत्यय है। आधिक्य अर्थ में मतुप् और 'उगितश्च' इस सूत्र से ङीप् है। (**धिषणा**) यह शब्द निघं० (३।३०) में द्यावा पृथिवी के नामों में पढ़ा है। (**पार्वतेयी**) पर्वत शब्द निघं० (१।१०) में मेघ-नामों में पढ़ा है। पर्वत की सघन श्रेणी पार्वती और दुहिता के समान उसका अपत्य पार्वतेयी=वृष्टि है। 'स्त्रीभ्यो ढक्' (अ० ४।१।१२०) से ढक् प्रत्यय है। (**पर्वती**) यहां प्रशंसा अर्थ में मतुप् प्रत्यय है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१।२।१।१४-१७) में की गई है। १।१९॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः! **भवन्तो योऽयं यज्ञः शर्म=सुखदः** सुखहेतुः **असि** भवति, **अदितिः=नाशरहितो** यज्ञस्याऽनुष्ठाता यजमानो [**असि**]=**अस्ति, येन रक्षः=दुःखं** (दुःखं) निवारणीयम् **अवधूतम्** विनाशितम्, **अरातयः** अदानस्वभावाः कृपणा **अवधूताः=विनष्टा** निवारणीया विचालिता हताः **च भवन्ति। यो अदित्याः=अन्तरिक्षस्य पृथिव्याश्च** [**त्वक्**]=**त्वग्वद् असि=अस्ति** भवति, **त्वा=तं** (तं) यज्ञं **वेत्तु=विदन्तु।**

येन विद्याऽऽख्येन यज्ञेन पर्वती पर्वणं पर=बहुज्ञानं विद्यतेऽस्यां क्रियायां सा पर्वती **दिवः** प्रकाशवतः सूर्यादिलोकस्य **स्कम्भनीः** स्कम्भं प्रतिबद्धं नयतीति सा **पार्वतेयी** पर्वतस्य=मेघस्य दुहितेव या सा पार्वतेयी, पर्वतस्येयं घनपङ्क्तिः पार्वती, तस्याऽपत्यं दुहितेव पार्वतेयी वृष्टिः **धिषणा** धारणा वेती द्यौः **अदित्याः** प्रकाशकस्य [**त्वक्**]=**त्वग्वत्** त्वचति=संवृणोत्यनया सा **विस्तार्य्यते, त्वा=तं** तामीदृशीं **प्रतिवेत्तु=यथावज्जानन्तु।**

येन सत्सङ्गत्याऽऽख्येन पर्वती=ब्रह्मज्ञानवती पः=प्रशस्तं प्रापणं यस्यां सा **धिषणा** वाक् वेद-

भाषार्थ—हे मनुष्यो! आप लोग जो यह यज्ञ (**शर्म**) सुखदायक एवं सुख का हेतु (**असि**) है, (**अदितिः**) नाश रहित तथा शुभ कर्मों का पालक (**असि**) है, जिससे (**रक्षः**) सब दुःख (**अवधूतम्**) विनष्ट होते हैं तथा (**अरातयः**) दान न देने वाले कंजूस लोग (**अवधूताः**) नष्ट होते हैं। और जो (**अदित्याः**) आकाश और पृथिवी की [**त्वक्**] त्वचा के समान (**असि**) है (**त्वा**) उस यज्ञ को (**वेत्तु**) जानो।

जिस विद्या नामक यज्ञ से (**पर्वती**) बहुत ज्ञान वाली (**दिवः**) प्रकाशमान सूर्यादि लोकों को (**स्कम्भनीः**) नियम में चलाने वाली (**पार्वतेयी**) पर्वत अर्थात् मेघ की पुत्री के तुल्य जो वर्षा है वह तथा (**धिषणा**) सब को धारण करने वाली द्यौ (**अदित्याः**) प्रकाशक सूर्य के [**त्वक्**] शरीर को आच्छादित करने वाली त्वचा के समान विस्तृत की जाती है (**त्वा**) उस यज्ञ को तथा उस द्यौ को (**प्रतिवेत्तु**) यथावत् जानो।

और जिस सत्संगति नामक यज्ञ से (**पर्वती**) ब्रह्म ज्ञान एवं प्रशंसनीय प्राप्ति वाली (**धिषणा**)

वाणी धृष्णोति सर्वा विद्या यया सा **प्राप्यते, तमपि प्रतिवेत्तु**=**जानन्तु** ॥ १ । १६ ॥

वेदवाणी प्राप्त की जाती है उसे भी (**प्रतिवेत्तु**) यथावत् जानो ॥ १ । १६ ॥

[हे मनुष्याः ! योऽयं यज्ञः—असि=अस्ति—तं वेत्तु=विदन्तु येन—पार्वतेयी धिषणऽदित्यास्त्वग्वद् विस्तार्यते येन—धिषणा प्राप्यते]

भावार्थः—मनुष्यैर्यो विज्ञानेन सम्यक् सामग्रीं संपाद्य यज्ञोऽनुष्ठीयते, यश्च वृष्टि बुद्धि-वर्धको ऽस्ति, सोऽग्निना मनसा च संसाधितः सूर्यप्रकाशं त्वग्वत् सेवते ॥ १ । १६ ॥

भावार्थ—मनुष्यों के द्वारा विज्ञान से भलीभाँति सामग्री को सिद्ध करके जिस यज्ञ का अनुष्ठान किया जाता है वह वर्षा और बुद्धि को बढ़ाने वाला है, सो अग्नि और विज्ञान से उत्तम रीति से सिद्ध किया हुआ सूर्य के प्रकाश की, त्वचा के समान सेवा करता है ॥ १ । १६ ॥

भा० पदार्थः—पार्वतेयी=वृष्टिः । धिषणा=बुद्धिः । आदित्याः=सूर्यप्रकाशस्य ।

भाष्यसार—**१. यज्ञ**—सुखदायक, अविनाशी, दुःखविनाशक, दान भावना से रहित कृपण (**कंजूस**) लोगों का विनाशक, है । जैसे त्वचा शरीर की रक्षा करने वाली है इसी प्रकार आकाश और पृथिवी की रक्षक है ।

२. **विद्यायज्ञ**—विद्या नामक यज्ञ त्वचा के समान विस्तृत है । इस में मनुष्यों को द्यौ का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये । द्यौ, प्रकाशमान सूर्यादि लोकों का आधार है । मेघ की पुत्री वर्षा का हेतु है ॥

३. **सत्संग यज्ञ**—इस यज्ञ से, प्रशंसनीय प्राप्ति वाली, ब्रह्मज्ञान से युक्त, वेदवाणी प्राप्त होती है जो सब विद्याओं से बढ़कर है ।

समीक्षा—'धिषणा' इस पद की व्याख्या में महर्षि लिखते हैं—"वाक् वेदवाणी ग्राह्या । धिष्णेति वाङ्नामसु पठितम् (निघं० । १ । ११) धृष्णोति सर्वा विद्या यया सा । 'धृषेर्धिष च संज्ञायाम्' (उ० २ । ८२) अनेनायं शब्दः सिद्धः । महीधरेण धिषणेदं पदं धियं=बुद्धिं कर्म वा सनोति व्याप्नोतीति भ्रान्त्या व्याख्यातम्" । अर्थात्—धिषणा पद का अर्थ वेदवाणी है । क्योंकि यह पद (निघं० १ । ११) में वाणी-नामों में पढ़ा गया है । जिससे सब विद्याओं को जीता जाता है इससे वेदवाणी को 'धिषणा' कहते हैं । यह शब्द 'धृषेर्धिष च संज्ञायाम्' इस उणादि सूत्र से धृष धातु से क्यु प्रत्यय तथा धातु के स्थान में धिष-आदेश करने पर सिद्ध होता है । किन्तु वेदभाष्यकार महीधर ने 'धिषणा' शब्द धी उपपद 'षणु' धातु से सिद्ध करने का असफल प्रयास करके अपनी अज्ञता प्रकट की है । इस प्रकार 'धीषणा' शब्द बनता है धिषणा नहीं । इसलिये महीधर को लिखना पड़ा कि 'ह्रस्वत्वमार्षम्' यहाँ ह्रस्वत्व वैदिक है । ऋषियों की सरणी को छोड़ कर अपनी कल्पना में कितना गौरव और असारता है, इससे यह तथ्य स्पष्ट सामने आता है । जब 'धिषणा' पद निघं० १ । ११ में वाणी-नामों पढ़ा है तथा उणादि २ । ८२ में उसकी सिद्धि का स्पष्ट उल्लेख है फिर महर्षि यास्क तथा पाणिनि के प्रशस्त पथ को छोड़ कर अपनी कल्पना के लंगड़े घोड़े पर चढ़ कर गड्ढे में गिरने की क्या आवश्यकता है । उणादि सूत्र के अनुसार 'धिषणा' पद की सिद्धि में प्रत्यय को आद्युदात्त मानकर उक्त पद का मध्योदात्त स्वर सिद्ध है किन्तु महीधर की सिद्धि के अनुसार उत्तरपद अन्तोदात्त स्वर बनेगा । जो मूल-मन्त्र के विपरीत है । अतः महीधर की यह भारी भ्रान्ति है ॥ १ । १६ ॥

परमेष्ठी प्रजापतिः । **सविता**=ईश्वरः, सूर्यलोकश्च ।। विराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप् । धैवतः ।।

कस्मै प्रयोजनाय स यज्ञः कर्त्तव्य इत्युपदिश्यते ।।

किस प्रयोजन के लिये उक्त यज्ञ करना चाहिये, यह उपदेश किया है ।।

धान्यमसि धिनुहि देवान् प्राणाय त्वोदानाय त्वा व्यानाय त्वा । दीर्घामनु प्रसितिमायुषे धां देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना चक्षुषे त्वा महीनां पयोऽसि ।।२०।।

पदार्थः—(**धान्यम्**) धातुमर्हं यत् यज्ञात् शुद्धम्, रोगनाशकेन स्वादिष्ठतमेन सुखकारकमन्नं तत् । अत्र दधातेर्यत् नुट् च ।। उ० ५ । ४८ ।। अनेन यत्प्रत्ययो नुडागमश्च (**असि**) भवति । अत्र सर्वत्र व्यत्ययः (**धिनुहि**) धिनोति=प्रीणाति । अत्र लडर्थे लोट् (**देवान्**) विदुषो जीवानिन्द्रियाणि च (**प्राणाय**) प्रकृष्टमन्यते=जीव्यते येन तस्मै जीवनधारणहेतवे बलाय (**त्वा**) तत् (**उदानाय**) स्फूर्त्तिहेतव ऊर्ध्वमन्यते=चेष्ट्यते येन तस्मै उत्क्रमणपराक्रमहेतवे (**त्वा**) तत् (**व्यानाय**) विविधमन्यते=व्याप्यते येन तस्मै सर्वेषां शुभगुणानां कर्मविद्यांगानां च व्याप्तिहेतवे (**त्वा**) तत् । अत्र त्रिषु प्रथमार्थे मध्यमः (**दीर्घाम्**) विस्तृताम् (**अनु**) पश्चादर्थे (**प्रसितिम्**) प्रकृष्टं सिनोति=बध्नात्यनया ताम् (**आयुषे**) पूर्णायुर्वर्धनेन सुखभोगाय (**धाम्**) दधामि । अत्र छन्दसि लुङ्लङ्लिट इति वर्त्तमाने लुङ् लडभावश्च (**देवः**) प्रकाशमानः प्रकाशहेतुर्वा (**वः**) अस्मानेतान् जगत्स्था स्थूलान् पदार्थांश्च (**सविता**) सर्वजगदुत्पादकः सकलैश्वर्य्यदातेश्वरः सूर्य्यलोको वा (**हिरण्यपाणिः**) हिरण्यस्यामृतस्य मोक्षस्य दानाय पाणिर्व्यवहारो यस्य सः । अमृतं हिरण्यम् ।। श० ७ । ४ । १ । १५ ।। यद्वा हिरण्यं=प्रकाशार्थं ज्योतिः पाणिर्व्यवहारो यस्य सः (**प्रतिगृभ्णातु**) प्रतिगृह्णातु प्रतिगृह्णाति वा । अत्र हृग्रहोरिति हस्य भः । पक्षे लडर्थे लोट् च (**अच्छिद्रेण**) निरन्तरेण व्यापनेन प्रकाशेन वा (**पाणिना**) स्तुतिसमूहेन (**महीनाम्**) महतीनां वाचां पृथिवीनां वा । महीति वाङ्नामसु पठितम् ।। निघं० १ । ११ ।। पृथिवी नामसु च । निघं० १ । १ ।। (**पयः**) अन्नं जलं च येन शुद्धम् । पय इत्युदकनामसु पठितम् ।। निघं० १ । १२ । अयं मंत्रः श० १ । १ । ५ । १८—२२ । व्याख्यातः ।। २० ।।

प्रमाणार्थ—(**धान्यम्**) धान्य शब्द में 'दधातेर्यत् नुट् च' उणादि० (५ । ४८) से 'धा' धातु से यत् प्रत्यय और नुट् का आगम है । (**असि**) भवति । यहां सर्वत्र व्यत्यय है । (**धिनुहि**) धिनोति । यहां लट् अर्थ में लोट् है । (**त्वा**) तत् । इस मन्त्र में तीन बार प्रयुक्त 'त्वा' पद में प्रथम पुरुष के अर्थ में मध्यम पुरुष है (**धाम्**) दधामि । यहां 'छन्दसि लुङ्लङ्लिटः' सूत्र से वर्तमान अर्थ में लुङ है, लट् नहीं हुआ है । (**हिरण्यपाणिः**) इस शब्द में 'हिरण्य' का अर्थ शत० (७ । ४ । १ । १५) के अनुसार 'अमृत' है । (**प्रतिगृभ्णातु**) प्रतिगृह्णातु प्रतिगृह्णाति वा । यहां 'हृग्रहो०' से हकार को भकार है । पक्ष में लट् अर्थ में लोट् लकार है । (**महीनाम्**) वाचां पृथिवीनां वा । मही शब्द निघं० (१ । ११) में वाणी के नामों में और निघं० (१ । १) पृथिवीनामों में पढ़ा है । (**पयः**) निघं० (१ । १२) में 'पयः' शब्द उदक नामों में पढ़ा है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१ । १ । ५ । १८—२२) में की गई है ।। १ । २० ।।

सपदार्थान्वयः—यदिदं यज्ञशोधितं धान्यं धातुमर्हं यद् यज्ञात् शुद्धम्, रोगनाशकेन स्वादिष्ठतमेन सुखदातकमन्नं तद् [**असि**]=अस्ति,

भाषार्थ—जो यह यज्ञ से शुद्ध किया हुआ (**धान्यम्**) पुष्टि कारक, रोगनाशक एवं स्वादिष्ठतम होने से सुखकारक अन्न [**असि**] है, और जो यज्ञ

यच्च यज्ञशोधितं पयः अन्नं जलं च येन शुद्धम् [**असि**]=**अस्ति तद् देवान्** विदुषो जीवानिन्द्रियाणि च **धिनुहि**=**धिनोति** धिनोति=पृणाति । **तस्माद्यथाऽहं** [**त्वा**]=**तत् प्राणाय** प्रकृष्टमन्यते=जीव्यते येन तस्मै जीवनधारणहेतवे बलाय [**त्वा**]=**तद् उदानाय** स्फूर्त्तिहेतव ऊर्ध्वमन्यते=चेष्ट्यते येन तस्मै उत्क्रमणपराक्रमहेतवे [**त्वा**]=**तद् व्यानाय** विविधमन्यते=व्याप्यते येन तस्मै सर्वेषां शुभगुणानां कर्मविद्याऽङ्गानां च व्याप्तिहेतवे **दीर्घां** विस्तृतां **प्रसितिं** पश्चात् प्रकृष्टं सिनोति=बध्नात्यनया ताम् **आयुषे** पूर्णाऽऽयुर्वर्धनेन सुखभोगाय [**धाम्**]=**दधामि, तथैव यूयं सर्वमनुष्यास्तस्मै प्रयोजनायै तन्नित्यं धत ।**

से शुद्ध किया हुआ (**पयः**) शुद्ध अन्न और जल [**असि**] है वह (**देवान्**) विद्वान् लोगों और इन्द्रियों को (**धिनुहि**) तृप्त करता है । इसलिये **जैसे मैं** [**त्वा**] उस अन्न और जल को (**प्राणाय**) जीवन-धारण के निमित्त बल के लिये और [**त्वा**] उसे (**उदानाय**) स्फूर्ति के हेतु तथा उत्क्रमण एवं पराक्रम के लिए और [**त्वा**] उसे (**व्यानाय**) सब शुभ-गुणों कर्म तथा विद्याङ्गों में व्याप्त होने के लिये (**दीर्घाम्**) दीर्घ (**प्रसितिम्**) दृढ़ (**आयुषे**) पूर्ण आयु की वृद्धि से सुख भोग के लिये [**धाम्**] धारण करता हूँ वैसे ही तुम सब लोग उक्त प्रयोजन के लिये इसे नित्य धारण करो ।

यथा योऽस्मान् हिरण्यपाणिः हिरण्यस्याऽमृतस्य=मोक्षस्य दानाय पाणिः=व्यवहारो यस्य सः, **देवः** प्रकाशमानः **सविता**=**जगदीश्वरः** सर्वजगदुत्पादकः सकलैश्वर्यदातेश्वरः **अच्छिद्रेण** निरन्तरेण व्यापनेन **पाणिना** स्तुतिसमूहेन महीनां महतीनां वाचां **चक्षुषे** [**प्रति**+**अनु**+**गृभ्णातु**]=**प्रत्यनुगृह्णातु**=**प्रकृष्टतयाऽनुगतं गृह्णाति, तथैव वयं तम् ।**

जैसे हमें जो (**हिरण्यपाणिः**) हिरण्य **अर्थात्** मोक्ष को देने के लिये जिसका पाणि=सब व्यवहार है वह (**देवः**) प्रकाशमान (**सविता**) सब जगत् का उत्पादक, सकल ऐश्वर्य का दाता जगदीश्वर (**अच्छिद्रेण**) निरन्तर व्याप्त (**पाणिना**) स्तुतियों से (**महीनाम्**) महान् वाणियों के (**चक्षुषे**) उपदेश और प्रकाश से (**प्रत्यनुगृभ्णातु**) अत्यन्त अनुग्रह करता है वैसे हम लोग भी उसकी स्तुति आदि किया करें ।

यथा च हिरण्यपाणिः हरिण्यं=प्रकाशार्थं ज्योतिः, पाणिः=व्यवहारो यस्य सः, **देवः** प्रकाश हेतुः, **सविता**=**सूर्यलोको महीनां** पृथिवीनां **चक्षुषेऽच्छिद्रेण** प्रकाशनेन **पाणिना पयः** अन्नं जलं च येन शुद्धं **गृहीत्वा धान्यं पोषयति तं वयमपि अच्छिद्रेण पाणिना महीनां** महतीनां वाचां **चक्षुषि प्रतिगृह्णीमः** ॥ १ । २० ॥

और जैसे—(**हिरण्यपाणिः**) प्रकाश के लिए ज्योतिर्मय व्यवहार वाला (**देवः**) प्रकाश का निमित्त (**सविता**) सूर्य लोक (**महीनाम्**) पृथिवियों को प्रकाशित करने के लिये (**अच्छिद्रेण**) अपने प्रकाश रूप (**पाणिना**) व्यवहार से (**पयः**) शुद्ध जल ग्रहण करके धान्य को पुष्ट करता है उसे हम भी (**अच्छिद्रेण**) निरन्तर (**पाणिना**) स्तुतिरूप व्यवहार से (**महीनाम्**) महान् वाणियों के (**चक्षुषि**) प्रकाश में (**प्रतिगृह्णीमः**) ग्रहण करें ॥ १ । २० ॥

[**यदिदं यज्ञशोधितं धान्यं, पयः** [**असि**]=**अस्ति तद् देवान् धिनुहि**=धिनाति; **अहं** [**त्वा**] **तत् प्राणाय, उदानाय, व्यानाय दीर्घां प्रसिति मायुषे** [**धाम्**]=**दधामि** ।]

भावार्थः—अत्र लुप्तोपमालङ्कारः । ये यज्ञेन शोधिता अन्न जलवाय्वादयः पदार्था भवन्ति, ते सर्वेषां शुद्धये, बलपराक्रमाय, दृढाय

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमा अलङ्कार है । जो यज्ञ से शुद्ध किये हुये अन्न, जल और वायु आदि पदार्थ हैं वे सबकी शुद्धि, बल-पराक्रम, दृढ़

दीर्घायुषे च समर्था भवन्ति, तस्मात् सर्वैर्मनुष्यैरेतद् यज्ञकर्म नित्यमनुष्ठेयम् ।

दीर्घ आयु की प्राप्ति में समर्थ होते हैं, अतः सब मनुष्यों को इस यज्ञकर्म का अनुष्ठान करना चाहिये ।

[सविता=महीनां चक्षुषे [प्रत्यनुगृभ्णातु]=प्रत्यनुगृह्णातु, तथैव वयं तम्]

तथा च परमेश्वरेण या महती=पूज्या वाक् प्रकाशिताऽस्त्य स्याः प्रत्यक्षकरणायेश्वरानुगृहापेक्षा स्वपुरुषार्थता च कार्या ।

और--परमेश्वर ने जो यह महती=पूजा के योग्य वेदवाणी प्रकाशित की है इसको प्रत्यक्ष करने के लिये ईश्वर के अनुग्रह की अपेक्षा तथा निज पुरुषार्थ सदा करना चाहिये ।

यथेश्वरः परोपकारिणां नृणा मुपर्य्यनुग्रहं करोति तथैवास्मा भिरपि सर्वेषां प्राणिनामुपरि नित्यमनुग्रहः कार्यः ।

जैसे--ईश्वर परोपकारी नरों पर अनुग्रह करता है वैसे हमें भी सब प्राणियों पर नित्य अनुग्रह करना चाहिये ।

यथाऽयमन्तर्यामीश्वरः सूर्यलोकश्चाध्यात्मीन वेदेषु च सत्यं ज्ञानं, मूर्त्तद्रव्याणि नैरन्तर्येण प्रकाशयति तथैव सर्वैरस्माभिर्मनुष्यैः सर्वेषां सुखायाऽखिला विद्याः प्रत्यक्षीकृत्य नित्यं प्रकाशनीयाः । ताभिः पृथिवीराज्यसुखं नित्यं कार्यमिति ॥ १ । २० ॥

जैसे—यह अन्तर्यामी ईश्वर आत्मा और वेदों में सत्य ज्ञान को और सूर्य लोक मूर्त्तद्रव्यों को निरन्तर प्रकाशित करता है वैसे ही हम सब मनुष्यों को सब के सुख के लिये सब विद्याओं को प्रत्यक्ष करके उन्हें नित्य प्रकाशित करना चाहिये और उनसे पृथिवी से राज्यसुख को सिद्ध करना चाहिये ॥ ॥ १ । २० ॥

भा० पदार्थः--प्रासेतिम्=दृढम् । महीनाम्=पूज्यानां वाचाम् ।

भाष्यसार—१. **यज्ञ**—यह अन्न (**धान्य**) को रोगनाशक, स्वादिष्ठतम् और सुखकारक एवं शुद्ध बनाता है । यह जल को भी शुद्ध करता है । यह विद्वानों, जीवों एवं इन्द्रियों का पोषक है । बल, पराक्रम, सब शुभ गुणों, पुरुषार्थ, और विद्या की प्राप्ति कराने वाला है । दीर्घ आयु की प्राप्ति से सब सुखों का उपभोग कराने वाला है ।

२. **ईश्वर**—ईश्वर मोक्षदायक होने से 'हिरण्यपाणि' प्रकाशस्वरूप होने से 'देव' सब जगत् का उत्पादक और सकल ऐश्वर्य का दाता होने से 'सविता' कहलाता है । ईश्वर अपनी व्याप्ति से महान् वेदवाणी का ऋषियों के हृदय में प्रकाश करता है ।

३. **सूर्य**—ज्योतिर्मय, प्रकाश का जनक सूर्य पृथिवी आदि का प्रकाशक है । यज्ञ से शुद्ध जल से धान्य को पुष्ट करता है । इसे वेदवाणी के प्रकाश में समझें ॥

परमेष्ठी प्रजापतिः । **यज्ञो**=**देवता सर्वस्य** । आदौ र्सवमापीत्यस्य

गायत्री । षड्ज : स्वरः । अन्त्यस्य निचृत् पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

ईश्वरेण याभ्य ओषधिभ्योऽन्नादिकं जायते ताः कथं शुद्धा जायन्त इत्युपदिश्यते ॥

ईश्वर ने जिन औषधियों से अन्न आदि उत्पन्न होता है वे कैसे शुद्ध होती हैं इस विषय का उपदेश किया है ॥

देवस्यं त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । सं वपामि समापऽओषधीभिः समोषधयो रसेन । सꣳरेवतीर्जगतीभिः पृच्यन्ताꣳ सं मधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्ताम् ॥२१॥

पदार्थः—(**देवस्य**) विधातुरीश्वरस्य द्योतकस्य सूर्य्यस्य वा (**त्वा**) तं त्रिविधं यज्ञम् (**सवितुः**) सवति=सकलैश्वर्य्यं जनयति तस्य (**प्रसवे**) उत्पादितेऽस्मिन् संसारे (**अश्विनोः**) प्रकाशभूम्योः । द्यावापृथिव्यावित्येके ॥ निरु० १२ । १ ॥ (**बाहुभ्याम्**) तेजोदृढत्वाभ्याम् (**पूष्णः**) पुष्टिकर्त्तुर्वायोः । पूषेति पदनामसु पठितम् ॥ निघं० ५ । ६ ॥ अनेन पुष्टिहेतुर्गृह्यते (**हस्ताभ्याम्**) प्राणापानाभ्याम् (**सम्**) सम्यगर्थे (**वपामि**) विस्तारयामि (**सम्**) सम्मेलने । समित्येकीभावं प्राह ॥ निरु० १ । ३ ॥ (**आपः**) जलानि । आप इत्युदकनामसु पठितम् ॥ निघं० १ । १२ ॥ (**ओषधीभिः**) यवादिभिः । ओषधय ओषद् धयन्तीति वौषत्येना धयन्तीति वा दोषं धयन्तीति वा ॥ निरु० ६ । २७ ॥ (**सम्**) सम्यगर्थे (**ओषधयः**) यवादयः । ओषध्यः फलपाकान्ता बहुपुष्पफलोपगाः ॥ मनुस्मृतौ । अ० १ । श्लोक ४६ ॥ (**रसेन**) सारेणाद्रेणानन्दकारकेण (**सम्**) प्रशंसार्थे (**रेवतीः**) रेवत्य=आपः । अत्र सुपां सुलुगिति पूर्वसवर्णादेशः (**जगतीभिः**) उत्तमाभिरोषधीभिः (**पृच्यन्ताम्**) मेल्यन्ताम् पृच्यन्ते वा (**सम्**) श्रैष्ठ्ये (**मधुमतीः**) मधुः प्रशस्तो रसो विद्यते यासु ता मधुमत्य आपः । अत्र प्रशंसार्थे मतुप् । सुपां सुलुगिति पूर्वसवर्णादेशश्च (**मधुमतीभिः**) मधुर्बहुविधो रसो वर्त्तते यासुताभिरोषधीभिः । अत्र भूमार्थे मतुप् (**पृच्यन्ताम्**) युक्त्या वैद्यकशिल्पशास्त्ररीत्या मेल्यन्ताम् ॥ अयं मंत्रः श० १ । १ । ६ । १—२ व्याख्यातः ॥ २१ ॥

प्रमाणार्थ—(**अश्विनोः**) निरुक्त (१२ । १) के अनुसार 'अश्विनौ' का अर्थ 'द्यावा-पृथिवी' है । (**पूष्णः**) 'पूषा' शब्द निघं० (५ । ६) में पद-नामों में पढ़ा गया है, अतः इस शब्द से पुष्टि का हेतु वायु अर्थ गृहीत होता है । (**सम्**) 'सम्' यह उपसर्ग निरुक्त (१ । ३) में एकत्र करने अर्थ को कहता है । (**आपः**) 'आपः' शब्द निघं० (१ । १२) में उदक (**जल**) नामों में पढ़ा गया है । (**ओषधीभिः**) निरुक्त (६ । २७) में ओषधी शब्द का अर्थ इस प्रकार है—ये ओषधियां शरीर में जो रोग की जलन है उसे पी जाती हैं=नष्ट कर देती हैं । शरीर में जलन होने पर इन ओषधियों को प्राणी पीते हैं, अथवा ये ओषधियां वात, पित्त, कफ से उत्पन्न दोषों को नष्ट कर डालती हैं अतः ओषधी नाम पड़ा है । (**ओषधयः**) मनुस्मृति (१ । ४६) में ओषध शब्द का अर्थ यह है—'अधिक पुष्प फल देने वाली, जिसका फल पक जाय उसे ओषधी कहते हैं ।" (**रेवतीः**) रेवत्य आपः । यहां सुपां सुलुक० से पूर्वसवर्ण आदेश है । (**मधुमतीः**) यहां प्रशंसा अर्थ में मतुप् है एवं 'सुपां सुलुक०' से पूर्व सवर्ण आदेश है । (**मधुमतीभिः**) यहां अधिक्य अर्थ में मतुप प्रत्यय है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१ । १ । ६ । १—२) में की गई है । १ । २१ ॥

सपदार्थान्वय :—हे मनुष्या ! **यथा-ऽहं सवितुः** सवति=सकलैश्वर्य्यं जनयति तस्य **देवस्य=परमात्मनो** विधातुरीश्वरस्य द्योतकस्य सूर्यस्य वा **प्रसवे=सवितृमण्डलस्य प्रकाशे** उत्पादितेऽस्मिन् संसारे **चाऽश्विनोः** प्रकाशभूम्योः **बाहुभ्यां** तेजोदृढत्वाभ्यां **पूष्णः** पुष्टिकर्त्तुर्वायोः **हस्ताभ्यां** प्राणाऽपानाभ्यां **यमिमं यज्ञं सम्+वपामि** सम्यग् विस्तारयामि तथैव **त्वा**=तं तं त्रिविधं यज्ञं **यूयमपि संवपत** ।

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (**सवितुः**) सकल ऐश्वर्य जनक (**देवस्य**) विधाता परमात्मा के अथवा प्रकाशक सूर्य के (**प्रसवे**) उत्पन्न किये इस संसार में अथवा प्रकाश में (**अश्विनोः**) प्रकाश और भूमि के (**बाहुभ्याम्**) तेज और दृढ़ता से तथा (**पूष्णः**) पुष्टि कर्त्ता वायु के (**हस्ताभ्याम्**) प्राण और अपान रूप हाथों से इस यज्ञ का (**संवपामि**) भली भांति विस्तार करता हूँ वैसे (**त्वा**) उस तीन प्रकार के यज्ञ का तुम भी विस्तार करो ।

यथतस्मिन् प्रसवे=**प्रकाशे** उत्पादितोऽस्मिन् संसारे **चौषधीभिः** यवादिभिः **आपः** जलानि **ओषधयः** यवादयो **रसेन** सारेणाऽऽर्द्रेणाऽऽनन्दकारकेण **जगतीभिः** उत्तमाभिरोषधीभिः [**रेवतीः**]=**रेवत्य** आपः **च संपृच्यन्ते** (संमेल्यन्ते)।

जैसे इस (**प्रसवे**) उत्पन्न संसार में एवं सूर्य के प्रकाश में (**ओषधीभिः**) यव-आदि ओषधियों से (**आपः**) जल तथा (**ओषधयः**) यव-आदि ओषधियां और (**रसेन**) आनन्दकारक रस से तथा (**जगतभिः**) उत्तम ओषधियों से (रेवत्यः) जल (**संपृच्यन्ते**) मिलाये जाते हैं।

यथा च मधुमतीभिः मधु=बहुविधो रसो वर्त्तते यासु ताभिरोषधीभिः [**मधुमतीः**]=**मधुमत्यो** मधु=प्रशस्तो रसो विद्यते यासु ता मधुमत्य आपः **सम्+पृच्यन्ते, तथैवौषधीभिः** यवादिभिः **ओषधयः** यवादयः **औषधयो रसेन** सारेणाऽऽर्द्रेणानन्दकारकेण **जगतीभिः** उत्तमाभिरोषधीभिः **सह** (**रेवतीः**)= **रेवत्य** आपः चाऽस्माभिः **सम्पृच्यन्तां** सम्यङ् मेल्यन्तां पृच्यन्ते वा।

और—जैसे (**मधुमतीभिः**) बहुत प्रकार के मधुर रस से परिपूर्ण औषधियों से [**मधुमतीः**] उत्तम मधुर रस वाले जल मिलाये जाते हैं वैसे ही (**ओषधीभिः**) यव-आदि ओषधियों से (**ओषधयः**) यव आदि ओषधियाँ एवं ओषधियों को (**रसेन**) आनन्नकारक रस तथा (**जगतीभिः**) उत्तम औषधियों के साथ (**रेवतीः**) और जलों को हम लोग (**सम्पृच्यन्ताम्**) भलीभाँति मिलावें।

एवं मधुमतीभिः मधु=बहुविधो रसो वर्त्तते यासु ताभिरोषधीभिः सह [**मधुमतीः**]=**मधुमत्यो** मधु=**प्रशस्तो** रसो विद्यते यासु ता मधुमत्य आपो **नित्यं सम्+पृच्यन्तां** प्रशस्तया युक्त्या वैद्यकशिल्पशास्त्ररीत्या मेल्यन्ताम्॥ १। २१॥

इस प्रकार (**मधुमतीभिः**) बहुत प्रकार के रस वाली औषधियों के साथ [**मधुमतीः**] उत्तम रस वाले जल सदा (**संपृच्यन्ताम्**) प्रशस्त युक्तिपूर्वक वैद्यक और शिल्पशास्त्र की रीति से मिलावें॥ १। २१॥

[हे मनुष्याः ! यथाऽहं सवितुर्देवस्य **प्रसवे**— **यज्ञं** संवपामि तथैव त्वा=तं यूयमपि संवपत]

भावार्थः—अत्र लुप्तोपमालंकारः। विद्वद्भिर्मनुष्यैरीश्वरोत्पादिते सूर्यप्रकाशितेऽस्मिन् जगति बहुविधानां संप्रयोक्तव्यानां द्रव्याणां संप्रयोक्तुमर्हैर्बहुविधैर्द्रव्यैः सह संमेलनेन त्रिविधो यज्ञो नित्यमनुष्ठेयः।

भावार्थ—इस मंत्र में लुप्तोपमा अलंकार है। विद्वान् मनुष्यों को ईश्वर के द्वारा उत्पन्न किये तथा सूर्य से प्रकाशित इस जगत् में बहुत प्रकार के परस्पर मिलाने योग्य द्रव्यों के साथ मिलाकर तीन प्रकार का यज्ञ सदा करना चाहिये।

[यथा—**चौषधीभिराप ओषधयो रसेन जगतीभिः** [रेवतीः] रेवत्यश्च संपृच्यन्ते]

यथा जलं स्वरसेनौषधीर्वर्धयति, ता उत्तमरसो योगाद्रोगनाशकत्वेन सुखदायिन्यो भवन्ति,

जैसे—जल अपने रस से औषधियों को बढ़ाता है और वे उत्तम रस के योग से रोगनाशक होकर सुखदायक होती हैं,

[**सवितुर्देवस्य प्रसवे**]

यथेश्वरः कारणात्कार्यं यथावद्रचयति,

और जैसे—ईश्वर कारण से कार्य की यथावत् रचना करता है,

[**देवस्य प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्याम्**]

सूर्यः सर्वं जगत् प्रकाश्य सततं रसं भित्वा पृथिव्यादयाकर्षति,

सूर्य सब जगत् को प्रकाशित करके निरन्तर रस का भेदन कर पृथिवी आदि का आकर्षण करता है,

[पूष्णो हस्ताभ्याम्]

वायुश्च धारयित्वा पुष्णाति,

और—वायु धारण करके पुष्ट करता है,

[एवं मधुमतीभिः सह [मधुमतीः] मधुमत्यो नित्यं संपृच्यन्ताम्]

तथैवाऽस्माभिरपि यथावत्संस्कृतैः संप्रयोजितैर्द्रव्यैर्विद्वत्संगविद्योन्नति-होमशिल्पाख्यैर्यज्ञैर्वायुवृष्टि-जलशुद्धश्च सदैव कार्या इति ॥ १ । २१ ॥

वैसे ही हमें भी यथावत् शुद्ध किये परस्पर मिश्रित द्रव्यों से विद्वानों का संग, विद्या की उन्नति, होम और शिल्प नामक यज्ञों से वायु और वर्षाजल की शुद्धि सदा करनी चाहिये ॥१ । २१ ॥

भाष्यसार—१. **ईश्वर**—सकल ऐश्वर्य का जनक होने से 'सविता' तथा विधाता होने से ईश्वर का नाम 'देव' है ।

२. **यज्ञ**—इस संसार में सूर्य-मण्डल के प्रकाश में सूर्य के तेज और भूमि की दृढ़ता से तथा वायु की प्राण-अपान शक्ति से यज्ञ का विस्तार होता है । यज्ञ के विस्तार से अन्नादि पदार्थों की शुद्धि होती है ।

३. इस मन्त्र में तीन प्रकार के यज्ञ का विस्तार करने का उल्लेख है । देवपूजा, संगतिकरण तथा दान के भेद से यज्ञ तीन प्रकार का पूर्व प्रतिपादित किया जा चुका है । यहां संगतिकरण का विशेष प्रतिपादन है कि औषधियों तथा रसों को वैद्यकशास्त्र की रीति से परस्पर मिलाकर उनके सेवन से रोगों का नाश कर सुख की वृद्धि करें ।

परमेष्ठी प्रजापतिः । प्रथतामितिपर्य्यन्तस्य **यज्ञो**=**देवता** । भुरिक त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । अन्त्यस्या **अग्निसवितारौ** (भौतिकोऽग्निः, जगदीश्वरश्च) देवते गायत्री छन्दः । षड्ज स्वरः ॥

स यज्ञः कस्मै प्रयोजनाय संपादनीय इत्युपदिश्यते ॥

उक्त यज्ञ किस प्रयोजन के लिए करना चाहिए इस विषय का उपदेश किया है ॥

जनयत्यै त्वा संयौमीदमग्नेरिदमग्नीषोमयोरिषे त्वा घर्मोऽसि विश्वायुरुरुप्रथाऽउरु प्रथस्वोरु ते यज्ञपतिः प्रथताम् अग्निष्टे त्वचं मा हिंसीद्देवस्त्वा सविता श्रपयतु वर्षिष्ठेऽधि नाके ॥२२॥

पदार्थः—(**जनयत्यै**) सर्वसुखोत्पादिकायै राज्यलक्ष्म्यै (**त्वा**) तं त्रिविधं यज्ञम् (**सम्**) सम्यक् (**यौमि**) मिश्रयामि । अग्नौ प्रक्षिप्य वियोजयामि वा (**इदम्**) संस्कृतं हविः (**अग्नेः**) अग्नेर्मध्ये (**इदम्**) यद्धुतं तत् (**अग्नीषोमयोः**) अग्निश्च सोमश्च तयोर्मध्ये (**इषे**) अन्नाद्याय (**त्वा**) तं वृष्टिशुद्धिहेतुम् (**घर्मः**) यज्ञः । घर्म इति यज्ञनामसु पठितम् ॥ निघं० ३ । १७ ॥ (**असि**) भवति । अत्र व्यत्ययः (**विश्वायुः**) विश्वं पूर्णमायुर्यस्मात् सः (**उरुप्रथाः**) बहुः प्रथः=सुखस्य विस्तारो यस्मात् सः । उर्विति बहुनामसु पठितम् ॥ निघं० ३ । १ ॥ (**उरु प्रथस्व**) बहु विस्तारय (**उरु**) बहु (**ते**) तुभ्यम् (**यज्ञपतिः**) यज्ञस्य स्वामी पालकः (**प्रथताम्**) विस्तारयतु (**अग्निः**) भौतिको यज्ञ-सम्बन्धी शरीरस्थो वा (**ते**) तव तस्य वा । युष्मत्तत्ततक्षुष्वन्तः पादम् ॥ अ० ८ । ३ । १०३ ॥ अनेन मूर्द्धन्यादेशः (**त्वचम्**) कञ्चिदपि शरीरावयवं सुखहेतुम् (**मा**) निषेधार्थे (**हिंसीत्**) हिनस्तु । अत्र लोडर्थे लुङ् (**देवः**) सर्वप्रकाशकः परमेश्वरः सूर्य्यलोको वा (**त्वा**)

त्वां तं वा (**सविता**) अन्तःप्रेरको वृष्टिहेतुर्वा (**अपयतु**) अपयति=पाचयति। **अत्र लडर्थे लोट्** (**वर्षिष्ठे**) अतिशयेन वृद्धो=वर्षिष्ठस्तस्मिन् विशाले सुखस्वरूपे (**अधि**) **अधीत्युपरिभावमैश्वर्यं वा प्राह ॥ निरु० १।३॥** (**नाके**) अकं=दुःखं न विद्यते यस्मिन्नसौ **नाकस्तस्मिन् ॥ अयं मंत्रः श० १।१।२।३—१४ व्याख्यातः ॥ २२ ॥**

प्रमाणार्थ—(**घर्मः**) घर्म शब्द निघं० (३।१७) में यज्ञ-नामों में पढ़ा है। (**असि**) भवति। यहां व्यत्यय है। (**उरु**) 'उरु' शब्द निघं० (३।१) में बहुनामों में पढ़ा है। (**अग्निष्टे**) अग्निः+ते। यहां 'युष्मत्तत्ततक्षुःस्वन्तः पादम्' (अ० ८।३।१०३) से मूर्द्धन्यादेश है। (**हिंसीत्**) हिनस्तु। यहां लोट् अर्थ में लुङ् लकार है। (**अपयतु**) अपयति। यहां लट् अर्थ में लोट् लकार है। (**अधि**) 'अधि' यह उपसर्ग निरुक्त (१।३) में ऊपर होने अर्थ को या ईश्वर अर्थ को व्यक्त करता है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१।१।२।३—१४) में की गई है ॥ १।२२॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः! **यथाऽहं जनयत्यै** सर्वसुखोत्पादिकायै राज्यलक्ष्म्यै **यं** [**त्वा**]=त्रिविधं (**यज्ञं**)। **यज्ञं सम्+यौमि** सम्यङ् मिश्रयामि **तथैव स भवद्भिरपि संयूयताम्। अस्माभिर्यदिदम्=संस्कृतं** हविः [**अग्नेः**]=**अग्नेर्मध्ये प्रक्षिप्यते तद् इदं** यध्दुतं तद् **विस्तीर्णं भूत्वा अग्नीषोमयो** अग्निश्च सोमश्च तयो (र्मध्ये) **मध्ये स्थित्वा इषे** अन्नाद्याय **भवति।**

भाषार्थ—हे मनुष्यो! जैसे मैं (**जनयत्यै**) सब सुखों की उत्पादक राजलक्ष्मी के लिए जिस [**त्वा**] तीन प्रकार के यज्ञ का (**संयौमि**) अनुष्ठान करता हूँ वैसे उसका आप लोग भी अनुष्ठान करें। हम लोग जिस (**इदम्**) शुद्ध हवि को [**अग्नेः**] अग्नि में डालते हैं वह (**इदम्**) होम की हुई हवि फैल कर (**अग्नीषोमयोः**) सूर्य और चन्द्र के मध्य में स्थित होकर (**इषे**) अन्नादि का हेतु बनती है।

यो विश्वायुः विश्वं=पूर्णमायुर्यस्मात् स **उरुप्रथाः** बहुः प्रथः=सुखस्य विस्तारो यस्मात् स **घर्मः=यज्ञोऽस्ति, यथाऽयं मया उरु** बहु **प्रथ्यते तथैव प्रतिजनं त्वं तमेतमुरु** बहु **प्रथस्व** विस्तारय।

जो (**विश्वायुः**) पूर्ण आयु का हेतु तथा (**उरुप्रथाः**) बहुत सुख का विस्तार करने वाला (**घर्मः**) यज्ञ है, उसे जैसे मैं (**उरु**) बहुत विस्तृत करता हूँ वैसे जन-जन में तू उसका (**उरु**) अत्यन्त (**प्रथस्व**) विस्तार कर।

एवं कृतवते ते=तुभ्यमयं यज्ञपतिः यज्ञस्य स्वामी=पालको **अग्निः** भौतिको यज्ञसम्बन्धी शरीरस्थ वा **सविता** अन्तप्रेरको **देवः=जगदीश्वरः** सर्वप्रकाशकः परमेश्वरः **च उरु** बहु **सुखं प्रथतां** विस्तारयतु।

ऐसा करने वाले (**ते**) आपके लिए यह (**यज्ञपतिः**) यज्ञ का पालक (**अग्निः**) भौतिक यज्ञ-सम्बन्धी अथवा शरीरस्थ अग्नि तथा (**सविता**) अन्तरात्मा में प्रेरणा करने वाला (**देवः**) सर्व प्रकाशक परमेश्वर (**उरु**) बहुत सुख का (**प्रथताम्**) विस्तार करे।

ते तव तस्य वा **त्वचं** कञ्चिदपि शरीराऽवयवं सुखहेतुं **मा हिंसीत्=नैव हिनस्ति** हिनस्तु।

(**ते**) तेरे (**त्वचम्**) सुखदायक शरीर के किसी भी अवयव को (**मा हिंसीत्**) कष्ट न देवे।

स खलु त्वा=त्वां वर्षिष्ठे अतिशयेन वृद्धो=वर्षिष्ठस्तस्मिन् विशाले सुखस्वरूपे **अधि नाके** अकं=दुःखं न विद्यते यस्मिन्नसौ नाकस्तस्मिन् [**अपयतु**] **सुखयुक्तं करोतु ॥ [इत्येकः] ॥**

वह यज्ञ निश्चय ही (**त्वा**) तुझे (**वर्षिष्ठे**) अत्यन्त विशाल सुखस्वरूप (**अधि-नाके**) दुःखरहित स्वर्ग में सुखयुक्त करे [यह मन्त्र का पहला अन्वय है] ॥

द्वितीयमन्वयमाह—हे मनुष्य ! यथाऽहं मनुष्यो यो **विश्वायुः** विश्वं पूर्णमायुर्यस्मात्सः, **उरुप्रथाः** बहुः प्रथः=सुखस्य विस्तार यस्मात्सः, **घर्मः=यज्ञोऽसि=अस्ति** भवति, **त्वा**=तं तं त्रिविधं यज्ञं **जनयत्यै** सर्वसुखोत्पादिकायै राज्यलक्ष्म्यै **इषे** अन्नाद्याय **सम्+यौमि** सम्यगग्नौ प्रक्षिप्य वियोजयामि, तत्सिध्यर्थमिदं संस्कृतं हविः **अग्नेर्मध्ये इदं** यद्धुतं तद् **अग्नीषोमयोः** अग्निश्च सोमश्च तयोः **मध्ये संस्कृतं हविः संवपामि=प्रक्षिपामि तथा त्वमप्येतमुरु प्रथस्व=बहु विस्तारय** । **यतोऽयमग्निः** भौतिको यज्ञसम्बन्धी शरीस्थो वा **ते=तव** तस्य वा **त्वचं** कञ्चिदपि शरीराऽवयवं सुखहेतुं **मा हिंसीत्=न हिंस्यात्** हिनस्तु ।

यथा च देवः सूर्यलोकः **सविता** वृष्टिहेतुः **वर्षिष्ठे** अतिशयेन वृद्धो वर्षिष्ठस्तस्मिन् विशाले सुखस्वरूपे **अधि नाके** अकं=दुःखं न विद्यते यस्मिन्नसौ नाकस्तस्मिन् यं यज्ञं [**श्रपयतु**]=**श्रपयेत्** श्रपयति=पाचयति **तथा** भवानपि **त्वा=तं** तं वृष्टिशुद्धिहेतुं **सम्+यौतु=श्रपयतु** सम्यगग्नौ प्रक्षिप्य वियोजयतु ।

ते=तव तुभ्यं **यज्ञपतिः** यज्ञस्य स्वामी=पालकः **च तवुरु** बहु **प्रथतां** विस्तारयतु ।। **इति द्वितीयः** ।। १ । २२ ।।

दूसरा अन्वय—हे मनुष्य ! जैसे मैं—जो (**विश्वायुः**) पूर्ण आयु का हेतु तथा (**उरुप्रथाः**) बहुत सुख का विस्तार करने वाला (**घर्मः**) यज्ञ (**असि**) है (**त्वा**) उस तीन प्रकार के यज्ञ का (**जनयत्यै**) सब सुखों की उत्पादक राजलक्ष्मी के लिए तथा (**इषे**) अन्नादि के लिए (**संयोमि**) अनुष्ठान करता हूँ, उसकी सिद्धि के लिए (**इदम्**) इस शुद्ध हवि को अग्नि में तथा (**इदम्**) जो होम किया है उसे (**अग्नीषोमयोः**) सूर्य और चन्द्र में (**संवपामि**) पहुँचाता हूँ वैसे तू भी इसका (**उरु**) बहुत (**प्रथस्व**) विस्तार कर । जिससे यह (**अग्निः**) भौतिक यज्ञसम्बन्धी तथा शरीरस्थ अग्नि (**ते**) तेरे (**त्वचम्**) सुखदायक किसी भी शरीर के अवयव का (**मा हिंसीत्**) कष्ट न पहुँचाये ।

और—जैसे (**सविता**) वर्षा का हेतु (**देवः**) सूर्यलोक (**वर्षिष्ठे**) अत्यन्त विशाल सुखस्वरूप (**अधिनाके**) दुःखरहित स्वर्ग में जिस यज्ञ को (**श्रपयतु**) परिपक्व करे, वैसे आप भी (**त्वा**) उस वर्षा के हेतु यज्ञ को (**संयौतु**) सिद्ध करो ।

(**ते**) तेरे लिए (**यज्ञपतिः**) यज्ञ का स्वामी भी उसे (**उरु**) अत्यन्त (**प्रथताम्**) विस्तृत करे ।। यह मन्त्र का दूसरा अन्वय है ।। १ । २२ ।।

[**अहं जनयत्यै—यज्ञं संयौमि, इषे भवति,—विश्वायुरुरुप्रथा घर्मः=यज्ञोऽस्ति**]

भावार्थः—अत्र लुप्तोपमालङ्कारो वेद्यः ।। मनुष्यैरेवं भूतो यज्ञः सदैव कार्यः—योः पूर्णां श्रियं, सकलमायुः, अन्नादिपदार्थान्, रोगनाशं, सर्वाणि सुखानि च प्रथयति, स केनापि कदाचिन्नैव त्याज्यः ।

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमा अलङ्कार समझें ।। मनुष्यों को इस प्रकार का यज्ञ सदा करना चाहिये जो पूर्ण लक्ष्मी, पूर्ण आयु, अन्नादि पदार्थ, और सब सुखों का विस्तार करता है, वह यज्ञ किसी को कभी भी नहीं छोड़ना चाहिये ।

[**स खलु त्वा=त्वां वर्षिष्ठेऽधिनाके सुखयुक्तं करोतु**]

कुतः ?—**नैवैतेन** वायुवृष्टिजलौषधिशुद्धिकारकेण विना कस्यापि प्राणिनः सम्यक् सुखानि सिध्यन्तात्यतः ।

क्योंकि—इस वायु, वर्षा-जल और औषधियों के शोधक यज्ञ के बिना किसी प्राणी को उत्तम सुख प्राप्त नहीं हो सकते ।

[जगदीश्वराज्ञामाह—]

एव स जगदीश्वरः सर्वान् प्रत्याज्ञापयति ॥ १ । २२ ॥

इस प्रकार जगदीश्वर यज्ञानुष्ठान की सब मनुष्यों को आज्ञा देता है ॥ १ । २२ ॥

भा० पदार्थः—जनयत्यै=पूर्णश्रियै ।

भाष्यसार—१. **यज्ञ का प्रयोजन**—सब सुखों की उत्पादक राज्यलक्ष्मी की प्राप्ति होती है। यज्ञ में दी हुई हवि सूर्य और चन्द्र में स्थित होकर अन्नादि उत्पत्ति का हेतु बनती है। यह यज्ञ पूर्ण आयु का देने वाला तथा सुख का विस्तारक है। यज्ञ से परम सुख मोक्ष की प्राप्ति होती है।

२. **ईश्वर**—अन्तरात्मा में प्रेरणा करने वाला होने से ईश्वर का नाम 'सविता' तथा सबका प्रकाशक होने से 'देव' है ॥

३. **अग्नि के भेद**—भौतिक, यज्ञसम्बन्धी अग्नि। शरीरस्थ अग्नि।

परमेष्ठी प्रजापतिः । **अग्निः=भौतिकोऽग्निः** ॥ बृहती । मध्यमः ।

निःशंकतया सर्वैः स यज्ञोऽनुष्ठातव्य इत्युपदिश्यते ॥

निःशंक होकर उक्त यज्ञ सब को करना चाहिये, इस विषय का उपदेश किया है ॥

मा भेर्मा संविक्था ऽ अतमेरुर्यज्ञोऽतमेरुर्यजमानस्य प्रजा भूयात् त्रिताय त्वा द्विताय त्वैकताय त्वा ॥२३॥

पदार्थः—(मा) निषेधार्थे (भेः) विभीहि । **अत्र लोडर्थे लङ् । बहुलं छन्दसीति शपो लुक्** (मा) निषेधार्थे (सम्) एकीभावे (विक्थाः) चल । **ओविजी भयचलनयोरित्यस्माल्लोडर्थे लङ् । लङि मध्यमैकवचने बहुलं छन्दसीति विकरणाभावश्च** (अतमेरुः) न ताम्यति येन यज्ञेन सः । **तमुधातोर्बाहुलकादेरुः प्रत्ययः** (यज्ञः) इज्यते यस्मिन् सः (अतमेरुः) न ताम्यति यः स यज्ञकर्त्ता मनुष्यः (यजमानस्य) यज्ञस्यानुष्ठातुः (प्रजा) सुसन्ताना यज्ञसंपादिका (भूयात्) भवेत् (त्रिताय) त्रयाणामग्निकर्महविषां भावाय (त्वा) तम् (द्विताय) द्वयोर्वायुर्वावृष्टिजलशुद्धयोर्भावाय (त्वा) तम् (एकताय) एकस्य सुखस्य भावाय (त्वा) त्वाम् ॥ **अयं मंत्रः श० १ । १ । २ । १५—१८ तथा १ । २ । ३ । १—६ व्याख्यातः ॥ २३ ॥**

प्रमाणार्थ—(भेः) बिभीहि । यहां लोट् अर्थ में लङ् लकार है । 'बहुलं छन्दसि' से शप् का लुक् है । (**विक्थाः**) चल । 'विक्थाः' पद 'ओविजी भयचलनयोः' धातु का रूप है और लोट् अर्थ में लङ् लकार है । इस लङ् के मध्यम पुरुष एकवचन में 'बहुलं छन्दसि' से विकरण प्रत्यय (**श**) का अभाव है । (**अतमेरुः**) यहां 'तमु' धातु से बहुल करके 'एरु' प्रत्यय है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१ । १ । २ । १५—१८) तथा (१ । २ । ३ । १—६) में की गई है । १ । २३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् ! त्वम-**तमेरुः** न ताम्यति यः स यज्ञकर्त्ता मनुष्यः **सन् यजमानस्य** यज्ञस्याऽनुष्ठातुः **यज्ञस्याऽनुष्ठानान्मा भेः**=**भयं मा कुरु** न बिभीहि, **एतस्मान्मा संविक्थाः**=**मा विचल** ।

एवं [**यज्ञः**]=**यज्ञम्** इज्यते यस्मिन् सः, **कृतव-तस्तेऽतमेरुः** न ताम्यति येन यज्ञेन स **प्रजा** सुसन्ताना यज्ञसम्पादिका **भूयाद्** भवेत् ।

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! तू (**अत-मेरु**) आलस्य-रहित यज्ञ करने वाला बनकर (**यज-मानस्य**) यज्ञ करने वाले यजमान के यज्ञानुष्ठान से (**मा भेः**) मत डर और इस यज्ञानुष्ठान से (**मा संविक्थाः**) विचलित मत हो ।

इस प्रकार (**यज्ञम्**) यज्ञ करने वाले आपकी (**अतमेरुः**) सदा यज्ञ करने वाली (**प्रजा**) उत्तम सन्तान वाली प्रजा (**भूयात्**) हो ।

ग्रहं त्वा=**तमग्निं यज्ञाय त्रिताय** त्रयाणामग्नि-कर्म्महविषां भावाय **द्विताय** द्वयोर्वायुवृष्टि-जलशुद्ध-योर्भावाय **एकताय** एकस्य सुखस्य भावाय **च सुखाय संयौमि** ।। १ । २३ ।।

मैं (**त्वा**) उस अग्नि को यज्ञ के लिये अर्थात् (**त्रिताय**) अग्नि, कर्म, और हवि इन तीनों के लिये (**द्विताय**) वायु और वर्षा जल की शुद्धि इन दोनों के लिये (**एक**) और एक सुख के लिये (**संयौमि**) स्थापित करता हूँ ।। १ । २३ ।।

[हे विद्वन् ! त्वम्—यज्ञस्यानुष्ठान्मा भेः=भयं मा कुरु, एतस्मान्मा संविक्थाः मा विचल]

भावार्थः—ईश्वरः प्रतिमनुष्यमाज्ञापयत्याशीश्च ददाति—नैव केनापि मनुष्येण यज्ञसत्याचार-विद्याग्रहणस्य सकाशाद् भेतव्यं, विचलितव्यं वा ।

भावार्थ—ईश्वर प्रत्येक मनुष्य को आज्ञा और आशीर्वाद देता है कि किसी मनुष्य को यज्ञ, सत्याचार और विद्याग्रहण से डरना वा विचलित नहीं होना चाहिये ।

[एवं यज्ञं कृतवतस्ते—प्रजा भूयात्, ग्रहं त्वा=तमग्निं यज्ञाय त्रिताय—सुखाय संयौमि]

कस्मात् ? युष्माभिरेतैरेव सुप्रजाशारीरिक वाचिक मानसानि निश्चलानि सुखानि प्राप्तं शक्यामि भवन्त्यस्मादिति ।। १ । २३ ।।

क्योंकि—तुम इन्हीं शुभ कर्मों से उत्तम सन्तान, शारीरिक, वाचिक और मानसिक स्थिर सुखों को प्राप्त कर सकते हो ।। १ । २३ ।।

भा० पदार्थः—यज्ञः=यज्ञसत्याचारविद्याग्रहणम् । त्रिताय=शारीरिक वाचिक मानसिक स्थिर-सुखाय ।।

भाष्यसारः—**१. निःशंक भाव से यज्ञानुष्ठान**—आलस्य-रहित होकर यज्ञ के अनुष्ठान से मत डर । श्रेष्ठतम कर्म यज्ञ करने से विचलित मत हो ।

२. यज्ञ का फल—यज्ञ के अनुष्ठान से उत्तम सन्तान की प्राप्ति होती है । अग्नि, कर्म, हवि की सिद्धि, वायु और वर्षा-जल की शुद्धि और सुख की प्राप्ति होती है ।।

परमेष्ठी प्रजापतिः । **ऋग्विद्युतौ**=**स्वराड्ब्राह्मी पंक्तिः** ।। पंचमः ।।

पुनः स यज्ञः कीदृशोऽस्ति किमर्थश्चानुष्ठेय इत्युपदिश्यते ।।

फिर उक्त यज्ञ कैसा और क्यों उसका अनुष्ठान करना चाहिये, इस विषय का उपदेश किया जाता है ।।

देवस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वे॒ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम् ।
आद॑देऽध्वर॒कृतं॑ दे॒वेभ्य॒ऽइन्द्र॑स्य बा॒हुर॑सि दक्षि॑णः स॒हस्र॑भृष्टिः श॒तते॑जा वा॒युर॑सि
ति॒ग्मते॑जा द्विष॒तो व॒धः ।।२४।।

पदार्थः—(**देवस्य**) सर्वानन्दप्रदस्य (**त्वा**) तम् (**सवितुः**) प्रेरकस्येश्वरस्य सूर्यस्य वा (**प्रसवे**) प्रेरणे ऐश्वर्य्यहेतौ वा (**अश्विनोः**) सूर्य्याचन्द्रमसोरध्वर्य्वोर्वा । अश्विनावध्वर्यू ।। श० १ । २ । ४ । ४ ।। (**बाहुभ्याम्**) बलवीर्य्याभ्याम् (**पूष्णः**) पुष्टिहेतोर्वायोः । वृषा पूषा ।। श० २ । ५ । १ । ११ ।। (**हस्ताभ्याम्**) ग्रहणत्यागहेतुभ्यामुदानापानाभ्याम् (**आददे**) आसमन्तात्स्वीकरोमि (**अध्वरकृतम्**) अध्वरं करोति येन सामग्रीसमूहेन तम् । **अत्र कृतो बहुलमिति वार्त्तिकेन करणे क्विप् । अध्वरो वै यज्ञो यज्ञकृतम् ।।** श० १ । २ । ४ । ५ ।। (**देवेभ्यः**) विद्वद्भ्यो दिव्यसुखेभ्यो वा (**इन्द्रस्य**) सूर्यस्य (**बाहुः**) वीर्य्यवत्तमकिरण-समूहस्थो यज्ञः (**असि**) भवति (**दक्षिणः**) प्राप्तः । **दक्ष गतिहिंसनयोरित्यस्मात् । द्रुदक्षिभ्यामिनन् ।। उ० २।**

५० ॥ इतीनन्प्रत्ययः । अनेन गतेरन्तर्गतः प्राप्त्यर्थो गृह्यते (**सहस्रभृष्टिः**) सहस्राणि=बहूनि, भृष्टयः=पाका यस्मात्सः सूर्य्यस्य प्रकाशः । सहस्रमिति बहुनामसु पठितम् ॥ निघं० ३ । १ ॥ (**शततेजाः**) शतानि=बहूनि तेजांसि यस्मिन्स सूर्य्यः । शतमिति बहु नामसु पठितम् ॥ निघं० ३ । १ ॥ (**वायुः**) गमनागमनशीलः पवनः (**असि**) अस्ति । अत्र सर्वत्र व्यत्ययः (**तिग्मतेजाः**) तिग्मानि=तीक्ष्णानि तेजांसि भवन्ति यस्मात्सः । युजिरुचितिजां कुश्च ॥ उ० १ । १४६ ॥ अनेन तिज निशाने इत्यस्मान्मक् प्रत्ययः कुत्वादेशश्च । तथैव । सर्वधातुभ्योऽसुन् ॥ उ० ४ । १८६ ॥ अनेन निज इत्यास्मादसुन्प्रत्ययः (**द्विषतः**) शत्रोः (**वधः**) नाशः ॥ अयं मंत्रः श० १ । २ । ४ । ३—७ व्याख्यातः ॥ २४ ॥

प्रमाणार्थ—(**अश्विनोः**) शत० (१ । २ । ४ । ४) के अनुसार 'अश्विनौ' का अर्थ अध्वर्यु है । (**पूष्णः**) शत० (२ । ५ । १ । ११) में 'पूषाः' शब्द का अर्थ 'वृषा' है । (**अध्वरकृतम्**) यहां 'कृतो-बहुलम्' इस वार्त्तिक से करण-अर्थ में क्विप् प्रत्यय है । शत० (१ । २ । ४ । ५) के अनुसार अध्वर का अर्थ 'यज्ञ' है अतः 'अध्वरकृतम्' का अर्थ 'यज्ञकृतम्' जानना चाहिए । (**दक्षिणः**) 'दक्षिण' शब्द 'दक्ष गतिहिंसनयोः' इस धातु से 'द्रुदक्षिभ्यामिनन्' उणादि (२ । ५०) द्वारा इनन् प्रत्यय करके सिद्ध होता है । इससे गति का जो प्राप्ति अर्थ है वह भी गृहीत होता है (**सहस्रभृष्टिः**) सहस्र शब्द निघं० (३ । १) में बहुनामों में पढ़ा है । (**शततेजाः**) 'शत' शब्द निघं० (३ । १) में बहुनामों में पढ़ा गया है । **असि** भवति । इस मन्त्र में सर्वत्र 'असि' पद पर व्यत्यय है । (**तिग्मतेजाः**) यहां 'तिग्म' शब्द 'युजिरुचि-तिजां कुश्च' उणादि (१ । १४६) से निशान (तेज) अर्थ वाली 'तिज' धातु से मक् प्रत्यय और कुत्व का आदेश है । वैसे ही तेजस् शब्द में 'सर्वधातुभ्योऽसुन्' उणादि (४ । १८६) से 'तिज' धातु से असुन् प्रत्यय है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१ । २ । ४ । ३—७) में की गई है । १ । २४ ॥

सपदार्थान्वयः—**अहं सवितुः** प्रेरकस्येश्वरस्य सूर्य्यस्य वा **देवस्य** सर्वाऽऽनन्दप्रदस्य **प्रसवे** प्रेरणे ऐश्वर्य्यहेतौ वा **अश्विनोः** सूर्य्याचन्द्रमसोरध्वर्य्वोर्वा **बाहुभ्याम्** बलवीर्य्याभ्यां **पूष्णः** पुष्टिहेतोर्वायोः **हस्ताभ्याम्** ग्रहणत्यागहेतुभ्यामुदानऽपानाभ्यां **देवेभ्यः** विद्वद्भ्यो दिव्यसुखेभ्यो वां [**त्वा**] तम् **अध्वरकृतम्** अध्वरं करोति येन सामग्रीसमूहेन तम् **आददे** समन्तात् स्वीकरोमि ।

यो मयाऽनुष्ठितो यज्ञ इन्द्रस्य सूर्य्यस्य **सहस्रभृष्टिः** सहस्राणि=बहूनि भृष्टयः=पाका यस्मात् स सूर्य्यस्य प्रकाशः **शततेजाः** शतानि=बहूनि तेजांसि यस्मिन्त्स सूर्य्यो **दक्षिणः** प्राप्तो **बाहुः** वीर्य्यवत्तमकिरणसमूहस्थो यज्ञो **असि=भवति** ।

यस्येन्द्रस्य=सूर्य्यलोकस्य मेघस्य वा तिग्मतेजाः तिग्मानि=तीक्ष्णानि तेजांसि भवन्ति यस्मात् सः, **वायुः** गमनाऽऽगमनशीलः पवनो

भावार्थ—मैं (**सवितुः**) आत्मा में प्रेरणा करने वाले ईश्वर वा सूर्य जो (**देवस्य**) सब आनन्द के देने वाले हैं उनकी (**प्रसवे**) प्रेरणा वा ऐश्वर्य-प्राप्ति के निमित्त (**अश्विनोः**) सूर्य-चन्द्रमा अथवा अध्वर्युवों के (**बाहुभ्याम्**) बल-वीर्य रूप बाहुओं से तथा (**पूष्णः**) पुष्टिकर्त्ता वायु के (**हस्ताभ्याम्**) ग्रहण और त्याग करने वाले उदान-अपान रूप हाथों से (**देवेभ्यः**) विद्वानों वा दिव्य सुखों की प्राप्ति के लिए (**त्वा**) उस (**अध्वरकृतम्**) यज्ञ की सामग्री को (**आददे**) ग्रहण करता हूँ ।

मेरे द्वारा किया हुआ यज्ञ (**इन्द्रस्य**) सूर्य का (**सहस्रभृष्टिः**) नाना पदार्थों का पाक करने वाला (**शततेजाः**) नाना तेजों वाला (**दक्षिणः**) सब कर्मों में प्राप्त होने वाला (**बाहुः**) अत्यन्त बलवान् किरण-समूह रूप दक्षिण बाहु (**असि**) है ।

जिस (**इन्द्रस्य**) सूर्यलोक वा मेघ का (**तिग्मतेजाः**) तीक्ष्ण तेज वाला (**वायुः**) गमन-आगमन स्वभाव वाला वायु कारण [**असि**] है, उससे सुखों

हेतुः [असि]=अस्ति, तेन सुखानि द्विषतः शत्रोः वधो नाशः च कार्य्यः ॥ १ । २४ ॥

की सिद्धि और (द्विषतः) शत्रुओं का (वधः) नाश करना चाहिये ॥ १ । २४ ॥

[अहं—देवेभ्योऽध्वरकृतमाददे, यो— यज्ञ इन्द्रस्य—बाहुरसि=भवति, यस्येन्द्रस्य—वायुर्हेतुः [असि]= अस्ति, तेन सुखानि द्विषतो वधश्च कार्यः]

भावार्थः—ईश्वर आज्ञापयति—मनुष्यैः सम्यक् संपादितोऽयं यज्ञोऽग्निोर्ध्वं प्रक्षिप्तद्रव्यः सूर्यकिरणस्थो वायुना धृतः सर्वोपकारी भूत्वा सहस्राणि सुखानि प्रापयित्वा दुःखानां नाशकारी भवतीति ॥ १ । २४ ॥

भावार्थ—ईश्वर आज्ञा देता है कि मनुष्यों से अच्छी प्रकार सिद्ध किया हुआ यज्ञ जो कि अग्नि से होम किये द्रव्यों को ऊपर ले जाने वाला, सूर्य की किरणों से स्थित हुआ तथा पवन से धारण किया हुआ सबका उपकारी होकर सहस्रों सुखों को प्राप्त कराकर, दुखों का विनाश करने वाला होता है ॥ १ । २४ ॥

भा० पदार्थः—द्विषत :=दुःखस्य । वधः=विनाशः ॥

भाष्यसार—१. ईश्वर—अन्तरात्मा में प्रेरणा करने वाला होने से ईश्वर का नाम 'सविता' है। ऐश्वर्य हेतु होने से सूर्य को भी 'सविता' कहा गया है। सब आनन्दों को देने वाला होने से ईश्वर का नाम 'देव' है ॥

२. यज्ञ—यहां सविता देव की प्रेरणा से यज्ञ को ग्रहण करने का उपदेश किया गया है। इस मन्त्र के मनन से ऐसा ध्वनित होता है कि ईश्वर की सृष्टि एक यज्ञ है। जिसका ब्रह्मा ईश्वर है, सूर्य होता है, चन्द्र अध्वर्यु है और वायु उद्गाता है। इस ईश्वर के सृष्टियज्ञ से प्रेरणा लेकर देवयज्ञ का अनुष्ठान करें। सृष्टि यज्ञ का सुन्दर वर्णन देखिये—"सविता देव की प्रेरणा पर सूर्य और चन्द्रमा के बल तथा वीर्य से वायु के ग्रहण और त्याग के निमित उदान और अपान से विद्वानों की सेवा एवं संग तथा दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए यज्ञ की सामग्री को ग्रहण करो" ॥

(क) यहां यज्ञ को सूर्य का दक्षिण बाहु कहा है। सूर्य की किरणें ही उसका दक्षिण बाहु हैं। यज्ञ बलवान् किरण-समूह में जाकर स्थित होता है। वे किरणें अर्थात् प्रकाश नाना पदार्थों को पकाता है तथा बहुविध तेज का आधान करता है।

३. वायु—इन्द्र अर्थात् सूर्यलोक और मेघ का कारण वायु है। उससे सुखों की सिद्धि शत्रुओं का विनाश करें ॥

परमेष्ठी प्रजापतिः । **सविता**=ईश्वरः ॥ विराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनः स यज्ञः क्व गत्वा किंकारी भवतीत्युपदिश्यते ॥

फिर उक्त यज्ञ कहां जाके क्या करने वाला होता है, इस विषय का उपदेश किया है ॥

पृथिवि देवयजन्योषध्यास्ते मूलं मा हिंसिषं व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याꣳ शतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक् ॥२५॥

पदार्थः—(पृथिवि) विस्तृताया भूमेः (**देवयजनि**) देवा यजन्ति यस्यां सा (ते) अस्याः (**ओषध्याः**) यवादेः (ते) अस्याः । **अत्र सर्वत्र विभक्तेर्विपरिणामः क्रियते** (**मूलम्**) वृद्धिहेतुकम् (**मा**)

निषेधार्थे (**हिंसिषम्**) उच्छिद्याम् । अत्र लिङर्थे लुङ् (**व्रजं**) व्रजन्ति=गच्छन्ति प्राप्नुवन्त्यापो यस्मात् यस्मिन् वा तं व्रजं मेघम् । व्रज इति मेघनामसु पठितम् । निघं १ । १० ॥ (**गच्छ**) गच्छतु । अत्र व्यत्ययः (**गोष्ठानम्**) गवां=सूर्य्यरश्मीनां पशूनां वा स्थानम् । गाव इति रश्मिनामसु पठितम् ॥ निघं १ । ५ ॥ (**वर्षतु**) स्पष्टार्थः (**ते**) तस्य । अत्र संबन्धार्थे षष्ठी (**द्यौः**) सूर्य्यप्रकाशः (**बधान**) बन्धय (**देव**) सूर्य्यादिप्रकाशकेश्वर (**सवितः**) राज्यैश्वर्य्यप्रद (**परम्**) शत्रुम् (**अस्याम्**) प्रत्यक्षायाम् (**पृथिव्याम्**) बहुसुखप्रदायाम् (**शतेन**) बहुभिः (**पाशैः**) बंधनसाधनैः । पश बंधनइत्यस्य रूपम् (**यः**) अधर्मात्मा दस्युः शत्रुश्च (**अस्मान्**) सर्वोपकारकान् धार्मिकान् (**द्वेष्टि**) विरुध्यति (**यम्**) दुष्टं शत्रुम् (**च**) समुच्चये (**वयम्**) धार्मिकाः शूराः (**द्विष्मः**) विरुद्धयामः (**तम्**) पूर्वोक्तम् (**अतः**) बन्धात् कदाचित् (**मा**) निषेधार्थे (**मौक्**) मोचय । मुच्लृ मोक्षणे इत्यस्माल्लोडर्थे लुङ्यडभावे च्लेः सिजादेशे बहुलं छन्दसीतीडभावः । वदव्रजेति वृद्धिः । संयोगांतस्य लोप इति सिज्लुक् ॥ अयं मंत्र श० १ । २ । ४ । १६ व्याख्यातः ॥ २५ ॥

प्रमाणार्थ—(ते) अस्याः । इस मन्त्र में सर्वत्र 'ते' पद पर विभक्ति-विपरिणाम किया जाता है । (**हिंसिसम्**) उच्छिद्याम् । यहां लिङ् लकार में लुङ् लकार है (**व्रजम्**) 'व्रज' शब्द निघं० (१ । १०) में मेघ-नामों में पढ़ा है । (**गच्छ**) गच्छतु । यहां भी व्यत्यय है । (**गोष्ठानम्**) 'गो' शब्द निघं (१ । ५) में रश्मिनामों में पढ़ा है । (**ते**) तस्य । यहां सम्बन्ध अर्थ में षष्ठी है । (**पाशैः**) 'पाश' शब्द अर्थ बन्धन अर्थ वाली 'पाश' धातु का रूप है । (**मौक्**) यहां मोक्षण अर्थ वाली 'मुच्लृ' धातु से लोट-अर्थ में लुङ् लकार और अट् आगम का अभाव है । च्लि के स्थान में सिच् आदेश है एवं 'बहुलं छन्दसि' से ईट का अभाव होकर 'वदव्रज०' से वृद्धि हुई है । संयोगान्तस्य लोपः' इस सूत्र से सिच् का लुक् (लोप) है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१ । २ । ४ । १६) में की गई है । १ । २५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **देव** ! सूर्य्यादिप्रकाशकेश्वर ! **सवितः**=**परमात्मन्** राज्यैश्वर्य्यप्रद! **ते**=**तव कृपयाऽहं** देवयजनि=**देवयज्ञाऽधिकरणाया** देवा यजन्ति यस्यां सा **ते**=**अस्याः पृथिवि**=**भूमेः** विस्तृताया भूमेः [**ओषध्याः**] यवादेः **मूलम्**=**वृद्धिहेतुं** वृद्धिहेतुकं **मा न हिंसिषम्** उच्छिद्याम् ।

मया पृथिव्यां बहुसुखप्रदायां **योऽयं यज्ञोऽनुष्ठीयते, स व्रजं**=**मेघं** व्रजन्ति=गच्छन्ति=प्राप्नुवन्त्यापो यस्माद् यस्मिन् वा तं व्रजं मेघं **गच्छ**=**गच्छतु, गत्वा गोष्ठानं** गवां=सूर्यरश्मीनां पशूनां वा स्थानं **वर्षतु, द्यौः** सूर्य्यप्रकाशो **वर्षतु** ।

हे वीर ! **त्वमस्यां** प्रत्यक्षायां **यः** अधर्मात्मा दस्युः शत्रुश्च **अस्मान्** सर्वोपकारकान् धार्मिकान् **द्वेष्टि** विरुद्धयते, (विरुणद्धि) **यं** दुष्टं शत्रुं **च वयं** धार्मिकाः शूरा **द्विष्मः** विरुद्धयामः, (विरुन्ध्मः) **तं**

भावार्थ—हे (**देव**) सूर्य आदि के प्रकाशक (**सवितः**) राज्य और ऐश्वर्य के दाता परमात्मन् ! (**ते**) आपकी कृपा से मैं (**देवयजनि**) देवों के यज्ञ की आधार (**ते**) इस (**पृथिवी**) विस्तृत भूमि के (**ओषध्याः**) यव-आदि ओषधियों के (**मूलम्**) मूल का (**मा हिंसिषम्**) उच्छेद न करूँ ।

मैं (**पृथिव्याम्**) बहुत सुखदायक इस पृथिवी पर जिस यज्ञ का अनुष्ठान करता हूँ वह (**व्रजम्**) जल के प्राप्ति स्थान मेघ को (**गच्छतु**) प्राप्त हो, और वहां पहुँचकर (**गोष्ठानम्**) सूर्य की किरणों वा पशुओं के स्थान में (**वर्षतु**) प्राप्त हो, फिर यज्ञ से शुद्ध हुये (**द्यौः**) सूर्य प्रकाश की वर्षा हो ।

हे वीर पुरुष ! तू (**अस्याम्**) इस पृथिवी पर (**यः**) जो अधर्मात्मा डाकू और शत्रु (**अस्मान्**) हम सर्वोपकारी धार्मिक जनों का (**द्वेष्टि**) विरोध करता है (**यम्**) और जिस दुष्ट शत्रु का (**वयम्**)

पूर्वोक्तं **परम्**=शत्रुं * शतेन बहुभिः **पाशैः** बन्धन-साधनैः बधान=बन्धय ।

हम धार्मिक शूर लोग (**द्विष्मः**) विरोध करते हैं (**तम्**) उस (**परम्**) शत्रु को (**शतेन**) अनेक (**पाशैः**) बन्धनों से (**बधान**) बांध ।

तं पूर्वोक्तम् **अतो**=बन्धनात् **कदाचित् मा मौक्**=मा मोचय ॥ १ । २५ ॥

(**तम्**) उस शत्रु को (**अतः**) इस बन्धन से कभी (**मा मौक्**) मुक्त न कर ॥ १ । २५ ॥

हे सवितः=परमात्मन् ! ते=तव कृपयाऽहं देवयजनि=देवयज्ञाधिकरणाया—पृथिवि—भूमेः, [ओषध्याः] मूलं...मा हिंसिषम्]

भावार्थः—ईश्वर आज्ञापयति—विद्वद्भिर्मनुष्यैः पृथिव्यां राज्यस्य, त्रिविधस्य यज्ञस्यौषधीनां च हिंसनं कदाचिन्नैव कार्यम् ।

भावार्थ—ईश्वर आज्ञा देता है कि विद्वान् मनुष्यों को इस पृथिवी पर राज्य, उक्त तीन प्रकार के यज्ञ, और औषधियों का नाश कभी नहीं करना चाहिये ।

[मया पृथिव्यां योऽयं यज्ञोऽनुष्ठीयते स व्रजं=मेघं गच्छ=गच्छतु, ः त्वा गोष्ठानं वर्षतु, द्यौर्वर्षतु]

योऽग्नौ हुतद्रव्यस्य सुगन्ध्या दिगुणविशिष्टो धूमो मेघमण्डलं गत्वा सूर्यवायुभ्यां छिन्नस्याकर्षितस्य धारितस्य जलसमूहस्य शुद्धिकरो भूत्वाऽस्यां पृथिव्यां वायुजलौषधिशुद्धिद्वारा महत्सुखं सम्पादयति । तस्मात्स यज्ञः केनापि कदाचिन्नैव त्याज्यः ।

अग्नि में होम किये हुए द्रव्य का सुगन्धादि गुणों से युक्त धूम, मेघमण्डल में पहुँच कर सूर्य और वायु से छिन्न, आकर्षित और धारित जलों का शोधक बनकर इस पृथिवी पर वायु, जल और औषधियों की शुद्धि से महान सुख को सिद्ध करता है । अतः उस यज्ञ को कोई कभी न छोड़े ।

[हे वीर ! त्वमस्यां योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तं परं=शत्रुं शतेन पाशैर्बधान, तमतो बन्धनात् कदाचित् मा मौक्=मा मोचय]

ये दुष्टा मनुष्यास्तानस्यां पृथिव्यामनेकैः पाशैर्बद्ध्वा दुष्टकर्मभ्यो निवर्त्य कदाचित्ते न मोचनीयः ।

जो दुष्ट मनुष्य हैं उनको इस पृथिवी पर अनेक बन्धनों से बांध कर, दुष्ट कर्मों से हटाकर, उन्हें कभी मुक्त न करें ।

अन्यच्च—परस्परं द्वेषं विहायान्योऽन्यस्य सुखोन्नतये सदैव प्रयतितव्यमिति ॥ १ । २५ ॥

और—आपस में द्वेष को छोड़कर एक-दूसरे की सुख-वृद्धि के लिये सदा प्रयत्न करें ॥ १ । २५ ॥

भा० पदार्थः—व्रजम्=मेघमण्डलम् । परम्=दुष्टमनुष्यम् । शतेन=अनेकैः ।

भाष्यसार—१. ईश्वर—सूर्य आदि का प्रकाशक होने से ईश्वर का नाम 'देव' तथा राज्य-ऐश्वर्य का देने वाला होने से 'सविता' है ॥

२. **ईश्वर प्रार्थना**—हे सविता देव परमात्मन् ! आप कृपा करके पृथिवी की यवादि औषधियों के मूल का विनाश मत करो ।

३. **यज्ञ**—पृथिवी पर किया हुआ यज्ञ मेघ को प्राप्त होता है तथा सूर्य रश्मियों में जाकर स्थित होता है और फिर विशुद्ध सूर्य का प्रकाश पृथिवी आदि पर वर्षता है ॥

४. **दुष्ट मनुष्य**—इस पृथिवी पर जो अधर्मात्मा लोग हैं, जो धार्मिक जनों का विरोध करते हैं, उन्हें बन्धन में रखें । बन्धन से मुक्त कभी न करें ॥

---

* स्वर को देखते हुए परमस्यां यह परम शब्द का सप्तमी का एकवचन होना चाहिए ।

परमेष्ठी प्रजापतिः । **सविता**=ईश्वरः, सूर्यश्च ॥ पूर्वार्द्धे स्वराड्ब्राह्मी पंक्तिश्छन्दः, उत्तरार्धे भुरिग्ब्राह्मी पंक्तिश्छन्दः । पंचत स्वरः ॥

पुनरेतेन यज्ञेन किं किं सिध्यतीत्युपदिश्यते ॥

फिर इस यज्ञ से क्या-क्या कार्य सिद्ध होता है इस विषय का उपदेश किया है ॥

अपाररुं पृथिव्यै देवयजनाद्बध्यासं व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याᳪं शतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक् । अररो दिवं मा पप्तो द्रप्सस्ते द्यां मा स्कन व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याᳪं शतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक् ॥२६॥

पदार्थः—(**अप**) धात्वर्थे (**अररुम्**) असुरराक्षसस्वभावशत्रुम् । अर्त्तेररुः ॥ उ० ४ । ७९ ॥ अनेन ऋधातोररुः प्रत्ययः (**पृथिव्यै**) पृथिव्याम् । अत्र सुपां सुलुगिति सप्तमीस्थाने चतुर्थी (**देवयजनात्**) देवा यजन्ति यस्मिन् तस्मात् (**बध्यासम्**) हन्याम् (**व्रजम्**) व्रजन्ति=जानन्ति जना येन तं सत्संगम् (**गच्छ**) प्राप्नुहि गच्छतु वा (**गोष्ठानम्**) गौर्वाणी तिष्ठति यस्मिन्नध्ययनाध्यापने तं व्यवहारम् । गौरिति वाङ्नामसु पठितम् ॥ निघं० १ । ११ ॥ (**वर्षतु**) शब्दविद्याया वृष्टिं करोतु (**ते**) तव (**द्यौः**) विद्याप्रकाशः । दिवो द्योतनकर्मणामादित्यरश्मीनाम् ॥ निरु० १३ । २५ ॥ (**बधान**) बन्धय (**देव**) सर्वानन्दप्रदेश्वरव्यवहारहेतुर्वा (**सवितः**) सर्वेषु जीवेष्वन्तर्यामितया सत्यप्रेरकव्यवहारप्रेरणाहेतुर्वा (**परम्**) शत्रुभूतम् (**अस्याम्**) आधारभूतायाम् (**पृथिव्याम्**) बहुपदार्थप्रदायाम् (**शतेन**) बहुभिः (**पाशैः**) बन्धनैः (**यः**) मूर्खः (**अस्मान्**) विद्यारतप्रचारकान् (**द्वेष्टि**) अप्रीणाति (**यम्**) विद्याविरोधिनम् (**च**) पुनरर्थे (**वयम्**) विद्वांसः (**द्विष्मः**) अप्रीणीमः (**तम्**) पूर्वोक्तं विद्याशत्रुम् (**अतः**) अस्माद्बन्धनादुपदेशाद्वा (**मा**) निषेधार्थे (**मौक्**) त्यज (**अररो**) दुष्टमनुष्य (**दिवम्**) प्रकाशम् (**मा**) निषेधार्थे (**पप्तः**) पततु । अत्र लोडर्थे लुङ् (**द्रप्सः**) हर्षकारी रसः । दृप हर्षणमोहनयोरित्यस्मादौणादिकः सः प्रत्ययः । अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम्, अ० ६ । १ । ५९ ॥ अनेनामागमः (**ते**) तव तस्याः पृथिव्या वा (**द्याम्**) आनन्दम् । दिवुधातोर्बाहुलकाड्डोप्रत्ययष्टिलोपे प्राप्ते वकारलोपश्च (**मा**) निषेधार्थे (**स्कन्**) निस्सारयतु । अत्र लोडर्थे लङ् । बहुलं छन्दसीति शपो लुक् (**व्रजम्**) व्रजन्ति विद्वांसो यस्मिन्सन्मार्गे तम् (**गच्छ**) गच्छतु गमय वा (**गोष्टानम्**) गौः पृथिवी तिष्ठति यस्मिन् तदन्तरिक्षम् (**वर्षतु**) सिंचतु (**ते**) तव (**द्यौः**) कान्तिः । द्यौर्वै सर्वेषां देवानामायतनम् ॥ श० १४ । ३ । २ । ८ ॥ (**बधान**) बध्नाति वा पक्षे व्यत्ययः (**देव**) विजयप्रदविजयहेतुर्वा (**सवितः**) सर्वोत्पादक व्यवहारोत्पत्तिहेतुर्वा (**परम्**) शत्रुम् (**अस्याम्**) सर्वबीजारोपणार्थायाम् (**पृथिव्याम्**) बहुप्रजायुक्तायाम् (**शतेन**) बहुभिः (**पाशैः**) सामदामदण्डभेदादिकर्मभिः (**यः**) न्याय विरोधी (**अस्मान्**) न्यायाधीशान् (**द्वेष्टि**) कोपयति (**यम्**) अन्यायकारिणम् (**च**) पुनरर्थे (**वयम्**) सर्वहितसंपादिनः (**द्विष्मः**) कोपयामः (**तम्**) अधर्मप्रियम् (**अतः**) शिक्षणात् (**मा**) निषेधे (**मौक्**) त्यजतु ॥ अयं मंत्रः श० १ । २ । ४ । १७—२१ व्याख्यातः ॥ २६ ॥

प्रमाणार्थ—(**अररुम्**) 'अररु' शब्द 'अर्त्तेररु' उणादि (४ । ७९) से 'ऋ' धातु से 'अरु' प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है । (**पृथिव्यै**) पृथिव्याम् । यहां 'सुपां सुलुक्०' से सप्तमी के स्थान में चतुर्थी विभक्ति है । (**गोष्ठानम्**) 'गो' शब्द निघं० (१ । ११) में वाणी-नामों में पढ़ा है । (**द्यौः**) निरुक्त (१३ । २५) के अनुसार 'द्यौ' शब्द का अर्थ द्योतन करने वाली आदित्य की रश्मियां हैं । (**पप्तः**) पततु । यहां लोट्-अर्थ में लुङ् लकार है । (**द्रप्सः**) 'द्रप्स' शब्द हर्षण और मोहन अर्थ वाली 'दृप' धातु से औणादिक 'स' प्रत्यय करने से तथा 'अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम्' (अ० ६ । १ । ५९) से 'अम्' आगम करने से

परमेष्ठी प्रजापतिः । **सविता**=ईश्वरः, सूर्यश्च ॥ पूर्वार्द्धे स्वराड्ब्राह्मी पंक्तिश्छन्दः, उत्तरार्धे भुरिग्ब्राह्मी पंक्तिश्छन्दः । पंचत स्वरः ॥

पुनरेतेन यज्ञेन किं किं सिध्यतीत्युपदिश्यते ॥

फिर इस यज्ञ से क्या-क्या कार्य सिद्ध होता है इस विषय का उपदेश किया है ॥

अपाररुं पृथिव्यै देवयजनाद्वध्यासं व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याᳬं शतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक् । अररो दिवं मा पप्तो द्रप्सस्ते द्यां मा स्कन् व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याᳬं शतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक् ॥२६॥

पदार्थः—(**अप**) धात्वर्थे (**अररुम्**) असुरराक्षसस्वभावशत्रुम् । **अर्त्तेररुः ॥ उ० ४ । ७९ ॥ अनेन ऋधातोररुः प्रत्ययः** (**पृथिव्यै**) पृथिव्याम् । **अत्र सुपां सुलुगिति सप्तमीस्थाने चतुर्थी** (**देवयजनात्**) देवा यजन्ति यस्मिन् तस्मात् (**वध्यासम्**) हन्याम् (**व्रजम्**) व्रजन्ति=जानन्ति जना येन तं सत्संगम् (**गच्छ**) प्राप्नुहि गच्छतु वा (**गोष्ठानम्**) गौर्वाणी तिष्ठति यस्मिन्नध्ययनाध्यापने तं व्यवहारम् । **गौरिति वाङ्नामसु पठितम् ॥ निघं० १ । ११ ॥** (**वर्षतु**) शब्दविद्याया वृष्टिं करोतु (**ते**) तव (**द्यौः**) विद्याप्रकाशः । **दिवो द्योतनकर्मणामादित्यरश्मीनाम् ॥ निरु० १३ । २५ ॥** (**बधान**) बन्धय (**देव**) सर्वानन्दप्रदेश्वरव्यवहारहेतुर्वा (**सवितः**) सर्वेषु जीवेष्वन्तर्यामितया सत्यप्रेरकव्यवहारप्रेरणाहेतुर्वा (**परम्**) शत्रुभूतम् (**अस्याम्**) आधारभूतायाम् (**पृथिव्याम्**) बहुपदार्थप्रदायाम् (**शतेन**) बहुभिः (**पाशैः**) बन्धनैः (**यः**) मूर्खः (**अस्मान्**) विद्यारतप्रचारकान् (**द्वेष्टि**) अप्रीणाति (**यम्**) विद्याविरोधिनम् (**च**) पुनरर्थे (**वयम्**) विद्वांसः (**द्विष्मः**) अपप्रीणीमः (**तम्**) पूर्वोक्तं विद्याशत्रुम् (**अतः**) अस्माद्बन्धनादुपदेशाद्वा (**मा**) निषेधार्थे (**मौक्**) त्यज (**अररो**) दुष्टमनुष्य (**दिवम्**) प्रकाशम् (**मा**) निषेधार्थे (**पप्तः**) पततु । **अत्र लोडर्थे लुङ्** (**द्रप्सः**) हर्षकारी रसः । **दृप हर्षणमोहनयोरित्यस्मादौणादिकः सः प्रत्ययः । अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम्, अ० ६ । १ । ५९ ॥ अनेनामागमः** (**ते**) तव तस्याः पृथिव्या वा (**द्याम्**) आनन्दम् । **दिवुधातोर्बाहुलकाड्डोप्रत्ययष्टिलोपे प्राप्ते वकारलोपश्च** (**मा**) निषेधार्थे (**स्कन्**) निस्सारयतु । **अत्र लोडर्थे लङ् । बहुलं छन्दसीति शपो लुक्** (**व्रजम्**) व्रजन्ति विद्वांसो यस्मिन्सन्मार्गे तम् (**गच्छ**) गच्छतु गमय वा (**गोष्ठानम्**) गौः पृथिवी तिष्ठति यस्मिन् तदन्तरिक्षम् (**वर्षतु**) सिंचतु (**ते**) तव (**द्यौः**) कान्तिः । **द्यौर्वै सर्वेषां देवानामायतनम् ॥ श० १४ । ३ । २ । ८ ॥** (**बधान**) बध्नाति वा पक्षे व्यत्ययः (**देव**) विजयप्रदविजयहेतुर्वा (**सवितः**) सर्वोत्पादक व्यवहारोत्पत्तिहेतुर्वा (**परम्**) शत्रुम् (**अस्याम्**) सर्वबीजारोपणार्थायाम् (**पृथिव्याम्**) बहुप्रजायुक्तायाम् (**शतेन**) बहुभिः (**पाशैः**) सामदामदण्डभेदादिकर्मभिः (**यः**) न्याय विरोधी (**अस्मान्**) न्यायाधीशान् (**द्वेष्टि**) कोपयति (**यम्**) अन्यायकारिणम् (**च**) पुनरर्थे (**वयम्**) सर्वहितसंपादिनः (**द्विष्मः**) कोपयामः (**तम्**) अधर्मप्रियम् (**अतः**) शिक्षणात् (**मा**) निषेधे (**मौक्**) त्यजतु ॥ **अयं मंत्रः श० १ । २ । ४ । १७—२१ व्याख्यातः ॥ २६ ॥**

प्रमाणार्थ—(**अररुम्**) 'अररु' शब्द 'अर्त्तेररु' उणादि (४ । ७९) से 'ऋ' धातु से 'अरु' प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है । (**पृथिव्यै**) पृथिव्याम् । यहां 'सुपां सुलुक्०' से सप्तमी के स्थान में चतुर्थी विभक्ति है । (**गोष्ठानम्**) 'गो' शब्द निघं० (१ । ११) में वाणी-नामों में पढ़ा है । (**द्यौः**) निरुक्त (१३ । २५) के अनुसार 'द्यौ' शब्द का अर्थ द्योतन करने वाली आदित्य की रश्मियाँ हैं । (**पप्तः**) पततु । यहां लोट्-अर्थ में लुङ् लकार है । (**द्रप्सः**) 'द्रप्स' शब्द हर्षण और मोहन अर्थ वाली 'दृप' धातु से औणादिक 'स' प्रत्यय करने से तथा 'अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम्' (अ० ६ । १ । ५९) से 'अम्' आगम करने से

सिद्ध होता है। (द्याम्) 'द्यौ' शब्द 'दिवु' धातु से बहुल करके 'डो' प्रत्यय तथा जड़ित होने से टिलोप की प्राप्ति थी किन्तु वकार का लोप हो जाने से सिद्ध होता है। (स्कन्) निस्सारयतु। यहां लोट्-अर्थ में लङ् लकार है। 'बहुलम् छन्दसि' से शप् का लुक् है। (द्यौः) शत० (१४।३।२।८) के अनुसार 'द्यौ' समस्त देवों का आयतन है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१।२।४।१७-२१) में की गई है। १।२६॥

सपदार्थान्वयः—हे देव! सर्वानन्द-प्रदेश्वर! **सवितः**! सर्वेषु जीवेष्वन्तर्यामितया सत्य-प्रेरक! **भवत्कृपया वयं** विद्वांसः **परस्परं विद्यामेवो-पदिशामः**।

भावार्थ—हे (**देव**) सब आनन्दों के दाता (**सवितः**) सब जीवों में अन्तर्यामी होकर सत्य-प्रेरणा करने वाले ईश्वर! आपकी कृपा से (**वयम्**) हम विद्वान् लोग परस्पर विद्या का ही उपदेश करें।

यथाऽयं सविता व्यवहारोत्पत्तिहेतुः **देवः**= **सूर्य्यलोको** विजयहेतुः **अस्याम्** आधारभूतायां **पृथिव्यां** बहुपदार्थप्रदायां **शतेन** बहुभिः **पाशैः**= **बन्धनहेतुभिः किरणैराकर्षणेन पृथिव्यादीन् सर्वान् पदार्थान्** बध्नाति, **तथैव त्वमपि दुष्टान् बद्ध्वा शुभगुणान् प्रकाशय**।

जैसे यह (**सविता**) सब व्यवहारों की उत्पत्ति का कारण (**देवः**) विजय दिलाने वाला सूर्यलोक (**अस्याम्**) इस आधारभूत (**पृथिव्याम्**) नाना पदार्थ देने वाली पृथिवी पर (**शतेन**) अनेक (**परशैः**) बन्धन कारक किरणों के द्वारा आकर्षण से पृथिवी आदि सब पदार्थों को बांधता है वैसे ही आप **भी** दुष्टों को बाँध कर शुभ गुणों को प्रकाशित करो।

१. हे विद्वांसः! **यथाऽहं** [पृथिव्यै]=**पृथिव्यां** बहुपदार्थप्रदायां **देवयजनात्** देवा यजन्ति यस्मिन् तस्माद् **अररुम्** असुरराक्षसस्वभावशत्रुम **अपवध्यासं** हन्याम, तथैव तं पूर्वोक्तं विद्याशत्रुं **यूयमपि अपाघ्नत**।

१. हे विद्वान् पुरुषो! जैसे मैं [**पृथिव्यै**] नाना पदार्थ देने वाली इस पृथिवी पर (**देवयजनात्**) देवों की यज्ञशाला से (**अररुम्**) असुर तथा राक्षस स्वभाव वाले शत्रु को (**अपवध्यासम्**) दूर हटाता हूँ वैसे (**तम्**) उस पूर्वोक्त विद्या के शत्रु को (**अपघ्नत**) दूर हटाओ।

२. **यथाऽहं व्रजं** व्रजन्ति=जानन्ति जना येन तं सत्सङ्गं गच्छामि, तथैव **त्वमप्येतं गच्छ** प्राप्नुहि।

२. जैसे मैं (**व्रजम्**) ज्ञान प्राप्ति के साधन सत्सङ्ग में जाता हूँ वैसे तू भी इस सत्सङ्ग में (**गच्छ**) जा।

३. **यथाऽहं गोष्ठानं** गौर्वाणी तिष्ठति यस्मि-न्नध्ययनाऽध्यापने तं व्यवहारं **वर्षामि तथैव भवानपि वर्षतु** शब्दविद्याया वृष्टिं करोतु।

३. जैसे मैं (**गोष्ठानम्**) वाणी के निवास अध्ययन अध्यापन रूप व्यवहार की वर्षा करता हूँ वैसे आप भी (**वर्षतु**) शब्द विद्या की वर्षा करो।

४. यथा मम **द्यौः**=**विद्याप्रकाशः सर्वान् प्राप्नोति तथैव ते**=**तवापि प्राप्नोतु**।

४. जैसे मेरा (**द्यौः**) विद्या का प्रकाश सबको मिलता है वैसे (**ते**) तेरा भी विद्याप्रकाश सबको प्राप्त हो।

५. **यथाऽहं यो** मूर्खो **अस्मान्** विद्यारतप्रचार-कान् **द्वेष्टि** अप्रीणाति, **यं** विद्याविरोधिनं **च वयं** विद्वांसो **द्विष्मः** अप्रीणीमः, **तं** पूर्वोक्तं **परं** विद्या-शत्रुम् **अस्यां** अर्वबीजारोपणाऽर्थायां **पृथिव्यां** बहुप्र-जायुक्तायां **शतेन** बहुभिः **पाशैः** सामदामदण्डभेदादि-

५. जैसे मैं—(**यः**) जो मूर्ख (**अस्मान्**) विद्या में रत रहने वाले प्रचारकों से (**द्वेष्टि**) द्वेष करता है और (**यम्**) जिस विद्याविरोधी से (**वयम्**) हम विद्वान् लोग (**द्विष्मः**) अप्रीति रखते हैं (**तम्**) उस (**परम्**) विद्याशत्रु को (**अस्याम्**) इन सब बीजों के

कर्म्मभिः **नित्यं बध्नामि, कदाचित्तं** पूर्वोक्तं **न त्यजामि, तथैव हे वीर ! तं** पूर्वोक्तं शत्रुं **त्वमिमं बधान** बन्धय, **तं चातः** अस्माद्बन्धनादुपदेशाद्वा **कदाचित् मा न मौक्** त्यज ।

आरोपण स्थान (**पृथिव्याम्**) बहुत प्रजा से युक्त पृथिवी पर (**शतेन**) अनेक (**पाशैः**) साम, दाम, दण्ड, भेद आदि कर्मों से नित्य बाँधता हूँ, और (**तम्**) उसे कभी नहीं छोड़ता वैसे ही हे वीर ! (**तम्**) उस विद्या शत्रु को तू (**बधान**) बांध और उसे (**अतः**) इस बन्धन वा उपदेश से कभी (**मा मौक्**) मुक्त न कर।

यो मूर्खः **अस्मान्** विद्यारतप्रचारकान् **द्वेष्टि** अप्रीणाति, **यं** विद्याविरोधिनं **च वयं** विद्वांसो **द्विष्मः** अप्रीणामः तं पूर्वोक्तं विद्याशत्रुं **अतः**= **बन्धनाद्** अस्मादुपदेशाद्वा **कोऽपि मा मुञ्चतु**।= **एवं च** तं प्रति सर्व उपदिशन्तु—

(**यः**) जो मूर्ख (**अस्मान्**) विद्या में रत रहने वाले हम प्रचारकों से (**द्वेष्टि**) द्वेष करता है और (**यम्**) जिस विद्याविरोधी से (**वयम्**) हम विद्वान् लोग (**द्विष्मः**) अप्रीति रखते हैं (**तम्**) उस विद्या-को (**अतः**) इस बन्धन से वा उपदेश से कोई भी मुक्त न रखे। और इस प्रकार उसे सब उपदेश करें—

हे अररो ! दुष्टमनुष्य ! **त्वं दिवं** प्रकाशं **मा न पप्तः** पततु, **तथा ते**=तव तस्याः पृथिव्या वा **द्रप्सः** हर्षकारी रसो **द्याम्** आनन्दं **मा न स्कन्** निस्सा-रयतु ।

हे (**अररो**) दुष्ट मनुष्य ! तू (**दिवम्**) विद्या प्रकाश को (**मा पप्तः**) मत गिरा तथा (**ते**) तेरा अथवा इस पृथिवी का (**द्रप्सः**) हर्षकारक रस (**द्याम्**) आनन्द को (**मा स्कन्**) न निकलने दे।

हे सन्मार्गजिज्ञासो ! यथाऽहं व्रजम्=सन्मार्गं व्रजन्ति विद्वांसो यस्मिन्सन्मार्गंतं **गच्छामि, तथैव त्वमप्येतं गच्छ** गमय ।

हे सन्मार्ग के जिज्ञासु पुरुष ! जैसे मैं (**व्रजम्**) विद्वानों के चलने योग्य सन्मार्ग पर चलता हूँ वैसे तू भी इस पर चल तथा अन्यों को चला।

१. **यथेयं द्यौः** कान्तिः **गोष्ठानं** गौः पृथिवी तिष्ठति यस्मिंस्तदन्तरिक्षं **वर्षति, तथैवेश्वरो विद्वान् वा ते=तव कामान् वर्षतु** सिञ्चतु ।

१. जैसे यह (**द्यौः**) प्रकाश (**गोष्ठानम्**) पृथिवी के निवासस्थान आकाश को अपनी वर्षा से पूर्ण करता है वैसे ईश्वर वा विद्वान् (**ते**) तेरी काम-नाओं को (**वर्षतु**) पूर्ण करे।

२. **यथाऽयं सविता** व्यवहारोत्पत्तिहेतुः **देवः= सूर्य्यलोको** विजयहेतुः **अस्यां** सर्वबीजारोपणार्थायां **पृथिव्यां** बहुप्रजायुक्तायां **शतेन** बहुभिः **पाशैः= बन्धनहेतुभिः किरणैराकर्षणेन पृथिव्यादीन् सर्वान् पदार्थान् बध्नाति, तथैव त्वमपि च=पुनर्यो** न्याय-विरोधी **अस्मान्** न्यायाधीशान् **द्वेष्टि** कोपयति, **यम्** अन्यायकारिणं **च वयं** सर्वहितसम्पादिनो **द्विष्मः** कोपयामः, तम् अधर्मप्रियं **परम्=शत्रुं** शत्रुभूतम् **अस्याम्** आधारभूतायां **पृथिव्यां** बहुपदार्थप्रदायां **शतेन** बहुभिः **पाशैः** सामदामदण्डभेदादिकर्म्मभिः **बधान** बन्धय ।

२. जैसे यह (**सविता**) सब व्यवहारों की उत्पत्ति का कारण (**देवः**) विजय दिलाने वाला सूर्य लोक (**अस्याम्**) सब बीजों के आरोपण स्थान (**पृथिव्याम्**) बहुत प्रजा युक्त पृथिवी पर (**शतेन**) अनेक (**पाशैः**) बन्धन रूप किरणों के द्वारा आक-र्षण से पृथिवी आदि सब पदार्थों को बांधता है वैसे तू भी (**यः**) जो न्याय-विरोधी (**अस्मान्**) हम न्यायाधीशों से (**द्वेष्टि**) कोप करता है (**च**) और (**यम्**) जिस अन्यायकारी से (**वयम्**) सब के हित साधक हम लोग (**द्विष्मः**) कोप रखते हैं (**तम्**) उस अधर्मप्रेमी (**परम्**) शत्रु को (**अस्याम्**) इस

आधारभूत (**पृथिव्याम्**) बहुत पदार्थ देने वाली पृथिवी पर (**शतेन**) अनेक (**पाशैः**) साम, दाम, दण्ड, भेद आदि कर्मों से (**बधान**) बांध ।

३. **यथाऽहं तम्=द्वेष्टारं शत्रुं शतेन** बहुभिः **पाशैः** बन्धनैः **बद्ध्वा न कदाचिन्मुञ्चामि, तथैव त्वमप्येतं सदा बधान** बन्धय, **अतः** शिक्षणात् **कदाचिन्मा न मौक्** त्यजतु ॥ १ । २६ ॥

३. जैसे मैं (**तम्**) उस द्वेष करने वाले शत्रु को (**शतेन**) अनेक (**पाशैः**) बन्धनों से बांध कर कभी नहीं छोड़ता हूँ वैसे तू भी इसको सदा (**बधान**) बांध तथा उसे (**अतः**) शिक्षा से कभी (**मा मौक्**) मुक्त न कर ॥ १ । २६ ॥

[हे विद्वांसः ! यथाऽहं [पृथिव्यै]=पृथिव्यां देवयजनादररुमपवध्यासं तथैव तं यूयमप्यपाघ्नत]

भावार्थः--अत्र लुप्तोपमालङ्कारः ॥ ईश्वर आज्ञापयति—हे मनुष्याः! युष्माभिर्विद्वत्कार्यानुष्ठाने विघ्नकारिणो दुष्टाः प्राणिनः सदाऽपहन्तव्याः ।

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ ईश्वर आज्ञा देता है कि हे मनुष्यो ! तुम लोग विद्वानों के कार्य में विघ्न करने वाले दुष्ट प्राणियों को सदा दूर हटाओ ।

[यथाऽहं व्रजं गच्छामि, तथैव त्वमप्येतं गच्छ, यथाऽहं गोष्ठानं वर्षामि तथा भवानपि वर्षतु]

सत्समागमेन विद्यावृद्धिर्नित्यं कार्या ।

श्रेष्ठ विद्वानों के संग से नित्य विद्या की वृद्धि करो ।

[योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्म स्तं परमस्यां पृथिव्यां शतेन पाशैर्नित्यं बध्नामि]

यथाऽनेकोपायैः श्रेष्ठानां हानिर्दुष्टानां च वृद्धिर्न स्यात् तथैवानुष्ठेयम् । सदा श्रेष्ठाः सत्कार्या दुष्टास्ताऽनीया बन्धनीयाश्च ।

जिस प्रकार से नाना उपायों से श्रेष्ठों की हानि और दुष्टों की वृद्धि न हो सके वैसा आचरण करो । सदा श्रेष्ठों का सत्कार और दुष्टों का ताड़न और बन्धन किया करो ।

[हे देव सवितः ! भवत्कृपया वयं परस्परं विद्याभिवोऽविशामः]

परस्परं प्रीत्या विद्याशरीरबलं सम्पाद्य क्रियया कलायन्त्रैरनेकानि यानानि रचयित्वा सर्वेभ्यः सुखं देयं, निरन्तरमीश्वरस्याज्ञापालनं (कार्यं) स एवोपासनीयश्चेति ॥ १ । २६ ॥

परस्पर प्रीति से विद्या और शरीर के बल को सिद्ध करके, क्रिया के द्वारा कला यन्त्रों से अनेक यानों की रचना कर सब को सुख प्रदान करो, सदा ईश्वर की आज्ञा का पालन और उसी की उपासना किया करो ॥ १ । २६ ॥

भा० पदार्थ--देवयजनात्=विद्वत्कार्यानुष्ठानात् । अररुम्=विघ्नकारिणं दुष्ट-प्राणिनम् । व्रजम्=सत्समागमम् । गोष्ठानम्=विद्यावृद्धिम् । शतेन=अनेकैः ।

भाष्यसार—१. **ईश्वर**—सब आनन्दों को देने वाला होने से ईश्वर का नाम 'देव' तथा सब जीवों में अन्तर्यामी रूप से सत्य का प्रेरक होने से 'सविता' है ।

२. **सूर्य**—सब व्यवहारों का उत्पादक होने से सूर्य का नाम भी 'सविता' तथा विजय प्रदाता होने से 'देव' है । यह पाश रूप किरणों के द्वारा आकर्षण शक्ति से पृथिवी आदि पदार्थों को बाँधता है ।

(क) **सूर्य के दृष्टान्त से शिक्षा**—(१) जैसे सूर्य इस पृथिवी के अन्धकार को नष्ट करता है वैसे राक्षस स्वभाव वाले विद्या के शत्रु दुष्ट लोगों का वध करो । (२) जैसे सूर्य व्रज=मेघ का संग

करता है ऐसे सज्जनों का संग करो। (३) जैसे सूर्य पृथिवी पर वर्षा का हेतु है इस प्रकार अध्ययन-अध्यापन व्यवहार में विद्या की वर्षा करो। (४) जैसे सूर्य का प्रकाश सब को प्राप्त होता है वैसे विद्या का प्रकाश शूद्रादि सब के लिए प्राप्त करो। (५) जैसे सूर्य प्रकाश के विरोधी अन्धकार को नष्ट कर देता है इसी प्रकार विद्या प्रचारक विद्वान् लोगों का जो मूर्ख जन विरोध करते हैं उन विद्या शत्रुओं को साम, दाम, दण्ड भेद आदि कर्मों से सदा वश में रखो। बन्धनमुक्त कभी न करो॥

(ख) इस मन्त्र में जैसे सूर्य के दृष्टान्त से शिक्षा ग्रहण करने का उल्लेख है इसी प्रकार विद्वानों से भी शिक्षा ग्रहण करने का उपदेश है। विद्वान् भी जनता के लिए सूर्य के समान अविद्या अन्धकार का नाश और विद्या का प्रकाश करने वाले हैं॥

●

परमेष्ठी प्रजापतिः। **यज्ञः=स्पष्टम्**॥ ब्राह्मीत्रिष्टुप्। धैवतः स्वरः॥

केन स यज्ञो ग्राह्योऽनुष्ठातव्यश्चेत्युपदिश्यते॥

उक्त यज्ञ का ग्रहण और अनुष्ठान किससे करना चाहिये, यह उपदेश किया है॥

गायत्रेण॑ त्वा॒ छन्द॑सा॒ परि॑गृह्णामि॒ त्रैष्टु॑भेन त्वा॒ छन्द॑सा॒ परि॑गृह्णामि॒ जाग॑तेन त्वा॒ छन्द॑सा॒ परि॑गृह्णामि। सु॒क्ष्मा चासि॑ शि॒वा चासि॑ स्यो॒ना चा॑सि सु॒षदा॑ चा॒स्यूर्जस्वती॒ चासि॒ पय॑स्वती च॥२७

पदार्थः—(**गायत्रेण**) गायत्र्येव गायत्रं तेन। छन्दसः प्रत्ययविधाने नपुंसकात् स्वार्थ उपसंख्यानम्॥ अ० ४।२।५५॥ अनेन गायत्रशब्दे अण् त्रैष्टुभादिषु अञ् च (**त्वा**) परमात्मानं तमिमं यज्ञं वा (**छन्दसा**) आह्लादकारिणा। चन्देरादेश्च छः॥ उ० ४।२२६॥ अनेनासुन् प्रत्ययः। (**परि**) सर्वतो भावे। परीति सर्वतो भावं प्राह॥ निरु० १।३॥ (**गृह्णामि**) संपादयामि (**त्रैष्टुभेन**) त्रिष्टुबेव त्रैष्टुभं तेन (**त्वा**) त्वां सर्वानन्दमयं तं पदार्थसमूहं वा (**छन्दसा**) स्वातंत्र्यानन्दप्रदेन (**परि**) अभितः (**गृह्णामि**) संपादयामि (**जागतेन**) जगत्येव जागतं तेन (**त्वा**) त्वां सुखस्वरूपं तमग्निं वा (**छन्दसा**) अत्यानन्दप्रकाशेन (**परि**) समन्तात् (**गृह्णामि**) स्वीकरोमि (**सुक्ष्मा**) शोभना चासौ क्ष्मेयं पृथिवी च सा। क्ष्मेति पृथिवीनामसु पठितम्॥ निघं १।१॥ (**च**) समुच्चयार्थे (**असि**) भवति। अत्र सर्वत्र पुरुषव्यत्ययः (**शिवा**) मंगलप्रदा (**च**) समुच्चये (**असि**) भवति (**स्योना**) सुखप्रदा। स्योनमिति सुखनामसु पठितम्॥ निघं० ३।६॥ (**च**) समुच्चये (**असि**) भवति (**सुषदा**) सुष्ठु सीदन्ति यस्यां सा (**च**) समुच्चये (**असि**) भवति (**ऊर्जस्वती**) अन्नवती। ऊर्गित्यन्ननामसु पठितम्॥ निघं० २।७। ऊर्बहुविधमन्नं यस्यां सेति भूम्नि मतुप्। ज्योत्स्नातमिस्रा०॥ अ० ५।२।११४॥ इति निपातितः (**च**) समुच्चये (**असि**) भवति (**पयस्वती**) पयः=प्रशस्तो रसो विद्यतेऽस्यां सा। अत्र प्रशंसार्थे मतुप पयस्वती रसवती॥ श० १।२।५।११॥ (**च**) समुच्चये॥ अयं मंत्रः श० १।२।५।१—११ व्याख्यातः॥ २७॥

प्रमाणार्थ—(**गायत्रेण**) यहां 'छन्दसः प्रत्यय विधाने नपुंसकात् स्वार्थ उपसंख्यानम्' (अ० ४।२।५५) से 'गायत्र' शब्द में 'अण्' और त्रैष्टुभ आदि में अञ् प्रत्यय है (**छन्दसा**) 'चन्देरादेश्च छः' उणादि (४।२२६) से 'चदि' धातु से 'असुन्' प्रत्यय और आदि वर्ण को छकार आदेश करने से 'छन्दः' शब्द सिद्ध होता है। (**परि**) निरुक्त (१।३) के अनुसार 'परि' शब्द समन्तात् (**चारों तरफ**) अर्थ को कहता है। (**सुक्ष्मा**) 'क्ष्मा' शब्द निघं (१।१) में पृथिवी-नामों में पढ़ा है। (**असि**) भवति। इस

मन्त्र में सर्वत्र 'असि' पद पर पुरुष व्यत्यय है। (**स्योना**) 'स्योन' शब्द निघं० (३ । ६) में सुखनामों में पढ़ा है। (**ऊर्जस्वती**) 'ऊर्क' शब्द निघं० (२ । ७) में अन्न-नामों में पढ़ा है। तथा 'ज्योत्स्नातमिस्रा०' (अ० ५ । २ । ११४) में मतुबन्त 'ऊर्जस्विन्' शब्द निपातित है। (**पयस्वती**) इस शब्द में प्रशंसा अर्थ में मतुप् प्रत्यय है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१ । २ । ५ । १—११) में की गई है ॥ १ । २७ ॥

सपदार्थान्वयः—**येन यज्ञेन चोत्तमैः पदार्थैः सह सुक्ष्मा** शोभना चाऽसौ क्ष्मेयं पृथिवी च सा **असि**=भवति,=**येन च कल्याणकारिभिर्गुणैर्मनुष्यैश्चेयं शिवा** मङ्गलप्रदा **असि**=**भवति**,=**येन चाऽनुत्तमैः सुखैः सहेयं स्योना** सुखप्रदा **असि**=**भवति**,=**येन चोत्तमाभिः सुखकारिकाभिः स्थितिगतिभिः सहेयं सुषदा** सुष्ठु सीदन्ति यस्यां सा **असि**=**भवति**,=**येन चौत्तमैर्यवादिभिरन्नैः सहेयम् ऊर्जस्वती** अन्नवती=ऊर्गबहुविधमन्नं यस्यां सा **असि**=**भवति**,=**येन चोत्तमैर्मधुरादिरसवद्भिः फलैर्युक्तेयं पृथिवी पयस्वती** पयः=प्रशस्तो रसो विद्यतेऽस्यां सा रसवती **च जायते**।

भाषार्थ—जिस यज्ञ के कारण उत्तम पदार्थों से (**सुक्ष्मा**) यह पृथिवी शोभन (**सुन्दर**) (**असि**) होती है, जिस यज्ञ के कारण कल्याणकारी गुणों और मनुष्यों से यह (**शिवा**) मंगलकारी (**असि**) होती है, जिस यज्ञ के कारण अत्युत्तम सुखों से यह (**स्योना**) सुखदायक (**असि**) होती है, जिस यज्ञ के कारण उत्तम, सुखकारक स्थिति और गतियों से यह (**सुषदा**) अच्छी प्रकार **बैठने** योग्य (**असि**) होती है, जिस यज्ञ के कारण **उत्तम** यव आदि अन्नों से यह (**ऊर्जस्वती**) नाना प्रकार के अन्न से सम्पन्न (**असि**) होती है, और जिस यज्ञ के कारण उत्तम, मधुर आदि रसों वाले फलों से युक्त यह पृथिवी (**पयस्वती**) प्रशंसनीय रस वाली होती है।

अहं यज्ञविद्याविन्मनुष्यो गायत्रेण गायत्र्येव गायत्रं तेन **छन्दसा** आह्लादकारिणा **त्वा**=**तं यज्ञं** परमात्मानं तमिमं यज्ञं वा **परिगृह्णामि** सर्वतोभावेन सम्पादयामि।

यज्ञ विद्या का ज्ञाता मैं (**गायत्रेण छन्दसा**) आनन्दकारी गायत्री छन्द से (**त्वा**) उस यज्ञ को वा परमात्मा को (**परिगृह्णामि**) सब ओर से सिद्ध करता हूँ।

अहं त्रैष्टुभेन त्रिष्टुबेव त्रैष्टुभं तेन **छन्दसा** स्वातन्त्र्याऽऽनन्दप्रदेन **त्वा**=**तमिमं पदार्थसमूहं** त्वां सर्वानन्दमयं तं पदार्थसमूहं वा **परिगृह्णामि** अभितः सम्पादयामि।

मैं—(**त्रैष्टुभेनछन्दसा**) स्वतन्त्रता का आनन्द प्रदान करने वाले त्रिष्टुप् छन्द से (**त्वा**) उस सर्वानन्दमय पदार्थ समूह को (**परिगृह्णामि**) सब ओर से सिद्ध करता हूँ।

अहं जागतेन जगत्येव जागतं तेन **छन्दसा** अत्यानन्दप्रकाशेन **त्वा**=**तमिममग्निं** त्वां सुखस्वरूपं तमग्निं वा **परिगृह्णामि** समन्तात् स्वीकरोमि ॥ १ । २७ ॥

मैं—(**जागतेन छन्दसा**) अत्यन्त आनन्द को प्रकाशित करने वाले जगती छन्द से (**त्वा**) उस अग्नि क वा सुखस्वरूप परमात्मा को (**परिगृह्णामि**) सब ओर से स्वीकार करता हूँ ॥ १ । २७ ॥

[अहं गायत्रेण, त्रैष्टुभेन, जागतेन छन्दसा त्वा=**तमिमंयज्ञं, तमिमं पदार्थ समूहं, तमिमग्निं परिगृह्णामि**]

भावार्थः—वेदप्रकाशकेश्वरोऽस्मान् प्रत्यभिवदति—युष्माभिर्न चान्तरेण वेदमन्त्राणां पठनं, तदर्थज्ञानं, यज्ञानुष्ठानं, सुखफलं प्राप्तुं, सर्वशुभगुणाढ्याः सुखकारिणोऽन्नजलवाय्वादयः पदार्थाः

भावार्थ—वेदों का प्रकाश करने वाला ईश्वर हमें उपदेश देता है कि तुम लोग वेद मन्त्रों के पाठ, उनके अर्थ का ज्ञान और यज्ञानुष्ठान के बिना सुख रूप फल की प्राप्ति, तथा सब शुभ गुणों से

शुद्धाश्च कर्तुं शक्यन्ते ।

भरपूर सुखकारी अन्न, जल, वायु आदि पदार्थों की शुद्धि नहीं कर सकते ।

तस्मादेतस्य त्रिविधस्य यज्ञस्य सिद्धिं प्रयत्नेन निष्पाद्य सुखे स्थातव्यम् ।

इसलिये—इस तीन प्रकार के यज्ञ की सिद्धि को प्रयत्न से पूरा करके सुख में स्थित रहो ।

[येन च कल्याणकारिभिर्गुणैर्मनुष्यैश्चेयं शिवाऽसि=भवति]

ये चास्यां वायुजलौषधिदूषका दुर्गन्धादयो बु दोषा दुष्टाश्च मनुष्याः सन्ति ते सर्वदा निवारणीयाः ॥ १ । २७ ॥

और जो इस पृथिवी पर वायु, जल और ओषधियों को दूषित करने वाले दुर्गन्ध आदि दोष और दुष्ट मनुष्य हैं उनको सदा दूर हटाओ ॥ १ । २७ ॥

भाष्यसार—**१. यज्ञ से पृथिवी का शोधन**—यज्ञ से पृथिवी और इसके पदार्थ उत्तम हो जाते हैं जिससे यह सु+क्ष्मा (उत्तम-पृथिवी) कहलाती है । यज्ञ के कल्याणकारी गुणों और याज्ञिक लोगों से यह शिवा (मङ्गलकारी), अत्युत्तम सुखों से युक्त होने सुखदायक (स्योना), उत्तम सुखदायक स्थिति और गति से निवास योग्य (सुषदा), उत्तम यव आदि अन्नों के कारण अन्नवती (ऊर्जस्वती), उत्तम मधुरादि रसों से भरे फलों से युक्त होने से रसवती (पयस्वती) होती है ।

२. यज्ञ—गायत्री आदि छन्दों से मण्डित वेदमन्त्रों से यज्ञ का अनुष्ठान करें । यज्ञ आह्लादकारी, स्वतन्त्रता रूप आनन्द का देने वाला तथा अत्यन्तानन्द को प्रकाशित करने वाला है ।

३. ईश्वर—यज्ञ के समान ईश्वर भी आह्लादकारी, स्वतन्त्रता रूप आनन्द का देने वाला, सर्वानन्दमय, अत्यन्त आनन्द का प्रकाश करने वाला और सुखस्वरूप है ॥

परमेष्ठी प्रजापतिः । **यज्ञः=स्पष्टतम्** ॥ विराड् ब्राह्मी पंक्तिः । पंचमः ॥

ते दोषाः कथं निवारणीयास्तत्र मनुष्यैः पुनः किं करणीयमित्युपदिश्यते ॥

वे दोष कैसे निवारण करने और वहाँ मनुष्यों को फिर क्या करना चाहिये इस विषय का उपदेश किया है ॥

पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन्नुदादाय पृथिवीं जीवदानुम् । यामैरयँश्चन्द्रमसि स्वधाभिस्तामु धीरासोऽअनुदिश्य यजन्ते । प्रोक्षणीरासादय द्विषतो वधोऽसि ॥२८॥

पदार्थः—(पुरा) पुरस्तात् (**क्रूरस्य**) कृन्तन्त्यंगानि यस्मिन् तस्य युद्धस्य । कृतेश्छः क्रू च ॥ उ० २ । २१ ॥ अनेन कृन्ततेरक् प्रत्ययः । क्रू इत्यादेश्च (**विसृपः**) योद्धृभिर्विविधं यत्सृप्यते तस्य । सृपितृदोः कसुन् ॥ अ० ३ । ४ । १७ ॥ अनेन भावार्थे सृपिधातोः कसुन् (**विरप्शिन्**) महागुणविशिष्टेश्वर वा महैश्वर्य्यमिच्छुक मनुष्य । विरप्शीति महन्नामसु पठितम् ॥ निघं० ३ । ३ ॥ (**उदादाय**) ऊर्ध्वं समन्ताद् गृहीत्वा (**पृथिवीम्**) विस्तृतप्रजायुक्ताम् (**जीवदानुम्**) या जीवेभ्यो जीवनार्थं वस्तु ददाति ताम् (**याम्**) पृथिवीम् (**ऐरयन्**) राज्याय प्राप्नुवन्ति । अत्र लडर्थे लङ् (**चन्द्रमसि**) चन्द्रलोकसमीप आह्लादे वा (**स्वधाभिः**) अन्नैः सह वर्तमानाम् । स्वधेत्यन्ननामसु पठितम् ॥ निघं० २ । ७ ॥ (**ताम्**) एतल्लक्षणाम् (**उ**) वितर्के (**धीरासः**) मेधाविनः । धीर इति मेधाविनामसु पठितम् ॥ निघं० । ३ । १५ ॥ (**अनुदिश्य**) प्राप्तुं शोधयितुमनुलक्ष्य (**यजन्ते**) पूजयन्ति=संगतिं कुर्वते (**प्रोक्षणीः**) प्रकृष्टतया सिञ्चन्ति याभिः क्रियाभिः पात्रैर्वा ताः (**आ**) समन्तात् (**सादय**) स्थापय (**द्विषतः**) शत्रोः (**वधः**) हननम् (**असि**) भवेत् । अत्रापि पुरुषव्यत्ययो लिङर्थे लट् च ॥ अयं मंत्रः श० १ । २ । ५ । १६—२६ व्याख्यातः ॥ २८ ॥

प्रमाणार्थ—(**क्रूरस्य**) 'क्रूर' शब्द 'कृतेश्छ: क्रू च' उणादि (२।२१) से 'कृति' धातु से 'रक्' प्रत्यय और 'क्रू' आदेश करने से सिद्ध होता है। (**विसृपः**) 'विसृपः' शब्द 'सृपितृदोः कसुन्' अ० (३।४।१७) से भावलक्षण अर्थ में 'सृप्' धातु से 'कसुन्' प्रत्यय करने से सिद्ध होता है। (**विरप्शिन्**) 'विरप्शी' शब्द निघं० (३।३) में महान्-नामों में पढ़ा है। (**ऐरयन्**) प्राप्नुवन्ति। यहाँ लट् अर्थ में लङ् लकार है। (**स्वधाभिः**) 'स्वधा' शब्द निघं० (२।७) में अन्न-नामों में पढ़ा है। (**धीरासः**) 'धीर' शब्द निघं० (३।१५) में मेधावी-नामों में पढ़ा है। (**असि**) भवेत्। यहाँ भी पुरुष-व्यत्यय और लिङ्-अर्थ में लट् लकार है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१।२।५।१६—२६) में की गई है॥ १।२८॥

सपदार्थान्वयः—हे विरप्शिन् !=जगदीश्वर महागुणविशिष्टेश्वर **भवतैव या** पृथिवी **स्वधाभिः** अन्नैः सह वर्त्तमानो **युक्ता जीवदानुः** या जीवेभ्यो जीवनार्थं वस्तु ददाति तां **पृथिवी** विस्तृत-प्रजायुक्ता **उदादाय** ऊर्ध्वं समन्ताद् गृहीत्वा **चन्द्रमसि** चन्द्रलोकसमीपे **स्थापिता तस्माद् धीरासः** मेधाविनः **ताम्**=इमाम् एतल्लक्षणां **पृथिवीं** विस्तृतप्रजायुक्तां **प्राप्य भवन्तमनुदिश्य** प्राप्तुं=शोधयितुमनुलक्ष्य **सेनां शस्त्राण्युदादाय** ऊर्ध्वं समन्ताद् गृहीत्वा **विसृपः** योद्धृभिर्विविधं यत्सृप्यते तस्य **क्रूरस्य** कृन्तन्त्यङ्गानि यस्मिन् तस्य युद्धस्य **मध्ये शत्रून् जित्वा राज्यमैरयन्**=प्राप्नुवन्ति राज्याय प्राप्नुवन्ति।

भाषार्थ—हे (**विरप्शिन्**) महान् गुणों से युक्त जगदीश्वर ! आपने ही (**याम्**) जिस (**स्वधाभिः**) अन्नों से युक्त (**जीवदानुम्**) प्राणियों के जीवन के लिये वस्तुओं को देने वाली (**पृथिवीम्**) विस्तृत प्रजा से युक्त पृथिवी को (**उदादाय**) सब ओर से ग्रहण करके (**चन्द्रमसि**) चन्द्रलोक के समीप स्थापित किया है, इसलिये (**धीरासः**) मेधावी लोग (**ताम्**) इस उक्त लक्षणों वाली (**पृथिवीम्**) विस्तृत प्रजा से युक्त पृथिवी को प्राप्त करके आपको (**अनुदिश्य**) प्राप्त करने के लिये सेना एवं शस्त्रों को (**उदादाय**) सब ओर से ग्रहण करके (**विसृपः**) योद्धाओं की विविध चेष्टाओं के स्थल (**क्रूरस्य**) एवं शत्रुओं के अंगों को काटने वाले युद्ध में शत्रुओं को जीत कर राज्य को (**ऐरयन्**) प्राप्त करते हैं।

यथा चैवं कृत्वा **धीरासो** मेधाविनो [**यजन्ते**] पूजयन्ति=सङ्गतिं कुर्वते, **पुरा** पुरस्तात् (**प्रोक्षणीः**) प्रकृष्टतया सिञ्चन्ति याभिः क्रियाभिः पात्रैर्वा ताः **चासादितवन्तस्तथैव हे विरप्शिन्** ! महैश्वर्यमिच्छुक मनुष्य ! **त्वमपि उ**=**इति वितर्के** सवितर्कं **तां प्राप्येश्वरं यज, प्रोक्षणीः** प्रकृष्टतया सिञ्चन्ति याभिः क्रियाभिः पात्रैर्वा ताः **च असादय** समन्तात्स्थापय, **यथा च द्विषतः** शत्रोः **वधो** हननम् **असि**=**भवेत**, **तथा** कृत्वा [**चन्द्रमसि**] **आनन्दे** अह्लादे वा **नित्यं प्रवर्त्तस्व**॥ १।२८॥

और—जैसे इस प्रकार करके (**धीरासः**) मेधावी लोग [**यजन्ते**] पूजा एवं संगति करते हैं तथा (**पुरा**) पहले (**प्रोक्षणीः**) उत्तमरीति से सेचन करने वाली क्रियाओं वा पात्रों को प्राप्त करते हैं वैसे ही हे (**विरप्शिन्**) महान् ऐश्वर्य के इच्छुक मनुष्य ! तू भी (**उ**) विचारपूर्वक उस प्रोक्षणी को प्राप्त करके ईश्वर की पूजा एवं संग कर और (**प्रोक्षणीः**) उत्तम रीति से सेचन करने वाली क्रियाओं वा पात्रों को (**आसादय**) सब ओर स्थापित कर, और जिस प्रकार से (**द्विषतः**) शत्रु का (**वधः**) नाश (**असि**) हो वैसे उसका नाश करके सदा आनन्द में रह॥ १।२८॥

[हे विरप्शिन्=जगदीश्वर ! **भवतैव—पृथिवीमुदादाय चन्द्रमसि स्थापिता**]

भावार्थः—येनेश्वरेणान्तरिक्षे पृथिव्यस्तत्समीपे चन्द्रास्तत्समीपे पृथिव्यो, ऽन्योऽन्यं समीपस्थानि नक्षत्राणि, सर्वेषां मध्ये सूर्यलोकाः, एतेषु विविधाः प्रजाश्च रचयित्वा स्थापिताः। सर्वैस्तत्रस्थैर्मनुष्यैः स एवोपासितुं योग्योऽस्ति।

भावार्थ—जिस ईश्वर ने अन्तरिक्ष में पृथिवियाँ, उनके समीप चन्द्र, और उनके समीप पृथिवियाँ, एक दूसरे के समीप नक्षत्र, सबके मध्य में सूर्यलोक तथा इनमें विविध प्रजा को रच कर स्थापित किया है। वहाँ रहने वाले सब मनुष्यों को उसी ईश्वर की उपासना करना योग्य है।

[धीरासः—सेनां शस्त्राण्युदादायु—क्रूरस्य मध्ये शत्रून् जित्वा राज्यमैरयन्]

न यावन्मनुष्या बलक्रियाभ्यां युक्ता भूत्वा शत्रून् विजयन्ते, नैव तावत् स्थिरं राज्यसुखं प्राप्नुवन्ति। नैव युद्धबलाभ्यां विना शत्रवो बिभ्यति। न च विद्यान्यायविनयैर्विना यथावत् प्रजाः पालयितुं शक्नुवन्ति।

जब तक मनुष्य बल और पुरुषार्थ से युक्त होकर शत्रुओं को नहीं जीतते हैं तब तक उन्हें स्थिर राज्य-सुख प्राप्त नहीं हो सकता। युद्ध और बल (सेना) के बिना शत्रु कभी नहीं डरते। विद्या, न्याय और विनय के बिना प्रजा का पालन नहीं हो सकता।

[तथा—(चन्द्रमसि) आनंदे नित्यं प्रवर्त्तस्व]

तस्मात्—सर्वैर्जितेन्द्रियैर्भूत्वैतत्समासाद्य सर्वेषां सुखं कर्तुमनुलक्ष्य नित्यं प्रयतितव्याम्॥ १। २८॥

इसलिये—सबको जितेन्द्रिय होकर उक्त राज्य को प्राप्त करके सबको सुख देने का लक्ष्य बना कर नित्य प्रयत्न करना चाहिये॥ १। २८॥

भाष्यसार—१. **ईश्वर**—महान् गुणों से विशिष्ट होने से ईश्वर का नाम विरप्शी है। महान् ऐश्वर्य का इच्छुक मनुष्य भी 'विरप्शी' कहलाता है। ईश्वर ने ही चन्द्रलोक के समीप पृथिवी को स्थापित किया है।

२. **पृथिवी**—अन्नों से युक्त, प्राणियों के जीवन के लिये सब वस्तुओं को देने वाली है। विस्तृत प्रजा से युक्त है॥

३. **मनुष्यों का कर्त्तव्य**—इस पृथिवी पर सेना और शस्त्रों के बल से युद्ध में मेधावी लोग शत्रुओं को जीत कर राज्य प्राप्त करें।

४. **यज्ञ से दोषों का निवारण**—महान् ऐश्वर्य के इच्छुक मनुष्य ईश्वर का यजन करें। यज्ञ से सब दोषों एवं शत्रुओं का निवारण करके नित्य आनन्द में रहें॥

परमेष्ठी प्रजापतिः। **यज्ञो**=**देवता सर्वस्य**। पूर्वार्द्धे त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। उत्तरार्द्धे त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनः स संग्रामः किं कृत्वा जेतव्यो यज्ञश्चानुष्ठातव्य इत्युपदिश्यते॥

फिर उक्त संग्राम कैसे जीतना और यज्ञ का अनुष्ठान कैसे करना चाहिये इस विषय का उपदेश किया है॥

प्रत्युष्टꣳ रक्षः प्रत्युष्टा ऽ अरातयो निष्टप्तꣳ रक्षो निष्टप्ता ऽ अरातयः ।
अनिशितोऽसि सपत्नक्षिद्वाजिनं त्वा वाजेध्यायै सम्मार्ज्मि ।
प्रत्युष्टꣳ रक्षः प्रत्युष्टा ऽ अरातयो निष्टप्तꣳ रक्षो निष्टप्ता ऽ अरातयः ।
अनिशिताऽसि सपत्नक्षिद्वाजिनीं त्वा वाजेध्यायै सम्मार्ज्मि ॥२९॥

पदार्थः—(**प्रत्युष्टम्**) प्रतिदग्धव्यम् (**रक्षः**) विघ्नकारी प्राणी (**प्रत्युष्टाः**) प्रतिदग्धव्याः (**अरातयः**) सत्यविरोधिनोऽरयः (**निष्टप्तम्**) यन्नितरां तप्यते तत् (**रक्षः**) बन्धनेन रक्षयितव्यम् (**निष्टप्ताः**) नितरां तप्यन्ते ये ते (**अरातयः**) विद्याविघ्नकारिणः (**अनिशितः**) न विद्यते नितरां शिता=तीव्रा क्रिया यस्मिन्स सग्रामो यज्ञपात्रं वा (**असि**) भवति । **अत्र पुरुषव्यत्ययः** (**सपत्नक्षित्**) सपत्नान्=शत्रून् क्षयति येन सः । अत्र कृतो बहुलमिति वार्तिकेन करणकारके क्विप् । क्षि क्षये इत्यस्य रूपम् । एतदुवटमहीधराभ्यां क्षिणु हिंसायामित्यस्य भ्रांत्या व्याख्यातम् (**वाजिनम्**) अन्नवन्तं वेगवन्तं वा । वाज इत्यन्ननामसु पठितम् ॥ **निघंटौ** २ । ७ ॥ (**त्वा**) तम् (**वाजेध्यायै**) वाजेनान्नेन युद्धेन वा इध्या=दीपनीया सेना यज्ञपात्रं वा यया क्रियया तस्यै (**संमार्ज्मि**) सम्यक् शोधयामि (**प्रत्युष्टम्**) नित्यं प्रजापालनाय तापनीयः (**रक्षः**) परसुखासहो **मनुष्यः** (**प्रत्युष्टाः**) प्रत्यक्षं ज्वालनीयाः (**अरातयः**) परसुखासोढारः (**निष्टप्तम्**) निःसारणीयः (**अरातयः**) अन्येभ्यो दुःखप्रदाः (**अनिशिता**) अतिविस्तीर्णा सेना कार्य्या वेदिर्वा (**असि**) अस्ति । अत्रापि व्यत्ययः (**सपत्नक्षित्**) सपत्नान् क्षयति यया सा (**वाजिनीम्**) बलवेगवतीम् (**त्वा**) त्वाम् (**वाजेध्यायै**) वाजेन=बहुसाधनसमूहेन संग्रामेण सेनया यज्ञेन वा प्रकाशनीयायै सत्यनीत्यै (**संमार्ज्मि**) सम्यक् शिक्षया शोधयामि ॥ **अयं मंत्रः** श० १ । ३ । १ । ४—११ व्याख्यातः ॥ २६ ॥

प्रमाणार्थ—(**असि**) भवति । यहां पुरुष-व्यत्यय है । (**सपत्नक्षित्**) क्षय अर्थ वाली 'क्षि' धातु से 'कृतो बहुलम्' इस वार्त्तिक से करण-कारक में क्विप् प्रत्यय करने से यह शब्द सिद्ध होता है । (**वाजिनम्**) 'वाज' शब्द निघं० (२ । ७) में अन्ननामों में पढ़ा है । (**असि**) भवति । यहां भी पुरुष व्यत्यय है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१ । ३ । १ । ४—११) में की गई है ॥ १ । २६ ॥

[संग्रामः]

सपदार्थान्वयः—**अहं येन** [**अनिशितः**]=**अनिशितेन** न विद्यते नितरां शिता=तीव्रा क्रिया यस्मिन् स संग्रामः (तेन) [**सपत्नक्षित**] **सपत्नक्षिता=संग्रामेण** सपत्नान्=शत्रून् क्षयति येन सः, (तेन) **प्रत्युष्टं** प्रतिदग्धव्यं **रक्षः** विघ्नकारी प्राणी, **प्रत्युष्टाः** प्रति दग्धव्याः **अरातयः** सत्यविरोधिनोऽरयः, **निष्टप्तं** यन्नितरां तप्यते तत् **रक्षः** बन्धनेन रक्षयितव्यं, **निष्टप्ताः** नितरां तप्यन्ते ये ते **अरातयः** विद्याविघ्नकारिणः [**असि**]=**भवन्ति**, [**त्वा**] **तं वाजिनं=युद्धाङ्गानि** वेगवन्तं **वाजेध्यायै** वाजेन=युद्धेन **इध्या**=दीपनीया सेना यया क्रियया तस्यै **सम्मार्ज्मि** सम्यक् शोधयामि ॥

[संग्राम]

भाषार्थ—मैं, जिस [**अनिशितः**] तीव्र क्रिया से सर्वथा रहित [**सपत्नक्षित्**] सपत्न अर्थात् शत्रुओं का क्षय करने वाले संग्राम से (**रक्षः**) विघ्नकारी प्राणी को (**प्रत्युष्टम्**) जला दिया जाता है, (**अरातयः**) सत्य के विरोधी शत्रुओं को भी (**प्रत्युष्टाः**) जला दिया जाता है, (**रक्षः**) बन्धन में रखने योग्य मनुष्य को (**निष्टप्तम्**) सन्ताप युक्त किया जाता है, (**अरातयः**) विद्या में विघ्न करने वाले लोगों को (**निष्टप्ताः**) सन्ताप युक्त किया जाता [**असि**] है, [**त्वा**] उस (**वाजिनम्**) उस वेगवान् युद्ध को एवं उसके अङ्गों को (**वाजेध्यायै**) युद्ध से चमकने वाली सेना के लिए (**सम्मार्ज्मि**) उत्तम नीति से शुद्ध करता हूँ ॥

[सेना]

अहं यया [सपत्नक्षित्]=सपत्नक्षिता सपत्नान्=शत्रून् क्षयति यया सा (तया), **[अनिशिता]=अनिशितया=सेनया** अतिविस्तीर्णा सेना कार्या (तया), **प्रत्युष्टं** नित्यं प्रजापालनाय तापनीयः **रक्षः** परसुखासहो मनुष्यः, **प्रत्युष्टाः** प्रत्यक्षं ज्वालनीया **अरातयः** परसुखासोढारः, **निष्टप्तं** निःसारणीयः **रक्षः** परसुखासहो मनुष्यः, **निष्टप्ताः** नितरां तप्यन्ते ये ते **अरातयः** अन्येभ्यो दुःखप्रदा **[असि]=भवन्ति [त्वा]=तां वाजिनीं=सेनां** बलवेगवतीं **शिक्षया वाजेध्यायै** वाजेन=युद्धेन इध्या=दीपनीया सेना यया क्रियया तस्यै, वाजेन=बहुसाधन-**समूहेन** सेनया प्रकाशनीयायै सत्यनीत्यै **सम्मार्ज्मि** सम्यक् शिक्षया शोधयामि ॥

[सेना]

मैं, जिस **[सपत्नसित्]** सपत्न अर्थात् शत्रुओं का क्षय करने वाली **[अनिशिता]** अति विस्तीर्ण सेना से **(रक्षः)** दूसरे के सुख को न सहन करने वाले मनुष्य को **(प्रत्युष्टम्)** प्रजा-पालन के लिये सन्ताप युक्त किया जाता है, **(अरातयः)** दूसरों के सुखों को न सहन करने वाले लोगों को **(प्रत्युष्टाः)** प्रत्यक्ष जला देना चाहिए, **(रक्षः)** दूसरे के सुख को न सहन करने वाले मनुष्य को **(निष्टप्तम्)** निकाल देना चाहिए, **(अरातयः)** दूसरों को दुःख देने वाले लोगों को **(निष्टप्ताः)** सन्ताप युक्त किया जाता **[असि]** है **[त्वा]** उस **(वाजिनीम्)** बल और वेग वाली सेना को **(वाजेध्यायै)** युद्ध से चमकने वाली सेना के लिये तथा बहुत साधनों से सेना के द्वारा प्रकाशित की जाने वाली सत्य नीति के लिये **(सम्मार्ज्मि)** उसे शिक्षा से शुद्ध करता हूँ।

[यज्ञः]

अहं येन [अनिशितः]=अनिशितेन न विद्यते नितरां शिता=तीव्रा क्रिया यस्मिँस्तद् यज्ञपात्रं (तेन), अतिविस्तीर्णा वेदिः कार्या (तया) वा **[सपत्नक्षित्]=सपत्नक्षिता=यज्ञेन** सपत्नान्=शत्रून् क्षयति येन सः(तेन), **प्रत्युष्टं** प्रतिदग्धव्यं **रक्षः** विघ्नकारी प्राणी, **प्रत्युष्टाः** प्रतिदग्धव्याः **अरातव्यः** सत्यविरोधिनोऽरयः, **निष्टप्तं** यन्नितरां तप्यते तत् **रक्षः** बन्धनेन रक्षितव्यं, **निष्टप्ताः** नितरां तप्यन्ते ये ते **अरातयः** विद्याविघ्नकारिणः **[असि]=भवन्ति [त्वा]=तं वाजिनं=यज्ञम्** अन्नवन्तं **वाजेध्यायै** वाजेन=अन्नेन इध्या=दीपनीयं यज्ञ-पात्रं यथा क्रियया तस्यै, वाजेन=बहु साधन समूहेन यज्ञेन प्रकाशनीयायै सत्यनीत्यै **सम्मार्ज्मि** सम्यक् शोधयामि ॥ १ । २९ ॥

[यज्ञ]

मैं, **[अनिशितः]** तीव्र क्रिया से रहित यज्ञपात्र वाले एवं अति विस्तीर्ण वेदि वाले **[सपत्नशित्]** सपत्न अर्थात् शत्रुओं का क्षय करने वाले जिस यज्ञ से **(रक्षः)** विघ्नकारी प्राणी को **(प्रत्युष्टम्)** विनष्ट किया जाता है, **(अरातयः)** सत्य के विरोधी शत्रुओं को **(प्रत्युष्टाः)** नष्ट किया जाता है, **(रक्षः)** बन्धन में रखने योग्य मनुष्य को **निष्टप्तम्)** सन्ताप युक्त किया जाता है, **(अरातयः)** विद्या में विघ्न करने वाले लोगों को **(निष्टप्ताः)** सन्ताप युक्त किया जाता **(असि)** है **[त्वाम्]** उस **(वाजिनम्)** अन्न के निमित्त यज्ञ को **(वाजेध्यायै)** अन्न से सुशोभित यज्ञ पात्र के लिये एवं बहुत साधनों वाले यज्ञ से प्रकाशित होने वाली सत्यनीति के लिए **(सम्मार्ज्मि)** उत्तम नीति से पवित्र करता हूँ ॥ १ । २९ ॥

[अहं येन···सपत्नक्षिता···निष्टप्ता अरातयो [असि] भवन्ति तं वाजिनं···वाजेध्यायै सम्मार्ज्मि]

ईश्वर आज्ञापयति—सर्वैर्मनुष्यैर्विद्याशुभगुण-दीप्तया दुष्टशत्रुनिवारणाय नित्यं पुरुषार्थः कर्त्तव्यः ।

भावार्थ—ईश्वर आज्ञा देता है कि सब मनुष्यों को विद्यादि शुभ गुणों के प्रकाशक से दुष्ट शत्रुओं को हटाने के लिये नित्य पुरुषार्थ करना चाहिए ।

[अहं यया'''अनिशितया=सेनया''''''निष्टप्ता अरातयः [असि] भवन्ति [त्वा] तां''''''शिक्षया वाजेध्यायै सम्मार्ज्मि]

सुशिक्षया शस्त्रास्त्रसत्पुरुषाढ्यसेनया श्रेष्ठानां रक्षणं दुष्टानां ताडनं च नित्यं कर्त्तव्यम् ।

उत्तम शिक्षा से,शस्त्र-अस्त्र तथा सत्पुरुषों से भरपूर सेना के द्वारा श्रेष्ठ जनों की रक्षा और दुष्टों की ताड़ना नित्य करनी चाहिए ।

[यज्ञेन''''''सम्मार्ज्मि]

यतोऽशुद्धिक्षयात् सर्वत्र पवित्रता प्रवर्त्तेत ॥ १ । २६ ॥

जिससे—अशुद्धि के नाश से सर्वत्र पवित्रता का प्रसार हो ॥ १ । २६ ॥

भा० पदार्थ—वाजेध्यायै=विद्याशुभगुणदीप्तये । शास्त्रास्त्र सत्पुरुषाढ्यसेनायै ।

भाष्यसार—१. **संग्राम विजय**—संग्राम से विघ्नकारी प्राणियों का दहन करें। और जो सत्य के विरोधी, विद्या आदि शुभ कर्मों में विघ्न करने वाले शत्रु हैं उन्हें संग्राम से सन्तापयुक्त रखें। युद्ध से सेना के गुण प्रदीप्त होते हैं एवं सेना की शुद्धि होती है। युद्ध से सेना को शुद्ध करते रहें। विशुद्ध विशाल सेना से राक्षस लोगों को प्रजा की रक्षा के लिये नितान्त सन्तापयुक्त रखें। शत्रु लोगों को प्रत्यक्ष (**सब के सामने**) जलायें। अपनी सेना को प्रशिक्षित करके संग्राम में सदा विजय प्राप्त करें।

२. **यज्ञानुष्ठान**—यहाँ यज्ञ को तीव्र क्रिया से रहित बतलाया है। अतः यज्ञ का शान्तिपूर्वक अनुष्ठान करें। यज्ञ के लिए एक अति विस्तृत वेदि बनायें। यज्ञ से विघ्नकारी प्राणियों तथा सत्य के विरोधी विद्या आदि शुभ कार्यों में बाधा डालने वाले लोगों का निवारण करें। यज्ञ अन्न का शोधक एवं सत्य नीति का प्रकाशक है। यज्ञ से अन्नादि पदार्थों की शुद्धि तथा लोगों के दुष्ट गुणों का भी शोधन करें। यज्ञ से ही लोगों के राक्षस-स्वभाव और अराति स्वभाव का दहन होता है। अतः यज्ञा-नुष्ठान नित्य करें॥

समीक्षा—'सपत्नक्षित्' इस पद की व्याख्या में महर्षि लिखते हैं—"सपत्नान्=शत्रून क्षयति येन सः। अत्र 'कृतो बहुलम्' (३।३।११३ भा० वा०) इति वार्त्तिकेन करणकारके क्विप्। 'क्षि क्षये' इत्यस्य रूपम्। एतदुवटमहीधराभ्यां क्षिणु हिंसायामित्यस्य भ्रान्त्या व्याख्यातम्" अर्थात्—शत्रुओं का जिस साधन से क्षय किया जाता है उसे 'सपत्नक्षित' कहते हैं। यहां 'कृतो बहुलम्' इस भाष्य वार्त्तिक से करण-कारक (**साधन-अर्थ**) में क्विम् प्रत्यय है। यह 'क्षि क्षये' धातु का रूप है। इसके विपरीत तथाकथित वेदभाष्यकर उवट और महीधर लिखते हैं—"सपत्नान् क्षिणोतीति सपत्नक्षित्। क्षिण क्षिणि हिंसायाम्। क्षिण हिंसार्थः" (**उवट**) ॥ क्षिणु हिंसायाम्। सपत्नानस्मच्छत्रून् क्षिणोति हिनस्तीति सपत्नाक्षित् (**महीधर**)"॥ अर्थात् 'सपत्नाक्षित्' पद सपत्न उपपद हिंसार्थक क्षिणु धातु से सिद्ध होता है। किसी शब्द की सिद्धि में केवल धातु का निर्देश मात्र कर देना पर्याप्त नहीं। धातु और प्रत्यय दोनों का निर्देश करना चाहिये। क्षिणु धातु से क्या प्रत्यय किया जाये जिससे 'क्षित्' शब्द सिद्ध हो इसका उवट और महीधर ने कोई निर्देश नहीं किया। क्विप् प्रत्यय सम्भव है, उससे क्षित् बन नहीं सकता, क्षिण बनेगा। अतः उवट और महीधर की यह व्याकरण ज्ञान शून्यता नहीं तो और क्या है॥ १ । २६॥

परमेष्ठी प्रजापतिः । **यज्ञः**=स्पष्टम् । निचृज्जगती । निषादः ॥

पुनः स यज्ञः कीदृशः किंफलो भवतीत्युपदिश्यते ॥

फिर उक्त यज्ञ किस प्रकार का और किस फल का देने वाला होता है, यह उपदेश किया है ॥

अदि॑त्यै॒ रास्ना॑सि॒ विष्णो॑र्वे॒ष्पो᳖स्यू॒र्ज्जे त्वाऽद॑ब्धेन त्वा॒ चक्षु॒षाव॑पश्यामि ।
अ॒ग्नेर्जि॒ह्वासि॑ सु॒हूर्दे॒वेभ्यो॒ धाम्ने॑ धाम्ने मे भव॒ यजु॑षे यजु॑षे ॥३०॥

पदार्थः—(**अदित्यै**) पृथिव्या अन्तरिक्षस्य वा । अत्र षष्ठ्यर्थे चतुर्थी । अदितिरिति पृथिवीनामसु पठितम् ॥ निघं० १ । १ ॥ पदनामसु च ॥ निघं० ४ । १ ॥ अनेन गमनागमनव्यवहारप्राप्तिहेतुरवकाशोऽन्तरिक्षं गृह्यते (**रास्ना**) रसहेतुभूता क्रिया । रास्ना सास्ना स्थूणा वीणाः ॥ उ० ३ । १५ ॥ अनेन रसधातोर्निपातनान्नः प्रत्ययः (**असि**) अस्ति वा । अत्र सर्वत्र पक्षे व्यत्ययः (**विष्णोः**) व्यापकेश्वरस्य यज्ञस्य वा । यज्ञो वै विष्णुः ॥ श० १ । १ । २ । १३ ॥ (**वेष्पः**) वेवेष्टि=व्याप्नोति पृथिवीमन्तरिक्षं वा स यज्ञोत्थो वाष्पो ज्ञानसमूहो वा । पानीविषिभ्यः पः ॥ उ० ३ । २३ ॥ अनेन विषेः पः प्रत्ययः (**असि**) अस्ति वा (**ऊर्ज्जे**) अन्नाय रसाय पराक्रमाय च (**त्वा**) त्वां तं वा (**अदब्धेन**) सुखयुक्तेन (**त्वा**) त्वां तं वा (**चक्षुषा**) विज्ञानेन प्रत्यक्षप्रमाणेन नेत्रेण (**अव**) क्रियार्थे । अवेति विनिग्रहार्थीयः ॥ निरु० १ । ३ ॥ (**पश्यामि**) संप्रेक्षे (**अग्नेः**) भौतिकस्य (**जिह्वा**) जिहीते=विजानाति रसमनया सा । शेवायह्वाजिह्वा० ॥ उ० १ । १५४ ॥ अनेनायं निपातितः । (**असि**) अस्ति वा (**सुहूः**) सुष्ठु हूयते यो या वा सा क्वतो बहुलमिति कर्मणि ह्वेञ् इत्यस्य क्विबन्तः प्रयोगः (**देवेभ्यः**) विद्वद्भ्यो दिव्यगुणेभ्यो वा (**धाम्ने धाम्ने**) दधति वस्तूनि सुखानि च यस्मिन् तस्मै प्रत्यधिकरणप्राप्तये । धामानि त्रयाणि भवन्ति स्थानानि नामानि जन्मानीति । निरु० ९ । २८ ॥ अत्र वीप्सायां द्वित्वम् (**भव**) भवति वा (**यजुषे यजुषे**) यजन्ति येन तस्मै प्रति यजुर्वेदमन्त्रम् ॥ अयं मंत्रः श० १ । ३ । १ । १२—१९ व्याख्यातः ॥ ३० ॥

प्रमाणार्थ—(**अदित्यै**) पृथिव्याः । यहां षष्ठी-अर्थ में चतुर्थी विभक्ति है । 'अदिति' शब्द निघं० (१ । १) में पृथिवी-नामों में और निघं० (४ । १) में पद-नामों में पढ़ा है । इससे गमन-आगमन रूप व्यवहार का प्राप्ति का हेतु अवकाश (**अन्तरिक्ष**) का ग्रहण होता है । (**रास्ना**) 'रास्ना' शब्द 'रास्ना सास्ना स्थूणा वीणाः' उणादि (३ । १५) से 'रस' धातु से न-प्रत्ययान्त निपातित है । (**असि**) अस्ति । इस मन्त्र में सर्वत्र 'असि' पद पर पाक्षिक व्यत्यय है । (**विष्णोः**) शत० (१ । १ । २ । १३) के अनुसार 'विष्णु' का अर्थ 'यज्ञ' है । (**वेष्पः**) 'वेष्प' शब्द 'पानी विषिभ्यः पः' उणादि (३ । २३) से 'प' प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है । (**अव**) निरु० (१ । ३) के अनुसार 'अव' उपसर्ग का अर्थ 'नियन्त्रण' (दबाना) है । (**जिह्वा**) 'जिह्वा' शब्द 'शेवा यह्वा जिह्वा०' उणादि (१ । १५४) से नियातित है । (**सुहूः**) यहां 'कृतो बहुलम्' से कर्म में 'ह्वेञ' धातु से 'क्विप्' प्रत्यय का प्रयोग है । (**धाम्ने-धाम्ने**) निरु० (९-२८) के अनुसार स्थान, नाम और जन्म ये तीन 'धाम' होते हैं । वीप्सा-अर्थ में 'धाम' शब्द का दो बार पाठ हुआ है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१ । ३ । १ । १२-१९) में की गई है । १ । ३० ॥

सपदार्थान्वयः—हे जगदीश्वरः ! यस्त्वम् [**अदित्यै**]=आदित्याः पृथिव्या **रास्ना** रसहेतुभूता क्रिया **असि** [**विष्णोः**] **विष्णुः** व्यापकेश्वरो **असि, सर्वस्य वेष्पः** वेवेष्टि=व्याप्नोति

भावार्थ—हे जगदीश्वर ! जो आप [**अदित्यै**] पृथिवी के (**रास्ना**) पदार्थों को रसयुक्त करने वाले (**असि**) हो, [**विष्णोः**] व्यापक ईश्वर (**असि**) हो, सब (**वेष्पः**) पृथिवी वा अन्त-

पृथिवीमन्तरिक्षं वा स ज्ञान-समूहः **असि, अग्नेः** भौतिकस्य **जिह्वा** जिहीते=विजानाति रसमनया सा **असि, देवेभ्यः** विद्वद्भ्यो दिव्यगुणेभ्यो वा **धाम्ने धाम्ने** दधति वस्तूनि सुखानि च यस्मिन् तस्मै प्रत्यधिकरणप्राप्तये **यजुषे यजुषे** यजन्ति येन तस्मै प्रति यजुर्वेदमन्त्रं **सुहूः** सुष्ठु हूयते यो या वा सा **असि** ।

एवम्भूतं [त्वा]=त्वामहमदब्धेन सुखयुक्तेन **चक्षुषा** विज्ञानेन प्रत्यक्षप्रमाणेन नेत्रेण **ऊर्ज्जे** अन्नाय रसाय पराक्रमाय च **अदित्यै** पृथिव्या अन्तरिक्षस्य वा **देवेभ्यो** विद्वद्भ्यो दिव्यगुणेभ्यो वा **धाम्ने धाम्ने** दधति वस्तूनि सुखानि च यस्मिंस्तस्मै प्रत्यधिकरणप्राप्तये यजुषे यजुषे यजन्ति येन तस्मै प्रति यजुर्वेदमंत्र चाऽवपश्यामि संप्रेक्षे ।

स च त्वमस्माभिः सर्वत्र कृपया विदितः पूजितश्च [मे] भवेत्येकः ॥

द्वितीयमन्वयमाह—यतोऽयं यज्ञो [ऽदित्यै]=अदित्याः अन्तःरक्षस्य **रास्ना** रसहेतुभूता क्रिया [असि]=अस्ति, **विष्णोः** यज्ञस्य **वेष्पः** वेवेष्टि=व्याप्नोति पृथिवीमन्तरिक्षं वा स यज्ञोत्थो वाष्पो [असि]=अस्ति, **अग्नेः** भौतिकस्य **जिह्वा** जिहीते=विजानाति रसमनया सा [असि]=अस्ति, देवेभ्यो विद्वद्भ्यो दिव्यगुणेभ्यो वा **धाम्ने धाम्ने** दधाति वस्तूनि सुखानि च यस्मिँस्तस्मै प्रत्यधिकरण प्राप्तये **यजुषे यजुषे** यजन्ति येन तस्मै प्रतियजुर्वेदमन्त्रं **सुहूः** सुष्ठु हूयते यो या वा सा [भव]=भवति, **तस्मात्तमहमदब्धेन** सुखयुक्तेन **चक्षुषा** विज्ञानेन प्रत्यक्षप्रमाणेन नेत्रेण **ऊर्ज्जे** अन्नाय रसाय पराक्रमाय च **अवपश्यामि** संप्रेक्षे, **तथाऽदित्यै** पृथिव्या अन्तरिक्षस्य वा **देवेभ्यो** विद्वद्भ्यो दिव्यगुणेभ्यो वा **धाम्ने धाम्ने** दधाति वस्तूनि सुखानि च यस्मिँस्तस्मै प्रत्यधिकरणप्राप्तये

रिक्ष को व्याप्त करने वाले ज्ञानभण्डार (**असि**) हो, (**अग्नेः**) भौतिक अग्नि के (**जिह्वा**) रस को जानने वाले (**असि**) हो, (**देवेभ्यः**) विद्वानों वा दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिये, (**धाम्ने धाम्ने**) वस्तुओं और सुखों के प्रत्येक आधार की प्राप्ति के लिये, (**यजुषे यजुषे**) यज्ञ करने के साधन प्रत्येक यजुर्वेद के मन्त्र के लिये (**सुहूः**) उत्तम हवन सामग्री (**असि**) हो ।

इस प्रकार के [**त्वा**] आपको मैं (**अदब्धेन**) सुख युक्त (**चक्षुषा**) विज्ञान एवं प्रत्यक्ष प्रमाण रूप नेत्र से (**ऊर्जे**) अन्न, रस और पराक्रम की प्राप्ति के लिये (**अादित्यै**) पृथिवी वा अन्तरिक्ष के (**देवेभ्यः**) विद्वानों वा दिव्यगुणों की प्राप्ति के लिए (**धाम्ने धाम्ने**) वस्तुओं और सुखों के प्रत्येक आधार की प्राप्ति के लिये और (**यजुषे यजुषे**) यज्ञ के साधन प्रत्येक यजुर्वेद के मन्त्र के ज्ञान के लिये (**अवपश्यामि**) उत्तम रीति से देखता हूँ ।

और आप सर्वत्र कृपा करके [**मे**] मेरे लिए विदित और पूजित होओ ॥ यह मन्त्र का पहला अन्वय है ॥

दूसरा अन्वय—जिस कारण यह यज्ञ [**आदित्यै**] अन्तरिक्ष को (**रास्ना**) रस युक्त करने वाला [**असि**] है, (**विष्णोः**) यज्ञ का (**वेष्पः**) पृथिवी वा अन्तरिक्ष को व्याप्त करने वाला यज्ञ से उत्पन्न वाष्प (**भांप**) रूप [**असि**] है, (**अग्नेः**) भौतिक अग्नि के (**जिह्वा**) रसों को ग्रहण करने वाला [**असि**] है (**देवेभ्यः**) विद्वानों वा दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए (**धाम्ने धाम्ने**) वस्तुओं और सुखों के प्रत्येक आधार की प्राप्ति के लिये, (**यजुषे यजुषे**) यज्ञ के साधन यजुर्वेद के प्रत्येक मन्त्र के लिये (**सुहूः**) उत्तम हवन सामग्री [**भव**] बनता है । इस लिये उस यज्ञ को मैं (**अदब्धेन**) सुखयुक्त (**चक्षुषा**) विज्ञान एवं प्रत्यक्ष प्रमाण के साधन नेत्र से (**ऊर्जे**) अन्न, रस और पराक्रम की प्राप्ति के लिये (**अवपश्यामि**) देखता हूँ, तथा—(**अदित्यै**) पृथिवी वा अन्तरिक्ष

यजुषे यजुषे यजन्ति येन तस्मै प्रतियजुर्वेदमन्त्रं हिताय ऽवपश्यामि संप्रेक्षे [इति द्वितीयः] ॥ १ । ३० ॥

के (**देवेभ्यः**) विद्वानों वा दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिये (**धाम्ने धाम्ने**) वस्तुओं वा सुखों के प्रत्येक आधार की प्राप्ति के लिये (**यजुषे यजुषे**) यज्ञ के साधन प्रत्येक यजुर्वेद के मन्त्र को धारण करने के लिये (**अवपश्यामि**) उत्तम रीति से देखता हूँ ॥ १ । ३० ॥

[हे जगदीश्वर ! ···त्वं···धाम्ने धाम्ने···असि, स च त्वम्···विदितः पूजितश्च···भव]

भावार्थः—अत्र श्लेषालंकारः ॥ सर्वैर्मनुष्यैरयं जगदीश्वरः प्रतिवस्तुषु स्थितः प्रतिपादितः पूज्यश्च भवतीति मन्तव्यम् ।

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष अलङ्कार है ॥ सब मनुष्यों को ऐसा मानना चाहिये कि यह जगदीश्वर, प्रत्येक वस्तु में स्थित है, वेदों में प्रतिपादित है, और पूजा के योग्य है ।

[अथ यज्ञः ···यजुषे यजुषे सुहूर्भवति,···तमहम्···ऊर्जे···अदित्यै देवेभ्य···धाम्ने धाम्ने···अव···पश्यामि]

तथा चायं यज्ञः प्रतिमन्त्रेण सम्यमुनुष्ठितः सर्वप्राणिभ्यः प्रतिवस्तुषु पराक्रमबलप्राप्तये भवतीति ॥ १ । ३० ॥

और—यह यज्ञ प्रत्येक मन्त्र से विधिपूर्वक किया हुआ सब प्राणियों के लिये प्रत्येक वस्तु में पराक्रम और बल देने वाला होता है ॥ १ । ३० ॥

भा० पदार्थः—धाम्ने धाम्ने=प्रतिवस्तुषु । यजुषे यजुषे=प्रतिमन्त्रेण । ऊर्जे=बल-पराक्रम प्राप्तये । देवेभ्यः=सर्वप्राणिभ्यः ॥

भाष्यसार—१. **ईश्वर**—पृथिवी पर रसयुक्त पदार्थों को उत्पन्न करने वाला, सर्व-व्यापक, ज्ञानस्वरूप, अग्नि आदि पदार्थों के तत्त्व को जानने वाला, विद्वानों वा दिव्यगुणों की प्राप्ति कराने वाला है, प्रत्येक धाम और प्रत्येक यजुर्वेद के मन्त्र को उत्तम रीति से देने वाला है ॥

२. **ईश्वर दर्शन**—उक्त गुणों वाले ईश्वर को सुखदायक, प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से युक्त, विज्ञान के नेत्र से देखें । ईश्वर दर्शन से ही सब प्रकार का बल, दिव्यगुण, विद्वत्संग, प्रत्येक धाम तथा प्रत्येक यजुर्मन्त्र की उपलब्धि होती है ॥

३. **यज्ञ**—यज्ञ एक ऐसी क्रिया है जो पृथिवी और आकाश के पदार्थों को रस से युक्त कर देती है । यज्ञ से उत्थित वाष्प पृथिवी और अन्तरिक्ष को वेष्टित कर लेता है । इसीलिये इसको पृथिवी और अन्तरिक्ष की त्वचा कहा गया है । यह यज्ञ भौतिक अग्नि की जिह्वा है । यज्ञ से ही अग्नि जिह्वा के समान पदार्थों को ग्रहण करती है और हव्य-द्रव्यों के गुणों को वितरित करती है । यज्ञ से विद्वानों की पूजा, उनका संग तथा उनको दान आदि का सब व्यवहार सिद्ध होता है । यज्ञ से ही दिव्य गुणों की प्राप्ति होती है । यज्ञ प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक सुख का देने वाला वाला है । प्रत्येक यजुर्वेद के मन्त्र का ज्ञान भी यज्ञ से ही होता है । इसलिये अन्न, रस और बल की प्राप्ति के लिये परम सुखदायक विज्ञान के नेत्र से इस यज्ञ विद्या को समझें ॥

परमेष्ठी प्रजापतिः। **यज्ञो**=देवता सर्वस्य। पूर्वार्द्धे जगती छन्दः। निषादः स्वरः। तेजोऽसीत्यस्याऽनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

सः यज्ञः कथं पवित्रीकरोतीत्युपदिश्यते॥

उक्त यज्ञ कैसे पवित्र करता है, यह उपदेश किया है॥

सवितुस्त्वा प्रसवऽउत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्य्यस्य रश्मिभिः।
सवितुर्वः प्रसवऽउत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्य्यस्य रश्मिभिः।
तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि धाम नामासि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि॥ ३१॥

पदार्थः—(सवितुः) परमेश्वरस्य सूर्य्यलोकस्य वा (त्वा) त्वां जगदीश्वरं तं यज्ञं वा (प्रसवे) प्रकृष्टतयोत्पद्यन्ते सर्वे पदार्था यस्मिँस्तस्मिन्संसारे (उत्) उत्कृष्टार्थे। उदित्येतयोः प्रातिलोम्यं प्राह॥ निरु० १। ३॥ (पुनामि) पवित्रो करोमि (अच्छिद्रेण) न विद्यते छिद्रं=छेदनं यस्मिन् तेन (पवित्रेण) शुद्धेन [सूर्यस्य] चराचरात्मनः परमेश्वरस्य प्रकाशमयस्य सूर्य्यलोकस्य वा। सरति=जानाति प्रकाशयति चराचरं जगदिति। राजसूयसूर्य्य०॥ अ० ३। १। ११४॥ अनेन निपातितः (रश्मिभिः) प्रकाशकैर्गुणैः किरणैर्वा (सवितुः) उक्तार्थस्य (वः) युष्मानेतांश्च (प्रसवे) उक्तार्थे (अच्छिद्रेण) निरंतरेण (पवित्रेण) शुद्धिकारकेण (सूर्य्यस्य) यः सुवत्यैश्वर्य्यं ददाति। ऐश्वर्य्यहेतून् प्रेरयति सः परमेश्वरः प्राणो वा तस्य (रश्मिभिः) अन्तःप्रकाशकैर्गुणैः (तेजः) स्वप्रकाशः प्रकाशहेतुर्वा (असि) अस्ति वा। अत्र सर्वत्र पक्षे व्यत्ययः (शुक्रम्) शुद्धं शुद्धिहेतुर्वा (असि) अस्ति वा (अमृतम्) अमृतात्मकं मोक्षसुखं प्रकाशनं वा (असि) अस्ति वा (धाम) धीयन्ते सर्वे पदार्था यस्मिन् तत् (नाम) नमस्करणीयो जलहेतुर्वा। नाम इत्युदकनामसु पठितम्॥ निघं० १। १२॥ (असि) अस्ति वा (प्रियम्) प्रीतिकारकम् (देवानाम्) विदुषां दिव्यगुणानां वा (अनाधृष्टम्) यन्न समन्ताद्धृष्यत इत्यनाधृष्टम् (देवयजनम्) देवैर्यदिज्यते येन वा देवानां यजनं=देवयजनं तत् (असि) अस्ति वा॥ अयं मंत्रः श० १। ३। १। २२—२८॥ १। ३। २। १—१८ व्याख्यातः॥ ३१॥

प्रमाणार्थ—(उत्) निरुक्त (१। ३) के अनुसार 'उद्' यह उपसर्ग 'नि' और 'अव' दोनों के विपरीत अर्थ को कहता है। (सूर्य्यस्य) 'सूर्य्य' शब्द 'राजसूय सूर्य्य०' (अ० ३। १। ११४) में निपातित है। (असि) अस्ति। इस मन्त्र में सर्वत्र 'असि' पद पर पक्ष में पुरुष-व्यत्यय है। (नाम) 'नाम' शब्द निघं० (१। १२) में जलनामों में पढ़ा है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१। ३। १। २२—२८॥ १। ३। २। १—१८) में की गई है॥ १। ३१॥

सपदार्थान्वयः—**यो यज्ञोऽच्छिद्रेण** न विद्यते छिद्रं=छेदनं यस्मिँस्तेन **पवित्रेण** शुद्धेन **सूर्यस्य** चराचरात्मनः परमेश्वरस्य प्रकाशमयस्य सूर्य्यलोकस्य वा **रश्मिभिः** प्रकाशकैर्गुणैः किरणैर्वा **सह सर्वान् पदार्थान् पुनाति, तमहमुत्पुनामि** उत्कृष्टतया पवित्रीकरोमि [**त्वा**]=**त्वां यजमानं वा**।

एवं च सवितुः परमेश्वरस्य **प्रसवे** प्रकृष्टतयोत्पद्यन्ते सर्वे पदार्था यस्मिँस्तस्मिन्संसारे **अच्छिद्रेण**

भाषार्थ—जो यज्ञ (**अछिद्रेण**) निरन्तर (**पवित्रेण**) शुद्ध गुण से (**सूर्यस्य**) चराचर के आत्मा परमेश्वर वा प्रकाशमय सूर्यलोक की (**रश्मिभिः**) प्रकाश गुणों वा किरणों के संग से सब पदार्थों को पवित्र करता है, उस यज्ञ को मैं (**उत्पुनामि**) उत्कृष्ट रीति से पवित्र करता हूँ [**त्वा**] और तुझ यजमान को भी।

और—इस प्रकार (**सवितुः**) परमेश्वर के (**प्रसवे**) उत्तम रीति से सब पदार्थों के उत्पत्तिस्थान

निरन्तरेण **पवित्रेण** शुद्धि-कारकेण **सूर्यस्य** यः सुवत्यैश्वर्य्यं ददाति तस्य, ऐश्वर्यहेतून प्रेरयति सः परमेश्वरः प्राणोवातस्य **रश्मिभिः** अन्तः प्रकाशकैर्गु **वः**=**युष्मानेतांश्च पदार्थान् यज्ञेनोत्पुनामि** उत्कृष्ट-तया पवित्रीकरोमि ।

हे ब्रह्मन् ! यतस्त्वं तेजः स्वप्रकाशः **असि, शुक्रं** शुद्धम् **असि, अमृतम्** अमृताऽऽत्मकं मोक्षसुखम् **असि, धाम** धीयन्ते सर्वे पदार्था यस्मिँस्तद् **असि, नाम** नमस्करणीयो **असि, देवानां** विदुषां **प्रियं** प्रीतिकारकम् **असि, अनाधृष्टं** यन्न समन्ताद् धृष्यते इत्यनाधृष्टम् **असि, देवयजनं** देवैर्यदिज्यते तद् **असि, तस्मात्** [त्वा]=**त्वां** त्वां जगदीश्वरम् **एवाऽहमाश्रयामि । इत्येकः** ।।

संसार में (**अच्छिद्रेण**) निरन्तर (**पवित्रेण**) शुद्धि-कारक यज्ञ के गुण से (**सूर्यस्य**) ऐश्वर्य के दाता ऐश्वर्य के कारणों के प्रेरक परमेश्वर वा प्राणों का (**रश्मिभिः**) अन्तर्मातमा को प्रकाशित करने वाले गुणों से (**वः**) तुम्हें और इन पदार्थों को यज्ञ से (**उत्पुनामि**) उत्कृष्ट रीति से पवित्र करता हूँ ।

हे ब्रह्मन् ! क्योंकि आप (**तेजः**) स्वप्रकाश-स्वरूप (**असि**) हो, (**शुक्रम्**) शुद्ध हो, (**अमृतम्**) अमृत आत्मक मोक्ष सुख वाले (**असि**) हो, (**धाम**) सब पदार्थों के आधार (**असि**) हो, (**नाम**) नमस्कार के योग्य (**असि**) हो, (**देवानाम्**) विद्वानों के (**प्रियम्**) प्रिय (**असि**) हो, (**अनाधृष्टम्**) निर्भय (**असि**) हो, (**देव यजनम्**) देवों के पूज्य (**असि**) हो, इसलिये [**त्वा**] आप (**जगदीश्वर**) की ही मैं शरण ग्रहण करता हूँ ।। यह मन्त्र का पहला अन्वय है ।।

द्वितीयमन्वयमाह—यतोऽयं **यज्ञस्तेजः** प्रकाशहेतुः [**असि**]=**अस्ति, शुक्रं** शुद्धिहेतुः [**असि**]=**अस्ति, अमृतम्** अमृतात्मकं प्रकाशनम् [**असि**]=**अस्ति, धाम** धीयन्ते सर्वे पदार्था यस्मिँस्तद् [**असि**]=**अस्ति, नाम** जलहेतुः [**असि**]=**अस्ति, देवानां** दिव्यगुणानां **प्रियं** प्रीतिकारकम् **अनाधृष्टं** यन्न समन्ताद् धृष्यते इत्यनाधृष्टं **देवयजनं** येन देवानां यजनं देवयजनं तद् [**असि**]=**अस्ति, तेनाऽनेन यज्ञेनाऽहं सवितुः**=**जगदीश्वरस्य** परमेश्वरस्य **प्रसवे** प्रकृष्टतयोत्पद्यन्ते सर्वे पदार्था यस्मिँस्तस्मिन् संसारे **अच्छिद्रेण** निरन्तरेण **पवित्रेण** शुद्धिकारकेण **सूर्य्यस्य** यः सुवत्यैश्वर्यं ददाति, ऐश्वर्य्यहेतून् प्रेरयति स परमेश्वरः प्राणो वा तस्य **रश्मिभिः** अन्तःप्रकाशकैर्गुणैः **वः**= **युष्मानेतान् सर्वान्** पदार्थांश्चोत्पुनामि उत्कृष्टतया पवित्रीकरोमि । **इति द्वितीयः** ।। १ । ३१ ।।

दूसरा अन्वय—क्योंकि—यह यज्ञ (**तेजः**) प्रकाश का हेतु [**असि**] है, (**शुक्रम्**) शुद्धि का निमित्त [**असि**] है, (**अमृतम्**) सुख-दायक प्रकाश करने वाला [**असि**] है, (**धाम**) सब हव्य पदार्थों का आधार [**असि**] है, (**नाम**) जल का हेतु [**असि**] है, (**देवानाम्**) दिव्यगुणों से (**प्रियम्**) प्रीति कराने वाला, (**अनाधृष्टम्**) दुर्गन्ध आदि दोषों से न दबने वाला, (**देवयजनम्**) विद्वानों वा दिव्यगुणों का सङ्गम [**असि**] है, इसलिये इस यज्ञ से मैं (**सवितुः**) जगत् के स्वामी—परमेश्वर के (**प्रसवे**) सब पदार्थों के उत्पत्ति स्थान संसार में (**अच्छिद्रेण**) निरन्तर (**पवित्रेण**) शुद्धिकारक गुण से (**सूर्यस्य**) ऐश्वर्य के दाता, ऐश्वर्य के कारणों के प्रेरक परमेश्वर वा प्राण की (**रश्मिभिः**) अन्तरात्मा को प्रकाशित करने वाले गुणों से (**वः**) तुम्हें और इन सब पदार्थों को (**उत्पुनामि**) उत्तम रीति से पवित्र करता हूँ ।। मन्त्र का दूसरा अन्वय है ।। १ । ३१ ।।

[**यज्ञोऽच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः सह सर्वान् पदार्थान् पुनाति**]

भावार्थः—अत्र श्लेषालङ्कारः ।। ईश्वरो यज्ञविद्याफलं ज्ञापयति—युष्माभिर्यथावदनुष्ठितो

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष अलङ्कार है ।। ईश्वर यज्ञ विद्या के फल को उपदेश करता है

यज्ञः सूर्यस्य रश्मिभिर्विहरति, स स्वकीयेन पवित्रेणाच्छिद्रेण गुणेन सर्वान् पदार्थान् पवित्रयति।

स च तद्द्वारा सूर्यस्य रश्मिभिस्तेजस्विनः शुद्धानमृतरसान् सुखहेतुकान् प्रसन्नता जनकान् दृढान् यज्ञहेतून् पदार्थान् करोति, यतस्तद्भोजनाच्छादन द्वारा वयं शरीर पुष्टि बुद्धिबलाहीन् शुद्धगुणांश्च संपाद्य नित्यं सुखयाम इति ॥१।३१॥

कि तुम लोगों से विधिपूर्वक किया हुआ यज्ञ सूर्य की किरणों से विहार करता है वह अपने सतत पवित्रता गुण से सब पदार्थों को पवित्र करता है।

और—वह उक्त पवित्र गुण से सूर्य की किरणों के द्वारा सब पदार्थों को तेजस्वी, शुद्ध, अमृत रस से युक्त, सुखकारक, प्रसन्नता उत्पादक, दृढ़, एवं यज्ञ के योग्य बनाता है, जिससे उनके भोजन-आच्छादन से हम लोग शरीरपुष्टि, बुद्धिबल आदि और शुद्ध गुणों को सिद्ध करके नित्य सुखी रहें ॥१।३१॥

[संक्षेपेण प्रथमाध्याये प्रदत्तामीश्वराज्ञामाह]

ईश्वरेणास्मिन्नध्याये मनुष्यान् प्रति—शुद्धकर्मानुष्ठातुं, दोषान् शत्रूंश्च निवारयितुं यज्ञक्रिया फलं ज्ञातुं, सम्यक् पुरुषार्थं कर्तुं, विद्या विस्तारयितुं, धर्मेण प्रजाः पालयितुं, धर्मानुष्ठाने निर्भयतया स्थातुं, सर्वैः सह मित्रतामाचरितुं, वेदाध्ययनाध्यापनाभ्यां सर्वा विद्या ग्रहीतुं ग्राहयितुं, शुद्धये परोपकाराय च प्रयतितुमाज्ञा दत्तास्ति; सेयं सर्वैर्मनुष्यैर्यथावदनुष्ठा तव्येति ॥

ईश्वर ने इस अध्याय में मनुष्यों को शुद्ध कर्मों के आचरण (१), दोष और शत्रुओं के निवारण (२८), यज्ञ क्रिया का फल जानने (१०), उत्तम रीति से पुरुषार्थ करने (६), विद्या का विस्तार करने (८), धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करने (७), धर्माचरण में निर्भय होकर रहने (२३), सब के साथ मित्रता करने (८), वेद के पठन-पाठन से सब विद्याओं को ग्रहण करने-कराने (२७), शुद्धि और परोपकार के लिए प्रयत्न करने (३१), की आज्ञा दी है। सब मनुष्य इस आज्ञा का यथावत पालन करें।

भाष्यसार—१. **ईश्वर**—चराचर का आत्मा होने से ईश्वर का नाम सूर्य है। उसके प्रकाशक—गुण ही किरणें हैं। ऐश्वर्य के कारणों का प्रेरक होने से भी ईश्वर का नाम सूर्य है ॥

२. **यज्ञ**—चराचर के आत्मा ईश्वर की स्तुति रूप किरणों से यज्ञ सबको पवित्र करता है तथा प्रकाशमय सूर्यलोक की किरणों से यज्ञ सब पदार्थों को पवित्र कर देता है। यज्ञ प्रकाश और शुद्धि का हेतु है। मोक्ष का प्रकाशक है। सब सुखों और पदार्थों का धाम है। जल का हेतु है। विद्वानों और दिव्य गुणों में स्नेह उत्पन्न करने वाला है। इसके गुणों को कोई दबा नहीं सकता और यज्ञ करने वाले व्यक्ति में इतना आत्मबल उत्पन्न हो जाता है कि वह किसी दुष्ट से दब नहीं सकता। यज्ञ देवों और दिव्यगुणों का सङ्गम है।

३. **सूर्य का अर्थ**—ईश्वर। प्राण। ऐश्वर्य का हेतु सूर्यलोक।

४. **ईश्वर प्रार्थना**—हे ईश्वर! आप स्वप्रकाशस्वरूप, शुद्ध, मोक्ष, सुखदायक, सर्वाधार, नमस्करणीय, विद्वानों के प्रिय, निर्भय, और देवों के पूज्य हो। इसलिये मैं आप की ही शरण हूँ। आप को छोड़ कर कहाँ जाऊँ ॥

इति श्री पण्डित सुदर्शनदेवाचार्यकृते दयानन्द यजुर्वेदभाष्य भास्करे प्रथमोऽध्यायः सम्पूर्णः ॥१॥

द्वितीय अध्याय

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ आसु॑व॥ १॥

य० ३०। ३॥

परमेष्ठी प्रजापतिः। **यज्ञः=स्पष्टम्**। निचृत्पंक्तिः। पञ्चमः॥
ईश्वरेणैतत् सर्वमाद्येऽध्याये विधायेदानीं द्वितीयेऽध्याये प्राणिनां सुखायोक्तार्थस्य सिद्धिं कर्त्तुं विशिष्टा विद्याः प्रकाश्यन्ते॥ तत्रादौ वेद्यादिरचनमुपदिश्यते॥

ईश्वर ने यह सब प्रथम अध्याय में विधान करके अब द्वितीय अध्याय में प्राणियों के सुख के लिए उक्तार्थ की सिद्धि करने के लिए विशिष्ट विद्याओं का प्रकाश किया है। उनमें से आदि में वेदि आदि की रचना का उपदेश किया जाता है॥

कृष्णो॑ऽस्याखरे॒ष्ठो॒ऽग्नये॑ त्वा॒ जुष्टं॒ प्रोक्षा॑मि॒ वेदि॑रसि ब॒र्हिषे॑ त्वा॒ जुष्टां॒ प्रोक्षा॑मि ब॒र्हिर॑सि स्रु॒ग्भ्यस्त्वा॒ जुष्टं॒ प्रोक्षा॑मि॥ १॥

पदार्थः—(**कृष्णः**) अग्निना छिन्नो वायुनाऽऽकर्षितो यज्ञः (**असि**) भवति। **अत्र सर्वत्र व्यत्ययः** (**आखरेष्ठः**) समन्तात्खनति यं तस्मिन् तिष्ठतीति सः। **खनोडडरेकेकवकाः॥ अ० ३। ३। १२५॥ अनेन वार्तिकेनाऽऽखरः सिध्यति** (**अग्नये**) हवनार्थाय (**त्वा**) तद्धविः (**जुष्टम्**) प्रीत्या संशोधितम् (**प्रोक्षामि**) शोधितेन घृतादिनाऽऽर्द्रीकरोमि (**वेदिः**) विन्दति सुखान्यनया सा (**असि**) भवति (**बर्हिषे**) अन्तरिक्षगमनाय। **बर्हिरित्यन्तरिक्षनामसु पठितम्॥ निघं० १। ३॥** (**त्वा**) तां वेदिम् (**जुष्टाम्**) प्रीत्या संपादिताम् (**प्रोक्षामि**) प्रकृष्टतया घृतादिना सिंचामि (**बर्हिः**) शुद्धमुदकम्। **बर्हिरित्युदकनामसु पठितम्॥ निघं० १। १२॥** (**असि**) भवति (**स्रुग्भ्यः**) स्रावयन्ति=गमयन्ति हविर्येभ्यस्तेभ्यः। **अत्र स्रु गतावित्यस्मात्। चिक् च॥ उ० २। ६१॥ अनेन चिक् प्रत्ययः** (**त्वा**) तत् (**जुष्टम्**) पुष्टयादिगुणयुक्तं प्रीतिकरं जलं पवनं वा (**प्रोक्षामि**) शोधयामि॥ **अयं मंत्रः श० १। ३। ३। १—३ व्याख्यातः॥ १॥**

प्रमाणार्थ—(**असि**) भवति। यहाँ सब जगह व्यत्यय है। (**आखरेष्ठः**) 'खनो ड-डर-इक-इकवकाः' (**अ० ३। ३। १२५**) इस वार्त्तिक से 'आखरः' शब्द सिद्ध होता है। (**बर्हिषे**) बर्हिः शब्द निघं० १। ३ में अन्तरिक्ष नामों में पढ़ा गया है। (**बर्हिः**) बर्हिः शब्द निघं० १। १२ में उदक (**जल**) नामों में पढ़ा गया है। (**स्रुग्भ्यः**) यहां 'स्रु गतौ' धातु से 'चिक् च' उ० २। ६१ इस उणादि सूत्र से चिक् प्रत्यय होता है॥ २। १॥

सपदार्थान्वयः—**यतोऽयं यज्ञ आख-**

भाषार्थ—जिससे यह यज्ञ (**आखरेष्ठः**)

रेष्ठः समन्तात् खनति यं तस्मिन् तिष्ठतीति सः **कृष्णः** अग्निना छिन्नो वायुनाऽऽकर्षितो यज्ञः [**असि**]=**भवति, तस्मात् त्वा**=**तं** तद्धतिः **अह-मग्नये** हवनाऽर्थाय **जुष्टं** प्रीत्या संशोधितं **प्रोक्षामि** शोधितेन घृतादिनाऽऽद्रर्कीरोमि ।

सब ओर से खुदे हुए वेदि-स्थान में स्थित होकर (**कृष्णः**) अग्नि से सूक्ष्म-रूप तथा वायु से आकर्षित [**असि**] है, इसलिए (**त्वा**) उस होम-सामग्री को मैं (**अग्नये**) हवन करने के लिए (**जुष्टम्**) प्रीति-पूर्वक (**प्रोक्षामि**) शुद्ध घृतादि से सींचता हूँ ।

यत इयं वेदिः विन्दति सुखान्यनया सा **अन्त-रिक्षस्था असि**=**भवति, तस्मादहं त्वा**=**तामि—मां** तां वेदिं **बर्हिषे** अन्तरिक्षगमनाय **जुष्टां** प्रीत्या सम्पादितां **प्रोक्षामि** प्रकृष्टतया घृताऽऽदिना सिञ्चामि ।

जिस कारण से यह (**वेदिः**) सब सुखों को देने वाली वेदि अन्तरिक्ष में स्थित (**असि**) है, इसलिए मैं (**त्वा**) उस वेदिस्थ हवि को (**बर्हिषे**) अन्तरिक्ष में पहुँचाने के लिए (**जुष्टाम्**) प्रीति से बनाई वेदि को (**प्रोक्षामि**) अच्छे प्रकार घृतादि से सींचता हूँ ।

यत इदं बर्हिः=**उदकं** शुद्धमुदकम् **अन्तरिक्षस्थं** **सच्छुद्धिकारि** [**असि**]=**भवति, तस्मात् त्वा**=**तत्** शोधितं **जुष्टं**=हविः पुष्ट्यादिगुणयुक्तं प्रीतिकरं जलं पवनं वा **स्रुग्भ्यः** स्रावयन्ति=गमयन्ति हवि-र्येभ्यस्तेभ्यः **अहं प्रोक्षामि** शोधयामि ॥ २ । १ ॥

जिससे यह (**बर्हिः**) शुद्ध जल अन्तरिक्ष में स्थित होकर शुद्धि करने वाला होता है, इसलिए (**त्वा**) उस शुद्ध किए हुए (**जुष्टम्**) हवि को अथवा पुष्टि आदि गुणों से युक्त, प्रीतिकारक जल वा पवन को (**स्रुग्भ्यः**) हवि देने के साधन स्रुवाओं से मैं (**प्रोक्षामि**) शुद्ध करता हूँ ॥ २ । १ ॥

[**इयं वेदः······यत इदं बर्हिः**=**उदकमन्तरिक्षस्थं सच्छुद्धिकारि [असि] भवति, तस्मात् त्वा**=**तच्छोधितं जुष्टं हविः स्रुग्भ्योऽहं प्रोक्षामि**]

भावार्थः—ईश्वर उपदिशति—सर्वैर्मनुष्यै-र्वेदिं रचयित्वा, पात्रादि-सामग्रीं गृहीत्वा, सम्यक् शोधित्वा[1] तद्धविरग्नौ हुत्वा, कृतो यज्ञः शुद्धेन वृष्टिजलेन सर्वाओषधीः पोषयति ।

भावार्थ—ईश्वर उपदेश करता है कि सब मनुष्यों से, वेदि रच कर, पात्र आदि सामग्री को ग्रहण करके, अच्छी प्रकार शुद्ध की हुई उस हवि को अग्नि में होम करके किया हुआ यज्ञ, शुद्ध वर्षा जल से सब औषधियों को पुष्ट करता है।

[**कर्त्तव्यमाह**—]

तेन सर्वे प्राणिनः सुखयितव्या इति ॥ २ । १ ॥

उस यज्ञ से सब प्राणियों को सुखी करो ॥ २ । १ ॥

भाष्यसार—१. **यज्ञ**—यह यज्ञ सब ओर से खोदे हुए हवन-कुण्ड में स्थित रहता है। यज्ञ में होम किए हुए पदार्थ अग्नि से सूक्ष्म रूप हो जाते हैं जिन्हें वायु आकृष्ट कर लेता है । वेदि अर्थात् वेदि में स्थित यज्ञ अन्तरिक्ष में स्थित हो जाता है। जिससे अन्तरिक्ष में स्थित जल एवं पवन शुद्ध होते हैं ।

२. **वेदि आदि की रचना**—इस उक्त यज्ञ के लिए वेदि बनावें तथा स्रुवा आदि अन्य यज्ञपात्रों की भी रचना करें ।

---

१. शोधित्वा ।

परमेष्ठी प्रजापतिः । **यज्ञः**=स्पष्टम् ॥ स्वराड्जगती । निषादः ॥

एवं कृतो यज्ञः किंहेतुको भवतीत्युपदिश्यते ॥

इस प्रकार किया हुआ यज्ञ क्या सिद्ध करने वाला होता है, यह उपदेश किया है ॥

अदित्यै व्युन्दनमसि विष्णोः स्तुपोऽस्यूर्णम्रदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्थां देवेभ्यो भुवपतये स्वाहा भुवनपतये स्वाहा भूतानां पतये स्वाहा ॥ २ ॥

पदार्थः—(**अदित्यै**) पृथिव्याः । अत्र चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि ॥ अ० २ । ३ । ६२ ॥ इति षष्ठ्यर्थे चतुर्थी (**व्युन्दनम्**) विविधानामोषध्यादीनामुन्दनं=क्लेदनं येन तत् (**असि**) भवति । अत्र सर्वत्र व्यत्ययः (**विष्णोः**) यज्ञस्य (**स्तुपः**) शिखा । यज्ञो वै विष्णुस्तस्यैषमेव शिखा स्तुपः ॥ श० १ । ३ । ३ । ५ ॥ (**असि**) अस्ति (**ऊर्णाम्रदसम्**) ऊर्णानि=धान्याच्छादनानि तुषाणि म्रदयति येन तं पाषाणमयम् (**त्वा**) तम् (**स्तृणामि**) आच्छादयामि (**स्वासस्थाम्**) सुष्ठु आसाः=प्रक्षिप्तास्तिष्ठन्ति यस्यां सा वेदिस्ताम् । अत्र 'घञर्थे कविधानम्' ॥ अ० ३ । ३ । ५८ ॥ इति वार्त्तिकेन कः प्रत्ययः (**देवेभ्यः**) विद्वद्भ्यो दिव्यसुखेभ्यो वा (**भुवपतये**) भवन्त्युत्पद्यन्ते भूतानि यस्मिन् संसारे तस्य पतिस्तस्मै जगदीश्वराय । आहवनीयाख्याग्नये वा । अत्र बाहुलकाद् भूधातोरौणादिकः कः प्रत्ययः (**स्वाहा**) सत्यभाषणयुक्ता वाक् । स्वाहेति वाङ्नामसु पठितम् ॥ निघं० १ । ११ ॥ स्वाहाशब्दस्यार्थं निरुक्तकार एवं समाचष्टे—स्वाहाकृतयः स्वाहेत्येतत्सु आहेति वा स्वा वागाहेति वा स्वं प्राहेति वा स्वाहुतं हविर्जुहोतीति वा ॥ निरु० ८ । २० ॥ यत् शोभनं वचनं सत्यकथनं स्वपदार्थान् प्रति ममत्ववचो मंत्रोच्चारणेन हवनं चेति स्वाहाशब्दार्था विज्ञेयाः (**भुवनपतये**) भुवनानां=सर्वेषां लोकानां पतिः=पालक ईश्वरः, पालनहेतुर्भौतिको वा तस्मै (**स्वाहा**) उक्तार्थः (**भूतानां पतये**) भूतान्युत्पन्नानि यावन्ति वस्तूनि सन्ति तेषां यः पतिः=स्वामीश्वर ऐश्वर्य्यहेतुर्भौतिको वा तस्मै (**स्वाहा**) उक्तार्थः । अयं मंत्रः श० १ । ३ । ४—१७ व्याख्यातः ॥ २ ॥

प्रमाणार्थ—(**अदित्यै**) पृथिव्याः । यहाँ 'चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि'[1] अष्टा० (२ । ३ । ६२) से षष्ठी-अर्थ में चतुर्थी विभक्ति है । (**असि**) भवति । यहां सर्वत्र व्यत्यय है । (**विष्णोः**) शतः (१ । ३ । ३ । ५) के अनुसार "विष्णु का अर्थ यज्ञ है, उस यज्ञ की जो शिखा है वह स्तुप है" । (**स्वासस्थाम्**) यहां 'घञर्थे कविधानम्' अष्टा० (३ । ३ । ५८) के वार्तिक से 'क' प्रत्यय है । (**भुवपतये**) यहां बहुल कर के 'भू' धातु से औणादिक 'क' प्रत्यय है । (**स्वाहा**) 'स्वाहा' शब्द निघं० (१ । ११) में वाणी-नामों में पढ़ा है । निरु० (८ । २०) के अनुसार 'स्वाहा' शब्द का अर्थ इस प्रकार है । 'स्वाहाकृति' का अर्थ स्वाहा करना मन्त्रों के अन्त में 'स्वाहा' बोलना । स्वाहा—बहुत उत्तम कहना—अर्थात् मधुर वा प्रिय वचन कल्याणकारी वचन । अपने हृदय की वाणी को कहना 'स्वाहा' है । अपनी ही वस्तु को कहना (**ग्रहण करना**) 'स्वाहा' है । अच्छी प्रकार देखभाल कर सब सामग्री को स्वच्छ करके विधिपूर्वक श्रद्धा से यज्ञ करना 'स्वाहा' है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१ । ३ । ३ । ४—१७) में की गई है ॥ २ । २ ॥

---

१. उक्त सूत्र के अनुसार चतुर्थी-विभक्ति के अर्थ में बहुल करके षष्ठी विभक्ति होती है किन्तु यहाँ षष्ठी के अर्थ में चतुर्थी है । इसी सूत्र पर वार्त्तिका है—"षष्ठ्यर्थे चतुर्थी वक्तव्या" इस वार्तिक के अनुसार षष्ठी विभक्ति के अर्थ में चतुर्थी विभक्ति होती है । वास्तव में वह वार्तिक सूत्र में आए बहुलपद की व्याख्या है ।

सपदार्थान्वयः—यतोऽयं **विष्णुः**=यज्ञः [**अदित्यै**]=**अदित्याः** पृथिव्याः [**व्युन्दनम्**]=**व्युन्दनकारी** विविधानामोषध्यादीनामुन्दनं=क्लेदनं येन तद् **असि**=**भवति**, **तस्मात्तमहमनु**—**तिष्ठामि**। **अस्य विष्णोः**=**यज्ञस्य स्तुपः**=**प्रस्तर** उलूखलाऽऽख्यः साधकः शिखा **असि**=**अस्ति**, **तस्मात्तमहमूर्णम्रदसम्** ऊर्णानि=धान्याच्छादनानि तुषाणि म्रदयति येन तं पाषाणमयं [**त्वा**] तं **स्तृणामि** आच्छादयामि।

भाषार्थ—जिससे यह विष्णु अर्थात् यज्ञ [**अदित्यै**] पृथिवी के (**व्युन्दनम्**) विविध औषधि आदि पदार्थों का सींचने वाला (**असि**) है, इसलिए मैं उसका अनुष्ठान करता हूँ। इस (**विष्णोः**) यज्ञ के (**स्तुपः**) शिखा रूप ऊखल नामक पत्थर जो सिद्ध करने वाला है, इसलिए में (**ऊर्णम्रदसम्**) धान्य के छिलकों को दूर वाले पाषाणमय [**त्वा**] उस ऊखल को (**स्तृणामि**) ढकता हूँ।

वेदिर्देवेभ्यः विद्वद्भ्यो दिव्यसुखेभ्यो वा **हिताऽसि**=**भवति**, **तस्मात्तामहं स्वासस्थां** सुष्ठु आसाः=प्रक्षिप्तास्तिष्ठन्ति यस्यां सा वेदिस्तां **रचयामि**, **कस्मै प्रयोजनाय** ? इत्यत्राऽऽह—

वेदि (**देवेभ्यः**) विद्वानों तथा दिव्य सुखों की प्राप्ति के लिए हितकारी (**असि**) है, इसलिए **मैं** (**स्वासस्थाम्**) होम किए हुए पदार्थों को अच्छी प्रकार अपने में स्थित करने वाली वेदि को बनाता हूँ। किस प्रयोजन के लिए ? यहाँ ईश्वर उपदेश करता है—

यतोऽयं भुवपतिर्भुवनपतिर्भूतानां **पतिरीश्वरः प्रसन्नो भवति**, **भौतिको वा सुखसाधको भवति**, **तस्मै भुवपतये** भवन्त्युत्पद्यन्ते भूतानि यस्मिन् संसारे तस्य पतिस्तस्मै जगदीश्वराय, आहवनीयाख्याऽग्नये वा **स्वाहा** सत्यभाषणयुक्ता वाग् **विधेया**, **भुवनपतये** भुवनानां=सर्वेषां लोकानां पतिः पालक ईश्वरः, पालनहेतुर्भौतिको वा तस्मै **स्वाहा** सत्यभाषणयुक्ता वाग् **वाच्या**, **भूतानां च पतये** भूतान्युत्पन्नानि यावन्ति वस्तूनि सन्ति तेषां यः पतिः स्वामीश्वर ऐश्वर्यहेतुर्भौतिको वा तस्मै **स्वाहा** सत्यभाषणयुक्ता वाक् **प्रयोज्या भवतीत्यस्मै प्रयोजनाय** ॥ २। २॥

जिससे यह संसार, लोकलोकान्तर, एवं भूतों का पति ईश्वर प्रसन्न होता है, अथवा भौतिक अग्नि सुखों को सिद्ध करने वाला होता है इसलिए उस (**भुवपतये**) भूतों के उत्पत्ति स्थान संसार के पति जगदीश्वर की प्राप्ति के लिए अथवा आहवनीय नामक अग्नि के लिए (**स्वाहा**) सत्य-भाषण युक्त वाणी का प्रयोग करें। (**भुवनपतये**) सब लोकों के पालक ईश्वर अथवा पालन के निमित्त भौतिक अग्नि की सिद्धि के लिए (**स्वाहा**) सत्य भाषण युक्त वाणी बोलें (**भूतानां च पतये**) उत्पन्न मात्र सब वस्तुओं के स्वामी ईश्वर अथवा ऐश्वर्य के हेतु भौतिक अग्नि की सिद्धि के लिए (**स्वाहा**) सत्यभाषण युक्त वाणी का प्रयोग करना होता है, इस प्रयोजन के लिए वेदि को रचता हूँ ॥ २। २॥

[**वेदिर्देवेभ्यो हिताऽसि=भवति, तस्मात्तामहं—रचयामि, यतोऽयं भुवपति—ईश्वरः प्रसन्नोभवति**]

भावार्थः—ईश्वरः सर्वमनुष्येभ्य इदमुपदिशति—युष्माभिर्वेद्यादीनि यज्ञसाधनानि संपाद्य सर्वप्राणिनां सुखाय, परमेश्वरप्रतिये च सम्यक् क्रियायज्ञः कार्यः।

भावार्थ—ईश्वर सब मनुष्यों को यह उपदेश करता है कि तुम वेदि आदि यज्ञ के साधनों को सिद्ध करके सब प्राणियों के सुख के लिए और परमेश्वर की प्रसन्नता के लिए अच्छी प्रकार क्रिया-यज्ञ का अनुष्ठान करो।

[स्वाहा]

सदैव सत्यमेव वाच्यम्। — सदा सत्य ही बोलो।

[भुवपतये, भुवनपतये, भूतानां च पतये स्वाहा प्रयोज्या]

यथाऽहं न्यायेन सर्वं विश्वं पालयामि तथैव युष्माभिरपि पक्षपातं विहाय सर्वेषां पालनेन सुखं संपादनीयमिति ॥ २ । २ ॥ — जैसे मैं न्याय से सब विश्व का पालन करता हूँ वैसे तुम लोग भी पक्षपात छोड़ कर सबकी रक्षा से सुख को सिद्ध करो ॥ २ । २ ॥

भा० पदार्थः—देवेभ्यः=सर्वप्राणिभ्यः। स्वाहा=सदैव सत्यभाषणम् ॥

भाष्यसार—१. **यज्ञ**—यह पृथिवी की विविध औषधियों का क्लेदन करता है। सर्वत्र व्याप्त होने से विष्णु है। उलूखल इसका साधक है। यहाँ उलूखल को यज्ञ की शिखा कहा गया है। जिसमें धान्यों के तुषों का मर्दन किया जाता है।

२. **यज्ञ वेदि**—यह विद्वानों और दिव्य सुखों की प्राप्ति के लिए होती है। होम किया हुआ पदार्थ इसमें अच्छी प्रकार स्थित होता है। इससे ईश्वर प्रसन्न होता है। इसमें स्थित भौतिक अग्नि सुखों को सिद्ध करने वाला होता है।

३. **ईश्वर**—संसार में उत्पन्न होने वाले भूतों का पति होने से ईश्वर का नाम 'भुवपति' है। भूतों का रक्षक होने से आहवनीय अग्नि को भी भुवपति कहते हैं। सब लोकों का रक्षक होने से ईश्वर का नाम 'भुवनपति' है। सब लोकों का पालन-हेतु होने से भौतिक अग्नि भी भुवनपति है। उत्पन्नमात्र वस्तुओं का स्वामी होने से ईश्वर को 'भूतानां पतिः' कहा है। ऐश्वर्य का हेतु होने से भौतिक अग्नि भी 'भूतानां पतिः' है। ईश्वर की प्राप्ति के लिए सत्यभाषण करें।

३

परमेष्ठी प्रजापतिः। **अग्निः**=**सूर्यः, विद्युत्, स्थूलाग्निः** ॥ आद्यस्य भुरिगार्च्चीत्रिष्टुप्। धैवतः। मध्यभागस्यभुरिगार्च्चीपंक्तिः। अत्यन्स्य पंक्तिः। उभयत्र पंचमः।

स यज्ञोऽग्न्यादिभिर्धार्य्यत इत्युपदिश्यते ॥

उस यज्ञ अग्नि आदि पदार्थों से धारण किया जाता है, यह उपदेश किया है ॥

गन्धर्वस्त्वा विश्वावसुः परिदधातु विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिडऽईडितः। इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणो विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिडऽईडितः। मित्रावरुणौ त्वोत्तरतः परिधत्तां ध्रुवेण धर्मणा विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ऽ ईडितः ॥ ३ ॥

पदार्थः—(**गन्धर्वः**) यो गां=पृथिवीं वाणीं वा धरति धारयति वा स गन्धर्वः सूर्य्यलोकः (**त्वा**) तम् (**विश्वावसुः**) विश्वं वासयति यः सः (**परि**) सर्वतोभावे (**दधातु**) दधाति वा। **अत्र लडर्थे लोट्** (**विश्वस्य**) सर्वस्य जगतः (**अरिष्ट्यै**) दुःखनिवारणेन सुखाय (**यजमानस्य**) यज्ञानुष्ठातुः (**परिधिः**) परितः=सर्वतः सर्वाणि वस्तूनि धीयन्ते येन सः (**असि**) भवति। **अत्र चतुर्षु प्रयोगेषु पुरुषव्यत्ययः** (**अग्निः**) (**इडः**) स्तोतुमर्हः। **अत्र वर्णव्यत्ययेन ह्रस्वादेशः** (**ईडितः**) स्तुतः (**इन्द्रस्य**) सूर्य्यस्य (**बाहुः**) बलं बलकारी वा (**असि**) अस्ति (**दक्षिणः**) वृष्टेः प्रापकः। **दक्षधातोर्गत्यर्थत्वादत्र प्राप्त्यर्थो गृह्यते** (**विश्वस्य**) सर्वप्राणि-

समूहस्य (**अरिष्ट्यै**) सुखाय (**यजमानस्य**) शिल्पविद्यां चिकीर्षोः (**परिधिः**) विद्यापरिधानम् (**असि**) भवति (**अग्निः**) विद्युत् (**इडः**) दाहप्रकाशादिगुणाधिक्येन स्तोतुमर्ह, (**ईडितः**) अध्येशितः। [**मित्रावरुणौ**] (**त्वा**) तम् (**उत्तरतः**) उत्तरकाले (**परिधत्ताम्**) सर्वतो धारयतो वा। **अत्र लडर्थे लोट्** (**ध्रुवेण**) निश्चलेन (**धर्मणा**) स्वाभाविकधारणशक्तया (**विश्वस्य**) चराचरस्य (**अरिष्ट्यै**) सुखहेतवे (**यजमानस्य**) सर्वमित्रस्य (**परिधिः**) विद्यावधिः (**अग्निः**) प्रत्यक्षो भौतिकः (**इडः**) विद्याप्राप्तये स्तोतुमर्हः (**ईडितः**) विद्यामीप्सुभिः सम्यगध्येषितव्यः। **अयं मंत्रः श० १। ३। ४। १—५ व्याख्यातः॥ ३॥**

प्रमाणार्थ—(**दधातु**) दधाति वा। यहां लट् के अर्थ में लोट् लकार है। (**असि**) भवति। यहां चारों प्रयोगों में पुरुष व्यत्यय है। (**इडः**) यहाँ वर्ण व्यत्यय से ह्रस्व—आदेश है। (**दक्षिणः**) दक्ष धातु गत्यर्थक है इसलिए यहां प्राप्ति-अर्थ ग्रहण किया जाता है। (**परिधत्ताम्**) यहां लट् के अर्थ में लोट् लकार है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१। ३। ४। १—५) में की गई है॥ २। ३॥

सपदार्थान्वयः—विद्वद्भिर्योऽयं **गन्धर्वः** यो गां पृथिवीं वाणीं व धरति धारयति वा स गन्धर्वः सूर्यलोकः **विश्वावसुः** विश्वं वासयति यः स **इडः** स्तोतुमर्हः [**अग्निः**] **ईडितः** स्तुतः **असि**= **अस्ति, स विश्वस्य** सर्वस्य जगतो **यजमानस्य** यज्ञोऽनुष्ठातुः **चाऽरिष्ट्यै** दुःखनिवारणेन सुखाय **यज्ञं परि+दधाति, तस्मात्** [त्वा]=**तं विद्यासिद्धयर्थं मनुष्यो यथावत् परिदधातु** सर्वतो दधाति वा।

विदुषा यो वायुरिन्द्रस्य सूर्यस्य **बाहुः** बलं बलकारी वा **दक्षिणः** वृष्टेः प्रापकः **परिधिः** परितः= सर्वतः सर्वाणि वस्तूनि धीयन्ते येन स **इडः** दाहप्रकाशादिगुणाऽऽधिक्येन स्तोतुमर्हः **ईडितः** अध्येषितः **अग्निः** विद्युत् **चाऽसि=अस्ति** भवति, **स सम्यक् प्रयोजितो यजमानस्य** शिल्पविद्यां चिकीर्षोः **विश्वस्य** सर्वप्राणिसमूहस्य **अरिष्ट्यै** सुखाय **असि** भवति।

यौ ब्रह्माण्डस्थौ गमनागमनशीलौ मित्रावरुणौ= प्राणाऽपानौ स्तस्तौ ध्रुवेण निश्चलेन **धर्मणा** स्वाभाविकधाराशक्त्या **उत्तरतः** उत्तरकाले **विश्वस्य** चराचरस्य **यजमानस्य** सर्वमित्रस्य **अरिष्ट्यै** सुखहेतवे [त्वा]=तं **यज्ञं परिधत्ताम्=सर्वतो धारयतः**।

भाषार्थ—विद्वानों ने जो यह (**गन्धर्वः**) पृथिवी वा वाणी को धारण करने वाला सूर्यलोक है, और (**विश्वावसुः**) जो विश्व को बसाने वाला है तथा (**इडः**) स्तुति करने योग्य (**अग्निः**) जिस अग्नि की (**ईडितः**) प्रशंसा की (**असि**) है, वह (**विश्वस्य**) सम्पूर्ण जगत् और (**यजमानस्य**) यज्ञ करने वाले व्यक्ति के (**अरिष्ट्यै**) दुःख-निवारण से सुख प्रदान कर यज्ञ को धारण करता है इसलिए उस अग्नि को विद्या की सिद्धि के लिए मनुष्य यथावत् (**परिदधातु**) सब तरह से धारण करें।

विद्वान् के द्वारा जो वायु (**इन्द्रस्थ**) सूर्य का (**बाहुः**) बल बढ़ाने वाला, (**दक्षिणः**) वर्षा की प्राप्ति कराने वाला (**परिधिः**) सब ओर से सब वस्तुओं का धारक (**इडः**) और जो स्तुति करने योग्य (**ईडितः**) तथा प्रशंसा किया हुआ (**अग्नि**) विद्युत् (**असि**) है, वह वायु और विद्युत् अच्छी प्रकार प्रयोग में लाया हुआ (**यजमानस्य**) शिल्प-विद्या के अभिलाषी (**विश्वस्य**) तथा प्राणिमात्र के (**अरिष्ट्यै**) सुख के लिए (**असि**) होता है। और—

ब्रह्मांड में स्थित गमनागमन स्वभाव वाले जो (**मित्रावरुणौ**) प्राण और अपान हैं, वे (**ध्रुवेण**) निश्चल तथा (**धर्मणा**) अपनी स्वाभाविक धारण शक्ति से (**उत्तरतः**) उत्तर-काल में (**विश्वस्य**) चराचर जगत् तथा (**यजमानस्य**) सब के मित्र विद्वान् के लिए (**अरिष्ट्यै**) सुख-कारक [**त्वा**] उस यज्ञ को (**परिधत्ताम्**) सब ओर से धारण करते हैं।

यो विद्वद्भिः इडः विद्याप्राप्तये स्तोतुमर्हः **परिधिः** विद्याऽवधिः **ईडितः** विद्यामभीप्सुभिः सम्यगध्येषितव्यः **अग्निः=विद्युत्** प्रत्यक्षो भौतिकः [**असि**]=**अस्ति, सोऽपीमं यज्ञं सर्वतः परिद्धात्येतान्मनुष्यो यथागुणं सम्यग् दधातु** ॥ २ । ३ ॥

जो विद्वानों के द्वारा (**इडः**) विद्या-प्राप्ति के लिए स्तुति करने योग्य (**परिधिः**) विद्या का परिधान तथा (**ईडितः**) विद्याभिलाषी जनों से अच्छे प्रकार पूजित (**अग्निः**) प्रत्यक्ष भौतिक बिजली (**असि**) है, वह भी इस यज्ञ को सब ओर से धारण करता है । इस बिजली का भी मनुष्य गुण-ज्ञान-पूर्वक उपयोग करे ॥ २ । ३ ॥

[योऽयं गन्धर्वः... अग्निः=विद्युत् [असि]=अस्ति, सोऽपीमं यज्ञं सर्वतः परिदधात्येतान् मनुष्यो यथागुण सम्यम् दधातु]

भावार्थः—ईश्वरेण यः सूर्य—विद्युत्—प्रत्यक्षरूपेण त्रिविधोऽग्निर्निर्मितः स मनुष्यैर्विद्यया सम्यग्योजितः सन् बहूनि कार्याणि साधयतीति ॥ २ । ३ ॥

भावार्थ—ईश्वर ने जो सूर्य, विद्युत् और प्रत्यक्ष भौतिक अग्नि रूप तीन प्रकार का अग्नि बनाया है वह मनुष्य से विद्या के द्वारा अच्छी प्रकार उपयोग में लाया हुआ बहुत से कार्यों को सिद्ध करता है ॥ २ । ३ ॥

भाष्यसार—१. **सूर्य**—पृथिवी को धारण करता है एवं वाणी को धारण कराता है, संसार के वास का हेतु है, सब संसार के तथा यज्ञ करने वाले व्यक्ति के दुःखों का निवारण करके सुखों को देने वाला है । विद्वानों से स्तुति करने योग्य है अर्थात् विद्वान् लोग सूर्य के गुणों को जानें तथा विद्या की सिद्धि के लिए उन्हें ग्रहण करें ।

२. **वायु**—सूर्य का बल है, वृष्टि को प्राप्त कराने वाला है, सब वस्तुओं का धारक है, दाह प्रकाश आदि गुणों को बढ़ाने वाला है, शिल्प विद्या के साधक तथा सब प्राणियों के लिए सुख-दायक है । विद्वानों से स्तुति करने योग्य है अर्थात् विद्वान् लोग वायु के गुणों को जानकर उनका उपयोग करें ।

३. **प्राण-अपान**—मित्र और वरुण अर्थात् प्राण और अपान वायु के ही भेद हैं, जो ब्रह्मांड में स्थित हैं । जो गमनशील अर्थात् बाहर निकलता है वह प्राण है और जो आगमनशील अर्थात् बाहर से अन्दर आता है वह अपान है । ये स्थिर अपनी स्वाभाविक धारण-शक्ति से चराचर जगत को सुख देने वाले हैं और यज्ञ को धारण करते हैं ।

४. **अग्नि (विद्युत्)**—सूर्य का बल है, वृष्टि का प्रापक है, सब वस्तुओं को धारण करने वाला है, दाह और प्रकाश आदि गुणों की अधिकता से प्रशंसा के योग्य है, शिल्प विद्या के इच्छुक व्यक्ति तथा सब प्राणियों के लिए सुखकारक है । विद्वान् लोग इसका अच्छी प्रकार से उपयोग करें ।

५. **अग्नि (भौतिक स्थूल)**—अग्नि विद्या की प्राप्ति के लिए विद्वान् लोग इसके गुणों का वर्णन करते हैं । यह अग्नि विद्या की एक अवधि है । जो अग्नि विद्या को प्राप्त करना चाहते हैं वे इसकी कामना करें । यह अग्नि यज्ञ को धारण करता है । मनुष्य इसके गुणों को जान कर इसे ग्रहण करें ॥ २ । ३ ॥

परमेष्ठी प्रजापतिः । **अग्निः**=**ईश्वरः, भौतिकश्चा** । निचृद् गायत्री । षड्जः ।

अथाग्निशब्देनोभावार्थावुपदिश्येते ॥

अब अग्नि शब्द से ईश्वर और भौतिक अग्नि अर्थों का उपदेश किया जाता है ॥

वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तꣳ समिधीमहि । अग्ने बृहन्तमध्वरे ॥ ४ ॥

पदार्थः—(**वीतिहोत्रम्**) वीतयो विज्ञापिता होत्राख्या यज्ञा येनेश्वरेण । यद्वा वीतयः प्राप्तिहेतवो होत्राख्या यज्ञक्रिया भवन्ति यस्मात्तं परमेश्वरं भौतिकं वा । **वी गतिव्याप्तिप्रजनकान्त्यसनखादनेषु । इत्यस्य रूपम्** (**त्वा**) त्वां तं वा । **अत्र पक्षे व्यत्ययः** (**कवे**) सर्वज्ञ क्रान्तप्रज्ञ, कविं क्रान्तदर्शनं भौतिकं वा (**द्युमन्तम्**) द्यौर्बहुप्रकाशो विद्यते यस्मिँस्तम् । **अत्र भूम्न्यर्थे मतुप्** (**सम्**) सम्यगर्थे (**इधीमहि**) प्रकाशयेमहि । **अत्र बहुलं छन्दसीति श्नमो लुक्** (**अग्ने**) ज्ञानस्वरूपेश्वर प्राप्तिहेतुं भौतिकं वा (**बृहन्तम्**) सर्वेभ्यो महान्तं सुखवर्धकमीश्वरं बृहतां कार्य्याणां साधकं भौतिकं वा (**अध्वरे**) मित्रभावेऽहिंसनीये यज्ञे वा ॥ **अयं मंत्रः श० १ । ३ । ४ । ६ ॥ ४ ॥**

प्रमाणार्थ—(**वीतिहोत्रम्**) 'वीति' यह गति, व्याप्ति, प्रजन (**गर्भधारण**), कान्ति, असन (**फेंकना**) और खाना इन अर्थों वाली 'वी' धातु का रूप है । (**त्वा**) त्वां तं वा । यहां पक्ष में व्यत्यय है । (**द्युमन्तम्**) यहां बहुत अर्थ में मतुप्-प्रत्यय है । (**इधीमहि**) यहां 'बहुलं छन्दसि' इस से श्नम् का लुक् है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१ । ३ । ४ । ६) में की गई है ॥ २ । ४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **कवे** ! सर्वज्ञ क्रान्तप्रज्ञ ! **अग्ने** !=**जगदीश्वर** ज्ञानस्वरूपेश्वर ! **वयमध्वरे** मित्रभावे **बृहन्तं** सर्वेभ्यो महान्तं सुखवर्धकमीश्वरं **द्युमन्तं** द्यौर्बहुप्रकाशो विद्यते यस्मिँस्तं **वीतिहोत्रं** वीतयो विज्ञापिता होत्राऽऽख्या यज्ञा येनेश्वरेण तं परमेश्वरं [**त्वा**]=**त्वां समीधीमहि** सम्यक् प्रकाशयेमहि । **इत्येकः** ॥

वयमध्वरे अहिंसनीये यज्ञे **वीतिहोत्रं** वीतयः प्राप्तिहेतवो होत्राख्या यज्ञक्रिया भवन्ति यस्मात्तं भौतिकं **द्युमन्तं** द्यौर्बहुप्रकाशो विद्यते यस्मिँस्तं **बृहन्तं** बृहतां कार्य्याणां साधकं भौतिकं **कवे**=**कविं** क्रान्तदर्शनं भौतिकं **त्वा**=**तम् अग्ने**=**भौतिकमग्निं** प्राप्तिहेतुं भौतिकं **समिधीमहि** सम्यक् प्रकाशयेमहि ॥ **इति द्वितीयः** । २ । ४ ॥

भाषार्थ—हे (**कवे** !) सर्वज्ञ त्रिकालज्ञ ! (**अग्ने** !) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! हम (**अध्वरे**) मित्रता से रहने के लिए (**बृहन्तम्**) सब से महान् तथा सुखों के बढ़ाने वाले (**द्युमन्तम्**) अत्यन्त प्रकाश वाले (**वीतिहोत्रम्**) अग्निहोत्र आदि यज्ञों के बतलाने वाले [**त्वा**] आप परमेश्वर को (**समिधीमहि**) हृदय में प्रदीप्त करें ॥ यह इस मन्त्र का प्रथम अर्थ है ॥

हम लोग (**अध्वरे**) हिंसा से रहित यज्ञ में (**वीतिहोत्रम्**) सुख-प्राप्ति की हेतु अग्निहोत्र आदि यज्ञ-क्रियाएँ जिससे सिद्ध होती हैं उस भौतिक अग्नि को (**द्युमन्तम्**) बहुत प्रकाश से युक्त (**बृहन्तम्**) बहुत कार्यों के साधक (**कवे**) क्रान्तदर्शी कवि रूप भौतिक (**त्वा**) उस (**अग्ने**) प्राप्ति के हेतु अग्नि को (**समिधीमहि**) अच्छे प्रकार प्रकाशित करें ॥ यह इस मन्त्र का दूसरा अर्थ हुआ ॥

[हे···**अग्ने**=**जगदीश्वर** ! **वयं**—[**त्वा**]=**त्वां समिधीमहि**]

भावार्थः—अत्र श्लेषालङ्कारः ॥ यावन्ति क्रियासाधनानि क्रियया साध्यानि च वस्तूनि सन्ति

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष अलङ्कार है ॥ जितने भी क्रिया के साधन तथा क्रिया से साध्य

तानि सर्वाणीश्वरेणैव रचयित्वा ध्रियन्ते, पदार्थ हैं उन सबको ईश्वर ने ही रच कर धारण किया है।

[तात्पर्यमाह—]

मनुष्यैस्तेषां सकाशाद् गुणज्ञान क्रियाभ्यां बहव उपकाराः संग्राह्याः ॥ २ । ४ ॥ मनुष्य उनसे गुणज्ञान और क्रिया के द्वारा बहुत से उपकारों को ग्रहण करें ॥ २ । ४ ॥

भाष्यसार—१. **अग्नि (ईश्वर)**—सर्वज्ञ, त्रिकालज्ञ, ज्ञानस्वरूप, सबसे महान्, सुखवर्द्धक अग्निहोत्र आदि का उपदेश करने वाला है। जो मैत्री आदि भावों से हृदय में प्रकाशित होता है।

२. **अग्नि (भौतिक)**—अग्निहोत्र नामक यज्ञ को प्राप्त कराने वाला, प्रकाश गुण वाला, महान् कार्यों का साधक, चलते समय मार्ग का दर्शक है। हिंसारहित यज्ञ में प्रदीप्त करने योग्य है॥

परमेष्ठी प्रजापतिः। **यज्ञः=स्पष्टम्** ॥ निचृद्ब्राह्मी। बृहती। मध्यमः॥

पुनस्तस्य यज्ञस्य साधकान्युपदिश्यन्ते ॥

फिर उक्त यज्ञ के साधनों का उपदेश किया जाता है॥

समिदसि सूर्य्यस्त्वा पुरस्तात् पातु कस्याश्चिदभिशस्त्यै।
सवितुर्बाहू स्थ ऽ ऊर्णम्रदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्थं देवेभ्यऽआ त्वा
वसवो रुद्रा ऽ आदित्याः सदन्तु ॥ ५ ॥

पदार्थः—(**समित्**) सम्यगिध्यतेऽनयाऽनेन वा सा समिदग्निप्रदीपकं काष्ठादिकं वसंतऋतुर्वा (**असि**) भवति। अत्र व्यत्ययः (**सूर्य्यः**) सुवत्यैश्वर्य्यहेतुर्भवति सोऽयं सूर्यलोकः (**त्वा**) तम् (**पुरस्तात्**) पूर्वस्मादिति पुरस्तात् (**पातु**) रक्षति। अत्र लडर्थे लोट (**कस्याः**) कस्यै सर्वस्यै। अत्र 'चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि' ॥ अ० २। ३। ६२॥ इति चतुर्थ्यर्थे षष्ठी (**चित्**) चिदित्युपमार्थे॥ निरु० १। ४॥ (**अभिशस्त्यै**) आभिमुख्यायै स्तुतये। शंसु स्तुतावित्यस्य क्तिन् प्रत्ययान्तः प्रयोगः (**सवितुः**) सूर्य्यलोकस्य (**बाहू**) बलवीर्य्याख्यौ (**स्थः**) स्तः। अत्र व्यत्ययः (**ऊर्णम्रदसम्**) ऊर्णानि=सुखाच्छादनानि म्रदयति येन तं यज्ञम् (**त्वा**) तम् (**स्तृणामि**) सामग्र्याऽऽच्छादयामि (**स्वासस्थम्**) शोभने आसे=उपवेशने तिष्ठतीति तम् (**देवेभ्यः**) दिव्यगुणेभ्यः (**आ**) समन्तात् क्रियायोगे (**त्वा**) तम् (**वसवः**) अग्न्यादयोऽष्टौ (**रुद्राः**) प्राणापानव्यानोदानसमान—नागकूर्मकृकलदेवदत्तधनंजयाख्या दश प्राणा एकादशो जीवश्चेत्येकादश रुद्राः (**आदित्याः**) द्वादश मासाः। कतमे वसव इति ? अग्निश्च पृथिवी च वायुश्चांतरिक्षं चादित्यश्च द्यौश्च चन्द्रमाश्च नक्षत्राणि चैते वसव एतेषु हीद७ँ सर्वं वसु हितमेते हीद७ँ सर्वं वासयन्ते तद्यदिद७ँ सर्वं वासयन्ते तस्माद्वसव इति॥ कतमे रुद्रा इति ? दशेमे पुरुषे प्राणा आत्मैकादशस्ते यदास्मान्मर्त्याच्छरीराउत्क्रामन्त्यथ रोदयन्ति। तद्यद्रोदयन्ति तस्माद्रुद्रा इति। कतम आदित्या इति ? द्वादश मासाः संवत्सरस्यैत आदित्या एतेहीद७ँ सर्वमाददाना यन्ति तद्यदिद७ँदांसर्वमाददाना यन्ति तस्मादादित्या इति॥ श० १४। ६। ६। ४—६॥ (**सदन्तु**) अवस्थापयन्ति। षद्लृ इत्यस्य स्थाने वा च्छन्दसि सर्वे विधयो भवन्तीति' सीदादेशाभावो लडर्थे लोट् च॥ अयं मंत्रः श० १। ३। ४। ७—१२ व्याख्यातः॥ ५॥

प्रमाणार्थ—(**असि**) भवति। यहां व्यत्यय है। (**पातु**) रक्षति। यहां लट् के अर्थ में

लोट्-लकार है। (**कस्याः**) कस्यै सर्वस्यै। यहां 'चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि (**अ०** २। ३। ६२) इससे चतुर्थी-अर्थ में षष्ठी है। (**चित्**) यह (**निरु०** १। ४) में उपमा-अर्थ में है। (**अभिशस्त्यै**) यह 'शंसु-स्तुतौ, इस धातु का क्तिन्-प्रत्ययान्त प्रयोग है। (**स्थः**) स्तः। यहां व्यत्यय है। (**वसवः**) कौन-कौन वसु हैं? अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य=सूर्य, द्युलोक, चन्द्रमा और नक्षत्र ये सब वसु हैं। इन्हीं ही में समस्त धन निहित है। ये ही इस सारे जगत् को बसाते हैं। जिसलिए सारे जगत् को बसाते हैं, इसीलिए वसु कहलाते हैं। (**शत०** १४। ६। ६। ४—६)। (**रुद्राः**) कौन २ से रुद्र हैं? पुरुष-शरीर में स्थित ये दस प्राण और ग्यारहवाँ जीवात्मा। वे जब इस मरण-धर्मा शरीर से निकलते हैं तब रुलाते हैं। तो जिस कारण ये रुलाते हैं, इसी कारण ही रुद्र कहाते हैं (**शत०** १४। ६। ६। ४—६)। (**आदित्याः**) कौन-कौन से आदित्य हैं? ये संवत्सर (**वर्ष**) के बारह मास आदित्य-संज्ञक हैं। ये ही इस सारी (**आयु**) को लेते चले जाते हैं। जिस कारण ये सारी आयु को लेते चले जाते हैं इसी कारण आदित्य कहाते हैं (शत० १४। ६। ६। ४—६) (**सदन्तु**) अवस्थापयन्ति। 'षद्लृ' इस धातु के स्थान में 'वा छन्दसि सर्वे विधयो भवन्ति' इस नियम से सीद-आदेश का अभाव और लट् के अर्थ में लोट्-लकार है। इस मन्त्र की व्याख्या (**शत०** १। ३। ४। ७—१२)॥ २। ५॥

सपदार्थान्वयः—**चित्=यथा कश्चिन्मर्त्यः सुखार्थं क्रियासिद्धानि द्रव्याणि रक्षित्वाऽऽनन्दयते, तथैव योऽयं यज्ञः समित्** सम्यगिध्यतेऽनयाऽनेन वा सा समिदग्निप्रदीपकं काष्ठादिकं वसन्तऋतुर्वा **असि=भवति**। [**त्वा**]=**तं सूर्य्यः** सुवत्यैश्वर्य्यहेतुर्भवति सोऽयं सूर्य्यलोकः **कस्याः** कस्यै सर्वस्यै **अभिशस्त्यै** अभिमुख्यायै स्तुतये **पुरस्तात्** पूर्वस्मादिति पुरस्तात् **पातु=पति** रक्षति।

यौ सवितुः सूर्य्यलोकस्य **बाहू** बलवीर्य्याऽऽख्यौ **स्थः=स्तः, यो याभ्यां नित्यं विस्तीर्य्यते,** [**त्वा**]=**तम् ऊर्णम्रदसम्** ऊर्णानि=सुखाऽऽच्छादनानि म्रदयति येन तं यज्ञं **स्वासस्थम्=यज्ञं** शोभने आसे=उपवेशने तिष्ठतीति तं **वसवः** अग्न्यादयोऽष्टौ **रुद्राः** प्राणाऽपान व्यानोदानसमाननागकूर्मकृकलदेवदत्तधनञ्जयाऽऽख्या दश प्राणा एकादशो जीवश्चेत्येकादश रुद्रा **आदित्याः** द्वादश मासाः **सदन्तु=अवस्थापयन्ति प्रापयन्ति।**

[**त्वा**]=**तं यज्ञमहमपि सुखाय देवेभ्यो** दिव्यगुणेभ्यः **आस्तृणामि** समन्तात् सामग्रयाऽऽच्छादयामि॥ २। ५॥

भाषार्थ—(**चित्**) जैसे कोई मनुष्य सुख-प्राप्ति के लिए क्रिया द्वारा सिद्ध किए गए पदार्थों की रक्षा करके आनन्दित होता है, वैसे ही यह यज्ञ (**समित्**) अग्नि को प्रदीप्त करने वाले काष्ठादि अथवा वसन्त-ऋतु के समान [**असि**] सुखदायक होता है। [**त्वा**] उसकी (**सूर्य्यः**) ऐश्वर्य-प्राप्ति का हेतु सूर्यलोक (**कस्याः**) सब (**अभिशस्त्यै**) प्रमुख स्तुति के लिए (**पुरस्तात्**) पहले से ही (**पातु**) रक्षा करता है।

जो (**सवितुः**) सूर्य्यलोक के (**बाहू**) बल और वीर्य्य नामक बाहु (**स्थः**) हैं, जिनसे यह यज्ञ नित्य विस्तार को प्राप्त होता है, [**त्वा**] उस (**ऊर्णम्रदसम्**) सुख के साधनों को मृदु बनाने वाले एवं (**स्वासस्थम्**) सुन्दर अन्तरिक्ष रूपी आसन पर विराजमान उस यज्ञ को (**वसवः**) अग्नि आदि आठ वसु (**रुद्राः**) प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनञ्जय तथा ग्यारहवां जीव, ये ग्यारह रुद्र (**आदित्याः**) बारह मास (**सदन्तु**) प्राप्त कराते हैं।

[**त्वा**] उस यज्ञ को मैं भी सुख तथा (**देवेभ्यः**) दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए (**आ+स्तृणामि**) सब ओर से सामग्री के द्वारा आच्छादित करता हूँ॥ २। ५॥

[स्वासस्थं=यज्ञं वसवो रुद्रा आदित्याः सदन्तुः]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः ॥ ईश्वरः सर्वेभ्यः इदमुपदिशति मनुष्यैर्वसुरुद्रादित्याख्येभ्यो यद्-यदुपकर्तुं शक्यं तत्तत्सर्वस्याभिरक्षणाय नित्यमनुष्ठेयम् ।

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है ॥ ईश्वर सबको यह उपदेश करता है कि मनुष्य वसु, रुद्र और आदित्यों से जो-जो उपकार कर सकें वह वह सबकी रक्षा के लिए नित्य करें ।

[योऽयं यज्ञः समिदसि=भवति तं सूर्यः पातु=पाति]

योऽग्नौ द्रव्याणां प्रक्षेपः क्रियते स सूर्यं वायुं वा प्राप्नोति, तावेव तत्पृथग्भूतं द्रव्यं रक्षित्वा पुनः पृथिवीं प्रति विमुञ्चतः ।

जो अग्नि में द्रव्यों का प्रक्षेप किया जाता है वह सूर्य वा वायु को प्राप्त होता है, वे दोनों ही उसे पृथक् द्रव्य रूप में रखकर फिर उसे पृथिवी पर छोड़ते हैं ।

[त्वा=तं यज्ञमहमपि देवेभ्य आस्तृणामि]

येन पृथिव्यां दिव्या ओषध्यादयः पदार्था जायन्ते, येन च प्राणिनां नित्यं सुखं भवति, तस्मादेतत्सदैवानुष्ठेयमिति ॥ २ । ५ ॥

जिस यज्ञ से पृथिवी पर दिव्य औषधि आदि पदार्थ उत्पन्न होते हैं, और जिससे प्राणियों को नित्य सुख होता है इसलिये उक्त यज्ञ का सदा अनुष्ठान करें ॥ २ । ५ ॥

भा० पदार्थ—देवेभ्यः=दिव्यौषध्यादिभ्यः । आस्तृणामि=सदैवानुतिष्ठामि ॥

भाष्यसार—**१. यज्ञ के साधक**—अग्नि को प्रदीप्त करने वाले काष्ठ आदि यज्ञ के साधक हैं। प्रदीपक होने से यहां समित् का अर्थ वसन्त ऋतु भी किया है। वसन्त ऋतु भी यज्ञ का साधक है। सूर्य भी यज्ञ का साधक है जो यज्ञ की रक्षा करता है। सूर्य लोक के बल वीर्य्य रूप बाहु यज्ञ का नित्य विस्तार करते हैं। आठ वसु, ग्यारह रुद्र और बारह आदित्य भी यज्ञ के साधक हैं।

२. सूर्य—ऐश्वर्य का हेतु है। बल और वीर्य सूर्यलोक के बाहु हैं।

३. यज्ञ—सुख को अच्छादित करने वालों का मर्दक है। दिव्य गुणों का प्रापक है ॥

परमेष्ठी प्रजापतिः । **विष्णुः**=**यज्ञः** ॥ षट्षष्ठितमाक्षरपर्य्यंतं ब्राह्मी त्रिष्टुप । अग्रे निचत्त्रिष्टुप् । सर्वस्य धैवतः ॥

स किं किं प्रियं सुखं साधयतीत्युपदिश्यते ॥

उक्त यज्ञ से क्या क्या प्रिय सुख सिद्ध होता है, यह उपदेश किया जाता है ॥

घृताच्यसि जुहूर्नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियꣳ सदऽआसीद घृताच्यस्युपभृन्नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियꣳसदऽआसीद घृताच्यसि ध्रुवा नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियꣳ सदऽआसीद प्रियेण धाम्ना प्रियꣳ सदऽआसीद । ध्रुवाऽअसदन्नृतस्य योनौ ता विष्णो पाहि पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं पाहि मां यज्ञन्यम् ॥ ६ ॥

पदार्थः—(**घृताची**) घृतमाज्यमंचति प्राप्नोत्यनयाऽऽदानक्रियया सा (**असि**) भवति । अत्र सर्वत्र व्यत्ययः (**जुहूः**) जुहोति=ददाति हविरादत्ते सुखं चानया सा । हु दानादनयोरित्यस्मात् । हुवः श्लुवच्च ।। उ० २ । ५६ ।। अनेन क्विप् प्रत्ययो दीर्घादेशश्च (**नाम्ना**) प्रसिद्धेन (**सा**) पूर्वोक्ता (**इदम्**) प्रत्यक्षम् (**प्रियेण**) सुखैस्तर्पकेण कमनीयेन (**धाम्ना**) स्थानेन (**प्रियम्**) प्रीणाति=सुखयति यत्तत् (**सदः**) सीदन्ति=प्राप्नुवंति सुखानि यस्मिन् तद्गृहम् (**आ**) समन्तात् (**सीद**) सादयति । अत्रोभयत्र लडर्थे लोडन्तर्गतो ण्यर्थो व्यत्ययश्च (**घृताची**) या होमक्रिया घृतमुदकमञ्चति प्रापयति सा । घृतमित्युदकनामसु पठितम् ।। निघं १ । १२ ।। (**असि**) अस्ति (**उपभृत्**) योपगतं बिभर्त्यनया हस्तक्रियया सा (**नाम्ना**) प्रख्यातेन (**सा**) पूर्वोक्ता (**इदम्**) ओषध्यादिकम् (**प्रियेण**) प्रीतिहेतुना (**धाम्ना**) स्थलेन (**प्रियम्**) प्रीतये सुखयत्यारोग्येन यत्तत् (**सदः**) सीदन्ति=घन्ति दुःखानि येन तदौषधसेवनं पथ्याचरणं च । अत्र सदेर्विशरणार्थः (**आ**) समन्तात् (**सीद**) प्रापयति (**घृताचीः**) घृतमायुर्निमित्तमञ्चति प्राप्नोत्यनया सुनियमाचरणक्रियया सा (**असि**) भवति (**ध्रुवा**) ध्रुवन्ति=प्राप्नुवन्ति स्थिराणि सुखान्यनया विद्यया सा । ध्रु गतिस्थैर्य्ययोरित्यस्य कप्रत्ययान्तः प्रयोगः । कृतो बहुलमिति करणकारके (**नाम्ना**) प्रसिद्धेन (**सा**) उक्तार्था (**इदम्**) जीवनम् (**प्रियेण**) प्रीतिकरेण (**धाम्ना**) स्थित्यर्थेन (**प्रियम्**) आनन्दकरम् (**सदः**) वस्तु (**आ**) अभितः (**सीद**) सीदति गमयति । अत्रोभयत्र लडर्थे लोड् व्यत्ययश्च (**प्रियेण**) प्रीतिसाधकेन (**धाम्ना**) हृदयेन (**प्रियम्**) प्रीतिकरम् (**सदः**) सीदति=जानाति येन तत् ज्ञानम् (**आ**) सर्वतः (**सीद**) सीदति=प्राप्नोति (**ध्रुवा**) ध्रुवाणि= निश्चलानि वस्तूनि । अत्र शेश्छन्दसि बहुलमिति लोपः (**असदन्**) भवेयुः । अत्र लिङर्थे लङ् वा छन्दसि सर्वे विधयो भवन्तीति, सीदादेशो न (**ऋतस्य**) शुद्धस्य सत्यस्य (**योनौ**) यज्ञे । यज्ञो वा ऋतस्य योनिः ।। श० १ । ३ । ४ । १६ ।। (**ता**) तानि । अत्रापि शेर्लोपः (**विष्णो**) व्यापकेश्वर (**पाहि**) रक्ष (**पाहि**) पालय (**यज्ञम्**) पूर्वोक्तं त्रिविधम् (**पाहि**) पालय (**यज्ञपतिम्**) यज्ञस्य पालकं यजमानम् (**पाहि**) रक्ष (**माम्**) होतारमध्वर्युमुद्गातारं ब्रह्माणं वा (**यज्ञन्यम्**) यज्ञं नयति=प्रापयतीति यज्ञनीस्तम् । अत्र अमिपूर्वः ।। अ० ६ । १ । १०६ ।। इत्यत्र वा छन्दसीत्यनुवर्तनात्पूर्वरूपादेशो न भवति । अयं मंत्रः श० १ । ३ । ४ । १३—१६ व्याख्यातः ।। ६ ।।

प्रमाणार्थ—(**असि**) भवति । यहां (**मन्त्र में**) सर्वत्र व्यत्यय है । (**जुहूः**) 'हु दानादनयोः इस धातु से 'हुवः श्लुवच्च (**उणादि०** २ । ५६) इससे क्विप्-प्रत्यय और दीर्घ-आदेश है (**सीद**) सादयति । यहां दोनों जगह लट् के अर्थ में लोट्-लकार अन्तर्गत णिच्-प्रत्यय का अर्थ और व्यत्यय भी है । (**घृताची**) घृत शब्द निघं० १ । १२ में उदक नामों में पढ़ा गया है। (**सदः**) यहां 'षद्लृ' धातु का विशरण=नष्ट करना अर्थ है । (**ध्रुवा**) 'ध्रु गतिस्थैर्य्ययोः इस धातु का क-प्रत्ययान्त प्रयोग 'कृतो बहुलम्' इस नियम से करण-कारक में है । (**सीद**) सीदति गमयति । यहां दोनों जगह लट् अर्थ में लोट्-लकार और व्यत्यय है । (**असदन्**) भवेयुः । यहां लिङ्-अर्थ में लङ्-लकार है, 'वा छन्दसि सर्वे विधयो भवन्ति, इस वचन से धातु को सीद-आदेश नहीं हुआ । (**योनौ**) यज्ञे । यज्ञ ऋत=**सत्य** की योनि= निमित्त है (शत० १ । ३ । ४ । १६) । (**ध्रुवा**) ध्रुवाणि । यहां 'शेश्छन्दसि बहुलम्, इस सूत्र से शि का लोप है । (**ता**) तानि । यहां भी 'शि' का लोप है । (**यज्ञन्यम्**) यहां 'अमि पूर्वः (अ० ६ । १ । १०६) इस सूत्र में 'वाछन्दसि' इसकी अनुवृत्ति आने से पूर्वरूप आदेश नहीं होता है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१ । ३ । ४ । १३—१६) में की गई है ।। २ । ६ ।।

सपदार्थान्वयः—या जुहूः जुहोति ददाति हविरादत्ते सुखं चाऽनया सा **नाम्ना** प्रसिद्धेन

भाषार्थ—जो (**जुहूः**) हवि देने वाली तथा सुख लाने वाली स्रुक् (**नाम्ना**) नाम से प्रसिद्ध

घृताची घृतमाज्यमञ्चति प्राप्नोत्यनयाऽऽदानक्रियया सा **असि=भवति, सा** पूर्वोक्ता **यज्ञे प्रयुक्ता सती प्रियेण** सुखैस्तर्पकेण कमनीयेन **धाम्ना** स्थानेन **सह वर्त्तमानं इदं** प्रत्यक्षं **प्रियं** प्रीणाति सुखयति यत्तत् **सदः** सीदन्ति प्राप्नुवन्ति सुखानि यस्मिँस्तद् गृहम् **आ+सीद=आसादयति।**

(**घृताची**) आदान-क्रिया से घृत को प्राप्त कराने वाली घृताची (**असि**) होती है, (**सा**) वह पूर्वोक्त यज्ञ में प्रयुक्त की हुई (**प्रियेण**) सुखों से तृप्त करने वाले=कामना-योग्य (**धाम्ना**) स्थान से युक्त (**इदम्**) इस (**प्रियम्**) प्यारे (**सदः**) सर्व-सुखदायक घर को (**आ+सीद**) सब ओर से प्राप्त कराती है।

या उपभृत् योपगतं बिभर्त्यनया हस्तक्रियया सा **नाम्ना** प्रख्यातेन **घृताची** या होमक्रिया घृतमुदकमञ्चति प्रापयति सा **असि=अस्ति, सा** पूर्वोक्ता **अथ यज्ञे प्रयुक्ता सती प्रियेण** प्रीतिहेतुना **धाम्ना** स्थलेन **इदम्** ओषध्यादिकं **प्रियं** प्रीतये सुखयत्यारोग्येन यत्तत् **सदः** सीदन्ति घ्नन्ति दुःखानि येन तदौषधसेवनं पथ्याचरणं च **आ+सीद= समन्तात् प्रापयति।**

जो (**उपभृत्**) समीप गए हुए को हस्त-क्रिया से भरने वाली (**नाम्ना**) उपभृत् नाम से प्रसिद्ध (**घृताची**) जो होम-क्रिया द्वारा जल को प्राप्त कराने वाली घृताची (**असि**) है, (**सा**) वह यज्ञ में प्रयुक्त की हुई (**प्रियेण**) प्रीतिकारक (**धाम्ना**) स्थान से युक्त (**इदम्**) इस औषध आदि (**प्रियम्**) आरोग्य से सुखदायक (**सदः**) दुःखों के नाशक औषध-सेवन और पथ्याचरण को (**आ+सीद**) सब ओर से प्राप्त कराती है।

या ध्रुवा ध्रुवन्ति प्राप्नुवन्ति स्थिराणि सुखान्यनया विद्यया सा **नाम्ना प्रसिद्धेन घृताची** घृतमायुर्निमित्तमञ्चति प्राप्नोत्यनया सुनियमाचरणक्रियया सा **असि=भवति, सा** उक्तार्था **सम्यक् स्थापिता सती प्रियेण** प्रीतिकरेण **धाम्ना** स्थित्यर्थेन **इदं** जीवनं **प्रियम्** आनन्दकरं **सदः** वस्तु **आ+सीद=आगमयति** अभितः सीदति गमयति।

जो (**ध्रुवा**) स्थिर सुखों को प्राप्त कराने वाली विद्या (**नाम्ना**) ध्रुवा नाम से प्रसिद्ध (**घृताची**) सुनियमा चरण रूप क्रिया से आयु को प्राप्त कराने वाली घृताची (**असि**) है, (**सा**) वह अच्छे प्रकार स्थापित की हुई (**प्रियेण**) प्रीतिकारक (**धाम्ना**) स्थिति के हेतु (**इदम्**) इस जीवन के लिए (**प्रियम्**) आनन्द- दायक (**सदः**) वस्तु को (**आ+सीद**) सब ओर से प्राप्त कराती है।

यया क्रियया प्रियेण प्रीतिसाधकेन **धाम्ना** हृदयेन **प्रियं** प्रीतिकरं **सदः** सीदति जानाति येन तज् ज्ञानम् **आ+सीद=समन्तात् प्राप्नोति** सर्वतः सीदति प्राप्नोति **सा** उक्तार्था **सर्वैर्नित्यं साध्या।**

जिस क्रिया के द्वारा (**प्रियेण**) प्रीति के साधक (**धाम्ना**) हृदय से (**इदम्**) इस (**प्रियम्**) प्रीतिकारक (**सदः**) जिससे जाना जाता है उस ज्ञान को (**आ+सीद**) सब ओर से प्राप्त कराता है, (**सा**) वह क्रिया सबको नित्य सिद्ध करनी चाहिए।

हे विष्णो ! व्यापकेश्वर ! **यथेमानि ऋतस्य** शुद्धस्य सत्यस्य **योनौ** यज्ञे **ध्रुवा=ध्रुवाणि वस्तूनि** ध्रुवाणि=निश्चलानि वस्तूनि **असदन्=भवेयुस्तथैव [ता]=एतानि** तानि **निरन्तरं पाहि** रक्ष, **तथा कृपया यज्ञं** पूर्वोक्तं (१-२) त्रिविधं **पाहि** पालय, **यज्ञन्यं** यज्ञं नयति प्रापयतीति यज्ञनीस्तं **यज्ञपतिं** यज्ञस्य पालकं यजमानं **पाहि** पालय, **यज्ञन्यं मां** होतारमध्वर्युमुद्गातारं ब्रह्माणं वा **च**

हे (**विष्णो !**) व्यापक परमेश्वर ! जैसे ये (**ऋतस्य**) सर्वथा शुद्ध सत्य के हेतु (**योनौ**) यज्ञ में (**ध्रुवा**) स्थिर पदार्थ (**असदन्**) होवें, वैसे ही इनकी सदा (**पाहि**) रक्षा कर तथा कृपा करके (**यज्ञम्**) पूर्वोक्त तीन प्रकार के यज्ञ की (**पाहि**) रक्षा कर, (**यज्ञन्यम्**) यज्ञ के नायक (**यज्ञपतिम्**) यज्ञ के पालक यजमान की (**पाहि**) रक्षा कर, यज्ञ के नायक (**माम्**) मुझ होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा

पाहि रक्ष ॥ २ । ६ ॥

की (**पाहि**) रक्षा कर ॥ २ । ६ ॥

[या जुहूर्नाम्ना घृताच्यसि=भवति, सा यज्ञे प्रयुक्ता सती प्रियेण धाम्ना सह वर्त्तमानमिदं प्रियं सद आसीद]

भावार्थः—यो यज्ञः पूर्वोक्ते मन्त्रे वसु-रुद्रादित्यैः सिध्यति स वायु जल-शुद्धिद्वारा सर्वाणि स्थानानि, सर्वाणि वस्तूनि च, प्रियाणि निश्चल-सुखसाधकानि ज्ञानवर्धकानि च करोति।

जो यज्ञ पूर्वोक्त मन्त्र के अनुसार वसु, रुद्र और आदित्यों से सिद्ध होता है वह वायु और जल की शुद्धि के द्वारा सब स्थानों को, सब वस्तुओं को प्रिय तथा निश्चल सुख के साधक और ज्ञानवर्द्धक बनाता है।

[हे विष्णो ! ······ [ता] एतानि निरन्तरं पाहि]

तेषां वृद्धये रक्षणाय च सर्वैर्मनुष्यैर्व्यापके-श्वरस्य प्रार्थना, सम्यक् पुरुषार्थश्च कर्त्तव्य इति ॥ २ । ६ ॥

उनकी वृद्धि और रक्षा के लिये सब मनुष्य सर्वव्यापक ईश्वर की प्रार्थना और उत्तम पुरुषार्थ किया करें ॥ २ । ६ ॥

भाष्यसार—१. **यज्ञ से प्रिय सुखों की सिद्धि**—यज्ञ सुख को देने वाला है । यज्ञ में दी हुई घृताहुति सुखों से तृप्त करने वाले, कामना करने योग्य स्थान एवं घर को प्राप्त कराती है, दुःखनाशक औषधियों को प्राप्त कराती है, जीवन प्रदान करती है एवं आनन्दकारक वस्तुओं को प्राप्त कराती है। प्रीतिकारक ज्ञान को भी देने वाली है।

२. **आहुति के भेद**—जुहू=सुख को देने वाली। उपभृत्=समीपस्थ का धारण-पोषण करने वाली। **ध्रुवा=स्थिर सुख देने वाली** ।

३. **ईश्वर प्रार्थना**—हे सर्वव्यापक ईश्वर ! आप सत्य के हेतु यज्ञ में स्थिर वस्तुओं को प्राप्त कराने वाले हो, आप यज्ञ की सब वस्तुओं की रक्षा कीजिए। आप देवपूजा, संगतिकरण एवं दान रूप त्रिविध यज्ञ, यज्ञनायक, यजमान, होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा इनकी रक्षा कीजिए।

परमेष्ठी प्रजापतिः। **अग्निः=भौतिकोऽग्निः**। बृहतीः। मध्यमः॥

पुनः स यज्ञः कीदृश इत्युपदिश्यते ॥

फिर वह यज्ञ कैसा है सो अगले मंत्र में प्रकाशित किया है ॥

अग्ने वाजजिद् वाजं त्वा सरिष्यन्तं वाजजितꣳ सम्मार्ज्मि
नमो देवेभ्यः स्वधा पितृभ्यः सुयमे मे भूयास्तम् ॥७॥

पदार्थः—(अग्ने) अग्निर्भौतिकः (**वाजजित्**) वाजमन्नं जयति येन सः। **वाज इत्यन्ननामसु पठितम् ॥ निघं० २ । ७ ॥ अत्रोभयत्र कृतो बहुलमिति करणे क्विप्** (**वाजम्**) वेगवन्तम् (**त्वा**) तम् (**सरिष्यन्तम्**) सर्वान् पदार्थानन्तरिक्षं गमयिष्यन्यतम् (**वाजजितम्**) वाजं युद्धं जयति येन तम् (**सम्**) सम्यगर्थे (**मार्ज्मि**) मार्ष्टि वा **अत्र पक्षे पुरुषव्यत्ययः** (**नमः**) अमृतात्मकं जलम्। **नम इत्युदकनामसु पठितम् ॥ निघं० १ । १२ ॥** (**देवेभ्यः**) दिव्यसुखकारकेभ्यः पूर्वोक्तेभ्यो वस्वादिभ्यः (**स्वधा**) अमृतात्मकमन्नम्। **स्वधेत्यन्ननामसु पठितम् ॥ नि० २ । ७ ॥** स्वं=स्वकीयं सुखं दधात्यनया सा (**पितृभ्यः**) पालनहेतुभ्यः ऋतुभ्यः।

ऋतवो वै पितरः ॥ श० २।४।२।२४ ॥ (सु) शोभनेऽर्थे (यमे) यच्छन्ति बलपराक्रमौ याभ्यां ते (मे) मम (भूयास्तम्) भूयास्ताम्। अत्र व्यत्ययः ॥ अयं मंत्रः श० १।४।४।१५ तथा १।४।५।१ व्याख्यातः ॥ ७ ॥

प्रमाणार्थ—(**वाजजित्**) वाज शब्द निघं० (२।७) में अन्न-नामों में पढ़ा गया है। यहाँ (**मन्त्र में**) दोनों जगह 'कृतो बहुलम्' इस वचन से करण-कारक में क्विप् है। (**मार्ज्मि**) मार्ष्टि वा। यहाँ पक्ष में पुरुष-व्यत्यय है। (**नमः**) नमः शब्द निघं० (१।१२) में उदक-नामों में पढ़ा गया है। (**स्वधा**) स्वधा शब्द निघं० (२।७) में अन्न-नामों में पढ़ा गया है। (**पितृभ्यः**) शत० २।४।२।२४ के अनुसार ऋतुओं को पिता कहते हैं। (**भूयास्तम्**) भूयास्ताम्। यहां व्यत्यय है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० १।४।४।१५ तथा १।४।५।१ में की गई है ॥ २।७ ॥

सपदार्थान्वयः—यतोऽयम् [**अग्ने**]=**अग्निः** अग्निर्भौतिको **वाजजित्** वाजमन्नं जयति येन सः, **भूत्वा सर्वान् पदार्थान् संमार्ष्टि, तस्मात्** [**त्वा**]=**तमहं वाजं** वेगवन्तं **सरिष्यन्तम्** सर्वान् पदार्थानन्तरिक्षं गमयिष्यन्तं **वाजितं** वाजं=युद्धं जयति येन तं **सम्**+**मार्ज्मि** सम्यङ् मार्ज्मि।

येन यज्ञेन प्रयुक्तेनाऽग्निना देवेभ्यो दिव्यसुखकारकेभ्यः पूर्वोक्तेभ्यो वस्वादिभ्यो **नमः** अमृतात्मकं जलं **पितृभ्यः** पालनहेतुभ्य ऋतुभ्यः **स्वधा** अमृतात्मकमन्नं स्वं=स्वकीयं सुखं दधात्यनया सा **सुयमे** शोभनं यच्छन्ति बलपराक्रमौ याभ्यां ते **भवतस्तेनैते मे**=**मम सुयमे** शोभनं यच्छन्ति बलपराक्रमौ याभ्यां ते **भूयास्तम्**=**भूयास्ताम्** ॥ २।७ ॥

भाषार्थ—जिससे यह [**अग्ने**] भौतिक अग्नि (**वाजजित्**) अन्न को जीतने वाला होकर सब पदार्थों को शुद्ध करता है, इसलिए [**त्वा**] उस अग्नि को मैं (**वाजम्**) जो वेग वाला (**सरिष्यन्तम्**) सब पदार्थों को अन्तरिक्ष में पहुँचाने वाला और (**वाजंजितम्**) युद्ध को जिताने वाला है, उसे (**सम्**+ (**मार्ज्मि**) अच्छे प्रकार शुद्ध करता हूँ।

यज्ञ में प्रयुक्त जिस अग्नि से (**देवेभ्यः**) दिव्य सुखदायक पूर्वोक्त वसु आदिकों के लिए (**नमः**) अमृत रूप जल (**पितृभ्यः**) पालन करने वाली ऋतुओं के लिए (**स्वधा**) सुख को धारण करने वाले अमृत रूप अन्न (**सु**) सुन्दर रीति से (**यमे**) बल पराक्रम को देने वाले होते हैं, इसलिए ये दोनों अन्न, जल (**मे**) मुझे भी बल-पराक्रम को देने वाले (**भूयास्तम्**) होवें ॥ २।७ ॥

[अयम् [अग्ने] अग्निः]

भावार्थः—ईश्वर उपदिशति—मनुष्यैर्यः पूर्वमन्त्रोक्तोऽग्निर्यज्ञस्य मुख्य साधनः कर्त्तव्यः।

भावार्थ—ईश्वर उपदेश करता है कि—मनुष्यों को पूर्व मन्त्र में कथित अग्नि को यज्ञ का मुख्य साधन बनाना चाहिये।

[सर्वान् पदार्थान् सम्मार्ष्टि]

कुतः ? अग्नेरूर्ध्वगमनशीलेन सर्वपदार्थच्छेदकत्वात्।

क्योंकि ? अग्नि स्वभाव से ऊपर जाने वाला होने से सर्व पदार्थों का छेदक है।

[तमहं वाजं सरिष्यन्तं वाजजितं सम्मार्ज्मि]

यानास्त्रेषु सम्यक् प्रयुक्तेन शीघ्रगमन विजयहेतुः सन्,

यान और अस्त्रों में अग्नि का विधिपूर्वक प्रयोग करने से वह शीघ्र गति और विजय का हेतु होकर,

[यज्ञेन प्रयुक्तेनाऽग्निना देवेभ्यो नमः पितृभ्यः स्वधा]

ऋतुभिर्दिव्यान् पदार्थान् सम्पाद्य शुद्धे सुखप्रापके अन्नजले करोतीति विज्ञातव्यम् ॥ २ । ७ ॥

ऋतुओं के द्वारा दिव्य पदार्थों को सिद्ध करके शुद्ध एवं सुखदायक अन्न और जलों का साधक है, इस विज्ञान को समझना चाहिये ॥ २ । ७ ॥

भा० पदार्थः--[**अग्ने**] अग्निः=यज्ञस्य मुख्य--साधनम् । वाजम्=शीघ्रगमनहेतुम् । वाजजितम्=विजयहेतुम् । देवेभ्यः=दिव्यपदार्थेभ्यः । स्वधा=शुद्धं सुखप्रापकमन्नम् । नमः=शुद्धं सुखप्रापकं जलम् ॥

भाष्यसार--**यज्ञ**--भौतिक अग्नि यज्ञ का मुख्य साधन है । यज्ञ वाज अर्थात् अन्न को प्राप्त कराने वाला, एवं सब पदार्थों का शोधक है । यज्ञ का मुख्य साधक अग्नि वेगवान् अर्थात् शीघ्रगमन का हेतु युद्धों में यान और अस्त्रों में प्रयोग करने से विजय का हेतु है । यज्ञ की अग्नि से अन्न और जल शुद्ध होते हैं जो बल और पराक्रम के देने वाले हैं ॥

●

परमेष्ठी प्रजापतिः । **विष्णुः=यज्ञः** । विराट् ब्राह्मी पंक्तिः । पंचमः ॥

पुनः स कीदृशो भूत्वा किं करोतीत्युपदिश्यते ॥

फिर उक्त यज्ञ कैसा होकर क्या करता है, यह उपदेश किया जाता है ॥

अस्कन्नमद्य देवेभ्य ऽ आज्यꣳ संभ्रियासमङ्घ्रिणा विष्णो मा त्वावक्रमिषं वसुमतीमग्ने ते च्छायामुपस्थेषं विष्णो स्थानमसीत ऽइन्द्रो वीर्य्यमकृणोदूर्ध्वोऽध्वरऽआस्थात् ॥८॥

पदार्थः--(**अस्कन्नम्**) अविक्षुब्धम् (**अद्य**) अस्मिन्नहनि (**देवेभ्यः**) दिव्यसुखानां प्राप्तये (**आज्यम्**) घृतादिकम् (**सम्**) क्रियायोगे (**भ्रियासम्**) धारयेयम् (**सन्**) क्रियायोगे (**अंघ्रिणा**) गमनसाधनेनाग्निना (**विष्णो**) व्यापकेश्वर (**मा**) निषेधार्थे (**त्वा**) तं वा (**अव**) अवेति विनिग्रहार्थीयः ॥ निरु० १ । ३ ॥ (**क्रमिषम्**) उल्लंघयेयम् । अत्र लिङर्थे लुङ् (**वसुमतीम्**) वसूनि=बहूनि वस्तूनि भवन्ति यस्यां ताम् । अत्र भूम्न्यर्थे मतुप् (**अग्ने**) परमेश्वर भौतिको वा (**ते**) तव तस्य वा (**छायाम्**) आश्रयम् (**उप**) क्रियार्थे (**स्थेषम्**) उपपत्सीय । अत्र लिङ्याशिष्यङित्यङि कृते छन्दस्युभयथेति सार्वधातुकत्वादियादेश आर्द्धधातुकत्वात्सकारलोपो न भवति (**विष्णोः**) यज्ञस्य (**स्थानम्**) स्थित्यर्थम् (**असि**) भवति । अत्र व्यत्ययः (**इतः**) स्थानात् (**इन्द्रः**) सूर्य्यो वायुर्वा (**वीर्य्यम्**) वीरस्य कर्म पराक्रमं वा (**अकृणोत्**) करोति । अत्र लडर्थे लङ् (**ऊर्ध्वः**) आकाशस्थः सन् (**अध्वरः**) यज्ञः (**आ**) समन्तात् (**अस्थात्**) तिष्ठति । अत्र लडर्थे लुङ् ॥ अयं मंत्रः श० १ । ४ । ५ । १--३ व्याख्यातः ॥ ८ ॥

प्रमाणार्थ--(**अव**) अव शब्द निरु० १ । ३ में विनिग्रह (**नियमन**) अर्थ वाला है । (**क्रमिषम्**) यहां लिङ्-अर्थ में लुङ्-लकार है । (**वसुमतीम्**) यहां बहुत अर्थ में मतुप् प्रत्यय है । (**स्थेषम्**) यहां 'लिङ्याशिष्यङ्' इससे अङ् (**विकरण**) करने पर 'छन्द-स्युभयथा' इससे आशीर्लिङ् प्रत्यय सार्वधातुक होने के कारण 'इय-आदेश' होता है, तथा आर्धधातुक होने से सकार-लोप नहीं होता है । (**असि**) भवति । यहां व्यत्यय है । (**अकृणोत्**) करोति । यहां लट्-अर्थ में लङ्-लकार है । (**अस्थात्**) तिष्ठति । यहां लट्-अर्थ में लुङ्-लकार है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१ । ४ । ५ । १--३) में की गई है ॥ २ । ८ ॥

पदार्थान्वयः—[विष्णो !] व्यापकेश्वर ! **अहं देवेभ्यः** दिव्यसुखानां प्राप्तये **यदस्कन्नम्**=अविक्षुब्धमाज्यं घृताऽऽदिकम् **अङ्घ्रिणा** गमनसाधनेनाऽग्निना **सम्+भ्रियासं** धारयेयम्, **अद्य** अस्मिन्नहनि **त्वा**=**तत्** तं वा **अहं माऽवक्रमिषम्**=**मोल्लङ्घयेयम्** ।

भाषार्थ—[विष्णो !] हे सब में व्याप्त प्रभो ! मैं (**देवेभ्यः**) दिव्य सुखों की प्राप्ति के लिए जो (**अस्कन्नम्**) स्थिर (**आज्यम्**) घृत आदि पदार्थ हैं, उनको (**अङ्घ्रिणा**) गति के साधन रूप अग्नि के द्वारा (**संभ्रियासम्**) अच्छे प्रकार धारण करूँ और (**अद्य**) आज (**त्वा**) उसका मैं (**मा-अवक्रमिषम्**) परित्याग न करूँ ।

हे अग्ने !=**जगदीश्वर** परमेश्वर ! भौतिको वा: **ते**=**तव** तव तस्य **वसुमतीं** वसूनि=बहूनि वस्तूनि भवन्ति यस्यां तां **छायाम्** आश्रयम् **अहमुपस्थेषम्**=**उपपत्सीय** ।

हे (**अग्ने !**) परमेश्वर ! वा भौतिक अग्नि ! (**ते**) आप के वा उस अग्नि के (**वसुमतीम्**) बहुत वस्तुओं वाले (**छायाम्**) आश्रय को मैं (**उप+स्थेषम्**) प्राप्त होऊँ ।

योऽयमग्निर्विष्णोः=**यज्ञस्य स्थानं** स्थित्यर्थम् **असि**=**अस्ति** भवति, **तस्यापि वसुमतीं** वसूनि=बहूनि वस्तूनि भवन्ति यस्यां तां **छायाम्** आश्रयम् **उपस्थाय यज्ञं साधयामि । य ऊर्ध्वः** आकाशस्थः सन् **अध्वरः**=**अग्नौ हुतो** यज्ञः [**आ+अस्थात्**]=**समन्तात् तिष्ठति, तमितः** स्थानाद् **इन्द्रः** सूर्य्यो वायुर्वा धृत्वा **वीर्य्यं** वीरस्य कर्म्म पराक्रमं वा **अकृणोत्**=**करोति** ।। २ । ८ ।।

जो यह अग्नि (**विष्णोः**) यज्ञ की (**स्थानम्**) स्थिति के लिए (**असि**) होता है, उस (**वसुमतीम्**) बहुत वस्तुओं वाले (**छायाम्**) आश्रय को भी प्राप्त करके यज्ञ को सिद्ध करूँ । और जो (**ऊर्ध्वः**) आकाश में स्थित होता हुआ (**अध्वरः**) अग्नि में हुत=हवन रूप यज्ञ (**आ+अस्थात्**) सब ओर स्थित होता है, उसको (**इतः**) इस स्थान से (**इन्द्रः**) सूर्य्य अथवा वायु धारण करके (**वीर्यम्**) वीर पुरुष का कर्म्म अथवा पराक्रम (**अकृणोत्**) बना देते हैं ।। २ । ८ ।।

[**अहं देवेभ्यो यदस्कन्नम्**=**अविक्षुब्धमाज्यं......सम्भ्रियासम्**]

भावार्थः—ईश्वर उपदिशति—येन पूर्वोक्तेन यज्ञेनान्नजले शुद्धे पुष्कले भवतस्तदेतस्य सिद्धयर्थे मनुष्यैः पुष्कलाः सम्भाराः सदा चेतव्याः ।

भावार्थ—ईश्वर उपदेश करता है—जिस पूर्वोक्त यज्ञ से अन्न और जल शुद्ध एवं अधिक मात्रा में उत्पन्न होते हैं उस यज्ञ की सिद्धि के लिए मनुष्यों को बहुत सी यज्ञ सामग्री सदा जोड़नी चाहिए ।

[[**विष्णो**]......**त्वा**=**तदहंमाऽवक्रमिषं**=**मोल्लङ्घयेयम्**]

नैव मम व्यापकस्याज्ञामुल्लंध्य वर्तितव्यम् । किन्तु—

मुझ व्यापक ईश्वर की इस आज्ञा का कभी उल्लंघन न करें । किन्तु—

[**वसुमतीं छायामुपस्थाय यज्ञं साधयामि**]

बहुसुखप्रापकं मदाश्रयं गृहीत्वाऽग्नौ यो यज्ञः क्रियते,

बहुत सुखों को प्राप्त कराने वाले मेरे आश्रय को लेकर अग्नि में जो यज्ञ किया जाता है,

[**य ऊर्ध्वोऽध्वरः**=**अग्नौ हुतः** [**आ+अस्थात्**] **समन्तात् तिष्ठति तमित इन्द्रोधृत्वा वीर्यमकृणोत्**=**करोति**]

यमिन्द्रः स्वकीयैः किरणैश्छित्त्वा वायुना सहोर्ध्वभाकृष्योर्ध्वं मेघमण्डले स्थापयति, पुनस्तस्माद भूमिं प्रति निपातयति, येन भूमौ महद्वीर्यं

जिसे सूर्य अपनी किरणों से सूक्ष्म करके वायु की सहायता से ऊपर खैंच कर ऊपर ही मेघमण्डल में स्थापित करता है, फिर वहाँ से उसे

जायते, स सदाऽनुष्ठातव्य इति ॥ २ । ८ ॥

भूमि पर गिराता है, जिससे भूमि में महान् शक्ति उत्पन्न होती है, उस यज्ञ का सदा अनुष्ठान करना चाहिए ॥ २ । ८ ॥

भा० पदार्थः—सम्भ्रियासम्=पुष्कलं सम्भारं सदा चिनुयाम् । अवक्रमिषम्=आज्ञा-मुल्लंघ्य वर्तिषीय । वसुमतीम्=बहुसुख प्रापिकाम् । छायाम्=मदाश्रयम् । आ+अस्थात्+मेघमण्डले स्थापयति ।

भाष्यसार—यज्ञ कैसा है—मनुष्य दिव्य सुखों की प्राप्ति के लिए अग्नि में घृतादि पदार्थों का होम करें तथा यज्ञ सामग्री का पुष्कल संचय करें । यह परमेश्वर की आज्ञा है इसका उल्लंघन कभी न करें । ईश्वर की इस आज्ञा का पालन करने से बहुत सुखों को प्राप्त कराने वाली उसकी छाया प्राप्त होती है ।

विष्णु अर्थात् व्यापक यज्ञ का स्थिति-स्थान अग्नि है । अग्नि का आश्रय भी बहुत वस्तुओं एवं सुखों को प्राप्त कराने वाला है । इस अग्नि से यज्ञ का अनुष्ठान करें ।

यज्ञ का फल—अग्नि में होम किए हुए घृतादि पदार्थ आकाश में मेघमण्डल में स्थित हो जाते हैं जिन्हें सूर्य वायु के सहयोग से धारण करता है और उन्हें वर्षा के रूप में भूमि पर वीर्य बनाकर बरसाता है । जिससे सब दिव्य गुणों से युक्त औषधि और वनस्पति उत्पन्न होती है ॥

परमेष्ठी प्रजापतिः । **अग्निः=ईश्वरः, भौतिकोऽग्निश्च** ॥ जगती । निषादः ॥

पुनस्तेन किं भवतीत्युपदिश्यते ॥

फिर उस यज्ञ से क्या लाभ होता है, यह उपदेश किया है ॥

अग्ने वेर्होत्रं वेर्दूत्यमवतां त्वां द्यावापृथिवीऽअव त्वं द्यावापृथिवी स्विष्टकृद्देवेभ्यऽइन्द्र ऽ आज्येन हविषा भूत्स्वाहा सं ज्योतिषा ज्योतिः ॥ ९ ॥

पदार्थः—(अग्ने) परमेश्वर भौतिको वा (वेः) विद्धि वेदयति प्रापयति वा । अत्रोभयत्र लडर्थे लङ् । वी गति० इत्यस्य प्रयोगोऽडभावश्च (होत्रम्) जुह्वति यस्मिन् तद्यज्ञकर्म (वेः) विद्धि-वेदयति प्रापयति वा । (दूत्यम्) दूतस्य कर्म तत् । दूतस्य भागकर्मणी ॥ अ० । ४ । ४ । १२१ ॥ अनेन यत्प्रत्ययः (अवताम्) रक्षतः (त्वाम्) तत् (द्यावापृथिवी) द्यौश्च पृथिवी च ते । दिवो द्यावा ॥ अ० ६ । ३ । २६ ॥ अनेन द्वन्द्वे समासे दिवः स्थाने द्यावादेशः (अव) रक्ष रक्षति वा । अत्र पक्षे व्यत्ययः (त्वम्) स वा (द्यावापृथिवी) अस्मत्प्राप्ते न्यायप्रकाशपृथिवीराज्ये । द्यावापृथिवी इति पदनामसु पठितम् ॥ निघं० ५ । ३ ॥ इत्यत्र प्राप्त्यर्थो गृह्यते (स्विष्टकृत्) यः शोभनमिष्टं करोति सः (देवेभ्यः) विद्वद्भ्यो दिव्यसुखेभ्यो वा (इन्द्रः) भौतिकः सूर्यो वायुर्वा । इन्द्रेण वायुना ॥ ऋ० १ । १४ । १० ॥ अनेनेन्द्रशब्देन वायुरपि गृह्यते (आज्येन) यज्ञेऽग्नौ च प्रक्षेपितुं योग्येन घृतादिना (हविषा) संस्कृतेन होतव्येन पदार्थेन (भूत्) भवति । अत्र लडर्थे लुङ् । अडभावश्च (स्वाहा) वेदवाणीदं कर्माह (सम्) सम्यगर्थे (ज्योतिषा) तेजस्विना लोकसमूहेन सह (ज्योतिः) प्रकाशवान् द्युतेरिसन्नादेश्चजः ॥ उ० २ । १०५ ॥ इति द्युतधातोरिसन्प्रत्यय आदेर्जकारादेशश्च ॥ अयं मंत्रः श० १ । ४ । ५ । ४—६ व्याख्यातः ॥ ६ ॥

प्रमाणार्थ—(**वेः**) इस मन्त्रस्थ पद में दोनों जगह लट्—अर्थ में लङ् लकार है। 'वी गति०' इस धातु का यह प्रयोग है[1] और अट्—आगम का अभाव है। (**दूत्यम्**) 'दूतस्य भागकर्मणी' (अ० ४।४।१२१) इस सूत्र से यत्-प्रत्यय होता है। (**द्यावापृथिवी**) 'दिवोद्यावा' (अ० ६।३।२६) इस से द्वन्द्व समास में दिव् शब्द के स्थान में द्यावा-आदेश होता है। (**अव**) रक्ष रक्षति वा। यहां पक्ष में व्यत्यय है। (**द्यावापृथिवी**) द्यावापृथिवी शब्द निघं० (५।३) पद-नामों में पढ़ा गया है। इस लिए इस मन्त्र में प्राप्ति-अर्थ लिया जाता है। (**इन्द्रः**) 'इन्द्रेण वायुना' (ऋ० १।१४।१०) इस प्रमाण से इन्द्र शब्द से वायु अर्थ भी ग्रहण किया जाता है। (**भूत्**) भवति। यहां लट् अर्थ में लुङ्-लकार और अट्-आगम का अभाव है। (**ज्योतिः**) 'द्युतेरिसन्नादेश्चजः (उणादि० २।१०५) इस सूत्र में द्युत धातु से इसन्-प्रत्यय और आदि (**दकार**) को जकार-आदेश होता है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१।४।५।४—६) में की गई है ॥ २।६॥

सपदार्थान्वयः—हे [**अग्ने !**] **परमेश्वर** (परमेश्वर) भौतिको वा! **ये द्यावापृथिवी** द्यौश्च पृथिवी च ते **यज्ञमवताम्=रक्षतस्ते त्वं** स वा **वेः= रक्ष** विद्धि (वेदयति प्रापयति वा)।

यथाऽयमग्निर्होत्रं जुह्वति यस्मिन् तद्यज्ञकर्म्म **दूत्यं च कर्म्म** दूतस्य कर्म तत् **प्राप्तो द्यावापृथिवी** अस्मत्प्राप्ते न्यायप्रकाशपृथिवीराज्ये [**अव**]= **रक्षति तथा हे भगवन्! देवेभ्यो** विद्वद्भ्यो दिव्यसुखेभ्यो वा **स्विष्टकृत्** यः शोभनमिष्टं करोति स **त्वमस्मान् वेः=सदा पालय** (विद्धि)।

यथाऽयमाज्येन यज्ञेऽग्नौ च प्रक्षेपितुं[2] योग्येन घृतादिना **हविषा** संस्कृतेन होतव्येन पदार्थेन **ज्योतिषा** तेजस्विना लोकसमूहेन **सह ज्योतिः** प्रकाशवान् **स्विष्टकृद्** यः शोभनमिष्टं करोति **इन्द्रः** भौतिकः सूर्य्यो वायुर्वा **द्यावापृथिव्यो रक्षको भूत्-भवति, तथा त्वं विज्ञानज्योतिःप्रदानेनाऽस्मान् सम्+अव** सम्यग्रक्ष (रक्षति वा) **इति स्वाहा** वेदवाणीदं कर्म्माऽऽह ॥ २।६॥

भावार्थ—हे [**अग्ने !**] परमेश्वर अथवा भौतिक अग्ने! जो (**द्यावापृथिवी**) द्युलोक और पृथिवी लोक यज्ञ की (**अवताम्**) रक्षा करते हैं, उनकी (**त्वम्**) आप या यह भौतिक अग्नि (**वेः**) रक्षा करें।

जैसे यह अग्नि (**होत्रम्**) यज्ञ-कर्म और (**दूत्यम्**) दूत-कर्म को प्राप्त होकर (**द्यावापृथिवी**) हमारे लिए प्राप्त न्याय-प्रकाश और पृथिवी के राज्य की [**अव**] रक्षा करता है, वैसे हे भगवन्! (**देवेभ्यः**) विद्वानों वा दिव्यसुखों के लिए (**स्विष्टकृत्**) अच्छे-अच्छे इष्ट कार्यों को सिद्ध करने वाला तू भौतिक-अग्नि हमारी भी (**वेः**) सदा पालना कर।

जैसे यह=अग्नि (**आज्येन**) यज्ञ और अग्नि में डालने योग्य घृतादि से (**हविषा**) शुद्ध हव्य पदार्थ से (**ज्योतिषा**) तेजस्वी लोकसमूह के साथ (**ज्योतिः**) प्रकाशमान **स्विष्टकृत्**) बहुत इष्टकारी (**इन्द्रः**) सूर्य्य अथवा वायु (**द्यावापृथिवी**) हमारे लिए प्राप्त न्याय-प्रकाश और पृथिवी के राज्य का रक्षक (**भूत्**) है, वैसे तू=जगदीश्वर विज्ञान रूप ज्योति के दान से हमारी (**सम्+अव**) भली-भाँति सदा रक्षा कर, ऐसा (**स्वाहा**) वेदवाणी ने इस कर्त्तव्य-कर्म का उपदेश किया है॥ २।६॥

[अयमग्निर्होत्रं 'दूत्यं च कर्म प्राप्तो द्यावापृथिवी [अव] रक्षति···हे भगवन्!···स्विष्टकृत् त्वमस्मान् वेः=सदा पालय]

१. विद्धि' इस व्याख्या को देखते हुए 'विद्' धातु का प्रयोग भी संभव है।

२. प्रक्षेप्तुं।

भावार्थः—ईश्वरो मनुष्येभ्यो वेदेषूपदिष्टवानस्ति — मनुष्यैर्यद्यदग्निपृथिवीसूर्यवाटवादिभ्यः पदार्थेभ्यो होत्रं दूत्यं च कर्मनिमित्तं विदित्वाऽनुष्ठीयते तत्तदिष्टकारि भवति ।

भावार्थ—ईश्वर ने मनुष्यों को वेदों में उपदेश किया है—मनुष्य जो जो अग्नि, सूर्य, वायु आदि पदार्थों से अग्निहोत्र और दूतकर्म को कर्म का निमित्त जानकर करते हैं वह कर्म इष्टकारक होता है ।

[मन्त्रसंगतिमाह—]

अष्ठममन्त्रेण यज्ञसाधनं यदुक्तं तत्फलं नवमेन प्रकाशितमिति ॥ २ । ६ ॥

आठवें मन्त्र में जो यज्ञ के साधनों का उपदेश किया है यहाँ नवम मन्त्र में उस यज्ञ के फल को प्रकाशित किया है ॥ २ । ६ ॥

भाष्यसार—**यज्ञ**—द्यौ और पृथिवी यज्ञ की रक्षा करती हैं और उनकी ईश्वर रक्षा करता है । यज्ञ में होम करने योग्य शुद्ध घृत आदि पदार्थों से सूर्य और वायु, द्यौ और पृथिवी की रक्षा करते हैं । सूर्य ज्योतिर्मय लोकों का प्रकाशक और स्वयं भी प्रकाशवान् है, जो अत्यन्त इष्टकारी (लाभकारी) है ।

ईश्वर प्रार्थना—हे अग्ने=परमेश्वर ! आप द्यौ और पृथिवी की रक्षा कीजिए । हे भगवन् ! आप विद्वानों वा दिव्य सुखों की प्राप्ति के लिए अत्यन्त इष्टकारी हो । अतः आप हमारी सदा पालना करो । आप सूर्य के समान विज्ञान ज्योति प्रदान करके हमारी रक्षा कीजिये ॥

अग्नि—भौतिक अग्नि, अग्निहोत्र और दूतकर्म का साधक है । न्यायप्रकाश और पृथिवीराज्य का रक्षक है ॥

परमेष्ठी प्रजापतिः । **इन्द्रोः**=**ईश्वरः** ॥ भुरिग्ब्राह्मीपंक्तिः । पञ्चमः स्वरः ॥

अथ तज्जन्यं फलमुपदिश्यते ॥

अब उक्त यज्ञ से उत्पन्न होने वाले फल का उपदेश किया है ॥

मयीदमिन्द्रऽइन्द्रियं दधात्वस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम् ।
अस्माकꣳसन्त्वाशिषः सत्या नः सन्त्वाशिषऽउपहूता पृथिवी मातोप मां
पृथिवी माता ह्वयतामग्निराग्नीध्रात् स्वाहा ॥ १० ॥

पदार्थः—(**इन्द्रः**) परमेश्वरः (**इन्द्रियम्**) इन्द्रस्यैश्वर्य्यप्राप्तेर्लिङ्गं चिह्नमिन्द्रेण परमेश्वरेण दृष्टमिन्द्रेण सृष्टं प्रकाशितमिन्द्रेण विद्यावता जीवेन जुष्टं संप्रीत्या सेवितमिन्द्रेण परमेश्वरेण यद्दत्तं सर्वसुखज्ञानसाधकम् । इन्द्रियमिन्द्रलिंगमिन्द्रदृष्टमिन्द्रसृष्टमिन्द्रजुष्टमिन्द्रदत्तमिति वा ॥ अ० ५ । २ । ६३ ॥ अनेनोक्तेऽर्थेष्विन्द्रियशब्दो निपातितः (**दधातु**) नित्यं धारयतु (**अस्मान्**) मनुष्यान् (**रायः**) विद्यासुवर्णचक्रवर्त्तिराज्यादिधनानि । राय इति धननामसु पठितम् ॥ निघं० २ । १० ॥ (**मघवानः**) मघानि=बहूनि धनानि विद्यन्ते येश्वैश्वर्य्ययोगेषु ते । अत्र भूम्न्यर्थे मतुप् । मघमिति धननामधेयं मंहतेर्दानकर्मणः ॥ निरु० २ । ७ ॥ (**सचन्ताम्**) समवेताः=प्राप्ता भवन्तु (**अस्माकम्**) परोपकारिणां धार्मिकाणां मानवानाम् (**सन्तु**) भवन्तु (**आशिषः**) कामनाः (**सत्याः**) सिद्धाः (**नः**) अस्माकं विद्यावतां राज्यसेविनाम् । (**सन्तु**) भवन्तु (**आशिषः**) न्यायेच्छाविशिष्टाः क्रियाः । शास इत्वे आशासः क्वावुपसंख्यानम् ॥ अ० ६ । ४ । ३४ ॥ अनेन वार्त्तिकेनाशीरिति सिद्धः (**उपहूता**) उपहूयते जनैराज्यसुखार्थं या (**पृथिवी**) पृथुसुखनिमित्ता (**माता**) मान्यकरणहेतुः (**उप**) गतार्थे (**माम्**) सुखार्थिनं धार्मिकम् (**पृथिवी**) पृथुसुखदात्री विद्या (**माता**)

धर्मार्थकाममोक्षसिद्ध्या मान्यदात्री (ह्वयताम्) स्पर्धतामुपदिशताम् (अग्निः) ईश्वरः (आग्नीध्रात्) अग्निरिध्यते=प्रदीप्यते यस्मिन् तस्येदं शरणमाश्रयणं तस्मात्। अग्नीधः शरणे रञ भं च॥ अ० ४।३।१२०॥ अनेन वार्त्तिकेनाधिकरणवाचिनः क्विबन्तादग्नीध् प्रातिपदिका दञ्प्रत्ययः (स्वाहा) सुहुतमाह यया सा॥ अयं मंत्रः श० १।८।१।४२ तथा ४१ व्याख्यातः॥ १०॥

प्रमाणार्थ—(इन्द्रियम्) 'इन्द्रियमिन्द्रलिङ्गमिन्द्रदृष्टमिन्द्रसृष्टमिन्द्रजुष्टमिन्द्रदत्तमिति वा (अ० ५।२।९३) से उपर्युक्त अर्थ में यह शब्द निपातित है। (रायः) यह शब्द निघं० (२।१०) में धन नामों में पढ़ा है। (मघवानः) यहां आधिक्य अर्थ में 'मतुप्' प्रत्यय है। निरुक्त (२।७) के अनुसार मघ का अर्थ धन है, क्योंकि मघ शब्द दानार्थक 'मंह' धातु से बनता है। (आशिषः) यह शब्द 'शास इत्वे आशासः क्वावुपसंख्यानम्' (अ० ६।४।३४) वार्त्तिक से सिद्ध होता है। (आग्नीध्रात्) यह शब्द 'अग्नीधः शरणेरण भं च' (अ० ४।३।१२०) वार्त्तिक से अधिकरणवाची क्विबन्त 'अग्नीध्' प्रातिपदिक से 'रण' प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है[1]। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१।८।१।४२) में की गई है। २।१०॥

सपदार्थान्वयः—**इन्द्रः** परमेश्वरो **मयीदमिन्द्रियम्** इन्द्रस्यैश्वर्य्यप्राप्तेलिङ्गं=चिह्नमिन्द्रेण=परमेश्वरेण दृष्टमिन्द्रेण सृष्टम्=प्रकाशितमिन्द्रेण=विद्यावता जीवेन जुष्टम्=संप्रीत्या सेवितमिन्द्रेण=परमेश्वरेण यद् दत्तं सर्वसुखज्ञानसाधकं **रायः** विद्यासुवर्णचक्रवर्त्तिराज्यादिधनानि **च दधातु** नित्यं धारयतु।

भाषार्थ—(इन्द्रः) परमेश्वर (मयि) मुझ में (इदम्) इस (इन्द्रियम्) इन्द्रिय अर्थात् इन्द्र का जो ऐश्वर्य-प्राप्ति का चिह्न है, इन्द्र=परमेश्वर ने जो देखा है, इन्द्र ने जो प्रकाशित किया है, इन्द्र अर्थात् विद्या-सम्पन्न जीव ने जो प्रेमपूर्वक सेवन किया है, इन्द्र अर्थात् परमेश्वर ने जो सब सुख और ज्ञान का साधन प्रदान किया है, उस इन्द्रिय (मन) को और (रायः) विद्या, सोना तथा चक्रवर्त्ति राज्य आदि धनों को (दधातु) सदा धारण करावें।

तत्कृपया स्वपुरुषार्थेन च यथा वयं मघवानो मघानि=बहूनि धनानि विद्यन्ते येष्वैश्वर्य्ययोगेषु ते **भवेम, तथाऽस्मान्** मनुष्यान् **रायो** विद्यासुवर्णचक्रवर्त्तिराज्यादिधनानि **सचन्तां** समवेताः=प्राप्ता भवन्तु।

एवं चाऽस्माकं परोपकारिणां धार्मिकाणां मानवानाम् [**नः**] अस्माकं विद्यावतां राज्यसेविनां **आशिषः** कामनाः न्यायेच्छाविशिष्टाः क्रियाः **सत्याः** सिद्धाः **सन्तु** भवन्तु।

एवं माता मान्यकरणहेतुः धर्मार्थ काममोक्षसिद्ध्या मान्यदात्री **इयं पृथिवी=विद्या** पृथुसुखनिमित्ता पृथुसुखदात्री विद्या **उपहूता** उपहूयते जनै राज्यसुखार्थं या **च सती मां** सुखार्थिनं धार्मिकम् **उप +ह्वयताम्=उपदिशतां** स्पर्द्धताम् (उपदिशताम्)।

उस परमेश्वर की कृपा और अपने पुरुषार्थ से जैसे हम लोग (मघवानः) अत्यन्त ऐश्वर्य-सम्पन्न होवें, वैसे (अस्मान्) हम मनुष्यों को (रायः) विद्या, सोना, तथा चक्रवर्त्ति राज्य आदि धनों को (सचन्ताम्) प्राप्त होवें।

और इस प्रकार (अस्माकम्) हम परोपकारी, धार्मिक मनुष्यों की [नः] विद्वान् राज्य सेवकों की (आशिषः) कामनाएँ न्यायेच्छा से युक्त क्रियायें (सत्याः) सिद्ध (सन्तु) होवें।

इसी प्रकार (माता) मान प्राप्ति की हेतु तथा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि से मान देने वाला (पृथिवी) अत्यन्त सुखकारी जो भूमि और विद्या हैं कि (उपहूता) जिसे लोग राज्य-सुख के लिए सेवन करते हैं, उसका (माम्) मुझ सुख के अभि-

१. रण प्रत्ययान्त अग्नीध्र शब्द से अग्नीध्र साधारणाभ्यामञ् (५।४।३६) से स्वार्थ में अञ् प्रत्यय] हो जाता है।

लाषी धार्मिक जन के लिए (**उप+ह्वयताम्**) उपदेश कीजिए ।

तथा मयाऽनुष्ठितोऽयमग्निः ईश्वर **आग्नीध्राद्** अग्निरिध्यते=प्रदीप्यते यस्मिँस्तस्येदं शरण-माश्रयणं तस्माद् **इष्टकृत्सन् नः=अस्माकम्** **सुखान्युपह्वयति, एवं सम्यग्घुतमिष्टकारि भवतीति** **स्वाहा=वेदवाण्याह** सुहुतमाह यया सा ॥ २ । १० ॥

तथा मेरे द्वारा उपासित यह (**अग्निः**) ईश्वर (**आग्नीध्रात्**) अग्नि जिसमें प्रदीप्त की जाती है, उसका आश्रय होने से अत्यन्त इष्टकारी होता हुआ (**नः**) हमें सुख प्रदान करता है । इसी प्रकार विधि-पूर्वक किया हुआ हवन अत्यन्त इष्टकारक होता है, (**स्वाहा**) ऐसा वेदवाणी होम करने का सब मनुष्यों को उपदेश करती है ॥ २ । १० ॥

[**इन्द्रो मयीदमिन्द्रियं……दधातु, तत्कृपया स्वपुरुषार्थेन च यथा वयं मघवानो भवेम, तथाऽस्मान् रायः सचन्ताम्, एवं चास्माकमाशिषः सत्याः सन्तु**]

भावार्थः—ये पुरुषार्थिन ईश्वरोपासका स्त एव शोभनं मनः श्रेष्ठान्युत्तमानि धनानि सत्या इच्छाश्च प्राप्नुवन्ति; नेतरे ।

भावार्थ—जो मनुष्य पुरुषार्थी और ईश्वर के उपासक हैं वे ही स्वच्छ मन, श्रेष्ठ=उत्तम धन और कामना की सिद्धि को प्राप्त होते हैं; दूसरे नहीं ।

[**पृथिवी**]

सर्वस्य मान्य प्राप्तिहेतुत्वाद् भूमिविद्ये पृथिवी-शब्देनात्र प्रकाशिते स्तः । सर्वैरेते सदोपकर्त्तव्ये भवत इतीश्वरोऽनेन वेदमन्त्रेणाह ।

सबके मान प्राप्ति के हेतु भूमि और विद्या पृथिवी शब्द से यहां प्रकाशित किए हैं । सब इनसे सदा उपकार करें यह ईश्वर ने उस मन्त्र के द्वारा उपदेश किया है ।

[**मन्त्रसंगतिमाह**—]

नवममन्त्रेणाग्न्यादिभ्यः साधितेभ्य इष्टसुख-प्राप्तिरुदिता सैवानेन दशमेन मन्त्रेण प्रकाशितेति ॥ २ । १० ॥

नवम मन्त्र के द्वारा सिद्ध किए गए अग्नि आदि पदार्थों से जो अभीष्ट सुख प्राप्ति का उपदेश किया गया है वही इस दशम मन्त्र के द्वारा भी प्रकाशित किया है ॥ २ । १० ॥

भा० पदार्थः—इन्द्रियम्=शोभनं मनः । मघवानः=श्रेष्ठान्युत्तमानि धनानि । पृथिवी=भूमिः, विद्या ।

भाष्यसार—**यज्ञ का फल**—यज्ञ से ईश्वर स्वच्छ मन, विद्या, सुवर्ण, चक्रवर्त्ति राज्य, आदि धन प्रदान करता है । यज्ञ से परोपकारी धार्मिक-जनों की कामनाओं की सिद्धि होती है । यज्ञ से मान प्राप्ति के हेतु भूमि और विद्या की प्राप्ति होती है । यज्ञ से ईश्वर सब अभीष्ट सुख प्रदान करता है । यह वेद का उपदेश है ॥

पृथिवी—यहाँ पृथिवी शब्द से भूमि और विद्या अर्थ ग्रहण किए हैं । भूमि को माता इस लिए कहा है कि यह मान प्राप्ति का हेतु है । विद्या को भी माता इस लिए कहा है कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि से मान प्रदान करने वाली है एवं अत्यन्त सुख देने वाली है ।

अन्यत्र व्याख्यात—महर्षि ने इस मन्त्र की व्याख्या ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका (प्रार्थनायाचनासमर्पण विषय) में इस प्रकार की है :—

(क) "(**मयीदमिन्द्र०**) हे उत्तम ऐश्वर्ययुक्त परमेश्वर ! आप अपनी कृपा से श्रोत्र आदि

उत्तम इन्द्रिय और श्रेष्ठ स्वभाव वाले मन को मुझ में स्थिर कीजिये अर्थात् हमको उत्तम गुण और पदार्थों के सहित सब दिन के लिये कीजिये (**अस्मान् रा०**) हे परम धन वाले ईश्वर ! आप उत्तम राज्य आदि धन वाले हमको सदा के लिये कीजिये (**सचन्तां०**) मनुष्यों के लिये ईश्वर की यह आज्ञा है कि हे मनुष्यो ! तुम लोग सब काल में सब प्रकार से उत्तम गुणों का ग्रहण और उत्तम ही कर्मों का सेवन सदा करते रहो (**अस्माकं स०**) हे भगवन् ! आप की कृपा से हम लोगों की सब इच्छा सर्वदा सत्य ही होती रहे। तथा सदा सत्य ही कर्म करने की इच्छा हो किन्तु चक्रवर्ती राज्य आदि बड़े-बड़े काम करने की योग्यता हमारे बीच में स्थिर कीजिए।"

आर्याभिविनय (२।५१) में इस मन्त्र की व्याख्या इस प्रकार है:—

(ख) "हे इन्द्र=परमैश्वर्यवान् ईश्वर ! 'मयि' मुझ में विज्ञानादि शुद्ध इन्द्रिय 'रायः' उत्तम धन को 'मघवानः' परम धनवान् आप 'सचन्ताम्' सद्यः प्राप्त करो। हे सर्वकाम पूर्ण करने वाले ईश्वर ! आपकी कृपा से हमारी आशा सत्य ही होनी चाहिए (पुनरुक्त अत्यन्त प्रेम और त्वरा द्योतनार्थ है)। हे भगवन् ! हम लोगों की इच्छा आप शीघ्र ही सत्य कीजिए जिससे हमारी न्याययुक्त इच्छा के सिद्ध होने से हम लोग परमानन्द में सदा रहें" ॥ २।१०॥

परमेष्ठी प्रजापतिः। **द्यावापृथिवी**=**प्रकाशस्वरूप ईश्वरः, पृथिवी च** ॥ मध्यमः ॥

पुनस्तमेवार्थं दृढयति[1] ॥

फिर भी उक्त अर्थ को दृढ़ किया है ॥

उप॑हूतो॒ द्यौष्पि॒तोप॒ मां द्यौष्पि॒ता ह्व॑यताम॒ग्निरा॒ग्नीध्रा॒त् स्वाहा॑ ।
दे॒वस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वे॒ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम् ।
प्रति॑गृह्णाम्य॒ग्नेष्ट्वा॒स्ये॒न॒ प्राश्ना॑मि ॥११॥

पदार्थः—(**उपहूतः**) कृतोपह्वानः (**द्यौः**) प्रकाशरूपः (**पिता**) सर्वपालक ईश्वरः (**उप**) क्रियार्थे (**माम्**) सुखभोक्तारम् (**द्यौः**) प्रकाशमयः (**पिता**) पालनहेतुः सूर्य्यलोकः (**ह्वयताम्**) ह्वयति। अत्र व्यत्ययेन लडर्थे लोट् (**अग्निः**) जाठरस्थः (**अग्निध्रात्**) अन्नाशयात्। साधुस्वमस्य पूर्ववज्ज्ञेयम् (**स्वाहा**) सुहुतं सुखकार्य्यहिश्वरः (**देवेस्य**) हर्षकरस्य (**त्वा**) त्वां तं वा (**सवितुः**) सर्वस्य जगतः प्रसवितुरीश्वरस्य (**प्रसवे**) उत्पन्नेऽस्मिन् जगति (**अश्विनोः**) प्राणापानयोः (**बाहुभ्याम्**) आकर्षण-धारणाभ्याम् (**पूष्णः**) पुष्टिहेतोः समानस्य वायोः (**हस्ताभ्याम्**) शोधनसर्वाङ्ग-प्रापणाभ्याम् (**प्रतिगृह्णामि**) नित्यं स्वीकरोमि (**अग्नेः**) भौतिकस्य पाचकस्य (**त्वा**) तं भक्ष्यं पदार्थम् (**आस्येन**) मुखेन। ओष्ठात्प्रभृति प्राक्काकलकादास्यम् ॥ अ० १।१।९॥ इति महाभाष्ये। अस्यन्ति=प्रक्षिपन्ति उदरेऽन्नादिकं येन तदास्यं मुखम् (प्र) गुणैर्यत्प्रकृष्टं तदर्थे। क्रियायोगे। प्रपरेत्येतस्य प्रातिलोम्यं प्राह ॥ निरु० १।३॥ (**अश्नामि**) भुंजे ॥ अयं मंत्रः श० १।८।१।४१ व्याख्यातः ॥ ११ ॥

प्रमाणार्थ—(**ह्वयताम्**) ह्वयति। यहां व्यत्यय से लट् अर्थ में लोट् लकार है। (**आग्नी-**

---

१ द्रढयति।

ध्रात्) इस शब्द को साधुत्व पूर्ववत् (२ । १०) समझें (**आस्येन**) महाभाष्य (अ० १ । १ । ६) के अनुसार ओष्ठ से लेकर काकलक (**टेंटुए**) से पूर्व तक के भाग को आस्य० (**मुख**) कहा गया है। (**प्र**) निरु० (१ । ३) के अनुसार 'प्र' और 'परा' ये दोनों उपसर्ग 'आ' के प्रतिकूल अर्थ को कहते हैं। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१ । ६ । ३ । ३६—४४) में की गई है। २ । ११ ॥

सपदार्थान्वयः—**मया द्यौः** प्रकाशस्वरूपः, **पिता**=**ईश्वरः** सर्वपालक (ईश्वरः) **उपहूतः** कृतोपह्वानो **मां** सुखभोक्तारम् **उप**+**ह्वयताम्**=**स्वीकरोतु।**

भाषार्थ—मेरे द्वारा (**द्यौः**) प्रकाशस्वरूप (**पिता**) सब का पालन करने वाला परमेश्वर (**उपहूतः**) उपासना किया हुआ (**माम्**) सुखोपभोग करने वाले मुझको (**उपह्वयताम्**) अपनी शरण में लेता है।

एवं मया द्यौः प्रकाशमयः **पिता**=**पालनहेतुः सूर्यलोक उपहूतः**=**स्पर्द्धितः सन्** कृतोपह्वानो **मां** सुखभोक्तारं **विद्यायै** [**उपह्वयताम्**]=**उपह्वयति।**

इसी प्रकार मेरे द्वारा (**द्यौः**) प्रकाशमय (**पिता**) पालन करने वाला सूर्यलोक (**उपहूतः**) सेवन किया हुआ (**माम्**) मुझ सुख उपभोक्ता को **ज्ञान प्रदान** करता है।

योऽग्निः जाठरस्थः **स्वाहा**=**सुहुतं भुक्तमन्नं** (सुहुतं) सुखकार्यहिश्वर **आग्नीध्रात्** अन्नाशयात् **पचति, यो देवस्य** हर्षकारस्य **सवितुः** सर्वस्य जगतः प्रसवितुरीश्वरस्य **प्रसवे** उत्पन्नेऽस्मिन् जगति **वर्त्तमानोऽस्ति, तं अहं** [**त्वा**]=**भोगं** तं भक्ष्यं पदार्थम् **अश्विनोः** प्राणाऽपानयोः **बाहुभ्याम्** आकर्षणधारणाभ्यां **पूष्णः** पुष्टिहेतोः **समानस्य वायोः हस्ताभ्यां** शोधनसर्वाङ्गप्रापणाभ्यां **प्रति**+**गृह्णामि** नित्यं स्वीकरोमि।

जो (**अग्निः**) जाठर—अग्नि=(**स्वाहा**) **जिसमें** होम किया हुआ ईश्वर ने सुखकारी बतलाया है अथवा खाए हुए अन्न को (**आग्नीध्रात्**) अन्नाशय से पकाता है, जो (**देवेस्य**) आनन्ददायक (**सवितुः**) सब जगत् के उत्पन्न करने वाले ईश्वर के (**प्रसवे**) पैदा किए इस जगत् में विद्यमान् है, [**त्वा**] उस भोग (**भक्ष्य-पदार्थ**) को मैं (**अश्विनोः**) प्राण और अपान की (**बाहुभ्याम्**) आकर्षण और धारण शक्ति के द्वारा तथा (**पूष्णः**) पुष्टिकारक समान-वायु के (**हस्ताभ्याम्**) शोधन और शरीर के अङ्ग अङ्ग में पहुँचाने वाले रूप गुणों से (**प्रतिगृह्णामि**) नित्य ग्रहण करता हूँ।

गृहीत्वा च प्रदीप्तस्याऽग्नेः भौतिकस्य, पाचकस्य **मध्ये पाचयित्वा** [**त्वा**] **तं** (त्वां तं वा) **आस्येन** मुखेन **प्राश्नामि** प्रकर्षेण भुञ्जे ॥ २ । ११ ॥

और ग्रहण करके प्रज्वलित (**अग्नेः**) **भौतिक** पाचक अग्नि में पकाकर [**त्वा**] उस भक्ष्य-पदार्थ को (**आस्येन**) मुख से (**प्र**+**अश्नामि**) अच्छे प्रकार खाता हूँ ॥ २ । ११ ॥

[**मया द्यौः पिता**=**ईश्वर उपहूतो मां मुपह्वयतां**=**स्वीकरोतु...विद्यायै** [**उपह्वयताम्**]=**उपह्वयति**]

भावार्थः—अत्र श्लेषालङ्कारः ॥ मनुष्यैरात्मशुद्ध्यर्थमनन्तविद्याप्रकाशकस्य परमेश्वरस्याह्वानं नित्यं कार्यम् । तथा च—विद्या सिद्धये—

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष अलङ्कार है ॥ मनुष्यों को अपनी आत्मा की शुद्धि के लिये अनन्त विद्या के प्रकाशक परमेश्वर की उपासना नित्य करनी चाहिए और विद्या की सिद्धि के लिये—

[**अग्निः स्वाहा**=**सुहुतं भुक्तमन्नमाग्नीध्रात् पचति**]

चक्षुषा संशोध्य, जाठराग्निं प्रदीप्य संस्कृतं मितमन्नं नित्यं भोक्तव्यम्।

आँखों से भली प्रकार देखकर, जाठराग्नि को प्रदीप्त कर शुद्ध एवं परिमित भोजन नित्य करें।

[देवस्य सवितुः प्रसवे——अहं [त्वा] भोगं—हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामि]

ईश्वरेण जगत्युत्पादितैः पदार्थैर्यः सर्वो भोगः सिध्यति, स च विद्याधर्मयुक्तेन व्यवहारेण भोक्तव्यो भोजयितव्यश्च।

ईश्वर के द्वारा जगत् में उत्पन्न किये पदार्थों से जो सब भोग सिद्ध होते हैं उनका विद्या और धर्म से युक्त व्यवहार से स्वयं उपभोग करें और करावें।

[मन्त्रसंगतिमाह—]

ये पूर्वमन्त्रेण पृथिव्यां विद्यया प्राप्तव्या मान्यकारिणः पदार्था उक्तास्तेषां भोगो धर्मेण युक्त्या च सर्वैः कार्य इत्यनेन प्रतिपादितः ॥ २ । ११ ॥

पूर्व मन्त्र के द्वारा पृथिवी पर विद्या से प्राप्त होने वाले, मान के हेतु पदार्थ कहे हैं उनका उपभोग धर्म और युक्तिपूर्वक सब जनों को करना उचित है। यह इस मन्त्र के द्वारा प्रतिपादित किया है ॥ २ । ११ ॥

भा० पदार्थः—द्यौः=अनन्त विद्या प्रकाशक ईश्वरः। अग्निः=जाठराग्निः।

भाष्यसार—१. ईश्वर—अनन्त विद्या को प्रकाशित करने वाला, सब का पालक, उपासना से उपासक को स्वीकार करने वाला है।

२. सूर्य—प्रकाशमय और पालन का हेतु है। सुख के उपभोक्ता को सूर्य, विद्या की प्राप्ति के लिए मानो बुला रहा है।

३. अग्नि—ईश्वर के उत्पन्न किये इस संसार में विद्यमान है। जाठराग्नि के रूप में विद्यमान अग्नि युक्त अन्न को अन्नाशय में पकाता है।

४. भोग—भक्ष्य पदार्थ प्राण और अपान की धारणा एवं आकर्षण रूप शक्तियों से तथा पुष्टिकारक समान वायु के शोधन एवं सर्वाङ्गप्राप्ति रूप गुणों के कारण ग्रहण किये जाते हैं तत्पश्चात् उन्हें अग्नि में पकाकर उनका उपभोग किया जाता है ॥

परमेष्ठी प्रजापतिः। **सविता**=ईश्वरः ॥ भुरिग्बृहती। मध्यमः ॥

कस्मै प्रयोजनाय केनायं विद्याप्रबन्धः प्रकाशित इत्युपदिश्यते।

किस प्रयोजन के लिए और किस ने यह विद्या का प्रबन्ध प्रकाशित किया है, यह उपदेश किया जाता है ॥

एतं ते देव सवितर्यज्ञं प्राहुर्बृहस्पतये ब्रह्मणे।
तेन यज्ञमव तेन यज्ञपतिं तेन मामव ॥ १२ ॥

पदार्थः—(एतम्) पूर्वोक्तम् (ते) तव (**देव**) दिव्यसुखगुणानां दातः (**सवितः**) सकलैश्वर्य्यविधातर्जगदीश्वर (**यज्ञम्**) य सुखाय यष्टुमर्हम् (**प्राहुः**) प्रकृष्टं ब्रुवन्ति (**बृहस्पतये**) बृहत्या वेदवाण्याः

पालकाय (**ब्रह्मणे**) चतुर्वेदाध्ययनेन ब्रह्मत्वाधिकारं प्राप्ताय (**तेन**) बृहद्विज्ञानदानेन (**यज्ञम्**) पूर्वोक्तं त्रिविधम् (**श्रव**) नित्यं रक्ष (**तेन**) धर्मानुष्ठानेन (**यज्ञपतिम्**) यज्ञस्यानुष्ठानेन पालकम् (**तेन**) विद्याधर्म-प्रकाशेन (**माम्**) (**श्रव**) रक्ष ॥ **अयं मंत्रः श० १ । ७ । ४ । २१ व्याख्यातः ॥ १२ ॥**

प्रमाणार्थः—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१ । ७ । ४ । २१) में की गई है । २ । १२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे देव ! दिव्यगुण-सुखानां दातः ! **सवितः**=**जगदीश्वर** सकलैश्वर्य्य-विधातः (जगदीश्वर) ! **वेदा विद्वांसश्च यमेतं** पूर्वोक्तं **यज्ञं** यं सुखाय यष्टुमर्हं **भवत्प्रकाशितं** **प्र+श्राहुः** प्रकृष्टं ब्रुवन्ति, **येन** बृहस्पतये बृहत्या वेदवाण्याः पालकाय **ब्रह्मणे** चतुर्वेदाऽध्ययनेन ब्रह्मत्वाऽधिकारं प्राप्ताय **सुखाऽधिकाराः प्राप्नुवन्ति,** **तेन** बृहद्विज्ञान-दानेन **इमं यज्ञं** पूर्वोक्तं त्रिविधं, [**तेन**] धर्माऽनुष्ठानेन **यज्ञपतिं** यज्ञस्यऽनुष्ठानेन पालकम्, [**तेन**] विद्या-धर्म-प्रकाशेन **मां चाऽव**= **सततं रक्ष** नित्यं (रक्ष) ॥ २ । १२ ॥

भाषार्थ—हे (**देव**!) दिव्य सुख और गुणों के दातः ! (**सवितः**) सकल ऐश्वर्य के विधाता जगदीश्वर ! वेद और विद्वान् लोग जिस (**एतम्**) इस पूर्वोक्त सुखदायक यज्ञ को आप से प्रकाशित हुआ (**प्राहुः**) बतलाते हैं, जिससे (**बृहस्पतये**) सब से बड़ी वेद-वाणी का पालन करने वाले (**ब्रह्मणे**) चारों वेदों के अध्ययन से ब्रह्मा के पद को जिसने प्राप्त किया है, उस विद्वान् को सुख एवं श्रेष्ठ अधिकार प्राप्त होते हैं, (**तेन**) उस महान् विज्ञान के प्रदान से इस (**यज्ञम्**) पूर्वोक्त तीन प्रकार के यज्ञ की, [**तेन**] उस यज्ञ का रूप धर्मानुष्ठान से (**यज्ञपतिम्**) यज्ञाऽनुष्ठान से यज्ञ की रक्षा करने वाले की, और (**तेन**) उस विद्या-धर्म रूप प्रकाश के द्वारा (**माम्**) मेरी भी (**श्रव**) सदा रक्षा कर ॥ २ । १२ ॥

[हे—सवितः=जगदीश्वर ! वेदा विद्वांसश्च··· यज्ञं भवत्प्रकाशितमाहुः, येन बृहस्पतये ब्रह्मणे सुखाधि-काराः प्राप्नुवन्ति]

भावार्थः—ईश्वरेण सृष्टचादौ गुणवद्भ्यो ऽग्निवायुरव्यङ्गिरोभ्यश्चतुर्वेदोपदेशेन सर्वेषां मनुष्याणां विद्याप्राप्तचा सुखाय यज्ञानुष्ठानविधि-रुपदिष्टोऽनेनैव रक्षण विधानं च ।

भावार्थ—ईश्वर ने सृष्टि के प्रारम्भ में दिव्य गुणों वाले अग्नि, वायु, रवि (आदित्य) और अङ्गिरा ऋषियों लिए चारों वेदों का उपदेश करके सब मनुष्यों को विद्याप्राप्ति से सुखी होने के लिये यज्ञ करने की विधि का उपदेश किया तथा इसी से रक्षा की विधि भी बतलाई ।

[तेनेमं यज्ञं, यज्ञपतिं, मां चाऽव=सततं रक्ष]

नैव विद्या शुद्धिक्रियाभ्यां विना कस्यचित् सुख-रक्षणे भवितुमर्हतस्तस्मात् सर्वैः परस्परं प्रीत्यै तयोर्वृद्धिरक्षणे प्रयत्नतः सदैव कार्ये ।

विद्या और शुद्धि क्रिया के बिना किसी को भी सुख और रक्षा की प्राप्ति नहीं हो सकती इसलिए सब लोग परस्पर प्रीति के लिये उनकी वृद्धि और रक्षा प्रयत्नपूर्वक सदा करें ।

[मन्त्रसंगतिमाह—]

यश्चैकादशेन मन्त्रेण यज्ञफलभोग उक्तस्त-त्प्रकाश ईश्वरेणैव कृत इति गम्यते ॥ २ । १२ ॥

और—जो ग्यारहवें मन्त्र के द्वारा यज्ञफल के उपभोग का उपदेश किया गया है, उसका प्रकाश ईश्वर ने ही किया है ॥ २ । १२ ॥

भाष्यसार—१. **ईश्वर**—दिव्य गुणों और सुखों का दाता और सकल ऐश्वर्य का विधाता है। यज्ञ का रक्षक है।

२. **यज्ञ**—वेद और विद्वान् लोग कहते हैं कि यज्ञ का प्रकाश ईश्वर ने किया है। यज्ञ से ही बृहस्पति और ब्रह्मा का पद प्राप्त होता है। वेदवाणी के पालक को बृहस्पति और चारों वेदों के अध्येता को ब्रह्मा कहते हैं।

३. **ईश्वर प्रार्थना**—हे जगदीश्वर! आप महान् विज्ञान के प्रदान से उक्त तीन प्रकार के यज्ञ की रक्षा कीजिए। धर्मानुष्ठान की शिक्षा से यज्ञपति की रक्षा कीजिए। विद्या और धर्म को मेरे हृदय में प्रकाशित करके मेरी रक्षा कीजिए।

परमेष्ठी प्रजापतिः। **बृहस्पतिः**=**ईश्वरः**॥ विराड् जगती। निषादः॥

येन यज्ञः कर्तुं शक्यस्तदुपदिश्यते॥

जिस से यज्ञ किया जा सकता है, उस विषय का उपदेश किया है॥

मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं यज्ञꣳ समिमं दधातु।
विश्वे देवासऽइह मादयन्तामो३म्प्रतिष्ठ॥ १३॥

पदार्थः—(**मनः**) मननशीलं ज्ञानसाधनम् (**जूतिः**) वेगेन व्याप्तिकर्म। ऊतियूतिजूति० ॥ अ० ३। ३। ९७॥ अनेन निपातितः (**जुषताम्**) प्रीत्या सेवताम् (**आज्यस्य**) यज्ञसामग्रीम्। सुपां सुलुगिति द्वितीतास्थाने षष्ठी (**बृहस्पतिः**) बृहतां प्रकृत्याकाशादीनां पतिः=पालको जगदीश्वरः। तद् बृहतोः करपत्योश्चोरदेवतयोः सुट् तलोपश्च ॥ ६। १। १५७॥ अनेन वार्त्तिकेन बृहस्पतिशब्दो निपातितः (**यज्ञम्**) संसाराख्यम् (**इमम्**) प्रत्यक्षाप्रत्यक्षं सुखभोगहेतुम् (**तनोतु**) विस्तारयतु (**अरिष्टम्**) रिष्यते=हिंस्यते यः स रिष्टो न रिष्टोऽरिष्टस्तम् (**यज्ञम्**) अस्माभिरनुष्ठातुमर्हम् (**सम्**) एकीभावे क्रियायोगे (**इमम्**) समक्षं विज्ञानयज्ञम् (**दधातु**) धारयतु (**विश्वेदेवासः**) सर्वे विद्वांसः। अत्र जसेरसुगागमः (**इह**) अस्मिन् संसारे हृदये वा (**मादयन्ताम्**) हृषन्तु[1] (**ओम्**[2]) ईश्वरवाचको यज्ञो वेदविद्या वा॥ ओ३म् खं ब्रह्म॥ यजुः० ४०। १७॥ अत्र। अवतेष्टिलोपश्च॥ उ० १। १४२॥ अनेनाऽवधातोर्मन् प्रत्ययोऽस्य टिलोपश्च (**प्रतिष्ठ**) प्रतिष्ठति वा अत्रान्त्यपक्षे व्यत्ययो लडर्थे लोट् च॥ अयं मंत्रः श०* १। ७। ४। २२॥ व्याख्यातः॥ १३॥

प्रमाणार्थ—(**जूतिः**) जूति शब्द 'ऊतियूतिजूति०' अष्टा० (३। ३। ९७) से निपातित है। (**आज्यस्य**) यज्ञसामग्रीम्। यहां 'सुपां सुलुक०' से द्वितीया के स्थान पर षष्ठी विभक्ति है। (**बृहस्पतिः**) यह शब्द 'तद् बृहतोः करपत्योश्चोर देवतयोः सुट् तलोपश्च' अष्टा (६। १। १५७) वार्त्तिक से सिद्ध होता है। (**देवासः**) यहां बहुवचन में 'जस' को 'असुक्' आगम है। (**ओम्**) यजुर्वेद (४०। १७) के अनुसार 'ओम्' शब्द ईश्वर-वाचक है। 'अवतेष्टिलोपश्च' उणा० (१। १४२) से अव् धातु से 'मन्' प्रत्यय और उसके टि-भाग का लोप करने पर 'ओम्' शब्द सिद्ध होता है। (**प्रतिष्ठ**) प्रतिष्ठति। यहां अन्तिम पक्ष में व्यत्यय और लट् अर्थ में लोट् लकार है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१। ६। २। २२) में की गई है। २। १३॥

---

१. हृषयन्तु। २. (ओ३म्) * मत में ओ३म् शब्द नहीं है।

सपदार्थान्वयः—मम **जूतिः** वेगेन व्याप्तिकर्म **मनो** मननशीलं ज्ञानसाधनम् **आज्यस्य** यज्ञसामग्रीं **जुषतां** प्रीत्या सेवताम् ।

भाषार्थ—मेरा (**जूतिः**) अत्यन्त वेग से कर्मों में व्याप्त होने वाला (**मनः**) मननशील, ज्ञान-प्राप्ति का साधन मन (**आज्यस्य**) यज्ञ-सामग्री का (**जुषताम्**) प्रीतिपूर्वक सेवन करे ।

बृहस्पतिः बृहतां प्रकृत्याकाशादीनां पतिः पालको जगदीश्वरो **यमिमं** प्रत्यक्षाऽप्रत्यक्षं सुखभोगहेतुं **यज्ञं** संसाराऽऽख्यम् **अरिष्टं** रिष्यते हिंस्यते यः स रिष्टो न रिष्टोऽरिष्टतं **तनोतु** विस्तारयतु, **सम्+दधातु** एकीभावेन धारयतु ।

(**बृहस्पतिः**) बड़े २ प्रकृति और आकाश आदि का रक्षक जगदीश्वर जिस (**इमम्**) प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप सुखभोग के नियम (**यज्ञम्**) संसार का जो यज्ञ (**अरिष्टम्**) नाश-रहित है, (**तनोतु**) उसका विस्तार करे वा (**सम्+दधातु**) एकता के भाव से धारण करे ।

हे **विश्वेदेवासः** ! सर्वे विद्वांसः ! **इमम्=एतं** समक्षं विज्ञानयज्ञम् **अरिष्टं** रिष्यते हिंस्यते यः स रिष्टो न रिष्टोऽरिष्टस्तं [**यज्ञं**]=**यज्ञद्वयम्** अस्याभिरनुष्ठातुमर्हं **सन्तन्य संधाय च इह** अस्मिन् संसारे हृदये वा **मादयन्तां** हृषन्तु[1] ।

हे (**विश्वेदेवासः** !) सब विद्वानों ! (**इमम्**) प्रत्यक्ष जो ज्ञान-यज्ञ है वह (**अरिष्टम्**) विनाश-रहित तथा (**यज्ञम्**) हमारे द्वारा अनुष्ठान करने योग्य है। इस प्रकार के विनाश-रहित एवं हिंसा-शून्य दोनों यज्ञों का विस्तार और एकीभाव से धारण करके (**इह**) इस संसार में अथवा अपने हृदय में **मादयन्ताम्** सदा आनन्दित रहो ।

हे [**ओ३म्**]=**ओंकारवाच्य बृहस्पतये** ईश्वरवाचको यज्ञो वेदविद्या वा ! **त्वमिह** अस्मिन् संसारे हृदये वा **प्रतिष्ठ** (प्रतिष्ठति वा), **कृपयेमं यज्ञं विद्यां च प्रतिष्ठामय** ॥ २ । १३ ॥

हे [**ओ३म्!**] । ओंकार-वाच्य (**बृहस्पते**) ईश्वर नामक यज्ञ वा वेदविद्या ! तू (**इह**) इस संसार वा मेरे हृदय में (**प्रतिष्ठ**) प्रतिष्ठित हो एवं कृपा करके इस यज्ञ वा वेदविद्या को स्थापित कीजिए ॥ २ । १३ ॥

[**मम जूतिर्मन आज्यस्य जुष्ताम्**]

भावार्थः—ईश्वर आज्ञापयति—हे मनुष्या ! युष्मन्मनः सत्कर्माण्येव प्राप्नोतु ।

भावार्थ—ईश्वर आज्ञा देता है—हे मनुष्यो ! तुम्हारा मन शुभ कर्मों को ही प्राप्त हो ।

[हे **विश्वेदेवासः** ! **इमम्=एतमरिष्टं [यज्ञं]=यज्ञद्वयं सन्तन्य संधाय चहे मादयन्ताम्**]

मया यो[2] ऽयं[2] संसारे यज्ञः[2] कर्त्तुमाज्ञाप्यते तमेवानुष्ठाय सुखिनो भवन्तु, भावयन्तु वा ।

मैं इस संसार में जिस यज्ञ को करने के लिये आज्ञा देता हूँ उसी का अनुष्ठान करके स्वयं सुखी रहो तथा अन्यों को भी सुखी करो ।

हे [**ओ३म्**] **ओंकारवाच्य** !]

ओमिति परमेश्वरस्यैव नाम, यथा पिता पुत्रयोः प्रियः सम्बन्धस्तथैवेश्वरेण सहोंकारस्य सम्बन्धोंऽस्ति ।

'ओ३म्' यह परमेश्वर का ही नाम है। जैसे पिता और पुत्र का प्रिय सम्बन्ध है वैसे ही ईश्वर के साथ 'ओंकार' का सम्बन्ध है ।

---

१. हृष्यन्तु ।

२. यमिमं संसारे यज्ञं ।

[बृहस्पते ! त्वमहि प्रतिष्ठ, कृपयेमं यज्ञं विद्यां च प्रतिष्ठापय]

नैव कस्यचित् सत्क्रियया विना प्रतिष्ठा भीवेतुमर्हति, तस्मात् सर्वैर्मनुष्यैः सर्वथाऽधर्म विहाय धर्मकार्याण्येव सेवनीयानि, यतः खल्वविद्यान्धकारनिवृत्तये विद्यार्कः प्रकाशेत ।

शुभ कर्म के बिना किसी की भी प्रतिष्ठा (सम्मान) नहीं हो सकती, इस लिये सब मनुष्य सब काल में अधर्म को छोड़ कर व धर्म-कार्यों का ही सेवन करें, जिससे निश्चय ही अविद्या अन्धकार की निवृत्ति होकर विद्या का सूर्य चमक सके ।

[मन्त्रसंगतिमाह--]

द्वादशमन्त्रेण योः यज्ञः प्रकाशितस्तस्यानुष्ठानेन सर्वेषां प्रतिष्ठासुखे भवत इत्यनेन प्रकाशितम् ।। ।। २ । १३ ।।

बारहवें मन्त्र के द्वारा जिस यज्ञ का उपदेश किया गया है उसके अनुष्ठान से सबको प्रतिष्ठा और सुख प्राप्त होते हैं, यह इस मन्त्र के द्वारा प्रकाशित किया गया है ।। २ । १३ ।।

भा० पदार्थः—जुषताम्=सत्कर्माण्येव प्राप्नोतु । मादयन्ताम्=सुखिनो भवन्तु भावयन्तु वा । ओ३म्=परमेश्वरस्यैव नाम ।

भाष्यसार—**यज्ञ**—ज्ञान का साधन मन है, जो वेगवान् होने से कर्मों को शीघ्र व्याप्त कर लेता है, वह मन यज्ञादि शुभ कर्मों को प्राप्त करे । संसार एक यज्ञ है जो सब प्रकार के सुख भोगों का हेतु एवं हिंसारहित है । प्रकृति एवं आकाश आदि के पालक बृहस्पति जगदीश्वर ने इस संसार रूप यज्ञ का विस्तार किया है वही एक मात्र इसको धारण कर रहा है । विज्ञान भी एक यज्ञ है जो हिंसा से रहित है । विद्वान् लोग संसार यज्ञ का संसार में विस्तार करके तथा विज्ञान यज्ञ को हृदय में धारण करके सदा प्रसन्न रहते हैं ।

ईश्वर प्रार्थना—हे ईश्वर ! आप कृपा करके संसार में यज्ञ को प्रतिष्ठित कीजिए तथा वेदविद्या को हृदय में प्रकाशित कीजिए ।। २ । १३ ।।

●

परमेष्ठी प्रजापतिः । **अग्निः=ईश्वरो भौतिकश्च** ॥ पूर्वोऽनुष्टुप् । गान्धारः । अग्ने वाजजिदित्यत्र भुरिगार्चीगायत्री । षड्जः ॥

अग्निना यज्ञे कथमुपकारो ग्राह्य इत्युपदिश्यते ॥

यज्ञ में अग्नि से कैसे उपकार लेना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

एषा तेंऽअग्ने समित्तया वर्धस्व चा चं प्यायस्व ।
वर्धिषीमहिं च वयमा चं प्यासिषीमहि ।
अग्नें वाजजिद्वाजं त्वा ससृवाꣳसं वाजजितꣳ सम्मार्ज्मि ॥ १४ ॥

पदार्थः—(**एषा**) प्रदीप्तिहेतुः (**ते**) तव तस्य वा (**अग्ने**) परमेश्वर ! भौतिको वा (**समित्**) सम्यगिध्यते=दीप्यतेऽनया सा विद्या काष्ठादिर्वा (**तया**) विद्यया समिधा वा (**वर्धस्व**) वर्धते वा । **सर्वत्रांत्यपक्षे व्यत्ययो लडर्थे लोट् च** (**च**) समुच्चये (**आ**) क्रियायोगे (**च**) पुनरर्थे (**प्यायस्व**) प्यायते वा (**वर्धिषीमहि**) स्पष्टार्थम् (**च**) समुच्चये (**वयम्**) विद्यावन्तो धार्म्मिकाः (**आ**) समन्तात् क्रियायोगे (**च**) अन्वाचये

(**प्यासिषीमहि**) अत्र प्यैङ्धातोः सिबुत्सर्गश्छदसि ॥ अ० ३ । १ । ३४ ॥ अनेन वार्तिकेन सिप्प्रत्ययः (**अग्ने**) ज्ञानस्वरूपविजयप्रदेश्वर ! भौतिको वा (**वाजजित्**) वाजं=सर्वस्य वेगं जयति स ईश्वरः । वाजं जयति येन वा स भौतिकः (**वाजम्**) ज्ञानवन्तं वेगवन्तं वा (**त्वा**) त्वां तं वा (**ससृवांसम्**) सर्वं ज्ञानवन्तं शिल्पविद्यागुणप्राप्तिमन्तं वा (**वाजजितम्**) यो येन वा वाजं=संग्रामं जयति तम् (**सम्**) सम्यगर्थे (**मार्ज्मि**) शुद्धो भवामि शोधयामि वा ॥ अयं मंत्रः श० १ । ८ । ४—६ व्याख्यातः ॥ १४ ॥

प्रमाणार्थ—(**वर्धस्व**) वर्धते वा । यहां अन्तिम पक्ष में व्यत्यय और लट् अर्थ में लोट् लकार है । (**प्यासिषीमहि**) यहां 'प्यैङ' धातु से 'सिबुत्सर्गश्छन्दसि' अष्टा० (३ । १ । ३४) वार्तिक से सिप् प्रत्यय है । इस मन्त्र की व्याख्या (१ । ८ । २ । ४—६) में की गई है । २ । १४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे अग्ने !=जगदीश्वर परमेश्वर ! ते=तव यैषा प्राप्तिहेतुः **समित्**=वेदविद्या सम्यगिध्यते दीप्यतेऽनया सा विद्या **अस्ति तया** विद्यया **अस्माभिः स्तुतः सँस्त्वं वर्धस्व चाऽस्मान् नित्यं वर्धय ।**

हे भगवन् ! एवं भवद्विदितगुणैरस्माभिः **प्रकाशितः सँस्त्वं** [**आ+**] **प्यायस्व चाऽस्मान् नित्यं** व्यापय ।

हे **अग्ने** !=**भगवन्** ज्ञानस्वरूप विजयप्रदेश्वर! **वाजजित्** वाजं सर्वस्य वेगं जयति स ईश्वरो **वाजं** ज्ञानवन्तं **ससृवांसं** सर्वं ज्ञानवन्तं [**वाजजितम्**] यो वाजं साङ्ग्रामं जयति तं **त्वा** त्वां **वयं** विद्यावन्तो धार्मिका **वर्धिषीमहि ।**

कृपया भवान् चाऽस्मानपि वाजजितः ससृषो वाजान् करोतु । यथा वयं विद्यावन्तो धार्मिका **भवन्तम्** [**आ**] समन्तात् **प्यासिषीमहि तथैव भवाँश्चाऽस्मान् सर्वैः शुभगुणैराप्यायताम् ।**

अहं भवन्तमाश्रित्य सम्+मार्ज्मि=भवदाज्ञाऽनुष्ठानेन शुद्धो भवामि । इत्येकः ॥

या एषा प्रदीप्तिहेतुः **ते=अस्य** तस्य **अग्नेर्वर्द्धिका समित्** सम्यगिध्यते दीप्यतेऽनया सा काष्ठादिः **अस्ति, तया** समिधा **चाऽयं** [**वर्धस्व**]=**वर्धते आप्यायते च । वयं** विद्यावन्तो धार्मिका [**त्वा**]=**तं वाजं**

भाषार्थ—हे (**अग्ने!**) जगदीश्वर ! (**तव**) तेरी जो (**एषा**) यह प्रकाश का निमित्त (**समित्**) सब पदार्थों के गुणों को प्रकाशित करने वाली वेदविद्या है, (**तया**) उसी विद्या के द्वारा स्तुति किए हुए आप (**वर्धस्व**) हमारे ज्ञान में बढ़ते हो अथवा वेद-विद्या बढ़ाती है और आप हमें नित्य बढ़ाओ ।

हे भगवन् ! इसी प्रकार आपके गुणों को जानने वाले हम लोगों से भी प्रकाशित होकर आप (**आ+प्यायस्व**) बढ़ें और हमें सदा बढ़ाइये ।

हे (**अग्ने!**) ज्ञानस्वरूप और विजय प्रदान करने वाले भगवन् ! (**वाजजित्**) सबके वेग को जीतने वाले (**वाजम्**) ज्ञान-सम्पन्न (**ससृवांसम्**) सबको जानने वाले [**वाजजितम्**] सङ्ग्राम को जीतने वाले जगदीश्वर (**त्वा**) आपकी महिमा को (**वयम्**) हम विद्यावान् और धार्मिक (**वर्धिषीमहि**) बढ़ावें ।

कृपा करके आप हमें भी सबके बल के विजेता, सब व्यवहारों को जानने वाले एवं ज्ञानसम्पन्न कीजिए । जिस प्रकार (**वयम्**) हम विद्यावान् धार्मिक आप को महिमा को (**आ+प्यासिषीमहि**) सदा बढ़ाते रहें—वैसे आप भी हमें सब गुणों से भरपूर करें ।

मैं आप की शरण में आकर (**सम्+मार्ज्मि**) आप की आज्ञा के पालन से पवित्र हो जाऊँ । यह मन्त्र का पहला अर्थ है ॥

जो (**एषा**) यह प्रकाश के निमित्त (**ते**) आपकी इस अग्नि को बढ़ाने वाली (**समित्**) अच्छी प्रकार जलने योग्य काष्ठादि है, (**तया**) उस काष्ठादि से यह अग्नि (**वर्धस्व**) बढ़ता है । हम विद्यावान्

वेगवन्तं **ससृवांसं** शिल्पविद्यागुणप्राप्तिमन्तं **वाजजितम्**=**अग्निं** येन वाजं सङ्ग्रामं जयति तं **वर्धिषीमहि आ** समन्तात् **प्यासिषीमहि च**।

धार्मिक लोग [**त्वा**] उस (**वाजम्**) वेगवान् (**ससृवांसम्**) शिल्पविद्या के गुणों को प्राप्त करने वाले (**वाजजितम्**) सङ्ग्राम को जीतने वाले अग्नि को विद्या की वृद्धि के लिए (**वर्धिषीमहि आप्यासिषीमहि च**) अब ओर से बढ़ाते हैं।

यतोऽयं शिल्प-विद्यासिद्धैर्विमानादिभिर्यानैर्वाजान् सस्रुषो वाजजितोऽस्मान् विजयेन वर्धयति, [**त्वा**]=**तमहं सम्**+**मार्ज्मि** सम्यक् शोधयामि। **इति द्वितीयः** ॥ २। १४॥

जिससे यह अग्नि शिल्पविद्या से सिद्ध किए गए विमानादि यानों के द्वारा वेग वाले, शिल्प-विद्या के ज्ञाता और सङ्ग्राम के विजेता हम लोगों को विजय-प्रदान से बढ़ाता है, [**त्वा**] उस अग्नि को मैं (**सम्**+**मार्ज्मि**) अच्छे प्रकार शुद्ध करता हूँ। यह मन्त्र का दूसरा अर्थ है ॥ २। १४॥

[क्रियाद्वयाभिप्रायमाह—]

भावार्थः- अत्र श्लेषालङ्कारः ॥ क्रियाद्वयं चादरार्थं विज्ञेयम्।

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष अलङ्कार है ॥ 'वर्धस्व' और 'प्यायस्व' ये दो क्रियायें आदर के लिये समझें।

[हे अग्ने !......वाजं ससृवांसं [वाजजितं] त्वा वयं वर्धिषीमहि]

ये मनुष्याः परमेश्वराज्ञापालने क्रियाकौशले च वर्द्धन्ते ते विद्यायां सर्वानानन्दयित्वा दुष्टान् शत्रून् जित्वा शुद्धा भूत्वा सुखयन्ति; नेतरेऽलसाः।

जो मनुष्य परमेश्वर की आज्ञा पालन और क्रिया कौशल में उन्नति करते हैं वे विद्या में सबको आनन्दित करके, दुष्ट शत्रुओं को जीत कर एवं शुद्ध होकर सुखी होते हैं, दूसरे आलसी मनुष्य नहीं।

[चकारचतुष्टयाभिप्रायमाह—]

चकार चतुष्टयेनेश्वराज्ञा धर्म्या सूक्ष्मस्थूलतयाऽनेकविधाऽस्ति, तथा—क्रियाकाण्डे कर्त्तव्यानि कर्माण्यनेकानि सन्तीति विज्ञेयम्।

यहाँ चार चकारों के पाठ से यह जानना कि ईश्वर की धर्मानुकूल आज्ञा सूक्ष्म, स्थूल भेद से अनेक प्रकार की है, तथा क्रियाकाण्ड में कर्त्तव्य कर्म भी अनेक हैं।

[मन्त्रसंगतिमाह—]

त्रयोदशमन्त्रेण या वेदविद्या प्रतिपादितास्ति तया सुखार्थं यज्ञसंधानमुक्तमनेनैतयैव पुरुषार्थः कार्य इति प्रकाशितम् ॥ २। १४ ॥

तेरहवें मन्त्र के द्वारा जिस वेद विद्या का प्रतिपादन किया गया है उससे सुख प्राप्ति के लिए **यज्ञ** धारण का उपदेश है, और इस मन्त्र के द्वारा इस वेदविद्या से इस प्रकार पुरुषार्थ करना चाहिये, इस विषय का प्रकाश किया है ॥ २। १४॥

भाष्यसार—**अग्नि से यज्ञ में उपकार ग्रहण**—यहाँ अग्नि शब्द के ईश्वर और भौतिक अग्नि दो अर्थ हैं। प्रथम ईश्वर अर्थ ग्रहण किया जाता है। ईश्वर—हे अग्ने=जगदीश्वर ! हम आपकी वेदविद्या के द्वारा स्तुति करते हैं इससे संसार में आपका प्रचार बढ़ता है। आपकी स्तुति से हम भी अपने

जीवन में वृद्धि को प्राप्त होते हैं। हे भगवन्! आप ज्ञानस्वरूप हो और विजय प्रदान करने वाले हो। वेग में आपके समान कोई नहीं आप सबके वेग को जीतने वाले हो। आप ज्ञानवान् एवं सर्वज्ञ हो। युद्धों में विजय कराने वाले हो। हम विद्यावान् धार्मिक लोग यज्ञों में आपकी स्तुति गा कर आपको बढ़ाते हैं। आप कृपा करके हमें भी शुभगुणों से सम्पन्न कीजिये। हमें भी बढ़ाइये। आप शुद्ध स्वरूप हो। यज्ञ में आपके गुणगान से आपकी आज्ञानुष्ठान से मुझे भी शुद्ध कीजिए।

अग्नि (भौतिक)—काष्ठमय समिधा आदि अग्नि को बढ़ाती है। यह भौतिक अग्नि वेगवान् और शिल्पविद्या के गुणों को प्राप्त कराने वाला है। संग्रामों में विजय का हेतु है। उसे धार्मिक विद्वान् लोग बढ़ाते हैं। अग्नि विद्या के विकास से शिल्पविद्या के द्वारा विमान-आदि यानों की सिद्धि होती है जिससे लोगों को वेग, विज्ञान और युद्धों में विजय प्राप्त होती है। इस भौतिक अग्नि का विद्वान् लोग शोधन करें॥ २। १४॥

●

परमेष्ठी प्रजापतिः। **अग्नीषोमौ**=**अग्निजले**॥ ब्राह्मी ब्रहती मध्यमः॥ उत्तरार्द्धस्य इन्द्राग्नी—वायुविद्युतौ॥ निचृदतिजगती॥ मध्यमः निषादः॥

अथ तेन किं किं दूरीकर्त्तव्यमित्युपदिश्यते॥

अब उस यज्ञ से क्या-क्या दूर करना चाहिए, यह उपदेश किया है॥

अ॒ग्नीषोम॑यो॒रुज्जि॑ति॒मनू॒ज्जे॑षं॒ वाज॑स्य मा प्रस॒वेन॒ प्रोहा॑मि।
अ॒ग्नीषोमौ॒ तमप॑नुदतां॒ यो॒ऽस्मान् द्वेष्टि॒ यं च॑ व॒यं द्वि॒ष्मो वाज॑स्यैनं प्रस॒वेनापो॑हामि।
इ॒न्द्राग्न्यो॑रुज्जि॑ति॒मनू॒ज्जे॑षं॒ वाज॑स्य मा प्रस॒वेन॒ प्रोहा॑मि।
इ॒न्द्रा॒ग्नी तमप॑नुदतां॒ यो॒ऽस्मान् द्वेष्टि॒ यं च॑ व॒यं द्वि॒ष्मो वाज॑स्यैनं प्रस॒वेनापो॑हामि॥ १५॥

पदार्थः—(**अग्नीषोमयोः**) अग्निश्च सोमश्च तयोः प्रसिद्धाग्निचन्द्रलोकयोः। अत्र 'ईदग्नेः सोमवरुणयोः' ॥ अ० ६। ३। २७॥ अनेन देवताद्वन्द्वसमासेऽग्नेरीकारादेशः (**उज्जितिम्**) जयत्यनया सा जितिरुत्कृष्टा चासौ जितिश्च तामुत्कृष्टं विजयम् (**अनु**) पश्चाद्भावे (**उत्**) उत्कृष्टार्थे (**जेषम्**) जयं कुर्याम्। अत्र लिङर्थे लुङडभावो वृद्ध्यभावश्च (**वाजस्य**) युद्धस्य (**मा**) मां विजेतारम् (**प्रसवेन**) उत्पादनेन प्रकृष्टैश्वर्य्येण सह वा (**प्रोहामि**) प्रकृष्टतया विविधशुद्धतर्केण योजयामि (**अग्नीषोमौ**) विद्यया सम्यक् प्रयोजितौ (**तम्**) शत्रुं रोगं वा (**अप**) दूरी करणे (**नुदताम्**) प्रेरयतः। अत्र लडर्थे लोट् (**यः**) अन्यायकारी (**अस्मान्**) न्यायकारिणः (**द्वेष्टिः**) शत्रूयति (**यम्**) अन्यायकारिणम् (**च**) समुच्चये (**वयम्**) न्यायाधीशाः (**द्विष्मः**) विरुध्यामः[1] (**वाजस्य**) यानवेगादियुक्तस्य सैन्यस्य (**एनम्**) पूर्वोक्तं दुष्टम् (**प्रसवेन**) प्रकृष्टतया युद्धविद्याप्रेरणेन (**अप**) दूरीकरणे (**ऊहामि**) विविधतर्केण क्षिपामि (**इन्द्राग्न्योः**) इन्द्रो=वायुरग्निर्विद्युत्तयोः (**उज्जितिम्**) विद्यया सम्यगुत्कर्षम् (**अनूज्जेषम्**) अनुगतमुत्कर्षं प्राप्नुयाम्। अस्य सिद्धिः पूर्ववत् (**वाजस्य**) प्रेरणाप्रेरणवेगप्राप्तेः (**मा**) माम्, वायुविद्युद्विद्याप्राप्तम् (**प्रसवेन**) ऐश्वर्यार्थमुत्पादितेन (**प्रोहामि**) प्रकृष्टैर्विविधैस्तर्कैः सुखानि प्राप्नोमि (**इन्द्राग्नी**) पूर्वोक्तौ सम्यक्साधितौ (**तम्**) द्वेषस्वभावम् (**अप**) निषेधार्थे (**नुदताम्**) प्रेरयतः। अत्र लडर्थे लोट् (**यः**) अविद्वान् (**अस्मान्**) विदुषः (**द्वेष्टि**) अप्रीत-

१. विरुन्ध्मः।

यति (यम्) दुष्टस्वभावम् (च) समुच्चयार्थे (वयम्) विद्वांसः (द्विष्मः) अप्रीतयामः (वाजस्य) वीज्ञानस्य (एनम्) मूर्खम् (प्रसवेन) उत्पादनेन (अप) वर्जने (ऊहामि) विविधां शिक्षां करोमि ॥ अयं मंत्रः श० १।८।३।१—४ व्याख्यातः ॥ १५ ॥

प्रमाणार्थ—(अग्नीषोमयोः) यहां 'ईदग्नेः सोमवरुणयोः' अष्टा० (६।३।२७) से देवता द्वन्द्व समास में अग्नि को ईकार आदेश है। (जेषम्) जयं कुर्याम्। यहां लिङ् अर्थ में लुङ्-लकार तथा अट् एवं वृद्धि का अभाव है। (नुदताम्) प्रेरयतः। यहां लट् अर्थ में लोट् लकार है। (अनूज्जेषम्) इसकी सिद्धि भी 'जेषम्' के समान जाननी चाहिए। (नुदताम्) यहां भी लट् अर्थ में लोट् लकार है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१।८।३।१-४) में की गई है ॥ २। १५ ॥

सपदार्थान्वयः — अहमग्नीषोमयोः अग्निश्च सोमश्च तयोः प्रसिद्धाऽग्निचन्द्रलोकयोः **उज्जितिं** जयत्यनया सा जितिरुत्कृष्टा चाऽसौ जितिश्च तामुत्कृष्टं विजयम् **अनूज्जेषं** पश्चादुत्कृष्टतया जयं कुर्याम्। **अहं वाजस्य** युद्धस्य **प्रसवेन** उत्पादनेन प्रकृष्टैश्वर्य्येण सह वा **मा**=**मां** विजेतारं **प्र**+**ऊहामि** प्रकृष्टतया विविध शुद्धतर्केण योजयामि।

मया सम्यक्साधितौ अग्नीषोमौ विद्यया सम्यक् प्रयोजितौ **यः** अन्यायकारी **अस्मान्** न्यायकारिणो **द्वेष्टि** शत्रूयति, **यम्** अन्यायकारिणं **च वयं** न्यायाधीशा **द्विष्मो** विरुध्यामः[1], **तं** शत्रुं रोगं वा [**अप**+**नुदताम्**]=**अपनुदतो** दूरं प्रेरयतः।

अहमेनं पूर्वोक्तं दुष्टं **वाजस्य** यानवेगादियुक्तस्य सैन्यस्य **प्रसवेन** प्रकृष्टतया युद्धविद्याप्रेरणेन **अप**+**ऊहामि** विविधतर्केण दूरं क्षिपामि।

अहमिन्द्राग्न्योः इन्द्रो वायुरग्निर्विद्युत्तयोः **उज्जितिं** विद्यया सम्यगुत्कर्षम् **अनूज्जेषम्** अनुगतमुत्कर्षं प्राप्नुयाम्।

अहं वाजस्य प्रेरणाप्रेरणवेगप्राप्तेः **प्रसवेन** ऐश्वर्य्याऽर्थमुत्पादितेन **मा**=**मां** वायुविद्युद्विद्याप्राप्तं **नित्यं प्रोहामि** प्रकृष्टैर्विविधैस्तर्कैः सुखानि प्राप्नोमि।

भाषार्थ—मैं (अग्निषोमयोः) प्रसिद्ध अग्नि और चन्द्रलोक के (उज्जितिम्) उत्तम विजय को (अनु-उत्-जेषम्) अनुक्रम से तथा उत्तम रीति से जीतूं। मैं (वाजस्य) युद्ध की (प्रसवेन) उत्पत्ति तथा प्रचुर ऐश्वर्य्य के साथ (मा) मुझ विजेता को (प्रोहामि) अच्छी रीति से विविध शुद्ध तर्क से अर्थात् खूब सोच-विचार कर संयुक्त करता हूँ।

मेरे द्वारा अच्छे प्रकार सिद्ध किए हुए (अग्नीषोमौ) विद्या के द्वारा ठीक-ठीक प्रयोग किए गए अग्नि और चन्द्र, (यः) जो अन्यायकारी (अस्मान्) हम न्यायकारियों से (द्वेष्टि) शत्रुता करता है (यं च) और जिस अन्यायकारी से (वयम्) हम न्यायाधीश लोग (द्विष्मः) विरोध करते हैं, (तम्) उस शत्रु व रोग को (अपनुदताम्) दूर करें।

मैं (एनम्) इस पूर्वोक्त अन्यायकारी शत्रु को (वाजस्य) यान और बल आदि से युक्त सेना की (प्रसवेन) उत्तम युद्ध-विद्या की शिक्षा से (अपोहामि) विविध बुद्धि से दूर हटाता हूँ।

मैं (इन्द्राग्न्योः) इन्द्र अर्थात् वायु अग्नि अर्थात् विद्युत् की (उज्जितिम्) विद्या के द्वारा अच्छी उन्नति को (अनु-उत्-जेषम्) प्राप्त करूँ। और—

मैं (वाजस्य) प्रेरणा को भी प्रेरित करने वाली वेग-प्राप्ति को (प्रसवेन) ऐश्वर्य्य के लिए उत्पन्न करके (मा) मुझ वायु विद्या और विद्युद्विद्या को प्राप्त होकर सदा (प्र-ऊहामि) उत्तम विविध तर्कों से सुखों को प्राप्त करूँ।

१. विरुन्ध्मः।

अस्माभिः सम्यक्साधिताविन्द्राग्नी पूर्वोक्तौ सम्यक्साधितौ (वायुविद्युतौ) **यः** अविद्वान् **अस्मान्** विदुषो **द्वेष्टि** अप्रीतयति, **यं** दुष्ट-स्वभावं **च वयं** विद्वांसो **द्विष्मः** अप्रीतयामः, **तं** द्वेष-स्वभावम् [**अप+नुदताम्**]=**अप-नुदतो** न प्रेरयतः।

हमारे द्वारा उत्तम-रीति से सिद्ध किए हुए (**इन्द्राग्नि**) पूर्वोक्त वायु, और विद्युत हैं वे (**यः**) जो मूर्ख (**अस्मान्**) हम विद्वानों से (**द्वेष्टि**) अप्रीति करता है (**यं च**) और जिस दुष्ट-स्वभाव वाले व्यक्ति से (**वयम्**) हम विद्वान् लोग (**द्विष्म**) अप्रीति करते हैं, (**तम्**) उस देव-स्वभाव वाले जन को [**अपनुदताम्**] दूर करें।

अहं वाजस्य विज्ञानस्य **प्रसवेन** उत्पादनेन **एनं** मूर्खम् **अपोहामि** तद्वर्जनार्थं विविधां शिक्षां करोमि ॥ २ । १५ ॥

मैं (**वाजस्य**) विज्ञान की (**प्रसवेन**) उत्पत्ति करने के द्वारा (**एनम्**) इस मूर्ख को (**अप-ऊहामि**) मूर्खता त्यागार्थ नाना प्रकार की शिक्षा करता हूँ ॥ २ । १५ ॥

[अहमग्नीषोमयोरु ज्जितिमनुज्जेषं......मया सम्यक्साधिताव ग्नीषोमौ इन्द्राग्नी योऽस्मान् द्वेष्टि यं चं वयं द्विष्मस्तं [अपनुदताम्]=अपनुदतः]

भावार्थः—ईश्वर उपदिशति—सर्वैर्मनुष्यैरिह विद्यायुक्तिभ्यामग्निजलयोर्मेलनेन कलाकौशलाद् वेगादिगुणानां प्रकाशेन तथा वायुविद्युतो विर्द्यया सर्वदारिद्रचनाशेन शत्रूणां विजयेन,

भावार्थ—ईश्वर उपदेश करता है कि सब मनुष्य इस संसार में विद्या और युक्ति के द्वारा अग्नि और जल के मेल से कलाकौशल से वेगादि गुणों को प्रकाशित करके तथा वायुविद्या और विद्युत-विद्या के द्वारा सब दरिद्रता को नष्ट करके शत्रुओं को जीत कर, और—

[अहं वाजस्य प्रसवेनैनमपोहामि]

सुशिक्षया मनुष्याणां मूढत्वं दूरीकृत्य, विद्वत्त्वं प्रापय्य च विविधानि सुखानि प्राप्तव्यानि, प्रापयितव्यानि च।

उत्तम शिक्षा से मनुष्यों की मूर्खता को दूर करके, और विद्वत्ता को प्राप्त करा कर विविध सुखों को स्वयं प्राप्त करें तथा अन्यों को भी करावें।

[तात्पर्यमाह—]

एवं सम्यक् सर्वाः पदार्थविद्या जगति प्रकाशनीयाः।

इस प्रकार उत्तम रीति से सब पदार्थ विद्याओं को जगत में प्रकाशित करें।

[मन्त्रसंगतिमाह—]

पूर्वेण मन्त्रेण यत्कार्यं प्रकाशितं तदनेन पोषितम् ॥ २ । १५ ॥

पूर्व मन्त्र के द्वारा जो कार्य प्रकाशित किया है उसकी पुष्टि इस मन्त्र के द्वारा की गई है ॥ २ । १५ ॥

भा० पदार्थः—अग्नीषोमयोः=अग्निजलयोः। इन्द्राग्नचोः=वायुविद्युतोः। एनम्=मूढम्, दुष्टं च।

भाष्यसार—**यज्ञ**—मनुष्य अग्नि और सोम (जल) पर विजय प्राप्त करें। और उनका युद्धों एवं ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये ऊहा-पूर्वक उपयोग करें। यह यज्ञ है। इस यज्ञ के द्वारा अच्छे प्रकार सिद्ध किये हुये अग्नि और सोम (जल) शत्रुओं और रोगों को दूर हटाते हैं।

इसी प्रकार मनुष्य वायु और विद्युत् पर भी विजय प्राप्त करें इनसे अपने उत्कर्ष की सिद्धि करें। इनके ऊहापूर्वक प्रयोग करने से विविध सुखों की प्राप्ति करें तथा शत्रुओं को दूर हटावें। विज्ञान की उत्पत्ति से मूर्खता का नाश और नाना प्रकार की विद्याओं की शिक्षा करें॥

परमेष्ठी प्रजापतिः। **पूर्वार्द्धे द्यावापृथिवी मित्रावरुणौ च**=सूर्यप्रकाशः **भूमिः, प्राणः, उदानश्च**॥ भुरिगार्ची पंक्तिः। पंचमः। व्यन्तुवय इत्यारभ्यान्त्यपर्य्यन्तस्याग्निः भौतिकः भुरिक् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

तस्मात् किं भवतीत्युपदिश्यते॥

उक्त यज्ञ से क्या होता है, यह उपदेश किया है॥

वसुभ्यस्त्वा रुद्रेभ्यस्त्वादित्येभ्यस्त्वा संजानाथां द्यावापृथिवी मित्रावरुणौ त्वा वृष्ट्यावताम्। व्यन्तु वयोक्तꣳ रिहाणा मरुतां पृषतीर्गच्छ वशा पृश्निर्भूत्वा दिवं गच्छ ततो नो वृष्टिमावह। चक्षुष्पाऽअग्नेऽसि चक्षुर्मे पाहि॥ १६॥

पदार्थः—(**वसुभ्यः**) अग्न्यादिभ्योऽष्टभ्यः (**त्वा**) तं पूर्वोक्तं यज्ञम् (**रुद्रेभ्यः**) पूर्वोक्तेभ्य एकादशभ्यः (**त्वा**) तम् (**आदित्येभ्यः**) द्वादशभ्यो मासेभ्यः (**त्वा**) तं क्रियासमूहम् (**सम्**) सम्यगर्थे (**जानाथाम्**) जानीतः=प्रादुर्भूतविद्यासाधिके भवतः। अत्र व्यत्ययो लडर्थे लोट् च (**द्यावापृथिवी**) सूर्य्यप्रकाशो भूमिश्च। अत्र दिवो द्यावेति द्यावादेशः (**मित्रावरुणौ**) यः सर्वप्राणो बहिःस्थो वायुर्वरुणोऽन्तस्थ उदानो वायुश्च तौ (**त्वा**) तमिमं संसारम् (**वृष्ट्या**) शुद्धजलवर्षणेन (**अवताम्**) रक्षतः (**व्यन्तु**) व्यन्ति प्राप्नुवन्ति। अत्र सर्वत्र लडर्थे लोट् (**वयः**) पक्षिण इव गायत्र्यादीनि छन्दांसि (**अक्तम्**) प्रकटं वस्तु सुखं वा (**रिहाणाः**) अर्चकाः। रिहतीत्यर्चतिकर्मसु पठितम्॥ निघं० ३। १४॥ (**मरुताम्**) वायूनाम् (**पृषतीः**) पृषन्ति[1] सिञ्चन्ति याभिर्नाडीभिर्नदीभिर्यास्ताः (**गच्छ**) गच्छति (**वशा**) कामिताहुतिः (**पृश्निः**) अन्तरिक्षस्थाः। पृश्निरिति साधारण नामसु पठितम्॥ निघं० १। ४॥ (**भूत्वा**) भावयित्वा। अत्रान्तर्गतो ण्यर्थः (**दिवम्**) सूर्य्यप्रकाशम् (**गच्छ**) गच्छति (**ततः**) तस्मात् (**नः**) अस्माकम् (**वृष्टिम्**) जलसमूहम् (**आ**) समन्तात् क्रियायोगे (**वह**) वहति प्रापयति (**चक्षुष्पाः**) चक्षुर्दर्शनं रक्षतीति सः (**अग्ने**) अग्निर्भौतिकः (**असि**) भवति। अत्र सर्वत्र पुरुषव्यत्ययः (**चक्षुः**) बाह्यमाभ्यन्तरं विज्ञानं तत्साधनं वा (**मे**) मम (**पाहि**) पाति रक्षति॥ अयं मंत्र श० १। ८। ३। ८—१९ व्याख्यातः॥ १६॥

प्रमाणार्थ—(**जानाथाम्**) जानीतः। यहाँ व्यत्यय और लट् अर्थ में लोट् लकार है। (**द्यावापृथिवी**) यहाँ 'दिवो द्यावा' इस सूत्र से 'दिव्' को 'द्यावा' आदेश है। (**व्यन्तु**) व्यन्ति। इस मन्त्र में सर्वत्र लट् अर्थ में लोट् लकार है। (**रिहाणाः**) अर्चकाः। 'रिहति' पद निघं० (३। १४) में पूजा अर्थों में पढ़ा है। (**पृश्निः**) यह शब्द निघं० (१। ४) में द्युलोक और आदित्य के साधारण नामों में पढ़ा है। (**भूत्वा**) भावयित्वा। यहां अन्तर्भावित ण्यर्थ है। (**असि**) भवति। इस मन्त्र में सर्वत्र पुरुषव्यत्यय है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१। ८। ३। ८—१९) में की गई है॥ २। १६॥

सपदार्थान्वयः—वयं वसुभ्यः अग्न्या-

भाषार्थ—हम लोग (**वसुभ्यः**) अग्नि आदि

1. पर्षन्ति।

दिभ्योऽष्टभ्यः **त्वा**=तं (तं) पूर्वोक्तं यज्ञं **रुद्रेभ्यः** पूर्वोक्तेभ्य एकादशभ्यः **त्वा=तम् आदित्येभ्यो** द्वादशभ्यो मासेभ्यः **त्वा=तं (तम्)** क्रिया-समूहं **नित्यं प्रोहामः। यज्ञेनेमे** द्यावापृथिवी सूर्यप्रकाशो भूमिश्च **सम्+जानाथां** सम्यग् जानीतः=प्रादुर्भूत-विद्यासाधिके भवतः।

आठ वसुओं से (**त्वा**) उस पूर्वोक्त यज्ञ को (**रुद्रेभ्यः**) पूर्वोक्त ग्यारह रुद्रों से (**त्वा**) उस यज्ञ को (**आदित्येभ्यः**) बारह मास रूप आदित्यों से (**त्वा**) उस क्रिया-समूह को सदा तर्क से जानें। और यज्ञ के द्वारा ये (**द्यावापृथिवी**) सूर्य-प्रकाश और भूमि (**सञ्जानाथाम्**) उन से उत्पन्न होने वाली शिल्प-विद्या को सिद्ध करने वाले हैं।

मित्रावरुणौ यः सर्वप्राणो बहिःस्थो वायुर्वरुणोऽन्तस्य उदानो वायुश्च तौ **वृष्ट्या** शुद्धजल-वर्षणेन **त्वा=तमिमं संसारं द्यावापृथिवीस्थमवताम्=अवतो** रक्षतः।

(**मित्रावरुणौ**) मित्र अर्थात् सब का प्राण बाह्य-वायु, वरुण अर्थात् आन्तरिक उदान वायु, ये दोनों (**वृष्ट्या**) शुद्ध जल की वर्षा से (**त्वा**) इस द्यावापृथिवी में स्थित संसार की (**अवताम्**) रक्षा करते हैं।

यथा वयः=पक्षिणः पक्षिण इव गायत्र्यादीनि छन्दांसि **अक्तम्=व्यक्तं स्थानं** प्रकटं वस्तु सुखं वा **व्यन्तु=व्यन्ति=गच्छन्ति** (व्यन्ति) प्राप्नुवन्ति,= **तथा रिहाणाः** अर्चका **वयं छन्दोभिः तं यज्ञं नित्यमनुतिष्ठामः।**

जैसे (**वयः**) पक्षी के समान गायत्री आदि छन्द (**अक्तम्**) प्रकट वस्तु, सुख अथवा स्थान को (**व्यन्तु**) प्राप्त होते हैं, वैसे ही (**रिहाणाः**) ईश्वर पूजक हम लोग छन्दों के द्वारा उस यज्ञ का नित्य अनुष्ठान करते हैं।

यज्ञे कृताऽऽहुतिर्**वशा** कामिताहुतिः **पृश्निः=अन्तरिक्षे** अन्तरिक्षस्था भूत्वा भावयित्वा **मरुतां** वायूनां सङ्गेन **दिवं** सूर्य्यप्रकाशं **गच्छ=गच्छति।**

यज्ञ में दी हुई आहुति (**वशा**) का मित-आहुति (**पृश्निः**) आकाश में स्थित (**भूत्वा**) होकर (**मरुताम्**) वायुओं के सङ्ग से (**दिवम्**) सूर्य-प्रकाश को (**गच्छ**) प्राप्त होती है।

सा ततः तस्मात् **नः=अस्माकं वृष्टिं** जलसमूहम् **आ+वह=समन्ताद् वर्षयति** वहति प्रापयति।

वह=आहुति (**ततः**) वहाँ से (**नः**) हमारे (**वृष्टिम्**) जल-समूह को (**आवह**) चारों ओर से बरसाती है। और—

तज्जलं पृषतीः=नाडीर्नदीर्वा पृषन्ति[1] सिञ्चन्ति याभिर्नाडिभिर्नदीभिर्यास्ताः [**गच्छ**]= **गच्छति।**

वह जल (**पृषतीः**) सेचन के साधन नाड़ी अथवा नदियों को [**गच्छ**] प्राप्त होता है।

यतोऽयम् [**अग्ने**]=**अग्निः** अग्निर्भौतिकः **चक्षुष्पाः** चक्षुर्दर्शनं रक्षतीति सः **असि=अस्ति** भवति, **अतो मे=मम चक्षुः** बाह्यमाभ्यन्तरं विज्ञानं तत्साधनं वा **पाहि=पाति** (पाति) रक्षति॥ २।१६॥

जिससे यह [**अग्ने**] भौतिक-अग्नि (**चक्षुष्पाः**) चक्षु का रक्षक (**असि**) होता है, इससे (**मे**) मेरे (**चक्षुः**) बाह्य चक्षु और आन्तरिक-चक्षु विज्ञान और उसके साधनों की (**पाहि**) रक्षा करे॥ २।१६॥

[अनुवृत्तिमाह—]

भावार्थः—अत्र लुप्तोपमालङ्कारः॥ 'प्रो-

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमा अलङ्कार

१. पर्षन्ति।

हामि' 'अपोहामी' ति पदद्वयानुवृत्तिश्च।

है ॥ और—'प्रोहामि' तथा 'अपोहामि' इन दो पदों की अनुवृत्ति है ॥

[यज्ञे कृताऽऽहुतिर्वशा पृश्निः=अन्तरिक्षे भूत्वा मरुतां सङ्गेन दिवं गच्छ=गच्छति, सा ततो नः=अस्माकं वृष्टिमावह=समन्ताद् वहति]

मनुष्यैरग्नौ याऽऽहुतिः क्रियते सा वायोः सङ्गेन मेघमण्डलं गत्वा सूर्याकर्षितजलं शुद्धं भावयित्वा पुनस्तस्मात्पृथिवीमागत्यौषधीः पुष्णाति, सा वेद-मन्त्रैरेव कर्त्तव्या, यतस्त स्याः फलज्ञाने नित्यं श्रद्धोत्पद्येत।

मनुष्य अग्नि में जो आहुति डालते हैं वह वायु के संयोग से मेघमण्डल में जाकर, सूर्य से खेंचे हुए जल को शुद्ध बनाकर, फिर वहाँ से पृथिवी पर आकर, औषधियों को पुष्ट करती है। वह आहुति वेदमन्त्रों से ही करनी चाहिये जिससे उसके फल-ज्ञान में नित्य श्रद्धा उत्पन्न होती रहे।

[यतोऽयम् [अग्ने]=अग्निश्चक्षुष्पा असि=अस्ति, अतो मे=मम चक्षुः पाहि=पाति]

अयमग्निः सूर्यरूपो भूत्वा सर्वं प्रकाशयत्यतो दृष्टिव्यवहारस्य पालनं जायते।

यह अग्नि सूर्य रूप होकर सब को प्रकाशित करता है, इसी से देखने रूप व्यवहार की रक्षा होती है।

[वयं वसुभ्यो रुद्रेभ्यस्त्वा=तमादित्येभ्यस्त्वा=तं नित्यं प्रोहामः]

एतेभ्यो वस्वादिभ्यो विद्योपकारेण दुष्टानां गुणानां प्राणिनां चापोहनं=निवारणं नित्यं कर्त्तव्यम्। इदमेव सर्वेषां पूजनं सत्करणं चेति।

इन वसु आदिकों से विद्या के द्वारा उपकार ग्रहण करके दुष्ट गुणों और दुष्ट प्राणियों का निवारण नित्य करें। यही सबकी पूजा और सत्कार है।

[मन्त्रसंगतिमाह]

यत् पूर्वेण मन्त्रेणोक्तं तदनेन विशिष्टतया प्रकाशितमिति ॥ २। १६ ॥

जो पूर्व मन्त्र में कहा गया है वही इस मन्त्र में विशेषतया प्रकाशित किया है ॥ २। १६ ॥

भा० पदार्थः—चक्षुष्पाः =दृष्टिव्यवहारस्य पालकः।

भाष्यसार—**१. यज्ञ का फल**—आठ वसु, ग्यारह रुद्र और बारह आदित्यों से यज्ञ को सिद्ध करें। यज्ञ से सूर्य और भूमि की विद्याओं को भी जानें। यज्ञ से प्राण और उदान वायु शुद्ध वर्षा जल से द्युलोक और भूलोक में स्थित संसार की रक्षा करते हैं।

यज्ञ में कामनापूर्वक दी हुई आहुति आकाश में स्थित होकर वायु के संग से सूर्यप्रकाश को प्राप्त होती है। फिर वह चहुँ ओर वृष्टि के रूप में बरसती है फिर वह वर्षाजल औषधियों की नाड़ियों में वा नदियों में पहुँच कर सबका पोषण करता है।

२. अग्नि—यह भौतिक अग्नि चक्षु—व्यवहार का पालक है। अर्थात् अग्नि के बिना नेत्र का व्यवहार बन्द हो जाता है इसके व्यवहार का निमित्त अग्नि ही है। अग्नि विज्ञान और उसके साधनों का भी रक्षक है ॥ २। १६ ॥

देवलः । **अग्निः**=ईश्वरो भौतिकश्च ॥ निचृद् जगती । निषादः ॥

सोऽग्निः कीदृश इत्युपदिश्यते ॥

उक्त अग्नि कैसा है, यह उपदेश किया है ॥

यं प॑रि॒धिं प॒र्य्यध॑त्था॒ऽअग्ने॑ देवप॒णिभि॑र्गु॒ह्यमा॑नः ।
तं त॑ऽए॒तमनु॒ जोषं॑ भराम्ये॒ष नेत्त्वद॑पचे॒तया॑ताऽअ॒ग्नेः प्रि॒यं पाथो॒ऽपीत॑म् ॥ १७ ॥

पदार्थः—(**यम्**) एतद् गुणविशिष्टम् (**परिधिम्**) परितः सर्वतो धीयते यस्मिँस्तम् (**पर्य्यधत्थाः**) सर्वतो दधासि दधाति वा । **अत्र लडर्थे लङ् पक्षे व्यत्ययश्च** (**अग्ने**) सर्वत्र व्यापकेश्वर ! भौतिको वा (**देवपणिभिः**) देवानां दिव्यगुणवतामग्निपृथिव्यादीनां विदुषां वा पणयो व्यवहाराः स्तुतयश्च ताभिः (**गुह्यमानः**) सम्यक् व्रियमाणः (**तम्**) परिधिम् (**ते**) तव (**एतम्**) यथोक्तम् (**अनु**) पश्चादर्थे । **अन्विति सादृश्यापरभावं प्राह ॥ निरु० १ । ३ ॥** (**जोषम्**) जुष्यते प्रीत्या सेव्यते तम् (**भरामि**) धारयामि (**एषः**) परिधिरहं वा (**मा**) प्रतिषेधे (**इत्**) एव (**त्वत्**) अन्तर्यामिनो जगदीश्वरात्तस्मादग्नेर्वा (**अप**) दूरार्थे (**चेतयातै**) चेतयेत् । **चिती संज्ञाने इति ण्यन्तस्य लेटः प्रथमपुरुषस्यैकवचने प्रयोगोऽयम्** (**अग्नेः**) जगदीश्वरस्य भौतिकस्य वा (**प्रियम्**) प्रीतिजनकम् (**पाथः**) पाति शरीरमात्मानं च येन तत्तदन्नम् । **अन्ने च ॥ उ० ४ । २०५ ॥ अनेन पातेरन्नेऽसुन्प्रत्ययः थुडागमश्च** (**अपीतम्**) अपि संयोगे । **अपीति संसर्गं प्राह ॥ निरु० १ । ३ ॥ इतं प्राप्तम् ॥ अयं मंत्रः श० १ । ८ । ३ । २२ व्याख्यातः ॥ १७ ॥**

प्रमाणार्थ—(**पर्य्यधत्थाः**) दधासि दधाति वा । यहां लट् अर्थ में लङ् और पक्ष में व्यत्यय है । (**अनु**) निरु० (१ । ३) के अनुसार 'अनु' उपसर्ग का अर्थ "सादृश्य तथा अपरभाव अर्थात् अनुगमन" बताया है । (**चेतयातै**) चेतयेत । यह रूप संज्ञान अर्थ वाली 'चिती' धातु के णिजन्त में लेट् लकार के प्रथम पुरुष के एक वचन का है । (**पाथः**) अन्नम् । 'पाथः' शब्द 'अन्ने च' उणा० (४ । २०५) से 'पा' धातु से 'असुन्' प्रत्यय और 'थुट्' आगम करने पर सिद्ध होता है । (**अपीतम्**) निरु० (१ । ३) में 'अपि' उपसर्ग का अर्थ संसर्ग बताया गया है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१ । ८ । ३ । २२) में की गई है ॥ २ । १७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने**!=**जगदीश्वर** सर्वत्र व्यापकेश्वर ! **एषः** परिधिः **देवेपणिभिः** देवानां दिव्यगुणवतां विदुषां पणयो व्यवहाराः स्तुतयश्च ताभि **गुह्यमानः** सम्यग् व्रियमाणः त्वं **यम्** एतद् गुणविशिष्टम् **एवं** यथोक्तं **जोषं** जुष्यते प्रीत्या सेव्यते तं **परिधिं** परितः सर्वतो धीयते यस्मिँस्तं **पर्य्यधत्थाः**=**सर्वतो दधासि । तं** परिधिम् **इद्** एव **त्वामहमनुभरामि** पश्चाद् धारयामि ।

अहं [त्वत्] अन्तर्यामिनो जगदीश्वरात् **माऽपचेतयातै**=**कदाचिद्विरुद्धो मा भवेयम्,**

भाषार्थ—हे (**अग्ने!**) सर्वत्र व्यापक जगदीश्वर! (**एषः**) यह परिधि (**देवपणिभिः**) दिव्य गुणों वाले विद्वानों के व्यवहार और स्तुतियों से (**गुह्यमानः**) अच्छी प्रकार वर्णन किए गए आप (**यम्**) इन गुणों से विशिष्ट जिस (**एतम्**) इस यथोक्त (**जोषम्**) प्रीतिपूर्वक सेवनीय (**परिधम्**) सब ओर से जिसमें धारण-पोषण निहित है उस प्रभुता को (**परिअधत्थाः**) सब ओर से धारण करते हो, (**तम्**) उस परिधि को (**इत्**) ही यह मैं (**अनुभरामि**) हृदय में पश्चात् धारण करता हूँ ।

मैं [**त्वत्**] तुझ अन्तर्यामी जगदीश्वर से (**मा, अप-चेतयातै**) कभी भी विरुद्ध न होऊँ,

मया [तै]=तव अग्नेः=जगदीश्वरस्य सृष्टौ यत् प्रियं प्रीतिजनकं **पाथः** पाति शरीरमात्मानञ्च येन तत्तदन्नम् **अपीतं** संयोगेन प्राप्तं, **तस्मादहं मा कदाचिदपचेतयातै । इत्येकः ।।**

मैंने [**ते**] आप (**अग्नेः**) जगदीश्वर की सृष्टि में जो (**प्रियम्**) प्रीतिकारक (**पाथः**) जिससे शरीर और आत्मा की रक्षा होती है, वह वह अन्न (**अपि-इतम्**) संयोग से प्राप्त किया है, इसलिए मैं आप के प्रतिकूल कभी आचरण न करूँ ।। यह मन्त्र का पहला अर्थ है ।।

हे [**अग्ने!**]=**जगदीश्वर ते=तव सृष्टौ यः** [**एषः**]=**अयमहं देवपणिभिः** दिव्यगुणवतामग्नि-पृथिव्यादीनां पणयो व्यवहाराश्च ताभिः **गुह्यमानः** सम्यग् व्रियमाणः **एषः** अहम्, **अग्निः यं** एतद्गुजविशिष्टं **परिधिं** परितः सर्वतो धीयते यस्मिँस्तं **जोषं** जुष्यते प्रीत्या सेव्यते तं **पर्य्यधत्थाः=सर्वतो दधाति, तं** परिधिम् **इद् एव तमेवाऽहमनुभरामि** पश्चाद् धारयामि, **तस्मात् कदाचिन्माऽपचेतयातै** चेतयेत् ।

हे [**अग्ने!**] जगदीश्वर ! (**ते**) तेरी सृष्टि में जो [**एषः**] यह मैं (**देवपणिभिः**) दिव्य-गुणों वाले अग्नि और पृथिवी आदि के व्यवहारों से (**गुह्यमानः**) भले प्रकार प्रकट हुआ (**एषः**) यह मैं अग्नि (**यम्**) जिस गुण से विशिष्ट (**परिधिम्**) प्रभुता को (**जोषम्**) प्रीतिपूर्वक (**परि-अधत्थाः**) सब ओर से धारण करता है, (**तम्**) उसी परिधि को (**इत्**) ही मैं (**अनु-भरामि**) पश्चात् धारण करता हूँ । उससे मैं कभी भी (**मा, अप-चेतयातै**) दूर न होऊँ ।

मया यदस्याऽग्नेः भौतिकस्य **प्रियं** प्रीतिजनकं **पाथः** पाति शरीरमात्मानञ्च येन उत्ततदन्नम् **अपीतं** संयोगेन प्राप्तं, **तदहं जोषं** जुष्यते प्रीत्या सेव्यते तं **नित्यमनुभरामि** पश्चाद् धारयामि ।। **इति द्वितीयः** ।। २ । १७ ।।

मैंने जो इस (**अग्नेः**) भौतिक-अग्नि का (**प्रियम्**) प्रीतिकारक (**पाथः**) शरीर और आत्मा का रक्षक अन्न (**अपि-इतम्**) संयोग से प्राप्त किया है, इसलिए मैं (**जोषम्**) प्रीति से सेवनीय उस अग्नि को नित्य (**अनु-भरामि**) पश्चात् धारण करता हूँ ।। यह मन्त्र का दूसरा अर्थ है ।। २ । १७ ।।

[हे अग्ने=जगदीश्वर ! ···देवपाणिभिर्गुह्यमानस्त्वं···परिधि पर्यधत्थाः=सर्वतो दधासि]

भावार्थः—अत्र श्लेषालङ्कारः ।। सर्वैर्मनुष्यैर्यः प्रतिवस्तुषु[1] व्यापकत्वेन धारको, विद्वद्भिः स्तोतव्यः स प्रीत्या नित्यमनुसेवनीयः ।

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष अलङ्कार है ।। सब मनुष्य जो प्रत्येक वस्तु में व्यापक होकर उन्हें धारण करने वाला, विद्वानों के द्वारा स्तुति करने योग्य ईश्वर है उसकी प्रीतिपूर्वक नित्य उपासना करें ।

[अहं [त्वत्] माऽप-चेतयातै=कदाचिद् विरुद्धो मा भवेयम्, प्रियं पाथोऽपीतं...]

यतस्तदाज्ञापालनेन प्रियं सुखं प्राप्नुयुः ।

क्योंकि—उसकी आज्ञा पालन करने से ही प्रिय सुख प्राप्त होते हैं ।

[हे [अग्ने]=जगदीश्वर ! तव सृष्टौ यः...अग्निर्यं परिधिं जोषं पर्यधत्थाः=सर्वतो दधाति तं...अनुभरामि]

सोऽयमीश्वरेण प्रकाशदाहवेगगुणादिसहितो

ईश्वर ने प्रकाश, दाह, वेग आदि गुणों से

1. प्रतिवस्तु ।

मूर्त्तद्रव्यानुगतोऽग्नी रचितस्तस्मान्मनुष्यैः कला-कौशलादिषु प्रयोजितादग्नेर्व्यवहाराः संसाधनीयाः ।

युक्त, मूर्त्त द्रव्यों में व्याप्त अग्नि रचा है, मनुष्य उसका कला-कौशल आदि में प्रयोग करके अग्नि से सब व्यवहारों को सिद्ध करें ।

[मया···प्रियं पाथोऽपीतं—]

यतः सुखानि सिध्येयुः ।

जिससे—सब सुख सिद्ध हों ।

[मन्त्रसंगतिमाह—]

यत्पूर्वेण मन्त्रेण वृष्ट्यादिसाधकत्वमुक्तं तस्यानेन व्यापकत्वं प्रकाशितमिति संगतिः ॥ २ । १७ ॥

जिस अग्नि को पूर्व मन्त्र में वृष्टि आदि का साधक कहा है उसको इस मन्त्र के द्वारा व्यापक बतलाया गया है, यह संगति है ॥ २ । १७ ॥

भाष्यसार—१. **अग्नि (ईश्वर)**—यहां श्लेष अलङ्कार से अग्नि शब्द के ईश्वर और भौतिक अग्नि दो अर्थ हैं । ईश्वर सर्वत्र व्यापक है, विद्वान् लोग इसकी स्तुति करते हैं और उनकी स्तुतियों से ही इसका संवरण होता है। प्रत्येक वस्तु में व्यापक होकर उन्हें धारण करने वाला ईश्वर ही है । मनुष्य इस अन्तर्यामी ईश्वर की आज्ञा के विरुद्ध कभी आचरण न करें क्योंकि इसकी कृपा से ही प्रीतिकारक भोग प्राप्त होते हैं ।

२. **अग्नि (भौतिक)**—यह भौतिक अग्नि पृथिवी आदि से संवृत=छुपा रहता है, प्रकट रूप में दिखाई नहीं देता । यह प्रत्येक वस्तु में व्यापक होकर उन्हें सब ओर से धारण कर रहा है । विद्वान् लोग इस अग्नि विद्या को धारण करें तथा इससे प्रीतिकारक भोगों को सिद्ध करें ॥ २ । १७ ॥

परमेष्ठी प्रजापतिः । **विश्वेदेवाः**=विद्वांसः ॥ स्वराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

स यज्ञः कथं किमर्थञ्च कर्त्तव्य इत्युपदिश्यते ॥

वह यज्ञ कैसे और किस प्रयोजन के लिये करना चाहिये, यह उपदेश किया है ॥

सꣳस्रवभागा स्थेषा बृहन्तः प्रस्तरेष्ठाः परिधेयाश्च देवाः ।
इमां वाचमभि विश्वे गृणन्तऽआसद्यास्मिन् बर्हिषिमादयध्वꣳ स्वाहा वाट् ॥ १८ ॥

पदार्थः—(**संस्रवभागाः**) सम्यक् स्रूयन्ते ये ते संस्रवाः, भज्यन्ते ये ते भागाः, संस्रवा भागा येषां ते (**स्थ**) भवत (**इषा**) इष्यते ज्ञायते येन तदिट् ज्ञानम्, [तेन] । इषगतावित्यस्य क्विबन्तस्य रूपम् । कृतो बहुलमिति करणे क्विप् (**बृहन्तः**) वर्धमाना वर्धयन्तश्च (**प्रस्तरेष्ठाः**) शुभे न्यायविद्यासने तिष्ठन्ति ते । तत्पुरुषे कृति बहुलम् ॥ अ० ६ । ३ । १४ ॥ इति सप्तम्या अलुक् (**परिधेयाः**) परितः सर्वतो धातुं धापयितुमर्हाः (**च**) समुच्चयार्थे (**देवाः**) विद्वांसो दिव्याः पदार्था वा (**इमाम्**) प्रत्यक्षाम् (**वाचम्**) वचन्ति वाचयन्ति सर्वा विद्या यया ताम्, सत्यलक्षणां वेदचतुष्टयीम् । वागिति पदनामसु पठितम् ॥ निघं० ५ । ५ ॥ (**अभि**) अभीत्याभिमुख्यं प्राह ॥ निरु० १ । ३ ॥ (**विश्वे**) सर्वे (**गृणन्तः**) स्तुवन्त उपदिशन्तो वा (**आसद्य**) समंताद्विज्ञाय स्थित्वा वा । (**अस्मिन्**) प्रत्यक्षप्राप्ते (**बर्हिषि**) बृंहन्ते वर्धयन्ते येन तद्बर्हिर्ज्ञानं प्राप्तं कर्मकाण्डं वा तस्मिन्

(**मादयध्वम्**) हर्षयध्वम् (**स्वाहा**) सु आहेत्यस्मिन्नर्थे (**वाट्**) वहन्ति, सुखानि यया क्रियया सा वाट् **निपातोऽयम् । अयं मंत्रः । श० १ । ८ । ३ । २५ व्याख्यातः ॥ १८ ॥**

प्रमाणार्थ--(**इषा**) गति अर्थ वाली क्विबन्त 'इष्' धातु का यह रूप है । 'कृतो बहुलम्' इससे करण में क्विप् प्रत्यय है । (**प्रस्तरेष्ठाः**) यहां 'तत्पुरुषे कृति बहुलम्' अष्टा० (६ । ३ । १४) से सप्तमी विभक्ति का लुक् नहीं है । (**वाचम्**) 'वाक्' शब्द निघं० (५ । ५) में पद नामों में पढ़ा है । (**अभि**) निरू० (१ । ३) में 'अभि' उपसर्ग का अर्थ संमुखता' कहा है । (**वाट्०**) यह शब्द निपातों में पठित है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१ । ८ । ३ । २५) मे की गई है । २ । १८ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे बृहन्तः** ! वर्धमाना वर्धयन्तश्च ! **प्रस्तरेष्ठाः** ! शुभे न्यायविद्याऽऽसने तिष्ठन्ति ते ! **परिधेयाः** ! परितः सर्वतो धातुं धापयितु-मर्हाः ! **देवाः** !=**विद्वांसो** (विद्वांसाः) दिव्याः पदार्था वा ! **यूयमिमां** प्रत्यक्षां **वाचं** वचन्ति वाचयन्ति सर्वा विद्या यया ताम्, सत्यलक्षणां वेदचतुष्टयीम् **अभिगृणन्तः** अभिमुखं स्तुवन्त उपदिशन्तो वा **इषा** इष्यते ज्ञायते येन तदिट् ज्ञानं [**तेन**] **संस्रवभागाः** सम्यक् स्रूयन्ते ये ते संस्रवाः, भजन्ते ये ते भागाः, संस्रवा भागा येषां ते **स्थ**=**भवत** ।

स्वाहा सु आहेत्यस्मिन्नर्थे **वाट्** वहन्ति सुखानि यया क्रियया सा वाट् **आसद्य** समन्ताद् विज्ञाय स्थित्वा वा **अस्मिन्** प्रत्यक्षप्राप्ते **बर्हिषि** बृहन्ते[1] वर्धयन्ते येन तद्बर्हिर्ज्ञानं प्राप्तं कर्मकाण्डं वा तस्मिन् **मादयध्वम्**=**अन्यानेतल्लक्षणान् मनुष्यान् कृत्वा हर्षयत** हर्षयध्यं **च** ।

एवमस्मिन् बर्हिषि इमां वाचम् अभिगृणद्भिर्युष्माभिरिषा स्वाहा वाट् आसद्य प्रस्तरेष्ठा विश्वेदेवाः=सर्वे विद्वांसः सदा परिधेयाः, तान् प्राप्य चाऽस्मिन् बर्हिषि मादयध्वम् ॥ २ । १८ ॥

भाषार्थ—हे (**बृहन्तः !**) स्वयं बढ़ने वाले तथा अन्यों को बढ़ाने वाले ! (**प्रस्तरेष्ठाः !**) शुभ न्याय-विद्या के आसन पर विराजमान और (**परिधेयाः !**) सब ओर से धारण करने योग्य ! (**देवाः !**) विद्वानों ! वा दिव्य पदार्थों ! तुम सब (**इमाम्**) इस प्रत्यक्ष (**वाचम्**) सब विद्याओं का उपदेश करने वाली वेदवाणी की (**अभिगृणन्तः**) स्तुति वा उपदेश करते हुए (**इषा**) ज्ञान के द्वारा (**संस्रवभागाः**) घृत आदि पदार्थों से होम करने वाले (**स्थ**) हो । तथा—

(**स्वाहा**) मधुर-वाणी से (**वाट्**) सुख प्राप्त कराने वाले कर्म्मों को (**आसद्य**) प्राप्त होकर (**अस्मिन्**) इस (**बर्हिषि**) वृद्धि को प्राप्त कराने वाले ज्ञान वा कर्म्म-काण्ड में (**मादयध्वम्**) हर्षित होओ, अन्य पुरुषों को भी इन लक्षणों से युक्त करके हर्षित करो ।

इस प्रकार—इस यज्ञ में इस वेदवाणी का उपदेश करते हुए आप लोग ज्ञान से उत्तम सुखकारक क्रियाओं को प्राप्त करके न्याय और विद्या के आसन पर विराजमान सब विद्वानों का सदा पालन करें, और उन्हें प्राप्त करके इस यज्ञ में सदा प्रसन्न रहें ॥ २ । १८ ॥

[हे बृहन्तः प्रस्तरेष्ठाः परिधेया देवाः=विद्वांसः ! यूयमिमां वाचमभिगृणन्तः]

भावार्थः—ईश्वर आज्ञापयति—ये मनुष्या धार्मिकाः पुरुषार्थिनो वेदविद्याप्रचारे, उत्तमे व्यवहारे च नित्यं वर्त्तन्ते तेषामेव बृहन्ति सुखानि भवन्ति ।

भावार्थ—ईश्वर आज्ञा देता है—जो धार्मिक और पुरुषार्थी मनुष्य वेद विद्या के प्रचार और उत्तम व्यवहार में सदा वर्त्तमान रहते हैं उन्हें ही बड़े-बड़े सुख प्राप्त होते हैं ।

---

१. बृंहयन्ति ।

[मन्त्रसंगतिमाह—]

यौ पूर्वस्मिन् मन्त्रेऽग्निशब्दे नेश्वर भौतिकार्था-वुक्तावनेन तयोः सकाशांदीदृशा उपकारा ग्राह्या इत्युच्यते ॥ २ । १८ ॥

पहले मंत्र में अग्नि शब्द से जो ईश्वर और भौतिक अग्नि अर्थ का ग्रहण किया है, इस मन्त्र के द्वारा उनसे इस प्रकार के उपकार ग्रहण करने चाहियें, यह उपदेश किया है ॥ २ । १८ ॥

भाष्यसार—१. **यज्ञ का प्रकार**—वेद विद्या के ज्ञाता होने से सब से महान्, न्याय और विद्या के आसन पर विराजमान, विद्वान् लोग सत्य वेद विद्या का उपदेश करें। वेद विद्या का दान करना यज्ञ है। इस विद्या यज्ञ की बहती हुई धारा का विद्वान् लोग सेवन करते हैं, इस धारा में स्नान करते हैं।

२. **यज्ञ का प्रयोजन**—यज्ञ को वेदादि शास्त्रों ने श्रेष्ठ कर्म कहा है। यज्ञ-क्रिया से सब सुखों की प्राप्ति होती है। ज्ञान और कर्म के वर्धक इस यज्ञ से सब को हर्ष की प्राप्ति होती है। वेद विद्या वा उपदेश करने वाले विद्वानों का सम्मान, धारण और पोषण होता है। सर्वत्र हर्ष का संचार होता है ॥ २ । १८ ॥

●

परमेष्ठी प्रजापतिः । **अग्निवायू** । भुरिक् पंक्तिः । पंचमः ॥

अथोक्तेन यज्ञेन किं भवतीत्युपदिश्यते ॥

अब उक्त यज्ञ से क्या होता है, यह उपदेश किया है ॥

घृताचीं स्थो धुर्यौं पातᳪं सुम्ने स्थः सुम्ने मा धत्तम् ।
यज्ञ नमश्च तऽउप च यज्ञस्यं शिवे सन्तिष्ठस्व स्विष्टे मे संतिष्ठस्व ॥ १९ ॥

पदार्थः—(**घृताची**) घृतमुदकमंचत इति घृताची अग्निवाय्वोर्धारणाकर्षणक्रिये । अत्र पूर्वसवर्णादेशः । घृतमित्युदकनामसु पठितम् ॥ निघं० १ । १२ ॥ (**स्थः**) स्तः । अत्र सर्वत्र पुरुषव्यत्ययः (**धुर्य्यौ**) धुरं=यज्ञस्याग्रं मुख्याङ्गं वहतस्तौ । अत्र धुरो यड्ढकौ' ॥ अ० ४ । ४ । ७७ ॥ इति यत्प्रत्ययः (**पातम्**) रक्षतः (**सुम्ने**) सुखकारिके उक्ते क्रिये । सुम्नमिति सुखनामसु पठितम् ॥ निघं० ३ । ६ ॥ (**स्थः**) भवतः (**सुम्ने**) अत्युत्कृष्टे सुखे (**मा**) मां यज्ञानुष्ठातारम् (**धत्तम्**) धारयतः । (**यज्ञ**) इज्यते सर्वैर्जनैः स यज्ञ ईश्वरस्तत्सम्बुद्धौ, क्रियासाध्यो वा अत्रान्त्ये पक्षे सुपां सुलुगिति सोर्लुक् (**नमः**) नम्रीभावार्थे (**च**) समुच्चये (**ते**) तुभ्यं तस्य वा (**उप**) समीप्ये क्रियायोगे । उपेत्युपजनं प्राह ॥ निरु० १ । ३ ॥ (**च**) पश्चादर्थे (**यज्ञस्य**) ज्ञानाक्रियाभ्यामनुष्ठेयस्य (**शिवे**) कल्याणसाधिके ॥ सर्वनिघृष्व० उ० ॥ १ । १५१ ॥ इत्ययं सिद्धः (**संतिष्ठस्व**) संतिष्ठते । अत्र लडर्थे लोट् (**स्विष्टे**) शोभनमिष्टं याभ्यां ते (**मे**) मम (**संतिष्ठस्व**) सुष्ठुसाधने स्थिरो भव, संतिष्ठते वा ॥ अयं मंत्रः श० १ । ८ । ३ । २७ व्याख्यातः ॥ १९ ॥

प्रमाणार्थ—(**घृताची**) यहां पूर्व-सवर्ण आदेश है। (**घृतम्**) 'घृत' शब्द निघं० (१ । १२) में जल नामों में पढ़ा है। (**स्थः**) स्तः। इस मन्त्र में सर्वत्र पुरुष व्यत्यय है। (**धुर्य्यौ**) धुर्य्य शब्द 'धुरो यड्ढकौ' अष्टा० (४ । ४ । ७७) से यत् प्रत्यय करने से सिद्ध होता है। (**सुम्ने**) 'सुम्न' शब्द निघं० (३ । ६) में सुख नामों में पढ़ा है। (**यज्ञ**) यहां अन्तिम पक्ष में 'सुपां सुलुक्०' से सु—प्रत्यय का लुक् है। (**उप**) निरु० (१ । ३) में 'उप' उपसर्ग का अर्थ 'उपजन'=आधिक्य कहा गया है। (**शिवे**) 'शिव' शब्द

उणा० (१ । १५१) में निपातित है । (**संतिष्ठस्व**) संतिष्ठते । यहां लट् अर्थ में लोट् लकार है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१ । ८ । ३ । २७) में की गई है । २ । १९ ॥ शत: में यज्ञ नमश्च० इत्यादि मन्त्रांश नहीं है ।

सपदार्थान्वयः—यावग्निवायू यज्ञस्य ज्ञानक्रियाभ्यामनुष्ठेयस्य **धुर्य्यौ** धुरं=यज्ञस्याऽग्रं मुख्याऽङ्गं वहतस्तौ **सुम्ने** सुखकारिके उक्ते क्रिये **स्थः** स्तः, **घृताची** घृतमुदकमञ्चत इति घृताची अग्निवाय्वोर्धारणाऽऽकर्षणक्रिये **स्थो** भवत, **सर्वं जगत् पातम्**=**रक्षतस्तौ मया सम्यक् प्रयोजितौ सुम्ने-सुखे** अत्युत्कृष्टे सुखे **मा**=**मां** (माम्) यज्ञस्याऽनुष्ठातारं **धत्तम्-धारयतः** ।

भाषार्थ—जो अग्नि और वायु (**यज्ञस्य**) ज्ञान और क्रिया द्वारा अनुष्ठान-योग्य यज्ञ के (**धुर्य्यौ**) यज्ञ की धुरा को वहन करने वाले हैं (**च**) और (**सुम्ने**) सुखकारक धारण-आकर्षण क्रिया वाले हैं, और (**घृताची**) जल को प्राप्त कराने वाले अग्नि और वायु की जो धारण-आकर्षण क्रिया (**स्थः**) हैं, वे सब जगत् की (**पातम्**) रक्षा करती हैं। वे दोनों अग्नि और वायु अच्छे प्रकार मेरे द्वारा प्रयोग किए हुए (**सुम्ने**) अत्यन्त उत्कृष्ट सुख (**मा**) मुझ यज्ञ करने वाले को (**धत्तम्**) प्रदान करते हैं।

यज्ञ ! इज्यते सर्वैर्जनैः स यज्ञ ईश्वर स्तत्सम्बुद्धौ ! क्रियासाध्यो वा **नमः** नम्रीभावः **च ये यथा ते**=**तव** तुभ्यं तस्य वा **शिवे** कल्याण-साधिके **उपसंतिष्ठेते**, **मे**=**मम अप्येते तथैव संतिष्ठेताम्** ।

(**यज्ञ** !) हे सब जनों के पूज्य ईश्वर ! अथवा क्रिया-साध्य यज्ञ (**नमः**, **च**) और नम्रता, ये दोनों जैसे (**ते**) तेरे अथवा उस के (**शिवे**) कल्याण-साधक हैं, वैसे ही (**मे**) मेरे भी ये दोनों कल्याण-कारक हों।

तस्माद्यथाऽहं तस्य यज्ञस्य ज्ञानक्रियाभ्याम-नुष्ठेयस्य **अनुष्ठाने संतिष्ठे तथा त्वमप्यत्र सम्+ तिष्ठस्व** सुष्ठु साधने स्थिरो भव (संतिष्ठते वा) ।

इसलिए जैसे मैं उस (**यज्ञस्य**) यज्ञ के अनुष्ठान में स्थिर होऊँ, वैसे तू भी इसमें (**सम्+तिष्ठस्व**) उत्तम रीति से स्थिर हो ।

यथाऽहं यज्ञमनुष्ठाय [**स्विष्टे**]=**सुखे** शोभन-मिष्टं याभ्यां ते **संतिष्ठे तथा त्वमपि तत्र संतिष्ठस्व** सुष्ठु साधने स्थिरो भव (संतिष्ठते वा) ॥ २ । १९ ॥

जैसे मैं यज्ञ का अनुष्ठान करके [**स्विष्टे**] सुख में स्थिर होता हूँ, वैसे तू भी उसमें (**सम्+तिष्ठस्व**) स्थिर हो ॥ २ । १९ ॥

[यावग्निवायू घृताची, सर्वं जगत् पातं=रक्षतः, सुम्ने, यज्ञस्य धुर्य्यौ······सुम्ने मा=मां धत्तम् ।···शिव उपसंतिष्ठेते]

भावार्थः—अत्र लुप्तोपमालङ्कारः ॥ ईश्वरोऽभिवदति—हे मनुष्या ! यूयमेतयो रसच्छेदक-धारकयोर्जगत्पालनहेत्वोः, सुखकारिणोः, क्रिया-काण्डस्य निमित्तयोरूर्ध्वतिर्यग्गमनशीलयोरग्नि-वाय्वोः सकाशात् कार्याणि साधित्वा[1] सुखेषु संस्थितिं कुरुत ।

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ ईश्वर उपदेश करता है—हे मनुष्यो ! तुम इन रस का छेदन और धारण करने वाले, जगत् के पालक, सुखकारी, कर्मकाण्ड के निमित्त, ऊपर और टेढ़ी-मेढ़ी गति करने वाले, अग्नि और वायु से कार्यों को सिद्ध करके स्थिर सुख प्राप्त करो ।

[यज्ञो नमश्च]

---

१. साधयित्वा ।

महायज्ञापालनं मां च सततं नमस्कुरुत । — मेरी आज्ञा का पालन और मुझे सदा नमस्कार करो ।

[मन्त्रसंगतिमाह—]

पूर्वमन्त्रोक्तैरुपकारैः परमं सुखं भवतीत्यनेनोक्तमिति ॥ २ । १६ ॥ — पूर्व मन्त्र में कथित उपकारों से परम सुख होता है, यह इस मन्त्र में बतलाया गया है ॥ २ । १६ ॥

भा० पदार्थः—घृताची=रसच्छेदकधारकौ (अग्निवायू) सुम्ने=सुखकारिणौ । यज्ञस्य=क्रियाकाण्डस्य ।

भाष्यसार—**यज्ञ का फल**—यज्ञ ज्ञान और क्रिया के द्वारा सिद्ध होता है । अग्नि और वायु इस यज्ञ की धुरा का वहन करते हैं । यज्ञ से अग्नि और वायु सुखकारी तथा अपनी धारण और आकर्षण शक्ति से जल के प्रापक, तथा सब जगत् के रक्षक एवं यजमान के धारक होते हैं ।

ईश्वर की आज्ञा का पालन करना यज्ञ है । ईश्वर को नमस्कार करने से अभिमान का त्याग और नम्रता की उत्पत्ति होती है । ईश्वर की आज्ञा के पालन तथा नमस्कार से उपासक की कल्याण में संस्थिति होती है । इस यज्ञ कर्म के लिए अन्यों को भी प्रेरित कर के सुखी करें ॥ २ । १६ ॥

●

परमेष्ठी प्रजापतिः । **अग्निसरस्वत्यौ=ईश्वरो वेदवाणी च ॥**
भुरिग्ब्राह्मीत्रिष्टुप् । धैवतः ॥

अथ सोऽग्निः कीदृशः किमर्थः प्रार्थनीयश्चेत्युपदिश्यते ॥

उक्त अग्नि कैसा है और क्यों प्रार्थना करने योग्य है, यह उपदेश किया है ॥

अग्नेऽदब्धायोऽशीतम पाहि मा दिद्योः पाहि प्रसित्यै पाहि दुरिष्ट्यै पाहि दुरद्मन्याऽअविषं नः पितुं कृणु । सुषदा योनौ स्वाहा वाडग्नये संवेशपतये स्वाहा सरस्वत्यै यशोभगिन्यै स्वाहा ॥ २० ॥

पदार्थः—(**अग्ने**) जगदीश्वर ! भौतिको वा (**अदब्धायो**) अदब्धमहिंसितमायुर्यस्मात् तत्संबुद्धौ अदब्धायुर्वा (**अशीतम**) अश्नुते व्याप्नोति चराचरं यज्ञं सोऽतिशयितस्तत्संबुद्धौ स वा । अन्येषामपि दृश्यत इति दीर्घः (**पाहि**) रक्ष पाति वा (**मा**) माम् (**दिद्योः**) अतिदुःखात् । दिवु धातोः 'कुर्भश्च' । उ० ॥ १ । २२ ॥ इति चकारेण कुप्रत्ययो बाहुलकाद्वकारलोपश्च (**पाहि**) रक्ष रक्षति वा (**प्रसित्यै**) प्रकृष्टा चासौ सितिर्बन्धनं यस्यां तस्याः । अत्र पञ्चम्यर्थे चतुर्थी (**पाहि**) पाति वा (**दुरिष्ट्यै**) दुष्टा इष्टिर्यजनं यस्यां तस्याः । अत्रापि पंचम्यर्थे चतुर्थी (**पाहि**) पाति वा (**दुरद्मन्यै**) दुष्टा अद्मनी अनदक्रिया यस्यां तस्याः । अत्रापि पंचम्यर्थे चतुर्थी (**अविषम्**) विषादिदोषरहितम् (**नः**) अस्माकम् (**पितुम्**) अन्नम् । पितुरित्यन्ननामसु पठितम् ॥ निघं० २ । ७ ॥ (**कृणु**) कुरु करोति वा । अत्र सर्वत्र पक्षे लडर्थे लोट् (**सुषदा**) सुखेन सीदन्ति यस्यां तस्याम् । अत्र सुपां सुलुगिति ङेः स्थान आकारादेशः (**योनौ**) युवन्ति यस्यां सा योनिर्गृहं जन्मान्तरं वा तस्याम् । योनिरिति गृहनामसु पठितम् ॥ निघं० ३ । ४ ॥ (**स्वाहा**) सु आहानया सा (**वाट्**) क्रियार्थे । (**अग्नये**) परमेश्वराय भौतिकाय वा (**संवेशपतये**) सम्यक् विशन्ति ये ते पृथिव्यादयः पदार्थास्तेषां पतिः पालकस्तस्मै (**स्वाहा**) सुष्ठु आहुतं करोति यस्यां सा (**सरस्वत्यै**) सरन्ति जानन्ति येन तत् सरो ज्ञानं तत्प्रशस्तं विद्यते

यस्यां वाचि तस्यै । सरस्वतीति वाङ्नामसु पठितम् ॥ निघं० १ । ११ ॥ (**यशोभगिन्यै**) यशांसि सत्यवचनादीनि कर्म्माणि भजितुं[1] शीलं यस्यास्तस्यै (**स्वाहा**) स्वकीयं पदार्थं प्रत्याह यस्यां क्रियायां सा ॥ अयं मन्त्रः श० १ । ६ । २ । २० व्याख्यातः ॥ २० ॥ (अग्नये इत्यादि मन्त्रांश शतः में नहीं है।)

प्रमाणार्थ—(**अशीतम**) यहाँ 'अन्येषामपि दृश्यते' से दीर्घ है। (**दिद्योः**) यहाँ 'दिव्' धातु से 'कुर्भ्रश्च' उणा० (१ । २२) से 'कु' प्रत्यय और द्वित्व होकर बहुल करके 'दिव्' के वकार का लोप करने पर 'दिद्यु' शब्द सिद्ध है (**प्रसित्यै**) यहाँ पञ्चमी-अर्थ में चतुर्थी विभक्ति है। (**दुरिष्ट्यै**) यहाँ भी पंचमी अर्थ में चतुर्थी है। (**दुरद्मन्यै**) यहाँ भी पंचमी अर्थ में चतुर्थी है। (**पितुम्**) 'पितु' शब्द निघं० (२ । ७) में अन्न नामों में पढ़ा है। (**कृणु**) कुरु करोति वा । यहाँ पक्ष में सर्वत्र लट् अर्थ में लोट् लकार है। (**सुषदा**) यहाँ 'सुपां सुलुक्०' से 'ङि' के स्थान में आकार आदेश है। (**योनौ**) 'योनि' शब्द निघं० (३ । ४) में गृहनामों में पढ़ा है। (**सरस्वत्यै**) 'सरस्वती' शब्द निघं० (१ । ११) में वाणी नामों में पढ़ा है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१ । ६ । २ । २०) में की गई है। २ । २० ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अदब्धायो** ! अदब्धमहिंसितमायुर्यस्मात् तत्सम्बुद्धौ! **अशीतम** ! अश्नुते व्याप्नोति चराऽचरं यज्ञं सोऽतिशयितस्तत्मम्बुद्धौ! **अग्ने**!=**जगदीश्वर** ! **त्वं यज्ञं दुरिष्ट्यै** दुष्टा इष्टिर्यजनं यस्यां तस्याः **पाहि** रक्ष (पाति वा), [**मा**]=**मां दिद्योः**=**प्रमादाद् दुःखाद्** अतिदुःखात् **पाहि** रक्ष, **प्रसित्यै** प्रकृष्टा चाऽसौ सितिर्बन्धनं यस्यां तस्याः **पाहि** (पाति वा), **दुरद्मन्यै** दुष्टा अद्मनी=अदनक्रिया यस्यां तस्याः **पाहि** रक्ष (पाति वा)।

नः अस्माकमविषं विषाऽऽदिदोषरहितं **पितुम्** अन्नं **कृणु** कुरु ।

नः=**अस्मान्** [**सुषदा**]=**सुषदायां** सुखेन सीदन्ति यस्यां तस्यां **योनौ** युवन्ति यस्यां सा योनिगृहं जन्माऽन्तरं वा तस्यां **स्वाहा** सु आहाऽनया सा **वाट्**=**सत्क्रियायां च कृणु** कुरु ।

वयं यशोभगिन्यै यशांसि=सत्यवचनादीनि कर्म्माणि भजितुं[1] शीलं यस्यास्तस्यै **स्वाहा** स्वकीयं पदार्थं प्रत्याह यस्यां क्रियायां सा, **सरस्वत्यै** सरन्ति=जानन्ति येन तत्सरो ज्ञानं तत्प्रशस्तं विद्यते यस्यां वाचि तस्यै **स्वाहा** सुष्ठु आहुतं करोति यस्यां सा ।

संदेशपतये सम्यग् विशन्ति ये ते पृथिव्यादयः पदार्थास्तेषां पतिः पालकस्तस्मै **अग्नये तुभ्यं** परमेश्वराय (भौतिकाय वा) **स्वाहा** सुष्ठु आहुतं

भाषार्थ—हे (**अदब्धायो** !) निर्विघ्न आयु को देने वाले ! (**अशीतम्**!) चराचर संसार यज्ञ में अत्यन्त व्यापक ! (**अग्ने**!) जगदीश्वर ! आप यज्ञ की (**दुरिष्ट्यै**) दुष्ट कर्मों से (**पाहि**) रक्षा करो और (**मा**) मेरी (**दिद्योः**) प्रमाद रूप अत्यन्त दुःख से (**पाहि**) रक्षा करो, तथा (**प्रसित्यै**) भारी बन्धन से (**पाहि**) रक्षा करो, (**दुरद्मन्यै**) दुष्ट भोजन से (**पाहि**) रक्षा करो ।

(**नः**) हमारा (**अविषम्**) विषादि से रहित (**पितुम्**) अन्न (**कृणु**) करो ।

(**नः**) हमें [**सुषदा**] जिसमें सुख से रहते हैं उस (**योनौ**) घर अथवा जन्मान्तर (**स्वाहा**) अत्यन्त प्रशंसनीय (**वाट्**) शुभ कर्म्मों में (**कृणु**) स्थिर कीजिए ।

हम लोग (**यशोभगिन्यै**) यश, सत्यवचन और कर्म्मों का सेवन करने वाली (**सरस्वत्यै**) प्रशस्त ज्ञान से युक्त वेद-वाणी के लिए (**स्वाहा**) स्वाहा करते हैं अर्थात् उसे स्वीकार करते हैं ।

(**संवेशपतये**) संवेश अर्थात् पृथिवी आदि पदार्थों के पालक (**अग्नये**) तुझ परमेश्वर के लिए हम (**स्वाहा**) नित्य ही नमस्कार करते हैं ॥

१. भक्तुं ।

करोति यस्यां सा, **नसश्च नित्यं कुर्म्मः** । **इत्येकः** ॥

हे जगदीश्वर ! योऽयं भवता [अदब्धायो]=अदब्धायुः अदब्धमहिंसितमायुर्यस्मात् **[अशीतम्]=अशीतमः=अग्निः** अश्नुते व्याप्नोति चराचरं यज्ञं सोऽतिशयितः **निर्मितः स यज्ञं [दुरिष्ट्यै]=दुरिष्ट्याः** दुष्टा इष्टिर्यजनं यस्यां तस्याः **[पाहि]=पाति, [मा]=मां दिद्योः** अतिदुःखात् **[पाहि]=पाति** रक्षति, **[प्रसित्यै]=प्रसित्याः** प्रकृष्टा चाऽसौ सितिर्बन्धनं यस्यां तस्याः **[पाहि]=पाति, [दुरद्मन्यै]=दुरद्मन्याः** दुष्टा अद्मनी=अदनक्रिया यस्यां तस्याः **[पाहि]=पाति** ।

यह मन्त्र का पहिला अर्थ हुआ ॥

हे जगदीश्वर ! जो यह आपने **(अदब्धायो)** निर्विघ्न आयु का निमित्त **(अशीतम्)** सर्वत्र व्यापक अग्नि रचा है, वह यज्ञ की **(दुरिष्ट्यै)** दुष्ट यज्ञ से **(पाहि)** रक्षा करता है, **[मा]** मेरी **(दिद्योः)** अति दुःख से **(पाहि)** रक्षा करता है, **[प्रसित्यै]** बड़े बन्धन से **(पाहि)** रक्षा करता है, **[दुरद्मन्यै]** दुष्ट भोजन से **(पाहि)** रक्षा करता है । और—

नः अस्माकमविषं विषादिदोषरहितं **पितुम्** अन्नं **[कृणु]=करोति** ।

[सुषदा]=सुषदायां सुखेन सीदन्ति यस्यां तस्यां **योनौ** युवन्ति यस्यां सा योनिर्गृहं जन्माऽन्तरं वा तस्यां **स्वाहा** सु आहाऽनया सा, **वाट्**=सत्क्रियायां **च हेतुरस्ति, वयं तस्मै संवेशपतये सम्यग्** विशन्ति ये ते पृथिव्यादयः पदार्थास्तेषां पतिः पालकस्तस्मै **अग्नये** भौतिकाय **स्वाहा** सुष्ठु आहुतं करोति यस्यां सा,

यशोभगिन्यै यशांसि सत्यवचनादीनि **कर्माणि** भजितुं[1] शीलं यस्यास्तस्यै **सरस्वत्यै** सरन्ति जानन्ति येन तत्सरो ज्ञानं, तत्प्रशस्तं विद्यते यस्यां वाचि तस्यै **स्वाहा** स्वकीयं पदार्थं प्रत्याह यस्यां क्रियायां सा **कुर्म्मः । इति द्वितीयः** ॥ २ । २० ॥

(नः) हमारे **(अविषम्)** विष आदि दोषों से रहित **(पितुम्)** अन्न को **(कृणु)** सिद्ध करता है ।

[सुषदा] सुख-दायक **(योनौ)** घर वा **जन्मा-**ऽन्तर में **(स्वाहा)** जिसे हम स्वीकार करते हैं **(वाट्)** और जो यज्ञ आदि शुभ कर्मों का हेतु है, हम उस **(संवेशपतये)** पृथिवी आदि पदार्थों का पालन करने वाले **(अग्नये)** भौतिक अग्नि को **(स्वाहा)** अच्छी आहुति देते हैं ।

(यशोभगिन्यै) यश-दायक सत्यभाषण आदि का उपदेश करने वाली **(सरस्वत्यै)** जिसमें कि प्रशंसनीय ज्ञान है, उस वेदवाणी को **(स्वाहा)** हम अपनाते हैं, उस का सम्मान करते हैं ॥ यह **मन्त्र** का दूसरा अर्थ है ॥ २ । २० ॥

[हे···अग्ने=जगदीश्वर ! त्वं···[मा]=मां दिद्योः=प्रमादाद दुःखात् पाहि, प्रसित्यै पाहि, दुरन्ययै पाहि]

भावार्थः—अत्र श्लेषालङ्कारः ॥ मनुष्यैर्यः सर्वथा सर्वस्माद् दुःखाद् रक्षक उत्तम जन्म निमित्त कर्मज्ञापक, उत्तमभोगप्रदाता जगदीश्वरोऽस्ति, स एव सदा सेवनीयः ।

भावार्थ—इस मन्त्र के श्लेष अलङ्कार है ॥ मनुष्य, जो सब प्रकार से सब दुःखों से रक्षा करने वाला, उत्तम जन्म के हेतु शुभ कर्मों का उपदेश करने वाला, उत्तम भोगों का दाता परमेश्वर है, इसी की सदा उपासना करें ।

[हे जगदीश्वर ! योऽयं भवता···अशीतमः=अग्निर्निर्मितः स···[मा]=मां [पाहि]=पाति,··· नः=अस्याकमविषं पितुं [कृणु]—करोति]

---

१. भक्तुं ।

तेन स्वसृष्टौ सूर्य विद्युत् प्रत्यक्ष-रूपेण योऽग्निः प्रकाशितः सोऽपि सम्यक् विद्योपकारे संयोजितः सन् सर्वथा रक्षणोत्तमभोगहेतुर्भवति।

उस ईश्वर ने अपनी सृष्टि में सूर्य, विद्युत्, और प्रत्यक्ष रूप में जो यह अग्नि प्रकाशित किया है वह भी उत्तम रीति से विद्या के द्वारा उपकार में लगाया हुआ सब प्रकार से रक्षा और उत्तम भोग-प्राप्ति का हेतु बनता है।

[वयं ... यशोभगिन्यै सरस्वत्यै स्वाहा कुर्मः]

यया कीर्तिहेतुभूतया सत्यलक्षणया वेदरूपया वाचोत्तमानि जन्मानि सर्वपदार्थेभ्यः उत्कृष्टा विविधा विद्या च प्रकाशिता भवति, सा सदैव स्वीकर्त्तव्या, स्वीकारयितव्या वेति।

जिस कीर्ति की हेतु, सत्यलक्षण से युक्त वेद-वाणी से उत्तम जन्मों की प्राप्ति, सब पदार्थों से उत्तम विविध प्रकार की विद्या प्रकाशित होती है वह सदा स्वयं स्वीकार करने योग्य तथा अन्यों से भी स्वीकार कराने योग्य है।

[अनुवृत्तिमाह—]

अत्र नमो यज्ञ इति पदद्वयं पूर्वस्मान्मन्त्रादाकार्षितम्[1]।

यहां 'नमः' और 'यज्ञ' ये दो पद पहले मन्त्र से ग्रहण किये हैं।

[मन्त्रसंगतिमाह—]

पूर्वमन्त्रोक्तानां मनुष्यैरनुष्ठितानां कर्मणां फलमनेनोक्तमिति वेद्यम् ॥ २ । २० ॥

पहले मन्त्र में कहे, मनुष्यों के द्वारा अनुष्ठान किये गये कर्मों का फल इस मन्त्र के द्वारा उपदेश किया गया है, ऐसा समझें ॥ २ । २० ॥

भा० पदार्थः—दिद्योः=सर्वस्माद् दुःखात्। अशीतमः=सूर्यविद्युत् प्रत्यक्षरूपोऽग्निः। यशोभगिन्यै=कीर्तिहेतुभूतायै। सरस्वत्यै=सत्य लक्षण—वेद रूप—वाचे।

भाष्यसार—१. **अग्नि**—यहां श्लेष अलङ्कार से अग्नि शब्द के ईश्वर और भौतिक अग्नि दो अर्थ हैं। प्रथम ईश्वर के विषय में कहते हैं—अग्नि अर्थात् ईश्वर निर्विघ्न आयु को प्रदान करने वाला, चराचर संसार यज्ञ को सर्वाधिक व्याप्त करने वाला है।

२. **ईश्वर प्रार्थना**—हे अग्ने! जगदीश्वर आप हमें दुष्ट कर्मों, प्रमाद, एवं सब प्रकार के दुःखों, सांसारिक बन्धनों से मुक्त करो, उत्तम भोग प्रदान करके दुष्ट भोगों से हमारी रक्षा करो। हमारे अन्न को विष आदि दोषों से रहित करो। आप हमें सभा में, घर में एवं जन्मान्तर में भी प्रशंसा योग्य सत्कार से युक्त करो। हम लोग यशदायक सत्यभाषण आदि कर्मों का नित्य अनुष्ठान करें। जो अपने पदार्थ हैं, उन्हें ही अपनायें। दूसरे के पदार्थों को लेने की कभी इच्छा न करें। प्रशस्त ज्ञान वाली वेदवाणी की प्राप्ति के लिए होम यज्ञ आदि शुभ कर्मों को करते रहें। पृथिवी आदि पदार्थ सब आपके अन्दर प्रविष्ट हैं, आप से बाहर नहीं हैं, आप ही इनके पति=पालक हो, आपकी प्राप्ति के लिए हम श्रेष्ठ कर्म करते हैं और नित्य नमस्कार करते हैं।

३. **अग्नि (भौतिक)**—यह भौतिक अग्नि निर्विघ्न आयु का निमित्त है। सब चराचर जगत् में व्याप्त है। यज्ञ का रक्षक है, दुःखों का निवारक है, बन्धन को दूर करने वाला है, दुष्ट भोजन क्रिया से बचाता है, अन्न को विष आदि दोषों से रहित करता है, सभा, घर, वा जन्मान्तर में सत्कार का हेतु है।

---

१. अकृष्टम्।

हम लोग जो अग्नि, पृथिवी आदि का पालक है उसकी शुद्धि के लिये होम करें। यशवर्द्धक वेदवाणी की प्राप्ति के लिये सदा सत्य भाषण करें ॥ २ । २० ॥

वामदेवः । **प्रजापतिः**=**ईश्वरः** ॥ भुरिग्ब्राह्मी बृहती । मध्यमः ॥

स जगदीश्वरः कीदृशो ऽस्तीत्युपदिश्यते ॥

वह जगदीश्वर कैसा है, यह उपदेश किया है ॥

वेदोऽसि येन त्वं देव वेद देवेभ्यो वेदोऽभवस्तेन मह्यं वेदो भूयाः ।
देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित । मनसस्पतऽइमं देव यज्ञꣳ स्वाहा वाते धाः ॥ २१ ॥

पदार्थः—(**वेदः**) वेत्ति चराचरं जगत् स जगदीश्वरः । विदन्ति येन स ऋग्वेदादिर्वा (**असि**) भवसि वा (**येन**) विज्ञानेन वेदेन वा (**त्वम्**) (**देव**) शुभगुणदातः (**वेद**) जानासि वेत्ति वा (**देवेभ्यः**) विद्वद्भ्यः (**वेदः**) वेदयिता (**अभवः**) भवसि (**तेन**) विज्ञानप्रकाशनेन (**मह्यम्**) विज्ञानं जिज्ञासवे (वेदः) ज्ञापकः (**भूयाः**) (**देवाः**) विद्वांसः (**गातुविदः**) गीयते स्तूयतेऽनया सा गातुः स्तुतिस्तस्या विदो वक्तारः । कमिमनिजनि० ॥ उ० १ । ७३ ॥ अनेन गास्तुताविति अस्मात् तुः प्रत्ययः (**गातुम्**) गीयते ज्ञायते येन स गातुर्वेदस्तम् । गातुरिति पदनामसु पठितम् ॥ निघं० ४ । १ ॥ अनेन ज्ञानार्थो गृह्यते (**वित्त्वा**) लब्ध्वा (**गातुम्**) गीयते शब्द्यते यस्तं यज्ञम् (**इत**) प्राप्नुत (**मनसः**) विज्ञानस्य (**पते**) पालक (**इमम्**) प्रत्यक्षमनुष्ठितमनुष्ठातव्यं वा (**देव**) सर्वजगत्प्रकाशक (**यज्ञम्**) क्रियाकाण्डजन्यं संसारम् (**स्वाहा**) सुष्ठु आहुतं हविः करोत्यनया सा (**वाते**) वायौ (**धाः**) धापय धापयति वा । अत्र सर्वत्र पक्षान्तरे व्यत्ययेन प्रथमः । बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपीत्यडभावः ॥ अयं मंत्रः श० १ । ६ । २ । २३—२८ व्याख्यातः ॥ २१ ॥

प्रमाणार्थ—(**गातुविदः**) 'गातु' शब्द 'कमि मनिजनि०' उणा० (१ । ७३) से स्तुति अर्थ वाली 'गा' धातु से 'तु' प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है। (**गातुम्**) 'गातु' शब्द निघं० (४ । १) में पद-नामों में पढ़ा है। इससे यहां ज्ञान-अर्थ ग्रहण होता है। (**धाः**) धापय धापयति वा। यहां सर्वत्र दूसरे पक्ष में व्यत्यय से प्रथम पुरुष है। 'बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपि' से अट् नहीं है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१ । ६ । २ । २३—२८) में की गई है। २ । २१ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे देव!**=**जगदीश्वर** शुभगुणदातः ! **येन** विज्ञानेन वेदेन वा **त्वं वेदो** वेत्ति चराचरं जगत् स जगदीश्वरः, विदन्ति येन स ऋग्वेदादिर्वा **असि** भवसि **सर्वं च वेद** जानासि (वेत्ति वा) ।

येन विज्ञानेन वेदेन वा **च त्वं वा देवेभ्यो** विद्वद्भ्यो **वेदो** वेदयिता **अभवो** भवसि, **तेन** विज्ञान-प्रकाशेन **त्वं मह्यं** विज्ञानं जिज्ञासवे **अपि वेदो** ज्ञापको **भूयाः** ।

भाषार्थ—हे (**देव!**) शुभगुणों के देने वाले जगदीश्वर ! (**येन**) जिस जगत विज्ञान अथवा वेद से (**त्वम्**) आप (**वेदः**) चराचर जगत् के जानने वाले हो तथा ज्ञान के साधन ऋग्वेदादि के देने वाले भी आप (**असि**) हो और आप सबको जानते हो।

(**येन च**) और जिस विज्ञान वा वेद से आप (**देवेभ्यः**) विद्वानों के लिए (**वेदः**) जनाने वाले (**भवसि**) हो, (**तेन**) उस विज्ञान के प्रकाश से आप (**मह्यम्**) मुझ विज्ञान के जिज्ञासु को भी (**वेदः**) बतलाने वाले (**भूयाः**) हो।

हे गातुविदः ! गीयते स्तूयतेऽनया सा गातुः= स्तुतिस्तस्या विदो वित्तारः ! **देवाः** ! विद्वांसः ! **भवन्तो येन वेदेन सर्वा विद्या विदन्ति, तेन यूयं गातुं** गीयते=ज्ञायते येन स गातुर्वेदस्तं **वित्त्वा** लब्ध्वा **गातुं** गीयते=शब्द्यते यस्तं यज्ञम् **इत** प्राप्नुत ।

हे (**गातुविदः** !) स्तुति के जानने वाले ! (**देवा** !) विद्वानो ! आप जिस वेद से सारी विद्याएँ जानते हैं, उससे तुम लोग (**गातुम्**) ज्ञान के साधन वेद को (**वित्त्वा**) प्राप्त करके (**गातुम्**) प्रशंसा के योग्य यज्ञ को (**इत**) प्राप्त करो ।

हे मनसः विज्ञानस्य **पते** ! पालक ! **देव** ! सर्वजगत्प्रकाशक ! **त्वमिमं** प्रत्यक्षमनुष्ठितमनुष्ठातव्यं **यज्ञं** क्रिया-काण्डजन्यं संसारं **वाते** वायौ **धाः** धापय (धापयति वा) **स्वाहा** सुष्ठु आहुतं हविः करोत्यनया सा ।

हे (**मनसः**) विज्ञान का (**पते** !) पालन करने वाले (**देवः** !) सब जगत् को प्रकाशित करने वाले ! (**त्वम्**) आप (**इमम्**) प्रत्यक्ष किया हुआ अथवा करने योग्य (**यज्ञम्**) कर्म-काण्ड से उत्पन्न संसार को (**वाते**) वायु में (**धाः**) धारण कर रहे हो, (**स्वाहा**) हम उसके लिए शुद्ध हवि प्रदान करते हैं।

हे देवाः ! तमिमं मनसस्पतिं परमेश्वरमेव देवं नित्यमुपासीध्वम् ॥ २ । २१ ॥

हे विद्वानो ! तुम उस विज्ञान के पति= परमेश्वर देव की ही सदा उपासना किया करो ॥ २ । २१ ॥

[हे गुणविदो देवा ! भवन्तो येन वेदेन सर्वाविद्या विदन्ति, तेन यूयं गातुं वित्त्वा गातुमित, हे मनसस्पते ! देव ! त्वमिमं यज्ञं वाते धाः]

भावार्थः—हे विद्वांसो मनुष्या ! यूयं येन सर्ववेत्रा[1] वेदविद्या प्रकाशिता तमेवो पास्यं विदित्वा क्रियाकाण्ड मनुष्ठाय सर्वहितं सम्पादयत । नैव वेदविज्ञानेन तत्रोक्तविधानानुकूलस्यानुष्ठानेन च विना मनुष्याणां कदाचित् सुखं सम्भवति ।

भावार्थ—हे विद्वान् मनुष्यो ! तुम लोग जिस सर्वज्ञ ईश्वर ने वेदविद्या प्रकाशित की है उसी को उपासना के योग्य जानकर, कर्मकाण्ड का अनुष्ठान करके सबका कल्याण करो। क्योंकि वेद विज्ञान और उसमें प्रतिपादित विधान के अनुकूल आचरण किए बिना मनुष्यों को कभी भी सुख नहीं हो सकता ।

[हे देवा ! तमिमं मनसस्पतिं परमेश्वरमेव देवं नित्यमुपासीध्वम्]

वेदविद्यया सर्वसाक्षिणमीश्वरं देवं सर्वतो व्यापकं मत्वैव नित्यधर्मस्यानुष्ठातारो भवतेति ॥ २ । २१ ॥

वेदविद्या के द्वारा सबके द्रष्टा ईश्वर-देव को सर्वव्यापक समझ कर ही नित्य धर्म के पालक बनो ॥ २ । २१ ॥

भा० पदार्थः—गातुम्=उपास्यम् । यज्ञम्=क्रियाकाडण्म् । मनसस्पतिम्=सर्वसाक्षिणम् ॥

भाष्यसार—१. **ईश्वर**—जगदीश्वर शुभगुणों का दाता, वेद वा विज्ञान से सब चराचर जगत् को जानने वाला, सर्वज्ञ है । और वेद वा विज्ञान के द्वारा सब विद्वानों को बोध कराने वाला है । विज्ञान का पालक, सब जगत् का प्रकाशक और संसार को वायु में धारण करने वाला है ।

२. **ईश्वर प्रार्थना**—हे जगदीश्वर ! आप चराचर जगत् को जानने वाले हो, विद्वानों को वेदों के द्वारा सब विद्याओं का बोध कराने वाले हो, कृपा करके अपने विज्ञान के प्रकाश से मुझ

---

१. सर्ववेदित्रा ।

जिज्ञासु को भी अपने विज्ञान का बोध कराओ, विज्ञान का दान करो। आप इस यज्ञ रूप संसार को धारण करो।

हे स्तुति के जानने वाले विद्वानो ! आप लोग सर्वविद्या-निधान वेद के द्वारा ही वेद को जानकर स्तुति योग्य यज्ञ कर्म को प्राप्त करो और सर्वज्ञ परमेश्वर की ही नित्य उपासना करो।

●

वामदेवः ! **इन्द्रः**=सूर्यः ॥ विराट्त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

अग्नौ हुतं द्रव्यमन्तरिक्षस्थं भूत्वा केन चरतीत्युपदिश्युते ॥

यज्ञ में होम किया हुआ पदार्थ अन्तरिक्ष में ठहर कर किसके साथ रहता है, यह उपदेश किया है॥

सं ब॒र्हिर॑ङ्क्ताᳪं ह॒विषा॑ घृ॒तेन॒ समा॑दि॒त्यैर्वसु॑भि॒: सम्म॒रुद्भि॑: ।
समिन्द्रो॑ वि॒श्वदे॑वेभिरङ्क्तां दि॒व्यं नभो॑ गच्छतु॒ यत् स्वाहा॑ ॥ २२ ॥

पदार्थः—(**सम्**) एकीभावे क्रियायोगे (**बर्हिः**) बृहन्ते सर्वे पदार्था यस्मिन् तदन्तरिक्षम्। बर्हिरित्यन्तरिक्षनामसु पठितम् ॥ निघं १ । ३॥ (**अङ्काम्**) संयोजयतु (**हविषा**) होतुमर्हं शुद्धं संस्कृतं हविस्तेन (**घृतेन**) सुगन्ध्यादिगुणयुक्तेनाज्येन सह (**सम्**) संयोगार्थे (**आदित्यैः**) द्वादशभिर्मासैः (**वसुभिः**) अग्न्यादिभिरष्टभिः (**सम्**) मिश्रीभावे (**मरुद्भिः**) वायुविशेषैः सह (**सम्**) मेलने (**इन्द्रः**) सूर्य्यलोकः (**विश्वदेवेभिः**) स्वकीयैः रश्मिभिः। रश्मयो ह्यस्य विश्वदेवाः ॥ श० ३ । ७ । ३ । ६ ॥ (**अङ्क्ताम्**) प्रकटं संयोजयति (**दिव्यम्**) दिवि प्रकाशे भवम्। द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत् ॥ अ ४ । २ । १०१ ॥ इति शैषिको यत् (**नभः**) जलम्। नभ इत्युदकनामसु पठितम् ॥ निघं० १ । १२ ॥ (**गच्छतु**) गच्छति (**यत्**) सदा (**स्वाहा**) शोभनं हविर्जुहोति यया क्रियया सा ॥ अयं मंत्रः श० १ । ६ । २—३१ व्याख्यातः ॥ २२ ॥

प्रमाणार्थ—(**बर्हिः**) 'बर्हिः' शब्द निघं० (१ । ३) में अन्तरिक्ष-नामों में पढ़ा है। (**विश्वदेवेभिः**) शत० (३ । ७ । ३ । ६) के अनुसार 'विश्वदेव' शब्द का अर्थ सूर्य रश्मियाँ हैं। (**दिव्यम्**) 'दिव्य' शब्द 'द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत्' अष्टा० (४ । २ । १०१) से शैषिक 'यत्' प्रत्यय करने से सिद्ध होता है। (**नभः**) 'नभः' शब्द निघं० (१ । १२) में जलनामों में पढ़ा है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१ । ६ । २—३१) में की गई है ॥ २ । २२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्य ! **भवा**निदं **यत्**=यदा होतव्यं द्रव्यं **हविषा** होतुमर्हं शुद्धं संस्कृतं हविस्तेन **घृतेन** सुगन्ध्यादिगुणयुक्तेनाऽऽज्येन (सह) **सह संयुक्तं** कृत्वाऽऽदित्यैः द्वादशभिर्मासैः **वसुभिः** अग्न्यारिभिरष्टभिः **मरुद्भिः सह** वायुविशेषैः सह [**बर्हिः**] बृहन्ते सर्वे पदार्था यस्मिँस्तदन्तरिक्षं **सुखं सम्+अङ्क्ताम** एकीभावेन संयोजयतु।

अयमिन्द्रः सूर्य्यलोको **यज्ञे स्वाहा** शोभनं हविर्जु-

भाषार्थ—हे मनुष्य ! आप यह (**यत्**) **जो** हवन करने योग्य द्रव्य है (**हविषा**) इसको शुद्ध आहुति रूप (**घृतेन**) सुगन्धि आदि गुणों से युक्त घृत के साथ (**सम्**) संयुक्त=मिला करके (**आदित्यैः**) बारह मास, (**वसुभिः**) अग्नि आदि आठ वसु और (**मरुभ्दिः**) वायु-विशेषों के साथ [**बर्हिः**] अन्तरिक्ष को सुख से (**सम्+अङ्क्ताम्**) एकीभावपूर्वक संयुक्त कीजिये।

यह (**इन्द्रः**) सूर्य्यलोक यज्ञ में (**स्वाहा**) सुगन्धि

होति यया क्रियया सा **यत्सुगन्ध्यादि द्रव्य-युक्तं हविः सम्+अङ्क्तां** मेलनेन प्रकटं योजयति ।

यत्सम्मिश्रितैर्विश्वदेवेभिः स्वकीयैः रश्मिभिः **दिव्यं** दिवि प्रकाशे भवं **नभो** जलं **सम्+गच्छतु=सम्यक् प्रकटयति** मिश्रीभावेन गच्छति ॥ २ । २२ ॥

आदि गुणों से युक्त हवि को (**सम्+अङ्क्ताम्**) प्रकट रूप में संयुक्त करता है ।

संयुक्त हुई (**विश्वदेवेभिः**) अपनी किरणों से (**दिव्यम्**) द्युलोक में विद्यमान (**नभः**) जल को (**सम् गच्छतु**) अच्छे प्रकार मेलपूर्वक प्रकट करता है ॥ २ । २२ ॥

[हे मनुष्य ! भवा निदं···होतव्यं द्रव्यं हविषा घृतेन सह संयुक्तं कृत्वाऽऽदित्यैर्वसुभिर्मरुद्भिः सह [बर्हिः] सुखं समङ्क्ताम्···विश्वदेवेभिर्दिव्यं नभः संगच्छतु]

भावार्थः--यज्ञे संशोधितं यद्धविरग्नौ प्रक्षिप्यते तदन्तरिक्षे वायुजलसूर्यकिरणैः सह वर्तमानमितस्ततो गत्वाऽऽकाशस्थान् सर्वान् पदार्थान् दिव्याम् कृत्वा सततं प्रजाः सुखयति ।

भावार्थ—यज्ञ में शुद्ध किया हुआ जो हवि अग्नि में डाला जाता है वह आकाश में वायु, जल और सूर्य किरणों के साथ रहकर, इधर-उधर जाकर आकाश के सब पदार्थों को दिव्य गुणों से युक्त बनाकर निरन्तर प्रजा को सुख देता है ।

[तात्पर्यमाह—]

तस्मात्—सर्वैर्मनुष्यैरुत्तमसामग्रचा श्रेष्ठैः साधनैस्त्रिविधो यज्ञो नित्यमनुष्ठेय इति ॥ २ । २२ ॥

इसलिये—सब मनुष्य उत्तम सामग्री एवं श्रेष्ठ साधनों से तीन प्रकार के यज्ञ का नित्य अनुष्ठान करें ॥ २ । २२ ॥

भाष्यसार—**होम के योग्य द्रव्य**—प्रथम यज्ञ में होम करने योग्य द्रव्य को घी में मिलावें फिर बारह महीने निरन्तर अग्नि और वायु आदि के सहयोग से उसे अन्तरिक्ष में स्थित करें । अन्तरिक्षस्थ सूर्य यज्ञ में होम किये हुये सुगन्धि आदि से युक्त घृत को मिश्रित कर देता है । फिर वह मिश्रीभाव को प्राप्त हवि रूप घृत दिव्य गुणों से युक्त जलभाव को प्राप्त हो जाता है । जो प्रजा के लिये सुखदायक होते हैं ॥

वामदेवः । **प्रजापतिः**=ईश्वरः । निचृद्बृहतीः । मध्यमः ॥

अग्नौ द्रव्यं किमर्थं प्रक्षिप्यत इत्युपदिश्यते ॥

अग्नि में किस लिये पदार्थ डाला जाता है, यह उपदेश किया है ॥

कस्त्वा विमुञ्चति स त्वा विमुञ्चति कस्मै त्वा विमुञ्चति तस्मै त्वा विमुञ्चति ।
पोषाय रक्षसां भागोसि ॥ २३ ॥

पदार्थः—(**कः**) सुखकारी यजमानः (**त्वा**) तम् (**वि**) विविधार्थे क्रियायोगे । व्यपेत्येतस्य प्रातिलोम्यं प्राह ॥ निरु० १ । ३ ॥ (**मुञ्चति**) त्यजति (**सः**) यज्ञः (**त्वा**) त्वाम् (**वि**) विशेषार्थे (**मुञ्चति**) त्यजति (**कस्मै**) प्रयोजनाय (**त्वा**) त्वाम् (**वि**) विविक्तार्थे (**मुञ्चति**) प्रक्षिपति (**तस्मै**) यतः सर्वसुखप्राप्तिर्भवेत्तस्मै (**त्वा**) पदार्थसमूहम् (**वि**) विशिष्टार्थे (**मुञ्चति**) त्यजति (**पोषाय**) पुष्यन्ति प्राणिनो यस्मिन् व्यवहारे तस्मै (**रक्षसाम्**) दुष्टानाम् (**भागः**) भजनीयः (**असि**) भवति ॥ अयं मंत्रः श० १ । ६ । २ । ३३—३५ व्याख्यातः ॥ २३ ॥

प्रमाणार्थ—(वि) निरु० (१ । ३) के अनुसार 'वि' उपसर्ग का अर्थ 'सम्' का विपरीत होना बताया है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१ । ९ । २ । ३३—३५) में की गई है । २ । २३ ॥

सपदार्थान्वयः—कः सुखकारी यजमानः मनुष्यः त्वा=तं यज्ञं वि+मुञ्चति विविधतया त्यजति ? **कोऽपि नेत्यर्थः । यश्च यज्ञं वि+मुञ्चति** विशेषेण त्यजति, [त्वा]=तं सः=**यज्ञः परमेश्वरो** (यज्ञः) **विमुञ्चति ।**

यज्ञकर्त्ता कस्मै=प्रयोजनाय [त्वा]=तं त्वां **पदार्थसमूहमग्नो वि**+मुञ्चति विविक्ततया प्रक्षिपति ? [**तस्मै**]=**यतः सर्वसुखप्राप्तिर्भवेत् तस्मै, पोषाय** पुष्यन्ति प्राणिनो यस्मिन् व्यवहारे तस्मै **त्वा**=**तं** पदार्थसमूहं वि+**मुञ्चति** विशिष्टतया त्यजति । **किन्तु यः पदार्थः सर्वोपकारे यज्ञे न प्रयुज्यते, स रक्षसां** दुष्टानां **भागो** भजनीयः **असि**=**भवति** ॥ २ । २३ ॥

भाषार्थ—(**कः**) कौन सुख देने वाला यजमान मनुष्य (**त्वा**) उस यज्ञ को (**वि-मुञ्चति**) छोड़ देता है ? अर्थात् कोई नहीं । और—जो उस यज्ञ को (**वि—मुञ्चति**) छोड़ देता है, [**त्वा**] उसको (**सः**) वह यज्ञ-स्वरूप परमेश्वर भी त्याग देता है ।

यज्ञ करने वाला मनुष्य (**कस्मै**) किस प्रयोजन के लिए [**त्वा**] उस हवन-सामग्री को अग्नों में (**वि-मुञ्चति**) डालता है ? जिससे सब सुखों की प्राप्ति एवं (**तस्मै, पोषाय**) जिससे सब प्राणियों का पोषण होता है, इसलिए (**त्वा**) उस हवन-सामग्री को याजक (**वि-मुञ्चति**) अग्नि में डालता है । किन्तु जो पदार्थ सब के उपकारक यज्ञ में प्रयुक्त नहीं होता, वह (**रक्षसाम्**) दुष्ट-जनों से (**भाग**) उपभोग करने योग्य (**असि**) होता है ॥ २ । २३ ॥

[**यश्च यज्ञं विमुञ्चति [त्वा]=तं सः=यज्ञं सु परमेश्वरो विमुञ्चति**]

भावार्थः—यो मनुष्य ईश्वरेण वेद द्वारा ऽज्ञापितं व्यवहारं त्यजति स सर्वैः सुखैर्हीनो भूत्वा दुष्टैः पीडितः सन् सर्वदा दुःखी भवति ।

भावार्थ—जो मनुष्य ईश्वर से वेद के द्वारा आज्ञा किये हुये व्यवहार को छोड़ देता है वह सब सुखों से हीन हो कर दुष्ट जनों से पीड़ित हुआ सदा दुःखी रहता है ।

केनचित् कंचित् प्रति पृष्टंयो यज्ञं त्यजति तस्मै किं भवतीति ? स आह—ईश्वरोऽपितं त्यजतीति ।

किसी ने किसी से पूछा कि जो यज्ञ को छोड़ देता है उसका क्या होता है ? उसने कहा कि ईश्वर भी उसको छोड़ देता है ।

स पुनराह—ईश्वरः कस्मै प्रयोजनाय तं त्यजतीति, स ब्रूते तस्मै दुःखमेव स्यादित्यस्मै ।

उसने फिर पूछा कि ईश्वर क्यों उसे छोड़ देता है ? उसने उत्तर दिया कि वह सदा दुःखी रहे, इस लिये ।

[**पोषाय त्वा=तं विमुञ्चति**]

यश्चेश्वराज्ञां पालयति स सुखैः पोषितुमर्हति ।

और जो ईश्वर की आज्ञा का पालन करता है, वह सुखों से पुष्ट रहता है ।

[**यः पदार्थः सर्वोपकारे यज्ञे न प्रयुज्यते, स रक्षसां भागोऽसि=भवति**]

यश्च त्यजति स एव राक्षसो भवतीति ॥ २ । २३ ॥

और जो उसकी आज्ञा को छोड़ देता है, वही राक्षस कहलाता है ॥ २ । २३ ॥

भाष्यसार—**१. यज्ञ त्याग का फल— प्र०**—कौन यजमान यज्ञ का परित्याग करता है ?

उ०—कोई नहीं, और जो यज्ञ को छोड़ देता है उसे परमेश्वर भी छोड़ देता है जिससे वह सदा दुखी रहता है।

२. **अग्नि में द्रव्य होम का प्रयोजन**—प्र०—यजमान किस लिये पदार्थों का अग्नि में प्रक्षेप करता है ? उ०—सब सुखों की प्राप्ति के लिये तथा सब प्राणियों की पुष्टि के लिये । जो पदार्थ सर्वोपकारक यज्ञ में प्रयोग नहीं किया जाता वह राक्षसों का भाग है। जो यज्ञ-शेष पदार्थों का उपयोग करते हैं वे ईश्वर के आज्ञापालक देवता हैं और जो ईश्वर की इस आज्ञा का पालन नहीं करते, वे राक्षस हैं।। २।२३॥

●

वामदेवः । **त्वष्टा**=ईश्वरः । विराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

तेन यज्ञेन वयं किं किं प्राप्नुम इत्युपदिश्यते ॥

उक्त यज्ञ से हम लोग क्या-क्या प्राप्त करते हैं, यह उपदेश किया है ॥

सं वर्च॑सा पय॑सा सं त॒नूभि॒रग॑न्महि॒ मन॑सा॒ सꣳशि॒वेन॑ ।
त्वष्टा॑ सु॒दत्रो॒ वि द॑धातु॒ रायो॑ऽनु॑मार्ष्टु॒ त॒न्वो॒ यद्विलि॑ष्टम् ॥ २४ ॥

पदार्थः—(**सम्**) सम्यगर्थे (**वर्चसा**) वर्चन्ते दीप्यन्ते सर्वे पदार्था यस्मिन् वेदाध्ययने तेन (**पयसा**) पयन्ते विजानन्ति सर्वान् पदार्थान् येन ज्ञानेन तेन (**सम्**) संधानार्थे (**तनूभिः**) तन्वते सुखानि कर्माणि च यासु ताभिः (**अगन्महि**) प्राप्नुमः । गमधातोर्लुङि उत्तमबहुवचने । मंत्रेघसह्वरणश० ॥ अ० २ । ४ । ८० ॥ अनेन च्लेर्लुक् । म्वोश्च ॥ ८ । २ । ६५ ॥ अनेन मकारस्य नकारादेशः । अत्र लडर्थे लङ् (**मनसा**) मन्यन्ते ज्ञायन्ते सर्वे व्यवहारा येनान्तःकरणेन तेन (**सम्**) मिश्रीभावे (**शिवेन**) सर्वसुखनिमित्तेन (**त्वष्टा**) त्वक्षति तनूकरोति दुःखानि प्रलये सर्वान् पदार्थान् छिनत्ति वा स जगदीश्वरः (**सुदत्रः**) सुष्ठु सुखं ददातीति सः (**विदधातु**) विधानं करोतु (**रायः**) विद्याचक्रवर्त्तिराज्यश्रियादीनि धनानि (**अनु**) पश्चादर्थे (**मार्ष्टु**) शोधयतु (**तन्वः**) शरीरस्य (**यत्**) यावत् (**विलिष्टम्**) परिपूर्णम् । अत्र विरुद्धार्थे विशब्दः ॥ अयं मंत्रः श० १ । ९ । ३ । ६ व्याख्यातः ॥ २४ ॥

प्रमाणार्थ—(**अगन्महि**) यह रूप 'गम' धातु के लुङ् लकार में उत्तम पुरुष के बहुवचन का है। 'मन्त्रे घसह्वरणश०' अष्टा० (२ । ४ । ८०) से 'च्लि' का लुक् है। 'म्वोश्च' अष्टा० (८ । २ । ६५) से मकार को नकारादेश है। यहां लट् अर्थ में लुङ् लकार है। (**विलिष्टम्**) यहां विरुद्ध अर्थ में 'वि' शब्द है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१ । ९ । ३ । ६) में की गई है। २ । २४॥

सपदार्थान्वयः—वयं यस्य कृपया **वर्चसा** वर्चन्ते=दीप्यन्ते सर्वे पदार्था यस्मिन् वेदाध्ययने तेन **पयसा** पयन्ते=विजानन्ति सर्वान् पदार्थान् येन ज्ञानेन तेन **मनसा** मन्यन्ते=ज्ञायन्ते सर्वे व्यवहारा येनाऽन्तःकरणेन तेन **शिवेन** सर्वसुख-निमित्तेन **तनूभिः** तन्वते सुखानि कर्म्माणि च यासु ताभिः **च सहः रायः** विद्याचक्रवर्त्तिराज्यक्रियादीनि

भावार्थ—जिसकी कृपा से (**वर्च्चसा**) जिसमें सब पदार्थ चमक उठते हैं, उस वेदाध्ययन से (**पयसा**) जिससे सब पदार्थों को जानते हैं, उस ज्ञान से (**मनसा**) जिससे सब व्यवहार जाने जाते हैं, उस अन्तःकरण से (**शिवेन**) सब सुखों के हेतु (**तनूभिः**) जिनसे सब सुखों और शुभकर्मों का विस्तार करते हैं, उन शरीरों के साथ (**रायः**)

धनानि **सम्**+**अगन्महि** सम्यक् प्राप्नुमः ।

सुदत्रः सुष्ठु सुखं ददातीति स **त्वष्टा**=**ईश्वरः** त्वक्षति=तनूकरोति दुःखानि प्रलये सर्वान् पदार्थान् छिनत्ति वा स जगदीश्वरः **कृपयाऽस्मभ्यं रायः** विद्याचक्रवर्त्तिराज्यक्रियादीनि धनानि **सम्**+**वि**+**दधातु** ससन्धानं विधानं करोतु ।

यद् यावद् **अस्माकं तन्वः** शरीरस्य **विलिष्टं** परिपूर्णं **तत्समनुमार्ष्टु** मिश्रीभावेन पश्चात् शोधयतु ॥ २ । २४ ॥

विद्या, चक्रवर्त्ति-राज्यलक्ष्मी आदि धनों को (**समगन्महि**) अच्छी प्रकार प्राप्त करते हैं । वह—

(**सुदत्रः**) उत्तम सुखों का दाता (**त्वष्टा**) सब दुःखों को हल्का करने वाला तथा प्रलय-काल में सब पदार्थों को सूक्ष्म करने वाला जगदीश्वर कृपा करके हमें (**रायः**) विद्या तथा चक्रवर्त्ति-राज्य-लक्ष्मी आदि धनों से (**संविदधातु**) सदा संयुक्त रखें ।

(**यत्**) जितनी हमारी (**तन्वः**) शरीर के व्यवहारों की (**विलिष्टम्**) परिपूर्णता है उसको (**सम्**+**अनु**+**मार्ष्टु**) हम से संयुक्त करके शुद्ध करे ॥ २ । २४ ॥

[सुदत्रः... ईश्वरः कृपयाऽस्मभ्यं रायः संविदधातु, वयं यस्य कृपया वर्चसा, पयसा, मनसा, शिवेन, तनूभिश्च सह रायः समगन्महि]

भावार्थः—मनुष्यैः सर्वकामप्रदस्येश्वरस्याज्ञापालन—सम्यक् पुरुषार्थाभ्यां विद्याध्ययनं, विज्ञानं, शरीरबलमनःशुद्धिः, कल्याणसिद्धिः, सर्वोत्तमश्रीप्राप्तिश्च सदैव कार्या ।

भावार्थ—मनुष्य, सब कामनाओं को पूर्ण करने वाले ईश्वर की आज्ञा का पालन तथा उत्तम पुरुषार्थ के द्वारा विद्या-अध्ययन, विज्ञान, शरीरबल और मन की शुद्धि, कल्याण की सिद्धि और सर्वोत्तम लक्ष्मी की प्राप्ति सदा करें ।

[यदस्माकं तन्वो विलिष्टं तत् समनुमार्ष्टु]

तथा—सर्वे व्यवहाराः पदार्थाश्च नित्यं शुद्धा भावनीयाः ॥ २ । २४ ॥

तथा—सब व्यवहार और पदार्थों को सदा शुद्ध रखें ॥ २ । २४ ॥

भा० पदार्थः—वर्चसा=विद्याध्ययनेन । पयसा=विज्ञानेन । मनसा=मनःशुद्धया । शिवेन=कल्याणसिद्धया । तनूभिः=शरीरबलशुद्धया । रायः=सर्वोत्तमश्रियः ॥

भाष्यसार—१. **ईश्वर**—उत्तम सुखों का दाता, क्लेशों का तनूकर्त्ता, और प्रलय समय में सब पदार्थों का छेदक है ।

२. **यज्ञ से प्राप्ति**—ईश्वर की आज्ञा रूप यज्ञानुष्ठान से विद्या, विज्ञान, मन की शुद्धि, कल्याण-सिद्धि, शारीरिक बल का यथोचित प्रयोग रूप शुद्धि, सर्वोत्तम वेदविद्या और चक्रवर्ती राज्य आदि ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है ।

३. **ईश्वर-प्रार्थना**—हे सब सुखों के दाता तथा सब दुःखों के तनूकर्त्ता ईश्वर ! आप कृपा करके हमें विद्या और चक्रवर्ती राज्य आदि ऐश्वर्य प्रदान कीजिए । जब तक हमारे शरीर की परिपूर्णता हो तब तक उसे आप उत्तम रीति से अनुकूल, शुद्ध रखिये । आपकी कृपा से हम लोग विद्या, विज्ञान, मन की शुद्धि, कल्याणसिद्धि, शारीरिक बल, वेद विद्या और चक्रवर्ती राज्य आदि ऐश्वर्यों को प्राप्त हों ॥ २ । २४ ॥

वामदेवः । **विष्णुः=यज्ञः** ॥ दिवीत्यारभ्य द्विष्म इत्यन्तस्य निचृदार्ची पङ्क्तिः तथाऽन्तरिक्षमित्यारभ्य द्विष्मः पर्य्यन्तस्यार्ची पंक्तिः । पंचमः । पृथिव्यामित्यारभ्यान्तपर्य्यन्तस्य भुरिग् जगती । निषादः ॥

स यज्ञस्त्रिषु लोकेषु विस्तृतः सन् किं किं सुखं साधयतीत्युपदिश्यते ॥

वह यज्ञ तीनों लोक में विस्तृत होकर क्या क्या सुख सिद्ध करता है, यह उपदेश किया है ॥

दिवि विष्णुर्व्यक्रꣳस्त जागतेन छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मोऽन्तरिक्षे विष्णुर्व्यक्रꣳस्त त्रैष्टुभेन छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः । पृथिव्यां विष्णुर्व्यक्रꣳस्त गायत्रेण छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मोऽस्मादन्नादस्यै प्रतिष्ठाया अगन्म स्वः सं ज्योतिषाभूम ॥ २५ ॥

पदार्थः—(**दिवि**) सूर्य्यप्रकाशे (**विष्णुः**) यो वेवेष्टि व्याप्नोत्यन्तरिक्षस्थलवाय्वादिपदार्थान् स यज्ञः । यज्ञो वै विष्णुः ॥ श० १ । १ । २ । १३ ॥ (**वि**) विविधार्थे क्रियायोगे (**अक्रꣳस्त**) क्रमते । **अत्र सर्वत्र लडर्थे लुङ्** (**जागतेन**) जगत्येव जागतं सर्वलोकसुखकारकं तेन (**छन्दसा**) आह्लादकारकेण (**ततः**) तस्मात् द्युलोकात् (**निर्भक्तः**) विभागं प्राप्तः (**यः**) विरोधी (**अस्मान्**) यज्ञानुष्ठातॄन् (**द्वेष्टि**) विरुणद्धि (**यम्**) शासितुं योग्यं दुष्टं प्राणिनम् (**च**) पुनरर्थे (**वयम्**) यज्ञक्रियानुष्ठातारः (**द्विष्मः**) विरुन्ध्मः (**अन्तरिक्षे**) अवकाशे (**विष्णुः**) यज्ञः (**वि**) विविधगमने क्रियार्थे (**अक्रꣳस्त**) गच्छति (**त्रैष्टुभेन**) त्रिष्टुबेव त्रैष्टुभं त्रिविधसुखहेतुस्तेन (**छन्दसा**) स्वच्छन्द्रताप्रदेन (**ततः**) तस्मादन्तरिक्षात् (**निर्भक्तः**) पृथग्भूतः (**यः**) दुःखप्रदः प्राणी (**अस्मान्**) सर्वोपकारकान् (**द्वेष्टि**) दुःखयति (**यम्**) सर्वाहितकरम् (**च**) समुच्चये (**वयम्**) सर्वहितकारिणः (**द्विष्मः**) पीडयामः (**पृथिव्याम्**) विस्तृतायां भूमौ (**विष्णुः**) यज्ञः (**वि**) विविधसुखसाधने (**अक्रꣳस्त**) विविधसुखप्राप्तिहेतुना क्रमते[1] (**छन्दसा**) आनन्दप्रदेन (**ततः**) तस्मात्पृथिवीस्थानात् (**निर्भक्तः**) पृथग्भूत्वाऽन्तरिक्षं गतः (**यः**) अस्मद्राज्यविरोधी (**अस्मान्**) न्यायाधीशान् (**द्वेष्टि**) वैरायते (**यम्**) शत्रुम् (**च**) समुच्चये (**वयम्**) राज्याधीशाः (**द्विष्मः**) वैरायामहे (**अस्मत्**) प्रत्यक्षाद्यज्ञशोधितात् (**अन्नात्**) अत्तं योग्यात् (**अस्यै**) प्रत्यक्षं प्राप्तायै (**प्रतिष्ठायै**) प्रति तिष्ठन्ति सत्कारं प्राप्नुवन्ति यस्यां तस्यै (**अगन्म**) प्राप्नुयाम (**स्वः**) सुखम् । **स्वरिति साधारणनामसु पठितम् ॥ निघं० १ । ४ ॥** (**सम्**) सम्यगर्थे (**ज्योतिषा**) विद्याधर्मप्रकाशकारकेण संयुक्ताः (**अभूम**) संगता भवेम ॥ **अयं मंत्रः श० १ । ६ । ३ । १२—१४ व्याख्यातः ॥ २५ ॥**

प्रमाणार्थ—(**विष्णुः**) शत० (१ । १ । २ । १३) के अनुसार 'विष्णु' शब्द का अर्थ 'यज्ञ' है । (**अक्रꣳस्त**) क्रमते । इस मन्त्र में सर्वत्र लट् अर्थ में लुङ् लकार है । (**स्वः**) 'स्वः' शब्द निघं० (१ । ४) में द्युलोक तथा सूर्य के साधारण नामों में पढ़ा है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१ । ६ । ३ । १२—१४) में की गई है । २ । २५ ॥

सपदार्थान्वयः—**अस्माभिर्जागतेन** जगत्येन जागतं सर्वलोकसुखकारकं तेन **छन्दसा** आह्लादकारकेण **अनुष्ठितोऽयं विष्णुः=यज्ञो** यो वेवेष्टि=व्याप्नोत्यन्तरिक्षस्थलवाय्वादिपदार्थान् स

भाषार्थ—हमारे द्वारा (**जागतेन**) सब लोकों को सुख देने वाले (**छन्दसा**) आनन्दकारी जगती-छन्द के द्वारा किया हुआ यह यज्ञ (**विष्णुः**) जो अन्तरिक्ष में स्थित जल, वायु आदि पदार्थों में

---

१. (**गायत्रेण**) पद का अर्थ छूट गया है ।

यज्ञो **दिवि** सूर्यप्रकाशे **वि+अक्रंस्त** विविधं क्रमते, स पुनः **ततः** तस्माद् द्युलोकात् **निर्भक्तः** विभागं प्राप्तः **सन्** छन्दसा अह्लादकारकेण **सर्वं जगत् प्रीणाति**। **यो** विरोधी **अस्मान्** यज्ञाऽनुष्ठातृन् **द्वेष्टि** विरुणाच्छि, **यं** शासितुं योग्यं दुष्टं प्राणिनं **च वयं** यज्ञक्रियाऽनुष्ठातारो **द्विष्मो** विरुन्ध्मः, **तमनेन निराकुर्मः**।

व्याप्त है, वह यज्ञ (**दिवि**) द्युलोक में (**विअक्रन्स्त**) विविध प्रकार से विचरता है, फिर वह (**ततः**) उस द्युलोक से (**निर्भक्तः**) पृथक् होकर आनन्द से सब जगत् को तृप्त कर देता है। और (**यः**) जो शत्रु (**अस्मान्**) हम यज्ञ करने वालों से (**द्वेष्टि**) विरोध करता है, (**यम् च**) और शासन में रखने योग्य जिस दुष्ट प्राणी से (**वयम्**) यज्ञादि शुभ कर्म करने हारे (**द्विष्मः**) विरोध करते हैं, उसे इस यज्ञ से दूर करते हैं।

अस्माभिर्योऽयं विष्णुः=यज्ञ स्त्रैष्टुभेन त्रिष्टुबेव त्रैष्टुभं विविधसुखहेतुस्तेन **छन्दसा** स्वच्छन्दताप्रदेन **अग्नौ प्रयोजितेऽन्तरिक्षे** अवकाशे **वि+अक्रंस्त** विविधं गच्छति, **स पुनस्ततः=स्थानात्** तस्मादन्तरिक्षात् **निर्भक्तः** पृथग्भूतः **सन् वायु-वृष्टिजल-शुद्धिद्वारा सर्वं जगत् सुखयति**। **यः** दुःखप्रदः प्राणी **अस्मान्** सर्वोपकारकान् **द्वेष्टि** दुःखयति, **यं** सर्वाऽहितकरं **च वयं** सर्वहितकारिणो **द्विष्मः** पीडयामः, **तमनेन** निवारयामः।

हमारे द्वारा जो (**विष्णुः**) यज्ञ (**त्रैष्टुभेन**) तीन प्रकार के सुखों के निमित्त (**छन्दसा**) स्वतन्त्रता प्रदान करने वाले त्रिष्टुप्-छन्द से अग्नि के प्रयोग करने पर (**अन्तरिक्षे**) आकाश में (**व्यक्रंस्त**) विविधगति करता है, वह फिर (**ततः**) उस अन्तरिक्ष स्थान से (**निर्भक्तः**) पृथक् होकर वायु और वर्षा जल की शुद्धि के द्वारा सब जगत् को सुखी बनाता है और (**यः**) जो कष्ट देने वाला प्राणी (**अस्मान्**) सबका उपकार करने वाले हम लोगों को (**द्वेष्टि**) दुःख देता है, और (**यम्**) जिस सबका अहित चाहने वाले को (**वयम्**) सबके हितकारी हम लोग (**द्विष्म**) पीड़ा देते हैं, उसको इस यज्ञ से हटाते हैं।

अस्माभिर्योऽयं विष्णुः=यज्ञो गायत्रेण [गायत्र्येव गायत्रं..........................] **छन्दसा** अनन्दप्रदेन **पृथिव्याम् अनुष्ठीयते, स पृथिव्यां वि+अक्रस्त** विविध सुखप्राप्तिहेतुना क्रमते। **स ततः** तस्मात्पृथिवीस्थानात् **निर्भक्तः** पृथग्भूत्वाऽन्तरिक्षं गतः **सन् पृथिवीस्थान् पदार्थान् पोषयति**। **यो** अस्मद्राज्यविरोधी **अस्मान्** न्यायाऽधीशान् **द्वेष्ट** वैरायते, **यं** शत्रुं **च वयं** राज्याधीशा **द्विष्मो** वैरायामहे, **तमनेन निषिध्यास्म**।

हमारे द्वारा जो यह (**विष्णुः**) यज्ञ (**गायत्रेण**) संसार की रक्षा करने वाले (**छन्दसा**) आनन्ददायक गायत्री छन्द से (**पृथिव्याम्**) इस विशाल भूमि में किया जाता है, वह पृथिवी पर (**व्यक्रंस्त**) विविध सुख प्राप्ति का निमित्त बन कर फैलता है। वह (**ततः**) उस पृथिवी-स्थान से (**निर्भक्तः**) पृथक् होकर आकाश में पहुँच कर पृथिवी के पदार्थों को पुष्ट करता है। (**यः**) जो हमारे राज्य का शत्रु (**अस्मान्**) हम न्यायाधीशों से (**द्वेष्टि**) वैर करता है, और (**यम् च**) जिस शत्रु से (**वयम्**) हम राज्य के स्वामी (**द्विष्मः**) वैर करते हैं उसको इस यज्ञ से रोकते हैं।

वयममात् प्रत्यक्षाद्यजशोधिताद् **अन्नाद्** अत्तुं योग्यात् **स्वः** सुखम् **अगन्म** प्राप्नुयाम।

हम (**अस्मात्**) इस प्रत्यक्ष यज्ञ से शुद्ध किए (**अन्नात्**) भक्षण-योग्य अन्न से (**स्वः**) सुख को (**अगन्म**) प्राप्त करते हैं।

वयमनेन यज्ञेनाऽस्यै प्रत्यक्षं प्राप्तायै **प्रतिष्ठायै** प्रतितिष्ठन्ति सत्कारं प्राप्नुवन्ति यस्यां तस्यै **ज्योतिषा** विद्याधर्मप्रकाशकारकेण **संयुक्ताः सम्+अभूम=भवेम** सम्यक् सङ्गता भवेम ॥ २ । २५ ॥

हमने इस यज्ञ से (**अस्यै**) इस प्रत्यक्ष-प्राप्त (**प्रतिष्ठायै**) सम्मान के लिए (**ज्योतिषा**) विद्या और धर्म का प्रकाश करने वाले परमेश्वर के साथ (**समभूम्**) सदा सङ्गत् रहें ॥ २ । २५ ॥

[अस्ताभिः'''अनुष्ठितोऽयं विष्णुः=यज्ञो दिवि व्यक्रंस्त, स ततो निर्भक्तः सन् छन्दसा सर्वं जगत् प्रीणाति, '''अन्तरिक्षे व्यक्रंस्त, स पुनस्ततः स्थानान्निर्भक्तः सन् वायु वृष्टिजलशुद्धि द्वारा सर्वं जगत् सुखयति]

भावार्थः—मनुष्यैर्यावन्ति सुगन्ध्यादिगुणयुक्तानि द्रव्याण्यग्नौ प्रक्षिप्यन्ते तानि पृथक् २ भूत्वा सूर्यप्रकाशे, आकाशे, भूमौ च विहृत्य सर्वाणि सुखानि साधयन्ति,

भावार्थ—मनुष्य, जितने सुगन्धि आदि गुणों से युक्त पदार्थ अग्नि में डालते हैं वे सूक्ष्म होकर, सूर्य-प्रकाश, आकाश और भूमि में विचरण कर सब सुखों को सिद्ध करते हैं।

तथा च—वाय्वग्निजलपृथिव्यादीनि शिल्पविद्या सिद्धैः कलायन्त्रै विमानादियानेषु प्रयोज्यन्ते, तानि सूर्यप्रकाशेऽन्तरिक्षे च सर्वान् प्राणिनः सुखेन विहारयन्ति।

और—जो वायु, अग्नि, जल, पृथिवी आदि पदार्थ शिल्प विद्या से सिद्ध किये कलायन्त्रों से विमानादि यानों में प्रयुक्त किये जाते हैं, वे सूर्य प्रकाश और अन्तरिक्ष में सब प्राणियों को सुख से विहार कराते हैं।

[स पृथिव्यां व्यक्रंस्त, स ततो निर्भक्तः सन् पृथिवीस्थान् पदार्थान् पोषयति]

यद् द्रव्य सूर्यकिरणाग्नि द्वारा विच्छिद्यान्तरिक्षं पुनस्तदेव भुवभागत्य, पुनर्भूमेः सकाशादुपरिगत्वा, पुनस्तत आगच्छति,

जो पदार्थ सूर्य किरण एवं अग्नि के द्वारा सूक्ष्म होकर आकाश में, फिर वही द्रव्य भूमि पर आकर फिर भूमि से ऊपर जाकर, फिर वहाँ से आता है।

[योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमनेन निषिध्यास्म वयमस्मादन्नात्स्वरगन्म]

एवमेव पुनः पुनर्मनुष्यैरित्थं पुरुषार्थेन दोष दुःखशत्रून् सम्यक् निवार्य, सुखं भोक्तव्यं भोजयितव्यं च।

इस प्रकार बार-बार इस विधि से मनुष्य पुरुषार्थ के द्वारा दोषों, दुःखों और मत्रुओं को अच्छी प्रकार निवारण करके सुख का उपभोग करें और करावें।

[व्यमनेन यज्ञेनाऽस्यै प्रतिष्ठायै ज्योतिषा संयुक्ताः समभूम=भवेम]

यज्ञशोधितैर्वायुजलौषध्यन्नशुद्धैरारोग्यबुद्धिशरीरबलवर्धनान्महत्सुखं प्राप्य विद्याप्रकाशेन नित्यं प्रतिष्ठीयताम् ॥ २ । २५ ॥

यज्ञ से शुद्ध किये वायु, जल, औषधि और अन्न से आरोग्य, बुद्धि और शारीरिक बल बढ़ाकर, महान् सुख प्राप्त करके विद्या के प्रकाश से नित्य प्रतिष्ठा को प्राप्त करें ॥ २ । २५ ॥

भा० पदार्थः—ज्योतिषा=विद्याप्रकाशेन ॥

भाष्यसार—१. **द्युलोक में विस्तृत यज्ञ**—तीनों लोकों में व्यापक होने से यहाँ यज्ञ को विष्णु कहा है। द्युलोक में व्याप्त यज्ञ वहाँ से विस्तृत होकर सब जगत् को तृप्त करता है। जो द्युलोक सम्बन्धी पीड़ाएँ हैं उन्हें यज्ञ दूर करता है।

२. **अन्तरिक्ष में विस्तृत यज्ञ**—अन्तरिक्ष लोक में व्याप्त यज्ञ वायु को तथा वर्षा जल को शुद्ध करता है। जो अन्तरिक्ष सम्बन्धी कष्ट हैं उन्हें दूर हटाता है।

३. **भूलोक में विस्तृत यज्ञ**—पृथिवी में व्याप्त यज्ञ पृथिवीस्थ पदार्थों को पुष्ट करता है, पृथिवीस्थ दोष, दुःख और शत्रुओं को दूर हटाता है। यज्ञ से पृथिवी पर अन्न उत्पन्न होता है जिससे सब सुखों की प्राप्ति होती है।

४. **यज्ञ से प्रतिष्ठा**--यज्ञ से विद्या और धर्म का प्रकाश प्राप्त होता है। जिससे प्रतिष्ठा की उपलब्धि होती है।

वामदेवः। **ईश्वरः**=**ईश्वर और विद्वान्**। उष्णिक्। ऋषभः॥

अथ सूर्य्यशब्देनेश्वरविद्वदर्थावुपदिश्येते॥

अब सूर्य्य शब्द से ईश्वर और विद्वान् मनुष्य का उपदेश किया है॥

स्वयंभूरसि श्रेष्ठो रश्मिर्वर्चोदाऽअसि वर्चो मे देहि। सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते॥ २६॥

पदार्थः--(**स्वयंभूः**) स्वयं भवतीत्यनादिस्वरूपः (**असि**) अस्ति वा (**श्रेष्ठः**) अतिशयेन प्रशस्तः (**रश्मिः**) प्रकाशकः प्रकाशमयो वा (**वर्चोदाः**) वर्चो विद्यां दीप्तिं वा ददातीति (**असि**) भवसि (**वर्चः**) विज्ञानं प्रकाशनं वा (**मे**) मह्यम् (**देहि**) ददाति वा (**सूर्य्यस्य**) चराचरस्यात्मनो जगदीश्वरस्य विदुषो जीवस्य वा। सूर्य्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च०॥ य० ७।४२॥ अनेनेश्वरस्य ग्रहणम्। इति पदनामसु पठितम् निघं० ५।६॥ इति गत्यर्थेन ज्ञानरूपत्वादीश्वरो व्यवहारप्रापकत्वाद्विद्वानेवाऽत्र गृह्यते (**आवृतम्**) समन्ताद्वर्त्तन्ते यस्मिन् तमीश्वराज्ञापालनमुपदेशप्रकाशनं वा (**अनु**) पश्चादर्थे (**आ**) अभ्यर्थे (**वर्त्ते**) स्पष्टार्थः॥ अयं मंत्रः श० १।६।३।१५—१७ व्याख्यातः॥ २६॥

प्रमाणार्थ—(**सूर्य्यस्य**) यजुर्वेद (७।४२) के अनुसार सूर्य्य का अर्थ ईश्वर है। 'सूर्य' शब्द निघं० (५।६) में पद नामों में पढ़ा। इससे गत्यर्थ होने से ज्ञानस्वरूप ईश्वर और व्यवहार-प्राप्ति का हेतु होने से विद्वान् का ग्रहण किया है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१।६।३।१५-१७) में की गई है।२।२६॥

सपदार्थान्वयः—हे जगदीश्वर! विद्वन् वा! त्वं **श्रेष्ठः** अतिशयेन प्रशस्तो **रश्मिः** प्रकाशकः प्रकाशमयो वा **स्वयम्भूः** स्वयं भवतीत्यनादिस्वरूपः **असि** (अस्ति वा), **वर्च्चोदाः** वर्च्चो=विद्यां दीप्तिं वा ददातीति **असि** भवसि, **त्वं मे** मह्यं **वर्च्चो** विज्ञानं प्रकाशनं वा **देहि** (ददाति वा)।

अहं सूर्य्यस्य चराचरस्याऽऽत्मनो जगदीश्वरस्य विदुषो जीवस्य वा **तव आवृतम्=आज्ञा-पालनं** समन्ताद्वर्त्तन्ते यस्मिन् तमीश्वराऽऽज्ञापालनमुपदेश-प्रकाशनं वा **अनु+आ+वर्त्ते** पश्चादाभिमुख्येन [वर्त्तमानो भवेयम्]॥ २।२६॥

भाषार्थ—हे जगदीश्वर अथवा विद्वन्! आप (**श्रेष्ठः**) अत्यन्त प्रशंसनीय (**रश्मिः**) सब को प्रकाश देने वाले तथा स्वयं प्रकाशमान (**स्वयम्भूः**) अनादि-स्वरूप (**असि**) हो, (**वर्च्चोदाः**) विद्या वा प्रकाश देने वाले (**असि**) हो, आप (**मे**) मुझे (**वर्च्चः**)विज्ञान वा प्रकाश (**देहि**) दीजिए, अथवा देते ही हो।

मैं (**सूर्य्यस्य**) चराचर जगत् के आत्मा व्यापक तुझ जगदीश्वर अथवा विद्वान् जीव के (**आवृतम्**) सज्जन लोग जिसमें सदा वर्त्तमान रहते हैं उस आज्ञापालन अथवा उपदेशों को प्रकाशित करने में (**अनु-आ-वर्त्ते**) सदा लगा रहूँ॥ २।२६॥

[हे जगदीश्वर विद्वन्! वा त्वं स्वयम्भूरसि]

भावार्थः—नैव परमेश्वरस्य विदुषो जीवस्य वा कौचिन्माता पितरौ कदाचित्स्तः, किन्त्वयमेव सर्वस्य माता पिता चास्ति ।

भावार्थ—परमेश्वर और विद्वान् जीव के कोई माता पिता नहीं हैं किन्तु यह ईश्वर ही सब का माता और पिता है ।

[श्रेष्ठः, वर्च्चोदा असि]

तथा—नैतस्मत् कश्चिदुत्तमः प्रकाशहेतुर्विद्याप्रदो वा पदार्थोऽस्ति ।

और—इससे उत्तम, प्रकाश का हेतु तथा विद्या-प्रदान करने वाला नहीं है ।

[अहं सूर्यस्य तवावृतम्=आज्ञापालनमन्ववर्त्ते]

अतः सर्वैर्मनुष्यैरस्यैवाज्ञायामनुयर्त्तनीयम् ॥ २ । २६ ॥

इस लिये सब मनुष्य ईश्वर और । विद्वान् की आज्ञा में रहें ॥ २ । २६ ॥

भा० पदार्थः—स्वयम्भूः=परमेश्वरो विद्वान् जीवो वा । यस्य कौचिन्मातापिरौ न स्तः, किन्त्वमेव सर्वस्य माता पिता चास्ति ॥ श्रेष्ठः=नैतस्मात्कश्चिदुत्तमः (ई०) । वर्चोदा=प्रकाशहेतुर्विद्याप्रदो वा (ई० । विद्वान्)

भाष्यसार—१. **ईश्वर**—यहाँ सूर्य शब्द के श्लेष से दो अर्थ हैं—एक ईश्वर और दूसरा विद्वान् । प्रथम ईश्वर अर्थ कहते हैं—जगदीश्वर सब से उत्तम, सूर्य आदि पदार्थों का प्रकाशित करने वाला एवं स्वयं प्रकाशमय है । ईश्वर के माता-पिता कोई नहीं वही सब का माता-पिता है क्योंकि वह 'स्वयम्भू' है । प्रकाश एवं विद्या को देने वाला है, विज्ञान का दाता भी वही है । हम सदा ईश्वर की आज्ञा में रहें ।

२. **विद्वान्**—विद्वान् पुरुष मनुष्यों में सब से श्रेष्ठ होता है, समाज के लिये प्रकाश देने वाला और स्वयं प्रकाश से भरपूर होता है । यहां विद्वान् की आत्मा की दृष्टि से कहा गया है कि जीव के माता पिता कोई नहीं होते क्योंकि आत्मा भी अनादि होने से स्वयम्भू है । विद्वान् विद्या और विज्ञान का देने वाला है । अतः अन्य पुरुष विद्वान् की आज्ञा में रहें ॥

●

परमेष्ठी प्रजापतिः । वामदेवः । **अग्निः=ईश्वरः, विद्वान्, भौतिकश्च** ॥ पञ्चमः । पूर्वार्द्धे निचृत्पंक्तिः । पञ्चमः । उत्तरार्द्धे गायत्रीः । षड्जः ॥

अथ गृहाश्रमिभिरस्यानुष्ठानेन किं किं साधनीयमित्युपदिश्यते ॥

गृहस्थ लोगों को इस यज्ञ के अनुष्ठान से क्या-क्या सिद्ध करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

अग्ने॑ गृहपते सुगृहप॒तिस्त्वया॑ऽग्ने॒ऽहं गृ॒हप॑तिना भूयासꣳ सु॒गृहप॒तिस्त्वं मया॑ऽग्ने गृ॒हप॑तिना भूयाः । अ॒स्थू॒रि णौ॒ गार्ह॑पत्यानि सन्तु श॒तꣳ हिमाः सूर्य॑स्यावृ॒तमन्वाव॑र्ते ॥ २७ ॥

पदार्थः—(**अग्ने**) परमेश्वर भौतिको वा (**गृहपते**) गृह्णन्ति स्थापयन्ति पदार्थान् यस्मिन् ब्रह्माण्डे शरीरे निवासार्थे वा गृहे तस्य यः पतिः पालयिता तत्संबुद्धौ (**सुगृहपतिः**) शोभनानां गृहाणां पतिः पालयिता (**त्वया**) जगदीश्वरेणानेन विज्ञान सुगृहस्थेन वा (**अग्ने**) सर्वस्वामिन् विद्याप्राप्तिसाधको वा (**अहम्**) गृहस्वामी मनुष्यो यज्ञानुष्ठाता वा (**गृहपतिना**) सर्वस्वामिना गृहपालकेन वा (**भूयासम्**) स्पष्टार्थः (**सुगृहपतिः**) शोभनश्चासौ गृहस्य पालकश्च सः (**त्वम्**) जगदीश्वरोऽयं धार्मिको वा (**मया**) सत्कर्मानुष्ठात्रा सह (**अग्ने**) जगदीश्वर ! प्रशस्तविद्य वा (**गृहपतिना**) धार्मिकेण पुरुषार्थिना गृहपालकेन वा (**भूयाः**)

भवेः (**अस्थूरि**) तिष्ठन्ति यस्मिन्नालस्ये तत्स्थूरं तन्निन्दितं विद्यते यस्मिन् तत्स्थूरि न स्थूरि यथा स्यात्तथा । अत्र निन्दार्थ इनिः (**नौ**) आवयोर्गृहसंबन्धिनोः स्त्रीपुरुषयोः (**गार्हपत्यानि**) गृहपतिना संयुक्तानि कर्माणि । गृहपतिना संयुक्ते ञ्यः ।। अ० ४ । ४ । ९० ।। (**सन्तु**) भवन्तु (**शतम्**) शतादधिकानि वा (**हिमाः**) हेमन्तर्तवः । भूयाᳪसि शताद्वर्षेभ्यः पुरुषो जीवति ।। श० १ । ७ । ४ । १९ ।। (**सूर्य्यस्य**) स्वप्रकाशस्येश्वरस्य विद्यान्यायप्रकाशकस्य विदुषो वा (**आवृतम्**) समन्ताद्वर्त्तन्तेऽहोरात्राणि यस्मिन् तं समयम् (**अनु**) अनुगतार्थे (**आ**) समन्तात् (**वर्त्ते**) वर्त्तमानो भवेयम् ।। अयं मंत्रः श० १ । ९ । ३ । १९-२० व्याख्यातः ।। २७ ।।

प्रमाणार्थ—(**अस्थूरि**) यहां निन्दा अर्थ में 'इनि' प्रत्यय है । (**गार्हपत्यानि**) 'गृहपतिना संयुक्ते ञ्यः' अष्टा० (४ । ४ । ९०) से गृहपति शब्द से यहां 'ञ्य' प्रत्यय है । (**शतम्**) शतादधिकानि= सौ से भी अधिक । शत० (१ । ७ । ४ । १९) मे "सौ से भी अधिक वर्षों तक पुरुष जीवित रहता है" लिखा है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१ । ९ । ३ । १९-२०) में की गई है । २ । २७ ।।

सपदार्थान्वयः—हे गृहपते ! गृह्णन्ति= स्थापयन्ति पदार्थान् यस्मिन् ब्रह्माण्डे शरीरे निवासार्थे वा गृहे तस्य यः पतिः पालयिता तत्सम्बुद्धौ ! **अग्ने**!=**जगदीश्वर विद्वन् वा**! परमेश्वर भौतिको वा ! त्वं जगदीश्वरोऽयं धार्मिको वा **सुगृहपतिः** शोभनानां गृहाणां पतिः पालयिता **असि** ।

[**अग्ने** !] सर्वस्वामिन् विद्याप्राप्तिसाधको वा ! **त्वया** जगदीश्वरेणऽनेन विज्ञानसुगृहस्थेन वा **गृहपतिना** सर्वस्वामिना गृहपालकेन वा **सहाऽहं** गृह-स्वामी मनुष्यो यज्ञाऽनुष्ठाता वा **सुगृहपतिः** शोभनश्चासौ गृहस्य पालकश्च स **भूयासम्** ।

[**अग्ने** !] जगदीश्वर प्रशस्तविद्य वा ! **मया** सत्कर्माऽनुष्ठात्रा सह **गृहपतिना** धार्मिकेण पुरुषार्थिना गृहपालकेन वा **उपासितस्त्वं मम गृहपतिर्भूयाः** भवेः ।

एवं नौ=**स्त्रीपुरुषयोः** आवयोर्गृहसम्बन्धिनोः स्त्रीपुरुषयोः **गार्हपत्यानि** गृहपतिना संयुक्तानि कर्म्माणि **अस्थूरि** तिष्ठन्ति यस्मिन्नालस्ये तत्स्थूरं, तन्निन्दितं विद्यते यस्मिन् तत्स्थूरि, न स्थूरि यथा स्यात्तथा **सन्तु** भवन्तु ।

भाषार्थ—हे (**गृहपते** !) जिसमें सब पदार्थ स्थापित किए जाते हैं, उस ब्रह्माण्ड, शरीर अथवा निवास के लिए रचे घर के पति अर्थात् पालन करने वाले ! (**अग्नेः** !) परमेश्वर, भौतिक-अग्नि अथवा विद्वन् ! (**त्वम्**) आप जगदीश्वर अथवा धार्मिक जन (**सुगृहपतिः**) उत्तम घरों के पति हो ।

[**अग्ने** !] हे सर्वस्वामिन् जगदीश्वर अथवा विद्याप्राप्ति के लिए साधक जन ! (**त्वया**) आप जगदीश्वर एवं इस विद्वान् उत्तम गृहस्थ (**गृहपतिना**) सब के स्वामी अथवा घर के पालक के साथ (**अहम्**) मैं घर का स्वामी अथवा होता= यज्ञाऽनुष्ठाता (**सुगृहपतिः**) उत्तम गृहपति (**भूयासम्**) बनूं ।

[**अग्ने** !] हे जगदीश्वर अथवा प्रशंसनीय विद्याओं से युक्त जन ! (**मया**) मुझ शुभ कर्मों के अनुष्ठान करने वाले के साथ (**गृहपतिना**) धार्मिक, पुरुषार्थी वा गृहपति के द्वारा उपासना किए हुए आप मेरे गृहपति (**भूयाः**) बनो ।

इस प्रकार (**नौ**) हम दोनों घर से सम्बन्ध रखने वाले स्त्री-पुरुषों के (**गार्हपत्यानि**) गृहपति से सम्बद्ध कार्य (**अस्थूरि**) आलस्य से भरपूर न होकर पुरुषार्थ से सदा युक्त (**सन्तु**) होवें ।

एवं वर्त्तमानोऽहं वर्त्तमाना च सूर्य्यस्य स्वप्रकाशस्येश्वरस्य विद्यान्यायप्रकाशकस्य विदुषो वा **आवृतं** समन्ताद्वर्त्तन्तेऽहोरात्राणि यस्मिँस्तं समयं **शतं** शतादधिकानि वा **हिमाः** हेमन्तर्त्तवो **अनु+आ+वर्त्ते** समन्ताद्वर्त्तमानो भवेयम् ।। २ । २७ ।।

इस प्रकार वर्त्ताव करते हुए मैं पुरुष और स्त्री (**सूर्यस्य**) स्वप्रकाशस्वरूप ईश्वर, विद्या और न्याय का प्रकाश करने वाले विद्वान् के (**आवृतम्**) समय को (**शतम्**) सौ अथवा सौ से भी अधिक (**हिमाः**) हेमन्त ऋतु पर्यन्त (**अन्वावर्त्ते**) ठीक ठीक वर्त्ताव में लाऊँ ।। २ । २७ ।।

[हे गृहपते ! अग्ने=जगदीश्वर विद्वन् वा त्वं सुगृहपतिरसि, त्वया गृहपतिना सहाऽहं सुगृहपतिर्भूयासम् एवं नौ=स्त्री पुरुषयोर्गार्हपत्यान्यस्थूरि सन्तु]

भावार्थः--अत्र श्लेषालंकारः ।। आवां स्त्री-पुरुषौ पुरुषार्थिनौ भूत्वा योऽस्य सर्वेषां स्थित्यर्थस्य जगतो गृहस्य सततं रक्षको जगदीश्वरो विद्वान् वाऽस्ति, तमाश्रित्य भौतिकाग्न्यादिभ्यः पदार्थेभ्यः स्थिरसुखसाधकानि सर्वाणि कर्माणि संसाध्य,

भावार्थ--इस मन्त्र में श्लेष अलङ्कार है ।। हम दोनों स्त्री पुरुष पुरुषार्थी होकर, सब की स्थिति के लिये जो इस जगत् रूप घर का निरन्तर रक्षक जगदीश्वर अथवा विद्वान् हैं, उसी की शरण लेकर भौतिक अग्नि आदि पदार्थों से, स्थिर सुखों को सिद्ध करने वाले सब कर्मों को प्राप्त करके—

[एवं वर्तमानोऽहं वर्तमाना च, सूर्यस्यावृतं शतं हिमा अन्वावर्त्ते]

शतं वर्षाणि जीवेव, तथा—जितेन्द्रियत्वभावेन शतादधिकमपि सुखेन जीवनं भुंज्वहे इति ।। २ । २७ ।।

सौ वर्ष तक जीवें, और जितेन्द्रियता से सौ वर्ष से अधिक भी सुखपूर्वक जीवन का उपभोग करें ।। २ । २७ ।।

भाष्यसार—१. **ईश्वर**—यहाँ श्लेष अलङ्कार से अग्नि शब्द के ईश्वर, विद्वान् और भौतिक अग्नि यह तीन अर्थ हैं। प्रथम ईश्वर अर्थ को कहते हैं—ब्रह्माण्ड एक घर है। यह शरीर भी एक घर है। प्राणियों के निवासस्थान को भी घर कहते हैं। ईश्वर ब्रह्माण्ड रूप घर का सबसे अच्छा गृहपति है। उसकी सहायता एवं कृपा से हम अच्छे गृहपति बनें। गृहपति ईश्वर की उपासना से वह हमारे गृहों का भी रक्षक बनता है, रक्षा करता है। ईश्वर की रक्षा से स्त्री पुरुषों के रचे घर सब दोषों से रहित होते हैं। ईश्वर की आज्ञा-पालन करते हुये घरों में हम सौ वर्ष तक सुखपूर्वक रहें। जितेन्द्रिय होकर सौ वर्ष से अधिक भी सुखपूर्वक जीवित रह सकते हैं।

२. **विद्वान्**--विद्वान् पुरुष उत्तम गृहपति होता है। विद्वान् के सङ्ग से सब लोग उत्तम गृहपति बनें। धार्मिक विद्वान् ईश्वर की उपासना करता है, उपासना से ईश्वर उसके घर की रक्षा करता है। इसी प्रकार अन्य लोग भी ईश्वर की उपासना करें तथा ईश्वरीय सुरक्षा को प्राप्त करें। विद्वान् पुरुष के गृहसम्बन्धी कर्म आलस्य से भरपूर नहीं होते। विद्वान् पुरुषार्थी होता है। यहाँ वेद में आलस्य की निन्दा की गई है। अतः घर में आलसी होकर न पड़े रहें। सदा पुरुषार्थी रहें। विद्वान् के समान ईश्वर की आज्ञा का सौ वर्ष तक पालन करने के लिये जीवित रहें। जितेन्द्रिय होकर सौ वर्ष से अधिक भी ईश्वर की आज्ञाओं का पालन करें ।।

३. **भौतिक अग्नि**—भौतिक अग्नि भी घर का रक्षक है क्योंकि इसके बिना गृहस्थ के यज्ञ आदि शुभ कर्म सिद्ध नहीं हो सकते जो स्थिर सुखों को प्राप्त कराने वाले हैं। शिल्प विद्या की सहायता से गृहस्थ लोग घरों में अग्नि का पूरा उपभोग करें ।।

वामदेवः। **अग्निः**=ईश्वरः॥ भुरिगुष्णिक्। ऋषभः॥

अथ यत्सत्याचरणेन सुखं भवेत्तदुपदिश्यते॥

अब जो सत्याचरण से सुख होता है, उसका उपदेश किया जाता है॥

अग्ने॑ व्रतपते व्रतम॑चारिषं॒ तद॑शकं॒ तन्मे॑ऽराधी॒दम॒हं यऽए॒वास्मि॒ सो॒ऽस्मि॥ २८॥

पदार्थः—(**अग्ने**) सत्यस्वरूपेश्वर! (**व्रतपते**) व्रतं=नियतं यन्न्याय्यं कर्म तत्पतिस्तत्संबुद्धौ (**व्रतम्**) सत्यलक्षणम् (**अचारिषम्**) चरितवान् (**तत्**) पूर्वोक्तम् (**अशकम्**) शक्तवान् (**तत्**) मया चरितुं योग्यम् (**मे**) मम (**अराधि**) संसाधितम् (**इदम्**) प्रत्यक्षमाचरितुरितुम् (**अहम्**) मनुष्यः (**यः**) यादृशकर्मकारी (**एव**) निश्चयार्थे (**अस्मि**) वर्त्ते (**सः**) तादृशकर्मभोजी (**अस्मि**) भवामि॥ **अयं मंत्रः** श० १। ६। ३। २२—२३ **व्याख्यातः॥ २८॥**

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१। ६। ३। २२-२३) में की गई है। २। २८॥ शत: में अग्ने व्रतपते इत्यादि अंश नहीं है। शत० १। १। १। ३ में तो है।

सपदार्थान्वयः—हे **व्रतपते**! व्रतं=नियतं यन्न्याय्यं कर्म्म तत्पतितत्सम्बुद्धौ! **अग्ने**! सत्यस्वरूपेश्वर! **भवता कृपया मदर्थं यद्** [**इदम्**] प्रत्यक्षमाचरितुं **व्रतं** सत्यलक्षणम् **अराधि** संसाधितम्, **तत्** पूर्वोक्तम् **अहं** मनुष्यः **अशकं** शक्तवान्, **अचारिषं** चरितवान्।

भाषार्थ—हे (**व्रतपते!**) व्रत अर्थात् न्यायोचित कर्मों के पति! (**अग्ने!**) सत्यस्वरूप परमेश्वर! आपने कृपा करके मेरे लिये जो [**इदम्**] यह प्रत्यक्ष रूप से आचरणीय (**व्रतम्**) सत्य-लक्षणयुक्त व्रत (**अराधि**) बनाया है, (**तत्**) वह=पूर्वोक्त व्रत मेरे द्वारा आचरण में लाने योग्य है, उसे (**अहम्**) मैं मनुष्य (**अशकम्**) कर सका, (**अचारिषम्**) और आचरण में लाया।

यन्मयाऽराधि संसाधितम्, **तत्** मया चरितुं योग्यम् एव निश्चयेन **अहं भुञ्जे**।

जो मैंने व्रत सिद्ध किया (**तत्**) उस आचरण करने योग्य व्रत का (**एव**) ही मैं भोग करता हूँ। और—

योऽहं=यादृशकर्मकार्य्यस्मि वर्त्ते, **सोऽहं तादृशफलभोग्यः** तादृशफलभोजी **अस्मि=भवामि॥** २। २८॥

जो जैसा कर्म करने वाला मैं (**अस्मि**) हूँ, (**सोऽहम्**) वह मैं वैसा ही कर्मों का भोग करने वाला भी (**अस्मि**) हूँ॥ २। २८॥

[हे व्रपतेऽग्ने!···यन्मयाऽराधि तदेवाहं भुञ्जे, योऽहं यादृशकर्मकार्यस्मि सोऽहं तादृशफलभोग्योऽस्मि=भवामि]

भावार्थः—मनुष्येणेदं निश्चेतव्यं-मयेदानीं यादृशं कर्म क्रियते तादृशमेवेश्वरव्यवस्थया फलं भुज्यते, भोक्ष्यते च।

भावार्थ—मनुष्य को यह निश्चय करना चाहिये कि मैंने इस समय जैसा कर्म किया है वैसा ही ईश्वर की व्यवस्था से फल मिल रहा है, और मिलेगा।

नहि कश्चिदपि जीवः स्वकर्म विरुद्धं फलमधिकं न्यूनं वा प्राप्तुं शक्नोति।

कोई भी जीव अपने कर्म से विरुद्ध—अधिक वा न्यून कर्म फल नहीं प्राप्त कर सकता।

[तात्पर्यमाह—]

तस्मात् सुखभोगाय धर्माण्येव कर्माणि

इसलिये—सुख युक्त भोगों के प्राप्ति के लिये

कार्याणि, यतो नैव कदाचिद् दुःखानि स्युरिति ॥ २ । २८ ॥

धर्मानुसार ही कर्म करें जिससे कभी दुःख प्राप्त न हो ॥ २ । २८ ॥

भाष्यसार—१. ईश्वर—न्यायोचित कर्म करना व्रत कहलाता है। ईश्वर सदा न्याययुक्त कर्म करता है। जो मनुष्य जैसा कर्म करता है ईश्वर उसी के अनुसार उसे फल प्रदान करता है। ईश्वर अपने इस व्रत का सदा पालन करता है अतः ईश्वर व्रतपति है। सत्यस्वरूप होने से यहाँ ईश्वर को अग्नि भी कहा गया है।

२. **सत्याचरण से सुख**—मन, वचन, कर्म से सत्य का आचरण करना महान् व्रत है। उस व्रतपति ईश्वर की कृपा से ही मनुष्य सत्यव्रत के पालन करने में समर्थ हो सकता है, एवं सत्यव्रत का आचरण कर सकता है। सत्यव्रत के आचरण से ही मनुष्य सुख को प्राप्त होता है। जीव जैसा कर्म करता है उसका वैसे ही फल मिलता है। सत्यभाषण आदि शुभ कर्मों का फल सुख और मिथ्याभाषण आदि दुष्कर्मों का फल दुःख है ॥

वामदेवः । **अग्निः**=भौतिकोऽग्निः ॥ स्वराडार्षी अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

अथ भौतिकावग्नीषोमौ कीदृशगुणौ वर्त्तेते इत्युपदिश्यते ॥

अब भौतिक अग्नि और सोम कैसे गुण वाले हैं, यह उपदेश किया है ॥

अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा सोमाय पितृमते स्वाहा ।
अपहता ऽ असुरा रक्षांसि वेदिषदः ॥ २९ ॥

पदार्थः—(**अग्नये**) अङ्गति=सर्वान् पदार्थान् दग्ध्वा देशान्तरे प्रापयति तस्मै (**कव्यवाहनाय**) कुवन्ति=शब्दयन्ति सर्वा विद्या ये ते कवयः क्रान्तदर्शनाः क्रान्तप्रज्ञाश्च तेभ्यो हितानि कर्माणि कव्यानि, तानि यो वहति=प्रापयति तस्मै (**स्वाहा**) सुष्ठु आह यस्यां सा (**सोमाय**) सुवन्त्यैश्वर्य्याणि प्राप्नुवन्ति यस्मिन् संसारे तस्मै (**पितृमते**) पितर=ऋतवो नित्ययुक्ता विद्यन्ते यस्मिन् तस्मै । अत्र नित्ययोगे मतुप् । ऋतवः पितरः ॥ श० २ । ४ । २ । २४ ॥ (**स्वाहा**) स्वं दधात्यनया सा स्वाहा क्रिया (**अपहताः**) अपहिंसिताः । (**असुराः**) अविद्वांसो दुष्टस्वभावाः प्राणिनः (**रक्षांसि**) परपीडकाः, स्वार्थिनः (**वेदिषदः**) ये वेद्यां=पृथिव्यां सीदन्ति ते । **यावती वेदिस्तावती पृथिवी ॥ श० १ । २ । ३ । ७ ॥ अयं मन्त्रः श० २ । ४ । २ । १२—१३ व्याख्यातः** ॥ २६ ॥

प्रमाणार्थ—(पितृमते) यहां नित्य-योग में 'मतुप्' प्रत्यय है। शत० (२ । ४ । २ । २४) के अनुसार 'पितृ' शब्द का अर्थ 'ऋतु' किया है। (**वेदिषदः**) शत० (१ । २ । ३ । ७) के अनुसार 'वेदि' का अर्थ 'पृथिवी' है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (२ । ४ । २ । १२—१३) में की गई है। २ । २६ ॥ शत० में अपहता इत्यादि मंत्रांश नहीं है।

सपदार्थान्वयः—मनुष्यैः **कव्यवाहनाय** कुवन्ति=शब्दयन्ति सर्वा विद्या ये ते कवयः=क्रान्तदर्शनाः क्रान्तप्रज्ञाश्च, तेभ्यो हितानि कर्माणि कव्यानि, तानि यो वहति=प्रापयति तस्मै **अग्नये** अङ्गति=सर्वान् पदार्थान् दग्ध्वा देशान्तरे प्रापयति

भाषार्थ—मनुष्यों को (**कव्य-वाहनाय**) सब विद्याओं का उपदेश करने वाले, क्रान्तदर्शी, श्रेष्ठ बुद्धि वाले शिल्पी कवि-जनों के लिए हितकारी कर्मों को प्राप्त कराने वाले (**अग्नये**) सब पदार्थों को भस्म करके देशान्तर में प्राप्त कराने

तस्मै **स्वाहा** सुष्ठु आह यस्यां सा, **पितृमते** पितरः=ऋतवो नित्ययुक्ता विद्यन्ते यस्मिन् तस्मै **सोमाय** सुवन्ति=ऐश्वर्य्याणि प्राप्नुवन्ति यस्मिन् संसारे तस्मै **स्वाहा** स्वं दधात्यनया सा स्वाहा क्रिया [**तां**] **विधाय ये वेदिषदो** ये वेद्यां=पृथिव्यां सीदन्ति ते **रक्षांसि** परपीडकाः, स्वार्थिनः **असुराः** अविद्वांसो दुष्टस्वभावाः प्राणिनः **ते नित्यमपहताः** अपहिंसिताः **कार्य्याः** ॥ २ । २९ ॥

वाले अग्नि के लिये (**स्वाहा**) सच्ची वेद-वाणी से आहुति करनी चाहिये, तथा (**पितृमते**) पितर अर्थात् ऋतुएँ जिसमें सदा संयुक्त रहती हैं, उस (**सोमाय**) ऐश्वर्य्य प्राप्त कराने वाले संसार के लिए (**स्वाहा**) ऐश्वर्य धारण करने वाली स्वाहा-क्रिया करके जो (**वेदिषदः**) पृथिवी पर रहने वाले (**रक्षांसि**) दूसरों को पीड़ा देने वाले स्वार्थी और राक्षस और (**असुराः**) अविद्वान् एवं दुष्ट-स्वभाव वाले प्राणी हैं, उनका सदा (**अपहताः**) विनाश करना चाहिये ॥ २ । २९ ॥

[मनुष्यैः कव्यवाहनायाग्नये स्वाहा]

भावार्थः—विद्वद्भिर्युक्त्या संयोजितोऽयमग्निः शिल्पिनां कार्याणि वहति,

भावार्थ—विद्वानों के द्वारा युक्ति से प्रयोग में लाया हुआ यह अग्नि शिल्पी जनों के कार्यों को सिद्ध करता है।

[सोमाय स्वाहा···वेदिषदो रक्षांसि, असुराः, ते नित्यमपहताः कार्याः]

येन संसारस्योपकारेण सामयिकं सुखं पृथिवीस्थानां दुष्टानां दोषाणां च निवृत्तिः स्यादयं प्रयत्नो नित्यं विधेय इति ॥ २ । ६ ॥

जिससे संसार के उपकार से सामयिक सुख एवं पृथ्वी पर रहने वाले दुष्टों और दोषों की निवृत्ति हो, ऐसा प्रयत्न विद्वान् नित्य करें। ॥ २ । २९ ॥

भा० पदार्थः—कव्यवाहनाय=शिल्पिनां कार्यवाहनाय। सोमाय=संसारस्योपकाराय। स्वाहा=सामयिकं सुखम्। वेदिषदः=पृथिवीस्थाः। रक्षांसि=दोषाः। असुराः=दुष्टाः।

भाष्यसार—१. **अग्नि**=भौतिक अग्नि शिल्पी जनों के कार्यों को सिद्ध करने वाला है। सब पदार्थों को दग्ध करके देशान्तर में प्राप्त कराने वाला है। इससे मनुष्य पृथिवी पर रहने वाले दुष्टों का विनाश करें। पृथिवीस्थ दोषों का भी निवारण करें।

२. **सोम**—यहां सोम का अर्थ संसार है। यह संसार ऋतुओं से नित्य युक्त रहता है। ऐश्वर्य प्राप्ति का स्थान है। इस में ऋतु अनुसार सब सुखों का उपभोग करें। संसार के दोषों एवं दुष्ट जनों का सदा निवारण करते रहें।

वामदेवः। **अग्निः**=ईश्वरः॥ भूरिक् पंक्तिः। पंचमः॥

कीदृग्लक्षणास्तेऽसुरा भवन्तीत्युपदिश्यते॥

उक्त असुर कैसे लक्षणों वाले होते हैं, यह उपदेश किया है॥

ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना ऽ असुराः सन्तः स्वधया चरन्ति।
परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टाँल्लोकात् प्रणुदात्यस्मात्॥ ३०॥

पदार्थः—(**ये**) मनुष्याः (**रूपाणि**) अन्तःस्थानि ज्ञानमध्ये यादृशानि ज्ञानानि सन्ति तानि (**प्रतिमुञ्चमानाः**) मुञ्चन्त आभिमुख्यं ये प्रतीतं मुञ्चन्ते त्यजन्ति ते (**असुराः**) धर्म्माच्छादकाः (**सन्तः**)

वर्त्तमानाः (स्वधया) पृथिव्या सह । स्वधे इति द्यावापृथिव्योर्नामसु पठितम् ॥ निघं० ३ । ३० ॥ (चरन्ति) वर्त्तन्ते (परापुरः) परागतानि स्वसुखार्थान्यधर्मकार्य्याणि पिपुरति ते (निपुरः) निकृष्टान् दुष्टस्वभावान् पिपुरति पूरयन्ति ते । अत्रोभयत्र क्विप् (ये) स्वार्थसाधनतत्पराः (भरन्ति) अन्यायेन परपदार्थान् धरन्ति (अग्निः) जगदीश्वरः । युष्मत्ततक्षुष्वन्तः पादम् ॥ अ० ८ । ३ । १०३ ॥ अनेन मूर्द्धन्यादेशः (तान्) दुष्टान् (लोकात्) स्थानादस्मद्दर्शनाद्वा (प्रणुदाति) दूरीकरोतु (अस्मात्) प्रत्यक्षात् ॥ अयं मंत्रः श० २ । ४ । २ । १५ व्याख्यातः ॥ ३० ॥

प्रमाणार्थ— (स्वधया) 'स्वधे' शब्द निघं० (३ । ३०) में द्यावा-पृथिवी नामों में पढ़ा है। (अग्निष्टाँन्) यहां 'युष्मत्ततक्षुष्वन्तः पादम्' अष्टा० (८ । ३ । १०३) से मूर्द्धन्यादेश है। (निपुरः) यहां पालन और पूर्ण अर्थ वाली 'पृ' धातु से 'क्विप्' प्रत्यय है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (२ । ४ । २-१५) में की गई है । २ । ३० ॥

सपदार्थान्वयः—अग्निः=ईश्वरो जगदीश्वरो **ये** मनुष्या **रूपाणि** अन्तःस्थानि ज्ञानमध्ये यादृशानि ज्ञानानि सन्ति तानि **प्रतिमुञ्चमाना** मुञ्चन्त आभिमुख्यं ये प्रतीतं मुञ्चन्ते=त्यजन्ति ते **असुरा** धर्माऽऽच्छादकाः **सन्तो** वर्त्तमानाः **स्वधया** पृथिव्या सह **चरन्ति** वर्त्तन्ते,

ये स्वार्थासाधनतत्पराः **च परापुरः** परागतानि स्वसुखार्थान्यधर्म्मकार्य्याणि पिपुरति ते **निपुरो** निकृष्टान् दुष्टस्वभावान् पिपुरति=पूरयन्ति ते **सन्तोऽन्यायेन परपदार्थान् भरन्ति**=धरन्ति अन्यायेन परपदार्थान् धरन्ति, **तान्** दुष्टान् **अस्मात्** प्रत्यक्षात् **लोकात्** स्थानादस्मद्दर्शनाद्वा **प्र+णुदाति-दूरीकरोतु** ॥ २ । ३० ॥

भाषार्थ—(**अग्नि**) जगदीश्वर (**ये**) जो मनुष्य (**रूपाणि**) अन्तःकरण में जैसा ज्ञान है उसका (**प्रतिमुञ्चमानाः**) दूसरे के सामने परित्याग करने वाले (**असुराः**) धर्म का लोप करने वाले असुर (**सन्तः**) बन कर (**स्वधया**) पृथिवी पर (**चरन्ति**) रहते हैं,

(**ये च**) और जो स्वार्थ सिद्धि में लगे हुए (**परापुरः**) अपने सुख के लिये अधर्म के कार्यों को पूरा करने वाले (**निपुरः**) नीच, दुष्ट-स्वभाव वाले जनों की सहायता करने वाले अन्याय से दूसरों के पदार्थों को (**भरन्ति**) हड़प कर लेते हैं, (**तान्**) उन दुष्ट लोगों को (**अस्मात्**) इस (**लोकात्**) स्थान से अथवा हमारी नजर से (**प्रणुदाति**) दूर कर देवे ॥ २ । ३० ॥

[ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना असुराः सन्तः स्वधया चरन्ति, ···ये···अन्यायेन परपदार्थान् भरन्ति=धरन्ति]

भावार्थः—ये दुष्टा मनुष्या मनोदेहवाग्भिर्मिथ्या चरित्वा पृथिव्यामन्यायेन प्राणिनः पीडयित्वा स्वसुखाय परपदार्थान् सञ्चिन्वन्ति ।

भावार्थ—जो दुष्ट मनुष्य मन, शरीर और वाणी से मिथ्या व्यवहार करके पृथिवी पर अन्याय से प्राणियों को पीड़ा पहुँचा कर अपने सुख के लिये पर-पदार्थों का संग्रह करते हैं,

[अग्निः=ईश्वरो······तान्स्माल्लोकात्प्रणुदाति=दूरीकरोतु]

ईश्वरस्तान् दुःखयुक्तान् मनुष्येतरनीचशरीरधारिणः कृत्वा येषु पापफलानि भुक्त्वा पुनर्मनुष्यदेहधारणे योग्यान् करोति ।

ईश्वर उनको दुःख युक्त, मनुष्य से भिन्न नीच शरीरधारी बनाकर, जिनमें पाप-फलों को भोगकर, फिर उन्हें मनुष्य देह धारण करने के योग्य बनाता है।

[तात्पर्यमाह—]

अतो मनुष्यैरीदृशेभ्यो मनुष्येभ्यः पापकर्मभ्यो

इस लिये सब मनुष्य, ऐसे मनुष्यों से वा पाप-

वा पृथक् स्थित्वा सदैव धर्म एक सेवनीय इति।। २ । ३० ।।

कर्मों से पृथक् रहकर सदा धर्म का ही सेवन करें ।। २ । ३० ।।

भा० पदार्थः—असुराः=दुष्टा मनुष्याः । भरन्ति=संचिन्वन्ति ।

भाष्यसार—१. **असुर का लक्षण**—हृदय में जैसा ज्ञान है उसका परित्याग करके, मन, शरीर और वाणी से मिथ्या आचरण करने वाले, धर्म को तिरोहित करने वाले, स्वार्थ साधन में तत्पर, अपने सुख के लिये अधर्म-कार्यों को भी पूरा करने वाले दुष्ठः स्वभाव वाले पुरुषों का पालन-पोषण करने वाले, अन्याय से पर पदार्थों को हड़प करने वाले लोग असुर कहाते हैं ।

२. हे अग्ने=जगदीश्वर ! आप जो अपने ज्ञान के विरुद्ध आचरण करने वाले असुर लोग हैं उन्हें इस लोक से अथवा हमारी आँखों के आगे से दूर कर दीजिये ।।

वामदेवः । **पितरः**=विद्वांसः । मध्यमः ।।

मनुष्यैर्धार्मिका ज्ञानिनो विद्वांसः कथं सत्कर्तव्या इत्युपदिश्यते ।।

मनुष्य धर्मात्मा, ज्ञानी, विद्वान् पुरुषों का कैसे सत्कार करें, यह उपदेश किया है ।।

अत्र॑ पितरो मादयध्वं यथाभा॒गमावृ॑षायध्वम् ।
अमी॑मदन्त पि॒तरो॑ यथाभा॒गमावृ॑षायिषत ।। ३१ ।।

पदार्थः—(**अत्र**) अस्माकं सत्कारसंयुक्ते व्यवहारे स्थाने वा (**पितरः**) पान्ति पालयन्ति सद्विद्याशिक्षाभ्यां ये ते तत्संबुद्धौ (**मादयध्वम्**) हर्षयध्वम् (**यथाभागम्**) भागमनतिक्रम्य कुर्वन्तीति यथाभागम् (**आ**) समन्तात् (**वृषायध्वम्**) आनन्दसेक्तारो वृषा इवाचरत । कर्तुः क्यङ् सलोपश्च ।। अ० ३ । १ । ११ ।। अनेन क्यङ् प्रत्ययः (**अमीमदन्त**) आनन्दयतास्यमान् मोदयत विद्यां ज्ञापयत वा (**पितरः**) विद्वांसो विद्यादानेन रक्षकाः (**यथाभागम्**) भागं भागं प्रतीति यथाभागम् । अत्र वीप्सार्थे प्रतिः । (**आ**) आभिमुख्यतया (**अवृषायिषत**) विद्याधर्मशिक्षया हर्षकारका भवत । लोडर्थे लुङ् ।। अयं मंत्रः श० २ । ४ । २ । २०-२२ व्याख्यातः ।। ३१ ।।

प्रमाणार्थ—(**वृषायध्वम्**) यहां 'वृष' शब्द से 'कर्त्तुः क्यङ् सलोपश्च' अष्टा० (३ । १ । ११) से 'क्यङ्' प्रत्यय होने से उक्त पद सिद्ध है । (**यथाभागम्**)=भागं भागं प्रति । यहां वीप्सा अर्थ में प्रति शब्द है (**अवृषायिषत**) यहां लोट् अर्थ में लुङ् लकार है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (२ । ४ । २ । २०-२२) में की गई है । २ । ३१ ।।

सपदार्थान्वयः—हे पितरः! पान्ति=पालयन्ति सद्विद्याशिक्षाभ्यां ये ते, तत्सम्बुद्धौ, **यूयमत्र** अस्माकं सत्कार-संयुक्ते व्यवहारे, स्थाने वा **यथाभागं** भागमनतिक्रम्य कुर्वन्तीति यथाभागम् **अ+वृषायध्वं** समन्तादानन्दसेक्तारो वृषा इवाऽऽचरत ।

भाषार्थ—हे (**पितरः !**) उत्तम विद्या और शिक्षा के द्वारा पालन करने वाले पितर जनो ! तुम सब (**अत्र**) हमारे इस सत्कार-युक्त व्यवहार अथवा स्थान में (**यथाभागम्**) यथायोग्य अपने भाग का अतिक्रमण न करके (**आ-वृषायध्वम्**) सब ओर आनन्द से सिञ्चन करने वाले साँड के समान प्रसन्न रहो ।

[**पितरः** !] विद्वांसो विद्यादानेन रक्षकाः ! **मादयध्वं** हर्षयध्वम्, **अस्मान् यथाभागं** भागं भागं प्रतीति यथाभागम् **आ+अवृषायिषत** आभिमुख्यतया विद्या-धर्म-शिक्षया हर्षकारका भवत, **अमीमदन्त=अस्मान् हर्षयत** आनन्दयतास्मान् मोदयत विद्यां ज्ञापयत वा ॥ २ । ३१ ॥

हे [**पितरः** !] विद्या के दान द्वारा रक्षा करने वाले विद्वानो ! (**मादयध्वम्**) हमें भी प्रसन्न रक्खो। तथा (**यथाभागम्**) प्रत्येक भाग में (**आ-अवृषायिषत**) विद्या और धर्म की शिक्षा से सर्वथा सम्मुख हर्ष उत्पन्न करने वाले बनो। और—

(**अमीमदन्त**) हमें आनन्दित एवं मुदित करो और विद्या सिखलाओ ॥ २ । ३१ ॥

भावार्थः—ईश्वर आज्ञापयति—मातापित्रादीन् विदुषोऽध्यापकान्, धार्मिकान् पितॄन् समीपस्थानागच्छतश्च दृष्ट्वैवं वाच्यं, सेवनं च कार्यम्—

भावार्थ—ईश्वर आज्ञा देता है कि माता, पिता आदि तथा विद्वान् अध्यापक, धार्मिक पितरजनों को निकट एवं आते हुए देखकर इस प्रकार कहें और सेवा करें—

[हे पितरः ! **यूयमत्र यथाभागमावृषायध्वम्**]

हे अस्मत्पितरो ! यूयं स्वागतमागच्छतास्मद्विषये, यथायोग्यान् भोगानासनादींश्चेमानस्मद्दत्तान् स्वीकृत्य सुखयत, यद्यदावश्यकंयुष्माकमिष्टं वस्त्वस्-माभिरानेतुं योग्यं तदाज्ञापयत।

हे हमारे पितर-जनो ! आपका स्वागत है, आप हमारे देश में आइये, हमारे द्वारा प्रदान किये इन यथायोग्य भोग्य-पदार्थों तथा आसन आदि को स्वीकार करके हमें सुखी करो, जो जो आपकी आवश्यक तथा प्रिय वस्तु हो उसे लाने के लिये आज्ञा दीजिये।

[[पितरः !] **मादयध्वमस्मान् यथाभागमावृषायिषत, अमीमदन्त=अस्मान् हर्षयत**]

एवमत्राऽस्माभिः सत्कृताः सन्तो भवन्तः प्रश्नोत्तरविधानेनाऽस्मान् स्थूलसूक्ष्मविद्याधर्मोपदेशेन यथावद् वर्द्धयन्तु। युष्मद्वर्द्धिता वयं नित्यं सत्क्रियाः कृत्वाऽन्यैः कारयित्वा च सर्वेषां प्राणिनां सुखविद्योन्नतीः नित्यं कुर्यामिति ॥ २ । ३१ ॥

इस प्रकार यहां हम से सत्कृत हुये आप लोग प्रश्न-उत्तर से हमें स्थूल और सूक्ष्म विद्या तथा धर्मोपदेश से उन्नत करो। आपके सदुपदेश से वृद्धि को प्राप्त हुये हम लोग सदा सत्कार करके तथा अन्यों से भी करवा के सब प्राणियों के सुख तथा विद्या की उन्नति नित्य करें ॥ २ । ३१ ॥

भा० पदार्थः—पितरः=मातापित्रादयः, विद्वांसोऽध्यापकाः । यथाभागम्=यथायोग्यं भोगम्।

अन्यत्र व्याख्यात—इस मन्त्र की व्याख्या महर्षि ने ऋग्वेदादि-भाष्यभूमिका (**पितृयज्ञविषय**) में इस प्रकार की है:—

(**अत्र पितरो मा०**)—हे पितर लोगो ! आप यहां हमारे स्थान में आनन्द कीजिये (**यथाभाग माव०**) अपनी इच्छा के अनुकूल भोजन, वस्त्रादि भोग से आनन्दित हूजिये (**अमीमदन्त पितरः०**) आप यहां विद्या के प्रचार से सबको आनन्दयुक्त कीजिये। (**यथाभागमा०**) हम लोगों से यथायोग्य सत्कार को प्राप्त होकर अपनी प्रसन्नता के प्रकाश से हमको भी आनन्दित कीजिये" ॥ २ । ३१ ॥

भाष्यसार—१. **पितरों का लक्षण**—उत्तम विद्या और शिक्षा के द्वारा पालन करने वाले माता-पिता, विद्यादान से रक्षा करने वाले विद्वान् अध्यापक लोगों को पितर कहते हैं।

२. **पितरों का सत्कार**—पितर लोगों को अपने घर तथा सत्कार के स्थान सभा आदि में निमन्त्रित करें और उनका स्वागत करें, यथायोग्य खाद्य-पदार्थ तथा आसन आदि से उनकी सेवा करें, जो उनकी प्रिय वस्तु हो उसे लाने के लिये उनसे आज्ञा माँगें, आनन्द की वर्षा करने वाले पितर जनों से प्रश्न-उत्तर के द्वारा विद्या और धर्मोपदेश ग्रहण करके सदा हर्ष में रहें। पितर जनों के सत्कार से विद्या और सुख की उन्नति नित्य करते रहें ॥

वामदेवः । **पितरः**=जनकादयः । मन्यवे पर्यन्तस्य ब्राह्मी बृहती । अग्रे निचृद् बृहती । मध्यमः ॥

अथ कथं किमर्थोऽयं पितृयज्ञः क्रियत इत्युपदिश्यते ॥

अब पितृयज्ञ किस प्रकार से और किस प्रयोजन के लिए किया जाता है, यह उपदेश किया है ॥

नमो॑ वः पितरो॒ रसा॑य॒ नमो॑ वः पितरः॒ शोषा॑य॒ नमो॑ वः पितरो॒ जी॒वाय॒ नमो॑
वः पितरः स्व॒धायै॒ नमो॑ वः पितरो॒ घो॒राय॒ नमो॑ वः पितरो॒ म॒न्यवे॒ नमो॑ वः
पितरः पितरो॒ नमो॑ वो गृ॒हान्नः॑ पितरो द॒त्त स॒तो वः॑ पितरो॒ देष्मै॒तद्वः॑ पितरो॒ वासः॑ ॥ ३२ ॥

पदार्थः—(नमः) नम्रीभावे । यज्ञो नमो यज्ञियानेवैनानेतत्करोति ॥ श० २ । ४ । २ । २४ ॥ (**वः**) युष्मभ्यम् (**पितरः**) विद्यानन्ददायकास्तत्संबुद्धौ (**रसाय**) रसभूताय विज्ञानानन्दप्रापणाय (**नमः**) आर्द्रीभावे (**वः**) युष्मभ्यम् (**पितरः**) दुःखनाशकत्वेन रक्षकास्तत्संबुद्धौ (**शोषाय**) दुःखानां शत्रूणां वा निवारणाय (**नमः**) निरभिमानार्थे (**वः**) युष्मभ्यम् (**पितरः**) धर्म्यजीविकाज्ञापकास्तत्संबुद्धौ (**जीवाय**) जीवति प्राणं धारयति प्राणधारणेन समर्थो भवति यस्मिन्नायुषि तस्मै (**नमः**) शीलधारणार्थे (**वः**) युष्मभ्यम् (**पितरः**) अन्नभोगादिविद्याशिक्षकास्तत्संबुद्धौ (**स्वधायै**) अन्नाय पृथिवीराज्याय न्यायप्रकाशाय वा । स्वधेत्यन्ननामसु पठितम् ॥ निघं २ । ७ ॥ स्वधे इति द्यावापृथिव्योर्नामसु पठितम् ॥ निघं ३ । ३० ॥ (**नमः**) नम्रत्वधारणे (**वः**) युष्मभ्यम् (**पितरः**) पापापत्कालनिवारकास्तत्संबुद्धौ (**घोराय**) हन्यन्ते सुखानि यस्मिन् तद् घोरं तन्निवारणाय । हन्तेरच् घुर् च ॥ उ० ५ । ६४ ॥ अनेन घोर इति सिद्धयति (**नमः**) क्रोधत्यागे (**वः**) युष्मभ्यम् (**पितरः**) श्रेष्ठानां पालका दुष्टेषु क्रोधकारिणस्तत्संबुद्धौ (**मन्यवे**) मन्यन्तेऽभिमानं कुर्वन्ति यस्मिन् स मन्युः क्रोधो दुष्टाचरणेषु दुष्टेषु तद्भावनाय । यजिमनि० ॥ उ० ३ । २० ॥ अनेन मन्यतेर्युच् प्रत्ययः (**नमः**) सत्कारे (**वः**) युष्मभ्यम् (**पितरः**) प्रीत्यापालकास्तत्संबुद्धौ[1] (**नमः**) ज्ञानग्रहणार्थे (**वः**) युष्मभ्यम् (**गृहान्**) गृह्णन्ति विद्यादिपदार्थान् येषु तान् (**नः**) अस्मभ्यमस्माकं वा (**पितरः**) विद्यादातारस्तत्संबुद्धौ (**दत्त**) तत्तद्दानं कुरुत (**सतः**) विद्यमानानुत्तमान् पदार्थान् (**वः**) युष्मभ्यम् (**पितरः**) जनकादयस्तत्संबुद्धौ (**देष्म**) देयास्म । डुदाञ् इत्यस्मादाशीर्लिङ्युत्तमबहुवचने ॥ लिङ्याशिष्यङित्यङ् । छन्दस्युभयथेति मस आर्द्धधातुकसंज्ञामाश्रित्य सकारलोपाभावः । सार्वधातुकसंज्ञामाश्रित्यातो येय इतीयादेशश्च (**एतत्**) अस्मद्दत्तम् (**वः**) युष्मभ्यम् (**पितरः**) सेवितुं योग्यास्तत्संबुद्धौ (**वासः**) वसते आच्छादयन्ते शरीरं येन तद्वस्त्रादिकम् ॥ अयं मंत्रः श० २ । ४ । २ । २४ व्याख्यातः ॥ ३२ ॥

प्रमाणार्थ—(नमः) शत (२ । ४ । २ । २४) के अनुसार नमः का अर्थ यज्ञ है, क्योंकि जो

1. 'पितरः' का पदार्थ छूट गया।

नमस्कार करता उसे यह यज्ञिय बना देता है। (स्वधायै) 'स्वधा' शब्द निघं० (२।७) में अन्न नामों में पढ़ा है तथा निघं० (३।३०) में द्यावा पृथिवी नामों में पढ़ा है। (घोराय) 'घोर' शब्द 'हन्तेरच् घुर् च' उ० (५।६४) से सिद्ध होता है। (मन्यवे) 'मन्यु' शब्द 'यजिमनि०' उ० (३।२०) से मन् धातु से युच् करने पर सिद्ध होता है। (देष्म) यह रूप 'डुदाञ्' के आशीर्लिङ् के उत्तम-पुरुष के बहुवचन का है। 'लिङ्याशिष्य' से अङ् और 'छन्दस्युभयथा' इस सूत्र से आर्धधातुकसंज्ञा का आश्रय करके सकार का लोप नहीं है तथा सार्वधातुकसंज्ञा के आश्रय से 'अतोयेयः' इस सूत्र से 'इय' आदेश है। इस मन्त्र को व्याख्या शत० (२।४।२।२४) में की गई है। २।३२॥

सपदार्थान्वयः—हे पितरः! विद्याऽऽनन्ददायकास्तत्सम्बुद्धौ! **रसाय** रसभूताय विज्ञानाऽऽनन्दप्रापणाय **वः**=**युष्मभ्यं नमः** नम्रीभावत्वम् **अस्तु**।

हे **पितरः**! दुःखनाशकत्वेन रक्षकास्तत्सम्बुद्धौ! **शोषाय** दुःखानां शत्रूणां वा निवारणाय **वो युष्मभ्यं नम** आर्द्रीभावः **अस्तु**।

हे **पितरः**! धर्म्यजीविका ज्ञापकास्तत्सबुम्द्धौ! **जीवाय** जीवति=प्राणं धारयति, प्राधारणेन समर्थो भवति यस्मिन्नायुषि तस्मै **वो युष्मभ्यं नमो** निरभिमानत्वम् **अस्तु**।

हे **पितरः**! अन्नभोगादिविद्याशिक्षकास्तत्सम्बुद्धौ! **स्वधायै** अन्नाय पृथिवीराज्याय न्यायप्रकाशाय वा **वो** युष्मभ्यं **नमः** शीलधारणत्वम् **अस्तु**।

हे **पितरः**! पापाऽऽपत्कालनिवारकास्तत्सम्बुद्धौ! **घोराय** हन्यन्ते सुखानि यस्मिन् तद् घोरं तन्निवारणाय **वो** युष्मभ्यं **नमो** नम्रत्वधारणम् **अस्तु**।

हे **पितरः**! श्रेष्ठानां पालका दुष्टेषु क्रोधकारिणस्तत्सम्बुद्धौ! **मन्यवे** मन्यन्ते अभिमानं कुर्वन्ति यस्मिन् स मन्युः क्रोधो दुष्टाचरणेषु दुष्टेषु तद्भावाय **वो** युष्मभ्यं **नमः** क्रोधत्यागः **अस्तु**।

हे **पितरः**! प्रीत्या पालकास्तत्सम्बुद्धौ!

भाषार्थ—हे (**पितरः**!) विद्या के आनन्द को देने वाले विद्वानो! (**रसाय**) रस रूप विद्या के आनन्द को प्राप्त करने के लिये (**वः**) तुम्हें हमारा (**नमः**) नम्रता-पूर्वक नमस्कार हो।

हे (**पितरः**!) दुःख नाश करके रक्षा करने वाले पितरो! (**शोषाय**) दुःख अथवा शत्रुओं को दूर भगाने के लिए (**वः**) तुम्हें हमारा (**नमः**) सरसतापूर्वक नमस्कार हो।

हे (**पितरः**) धर्म के अनुसार जीविका कमाने का उपदेश करने वाले पितर जनो! (**जीवाय**) प्राणों को धारण करके जिस आयु में समर्थ होता है, उस आयु की प्राप्ति के लिये (**वः**) तुम्हें हमारा (**नमः**) निरभिमानतापूर्वक नमस्कार हो।

हे (**पितरः**) अन्न-भोग तथा विद्या की शिक्षा देने वाले पितर-जनो! (**स्वधायै**) अन्न, पृथिवी का राज्य तथा न्याय को प्रकाशित करने के लिए (**वः**) तुम्हें हमारा (**नमः**) सुशीलतापूर्वक नमस्कार हो।

हे (**पितरः**!) पाप और आपत्काल को दूर भगाने वाले पितर जनो! (**घोराय**) जिसमें सुखों का विनाश हो जाता है, ऐसे कर्मों को दूर हटाने के लिए (**वः**) तुम्हें (**नमः**) नम्रता-पूर्वक नमस्कार हो।

हे (**पितरः**!) श्रेष्ठों के रक्षक तथा दुष्टों पर क्रोध करने वाले पितर जनो! (**मन्यवे**) दुष्ट आचरण करने वाले दुष्ट-जनों पर मन्यु अर्थात् अभिमान-पूर्ण क्रोध करने के लिए (**वः**) तुम्हें हमारा (**नमः**) क्रोध-त्यागपूर्वक नमस्कार हो।

हे (**पितरः**!) प्रीतिपूर्वक पालन करने वाले

विधायै वो युष्मभ्यं नमः सत्कारः अस्तु ।

पितर जनो ! विद्या की प्राप्ति के लिए (वः) आप का (नमः) सत्कार है ।

हे पितरः ! सत्काराय वो युष्मभ्यं नमो ज्ञानग्रहणम् अस्तु ।

हे (पितरः !) पिता जनो ! सत्कार के लिये (वः) आपसे हम (नमः) ज्ञान ग्रहण करें ।

हे पितरः ! विद्यादातारस्तत्सम्बुद्धौ ! यूयं [नः]=अस्माकम् अस्मभ्यमस्माकं वा [गृहान्]= गृहाणि गृहणन्ति विद्यादिपदार्थान् येषु तान् नित्यमागच्छत, आगत्य च शिक्षाविद्ये नित्यं दत्त तत्तद्दानं कुरुत ।

हे (पितरः) विद्या के देने वाले पितर जनो ! आप [नः] हमारे [गृहान्] जहाँ विद्यादि गुण ग्रहण किए जाते हैं उन पाठशालाओं में नित्य आइये और आकर हमें शिक्षा और विद्या नित्य (दत्त) दान कीजिए ।

हे पितरः ! जनकादयस्तत्सम्बुद्धौ ! वयं वः= युष्मभ्यं सतः=पदार्थान् विद्यानमानुत्तमान् पदार्थान् नित्यं देष्म देयास्म ।

हे (पितरः !) जनक=पिता आदि पितर जनो ! हम (वः) तुम्हें (सतः) अपने पास विद्यमान उत्तम पदार्थों को सदा (देष्म) प्रदान करें ।

हे पितरः ! सेवितुं योग्यास्तत्सम्बुद्धौ यूयमस्माभिः [वः] युष्मभ्यम् एतद्द् असमद्दत्तं वासः =वस्त्रादिकं वसते=आच्छादयन्ते शरीरं येन तद् वस्त्रादिकं स्वीकुरुत ॥ २ । ३२ ॥

हे (पितरः) सेवा के योग्य पितर जनो ! आप हमारे द्वारा [वः] आपको (एतद्द) इन दिए हुए (वासः) शरीर को आच्छादित करने के साधन वस्त्र आदि पदार्थों को स्वीकार कीजिये ॥ २ । ३२ ॥

[अनेक नमः पदानामभिप्रायमाह—]

भावार्थः—अत्रानेके नमः शब्दा अनेकशुभगुणसत्कार द्योतनार्थाः ।

भावार्थ—इस मन्त्र में अनेक 'नमः' शब्द अनेक शुभगुण एवं सत्कार के प्रकाशक हैं ।

[हे पितरः ! रसाय, शोषाय, जीवाय, स्वधायै, घोराय, मन्यवे वो नमोऽस्तु]

यथा वसन्तग्रीष्मवर्षाशरद्धेहमन्तशिशिराः षड्तवो रसशोषजीवान्नघनत्वमन्यूत्पादका भवन्ति,

जैसे—वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त और शिशिर छः ऋतुयें रस, शोषण, जीवन, अन्न, घनत्व और मन्यु की उत्पादक हैं ।

[हे पितरः ! विद्यायै, सत्काराय वो नमोऽस्तु,...यूयं ...विद्याशिक्षे नित्यं दत्त,...वयं वः=युष्मभ्यं सतः= पदार्थान् देष्म]

तथैव--ये पितरोऽनेकविद्यो पदेशैर्मनुष्यान् सततं प्रीणयन्ति तानुत्तमैः पदार्थैः सत्कृत्य तेभ्यः सततं विद्योपदेशा ग्राह्याः ॥ २ । ३२ ॥

वैसे ही--जो पितर जन अनेक विद्याओं के उपदेश से मनुष्यों को सदा तृप्त करते हैं उन्हें उत्तम पदार्थों से सत्कृत करके उनसे सदा विद्याओं का उपदेश ग्रहण करें ॥ २ । ३२ ॥

भा० पदार्थः—पितरः=वसन्तग्रीष्मवर्षाशरद्धेमन्त-शिशिराः षड् ऋतवः ।

अन्यत्र व्याख्यात—इस मन्त्र की व्याख्या महर्षि ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका (पितृयज्ञविषय) में इस प्रकार की है:—

(क) "(नमो वः०) हे पितर लोगो ! हम लोग आप को नमस्कार करते हैं इसलिए कि आप के द्वारा हमको रस अर्थात् विद्यानन्द, औषधि और जल विद्या का यथावत् ज्ञान हो तथा (नमो वः०) शोष अर्थात् अग्नि और वायु की विद्या कि जिससे औषधि और जल सूख जाते हैं उसके बोध होने के लिए भी

हम आपको नमस्कार करते हैं (**नमो वः०**) हे पितर लोगो ! आप की सत्य शिक्षा से हम लोग प्रमाद-रहित और जितेन्द्रिय होके पूर्ण उमर को भोगें इसलिए हम आप को नमस्कार करते हैं (**नमो वः०**) हे विद्वान् लोगो ! अमृत रूप मोक्ष विद्या की प्राप्ति के लिये हम आप को नमस्कार करते हैं (**नमो वः०**) हे पितरो ! घोर विपत् अर्थात् आपत्काल में निर्वाह करने की विद्याओं को जानने की इच्छा से दुःखों के पार उतरने के लिए हम लोग आप की सेवा करते हैं (**नमो वः०**) हे पितरो ! दुष्ट जीव और दुष्ट कर्मों पर नित्य अप्रीति करने की विद्या सीखने के लिए हम आपको नमस्कार करते हैं (**नमो वः०**) हम आप लोगों को बारंबार नमस्कार इस लिये करते हैं कि गृहाश्रम आदि करने के लिये जो जो विद्या अवश्य हैं सो सो सब आप लोग हमको देवें। (**सतो वः०**) हे पितर लोगो ! आप सब गुणों और सब संसारी सुखों के देने वाले हैं, इसलिये हम लोग आप को उत्तम २ पदार्थ देते हैं, इनको आप प्रीति से लीजिये तथा प्रतिष्ठा के लिये उत्तम २ वस्त्र भी देते हैं, इनको आप धारण कीजिये और प्रसन्न होके सबके सुख के अर्थ संसार में सत्य विद्या का प्रचार कीजिये ॥"

(ख) "'नमो वः पितरो रसाय' इत्यादि मन्त्र पितरों की सेवा और सत्कार में प्रमाण हैं" (**पञ्चमहायज्ञविधि**) ॥ २ । ३२ ॥

भाष्यसार—१. **पितरों का लक्षण**—विद्याओं का आनन्द देने वाले, दुःखों का नाश करके रक्षा करने वाले, धर्मपूर्वक जीविकार्जन का उपदेश करने वाले, खान-पान आदि विद्या की शिक्षा करने वाले, पाप और आपत्काल का निवारण करने वाले, श्रेष्ठों की रक्षा और दुष्टों पर क्रोध करने वाले, प्रीतिपूर्वक पालना करने वाले, विद्या का दान करने वाले, जन्म देने वाले, सेवा करने के योग्य सत्पुरुषों को पितर कहते हैं। पालन का हेतु होने से छः ऋतुओं को भी 'पितर' कहा जाता है।

२. **'नमः' पद के अर्थ**—नम्रता, आर्द्रीभाव (**हृदय की कोमलता**), निरभिमानता, शील का धारण करना, नम्रता का धारण करना, क्रोध का त्याग, सत्कार करना, ज्ञान ग्रहण करना ॥

३. **पितृ यज्ञ का प्रकार**—विद्या आदि शुभ गुणों को देने वाले पितर जनों को अपने घर पर आदर पूर्वक निमन्त्रित करें और उनका यथायोग्य सत्कार करें तथा उनसे विद्या और उत्तम शिक्षा ग्रहण करें। उत्तम खाद्य पदार्थों एवं वस्त्रादि प्रदान से उनका सत्कार करें।

४. **पितृ यज्ञ का प्रयोजन**—पितृ यज्ञ से विज्ञान-आनन्द की प्राप्ति, दुःख और शत्रुओं का निवारण, आयु की प्राप्ति, अन्न, पृथिवी का राज्य और न्याय के प्रकाश की उपलब्धि, पाप की निवृत्ति, श्रेष्ठों की रक्षा तथा दुष्टों पर क्रोध गुण की प्राप्ति, विद्या की प्राप्ति, सत्कार की रीति का ज्ञान प्राप्त होता है ॥

वामदेवः । पितरः=विद्वांसः ॥ निचृद्गायत्री । षड्जः ॥

तैः किं किं कर्त्तव्यमित्युपदिश्यते ॥

उक्त पितरों को क्या-क्या करना चाहिये, यह उपदेश किया है ॥

आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम् । यथेह पुरुषोऽसत् ॥ ३३ ॥

पदार्थः—(**आ**) समन्तात् (**धत्त**) धारयत (**पितरः**) ये पान्ति विद्यान्नादिदानेन तत्संबुद्धौ

(**गर्भम्**) गर्भमिव (**कुमारम्**) ब्रह्मचारिणम् (**पुष्करस्रजम्**) विद्याग्रहणार्था स्रग् धारिता येन तम् (**यथा**) येन प्रकारेण (इह) अस्मिन् संसारेऽस्मत्कुले वा (**पुरुषः**) विद्यापुरुषार्थयुक्तोऽयं मनुष्यः (**असत्**) भवेत्। लेट प्रयोगोऽयम् ॥ ३३ ॥

प्रमाणार्थ—(**असत्**) भवेत्। यह लेट् लकार का प्रयोग है ॥ २ । ३३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे पितरः ! ये पान्ति विद्याऽन्नादि-दानेन तत्सम्बुद्धौ ! **यूयं यथा** येन प्रकारेण **अयं ब्रह्मचारीह** अस्मिन् संसारेऽस्मत्कुले वा **शरीराऽऽत्मबलं प्राप्य** [**पुरुषः**]=**पुरुषवद्**, विद्या-पुरुषार्थयुक्तोऽयं मनुष्यः [**असत्**]=**भवति** भवेत्, **तथैव गर्भं** गर्भमिव **पुष्करस्रजं** विद्याग्रहणार्था स्रग् धारिता येन तं **कुमारम्**=**विद्यार्थिनं** ब्रह्मचारिणम् **आ+धत्त**=**धारयत** समन्ताद् धारयत ॥ २ । ३३ ॥

भाषार्थ—हे (**पितरः !**) विद्या और अन्नादि के दान से रक्षा करने वाले पितर जनो ! तुम लोग (**यथा**) जैसे यह ब्रह्मचारी (**इह**) इस संसार में अथवा हमारे कुल में शारीरिक और आत्मिक बल प्राप्त करके [**पुरुषः**] विद्वान् और पुरुषार्थी मनुष्य [**असत्**] बन जावे, वैसे (**गर्भम्**) गर्भ के समान (**पुष्कारसृजम्**) विद्या-ग्रहण के लिये माला धारण करने वाले (**कुमारम्**) ब्रह्मचारी विद्यार्थी को (**आ+धत्त**) सब ओर से धारण करो ॥ २ । ३३ ॥

[हे पितरो ! यूय···गर्भं पुष्करस्रजं कुमारं=विद्यार्थिनमाऽधत्त=धारयत]।

भावार्थः—अत्र लुप्तोपमालङ्कारः ॥ ईश्वर आज्ञापयति—विद्वद्भिर्विदुषीभिश्च विद्यार्थिनः कुमारा, विद्यार्थिन्यः कुमार्यश्च विद्यादानाय गर्भवद्धार्याः।

यथा गर्भे देहः क्रमेण वर्धते तथैव सुशिक्षयैव, एतश्च सद्विद्यायां वर्धयितव्याः पालनीयश्च, यतो विद्यायोगेन धार्मिकाः पुरुषार्थयुक्ता भूत्वा सदैव सुखयुक्ता भवेयुरित्येतत् सदैवानुष्ठेयमिति ॥ २ । ३३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ ईश्वर आज्ञा देता है कि विद्वान् और विदुषी देवियाँ क्रमशः विद्या के अभिलाषी कुमारों तथा विद्या की अभिलाषिणी कुमारियों को विद्या-दान के लिये गर्भ के समान धारण करें।

जैसे गर्भ में शरीर क्रम से बढ़ता है वैसे उत्तम शिक्षा से इन कुमार और कुमारियों को सद्विद्या में बढ़ावें और इनका पालन भी करें, जिससे विद्या के द्वारा धार्मिक और पुरुषार्थी होकर सदा सुखी रहें, इसका सदा अनुष्ठान करें ॥ २ । ३३ ॥

अन्यत्र व्याख्यात—इस मन्त्र को व्याख्या महर्षि ने ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिकार (**पितृयज्ञविषय०**) में इस प्रकार की है :—

"(**आधत्त पितरो०**) हे विद्या के देने वाले पितर लोगो ! इस कुमार ब्रह्मचारी की गर्भ के समान रक्षा करके उत्तम विद्या दीजिये, कि जिससे वह विद्वान् हो के (**पुष्करस्रजम्**) जैसे पुष्पों की माला धारण करके मनुष्य शोभा को प्राप्त होता है वैसे ही यह भी विद्या पाकर सुन्दरतायुक्त होवे (**यथेह पुरुषोऽसत्**) अर्थात् जिस प्रकार इस संसार में मनुष्यों की विद्यादि गुणों से उत्तम कीर्ति और सब मनुष्यों को सुख प्राप्त हो सके वैसा ही प्रयत्न आप लोग सदा कीजिये। यह ईश्वर की आज्ञा विद्वानों के प्रति है। इसलिये सब मनुष्यों को उचित है कि इसका पालन सदा करते रहें" ॥ २ । ३३ ॥

भाष्यसार—१. **पितर का लक्षण**—विद्या और अन्न आदि के दान से रक्षा करने वाले जनों को पितर कहते हैं।

२. पितरों का कर्त्तव्य—जैसे इस संसार में ब्रह्मचारी शारीरिक और आत्मिक बल प्राप्त करके विद्वान् और पुरुषार्थी मनुष्य बन सके वैसे पितर लोग प्रयत्न करें। विद्वान् पुरुष विद्या के अभिलाषी कुमारों को तथा विदुषी देवियों विद्या की अभिलाषिणी कुमारियों को विद्या-दान करने के लिये गर्भ के समान धारण करें। जैसे गर्भ में शरीर शनैः-शनैः बढ़ता है इसी प्रकार इन कुमार और कुमारियों को विद्या में शनैः-शनै बढ़ाते जावें गर्भ के समान इनका पालन भी करें। कुमार और कुमारियों को विद्या ग्रहण करने के लिये विद्या के चिह्न यज्ञोपवीत रूप माला का धारण करायें।

वामदेवः। **आपः**=जलम्॥ भुरिगुष्णिक्। ऋषभः॥

एते पितरः केन २ पदार्थेन सत्कर्तव्या इत्युपदिश्यते॥

इन पितरों का किस-किस पदार्थ से सत्कार करें, यह उपदेश किया है॥

ऊर्ज्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम्। स्वधा स्थ तर्पयत मे पितॄन्॥ ३४॥

पदार्थः—(**ऊर्ज्जम्**) इष्टं विविधं रसम्। ऊर्गितः॥ श० १।७।१।२॥ (**वहन्तीः**) प्रापयन्तीः स्वादिष्ठा आपः (**अमृतम्**) सर्वरोगहरं सुरसं मिष्टादिकम् (**घृतम्**) आज्यम् (**पयः**) दुग्धम् (**कीलालम्**) सुसंस्कृतमन्नम्। कीलालं इत्यन्ननामसु पठितम्॥ निघं० २।७॥ (**परिस्रुतम्**) परितः=सर्वतः स्रुतं=सुरसयोगेन परिपक्वं फलादिकम् (**स्वधाः**) ये स्वमेव दधते **ते** (**स्थ**) सर्वे पितृसेविनो भवत (**तर्प्पयत**) सुखयत (**मे**) मम (**पितॄन्**) पूर्वोक्तान्॥ ३४॥

प्रमाणार्थ—(**ऊर्ज्जम्**) शत० (१।७।१।२) के अनुसार ऊर्क शब्द का अर्थ रस है। (**कीलालम्**) कीलाल शब्द निघं० (२।७) में अन्न-नामों में पढ़ा है। २। ३४॥

सपदार्थान्वयः—हे पुत्रादयः! **यूयं मे**=**मम पितॄन्** पूर्वोक्तान् **ऊर्ज्जम्** इष्टं विविधं रसं **वहन्तीः** प्रापयन्तीः स्वादिष्ठा आपः **अमृतं** सर्वरोग-हरं सुरसं मिष्टादिकं **घृतम्** आज्यं **पयो** दुग्धं **कीलालं** सुसंस्कृतमन्नं **परिस्रुतं** परितः=सर्वतः स्रुतं सुरसयोगेन परिपक्वं फलादिकं **दत्त्वा तर्प्पयत** सुखयत।

एवं तत्सेवनेन विद्याः प्राप्य स्वधाः=परस्व-त्यागेन सदा स्वसेविनो ये स्वमेव दधते ते **स्थ**=**भवत** सर्वे पितृसेविनो भवत॥ २। ३४॥

भाषार्थ—हे पुत्रादि जनो! तुम (**मे**) मेरे (**पितॄन्**) पूर्वोक्त पितर लोगों को (**ऊर्ज्जम्**) प्रिय विविध रसों का (**वहन्तीः**) प्राप्त कराने वाले स्वादिष्ट जल, (**अमृतम्**) सब रोगों को हरण करने वाले रसीले मिष्ठान आदि (**घृतम्**) घी (**पयः**) दूध (**कीलालम्**) पवित्र भोजन, (**परिस्रुतम्**) सब ओर से रस से परिपूर्ण पके हुए फलादि पदार्थों को देकर (**तर्प्पयत**) तृप्त करो।

इस प्रकार उनकी सेवा से विद्याओं को प्राप्त करके (**स्वधाः**) पर धन का त्याग कर अपने धन से सेवा करने वाले (**स्थ**) तुम सब पितर जनों के सेवक बनो॥ २। ३४॥

[**हे पुत्रादयः! यूयं ये=मम पितॄन्**···**तर्पयत**]

भावार्थः—ईश्वर आज्ञापयति=मनुष्याः सर्वान् पुत्रप्रभृतीन् प्रत्येव मादिशन्तु—युष्माभिर्मम पितरो जनका विद्याप्रदाश्च प्रीत्या नित्यं सेवनीयाः,

भावार्थ—ईश्वर आज्ञा देता है कि सब मनुष्य अपने सब पुत्र-आदिकों को इस प्रकार आदेश देवें कि तुम लोग मेरे पितर, जनक और विद्या देने

वाले अध्यापकों की प्रीतिपूर्वक नित्य सेवा करो।

यथा=तैर्बाल्यावस्थायां विद्याप्रदान समये च वयं यूयं च पालितास्तथैवारमाभिरपि ते सर्वदा सर्वथा सत्कर्त्तव्याः ।

जैसे उन्होंने बचपन में और विद्यादान के समय में हमारी और तुम्हारी पालना की है वैसे ही हम भी उनका सब काल में और सब प्रकार से सत्कार करें।

[हेतुमाह—]

यतो नैवाऽस्माकं मध्ये कदाचिद् विद्यानाश कृतघ्नदोषौ भवेतामिति ॥ २ । ३४ ॥

जिससे—हमारे मध्य में कभी भी विद्या का नाश और कृतघ्नता दोष उत्पन्न न हों ॥ २ । ३४ ॥

भा० पदार्थः—पितॄन्=जनकान् विद्या प्रदाँश्च । तर्पयत=प्रीत्या नित्यं सेवध्वम् ।

अन्यत्र व्याख्यात—महर्षि ने इस मन्त्र की व्याख्या ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका (**पितृयज्ञविषय**) में इस प्रकार की है :—

(**ऊर्ज वह०**) पिता वा स्वामी अपने पुत्र, पौत्र, स्त्री और नौकरों को इस प्रकार आज्ञा देवें कि (**तर्पयत मे०**) जो २ हमारे मान्य पिता, पितामहादि, माता, मातामहादि और आचार्य तथा इनसे भिन्न भी विद्वान् लोग जो अवस्था वा ज्ञान में बड़े और मान्य करने योग्य हैं तुम लोग उनकी (**ऊर्जं०**) उत्तम २ जल (**अमृतं**) रोग नाश करने वाले उत्तम अन्न (**परिस्रुतं**) सब प्रकार के उत्तम फलों के रस आदि पदार्थों से नित्य सेवा किया करो कि जिससे वे प्रसन्न हो के तुम लोगों को सदा विद्या देते रहें क्योंकि ऐसा करने से तुम लोग भी सदा प्रसन्न रहोगे।"

पञ्चमहायज्ञ विधि में महर्षि ने इस मन्त्र की व्याख्या इस प्रकार की है :—

"(**ऊर्ज वहन्ती०**) पिता वा स्वामी अपने पौत्र, स्त्री और नौकरों को सब दिन के लिये आज्ञा दे के कहे कि—(**तर्पयत मे पितॄन्**) जो मेरे पिता, पितामहादि, माता, मातामहादि तथा आचार्य और इनसे भिन्न भी विद्वान् लोग अवस्था अथवा ज्ञान से वृद्ध मान्य करने योग्य हैं उन सब के आत्माओं को यथायोग्य सेवा से प्रसन्न किया करो। सेवा करने के पदार्थ ये हैं :—

(**ऊर्जं वहन्ती०**) जो उत्तम २ जल (**अमृतम्**) अनेक विध रस (**घृतम्**) घी (**पयः**) दूध (**कीलालम्**) अनेक संस्कारों से सिद्ध किए रोगनाश करने वाले उत्तम २ अन्न (**परिस्रुतम्**) सब प्रकार के उत्तम २ फल हैं इन सब पदार्थों से उनकी सेवा सदा करते रहो। जिससे उनका आत्मा प्रसन्न होके तुम लोगों को आशीर्वाद देता रहे कि उससे तुम लोग भी सदा प्रसन्न रहो।

(**स्वधा स्थ०**) हे पूर्वोक्त पितृलोगो ! तुम सब हमारे अमृत रूप पदार्थों के भोगों से सदा सुखी रहो, और जिस पदार्थ की तुमको अपने लिये इच्छा हो, जो २ हम लोग कर सकें, उस-उस की आज्ञा सदा करते रहो। हम लोग मन, वचन, कर्म से तुम्हारे सुख करने में स्थित हैं। तुम लोग किसी प्रकार का दुःख मत पाओ। जैसे तुम लोगों ने बाल्यावस्था और ब्रह्मचर्याश्रम में हम लोगों को सुख दिया है, वैसे हम को भी आप लोगों का प्रत्युपकार करना अवश्य चाहिये, जिससे हमको कृतघ्नता दोष न प्राप्त हो" ॥ २ । ३४ ॥

भाष्यसार—**१. पितरों का सत्कार**—सब मनुष्य अपने पुत्र आदि को आदेश करें कि जो हमारे पिता, और अध्यापक हैं उनकी विविध रस, स्वादिष्ट जल, रोगनाशक रसीले मिष्ठान आदि घी, दूध, संस्कृत अन्न, पके हुए फल आदि पदार्थों से नित्य सेवा करो।

२. पितरों की सेवा का फल—पितर जनों की सेवा से विद्या की प्राप्ति तथा परपदार्थों का त्याग और स्वपदार्थों का ग्रहण आदि गुणों की उत्पत्ति, विद्या की वृद्धि और कृतघ्नता आदि दोषों की निवृत्ति होती है ॥

३. पुत्रादि का कर्त्तव्य—बाल्यावस्था में तथा विद्या पढ़ते समय तुम्हारे पिता और तुम्हारी भी पालना जिन पितर जनों ने की है वैसे तुम पुत्र आदि भी उनका सदा सब प्रकार से सत्कार किया करो।

[अध्यायसंगतिमाह]

ईश्वरेण यद्यदस्मिन्नध्याये वेद्यादिरचनं यज्ञस्य फलगमनसाधकानि सामग्रीधारणमग्नेर्दूतत्व प्रकाशनमात्मेन्द्रियादिशोधनं सुखभोगो वेदप्रकाशनं पुरुषार्थसाधनं युद्धे विजयकरणं शत्रुनिवारणं द्वेषत्यागोऽग्न्यादीनां यानेषु योजनं पृथिव्यादिभ्य उपकारग्रहणमीश्वरेप्रीतिर्दिव्यगुणविस्तरणं सर्वरक्षणं वेदशब्दार्थवर्णनं वाय्वग्न्यादीनां परस्परमेलनं पुरुषार्थग्रहणमुत्तमानां पदार्थानां स्वीकरणं त्रिषु लोकेषु यज्ञाहुतद्रवस्य गमनं पुनस्तस्मादागमनं स्वयंभूशब्दार्थवर्णनं गृहस्थकृत्यं सत्याचरणमग्नौ होमो दुष्टानां निवारणं पितृणां सेवनं चोक्तं तत्तन्यमनुष्यैः संप्रीत्या सेवनीयमिति प्रथमाध्यायार्थेन सहास्य द्वितीयाध्यायार्थस्व संगतिरस्तीति वेद्यम् ॥ २ । ३४ ॥

ईश्वर ने जो जो इस अध्याय में वेदि की आदि रचना (१) यज्ञ के फल प्राप्ति के साधन (२) यज्ञ सामग्री का धारण (३) अग्नि के दूत कर्म का प्रकाशन (६) आत्मा और इन्द्रिय आदि की शुद्धि (१०) सुखों का भोग (११) वेदों का प्रकाश (१२) पुरुषार्थ की सिद्धि (१४) युद्ध में विजय (१५) शत्रु का निवारण (१५) द्वेष का त्याग (१५) अग्नि आदि का यानों में प्रयोग (१७) पृथिवी आदि से उपकार लेना (१६) ईश्वर में प्रीति (१६) दिव्य गुणों का विस्तार (१६) सबकी रक्षा (२०) वेद शब्द का अर्थवर्णन (२१) वायु, अग्नि, आदि पदार्थों को परस्पर मिलाना (२२) पुरुषार्थ का ग्रहण करना (२४) उत्तम पदार्थों को स्वीकार करना (२४) यज्ञ में होम किये हुये द्रव्य का तीनों लोकों में जाना, फिर वहाँ से आना (२५) स्वयम्भू शब्द का अर्थवर्णन (२६) गृहस्थ के कर्त्तव्य (२७) सत्य का आचरण (२८) अग्नि में होम करना (२६) दुष्टों का निवारण (३०) और पितर जनों की सेवा (३१-३४) का उपदेश किया है उसे मनुष्य प्रीतिपूर्वक सेवन करें। इस प्रकार प्रथमाध्याय के अर्थ के साथ द्वितीयाध्याय के अर्थ की संगति समझें ॥ २ । ३४ ॥

इति श्री पण्डित सुदर्शनदेवाचार्यविरचिते दयानन्द यजुर्वेदभाष्य भास्करे द्वितीयोऽध्यायः सम्पूर्णः ॥ २॥

तृतीय अध्याय

अस्मिन्नध्याये त्रिषष्टिर्मन्त्राः सन्तीति वेदितव्यम् ॥

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ आसु॑व ॥ १ ॥
य० ३० । ३ ॥

आङ्गिरसः । **अग्निः**=भौतिकोऽग्निः । गायत्री । षड्जः ॥

अथ भौतिकोऽग्निः क्व क्वोपयोक्तव्य इत्युपदिश्यते ॥

अब तीसरे अध्याय के पहले मन्त्र में भौतिक अग्नि का किस-किस काम में उपयोग करना चाहिये, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

स॒मिधा॒ग्निं दु॑वस्यत घृ॒तैर्बो॑धय॒ताति॑थिम् । आस्मि॑न् ह॒व्या जु॑होतन ॥ १ ॥

पदार्थः—(**समिधा**) सम्यगिध्यते-प्रदीप्यते यया तया । **अत्र सम्पूर्वादिन्धेः कृतो बहुलमिति करणे क्विप्** (**अग्निम्**) भौतिकम् (**दुवस्यत**) सेवध्यम् (**घृतैः**) शोधितैः सुगन्ध्यादियुक्तैर्घृतादिभिर्यानेषु जलवाष्पादिभिर्वा । धृतमित्युदकनामसु पठितम् ॥ निघं० १ । १२ ॥ **अत्र बहुवचनमनेकसाधनद्योतनार्थम्** (**बोधयत**) उद्दीपयत (**अतिथिम्**) अविद्यामाना तिथिर्यस्य तम् (**आ**) समन्तात् (**अस्मिन्**) अग्नौ (**हव्या**) दातुमत्तुमादातुमर्हाणि वस्तूनि । अत्र शेश्छन्दसि बहुलमिति लोपः (**जुहोतन**) प्रक्षिपत । अत्र हुधातोर्लोटि मध्यमबहुवचने । तप्तनप् इतितनबादेशः ॥ अयं मन्त्रः शत० ६ । ५ । ५ । ६ व्याख्यातः ॥ १ ॥

प्रमाणार्थ—(**समिधा**) यहां 'सम्' उपसर्ग पूर्वक 'इन्ध' धातु से 'कृतो बहुलम्' [अ० ३ । ३ । ११३] वार्त्तिक से करण अर्थ में 'क्विप' प्रत्यय है । (**घृतैः**) शब्द निघं० (१ । १२) में जलनामों में पढ़ा है । बहुत से साधनों को प्रकाशित करने के लिये यहां बहुवचन का प्रयोग है । (**हव्या**) यहां 'शेश्छन्दसि बलुलम्' [अ० ६ । १ । ६८] सूत्र से 'शि' का लोप है । (**जुहोतन**) यहाँ 'हु' धातु के लोट् लकार के मध्यम पुरुष के बहुवचन में 'त' के स्थान में 'तप्तनप्तन०' [७ । १ । ४५] सूत्र से 'तनप्' आदेश है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (६ । ५ । ५ । ६) में की गई है । ३ । १ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वांसः ! यूयं **समिधा** सम्यगिध्यते=प्रदीप्यते यया तया **घृतैः** शौधितैः सुगन्ध्यादियुक्तैर्घृतादिभिर्यानेषु जलवाष्पादिभिर्वा **अग्निं** भौतिकं **बोधयत** उद्दीपयत, **तमतिथिम्** अविद्यमाना तिथिर्यस्य तम् **इव दुवस्यत** सेवध्वम् । **अस्मिन्** अग्नौ **हव्या**=**होतव्यानि द्रव्याणि**, दातुमत्तमादातुमर्हाणि वस्तूनि **आजुहोतन**=**प्रक्षिपत** (समन्तात् प्रक्षिपते) ॥ ३ । १ ॥

भाषार्थ—हे विद्वानों ! तुम (**समिधा**) अच्छे प्रकार अग्नि को प्रदीप्त करने वाली समिधा से (**घृतै**) शुद्ध सुगन्धि आदि से युक्त घृत आदि से एवं यानों में जल-वाष्प आदि से (**अग्निम्**) भौतिक अग्नि को (**उद्दीपयत**) प्रदीप्त करो और उसकी (**अतिथिम्**) जिसकी आने और जाने की तिथि निश्चित नहीं, उस अतिथि के समान (**दुवस्यत**) सेवा करो । तथा (**अस्मिन्**) इस अग्नि में (**हव्या**)

होम करने योग्य द्रव्य, एवं देने खाने और ग्रहण करने योग्य वस्तुओं का (**आजुहोतन**) उत्तम रीति से होम करो ॥ ३ । १ ॥

[**तमति थिमिव दुवस्यत**]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तो पमालङ्कार ॥ यथा गृहस्था मनुष्या आसनान्नजलवस्त्रप्रियवचनादिभिरुत्तमगुणमतिथिं सेवन्ते,

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ जैसे गृहस्थ लोग आसन, अन्न, जल, वस्त्र, प्रिय वचन आदि से उत्तम गुण वाले अतिथि की सेवा करते हैं,

[**हे विद्वांसो ! यूनं समिधा घृतैरग्निं बोधयत**]

तथैव विद्वद्भिर्यज्ञवेदीकलायन्त्रयानेष्वग्निं स्थापयित्वा यथायोग्यैरिन्धनाज्यजलादिभिः प्रदीप्य वायुवृष्टिजलशुद्धियानोपकाराश्च नित्यं कार्या इति ॥ ३ । १ ॥

वैसे ही—विद्वान् लोग यज्ञ वेदी, कलायन्त्र, तथा यानों में अग्नि को स्थापित करके यथायोग्य ईंधन, घृत, जल आदि से प्रदीप्त करके वायु और वर्षा जल की शुद्धि एवं यानों में उपयोग करके संसार का उपकार सदा किया करें ॥ ३ । १ ॥

भा० पदार्थः—अतिथिम्=उत्तमगुणमतिथिम् । दुवस्यत=आसनान्नजलवस्त्रप्रियवचनादिभिः सेवध्वम् । समिधा=इन्धनेन । घृतैः=आज्यजलादिभिः ।

अन्यत्र व्याख्यात—महर्षि ने इस मन्त्र का विनियोग संस्कार विधि (**सामान्य प्रकरण**) में समिधा की दूसरी आहुति देने में किया है ।

महर्षि ने इस मन्त्र की व्याख्या ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका (**पंचमहायज्ञविषय**) में इस प्रकार की है—"(**समिधा ग्निं०**) हे मनुष्यो तुम लोग वायु औषधि और वर्षा जल की शुद्धि से सब के उपकार के अर्थ घृतादि शुद्ध वस्तुओं और समिधा अर्थात् आम्र वा ढाक आदि काष्टों से अतिथिरूप अग्नि को नित्य प्रकाशमान करो फिर उस अग्नि में होम करने के योग्य पुष्ट मधुर सुगन्धित अर्थात् दुग्ध, घृत, शर्करा, गुड़ केशर कस्तूरी आदि और रोगनाशक जो सोमलता आदि सब प्रकार से शुद्ध द्रव्य हैं उनका अच्छी प्रकार नित्य अग्नि होत्र करके सब का उपकार करो" ॥ १ ॥

भाष्यसार—१. **अतिथि यज्ञ**—गृहस्थ लोग जिसकी आने की तिथि निश्चित नहीं ऐसे उत्तम गुण वाले अतिथि की आसन, अन्न, जल, वस्त्र, प्रियवचन आदि से सेवा करें ।

२. **भौतिक अग्नि का उपयोग**—जैसे गृहस्थ लोग अतिथि की सेवा करते हैं, इसी प्रकार विद्वान् लोग यज्ञ वेदी, कलायन्त्र और यानों में उपयोग करें । यज्ञवेदी में भौतिक अग्नि को स्थापित करके समिधा (**इन्धन**) और घृत आदि पदार्थों की आहुति से इसे प्रदीप्त कर वायु और वृष्टिजल की शुद्धि करें । कलायन्त्र और यानों में उपयोग करके जल (**वाष्प**) के द्वारा यानों से संसार का उपकार करें ॥

३. **अलंकार**—यहाँ अतिथि से अग्नि की उपमा की गई है और मन्त्र में 'इव' आदि उपमावाचक शब्द लुप्त है । इसलिये वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥

सुश्रुतः । **अग्निः**=भौतिकोऽग्निः । गायत्री । षड्जः ॥

पुनः स कीदृशः कथमुपयोजनीयश्चेत्युपदिश्यते ॥

फिर वह भौतिक अग्नि कैसा है और उसका किस प्रकार उपयोग करना चाहिये, इस विषय का उपदेश किया है ॥

सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन । अग्नये जातवेदसे ॥ २ ॥

पदार्थः—(**सुसमिद्धाय**) सुष्ठु सम्यगिद्धो=दीप्तस्तस्मिन् । अत्र सर्वत्र सुपां सुलुगिति सप्तमीस्थाने चतुर्थी (**शोचिषे**) शोधिते=दोषनिवारके (**घृतम्**)आज्यादिकम् (**तीव्रम्**) सर्वदोषाणां निवारणे तीक्ष्णस्वभावम् (**जुहोतन**) प्रक्षिपत । सिद्धिरस्य पूर्ववत् (**अग्नये**) रूपदाहप्रकाशच्छेदनादिगुणस्वभावे (**जातवेदसे**) जाते जाते=उत्पन्ने उत्पन्ने पदार्थे विद्यमानस्तस्मिन् । जाते जाते विद्यत इति वा । जातवित्तो वा जातधनो जातविद्यो वा जातप्रज्ञानो यत्तज्जातः पशूनविन्दतेति तज्जातवेदसो जातवेदस्त्वमिति ॥ निरु० ७ । १६ ॥ २ ॥

प्रमाणार्थ—(**सुसमिद्धाय**) यहाँ 'सुपां सुलुक्०' (अ० ७ । १ । ३९) सूत्र से सप्तमी के स्थान में चतुर्थी विभक्ति है । (**जातवेद से**) निरु० (७ । १६) के अनुसार 'जातवेदस्' शब्द का अर्थ इस प्रकार है—"यह प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ में विद्यमान रहता है । इससे धन उत्पन्न होता है, यह स्वभाव से ज्ञानवान् होता है अथवा स्वभाव से प्रकाश से प्रकाशशील है । क्योंकि उत्पन्न होते ही इसने देखने वाले मनुष्य आदि प्राणियों को प्राप्त किया । इस लिए इस जात वेशः का जातवेदस्त्व है" । ३ । २ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः**! **यूयं सुसमिद्धाय**=**सुसमिद्धे** सुष्ठु सम्यगिद्धो=दीप्तस्तस्मिन् **शोचिषे**=**शोचिषि** शोधिते दोषनिवारके **जातवेदसे**=**जातवेदसि** जाते जाते=उत्पन्ने उत्पन्ने पदार्थे विद्यमानस्तस्मिन्, **अग्नये**=**अग्नौ** रूपदाह प्रकाशच्छे दनादिगुणस्वभावे **तीव्रं** सर्वदोषाणां निवारणे तीक्ष्ण स्वभावं **घृतम्** आज्यादिकं **जुहोतन** प्रक्षिपत ॥ ३ । २ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम (**सुसमिद्धाय**) अच्छे प्रकार प्रदीप्त (**शोचिषे**) शुद्ध, दोषों का निवारण करने वाले (**जातवेदसे**) उत्पन्नमात्र पदार्थ में विद्यमान (**अग्नये**) रूप, दाह, प्रकाश, छेदन आदि गुण स्वभाव वाले अग्नि में (**तीव्रम्**) सब दोषों के निवारण करने में तीक्ष्ण स्वभाव वाले (**घृतम्**) घृत आदि का (**जुहोतन**) होम करो ॥ ३ । २ ॥

[**हे मनुष्याः ! यूयं सुसमिद्धाय**=**सुसमिद्धे** ...**अग्नये**=**अग्नौ**...**तीव्रं घृतं जुहोतन**]

भावार्थः—मनुष्यैरस्तिन् प्रदीप्तेऽग्नौ शीघ्रं दोषनिवारकाणि शोधितानि द्रव्याणि प्रक्षिप्य सुखानि साधनीयानीति ॥ ३ । २ ॥

भावार्थ—सब मनुष्य इस प्रदीप्त अग्नि में शीघ्र दोषों का निवारण करने वाले शुद्ध किए हुये द्रव्यों का होम करके सब सुखों को सिद्ध करें ॥ ३ । २ ॥

भा० पदार्थः—सुसमिद्धाय=प्रदीप्ताय । तीव्रम्=शीघ्रं दोष निवारकम् । घृतम्=शोधितं द्रव्यम् ॥

अन्यत्र व्याख्यात—महर्षि ने इस मन्त्र का विनियोग संस्कारविधि (**सामान्य प्रकरण**) में समिधा की दूसरी आहुति देने में किया है ॥

भाष्यसार—१. **अग्नि (भौतिक) कैसा है**—अच्छी प्रकार प्रदीप्त होने वाला, शुद्ध होने

पर शीघ्र दोषों का निवारण करने वाला, प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ में विद्यमान, रूप, दाह, प्रकाश, छेदन आदि गुणस्वभाव वाला है ॥

२. **अग्नि का उपयोग**—मनुष्य उक्त गुण वाले अग्नि में शीघ्र दोषों का निवारण करने वाले, शुद्ध किये हुये घृत आदि द्रव्यों को होम करके सुखों को सिद्ध करें ॥ ३ । २ ॥

●

भारद्वाजः । **अग्निः**=भौतिकोऽग्निः । गायत्री । षड्जः ॥

मनुष्यैः स नित्यं वर्द्धनीय इत्युपदिश्यते ॥

मनुष्यों को भौतिक अग्नि की नित्य वृद्धि करनी चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

तं त्वा॑ स॒मिद्भि॑रङ्गिरो घृ॒तेन॑ वर्द्धयामसि । बृ॒हच्छो॑चा यविष्ठ्य ॥ ३ ॥

पदार्थः—(**तम्**) भौतिकमग्निम् (**त्वा**) यः ॥ अत्र व्यत्ययः (**समिद्भिः**) काष्ठादिभिः (**अङ्गिरः**) अङ्गति=प्रापयति यः सोऽङ्गिरः । अङ्गाराऽअंकनाऽअञ्चनाः ॥ निरु० ३ । १७ ॥ (**घृतेन**) पूर्वोक्तेन (**वर्द्धयामसि**) वर्द्धयामः । अत्रेदंतो मसीतीकारादेशः (**बृहत्**) महत् यथा स्यात्तथा (**शोच**) शोचति=प्रकाशते । अत्र व्यत्ययेन लडर्थे लोट् । द्व्यचोतस्तिङ इति दीर्घश्च (**यविष्ठ्य**) योतिशयेन युवा=पदार्थानाममिश्रीकरणे बलवान् सः । यविष्ठ एव यविष्ठ्यः । अत्र युवन् शब्दादिष्ठन् प्रत्ययस्ततो नवसूरमर्तयविष्ठेभ्यो यत् ॥ अ० ५ । ४ । ३६ ॥ इति वार्तिकेन स्वार्थे यत्प्रत्ययः ॥ अयं मन्त्रः श० १ । ३ । ३ । २५—२६ व्याख्यातः ॥ ३ ॥

प्रमाणार्थ—(त्व) यः । यहां व्यत्यय है । (**अङ्गिरः**) निरु० (३ । १७) में 'अङ्गिरस्' शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है—"जैसे अङ्गारों में धूमादि दोष नहीं होते, उसी प्रकार दोष-रहित विद्या से प्रकाशित व्यक्ति को 'अङ्गिरा' कहते हैं। अङ्गारों को अंगार इसलिए कहते हैं कि जहां ये गिरते हैं, उस स्थान को चिह्नत कर देते हैं। अथवा ये प्राप्ति के साधक होते हैं।" (**वर्द्धयामसि**) वर्द्धयामः । यहां 'इदन्तो मसि' [**अ०** ७ । १ । ४६] सूत्र से इकार आदेश है। (**शोचा**) शोचति । यहां व्यत्यय से लट् अर्थ में लोट् लकार और 'द्व्यचोऽतस्तिङः' [**अ०** ६ । ३ । १३५] सूत्र से दीर्घ है। (**यविष्ठ्य**) यहां 'युवन्' शब्द से 'इष्ठन्' प्रत्यय करने के पश्चात् 'नवसूरमर्त विष्ठेभ्यो यत्' (**अ०** ५ । ४ । ३६) वार्त्तिक से स्वार्थ में यत् प्रत्यय करने पर 'यविष्ठ्य' शब्द सिद्ध होता है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१ । ३ । ३ । २५-२६) में की गई है । ३ । ३ ॥

सपदार्थान्वयः—**वयं** [**त्वा**]=**यो-ऽङ्गिरः**=**अङ्गिरा** अङ्गति=प्रापयति यः सोऽङ्गिरः **यविष्ठ्य**=**याविष्ठ्योऽग्निः**, योऽतिशयेन युवा=पदार्थनाममि श्रीकरणे बलवान् स [**यविष्ठः**] यविष्ठ एव यविष्ठ्य **बृहत्**=**महद् यथा स्यात् तथा**, **शोच**=**शोचति**=**प्रकाशते त्व**=तं [**तम्**] भौतिक-मग्निं **सभिद्भिः** कष्ठादिभिः **घृतेन** पूर्वोक्तेन **वर्द्धयामसि** । **वर्द्धयामः**=**प्रदीपयामः** ॥ ३ । ३ ॥

भाषार्थ—हम लोग जो (**अङ्गिरः**) सुख-प्रापक (**यविष्ठ्य**) अत्यन्त युवा, पदार्थों को पृथक् करने में बलवान् (**बृहत्**) महान् है और (**त्वा**) जो (**शोच**) प्रकाश करता है (**तम्**) उस भौतिक अग्नि को (**समिद्भि**) समिधा आदि से (**घृतेन**) पूर्वोक्त घृत से (**वर्द्धयामसि**) प्रदीप्त करते हैं, बढ़ाते हैं ॥ ३ ॥ ३ ॥

[वयं [त्व]=यो॰॰॰बृहत्=महद्—शोच=शोचति प्रकाशते त्वा=तं समिद्भिर्घृतेन वर्द्धयामसि=वर्द्धयाम:]

भावार्थः—मनुष्यैर्यो गुणैर्महान् पूर्वोक्तो

भावार्थ—मनुष्य, जो गुणों के कारण

ऽग्निर्वर्तते स होमशिल्पविद्यासिद्धये साधनैरिन्धनादिभिः सेवित्वा नित्यं वर्द्धनीय इति ॥ ३ । ३ ॥

महान् पूर्वोक्त भौतिक अग्नि है उसका होम एवं शिल्पविद्या की सिद्धि के लिये ईंधन आदि साधनों से सेवन करके उसकी नित्य वृद्धि करें ॥ ३ । ३ ॥

भा० पदार्थः—बृहत्=गुणैर्महान् । समिद्भिः=इन्धनैः साधनैः ।

अन्यत्र व्याख्यात—महर्षि ने इस मन्त्र का उल्लेख संस्कार विधि (**सामान्य प्रकरण**) में समिधाधान में किया है और लिखा है—"इस मन्त्र से तीसरी समिधा की आहुति देवे" ॥

भाष्यसार—**१. भौतिक अग्नि कैसा है**—पदार्थों को एक देश से दूसरे देश में प्रापक एवं सुखों का भी प्राप्त कराने वाला है, पदार्थों को पृथक्-पृथक् करने में बड़ा बलवान्, और अपने गुणों के कारण से महान् है ॥

२. अग्नि की वृद्धि—उक्त गुणों वाले अग्नि को होम (**यज्ञ**) में शुद्ध घृत आदि साधनों से तथा शिल्पविद्या की सिद्धि में ईंधन आदि साधनों से नित्य बढ़ावें ॥ ३ । ३ ॥

प्रजापतिः । **अग्निः**=भौतिकोऽग्निः । गायत्री । षड्जः ॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते ॥

फिर वह अग्नि कैसा है ? इसका उपदेश किया जाता है ॥

उप॑ त्वाग्ने ह॒विष्म॑तीर्घृ॒ताची॑र्यन्तु हर्यत । जु॒षस्व॑ स॒मिधो॒ मम॑ ॥ ४ ॥

पदार्थः—(**उप**) सामीप्ये (**त्वा**) तम् (**अग्ने**) अग्निम् (**हविष्मतीः**) प्रशस्तानि हवींषि विद्यन्ते यासु ताः । अत्र प्रशंसार्थे मतुप् (**घृताचीः**) या घृतमाज्यादिकं जलं वाऽञ्चन्ति=प्रापयन्ति ताः (**यन्तु**) प्राप्नुवन्तु (**हर्यत**) प्रापकः कमनीयो वा (**जुषस्व**) जुषते । **अत्र व्यत्ययो लडर्थे लोट् च** (**समिधः**) काष्ठादिसामग्रीः (**मम**) कर्मानुष्ठातुः ॥ ४ ॥

प्रमाणार्थ—(**हविष्मतीः**) यहां प्रशंसा अर्थ में 'मतुप्' प्रत्यय है । (**जुषस्व**) जुषते । यहां पुरुष-व्यत्यय और लट् में लोट्-लकार है । ३ । ४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! यो **हर्यत**+**अग्ने**=**प्रापकः कमनीयोऽग्निर्मम** कर्मानुष्ठातुः **समिधः** काष्ठादिसामग्रीः **जुषस्व**—**जुषते**=**सेवते, यथा** [**त्वा**]=**तम्** [**अग्ने**] अग्निम् **एताः समिध** [**उप-**] **यन्तु**=**प्राप्नुवन्तु** समीपं प्राप्नुवन्तु **तथाऽस्मिन् यूयं हविष्मतीः** प्रशस्तानि हवींषि विद्यन्ते यासु ताः **घृताचीः** या घृतमाज्यादिकं जलं वाऽञ्चन्ति प्रापयन्ति ताः **समिधः प्रतिदिनं संचिनुत** ॥ ३ । ४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**हर्यत**) सुखप्रापक, कामना करने योग्य (**अग्ने**) अग्नि है वह (**मम**) मुझ कार्यकर्त्ता की (**समिधः**) समिधादि सामग्री का (**जुषस्व**) सेवन करता है । जैसे (**त्वा**) उस अग्नि को यह समिधायें (**उपयन्तु**) प्राप्त करें वैसे इस में तुम (**हविष्मतीः**) प्रशंसा के योग्य हविवाली (**घृताचीः**) घृत और जल को प्राप्त कराने वाली समिधाओं को प्रतिदिन चिनो ॥ ३ । ४ ॥

[यथा [त्वा]=तम् [अग्ने] अग्निम एताः समिधः [उप] यन्तु=प्राप्नुवन्तु तथाऽस्मिन् यूयं हविष्मतीः··· समिधः···संचिनुत, हर्यताग्ने=प्रापकः···अग्निः]

भावार्थः—मनुष्यैर्यदाऽस्मिन्नग्नौ समिध आहुतयश्च प्रक्षिप्यन्ते स एताः परमसूक्ष्माः कृत्वा, वायुना सह देशान्तरं प्रापयित्वा, दुर्गन्धादिद्दोषाणां निवारणेन सर्वान् सुखयतीति वेदितव्यम् ॥ ३ । ४ ॥

भावार्थ—मनुष्य, जब इस अग्नि **में** समिधायें और आहुतियाँ डालते हैं तब वह इन्हें परम सूक्ष्म करके वायु के साथ देशान्तर में पहुँचा कर, दुर्गन्ध आदि दोषों को दूर हटा कर सबको सुख प्रदान करता है, ऐसा जानो ॥ ३ । ४ ॥

भा० पदार्थः—हर्यत=वायुना सह देशान्तरं प्रापकः ।

भाष्यसार—१. **अग्नि (भौतिक) कैसा है**—डाली हुई समिधा और आहुति को परम सूक्ष्म करके वायु की सहायता से देशान्तर में पहुँचाने वाला, कामना करने के योग्य, और काष्ठ आदि सामग्री को सेवन करने वाला है ।

२. **समिधा**—समिधाओं में प्रशस्त हवि (**आहुति**) दी जाती है, ये समिधायें घृत रूप आहुति को प्राप्त करती हैं तथा जल को भी प्राप्त कराती हैं ॥

●

प्रजापतिः । **अग्निवायुसूर्याः**=स्पष्टम् ॥ दैवी बृहती । द्यौरिवेत्यस्य निचृद् बृहती । उभयत्र मध्यमः स्वरः ॥

पुनः स किमर्थ उपयोजनीय इत्युपदिश्यते ॥

फिर उस अग्नि का किस लिये उपयोग करना चाहिये, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा ।
तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ॥ ५ ॥

पदार्थः—(**भूः**) भूमि । भूरिति वै प्रजापतिरिमामजनयत (**भुवः**) भुवरित्यन्तरिक्षम् (**स्वः**) स्वरिति दिवमेतावद्वा इदꣳ सर्वं यावदिमे लोकाः, सर्वेणैवाधीयते ॥ शत० २ । १ । ४ । ११ ॥ (**द्यौरिव**) यथा सूर्यप्रकाशयुक्त आकाशे (**भूम्ना**) विभुना (**पृथिवीव**) यथा विस्तृता भूमिः (**वरिम्णा**) श्रेष्ठगुणसमूहेन (**तस्याः**) वक्ष्यमाणायाः (**ते**) अस्याः प्रत्यक्षायाः । अत्र व्यत्ययः (**पृथिवि**) पृथिव्याः (**देवयजनि**) देवा यजन्ति यस्यां तस्याः । अत्रोभयत्र प्रातिपदिकनिर्देशानामर्थतन्त्रत्वात्षष्ठ्यर्थे प्रथमा विपरिणम्यते (**पृष्ठे**) उपरि (**अग्निम्**) भौतिकम् (**अन्नादम्**) योऽन्नं=यवादिकं सर्वमत्ति तम् (**अन्नाद्याय**) अत्तुं योग्यमद्यमन्नं च तदद्यं चान्नाद्यं तस्मै (**आ**) समतात् (**दधे**) स्थापयामि ॥ अयं मंत्रः शत० २ । १ । ४ । ६—२८ व्याख्यातः ॥ ५ ॥

प्रमाणार्थ—(**भूर्भुवः स्वः**) शत० (२ । १ । ४ । ११) के अनुसार 'भूः भुवः स्वः', का अर्थ इस प्रकार है—(**भूः**) 'भूः' का अर्थ भूमि है । प्रजापति ने इसको उत्पन्न किया है । (**भुवः**) 'भुवः' का अर्थ अन्तरिक्ष है । । (**स्वः**) 'स्वः' का अर्थ द्युलोक है । यह तीनों ही सब कुछ है । सर्व से ही आधान किया जाता है, असर्व से नहीं । (**ते**) अस्याः । यहां व्यत्यय है । (**पृथिवि**) पृथिव्याः । (**देवयजनि**) देव यजन्याः । यहां निर्दिष्ट दोनों प्रतिपादिकों में अर्थ को प्रधान मान कर षष्ठी विभक्ति का विपरिणाम किया है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (२ । १ । ४ । ६—२८) में की गई है । ३ । ५ ॥

सपदार्थान्वयः—अहमन्नाद्याय अत्तुं

भाषार्थ—मैं (**अन्नाद्याय**) भक्ष्य अन्न के

योग्यमद्यमन्नं च तदद्यं चान्नाद्यं तस्मै **भूम्ना** विभुना **द्यौरिव** यया सूर्यप्रकाशयुक्त आकाशे **वरिम्णा** श्रेष्ठ-गुणसमूहेन **पृथिवीव** यथा विस्तृता भूमि **ते**=**अस्याः** **प्रत्यक्षायाः** तस्याः=**अप्रत्यक्षाया** **अन्तरिक्षलोक-स्थाया** वक्ष्यमाणायाः **देवयजनि**=**देवयजन्याः** देवा यजन्ति यस्यां तस्याः **पृथिवि**=**पृथिव्याः** **पृष्ठे**=**पृष्ठोपरि** **भूः** भूमि **भुवः** (भुवरित्यन्तरिक्ष) **स्वः** (स्वरिति दिवं) **लोकान्तर्गतमन्नादं** योऽन्नं=यवादिकं सर्वमत्ति तम **अग्निं** भौतिकम् **आदधे**=**स्थापयामि** समन्तात् स्थापयामि ॥ ३ । ५ ॥

लिये (**भूम्ना**) व्यापक (**द्यौरिव**) सूर्य के प्रकाश से युक्त आकाश के समान (**वरिम्णा**) श्रेष्ठ गुणों वाली (**पृथिवीव**) विस्तृत भूमि को समान [**अग्नि को**] (**ते**) इस प्रत्यक्ष (**तस्याः**) अप्रत्यक्ष अन्तरिक्ष लोक में स्थित (**देवयजनि**) जहां विद्वान् लोग यज्ञ करते हैं उस (**पृथिवी**) पृथिवी की (**पृष्ठे**) पीठ पर (**भूः**) भूमि (**भुवः**) अन्तरिक्ष (**स्वः**) द्युलोक इन लोकों के अन्तर्गत (**अन्नादम्**) सब यव आदि अन्न का भक्षण करने वाली (**अग्निम्**) भौतिक अग्नि को (**आदधे**) स्थापित करता हूँ ॥ ३ । ५ ॥

[अहम्‌ ··· भूम्ना द्यौरिव, वरिम्णा पृथिवीव ··· भूर्भुवः स्वर्लोकान्तर्गतम्‌ ··· अग्निमादधे=स्थापयामि]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारौ ॥ हे मनुष्या ! यूयमीश्वरेण रचितं त्रैलोक्योपकारकं स्वव्याप्तचा सूर्यप्रकाशसदृशं श्रेष्ठैर्गुणैः पृथिवीसमानं स्वस्वलोके सन्निहितमिममग्निं कार्यसिद्धयर्थं प्रयत्नेनोपयोजयत ॥ ३ । ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में दो उपमा अलङ्कार हैं ॥ हे मनुष्यो ! तुम ईश्वर-रचित, तीनों लोकों के उपकारक, अपनी व्याप्ति से सूर्य के प्रकाश के समान, श्रेष्ठ गुणों से पृथिवी के समान, अपने अपने लोकों में स्थित इस अग्नि को कार्य की सिद्धि के लिए प्रयत्नपूर्वक उपयोग में लाओ ॥ ३ । ५ ॥

भा० पदार्थः—भूम्ना=स्वव्याप्तचा । द्यौरिव=सूर्यप्रकाशसदृशः । वरिम्णा=श्रेष्ठैर्गुणैः । पृथिवीव=पृथिवीसमानः । आदधे=प्रयत्नेनोपयोजयामि ॥

अन्यत्र उद्धृत—महर्षि ने इस मन्त्र का उल्लेख संस्कार विधि (**सामान्य प्रकरण**) में अग्न्याधान में किया है और लिखा है—"इस मन्त्र से वेदी के बीच में अग्नि को धर, उस पर छोटे २ काष्ठ और थोड़ा कपूर धर अगला मन्त्र पढ़ के व्यजन से अग्नि को प्रदीप्त करे" ।

भाष्यसार—१. **अग्नि (भौतिक) कैसा है**—जैसे सूर्य का प्रकाश व्याप्त है इसी प्रकार अग्नि सर्वत्र व्याप्त है, जैसे पृथिवी विस्तृत है इसी प्रकार अग्नि भी अपने श्रेष्ठ गुणों के कारण सर्वत्र विस्तृत है । अग्नि भूलोक, अन्तरिक्षलोक और द्युलोक इन तीनों लोकों में विद्यमान है ।

२. **अग्नि का उपयोग**—अन्न आदि भक्ष्य पदार्थों की सिद्धि के लिये इस भौतिक अग्नि का प्रयत्नपूर्वक यज्ञ आदि में उपयोग करें ।

३. **पृथिवी**—पृथिवी का कुछ भाग प्रत्यक्ष है और शेष अन्तरिक्ष में स्थित अप्रत्यक्ष है । देवता लोग इसमें यज्ञ करते हैं इस लिए इस पृथिवी को 'देवयजनी' भी कहते हैं ।

४. **अलङ्कार**—यहां सूर्यप्रकाश और पृथिवी से अग्नि की उपमा की गई है । अतः दो उपमा अलङ्कार हैं ॥

सर्प्पराज्ञी कद्रूः । **अग्निः**=[भौतिकोऽग्निः] । गायत्री । षड्जः ॥

अथाग्निनिमित्तेन पृथिवीभ्रमणविषय उपदिश्यते ॥

अब अग्नि के निमित्त से पृथिवी का भ्रमण होता है, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन् मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥ ६ ॥

पदार्थः—(**आ**) अभ्यर्थे (**अयम्**) प्रत्यक्षः (**गौः**) यो गच्छति स भूगोलः । गौरिति पृथिवीनामसु पठितम् ॥ निघं० १ । १ ॥ गौरिति पृथिव्या नामधेयम् । यद् दूरं गता भवति । यच्चास्यां भूतानि गच्छन्ति ॥ निरु० २ । ५ ॥ (**पृश्निः**) अन्तरिक्षे । अत्र सुपां सुलुगिति सप्तम्येकवचने प्रथमैकवचनम् । पृश्निरिति साधारणनामसु पठितम् ॥ निघं० १ । ४ ॥ (**अक्रमीत्**) क्राम्यति । अत्र लडर्थे लुङ् (**असदत्**) स्वकक्ष्ययायां भ्रमति । अत्रापि लडर्थे लुङ् (**मातरम्**) स्वयोनिमपः, जलनिमित्तेन पृथिव्युत्पत्तेः (**पुरः**) पूर्वं पूर्वम् (**पितरम्**) पालकम् (**प्रयन्**) प्रकृष्टतया गच्छन् (**स्वः**) आदित्यम् । स्वरादित्यो भवति ॥ निरु० २ । १४ ॥ अयं मंत्रः श० २ । १ । ४ । २९ निगदव्याख्यातः ॥ ६ ॥

प्रमाणार्थ—(**गौः**) 'गौ' शब्द निघं० (१ । १) में पृथिवी-नामों में पढ़ा है । निरु० (२ । ५) के अनुसार 'गौ' शब्द की व्याख्या इस प्रकार है—"गौ पृथिवी का नाम है क्योंकि यह पर्याप्त दूर तक गई है और इसमें सभी भूत (**प्राणी**) गति करते हैं ।" (**पृश्निः**) अन्तरिक्षे । यहां 'सुपां सुलुक्०' [**अ०** ७ । १ । ३९] सूत्र से सप्तमी एक वचन के स्थान में प्रथमा-विभक्ति का एक वचन है । 'पृश्नि' शब्द निघं० (१ । ४) में द्युलोक और आदित्य के साधारण नामों में पढ़ा है । (**अक्रमीत्**) क्राम्यति । यहां लट् अर्थ में लुङ् लकार है । (**असदत्**) यहां भी लट् अर्थ में लुङ् लकार है । (**स्वः**) 'स्वः' शब्द का अर्थ निरु० (२ । १४) में आदित्य है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (२ । १ । ४ । २९) में की गई है ॥ ३ । ६ ॥

सपदार्थान्वयः—**अयं** प्रत्यक्षः **गौः**=पृथिवीगोलः यो गच्छति स भूगोलः **स्वः** आदित्यं **पितरं** पालकं **पुरः** पूर्वं पूर्वं **प्रयन्** प्रकृष्टतया गच्छन् **मातरम्**=**अपश्च** स्वयोनिमपः, जलनिमित्तेन पृथिव्युत्पत्तेः **प्रयन् पृश्निः**=**अन्तरिक्षे आक्रमीत्**=**आक्राम्यति** अभितःक्राम्यति, [**असदत्**]=**समन्ताद् भ्रमति** स्वकक्ष्यायां भ्रमति ॥ ३ । ६ ॥

भाषार्थ—(**अयम्**) यह प्रत्यक्ष (**गौः**) गति करने वाला भूगोल (**स्वः**) आदित्य (**पितरम्**) रक्षक के (**पुरः**) चारों ओर (**प्रयन्**) गति करता हुआ (**मातरम्**) अपने उत्पत्ति-निमित्त जल की भी गति करता हुआ (**पृश्निः**) अन्तरिक्ष में (**आक्रमीत्**) चारों ओर घूमता है तथा [**असदत्**] अपनी कक्ष्या में भी घूमता है ॥ ३ । ६ ॥

[अयं गौ=पृथिवीगोलः स्वः पितरं पुरः प्रयन्, मातरम्=अपश्च प्रयन्, पृश्निः=अन्तरिक्षे आक्रमीत्=आक्राम्यति=समन्ताद् भ्रमति, [असदत्] स्वकक्ष्यायां भ्रमति]

भावार्थः—मनुष्यैर्यस्माज्जलाग्निनिमित्तोत्पन्नोऽयं भूगोलोऽन्तरिक्षे स्वकक्ष्यायामाकर्षणेन रक्षकस्य सूर्यस्याभिः प्रतिक्षणं भ्रमति,

भावार्थ—जल और अग्नि के निमित्त से उत्पन्न हुआ यह पृथिवी का गोला आकाश में अपनी कक्ष्या में आकर्षण शक्ति से रक्षक सूर्य के चारों ओर प्रतिक्षण घूमता है,

[फलमाह—]

तस्मादहो रात्रशुक्लकृष्णपक्षर्त्वयनादीनि

इस लिये दिन, रात, शुक्ल पक्ष, कृष्ण पक्ष,

कालविभागाः क्रमशः सम्भवन्तीति वेद्यम् ।। ३ । ६ ।। ऋतु, अयन आदि काल विभाग क्रमशः बनते हैं। ऐसा सब मनुष्यों को जानना योग्य है ।। ३ । ६ ।।

भा० पदार्थ—गौः=भूगोलः । स्वः=सूर्यम् । पितरम्=रक्षकम् । पुरः=अभि । आक्रमीत्=प्रतिक्षणं भ्रमति ।।

अन्यत्र व्याख्यात—महर्षि ने सत्यार्थप्रकाश (**अष्टम समुल्लास**) में इस मन्त्र की व्याख्या में इस प्रकार लिखा है—"अर्थात् यह भूगोल जल के सहित सूर्य के चारों ओर घूमता जाता है इस लिये भूमि घूमा करती है"।।

इस मन्त्र की व्याख्या ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका (**पृथिव्यादिलोकभ्रमणविषय**) में इस प्रकार की गई है—"(**आयं गौः**) गौ नाम है पृथिवी सूर्य्य चन्द्रमादि लोकों का, वे सब अपनी-अपनी परिधि में अंतरिक्ष के मध्य में सदा घूमते रहते हैं, परन्तु जो जल है सो पृथिवी की माता के समान है, क्यों क पृथिवी जल के परमाणुओं के साथ अपने परमाणुओं के संयोग से ही उत्पन्न हुई है, और मेघमण्डल के जल के बीच में गर्भ के समान सदा रहती है और सूर्य्य उसके पिता के समान है, इससे सूर्य के चारों ओर घूमती है। इसी प्रकार सूर्य्य का पिता वायु और आकाश माता तथा चन्द्रमा का अग्नि पिता और जल माता, उनके प्रति वे घूमते हैं। इसी प्रकार से सब लोक अपनी-अपनी कक्षा में सदा घूमते हैं। इस विषय का संस्कृत में निघंटु और निरुक्त का प्रमाण लिखा है, उसको देख लेना। इसी प्रकार सूत्रात्मा जो वायु है उसके आधार और आकर्षण से सब लोकों का धारण और भ्रमण होता है तथा परमेश्वर अपने सामर्थ्य से पृथिवी आदि सब लोकों का धारण, भ्रमण और पालन कर रहा है।"

भाष्यसार—१. **पृथिवी की उत्पत्ति**—पृथिवी का अग्नि पिता है और जल माता है यह अग्नि और जल से उत्पन्न होती है।

२. **पृथिवी भ्रमण**—सूर्य पृथिवी का पिता है, रक्षक है इसलिये पृथिवी आकर्षण शक्ति से आकाश में सूर्य के चारों ओर अपनी कक्ष्या में भ्रमण करती है। पृथिवी के भ्रमण का निमित्त अग्नि (**सूर्य**) है। सूर्य के चारों ओर पृथिवी के भ्रमण से ही दिन, रात, शुक्ल पक्ष, कृष्ण पक्ष, छः ऋतुयें तथा उत्तरायण एवं दक्षिणायन काल विभाग बनते हैं।

सर्पराज्ञी कद्रूः । **अग्निः**=[**विद्युत्**] । गायत्री । षड्जः ।

सोग्निः कथंभूत इत्युपदिश्यते ।।

वह अग्नि कैसा है, इस विषय का उपदेश किया जाता है ।।

अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती । व्यख्यन् महिषो दिवम् ।। ७ ।।

पदार्थः—(**अन्तः**) ब्रह्माण्डशरीरयोर्मध्ये (**चरति**) गच्छति (**रोचना**) दीप्तिः (**अस्य**) अग्नेः (**प्राणात्**) ब्रह्माण्डशरीरयोर्मध्य ऊर्ध्वगमनशीलात् (**अपानती**) अपानमधोगमनशीलं वायुं निष्पादयंती विद्युत् (**वि**) विविधार्थे (**अख्यत्**) ख्यापयति । **अत्र लडर्थे लुङन्तर्गतो ण्यर्थश्च** (**महिषः**) स्वगुणैर्महान् (**दिवम्**) सूर्यलोकम् ।। ७ ।।

प्रमाणार्थ—(**अख्यत्**) ख्यापयति । यहाँ लट् अर्थ में लङ् लकार और अन्तर्भावित ण्यर्थ है। ३ । ७ ।।

सपदार्थान्वयः—याऽस्य = अग्नेः **प्राणात्** ब्रह्माण्डशरीरयोर्मध्य ऊर्ध्वगमनशीलाद् **अपानती** अपानमधोगमनशीलं वायुं निष्पादयन्ती विद्युत् **सतीरोचना**=**दीप्तिर्विद्युच्छरीरब्रह्माण्ड-योरन्तः** ब्रह्माण्डशरीरयोर्मध्ये **चरति** गच्छति।

स महिषः स्वगुणैर्महान् **अग्निः दिवं** सूर्यलोकं **व्यख्यत्**=**विख्यापयति** विविधं ख्यापयति ॥

भाषार्थ—जो (**अस्य**) इस अग्नि की (**प्राणात्**) ब्रह्माण्ड और शरीर में ऊर्ध्व गमनशील प्राण से (**अपानती**) नीचे गमन करने वाली वायु को उत्पन्न करती हुई (**रोचना**) दीप्तिमय विद्युत् है, वह शरीर और ब्रह्माण्ड के (**अन्तः**) मध्य में (**चरति**) गति करती है। और—

वह (**महिषः**) अपने गुणों से महान् अग्नि (**दिवम्**) सूर्य लोक को (**व्यख्यत्**) नाना प्रकार से प्रसिद्ध करती है ॥ ३। ७॥

[**अस्य=अग्नेः प्राणादपानती सती रोचना=दीप्तिर्विद्युच्छरीरब्रह्माण्डयोरन्तश्चरति**]

भावार्थः—मानवैर्योऽग्निर्विद्युदाख्या सर्वान्तःस्था कान्तिर्वर्तते सा प्राणापानाभ्यां सह संयुज्य सर्वान् प्राणापानाग्निप्रकाशगत्यादीन् चेष्टाव्यवहारान् प्रसिद्धी करोतीति बोध्यम् ॥ ३। ७॥

भावार्थ—जो अग्नि विद्युत् नाम से प्रसिद्ध, सब के मध्य में कान्ति रूप में विद्यमान है वह प्राण और अपान के साथ संयुक्त होकर प्राण, अपान, अग्नि के प्रकाश की गति आदि चेष्टा एवं व्यवहारों को प्रकट करता है, ऐसा सब मनुष्यों को जानना योग्य है ॥ ३। ७॥

भा० पदार्थः—रोचना=कान्तिः। व्यख्यत्=चेष्टाव्यवहारन् प्रसिद्धीकरोति ॥

भाष्यसार—**अग्नि (भौतिक) कैसा है**—अग्नि विद्युत् रूप है। यह ब्रह्माण्ड और शरीर में भी प्राण अर्थात् ऊर्ध्वगमनशील वायु अपान अर्थात् अधोगमनशील वायु का साधक है। विद्युत् रूप अग्नि जो सब पदार्थों के मध्य में विद्यमान कान्ति रूप है, वह प्राण और अपान की सहायता से ऊर्ध्वगति, अधोगति आदि चेष्टाओं को सिद्ध करता है। अग्नि के प्रकाश की गति का भी साधक है। अपने इन उक्त गुणों के कारण अग्नि महान् है। द्युलोक की व्याख्या अग्नि है ॥

सर्पराज्ञी कद्रूः। **अग्निः**=**विद्युत्**। गायत्री। षड्जः॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते ॥

फिर वह अग्नि कैसा है, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

त्रिंशद्धाम विराजति वाक् पतङ्गाय धीयते। प्रति वस्तोरह द्युभिः ॥ ८ ॥

पदार्थः—(**त्रिंशत्**) पृथिव्यादीनि, त्रयस्त्रिंशतो वस्वादीनां देवानां मध्ये पठितानि। अन्तरिक्षमादित्यमग्निं च विहाय त्रिंशत्संख्याकानि (**धाम**) दधति येषु तानि धामानि। **अत्र सुपां सुलुगिति शसो लुक्** (**वि**) विशेषार्थे (**राजति**) प्रकाशयति। **अत्रांतर्गतो ण्यर्थः** (**वाक्**) उच्यते यया सा। **वागिति वाङ्नामसु पठितम्**। निघं०। १। ११॥ (**पतङ्गाय**) पतति=गच्छतीति पतङ्गस्तस्मा अग्नये (**धीयते**) धार्यताम् (**प्रति**) वीप्सायाम् (**वस्तोः**) दिनं दिनम्। **वस्तोरित्यहर्नामसु पठितम् ॥ निघं० १। ९॥** (**अह**) विनिग्रहार्थे। **अह इति विनिग्रहार्थीयः ॥ निरु० १। ५॥** (**द्युभिः**) प्रकाशादिगुणविशेषैः। **दिवो द्योतनकर्मणामादित्यरश्मीनाम् ॥ निरु० १३। २५॥ ८॥**

प्रमाणार्थ—(**धाम**) धामानि । यहां 'सुपां सुलुक्०' [अ० ७ । १ । ३९] से 'शस' प्रत्यय का लुक् है । (**राजति**) यहां णिच् का अर्थ अन्तर्निहित है । (**वाक्**) 'वाक्' शब्द निघं० (१ । ११) में वाणी-नामों में पढ़ा है । (वस्तोः) 'वस्तोः' शब्द निघं० (१ । ९) में दिन नामों में पढ़ा है । (**अह**) निरु० (१ । ५) के अनुसार 'अह' शब्द का अर्थ विनिग्रह (**नियमन**) है (**द्युभिः**) निरु० (१३ । १५) के अनुसार प्रकाश करने वाली सूर्य की किरणों का नाम 'द्यु' है । ३ । ८ ॥

सपदार्थान्वयः— **मनुष्यैर्योऽग्निर्द्युभिः** प्रकाशदि गुणविशेषैः **प्रतिवस्तोः** दिनं दिनं **त्रिंशत्** पृथिव्यादीनि, त्रयस्त्रिंशतो वस्वादीनां देवानां मध्ये पठितानि, अन्तरिक्षमादित्यमग्निं च विहाय त्रिंशत्संख्याकानि, **धाम**=**धामानि** दधति येषु तानि धामानि **विराजति**=**प्रकाशयति** विशेषण प्रकाशयति ।

भाषार्थ—जो अग्नि (**द्युभिः**) प्रकाश आदि गुण विशेषों से (**प्रतिवस्तोः**) प्रतिदिन (**त्रिंशत्**) पृथिवी आदि तैंतीस जो वसु आदि देवों में पढ़े गये हैं उनमें से अन्तरिक्ष, आदित्य और अग्नि इन तीनों को छोड़कर तीस (**धाम**) धामों को (**विराजति**) विशेषतया प्रकाशित करता है ।

तस्मै पतङ्गाय=पतनपातनादिगुणप्रकाशिताय, पतति=गच्छतीति पतङ्गस्तस्मा अग्नये **प्रतिवस्तोः**=**प्रतिदिनं विद्वद्भिरह सविनिग्रहं वाक्** उच्यते यया सा [**धीयते**]=**धीयताम्** धार्यताम् ॥ ३ । ८ ॥

उस (**पतङ्गाय**) पतन पातन आदि गुणों से प्रकाशित एवं गतिशील अग्नि के लिये (**प्रतिवस्तोः**) प्रतिदिन विद्वान् लोग (**अह**) संयम से (**वाक्**) वाणी को [**धयते**] धारण करें । अर्थात् उक्त अग्नि के गुणों का उपदेश करें ॥ ३ । ८ ॥

[मनुष्यैर्योऽग्निर्द्युभिः प्रतिवस्तोः'''त्रिंशद्धाम=धामानि विराजति=प्रकाशयति]

भावार्थः—या वाणी प्रणायुक्तेन शरीरस्थेन विद्युदाख्येनाग्निना नित्यं प्रकाश्यते,

भावार्थ—जो वाणी प्राणयुक्त शरीर में स्थित विद्युत नामक अग्नि के द्वारा नित्य प्रकाशित की जाती है,

[तस्मै पतङ्गाय=पतनपातनादिगुणप्रकाशिताय प्रतिवस्तोः=प्रतिदिनं विद्वद्भि रह वाक् [धीयते]= धीयताम]

सा तद्गुणप्रकाशाय विद्वद्भिर्नित्यमुपदेष्टव्या श्रोतव्या चेति ॥ ३ । ८ ॥

उस अग्नि के गुणों को प्रकाशित करने के लिये विद्वान् लोग उस वाणी का उपदेश और श्रवण नित्य किया करें ॥ ३ । ८ ॥

भा० पदार्थः—अग्निः=विद्युदाढ्यः । पतङ्गाय=तद्गुणप्रकाशाय । प्रतिवस्तोः= नित्यम् । धीयते=उपदिश्वते श्रूयते च ॥

भाष्यसार— **अग्नि(भौतिक) कैसा है**—यह विद्युत् रूप भौतिक अग्नि अपने प्रकाश आदि गुणों से पृथिवी आदि तीस धामों को प्रकाशित करने वाला, गतिशील तथा विद्वानों की वाणी से नित्य उपदेश करने के योग्य है ॥

प्रजापतिः । **अग्निसूर्यौ**=**भौतिकोऽग्निः सूर्यस्तथेश्वरः** ॥ पंक्तिः । पंचमः ॥ ज्योतिरित्यस्य याजुषी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अथाग्निसूर्यौ कीदृशावित्युपदिश्यते ॥

अग्नि और सूर्य्य कैसे हैं, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

अ॒ग्निर्ज्योति॒र्ज्योति॑र॒ग्निः स्वाहा॒ सूर्यो॒ ज्योति॒र्ज्योति॒ः सूर्य्यः स्वाहा॑ । अ॒ग्निर्वर्च्चो॒ ज्यो॒तिर्वर्च्च॒ः स्वाहा॒ सूर्यो॒ वर्च्चो॒ ज्योति॒र्वर्च्च॒ः स्वाहा॑ । ज्योति॒ सूर्य्यः सूर्य्यो॒ ज्योति॒ः स्वाहा॑ ॥ ९ ॥

पदार्थः—(**अग्निः**) परमेश्वरः (**ज्योतिः**) सर्वप्रकाशकः (**ज्योतिः**) प्रकाशमयः, शिल्पविद्या-साधनप्रकाशकः (**अग्निः**) भौतिकः । अग्निरिति पद्नामसु पठितम् ॥ निघं ५ । ४ ॥ अनेनाग्नेर्गत्यर्थत्वेन ज्ञानस्वरूपत्वादीश्वरः प्राप्तिहेतुत्वाद्भौतिकोर्थो वा गृह्यते (**स्वाहा**) सुष्ठु सत्यमाह यस्यां वाचि सा । स्वाहेति वाङ्नामसु पठितम् ॥ निघं० १ । ११ ॥ (**सूर्यः**) चराचरात्मा । यः सरति=जानाति चराचरं जगत्स जगदीश्वरः । सूर्यं आत्माजगतस्तस्थुषश्च ॥ यजु० ७ । ४२ ॥ अनेन सर्वस्यांतर्यामी परश्मेश्वरोर्थो गृह्यते (**ज्योतिः**) सर्वात्मप्रकाशको=वेदद्वारा सकलविद्योपदेशकः (**ज्योतिः**) पृथिव्यादिमूर्तद्रव्यप्रकाशकः (**सूर्यः**) यः सुवति=स्वप्रकाशेन प्रेरणाहेतुर्भवति स सूर्यलोकः । सूर्यं इति पदनामसु पठितम् ॥ निघं० ५ । ६ ॥ अनेन ज्ञापकेनेश्वरो, व्यवहारसिद्धः प्राप्तिहेतुत्वात्सूर्यलोको वा गृह्यते (**स्वाहा**) स्वा स्वकीया हृदयस्था वाग् यदाह तदेव सत्यं वाच्यं नानृतमित्यस्मिन्नर्थे (**अग्निः**) सर्वविद्योपदेष्टा (**वर्च्चः**) वर्चन्ते=दीप्यतेऽनेन तत् वर्च्चो विद्याप्रापणम् (**ज्योतिः**) सकलपदार्थप्रकाशनम् (**वर्च्चः**) विद्याव्यवहारप्रापकम् (**स्वाहा**) मनुष्यैः स्वकीयान्पदार्थान्प्रति ममेति वाच्यं नान्यपदार्थान्प्रतीत्यस्मिन्नर्थे (**सूर्यः**) सकलविद्यादिव्यवहारप्रापकत्वेन वर्तमानः प्राणादिससूहो वायुगुणः (**वर्च्चः**) प्रकाशकं विद्युत्सूर्यप्रसिद्धाग्न्याख्यं तेजः (**ज्योतिः**) सर्वव्यवहारप्रकाशकम् (**ज्योतिः**) सत्यप्रकाशकः (**सूर्यः**) सर्वव्यापक ईश्वरः (**स्वाहा**) वेदवाणी यज्ञक्रियामाहेत्यस्मिन्नर्थे । स्वाहाशब्दार्थं निरुक्तकार एवं समाचष्टे । स्वाहा कृतयः स्वाहेत्येतत्सु आहेति स्वा वागाहेति वा स्वं प्राहेति वा स्वाहुतं हविर्जुहोतीति वा ॥ निरु० ८ । २० ॥ अयं मंत्रः शत० २ । २ । ३ । १—३६ व्याख्यातः ॥ ९ ॥

प्रमाणार्थ—(**अग्नि**) 'अग्नि' शब्द निघं० (५ । ४) में पद नामों में पढ़ा गया है । इसलिए अग्नि शब्द गत्यर्थक होने से ज्ञानस्वरूप ईश्वर और प्राप्त्यर्थक भौतिक अग्नि का ग्रहक होता है । (**स्वाहा**) 'स्वाहा' शब्द निघं० (१ । ११) में वाणी-नामों में पढ़ा है । (**सूर्यः**) यजु० (७ । ४२) के अनुसार "सूर्य स्थावर और जंगम जगत् का आत्मा है" इस प्रमाण से सर्वान्तिर्यामी परमेश्वर का ग्रहण होता है । (**सूर्यः**) 'सूर्य' शब्द निघं० (५ । ६) में पद नामों में पढ़ा है । (**स्वाहा**) निरु० (८ । २०) में 'स्वाहा' शब्द की व्याख्या इस प्रकार है—"स्वाहाकृति का अर्थ स्वाहा करना, मन्त्रों के अन्त में स्वाहा बोलना । स्वाहा का अर्थ बहुत ही उत्तम (**प्रिय**) कहा है, अपनी (**अपने हृदय की**) ही वाणी कहना, अपने ही पदार्थों को कहना अर्थात् अपनी ही वस्तु को ग्रहण करना अथवा सुन्दर रीति से सब सामग्री को स्वच्छ करके विधिपूर्वक श्रद्धा से हवन करना ।" इस मन्त्र की व्याख्या शत० (२ । २ । ३ । १—१६) में की गई है । ३ । ९ ॥

सपदार्थान्वयः—अग्निः=जगदीश्वरः, परमेश्वरः, स्वाहा सुष्ठु सत्यमाह यस्यां वाचि सा, ज्योतिः=सर्वप्रकाश कः **सर्वस्मै ददाति । एवं** [**अग्निः**]=भौतिकोऽग्निः [**ज्योतिः**] **सर्वप्रकाशकं ज्योतिर्ददाति ।**

भाषार्थ—(**अग्निः**) जगत् का स्वामी परमेश्वर (**स्वाहा**) सत्य भाषण करने वाली वाणी रूप (**ज्योतिः**) सर्वप्रकाशक ज्योति सबको प्रदान करता है । इसी प्रकार [**अग्निः**] भौतिक अग्नि भी [**ज्योतिः**] सर्व प्रकाशक ज्योति प्रदान करता है ।

सूर्यः=**चराचरात्मा,** यः सरति=जानाति चराचरं जगत्स जगदीश्वरः **स्वाहा** स्वा=स्वकीया हृदयस्था वाग् यदाह तदेव सत्यं वाच्यं नानृतम् **ज्योतिः** सर्वात्मप्रकाशको=वेदद्वारा सकलविद्योपदेशकः **सर्वात्मसु ज्ञानं ददाति ।**

(**सूर्यः**) चराचर का आत्मा एवं चराचर को जानने वाला जगदीश्वर (**स्वाहा**) हृदयस्थ सत्य-वाणी द्वारा (**ज्योतिः**) सब आत्माओं को प्रकाश देने वाला, सकल विद्याओं का उपदेश करने वाला [**जगदीश्वर**] सबकी आत्माओं में ज्ञान प्रदान करता है ।

[**सूर्यः**] **अयं सूर्यलोकः** यः सुवति=स्वप्रकाशेन प्रेरणा हेतुर्भवति स सूर्यलोकः [**ज्योतिः**] (पृथिव्यादिमूर्तद्रव्यप्रकाशकः) **ज्योतिर्दानं मूर्तद्रव्यप्रकाशनं च करोति ।**

[**सूर्यः**] अपने प्रकाश से सबको प्रेरणा देने वाला सूर्यलोक [**ज्योतिः**] ज्योति प्रदान एवं पृथिवी आदि मूर्त द्रव्यों को **प्रकाशित करता है ।**

[**अग्निः**] =**सर्वविद्याप्रकाशकोऽग्निर्जगदीश्वरः** सर्वविद्योपदेष्टा **मनुष्यार्थं सर्वविद्याधिकरणं वर्च्चः**= **वेदचतुष्टयं** वर्चन्ते=दीप्यन्तेऽनेन तद्वर्च्चो= विद्याप्रापणं **प्रादुर्भावयति । एवं ज्योतिः =विद्युदाख्योऽयमग्निः शरीरब्रह्माण्डस्थः,** सकलपदार्थप्रकाशनं, **वर्च्चः**=**विद्या वृष्टिहेतुः,** विद्याव्यवहारप्रापकं, **भवति ।**

[**अग्निः**] सब विद्याओं का उपदेशक **एवं** प्रकाशक जगदीश्वर मनुष्यों के लिए सब विद्याओं **का** आधार (**वर्च्चः**) सब विद्याओं के प्राप्ति साधन **चारों** वेदों को ऋषियों के हृदय में प्रकाशित करता **है ।** इसी प्रकार (**ज्योतिः**) शरीर **और ब्रह्माण्ड में** स्थित, सकल पदार्थों को प्रकाशित करने **वाला** विद्युत् नामक यह अग्नि (**वर्च्चः**) विद्या **और** वृष्टि का निमित्त एवं विद्या और व्यवहार **का** साधक है ।

सूर्यः=**सकलविद्याप्रकाशको जगदीश्वरः,** सर्वव्यापक ईश्वरः, **सर्वमनुष्यार्थं स्वाहा** मनुष्यैः स्वकीयान् पदार्थान् प्रति ममेति वाच्यं नान्यपदार्थान् प्रति **ज्योतिः** सत्य प्रकाशकः **वर्च्चः**= **प्रकाशकं विद्युत् सूर्यप्रसिद्धाग्न्याख्यं तेजः करोति, एवं** ज्योतिः सर्वव्यवहारप्रकाशकः **सूर्यलोकोपि वर्च्चः=शरीरात्मबलं प्रकाशयति ।**

(**सूर्यः**) सकल विद्या प्रकाशक, सर्व व्यापक जगदीश्वर ने सब मनुष्यों के लिये (**स्वाहा**) यह उपदेश किया है कि हे मनुष्यो ! तुम अपने पदार्थों **को** ही 'मेरा' कहो अन्यों के पदार्थों को नहीं । (**ज्योतिः**) सत्य प्रकाशक परमेश्वर (**वर्च्चः**) प्रकाश करने वाले विद्युत्, सूर्य और प्रसिद्ध अग्नि नामक तेज को बनाता है । तथा (**ज्योतिः**) सब व्यवहारों का प्रकाशक सूर्यलोक भी (**वर्च्चः**) शरीर और **आत्मा** के बल को प्रकाशित करता है ।

सूर्यः=**प्राणः** सकलविद्यादिव्यवहारप्रापकत्वेन वर्तमानः प्राणादिसमूहो वायुगुणः **ज्योतिः**=**सकलविद्याप्रकाशकं ज्ञानं कारयति ।**

(**सूर्यः**) सकल विद्यादि व्यवहारों का प्रापक प्राणादि समूह (**ज्योतिः**) सकल विद्याओं के प्रकाशक ज्ञान के साधन हैं ।

तथाऽयं ज्योतिर्मयः सूर्यः=**जगदीश्वरः स्वाहा** वेदवाणी यज्ञक्रियामाह **ज्योतिः**=**स्वाहुतं हविः स्वस्टष्ट पदार्थेषु स्वशक्त्या सर्वत्र प्रसारयति** ॥ ३ । ६ ॥

तथा यह ज्योतिर्मय (**सूर्यः**) जगदीश्वर (**स्वाहा**) वेदवाणी एवं यज्ञादि शुभ कर्मों का उपदेश करता है तथा (**ज्योतिः**) उत्तम रीति से **आहुत** की हुई हवि को अपने रचे पदार्थों में अपनी **शक्ति** से सर्वत्र फैलाता है । ३ । ६ ॥

[स्वाहा शब्दार्थे प्रमाणमाह—]

भावार्थः—स्वाहाशब्दार्थो निरुक्तकार-रीत्याऽत्र गृहीतः ।

भावार्थ—यहां 'स्वाहा' शब्द का अर्थ निरुक्तकार की रीति से ग्रहण किया गया है ।

[अग्निः=जगदीश्वरः स्वाहा ज्योतिः सर्वस्मैददाति, एवं [अग्निः] भौतिकोऽग्निः [ज्योतिः] सर्वप्रकाश ज्योतिर्ददाति]

ईश्वरेणाऽग्निना कारणेनाग्न्यादिकं जगत् प्रकाश्यते, तत्राग्निः स्वप्रकाशेन स्वं, स्वतरं विश्वंच प्रकाशयति ।

ईश्वर कारण रूप अग्नि से स्थूल अग्नि जगत् को प्रकाशित करता है, जगत् में अग्नि अपने प्रकाश से स्वयं को और अपने से भिन्न विश्व को प्रकाशित करता है ।

[[अग्निः] सर्वविद्याप्रकाशकोऽग्नि-जगदीश्वरो मनुष्यार्थं सर्वविद्याधिकरणं वर्चः=वेदचतुष्टयं प्रादुर्भाव-भति···]

परमेश्वरो वेदद्वारा सर्वाविद्याः प्रकाशयत्येव-मग्निसूर्यावपि शिल्पविद्याः प्रकाशयत इति ॥ ३ । ६ ॥

परमेश्वर वेदों के द्वारा सब विद्याओं को प्रकाशित करता है इसी प्रकार अग्नि और सूर्य भी शिल्प विद्याओं को प्रकाशित करते हैं ॥ ३ । ६ ॥

अन्यत्र व्याख्यात—महर्षि ने इस मन्त्र का उल्लेख पञ्चमहायज्ञ विधि (**देवयज्ञ-विधि**) में सायंकाल तथा प्रातःकाल के होम मन्त्रों में किया है और इस प्रकार व्याख्या की है:—

"(**अग्निर्ज्यो०**) अग्नि जो परमेश्वर ज्योतिः स्वरूप है उसकी आज्ञा से हम परोपकार के लिये होम करते हैं। और उसका रचा हुआ जो यह भौतिकाग्नि है, जिसमें द्रव्य डालते हैं सो इस लिये है कि उन द्रव्यों को परमाणु करके जल और वायु, वृष्टि के साथ मिलाके उनको शुद्ध कर दे। जिससे सब संसार सुखी होके पुरुषार्थी हो ॥ १ ॥

(**अग्निर्वर्च्चो**) अग्नि जो परमेश्वर वर्च्च अर्थात् तब विद्याओं का देने वाला तथा अग्नि आरोग्य और बुद्धि बढ़ाने का हेतु है। इसलिए हम लोग होम करके परमेश्वर की प्रार्थना करते हैं। यह दूसरी आहुति हुई ॥ २ ॥ तीसरी आहुति प्रथम [**अग्निर्ज्यो०**] मन्त्र से मौन करके करनी चाहिये ॥ ३ ॥

(**सूर्य्योज्यो०**) जो चराचर का आत्मा प्रकाशस्वरूप और सूर्यादिप्रकाशक लोकों का भी प्रकाशक है, उसकी प्रसन्नता के लिए हम लोग होम करते हैं ॥ १ ॥

(**सूर्यो व०**) जो सूर्य परमेश्वर हमको सब विद्याओं का देने वाला, और हम लोगों से उनका प्रचार कराने वाला है, उसी के अनुग्रह के लिए हम लोग अग्नि होत्र करते हैं ॥ २ ॥

(**ज्योतिः सूर्य०**) जो आप प्रकाशमान और जगत् का प्रकाश करने वाला, सूर्य्य अर्थात् सब संसार का ईश्वर है उसकी प्रसन्नता के अर्थ हम लोग होम करते हैं" ॥ ४ ॥

महर्षि ने इस मन्त्र की व्याख्या ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका (**पंचमहायज्ञविषय**) में इस प्रकार की है:—

"(**सूर्य्यो ज्यो०**) जो चराचर का आत्मा प्रकाशस्वरूप और सूर्य्यादि प्रकाशक लोकों का भी प्रकाश करने वाला है उसकी प्रसन्नता के लिए हम लोग होम करते हैं ॥ १ ॥

(**सूर्य्यो वर्च्चो**) सूर्य जो परमेश्वर है वह हम लोगों को सब विद्याओं का देने वाला और हम से

उनका प्रचार कराने वाला है उसी के अनुग्रह से हम लोग अग्निहोत्र करते हैं ॥ २ ॥

(ज्योतिः सू०) जो आप प्रकाशमान और जगत् का प्रकाश करने वाला सूर्य अर्थात् संसार का ईश्वर है उसकी प्रसन्नता के अर्थ हम लोग होम करते हैं ॥ ३ ॥

(अग्निर्ज्यो०) अग्नि जो ज्योतिस्वरूप परमेश्वर है उसकी आज्ञा से हम लोग परोपकार के लिए होम करते हैं और उसका रचा हुआ यह भौतिक अग्नि इसलिये है कि वह उन द्रव्यों को परमाणु-रूप करके वायु और वर्षाजल के साथ मिला के शुद्ध कर दे जिससे सब संसार को सुख और आरोग्यता की वृद्धि हो ॥ १ ॥

(अग्निर्वर्च्चो०) अग्नि परमेश्वर वर्च्च अर्थात् सब विद्याओं का देने वाला और भौतिक अग्नि आरोग्यता और बुद्धि का बढ़ाने वाला है इसलिये हम लोग होम से परमेश्वर की प्रार्थना करते हैं यह दूसरी आहुति है तीसरी मौन होके प्रथम **(अग्निर्ज्यो०)** मन्त्र से करनी" ॥ २ । ३ ॥

महर्षि ने इस मन्त्र का विनियोग संस्कार विधि **(गृहाश्रमप्रकरण)** अग्निहोत्र में सायं तथा प्रातःकाल की आहुतियों में किया है ।

भाष्यसार—**१. अग्नि (ईश्वर) कैसा है**—परमेश्वर सत्य भाषण युक्त वाणी प्रदान करता है, सबका प्रकाशक होने से जगदीश्वर का नाम 'ज्योति' है । सब विद्याओं को प्रकाशित करने वाला होने से जगदीश्वर का नाम 'अग्नि' है जो सब मनुष्यों के लिये चारों वेदों को प्रकट करता है ।

२. अग्नि (भौतिक) कैसा है--यह भौतिक अग्नि अपना तथा अपने से भिन्न सकल विश्व का प्रकाशक है । इस विद्यु [रूप अग्नि का नाम 'ज्योति' है । यह विद्युत्-ज्योति शरीर में और ब्रह्माण्ड में स्थित है, जो सब पदार्थों को प्रकाशित करती है तथा शिल्प विद्या और वर्षा का हेतु है ।

३. सूर्य (ईश्वर) कैसा है---चर और अचर जगत् को जानने वाला तथा सब विद्याओं का प्रकाशक होने से ईश्वर का नाम 'सूर्य' है । इसीलिये ईश्वर को चराचर का आत्मा कहते हैं, सबकी आत्माओं को प्रकाश देने वाला एवं वेदों के द्वारा सब विद्याओं का उपदेशक तथा सत्य का प्रकाशक होने से ईश्वर का नाम 'ज्योति' भी है जो सबकी आत्माओं में ज्ञान-प्रदान करता है । प्रकाशक विद्युत्, सूर्य और अग्नि नामक तेज का कर्ता है । ज्योतिर्मय सूर्य (जगदीश्वर) वेदवाणी के द्वारा किये गये यज्ञ की आहुति को अपने रचे पदार्थों में अपनी शक्ति से सर्वत्र फैला देता है ।

४. सूर्य (भौतिक) कैसा है---यह सूर्य लोक अपने प्रकाश से जगत् के लिये प्रेरणा का हेतु है, पृथिवी आदि मूर्त्त द्रव्यों का प्रकाशक है, ज्योति का दाता है, सब व्यवहार को प्रकाशित करने वाला होने से यह 'ज्योति-ज्योति' कहलाता है, सूर्य लोक भी शरीर और आत्मा के बल का प्रकाशक है ।

५. सूर्य (वायु)—सूर्य का अर्थ वायु भी है जो सकल विद्यादि व्यवहार का प्रापक प्राण रूप है, जो सकल विद्या के प्रकाशक ज्ञान का हेतु है ।

६. ज्योति शब्द के अर्थ—१. सर्व प्रकाशक जगदीश्वर, २. सबके आत्माओं का प्रकाशक एवं वेद द्वारा सकल विद्या का उपदेशक ईश्वर, ३. पृथिवी आदि मूर्त द्रव्यों का प्रकाशक सूर्य, ४. शरीर और ब्रह्माण्ड में स्थित विद्युत् नामक अग्नि, ५. सत्य का प्रकाशक ईश्वर, ६. सब व्यवहारों का प्रकाशक सूर्य, ७. सकल विद्याओं का प्रकाशक ज्ञान ८. अच्छी प्रकार आहुत की हुई हवि ।

७. वर्च्चः शब्द के अर्थ—वेदचतुष्टय **(चारों वेद)**, विद्या को प्राप्त करने के साधन, शिल्प

विद्या और वर्षा का निमित, विद्युत्, सूर्य और भौतिक अग्नि का तेज, शारीरिक और आत्मिक बल ।

८. **स्वाहा शब्द के अर्थ**—सत्यभाषण युक्त वाणी, अपने पदार्थों को ही अपना कहना, दूसरों के पदार्थों को नहीं, वेदवाणी के द्वारा यज्ञ क्रिया का उपदेश ॥

●

प्रजापतिः । **पूर्वार्द्धस्याग्निरुत्तरार्द्धस्य सूर्यश्च**=भौतिकार्थः ॥ पूर्वार्द्धस्य गायत्र्युत्तरार्द्धस्य भुरिग्गायत्री च छन्दः । षड्जः ॥

भौतिकावग्निसूर्यौ कस्य सत्तया वर्तेत इत्युपदिश्यते ॥

भौतिक अग्नि और सूर्य किस की सत्ता से वर्त्तमान हैं, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

सजूर्देवेन सवित्रा सजू रात्र्येन्द्रवत्या । जुषाणोऽअग्निर्वेतु स्वाहा ।
सजूर्देवेन सवित्रा सजुरुषसेन्द्रवत्या । जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा ॥ १० ॥

पदार्थः—(**सजूः**) यः समानं जुषते=सेवते सः (**देवेन**) सर्वजगद् द्योतकेन (**सवित्रा**) सर्वस्य जगत उत्पादकेनेश्वरेणोत्पादितया (**सजूः**) यः समानं जुषते=प्रीणाति सः (**रात्र्या**) तमोरूपया (**इन्द्रवत्या**) इन्द्रो=बह्वी विद्युद्विद्यते यस्यां तया । अत्र भूम्न्यर्थे मतुप् । स्तनयित्नुरेवेन्द्रः ॥ शत० १४ । ५ । ७ । ७ ॥ (**जुषाणः**) यो जुषते=सेवते सः (**अग्निः**) भौतिकः (**वेतु**) व्याप्नोति । अत्र लडर्थे लोट् (**स्वाहा**) ईश्वरस्य स्वा गाहेत्यस्मिन्नर्थे (**सजूः**) उक्तार्थः (**देवेन**) सूर्यादिप्रकाशकेन (**सवित्रा**) सर्वांतर्यामिना जगदीश्वरेणोत्पादितया (**सजूः**) उक्तार्थः (**उषसा**) रात्र्यवसानोत्पन्नया दिवसहेतुना (**इन्द्रवत्या**) सूर्यप्रकाशसहितयोषसा (**जुषाणः**) सेवमानः (**सूर्यः**) सूर्यलोकः (**वेतु**) व्याप्नोति । अत्रापि लडर्थे लोट् (**स्वाहा**) हुतामाहुतिम् ॥ अयं मंत्रः शत २ । २ । ३ । ३७—३९ व्याख्यातः ॥ १० ॥

प्रमाणार्थ—(**इन्द्रवत्या**) यहां आधिक्य अर्थ में 'मतुप्' प्रत्यय है । शत० (१४ । ५ । ७ । ७) में 'इन्द्र' शब्द का अर्थ 'स्तनयित्नु' (**विद्युत्**) है । (**वेतु**) व्याप्नोति । यहां लट् अर्थ में लोट् लकार है । (**वेतु**) (**व्याप्नोति**) यहां भी लट् अर्थ में लोट् लकार है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (२ । २ । ३ । ३७-३९) में की गई है ॥ ३ । १० ॥

पदार्थान्वयः—**अयमग्निः** भौतिको **देवेन** सर्वजगद्द्योतकेन **सवित्रा=जगदीश्वरेणोत्पादितया** सर्वस्य जगत उत्पादकेनेश्वरेणोत्पादितया **सृष्ट्या सह सजूः** यः समानं जुषते=प्रीणाति स **जुषाणः** यो जुषते=सेवते सः **इन्द्रवत्या** इन्द्रो=बहवी विद्युद्विद्यतेयस्यां तया **रात्र्या** तमोरूपया **सह [सजूः]** यः समानं जुषते=प्रीणाति स **स्वाहा** ईश्वरस्य स्वा वागाह **जुषाणः सन् वेतु=सर्वान् पदार्थान् व्याप्नोति ।**

एवं **सूर्य्यः** सूर्यलोको **देवेन** सूर्यादिप्रकाशकेन **सवित्रा=सकलजगदुत्पादकेन धारितया,** सर्वान्तर्या-

भावार्थ—यह (**अग्निः**) भौतिक अग्नि (**देवेन**) सब जगत् के प्रकाशक (**सवित्रा**) सब जगत् के उत्पादक जगदीश्वर के द्वारा उत्पन्न सृष्टि के साथ (**सजूः**) समानता से (**जुषाणः**) सेवन की जाती हुई तथा (**इन्द्रवत्या**) विद्युत् वाली (**रात्र्या**) तमोरूप रात्रि के साथ [**सजूः**] समानतया (**स्वाहा**) ईश्वर के उपदेशानुसार (**जुषाणः**) सेवन की जाती हुई [**अग्नि**] (**वेतु**) सब पदार्थों को प्रकाशित करती है ।

तथा (**सूर्यः**) सूर्यलोक (**देवेन**) सूर्य आदि के प्रकाशक (**सवित्रा**) सकल जगत् के उत्पादक सर्वन्ति-

मिना जगदीश्वरेणोत्पादितया **सृष्टया सह सजूः** उक्तार्थः **जुषाणः** सेवमान **इन्द्रवत्या** सूर्यप्रकाशसहितया **उषसा** रात्र्यवसानोत्पन्नया दिवस हेतुना **सह स्वाहा** हुतामाहुतिं **जुषाणः** सेवमानः **सन् हुतं द्रव्यं वेतु**=व्याप्नोति ॥ ३ । १० ॥

र्यामी जगदीश्वर के द्वारा धारण एवं उत्पन्न सृष्टि के साथ (**सजुः**) समानता से (**जुषाणः**) सेवन किया हुआ [**सूर्य**] (**इन्द्रवत्या**) सूर्य प्रकाश सहित (**उषसा**) रात्रि-विराम से उत्पन्न, दिन की निमित्त उषा के साथ (**स्वाहा**) हवन की हुई आहुति को (**जुषाणः**) सेवन करता हुआ आहुत द्रव्य को (**वेतु**) प्राप्त करता है ॥ ३ । १० ॥

[अयमग्निर्देवेन सवित्रा=जगदीश्वरेणो त्पादितया सृष्टया सह···रात्र्या सह···वेतु=सर्वान् पदार्थान् व्याप्नोति]

भावार्थः—हे मनुष्याः ! यूयं योऽयमग्निरीश्वरेण निर्मितः स तत्सत्तया स्वस्वरूपं धारयन् सन् रात्रिस्थान् व्यवहारान् प्रकाशयति ।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो यह अग्नि ईश्वर ने रचा है वह उसकी सत्ता से अपने स्वरूप को धारण करता हुआ रात्रि के व्यवहारों को प्रकाशित करता है।

[एवं सूर्यः···उषसा सह···द्रव्यं वेतु=व्याप्नोति]

एवं च सूर्य उषःकालमेत्य सर्वाणि मूर्त्तद्रव्याणि प्रकायितुं शक्नोतीति विजानीत ॥ ३ । १० ॥

और इसी प्रकार सूर्य उषा काल को प्राप्त होकर सब मूर्त्त द्रव्यों को प्रकाशित करने में समर्थ होता है, ऐसा तुम समझो ॥ ३ । १० ॥

अन्यत्र व्याख्यात—महर्षि ने इस मन्त्र के पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध भाग को पञ्चमहायज्ञविधि (**देवयज्ञविधि**) में क्रमशः सायं और प्रातःकाल की आहुतियों में विनियुक्त करके वहाँ इस प्रकार से व्याख्या की है :—

"(**सजूर्देवेन०**)" [**सायंकाल की आहुति**] जो परमेश्वर प्राण-आदि में व्यापक, वायु और रात्रि के साथ पूर्ण, सब पर प्रीति करने वाला और सबके अङ्ग २ में व्याप्त है, वह अग्नि परमेश्वर हमको प्राप्त हो। जिसके लिये हम होम करते हैं ॥ ४ ॥

(**सजूर्देवेन०**) [**प्रातःकाल की आहुति**] जो परमैश्वर सूर्य्यादि लोकों में व्यापक, वायु और दिन के साथ परिपूर्ण सब पर प्रीति करने वाला और सबके अङ्ग-अङ्ग में व्याप्त है। वह अग्नि परमेश्वर हमको विदित हो। उसके अर्थ हम होम करते हैं" ॥ ४ ॥

महर्षि ने संस्कारविधि (**गृहाश्रमप्रकरण**) में प्रातः एवं सायंकाल की आहुतियों में इस मन्त्र का विनियोग किया है।

महर्षि ने इस मन्त्र के दोनों खण्डों की व्याख्या ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका (**पंचमहायज्ञ विषय**) में इस प्रकार की है—"(**सजूर्देवेन**) [**प्रातः**] जो परमेश्वर सूर्य्यादि लोकों में व्याप्त वायु और दिन के साथ संसार का परम हितकारक है वह हम लोगों को विदित होकर हमारे किये हुये होम को ग्रहण करें" ॥ ४ ॥

(**सजूर्देवेन०**) [**सायं**]। जो अग्नि परमेश्वर सूर्य्यादि लोकों में व्याप्त, वायु और रात्रि के साथ संसार का परम हितकारक है वह हमको विदित होकर हमारे किये हुए होम का ग्रहण करें ॥"

भाष्यसार—१. **अग्नि किस की सत्ता से है**—सब जगत् का प्रकाशक एवं सकल जगत्

को उत्पन्न करने वाला ईश्वर है, उसी ने सृष्टि को रचा है। इस सृष्टि में ईश्वर ने समान रूप से अग्नि को भी रचा है। ईश्वर की सत्ता से ही अग्नि की सत्ता है। यह इन्द्रवती **(विद्युत् वाली)** रात्रि के सब व्यवहारों को प्रकाशित करता है। सब पदार्थों में व्याप्त है।

२. **सूर्य किस की सत्ता से है**—सूर्य आदि लोकों का प्रकाशक एवं सकल जगत् का उत्पादक ईश्वर है, जो सवार्न्तर्यामी है। उसने सृष्टि के साथ सूर्यलोक को भी रचा है। ईश्वर की सत्ता से ही सूर्य की सत्ता है। सूर्य इन्द्रवती **(सूर्य प्रकाश वाली)** उषा के साथ होम की हुई आहुति का सेवन करता हुआ होम किये हुये द्रव्य को व्यापक बना देता है, तथा सब मूर्त्त द्रव्यों को प्रकाशित करता है।

गोतमः। **अग्निः=जगदीश्वरः**। निचृद्गायत्री। षड्जः॥

अथेश्वरेण स्वस्वरूपमुपदिश्यते॥

इस मन्त्र में ईश्वर ने अपने स्वरूप का उपदेश किया है॥

उपप्रयन्तोऽअध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये। आरेऽअस्मे च शृण्वते॥ ११॥

पदार्थः—(**उपप्रयन्तः**) उत्कृष्टं निष्पादयन्तः=जानन्तः (**अध्वरम्**) क्रियामयं यज्ञम् (**मन्त्रम्**) वेदस्थं विज्ञानहेतुम् (**वोचेम**) उच्याम। अयमाशिषि लिङ्युत्तमबहुवचने प्रयोगः। लिङ्याशिष्यङित्यङि कृते छन्दस्युभयथेति सार्वधातुकमाश्रित्येयसकारलोपौ। वच उम्॥ अ० ७। ४। २०॥ इत्यङि पर उमागमश्च (**अग्नये**) विज्ञानस्वरूपायान्तर्यामिने जगदीश्वराय (**आरे**) दूरे। आर इति दूरनामसु पठितम्॥ निघं० ३। २६॥ (**अस्मे**) अस्माकम्। अत्र सुपां सुलुगिति आमः स्थाने शे आदेशः (**च**) समुच्चये (**शृण्वते**) यो यथार्थतया शृणोति तस्मै॥ अयं मंत्रः शत० २। ३। २। ६। १० व्याख्यातः॥ ११॥

प्रमाणार्थ—(**वोचेम**) उच्याम। यह आशीर्लिङ् के उत्तम पुरुष बहुवचन का रूप है। 'लिङ्यांशिष्यङ्' [अ० ३। १। ८६] सूत्र से 'अङ्' विकरण करने पर 'छन्दस्युभयथा' [अ० ३। ४। ११७] सूत्र से लिङ् की सार्वधातुक संज्ञा होने से 'इय्' और सकार लोप है। 'वच उम्' (अ० ७। ४। २०) सूत्र से 'अङ्' के परे रहते 'उम्' का आगम है। (**आरे**) निघं० (३। २६) में 'आरे' शब्द दूर-नामों में पढ़ा है। (**अस्मे**) अस्माकम्। यहां 'सुपां सुलुक्०' [अ० ७। १। ३६] सूत्र से 'आम्' के स्थान में 'शे' आदेश है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (२। ३। २। ६। १०) में की गई है॥ ३। ११॥

सपदार्थान्वयः—**अध्वरं** क्रियामयं यज्ञम् **उपप्रयन्तः** उत्कृष्टं निष्पादयन्तो जानन्तो **वयमस्मे=अस्माकम् आरे=दूरे चात्समीपे शृण्वते** यो यथार्थतया शृणोति तस्मै **अग्नये=जगदीश्वराय,** विज्ञानस्वरूपायान्र्यामिने जगदीश्वराय **मन्त्रं** वेदस्थं विज्ञानहेतुं **वोचेम=उच्याम**[1]॥ ३। ११॥

भाषार्थ—(**अध्वरम्**) क्रियामय यज्ञ को (**उपप्रयन्तः**) उत्तम रीति से सिद्ध करते हुए एवं जानते हुए हम लोग (**अस्मे**) हमारे (**आरे**) दूर और चकार से समीप भी (**शृणवते**) वस्तुतः सुनने वाले (**अग्नये**) विज्ञान स्वरूप, अन्तर्यामी जगदीश्वर के लिये (**मन्त्रं**) विज्ञान के निमित्त वेद मन्त्र को (**वोचेम**) उच्चारण करें। अर्थात् वेदमन्त्रों से जगदीश्वर की स्तुति करें॥ ३। ११॥

[अध्वरमुपप्रयन्तो वयम्········शृण्वतेऽग्नये=जगदीश्वराय मन्त्रं वोचेम=उच्याम]

भावार्थः—मनुष्यैर्वेदमन्त्रैरीश्वरस्य स्तुतियज्ञानुष्ठाने कृत्वा, य ईश्वरोऽन्तर्बहिश्चाभिव्याप्य सर्वं शृण्वन् वर्तते, तस्माद् भीत्वा न कदाचिदधर्मं कर्त्तुमिच्छापि कार्या।

भावार्थ—मनुष्य वेदमन्त्रों से ईश्वर की स्तुति तथा यज्ञानुष्ठान करके एवं जो ईश्वर अन्दर और बाहर व्यापक होकर सब सुन रहा है, उससे डर कर अधर्म करने की कभी इच्छा भी न करें।

[अस्मे=अस्माकमारे=दूरे चात्तसमीपे]

यदा मनुष्य एतं जानातितदा समीपस्थो, यदैनं न जानाति तदा दूरस्थ इति वेद्यम् ॥ ३ । ११ ॥

जब मनुष्य इस ईश्वर को जानता है तब यह उसके समीपस्थ तथा जब इसको नहीं जानता तब दूरस्थ होता है, ऐसा समझें ॥ ३ ॥ ११ ॥

भा० पदार्थः—अध्वरम्=यज्ञानुष्ठानम्। शृण्वते=सर्वं शृण्वन् वर्तते तस्मै। मन्त्रम्=वेदमन्त्रम् ॥

भाष्यसार—१. **ईश्वर का स्वरूप**—अग्नि अर्थात् जगदीश्वर सब के अन्दर और बाहर व्यापक है, इस लिये उसको अन्तर्यामी कहते हैं। विज्ञान स्वरूप है। अन्तर्यामी और विज्ञान स्वरूप होने से सब कुछ सुन रहा है। इस लिये उससे डर कर अधर्म करने की कभी इच्छा भी न करें। जब मनुष्य ईश्वर को जानता है तब ईश्वर उसके समीप है और जब नहीं जानता तब उससे वह दूर है।

२. **ईश्वर स्तुति**—ईश्वर के स्वरूप को जानने के लिये वेद मन्त्रों से उसकी स्तुति और यज्ञानुष्ठान करें।

विरूपः। **अग्निः=ईश्वरो भौतिकश्च** ॥ निचृद्गायत्री। षड्जः ॥

अथाग्निशब्देनेश्वरभौतिकावुपदिश्येते ॥

अब अग्नि शब्द से ईश्वर और भौतिक अग्नि का उपदेश किया जाता है ॥

अ॒ग्निर्मू॒र्द्धा दि॒वः क॒कुत्पतिः पृथि॒व्या ऽअ॒यम्। अ॒पाᳬ रेताᳬसि जिन्वति ॥ १२ ॥

पदार्थः—(**अग्निः**) सर्वस्वामीश्वरः, प्रकाशादिगुणवान्भौतिको वा (**मूर्द्धा**) सर्वोपरि विराजमानः (**दिवः**) प्रकाशवतः सूर्यादेर्जगतः (**ककुत्**) महान्। **ककुह इति महन्नामसु पठितम् ॥ निघं० १। ३ ॥ ककुहशब्दस्य स्थाने ककुत्। पृषोदराद्याकृतिगणान्तर्गतत्वात्सिद्धः** (**पतिः**) पालयिता, पालनहेतुर्वा (**पृथिव्याः**) प्रकाशरहितस्य पृथिव्यादेर्जगतः (**अयम्**) निरूपितपूर्वः (**अपाम्**) प्राणानां जलानां वा। **आप इति पवनामसु पठितम् ॥ निघं० ५। ३ ॥ अनेन चेष्टादिव्यवहारप्रापकाः प्राणा गृह्यन्ते। आप इत्युदकनामसु पठितम ॥ निघं० १। १२ ॥** (**रेतांसि**) वीर्याणि (**जिन्वति**) रचयितुं जानाति, प्रापयति वा। **जिन्वतीति गतिकर्मसु पठितम् ॥ निघं० २। १४ ॥ अयं मंत्रः शत० २। ३। २। ११ व्याख्यातः ॥ १२ ॥**

प्रमाणार्थ—(**ककुत्**) 'ककुह' शब्द निघं० (३। ३) में महान्-नामों में पढ़ा है। ककुह शब्द के स्थान में 'ककुत्' आदेश है। 'पृषोदरादि' एक आकृति गण है, उसी के अन्तर्गत 'ककुह' शब्द का पाठ मान कर इस शब्द की सिद्धि जाननी चाहिए। (**अपाम्**) 'आपः' शब्द निघं० (५। ३) में पद-नामों में पढ़ा है, इसलिए 'अप' शब्द से चेष्टादि व्यवहारों को प्राप्त करने वाले प्राण, यह अर्थ ग्रहण किया जाता है। निघं० (१। १२) में 'आपः' शब्द जल नामों में पढ़ा है। (**जिन्वति**) यह पद निघं० (२। १४)

में गत्यर्थक धातुओं में पढ़ा है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (२।३।२।११) में की गई है॥ ३।१२॥

सपदार्थान्वयः--हे मनुष्या! **यूयं योऽयं** निरूपितपूर्वः **ककुत्** महान् **मूर्द्धा** सर्वोपरि विराजमानः **अग्निः=जगदीश्वरः** सर्वस्वामीश्वरः **दिवः** प्रकाशवतः सूर्यादिर्जगतः **पृथिव्याः** प्रकाश-रहितस्य पृथिव्यादेर्जगतः **च पतिः=पालकः** पाल-यिता **सन्नपां** प्राणानां **रेतांसि** वीर्याणि **जिन्वति=स्रष्टुं** जानाति रचयितुं जानाति **तमेव पूज्यं मन्य-ध्वमित्येकः** ॥

योऽयं निरूपितपूर्वः **अग्निः** प्रकाशादिगुणवान् भौतिकः **ककुद्** महान् **दिवः** प्रकाशवतः सूर्यादिर्जगतः **मूर्द्धा** सर्वोपरि विराजमानः **पृथिव्याः** प्रकाश-रहितस्य पृथिव्यादेर्जगतश्चपतिः=पालनहेतुः **सन्नपां** जलानां वा **रेतांसि** वीर्याणि **जिन्नवति** प्राणानां, **स सुखं प्रापयतीति द्वितीयः ॥ ३। १२॥**

भाषार्थ—हे मनुष्यो! तुम जो (**अयम्**) यह पूर्व वर्णित (**ककुत्**) महान् (**मूर्द्धा**) सब के ऊपर विराजमान (**अग्निः**) सबका स्वामी जगदीश्वर है वह (**दिवः**) प्रकाशवान् सूर्यादि जगत् (**पृथिव्याः**) और प्रकाश रहित पृथिवी आदि जगत् का (**पतिः**) रक्षक होकर (**अपाम्**) प्राणों को (**रेतांसि**) बलवान् (**जिन्वति**) बनाना जानता है अतः उसी जगदीश्वर को पूज्य मानो। यह इस मन्त्र का पहला अर्थ है॥

जो (**अयम्**) यह पूर्व वर्णित (**अग्निः**) प्रकाश आदि गुणों से युक्त भौतिक अग्नि है वह (**ककुद्**) महान् है। क्योंकि (**दिवः**) प्रकाशवान् सूर्यादि जगत् (**मूर्द्धा**) सब से ऊपर विराजमान शिर है और (**पृथिव्याः**) प्रकाशरहित पृथिवी आदि जगत् का (**पतिः**) पालन हेतु है क्योंकि वह (**अपाम्**) प्राणों तथा जलों के (**रेतांसि**) बलों को (**जिन्वति**) उत्पन्न करता है एवं वह सुख पहुँचाता है॥ यह इस मन्त्र का दूसरा अर्थ है॥

[**योऽयं······अग्निः=जगदीश्वरो दिवः पृथिव्याश्च पतिः=पालकः सन्नपां रेतांसि जिन्वति**]

भावार्थः—अत्र श्लेषालङ्कारः॥ यो जगदीश्वरः प्रकाशाप्रकाशवद् द्विविधं जगदर्थात् प्रकाशवत् सूर्यादिकम प्रकाशवत्पृथिव्यादि कं च रचयित्वा, पालयित्वा प्राणेषु बलं च दधाति,

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष अलङ्कार है॥ जो जगदीश्वर प्रकाशवान् और अप्रकाशवान् दो प्रकार के जगत् को, अर्थात् प्रकाशवान् सूर्य आदि और अप्रकाशवान् पृथिवी आदि को रच कर, पालन करके प्राणों में बल का भी आधान करता है,

[**योऽयमग्निर्दिवः—पृथिव्याश्च पतिः=पालनहेतुः सन्नपां रेतांसि जिन्वति, स सुखं प्रापयति**]

तथा—योऽयमग्निः पृथिव्यादिजगतः पालन-हेतुर्भूत्वा विद्युज्जाठरादिरूपः प्राणानां जलानां वीर्याणि जनयति, स एव सुखसाधको भवतीति॥ ३।१२॥

और—जो यह भौतिक अग्नि पृथिवी आदि जगत् के पालन का हेतु है तथा विद्युत् और जाठराग्नि रूप है, वह प्राणों और जल के बलों को उत्पन्न करता है, वह ईश्वर और भौतिक अग्नि सुख को सिद्ध करने वाला है॥ ३।१२॥

भा० पदार्थः--रेतांसि=बलानि। जिन्वति=दधाति। अग्निः=विद्युज्जाठरादिरूपः। जिन्वति=जनयति॥

अन्यत्र व्याख्यात--महर्षि ने इस मन्त्र की व्याख्या ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका (**ग्रन्थप्रामाण्या प्रामाण्य विषय**) में इस प्रकार की है—"(**अग्निः**) यह जो अग्निसंज्ञक परमेश्वर वा भौतिक

है वह (**दिवः**) प्रकाश वाले और (**पृथिव्याः**) प्रकाश रहित लोकों का पालन करने वाला तथा (**मूर्द्धा**) सब पर विराजमान और (**ककुत्पतिः**) दिशाओं के मध्य में अपनी व्यापकता से सब पदार्थों का राजा है (**व्यत्ययो बहुलम्**) इस सूत्र से (**ककुभ्**) शब्द के भकार को तकार हो गया है (**अपां रेतांसि जिन्वति**) वही जगदीश्वर प्राण और जलों के वीर्य्यों को पुष्ट करता है इस प्रकार भूताग्नि भी विद्युत् और सूर्य्य रूप से पूर्वोक्त पदार्थों का पालन और पुष्टि करने वाला है" ॥ ३ ॥

भाष्यसार—१. **अग्नि (ईश्वर)**—यह ईश्वर, महान्, सब के ऊपर विराजमान, सबका स्वामी, प्रकाशवान् सूर्यादि तथा प्रकाश रहित पृथिवी आदि जगत् का रचयिता तथा पालक है। यही प्राणों में बल की स्थापना करता है इसलिये सबका पूज्य है ॥

२. **अग्नि (भौतिक)**—यह भौतिक अग्नि प्रकाशादि गुणों से युक्त, महान्, प्रकाशवान् सूर्य आदि तथा प्रकाशरहित पृथिवी आदि जगत् का पालन हेतु द्युलोक का मूर्द्धा (**शिर**) है। विद्युत् और जाठरादि रूप यह अग्नि प्राणों और जल के बल को पैदा करता है, सुखों को सिद्ध करने वाला है ॥

३. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में श्लेष अलङ्कार है। इस लिये 'अग्नि' शब्द से 'ईश्वर और भौतिक अग्नि' दो अर्थ ग्रहण किये हैं ॥

भरद्वाजः । **इन्द्राग्नी**=**ईश्वरो वायुर्विद्युदादिरूपोऽग्निः** । विराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

अथेश्वरभौतिकावग्निवायू उपदिश्येते ॥

अब ईश्वर तथा भौतिक अग्नि और वायु का उपदेश किया जाता है ॥

उभा वामिन्द्राग्नीऽआहुवध्याऽउभा राधसः सह मादयध्यै ।
उभा दातारविषाᳬ रयीणामुभा वाजस्य सातये हुवे वाम् ॥ १३ ॥

पदार्थः—(**उभा**) द्वौ । अत्र सर्वत्र सुपां सुलुगित्याकारादेशः (**वाम्**) तौ । अत्र व्यत्ययः (**इन्द्राग्नी**) इन्द्रो वायुर्विद्युदादिरूपोऽग्निश्च तौ (**आहुवध्यै**) शब्दयितुमुपदेष्टुं श्रोतुं वा । अत्र ह्वेञित्यस्मात्तुमर्थे सेसे॰ इति कध्यै प्रत्ययः (**उभा**) उभौ (**राधसः**) राध्नुवन्ति=सम्यङ् निर्वर्तयन्ति सुखानि येभ्यः साधनेभ्यस्तानि धनानि । राध इति धननामसु पठितम् ॥ निघं॰ २ । १० ॥ (**सह**) परस्परम् (**मादयध्यै**) मोदयितुम् । अत्र मदी हर्षग्लेपनयोरिति णिजन्ताच्छध्यै प्रत्ययः (**उभा**) उभौ (**दातारौ**) सुखदानहेतू (**इषाम्**) सर्वैर्जनैर्यानीष्यन्ते तेषाम् (**रयीणाम्**) परमोत्तमानां चक्रवर्तिराज्यादिधनानाम् (**उभा**) द्वौ (**वाजस्य**) अत्युत्तमस्यान्नस्य । वाज इत्यन्ननामसु पठितम् ॥ निघं॰ २ । ७ ॥ (**सातये**) संभोगाय (**हुवे**) गृह्णामि । अत्र हु दानादनयोरित्यस्माद्बहुलं छन्दसीति शपो लुक व्यत्ययेनात्मनेपदं च (**वाम्**) तौ । अत्रापि पूर्ववद्व्यत्ययः ॥ अयं मंत्रः शत॰ २ । ३ । २ । १२ व्याख्यातः ॥ १३ ॥

प्रमाणार्थ—(**उभा**) उभौ । इस मन्त्र में सर्वत्र 'उभा' पद पर 'सुपां सुलुक्॰' [अ॰ ७ । १ । ३९] सूत्र से आकार आदेश है । (**वाम्**) तो यहाँ व्यत्यय हैं । (**आहुवध्यै**) यह पद 'ह्वेञ्' धातु से तुमर्थ से से॰ [अ॰ ३ । ४] से 'कध्यै' प्रत्यय करने पर सिद्ध है । (**राधसः**) 'राधः' शब्द निघं॰ (२ । १०) में धन-नामों में पढ़ा है । (**मादयध्यै**) यह पद 'हर्ष' और 'ग्लेपन' अर्थ वाली णिजन्त 'मद' धातु से 'शध्यै' प्रत्यय करने पर सिद्ध है । (**वाजस्य**) 'वाज' शब्द निघं॰ (२ । ७) में अन्न-नामों में पढ़ा है । (**हुवे**) यह रूप 'दान' और 'अदन' (**भक्षण**) अर्थ वाली 'हु' धातु से 'बहुलं छन्दसि' [अ॰ २ । ४ ।

७३] से 'शप' का लुक् होने से सिद्ध है तथा यहाँ व्यत्यय से आत्मन् पद भी है । (वाम्) तौ । यहाँ व्यत्यय है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (२ । ३ । २ । १२) में की गई है ॥ ३ । १३ ॥

सपदार्थान्वयः—**अहं यौ [उभा]=उभौ द्वौ दातारौ=सुखदानहेतू वर्तेते [वाम्]=तौ इन्द्राग्नी** इन्द्रो वायुर्विद्युदादिरूपोऽग्निश्च तौ **आहुवध्यै=शब्दयितुम्** उपदेष्टुं श्रोतुं वा **हुवे=गृह्णामि** ।

राधसः राध्नुवन्ति=सम्यङ् निर्वर्तयन्ति सुखानि येभ्यः साधनेभ्यस्तानि धनानि **भोगेन सह मादयध्यै=मोदयितुम् [उभा]=उभौ वां तौ हुवे** गृह्णामि ।

इषां सर्वैर्जनैर्यानोष्यन्ते तेषां **रयीणां** परमोत्तमानां चक्रवर्तिराज्यादि धनानां **वाजस्य** अत्युत्तमस्यान्नस्य **च सातये** सम्भोगाय **[उभा]=उभौ द्वौ वां=तौ हुवे=गृह्णामि** ॥ ३ । १३ ॥

भाषार्थ—मैं जो (**उभा**) दोनों (**दातारौ**) सुख देने वाले हैं (**वाम्**) उन दोनों (**इन्द्राग्नी**) वायु और विद्युत् आदि अग्नि को (**आहुवध्यै**) उपदेश करने वा उसके गुणों को सुनने के लिये (**हुवे**) ग्रहण करता हूँ ।

तथा (**राधसः**) सब सुखों को सिद्ध करने वाले धनों के उपभोग से (**सह**) आपस में (**मादयध्यै**) आनन्द करने के लिये [**उभा**] दोनों (**वाम्**) उन वायु अग्नियों को (**हुवे**) ग्रहण करता हूँ ।

(**इषाम्**) सब जनों से कमनीय (**रयीणाम्**) अति उत्तम चक्रवर्त्ती राज्य आदि धन और (**वाजस्य**) अत्युत्तम अन्न के (**सातये**) उपभोग के लिये (**उभा**) दोनों (**वाम्**) उन वायु-अग्नियों को (**हुवे**) ग्रहण करता हूँ ॥ ३ । १३ ॥

[अहं···इन्द्राग्नी···हुवे,···इषां रयीणां···सातये···वां=तौ हुवे=गृह्णामि]

भावार्थः—अत्र श्लेषालङ्कारः ॥ ये मनुष्या ईश्वरसृष्टौ सुष्ठु किलाग्निवायुगुणान् विदित्वैतौ संप्रयुज्य कार्याणि साधयन्ति, ते सर्वाणि सार्वभौमराज्यधनानि प्राप्य नित्यं मोदन्ते; नेतर इति ॥ ३ । १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष अलङ्कार है ॥ जो मनुष्य ईश्वर की सृष्टि में उत्तम रीति से निश्चय पूर्वक अग्नि और वायु के गुणों को जानकर और इनका ठीक-ठीक प्रयोग करके कार्य को सिद्ध करते हैं, वे सब सार्वभौम राज्यधनों को प्राप्त कर सदा आनन्द में रहते हैं; दूसरे नहीं ॥ ३ । १३ ॥

भा० पदार्थः—रयीणाम्=सार्वभौमराज्यधनानाम् ॥

भाष्यसार—**१. वायु और अग्नि**—ईश्वर की सृष्टि में वायु और अग्नि सुख के देने वाले हैं इसलिए वायुविद्या और अग्निविद्या का उपदेश और श्रवण करें । इनसे सब सुखों को सिद्ध करने वाले धनों के उपभोग से आनन्दित रहने के लिये इन्हें ग्रहण करें, सब जनों के प्रिय अत्युत्तम चक्रवर्ती राज्य तथा अन्न की प्राप्ति के लिये भी वायुविद्या और अग्नि विद्या को सीखें ।

२. **ईश्वर**—इन्द्र और अग्नि रूप ईश्वर सब सुखों का दाता है, उपदेश एवं श्रवण करने योग्य है, सब सुखों के साधनों के प्रदान से आनन्दित करने वाला है, सब को प्यारे लगने वाले सार्वभौम चक्रवर्ती राज्य आदि धनों तथा उत्तम अन्नों को प्राप्त कराने वाला है ।

३. **अलङ्कार**—यहां श्लेष अलङ्कार से इन्द्र और अग्नि शब्द से भौतिक वायु तथा भौतिक अग्नि और ईश्वर का ग्रहण किया जाता है ॥

देववातभरतौ । **अग्निः**=ईश्वरो विद्युच्च ।। विचृदनुष्टुप् । गान्धारः ।।

पुनरीश्वरभौतिकावुपदिश्येते ।।

फिर ईश्वर और भौतिक अग्नि का उपदेश किया जाता है ।।

अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातोऽअरोचथाः ।

तं जानन्नग्नऽ आरोहाथा नो वर्द्धया रयिम् ।। १४ ।।

पदार्थः—(अयम्) वायुः (ते) तवेश्वरस्य (योनिः) निमित्तकारणम् (ऋत्वियः) ऋतुः प्राप्तोऽस्य सः । अत्र छन्दसि घस् ।। अ० ५ । १ । १०६ ।। अनेन ऋतुशब्दाद् घस्प्रत्ययः (यतः) यस्मात् (जातः) प्रादुर्भूतः (अरोचथाः) दीपयति । अत्र व्यत्ययो लडर्थे लङ् (तम्) अग्निम् (जानन्) (अग्ने) जगदीश्वरो विद्युद्वा (आ) समन्तात् क्रियायोगे (रोह) उन्नतिं गमय गमयति वा (अथ) आनंतर्ये । अत्र निपातस्य चेति दीर्घः (नः) अस्माकम् (वर्द्धय) सर्वोत्कृष्टतां संपादय संपादयति वा । अत्रान्येषामपीति दीर्घः (रयिम्) पूर्वोक्तं धनम् ।। अयं मंत्रः शत० २ । ३ । २ । १३ व्याख्यातः ।। १४ ।।

प्रमाणार्थ—(ऋत्वियः) यह शब्द 'छन्दसि घस्' (अ० ५ । १ । १०६) सूत्र से ऋतु शब्द से 'घस्' प्रत्यय करने पर सिद्ध है । (अरोचथाः) दीपयति । यहां पुरुष-व्यत्यय और लट् अर्थ में लुङ् लकार है । (अथा) अथ । यहाँ 'निपातस्य च' [अ० ६ । ३ । १३७] सूत्र से दीर्घ है । (वर्द्धया) वर्द्धय । 'अन्येषामपि दृश्यते' [अ० ६ । ३ । १३६] सूत्र से दीर्घ है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (२ । ३ । २ । १३) में की गई है ।। ३ । १४ ।।

सपदार्थान्वयः—हे अग्ने=जगदीश्वर! ते=तव ईश्वरस्य सृष्टौ य ऋत्वियः ऋतुःप्राप्तोऽस्य सः [अग्ने]=अग्निः विद्युत् वायोः सकाशाज्जातः प्रादुर्भूतः सन्नारोचथाः=समन्तात् प्रदीपयति ।

[अथ] अनन्तरं यः सूर्यादिरूपेण दिवमारोह=समन्ताद्रोहति उन्नतिं गमयति यो नः=अस्माकं रयिं पूर्वोक्तं धनम् [वर्द्धय]=वर्द्धयति सर्वोत्कृष्टतां सम्पादयति ।

यस्याग्नेरयं वायुर्योनिः निमित्तकारणम् अस्ति, तम् अग्निं जानंस्त्वं तेन नः=अस्माकं रयिं=सार्वभौमराज्यादिसिद्धि धनं पूर्वोक्तं धनं वर्द्धय सर्वोत्कृष्टतां सम्पादय ।। ३ । १४ ।।

भाषार्थ—हे (अग्ने) जगदीश्वर ! (ते) तेरी सृष्टि में जो (ऋत्वियः) प्रत्येक ऋतु में प्राप्त [अग्ने] अग्नि विद्युत् है, वह वायु से उत्पन्न होकर (अरोचथाः) सब ओर प्रकाश करता है ।

[अथ] और जो सूर्य आदि के रूप में द्युलोक में (आरोह) ऊँचा चढ़ जाता है, वह (नः) हमारे (रयिम्) पूर्वोक्त अति उत्तम चक्रवर्ती राज्य आदि धन को (वर्द्धय) बढ़ाता एवं सबसे उत्कृष्ट बनाता है ।

जिस अग्नि=विद्युत् का (अयम्) यह वायु (योनिः) निमित्त कारण है (तम्) उस अग्नि-विद्या को जानते हुए आप उससे (नः) हमारे (रयिम्) सार्वभौमराज्य आदि सिद्धि रूप धन को (वर्द्धय) बढ़ाओ एवं सबसे उत्कृष्ट बनाओ ।। ३ । १४ ।।

[य ऋत्वियः [अग्ने]=अग्निर्वायोः सकाशाज्जातः सन्नरोचथाः,...यो नः=अस्माकं रयिं [वर्द्धय]=वर्द्धयति]

भावार्थः—मनुष्यैर्यः [अग्निः[1]] सर्वेषु कालेषु यथावद् योजनीयोऽस्ति, यो वायुनिमित्ते-

भावार्थ—जो विद्युत सब कालों में ठीक ठीक उपयोग में लाने योग्य है, जो वायु के निमित्त

१. 'अग्नि' पद का पाठ मूल में नहीं है ।

नोत्पद्यते, य एवानेककार्यसिद्धिकरत्वेन सर्वान् सुखयति, तं यथावद् विदित्वा, संप्रयुज्य, कार्याणि साधनीयानीति ॥ ३ । १४ ॥

से उत्पन्न होता है, जो अनेक कार्यों की सिद्धि करने वाला होने से सबको सुख देता है, उसको ठीक ठीक जानकर एवं प्रयोग करके मनुष्य सब कार्यों को सिद्ध करें ॥ ३ । १४ ॥

भाष्यसार—१. अग्नि (ईश्वर)—हे ईश्वर ! आप की सृष्टि में अग्नि (विद्युत्) वायु से उत्पन्न होता है, तथा उसी से वह प्रदीप्त होता है। यही अग्नि द्युलोक में सूर्य आदि के रूप में विद्यमान है। आप इस अग्नि विद्या की शिक्षा से हमारे सार्वभौम चक्रवर्ती राज्य रूप धन को बढ़ाइये।

२. अग्नि (भौतिक)—ईश्वर की इस सृष्टि में यह भौतिक अग्नि सब कालों में यथावत् उपयोग में लाने योग्य है, यह अग्नि वायु से उत्पन्न होता है, और वायु से ही प्रदीप्त होता है, तथा सूर्य आदि के रूप में द्युलोक में आरूढ़ है, सार्वभौम चक्रवर्ती राज्य आदि धन की वृद्धि एवं उत्कृष्टता का निमित है।

वामदेवः । **अग्निः=ईश्वरो भौतिकश्च** ॥ भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः ॥

पुनः सोऽग्निः कीदृश इत्युपदिश्यते ॥

फिर वह अग्नि कैसा है, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठो ऽ अध्वरेष्वीड्यः ।
यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे ॥ १५ ॥

पदार्थः—(**अयम्**) ईश्वरो भौतिको वा (**इह**) अस्यां सृष्टौ (**प्रथमः**) यज्ञक्रियायामुपास्य आदिमं साधनं वा (**धायि**) ध्रियते । अत्र वर्त्तमाने लुङ् । बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेपीत्यडभावः (**धातृभिः**) यज्ञक्रियाधारकैर्विद्वद्भिः (**होता**) ग्राहकः (**यजिष्ठः**) अतिशयेनानन्दशिल्पविद्ययोः संगतिहेतुः (**अध्वरेषु**) उपासनाग्निहोत्राद्यश्वमेधान्तेषु शिल्पविद्यान्तर्गतेषु वा यज्ञेषु (**ईड्यः**) उपासितुमध्येषितुं वार्हः (**यम्**) उक्तार्थम् (**अप्नवानः**) येऽप्नान्विद्यासंतानान्कुर्वन्ति ते, अप्न इत्यस्मात्तत्करोति तदाचष्टे ॥ अ० ३ । १ । २६ ॥ अनेन करोत्यर्थे णिच् । ततोन्येभ्योपि दृश्यन्त इति वनिप् । अप्न इत्यपत्यनामसु पठितम् ॥ निघं० २ । २ ॥ (**भृगवः**) यज्ञविद्यावेत्तारः । भृगव इति पदनामसु पठितम् ॥ निघं० ५ । ५ ॥ अनेन ज्ञानवत्त्वं गृह्यते (**विरुरुचुः**) विदीपयन्ति । अत्र लडर्थे लिट् (**वनेषु**) संभजनीयेषु (**चित्रम्**) अद्भुतगुणम् (**विभ्वम्**) व्यापनशीलम् । अत्र वा छन्दसीत्यनेन पूर्वरूपादेशो न (**विशेविशे**) प्रतिप्रजाम् ॥ अयं मंत्रः शत० २ । ३ । २ । १४ व्याख्यातः ॥ १५ ॥

प्रमाणार्थ—(**धायि**) ध्रियते। यहां वर्त्तमान (**लट्**) अर्थ में लुङ् लकार है। 'बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपि' [**अ०** ६। ४। ७५] सूत्र से 'अट्' आगम का अभाव है (**अप्नवानः**) यह शब्द 'तत्करोति तदाचष्टे' (**अ०** ३ । १। २६) वार्तिकसेकरोति (**करने**) अर्थ में 'णिच्' प्रत्यय करने पर 'अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते' [**अ०** ३ । २ । ३५] सूत्र से 'वनिप्' प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है। 'अप्नः' शब्द निघं० (२ । २) में अपत्य-नामों में पढ़ा है। (**भृगवः**) यह बहुवचनान्त 'भृगवः' शब्द निघं० (५ । ५) में पद्-नामों में पढ़ा है। इससे ज्ञानवत्ता गृहीत होती है। (**विरुरुचुः**) विदीपयन्ति। यहां लट् अर्थ में लिट्-लकार है। (**विभ्वम्**) यहां 'वा छन्दसि' [६ । १ । १०६] सूत्र से पूर्वरूप-आदेश नहीं है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (२ । ३ । २ ।१४) में की गई है ॥ ३ । १५ ॥

सपदार्थान्वयः-**अप्नवानः**=येऽप्नान्=विद्यासन्तानान्कुर्वन्ति ते **भृगवः**=**विद्वांसः** यज्ञविद्यावेत्तारः **इह** अस्यां स्टष्टौ **वनेषु** सम्भजनीयेषु **अध्वरेषु** उपासनाग्नि—होत्राद्यश्वमेधान्तेषु शिल्पविद्यान्तर्गतेषु वा यज्ञेषु **विशे विशे** प्रतिप्रजां **विभ्वं** व्यापनशीलं **चित्रम्** अद्‌भुतगुणं **यम्** उक्तार्थम् **अग्निं विरुरुचः**=**विदीपयन्ति सोऽयन्** ईश्वरो भौतिको वा **धातृभिः** यज्ञक्रियाधारकैर्विद्वद्भिः **प्रथमः** यज्ञक्रियायामुपास्य आदिमं साधनं वा **ईड्यः** उपासितुमध्येषितुं वार्हः **होता** ग्राहकः **यजिष्ठः** अतिशयेनानन्द शिल्पविद्ययोः सङ्गतिहेतुः **अग्निरिह** अस्यां-स्टष्टौ **धायि**=**ध्रियते** ॥ ३ । १५ ॥

भाषार्थः—(**अप्नवानः**) जो विद्या सन्तान बनाने वाले (**भृगवः**) यज्ञ विद्या के वेत्ता विद्वान् हैं, वे (**इह**) इस संसार में (**वनेषु**) सेवन करने योग्य (**अध्वरेषु**) उपासना तथा अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेघ पर्यन्त अथवा शिल्प विद्या-अन्तर्गत यज्ञों में (**विशे विशे**) प्रत्येक प्रजा में (**विभ्वन्**) व्यापक (**चित्रम्**) अद्‌भुत गुण वाली जिस अग्नि को (**विरुरुचुः**) प्रदीप्त करते हैं, वह (**अयम्**) यह ईश्वर वा (**भौतिक**) अग्नि (**धातृभिः**) यज्ञ को धारण करने वाले विद्वानों से (**प्रथमः**) यज्ञ में उपासना के योग्य है वा यज्ञ में पहला साधन है और (**ईड्यः**) उपासना वा पूजा के योग्य है (**होता**) ग्रहण करने वाला तथा (**यजिष्ठः**) अत्यन्त आनन्द एवं शिल्पविद्या की संगति का निमित्त है, वह अग्नि (**इह**) इस संसार में (**धायि**) उक्त विद्वानों के द्वारा धारण किया जाता है । ३ । १५ ॥

[भृग्रवः=विद्वांस इह—अध्वरेषु विशे विशे विभ्वं···अग्निं विरुरुचुः=विदीपयन्ति]

भावार्थः—अत्र श्लेषालङ्कारः ॥ विद्वांसो यज्ञक्रियासिद्धयर्थमुपास्यसाधनत्वाभ्यामेतमग्नि स्तुत्वा गृहीत्वा वाऽस्यां सृष्टौ प्रजासुखानि निर्वर्तयेयुरिति ॥ ३ । १५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष अलङ्कार है ॥ विद्वान् लोग यज्ञ क्रिया की सिद्धि के लिये उपासना के योग्य अथवा साधन रूप इस अग्नि (**ईश्वर**) की स्तुति अथवा भौतिक अग्नि को ग्रहण करके इस सृष्टि में प्रजा के सब सुखों को सिद्ध करें ॥ ३ । १५ ॥

भाष्यसार—१. **अग्नि** (**ईश्वर**)—जो सम्पूर्ण प्रजा में व्याप्त, अद्‌भुत गुणों वाला ईश्वर है, उसे विद्वान् लोग सन्ध्योपासिन तथा अग्निहोत्र से ले के अश्वमेघ पर्यन्त यज्ञों में प्रकाशित करते हैं। यज्ञ क्रिया को जनने वाले विद्वान् यज्ञ क्रिया की सिद्धि के लिये उसे उपास्य समझते हैं, उसकी स्तुति करते हैं, ईश्वर विद्वानों की उपासना और स्तुति को ग्रहण करने वाला तथा अत्यन्त आनन्द का प्रापक है ॥

२. **अग्नि** (**भौतिक**)—यह भौतिक अग्नि सब प्रजा में व्याप्त है, अद्‌भुत गुणों वाला है, यज्ञ विद्या के जानने वाले विद्वान् लोग अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध पर्यन्त यज्ञों एवं शिल्प विद्या के अन्तर्गत यज्ञों में इसे प्रदीप्त करते हैं, उक्त विद्वान् लोग इसे यज्ञ क्रिया की सिद्धि में पहला साधन, पूजा के योग्य, हव्य पदार्थों को ग्रहण करने वाला, शिल्प विद्या का प्रापक समझ कर धारण करते हैं ॥

३. **विद्वान्**—जो विद्वान् विद्या-सन्तान करते हैं वे 'अप्नवा' कहलाते हैं तथा जो यज्ञविद्या के जानने वाले हैं वे 'भृगु' कहाते हैं ।

४. **अलङ्कार**—यहां श्लेष-अलङ्कार होने से अग्नि शब्द का अर्थ ईश्वर और भौतिक अग्नि है ॥

अवत्सारः । **अग्निः**=[**भौतिक अग्नि**] । गायत्री । षड्जः ॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते ॥

फिर वह भौतिक अग्नि कैसा है, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

अस्य प्रत्नामनु द्युतँ शुक्रं दुदुह्रे ऽ अह्रयः । पयः सहस्रसामृषिम् ॥ १६ ॥

पदार्थः—(**अस्य**) अग्नेः (**प्रत्नाम्**) अनादिवर्त्तमानां पुराणीमनादिस्वरूपेण नित्याम् । **प्रत्नमिति पुराणनामसु पठितम् ॥ निघं ३ । २७ ॥** (**अनु**) पश्चादर्थे (**द्युतम्**) कारणस्थां दीप्तिम् । **अत्र द्युत दीप्तावित्यस्मात् क्विप् प्रत्ययः** (**शुक्रम्**) शुद्धं कार्यकरं साधनम् (**दुदुह्रे**) प्रपूरयन्ति । **अत्र वर्तमाने लिट् । इरयोरे ॥ अ० ६ । ४ । ७६ ॥ अनेनेरेजित्यस्य स्थाने रे आदेशः** (**अह्रयः**) अह्नवन्ति=व्याप्नुवन्ति सर्वा विद्या ये ते विद्वांसः । **अत्राऽह्व्याप्तावित्यस्माद्बाहुलकेनौणादिकः क्रिः प्रत्ययः महीधरेणायं ह्री लज्जायामित्यस्य प्रयोगोऽशुद्ध एव व्याख्यात इति** (**पयः**) जलम् । **पय इत्युदकनामसु पठितम् ॥ निघं १ । १२ ॥** (**सहस्रसाम्**) या सहस्राण्यसंख्यातानि कार्याणि सनोति ताम् (**ऋषिम्**) कार्यसिद्धिप्राप्तिहेतुम् । **अत्रेगुपधात्कित् ॥ उ० ४ । १२० ॥ अनेन ऋषी गतावित्यस्माद्धातोरिन्प्रत्ययः ॥ अयं मंत्रः शत० २ । ३ । २ । १५ व्याख्यातः ॥ १६ ॥**

प्रमाणार्थ—(**प्रत्नाम्**) 'प्रत्न' शब्द निघं० (३ । २७) में पुराण-नामों में पढ़ा है । (**द्युतम्**) यहां दीप्ति-अर्थ वाली 'द्युत' धातु से 'क्विप्' प्रत्यय है । (**दुदुह्रे**) यहाँ वर्तमान (**लट्**) अर्थ में लिट् लकार है और 'इरयोरे' (अ० ६ । ४ । ७६) सूत्र से 'इरेच्' प्रत्यय के स्थान में 'रे' आदेश है । (**अह्रयः**) यह शब्द व्याप्ति अर्थ वाली 'अह' धातु से बहुलतया औणादिक 'क्रि' प्रत्यय करने से सिद्ध है । (**पयः**) यह शब्द निघं० (१ । १२) में जल-नामों में पढ़ा है । (**ऋषिम्**) 'ऋषि' शब्द 'इगुप्धात्कित' उणा० (४ । १२०) सूत्र में गती गति अर्थ वाली 'ऋषि' धातु से 'इन्' प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (२ । ३ । २ । १५) में की गई है । ३ । १६ ॥

सपदार्थान्वयः—**अह्रयः**=**विद्वांसः** अवन्हि्तु=व्याप्नुवन्ति सर्वा विद्या ये ते विद्वांसः **अस्य**=**अग्नेः सहस्रसां** या सहस्राण्यसंख्यातानि कार्याणि सनोति ताम **ऋषिं** कार्यसिद्धिप्राप्तिहेतुं **प्रत्नाम्** अनादिवर्तमानां पुराणीमनादि स्वरूपेण नित्यां **द्युतं** कारणस्थां दीप्ति **ज्ञात्वा शुक्रं** शुद्धं कार्यकरं साधनं **पयः** जलं **च अनुदुदुह्रे**=**प्रपूरयन्ति** (पश्चात् प्रपूरयन्ति) ॥ ३ । १६ ॥

भाषार्थ—(**अह्रयः**) सब विद्याओं को प्राप्त करने वाले विद्वान् लोग (**अस्य**) इस अग्नि की (**सहस्रसाम्**) असंख्य कार्यों को सिद्ध करने वाली (**ऋषिम्**) कार्य को सिद्धि तक पहुँचाने वाली (**प्रत्नाम्**) अनादिकाल से वर्त्तमान, पुराणी, अनादि होने से नित्य स्वभाव वाली (**द्युतम्**) कारण में स्थित [**अग्नि की**] दीप्ति को जानकर (**शुक्रम्**) कार्य को सिद्ध करने वाले शुद्ध साधन को और (**पयः**) जल को (**अनुदुदुह्रे**) पीछे दोहन करते हैं ॥ ३ । १६ ॥

[**अह्रयः**=**विद्वांसोऽस्याग्नेः**'''**प्रत्नां द्युतं ज्ञात्वा शुक्रं पयश्चानुदुदुह्रे**]

भावार्थः—मनुष्यैर्यथाग्नेस्स्वगुणसहितस्य कारणरूपेणनादित्वेन नित्यत्वं विज्ञेयमस्ति, तथैवस्येषामपि जगत्स्थानां कार्यद्रव्याणां कारणरूपेणानादित्वं वेदितव्यम् ।

भावार्थ—मनुष्य जैसे अग्नि का अपने गुणों सहित कारणरूप से अनादित्व एवं नित्यत्व समझें वैसे ही दूसरे जल आदि जगत् के कार्य द्रव्यों का कारण रूप से अनादित्व जानें ।

[तात्पर्यमाह—]

एतद्विदित्वैतानग्न्यादीन् पदार्थान् कार्येषूपकृत्य सर्वे व्यवहाराः संसाधनीया इति ॥ ३ । १६ ॥

यह जान कर इन अग्नि आदि पदार्थों का कार्यों में उपकार ग्रहण करके सब व्यवहारों को सिद्ध करें ॥ ३ । १६ ॥

भाष्यसार—**अग्नि (भौतिक) कैसा है**—असंख्य कार्यों की सिद्धि करने वाला, कार्य को सिद्धि तक पहुँचाने में हेतु है। यह अपने गुणों सहित कारण रूप से अनादि नित्य है। इस अग्नि के दृष्टान्त से विद्वान् लोग पृथिवी, जल और वायु को भी कारण रूप से अनादि नित्य समझें ॥

अवत्सारः। **अग्निः**=[**ईश्वर और भौतिक अग्नि**]। त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

अथैश्वरभौतिकौ किं कुरुत इत्युपदिश्यते ॥

अब ईश्वर और भौतिक अग्नि क्या करते हैं, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

तनूपा ऽ अंग्नेऽसि तन्वं मे पाह्यायुर्दाऽअग्नेऽस्यायुर्मे देहि वर्च्चोदाऽअंग्नेऽसि वर्च्चो मे देहि। अग्ने यन्मे तन्वाऽऊनं तन्मऽ आपृण ॥ १७ ॥

पदार्थः—(तनूपाः) यस्तनूः=सर्वपदार्थदेहान्पाति=रक्षति स जगदीश्वरः, पालनहेतुर्भौतिको वा (**अग्ने**) सर्वाभिरक्षकेश्वर, रक्षाहेतुर्भौतिको वा (**असि**) अस्ति वा। **अत्र सर्वत्र पक्षे व्यत्ययः** (**तन्वम्**) शरीरम्। **अत्र वाच्छन्दसीत्यमिपूर्व इत्यत्रानुवर्तनात्पूर्वरूपादेशो न भवति** (**मे**) मम (**पाहि**) पाति वा (**आयुर्दाः**) आयुः प्रदः अग्ने (**असि**) भवति वा (**आयुः**) जीवनम् (**मे**) मह्यम् (**देहि**) ददाति वा (**वर्च्चोदाः**) यो वर्च्चो=विज्ञानं ददातीति तत्प्राप्तिहेतुर्वा (**अग्ने**) सर्वविद्यामयेश्वर विद्याहेतुर्वा (**असि**) भवति वा (**वर्च्चः**) विद्याप्राप्ति दीप्ति वा (**मे**) मह्यम् (**देहि**) ददाति वा (**अग्ने**) कामानां प्रपूरकेश्वरकामपूर्तिहेतुर्वा (**यत्**) यावद्यस्माद्वा (**मे**) मम (**तन्वाः**) अंतःकरणाख्यस्य बाह्यस्य शरीरस्य वा (**ऊनम्**) अपर्याप्तम् (**तत्**) तावत्तस्माद्वा (**मे**) मम (**आ**) समतात् (**पृण**) पूरयति वा ॥ **अयं मंत्रः शत० २ । ३ । २ । १९—२० व्याख्यातः ॥ १७ ॥**

प्रमाणार्थ—(**असि**) अस्ति वा। यहां पक्ष में सर्वत्र व्यत्यय है। (**तन्वम्**) यहां 'वा छन्दसि' [अ० ६ । १ । १०६] सूत्र की 'अमिपूर्वः' [६ । १ । १०६] सूत्र तक अनुवृत्ति आने से पूर्वरूप एकादेश नहीं है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (२ । ३ । २ । १९-२०) में की गई है। ३ । १७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने=जगदीश्वर** ! सर्वाभिरक्षकेश्वर ! **यद्=यस्मात्त्वं तनूपाः** यस्तनूः=सर्वपदार्थदेहान् पाति=रक्षति स जगदीश्वरः **असि**, **तत्=तस्मात् मे=मम तन्वं** शरीरं **पाहि**।

हे अग्ने ! **यद्=यस्मात्त्वमायुर्दाः** आयुः प्रदः **असि**, **तत्=तस्मात्** (**मे**) **मह्यम्** [**आयुः**] **पूर्णमायुः** जीवनं **देहि**।

भाषार्थ—हे (**अग्ने**) सबके रक्षक जगदीश्वर ! (**यत्**) क्योंकि आप (**तनूपाः**) सब पदार्थों के शरीरों की रक्षा करने वाले (**असि**) हो, (**तत्**) इसलिए (**मे**) मेरे (**तन्वम्**) शरीर की (**पाहि**) रक्षा करो।

हे (**अग्ने**) जगदीश्वर ! (**यत्**) क्योंकि आप (**आयुर्दाः**) आयु प्रदान करने वाले (**असि**) हो, (**तत्**) इसलिए (**मे**) मुझे (**आयु**) पूर्ण आयु एवं जीवन (**देहि**) प्रदान कीजिये।

हे अग्ने ! सर्वविद्यामयेश्वर ! **यत्=यस्मात्त्वं वर्च्चोदाः** यो वर्च्चो=विज्ञानं ददातीति **असि, तत्=तस्मात् मे=मह्यं वर्चः=पूर्णविद्यां** विद्या-प्राप्तिं देहि।

हे अग्ने ! कामानां प्रपूरकेश्वर ! **मे=मम तन्वाः** अन्तःकरणाख्यस्य शरीरस्य **यद्=यावद् ऊनं = बुद्धिबलशौर्यादिकमपर्याप्तमास्ति, तत्=तावद् आपृण=समन्तात् प्रपूरयेत्येकः ॥**

अयम् [अग्ने]=अग्निः, रक्षाहेतुभौतिकः **यद्=यस्मात् तनूपाः** पालनहेतुभौतिकः **[असि] अस्ति, तत्=तस्मात् मे=मम जाठररूपेण तन्वं** शरीरं पाति।

यद्=यस्माद् अयम् [अग्ने]=**अग्निः आयुर्दाः =आयुर्निमित्तम् [असि[भवति तत्=तस्मात् मे=मह्यमायुर्ददाति।**

यद्=यस्माद् [अग्ने] **अग्निर्वर्चोदाः** विज्ञान-प्राप्तिहेतुः = [असि] = **अस्ति तत् = तस्माद् वर्चः=दीप्तिं ददाति।**

अयम् [अग्ने] **अग्निः** कामपूर्तिहेतुभौतिकः **यद्=यावन्मे=मम** तन्वाः वाह्यस्यशरीरस्य **ऊनम्=अपर्याप्तं,** तत्=तावद् **आपृण=समन्ता-त्पूरयतीति द्वितीयः ॥ ३ । १७ ॥**

हे **(अग्ने)** सर्वविद्यामय ईश्वर ! **(यत्)** क्योंकि आप **(वर्चोदाः)** विज्ञान के देने वाले **(असि)** हैं, **(तत्)** इसलिये **(मे)** मुझे **(वर्चः)** पूर्णविद्या **(देहि)** प्रदान कीजिये।

हे (अग्ने) कामनाओं को पूर्ण करने वाले ईश्वर **(मे)** मेरे **(तन्वाः)** अन्तरःकरण नामक शरीर में **(यत्)** जितनी **(ऊनम्)**बुद्धि, बल, शौर्य आदि की कमी है, **(तत्)** उस सबको **(आपृण)** चहुँ ओर से पूरा करो। यह मन्त्र का पहला अर्थ है ॥

यह **(अग्ने)** रक्षा का निमित्त भौतिक अग्नि **(यत्)**सब पदार्थों के शरीर की पालना का निमित्त **(असि)** है, **(तत्)** इसलिये **(मे)** मेरी जाठर अग्नि रूप से शरीर की रक्षा करता है।

(यत्) क्योंकि यह **(अग्ने)** भौतिक अग्नि **(आयुर्दाः)** आयु का निमित्त **(असि)** है **(तत्)** इसलिये **(मे)** मुझे **(आयुः)** प्रदान करता है।

(यत्) क्योंकि यह **(अग्ने)** अग्नि **(वर्चोदाः)** विज्ञान-प्राप्ति का निमित्त **(असि)** है, **(तत्)** इसलिये **(वर्चः)** दीप्ति प्रदान करता है।

यह **(अग्ने)** कामना पूर्ति का निमित्त भौतिक अग्नि **(यत्)** जितनी **(मम)** मेरे **(तन्वाः)** बाह्य-शरीर में **(ऊनम्)** कमी है **(तत्)** उसे **(आपृण)** चहुँ ओर से पूर्ण करता है। यह मन्त्र का दूसरा अर्थ है ॥ ३ । १७ ॥

[**हे अग्ने=जगदीश्वर** ! **त्वं तनूपा असि...मे=मम तन्वं पाहि, आयुर्दा असि...मह्यम् [आयुः] पूर्णमायुर्देहि, वर्चोदा असि,—मे=मह्यं वर्चः=पूर्णविद्यां देहि, मे=मम तन्वा यद्=यावदूनं...तावदापृण=समन्तात्प्रपूरय**]

भावार्थः—अत्र श्लेषालङ्कारः ॥ परमेश्वरे-णास्मिञ्जगति यतः सर्वेभ्यः प्राणिभ्यः शरीरायु-र्निमित्तविद्याप्रकाश सर्वाङ्गपूर्तिर्निमित्ता, तस्मात्—सर्वे पदार्थाः स्वस्वरूपं धारयान्ति,

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष अलङ्कार है ॥ परमेश्वर ने इस जगत् में जिससे सब प्राणियों के लिये शरीर, आयु का निमित्त, विद्या का प्रकाश एवं सर्वाङ्गपूर्त्ति को रचा है, इसलिये सब पदार्थ अपने स्वरूप को धारण कर रहे हैं।

[**अयम् [अग्ने]=अग्निः ... तनूपाः[असि]=अस्ति...**]

तथैवास्य सृष्टौ प्रकाशादिगुणवत्वादयमग्निरे-तेषां मुख्यः साधकोऽस्तीति सर्वैर्वेदितव्यम्॥ ३ । १७ ॥

वैसे ही—इस परमेश्वर की सृष्टि में प्रकाश आदि गुणों वाला होने से यह अग्नि इनका मुख्य साधक है, ऐसा सबको जानना योग्य है ॥ ३ । १७ ॥

भा० पदार्थः—वर्चः=विद्याप्रकाशम् ॥

अन्यत्र व्याख्यात—महर्षि ने इस मन्त्र की व्याख्या आर्याविभिविनय (२ । ३३) में इस प्रकार की है—" हे सर्वरक्षकेश्वराग्ने ! तू हमारे शरीर का रक्षक है। सो शरीर को कृपा से पालन कर। हे महावैद्य ! आप आयु (उमर) बढ़ाने वाले हो, मुझ को सुखरूप उत्तमायु दीजिए। हे अनन्त-विद्या तेजयुक्त ! आप "वर्चः" विद्यादि तेज अर्थात् यथार्थ विज्ञान देने वाले हो, मुझको सर्वोत्कृष्ट विद्यादि तेज देओ। पूर्वोक्त शरीरादि की रक्षा से हमको सदा आनन्द में रखो और जो-जो कुछ भी शरीरादि में "ऊनम" न्यून हो, उस उसको कृपा दृष्टि से सुख और ऐश्वर्य के साथ सब प्रकार से आप पूर्ण करो। किसी आनन्द वा श्रेष्ठ पदार्थ की न्यूनता हमको न रहे। आपके पुत्र हम लोग जब पूर्णानन्द में रहेंगे, तभी आप पिता की शोभा है। क्योंकि लड़के लोग छोटी वा बड़ी चीज अथवा सुख पिता माता को छोड़ किससे माँगें ? सो आप सर्वशक्तिमान् हमारे पिता सब ऐश्वर्य तथा सुख देने वालों में पूर्ण हो" ॥ २ । ३३ ॥

भाष्यसार—१. अग्नि (ईश्वर)—अग्नि अर्थात् जगदीश्वर सब पदार्थों के शरीरों का रक्षक है। वह मेरे शरीर की भी रक्षा करता है, सबको आयु का देने वाला है, मुझे भी पूर्ण आयु प्रदान करता है। सबको विज्ञान का देने वाला है, मुझे भी पूर्ण विद्या देता है। वही मेरे अतःकरण में बुद्धि, बल, शौर्य आदि की न्यूनता को पूरा करता है। ईश्वर शरीर का रक्षक, आयु का दाता, विद्या का प्रकाशक, और न्यूनता का पूरक है। इसीलिये जगत् के सब पदार्थ अपने अपने स्वरूप को धारण कर रहे हैं।

२. अग्नि (भौतिक)—यह भौतिक अग्नि शरीर की रक्षा का हेतु है, जाठराग्नि के रूप में शरीर की रक्षा करता है, यह आयु का भी निमित है। इसलिये आयु प्रदान करता है। यह अग्नि विज्ञान का निमित्त है, विज्ञान की सहायता से दीप्ति प्रदान करता है। यह कामनाओं का पूरक है अतः बाह्य शरीर की न्यूनताओं को पूरा करता है। शरीर के रक्षा आदि कार्यों में यह भौतिक अग्नि मुख्य साधन है ॥

३. **अग्नि शब्द के अर्थ**—सब का रक्षक, सर्वविद्यामय, कामनाओं का पूरक ईश्वर। रक्षा हेतु तथा कामना-पूर्ति का हेतु भौतिक अग्नि।

४. **अलङ्कार**—यहाँ श्लेष अलङ्कार होने से अग्नि शब्द के ईश्वर और भौतिक अग्नि अर्थ ग्रहण किये जाते हैं ॥

अवत्सारः। **अग्निः**=**ईश्वरो भौतिकश्च** ॥ निचृद्ब्राह्मी पंक्तिः । पञ्चमः ॥

पुनस्तावेवोपदिश्येते ॥

फिर परमेश्वर और भौतिक अग्नि का उपदेश किया जाता है ॥

इन्धानास्त्वा शतꣳ हिमा द्युमन्तꣳ समिधीमहि । वयस्वन्तो वयस्कृतꣳ सहस्वन्तः सहस्कृतम् । अग्ने सपत्नदम्भनमदब्धासोऽअदाभ्यम् । चित्रावसो स्वस्ति ते पारमशीय ॥ १८ ॥

पदार्थः—(**इन्धानाः**) प्रकाशयन्तः (**त्वा**) त्वामनन्तगुणं जगदीश्वरं प्रकाशादिगुणवन्तं भौतिकं वा (**शतम्**) शतसंख्याकान्संवत्सरानधिकं वा (**हिमाः**) हेमन्तर्तुयुक्तानि वर्षाणि। **शतं हिमाः शतं वर्षाणि जीव्यास्म ॥ शत० २ । ३ । २ । २१ ॥** (**द्युमन्तम्**) द्यौरनन्तः प्रकाशो विद्यते यस्मिन्परमेश्वरे वा

प्रशस्तः प्रकाशो विद्यते यस्मिन्भौतिके तम् । अत्र भूम्न्यर्थे प्रशंसार्थे च मतुप् (**सम्**) सम्यगर्थे (**इधीमहि**) जीवेम वा (**वयस्वन्तः**) प्रशस्तं पूर्णमायुर्विद्यते येषां ते । अत्र प्रशंसार्थे मतुप् (**वयस्कृतम्**) यो वयः करोति तम् (**सहस्वन्तः**) सहनं=सहो विद्यते येषां ते । अत्र भूम्न्यर्थे मतुप् (**सहस्कृतम्**) यः सहः=सहनं करोति कारयति वा तम् (**अग्ने**) विज्ञातरीश्वर कार्यप्रापकोऽग्निर्वा (**सपत्नदम्भनम्**) यः सपत्नान् दम्भयतीतिम् (**अदब्धासः**) दम्भाहंकाररहिताः, अनुपहिंसिताः । हिनस्ति दम्नोतीति वधकर्मसु पठितम् ॥ निघं २ । १९ ॥ अत्राज्जसेरसुगित्यसुगागमः (**अदाभ्यम्**) अहिंसनीयम् (**चित्रावसो**) चित्रमद्भुतं वसु=धनं विद्यते यस्मिस्तत्संबुद्धावीश्वर, चित्राणि वसूनि=धनानि यस्माद्वा स भौतिकः । अत्रान्येषामपीति दीर्घः (**स्वस्ति**) प्राप्तव्यं सुखम् । स्वस्तीति पदनामसु पठितम् ॥ निघं० ५ । ५ ॥ अनेन प्राप्तव्यं सुखं गृह्यते (**ते**) तव तस्य वा (**पारम्**) सर्वदुःखेभ्यः पृथग्भूतम् (**अशीय**) प्राप्नुयाम् ॥ १८ ॥

प्रमाणार्थ—(**शतं हिमाः**) शत० (२ । ३ । २ । २१) में 'शतं हिमाः' इन शब्दों का अर्थ इस प्रकार किया है—"हम सौ वर्षों तक जीवित रहें"। (**द्युमन्तम्**) यहां आधिक्य और प्रशंसा अर्थ में 'मतुप्' प्रत्यय है। (**वयस्वन्तः**) यहां प्रशंसा अर्थ में 'मतुप्' प्रत्यय है। (**सहस्वन्तः**) यहां आधिक्य अर्थ में 'मतुप्' प्रत्यय है। (**अदब्धासः**) 'हिनस्ति' और 'दम्नोति' ये दो पद निघं० (२ । १९) में हिंसा-कर्मों में पढ़े गये हैं। 'आज्जसेरसुक्' [**अ**० ७ । १ । ५०] सूत्र से 'असुक्' आगम है। (**चित्रावसो**) यहां 'अन्येषामपि दृश्यते' [**अ**० ६ । ३ । १३७] सूत्र से दीर्घ है। (**स्वस्ति**) 'स्वस्ति' शब्द निघं० ५ । ५ में पद-नामों में पढ़ा है॥ इससे प्राप्तव्य सुख गृहीत होता है॥ ३ । १८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **चित्रावसो** ! चित्रमद्भुतं वसु=धनं विद्यते यस्मिँस्तत् सम्बुद्धावीश्वर **अग्ने=जगदीश्वर** ! विज्ञातरीश्वर ! **अदब्धासः** दाम्भाहंकाररहिता=अनुपहिंसिताः **वयस्वन्तः** प्रशस्तं पूर्णमायुर्विद्यते येषां ते **सहस्वन्तः** सहनं=सहो विद्यते येषां ते **अदाभ्यम्** अहिंसनीयं **सपत्नदम्भनं** यः सपत्नान् दम्भयतीति तं **वयस्कृतं** यो वयः करोति तं **सहस्कृतं** यः सहः=सहनं करोति तं **द्युमन्तं** द्यौरनन्तः प्रकाशो विद्यते यस्मिन् परमेश्वरे तं **त्वा** त्वामनन्तगुणं जगदीश्वरम् **इन्धानाः** प्रकाशयन्तः **सन्तो वयं शतं** शतसंख्याकान्संवत्स रानधिकं वा **हिमाः** हेमन्तर्तुयुक्तानि वर्षाणि **समिधीमहि =प्रकाशयेम=जीवेम** सम्यक्तया जीवेम।

एवं कुर्वन्नहमपि यत् ते=तव कृपया [**पारम्**] **=सर्वदुखेभ्यः पारं** सर्वदुःखेभ्यः पृथग्भूतं गत्वा **स्वस्ति** प्राप्तव्यं सुखम् **अशीय=प्राप्नुयामित्येकः** ॥

भाषार्थ—हे (**चित्रावसो**) अद्भुत धन वाले (**अग्ने**) सर्वज्ञ जगदीश्वर ! (**अदब्धासः**) दम्भ, अहङ्कार एवं हिंसा रहित (**वयस्वन्ते**) प्रशंसनीय पूर्ण आयु वाले (**सहस्वन्तः**) सहनशील [**हमलोग**] (**अदाभ्यम्**) जिसका हिंसन नहीं किया किया जा सकता (**सपत्नदम्भनम्**) दुष्टों की हिंसा करने वाले (**वयस्कृतम्**) जीवन देने वाले (**सहस्कृतम्**) सहन करने वाले (**द्युमन्तम्**) अनन्तप्र काश वाले (**त्वा**) अनन्तगुणों वाले आप जगदीश्वर को (**इन्धानाः**) हृदय में प्रकाशित करते हुए हम लोग (**शतम्**) सौ वर्ष वा सौ वर्ष से अधिक (**हिमा**) हेमन्त ऋतु से युक्त वर्षों तक (**समिधीमहि**) जीवित रहें।

इस प्रकार करता हुआ मैं भी (**ते**) आपकी कृपा से (**पारम्**) सब दुखों से पार अर्थात् पृथक् होकर (**स्वस्ति**) जीवन में प्राप्त करने योग्य सुख को (**अशीय**) प्राप्त होऊँ। यह मन्त्र का पहला अर्थ है॥

अदब्धासः दम्भाहंकाररहिताः=अनुपहिंसिता **वयस्वन्तः** प्रशस्तं पूर्णमायुर्विद्यते येषां ते **सहस्वन्तः**

(**अदब्धासः**) दम्भ, अहङ्कार, हिंसा से रहित (**वयस्वन्तः**) प्रशंसा के योग्य पूर्ण आयु वाले

सहनं सहो विद्यते येषां ते **त्वा**=तं प्रकाशादिगुणवन्तं भौतिकम् **अदाभ्यम्** अहिंसनीयं **सपत्नदम्भनं** यः सपत्नान् दम्भयतीति तं **वयस्कृतं** यो वयः करोति तं **सहस्कृतं** यः सः=सहनं कारयति तं [**द्यु मन्तम्**]=प्रशस्तः प्रकाशो विद्यते यस्मिन् भौतिके तम् **अग्ने**=**अग्निं** कार्यप्रापकमग्निं **नित्यमिन्धानाः**=प्रदीपयन्तः प्रकाशयन्तः **वयं शतं हिमा शतं वर्षाणि** (शतम्=शतसंख्याकान्संवत्सरानधिकं वा हिमाः=हेमन्तर्तु युक्तानि वर्षाणि) **समिधीमहि**] सम्यग् जीवेमैवं **कुर्वन्नहमपि योऽयं चित्रावसो**=चित्रावसुरग्निस्ते=**तस्य सकाशात्** [**पारम्**]=दारिद्र्यादिदुःखेभ्यः **पारं गत्वा स्वस्ति**=**सुखमशीय**=प्राप्नुयामिति द्वितीयः ॥ ३ । १८ ॥

(**सहस्वन्तः**) सहनशील [**हम लोग**] (**त्वा**) उस प्रकाश आदि गुणों वाली (**अदाभ्यम्**) जिसका हिंसन नहीं किया जा सकता (**सपत्नदम्भनम्**) शत्रुओं का नाश करने वाली (**वयस्कृतम्**) आयु बढ़ाने वाली (**सहस्कृतम्**) सहन शक्ति देने वाली (**द्यु मन्तम्**) प्रशस्त प्रकाश वाली (**अग्ने**) कार्यसाधक अग्नि को नित्यः (**इन्धानाः**) प्रदीप्त करते हुये हम लोग (**शतं हिमाः**) सौ वर्ष तक (**समिधीमहि**) जीवित रहें। इस प्रकार करता हुआ मैं भी जो यह (**चित्रावसो**) अद्भुत धन प्राप्ति का साधन भौतिक अग्नि है (**ते**) इसके सदुपयोग से (**पारम्**) निर्धनता आदि दुःखों से पार होकर (**स्वन्ति**) सुख को (**अशीय**) प्राप्त करूँ। यह मंत्र का दूसरा अर्थ है ॥ ३ । १८ ॥

[हे—अग्ने=जगदीश्वर ! ...त्वेन्धानाः सन्तो वयं शतं हिमाः समिधीमहि=प्रकाशयेम=जीवेम...ते=तव कृपया [पारम्]=सर्वदुःखेभ्यः पारं गत्वा स्वस्त्यशीय=प्राप्नुयाम्]

भावार्थः—अत्र श्लेषालङ्कारः ॥ मनुष्यैः पुरुषार्थेनेश्वरोपासनयाऽग्न्यादिपदार्थेभ्य उपकारकरणेन च सर्वदुःखान्तं गत्वा परं सुखं प्राप्य शतवर्षपर्यन्तं जीवितव्यम् ।

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष अलङ्कार है ॥ सब मनुष्य पुरुषार्थ से ईश्वर-उपासना के द्वारा तथा अग्नि आदि पदार्थों से उपकार करने से सब दुःखों का अन्त तथा उत्तम सुख को प्राप्त करके सौ वर्ष तक जीवित रहें।

[तात्पर्यमाह—]

न च केनाप्येकक्षणमप्यालस्ये स्थातव्यम्, किन्तु-यथा पुरुषार्थो वर्द्धेत तथैवानुष्ठातव्यमिति ॥ ३ । १८ ॥

कोई भी मनुष्य एक क्षण भर भी आलस्य में न रहे। किन्तु जिस प्रकार से पुरुषार्थ की वृद्धि हो वैसा ही आचरण करे ॥ ३ । १८ ॥

भाष्यसार—१. **अग्नि** (**ईश्वर**)—अग्नि अर्थात् जगदीश्वर अद्भुत धन वाला, सबका विज्ञाता है। यह अहिंसनीय, शत्रुओं को नष्ट करने वाला, आयु को बढ़ाने वाला, सहनशील आदि अनन्त गुणों वाला है।

२. **शतायु की कामना**—दम्भ, अहङ्कार एवं हिंसा रहित होकर, पूर्ण आयु वाले एवं सहनशक्ति वाले हम लोग उक्त गुणों वाले ईश्वर की उपासना करते हुए तथा अग्नि विद्या को जानते हुए सौ अथवा सौ से भी अधिक हेमन्त-ऋतु से युक्त वर्षों तक जगत् में प्रकाशित रहें=जीवित रहें। ईश्वर की कृपा से सब दुःखों से पार होकर सुखों को प्राप्त करें।

३. **अग्नि** (**भौतिक**)—यह भौतिक अग्नि प्रकाश आदि गुणों से युक्त, अहिंसनीय, शत्रुओं को नष्ट करने का साधन, आयुवर्द्धक, सहनशक्ति को बढ़ाने वाला, प्रशस्त प्रकाश वाला और कार्यप्रापक है। अद्भुत धन प्राप्ति का साधन तथा दारिद्र्य आदि दुःखों से पार करके सुखों को प्राप्त कराने वाला है ॥

४. अलङ्कार—इस मन्त्र में श्लेष-अलङ्कार होने से अग्नि शब्द से ईश्वर और भौतिक-अग्नि अर्थों का ग्रहण किया जाता है ॥

अवत्सारः। **अग्निः**=**ईश्वरो भौतिकश्च** ॥ जगती। निषादः ॥

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते ॥

फिर परमेश्वर और अग्नि कैसे हैं, इस विषय का उपदेश किया जाता है॥

सं त्वमग्ने सूर्यस्य वर्च्चसागथाः समृषीणाथंस्तुतेन ।

सं प्रियेण धाम्ना समहमायुषा सं वर्च्चसा सं प्रजया सथं रायस्पोषेण ग्मिषीय ॥ १९ ॥

पदार्थः—(**सम्**) समागमे (**त्वम्**) परमेश्वरोऽयं भौतिको वा (**अग्ने**) विज्ञानस्वरूप व्यवहारप्राप्तिहेतुर्वा (**सूर्य्यस्य**) सर्वान्तर्गतस्य प्राणस्य सूर्यलोकस्य वा (**वर्च्चसा**) दीप्त्या (**अगथाः**) गच्छसि प्राप्नोति वा। अत्र सर्वत्र पक्षे व्यत्ययः। वर्तमाने लुङ्। मंत्रे घसह्वरणश० ॥ अ० २।४।८० ॥ इति च्लेर्लुक च (**सम्**) संगतार्थे (**ऋषीणाम**) वेदविदां मन्त्रद्रष्टृणां विदुषाम् (**स्तुतेन**) प्रशंसितेन (**सम्**) एकीभावे (**प्रियेण**) प्रसन्नताकारकेण (**धाम्नां**) स्थानेन (**सम्**) समीचीनार्थे (**अहम्**) जीवः (**आयुषा**) जीवनेन (**सम्**) संगत्यर्थे (**वर्चसा**) विद्याध्ययनप्रकाशनेन (**सम्**) श्रैष्ठ्यार्थे (**प्रजया**) संतानेन राज्येन वा (**सम्**) प्रशस्तार्थे (**रायस्पोषेण**) रायो=धनानां भोगपुष्ट्या (**ग्मिषीय**) प्राप्नुयाम्। अत्राशिषि लिङि वा छन्दसि सर्वे विधयो भवन्तीडागमः। गमहनजन० ॥ अ० ६।४। ९८ ॥ इत्युपधालोपश्च ॥ अयं मंत्रः शत० २।३।२।२४ व्याख्यातः ॥ १९ ॥

प्रमाणार्थ—(**अगथाः**) यहाँ सर्वत्र पक्ष में व्यत्यय है तथा वर्तमान अर्थ में लुङ् लकार है। 'मन्त्रे घसह्वरणश०' (अ०२।४।८०) सूत्र से च्लि का लुक है। (**ग्मिषीय**) यहां आशीर्लिङ् में 'वा छन्दसि' [अ० ३।४।८८] सूत्र से "वेद में सभी विधियाँ बहुल करके होती हैं" इस नियम से यहाँ 'इट्' का आगम है और 'गमहनजन०' (अ० ६।४।९८) सूत्र से उपधा का लोप है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (२।३।२।२४)में की गई है ॥ ३।१९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने**=**जगदीश्वर** ! विज्ञानस्वरूप ! **यस्त्वं** परमेश्वरः **सूर्यस्य**=**प्राणस्य** सर्वान्तर्गतस्य प्राणस्य **ऋषीणां** वेद-विदां मन्त्रद्रष्टृणां विदुषां **येन संस्तुतेन** सङ्गतं प्रशंसितेन **सम्प्रियेण** एकीभावे न प्रसन्नताकारकेण **संवर्चसा** सङ्गतं विद्याध्ययनप्रकाशनेन **धाम्ना** स्थानेन **समायुषा** समीचीनेनजीवनेन **संप्रजया** श्रेष्ठेन सन्तानेन **संरायस्पोषेण** प्रशस्तानांरायो=धनानां भोगपुष्ट्या **सह समगथाः** समागमं गच्छसि **तेनैवाहम्** जीवः **अपि सर्वाणि सुखानि संग्मिषीय**=**सम्यक्** **प्राप्नुयामित्येकः** ॥

भाषार्थ—हे (**अग्ने**) विज्ञानस्वरूप जगदीश्वर ! (**त्वम्**) आप परमेश्वर (**सूर्यस्य**) सब के अन्तर्गत प्राण को जो कि (**ऋषीणाम्**) वेद वेत्ता मन्त्र द्रष्टा विद्वानों से (**संस्तुतेन**) उचित प्रशंसित है। (**सम्प्रियेण**) मेल से प्रसन्नता देने वाला है, (**संवर्चसा**) विद्याध्ययन के प्रकाश से सङ्गत करने वाला है, (**धाम्ना**) स्थान (**समायुषा**) अच्छा जीवन (**सम्प्रजया**) उत्तम सन्तान (**संरायस्पोषेण**) प्रशंसनीय धनों के भोग से पुष्टि करने वाला है, उसके साथ (**समगथाः**) समागम को प्राप्त हो। उससे (**अहम्**) मैं जीव भी सब सुखों को (**संग्मिषीय**) अच्छे प्रकार प्राप्त करूँ। यह मन्त्र का पहला अर्थ है ॥

यः [**अग्ने**]=**अग्निः** व्यवहारप्राप्तिहेतुः **सूर्यस्य** =**प्रत्यक्षस्य सवितृमण्डलस्य** सूर्यलोकस्य **ऋषीणां** वेदविदां मन्त्रद्रष्टॄणां विदुषां **संस्तुतेन** संगतं प्रशंसितेन **सम्प्रियेण** एकीभावेन प्रसन्नताकारकेण **संवर्चसा** दीप्त्या **धाम्ना** स्थानेन **समायुषा** समीचीनेन जीवनेन **संप्रजया** श्रेष्ठराज्येन **संरायस्पोषेण** प्रशस्तानांरायो धनानां भोगपुष्ट्या **समगथाः**= **सङ्गतो भूत्वा राजते तेन संसाधितेनाहं** जीवः **सर्वाणि व्यवहारसुखानि संग्मिषीय**=**सम्यक् प्राप्नुयामिति द्वितीयः** ॥ ३ । १९ ॥

जो (**अग्ने**) व्यवहार प्राप्ति की निमित्त अग्नि है, (**सूर्यस्य**) प्रत्यक्ष सूर्यमण्डल को, जो कि (**ऋषीणाम्**) वेदवेत्ता मन्त्र द्रष्टा विद्वानों से (**संस्तुतेन**) उचित प्रशंसित है, (**सम्प्रियेण**) मेल से प्रसादक है, (**संवर्चसा**) कान्ति (**धाम्ना**) स्थान (**समायुषा**) उत्तम जीवन (**संप्रजया**) उत्तम राज्य (**संरायस्पोषेण**) उत्तम धनों के भोग से प्राप्त पुष्टि से (**समगथाः**) युक्त होकर चमक रहा है उसी की सिद्धि से (**अहम्**) मैं जीव भी सब व्यावहारिक सुखों को (**संग्मिषीय**) उत्तम रीति से प्राप्त करूँ। यह मन्त्र का दूसरा अर्थ है ॥ ३ । १९ ॥

[हे अग्ने=जगदीश्वर ! यस्त्वं सूर्यस्य=प्राणस्य...येन संस्तुतेन...सह समगथास्तेनैवाहमपि सर्वाणि सुखानि संग्मिषीय, यः [अग्ने]=अग्निः...समगथाः=संगतो भूत्वा राजते तेन संसाधितेनाहं सर्वाणि व्यवहार-सुखानि संग्मिषीय]

भावार्थः—अत्र श्लेषालङ्कारः ॥ मनुष्या ईश्वरस्याज्ञापालनेन, सम्यक् पुरुषार्थेनाग्न्यादि-पदार्थानां संप्रयोगेण तत्सर्वं सुखं प्राप्नुवन्तीति ॥ ३ । १९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष अलङ्कार है ॥ मनुष्य ईश्वर की आज्ञापालन से, उत्तम पुरुषार्थ से, अग्नि आदि पदार्थों के ठीक-ठीक प्रयोग से यह सब सुख प्राप्त करते हैं ॥ ३ । १९ ॥

भाष्यसार—१. **अग्नि (ईश्वर) कैसा है**—यह अग्नि=जगदीश्वर विज्ञान स्वरूप है, जो सबके अन्तर्गत प्राणों तथा मन्त्र द्रष्टा वेदज्ञ विद्वानों की स्तुति से, प्रसन्नता कारक मेल से, विद्या प्रकाश के संग से, धामों की रचना से, उत्तम जीवन से, श्रेष्ठ सन्तान से, उत्तम धनों के भोग से, उत्पन्न पुष्टि से हमें सुखों को प्राप्त कराता है। किन्तु यह सब सुख उसकी आज्ञापालन एवं पुरुषार्थ से ही प्राप्त होते हैं।

२. **अग्नि (भौतिक) कैसा है**—यह भौतिक अग्नि सब व्यवहारों की प्राप्ति का हेतु है, सूर्य तथा वेदज्ञ विद्वानों की स्तुति से तथा प्रसन्नता कारक मेल, दीप्ति, धाम, उत्तम जीवन (**आयु**), उत्तम धनों के भोग से, उत्पन्न पुष्टि से, युक्त है। अग्नि विद्या की सिद्धि से सब व्यवहार सुखों को प्राप्त करें।

३. **अलङ्कार**—यहाँ श्लेष अलङ्कार होने से अग्नि शब्द से ईश्वर और भौतिक अग्नि अर्थ ग्रहण किये जाते हैं ॥

याज्ञवल्क्यः । **आपौ**=**औषध्यादिपदार्थाः** । भुरिग्बृहती । मध्यमः ॥

अथ यज्ञेन कृतशुद्धय औषध्यादयः पदार्था उपदिश्यन्ते ॥

अब यज्ञ से शुद्ध किये औषधि आदि पदार्थों का उपदेश किया जाता है ॥

अन्ध स्थान्धों वो भक्षीय मह स्थ महो वो भक्षीयोर्ज स्थोर्ज्जं वो भक्षीय रायस्पोष स्थ रायस्पोषं वो भक्षीय ॥ २० ॥

पदार्थः—(**अन्धः**) अन्नम् । अन्ध इत्यन्ननामसु पठितम् ॥ नि० २ । ७ ॥ अदेर्नुम् धौ च ॥ उ० ४ । २०६ ॥ अनेनाऽदेरसुन्प्रत्ययो नुमागमो धकारादेशश्च । वा शप्रकरणे खर्परे लोपो वक्तव्य इति विसर्जनीलोपः (**स्थ**) सन्ति । अत्र सर्वत्र व्यत्ययः (**अन्धः**) प्राप्तुं योग्यो रसः । अंध इति पदनामसु पठितम् ॥ निघं० ४ । २ ॥ अनेन प्राप्तव्यो रसो गृह्यते (**वः**) सर्वेषामोषध्यादिपदार्थानाम् (**भक्षीय**) सेवेय (**महः**) महांसि (**स्थ**) सन्ति (**महः**) महागुणसमूहम् (**वः**) महतां पदार्थानाम् (**भक्षीय**) स्वीकुर्याम् (**ऊर्जः**) पराक्रमः (**स्थ**) सन्ति (**ऊर्जम्**) पराक्रमम् (**वः**) बलवतां पदार्थानाम् (**भक्षीय**) सेवेय (**रायस्पोषः**) या बहुगुणभोगेन पुष्टयः । भूमा वै रायस्पोषः ॥ शत० ३ । १ । १ । १२ ॥ (**स्थ**) सन्ति (**रायस्पोषम्**) उत्तमानां धनानां भोगम् (**वः**) चक्रवर्त्तिराज्यश्रियादिपदार्थानाम् (**भक्षीय**) अद्याम् ॥ अयं मंत्रः शत० शत० २ । ३ । ४ । २५ व्याख्यातः ॥ २० ॥

प्रमाणार्थ—(**अन्धः**) 'अन्धः' शब्द निघं० (२ । ७) में अन्न नामों में पढ़ा है । 'अदेर्नुम् धौ च' (उ० ४ । २०६) सूत्र से 'असुन्' प्रत्यय, 'नुम्' का आगम और धकार-आदेश है । (**अन्धस्थ**) यहाँ 'वा शर्प्रकरणे खर्परे लोपो वक्तव्यः' (अ० ८ । ३ । ३६) वार्त्तिक से विसर्ग का लोप है । (**स्थ**) सन्ति । यहां सर्वत्र व्यत्ययः है । (**अन्धः**) 'अन्ध' शब्द निघं० (४ । २) में पद-नामों में पढ़ा है । इससे प्राप्तव्य रस गृहीत होता है । (**रायस्पोषः**) 'रायस्पोष' शब्द का अर्थ शत० (३ । १ । १ । १२) में 'भूमा' [**बहुत गुणों से पुष्टि**] है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (२ । ३ । ४ । २५) में की गई है ॥ ३ । २० ॥

सपदार्थान्वयः—येऽन्धःस्थ, अन्धः-(अन्नम्) **वीर्यवन्तो वृक्षौषध्यादयः पदार्थाः**, [**स्थ**] **सन्ति वः**=**तेषां** सर्वेषामोषध्यादिपदार्थानां **सकाशादहमन्धः**=**वीर्यकराण्यन्नानि** (प्राप्तुं योग्यं रसं) **भक्षीय**=**स्वीकुर्य्यां** सेवेय ।

ये महः स्थ; महो=**महान्तो वाय्वग्न्यादयो विद्यादयो वा** [**स्थ**] **सन्ति, वः**=**तेषां** महतां पदार्थानां **सकाशात्** [**महः**]=**महांसि क्रियासिद्धि-कराणि** महागुणसमूहम् **अहं भक्षीय** स्वीकुर्याम् ।

य ऊर्ज्जः स्थ; **ऊर्ज्जं** पराक्रमं **रसावन्तो जलदुग्ध-घृतमधुफलादयः** [**स्थ**] **सन्ति वः**=**तेषां** बलवतां पदार्थानां **सकाशादूर्ज्जं**=**रसं** पराक्रमम् **अहं भक्षीय**=**भुञ्जीय** सेवेय ।

ये रायस्पोषः स्थ, रायस्पोषो (या बहुगुणभोगेन पुष्टयः) **बहुगुणसमूहयुक्ताः पदार्थाः** [**स्थ**] **सन्ति वः**=**तेषां** चक्रवर्त्तिराज्यश्रियादिपदार्थानां **सकाशादहं रायस्पोषं**=**बहुशुभगुणैः पोषम्** उत्तमानां धनानां भोगं **भक्षीय**=**सेवेय** ॥ ३ । २० ॥

भाषार्थ—जो (**अन्धः**) अन्न एवं बल को बढ़ाने वाले वृक्ष औषधि आदि पदार्थ (**स्थ**) हैं उन से मैं (**अन्धः**) बल वीर्य बढ़ाने वाले अन्न एवं प्राप्त करने योग्य रस को (**भक्षीय**) ग्रहण करूँ अर्थात् सेवन करूँ ।

जो (**महः**) महान् वायु अग्नि आदि वा विद्या आदि पदार्थ (**स्थ**) हैं (**वः**) उन महान् पदार्थों से (**महः**) महान् सिद्धियों को एवं महान् गुणों को मैं (**भक्षीय**) स्वीकार करूँ ।

जो (**ऊर्जः**) बल पराक्रम बढ़ाने वाले रसीले जल, दुग्ध, घी, मधु, फल आदि पदार्थ (**स्थ**) हैं (**वः**) उन बलदायक पदार्थों से (**ऊर्जम्**) रस एवं बल पराक्रम को मैं (**भक्षीय**) भोग एवं सेवन करूँ ।

जो (**रायस्पोषः**) बहुत गुणों वाले पदार्थों के उपभोग से प्राप्त होने वाली पुष्टियाँ (**स्थ**) हैं (**वः**) उन चक्रवर्त्ती राज्यश्री आदि से मैं (**रायस्पोषम्**) बहुत शुभ गुणों से युक्त पुष्टि तथा उत्तम धनों के भोग को (**भक्षीय**) सेवन करूँ ॥ ३ । २० ॥

[येऽन्धः स्थ, अन्धः=वीर्यवन्तो वृक्षौषध्यादयः पदार्थाः [स्थः] सन्ति, वः=तेषां सकाशादहमन्धः= वीर्यकराण्यन्नानि भक्षीय=स्वीकुर्याम्]

भावार्थः—मनुष्यैर्जगत्स्थानां पदार्थानां गुणज्ञानपुरःसरं क्रियाकौशलेनोपकारं संगृह्य सर्वं सुखं भोक्तव्यमिति ॥ ३ । २० ॥

भावार्थ—मनुष्य जगत् के पदार्थों के गुणों को जानकर क्रियाकौशल से उपकार ग्रहण करके सब सुखों को भोगें ॥ ३ । २० ॥

भाष्यसार—**यज्ञ से शुद्ध किये औषधि आदि पदार्थों का सेवन**—सब मनुष्य यज्ञ से शुद्ध किये हुये, बलकारक वृक्षों के फल, औषधियाँ एवं अन्नों का सेवन करें, और जो यज्ञ से शुद्ध हुये महान् पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश हैं तथा नाना विद्यायें हैं, उनसे महान् क्रियाओं को सिद्ध करें तथा महान् गुणों को प्राप्त करें, और जो रसीले जल, दूध, घी, मधु, फल आदि पदार्थ हैं, उनसे बल-पराक्रम को प्राप्त करें, इसी प्रकार और भी जो बहुत गुणों से युक्त पुष्टिकारक पदार्थ हैं, उनके सेवन से पूर्ण पुष्टि को प्राप्त करें। किन्तु यह सब पदार्थों के गुण ज्ञान एवं क्रियाकौशल से ही सम्भव है ॥

याज्ञवल्क्यः । **विश्वेदेवाः**=विद्वांसः ॥ उष्णिक् । ऋषभः ॥

अथ विदुषां सत्कारायोपदिश्यते ॥

अब विद्वानों के सत्कार के लिए उपदेश किया जाता है ॥

रेव॑ती॒ रम॑ध्वम॒स्मिन्योना॑व॒स्मिन् गो॒ष्ठेऽस्मिँल्लो॒के॒ऽस्मिन् क्षये॑ । इ॒हैव स्त॒ माप॑गात ॥ २१ ॥

पदार्थः—(**रेवतीः**) विद्याधनसहिताः प्रशस्ता नीतयो गाव इन्द्रियाणि पशवः पृथिवीराज्यादियुक्ता यासु ताः। अत्र सुपां सुलुगिति पूर्वसवर्णादेशः प्रशंसार्थे मतुप् च (**रमध्वम्**) रमणं कुर्वन्तु। अत्र व्यत्ययः (**अस्मिन्**) प्रत्यक्षे (**योनौ**) जन्मनि स्थले वा (**अस्मिन्**) समक्षे (**गोष्ठे**) गावः=पशव इन्द्रियाणि यस्मिंस्तिष्ठन्ति तस्मिन् (**अस्मिन्**) सेव्यमाने (**लोके**) संसारे (**अस्मिन्**) अस्माभिः संपादिते (**क्षये**) निवसनीये गृहे (**इह**) एतेषु (**एव**) अवधारणार्थे (**स्त**) सन्ति। अत्र व्यत्ययो लडर्थे लोट् च (**मा**) निषेधे (**अप**) दूरार्थ (**गात**) गच्छन्तु। अत्र लोडर्थे लुङ् पुरुषव्यत्ययश्च ॥ अयं मंत्रः शत० २ । ३ । २ । २६ व्याख्यातः ॥ २१ ॥

प्रमाणार्थ—(**रेवतीः**) यहाँ 'सुपां सुलुक्०' अ० [७ । १ । ३९] सूत्र से पूर्व सवर्ण-आदेश है तथा यहां प्रशंसा अर्थ में 'मतुप्' प्रत्यय भी है (**रमध्वम्**) रमणं कुर्वन्तु। यहाँ पुरुष-व्यत्यय है। (**स्त**) सन्ति। यहां पुरुष-व्यत्यय और लट्-अर्थ में लोड् लकार है। (**गात**) गच्छन्तु। यहां लोट् अर्थ में लुङ् लकार और पुरुष व्यत्यय भी है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (२ । ३ । २ । २६) में की गई है ॥ ३ । २१ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः! प्रशस्ता नीत्यादियो रेवतीः = रेवत्यः विद्याधनसहिताः प्रशस्ता नीतयो, गावः=इन्द्रियाणि पशवः पृथिवी-राज्यादियुक्ता यासु ताः, **ता अस्मिन्** प्रत्यक्षे **योनौ** जन्मनि स्थले वा, **अस्मिन्** समक्षे **गोष्ठे** गावः= पशव इन्द्रियाणि यस्मिंस्तिष्ठन्ति तस्तिन्, **अस्मिन्** सेव्यमाने **लोके** संसारे, **अस्मिन्** अस्माभिः सम्पादिते **क्षये** निवसनीये गृहे, **रमध्वम्=रमन्तां** रमणं

भाषार्थ—हे विद्वान् मनुष्यो ! (**रेवतीः**) विद्या से युक्त प्रशस्त नीतियाँ, गौ, इन्द्रियाँ, पशु, जो पृथिवी के राज्यादि से युक्त हैं, वह (**अस्मिन्**) इस (**योनौ**) जन्म वा स्थान में, (**अस्मिन्**) इस (**गोष्ठे**) गौ, पशु तथा इन्द्रियों के स्थान अर्थात् गौशाला एवं शरीर में (**अस्मिन्**) सेवन करने योग्य इस (**लोके**) संसार में (**अस्मिन्**) हम से बनाये गये इस (**क्षये**) निवास योग्य घर में (**रम-

कुर्वन्तु, इतीच्छन्तो भवन्त इह=एतेवेव नित्यं [स्त]=प्रवर्तन्ताम्।

ध्वम्) तुम रमण करो। ऐसी इच्छा करते हुए आप लोग (इह) इनमें (एव) ही सदा (स्त) रहो।

किन्त्वेतेभ्यो मापगात=कदाचिद् दूरं मा गच्छन्तु ॥ ३। २१ ॥

किन्तु इन से (मा-अपगात्) कभी दूर मत जाओ ॥ ३। २१ ॥

[हे मनुष्याः! प्रशस्ता नीत्यादयो रेवतीः=रेवत्यः··· रमध्वं=रमन्तामितीच्छन्तो भवन्त इह=एतेष्वेव नित्यं [स्त]=प्रवर्तन्ताम्]

भावार्थः—यत्र विद्वांसो निवसन्ति तत्र विद्यादीनां गुणानां निवासात् प्रजा विद्यासुशिक्षा-धनवत्यो भूत्वा नित्यं सुखेन सह युञ्जते, तस्मात् सर्वैरेवमिच्छा कार्या—

भावार्थ—जहां विद्वान् लोग रहते हैं वहां विद्या आदि गुणों के निवास होने से प्रजा विद्या, सुशिक्षा और धन से युक्त होकर सदा सुखी रहती है। इसलिए सब ऐसी इच्छा करें—

[एतेभ्यो मापगात=कदाचिद् दूरं मा गच्छन्तु]

अस्माकं सङ्गसमीपाद् विद्वांसो, विदुषां समीपाच्च वयं कदाचिद् दूरे मा भवेमेति ॥ ३। २१ ॥

हमारे सङ्ग से विद्वान् लोग और विद्वानों के संग से हम लोग कभी दूर न हों ॥ ३। ५ ॥

भा० पदार्थः—रेवतीः=विद्यासुशिक्षाधनवत्यः प्रजाः। रमध्वम्=नित्यं सुखेन सह युङ्ग्ध्वम्। अपगात=दूरे भवत ॥

भाष्यसार—**विद्वानों का सत्कार**—विद्वान् मनुष्य विद्या धन से युक्त, प्रशस्त नीति वाले, जितेन्द्रिय, गौ आदि पशु तथा पृथिवी के राज्य आदि से युक्त होते हैं। उनका इस प्रकार सत्कार करें कि हे विद्वान् मनुष्यो! आप इसी जन्म तथा स्थल में, इसी शरीर तथा गोशाला में, इसी संसार में और हमारे घर में रमण कीजिये, नित्य निवास कीजिये। आप हम से अलग कभी भी न हों और हम भी आप से कभी अलग न हों। क्योंकि आप विद्यादि शुभ गुणों से विभूषित हो, आपके यहां निवास से हम विद्या, सुशिक्षा, और धन से युक्त हो कर आपके समान नित्य सुखी हो सकेंगे ॥

वैश्वामित्रो मधुच्छन्दाः। **अग्निः**=**विद्युत्**। पूर्वार्द्धस्य भुरिगासुरी गायत्री, उपत्वेत्यंतस्य गायत्री च छन्दः। षड्जः ॥

अथाग्निशब्देन विद्युत्कर्माण्युपदिश्यन्ते ॥

अब अग्निशब्द से बिजुली के कर्मों का उपदेश किया जाता है ॥

सꣳहितासि विश्वरूप्यूर्जा माविश गौपत्येन।

उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम्। नमो भरन्त एमसि ॥ २२ ॥

पदार्थः—(संहिता) सर्वपदार्थैः सह वर्त्तमाना विद्युत्, सर्वव्यापक ईश्वरो वा (असि) अस्ति वा। अत्र सर्वत्र पक्षे व्यत्ययः (विश्वरूपी) विश्वं=सर्वं रूपं यस्याः सा। अत्र जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्। अ० ४। १। ६३ ॥ इति ङीष् प्रत्ययः (ऊर्जा) वेगपराक्रमादिगुणयुक्ता (मा) माम् (आ) समन्तात् (विश) विशति (गौपत्येन) गवामिन्द्रियाणां पशूनां वा पतिः=पालकस्तस्य भावः कर्म वा तेन। अत्र पत्यन्तपुरो-

हितादिभ्यो यक् ॥ अ० ५ । १ । १२८ ॥ इति यक् प्रत्ययः (उप) उपगमेऽर्थे (त्वा) त्वाम् (अग्ने) अग्निः (दिवेदिवे) ज्ञानस्य प्रकाशाय प्रकाशाय । दिवेदिव इत्यहर्नामसु पठितम् ॥ निघं० १ । ९ ॥ (दोषावस्तः) दोषां-रात्रिं वस्ते=स्वतेजसाऽऽछाद्य निवारयति सोग्निः । दोषेति रात्रिनामसु पठितम् ॥ निघं० १ । ७ ॥ (धिया) कर्मणा प्रज्ञया वा । धीरिति कर्मनामसु पठितम् ॥ निघं० २ । १ ॥ प्रज्ञानामसु वा ॥ निघं० ३ । ९ ॥ (वयम्) क्रियाकांडानुष्ठातारः (नमः) अन्नम् । नम इत्यन्ननामसु पठितम् ॥ निघं० २ । ७ ॥ (भरन्तः) धारयन्तः (आ) समन्तात् (इमसि) प्राप्नुमः । अत्रेदन्तो मसीतीकारादेशः ॥ अयं मंत्रः शत० २ । ३ । २ । २७—२८ व्याख्यातः ॥ २२ ॥

प्रमाणार्थ—(असि) अस्ति । यहां पक्ष में सर्वत्र व्यत्यय है । (विश्वरूपी) यहां 'जातेरस्त्री-विषयादयोपधात्' (अ० ४ । १ । ६३) सूत्र से 'ङीष्' प्रत्यय है । (गौपत्येन) यहां 'पत्यन्तपुरोहिता-दिभ्योयक्' (अ० ५ । १ । १२८) सूत्र से 'यक' प्रत्यय है । (दिवे-दिवे) 'दिवे-दिवे' शब्द दिघं० (१ । ९) में दिन-नामों में पढ़ा है । (दोषा) 'दोषा' शब्द निघं० (१ । ७) में रात्रि-नामों में पढ़ा है । (धिया) 'धी' शब्द निघं० (२ । १) में कर्मनामों में और निघं० (३ । ९) में बुद्धि-नामों में पढ़ा है । (नमः) 'नम', शब्द निघं० (२ । ७) में अन्न-नामों में पढ़ा है । (इमसि) यहां 'इदन्तो मसि' [अ० ७ । १ । ४६] सूत्र से 'इकार' आदेश है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (२ । ३ । २ । २७—२८) में की गई है ॥ ३ । २२ ॥

सपदार्थान्वयः—नमः=अन्नं भरन्तः धारयन्तः सन्तो वयं क्रियाकाण्डानुष्ठातारः धिया कर्मणा प्रज्ञया वा [अग्ने]=योऽग्निर्विद्युद्रुपेण सर्वेषु पदार्थेषु संहिता सर्वपदार्थैः सह वर्तमाना विद्युत् सर्वव्यापक ईश्वरोवा [असि] अस्तिवा (ऊर्जा) वेगपराक्रमादि गुणयुक्ता विश्वरूपी विश्वं=सर्व रूपं यस्याः सा गौपत्येन गवामिन्द्रि-याणां पशूनां वा पतिः=पालकस्तस्य भावः कर्म वा तेन मा=मां विश=प्रविशति ।

त्वा (त्वां) अग्ने=तं [दोषावस्तः]=दोषा-वस्तारमग्निं दोषां=रात्रिं वस्ते स्वतेजसाऽऽछाद्य निवारयति सोऽग्निः [तं] दिवे दिवे=प्रतिदिनं ज्ञानस्य प्रकाशाय प्रकाशाय उपैमसि उपगम्य समन्तात् प्राप्नुमः ॥ ३ । २२ ॥

भाषार्थ—(नमः) अन्न को (भरन्तः) धारण करते हुये (वयम्) क्रिया काण्ड करने वाले हम लोग (धिया) कर्म वा बुद्धि से (अग्ने) जो अग्नि विद्युद् रूप में सब पदार्थों में वर्तमान वा सर्व-व्यापक ईश्वर [असि] है (ऊर्जा) वेग, पराक्रम आदि गुणों से युक्त है, (विश्वरूपी) विश्व को रूप देने वाली है, वह (गौपत्येन) गौ अर्थात् इन्द्रियाँ पशुओं के पालक भाव से (मा) मुझ में (विश) प्रविष्ट है ।

(त्वा) तुझ (अग्ने) उस अग्नि को जो (दोषा-वस्तः) रात्रि को अपने तेज से आच्छादित करके हटा देती है उसे हम (दिवे दिवे) प्रतिदिन ज्ञान के अत्यन्त प्रकाश के लिए (उपैमसि) विद्वानों के पास जाकर चहुँ ओर से प्राप्त करते हैं ॥ ३ । २२ ॥

[[अग्ने]=योऽग्निर्विद्युद्रूपेण सर्वेषु पदार्थेषु संहिता ... विश्वरूपी गौपत्येन मा—मां विश=प्रविशति]

भावार्थ—मनुष्यैरित्थं वेदितव्यं—येने-श्वरेण सर्वत्र मूर्त्तद्रव्येषु विद्युद्रुपो व्याप्तः सर्व रूपप्रकाशश्चेष्टादिव्यवहारहेतुर्विचित्रगुणोऽग्निर्निर्मि-तस्तस्यैवोपासनं नित्यं कार्यमिति ॥ ३ । २२ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को यह जानना चाहिए कि जिस ईश्वर ने सब मूर्त द्रव्यों में विद्युत् रूप से व्याप्त, सब रूप का प्रकाशक, चेष्टा आदि व्यवहार का निमित्त, विचित्र गुणों वाला अग्नि रचा है, उसी ईश्वर की उपासना नित्य करनी चाहिये ॥ ३ । २२ ॥

भा० पदार्थः--अग्ने [**अग्निः**]=सर्वत्र मूर्त्तद्रव्येषु विद्युद्रूपो व्याप्तः सर्वप्रकाशः। गौपत्येन=चेष्टादिव्यवहारहेतुना।

भाष्यसार—१. **अग्नि (विद्युत्) के कर्म**—यह भौतिक अग्नि विद्युत् रूप में सर्वव्यापक ईश्वर के समान सब पदार्थों में वर्त्तमान है, यह विद्युत् वेग और पराक्रम आदि गुणों को देने वाली है, तथा विश्व को रूप देने वाली यही है, गौ अर्थात् इन्द्रियों के चेष्टा आदि व्यवहार इसी के कारण से होते हैं, यह प्रत्येक प्राणी में गोपति के रूप में प्रविष्ट है, अतः सब प्राणियों की पालक यही है। यही अपने तेज से रात्रि के अन्धकार को हटा देती है।

२. **अग्नि (विद्युत्) की प्राप्ति**--कर्मकाण्ड का अनुष्ठान करने वाले लोग अन्न का सेवन करते हुए ज्ञान और कर्म से इस विद्युत् विज्ञान को प्रकाशित करने के लिये विद्वानों के पास जाकर इसे प्राप्त करें और जिस ईश्वर ने इस विचित्र गुण वाली विद्युत् को रचा है, उसकी नित्य उपासना किया करें ॥ ३ । २२ ॥

वैश्वामित्रो मधुच्छन्दाः । **अग्निः=ईश्वरो भौतिकश्च** ॥ गायत्री षड्जः ॥

पुनरीश्वराग्निगुणा उपदिश्यन्ते ॥

फिर ईश्वर और अग्नि के गुणों का उपदेश किया जाता है ॥

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम् । वर्द्धमानᳶ स्वे दमे ॥ २३ ॥

पदार्थः—(**राजन्तम्**) प्रकाशमानम् (**अध्वराणाम्**) अग्निहोत्राद्यश्वमेधान्तानां शिल्पविद्या-साध्यानां वा सर्वथा रक्ष्याणां यज्ञानाम् (**गोपाम्**) इन्द्रियपश्वादीनां रक्षकम् (**ऋतस्य**) अनादिस्वरूपस्य सत्यस्य कारणस्य जलस्य वा । ऋतमिति सत्यनामसु पठितम् ॥ निघं० ३ । १० ॥ उदकनामसु च ॥ निघं० १ । १२ ॥ (**दीदिविम्**) व्यवहारयन्तम् । अत्र दिवो द्वे दीर्घश्चाभ्यासस्य ॥ उ० ४ । ५५ ॥ इति दिवः क्विन्प्रत्ययो द्वित्वाभ्यासदीर्घौ च (**वर्धमानम्**) हानिरहितम् (**स्वे**) स्वकीये (**दमे**) दाम्यंत्युपशाम्यन्ति यस्मिंस्तस्मिन्स्वस्थाने परमोत्कृष्टे प्राप्तुमर्हे पदे ॥ अयं मंत्रः शत० २ । ३ । २ । २६ व्याख्यातः ॥ २३ ॥

प्रमाणार्थ—(**ऋतम्**) 'ऋत' शब्द निघं० (३ । १०) में सत्यनामों में पढ़ा है और निघं० (१ । १२) में जल-नामों में पढ़ा है। (**दीदिविम्**) 'दीदिवि' शब्द 'दिवो द्वे दीर्घश्चाभ्यासस्य' उ० (४ । ५५) सूत्र से 'दिव्' धातु से 'क्विन्' प्रत्यय, द्वित्व और अभ्यास को दीर्घ करने से सिद्ध होता है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (२ । ३ । २ । २६) में की गई है ॥ ३ । २३ ॥

सपदार्थान्वयः—**नमः** अन्नं भरन्तो धारयन्तो **वयं धिया** कर्मणा प्रज्ञया वा **अध्वराणाम्** अग्निहोत्राद्यश्वमेधान्ताना यज्ञानां **गोपाम्** इन्द्रिय-पश्वादीनां रक्षकं **राजन्तं** प्रकाशमानम् **ऋतस्य** अनादिस्वरूपस्य सत्यस्य कारणस्य **दीदिविम्** व्यवहा-रयन्तं **स्वे** स्वकीये **दमे** दाम्यन्त्युपशाम्यन्ति यस्मि-स्तस्मिन् स्वस्थाने परमोत्कृष्टे प्राप्तुमर्हे पदे **वर्धमानं** हानिरहितं **जगदीश्वमुपैमासि=नित्यमुपाप्नुमः=** **इत्येकः** ॥

भाषार्थ—(**नमः**) अन्न को (**भरन्तः**) धारण करते हुए हम लोग (**धिया**) कर्म वा बुद्धि से (**अध्वराणाम्**) अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेघ पर्यन्त यज्ञों के (**गोपाम्**) इन्द्रिय और पशु आदि के रक्षक (**राजन्तम्**) प्रकाशमान (**ऋतस्य**) अनादिस्वरूप सत्यकारण (**प्रकृति**) को (**दीदिविम्**) व्यवहार के योग्य बनाने वाले [**जगदीश्वर को**] (**स्वे**) अपने (**दमे**) शान्तिदायक स्थान एवं अत्यन्त उत्कृष्ट प्राप्त करने के योग्य पद पर (**वर्धमानम्**) बढ़ते हुए

हानिरहित जगदीश्वर को [हम लोग] (**उपैमसि**) सदा प्राप्त करें। यह मन्त्र का पहला अर्थ है ॥

येन परमात्मनाऽध्वराणां शिल्पविद्यासाध्यानां सर्वथा रक्ष्याणां यज्ञानां [**गोपाम्**]=**गोपा** इन्द्रिय-पश्वादीनां रक्षकः [**राजन्तम्**] **राजन्** प्रकाशमान **ऋतस्य** जलस्य [**दीदिविम्**]=**दीदिविः** व्यवहारन् **स्वे** स्वकीये **दमे**=**शान्तस्वरूपे वर्धमानः** हानिरहित. **अग्निः प्रकाशितोऽस्ति तं नमः** अन्नं **भरन्तो** धारयन्तो **वयं धिया** कर्मणा प्रज्ञया वा **उपैमसि**=**नित्यमुपाप्नुम इति द्वितीयः** ॥ ३ । २३ ॥

जिस परमात्मा ने (**अध्वाराणाम्**) शिल्पविद्या से साध्य, सब प्रकार रक्षा करने योग्य यज्ञों के (**गोपाम्**) इन्द्रिय तथा पशु आदि के रक्षक (**राजन्तम्**) प्रकाशमान (**ऋतस्य**) जल को (**दीदिविम्**) व्यवहार योग्य बनाने वाली (**स्वे**) अपने (**दमे**) शान्त रूप में (**वर्धमानः**) बढ़ती हुई जो अग्नि प्रकाशित की है, उस (**नमः**) अन्न को (**भरन्तं**) धारण करते हुये हम लोग (**धिया**) कर्म वा बुद्धि से (**उप-ए-मसि**) सदा प्राप्त करें। यह मन्त्र का दूसरा अर्थ है ॥ ३ । २३ ॥

[पदानामनुवृत्तिमाह—]

भावार्थः—अत्र श्लेषालङ्कारः ॥ नमः, भरन्तः, धिया, उप, आ, इमसि, इत्येतेषां षण्णां पदानां पूर्वस्मान्मन्त्रादनुवृत्तिर्विज्ञेया ।

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष अलङ्कार है ॥ यहां नमः, भरन्तः, धिया, उप, आ, और इमसि इन छः पदों की पूर्व मन्त्र से अनुवृत्ति समझें ।

[वयं···ऋतस्य दीदिविं···जगदीश्वरमुपैमसि= नित्य मुपाप्नुमः, येन परमात्मना···ऋतस्य [दीदिविम्] दीदिविः···अग्निः प्रकाशितस्तं नमो भरन्तो वयं धियोपैमसि=नित्यमुपाप्नुमः]

परमेश्वरोऽनादिस्वरूपस्य कारणस्य सकाशात् सर्वाणि कार्याणि रचयति, भौतिकोऽग्निश्च जलस्य प्रापणेन सर्वान् व्यवहारान् साधयतीति-वेद्यम् ॥ ३ । २३ ॥

परमेश्वर अनादिस्वरूप कारण (**प्रकृति**) से सब कार्य पदार्थों की रचना करता है, और भौतिक अग्नि जल को प्राप्त करा कर सब व्यवहारों को साधता है, ऐसा समझें ॥ ३ । २३ ॥

भा० पदार्थः—ऋतस्य=अनादिस्वरूपस्य कारणस्य । दीदिविम्=सर्व कार्यम् (**व्यवहारयोग्यम्**), सर्वव्यवहारम् ॥

भाष्यसार—**१. अग्नि (ईश्वर) के गुण**—अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध पर्यन्त यज्ञों के अङ्ग तथा सब प्राणियों का रक्षक, प्रकाशस्वरूप, अनादि कारण (**प्रकृति**) से व्यवहार के योग्य सब कार्य जगत् का रचक, जहां सब लोग शान्ति को प्राप्त करते हैं, परम उत्कृष्ट एवं प्राप्त करने के योग्य है, हानिरहित है ।

२. अग्नि (भौतिक) के गुण—शिल्पविद्या से साध्य एवं सर्वथा रक्षा करने योग्य यज्ञों के अङ्गों तथा सब प्राणियों का रक्षक है, प्रकाशमान, जल की प्राप्ति से सब व्यवहारों का साधक, शान्तस्वरूप इस संसार रूप घर में वृद्धि को प्राप्त होने वाला है ।

३. अग्नि (ईश्वर /भौतिक) की प्राप्ति—अन्न आदि उत्तम पदार्थों का सेवन करते हुये ज्ञान और कर्म से ईश्वर और अग्नि विद्या को प्राप्त करें ॥

४. अलंकार—यहां श्लेप अलङ्कार होने से अग्नि शब्द से ईश्वर और भौतिक अग्नि अर्थों का ग्रहण किया जाता है ॥ ३ । २३ ॥

वैश्वामित्रो मधुच्छन्दाः । **अग्निः**=ईश्वरः । विराड्गायत्री । षड्जः ॥

अथाग्निमेण मंत्रेणेश्वर एवोपदिश्यते ॥

अब अगले मन्त्र में ईश्वर का ही उपदेश किया जाता है ॥

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव । सचस्वा नः स्वस्तये ॥ २४ ॥

पदार्थः--(**सः**) जगदीश्वरः (**नः**) अस्मभ्यम् (**पितेव**) जनक इव (**सूनवे**) औरसाय संतानाय । सूनुरित्यपत्यनामसु पठितम् ॥ निघं० २ । २ ॥ (**अग्ने**) करुणामय विज्ञानस्वरूप सर्वपितः (**सूपायनः**) सुष्ठूपगतमयनं=ज्ञानं प्रापणं यस्मात्सः (**भव**) भवसि । अत्र लडर्थे लोट् (**सचस्व**) संयोजय । अन्येषामपि दृश्यते इति दीर्घः (**नः**) अस्मान् (**स्वस्तये**) सुखाय ॥ अयं मंत्रः श० २ । ३ । ४ । ३० व्याख्यातः ॥ २४ ॥

प्रमाणार्थ—(**सूनवे**) 'सूनु' शब्द निघं० (२ । २) में अपत्य-नामों में पढ़ा है । (**भव**) भवसि । यहां लट् अर्थ में लोट् लकार है । (**सचस्वा**) सचस्व । यहां 'अन्येषामपि दृश्यते' [**अ०** ६ । ३ । १३७] सूत्र से दीर्घ है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (२ । ३ । ४ । ३०) में की गई है ॥ ३ । २४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे अग्ने=जगदीश्वर ! करुणामय विज्ञानस्वरूप सर्वपितः ! **यस्त्वं कृपया सूनवे** औरसाय सन्तानाय **पितेव** जनक इव **नः**= **अस्मभ्यं सूपायनः** सुष्ठूपगतमयनं=ज्ञानं प्रापणं यस्मात्स [**भव**] भवसि ।

स जगदीश्वरः त्वं **नः**=**अस्मान् स्वस्तये** सुखाय **सततं सचस्व**=**संयोजय** ॥ ३ । २४ ॥

भाषार्थ--हे (**अग्ने**) करुणामय, विज्ञान-स्वरूप, सबके पिता जगदीश्वर ! जो आप कृपा करके (**सूनवे**) औरस सन्तान के लिये (**पितेव**) पिता के समान (**नः**) हमारे लिये (**सूपायनः**) उत्तम ज्ञान के प्राप्त कराने वाले (**भव**) हो ।

(**सः**) वह आप जगदीश्वर (**नः**) हमें (**स्वस्तये**) सुखों से निरन्तर (**सचस्व**) संयुक्त रखो ॥ ३ । २४ ॥

[हे अग्ने=जगदीश्वर ! यस्त्वं कृपया सूनवे पितेव नः=अस्मभ्यं सूपायनो [भव]=भवसि, स त्वं नः= अस्मान् स्वस्तये सततं सचस्व=संयोजय]

भावार्थः--अत्रोपमालङ्कारः ॥ हे सर्वपितरीश्वर ! यथा कृपायमाणो विद्वान् पिता स्वसन्तानान् संरक्ष्य सुशिक्ष्य च विद्याधर्मसुशीलतादिषु संयोजयति, तथैव भवानस्मान् निरन्तरं रक्षित्वा श्रेष्ठेषु व्यवहारेषु संयोजयत्विति ॥ ३ । २४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है ॥ हे सबके पिता ईश्वर ! जैसे कृपालु विद्वान् पिता अपने सन्तानों को संरक्षित और सुशिक्षित करके विद्या, धर्म और सुशीलता आदि में लगाता है, वैसे ही आप हमारी निरन्तर रक्षा करके हमें श्रेष्ठ व्यवहारों में लगाइये ॥ ३ । २४ ॥

भा० पदार्थः--सूनवे=स्वसन्तानाय । पितेव=यथा विद्वान् पिता । सूपायनः=संरक्ष्य सुशिक्ष्य च विद्यादिषु संयोजकः । स्वस्तये=विद्याधर्मसुशीलतादये, श्रेष्ठव्यवहाराय ॥

अन्यत्र व्याख्यात—महर्षि ने इस मन्त्र की व्याख्या आर्याभिविनय (**द्वितीय प्रकाश**) में इस प्रकार की है—"ब्रह्म ह्यग्निः" इत्यादि शतपथादि प्रामाण्याद् ब्रह्मैवात्राग्निर्ग्राह्यः । हे विज्ञान स्वरूपेश्वराग्ने ! आप हमारे लिए "सूपायनः" सुख से प्राप्त, श्रेष्ठोपाय के प्रापक, अत्युत्तम स्थान के दाता कृपा से सर्वदा हो तथा रक्षक भी हमारे आप ही हो । हे स्वस्तिद परमात्मन् ! सब दुःखों का नाश

करके हमारे लिए सुख का वर्त्तमान सदैव कराश्रो, जिससे हमारा वर्त्तमान श्रेष्ठ ही हो। "स नः पितेव सूनवे" जैसे करुणामय पिता अपने पुत्र को सुखी ही रखता है, वैसे आप हमको सदा सुखी रक्खो, क्योंकि जो हम लोग बुरे होंगे तो उससे आप की शोभा नहीं होगी, किञ्च सन्तानों को सुधारने से ही पिता की बढ़ाई होती है अन्यथा नहीं" ॥ १५ ॥

भाष्यसार—१. **अग्नि** (ईश्वर)—अग्नि अर्थात् जगदीश्वर करुणामय, विज्ञानस्वरूप और सबका पिता है। जैसे कृपालु विद्वान् पिता अपने सन्तानों की रक्षा करता है और उन्हें उत्तम शिक्षा देकर विद्या, धर्म और सुशीलता आदि में प्रवृत्त करता है इसी प्रकार जगदीश्वर हमें श्रेष्ठ व्यवहारों में प्रवृत्त करे ॥

२. **अलङ्कार**—यहां विद्वान् पिता से ईश्वर की उपमा की गई है इसलिये उपमा अलङ्कार है ॥ ३ । २४ ॥

सुबधुर्ऋषिः । **अग्निः**=ईश्वरः । भुरिग्बृहती । मध्यमः ॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते ॥

फिर वह ईश्वर कैसा है, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

अग्ने त्वं नोऽअन्तम ऽ उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः ।
वसुरग्निर्वसुश्रवा ऽ अच्छा नक्षि द्युमत्तमं रयिं दाः ॥ २५ ॥

पदार्थः—(**अग्ने**) सर्वाभिरक्षकेश्वर (**त्वम्**) करुणामयः (**नः**) अस्माकमस्मभ्यं वा (**अन्तमः**) य आत्मान्तःस्थोऽनिति-जीवयति सोतिशयितः। **स उ प्राणस्य प्राणः ॥ केनोपनिषत् ॥ खं० १ । मं० २ ॥ अनेनात्मान्तःस्थोऽन्तर्यामी गृह्यते** (**उत**) अपि (**त्राता**) रक्षकः (**शिवः**) मङ्गलमयो मङ्गलकारी (**भव**) **अत्र द्व्यचोतस्तिङ इति दीर्घः** (**वरूथ्यः**) यो वरूथेषु=श्रेष्ठेषु गुणकर्म्मस्वभावेषु भवः (**वसुः**) वसन्ति सर्वाणि भूतानि यस्मिन् यो वा सर्वेषु भूतेषु वसति सः (**अग्निः**) विज्ञानप्रकाशमयः (**वसुश्रवाः**) वसूनि=सर्वाणि श्रवांसि श्रवणानि यस्य सः (**अच्छ**) **श्रेष्ठार्थे । निपातस्य चेति दीर्घः** (**नक्षि**) सर्वत्र व्याप्तोऽसि। **अत्र णक्ष गतावित्यस्माल्लटि मध्यमैकवचने बहुलं छन्दसीति शपो लुक्** (**द्युमत्तमम्**) द्यौः=प्रशस्तः प्रकाशो विद्यते यस्मिँस्तदतिशयितस्तम् (**रयिम्**) विद्याचक्रवर्त्यादिधनसमूहम् (**दाः**) देहि। **अत्र लोडर्थे लुङ् बहुलं छन्दस्य माङ्० । अनेनाडभावश्च ॥ अयं मंत्रः श० २ । ३ । ४ । ३१ व्याख्यातः ॥ २५ ॥**

प्रमाणार्थ—(**अन्तमः**) 'अन्तम' शब्द का अर्थ जीवन देने वाला है। क्योंकि केनोप निषद् (खं० १ । मं० २) में परमात्मा को प्राणों का भी प्राण कहा है। इस प्रमाण से अन्तर्यामी अर्थ गृहीत होता है। (**भवा**) भव। यहां 'द्व्यचोऽतस्तिङः' [अ० ६ । ३ । १३५] सूत्र से दीर्घ है। (**अच्छा**) अच्छ। यहाँ 'निपातस्यश्च' (अ० ६ । ३ । १३६) सूत्र से दीर्घ है। (**नक्षि**) यह गति अर्थ वाली 'णक्ष' धातु के लट्-लकार मध्यम पुरुष के एकवचन का रूप है। 'बहुलं छन्दसि' [अ० २ । ४ । ६३] सूत्र से 'शप्' का लुक् है। (**दाः**) यहाँ लोट् अर्थ में लुङ् लकार है। 'बहुलं छन्दस्यमाङ्०' [अ० ६ । ४ । ७५] अट् का अभाव है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (२ । ३ । ४ । ३१) में की गई है ॥ ३ । २५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने**! सर्वाभिरक्षकेश्वर! **यस्त्वं करुणामयः वसुश्रवाः** वसूनि=

भाषार्थ—हे (**अग्ने**) सबके रक्षक ईश्वर! जो (**त्वम्**) आप करुणामय (**वसुश्रवाः**) सब सुनने

सर्वाणि श्रवांसि श्रवणानि यस्य स **वसुः** वसन्ति सर्वाणि भूतानि यस्मिन् वा सर्वेषु भूतेषु वसति सः **अग्निः** विज्ञानप्रकाशमयः **नक्षि=सर्वत्र व्याप्तोऽसि स त्वं नः=अस्माकम्** अस्माकमस्मभ्यं वा **अन्तमः** य आत्मान्तःस्थोऽनिति=जीवयति सोतिशयितः **त्राता** रक्षकः **वरूथ्यः** यो वरूथेषु=श्रेष्ठेषु गुणकर्मस्वभावेषु भवः **शिवो** मङ्गलमयो मङ्गलकारी **भव** ।

उत=अपि=नः=अस्मभ्यं द्युमत्तमं द्यौः=प्रशस्तः प्रकाशो विद्यते यस्मिस्तदतिशयितस्तं **रयिं** विद्याचक्रवर्त्यादिधनसमूहं **अच्छ** (श्रेष्ठम्) **दाः**=**सम्यग्देहि** ॥ ३ । २५ ॥

वाले (**वसुः**) सब भूत जिसमें रहते हैं वा सब भूतों में जो रहता है ऐसे आप (**अग्निः**) विज्ञान प्रकाशमय (**नक्षि**) सर्वत्र व्यापक हो, वह (**त्वम्**) आप (**नः**) हमारे (**अन्तमः**) अन्तर्यामी रूप से आत्मा एवं अन्तःकरण में स्थित होकर अत्यन्त जीवन देने वाले (**त्राता**) रक्षक (**वरूथ्यः**) श्रेष्ठ गुण कर्म स्वभाव वाले आप (**शिवः**) मङ्गलमय एवं मङ्गलकारक (**भव**) हो।

(**उत**) और आप (**नः**) हमारे लिये (**द्युमत्तमम्**) अत्यन्त प्रशस्त प्रकाश वाले (**रयिम्**) विद्या तथा चक्रवर्ती राज्य आदि धनों को (**अच्छ**) अच्छे प्रकार से (**दाः**) प्रदान कीजिये ॥ ३ । २५ ॥

[हे अग्ने ··· त्वं नः=अस्माकम् ··· त्राता ··· भव]

भावार्थः—मनुष्यैरित्थं वेदितव्यं—परमेश्वरं विहाय नोऽस्माकं कश्चिदन्यो रक्षको नास्तीति, कुतस्तस्य सर्वशक्तिमत्त्वेन सर्वत्राभिव्यापकत्वादिति ॥ ३ । २५ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को यह जानना चाहिये कि परमेश्वर को छोड़कर हमारा और कोई रक्षक नहीं है, क्योंकि वह सर्वशक्तिमान् होने से सर्वत्र व्यापक है ॥ ३ । २५ ॥

भाष्यसार—**अग्नि (ईश्वर) कैसा है**—अग्नि अर्थात् ईश्वर सबका रक्षक, करुणामय, सब सुनने वाला, सब भूत इसमें निवास करते हैं, अथवा यह सब भूतों में निवास करता है, विज्ञानप्रकाशमय, सर्वव्यापक, आत्मा और अन्तःकरण में स्थित होकर जीवित रखने वाला, रक्षक, श्रेष्ठ गुण कर्म स्वभाव वाला, मङ्गलमय, मङ्गलकारी, प्रशस्त प्रकाश वाला, विद्या और चक्रवर्ती राज्य आदि धन का दाता है। क्योंकि वह सर्वशक्तिमान् होने से सर्वव्यापक है ॥ ३ । २५ ॥

सबन्धुः । **अग्निः**=ईश्वरः ॥ स्वराड् बृहती । मध्यमः ॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते ॥

फिर वह ईश्वर कैसा है, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ।
स नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्या णो ऽ अघायतः समस्मात् ॥ २६ ॥

पदार्थः—(**तम्**) जगदीश्वरम् (**त्वा**) त्वाम् (**शोचिष्ठ**) पवित्रतम (**दीदिवः**) प्रकाशमयानन्दप्रद । अत्र दिवुधातोश्छन्दसि लिडिति लिट् । क्वसुश्चेति लिटः स्थाने क्वसुः । छन्दस्युभयथेति लिडादेशस्य क्वसोः सार्वधातुकत्वादिडभावः । तुजादीनां दीर्घोऽभ्यासस्येत्यभ्यासदीर्घः । मतुवसो रु संबुद्धौ छन्दसीति रुरादेशश्च (**सुम्नाय**) सुखाय । सुम्नमिति सुखनामसु पठितम् ॥ निघं० ३ । ६ ॥ (**नूनम्**) निश्चयार्थे (**ईमहे**) याचामहे । **ईमह** इति याच्ञाकर्मसु पठितम् ॥ निघं० । ३ । १६ ॥ (**सखिभ्यः**) मित्रेभ्यः (**सः**) जगदीश्वरः (**नः**) अस्मानस्माकं वा (**बोधि**) बोधयति । अत्र लडर्थे लुङ् बहुलं छन्दसीत्यडभावोऽन्तर्गतो ण्यर्थश्च (**श्रुधि**) शृणु ।

अत्र द्वयचोतस्तिङ इति दीर्घः । बहुलं छन्दसीति श्नोर्लुक् शुश्रृणु० इति हेर्ध्यादेशश्च (हवम्) श्रोतुं श्रावयितु-
तुमर्हं स्तुतिसमूहं यज्ञमूहं (उरुष्य) रक्ष । अत्र कण्ड्वाद्याकृतिगणत्वादुरुषशब्दाद्यक् ततोऽन्येषामपीति दीर्घः (नः)
अस्मान् । अत्र नश्च धातुस्थोरुषुभ्यः ॥ अ० ८ । ४ । २७ ॥ इति णकारादेशः (अघायतः) यः परस्याघमिच्छत्य-
घायति ततः । आचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति भवत्यघशब्दाच्छन्दसि परेच्छायां क्यजिति । यदयमश्वाघस्यादिति क्यचि प्रकृत ईत्व-
बाधनार्थमाकारं शास्ति ॥ अ० ३ । १ । ८ ॥ अस्मिन्सूत्रे भाष्यकारस्य व्याख्यानाशयेनेदं सिद्धयतीति बोध्यम् (सम-
स्मात्) सर्वस्मात् । समशब्दोत्र सर्वपर्यायः ॥ अयं मंत्रः श० २ । ३ । ४ । ३१—३३ व्याख्यातः ॥

प्रमाणार्थ—(दीदिवः) यहाँ 'दिव्' धातु से 'छन्दसि लिट्' [अ० ३ । २ । १०५] सूत्र से लिट् लकार है 'क्वसुश्च' [अ० ३ । २ । १०७] सूत्र से लिट् के स्थान में 'क्वसु' है। 'छन्दस्युभयथा' [अ० ३ । ४ । ११७] सूत्र से लिट् आदेश क्वसु के सार्वधातुक होने से इट् का अभाव है। 'तुजादीनां दीर्घोऽभ्यासस्य' [अ० ६ । १ । ७] सूत्र से अभ्यास को दीर्घ है। 'मतुवसो रुः सम्बुद्धौ छन्दसि' [अ० ८ । ३ । १] सूत्र से 'रु' आदेश है। इस प्रकार से 'दीदिवः पद की सिद्धि जाननी चाहिये (सुम्नाय)। 'सुम्न' शब्द निघं० (३ । ६) में सुख- नामों में पढ़ा है। (ईमहे) 'ईमहे' पद निघं० (३ । १९) में मांगने अर्थ वाली क्रियाओं में पढ़ा है। (बोधि) बोधयति। यहां लट् अर्थ में लुङ् लकार है और 'बहुलं छन्दसि' [अ० ६ । ४ । ७५] से 'अट्' का अभाव और ण्यर्थ अन्तर्गत है। (श्रुधि) श्रुधि। यहां 'द्वयचोऽतस्तिङ्' [अ० ६ । ३ । १३५] से दीर्घ है। 'बहुलं छन्दसि' [अ० २ । ४ । ३९]सूत्र से 'श्नु' का लुक् और 'शुश्रृणु०' [६ । ४ । १०२] सूत्र से 'हि' को 'धि' आदेश है। (उरुष्या) उरुष्य। यहां कण्ड्वादि को आकृति-गण मान कर 'उरुष' शब्द से 'यक्' प्रत्यय है तथा 'अन्येषामपि दृश्यते' [अ० ६ । ३ । १३७] सूत्र से दीर्घ है। (उरुष्या णः) नः। यहां 'नश्चे धातुस्थोरुषुभ्यः' [अ० ८ । ४ । २७] सूत्र से 'न' को णकार आदेश है। (अघायतः) आचार्य पाणिनि का व्यवहार बतलाता है कि 'अघ' शब्द से वेद में पर-इच्छा में 'क्यच्' प्रत्यय होता है, क्योंकि आचार्य ने 'अश्वाघ स्यात्' [अ० ७ । ४ । ३७] सूत्र से 'क्यच्' प्रत्यय के परे रहने पर 'ईत्वबाधन' के लिये आकार का उपदेश किया है। इस प्रकार (अ० ३ । १ । ८) सूत्र पर भाष्यकार के व्याख्यान के आशय से यह 'अघायतः' शब्द सिद्ध होता है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (२ । ३ । ४ । ३१-३३) में की गई है ॥ ३ । २६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **शोचिष्ठ** ! पवित्रतम ! **दीदिवः** ! प्रकाशमयानन्दप्रद ! **जगदीश्वर** ! **वयं नः**=**अस्माकं** **सखिभ्यः** मित्रेभ्यः **च नूनं** निश्चितं **सुम्नाय** सुखाय **तं** जगदीश्वरं [**त्वा**]=**त्वामीमहे** याचामहे ।

यो भवान् नः=**अस्मान् बोधि**=**सम्यग् विज्ञानं बोधयति सः** जगदीश्वरः त्वं नः **अस्माकं हवं** श्रोतुं श्रावयितुमर्हं स्तुतिसमूहं यज्ञं **श्रुधि**=**कृपया शृणु** । **नः**=**अस्मान् समस्मात्**=**सर्वस्मात् अघायतः**=**परपीडाकरणरूपात् पापात्** यः परस्याघमिच्छत्यघायति ततः **उरुष्य**=**सततं** पृथक् **रक्ष** ॥ ३ । २६ ॥

भाषार्थ—(**शोचिष्ठ**) अत्यन्त पवित्र ! (**दीदिवः**) प्रकाशमय, आनन्द देने वाले जगदीश्वर ! हम लोग (**नः**) अपने और (**सखिभ्यः**) अपने मित्रों के (**नूनम्**) निश्चित (**सुम्नाय**) सुख के लिये (**तं त्वा**) उस तुझ जगदीश्वर से (**ईमहे**) याचना करते हैं।

जो आप (**नः**) हमें (**बोधि**) उत्तम विज्ञान का बोध कराते हैं (**सः**) वही आप (**नः**) हमारी (**हवम्**) सुनने सुनाने योग्य स्तुतियों को (**श्रुधि**) कृपा से सुनो और (**नः**) हमें (**समस्मात्**) सब (**अघायतः**) दूसरों को पीड़ा देने रूप पाप से (**उरुष्य**) सदा पृथक् रखो ॥ ३ । २६ ॥

[हे...जगदीश्वर ! वयं नः=अस्माकं सखिभ्यश्च नूनं सुम्नाय तं [त्वा] त्वामीमहे]

भावार्थः—सर्वैर्मनुष्यैः स्वार्थं, स्वमित्रार्थं, सर्वप्राण्यर्थं च सुखप्राप्तये परमेश्वरः प्रार्थनीयस्तथैवाचरणं च कार्यम् ।

भावार्थ—सब मनुष्य अपने लिये, अपने मित्रों और सब प्राणियों के सुख प्राप्ति के लिये परमेश्वर से प्रार्थना करें और वैसा ही आचरण भी करें।

[नः=अस्मान् समस्मात् = सर्वस्मादधायतः=परपीडाकरणरूपात् पापाद्रुष्य=सततं पृथक् रक्ष]

प्रार्थितः सन् जगदीश्वरोऽधर्मान्निवृत्तिमिच्छुकान् मनुष्यान् स्वसत्तया सर्वेभ्यः पापेभ्यो निवर्त्तयति, तथैव स्वविचारपरमपुरुषार्थाभ्यां सर्वेभ्यः पापेभ्यो निवृत्य धर्माचरणे सर्वैर्मनुष्यैर्नित्यं प्रवर्तितव्यमिति बोध्यम् ॥ ३ । २६ ॥

प्रार्थना करने से जगदीश्वर अधर्म से दूर रहने के इच्छुक मनुष्यों को अपनी सत्ता से सब पापों से हटा देता है, वैसे ही अपने विचार और परम-पुरुषार्थ से सब पापों से दूर हो कर धर्माचरण में सब मनुष्य नित्य लगे रहें। ऐसा सब मनुष्यों को जानना योग्य है ॥ ३ । २६ ॥

भा० पदार्थः—सुम्नाय=सुखप्राप्तये ।

भाष्यसार—ईश्वर कैसा है—अग्नि अर्थात् ईश्वर अत्यन्त पवित्र, प्रकाशमय और आनन्द-प्रद है। जो प्रार्थना करने पर सब मनुष्यों, उनके मित्रों तथा सब प्राणियों को सुख प्रदान करता है, विज्ञान को बोध कराता है, यह याचक की प्रकार, स्तुति एवं यज्ञ को कृपापूर्वक सुनता है, यह सब पापों से निवृत्त कर देता है। पाप से निवृत्त होने के लिये जहां परमेश्वर सहायक है, वहां अपना विचार तथा अपना पुरुषार्थ भी अपेक्षित है ॥ ३ । २६ ॥

श्रुतबन्धु । **अग्निः**=**ईश्वरः** ॥ विराड्गायत्री । षड्जः ॥

पुनः स किमर्थः प्रार्थनीय इत्युपदिश्यते ॥

फिर ईश्वर से प्रार्थना किस लिये करनी चाहिये, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

इडे ऽ एह्यदिते ऽ एहि काम्या ऽ एत । मयि वः कामधरणं भूयात् ॥ २७ ॥

पदार्थ—(**इडे**) इडा=पृथिवी । **इडेति पृथिवीनामसु पठितम् ॥ निघं० १ । १ ॥** (**आ**) समन्तात् (**इहि**) प्राप्नुयात् । **अत्र सर्वत्र व्यत्ययः** (**अदिते**) नाशरहिता राजनीतिः । **अदितिरिति पदनामसु पठितम् ॥ निघं० ४ । १ ॥ अनेनात्र प्राप्त्यर्थो गृह्यते** (**आ**) समन्तात् (**इहि**) प्राप्नुयात् (**काम्याः**) कामयन्त=इष्यन्ते ये पदार्थास्ते (आ) समन्तात् (**इत**) यन्तु=प्राप्नुवन्तु (**मयि**) मनुष्ये (**वः**) तेषां काम्यानां पदार्थानाम् (**कामधरणम्**) कामानां धरणं=स्थानम् (**भूयात्**) ॥ **अयं मंत्रः श० २ । ३ । ४ । ३४ व्याख्यातः ॥ २७ ॥**

प्रमाणार्थ—(**इडे**) 'इडा' शब्द निघं० (१ । १) में पृथिवी-नामों में पढ़ा है। (**इहि**) प्राप्नुयात् । यहां सर्वत्र व्यत्यय है। (**अदिते**) 'अदिति' शब्द निघं० (४ । १) में पद-नामों प्राप्ति अर्थ में पढ़ा है। इससे प्राप्ति गृहीत होता है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (२ । ३ । ४ । ३४) में की गई है ॥ ३ । २७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे जगदीश्वर ! भवत्कृपया [इडे]=इडा=इयं पृथिवी मह्यं राज्यकरणायेहि=समन्तात्प्राप्नुयात् ।

भाषार्थ—हे जगदीश्वर ! आपकी कृपा से (इडे) यह पृथिवी मेरे लिये राज्य करने के लिये (एहि) चहुं ओर से प्राप्त हो।

एवम् [अदिते]=अदितिः सर्व सुखप्राप्तिका नाशरहिता राज्यनीतिः नाशरहिता=राजनीतिः एहि=प्राप्नुयात् समन्तात् प्राप्नुयात् ।

तथा (अदिते) सब सुखों को प्राप्त कराने वाली, कभी नष्ट न होने वाली राजनीति और राज्यनीति भी (एहि) चहुँ ओर से प्राप्त हो ।

एवं हे भगवन् ! पृथिवीराज्यनीतिभ्यां मह्यं काम्याः काम्यन्त=इष्यन्ते पदार्थास्ते पदार्थाएत= समन्तात् प्राप्नुवन्तु । तथा मयि मनुष्ये वः=तेषां काम्यानां पदार्थानां कामधरणं कामनां धरणं स्थानं भूयात् ॥ ३ । २७ ॥

तथा हे भगवन् ! पृथिवी का राज्य और राजनीति से मुझे (काम्याः) कामना करने योग्य अभीष्ट सब पदार्थ (एत) सब ओर से प्राप्त हों और (मयि) मुझ में (वः) उन कमनीय पदार्थों की (कामधरणम्) कामना भी (भूयात्) सदा बनी रहे ॥ ३ । २७ ॥

[हे भगवन् !···मह्यं काम्याः पदार्था एत=समन्तात् प्राप्नुवन्तु]

भावार्थः—मनुष्यैः काम्यानां पदार्थानां कामना सततं कार्या, तत्प्राप्तये जगदीश्वरस्य प्रार्थना पुरुषार्थश्च ।

भावार्थ—सब मनुष्य कामना करने योग्य पदार्थों की कामना सदा करें और उनकी प्राप्ति के लिये जगदीश्वर से प्रार्थना और पुरुषार्थ भी किया करें ।

[मयि वः=तेषां काम्यानां पदार्थानां कामधारणं भूयात्]

नहि कश्चिदप्येकक्षणमपि कामान् विहाय स्थातुमर्हति ।

कोई भी मनुष्य एक क्षण भर भी कामना-रहित नहीं रह सकता ।

[तात्पर्यमाह—]

तस्मादधर्म्यव्यवहारात् कामनां निवर्त्य धर्म्ये व्यवहारे यावती वर्धयितुं शक्या, तावती नित्यं वर्द्धनीयेति ॥ ३ । २७ ॥

इस लिये अधर्म के व्यवहार से कामना को हटा कर धर्म-व्यवहार में जितनी कामना बढ़ाई जा सके उतनी नित्य बढ़ानी चाहिये ॥ ३ । २७ ॥

भाष्यसार—ईश्वर प्रार्थना किस लिये—प्रार्थना करने से ईश्वर राज्य करने के लिये पृथिवी, सर्वसुखदायक नाशरहित राजनीति एवं राज्यनीति प्रदान करता है। पृथिवी और राज्यनीति से ही सब कामना करने के योग्य अभीष्ट पदार्थ प्राप्त होते हैं। कोई भी व्यक्ति एक क्षण भर भी कामना रहित नहीं रह सकता । अतः अधर्म व्यवहार से कामना को हटा कर धर्म-व्यवहार की ही कामना को धारण करें । इस धर्म-कामना को खूब बढ़ावें ॥ ३ । २७ ॥

प्रबन्धुः । **बृहस्पतिः**=ईश्वरः ॥ विराड् गायत्री । षड्जः ॥

पुनः स जगदीश्वरः किमर्थः प्रार्थनीय इत्युपदिश्यते ॥

फिर उस जगदीश्वर से किस लिए प्रार्थना करनी चाहिये, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

सोमानꣳ स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते । कक्षीवन्तं य ऽ औशिजः ॥ २८ ॥

पदार्थः—(सोमानम्) सुनोति=निष्पादयत्योषधिसारान् विद्यासिद्धीश्च । येन तम् (स्वरणम्)

सर्वविद्याप्रवक्तारम् (**कृणुहि**) संपादय (**ब्रह्मणस्पते**) सनातनस्य वेदशास्त्रस्य पालकेश्वर! (**कक्षीवन्तम्**) कक्षेषु=विद्याध्ययनकर्मसु साध्वी नीतिः कक्षा सा बह्वी विद्यते यस्य विद्यां जिघृक्षोस्तम्। **अत्र भूम्न्यर्थे मतुप्। कक्ष्यायाः संज्ञायां मतौ संप्रसारणं कर्त्तव्यम्॥ अ० ६। १। ३७॥ इति वार्तिकेन संप्रसारणादेशः। आसंदीवदष्ठी वच्च०॥ अ० ८। २। १२॥ इति निपातनान्मकारस्थाने वकारादेशश्च** (**यः**) विद्वान् (**औशिजः**) यः सर्वा विद्या वष्टि स उशिक् तस्य विद्यापुत्र इव॥ **यास्कमुनिरिमं मंत्रमेवं समाचष्टेः सोमानं सोतारं प्रकाशनवन्तं कुरु ब्रह्मणस्पते कक्षीवन्तमिव य औशिजः कक्षीवान् कक्ष्यावानौशिज उशिजः पुत्रः उशिग्वष्टेः कान्तिकर्मणोपि त्वयं मनुष्यकक्ष एवाभिप्रेतः स्यात्तं सोमानं सोतारं मां प्रकाशनवन्तं कुरु ब्रह्मणस्पते॥ निरु० ६। १०॥ अयं मंत्रः शत० २। ३। ४। ३५ व्याख्यातः॥ २८॥**

प्रमाणार्थ—(**कक्षीवन्तम्**) यहां आधिक्य अर्थ में 'मतुप्' प्रत्यय है। 'कक्ष्यायाः संज्ञायां मतौ सम्प्रसारणं कर्त्तव्यम्' (**अ०** ६। १। ३७) वार्तिक से सम्प्रसारण आदेश है। 'आसन्दीवदष्ठीवच्च०' (**अ०** ८। २। १२) सूत्र से निपातन से मकार के स्थान में वकार आदेश है। 'सोमानम्०' इत्यादि मन्त्र की व्याख्या यास्कमुनि ने निरु० (६। १०) में इस प्रकार की है--सोमानम्=सोतारम्=औषधि के रसों का सेवन करने वाला, स्वरणम्=प्रकाशनवन्तम्=विद्या से प्रकाशित कृणुहि=कुरुः करो। ब्रह्मणस्पते!=वेद-शास्त्र के पालक ईश्वर, कक्षीवन्तम्=कक्षीवान्=कक्ष्यावान्, कक्ष्या=विद्याध्ययनकर्म में उत्तम नीति वाला एवं विद्या का जिज्ञासु। औशिजः=उशिक का पुत्र। 'उशिक' पद कान्ति अर्थ वाली 'वश्' धातु से बनता है अर्थात् सब विद्याओं का इच्छुक विद्वान् का पुत्र। (**कक्षीवन्तम्**) इसका अभिप्राय मनुष्य की कक्ष्या (**कोटि**) इस प्रकार ब्रह्मणस्पते! मुझे सोमानम्=ओषधिसारों और विद्याओं का सेवन करने वाला स्वरणम्=सब विद्याओं का प्रकाशन करने वाला। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (२। ३। ४। ३५) में की गई है॥ ३। २८॥

सपदार्थान्वयः—**हे ब्रह्मणस्पते!** सनातनस्य वेदशास्त्रस्य पालकेश्वर! **त्वं यः** विद्वान् **अहमौशिजः** यः सर्वा विद्या वष्टि स उशिक् तस्य विद्यापुत्र इव **अस्मि, तं कक्षीवन्तं** कक्षेषु=विद्याध्ययनकर्मसु साध्वीनीतिः कक्षा, सा, बह्वी विद्यते यस्य विद्यां जिघृक्षोस्तं **स्वरणं** सर्वविद्याप्रवक्तारं **सोमानं** सुनोति=निष्पादयत्योषधिसारान् विद्यासिद्धीश्च येन तं **मां कृणुहि=सम्पादय** ॥ ३। २८॥

भाषार्थ—(**ब्रह्मणस्पते**) सनातन वेद शास्त्र के पालक ईश्वर! (**यः**) जो मैं विद्वान् (**औशिजः**) सब विद्याओं का अभिलाषी विद्यापुत्र हूँ उसे आप (**कक्षीवन्तम्**) विद्या ग्रहण का इच्छुक होकर विद्या अध्ययन में उत्तमनीति वाला (**स्वरणम्**) सब विद्याओं का प्रवचन करने वाला (**सोमानम्**) औषधि सारों का निष्पादन करने वाला एवं विद्यासिद्धि करने वाला मुझे (**कृणुहि**) बना॥ ३। २८॥

[**हे ब्रह्मणस्पते! त्वं योऽहमौशिजोऽस्मि, तं कक्षीवन्तं, स्वरणं सोमानं मां कृणुहि=सम्पादय**]

भावार्थः—अत्र लुप्तोपमालङ्कारः॥ पुत्रो द्विविध—एक औरसो द्वितीयो विद्याजः, सर्वैर्मनुष्यैरीश्वर एतदर्थं प्रार्थनीयः, यस्माद् वयं विद्याप्रकाशितैः सर्वक्रियाकुशलैः प्रीत्या विद्याध्यापकैः पुत्रैर्युक्ता भवेमेति॥ ३। २८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमा अलङ्कार है॥ पुत्र दो प्रकार के हैं—एक औरस (**शरीर से उत्पन्न**) और दूसरा विद्याज (**विद्या से उत्पन्न**)। इन दो प्रकार के पुत्रों की प्राप्ति के लिये सब मनुष्य ईश्वर से प्रार्थना करें, जिससे हम लोग विद्या से प्रकाशित, सब क्रियाओं में कुशल, प्रीतिपूर्वक विद्या को पढ़ाने वाले पुत्रों से युक्त हों॥ ३। २८॥

म्रा० पदार्थः—औशिजः=विद्याजः पुत्रः । स्वरणम्=विद्याध्यापकम् । सोमानम्=विद्याप्रकाशितं सर्वक्रियाकुशलम् ॥

भाष्यसार—**ईश्वर प्रार्थना किस लिये**—ईश्वर सनातन वेदशास्त्र का पति है, जो प्रार्थना करने से औरस तथा विद्याज पुत्र प्रदान करता है, जो विद्याअध्ययन कर्म में कुशल, विद्या ग्रहण के इच्छुक, सब विद्याओं के प्रवक्ता, औषधिसारों एवं विद्याओं के साधक, सब क्रियाओं में कुशल और विद्या से प्रकाशित होते हैं ॥ ३ । २८ ॥

मेधातिथिः । **बृहस्पतिः**=ईश्वरः ॥ गायत्री । षड्जः ॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते ॥

फिर वह ईश्वर कैसा है, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

यो रेवान् योऽअमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्द्धनः । स नः सिषक्तु यस्तुरः ॥ २९ ॥

पदार्थः—(**यः**) ब्रह्मणस्पतिर्जगदीश्वरः (**रेवान्**) विद्याधनवान् । **अत्र रयिशब्दान्मतुप् । छन्दसीरः ॥ अ० ८ । २ । १५ ॥ इति मकारस्थाने वकारादेशः । रयेर्मतौ संप्रसारणं बहुलं वक्तव्यम् ॥ अ० ६ । १ । ३७ ॥ इति वार्तिकेन यकारस्थाने संप्रसारणादेशश्च** (**यः**) महान् (**अमीवहा**) योऽमीवानविद्यादिरोगान् हन्ति सः (**वसुवित्**) यो वसूनि=सर्वाणि वस्तूनि यथावद्वेत्ति वेदयति वा सः (**पुष्टिऽवर्द्धनः**) पुष्टिं=शरीरात्मबलं धातुसाम्यं च वर्द्धयतीति (**सः**) परमात्मा (**नः**) अस्मान् **सिषक्तु**) संयोजयतु । **षच समवाय इत्यस्माच्छपः स्थाने बहुलं छन्दसीति श्लुर्बहुलं छन्दसीत्यभ्यासस्येकारादेशश्च** (**यः**) उक्तो वक्ष्यमाणश्च (**तुरः**) शीघ्रकारी ॥ **अयं मंत्रः शत० २ । ३ । ४ । ३५ व्याख्यातः ॥ २९ ॥**

प्रमाणार्थ—(**रेवान्**) यहां 'रयि' शब्द से मतुप् प्रत्यय है तथा 'छन्दसीरः' (अ० ८ । २ । १५) सूत्र से मकार को वकार आदेश हो गया है । 'रयेर्मतौ सम्प्रसारणं बहुलं वक्तव्यम्' (अ० ६ । १ । ३७) वार्तिक से यकार को सम्प्रसारण हो गया है । (**सिषक्तु**) यहां समवाय अर्थ वाली 'षच्' धातु से परे 'शप्' के स्थान में 'बहुलं छन्दसि' [**अ०** २ । ४ । ७३] सूत्र से श्लु और 'बहुलं छन्दसि' [अ० ७ । ४ । ७८] सूत्र से अभ्यास का इकार आदेश है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (२ । ३ । ४ । ३५) में की गई है ॥ ३ । २९ ॥

सपदार्थान्वयः—**यो** महान् **रेवान्** विद्याधनवान् **अमीवहा** योऽमीवानविद्यादिरोगान् हन्ति स **वसुवित्** यो वसूनि=सर्वाणि वस्तूनि यथावद्वेत्ति वेदयति वा स **पुष्टिवर्द्धनः** पुष्टिं=शरीरात्मबलं धातुसाम्यं च वर्द्धयतीति [**यः**] उक्तो वक्ष्यमाणश्च तुरः शीघ्रकारी [**यः**]=**ब्रह्मणस्पतिर्जगदीश्वरोऽस्ति** सः परमात्मा **नः**=**अस्मान् शुभैर्गुणैः कर्मभिश्च सह सिषक्तु**=**संयोजयतु** ॥ ३ । २९ ॥

भाषार्थ—(**यः**) जो महान् (**रेवान्**) विद्या का धनी है एवं (**अमीवहा**) अविद्या आदि रोगों का नाशक है तथा (**वसुवित्**) जो सब वस्तुओं को यथावत् जानता एवं जनाता है और (**पुष्टिवर्द्धनः**) शारीरिक, आत्मिक बलों और धातुओं की साम्य अवस्था को बढ़ाने वाला और (**तुरः**) शीघ्रकारी है (**यः**) वह वेदपति जगदीश्वर है सो (**नः**) हमें शुभ गुणों से और शुभ कर्मों से (**सिषक्तु**) संयुक्त करे ॥ ३ । २९ ॥

[रेवान्]

भावार्थः—यदिदं विश्वस्मिन् धनमस्ति तदिदं सर्वं जगदीश्वरस्यैव वर्तते। मनुष्यैर्यादृशी प्रार्थनेश्वरस्य क्रियते स्वैरपि तादृश एव पुरुषार्थः कर्त्तव्यः। यथा—नैव रेवानितीश्वरस्य विशेषणमुक्त्वा श्रुत्वा च कश्चित् कृतकृत्यो भवति, किं तर्हि—स्वेनापि परमपुरुषार्थेन धनवृद्धिरक्षणे सततं कार्ये।

भावार्थ—जो यह विश्व में धन है वह सब ईश्वर का ही है। मनुष्य जैसी ईश्वर से प्रार्थना करें स्वयं भी वैसा ही पुरुषार्थ करें। जैसा 'रेवान्' इस ईश्वर के विशेषण को कह कर और सुन कर कोई भी कृतार्थ (फलवान्) नहीं होता किन्तु अपने परम पुरुषार्थ से भी धन की वृद्धि और रक्षा नित्य करनी योग्य है।

[अमीवहा]

यथा सोऽमीवहाऽस्ति, तथैव मनुष्यैरपि रोगा नित्यं हन्तव्याः।

जैसे वह ईश्वर अमीवहा=रोगहन्ता है वैसे ही मनुष्य भी रोगों का नित्य हनन करें।

[वसुवित्]

यथा स वसुविदस्ति तथैव यथाशक्ति पदार्थविद्या कार्या।

जैसे वह ईश्वर वसुवित् वस्तुओं को जानने वाला है वैसे ही यथाशक्ति पदार्थ विद्या को जानें।

[पुष्टिवर्द्धनः]

यथा स सर्वेषां पुष्टिवर्द्धनस्तथैव सर्वेषां नित्यं पुष्टिर्वर्द्धनीया।

जैसे वह ईश्वर सबका पुष्टि-वर्द्धक है, वैसे ही मनुष्यों को सबकी पुष्टि नित्य बढ़ानी चाहिये।

[तुरः]

यथा स शीघ्रकारी तथैवेष्टानि कार्याणि शीघ्रं कर्त्तव्यानि।

जैसे वह ईश्वर तुर=शीघ्रकारी है वैसे ही सब मनुष्यों को अभीष्ट कार्य शीघ्र करने चाहियें।

[ब्रह्मणस्पतिर्जगदीश्वरः......नः=अस्मान् शुभैर्गुणैः कर्मभिश्च सह=सिषक्तु=संयोजयतु]

यथा तस्य शुभगुणकर्मप्राप्त्यर्था प्रार्थना क्रियते तथैव सर्वान् मनुष्यान् परमप्रयत्नेन शुभगुण कर्माचरणेन सह वर्तमानान् नित्यं संयोजयत्विति॥ ३।२९॥

जैसे हम उस ईश्वर से शुभ गुण, कर्म प्राप्ति के लिये प्रार्थना करें वैसे ही सब मनुष्यों को परम प्रयत्न से शुभ गुण कर्म आचरण से वह नित्य युक्त करे॥ ३।२९॥

भाष्यसार—१. **ईश्वर कैसा है**—जगदीश्वर महान्, विद्या का धनी, अविद्यादि रोगों का हन्ता, पदार्थ विद्या का वेत्ता, तथा ज्ञापक, शारीरिक, आत्मिक बल का तथा धातुसाम्य का वर्द्धक, शीघ्रकारी है।

२. **ईश्वर-प्रार्थना**—उक्त गुणों वाला ब्रह्मणस्पति=जगदीश्वर हमें शुभ गुण कर्मों से युक्त करें॥ ३।२९॥

सप्तधृतिर्वारुणिः। **ब्रह्मणस्पतिः=जगदीश्वरः**॥ निचृद् गायत्री। षड्जः॥

पुनः स किमर्थः प्रार्थनीय इत्युपदिश्यते॥

फिर उस परमेश्वर से किस लिए प्रार्थना करनी चाहिए, इस विषय का उपदेश किया जाता है॥

मा नः शᳪंसो ऽ अररुषो धूर्तिः प्रणङ् मर्त्यस्य । रक्षा णो ब्रह्मणस्पते ॥ ३० ॥

पदार्थः—(**मा**) निषेधार्थे (**नः**) अस्माकम् ((**शंसः**) शंसंति=स्तुवन्ति यस्मिन्सः (**अररुषः**) राति-ददाति स ररिवान्, न ररिवानररिवान् तस्य (**धूर्तिः**) हिंसा (**प्रणक्**) प्रणश्यतु । **अत्र लोडर्थे लुङ् । मन्त्रेघसह्वरण० । इति च्लेर्लुक् च** (**मर्त्यस्य**) मनुष्यस्य । **मर्त्य इति मनुष्यनामसु पठितम् ॥ निघं० २ । ३ ॥** (**रक्ष**) पालय । **अत्र द्व्यचोतस्तिङ इति दीर्घः** (**नः**) अस्मान् (**ब्रह्मणस्पते**) जगदीश्वर । **षष्ठ्याः पति पुत्र० ॥ अ० ८ । ३ । ५३ ॥ इति विसर्जनीयस्य सकारादेशः ॥ अयं मंत्रः शत० २ । ३ । ४ । ३५ व्याख्यातः ॥ ३० ॥**

प्रमाणार्थ—(**प्रणक्**) प्रणश्यतु । यहां लोट् अर्थ में लुङ् लकार है । 'मन्त्र घसह्वर०' [**अ० २ । ४ । ८०**] सूत्र से 'च्लि' का लुक् है । (**मर्त्यस्य**) 'मर्त्य' शब्द निघं० (२ । ३) में मनुष्य नामों में पढ़ा है । (**रक्षा**) रक्ष । यहां 'द्व्यचोऽस्तिङः' [**अ० ६ । ३ । १३५**] से दीर्घ है । (**ब्रह्मणस्पते**) यहां 'षष्ठ्याः पतिपुत्र' (अ० ८ । ३ । ५३) सूत्र से विसर्ग को सकार हो गया है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (२ । ३ । ४ । ३५) में की गई है ॥ ३ । ३० ॥

सपदार्थान्वयः—हे **ब्रह्मणस्पते** ! जगदीश्वर ! **भवत्कृपया नः=अस्माकं शंसः** शंसन्ति=स्तुवन्ति यस्मिन् सः, **मा प्रणक्=कदाचिन्मा प्रणश्यतु** ।

याऽरुषः=परस्वादायिनो राति=ददाति स ररिवान् न ररिवान ररिवान् तस्य **मर्त्यस्य** मनुष्यस्य **धूर्तिः=हिंसास्ति, तस्याः सकाशान्नः=अस्मान् सततं रक्ष** पालय ॥ ३ । ३० ॥

भाषार्थ—हे (**ब्रह्मणस्पते**) जगदीश्वर ! आपकी कृपा से (**नः**) हमारी (**शंसः**) प्रशंसनीय कर्म (**मा प्रणक्**) कभी नष्ट न हों ।

जो (**अररुषः**) दूसरों के धन को लेने वाले (**मर्त्यस्य**) मनुष्य की (**धूर्तिः**) हिंसायुक्त धूर्तता है, उससे (**नः**) हमारी निरन्तर (**रक्ष**) रक्षा करो । ॥ ३ । ३० ॥

[हे ब्रह्मणस्पते ! भवत्कृपयाः नः=अस्माकं शंसोमा प्रणक्=कदाचिन्मा प्रणश्यतु]

भावार्थः—मनुष्यैः सदा प्रशंसनीयानि कर्माणि कर्त्तव्यानिः नेतराणि ।

भावार्थ—मनुष्य सदा प्रशंसनीय कर्म करें, निन्दित नहीं ।

[याऽररुषः=परस्वादायिनो मर्त्यस्य धूर्तिः=हिंसाऽस्ति तस्याः सकाशान्नः=अस्मान् सततं रक्ष]

कस्यचिद् द्रोहो दुष्टानां सङ्गश्च नैव कर्त्तव्यः ।

किसी से द्रोह और दुष्टों का सङ्ग न करें ।

[तात्पर्यमाह—]

धर्मस्य रक्षेश्वरोपासनं च सदैव कर्त्तव्यमिति ॥ ३ । ३० ॥

धर्म की रक्षा और ईश्वर की उपासना सदैव किया करें ॥ ३ । ३० ॥

भा० पदार्थ—शंसः=प्रशंसनीय कर्म । अररुषः= दुष्टस्य । धूर्तिः=द्रोहः ।

भाष्यसार—**ईश्वर प्रार्थना किस लिये**—ईश्वर प्रार्थना करने से हमारे प्रशंसनीय कर्म नष्ट नहीं होते, जो अदानशील, दूसरों का धन अपहरण करने वाले दुष्ट जन हैं, ईश्वर उनके सङ्ग से हमारी रक्षा करता है । परद्रोह आदि दोषों से बचाता है । धर्म की रक्षा और ईश्वरोपासना के लिये प्रेरणा मिलती है ॥ ३ । ३० ॥

सत्यधृतिर्वारुणिः । **आदित्यः**=ईश्वरः ॥ विराड्गायत्री । षड्जः ॥

पुनः स किमर्थः प्रार्थनीय इत्युपदिश्यते ॥

फिर उस परमेश्वर से किसलिये प्रार्थना करनी चाहिये इस विषय का उपदेश किया जाता है॥

महि त्रीणामवोऽस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्यम्णः । दुराधर्षं वरुणस्य ॥ ३१ ॥

पदार्थः—(**महि**) महत् (**त्रीणाम्**) त्रयाणां सकाशात् । अत्र वा छन्दसि सर्वे विधयो भवन्तीति त्रेस्त्रय इति त्रयादेशो न (**अवः**) रक्षणादिकम् (**अस्तु**) भवतु (**द्युक्षम्**) द्यौर्नीतिः प्रकाशः क्षियति=निवसति यस्मिंस्तत् (**मित्रस्य**) बाह्याभ्यन्तरस्थस्य प्राणस्य (**अर्यम्णः**) य ऋच्छति=नियच्छत्याकर्षणेन पृथिव्यादीन्स सूर्यलोकस्तस्य । श्वन्नुक्षन्पूषन० ॥ उ० १ । १५६ ॥ अनेनायं निपातितः (**दुराधर्षम्**) दुःखेनाधर्षितुं योग्यं दृढम (**वरुणस्य**) वायोर्जलस्य वा । वरुण इति पदनामसु पठितम् ॥ निघं० ५ । ४ ॥ अनेन प्राप्तिसाधनो गृह्यते ॥ अयं मन्त्रः शत० २ । ३ । ४ । ३७ व्याख्यातः ॥ ३१ ॥

प्रमाणार्थ—(**त्रीणाम्**) यहां वेद में सब विधियां विकल्प से होती हैं, इस नियम से 'त्रेस्त्रयः' [अ० ७ । १ । ५३] सूत्र से 'त्रि' को 'त्रय' आदेश नहीं है। (**अर्यम्णः**) 'अर्यमा' शब्द 'श्वन्नुक्षन्पूषन्०' उणा० (१ । १५६) सूत्र से निपातन द्वारा सिद्ध है। (**वरुणस्य**) 'वरुण' शब्द निघं० (५ । ४) में पद-नामों में पढ़ा है। इस से प्राप्ति साधन अर्थ गृहीत होता है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (२ । ३ । ४ । ३७) में की गई है ॥ ३ । ३१ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **ब्रह्मणस्पते** ! **तव कृपया मित्रस्य** बाह्याभ्यन्तरस्थस्य प्राणस्य **अर्यम्णः** य ऋच्छति=नियच्छत्याकर्षणेन पृथिव्यादीन् स सूर्यलोकस्तस्य **वरुणस्य वायोर्जलस्य** वा **त्रीणां** त्रयाणां (सकाशात्) **सकाशात नः**=**अस्माकं द्युक्षं** द्यौर्नीतिः प्रकाशः क्षियति=निवसति यस्मिंस्तत् **दुराधर्षं** दुःखेनाधर्षितुं योग्यं दृढं [**महि**]=**महद् अवो** रक्षणादिकम् **अस्तु** भवतु ॥ ३ । ३१ ॥

भाषार्थ—हे (**ब्रह्मणस्पते**) जगदीश्वर ! आपकी कृपा से (**मित्रस्य**) बाहर और अन्दर विद्यमान प्राण (**अर्यम्णः**) आकर्षण के द्वारा पृथिवी आदि का नियमन करने वाला सूर्य (**वरुणस्य**) वायु वा जल इन (**त्रीणाम्**) तीनों से (**नः**) हमें (**द्युक्षम्**) नीति और प्रकार के निवास योग्य राज्य का (**दुराधर्षम्**) दृढ़ (**मही**) महान् (**अवः**) रक्षण आदि (**अस्तु**) प्राप्त हो ॥ ३ । ३१ ॥

[अनुवृत्तिमाह—]

भावार्थः—अत्र पूर्वस्मान्मन्त्राद् 'ब्रह्मणस्पते', 'नः' इति पदद्वयानुवृत्तिर्विज्ञेया ।

भावार्थ—यहां पूर्व मन्त्र से 'ब्रह्मणस्पते' और 'नः' इन दो पदों की अनुवृत्ति समझें।

[हे ब्रह्मणस्पते ! तव कृपया मित्रस्यार्यम्णो वरुणस्य त्रीणां सकाशात्, नः=अस्माकं द्युक्षं···[महि] महदवोऽस्तु]

मनुष्यैस्सर्वेभ्यः पदार्थेभ्यः स्वस्यान्येषां च न्यायेन रक्षणं कृत्वा राज्यपालनं कार्यमिति ॥ ३ । ३१ ॥

मनुष्य सब पदार्थों से अपनी और दूसरों की न्याय से रक्षा करके राज्य का पालन करें ॥ ३ । ३१ ॥

भा० पदार्थः—द्युक्षम्=राज्यम् ॥

भाष्यसार—**ईश्वर प्रार्थना किस लिये**—प्रार्थना करने से ईश्वर कृपा करके प्राण, **सूर्यलोक**, वरुण (**वायु वा जल**) इन तीनों से हमारे दृढ़ एवं महान् राज्य की रक्षा करता है।

सप्तधृतिर्वारुणिः । **आदित्यो**=ईश्वरः ॥ निचृद्गायत्री । षड्जः ॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते ॥

फिर वह जगदीश्वर कैसा है, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

नहि तेषाममा चन नाध्वसु वारणेषु । ईशे रिपुरघशंसः ॥ ३२ ॥

पदार्थः—(नहि) निषेधार्थे (**तेषाम्**) परमेश्वरोपासकानां सूर्यप्रकाशस्थितानां वा (**अमा**) गृहेषु । अमेति गृहनामसु पठितम् ॥ निघं ३ । ४ ॥ (**चन**) अपि (न) निषेधार्थे (**अध्वसु**) मार्गेषु (**वारणेषु**) वारयन्ति यैर्युद्धैस्तेषु वा वारयन्ति ये चोरदस्युव्याघ्रादयो येषु तेषु (**ईशे**) समर्थो भवामि (**रिपुः**) शत्रुः (**अघशंसः**) योऽघानि=पापानि कर्माणि शंसति सः । अयं मंत्रः शत० २ । ३ । ४ । ३७ व्याख्यातः ॥ ३२ ॥

प्रमाणार्थ—(अमा) 'अमा' शब्द निघं० (३ । ४) में गृह नामों में पढ़ा है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (२ । ३ । ४ । ३७) में की गई है ॥ ३ । ३२ ॥

सपदार्थान्वयः—य ईश्वरोपासका**स्तेषां** परमेश्वरोपासकानां सूर्यप्रकाशस्थितानां वा **अमा=गृहेषु, अध्वसु** मार्गेषु **वारणेषु** वारयन्ति यैर्युद्धैस्तेषु, वा वारयन्ति ये चोरदस्युव्याघ्रादयो येषु तेषु **चन** अपि **अघशंसः** योऽघानि=पापानि कर्माणि शंसति स **रिपुः** शत्रुः **नह्युत्तिष्ठते=न खलु तान् क्लेशयितुं शक्नोति, तं तांश्चाहमीशे** समर्थो भवामि ॥ ३ । ३२ ॥

भाषार्थ—जो (**तेषाम्**) परमेश्वर के उपासक हैं, उनके वा सूर्य के प्रकाश में रहने वालों के (**अमा**) घरों में (**अध्वसु**) मार्गों में (**वारणेषु**) युद्धों में एवं चोर, डाकू व्याघ्र आदि के स्थान जङ्गलों में (**चन**) भी (**अघशंसः**) पाप कर्मों का प्रशंसक (**रिपुः**) शत्रु, उनको (**नहि**) क्लेश नहीं दे सकता, क्योंकि उस पापी का और उन ईश्वरोपासकों का मैं जगदीश्वर (**ईशे**) स्वामी हूँ ॥ ३ । ३२ ॥

[य ईश्वरोपासकास्तेषां···रिपुर्नह्युत्तिष्ठते=न खलु तान् क्लेशयितुं शक्नोति]

भावार्थः—ये धर्मात्मानः सर्वोपकारकाः सन्ति नैव क्वापि तेषां भयं भवति, येऽजातशत्रवो नैव तेषां कश्चिदपि शत्रुर्जायते ॥ ३ । ३२ ॥

भावार्थ—जो धर्मात्मा, सब का उपकार करने वाले मनुष्य हैं, उन्हें कहीं भी भय नहीं होता, जो अजातशत्रु मनुष्य हैं उनका कोई भी शत्रु नहीं होता ॥ ३ । ३२ ॥

भाष्यसार—**ईश्वर कैसा है**—जो ईश्वर की उपासना करने वाले, धर्मात्मा, सर्वोपकारी मनुष्य हैं, उन्हें ईश्वर घर, मार्ग, युद्ध, जङ्गल सभी स्थानों में निर्भय कर देता है । और जो सूर्य के प्रकाश में रहते हैं वे भी निर्भय होते हैं । अपने उपासकों को ईश्वर अजातशत्रु बना देता है । उन्हें कोई भी शत्रु दुःख नहीं दे सकता, क्योंकि ईश्वर उनको समर्थ बना देता है ॥ ३ । ३२ ॥

वारुणिः सप्तधृतिः । **आदित्याः**=**मित्रार्यमवरुणाः** ॥ विराड् गायत्री । षड्जः ॥

आदित्यानां किं कर्मास्तीत्युपदिश्यते ॥

आदित्यों के क्या-क्या कर्म हैं, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

ते हि पुत्रासो ऽ अदितेः प्र जीवसे मर्त्याय । ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम् ॥ ३३ ॥

पदार्थः—(ते) पूर्वोक्ताः (हि) निश्चये (पुत्रासः) मित्रार्यमवरुणाः (अदितेः) अखण्डितायाः कारणशक्तेः (प्र) प्रकृष्टार्थे (जीवसे) जीवितुम् (मर्त्याय) मनुष्याय (ज्योतिः) तेजः (यच्छन्ति) ददति (अजस्रम्) निरन्तरम् ॥ अयं मन्त्र शत० २ । ३ । ४ । ३७ व्याख्यातः ॥ ३३ ॥

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (२ । ३ । ४ । ३७) में की गई है ॥ ३ । ३३ ॥

सपदार्थान्वयः—ये ऽदितेः अखण्डितायाः कारणशक्तेः पुत्रासः=पुत्राः मित्रार्यमवरुणाः ते पूर्वोक्ता हि निश्चयेन मर्त्याय मनुष्याय जीवसे जीवितुम् अजस्रम् निरन्तरं ज्योतिः तेजः प्रयच्छन्ति प्रकृष्टं ददति ॥ ३ । ३३ ॥

भाषार्थ—जो (अदितेः) अखण्डित कारण शक्ति के (पुत्रासः) पुत्र, मित्र, अर्यमा, वरुण नामक हैं (ते) वे पूर्वोक्त (हि) निश्चय से (मर्त्याय) मनुष्य के (जीवसे) जीने के लिये (अजस्रम्) निरन्तर (ज्योतिः) तेज को (प्रयच्छन्ति) उत्तम रीति से प्रदान करते हैं ॥ ३ । ३३ ॥

[येऽदितेः पुत्रासः=पुत्रास्ते हि मर्त्याय जीवसेऽजस्रं ज्योतिः प्रयच्छन्ति]

भावार्थः—एते कारणादुत्पन्नाः प्राणवाय्वादयो नित्यं ज्योतिः प्रयच्छन्तः सर्वेषां जीवनाय मरणाय वा निमित्तानि भवन्तीति ॥ ३ । ३३ ॥

भावार्थ—ये कारण से उत्पन्न हुये प्राण-वायु आदि सदा ज्योति प्रदान करते हुये सब के जीवन वा मरण के लिये निमित्त होते हैं ॥ ३ । ३३ ॥

भाष्यसार—**आदित्यों का कर्म**—मित्र=प्राण, अर्यमा=सूर्य, वरुण=वायु वा जल ये कारण रूप प्रकृति से उत्पन्न होने से अदिति (**प्रकृति**) के पुत्र कहाते हैं। अखण्डित (**अविनाशी**) होने से प्रकृति का नाम अदिति है। ये प्राण आदि सब के जीवन के लिये ज्योति प्रदान करते हैं। सबके जीवन और मरण का निमित्त भी यही है ॥ ३ । ३३ ॥

मधुच्छन्दाः । **इन्द्रः**=ईश्वरः ॥ पथ्या बृहती । मध्यमः ॥

स इन्द्रः कीदृश इत्युपदिश्यते ॥

वह इन्द्र कैसा है, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे ।
उपोपेन्नु मघवन् भूयऽइन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥ ३४ ॥

पदार्थः—(कदा) कस्मिन् काले (चन) आकांक्षायाम् (स्तरीः) यः सुखैः स्तृणात्याच्छादयति सः । अत्र अवितृ० ॥ उ० ३ । १५८ ॥ इति ईः प्रत्ययः (असि) भवसि (न) निषेधार्थे (इन्द्र) सुखप्रदेश्वर (सश्चसि) जानासि प्रापयसि वा । सश्चतीति गतिकर्मसु पठितम् ॥ निघं० २ । १४ ॥ (दाशुषे) विद्यादिदानकर्त्रे (उपोप) सामीप्ये (इत्) एति=जानात्यनेन तदिज्ज्ञानम् (नु) क्षिप्रम् । न्विति क्षिप्रनामसु पठितम् ॥ निघं० २ । १५ ॥ (मघवन्) परमधनवन् (भूयः) पुनः (इत्) एव (नु) क्षिप्रे (ते) तव (दानम्) दीयमानम् (देवस्य) कर्मफलप्रदातुः (पृच्यते) संबध्यते ॥ अयं मंत्रः शत० २ । ३ । ४ । ३८ व्याख्यातः ॥ ३४ ॥

प्रमाणार्थ—(स्तरीः) 'स्तरी' शब्द आच्छादन अर्थ वाली 'स्तृ' धातु से 'अवितृ०' उ० (३ । १५८) सूत्र से 'ई' प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है। (सश्चसि) 'सश्चति' शब्द निघं० (२ । १४) में

गत्यर्थक धातुओं में पढ़ा है। (नु) 'नु' शब्द निघं० (२। १५) में क्षिप्र-नामों में पढ़ा है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (२। ३। ४। ३८) में की गई है ॥ ३। ३४॥

सपदार्थान्वयः—हे इन्द्र! सुखप्रदेश्वर! यदा त्वं **स्तरीः** यः सुखैः स्तृणात्याच्छादयति स **असि** भवसि, **तदा दाशुषे** विद्यादिदानकर्त्रे **कदा** कस्मिन् काले **चन इत्** अपि एतिजानात्यनेन तदिज्ज्ञानं **नु** क्षिप्रं **न सश्चसि** न जानासि प्रापयसि वा।

भाषार्थ—हे (**इन्द्र**) सुखदाता ईश्वर! जब आप (**स्तरीः**) सब सुखों से अच्छादित करने वाले (**असि**) हो, तब (**दाशुषे**) विद्या आदि के दान करने वाले के लिये (**कदाचन**) कब (**इत्**) ज्ञान को (**नु**) शीघ्रता से (**न सश्चसि**) नहीं प्राप्त कराते हो?

तदा हे **मघवन्**! परमधनवन्! **देवस्य** कर्मफलप्रदातुः **ते**=**तव दानं** दीयमानं तस्मै **दाशुषे** विद्यादिदानकर्त्रे **भूयः** पुनः **कदा** कस्मिन् काले **चन** अपि **इत्** एव नु क्षिप्रं **नोपोपपृच्यते** समीपं न सम्बध्यते?॥ ३। ३४॥

तब हे (**मघवन्**) परम धनवान्! (**देवस्य**) कर्म का फल देने वाले (**ते**) आपका (**दानम्**) दान उस (**दाशुषे**) विद्या आदि का दान करने वाले के लिये (**भूयः**) फिर (**कदाचन**) किस काल में (**इत्**) ही (**नु**) शीघ्रता से (**नोपोपपृच्यते**) उप सम्बन्ध नहीं होता है?॥ ३। ३४॥

[हे मघवन्! देवस्य ते=तव दानं दाशुषे भूयः कदा चनेन्नु नोपपृच्यते?]

भावार्थः—यदीश्वरः कर्मफलदाता न स्यात्तर्हि न कश्चिदपि जीवो व्यवस्थया कर्मफलं प्राप्नुयादिति ॥ ३। ३४॥

भावार्थ—यदि ईश्वर कर्म फलों का दाता न हो तो कोई भी जीव व्यवस्थापूर्वक कर्म-फल को प्राप्त नहीं कर सकता ॥ ३। ३४॥

भाष्यसार—**इन्द्र कैसा है**—सुखों का दाता इन्द्र सब सुखों से आच्छादित करने वाला है, विद्या आदि का दान करने वाले मनुष्य को वह कब ज्ञान-प्रदान नहीं करता? अर्थात् सदा ही ज्ञान देता रहता है। इन्द्र परम धनवान् और कर्म फल का दाता है। इन्द्र विद्या आदि का दान करने वाले मनुष्य को उत्तम कर्म-फल शीघ्र प्रदान करता है ॥ ३। ३४॥

विश्वामित्रः। **सविता**=ईश्वरः॥ निचृद्गायत्रीः। षड्जः॥

तस्य जगदीश्वरस्य कीदृश्यः स्तुतिप्रार्थनोपासनाः कार्या इत्युपदिश्यते ॥

उस जगदीश्वर की कैसी स्तुति प्रार्थना और उपासना करनी चाहिये, इस विषय का उपदेश किया जाता है॥

तत् स॑वि॒तुर्वरे॑ण्यं॒ भर्गो॑ दे॒वस्य॑ धीमहि। धियो॒ यो नः॑ प्रचो॒दया॑त् ॥ ३५ ॥

पदार्थः—(**तत्**) वक्ष्यमाणम् (**सवितुः**) सर्वस्य जगतः प्रसवितुः। **सविता वै देवानां प्रसविता तथो हास्माऽएते सवितृप्रसूता एव सर्वे कामाः समृध्यन्ते ॥ शत० २। ३। ४। ३६ ॥** (**वरेण्यम्**) अतिश्रेष्ठम्। **अत्र वृञ एण्यः ॥ उ० ३। ९८ ॥ अनेन वृञ्धातोरेण्यप्रत्ययः** (**भर्गः**) भृज्जन्ति पापानि=दुःखमूलानि येन तत्। **अन्च्यज्जियुजि० ॥ उ० ४। २१६ ॥ इति भ्रस्जधातोरसुन्प्रत्ययः कवर्गादेशश्च** (**देवस्य**) प्रकाशमयस्य शुद्धस्य सर्वसुखप्रदातुः परमेश्वरस्य (**धीमहि**) दधीमहि। **अत्र डुधाञ्धातोः प्रार्थनायां लिङ् छन्दस्युभयथेत्यार्धधातुकत्वाच्छब् न। आतो लोप इटि चेत्याकारलोपश्च।** (**धियः**) प्रज्ञा बुद्धिः। **धीरिति प्रज्ञानामसु पठितम् ॥ निघं ३। ९ ॥**

(यः) सविता देवः परमेश्वरः (नः) अस्माकम् (प्र) प्रकृष्टार्थे (चोदयात्) प्रेरयेत् ॥ अयं मन्त्रः शत० २ । ३ । ४ । ३९ व्याख्यातः ॥ ३५ ॥

प्रमाणार्थ—(सवितुः) शत० (२ । ३ । ४ । ३९) में 'सविता' शब्द का अर्थ "देवों का उत्पन्न करने वाला है क्योंकि उस सविता देव से उत्पन्न ये सभी कामनाएँ इस यजमान के लिए समृद्ध होती हैं" (वरेण्यम्) 'वरेण्य' शब्द 'वृञ एण्यः' उणा० (३ । ९८) से 'वृञ्' धातु से 'एण्य' प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है । (भर्गः) 'भर्गः' शब्द 'अञ्च्यञ्जियुजि०' उणा० (४ । २१६) से 'भ्रस्ज' धातु से 'असुन' प्रत्यय और कवर्ग आदेश करने पर सिद्ध होता है । (धीमहि) यहां 'डुधाञ्' धातु से प्रार्थना अर्थ में लिङ् लकार है, 'छन्दस्युभयथा' अष्टा० [३ । ४ । ११७] सूत्र से आर्धधातुक संज्ञा होने से 'शप्' नहीं हुआ । 'आतो लोप इटि च' अष्टा [६ । ४ । ६४] सूत्र से आकार का लोप है । (धियः) 'धी' शब्द निघं० (३ । ९) में प्रज्ञा-नामों में पढ़ा है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (२ । ३ । ४ । ३९) में की गई है ॥ ३ । ३५ ॥

सपदार्थान्वयः—वयं सवितुः सर्वस्य जगतः प्रसवितुः **देवस्य=परमेश्वरस्य** प्रकाशमयस्य शुद्धस्य सर्वसुखप्रदातुः परमेश्वरस्य **यद् वरेण्यम्** अतिश्रेष्ठं **भर्गः** भुज्जन्ति पापानिदुःखमूलानि येन तत् **स्वरूपमस्ति तद् धीमहि** दधीमहि ।

भाषार्थ—हम लोग (**सवितुः**) सब जगत् के उत्पत्ति कर्त्ता (**देवस्य**) प्रकाशमय, शुद्धस्वरूप, सब सुख दाता परमेश्वर का जो (**वरेण्यम्**) अति श्रेष्ठ (**भर्गः**) दुःखमूलक पापों को भस्म करने वाला स्वरूप है (**तत्**) उसे (**धीमहि**) धारण करें ।

यः=सविता देवोऽन्तर्यामी परमेश्वरः नः=अस्माकं धियः प्रज्ञाः बुद्धीः **प्रचोदयात्=प्रेरयेत** प्रकृष्टं प्रेरयेत् ॥ ३ । ३५ ॥

(**यः**) जो सविता देव अर्थात् अन्तर्यामी परमेश्वर है वह (**नः**) हमारी (**धियः**) प्रज्ञा एवं बुद्धियों को (**प्रचोदयात्**) शुभ कर्मों में प्रेरित करे ॥ ३ । ३५ ॥

[वयं सवितुर्देवस्य=परमेश्वरस्य यद् वरेण्यं भर्गः स्वरूपमस्ति तद् धीमहि]

भावार्थः—मनुष्यैः सकलजगदुत्पादकस्य सर्वोत्कृष्टस्य सकलदोषनाशकस्य शुद्धस्य परमेश्वरस्यैवोपासना नित्यं कार्या, कस्मै प्रयोजनायेत्यत्राह—

भावार्थ—मनुष्य, सकल जगत् के उत्पत्ति-कर्त्ता, सबसे उत्तम, सब दोषों को नष्ट करने वाले, शुद्ध स्वरूप, परमेश्वर की उपासना नित्य करें । किस प्रयोजन के लिए ? इसके उत्तर में वेद कहता है :—

[यः...नः= अस्माकं धियः प्रचोदयात्=प्रेरयेत्]

स स्तुतो, धारितः, प्रार्थितः, उपासितः सन्नस्मान् सर्वेभ्यो दुष्टगुणकर्मस्वभावेभ्यः पृथक्कृत्य सर्वेषु गुणकर्मस्वभावेषु नित्यं प्रवर्त्तयेदित्यस्मै ।

स्तुति, धारणा, प्रार्थना और उपासना किया हुआ वह परमेश्वर हमें सब दुष्ट गुण, कर्म, स्वभावों से पृथक् करके सब श्रेष्ठ गुण, कर्म, स्वभावों में सदा प्रवृत्त रखे, इसलिए परमेश्वर की स्तुति आदि करना योग्य है ।

[प्रार्थनासिद्धान्तमाह—]

अयमेव प्रार्थनाया मुख्यः सिद्धान्तः—यादृशीं

प्रार्थना का यही मुख्य सिद्धान्त है कि जैसी

प्रार्थनां कुर्यात् तादृशमेव कर्माचरेदिति ॥ ३ । ३५ ॥ प्रार्थना करें वैसा ही कर्म (**आचरण**) भी करें । ॥ ३ । ३५ ॥

भा० पदार्थः—सवितुः=सकलजगदुत्पादकस्य । वरेण्यम्=सर्वोत्कृष्टम् । भर्गः=सकलदोषनाशकम् । प्रचोदयात्=नित्यं प्रवर्त्तयेत् ॥

अन्यत्र व्याख्यात=महर्षि ने इस मन्त्र का विनियोग संस्कारविधि (**वेदारम्भ प्रकरण**) में आचार्य के द्वारा भात की आहुति देने में किया है ॥

भाष्यसार—१. **ईश्वर की स्तुति**—ईश्वर सब जगत् का उत्पादक, प्रकाशमय, शुद्धस्वरूप, सब सुखों का दाता, अतिश्रेष्ठ, और सब पापों को नष्ट करने वाला है ।

२. **ईश्वर प्रार्थना**—अन्तर्यामी परमेश्वर हमारी बुद्धियों को सब दुष्ट गुण, कर्म, स्वभावों से पृथक् करके सर्वश्रेष्ठ गुण, कर्म स्वभावों में प्रवृत करें ।

३. **ईश्वर-उपासना**—ईश्वर के सर्वोत्कृष्ट, सकल दोषनाशक, शुद्ध स्वरूप को हम धारण करें, उसकी नित्य उपासना करें ॥ ३ । ३५ ॥

●

वामदेवः । **अग्निः**=**ईश्वरः** ॥ निचृद्गायत्री । षड्जः ॥

स जगदीश्वरः कीदृश इत्युपदिश्यते ॥

वह परमेश्वर कैसा है, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

परि ते दूडभो रथोऽस्माँ२ऽअश्नोतु विश्वतः । येन रक्षसि दाशुषः ॥ ३६ ॥

पदार्थः—(**परि**) सर्वतः (**ते**) तव व्यापकेश्वरस्य (**दूडभः**) दुखेन दम्भितुं=हिंसितुं योग्यः । अत्र दंभुधातोः खल् प्रत्ययः । दुरो दाशनाशदभध्येषु ऊत्वं वक्तव्यमुत्तरपदादेश्च ष्टुत्वम् ॥ अ० ६ । ३ । १०९ ॥ एतत्सूत्रभाष्योक्तवार्त्तिकेन नकारलोपेन चास्य सिद्धिः (**रथः**)रयते=जानाति येन स रथः । रथो रंहतेर्गतिकर्मणः स्थिरतेर्वा स्याद्विपरीतस्य रममाणोऽस्मिंस्तिष्ठतीति वा रपतेर्वारसतेर्वा ॥ नि० ९ । ११ ॥ (**अस्मान्**) भवदाज्ञासेवकान् (**अश्नोतु**) अश्नुताम्=व्याप्नोतु । अत्र व्यत्ययेन परस्मैपदम् (**विश्वतः**) सर्वतः (**येन**) ज्ञानेन (**रक्षसि**) पालयसि (**दाशुषः**) विद्यादिदानकर्तॄन् ॥ अयं मंत्रः शत० २ । ३ । ४ । ४०–४१ । व्याख्यातः ॥ ३६ ॥

प्रमाणार्थ—(**दूडभः**) यहां 'दम्भु' धातु से 'खल्' प्रत्यय है । 'दुरो दाशनाश दभध्येषु ऊत्वं वक्तव्यमुत्तरपदादेश्च ष्टुत्वम्' अष्टा० (६ । ३ । १०९) इस भाष्योक्तवार्त्तिक से नकार लोप होने से इस शब्द की सिद्धि समझनी चाहिए । (**रथः**) 'रथ' शब्द की व्याख्या निरु० (९ । ११) में इस प्रकार की गई है—गत्यर्थक 'रंह्' धातु से रथ शब्द बनता है, अथवा 'स्थिर' शब्द का वर्णविपर्य करने से यह शब्द सिद्ध होता है, अथवा इस पर रमणीय व्यक्ति ही बैठता है, इसलिये इसे रथ कहते हैं, अथवा 'रप्' या 'रस' धातु से 'रथ' शब्द की सिद्धि जाननी चाहिए । (**अश्नोतु**) अश्नुताम् । यहां व्यत्यय से परस्मैपद है । इस मन्त्र को व्याख्या शत० (२ । ३ । ४ । ४०–४१) में की गई है ॥ ३ । ३६ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे जगदीश्वर ! त्वं येन=रथेन** ज्ञानेन दाशुषः विद्यादिदानकर्तॄन् **विश्वतः** सर्वतः **रक्षसि** पालयसि ।

भाषार्थ—हे जगदीश्वर ! आप (**येन**) जिस रथ अर्थात् ज्ञान से (**दाशुषः**) विद्या आदि के दान करने वालों की (**विश्वतः**) सब ओर से

(रक्षसि) पालना करते हो।

स ते=**तव** (तव) व्यापकेश्वरस्य **दूडभः** दुःखेन दम्भितुं=हिंसितुं योग्यः **रथः**=**विज्ञानं** रयते= जानाति येन स रथः **विश्वतः** सर्वतः **रक्षितुमस्मान्** भवदाज्ञा सेवकान् **पर्यश्नोतु**=**सर्वतः प्राप्नोतु** सर्वत अश्नुतां=व्याप्नोतु ॥ ३ । ३६ ॥

वह (ते) आप व्यापक ईश्वर का (**दूडभः**) सुदृढ़ (**रथः**) विज्ञान (**विश्वतः**) सब ओर से रक्षा करने के लिए हम आपके आज्ञा-पालकों को (**पर्यश्नोतु**) सब ओर से प्राप्त हो ॥ ३ । ३६ ॥

[हे जगदीश्वर ! त्वं येन रथेन दाशुषो विश्वतो रक्षसि, स ते=तव···रथो=विज्ञानं विश्वतो रक्षितुमस्मान् पर्यश्नोतु=सर्वतः प्राप्नोतु]

भावार्थः—मनुष्यैः सर्वाभिरक्षकस्य परमेश्वरस्य विज्ञानस्य च प्राप्तये प्रार्थना पुरुषार्थौ नित्यं कर्त्तव्यौ, यतो रक्षिताः सन्तो वयमसद्विद्याऽधर्मादिदोषाँस्त्यक्त्वा सद्विद्याधर्मादिशुभगुणान् प्राप्य सदा सुखिनः स्यामेति ॥ ३ । ३६ ॥

भावार्थ—मनुष्य, सबके रक्षक परमेश्वर की और विज्ञान की प्राप्ति के लिये ईश्वर-प्रार्थना और पुरुषार्थ नित्य करें, जिससे रक्षा को प्राप्त हुए हम लोग असद्-विद्या और अधर्म आदि दोषों को छोड़कर सद्-विद्या और धर्म आदि शुभ गुणों को प्राप्त करके सदा सुखी रहें ॥ ३ । ३६ ॥

भाष्यसार—**ईश्वर कैसा है**—जगदीश्वर सबका रक्षक है, जो अपने विज्ञान से विद्यादि शुभ गुणों के दाता जनों की सब ओर से रक्षा करता है। उस व्यापक ईश्वर का विज्ञान ऐसा है कि उसे कोई दबा नहीं सकता, नष्ट नहीं कर सकता किन्तु वह विज्ञान उसके आज्ञापालक, प्रार्थी एवं पुरुषार्थी जनों को ही प्राप्त होता है ॥ ३ । ३६ ॥

वामदेव । **प्रजापतिः**=ईश्वरः । ब्राह्म्युष्णिक् । ऋषभः ॥

पुनः स जगदीश्वरः किमर्थः प्रार्थनीय इत्युपदिश्यते ॥

फिर उस जगदीश्वर की प्रार्थना किसलिए करनी चाहिये, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याꣳ सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः ।
नर्य्य प्रजां मे पाहि शꣳस्य पशून् मे पाह्यथर्य्य पितुं मे पाहि ॥ ३७ ॥

पदार्थः—(**भूः**) प्रियस्वरूपः प्राणः (**भुवः**) बलनिमित्त उदानः (**स्वः**) सर्वचेष्टानिमित्तो व्यानश्च तैः सह (**सुप्रजाः**) शोभना सुशिक्षा सद्विद्यासहिता प्रजा यस्य सः (**प्रजाभिः**) अनुकूलाभिः स्त्र्यौरसविद्यासन्तानमित्रभृत्यराज्यपश्वादिभिः (**स्याम्**) भवेयम् (**सुवीरः**) शोभना वीराः=शरीरात्मबलसहिता यस्य सः (**वीरैः**) शौर्यधैर्यविद्याशत्रुनिवारणप्रजापालनकुशलैः (**सुपोषः**) श्रेष्ठाः पोषाः=पुष्टयो यस्य सः (**पोषैः**) पुष्टिकारकैराप्तविद्याजनितैर्बोधयुक्तैर्व्यवहारैः (**नर्य**) नीतियुक्तेषु नृषु साधु-स्तत्सम्बद्धौ परमेश्वर ! (**प्रजाम्**) सन्तानादिकाम् (**मे**) मम (**पाहि**) सततं रक्ष (**शंस्य**) शंसितुं=सर्वथा स्तोतुमर्ह (**पशून्**) गोऽश्वहस्त्यादीन् (**मे**) मम (**पाहि**) रक्षय (**अथर्य**) संशयरहित । **थर्वतिश्चरतिकर्म्मा ॥ निरु० ११ । १८ ॥** थर्वति=संशेते यः स थर्य्यो न थर्य्योऽथर्यस्तत्सम्बुद्धौ । **अत्र वर्णव्यत्ययेन वकारस्थाने यकारः** (**पितुम्**) अन्नम् । **पितुरित्यन्ननामसु पठितम् ॥ निघं० २ । ७ ॥** (**मे**) **मम** (**पाहि**) रक्ष । **अत्रोभयंत्रान्तर्गतोण्यर्थः । अयं**

मंत्रः शत० २ । ४ । १ । १—६ व्याख्यातः ॥ ३७ ॥

प्रमाणार्थ—(**अथर्य**) निरु० (११ । १८) में 'थर्वति' क्रिया 'चरति' अर्थ में है। यहां वर्ण-व्यत्यय से वकार के स्थान में यकार है। (**पितुम्**) 'पितु' शब्द निघं० (२ । ७) में अन्न-नामों में पढ़ा है। (**पाहि**) यहां दोनों स्थानों में अन्तर्भावितण्यर्थ है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (२ । ४ । १ । १–६) में की गई है ॥ ३ । ३७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **नर्य्य** ! नीति युक्तेषु नृषु साधुस्तत्सम्बुद्धौ परमेश्वर ! **त्वं कृपया मे**=**मम प्रजां** सन्तानादिकां **पाहि** सततं रक्ष ।

मे=**मम पशून्** गोऽश्वहस्त्यादीन् **पाहि** रक्षय ।

हे **अथर्य** ! संशय रहित, थर्वति=संशेते यः स थर्य्यो न थर्य्योऽथर्यस्तत्सम्बुद्धौ ! **मे**=**मम पितुम्** अन्नं **पाहि** रक्ष ।

हे **शंस्य**=**जगदीश्वर** ! शंसितुं सर्वथा स्तोतुमर्ह ! भवत्कृपयाहं **भूर्भुवः स्वः**=**प्राणापान-व्यानैर्युक्तः सन्** [**भूः**] प्रियस्वरूपः प्राणः, [**भुवः**] बलनिमित्त उदानः [**स्वः**] सर्वचेष्टानिमित्तो व्यानश्च तैः सह **प्रजाभिः** अनुकूलाभिः स्त्र्यौरसविद्यासन्तान-मित्रभृत्यराज्यपश्वादिभिः **सुप्रजाः** शोभना सुशिक्षा-सद्विद्यासहिता प्रजा यस्य सः **वीरैः** शौर्यधैर्यविद्या शत्रुनिवारणप्रजापालनकुशलैः **सुवीरः** शोभना वीराः=शरीरात्मबल सहिता यस्य सः **पोषैः** पुष्टि-कारकैराप्तविद्याजनितैर्बोधयुक्तैर्व्यवहारैः **सह च सुपोषः** श्रेष्ठाः पोषाः=पुष्टयो यस्य सः **स्याम्**= नित्यं भवेयम् ॥ ३ । ३७ ॥

भाषार्थ—हे (**नर्य्य** !) नीतिमान् नरों में श्रेष्ठ परमेश्वर ! आप कृपा करके (**मे**) मेरी (**प्रजाम्**) सन्तान आदि की (**पाहि**) सदा रक्षा करो।

और (**मे**) मेरे (**पशून्**) गाय, घोड़े, हाथी आदि पशुओं की भी (**पाहि**) रक्षा करो।

हे (**अथर्य**) संशय रहित परमेश्वर ! आप (**मे**) मेरे (**पितुम्**) अन्न की (**रक्ष**) रक्षा करो।

हे (**शंस्य**) सर्वथा स्तुति करने योग्य जगदीश्वर ! आपकी कृपा से मैं [**भूः**] प्रिय स्वरूप प्राण [**भुवः**] बल निमित्त उदान [**स्व**] सब चेष्टाओं के निमित्त व्यान इन प्राण अपान व्यानों से युक्त होकर (**प्रजाभिः**) अनुकूल रहने वाले स्त्री, पुत्र, शिष्य, मित्र, सेवक, राज्य, पशु आदि से (**सुप्रजाः**) उत्तम शिक्षा तथा श्रेष्ठ विद्या से युक्त प्रजा वाला, (**वीरैः**) शौर्य, धैर्य तथा विद्या से विभूषित एवं शत्रु निवारण तथा प्रजापालन में कुशल (**सुवीरः**) शरीर और आत्मा के बलों से युक्त श्रेष्ठ वीरों वाला (**पोषैः**) पुष्टिकारक, आप्त विद्या से उत्पन्न ज्ञान युक्त व्यवहारों से (**सुपोषः**) श्रेष्ठ पुष्टियों वाला (**स्याम्**) सदा रहूँ ॥ ३ । ३७ ॥

[हे **शंस्य**=**जगदीश्वर** ! भवत्कृपयाऽहं ⋯ **प्रजाभिः सुप्रजाः**, **वीरैः सुवीरः**, **पोषैः सह च सुपोषः स्यां**=**नित्यं भवेयम्**]

भावार्थः— मनुष्यैरीश्वरोपासनाज्ञापालन माश्रित्य सुनियमैः पुरुषार्थेन श्रेष्ठप्रजावीरपुष्ट्या-दिकारणैः प्रजापालनं कृत्वा नित्यं सुखं सम्पाद-नीयम् ॥ ३ । ३७ ॥

भावार्थ—मनुष्य, ईश्वरोपासना तथा ईश्वर की आज्ञापालन के आश्रय से उत्तम नियमों एवं पुरुषार्थ के द्वारा श्रेष्ठ प्रजा, वीर पुरुष तथा पुष्टि आदि कारणों से प्रजा का पालन करके नित्य सुख को सिद्ध करें ॥ ३ । ३७ ॥

अन्यत्र व्याख्यात—महर्षि ने इस मन्त्र की व्याख्या संस्कारविधि (**गृहाश्रम प्रकरण**) में इस प्रकार की है—"हे स्त्री वा पुरुष मैं तेरा वा अपने के सम्बन्ध से (**भूर्भुवः, स्वः**) शारीरिक वाचिक और मानस अर्थात् त्रिविध सुख से युक्त हो के (**प्रजाभिः**) मनुष्यादि उत्तम प्रजाओं के साथ (**सुप्रजाः**)

उत्तम प्रजा युक्त (**स्याम्**) होऊँ (**वीरैः**) उत्तम पुत्र बन्धु सम्बन्धी और भृत्यों से सह वर्त्तमान (**सुवीरः**) उत्तम वीरों से सहित होऊँ (**पोषैः**) उत्तम पुष्टिकारक व्यवहारों से (**सुपोषः**) उत्तम पुष्टि युक्त होऊँ हे (**नर्य**) मनुष्यों में सज्जन वीर स्वामिन् (**मे**) मेरी (**प्रजाम्**) प्रजा की (**पाहि**) रक्षा कीजिये। हे (**शंस्य**) प्रशंसा करने योग्य स्वामिन् आप (**मे**) मेरे (**पशून्**) पशुओं की (**पाहि**) रक्षा कीजिये। वैसे हे नारि प्रशंसनीय गुणयुक्त तू मेरी प्रजा, मेरे पशु और मेरे अन्न की सदा रक्षा किया कर'' ॥ २ ॥

महर्षि ने इस मन्त्र की व्याख्या आर्याभिविनय (२ । ३५) में इस प्रकार की है--हे सर्वमङ्गलकारकेश्वर ! आप "भूः" सदा वर्त्तमान हो। "भुवः" वायु आदि पदार्थों के रचने वाले "स्वः" सुख रूप हो, हम को सुख दीजिए। हे सर्वाध्यक्ष ! आप कृपा करो जिससे कि मैं पुत्र पौत्र आदि उत्तम गुण वाली प्रजा से श्रेष्ठ प्रजा वाला होऊँ, सर्वोत्कृष्ट वीर योद्धाओं से "सुवीरः" युद्ध में सदा विजयी होऊँ। हे महापुष्टि प्रद ! आप के अनुग्रह से अत्यन्त विद्यादि तथा सोमलता आदि औषधि सुवर्णादि और नैरोग्यादि सर्वपुष्टियुक्त होऊँ। हे "नर्य" नरों के हितकारक मेरी प्रजा की रक्षा आप करो। हे "शंस्य" स्तुति करने योग्य ईश्वर ! हस्त्यश्वादि पशुओं का पालन करो। हे "अथर्य" व्यापक ईश्वर ! "पितुम्" धरे अन्न की रक्षा कर। हे दयानिधे ! हम लोगों को सब उत्तम पदार्थों से परिपूर्ण और सब दिन आप आनन्द में रखो" ॥ २ । ३५ ॥

भाष्यसार—१. **ईश्वर प्रार्थना किस लिये**—प्रार्थना करने से जगदीश्वर कृपा करके हमारी सन्तान आदि प्रजा की, गौ, घोड़ा, हाथी आदि पशुओं की और अन्न की रक्षा करता है। वह प्राण, अपान और उदान से युक्त करके अनुकूल स्त्री, औरस सन्तान, विद्या सन्तान, मित्र, भृत्य, राज्य, पशु आदि प्रजा से उत्तम विद्या शिक्षा से युक्त प्रजावान् बनाता है। वह शौर्य, धैर्य, विद्या, शत्रुनिवारण और प्रजापालन में कुशल वीरों से हमें शारीरिक—आत्मिक बल से भरपूर वीरवान् बनाता है। वही आप्त विद्या से उत्पन्न होने वाले ज्ञानयुक्त पुष्टिकारक व्यवहारों से हमें अत्यन्त पुष्ट करता है।

यह सब सुख ईश्वर की प्रार्थना के साथ उपासना, आज्ञापालन, उत्तम नियमों का आचरण, एवं पुरुषार्थ से ही सम्भव है ॥

२. **ईश्वर**—जगदीश्वर नीतिमानों में श्रेष्ठ, संशयरहित, और सर्वथा स्तुति के योग्य है ॥ ३ । ३७ ॥

आसुरिः । **अग्निः**=**ईश्वर और भौतिक अग्नि**। अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

अथाग्निशब्देनेश्वरभौतिकावर्थावुपदिश्येते ॥

अब अग्नि शब्द से ईश्वर और भौतिक अग्नि का उपदेश किया जाता है ॥

आग॑न्म वि॒श्ववे॑दसम॒स्मभ्यं॑ वसुवि॒त्त॑मम् । अग्ने॑ सम्राड॒भि द्यु॒म्नम॒भि सह॒ ऽ आय॑च्छस्व ॥ ३८ ॥

पदार्थः—(**आ**) समन्तात् (**अगन्म**) प्राप्नुयाम। **अत्र लिङर्थे लुङ् मन्त्रे घसह्वर० इति च्लेर्लुक्। म्वोश्च ॥** अ० ८ । २ । ६५ ॥ **इति मकारस्य नकारः** (**विश्ववेदसम्**) यो विश्वं वेत्ति स विश्ववेदाः परमेश्वरः। विश्वं=सर्वं सुखं वेदयति=प्रापयति स भौतिकोऽग्निर्वा। **अत्र विदिभुजिभ्यां विश्वे ॥** उ० ४ । २३८ ॥ **अनेनासिः** प्रत्ययः (**अस्मभ्यम्**) उपासकेभ्यो यज्ञानुष्ठातृभ्यो वा (**वसुवित्तमम्**) वसून्पृथिव्यादिलोकान्वेत्ति सोतिशयितस्यग। पृथिव्यादिलोकान् वेदयति=सूर्यरूपेणाग्निरेतान्प्रकाश्य प्रापयति स वसुवित् अतिशयेन वसुविदिति वसुवित्तमो वा तम् (**अग्ने**) विज्ञानस्वरूपेश्वर। विज्ञापको भौतिको वा (**सम्राट्**) यः सम्य-

ग्राजते=प्रकाशते सः (अभि) आभिमुख्ये (द्युम्नम्) प्रकाशकारकमुत्तमं यशः । **द्युम्नं द्योततेर्यशो वान्नं वा ॥ नि० ५ । ५ ॥** (अभि) आभिमुख्ये (सहः) उत्तमं बलम् । **सह इति बलनामसु पठितम् ॥ निघं० २ । ६ ॥** (आ) समन्तात् (यच्छस्व) विस्तारय विस्तारयति वा । **अत्र पक्षे लडर्थे लोट् । आङो यमहनः ॥ अ० १ । ३ । २८ ॥ अनेनात्मनेपदम् । आङ्पूर्वको यमधातुर्विस्तारार्थे ॥ अयं मंत्रः शत० २ । ४ । १ । ७-८ व्याख्यातः ॥ ३८ ॥**

प्रमाणार्थ—(अगन्म) यहां लिङ् अर्थ में लुङ् लकार है और 'मन्त्रे घसह्वर०' अ० [२ । ४ । ८०] सूत्र से 'च्लि' का लुक् एवं 'म्वोश्च' (८ । २ । ६५) सूत्र से मकार को नकार हो गया है। (**विश्ववेदसम्**) 'विश्ववेदाः' शब्द 'विदिभुजिभ्यां विश्वे' उ० (४ । २३८) सूत्र से 'विश्व' शब्द के उपपद रहते 'विद्' धातु से 'असि' प्रत्यय करने पर सिद्ध है। (**द्युम्नम्**) निरु० (५ । ५) में 'द्युम्न' शब्द का अर्थ अन्न और यश किया है। 'द्युम्न' शब्द 'द्युत' धातु से बनता है। (**सहः**) 'सह' शब्द निघं० (२ । ६) में बलनामों में पढ़ा है। (**आयच्छस्व**) यहां पक्ष में लट् अर्थ में लोट् लकार है। 'आङो यम हनः' (१ । ३ । २८) सूत्र से आत्मनेपद है। आङ् पूर्वक 'यम' धातु का अर्थ 'विस्तार' होता है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (२ । ४ । १ । ७-८) में की गई है ॥ ३ । ३८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **सम्राट्** यः सम्यग्राजते=प्रकाशते सः **अग्ने**=**जगदीश्वर** ! विज्ञानस्वरूपेश्वर ! **त्वमस्यभ्यम्** उपासकेभ्यः **द्युम्नं** प्रकाशकारकमुत्तमं यशः **सहः** उत्तमं बलं **चाभ्यायच्छस्व**=**विस्तारय** । अभिमुखं समन्ताद् विस्तारये।

एतदर्थं **वयं वसुवित्तमं** वसून्=पृथिव्यादिलोकान्वेत्ति सोऽतिशयितस्तं **विश्ववेदसं** यो विश्वंवेत्ति स विश्ववेदाः परमेश्वरः **त्वामभ्यागन्म**=**प्राप्नुयाम्** अभिमुखं समन्तात्प्राप्नुयाम । **इत्येकः** ॥

यः सम्राट् यः सम्य ग्राजते=प्रकाशते सः **अग्ने**=**अयमग्निः** विज्ञापको भौतिकः **अस्मभ्यं** यज्ञानुष्ठातृभ्यः **द्युम्नं** प्रकाशकारकमुत्तमं यशः **सहः** उत्तमं बलं [**अभ्यायच्छस्व**]=**अभ्यायच्छति**=**सर्वतो विस्तारयति तं वसुवित्तमं** पृथिव्यादिलोकान् वेदयति सूर्यरूपेणाग्निरेतान् प्रकाश्य प्रापयति स वसुवित्, अतिशयेन वसुविदिति वसुवित्तमो वा तं **विश्ववेदसम्**=**अग्निं** विश्वं सर्वं सुखं वेदयति=प्रापयति स भौतिकोऽग्निः (**तम्**) **वयमभ्यागन्म**=**प्राप्नुयामेति** ॥ **द्वितीयः** ॥ ३ । ३८ ॥

भाषार्थ—हे (**सम्राट्**) प्रकाशस्वरूप ! (**अग्ने**) तथा विज्ञानस्वरूप जगदीश्वर ! आप (**अस्मभ्यम्**) हम उपासकों के लिये (**द्युम्नम्**) प्रकाश करने वाले उत्तम यश तथा (**सहः**) उत्तम बल को (**आयच्छस्व**) विस्तृत कीजिये।

इसलिये हम लोग (**वसुवित्तमं**) वसु=पृथिवी आदि लोकों के ज्ञाता (**विश्ववेदसम्**) सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को जानने वाले परमेश्वर को (**अभ्यागन्म**) प्राप्त करें। यह मन्त्र का पहला अर्थ है।

जो (**सम्राट्**) प्रकाश करने वाला (**अग्ने**) यह रूप को जनाने वाला भौतिक अग्नि (**अस्मभ्यम्**) हम यज्ञानुष्ठान करने वालों को (**द्युम्नम्**) प्रकाशक उत्तम यश, (**सहः**) तथा उत्तम बल को (**अभ्यायच्छस्व**) सब ओर से विस्तृत करता है उस (**वसुवित्तमम्**) वसु=पृथिवी आदि लोकों को सूर्य रूप होकर अग्नि इनको प्रकाशित करके ग्रहण कराने वाले (**विश्ववेदसम्**) सब सुखों के प्रापक भौतिक अग्नि को हम (**अभ्यागन्म**) प्राप्त करें। यह मन्त्र का दूसरा अर्थ है ॥ ३ । ३८ ॥

[हे···**अग्ने**=**जगदीश्वर** ! त्वमस्मभ्यं **द्युम्नं सहश्चाभ्यायच्छस्व**=**विस्तारय** । यः···**अग्ने**=**अयमग्निरस्मभ्यं द्युम्नं सह** [**अभ्यायच्छस्व**]=**अभ्यायच्छति**=**सर्वतो विस्तारयति**]

भावार्थः—अत्र श्लेषालङ्कारः । मनुष्यैः परमेश्वरभौतिकाग्न्योर्गुणविज्ञानेन तदनुसारा-

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष अलङ्कार है ॥ सब मनुष्य, परमेश्वर और भौतिक अग्नि के गुणों

अनुष्ठानेन सर्वतः कीर्तिबले नित्यं विस्तारणीये इति ॥ ३ । ३८ ॥

के विज्ञान को प्राप्त करके, उसके अनुसार आचरण से सब ओर कीर्ति और बल का नित्य विस्तार किया करें ॥ ३ । ३८ ॥

भा० पदार्थः—द्युम्नम्=कीर्तिः ॥

भाष्यसार—१. **अग्नि (ईश्वर)**—जगदीश्वर सम्राट् (**प्रकाशस्वरूप**) तथा विज्ञानस्वरूप है, जो उपासकों के यश और बल का विस्तार करता है। पृथिवी आदि लोकों का ज्ञाता एवं समस्त विश्व का वेत्ता है। इत्यादि ईश्वर के गुणों के ज्ञान तथा तदनुसार आचरण करने से यश और बल बढ़ता है।

२. **अग्नि (भौतिक)**—यह भौतिक अग्नि प्रकाशमय तथा अपने प्रकाश से पदार्थों का विज्ञापक है। इसमें यज्ञ करने से यह यजमानों के यश और उतम बल का विस्तार करता है। यह अग्नि सूर्य रूप में पृथिवी आदि लोकों को प्रकाशित करके ग्रहण कराता है, और सब सुखों का प्रापक है। इत्यादि भौतिक अग्नि के गुणों के ज्ञान तथा तदनुसार आचरण करने से यश और बल को बढ़ावें ॥ ३ । ३८ ॥

आसुरिः । **अग्निः=ईश्वरो भौतिकश्च** ॥ भुरिग्बृहती । मध्यमः ॥

अथेश्वरभौतिकावग्नी उपदिश्येते ॥

अब ईश्वर और भौतिक अग्नि का उपदेश किया जाता है ॥

अयमुग्निर्गृहप॑तिर्गार्हपत्यः प्रजायां वसुवित्तमः । अग्नें गृहपतेऽभि द्युम्नमुभि सह ऽआयच्छस्व ॥३९॥

पदार्थः—(**अयम्**) प्रत्यक्षो वक्ष्यमाणः (**अग्नि**) ईश्वरो विद्युत्सूर्यो ज्वालामयो भौतिको वा (**गृहपतिः**) गृहाणां=स्थानविशेषाणां पतिः=पालनहेतुः (**गार्हपत्यः**) गृहपतिना संयुक्तः। **अत्र गृहपतिना संयुक्ते ञ्यः ॥ अ० ४ । ४ । ६० ॥ अग्ने ञ्यः प्रत्ययः ।** इदं पदं महीधरादिभिर्व्याकरणज्ञानविरहत्वात् गृहस्य पतिः पालक इत्यशुद्धं व्याख्यातम् (**प्रजायाः**) विद्यमानायाः (**वसुवित्तमः**) यो वसूनि=द्रव्याणि वेदयति=प्रापयति सोऽतिशयितः (**अग्ने**) अयमग्निः (**गृहपते**) गृहाभिरक्षकेश्वर, गृहाणां पालयिता वा (**अभि**) अभितः (**द्युम्नम्**) सुखप्रकाशयुक्तं धनम् । **द्युम्नमिति धननामसु पठितम् ॥ निघं० २ । १० ॥** (**अभि**) अभिमुख्ये (**सहः**) उदकं बलं वा। **सह इत्युदकनामसु पठितम् ॥ निघं० १ । १२ ॥ बलनामसु च ॥ निघं० २ । ६ ॥** (**आ**) समन्तात् क्रियायोगे (**यच्छस्व**) सर्वतो देहि आयच्छति विस्तारयति वा । **अत्र पक्षे व्यत्ययः सिद्धिश्च पूर्ववत् ॥ अयं मन्त्रः शत० २ । ४ । १ । ६–११ व्याख्यातः ॥ ३६ ॥**

प्रमाणार्थ—(**गार्हपत्यः**) यह शब्द 'गृहपतिना संयुक्ते ञ्यः' (**अ० ४ । ४ । ६०**) सूत्र से 'गृहपति' शब्द से 'ञ्य' प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है। (**द्युम्नम्**) 'द्युम्न' शब्द निघं० (२ । १०) में धन-नामों में पढ़ा है (**सहः**) 'सहस' शब्द निघं० (१ । १२) में जल नामों में और निघं० (२ । ६) में बल-नामों में पढ़ा है। (**आयच्छस्व**) यहां पक्ष में व्यत्यय है इसकी सिद्धि पूर्व मन्त्र में दी हुई सिद्धि के समान समझें। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (२ । ४ । १ । ६–११) में की गई है ॥ ३ । ३६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे गृहपते ! गृहाभिरक्षकेश्वर ! **अग्ने=परमात्मन्** ! **योऽयं** प्रत्यक्षो वक्ष्यमाणो **भवान् गृहपतिः** गृहाणां=स्थानविशे-

भाषार्थ—हे (गृहपते) घर के रक्षक (**अग्ने**) परमात्मन् ! जो (**अयम्**) यह उपदिश्यमान आप (**गृहपतिः**) घरों के पालक (**गार्हपत्यः**) घर के

षाणां पतिः=पालनहेतुः **गार्हपत्यः** गृहपतिना संयुक्तः **प्रजायाः** विद्यमानायाः **वसुवित्तमः** यो वसूनि=द्रव्याणि वेदयति=प्रापयति सोऽतिशयितः **अग्निः** ईश्वरः **अस्ति**, **तस्मात्त्वमस्मदर्थं द्युम्नं** सुख-प्रकाशयुक्तं धनम् **अभ्यायच्छस्व** अभितः=सर्वतः समन्तात् देहि, **सहः** बलं **चाभ्यायच्छस्व** अभिमुख्येन सर्वतो देहि **इत्येकः** ॥

यस्माद् गृहपतिः गृहाणां=स्थानविशेषाणां पतिः=पालनहेतु **प्रजायाः** विद्यमानायाः **वसुवित्तमः** यो वसूनि=द्रव्याणि वेदयति=प्रापयति सोऽतिशयितः **गार्हपत्यः** गृहपतिना संयुक्तः **अयमग्निः** विद्युत् सूर्यो ज्वालामयो भौतिकः **अस्ति**, तस्मात्स [**गृहपते**] गृहाणां पालयिता [**अग्ने**] अयमग्निः **अभिद्युम्नम्** अभितः सुखप्रकाशयुक्तं धनं सह उदकं **च** [**अभ्यायच्छस्व**]=**अभ्यायच्छति=अभिमुख्येन समन्तात् विस्तारयतीति द्वितीयः** ॥ ३ । ३९ ॥

स्वामी से संयुक्त, (**प्रजायाः**) विद्यमान प्रजा के (**वसुवित्तमः**) सब द्रव्यों के प्रदाता (**अग्निः**) ईश्वर हो, इसलिये आप हमें (**द्युम्नम्**) सुख प्रकाश युक्त धन (**अभ्यायच्छस्व**) सब ओर से दीजिये (**सह**) और बल भी (**अभ्यायच्छस्व**) मुख्यतया सब ओर से प्रदान कीजिये। यह मन्त्र का पहला अर्थ है ॥

जिससे (**गृहपतिः**) घरों का पालक (**प्रजायाः**) विद्यमान प्रजा के लिये (**वसुवित्तमः**) सब द्रव्यों को प्रदान करने वाला (**गार्हपत्यः**) घर के स्वामी से संयुक्त यह (**अग्निः**) विद्युत् सूर्य वा ज्वालामय भौतिक अग्नि है, इसलिये वह [**गृहपते**] घरों का पालन करने वाला [**अग्ने**] अग्नि (**अभिद्युम्नम्**) सब ओर से सुख-प्रकाशयुक्त धन को (**सहश्च**) और जल को (**अभ्यायच्छस्व**) प्रधान तथा चहुँ ओर से विस्तृत करता है। यह मन्त्र का दूसरा अर्थ है ॥ ३ । ३९ ॥

[हे···**अग्ने=परमात्मान्** ! **योऽयं भवान्···अग्निरस्ति, तस्मात्त्वमस्मदर्थं द्युम्नं···सहश्चाभ्यायच्छस्व, अयमयग्निः···अभिद्युम्नं सहश्च [अभ्यायच्छस्व]=अभ्यायच्छति**]

भावार्थः—अत्र श्लेषालङ्कारः ॥ गृहस्थैर्य-देश्वरमुपास्यैतस्याज्ञायां वर्त्तित्वायमग्निः कार्य-सिद्धये संयोज्यते तदानेकविधे धनबले अत्यन्तं विस्तारयति ।

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष अलङ्कार है ॥ गृहस्थ लोग जब ईश्वर की उपासना और इसकी आज्ञा में रहकर इस अग्नि को कार्यसिद्धि के लिये संयुक्त करते हैं तब अनेक प्रकार के धन और बल को यह अग्नि विस्तृत करता है।

[**प्रजाया वसुवित्तमः ···अयमग्निरस्ति**]

कुतः ? प्रजाया मध्येऽस्याग्नेः पदार्थप्राप्तये साधकतमत्वादिति ॥ ३ । ३९ ॥

क्योंकि—प्रजा के मध्य में यह अग्नि पदार्थों की प्राप्ति के लिये सब से बड़ा साधक (**करण**) है ॥ ३ । ३९ ॥

भा० पदार्थः—वसुवित्तमः=पदार्थप्राप्तये साधकतमः ॥

भाष्यसार—१. **अग्नि** (**ईश्वर**)—यह अग्नि अर्थात् परमातमा घरों का रक्षक, गृहपतियों के साथ संयुक्त रहने वाला, प्रजा को सब द्रव्य प्राप्त कराने वाला है। जो हमें सुखदायक धन और बल भी सब ओर से देता है। किन्तु इसके लिये ईश्वर की उपासना और उसकी आज्ञा का पालन आवश्यक है ॥

२. **अग्नि** (**भौतिक**)—यह भौतिक अग्नि घरों की रक्षा का हेतु है तथा प्रजा में द्रव्यों की प्राप्ति के लिये सब से बड़ा साधन है। यह गृहपतियों के साथ सदा संयुक्त रहने वाला है। यह विद्युत्, सूर्य और ज्वाला रूप है। यह सुखदायक धन और जल का भी विस्तारक है ॥ ३ । ३९ ॥

आसुरिः । **अग्निः**=भौतिकः ॥ निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनर्भौतिकोग्निः कीदृश इत्युपदिश्यते ॥

फिर भौतिक अग्नि कैसा है, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

अयमग्निः पुरीष्यो रयिमान् पुष्टिवर्द्धनः । अग्ने पुरीष्याभि द्युम्नमभि सहऽआयच्छस्व ॥ ४० ॥

पदार्थः—(**अयम्**) वक्ष्यमाणलक्षणः (**अग्निः**) पूर्वोक्तो भौतिकः (**पुरीष्यः**) ये पृणन्ति यानि कर्माणि तानि पुरीषाणि तेषु साधुः (**रयिमान्**) प्रशस्ता रययो=धनानि विद्यन्ते यस्मिन् सः । **अत्र प्रशंसार्थे मतुप् । रयिरिति धननामसु पठितम् ॥ निघं० २ । १० ॥** (**पुष्टिवर्द्धनः**) वर्द्धयतीति वर्द्धनः, पुष्टेर्वर्द्धनः पुष्टिवर्द्धनः (**अग्ने**) सर्वोत्तमपदार्थप्रापकेश्वर ! (**पुरीष्य**) पृणन्ति=पूरयन्ति सुखानि यैर्गुणैस्ते पुरीषास्तेषु साधुस्तत्सम्बुद्धौ (**अभि**) अभितः (**द्युम्नम्**) विज्ञानसाधकम् (**अभि**) आभिमुख्ये (**सः**) शरीरात्मबलम् (**आ**) समन्तात् क्रियायोगे (**यच्छस्व**) विस्तारय । **अस्य सिद्धिः पूर्ववत् ॥ ४० ॥**

प्रमाणार्थ—(**रयिमान्**) यहाँ प्रशंसा अर्थ में 'मतुप्' प्रत्यय है । 'रयि' शब्द निघं० (२ । १०) में धन-नामों में पढ़ा है । (**आयच्छस्व**) इस पद की सिद्धि पूर्व-मन्त्र के समान है ॥ ३ । ४० ॥

अन्वयः—हे **पुरीष्य**! पृणन्ति =पूरयन्ति सुखानि यैर्गुणैस्ते पुरीषास्तेषु साधुस्तत्सम्बुद्धौ **अग्ने**=**विद्वन्**! सर्वोत्तमपदार्थप्रापकेश्वर ! **त्वं योऽयं** वक्ष्यमाण लक्षणः **पुरीष्यः** ये पृणन्ति यानि कर्माणि तानि पुरीषाणि, तेषु साधुः **रयिमान्** प्रशस्ता रययो=धनानि विद्यन्ते यस्मिन् सः **पुष्टिवर्द्धनः** वर्द्धयतीति वर्द्धनः, पुष्टेर्वर्द्धनः पुष्टिवर्द्धनः **अग्निः** पूर्वोक्तो भौतिकः **अस्ति, तस्मादभिद्युम्नम्** अभितो विज्ञानसाधकं **अभिसहः** अभिमुख्येन शरीरात्मबलं वा **अभ्यायच्छस्व**= **विस्तारय** (अभितः समन्ताद् विस्तारय) ॥ ३ । ४० ॥

भाषार्थ—हे (**पुरीष्य**) सुख से भरपूर गुणों में श्रेष्ठ (**अग्ने**) विद्वन् ! एवं सब उत्तम पदार्थों के प्रदाता ईश्वर ! जो (**अयम्**) यह उपदिश्यमान (**पुरीष्यः**) तृप्त करने वाले गुणों में उत्तम (**रयिमान्**) प्रशस्त धनों से युक्त (**पुष्टिवर्द्धनः**) पुष्टि को बढ़ाने वाला (**अग्निः**) पूर्वोक्त भौतिक अग्नि है, उससे (**अभिद्युम्नम्**) सब ओर से विज्ञान को तथा (**अभिसहः**) मुख्यतया शारीरिक और आत्मिक बल को (**अभि-आ-यच्छस्व**) सब ओर से विस्तार करो ॥ ३ । ४० ॥

[हे···अग्ने=विद्वंस्त्वं योऽयं···अग्निरस्ति, तस्मादभिद्युम्नमभिसहवायच्छस्व]

भावार्थः—मनुष्यैः परमेश्वरानुग्रहस्वपुरुषार्थाभ्यामग्निविद्यां प्राप्यानेकविधं धनं बलं च सर्वतो विस्तारणीयमिति ॥ ३ । ४० ॥

भावार्थ—सब मनुष्य, परमेश्वर के अनुग्रह और अपने पुरुषार्थ से अग्निविद्या को प्राप्त करके नाना प्रकार के धन और बल का चहुँ ओर विस्तार करें ॥ ३ । ४० ॥

भाष्यसार—१. **अग्नि** (**ईश्वर**)—अग्नि अर्थात् ईश्वर पूर्ण विद्वान् है, यह सुख से भरपूर करने वाले गुणों से युक्त जनों में भी सब से श्रेष्ठ है, तथा सर्वोत्तम पदार्थों का प्रापक है। विज्ञान के साधक शारीरिक और आत्मिक बल का दाता है। किन्तु इसमें परमेश्वर का अनुग्रह आवश्यक है ॥

२. **अग्नि** (**भौतिक**)—यह भौतिक अग्नि तृप्त करने वाले कर्मों का साधक, प्रशस्त धनों का

निवास स्थान तथा पुष्टि को बढ़ाने वाला है। ईश्वर के अनुग्रह और अपने पुरुषार्थ से इस अग्नि विद्या को जान कर नाना प्रकार के धन और बल को प्राप्त किया जा सकता है ॥ ३ । ४० ॥

आसुरिः । **वास्तुरग्निः**=**गृहाश्रम** । आर्षी पंक्तिः । पञ्चमः ॥

अथ गृहाश्रमानुष्ठानमुपदिश्यते ॥

अब गृहस्थाश्रम के अनुष्ठान का उपदेश किया जाता है ॥

गृहा मा बिभीत मा वेपध्वमूर्ज्जं बिभ्रत ऽ एमसि ।
ऊर्ज्जं बिभ्रद्वः सुमनाः सुमेधा गृहानैमि मनसा मोदमानः ॥ ४१ ॥

पदार्थः—(**गृहाः**) गृह्णन्ति ब्रह्मचर्याश्रमानन्तरं गृहाश्रमं ये मनुष्यास्तत्सम्बुद्धौ (**मा**) निषेधार्थे (**बिभीत**) भयं कुरुत (**मा**) प्रतिषेधे (**वेपध्वम्**) कम्पध्वम् (**ऊर्जम्**) पराक्रमम् (**बिभ्रतः**) धारयन्तः (**आ**) समन्तात् (**इमसि**) प्राप्नुमः । **अत्रेदन्तो मसीतीदादेशः** (**ऊर्जम्**) अनेकविधं बलम् (**बिभ्रत्**) धारयन् (**वः**) युष्मान् (**सुमनाः**) शोभनं मनो=विज्ञानं यस्य सः (**सुमेधाः**) सुष्ठु मेधा=धारणावती सङ्गमिका धीर्यस्य सः (**गृहान्**) गृहाश्रमस्थान् विदुषः (**आ**) समन्तात् (**एमि**) प्राप्नुयाम् । **अत्र लिङर्थे लट्** (**मनसा**) विज्ञानेन (**मोदमानः**) हर्षोत्साहयुक्तः ॥ **एतदादिमन्त्रत्रयम् शत० २ । ४ । १ । १४ व्याख्यातम् ॥ ४१ ॥**

प्रमाणार्थ—(**एमसि**) यहाँ 'इदन्तो मसि' [**अ०** ७ । १ । ४६] सूत्र से इकार आदेश है। (**एमि**) प्राप्नुयाम् । यहाँ लिङ्—अर्थ में लट् लकार है। मन्त्र—४१, ४२ और ४३ की व्याख्या शत० (२ । ४ । १ । १४) में की गई है । ३ । ४१ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **ब्रह्मचर्येण कृतविद्या गृहाश्रमिणो मनुष्या ! ऊर्ज्जं** पराक्रमं **बिभ्रतः** धारयन्तः **गृहाः** ! गृह्णन्ति ब्रह्मचर्याश्रमानन्तरं गृहाश्रमं ये मनुष्यास्तत् सम्बुद्धौ ! **यूयं गृहाश्रमं प्राप्नुत ! तदनुष्ठानान्मा बिभीत** भयं मा कुरुत, **मा वेपध्वं** मा कम्पध्वम् ।

ऊर्जम् पराक्रमं **बिभ्रतः** धारयन्तः **वयं** [**वः**]= **युष्मान् गृहान्** गृहाश्रमस्थान् विदुषः **एमसि**= **समन्तात्प्राप्नुमः** ।

वः=**युष्माकं मध्ये स्थित्वैवं गृहाश्रमे वर्त्तमानः सुमनाः** शोभनं मनोविज्ञानं यस्य सः **सुमेधाः** सुष्ठु मेधा धारणवती सङ्गमिका धीर्यस्य सः **मनसा** विज्ञानेन **मोदमानः** हर्षोत्साहयुक्तः **ऊर्जम्** अनेकविधं बलम् **बिभ्रत्** धारयन् **सन्नहं** सुखानि=**आ-एमि**= **नित्यं प्राप्नुयाम्** । समन्तात् प्राप्नुयाम् ॥ ३ । ४१ ॥

भावार्थ—हे ब्रह्मचर्य से विद्या को प्राप्त हुए गृहाश्रमी जनो ! (**ऊर्जम्**) पराक्रम का (**बिभ्रतः**) धारण करते हुए (**गृहाः** !) ब्रह्मचर्याश्रम के पश्चात् गृहाश्रम को ग्रहण करने वालो ! तुम गृहाश्रम को प्राप्त करो । गृहाश्रम के अनुष्ठान से (**मा बिभीत**) मत डरो और (**मा वेपध्वम्**) मत काँपो ।

(**ऊर्जम्**) पराक्रम को (**बिभ्रतः**) धारण करते हुए हम लोग (**वः**) तुम (**गृहान्**) गृहाश्रमी विद्वानों को (**एमसि**)=चहुँ ओर से प्राप्त होते हैं ।

(**वः**) तुम्हारे मध्य में रह कर इस प्रकार गृहाश्रम में रहता हुआ (**सुमनाः**) उत्तम विज्ञान वाला, (**सुमेधाः**) श्रेष्ठ धारणावती ज्ञान से सङ्गम (**मेल**) कराने वाली बुद्धि वाला (**मोदमानः**) हर्ष उत्साह से युक्त (**ऊर्जम्**) नाना प्रकार के बल को (**बिभ्रत्**) धारण करता हुआ मैं सुखों को (**आ-एमि**) चहुँ ओर से सदा प्राप्त करूँ ॥ ३ । ४१ ॥

[हे ब्रह्मचर्येण कृतविद्या गृहाश्रमिणो मनुष्या ! ऊर्ज्जं बिभ्रतो गृहाः ! यूयं गृहाश्रमं प्राप्नुत]

भावार्थ:—मनुष्यैः पूर्णब्रह्मचर्याश्रमं संसेव्य युवावस्थायां स्वयंवरविधानेन स्वतुल्य स्वभाव विद्यारूपबलवतीं सुपरीक्षितां स्त्रीमुद्वाह्य शरीरात्मबलं संपाद्य सन्तानोत्पत्तिं विधाय सर्वैः साधनैः सद्व्यवहारेषु स्थातव्यम् ।

भावार्थ—सब मनुष्य, पूर्ण ब्रह्मचर्य आश्रम का सेवन करके, युवा अवस्था में स्वयंवर कर, अपने तुल्य स्वभाव, विद्या, रूप और बल वाली, सुपरीक्षित स्त्री से विवाह कर, शरीर और आत्मा के बल को सिद्ध कर, सन्तानोत्पत्ति करके, सब साधनों से श्रेष्ठ व्यवहारों में स्थिर रहें ।

[तदनुष्ठानान्मा बिभीत, मा वेपध्वं च]

नैव केनापि गृहाश्रमानुष्ठा नात् कदाचिद् भेतव्यं कम्पनीयं च । कुतः ? सर्वेषां सद्व्यवहाराणामाश्रमाणां च गृहाश्रमो मूलमस्त्यत एष सम्यगनुष्ठातव्यः । नैतेन विना मनुष्य वृद्धो राज्य सिद्धश्चजायते ॥ ३ । ४१ ॥

गृहाश्रम से किसी को कभी भी नहीं डरना चाहिए और न काँपना चाहिए । क्योंकि—सब श्रेष्ठ व्यवहारों और आश्रमों का गृहाश्रम मूल है, इसलिये इसका उत्तम रीति से अनुष्ठान करें । इसके बिना मनुष्य वृद्धि और राज्य सिद्धि नहीं हो सकती ॥ ३ । ४१ ॥

अन्यत्र व्याख्यात—महर्षि ने इस मन्त्र की व्याख्या संस्कारविधि (**गृहाश्रमप्रकरण**) में इस प्रकार की है:—

"हे (**गृहाः**) गृहस्थ लोगो ! तुम विधिपूर्वक गृहाश्रम में प्रवेश करने से (**मा, बिभीत**) मत डरो (**मा, वेपध्वम्**) मत कंपायमान होओ (**ऊर्ज्जम्**) अन्न, पराक्रम तथा विद्यादि शुभ गुण से युक्त होकर गृहाश्रम को (**बिभ्रतः**) धारण करते हुए तुम लोगों को हम सत्योपदेशक विद्वान् लोग (**एमसि**) प्राप्त होते और सत्योपदेश करते हैं और अन्न, पानाच्छादन स्थान से तुम्हीं हमारा निर्वाह करते हो इसलिए तुम्हारा गृहाश्रम व्यवहार में निवास सर्वोत्कृष्ट है । हे वरानने ! जैसे मैं तेरा पति (**मनसा**) अन्तःकरण से (**मोदमानः**) आनन्दित (**सुमनाः**) प्रसन्न मन (**सुमेधाः**) उत्तम बुद्धि से युक्त मुझको और हे मेरे पूजनीयतम पिता आदि लोगो ! (**वः**) तुम्हारे लिये (**ऊर्ज्जम्**) पराक्रम तथा अन्नादि ऐश्वर्य को (**बिभ्रत्**) धारण करता हुआ तुम (**गृहान्**) गृहस्थों को (**आ, एमि**) सब प्रकार से प्राप्त होता हूँ उसी प्रकार तुम लोग भी मुझसे प्रसन्न हो के वार्ता करो" ॥ ३ ॥

महर्षि ने इस मन्त्र की व्याख्या ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका (**गृहाश्रमविषय**) में इस प्रकार की है :—

"(**गृहा मा बिभीत०**) हे गृहाश्रम की इच्छा करने वाले मनुष्य लोगो ! तुम लोग स्वयंवर अर्थात् अपनी इच्छा के अनुकूल विवाह करके गृहाश्रम को प्राप्त हो और उससे डरो वा कंपो मत । किन्तु उससे बल पराक्रम करने वाले पदार्थों को प्राप्त होने की इच्छा करो तथा गृहाश्रमी पुरुषों से ऐसा कहो कि मैं परमात्मा की कृपा से आप लोगों के बीच पराक्रम, शुद्ध मन, उत्तम बुद्धि और आनन्द को प्राप्त हो कर गृहाश्रम करूँ ॥ ११ ॥

भाष्यसार—**गृहाश्रम का अनुष्ठान**—पूर्ण ब्रह्मचर्य आश्रम का सेवन करके युवा अवस्था में अपने तुल्य स्वभाव, विद्या, रूप और बल वाली, उत्तम रीति से परीक्षा की हुई स्त्री से स्वयंवर विवाह करें । सन्तानोत्पत्ति से पूर्व शारीरिक और आत्मिक बल को धारण करें । गृहाश्रम के अनुष्ठान से कभी डरें नहीं । क्योंकि सब श्रेष्ठ व्यवहारों का और सब आश्रमों का गृहाश्रम ही मूल है ।

बल पराक्रम को धारण करके गृहाश्रमी विद्वानों के संग में रह कर मनस्वी और मेधावी बन कर विज्ञान-प्राप्ति से हर्ष और उत्साह से युक्त होकर सब सुखों को नित्य प्राप्त करें ॥ ३ । ४२ ॥

शंयुः । **वास्तुपतिः**=गृहाश्रमी ॥ अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्ते गृहाश्रमिणः कीदृशाः सन्तीत्युपदिश्यते ॥

फिर वह गृहाश्रमी कैसे हैं, इस विषय का उपदेश कहा जाता है ॥

येषा॑मद्ध्येति॑ प्र॒वस॑न् येषु॑ सौमन॒सो ब॒हुः । गृहानुप॑ह्वयामहे॒ ते नो॑ जानन्तु जान॒तः ॥ ४२ ॥

पदार्थः—(**येषाम्**) गृहस्थानाम् । अत्र अधीगर्थदयेशां कर्मणि ॥ अ० २ । ३ । ५२ ॥ इति कर्मणि षष्ठी (**अध्येति**) स्मरति (**प्रवसन्**) प्रवासं कुर्वन् (**येषु**) गृहस्थेषु (**सौमनसः**) शोभनं मनः सुमनस्तस्यायमानन्दः सुहृद्भावः । अत्र तस्येदमित्यण् (**बहुः**) अधिकः (**गृहान्**) गृहस्थान् (**उप**) सामीप्ये (**ह्वयामहे**) शब्दयामहे (**ते**) गृहस्थाः (**नः**) अस्मान्प्रवसतोऽतिथीन् (**जानन्तु**) विदन्तु (**जानतः**) धार्मिकान् विदुषः ॥ ४२ ॥

प्रमाणार्थ—(**येषाम्**) यहाँ 'अधीगर्थदयेशां कर्मणि' (**अ**० २ । ३ । ५२) सूत्र से कर्म में षष्ठी विभक्ति है। (**सौमनसः**) यहाँ 'तस्येदम्' [**अ**० ४ । ३ । १२०] सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। ३ । ४२ ॥

सपदार्थान्वयः—**प्रवसन्** प्रवासं कुर्वन् अतिथिः **येषां** गृहस्थानाम् **अध्येति** स्मरति, **येषु** गृहस्थेषु **बहुः** अधिकः **सौमनसः** शोभनं मनः सुमनस्तस्यायमानन्दः सुहृद्भावः अस्ति, तान् [**गृहान्**]=**गृहस्थान्** वयमतिथय **उपह्वयामहे** । समीपं शब्दयामहे ।

भाषार्थ—(**प्रवसन्**) प्रवास में रहने वाला अतिथि (**येषाम्**) जिन गृहस्थों को (**अध्येति**) स्मरण करता है, तथा (**येषु**) जिन गृहस्थों में (**बहुः**) अत्यधिक (**सौमनसः**) शुद्ध मन से उत्पन्न आनन्द एवं सौहार्द्य विद्यमान है, उन (**गृहान्**) गृहस्थों को हम लोग अतिथि के लिये (**उपह्वयामहे**) स्तुति करते हैं।

ये सुहृदो गृहस्थास्ते जानतः धार्मिकान विदुषः **नः**=**अस्मान तिथीन्** (**अस्मान् प्रवसतोऽतिथीन्**) **जानन्तु** विदन्तु ॥ ३ ४२ ॥

और जो उत्तम हृदय वाले गृहस्थ हैं (**ते**) वे (**जानतः**) धार्मिक विद्वानों को तथा (**नः**) हम प्रवास में रहने वाले अतिथियों को (**जानन्तु**) समझें। यथायोग्य सत्कार करें ॥ ३ । ४२ ॥

[प्रवसन्=अतिथिर्येषामध्येति, येषु बहुः सौमनसोऽस्ति, तान् [गृहान्]=गृहस्थान् वयमतिथय उपह्वयामहे]

भावार्थः—गृहस्थैः सर्वैर्धार्मिकैर्विद्वद्भिरतिथिभिः सह, गृहस्थैः सहातिथिभिश्चात्यन्तः सहृद्भावो रक्षणीयो; नैव दुष्टैः सह ।

भावार्थ—सब गृहस्थों को सब धार्मिक विद्वान् अतिथियों के साथ, और सब अतिथियों को गृहस्थों के साथ अत्यन्त स्नेह रखना चाहिये; दुष्टों के साथ नहीं।

[ये सुहृदो गृहस्थास्ते जानतो नः=अस्मानतिथीन् जानन्तु]

तेषां संगे परस्परं संलापं कृत्वा विद्योन्नतिः

अतिथियों के संग में परस्पर वार्तालाप करके

कार्या। ये परोपकारिणो विद्वांसोऽतिथयः सन्ति तेषां गृहस्थैर्नित्यं सेवा कार्या ॥ ३ । ४२ ॥

विद्या की उन्नति करें। जो परोपकारी विद्वान् अतिथि हैं उनकी गृहस्थ लोग नित्य सेवा करें ॥ ३ । ४२ ॥

भा० पदार्थः—बहुः=अत्यन्तः।

अन्यत्र व्याख्यात—महर्षि ने इस मन्त्र की व्याख्या ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका (**गृहाश्रम-विषय**) में इस प्रकार की है—"(**येषामध्येति**) जिन घरों में बसते हुए मनुष्यों को अधिक आनन्द होता है उनमें वे मनुष्य अपने सम्बन्धि-मित्र बन्धु और आचार्य आदि का स्मरण करते हैं और उन्हीं लोगों को विवाहादि शुभकार्य्यों में सत्कार से बुलाकर उनसे यह इच्छा करते हैं कि ये सब हमको युवावस्था युक्त और विवाहादि नियमों में ठीक-ठीक प्रतिज्ञा करने वाले जानें अर्थात् हमारे साक्षी हों" ॥ १२ ॥

महर्षि ने इस मन्त्र की व्याख्या संस्कारविधि (**गृहाश्रमप्रकरण**) में इस प्रकार की है—"हे गृहस्थो! (**प्रवसन्**) परदेश को गया हुआ मनुष्य (**येषाम्**) जिनका (**अध्येति**) स्मरण करता है (**येषु**) जिन गृहस्थों में (**बहुः**) बहुत (**सौमनसः**) प्रीति होती है उन (**गृहान्**) गृहस्थों की हम विद्वान् लोग (**उप, ह्वयामहे**) प्रशंसा करते और प्रीति से समीपस्थ बुलाते हैं (**ते**) वे गृहस्थ लोग (**जानतः**) उनको जानने वाले (**नः**) हम लोगों को (**जानन्तु**) सुहृद् जानें, वैसे तुम गृहस्थ और हम संन्यासी लोग आपस में मिल के पुरुषार्थ से व्यवहार और परमार्थ की उन्नति सदा किया करें" ॥ ४ ॥

भाष्यसार—**गृहाश्रमी कैसे हों**—अतिथि लोग जिन गृहस्थों को स्मरण करते हैं, तथा जिन गृहस्थों में वे अत्यन्त सुहृद्भाव रखते हैं, वे गृहस्थ लोग उन धार्मिक विद्वान् अतिथि जनों को अतिथि यज्ञ के लिये अपने पास बुलाया करें, निमन्त्रित किया करें। अतिथि और गृहस्थ लोग परस्पर अत्यन्त स्नेह रखें। परस्पर वार्तालाप करके विद्या की उन्नति करें। अतिथि जनों से सुहृदभाव रखने वाले गृहस्थ लोग धार्मिक विद्वानों को अतिथि समझें। उनकी नित्य सेवा करें ॥ ३ । ४२ ॥

शंयुर्बार्हस्पत्य ऋषिः। **वास्तुपति**=**गृहाश्रमी** ॥ भुरिग्जगति। निषादः ॥

पुनः स कीदृशः संपादनीय इत्युपदिश्यते ॥

फिर उस गृहस्थाश्रम को कैसा सिद्ध करना चाहिये, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

उप॑हूताऽइ॒ह गाव॒ऽउप॑हूताऽअ॒जाव॑यः। अथो॒ऽअन्न॑स्य की॒ला॒ल॒ऽउप॑हूतो गृ॒हेषु॑ नः।
क्षेमा॑य व॒ः शान्त्यै॒ प्रप॑द्ये शि॒वꣳ श॒ग्मꣳ श॒ंयोः श॒ंयोः ॥ ४३ ॥

पदार्थः—(**उपहूताः**) सामीप्यं प्रापिताः (इह) अस्मिन्गृहाश्रमे संसारे वा (**गावः**) दुग्धप्रदा धेनवः (**उपहूताः**) सामीप्यं प्रापिताः (**अजावयः**) अजाश्चावयश्च ते (**अथो**) आनन्तर्ये (**अन्नस्य**) प्राणधारणस्य निरन्तरसुखस्य च हेतुः। कृवृ० ॥ उ० ३ । १० ॥ इत्यनधातोर्नः प्रत्ययः। धापृवस्यज्य० ॥ उ० ३ । ६ ॥ इत्यतधातोर्नः प्रत्ययः (**कीलालः**) उत्तमान्नादिपदार्थसमूहः। कीलालं इत्यन्ननामसु पठितम् ॥ निघं० २ । ७ ॥ (**उपहूतः**) सम्यक् प्रापितः (**गृहेषु**) निवसनीयेषु प्रासादेषु (**नः**) अस्माकम् (**क्षेमाय**) रक्षणाय (**वः**) युष्माकम् (**शान्त्यै**) सुखाय (**प्रपद्ये**) प्राप्नोमि (**शिवम्**) कल्याणम् (**शग्मम्**) सुखम् (**शंयोः**) कल्याणवतः साधनात्कर्मणः सुखवतो वा (**शंयोः**) सुखात्। अत्रोभयत्र। कंशंभ्यां बभयुस्तितुतयसः ॥ अ० ५ । २ । १३८ ॥ इति शमो युस्प्रत्ययः। शिवं शग्मं चेति सुखनामासु पठितम् ॥ निघं० ३ । ६ ॥ ४३ ॥

प्रमाणार्थ—(**अन्नस्य**) 'अन्न' शब्द 'कृवृ०' उणा० (३ । १०) से 'अन' धातु से 'न' प्रत्यय करने पर तथा 'धापृवस्यज्य०' (उ० ३ । ६) से अत धातु से 'न' प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है। (**कीलालः**) 'कीलाल' शब्द निघं० (२ । ७) में अन्न-नामों में पढ़ा है। (**शंयोः**) यहाँ दोनों 'शंयु' शब्दों 'कंशंभ्यां बभयूस्तितुतयसः' (अ० ५ । २ । १३८) से 'शम्' शब्द से 'युस्' प्रत्यय करने पर सिद्ध होते हैं। (**शिवं शग्मम्**) ये दो शब्द निघं० (३ । ६) में सुख-नामों में पढ़े हैं ॥ ३ । ४३ ॥

सपदार्थान्वयः—इह=अस्मिन् संसारे अस्मिन् गृहाश्रमे संसारे वा **वः**=युष्माकं **शान्त्यै** सुखाय **नः**=अस्माकं **क्षेमाय** रक्षणाय **गृहेषु** निवसनीयेषु प्रासादेषु **गावः** दुग्धप्रदा धेनवः **उपहूताः** सामीप्यं प्रापिताः **अजावयः** अजाश्चावयश्च ते **उपहूताः** सामीप्यं प्रापिताः, **अथो** अनन्तरम् **अन्नस्य** प्राणधारणस्य निरन्तरसुखस्य च हेतुः **कीलालः** उत्तमान्नादिपदार्थसमूहः **उपहूतः** सम्यक् प्रापितः **अस्तु** ।

एवं कुर्वन्नहं गृहस्थः [**शंयोः**] कल्याणवतः साधनात्कर्मणः सुखवतो वा **शंयोः** सुखात् **शिवं** कल्याणं **शग्मं** सुखं **च प्रपद्ये** प्राप्नोमि ॥ ३ । ४३ ॥

भाषार्थ—(**इह**) इस गृहाश्रम में वा इस संसार में (**वः**) तुम्हारे (**शान्त्यै**) सुख के लिये और (**नः**) हमारी (**क्षेमाय**) रक्षा के लिये (**गृहेषु**) निवास योग्य महलों में (**गावः**) दूध देने वाली गायें (**उपहूताः**) प्राप्त हों और (**अजावयः**) भेड़ और बकरियाँ (**उपहूताः**) प्राप्त हों। (**अथो**) तत्पश्चात् (**अन्नस्य**) प्राणों को धारण कराने वाला निर्बाध सुखदायक (**कीलालः**) उत्तम अन्नादि पदार्थों का ढेर (**उपहूतः**) उत्तम रीति से प्राप्त हो।

ऐसा करके मैं गृहाश्रमी (**शंयो**) कल्याण कारक साधन रूप कर्म वा सुखदायक कर्म से (**शंयोः**) सुखपूर्वक (**शिवम्**) कल्याण और (**शग्मम्**) आनन्द को (**प्रपद्ये**) प्राप्त करूँ ॥ ४ । ४३ ॥

[**इह=अस्मिन् संसारे वः=युष्माकं शान्त्यै नः=अस्माकं क्षेमाय गृहेषु गाव उपहूता, अजावय उपहूता, अथोऽन्नाय कीलालः उपहूतोऽस्तु**]

भावार्थः—गृहस्थैरीश्वरोपासना ज्ञापालनाभ्यां गोहस्त्यश्वादीन् पशून्, भक्ष्यभोज्यलेह्यचूष्यान् पदार्थांश्चोपसंचित्य स्वेषामन्येषाँ च रक्षणं कृत्वा विज्ञानधर्मपुरुषार्थैरैहिकपारमार्थिको सुखे संसेधनीये, नैव केनचिदालस्ये स्थातव्यम् ।

भावार्थ—गृहस्थ लोग ईश्वर की उपासना तथा उसकी आज्ञा पालन से गाय, हाथी, घोड़े आदि पशुओं को तथा चबाने, खाने, चाटने और चूसने योग्य पदार्थों को अपने पास संग्रह करके अपने और दूसरों की रक्षा करके विज्ञान, धर्म और पुरुषार्थ से लौकिक और पारमार्थिक सुख को सिद्ध करें, कोई भी व्यक्ति आलस्य में न पड़ा रहे।

[**एवं कुर्वन्नहं गृहस्थः [शंयोः] शंयोः शिवं शग्मं च प्रपद्ये**]

किन्तु—ये मनुष्याः पुरुषार्थवन्तो भूत्वा धर्मेण चक्रवर्त्तिराज्यादीनुपार्ज्य संरक्ष्योन्नीय सुखानि प्राप्नुवन्ति ते श्रेष्ठा गण्यन्ते; नेतरे ॥ ३ । ४३ ॥

किन्तु—जो मनुष्य पुरुषार्थी होकर धर्मपूर्वक चक्रवर्ती राज्य आदि प्राप्त कर उसकी रक्षा और उन्नति करके सुखों को प्राप्त करते हैं, वे श्रेष्ठ पुरुष हैं; दूसरे नहीं ॥ ३ । ४३ ॥

भा० पदार्थः—गावः=गोहस्त्यश्वादयः पशवः । कीलालः=भक्ष्यभोज्यलेह्यचूष्याः पदार्थाः । क्षेमाय=स्वेषामन्येषां च रक्षणाय । शान्त्यै=विज्ञानधर्मपुरुषार्थैरैहिकपारमार्थिकसुखसंसाधनाय । शिवम्=पारमार्थिकं सुखम् । शग्मम्=चक्रवर्तिराज्यादिकमैहिकं सुखम् ॥

अन्यत्र व्याख्यात—महर्षि ने इस मन्त्र की व्याख्या संस्कारविधि (**गृहाश्रम प्रकरण**) में इस प्रकार की है। "हे गृहस्थो (**नः**) अपने (**गृहेषु**) घरों में जिस प्रकार (**गावः**) गौ आदि उत्तम पशु (**उपहूताः**) समीपस्थ हों तथा (**अजावयः**) बकरी भेड़ आदि दूध देने वाले पशु (**उपहूताः**) समीपस्थ हों (**अथो**) इसके **अनन्तर** (**अन्नस्य**) अन्नादि पदार्थों के मध्य में उत्तम (**कीलालः**) अन्नादि पदार्थ (**उपहूतः**) प्राप्त होवें, हम लोग वैसा ही प्रयत्न किया करें। हे गृहस्थो ! मैं उपदेशक वा राजा (**इह**) इस गृहाश्रम में (**वः**) तुम्हारे (**क्षेमाय**) रक्षण तथा (**शान्त्यै**) निरुपद्रवता करने के लिये (**प्रपद्ये**) प्राप्त होता हूँ। मैं और आप लोग प्रीति से मिल के (**शिवम्**) कल्याण (**शग्मम्**) व्यावहारिक सुख और (**शंयोः शंयोः**) पारमार्थिक सुख को प्राप्त हो के अन्य सब लोगों को सदा सुख दिया करें" ॥ ५ ॥

महर्षि ने इस मन्त्र की व्याख्या ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका (**गृहाश्रम विषय**) में इस प्रकार की है—"(**उपहू०**) हे परमेश्वर आप की कृपा से हम लोगों को गृहाश्रम में पशु, पृथिवी, विद्या, प्रकाश, आनन्द, बकरी और भेड़, आदि पदार्थ अच्छी प्रकार से प्राप्त हों तथा हमारे घरों में उत्तम रस युक्त खाने, पीने के योग्य पदार्थ सदा बने रहें (**वः**) यह पद पुरुष व्यत्यय से सिद्ध होता है हम लोग उक्त पदार्थों को उनकी रक्षा और अपने सुख के लिए प्राप्त हों फिर उस प्राप्ति से हमको परमार्थ और संसार का सुख मिले (**शंयोः**) यह निघंटु में प्रतिष्ठा अर्थात् सांसारिक सुख का नाम है" ॥ १३ ॥

महर्षि ने इस मन्त्र की व्याख्या आर्याभिविनय (**द्वितीय प्रकाश**) में इस प्रकार की है—"हे पश्वादिपते ! महात्मन् ! आप की ही कृपा से उत्तम उत्तम गाय, भैंस, घोड़े, हाथी, बकरी, भेड़ तथा उपलक्षण से अन्य सुखदायक पशु और अन्न सर्वरोगनाशक औषधियों का उत्कृष्ट रस "न" हमारे घरों में नित्य स्थिर (**प्राप्त**) रख, जिससे किसी पदार्थ के विना हमको दुःख न हो। हे विद्वानो ! "वः" (**युष्माकम्**) तुम्हारे संग और ईश्वर की कृपा से क्षेम कुशलता और शान्ति तथा सर्वोपद्रव विनाश के लिए "शिवम्" मोक्षसुख "शग्मम्" और इस संसार के सुख को मैं यथावत् प्राप्त होऊँ। मोक्षसुख और प्रजासुख इन दोनों की कामना करने वाला जो मैं हूँ, उन मेरी उक्त कामनाओं को आप यथावत शीघ्र पूरी कीजिये। आप का यही स्वभाव है कि अपने भक्तों की कामना अवश्य पूरी करना ॥ ४६ ॥

भाष्यसार—**गृहाश्रम को कैसा बनावें**—इस संसार में गृहस्थ-आश्रम को ईश्वर की उपासना तथा उसकी आज्ञा के पालन से अपने तथा दूसरों के भी सुख और रक्षा के लिए सिद्ध करें। गृहस्थ लोग अपने महलों में गाय, हाथी, घोड़े, भेड़, बकरी आदि पशुओं को रखें और भक्ष्य, भोज्य, लेह्य चूष्य आदि निरन्तर सुखदायक उत्तम अन्न आदि पदार्थों का सेवन करें। विज्ञान, धर्म और पुरुषार्थ की उन्नति से चक्रवर्ती राज्य आदि लौकिक सुख तथा मोक्ष रूप पारमार्थिक सुख को सिद्ध करें। कोई भी व्यक्ति आलस्य में न पड़ा रहे। सब पुरुषार्थी हों जो पुरुषार्थी होकर धर्मपूर्वक अपने चक्रवर्ती राज्य आदि धनों की प्राप्ति, रक्षा और उन्नति करते हैं वे श्रेष्ठ पुरुष हैं और जो आलसी हैं वे निकृष्ट कहाते हैं ॥ ३ । ४३ ॥

प्रजापतिः । **मरुतः**=**विद्वांसोऽतिथयः, ऋत्विजः** । गायत्री । षड्जः ॥

पुनर्गृहस्थैः किं कर्त्तव्यमित्युपदिश्यते ॥

गृहस्थों को फिर क्या करना चाहिये, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

प्रघासिनो हवामहे मरुतश्च रिशादसः । करम्भेण सजोषसः ॥ ४४ ॥

पदार्थः—(**प्रघासिनः**) प्रघस्तुमत्तुं शीलमेषां तान (**हवामहे**) आह्वयामहे (**मरुतः**) विदुषोऽतिथीन् (**च**) समुच्चये (**रिशादसः**) रिशान=दोषान् शत्रूंश्चादन्ति=हिंसन्ति तान् (**करंभेण**) अविद्याहिंसनेन । अत्र कृ हिंसायामित्यस्माद्धातोर्बाहुलकादौणादिकोऽम्भच् प्रत्ययः (**सजोषसः**) समानप्रीतिसेविनः ॥ अयं मन्त्रः शत० २ । ५ । २ । २१ व्याख्यातः ॥ ४४ ॥

प्रमाणार्थ—(**करम्भेण**) यहाँ 'करम्भ' शब्द हिंसा अर्थ वाली 'कृ' धातु से बहुल करके औणादिक 'अम्भच्' प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (२ । ५ । २ । २१) में की गई है ॥ ३ । ४४ ॥

सपदार्थान्वयः—वयं **करम्भेण** अविद्याहिंसनेन **सजोषसः** समानप्रीतिसेविनः **रिशादसः** रिशान्=दोषान् शत्रूंश्चादन्ति=हिंसन्ति तान् **प्रघासिनः=अतिथीन्** प्रघस्तुमत्तुं शीलमेषांतान् **मरुतः=ऋत्विजश्च** विदुषोऽतिथीन् **हवामहे** आह्वयामहे ॥ ३ । ४४ ॥

भाषार्थ—हम गृहस्थ लोग (**करम्भेण**) अविद्या के नाश से (**संजोषसः**) समान रूप से सबसे प्रीति करने वाले (**रिशादसः**) दोषों और शत्रुओं का नाश करने वाले (**प्राघासिनः**) उत्तम भोजन करने वाले (**मरुतः**) विद्वान् अतिथिजनों को एवं ऋत्विजों को (**हवामहे**) आमन्त्रित करते हैं ॥ ३ । ४४ ॥

[वयं करम्भेण...रिशादसः...मरुत ऋत्विजश्च हवामहे]

भावार्थः- मनुष्यैर्वैद्यान् शूरवीरान् यज्ञसंपादकान् मनुष्यानाहूय, सेवित्वा तेभ्यो विद्याशिक्षा नित्यं संग्राह्याः ॥ ३ । ४४ ॥

भावार्थ--गृहस्थ लोग वैद्यों, शूरवीरों और यज्ञ करने वाले ऋत्विजों को बुलाकर तथा उनकी सेवा करके उनसे विद्या और शिक्षा नित्य ग्रहण करें ॥ ३ । ४४ ॥

भा० पदार्थः—रिशादसः=वैद्याः, शूरवीराः । मरुतः=यज्ञसंम्पादका मनुष्याः ॥

भाष्यसार—**गृहस्थों का कर्त्तव्य**—गृहस्थ लोग, सबसे समान रूप से प्रीति करने वाले, शरीर आदि के दोषों को नष्ट करने वाले वैद्यों तथा शत्रुओं का विनाश करने वाले शूरवीर और उत्तम भोजन आदि से सेवा करने योग्य ऋत्विक् अर्थात् विद्वान् अतिथि जनों को निमंत्रित करें, उनकी सेवा करें, तथा उनसे विद्या और शिक्षा नित्य ग्रहण किया करें ॥ ३ । ४४ ॥

प्रजापतिः । **मरुतः**=[गृहस्थी] । स्वराडनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनर्गृहस्थकृत्यमुपदिश्यते ॥

फिर गृहस्थों के कर्मों का उपदेश किया जाता है ॥

यद् ग्रामे यदरण्ये यत् सभायां यदिन्द्रिये यदेनश्चकृमा वयमिदं तदवयजामहे स्वाहा ॥ ४५ ॥

पदार्थः—(**यत्**) यस्मिन् वक्ष्यमाणे (**ग्रामे**) शालासमुदाये, गृहस्थैः सेविते । ग्राम इत्युपलक्षणं नगरादीनाम् (**यत्**) यस्मिन्वक्ष्यमाणे (**अरण्ये**) वानप्रस्थैः सेविते एकान्तदेशे वने (**यत्**) यस्यां वक्ष्यमाणायाम् (**सभायाम्**) विद्वत्समूहशोभितायाम् (**यत्**) यस्मिन्नच्छ्रेष्ठे (**इन्द्रिये**) मनसि श्रोत्रादौ वा (**यत्**) वक्ष्यमाणम् (**एनः**) पापम् (**चकृम**)कुर्महे करिष्यामो वा । अत्र लङ्लृटोरर्थे लिट् । अन्येषामपीति दीर्घश्च (**वयम्**) कर्मानुष्ठातारो गृहस्थाः (**इदम्**) प्रत्यक्षमनुष्ठीयमानं करिष्यमाणं वा (**तत्**) कर्म (**अव**) दूरीकरणे

(**यजामहे**) संगच्छामहे (**स्वाहा**) सत्यवाचा । स्वाहेति वाङ्नामसु पठितम् ॥ निघं० १ । ११ ॥ **अयं मंत्रः शत० २ । ५ । २ । २५ व्याख्यातः ॥ ४५ ॥**

प्रमाणार्थ—(**ग्रामे**) यहाँ ग्राम शब्द नगर आदि का उपलक्षण है (**चकृमा**) चकृम । यहां लट् और लृट्-अर्थ में लिट्-लकार है तथा 'अन्येषामपि दृश्यते' [**अ० ६ । ३ । १३७**] सूत्र से दीर्घ है । (**स्वाहा**) 'स्वाहा' शब्द निघं० (१ । ११) में वाणी-नामों में पढ़ा है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (२ । ५ । २ । २५) में की गई है ॥ ३ । ३५ ॥

सपदार्थान्वयः—वयं कर्मानुष्ठातारो गृहस्था **यत्** यस्मिन् वक्ष्यमाणे **ग्रामे** शालासमुदाये, गृहस्थैः सेविते, ग्राम इत्युपलक्षणं नगरादीनाम, **यत्** यस्मिन् वक्ष्यमाणे **अरण्ये** वानप्रस्थैः सेवित एकान्तदेशे वने **यत्** यस्यां वक्ष्यमाणायां **सभायां** विद्वत्समूह-शोभितायां **यत्** यस्मिन्नृच्छ्रेष्ठे **इन्द्रिये** मनसि, श्रोत्रादौवा **यत्**=**यत्र** वक्ष्यमाणम् [**इदम्**] प्रत्यक्षमनुष्ठीयमानं करिष्यमाणं वा **एनः** पापं **चकृम** कुर्महे, करिष्यामो वा **तत्** कर्म **अव**+**यजामहे**=**दूरी कुर्मः**, दूरं संगच्छामहे ।

यद्=**यत्र तत्र स्वाहा**=**सत्यवाचा पुण्यकर्म चकृम, तत्** तत् **सर्वं** [**यजामहे**]=**संगच्छामहे** ॥ ३ । ४५ ॥

भाषार्थ—(**वयम्**) सत्य कर्म का आचरण करने वाले हम गृहस्थ लोग (**यत्**) जिस (**ग्रामे**) गृहस्थों से सेवित शाला समूह रूप ग्राम तथा नगर आदि में (**यत्**) जिस (**अरण्ये**) वानप्रस्थ जनों से सेवित एकान्त देश वाले वन में (**यत्**) जिस (**सभायाम्**) विद्वानों के समूह से सुशोभित सभा में (**यत्**) जिस श्रेष्ठ (**इन्द्रिये**) मन वा श्रोत्रादि इन्द्रिय में (**यत्**) जो [**इदम्**] यह (**एनः**) पाप कर्म (**चकृम**) करते हैं वा करेंगे (**तत्**) उस कर्म को (**अवयजामहे**) दूर करते हैं ।

और जो जहां तहां (**स्वाहा**) सत्य वाणी से पुण्य कर्म (**चकृम**) करते हैं (**तत्**) उस सब से (**यजामहे**) सदा संगत रहें ॥ ३ । ४५ ॥

[**यद्**=**यत्र तत्र** स्वाहा=**सत्यवाचा पुण्यकर्म चकृम, तत्सर्वं** [**यजामहे**]=**संगच्छामहे, यत् सभायां**···[**इदम्**] **एनश्चकृमस्तदवयजामहे**=**दूरी कुर्मः**]

भावार्थः—चतुराश्रमस्थैर्मनुष्यैर्मनसा वाचा कर्मणा सदा सत्यं कर्माविचर्य, पापं च त्यक्त्वा सभा-विद्याशिक्षाप्रचारेण प्रजायाः सुखोन्नतिः कार्येति ॥ ३ । ४५ ॥

भावार्थ—चारों आश्रमों के मनुष्य मन, वचन और कर्म से सदा सत्य कर्म का आचरण करके और पाप को छोड़कर सभा अर्थात् विद्वानों के संग से विद्या और शिक्षा के प्रचार से प्रजा की सुख-वृद्धि करें ॥ ३ । ४५ ॥

भा० पदार्थः—स्वाहा=मनसा वाचा कर्मणा सदा सत्यकर्माचरणम् ।

अन्यत्र व्याख्यात—महर्षि ने इस मन्त्र की व्याख्या ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका (**गृहाश्रम विषय**) में इस प्रकार की है—"(**यद्ग्रामे०**) गृहाश्रमी को उचित है कि जब वह पूर्ण विद्या को पढ़ चुके तब अपने तुल्य स्त्री से स्वयंवर करे और वे दोनों यथावत् उन विवाह के नियमों में चलें जो कि विवाह और नियोग के प्रकरणों में लिख आये हैं परन्तु उनसे जो विशेष कहना है सो यहां लिखते हैं । गृहस्थ स्त्री पुरुषों को धर्मउन्नति और ग्रामवासियों के हित के लिये जो-जो काम करना है तथा (**यदरण्ये**) वनवासियों के साथ हित और (**यत्सभायाम्**) सभा के बीच में सत्यविचार और अपने सामर्थ्य से संसार को सुख देने के लिये (**यदिन्द्रिये**) जितेन्द्रियता से ज्ञान की वृद्धि करनी चाहिये सो-सो सब काम अपने पूर्ण पुरुषार्थ के साथ यथावत् करें और (**यदेनश्चकृ०**) पाप करने की बुद्धि को हम लोग मन, वचन और कर्म से छोड़ कर सर्वथा सब के हितकारी बनें" ॥ ६ ॥

भाष्यसार—**गृहस्थों का कर्त्तव्य**—कर्मों का अनुष्ठान करने वाले गृहस्थ लोग ग्राम में, एकान्त देश जङ्गल में, विद्वानों की सभा में कहीं भी पापाचरण न करें। यहां तक कि मन में भी पाप का विचार न करें। किसी इन्द्रिय से पाप करने की चेष्टा न करें, किन्तु मन, वचन, कर्म से गृहस्थ तथा अन्य-आश्रमी भी सत्य-कर्म का आचरण करें, पापकर्म को सदा दूर हटावें। विद्वानों की सभा करके विद्या शिक्षा के प्रचार से प्रजा के सुखों की वृद्धि किया करें ॥ ३ । ४५ ॥

अगस्त्यः । **इन्द्रमारुतौ**=ईश्वर-शूरवीरौ ॥ भुरिक्पंक्तिः । पंचमः ॥

ईश्वरशूरवीरसहायेन युद्धे विजयो भवतीत्युपदिश्यते ॥

ईश्वर और शूरवीर के सहाय से युद्ध में विजय होता है, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

मो षू ण॑ ऽ इन्द्रात्र॑ पृत्सु दे॒वैरस्ति॒ हि ष्मा॑ ते शुष्मिन्नव॒याः ।
म॒हश्चि॒द्यस्य॑ मी॒ढुषो॑ य॒व्या ह॒विष्म॑तो म॒रुतो॒ वन्द॑ते॒ गीः ॥ ४६ ॥

पदार्थः—(**मो**) निषेधार्थे (**सु**) शोभनार्थे निपातस्य चेति दीर्घः (**नः**) अस्मान् (**इन्द्र**) जगदीश्वर सुवीर वा (**अत्र**) अस्मिन् संसारे (**पृत्सु**) संग्रामेषु । पृत्स्विति संग्रामनामसु पठितम् ॥ निघं० २ । १७ ॥ (**देवैः**) विद्वद्भिः शूरैः (**अस्ति**) (**हि**) खलु (**स्म**) वर्तमाने । निपातस्य चेति दीर्घः (**ते**) तव (**शुष्मिन्**) अनन्तबलवन् पूर्णबलवन् वा । शुष्ममिति बलनामसु पठितम् ॥ निघं० २ । ९ ॥ (**अवयाः**) अवयजते-विनिगृह्णाति (**महः**) महत्तरम् (**चित्**) उपमार्थे (**यस्य**) वक्ष्यमाणस्य (**मीढुषः**) विद्यादिसद्गुणसेचकान् (**यव्या**) यवेषु साधूनि हवींषि यव्यानि । अत्र शेश्छन्दसीति शेर्लोपः (**हविष्मतः**) प्रशस्तानि हवींषि विद्यन्ते येषु तान् (**मरुतः**) ऋत्विजः (**वन्दते**) स्तौति-तद्गुणान्प्रकाशयति (**गीः**) वाणी । गीरिति वाङ्नामसु पठितम् ॥ निघं० १ । ११ ॥ अयं मंत्रः शत० २ । ५ । २ । २६—२८ व्याख्यातः ॥ ४६ ॥

प्रमाणार्थ—(**सू**) सु । यहाँ 'निपातस्य च' [अ० ६ । १ । १३६] सूत्र से दीर्घ है। (**पृत्सु**) 'पृत्सु' शब्द निघं० (२ । १७) में सग्राम-नामों में पढ़ा है। (**स्मा**) स्म । यहां 'निपातस्य च' [अ० ६ । ३ । १३६] सूत्र से दीर्घ है। (**शुष्मिन्**) 'शुष्म' शब्द निघं० (२ । ९) में बल-नामों में पढ़ा है। (**यव्या**) यव्यानि । यहाँ 'शेश्छन्दसि बहुलम्' [अ० ६ । १ । ७०] से 'शि' प्रत्यय का लोप है ।(**गीः**) 'गिर्' शब्द निघं० (१ । ११) में वाणी-नामों में पढ़ा है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (२ । ५ । २ । २६-२८) में की गई है ॥ ३ । ४६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे इन्द्र=शूरवीरेश्वर जगदीश्वर सुवीर वा ! **कृपया त्वमत्र** अस्मिन् संसारे **पृत्सु** संग्रामेषु **देवैः**=विद्वद्भिः विद्वद्भिः शूरैः **सहितान् नः**=**अस्मान् सु** शोभनतया **रक्ष मो** न हिन्धि ।

हे शुष्मिन् ! अनन्तबलवन=पूर्ण बलवन् वा ! **स्म** वर्तमाने [**यस्य**] वक्ष्यमाणस्य **ते**=**तव महः** महत्तरं **गीः** वाणी हि खलु **एतान् मीढुषः** विद्यादि-सद्गुणसेचकान् **हविष्मतः** प्रशस्तानि हवींषि विद्यन्ते

भावार्थ—हे (**इन्द्र**) शूरवीर वा जगदीश्वर ! आप (**अत्र**) इस संसार में (**पृत्सु**) युद्धों में (**देवैः**) शूर विद्वानों के सहित (**नः**) हमारी (**सु**) अच्छे प्रकार (**रक्ष**) रक्षा करो (**मो**) मत (**हिन्धि**) हिंसा करो ।

हे (**शुष्मिन्**) अनन्तबल ईश्वर एवं पूर्ण बल वाले शूर ! (**स्म**) इस समय (**यस्य**) जिस (**ते**) आपकी (**महः**) महान् (**गीः**) वाणी (**हि**) निश्चय से इन (**मीढुषः**) विद्या आदि उत्तम गुणों को

येषु तान् **मरुतः** ऋत्विजः **वन्दते** स्तौति=तद्गुणान् प्रकाशयति।

चित् यथा **एते त्वां सततं वन्दन्तेऽभिवाद्यानन्दयन्तीव, योऽवयाः=यजमानः** अवयजते=विनिगृह्णाति [**सः**] **अस्ति, स त्वदाज्ञया यानि यव्या=यव्यानिहवींषि** यवेषु साधूनि हवींषि यव्यानि **अग्नौ जुहोति, तानि सर्वान् प्राणिनः सुखयन्तीति** ॥ ३ । ४६ ॥

सींचने वाले (**हविष्मतः**) प्रशस्त हवि देने वाले (**मरुतः**) ऋत्विक् जनों को (**वन्दते**) स्तुति करती है एवं उनके सद्गुणों को प्रकाशित करती है।

(**चित्**) जैसे यह लोग आपकी सदा वन्दना करते हैं एवं अभिवादन करके आनन्दित करते हैं, वैसे ही जो (**अवयाः**) यजन करने वाला यजमान (**अस्ति**) है, वह आपकी आज्ञा से जिन (**यव्या**) यव आदि उत्तम हवियों को अग्नि में (**जुहोति**) डालता है, वे हवियाँ सब प्राणियों को सुख देती हैं ॥ ३ । ४६ ॥

[हे इन्द्र=शूरवीरेश्वर ! कृपया त्वमत्र पृत्सु देवैः=विद्वद्भिः सहितान् नः=अस्मान् सु रक्ष, यो हिन्धि, यस्य ते=तव महो गीर्हि—मरुतो वन्दते]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः ॥ यदा मनुष्याः परमेश्वरमाराध्य, सम्यक् सामग्रीः कृत्वा, युद्धेषु शत्रून् विजित्य, चक्रवर्त्तिराज्यं प्राप्य, सम्पाल्य, महान्तमानन्दं सेवन्ते, तदा सुराज्यं जायत इति ॥ ३ । ४६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है॥ जब सब मनुष्य परमेश्वर की आराधना करके, अच्छे प्रकार सामग्री को बनाकर, युद्धों में शत्रुओं को जीत कर, चक्रवर्त्ती राज्य को प्राप्त कर तथा उसकी रक्षा भी करके महान् आनन्द का सेवन करते हैं तब 'सुराज्य' बनता है ॥ ३ । ४६ ॥

भा० पदार्थः—पृत्सु=युद्धेषु । महः=महान्तमानन्दम् ॥

भाष्यसार—**१. ईश्वर और शूरवीरों के सहाय से युद्ध में विजय**—ईश्वर और शूरवीर लोग कृपा करके विद्वानों की तथा हमारी रक्षा करते हैं। अनन्त बलवान् जगदीश्वर तथा पूर्ण बलवान् शूरवीरों की महान् आनन्दकारक वाणी विद्वान् ऋत्विक् जनों की सदा प्रशंसा करती है, उनके गुणों को प्रकाशित करती हैं। जैसे यजमान और ऋत्विक् लोग यज्ञ से सबको आनन्दित करते हैं वैसे ही ईश्वर तथा शूरवीरों की सहायता से मनुष्य युद्धों में विजय प्राप्त करके सबको सुखी करें ॥ ३ । ४६ ॥

२. **अलङ्कार**—यहाँ ऋत्विक् जनों से शूरवीरों की उपमा की गई है तथा मन्त्र में 'चित्' पद उपमार्थक है। इसलिये उपमा अलङ्कार है ॥

अगस्त्यः । **अग्निः**=[**पुरुषार्थी**] । विराडनुष्टुप् । गान्धारः ॥

के यज्ञयुद्धादिकर्म्माणि कर्तुं योग्या भवन्तीत्युपदिश्यते ॥

कौन मनुष्य यज्ञ और युद्ध आदि कर्मों के करने योग्य होते हैं, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

अक्रन् कर्म कर्मकृतः सह वाचा मयोभुवा। देवेभ्यः कर्म कृत्वास्तं प्रेत सचाभुवः ॥ ४७ ॥

पदार्थः—(**अक्रन्**) कुर्वन्ति अत्र लिङर्थे लुङ् । मन्त्रे घसह्वर० इति च्लेर्लुक (**कर्म**) कर्तुरीप्सिततमं

कर्म ॥ अ० १ । ४ । ४९ ॥ कर्तुर्यदीप्सितमभीष्टयोग्यं चेष्टामयमुत्क्षेपणादिकमस्ति तत्कर्म्म (**कर्मकृतः**) ये कर्माणि कुर्वन्ति ते (**सह**) संगे (**वाचा**) वेदवाण्या स्वकीयया वा (**मयोभुवा**) या मयः=सुखं भावयति तया सत्यप्रियमङ्गलकारिण्या । **मय इति सुखनामसु पठितम् ॥ निघं० ३ । ६ ॥ अत्रान्तर्गतो ण्यर्थः क्विप्चेति क्विप्** (**देवेभ्यः**) विद्वद्भ्यो दिव्यगुणसुखेभ्यो वा (**कर्म**) क्रियमाणम् (**कृत्वा**) अनुष्ठाय (**अस्तम्**) सुखमयं गृहम् । **अस्तमिति गृहनामसु पठितम् ॥ निघं० ३ । ४ ॥** (**प्र**) प्रकृष्टार्थे (**इत**) प्राप्नुवन्ति । **अत्र व्यत्ययो लडर्थे लोट् च** (**सचाभुवः**) ये सचा=परस्परं संगनुषङ्गिणो भवन्ति ते **॥ अयं मंत्रः शत० २ । ५ । २ । २९ व्याख्यातः ॥ ४७ ॥**

प्रमाणार्थ—(**अक्रन्**) यहाँ लिङ्-अर्थ में लुङ् लकार है । 'मन्त्रे घसह्वर०' [**अ०** २ । ४ । ८०] सूत्र से 'च्लि' का लुक् है । (**कर्म**) 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' (अ० १ । ४ । ४९) सूत्र के अनुसार 'कर्म' उसे कहते हैं—जो कर्त्ता को अत्यन्त अभीष्ट हो । (**मयोभुवा**) 'मयोभुवा' शब्द में अन्तर्भावित ण्यर्थ और 'क्विप् च' [३ । २ । ७६] सूत्र से 'क्विप्' प्रत्यय है । (**अस्तम्**) 'अस्त' शब्द निघं० (३ । ४) में गृह-नामों में पढ़ा है । (**इत**) प्राप्नुवन्ति । यहां लङ् अर्थ में लोट् लकार और पुरुष-व्यत्यय भी है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (२ । ५ । २ । २९) में की गई है ॥ ३ । ४७ ॥

सपदार्थान्वयः—**ये मयोभुवा** या मयः=सुखं भावयति तया सत्यप्रियमंगलकारिण्या **वाचा** वेदवाण्या, स्वकीयया वा **सह** सङ्गे **सचाभुवः** ये सचा=परस्परं सगनुषङ्गिणो भवन्ति ते **कर्मकृतः** ये कर्माणि कुर्वन्ति ते **कर्म** कर्तुर्यदीप्सितमभीष्ट-योग्यं चेष्टामयमुत्क्षेपणादिकमस्ति तत्कर्म्म **अक्रन्** कुर्वन्ति; **त एतत** [**कर्म**] क्रियमाणं **कृत्वा** अनुष्ठाय **देवेभ्यः** विद्वद्भ्यो, दिव्यगुणसुखेभ्यो वा **अस्तं**= **सुखमयं गृहं प्रेत**=**प्राप्नुवन्ति** (प्रकृष्टं प्राप्नुवन्ति) ॥ ३ । ४७ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य (**मयोभुवा**) सुखदायक सच्ची प्यारी मंगलकारिणी (**वाचा**) वेदवाणी वा अपनी वाणी के (**सह**) साथ (**सचाभुवः**) परस्पर सङ्गी-अनुषङ्गी [**सहायक**] होकर (**कर्मकृतः**) शुभ कर्म करते हैं, वही (**कर्म**) कर्त्ता के अभीष्ट चेष्टा-मय उत्क्षेपण आदि कर्म को (**अक्रन्**) भली भान्ति करते हैं । वह इस (**कर्म**) क्रिया माण कर्म को करके (**देवेभ्यः**) विद्वानों के लिये वा दिव्य गुणों से युक्त सुखों के लिये (**अस्तम्**) सुख से भरपूर घर को (**प्रेत**) अच्छे प्रकार प्राप्त करते हैं ॥ ३ । ४७ ॥

[**कर्मकृतः कर्माक्रन्**]

भावार्थः—मनुष्यैर्नित्यं पुरुषार्थे वर्तितव्यम्, न कदाचिदालस्ये स्थातव्यम् ।

भावार्थ—मनुष्य सदा पुरुषार्थ में लगे रहें, आलस्य में कभी न पड़ें ।

[**मयोभुवा वाचा सह**]

तथा—वेदविद्यासंस्कृतया वाण्या सह भवितव्यम्, न मूर्खत्वेन ।

और—वेदविद्या से पवित्र वाणी से युक्त हों, न कि मूर्खता से ।

[**सचाभुवः**]

सदा परस्परं प्रीत्या सहायः कर्तव्यः ।

सदा प्रेमपूर्वक एक-दूसरे की सहायता करें ।

[**त एतत् [कर्म] कृत्वा देवेभ्योऽस्तं=सुखमयं गृहं प्रेत=प्राप्नुवन्ति**]

ये चैवंभूतास्ते दिव्यसुखयुक्तं मोक्षरव्यं व्यवहारिकं चानन्दं प्राप्य मोदन्ते; न चैवमलसा इति

जो ऐसा व्यवहार करते हैं वे दिव्य सुखों से युक्त मोक्ष को और व्यावहारिक आनन्द को प्राप्त

॥ ३ । ४७ ॥

करके प्रसन्न रहते हैं; इस प्रकार आलसी नहीं ॥ ३ । ४७ ॥

भा० पदार्थः—कर्मकृतः=पुरुषार्थिनः । कर्म=पुरुषार्थः । वाचा=वेदविद्यासंस्कृतया वाण्या । सचाभुवः=सदा परस्परं प्रीत्या सहायकाः । अस्तम्=दिव्यसुखयुक्तं मोक्षाख्यं व्यावहारिकं चानन्दम् ।

भाष्यसार—**यज्ञ, युद्धादि कर्मों के करने योग्य कौन हैं**—जो मनुष्य नित्य पुरुषार्थ में प्रवृत्त रह कर आलस्य से दूर रहते हैं तथा सुखदायक, सत्य से प्रेम रखने वाली, मङ्गलकारी वेदवाणी से अथवा वेदविद्या से पवित्र अपनी वाणी से एक-दूसरे के प्रीतिपूर्वक सहायक बनकर कर्म करते हैं, वही विद्वानों के लिये तथा दिव्यगुणों की प्राप्ति के लिये सुख से भरपूर घर को, दिव्य सुखों से युक्त मोक्ष को तथा व्यावहारिक आनन्द को प्राप्त करते हैं। ऐसे पुरुषार्थी लोग ही यज्ञ और युद्ध आदि कर्म करने के योग्य हैं; आलसी नहीं ॥ ३ । ४७ ॥

और्णवाभः । **यज्ञः**=**शुभकर्म** ॥ ब्राह्म्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

अथ यज्ञानुष्ठातृकृत्यमुपदिश्यते ॥

अब यज्ञ का अनुष्ठान करने वाले यजमान के कर्मों का उपदेश किया जाता है ॥

अव॑भृथ निचुम्पुण निचे॒रुर॑सि निचुम्पु॒णः ।
अव॑ दे॒वैर्दे॒वकृ॑त॒मेनो॑ऽयासिष॒मव॒ मर्त्यै॒र्मर्त्य॑कृतं पुरु॒राव्णो॑ देव रि॒षस्पा॑हि ॥ ४८ ॥

पदार्थः—(**अवभृथ**) विद्याधर्मानुष्ठानेन शुद्ध । अत्र अवे भृञः ॥ उ० २ । ३ ॥ इति क्थन् प्रत्ययः (**निचुम्पुण**) धैर्येण शब्दविद्याध्यापक । नितरां चोपति=मन्दंमन्दं चलति तत्सम्बुद्धौ । अत्र चुप्धातोर्बाहुलकादुणः प्रत्ययो मुमागमश्च । नीचैरस्मिन् क्वणन्ति नीचैर्दधातीति वा । अवभृथ निचुम्पुणेत्यपि निगमो भवति । निचुम्पुण निचंकुणेति च ॥ निरु० ५ । १८ ॥ निचुम्पुण इति पदनामसु पठितम् ॥ निघं० ४ । २ ॥ अनेन प्राप्तज्ञानो मनुष्यो गृह्यते (**निचेरुः**) यो नितरां चिनोति सः । अत्र निपूर्वकाच्चिञ् धातोर्बाहुलकादौणादिको रुः प्रत्ययः (**असि**) भव । अत्र लोडर्थे लट् (**निचुम्पुणः**) उक्तार्थः (**अव**) विनिग्रहार्थे (**देवैः**) द्योतनात्मकैर्मनआदीन्द्रियैः (**देवकृतम्**) यद्देवैरिन्द्रियैः कृतं तत् (**एनः**) पापम् (**अयासिषम्**) करोमि । अत्र लडर्थे लुङ् (**अव**) नीचगत्यर्थे (**मर्त्यैः**) मरणधर्मैः शरीरैः (**मर्त्यकृतम्**) अनित्यदेहेन निष्पादितम् (**पुरुराव्णः**) यः पुरूणि=बहूनि दुःखानि राति=ददाति स पुरुरावा तस्मात् । अत्र आतो मनिन्क्वनिब्वनिपश्चेति वनिप् प्रत्ययः (**देव**) जगदीश्वर ! (**रिषः**) हिंसकाच्छत्रोः पापाच्च (**पाहि**) रक्ष ॥ ४८ ॥

प्रमाणार्थ—(**अवभृथ**) यह शब्द 'अवेभृञः' उणा० (२ । ३) सूत्र से 'अव' पूर्वक 'भृञ्' धातु से 'क्थन्' प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है। (**निचुम्पुण**) यह शब्द 'चुप' धातु से बहुल करके 'उण' प्रत्यय और 'मुम्' को आगम करने से सिद्ध होता है। 'निचुम्पुण' शब्द की व्याख्या निरु० (५ । १८) में इस प्रकार की है—"जिसमें विद्या आदि शुभ गुण धैर्यपूर्वक शब्द करते हैं अथवा जिसमें धर्मानुष्ठान आदि धैर्यपूर्वक अपने स्वरूप को धारण करते हैं, उस विद्वान् को 'निचुम्पुण' करते हैं। इसमें 'अवभृथ निचुम्पुणः०' इत्यदि वेदमन्त्र प्रमाण है। निचुम्पुण ही निचङ्कुण है। 'निचुम्पुण' शब्द निघं० (४ । २) में पदनामों में पढ़ा है इसलिए ज्ञान को प्राप्त करने वाला मनुष्य 'निचुम्पुण' कहलाता है। (**निचेरुः**)

यह शब्द 'नि' पूर्वक 'चिञ्' धातु से बहुल करके औणादिक 'रु' प्रत्यय करने से सिद्ध होता है। **(असि)** भव। यहां लोट् अर्थ में लट् लकार है। **(अयासिषम्)** करोमि। यहाँ लट् अर्थ में लुङ् लकार है। **(पुरुराव्णः)** 'पुरुरावन्' शब्द 'आतो मनिन्क्वनिब्वनिपश्च' [अ० ३।२।७४] सूत्र से 'रा' धातु से 'वनिप्' प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है ॥ ३। ४८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अवभृथ** ! विद्या-धर्मानुष्ठानेन शुद्ध ! **निचुम्पुण** ! धैर्येण शब्दविद्या-ध्यापक ! नितरां चोपति=मन्दं-मन्दं चलती तत्स-म्बुद्धौ ! **यथाहं निचुम्पुणः** (उक्तार्थः) **निचेरुः** यो नितरां चिनोति सः **सन् देवैः=इन्द्रियैः** द्योतना-त्मकैर्मनआदीन्द्रियैः देवकृतं यद् वैरिन्द्रियैः कृतं तत् **मर्त्यैः** मरणधर्मैः शरीरैः **मर्त्यकृतम्** अनित्यदेहेन निष्पादितम् **एनः** पापम् **अवायासिषं=दूरतस्त्य-जामि**, विनिग्रहं करोमि, **तथा त्वमत्यसि=भव, अवयाहि=दूरतस्त्यज** ।

भाषार्थ—हे **(अवभृथ)** विद्या और धर्मा-चरण से पवित्र ! **(निचुम्पुणः)** धैर्यपूर्वक शब्द विद्या को पढ़ाने वाले एवं सर्वथा मन्द मन्द चलने वाले अध्यापक ! जैसे मैं यजमान **(निचुम्पुणः)** उक्त निचुम्पुण और **(निचेरुः)** समिधायकों का चयन करने वाला होकर **(देवैः)** प्रकाश रूप मन आदि इन्द्रियों से **(देवकृतम्)** इन्द्रियकृत तथा **(मर्त्यैः)** मरणधर्मा शरीरों से **(मर्त्यकृतम्)** अनित्य शरीर-कृत **(एनः)** पाप है, उससे **(आवायासिषम्)** दूर रहूँ वैसे आप भी **(असि)** बनो, **(अवयाहि)** पाप से दूर रहो।

हे देव=जगदीश्वर ! अस्मान् पुरुराव्णः यः पुरूणि=बहूनि दुःखानि राति=ददाति स पुरुरावा तस्मात् **रिषः=हिंसालक्षणात्पापात्** हिंसकात् शत्रोः पापाच्च **पाहि=दूरे रक्ष** ॥

हे **(देव)** जगदीश्वर ! हमें **(पुरुराव्णः)** पुरु अर्थात् बहुत दुःख देने वाले **(रिषः)** हिंसारूप पाप से एवं हिंसक शत्रु से **(पाहि)** दूर रख ॥ ३। ४८ ॥

[हे देव=जगदीश्वर ! अस्मान्...पुरुराव्णो रिषः=हिंसालक्षणात्पापात् पाहि=दूरे रक्ष]

भावार्थ—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ मनुष्यैः पापनिवृत्तये धर्मप्रवृत्तये परमेश्वरो नित्यं प्रार्थ्य यानि मनोवचःकर्मभिः पापानि सन्ति तेभ्यो दूरे स्थातव्यम् ।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ मनुष्य पाप की निवृत्ति और धर्म में प्रवृत्ति के लिये परमेश्वर से नित्य प्रार्थना करके, जो मन, वचन, कर्म से पाप होते हैं, उनसे दूर रहें।

[देवैः=इन्द्रियैर्देवकृतं मर्त्यैर्मर्त्यकृतमेनोऽवायासिषम्=दूरतस्त्यजामि]

यत्किंचिदज्ञानात्पापमनुष्ठितं तद् दुःखफलं विज्ञाय द्वितीयवारं न समाचरणीयम्, किन्तु—सर्वदा पवित्रकर्मानुष्ठानमेव वर्धनीयम् ॥ ३। ४८ ॥

जो कोई अज्ञानवश पाप किया है, उसका फल दुःख समझ कर उसे दूसरी बार न करें किन्तु सदा पवित्र कर्म के आचरण को ही बढ़ावें ॥ ३। ४८ ॥

भा० पदार्थः—रिषः=मनोवचः कर्मभिः कृतात् पापात् । मर्त्यकृतम्=अज्ञानादनुष्ठितम् **(पापम्)** ॥

भाष्यसार—**१. यजमान का कर्त्तव्य कर्म**—जैसे यज्ञ में समिधाओं का चयन करने वाला विद्वान् यजमान मन आदि इन्द्रियों से तथा अनित्य शरीर से अज्ञानवश किये हुए पाप का परित्याग करता है, पाप का फल दुःख समझ कर उसका दूसरी बार आचरण नहीं करता किन्तु सदा पवित्रकर्म अर्थात् यज्ञानुष्ठान को बढ़ाता है, इसी प्रकार विद्या और धर्मानुष्ठान से शुद्ध, धैर्यपूर्वक व्याकरण-विद्या

के अध्यापक, अध्यापन कर्म में मन्द मन्द चलने वाले विद्वान् भी पापाचरण से दूर रहें। पाप से निवृत्ति और धर्म में प्रवृत्ति के लिए परमेश्वर से नित्य प्रार्थना करें कि हे जगदीश्वर ! आप हमें अत्यन्त दुःखदायक मन, वचन, कर्म से किये जाने वाले हिंसात्मक पापों से सदा दूर रखें ॥

२. **अलङ्कार**—यहां यजमान से शब्द विद्याध्यापक विद्वान् की उपमा की गई है। मन्त्र में उपमावाचक शब्द लुप्त है। अतः वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ ३ । ४८ ॥

●

और्णवाभः । **स्वरः**=स्पष्टम् । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

यज्ञे हुतं द्रव्यं कीदृशं भवतीत्युपदिश्यते ॥

यज्ञ में हवन किया हुआ पदार्थ कैसा होता है, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

पूर्णा दर्वि परा पत सुपूर्णा पुनरापत । वस्नेव विक्रीणावहाऽइषमूर्जंꣳ शतक्रतो ॥ ४९ ॥

पदार्थः—(**पूर्णा**) होतव्यद्रव्येण परिपूर्णा (**दर्वि**) पाकसाधिका होतव्यद्रव्यग्रहणार्था । अत्र सुपां सुलुगिति सुलोपः (**परा**) ऊर्ध्वार्थे । परेत्येतस्य प्रातिलोम्यं प्राह ॥ निरु० १ । ३ ॥ (**पत**) पतति=गच्छति । अत्रोभयत्र व्यत्ययो लडर्थे लोट् च (**सुपूर्णा**) या सुष्ठु पूर्यते सा (**पुनः**) पश्चादर्थे (**आ**) समन्तात् (**पत**) पतति=गच्छति (**वस्नेव**) पण्यक्रियेव (**वि**) विशेषार्थे क्रियायोगे (**क्रीणावहै**) व्यवहारयोग्यानि वस्तूनि दद्याव गृह्णीयाव वा (**इषम्**) अभीष्टमन्नम् (**ऊर्जम्**) पराक्रमम् (**शतक्रतो**) शतमसंख्याताः क्रतवः=कर्माणि, प्रज्ञा यस्येश्वरस्य तत्सम्बुद्धौ ॥ **अयं मंत्रः शत० २ । ५ । ३ । १५—१७ व्याख्यातः ॥ ४९ ॥**

प्रमाणार्थ—(**दर्वि**) यहां 'सुपां सुलुक्०' [**अ०** ७ । १ । ३९] सूत्र से 'सु' का लुक है। (**परा**) 'परा' उपसर्ग का अर्थ निरु० (१ । ३) में 'आ' उपसर्ग का उल्टा अर्थात् विपरीत है। (**पत**) पतति। यहाँ उभय पक्ष में व्यत्यय और लट् अर्थ में लोट् लकार है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (२ । ५ । ३ । १५—१७) में की गई है ॥ ३ । ४९ ॥

सपदार्थान्वयः—**या दर्वि** पाकसाधिका होतव्यद्रव्यग्रहणार्था [**पूर्णा**]=**होतव्यद्रव्येण पूर्णा** परिपूर्णा **होमसाधिका भूत्वा परापत=पतत्यूर्ध्वं द्रव्यं गमयति** ऊर्ध्वं पतति=गच्छति; **याऽऽहुतिराकाशं गत्वा वृष्टया** [**सुपूर्णा**]=**पूर्णा** या सुष्ठु पूर्यते सा **भूत्वा पुनः** पश्चात् [**आपत**]=**आपतति**=**समन्तात्=पृथिवीं शोभनं जलरसं गमयति,** समन्तात् पतति=गच्छति,

तया हे शतक्रतो ! शतमसंख्याताः क्रतवः=कर्माणि, प्रज्ञा यस्येश्वरस्य तत्सम्बुद्धौ ! **तव कृपया आवामृत्विग्यज्ञपती वस्नेव** पण्यक्रियेव **इषम्** अभीष्टमन्नम् **ऊर्जं** पराक्रमं च **विक्रीणावहै** विशेषेण व्यवहारयोग्यानि वस्तूनि दद्याव, गृह्णीयाव वा ॥ ३ । ४९ ॥

भाषार्थ—जो (**दर्वि**) पाक को सिद्ध करने वाली एवं होम योग्य द्रव्य को ग्रहण करने वाली चमसी है वह (**पूर्णा**) होम योग्य घृत आदि द्रव्य से भरी हुई, होम की साधक होकर (**परापत**) ऊपर जाती है अर्थात् द्रव्य को ऊपर पहुँचाती है जो आहुति आकाश में जाकर वर्षा से (**सुपूर्णा**) अच्छे प्रकार परिपूर्ण होकर (**पुनः**) फिर (**आपत**) चहुँ ओर से पृथिवी को उत्तम जल रस पहुँचाती है।

उससे हे (**शतक्रतो**) असंख्य कर्म और प्रज्ञा वाले ईश्वर ! आपकी कृपा से हम दोनों ऋत्विक् और यजमान (**वस्नेव**) लेने देने के व्यवहार के समान (**इषम्**) अभीष्ट अन्न (**ऊर्जम्**) और बल पराक्रम को (**विक्रीणावहै**) व्यवहार में आने वाली वस्तुओं को देवें वा लेवें ॥ ३ । ४९ ॥

[या दर्वि [पूर्णा]=होतव्यद्रव्येण पूर्णा होमसाधिका भूत्वा परापत=पतत्यूर्ध्वं द्रव्यं गमयति, याऽऽहाराकाशं गत्वा वृष्ट्या [सुपूर्णा]=पूर्णा भूत्वा पुनः [आपत]=आपतति=समन्तात्पृथिवीं शोभनं जलरसं गमयति]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः । यन्मनुष्यैः सुगन्ध्यादिद्रव्यमग्नौ हूयते तदूर्ध्वं गत्वा वायुवृष्टिजलादिकं शोधयत् पुनः पृथिवीमागच्छति, येन यवादय ओषध्यः शुद्धाः सुखपराक्रमप्रदा जायन्ते ।

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है ॥ मनुष्य जिस सुगन्धि आदि द्रव्य का अग्नि में होम करते हैं वह ऊपर जाकर वायु और वर्षा जल को शुद्ध करता हुआ फिर पृथिवी पर आता है, जिससे यव (जौ) आदि औषधियाँ शुद्ध होकर सुख एवं पराक्रम को देने वाली होती हैं ।

[हे शतक्रतो ! तव कृपया आवाभृत्विग्यज्ञपती वस्नेवेषमूर्जं च विक्रीणावहै]

यथा वणिग्जनो रूप्यादिकं दत्त्वा गृहीत्वा द्रव्यान्तराणि क्रीणीते, विक्रीणीते च तथैवाग्नौ द्रव्याणि दत्त्वा, प्रक्षिप्य वृष्टिसुखादिकं क्रीणीते, वृष्ट्योषध्यादिकं गृहीत्वा पुनर्वृष्टये विक्रीणीतेऽग्नौ होमः क्रियत इति ॥ ३ ॥ ४९ ॥

जैसे वणियाँ लोग रुपया आदि देकर तथा लेकर नाना द्रव्यों को खरीदते और बेचते हैं वैसे ही अग्नि में द्रव्य को देकर अर्थात् डालकर यजमान वर्षा सुख आदि को खरीदता है, वर्षा से औषधि आदि को ग्रहण करके फिर उसे वर्षा के लिये बेच देता है अर्थात् अग्नि में होम कर देता है ॥ ३ । ४९ ॥

भाष्यसार—१. **यज्ञ में होम किया हुआ द्रव्य**—यजमान और ऋत्विक् लोग होम के योग्य सुगन्धित घृत आदि द्रव्यों का अग्नि में दर्वि (**चमसा**) से हवन करते हैं । वह होम किया हुआ द्रव्य आकाश में जाकर शुद्ध वायु तथा शुद्ध वर्षा का निमित्त बनता है । वर्षा पृथिवी को उत्तम जल-रस प्रदान करती है, जिससे शुद्ध यव (**जौ**) आदि औषधियाँ उत्पन्न होती हैं, जो सुख और पराक्रम प्रदान करती हैं । जैसे व्यापारी लोग रुपये के देन-लेन से नाना पदार्थ खरीदते और बेचते हैं, इसी प्रकार अग्नि को द्रव्य देकर ऋत्विक् और यजमान लोग वर्षा को खरीदते हैं । वर्षा से औषधियाँ उत्पन्न करते हैं, फिर उन औषधियों को वर्षा के लिये बेच देते हैं अर्थात् उनका होम करते हैं । यह देन-लेन का चक्र व्यापारी जनों के समान ऋत्विक् और यजमान लोगों का भी चलता रहता है ॥ ३ । ४९ ॥

२. **अलङ्कार**—यहाँ ऋत्विक् और यजमानों की व्यापारी जनों से उपमा की गई है । **मन्त्र में** 'इव' शब्द उपमावाचक है । इसलिये उपमा अलङ्कार है ॥ ३ ॥

और्णवाभः । **इन्द्रः**=**व्यवहारविद्या** ॥ भुरिगनुष्टुप् । गान्धारः।

अथ सर्वाश्रमव्यवहार उपदिश्यते ॥

अब सब आश्रमों के व्यवहारों का उपदेश किया जाता है ॥

देहि मे ददामि ते नि मे धेहि नि ते दधे । निहारं च हरासि मे निहारं निर्हराणि ते स्वाहा ॥५०॥

पदार्थः—(**देहि**) (**मे**) मह्यम् (**ददामि**) (**ते**) तुभ्यम् (**नि**) नितराम् (**मे**) मम (**धेहि**) धारय (**नि**) नितराम् (**ते**) तव (**दधे**) धारये (**निहारम्**) मूल्येन क्रेतव्यं वस्तु नितरां ह्रियते तत् (**च**) समुच्चये (**हरासि**) हर=प्रयच्छ । अयं लेटप्रयोगः (**मे**) मह्यम् (**निहारम्**) पदार्थमूल्यम् (**नि**) नितराम् (**हराणि**)

प्रयच्छानि (ते) तुभ्यम् (स्वाहा) सत्यवागाह ॥ **अयं मंत्रः शत० २। ५। ३। १९—२० व्याख्यातः ॥ ५० ॥**

प्रमाणार्थ—(**हरासि**) यहाँ लेट्-लकार का प्रयोग है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (२। ५। ३। १९-२०) में की गई है ॥ ३। ५० ॥

सपदार्थान्वयः—हे मित्र! त्वं यथा स्वाहा=सत्यावागाहेत्येवं मे=मह्यमिदं देह्यहं च ते=तुभ्यमिदं ददामि।

भाषार्थ—हे मित्र! आप जैसे (**स्वाहा**) सत्यवाणी कहता है, उसके अनुसार (**मे**) मुझे यह (**देहि**) प्रदान कर और (**ते**) तुझे यह मैं (**ददामि**) देता हूँ।

त्वं मे ममेदं वस्तु निधेहि नितरां धारय, **अहं ते=तवेदं निदधे** नितरां धारये।

आप (**मे**) मेरी इस वस्तु को (**निधेहि**) धारण करो और मैं (**ते**) आपकी इस वस्तु को (**निदधे**) धारण करता हूँ।

त्वं मे=मह्यं निहारं मूल्येन क्रेतव्यं वस्तु नितरां ह्रियते तत् **हरासि** हर-प्रयच्छ, **अहं ते=तुभ्यं निहारं** पदार्थमूल्यं **निहराणि=नितरां ददानि** नितरां प्रयच्छानि ॥ ३। ५० ॥

आप (**मे**) मुझे (**निहारम्**) मूल्य से खरीदने योग्य एवं नितान्त ग्रहण करने योग्य **वस्तु** को (**हरासि**) प्रदान करो। मैं (**ते**) आप के लिए (**निहारम्**) पदार्थ का मूल्य (**निहराणि**) प्रदान करता हूँ ॥ ३। ५० ॥

[**हे मित्र! त्वं यथा स्वाहा=सत्यावागाहेत्येवं मे=मह्यमिदं देह्यहं च ते=तुभ्यमिदं ददामि**]

भावार्थः— सर्वैर्मनुष्यैर्दानग्रहणनिःक्षेपोपनिध्यादिव्यवहाराः सत्यत्वेनैव कार्याः। तद्यथा-केनचिदुक्तमिदं वस्तु त्वया देयं न वा, यदि वदेद् ददामि, दास्यामिवेति तर्हि तत्तथैव कर्तव्यम्।

भावार्थ—सब मनुष्य देना, लेना, अमानत (**निःक्षेप**), धरोहर (**उपनिधि**) आदि व्यवहार सत्यतापूर्वक ही करें। जैसे किसी ने कहा कि यह वस्तु आपने देनी है वा नहीं? यदि वह यह कहे कि देता हूँ अथवा दूँगा तो वैसा ही आचरण करें।

[**त्वं मे=ममेदं वस्तु निधेहि अहं ते=तवेदं निदधे**]

केनचिदुक्तं ममेदं वस्तु त्वं स्वसमीपे रक्ष, यदाहमिच्छेयं तदा देयमेवमहं तवेदं वस्तु रक्षयामि यदा त्वमेष्यसि तदा दास्यामि=तस्मिन् समये दास्यामि त्वत्समीपभागमिष्यामि वा, त्वया ग्राह्यं, मम समीपमा गन्तव्यमित्यादयो व्यवहाराः सत्यवाचा कार्याः।

किसी ने कहा कि मेरी यह वस्तु आप अपने पास रखो, जब मुझे चाहिये तब दे देना, इसी प्रकार मैं आप की यह वस्तु रखता हूँ, जब आप आओगे तब दे दूँगा अथवा आपके पास आ जाऊँगा, आप ले लेना, अथवा मेरे पास आ जाना इत्यादि सब व्यवहार सत्य वाणी से करें।

[**हेतुमाह**—]

नैतैर्विना कस्यचित् प्रतिष्ठाकार्यसिद्धी स्यातां, नैताभ्यां विना काश्चित् सततं सुखं प्राप्तुं शक्नोतीति ॥ ३। ५० ॥

इन सत्यव्यवहारों के बिना किसी की प्रतिष्ठा और कार्यसिद्धि नहीं होती तथा प्रतिष्ठा और कार्य सिद्धि के बिना कोई निरन्तर सुख को प्राप्त नहीं कर सकता ॥ ३। ५० ॥

अन्यत्र व्याख्यात—महर्षि ने इस मन्त्र की व्याख्या ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका (**गृहाश्रम विषय**) में इस प्रकार की है—"परमेश्वर उपदेश करता है कि (**देहि मे०**) जो सामाजिक

नियमों की व्यवस्था के अनुसार ठीक चलना है यही गृहस्थ की परम उन्नति का कारण है जो वस्तु किसी से लेवें अथवा देवें सो भी सत्य व्यवहार के साथ करें **(नि मे धेहि नि ते दधे)** अर्थात् मैं तेरे साथ यह काम करूँगा और तू मेरे साथ ऐसा करना ऐसे व्यवहार को भी सत्यता से करना चाहिये **(निहारं च हरासि मे नि०)** यह वस्तु मेरे लिए तू दे वा तेरे लिए में दूँगा इसको भी यथावत् पूरा करें अर्थात् किसी प्रकार का मिथ्या व्यवहार किसी से न करें इस प्रकार गृहस्थ लोगों के सब व्यवहार सिद्ध होते हैं क्योंकि जो गृहस्थ विचारपूर्वक सबके हितकारी काम करते हैं उनकी सदा उन्नति होती है ॥ १० ॥

भाष्यसार—**सब आश्रमों का व्यवहार**—ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी सभी लोग आपस के देन-लेन के व्यवहार को सत्यतापूर्वक करके आनन्द को प्राप्त करें ॥ ३ । ५० ॥

गोतमः । **इन्द्रः=सभापतिः** । विराट् पंक्तिः । पंचमः ॥

तेन यज्ञादिव्यवहारेण किं भवतीत्युपदिश्यते ॥

उस यज्ञादि व्यवहार से क्या होता है, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया ऽ अधूषत ।
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ५१ ॥

पदार्थः— **(अक्षन्)** अदन्ति । अत्र लडर्थे लुङ् । मन्त्रे घसह्व० इति च्लेर्लुक् । गमहनजन० इत्युपधालोपः । शासिवसिघ० इति षत्वम् । खरिचेति चर्त्वम् **(अमीमदन्त)** आनन्दयन्ति । अत्र लडर्थे लुङ् **(हि)** खलु **(अव)** विरुद्धार्थे **(प्रियाः)** प्रसन्नताकारकाः **(अधूषत)** दुष्टान् दोषांश्च कम्पयन्ति । अत्र लडर्थे लुङ् **(अस्तोषत)** स्तुवन्ति । अत्र लडर्थे लुङ् **(स्वभानवः)** स्वकीया भानुर्दीप्तिः प्रकाशो येषां ते **(विप्राः)** मेधाविनः **(नविष्ठया)** अतिशयेन नवा=नविष्ठा तया **(मती)** मत्या । अत्र सुपां सुलुगिति पूर्वसवर्णादेशः **(योज)** योजयति । अत्र विकरणव्यत्ययेन शप् । लडर्थे लोडन्तर्गतो ण्यर्थो द्व्यचोतस्तिङ इति दीर्घश्च **(नु)** क्षिप्रार्थे **(इन्द्र)** सभापते ! **(ते)** अस्य **(हरी)** बलपराक्रमौ ॥ अयं मन्त्रः शत० २ । ६ । १ । ३८ व्याख्यातः ॥ ५१ ॥

प्रमाणार्थ—**(अक्षन्)** अदन्ति । यहाँ लट् अर्थ में लुङ् लकार है । 'मन्त्रे घसह्वर०' [अ० २ । ४ । ८०] सूत्र से 'च्लि' का लुक् है । 'गमहन जन०' [अ० ६ । ४ । ९८] सूत्र से उपधा का लोप है एवं 'शासिवसिघसीनां' च [अ० ८ । ३ । ६०] सूत्र से षत्व है और 'खरि च' [अ० ८ । ४ । ५४] सूत्र से चर्त्व है । **(अमीमदन्त)** आनन्दयन्ति । यहाँ लट् अर्थ में लुङ् लकार है **(अधूषत)** यहाँ लट् अर्थ में लुङ् लकार है । **(अस्तोषत)** स्तुवन्ति । यहाँ भी लट् अर्थ में लुङ् लकार है । **(मती)** मत्या । यहाँ 'सुपां सुलुक०' [अ० ७ । १ । ३९] सूत्र से पूर्व-सवर्ण आदेश है । **(योजा)** योजयति । यहाँ विकरण-व्यत्यय से 'शप्' लट् अर्थ में लोट् लकार और अन्तर्भावित ण्यर्थ है । 'द्व्यचोऽतस्तिङः' [अ० ६ । ३ । १३५] सूत्र से दीर्घ है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (२ । ६ । १ । ३८) में की गई है ॥ ३ । ५१ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **इन्द्र** सभापते ! **ते**=तव अस्य **ये स्वभानवः** स्वकीया भानुर्दीप्तिः=प्रकाशो येषां ते **अवप्रियाः** विरुद्धं प्रसन्नताकारकाः **विप्राः** मेधाविनः **नविष्ठया** अतिशयेन नवा, नविष्ठा तया **मती**=मत्या **हि**=खलु **परमेश्वरमस्तोषत**=

भाषार्थ—हे **(इन्द्र)** सभापते ! **(ते)** आपके जो **(स्वभानवः)** अपने ज्ञान विज्ञान से दीप्तिमान् **(अवप्रियाः)** अविद्या के विरोध से प्रसन्नता उत्पन्न करने वाले **(विप्राः)** मेधावी विद्वान् लोग हैं, वह **(नविष्ठया)** सर्वथा नवीन **(मती)**

स्तुवन्ति, अक्षन्=श्रेष्ठान्नादिकमदन्ति, **अमीमदन्त**=आनन्दयन्ति, तस्मात्ते शत्रून् दुःखानि च **नु अधूषत**=क्षिप्रं धुन्वन्ति दुष्टान् दोषाँश्च कम्पयन्ति त्वमप्येतेषु [**ते**]=स्वकीयौ **हरी**=बलपराक्रमौ **योज**=संयोजय (योजयति) ॥ ३ । ५१ ॥

बुद्धि से (**हि**) स्थिरततापूर्वक परमेश्वर की (**अस्तोषत**) स्तुति करते हैं, (**अक्षन्**) उत्तम भोजन करते हैं, (**अमीमदन्त**) आनन्दित रहते हैं। इसलिये वे मेधावी विद्वान् शत्रुओं को और दुःखों को (**नु**) शीघ्रता से (**अधूषत**) दूर हटाते एवं दुष्टों और दोषों को कम्पा देते हैं। इसलिये हे सभापते! आप भी इन दुष्टों और दोषों के हटाने में (**ते**) अपने (**हरी**) बल और पराक्रम को (**योज**) लगाओ ॥ ३ । ५१ ॥

[विप्रा नविष्ठया मती=मत्या हि=खलु परमेश्वरमस्तोषत=स्तुवन्ति, अक्षन्=श्रेष्ठान्नादिकमदन्ति]

भावार्थः—मनुष्यैः प्रतिदिनंनवीनविज्ञान क्रियावर्द्धनेन भवितव्यम्। यथा विद्वत्सङ्गशास्त्राध्ययनेनवीनां नवीनां मतिं क्रियां च जनयन्ति तथैव सर्वैर्मनुष्यैरनुष्ठेयमिति ॥ ३ । ५१ ॥

भावार्थ—मनुष्य प्रतिदिन नये विज्ञान और क्रिया को बढ़ावें। जैसे मेधावी लोग विद्वानों के सङ्ग और शास्त्रों के अध्ययन से नई-नई मति (**विज्ञान**) और क्रिया को उत्पन्न करते हैं, वैसे ही सब मनुष्य आचरण करें ॥ ३ । ५१ ॥

भाष्यसार—**यज्ञ आदि व्यवहार से क्या होता है**—मेधावी विद्वानों के पास विद्या का अपना प्रकाश होता है वे अविद्या के विरोध से धार्मिक जनों को प्रसन्न करने वाले होते हैं। वे नवीनतम मति से ईश्वर की स्तुति करते हैं। प्रतिदिन नवीन विज्ञान और क्रिया को बढ़ाते हैं, विद्वानों के सङ्ग और शास्त्रों के अध्ययन से नई-नई बुद्धि और क्रिया को पैदा करते हैं। उत्तम अन्न आदि पदार्थों का सेवन करते हैं तथा आनन्द में रहते हैं। शत्रुओं, दुखों, दुष्टों और दोषों को कम्पित करते हैं। सभापति का कर्त्तव्य है कि ऐसे विद्वानों का सत्कार एवं सङ्ग करें। इनके लिये अपने बल पराक्रम को लगावें ॥

गोतमः। **इन्द्रः**=**इन्द्रः सूर्यश्च** ॥ विराट् पंक्तिः। पंचमः ॥

स इन्द्रः कीदृश इत्युपदिश्यते ॥

वह इन्द्र कैसा है, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

सुसन्दृशं त्वा वयं मघवन् वन्दिषीमहि ।
प्र नूनं पूर्णबन्धुर स्तुतो यासि वशाँ२ऽ अनु योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ५२ ॥

पदार्थः—(**सुसंदृशम्**) यः सुष्ठु पश्यति दर्शयति वा तम् (**त्वा**) त्वां तं वा (**वयम्**) मनुष्याः (**मघवन्**) परमोत्कृष्टधनयुक्तेश्वर, धनप्राप्तिहेतुर्वा (**वन्दिषीमहि**) नमेम=स्तुवीमहि (**प्र**) प्रकृष्टार्थे (**नूनम्**) निश्चयार्थे (**पूर्णबन्धुरः**) यः पूर्णश्चासौ बन्धुरश्च सः, पूर्णस्य जगतो बन्धुरो=बन्धनहेतुर्वा (**स्तुतः**) स्तुत्या लक्षितः (**यासि**) प्राप्नोषि प्रापयति वा। अत्र पक्षे व्यत्ययः (**वशान्**) कामयमानान् पदार्थान् (**अनु**) पश्चात् (**योज**) योजय युङ्क्ते वा। अत्रापि पूर्ववद् व्यत्ययदीर्घत्वे (**नु**) उपमार्थे (**इन्द्र**) जगदीश्वर सूर्यस्य वा (**ते**)

तवास्य वा (हरी) बलपराक्रमौ धारणाकर्षणे वा ॥ **अयं मंत्रः शत० २ । ६ । १ । ३८ व्याख्यातः ॥ ५२ ॥**

प्रमाणार्थ—(**यासि**) प्राप्नोषि, प्रापयति वा । यहाँ पक्ष में व्यत्यय है । (**योजा**) योजय युङ्क्ते वा । यहाँ भी पूर्ववत् व्यत्यय और दीर्घ है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (२ । ६ । १ । ३८) में की गई है । ३ । ५२ ॥

[ईश्वरपक्षः]

सपदार्थान्वयः—हे **मघवन्** ! परमोत्कृष्ट धनयुक्तेश्वर ! **इन्द्र** ! जगदीश्वर ! **वयं** मनुष्याः **ससंदृशं** यः सुष्ठु पश्यति तं **त्वां** [**नूनं**] निश्चयेन **वन्दिषीमहि** नमेम स्तुवीमहि ।

अस्माभिः स्तुतः स्तुत्या लक्षितः **पूर्णबन्धुरः** यः पूर्णश्चासौ बन्धुरश्च सः **संस्त्वं** [**नु**] यथा **वशान्=कामान्** कामयमानान् पदार्थान् [**प्र**] **यासि प्रापयसि** (प्रकृष्टं प्राप्नोषि) । **ते=तव हरी** बलपराक्रमौ **त्वम्** [**अनुयोज**]=**अनुप्रयोज** पश्चत् योजय । **इत्येकः** ॥

[सूर्यपक्षः]

वयं मनुष्याः **सुसंदृशं** सुष्ठु दर्शयति तं **मघवन्=मघवन्तं** धनप्राप्तिहेतुं [**पूर्ण बन्धुरः**]=**पूर्णबन्धुरं** पूर्णस्य जगतो बन्धुरं=बन्धनहेतुं **त्वा=तमिमं** [**इन्द्र**]=**सूर्यलोकं नूनं** निश्चयेन **वन्दिषीमहि** स्तुवीमहि ।

स्तुतः=प्रकाशितगुणः स्तुत्या लक्षितः **सन्नयं वशान्=उत्कृष्टव्यवहारसाधकान् कामान्** कामयमानान् पदार्थान [**प्र**] **यासि=प्रापयति** (प्रकृष्टं प्रापयति) ।

हे **विद्वंस्त्वं** [**नु**]=**यथा ते=अस्येन्द्रस्य हरी** धारणाकर्षणे **अस्मिन् जगति युङ्क्तः, तथैव विद्यासिद्धिकराण्यनुप्रयोनेति द्वितीयः** ॥ ३ । ५२ ॥

[ईश्वर पक्ष]

भाषार्थ—हे (**मघवन्**) अत्यन्त उत्तम धन से युक्त (**इन्द्र**) जगदीश्वर ! (**वयम्**) हम लोग (**सुसन्दृशम्**) अच्छे प्रकार से देखने वाले (**त्वा**) आपकी (**नूनम्**) निश्चय से (**वन्दिषीमहि**) अभिवादन और स्तुति करते हैं ।

हमसे (**स्तुतः**) स्तुति किये हुये (**पूर्णबन्धुरः**) पूर्ण स्नेह से भरपूर होकर आप [**नु**]=जैसे (**वशान**) अभीष्ट पदार्थों को (**यासि**) प्राप्त कराते हो, प्रदान करते हो, वैसे ही कृपा करके (**ते**) आप अपने (**हरी**) बल पराक्रम को (**अनुयोज**) हम लोगों की सहायता में लगाओ । यह मन्त्र का पहला अर्थ है ।

[सूर्य पक्ष]

(**वयम्**) हम लोग (**सुसन्दृशम्**) अच्छे प्रकार दिखाने वाला (**मघवन्**) धनों के प्रापक (**पूर्ण बन्धुरः**) सम्पूर्ण जगत् को बान्धने वाले (**त्वा**) इस (**इन्द्र**) सूर्य लोक की (**नूनम्**) दृढ़ता से (**वन्दिषीमहि**) स्तुति करते हैं ।

(**स्तुतः**) सूर्य के गुणों को प्रकाशित करने से यह (**वशान्**) उत्तम व्यवहारों को सिद्ध करने वाली कामनाओं को एवं कमनीय पदार्थों को (**यासि**) प्राप्त कराता है ।

हे विद्वन् ! आप (**नु**) जैसे (**ते**) इस सूर्य के (**हरी**) धारण और आकर्षण शक्ति इस जगत् में उपयोगी हैं, वैसे ही विद्या के सिद्धिकारक गुणों को (**अनुप्रयोज**) प्रयोग में लाओ ॥ ३ । ५२ ॥

[हे···इन्द्र ! वयं सुसंदृशं त्वा=त्वां [नूनं] वन्दिषीमहि]

भावार्थः—अत्र श्लेषोपमालङ्कारौ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और उपमा

मनुष्यैः सर्वजगद्धितकारी जगदीश्वरो वन्दितव्यो नैवेतरः ।

यथा सूर्यो मूर्तद्रव्याणि प्रकाशयति तथोपासितः सोऽपि भक्तजनात्मसु विज्ञानोत्पादनेन सर्वान् सत्यव्यवहारान् प्रकाशयति तस्मान्नैवेश्वरं विहाय कस्यचिदन्यस्योपासनं कर्त्तव्यमिति ॥ ३ । ५२ ॥

अलङ्कार हैं ॥ सब मनुष्य सब जगत् के हितकारी जगदीश्वर का अभिवादन और स्तुति करें, दूसरे की नहीं ।

जैसे सूर्य मूर्त द्रव्यों को प्रकाशित करता है, वैसे ही उपासना से वह जगदीश्वर भी भक्त जनों की आत्माओं में विज्ञान उत्पन्न करके सब सत्य व्यवहारों को प्रकाशित करता है, इसलिये ईश्वर को छोड़ कर किसी दूसरे की उपासना न करें ॥ ३ । ५२ ॥

भ० पदार्थः—सुसंदृशम्=मूर्तद्रव्यप्रकाशकम् [**सूर्यम्**], भक्तजनात्मसु विज्ञानोत्पादनेन सर्वसत्यव्यवहार प्रकाशकम् (**ईश्वरम्**) ।

भाष्यसार—१. **इन्द्र (ईश्वर) कैसा है**—इन्द्र अर्थात् ईश्वर परम उत्कृष्ट धन से युक्त, सब जगत् का हितकारी, भक्त जनों की आत्माओं में विज्ञान उत्पन्न करके सब सत्य व्यवहारों को प्रकाशित करने वाला है। इसलिये वह अभिवादन और स्तुति के योग्य है। स्तुति से वह उपासकों का पूर्ण बन्धु बनकर सब कमनीय पदार्थ प्रदान करता है तथा साथ-साथ बल और पराक्रम भी देता है। इसलिये ईश्वर को छोड़ कर अन्य कोई उपासनीय नहीं है।

२. **इन्द्र (सूर्य) कैसा है**—इन्द्र अर्थात् सूर्य मूर्त्त द्रव्यों का प्रकाशक, धन प्राप्ति का हेतु, सम्पूर्ण जगत् को बन्धन में रखने वाला, है। स्तुति करने से अर्थात् सूर्य के गुणों को प्रकाशित करने से वह उत्तम व्यवहार को सिद्ध करने वाले कमनीय पदार्थों को प्राप्त करता है। यह धारण और आकर्षण शक्तियों से युक्त है।

३. **अलंकार**—इस मन्त्र में श्लेष और उपमा दो अलङ्कार हैं। श्लेष अलङ्कार होने से इन्द्र शब्द से ईश्वर और सूर्य अर्थ का ग्रहण किया जाता है। 'नु' पद मन्त्र में उपमा वाचक है तथा सूर्य से विद्वान् की उपमा की गई है और सूर्य से ईश्वर की भी उपमा की गई है इसलिये उपमा अलङ्कार है ॥

बन्धुः । **मन्त्रः=स्पष्टम्** ॥ अतिपादनिचृद्गायत्री । षड्जः ॥

अथ मनसो लक्षणमुपदिश्यते ॥

अब मन के लक्षण का उपदेश किया जाता है ॥

मनो न्वाह्वामहे नाराशꣳसेन स्तोमेन । पितॄणां च मन्मभिः ॥ ५३ ॥

पदार्थः—(**मनः**) मननशीलं संकल्पविकल्पात्मकम् (**नु**) क्षिप्रार्थे (**आ**) समन्तात् क्रियायोगे (**ह्वामहे**) स्पर्धामहे (**नाराशंसेन**) नराणां समन्ताच्छंसः=प्रशंसनं नराशंसः, नराशंसेन निर्वृत्तस्तेन (**स्तोमेन**) स्तुतियुक्तेन व्यवहारेण (**पितृणाम्**) पालकानामृतूनां ज्ञानवतां मनुष्याणां वा (**च**) समुच्चये (**मन्मभिः**) मन्यन्ते=जानन्ति यैस्तैः । **अत्र सर्वधातुभ्यो मनिन्** ॥ उ० ४ । १४५ ॥ **इति मनिन्प्रत्ययः** ॥ **अयं मंत्रः** शत० २ । ६ । १ । ३९ व्याख्यातः ॥ ५३ ॥

प्रमाणार्थ—(मन्मभिः) यहाँ 'मन्' धातु से 'सर्वधातुभ्यो मनिन्' उणा० (४ । १४५) सूत्र से 'मनिन्' प्रत्यय है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (२ । ६ । १ । ३९) में की गई है ॥ ३ । ५३ ॥

सपदार्थान्वयः—**वयं नाराशंसेन** नराणां समन्ताच्छंसः=प्रशंसनं नराशंसः, नराशंसेन निर्वृत्तस्तेन **स्तोमेन** स्तुतियुक्तेन व्यवहारेण **पितृणां** पालकानामृतूनां ज्ञानवतां मनुष्याणां वा **च मन्मभिः** मन्यन्ते जानन्ति यैस्तैः **मनः** मननशीलं संकल्प-विकल्पात्मकं **नु** क्षिप्रम् **आह्वामहे** समन्तात् स्पर्द्धामहे ॥ ३ । ५३ ॥

भाषार्थ—हम लोग (**नाराशंसेन**) नरों की चहुँ ओर की प्रशंसा से बने (**स्तोमेन**) स्तुतियुक्त व्यवहार से और **पितृणाम्**) पालक ऋतुओं वा ज्ञानी मनुष्यों के (**मन्मभिः**) ज्ञान-साधनों से (**मनः**) मननशील संकल्प-विकल्प आत्मक मन को (**नु**) शीघ्र (**अह्वामहे**) विद्यादि गुणों से युक्त करते हैं ॥ ३ । ५३ ॥

[वयं नाराशंसेन स्तोमेन, पितृणां च मन्मभिर्मनो न्वाह्वामहे]

भावार्थः — मनुष्यैर्मनुष्यजन्मसाफल्यार्थं विद्यादिगुणयुक्तं मनः कर्त्तव्यम् ।

यथर्त्तवः स्वान् स्वान् गुणान् क्रमेण प्रकाशयन्ति यथा च विद्वांसः क्रमशोऽन्यामन्यां च विद्यां साक्षात्कुर्वन्ति, तथैव सततमनुष्ठाय विद्याप्रकाशौ प्राप्तयौ ॥ ३ । ५३ ॥

भावार्थ—मनुष्य मानव-जन्म को सफल करने के लिए मन को विद्यादि गुणों से युक्त करें ।

जैसे ऋतुएँ अपने-अपने गुणों को क्रमशः प्रकाशित करती हैं, और जैसे विद्वान् लोग क्रमशः एक के पश्चात् दूसरी विद्या को प्रत्यक्ष करते हैं, वैसे ही सब मनुष्य निरन्तर आचरण करके विद्या और प्रकाश को प्राप्त करें ॥ ३ । ५३ ॥

भा० पदार्थः—पितृणाम्=ऋतूनाम्—विदुषाम् । मन्मभिः=गुणप्रकाशैः/विद्यासाक्षात्कारैः ॥

भाष्यसार—**मन का लक्षण**—मानव की मननशील संकल्प-विकल्प आत्मक शक्ति को मन कहते हैं । मानव जीवन की सफलता के लिए मन का विद्यादि गुणों से युक्त होना आवश्यक है । जो नर मन की प्रशंसा करते हैं, इसके गुणों का वर्णन करते हैं, उनकी की हुई स्तुति से इस मन के स्वरूप को समझने की स्पर्धा करें । तथा ऋतुओं और विद्वानों के उदाहरण से भी मन के स्वरूप को समझें । छः ऋतुयें अपने-अपने गुणों को क्रमशः प्रकाशित करती हैं तथा विद्वान् लोग भी विद्याओं का क्रमशः साक्षात्कार करते हैं । इसी प्रकार मन भी क्रमशः ज्ञान को ग्रहण करता है, सहसा नहीं । यहाँ न्याय शास्त्रकार का मन का लक्षण कितना संगत है कि—'युगपज्ज्ञानानुपपत्तिर्मनसोलिङ्गम्' । सहसा ज्ञान को ग्रहण न करना मन का लक्षण है ।

बन्धुः । **मन्त्रः**=**स्पष्टम्** ॥ विराड् गायत्री । षड्जः ॥

पुनस्तन्मनः कीदृशमित्युपदिश्यते ॥

फिर वह मन कैसा है, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

आ न॑ ऽएतु मनः॒ पुनः॒ क्रत्वे॒ दक्षा॑य जी॒वसे॑ । ज्योक् च॒ सूर्यं॑ दृ॒शे ॥ ५४ ॥

पदार्थः—(**श्रा**) समन्तात् (**नः**) अस्मान् (**एतु**) प्राप्नोतु (**मनः**) स्मरणात्मकं चित्तम् (**पुनः**) वारं वारं जन्मनि जन्मनि वा (**क्रत्वे**) सद्विद्याशुभकर्मानुभूतसंस्कारस्मृतये। क्रतुरिति कर्मनामसु पठितम् ॥ निघं० २ । १ ॥ (**दक्षाय**) बलप्राप्तये। दक्ष इति बलनामसु पठितम् ॥ निघं० २ । ६ ॥ (**जीवसे**) जीवतुम। अत्र तुमर्थे से०। इत्यसे प्रत्ययः (**ज्योक्**) निरन्तरम् (**च**) समुच्चये (**सूर्यम्**) परमेश्वरं सवितृमण्डलं प्राणं वा (**दृशे**) द्रष्टुम्। अत्र दृशे विख्ये च ॥ अ० ३ । ४ । ११ ॥ इत्ययं निपातितः ॥ अयं मन्त्रः शत० २ । ६ । १ । ३९ व्याख्यातः ॥ ५४ ॥

प्रमाणार्थ—(**क्रत्वे**) 'क्रतु' शब्द निघं० (२ । १) में कर्म-नामों में पढ़ा है। (**दक्षाय**) 'दक्ष' शब्द निघं० (२ । ६) में बल-नामों में पढ़ा है। (**जीवसे**) यह पद 'जीव' धातु से 'तुमर्थे से०' [**अ०** ३ । ४ । ६] सूत्र से 'असे' प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है। (**दृशे**) यह पद 'दृशे विख्ये च' [**अ०** ३ । ४ । ११] सूत्र द्वारा निपातन से सिद्ध है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (२ । ६ । १ । ३९) में की गई है ॥ ३ । ५४ ॥

सपदार्थान्वयः—**यन्मनः** स्मरणात्मकं चित्तं **ज्योक्=निरन्तरं सूर्यं** परमेश्वरं, सवितृमण्डलं, प्राणं वा **दृशे** द्रष्टुं **क्रत्वे** सद्विद्याशुभकर्मानुभूतं-संस्कारस्मृतये **दक्षाय** बलप्राप्तये **जीवसे** जीवितुं **च=अन्येषां शुभकर्मणामनुष्ठानायस्ति तत् नः=अस्मान्** [**पुनः**]=**पुनः पुनः**,वारं वारं जन्मनि जन्मनि वा **आ=समन्ताद् एतु=प्राप्नोतु** ॥ ३ । ५४ ॥

भाषार्थ—जो (**मनः**) स्मरणात्मक चित्त है, वह (**ज्योक्**) लगातार (**सूर्यम्**) परमेश्वर, सूर्य-मण्डल वा प्राण को (**दृशे**) देखने के लिये (**क्रत्वे**) श्रेष्ठ विद्या, शुभकर्म तथा अनुभूत संस्कारों की स्मृति के लिये (**दक्षाय**) बल प्राप्ति के लिये (**जीवसे**) प्राणधारण के लिये (**च**) और अन्य शुभ कर्मों के आचरण के लिये है ऐसा मन (**नः**) हमें (**पुनः**) बार बार वा प्रत्येक जन्म में (**आ**) सब ओर से (**एतु**) प्राप्त हो ॥ ३ । ५४ ॥

[**यन्मनः···क्रत्वे···जीवसे च=अन्येषां शुभकर्मणामनुष्ठानायास्ति तन्नः=अस्मान् [पुनः]=पुनः पुनः आ=समन्तादेतु=प्राप्नोतु**]

भावार्थः—मनुष्यैः श्रेष्ठ कर्मानुष्ठानेन चित्तशुद्धिं कृत्वा पुनःपुनर्जन्मनि चित्त प्राप्तिरेवा-पेक्ष्या, येन मनुष्यजन्म प्राप्येश्वरोपासनं संराध्य निरन्तरं सद्धर्मोऽनुसेव्य इति ॥ ३ । ५४ ॥

भावार्थ—सब मनुष्य श्रेष्ठ कर्मों के आच-रण से चित की शुद्धि करके बार-बार जन्म में चित्त-प्राप्ति की ही आकांक्षा करें, जिस से मानव जीवन को प्राप्त करके ईश्वरोपासना की सिद्धि से सदा सत्यधर्म का सेवन कर सकें ॥ ३ । ५४ ॥

भाष्यसार—**मन कैसा है**—स्मरणात्मक चित्त का नाम मन है जो परमेश्वर, सूर्यमण्डल, और प्राणों को देखने का साधन है। स्मरणात्मक होने से उत्तम विद्या और शुभकर्मों के अनुभूत संस्कारों को स्मरण करने वाला है। यह मन बल प्राप्ति, प्राणधारण तथा शुभकर्मों के अनुष्ठान का साधन है। श्रेष्ठ कर्मों के अनुष्ठान से चित की शुद्धि होती है। यह प्रत्येक जन्म में प्राप्त होता है। इस से मानव जीवन में ईश्वरोपासना और सत्यधर्म का सेवन किया जाता है ॥ ३ । ५४ ॥

बन्धुः । **मनः**=**बुद्धिः** ॥ निचृद्गायत्री । षड्जः ॥

पुनर्मनः शब्देन बुद्धिरुपदिश्यते ॥

फिर मन शब्द से बुद्धि का उपदेश किया जाता है ॥

पुन॑र्नः पि॒तरो॒ मनो॒ ददा॑तु॒ दैव्यो॒ जनः॑ । जी॒वं व्रात॑ꣳसचेमहि ॥ ५५ ॥

पदार्थः—(पुनः) अस्मिन् जन्मनि पुनर्जन्मनि वा (नः) अस्मभ्यम् (**पितरः**) पान्त्यन्न-सुशिक्षाविद्यादानेन तत्संबुद्धौ (**मनः**) धारणावतीं बुद्धिम् (**ददातु**) प्रयच्छतु (दैव्यः) यो देवेषु=विद्वत्सु जातो विद्वान् । अत्र देवाद्यञञौ ॥ अ० ४ । १ । ८५ ॥ इति वार्तिकेन प्राग्दीव्यतीयान्तर्गते जातेऽर्थे यञ् प्रत्ययः (**जनः**) यो विद्याधर्माभ्यां परोपकारान् जनयति=प्रकटयति (**जीवम्**) ज्ञानसाधनयुक्तम् (**व्रातम्**) व्रतानां=सत्य-भाषणादीनां समूहस्तत् (**सचेमहि**) समवेयाम ॥ अयं मंत्रः शत० २ । ६ । १ । ३६ व्याख्यातः ॥ ५५ ॥

प्रमाणार्थ—(**दैव्यः**) यहां देव शब्द से 'देवाद्यञञौ' (अ० । १ । ८५) वार्तिक से प्राग्दी-व्यतीय प्रकरण के अन्तर्गत जात=(**उत्पन्न**) अर्थ में 'यञ्' प्रत्यय है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (२ । ६ । १ । ३६) में की गई है ॥ ३ । ५५ ॥

सपदार्थान्वयः—रे पितरः!=**जनका** ! **विद्याप्रदाश्च** पान्त्यन्नसुशिक्षाविद्यादानेन तत्सम्बुद्धौ ! **भवच्छिक्षया दैव्यः** यो देवेषु=विद्वत्सु जातो **जनो** यो विद्याधर्माभ्यां परोपकारान् जनयति =प्रकटयति [**सः**] **विद्वान् नः**=**अस्मभ्यं पुनः पुनः** अस्मिन् जन्मनि पुनर्जन्मनि वा **मनः**=**धारणावतीं बुद्धिं ददातु** प्रयच्छतु ।

येन वयं जीवं ज्ञानसाधनयुक्तं **व्रातं** व्रतानां=सत्यभाषणादीनां समूहस्तत् **सचेमहि**=**समवेयाम** ॥ ३ । ५५ ॥

भाषार्थ—हे (**पितरः**) अन्न आदि तथा विद्या दान से रक्षा करने वाले माता पिता तथा गुरुजनो ! आपकी शिक्षा से (**दैव्यः**) विद्वानों में उत्पन्न हुआ (**जनः**) विद्या और धर्म से परोपकार करने वाला जो विद्वान् मनुष्य है, वह (**नः**) हमें (**पुनः**) इस जन्म में वा दूसरे जन्म में (**मनः**) धारणावती बुद्धि को (**ददातु**) प्रदान करे ।

जिससे हम लोग (**जीवम्**) ज्ञान से सम्पन्न जीवन को (**व्रातम्**) सत्यभाषण आदि व्रतों से (**सचेमहि**) समवेत (**संयुक्त**) रहें ॥ ३ । ५५ ॥

[हे पितरः=**जनका** ! **विद्याप्रदाश्च भवच्छिक्षया**...**विद्वान्** नः=**अस्मभ्यं पुनः पुनर्मनः**=**धारणवतीं बुद्धिं ददातु**]

भावार्थः—नहि मनुष्याणां, विदुषां माता-पित्राचार्याणां च सुशिक्षया बिना मनुष्यजन्म-साफल्यं सम्भवति,

भावार्थ—विद्वानों की तथा माता, पिता और आचार्य जनों की उत्तम शिक्षा के बिना मनुष्यों का यह मानव-जन्म सफल नहीं हो सकता,

[**येन वयं जीवं व्रातं सचेमहि**=**समवेयाम**]

न च मनुष्यास्तया बिना पूर्णं जीवनं कर्म च समवैतुं शक्नुवन्ति ।

और—उस उत्तम शिक्षा के बिना मनुष्य पूर्ण जीवन और कर्म को प्राप्त नहीं कर सकते ।

[तात्पर्यमाह—]

तस्मात्—सर्वदा मातापित्राचार्यैः स्वसन्तानानि सम्यगुपदेशेन शरीरात्मबलवन्ति कर्त्तव्यानीति ॥ ३ । ५५ ॥

इसलिये—सदा माता, पिता और आचार्य लोग अपनी सन्तानों को उत्तम उपदेश से शरीर और आत्मा से बलवान् बनावें ॥ ३ । ५५ ॥

भा० पदार्थः--पितरः=विद्वांसो मातापित्राचार्याः । जीवम्=मनुष्यजन्म, जीवनम् । व्रातम्=कर्म ॥

भाष्यसार—**मन शब्द से बुद्धि का उपदेश**—पितर अर्थात् विद्वान् माता, पिता और आचार्य लोगों की उत्तम शिक्षा और विद्या के बिना मानव जीवन सफल नहीं हो सकता। इसलिए पितर लोग मनुष्यों को इस जन्म में और आगामी जन्मों में भी मन अर्थात् मेधा बुद्धि प्रदान करें। क्योंकि पितर जनों की उत्तम शिक्षा के बिना जीवन की पूर्णता और सत्य भाषण आदि शुभ कर्मों की प्राप्ति कभी नहीं हो सकती। इसलिये माता, पिता और आचार्य जन अपने सन्तानों के मन अर्थात् बुद्धि को अपने सदुपदेश से शुद्ध करके उन्हें शारीरिक और आत्मिक बल से सम्पन्न करें ॥ ३ । ५५ ॥

बन्धुः । **सोमः=ईश्वर, औषधिरसश्च** ॥ गायत्री । षड्जः ॥

अथ सोमशब्देनेश्वरौषधिरसा उपदिश्यन्ते ॥

अब सोम शब्द से ईश्वर और औषधियों के रसों का उपदेश किया जाता है ॥

व॒यꣳ सो॑म व्र॒ते तव॒ मन॑स्त॒नूषु॒ बिभ्र॑तः । प्र॒जाव॑न्तः सचेमहि ॥ ५६ ॥

पदार्थः—(**वयम्**) मनुष्याः (**सोम**) सुवति चराचरं जगत्तत्सम्बुद्धौ जगदीश्वर ! **अथवा** सूयन्ते रसा यस्मात्स सोम औषधिराजः (**व्रते**) सत्यभाषणादिधर्मानुष्ठाने (**तव**) अस्य वा (**मनः**) अन्तःकरणस्याहङ्कारादिवृत्तिम् (**तनूषु**) विस्तृतसुखशरीरेषु (**बिभ्रतः**) धारयन्तः पोषयन्तश्च (**प्रजावन्तः**) बह्वयः सुसन्तानराष्ट्राख्याः प्रजा विद्यन्ते येषान्ते । **अत्र भूम्न्यर्थे मतुप** (**सचेमहि**) समवेयाम ॥ ५६ ॥

प्रमाणार्थ—(**प्रजावन्तः**) यहाँ आधिक्य अर्थ में 'मतुप्' प्रत्यय है ॥ ३ । ५६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **सोम=जगदीश्वर** ! सुवति चराचरं जगत्तत्सम्बुद्धौ जगदीश्वर ! **तव** [**व्रते**]=**सत्याचरणरूपे व्रते** सत्यभाषणादिधर्मानुष्ठाने **वर्त्तमानास्तनूषु** विस्तृतसुखशरीरेषु **मनः** अन्तःकरणस्याहङ्कारादि वृत्तिं **बिभ्रतः** धारयन्तः पोषयन्तश्च **प्रजावन्तः** बह्वयः सुसन्तानराष्ट्राख्याः प्रजा विद्यन्ते येषान्ते **सन्तो वयं** मनुष्याः **सर्वैः सुखैः सचेमहि=समवेयामेत्येकः** ॥

तव=अस्य [**सोम**]=**सोमस्य सूयन्ते** रसा यस्मात्स सोम औषधिराजः [**तस्य**] **व्रते=सत्याचरणनिमित्ते तनूषु** विस्तृतसुखशरीरेषु **मनः** अन्तःकरणस्याहङ्कारादिवृत्तिं **बिभ्रतः** धारयन्तः पोषयन्तश्च **सन्तः प्रजावन्तः** बह्वयः सुसन्तानराष्ट्राख्याः प्रजा विद्यन्ते येषां ते **भूत्वा वयं**

भाषार्थ—हे (**सोम**) चराचर जगत् के उत्पत्तिकर्ता जगदीश्वर ! आपके (**व्रते**) सत्यभाषण आदि धर्माचरण में वर्त्तमान हम लोग (**तनूषु**) विस्तृत सुख वाले शरीरों में (**मनः**) अन्तःकरण की अहंकार आदि वृत्ति रूप मन को (**बिभ्रतः**) धारण और पुष्ट करते हुये तथा (**प्रजावन्तः**) उत्तम सन्तान और राष्ट्रनायक प्रजा वाले होकर (**वयम्**) हम लोग सब सुखों से (**सचेमहि**) समवेत (**संयुक्त**) रहें॥ यह मन्त्र का पहला अर्थ है ॥

और (**तव**) इस (**सोम**) रसों के उत्पादक औषधियों के राजा सोम के (**व्रते**) सत्य विज्ञान के लिये (**तनूषु**) विशाल सुख वाले शरीरों में (**मनः**) अन्तःकरण की अहङ्कार आदि वृत्ति रूप मन को (**बिभ्रतः**) धारण एवं पुष्ट करते हुये (**प्रजावन्तः**) उत्तम सन्तान तथा राष्ट्र नायक प्रजा वाले होकर

मनुष्याः सर्वैः सुखैः सचेमहि=**नित्यं समवेयामेति द्वितीयः** ॥ ३ । ५६ ॥

(**वयम्**) हम लोग सब सुखों से (**सचेमहि**) नित्य समवेत (**संयुक्त**) रहें। यह मन्त्र का दूसरा अर्थ है ॥ ३ । ५६ ॥

[हे सोम=जगदीश्वर ! तव [व्रते]=सत्याचरणरूपे व्रते वर्तमानाः·········वयं सर्वैः सुखैः सचेमहि=समवेयाम]

भावार्थः—अत्र श्लेषालङ्कारः ॥ ईश्वरस्याज्ञायां वर्तमाना मनुष्याः शरीरात्मसुखं नित्यं प्राप्नुवन्ति ।

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष अलङ्कार है ॥ ईश्वर की आज्ञा में रहने वाले मनुष्य शारीरिक और आत्मिक सुख को नित्य प्राप्त करते हैं।

[तव=अस्य [सोम]=सोमस्य व्रते=सत्याचरणनिमित्ते···वयं सर्वैः सुखैः सचेमहि=नित्यं समवेयाम]

एवं सोमाद्योषधिसेविनोऽपि तत्सुखं समवयन्ति; नेतर इति ॥ ३ । ५६ ॥

इस प्रकार सोम आदि औषधियों का सेवन करने वाले भी शारीरिक और आत्मिक सुख को प्राप्त करते हैं; दूसरे नहीं ॥ ३ । ५६ ॥

भा० पदार्थः—व्रते=ईश्वरस्याज्ञायाम् ।

भाष्यसार—१. **सोम (ईश्वर)**—सोम अर्थात् जगदीश्वर सब चराचर जगत् को उत्पन्न करने वाला (**सोम**) है। उसके बतलाये व्रत अर्थात् सत्यभाषण आदि धर्मानुष्ठान में एवं उसकी आज्ञा में रह कर, मन अर्थात् अन्तःकरण की अहङ्कारादि वृत्तियों को धारण करके उत्तम सन्तान और उत्तम राष्ट्र वाले होकर शारीरिक और आत्मिक सब सुखों को नित्य प्राप्त करें।

२. **सोम (औषधि रस)**—सोम औषधियों का राजा है, जो सत्याचरण में सहायक है। उसके सेवन से शरीर में वर्तमान मन अर्थात् अन्तःकरण को पुष्ट करते हुये उत्तम सन्तान और उत्तम राष्ट्र वाले होकर शरीर और आत्मा सम्बन्धी सब सुखों को प्राप्त करें।

तात्पर्य यह है कि सोम का सेवन करने वालों को ही सब सुख प्राप्त होते हैं, दूसरों को नहीं ॥

३. **अलंकार**—यहां श्लेष अलङ्कार होने से 'सोम' शब्द से ईश्वर और औषधि रस दो अर्थों का ग्रहण किया गया है ॥

●

वन्धुः । **रुद्रः=विद्वान् और प्राण** । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

अथ मनोलक्षणकथनानन्तरं प्राणलक्षणमुपदिश्यते ॥

मन के लक्षण कहने के पश्चात् अब प्राण के लक्षण का उपदेश किया जाता है ॥

एष तें रुद्र भागः सह स्वस्नाम्बिकया तं जुषस्व स्वाहैष तें रुद्र भागऽआखुस्तें पशुः ॥ ५७ ॥

पदार्थः—(एषः) प्रत्यक्षः (**ते**) तवास्य वा (**रुद्र**) रोदयत्यन्यायकारिणो जनान् स रुद्रः=स्तोता तत्सम्बुद्धौ । रुद्र इति स्तोतृनामसु पठितम ॥ निघं० ३ । १६ ॥ रुद्र इत्येतस्य त्रयस्त्रिंशद्वेव्याख्याने प्राणसंज्ञेत्युक्तम् । रुद्र रौतीति सतो रोरूयमाणो द्रवतीति वा रोदयतेर्वा यदरुदत्तद्रुद्रस्य रुद्रत्वमिति काठकं, यदरोदीत्तद्रुद्रस्य रुद्रत्वमिति हारिद्रविकम् ॥ निरु० १० । ५ ॥ रोदेर्णिलुक च ॥ उ० २ । २२ ॥ अनेन रुद्रशब्दः सिद्धः (**भागः**) सेवनीयः (**सह**) संगे (**स्वस्रा**) सुष्ठवस्यति=प्रक्षिपति यया विद्यया क्रियया वा तया । सावसे-

र्क्न् ॥ उ० २ । ६६ ॥ अनेन स्वसृशब्दः सिध्यति (अम्बिकया) अम्बते=शब्दयति यया तया (तम्) भागम् (जुषस्व) सेवस्व सेवते वा । **अत्र पक्षे व्यत्ययो लडर्थे लोट् च** (स्वाहा) शोभनं देयमादेयमाह यया सा (एषः) वक्ष्यमाणः (ते) तवास्य वा (रुद्र) उक्तार्थः (भागः) भजनीयः (आखुः) समन्तात्खनत्यवदृणाति येन भोजनसाधनेन सः । **अत्र आङ्परयोः खनिशृभ्यां डिच्च ॥ उ० १ । ३३ ॥ इति कुप्रत्ययो डित्संज्ञा च** (पशुः) यो दृश्यते भोग्यपदार्थसमूहः समक्षे स्थापितः सः । **अत्र अजिदृशिकमि० ॥ १ । २७ ॥ इत्यौणादिकसूत्रेणास्य सिद्धिः अयं मंत्रः शत० २ । ६ । २ । ६–१० व्याख्यातः ॥ ५७ ॥**

प्रमाणार्थ—(**रुद्र**) 'रुद्र' शब्द निघं० (३ । १६) में स्तोता-नामों में पढ़ा है। रुद्र शब्द की तेंतीस देवताओं के व्याख्यान में प्राण संज्ञा कही गई है। 'रुद्र' शब्द की व्याख्या निरु० (१० । ५) में इस प्रकार है—"शब्द अर्थ वाली 'रु' धातु से 'रुद्र' शब्द बनता है क्योंकि यह बहुत शब्द करता हुआ दौड़ता है। अथवा वह शत्रुओं को रुलाता है, अतः वह रुद्र है। काठक और हारिद्रविक शाखा के अनुसार 'रुद्र रो पड़ा' इस लिए भी वह रुद्र कहाता है। 'रोदेर्णि लुक् च' उणा० (२ । २२) से 'रुद्र' शब्द सिद्ध होता है (**स्वस्रा**) यह शब्द 'सानसे र्क्न्' उणादि (२ । ६६) सूत्र से सिद्ध है। (**जुषस्व**) सेवस्व सेवते वा। यहाँ पक्ष में व्यत्यय और लट् अर्थ में लोट् लकार है। (**आखुः**) 'आखु' शब्द आङ्परयोः खनिशृभ्यां डिच्च' उणा० (१ । ३३) सूत्र से 'खन्' धातु से 'कु' प्रत्यय और उसके 'डित्' होने से 'आखु' शब्द सिद्ध होता है। (**पशुः**) इस शब्द की सिद्धि 'अजिदृशिकमि०' उणा० (१ । २७) सूत्र से जाननी चाहिए। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (२ । ६ । २ । ६-१०) में की गई है ॥ ३ । ५७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **रुद्र** !=**स्तोतः** ! रोदयत्यन्यायकारिणो जनान् स रुद्रः स्तोता तत्सम्बुद्धौ **ते**=**तवैष** प्रत्यक्षः **भागः** सेवनीयः **अस्ति, तं त्वमम्बिकया** अम्बते=शब्दयति यया तया **स्वस्रा** सुष्ठ्वस्यति=प्रक्षिपति यया विद्यया तया **सह** सङ्गे **जुषस्व** सेवस्व।

हे रुद्र ! **ते**=**तवैषोऽयं भागः** सेवनीयः **स्वाहा** शोभनं देयमादेयमाह यया सा **अस्ति, तं सेवस्व**।

हे रुद्र ! **ते**=**तवैष** वक्ष्यमाणः **आखुः** समन्तात् खनत्यवदृणाति येन भोजनसाधनेन स **पशुः** यो दृश्यते भोग्यपदार्थ समूहः समक्षे स्थापितः सः **चास्ति,** तं भागं **जुषस्वः सेवस्वेत्येकः** ॥

योऽयं रुद्रः=**प्राणस्ते**=**अस्य रुद्रस्य योऽयं भागः** सेवनीयः **अम्बिकया** अम्बते=शब्दयति यया तया **स्वस्रा** सुष्ठ्वस्यति=प्रक्षिपति यया क्रियया तया **सह जुषस्व**=**सेवते**।

तेऽस्य रुद्रस्यैषोऽयं स्वाहा शोभनं देयमादेयमाह यया सा **भागः** भजनीयः, **तथा यस्ते**=**अस्याखुः** सम-

भावार्थ—हे (**रुद्र**) अन्यायकारी जनों को रुलाने वाले विद्वान् ! (**ते**) तेरा (**एषः**) यह (**भागः**) सेवन करने योग्य विद्या पदार्थ है, उसको तू (**अम्बिकया**) प्रिय वेदादि शब्द विद्या से (**स्वस्रा**) अविद्या अन्धकार को अच्छे प्रकार दूर हटाने वाली विद्या के (**सह**) संग (**जुषस्व**) सेवन कर।

हे (**रुद्र**) स्तोता (**ते**) तेरा (**एषः**) यह (**भागः**) सेवनीय (**स्वाहा**) जिस क्रिया से दान और ग्रहण होता है उसको (**जुषस्व**) सेवन कर।

हे (**रुद्र**) स्तोता ! (**ते**) तेरा (**एषः**) यह उपदिश्यमान (**आखु**) सब ओर खोदने योग्य भोजन साधन और (**पशुः**) दृश्यमान भोग्य पदार्थ है (**उसके**) सेवन करने योग्य पदार्थ को (**जुषस्व**) उपभोग कर। यह मन्त्र का पहला अर्थ है ॥

जो यह (**रुद्रः**) प्राण है, (**ते**) इस रुद्र का जो यह (**भागः**) सेवन करने योग्य भाग है यह (**अम्बिकया**) वेदवाणी एवं (**स्वस्रा**) शब्द विद्या के (**सह**) संग (**जुषस्व**) सेवन करता है।

(**ते**) इस प्राण का (**एषः**) यह (**स्वाहा**) उत्तम रीति से प्राण-अपान क्रिया रूप (**भागः**)

न्तात् खनत्यवद्गृणाति येन भोजनसाधनेन सः **पशुः** यो दृश्यते भोग्यपदार्थ समूहः समन्ते स्थापितः सः **चास्ति, यमयं सततं जुषस्व=सेवते, तं सर्वे मनुष्याः सेवन्ताम्** [**इति द्वितीयः**] ॥ ३ । ५७ ॥

सेवन करने योग्य भाग है जो (**ते**) इसका (**आखुः**) सब ओर से खोदने योग्य भोजन साधन और (**पशुः**) दृश्यमान भोग्य पदार्थ है उसका (**जुषस्व**) सेवन करता है, उक्त भोग्य पदार्थों का सब सेवन करें। [**यह मंत्र का दूसरा अर्थ है**] ॥ ३ । ५७ ॥

[**हे रुद्र=स्तोतः ! ते=तवैव भागोऽस्ति, तं त्वमम्बिकया स्वस्रा सह जुषस्व**]

भावार्थ—अत्र श्लेषालङ्कारः ॥ यथा भ्राता प्रियया विदुष्या भगिन्या सह वेदादिशब्द विद्यां पठित्वाऽऽनन्दं भुङ्क्ते,

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष अलङ्कार है ॥ जैसे भाई अपनी प्रिया विदुषी बहिन के साथ वेदादि शब्दविद्या को पढ़कर आनन्द का भोग करता है,

[**योऽयं रुद्रः=प्राणस्ते=अस्य रुद्रस्य योऽयं भागोऽम्बिकया स्वस्रा सह जुषस्व=सेवते**]

यथा चायं प्राणः श्रेष्ठया शब्द विद्यया प्रियो जायते, तथैव विद्वान् शब्दविद्यां प्राप्य सुखी जायते ।

और जैसे—यह प्राण श्रेष्ठ शब्द विद्या से प्रिय बनता है, वैसे ही विद्वान् शब्दविद्या को प्राप्त करके सुखी होता है ।

[**तात्पर्यमाह**—]

नैताभ्यां विना कश्चिदपि सत्यं ज्ञानं सुखभोगं च प्राप्तुं शक्नोतीति ॥ ३ । ५७ ॥

विद्वान् भ्राता और प्राण इन दोनों के बिना कोई भी सत्य-ज्ञान और सुखभोग को प्राप्त नहीं कर सकता ॥ ३ । ५७ ॥

भा० पदार्थः—रुद्र=भ्रातः । स्वस्रा=वेदादिशब्दविद्यया, भगिन्या । अम्बिकया= विदुष्या ।

भाष्यसार—**१. रुद्र (विद्वान् भ्राता)**—अन्यायकारी लोगों को रुलाने वाला विद्वान् रुद्र कहलाता है। वेदविद्या उसकी सेवनीय वस्तु है, जिसका वह उपदेश करने वालों वेदविद्या से अविद्यान्धकार को दूर भगाने वाली अपनी प्रिय विदुषी बहिन के साथ सेवन करता है और इस सेवनीय वेदविद्या का वह परस्पर उत्तम आदान-प्रदान की क्रिया से भी सेवन करता है। यह भोजन साधन चमस आदि से भोज्य पदार्थों का सेवन करता है ॥

२. रुद्र (प्राण)—प्राण को भी रुद्र कहते हैं। प्राण की भी सेवनीय वस्तु शब्दविद्या है। श्रेष्ठ शब्दविद्या से यह प्राण प्यारा लगता है। यह प्राण आदान-प्रदान की क्रिया से विद्या का सेवन करता है तथा उत्तम भोज्य पदार्थों का सेवन भी प्राण ही करता है। प्राण के बिना सुखभोग संभव नहीं ॥

३. अलंकार—इस मन्त्र में श्लेष-अलङ्कार होने से रुद्र शब्द से विद्वान् और प्राण दो अर्थों का ग्रहण किया गया है ॥ ३ । ५७ ॥

●

बन्धुः । **रुद्रः=ईश्वरः** ॥ विराट् पंक्तिः । पञ्चमः ॥

अथ रुद्रशब्देनेश्वर उपदिश्यते ॥

अब रुद्र शब्द से ईश्वर का उपदेश किया जाता है ॥

अवं रुद्रमदीमह्यवं देवं त्र्यम्बकम् ।
यथा नो वस्यंसस्करद्यथा नः श्रेयंसस्करद्यथा नो व्यवसाययात् ॥ ५८ ॥

पदार्थः—(**अव**) विनिग्रहार्थे (**रुद्रम्**) दुष्टानां रोदयितारं परमेश्वरम् (**अदीमहि**) सर्वाणि दुःखानि क्षाययेम=नाशयेम । अत्र दीङ् क्षय इत्यस्माल्लिङर्थे लङ् । बहुलं छन्दसीति श्यनो लुक् (**अव**) अवगमार्थे (**देवम्**) दातारम् (**त्र्यम्बकम्**) अमति येन ज्ञानेन तदम्बं त्रिषु कालेष्वेकरसं ज्ञानं यस्य तम् । अत्र अमगत्यादिष्वस्माद् बाहुलकेन करणकारके बः प्रत्ययस्ततः । शेषाद्विभाषा ॥ अ० ५ । ४ । १५४ ॥ इति समासान्तः कप् प्रत्ययः (**यथा**) येन प्रकारेण (**नः**) अस्मान् (**वस्यसः**) येऽतिशयेन वसन्ति ते वसीयांसस्तान् । अत्र छान्दसो वर्णलोपो वेतीकारलोपः (**करत्**) कुर्य्यात् । अयं लेट् प्रयोगः । डुकृञ् करणे इत्यस्य भ्वादिगणान्तर्गतपठितत्वाच्छब्विकरणोऽत्र गृह्यते । तनादिभिः सह पाठादुविकरणोपि । कः करत्करति कृधिकृतेष्वनदितेः ॥ अ० ८ । ३ । ५० ॥ नित्यं करोतेः ॥ अ० ६ । ४ । १०८ ॥ एताभ्यां द्वाभ्यां ज्ञापकाभ्यामप्युभयगणप्रयोगः कृञ् गृह्यते (**यथा**) (**नः**) अस्मान् (**श्रेयसः**) अतिशयेन प्रशस्तान् (**करत्**) कुर्य्यात् अत्रापि लेट् (**यथा**) (**नः**) अस्मान् (**व्यवसाययात्**) निश्चयवतः कुर्य्यात् । अयं व्ययपूर्वात् षोऽन्तकर्मणीति णिजन्ताद्धातोः प्रथमपुरुषैकवचने तिपि लेट् प्रयोगः ॥ अयं मंत्रः शत० २ । ६ । २ । ११ व्याख्यातः ॥ ५८ ॥

प्रमाणार्थ—(**अदीमहि**) यहां क्षय अर्थ वाली 'दीङ्' धातु से लिङ् अर्थ में लङ् लकार है तथा 'बहुलं छन्दसि' [अ० २ । ४ । ७३] सूत्र से 'श्यन्' प्रत्यय का लुक् है । (**त्र्यम्बकम्**) यहां गत्यादि-अर्थ वाली 'अम्' धातु से बहुल करके करण अर्थ में 'ब' प्रत्यय है और 'शेषाद विभाषा' (अ० ५ । ४ । १५४) सूत्र से समासान्त 'कप' प्रत्यय है । (**वस्यसः**) यहां 'छन्दसो वर्ण लोपो वा' अर्थात् 'वेद में वर्णों का लोप हो जाया करता है' इस नियम के अनुसार 'ईकार' का लोप है । (**करत्**) कुर्यात् । यह लेट् लकार का प्रयोग है । 'डुकृञ् करणे' इस धातु का भ्वादिगण में पाठ होने से यहां 'शप्' विकरण प्रत्यय का ग्रहण होता है, तनादि के साथ पठित होने के कारण 'उ' विकरण प्रत्यय का भी ग्रहण होता है । 'कः करत् करतिकृधिकृतेष्वनदितेः' (अ० ८ । ३ । ५०) और 'नित्यं करोतेः' (अ० ६ । ४ । १०८) इन दो ज्ञापकों द्वारा दोनों गणों के प्रयोग वाली 'कृञ्' धातु गृहीत होती है । (**करत्**) यहां भी लेट् लकार है । (**व्यवसाययात्**) यह वि-अव पूर्व अन्तकर्म वाली णिजन्त 'षो' धातु से प्रथम पुरुष के एकवचन में तिप् के परे रहते लेट् लकार का प्रयोग है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (२ । ६ । २ । ११) में की गई है ॥ ३ । ५८ ॥

सपदार्थान्वयः—वयं **त्र्यम्बकम्** अमति येन ज्ञानेन तदम्बं त्रिषु कालेष्वेकरसं ज्ञानं यस्य तं **देवं** दातारं **रुद्रं**=**जगदीश्वरं** दुष्टानां रोदयितारं परमेश्वरम् **उपास्य दुःखान्यवादीमहि**=**अवक्षाययेम** सर्वाणि दुःखानि क्षाययेम=नाशयेम ।

स यथा येन प्रकारेण **नः**=**अस्मान् वस्यसः** येऽतिशयेन वसन्ति ते वसीयांसस्तान् **अवकरत्** अवगमं=कुर्य्यात्; **यथा** येन प्रकारेण **नः**=**अस्मान् श्रेयसः** अतिशयेन प्रशस्तान् **अवकरत्** कुर्य्यात; **यथा** येन प्रकारेण **नः**=**अस्मान् व्यवसाययात्** निश्चयवतः कुर्य्यात्, **तथा तं वसीयांसं श्रेयांसं व्यवसायप्रदं**

भाषार्थ—हम लोग (**त्र्यम्बकम्**) भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान इन तीनों कालों में एकरस ज्ञान वाले (**देवम्**) सब सुखों के दाता (**रुद्रम्**) दुष्टों को रुलाने वाले जगदीश्वर की उपासना करके सब दुःखों का (**अव-अदीमहि**) क्षय एवं विनाश करें ।

वह परमेश्वर (**यथा**) जिससे (**नः**) हमें (**वस्यसः**) उत्तम रीति से बसने वाला (**अवकरत्**) बनाये और (**यथा**) जिससे (**नः**) हमें (**श्रेयसः**) अत्यन्त प्रशंसा के पात्र (**अवकरत्**) बनाये । और (**यथा**) जिससे (**नः**) हमें (**व्यवसाययात्**) उपासनादि शुभकर्मों में दृढ़ निश्चय वाला बनायें । इस

परमेश्वरमेव प्रार्थयामः ॥ ३ । ५८ ॥

लिये उस सबको बसाने वाले, श्रेष्ठ, दृढ़ निश्चय के प्रदाता परमेश्वर से ही प्रार्थना करते हैं ।

[वयं त्र्यम्बकं ... रुद्रं=जगदीश्वरमुपास्य दुःखान्यवा दीमहि=शवक्षाययेम]

भावार्थः— नहीश्वरस्योपासनेन विना कश्चिन्मनुष्यः सर्वदुःखान्तं गच्छति ।

भावार्थ—ईश्वर की उपासना के बिना कोई भी मनुष्य सब दुःखों का अन्त नहीं कर सकता ।

[स यथा नः=अस्मान् वस्यसः, श्रेयसो ऽस्करत्, व्यवसाययात् तथा तं वसीयांसं श्रेयांसं व्यवसायप्रदं परमेश्वरमेव प्रार्थयामः]

यः सर्वान् सुखनिवासान्, प्रशस्तान्, सत्यनिश्चयान् करोति, तस्यैवाज्ञा सर्वैः पालनीयेति ॥ ३ । ५८ ॥

जो ईश्वर हम सबको सब सुखों का निवासस्थान, सर्वत्र प्रशंसनीय, सत्य निश्चय करने वाला बनाता है, उसकी ही आज्ञा का पालन सब करें ॥ ३ । ५८ ॥

भा० पदार्थः—वस्यस्यः=सुखनिवासान् । श्रेयसः=प्रशस्तान् । व्यवसाययात्=सत्यनिश्चयान् करोति । करत्=करोति ॥

भाष्यसार—रुद्र (ईश्वर)—रुद्र अर्थात् जगदीश्वर का ज्ञान तीनों कालों में एक रस रहता है, वह श्रेष्ठों को सब सुखों का दाता है तथा दुष्टों को रुलाने वाला है । रुद्र (ईश्वर) की उपासना से ही मनुष्य सब दुखों का विनाश कर सकता है । वह रुद्र हमें सुख से निवास करने वाले, अत्यन्त प्रशंसनीय और सत्य का निश्चय करने वाले बनाता है इसलिए हम उस रुद्र परमेश्वर की प्रार्थना, उपासना और आज्ञापालन किया करें ॥ ३ । ५८ ॥

●

बन्धुः । **रुद्रः**=ईश्वरः ॥ स्वराड् गायत्री । षड्जः ॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते ॥

फिर वह रुद्र (परमेश्वर) कैसा है, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

भेषजमसि भेषजं गवेऽश्वाय पुरुषाय भेषजम् सुखं मेषाय मेष्यै ॥ ५९ ॥

पदार्थ—(**भेषजम्**) शरीरान्तःकरणेन्द्रियात्मनां सर्वरोगाऽपहारकमौषधम् (**असि**) (**भेजषम्**) अविद्यादिक्लेशनिवारकम् (**गवे**) इन्द्रियधेनुसमूहाय (**अश्वाय**) तुरङ्गाद्याय (**पुरुषाय**) पुरुषप्रभृतये (**भेषजम्**) रोगनिवारकम् (**सुखम्**) सुखं कस्मात्सुहितं खेभ्यः खं पुनः खनतेः ॥ निरु० ३ । १३ ॥ (**मेषाये**) अवये (**मेष्यै**) तत्स्त्रियै ॥ अयं मंत्रः शत० २ । ६ । २ । ११ व्याख्यातः ॥ ५९ ॥

प्रमाणार्थ—(सुखम्) निरु० (३ । १३) में 'सुख' शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है—"सुख को सुख क्यों कहते हैं ? सुख को सुख इसलिए कहते हैं कि सुख इन्द्रियों के लिए हितकारक है । 'ख' (**इन्द्रिय**) को 'ख' इसलिए कहते हैं इनके (**कर्णादि**) स्थान खुदे हुए से होते हैं । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (२ । ६ । २ । ११) में की गई है । ३ । ५९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे रुद्र=जगदीश्वर !

भाषार्थ—हे रुद्र जगदीश्वर ! जो आप

यः शरीररोगनाशकत्वाद् भेषजं शरीरान्तः-करणेन्द्रियात्मनां सर्वरोगाऽपहारकमौषधम् **असि** ।

(**भेषजम्**) शरीर अन्तःकरण, इन्द्रिय और आत्मा के सब रोगों को दूर करने वाली औषध (**असि**) हो ।

आत्मरोगदूरीकरणाद् भेषजम् अविद्यादिक्लेश-निवारकम् **असि । एवं सर्वेषां दुःखनिवारकत्वाद् भेषजम्** रोगनिवारकम् **असि** ।

आत्मा के रोग (**औषधम्**) अविद्या आदि क्लेश निवारण करने वाली औषध (**असि**) हो । सब दुःखों को दूर करने वाली (**औषधम्**) रोग निवारक औषध हो ।

स त्वं नः=**अस्मभ्यमस्माकं वा गवे** इन्द्रियधेनु-समूहाय **अश्वाय** तुरङ्गाद्याय **पुरुषाय** पुरुषप्रभृतये **मेषाय** अवये **मेष्यै** तत्स्त्रियै **सुखं देहि** ॥ ३ । ५९ ॥

सो आप हमारी (**गवे**) इन्द्रियाँ और दूध देने वाली गौओं को (**अश्वाय**) घोड़े आदिकों को (**पुरुषाय**) पुरुष आदिकों को (**मेषाय**) भेड़ों (पु०) (**मेष्यै**) भेड़ों (स्त्री०) के लिये (**सुखम्**) सुख प्रदान कीजिये ॥ ३ । ५९ ॥

[हे रुद्र=जगदीश्वर! यः शरीररोगनाशकत्वाद्, आत्मरोगदूरीकरणाद्, एवं सर्वेषां दुःखनिवारकत्वाद् भेषजमसि]

भावार्थः—नहि परमेश्वरोपासनेन विना शरीरात्मप्रजानां दुःखापनयो भूत्वा सुखं जायते ।

भावार्थ—परमेश्वर की उपासना के बिना शरीर, आत्मा और प्रजा का दुःख दूर होकर सुख उत्पन्न नहीं होता ।

[स त्वं नः=अस्मभ्यमस्माकं वा गवे, अश्वाय, पुरुषाय, मेषाय, मेष्यै सुखं देहि]

तस्मात्—सर्वैर्मनुष्यैरीश्वरौषधसेवनेन शरीरात्मप्रजापशूनां प्रयत्नेन दुःखानि निवार्य सुखं जननीयमिति ॥ ३ । ५९ ॥

इसलिये—सब मनुष्य ईश्वर रूप औषध के सेवन से शरीर, आत्मा, प्रजा और पशुओं के दुःखों को हटाकर सुख को उत्पन्न करें ॥ ३ । ५९ ॥

भाष्यसार—**रुद्र (ईश्वर) कैसा है**—रुद्र अर्थात् जगदीश्वर शरीर, अन्तःकरण, इन्द्रियों के सब रोगों को दूर करने वाली औषध है । आत्मा के अविद्या आदि क्लेशों को निवारण करने की औषध भी यही है । प्रजा सम्बन्धी सब रोगों को हटाने की औषध भी रुद्र (**ईश्वर**) ही है । इसलिये सब लोग ईश्वर-रूप औषध के सेवन से शरीर, इन्द्रिय, आत्मा (**पुरुष**), प्रजा तथा घोड़े, भेड़ (**दम्पती**) आदि पशुओं के दुःखों को हटा कर सुखों को उत्पन्न करें ॥

●

वसिष्ठः । **रुद्रः**=**ईश्वरः** ॥ विराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् । धैवतः ।

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते ॥

फिर वह रुद्र (जगदीश्वर) कैसा है, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् ।

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम् । उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः ॥ ६० ॥

पदार्थः—(**त्र्यम्बकम्**) उक्तार्थं रुद्रं जगदीश्वरम् (**यजामहे**) नित्यं पूजयेमहि (**सुगन्धिम्**)

शोभनः शुद्धो गन्धो यस्मात्तम् । **अत्र गन्धस्येदुत्पूतिसुसुरभिभ्यः ॥ अ० ५ । ४ । १३५ ॥ इति सूत्रेण समासान्त** इतकारादेशः (**पुष्टिवर्धनम्**) पुष्टेः शरीरात्मबलस्य वर्धनस्तम् । **अत्र नन्द्यादित्वाल्ल्युः प्रत्ययः** (**उर्वारुकमिव**) यथोर्वारुकफलं पक्वं भूत्वाऽमृतात्मकं भवति (**बन्धनात्**) लतासम्बन्धात् (**मृत्योः**) प्राणशरीरात्मवियोगात् (**मुक्षीय**) मुक्तो भूयासम् (**मा**) निषेधे (**अमृतात्**) मोक्षसुखात् (**त्र्यम्बकम्**) सर्वाध्यक्षम् (**यजामहे**) सत्कुर्वीमहि (**सुगन्धिम्**) सुष्ठु गन्धो यस्मिँस्तम् (**पतिवेदनम्**) पाति=रक्षति स पतिः पतेर्वेदनं=प्रापणं ज्ञानं वा यस्मात्तम् (**उर्वारुकमिव**) उक्तोर्थः (**बन्धनात्**) उक्तोर्थः (**इतः**) अस्माच्छरीरान्मर्त्यलोकाद्वा (**मुक्षीय**) पृथग्भूयासम् (**मा**) निषेधार्थे (**अमृतः**) मोक्षाख्यात् परलोकात् परजन्मसुखफलाद् धर्माद्वा ॥ अत्राह यास्को निरुक्ते—**त्र्यम्बको रुद्रस्तं त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं सुष्ठु गन्धिं पुष्टिवर्धनं पुष्टिकारकमिवोर्वारुकमिव फलं बंधनादारोधनान्मृत्योः सकाशान् मुञ्चस्व माम् ॥ निरु० १३ । ४८ ॥ अयं मंत्रः शत० २ । ६ । २ । १२—१४ व्याख्यातः ॥ ६० ॥**

प्रमाणार्थ—(**सुगन्धिम्**) 'सुगन्धि' शब्द 'गन्धस्येदुत्पूति सुसुरभिभ्यः' (**अ० ५ । ४ । १३५**) सूत्र से 'सुगन्ध' शब्द को समासान्त 'इकार' आदेश करने पर सिद्ध है । (**पुष्टिवर्द्धनम्**) यहां 'नन्द्यादिगण' से 'ल्यु' प्रत्यय है । इस मन्त्र की व्याख्या यास्कमुनि निरु०(१३ । ४८) में इस प्रकार करते हैं—"त्र्यम्बक= रुद्रदेव को हम पूजते हैं, वह देव हमें सुन्दर गन्धयुक्त और पुष्टिकारक वृन्त से स्वतः टूटे हुए 'उर्वारुक' फल की तरह मुझे मृत्यु से छुड़ाये परन्तु मोक्ष-धर्म से न छुड़ाये" । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (२ । ६ । २ । १२—१४) में की गई है ॥ ३ । ६० ॥

सपदार्थान्वयः—**वयं सुगन्धिं** शोभनः शुद्धो गन्धो यस्मात्तं **पुष्टिवर्धनं** पुष्टेः=शरीरात्मबलस्य वर्द्धनस्तं त्र्यम्बकं=देवम् उक्तार्थं रुद्रं जगदीश्वरं **यजामहे=नित्यं पूजयेमहि ।**

एतस्य कृपयाऽहं बन्धनात् लतासम्बन्धात् **उर्वारुकमिव** यथोर्वारुकफलं पक्वं भूत्वाऽमृतात्मकं भवति [तथा] **मृत्योः** प्राणशरीरात्मवियोगात् **मुक्षीय=मुक्तो भूयासम् ।**

अमृतात् मोक्षसुखात् **मा मुक्षीमहि=मा श्रद्धारहिता भूयास्म ।**

वयं सुगन्धिं सुष्ठुगन्धोयस्मिँस्तं **पतिवेदनं** पाति =रक्षति स पतिः पतेर्वेदनं=प्रापणं ज्ञानं वा यस्मात्तं **त्र्यम्बकं** सर्वाध्यक्षं **यजामहे=सततं सत्कुर्वीमहि ।**

एतदनुग्रहेणाहं बन्धनाद् उर्वारुकमिव इतः अस्माच्छरीरान्मर्त्यलोकाद्वा **मुक्षीय=पृथग्भूयासम् ।**

भाषार्थ—हम लोग (**सुगन्धिम्**) श्रेष्ठ एवं शुद्ध करने वाले (**पुष्टिवर्धनम्**) शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाने वाले (**त्र्यम्बकम्**) उक्त रुद्र जगदीश्वर देव का (**यजेमहि**) नित्य पूजन करें ।

इसकी कृपा से मैं (**बन्धनात्**) लता के साथ जुड़ा हुआ (**उर्वारुकमिव**) जैसे ककड़ी-फल पक कर अमृत हो जाता है वैसे ही (**मृत्योः**) प्राण और शरीर का आत्मा से वियोग रूप मृत्यु से (**मुक्षीय**) छूट जाऊँ । और—

(**अमृतात्**) मोक्षसुख रूप अमृत से (**मा मुक्षीमहि**) हम कभी भी श्रद्धा एवं विश्वास शून्य न हों ।

हम लोग (**सुगन्धिम्**) पवित्र करने वाले (**पतिवेदनम्**) पति (**स्वामी**) को प्राप्त कराने वाले वा जनाने वाले (**त्र्यम्बकम्**) सबके राजा उस रुद्र का (**यजामहे**) नित्य सत्कार करें ।

इसकी कृपा से मैं (**बन्धनात्**) लता के साथ जुड़ा हुआ (**उर्वारुकमिव**) जैसे ककड़ी-फल पककर अमृत

हो जाता है वैसे (**इतः**) इस शरीर से वा इस मर्त्य-लोक से (**मुक्षीय**) छूट जाऊँ।

वयममुतः=मोक्षसुखात्सत्यसुखफलाद् धर्माद् मोक्षाख्यात् परलोकात् परजन्मसुखफलाद् धर्माद् वा विरक्ता मा भूयास्म ॥ ३ । ६० ॥

हम लोग (**अमृतः**) मोक्षसुख से, सत्यमुख वाले धर्म से अथवा मोक्ष नामक परलोक से तथा परजन्म में सुख देने वाले धर्म से उदासीन न हों ॥ ३ । ६० ॥

[वयं...त्र्यम्बकं देवं यजामहे=नित्यं पूज्येमहि, एतस्य कृपया ऽहं बन्धनादुर्वारुकमिव मृत्योर्मुक्षीय=मुक्तो भूयासम्]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः ॥ नैव मनुष्या ईश्वरं विहाय कस्याप्यन्यस्य पूजनं कुर्युः, तस्य वेदाविहितत्वेन दुःखफलत्वात्। यथोर्वारुक-फलं यदा लतायां लग्नं सत्, स्वयं पक्वं भूत्वा, समयं प्राप्य लताबन्धनान्मुक्त्वा सुस्वादु भवति, तथैव वयं पूर्णमायुर्भुक्त्वा, शरीरं त्यक्त्वा मुक्तिं प्राप्नुयाम।

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है ॥ मनुष्य ईश्वर को छोड़ कर किसी दूसरे का पूजन न करें, क्योंकि अन्य का पूजन वेदोक्त न होने से दुःखदायक है। जैसे ककड़ी फल जब लता में लगा हुआ ही स्वयं पककर, समय पाकर लता-बन्धन (डंठल) से मुक्त होकर स्वादिष्ट हो जाता है, वैसे ही हम लोग पूर्ण आयु भोग कर, शरीर छोड़कर मुक्ति को प्राप्त करें।

[अमृतान्मा मुक्षीमहि=मा श्रद्धारहिता भूयास्म]

मा कदाचिन्मोक्षप्राप्त्यनुष्ठानात् परलोकात् परजन्मनो वा विरक्ता भवेम्।

हम कभी भी मोक्ष प्राप्ति के कर्मों से, परलोक से वा परजन्म से विरक्त (उदास) न हों।

[वयं...त्र्यम्बकं सजामहे=सततं सत्कुर्वीमहि, वयममुतः=मोक्षसुखात् सत्यसुखफलाद् धर्माद् विरक्ता मा भूयास्म]

नैव नास्तिकत्वमाश्रित्य कदाचिदीश्वरस्यानादरं कुर्याम, यथा—व्यावहारिकसुखायान्नजलादिक-मीप्सन्ति, तथैवेश्वरे वेदेषु तदुक्तधर्मे मुक्तौ च नित्यं श्रद्दधीमहि ॥ ३ । ६० ॥

हम नास्तिक होकर कभी ईश्वर का अनादर न करें, जैसे लौकिक सुख के लिये अन्न, जल आदि को लोग प्राप्त करना चाहते हैं, वैसे ही ईश्वर, वेद, वेदोक्त धर्म और मुक्ति में नित्य श्रद्धा रखें। ॥ ३ । ६० ॥

भा० पदार्थः—अमृतात्=मोक्षप्राप्तयनुष्ठानात्, परलोकात्, परजन्मनो वा। मुक्षीमहि=विरक्ता भवेम।

भाष्यसार—रुद्र (ईश्वर) **कैसा है**—रुद्र अर्थात् जगदीश्वर शुद्ध सुगन्ध वाला, शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाने वाला, तीनों कालों का ज्ञाता है। अतः वह नित्य पूजन के योग्य है। जो वेदोक्त रुद्र को छोड़ कर अन्य विरुद्ध का पूजन करते हैं वे दुःख रूप फल को प्राप्त होते हैं। जैसे ककड़ी का फल लता में लगा हुआ है अपने आप पककर डंठल से अलग होकर अमृत रूप हो जाता है, स्वादिष्ट हो जाता है, इसी प्रकार रुद्र (ईश्वर) का पूजक भी पूर्ण आयु को भोग कर शरीर छोड़ कर अमृत हो जाता है, मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। रुद्र (ईश्वर) के पूजन से अमृत अर्थात् मुक्ति-प्राप्ति में विरक्ति नहीं होती, श्रद्धा बनी रहती है। इसलिए ईश्वर का सदा सत्कार करें, नास्तिक होकर उसका अनादर कभी न करें। जैसे व्यावहारिक (**लौकिक**) सुख के लिये हमारी अन्न, जल आदि पदार्थों में

अभीप्सा (**लालसा**) है, श्रद्धा है, इतनी ही श्रद्धा ईश्वर में, वेदों में, वेदोक्त धर्म में, मुक्ति में भी रखें ।। ३ । ६० ।।

●

वसिष्ठः । **रुद्रः=शूरवीर सेनाध्यक्षः** । भुरिगास्तारपंक्तिः । पंचमः ।।

अथ रुद्रशब्देन शूरवीरकृत्यमुपदिश्यते ।।

अब रुद्र शब्द से शूरवीर के कर्मों का उपदेश किया जाता है ।।

एतत्ते रुद्रावसं तेन परो मूजवतोऽतीहि ।
अवततधन्वा पिनाकावसः कृत्तिवासाऽअहिंसन्नः शिवोऽतीहि ।। ६१ ।।

पदार्थः—(**एतत्**) उक्तं वक्ष्यमाणं च (**ते**) तव (**रुद्र**)यो रोदयति शत्रूँस्तत्सम्बुद्धौ शूरवीर ! (**अवसम्**) रक्षणं स्वाम्यर्थं वा (**तेन**) रक्षणादिना (**परः**) प्रकृष्टः समर्थः (**मूजवतः**) बहवो मूजा=घासादयो विद्यन्ते यस्मिन् तस्मात् पर्वतात् । **मूजवान् पर्वतः ।। निरु० ६ । ८ ।।** (**अति**) अतिक्रमणे (**इहि**) उल्लङ्घय । **अत्रान्तर्गतो ण्यर्थः** (**अवततधन्वा**) अवेति=निगृहीतं ततं=विस्तृतं धनुर्येन सः (**पिनाकावसः**) पिनष्टि शत्रून् येन तत् पिनाकम् । तेनावसो पिनाकस्यावसो रक्षणं वा यस्मात्सः । **पिनाकं प्रतिपिनष्टयनेन ।। निरु० ।। ३ । २१ ।।** (**कृत्तिवासाः**) कृत्तिश्चर्म तद्वद् दृढानि वासांसि धृतानि येन सः (**अहिंसन्**) अनाशयन् रक्षन् सन् (**नः**) अस्मान् (**शिवः**) सुखप्रदः (**अति**) **अभिपूजितार्थे ।। निरु० १ । ३ ।।** (**इहि**) प्राप्नुहि ।। **अयं मन्त्रः शत० २ । ६ । २ । १६—१७ व्याख्यातः ।। १६ ।।**

प्रमाणार्थ—(**मूजवतः**) 'मूजवान्' शब्द का अर्थ निरु० (६ । ८) में 'पर्वत' है । (**इहि**) यहाँ णिच प्रत्यय का अर्थ अन्तर्भावित है (**पिनाकावसः**) 'पिनाक' शब्द का अर्थ निरु० (३ । २१) में इस प्रकार किया है—"इससे शत्रुओं को खदेड़ भगाता है इसलिये यह पिनाक कहाता है (**अति**) 'अति' उपसर्ग का अर्थ निरु० (१ । ३) में 'अभिपूजित' है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (२ । ६ । २ । १६—१७) में की गई है ।। ३ । ६१ ।।

सपदार्थान्वयः—हे रुद्र !=**शूरवीर-विद्वन् ! युद्धविद्याविचक्षण सेनाध्यक्ष !** यो रोदयति शत्रूँस्तत्सम्बुद्धौ **अवततधन्वा** अवेति निगृहीतं, ततं=विस्तृतं धनुर्येन सः, **पिनाकावसः** पिनष्टि शत्रून् येन तत् पिनाकं, तेनावसो पिनाकस्यावसो रक्षणं वा यस्मात्सः, **कृत्तिवासाः** कृत्तिश्चर्मतद्वद् दृढानि वासांसि धृतानि येन सः, **शिवः** सुखप्रदः, **परः=प्रकृष्टसामर्थ्यः** प्रकृष्टः समर्थः **संस्त्वं मूजवतः=पर्वतात्** बहवो मूजा=घासादयो विद्यन्ते यस्मिन् तस्मात्पर्वतात् **परं शत्रूनतीहि=उल्लंघय=तस्मात् पारङ्गमय ।**

यदेतत् उक्तं वक्ष्यमाणं **ते=तवावसम्=पालनम्** रक्षणं स्वाम्यर्थं वा **अस्ति तेन** रक्षणादिना

भावार्थ—हे (**रुद्र**) शूरवीर विद्वान् युद्ध-विद्या में चतुर शत्रुओं को रुलाने वाले सेनाध्यक्ष ! आप (**अवततधन्वा**) विशाल धनुष को धारण करने वाले (**पिनाकावसः**) शत्रुओं को पीसने वाले दण्डे की रक्षा करने वाले (**कृत्तिवासाः**) कृत्ति अर्थात् चर्म के समान दृढ़वस्त्रों को धारण करने वाले (**शिवः**) सुखदायक और (**परः**) उत्तम बल वाले होकर (**मूजवतः**) मूज अर्थात् घास आदि से युक्त पर्वत के पार शत्रुओं को (**अतीहि**) खदेड़ दो और—

जो (**एतत्**) यह (**ते**) आप का (**अवसम्**) पालन-रक्षण वा स्वाम्यर्थ है (**तेन**) उस रक्षण

नः=**अस्मानहिंसन्** अनाशयन्=रक्षन्सन् **अतीहि** सर्वतः प्राप्नुहि ॥ ३ । ६१ ॥

आदि से (नः) हमारी (**अहिंसन्**) रक्षा करते हुए (**अतीहि**) हमें चहुँ ओर से प्राप्त हो ॥ ३ । ६१ ॥

[हे रुद्र=शूरवीर विद्वन् !...अवततधन्वा पिनाकावसः...परः=प्रकृष्टसामर्थ्यः संस्त्वं शत्रूनतीहि=उल्लंघय, यदेतत् ते=तवावसम्=पालन मस्ति तेन नः=अस्मानहिंसन्नतीहि]

भावार्थः—हे मनुष्या ! अजातशत्रुभिर्युष्माभिर्भूत्वा निश्शत्रुकं राज्यं कृत्वा सर्वाण्यस्त्रशस्त्राणि संपाद्य दुष्टानां दण्डहिंसाभ्यां श्रेष्ठानां पालनेन भवितव्यम् ।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग अजातशत्रु होकर, शत्रुरहित राज्य करके, सब अस्त्र-शस्त्रों को बनाकर दुष्टों को दण्ड और हिंसा से श्रेष्ठों का पालन करो ।

[हेतुमाह—]

यतो न कदाचिद् दुष्टाः सुखिनः श्रेष्ठा दुःखिताश्च भवेयुरिति ॥ ३ । ६१ ॥

जिससे—कभी दुष्ट लोग सुखी और श्रेष्ठ लोग दुखी न रहें ॥ ३ । ६१ ॥

भाष्यसार—**रुद्र (शूरवीर) के कर्म**—रुद्र अर्थात् शूरवीर विद्वान् युद्ध विद्या में कुशल सेनाध्यक्ष होता है। वह अजातशत्रु रुद्र धनुष को विस्तृत करने वाला, पिनाक आदि सब शस्त्र-अस्त्रों से श्रेष्ठों की रक्षा करने वाला, दृढ़ वस्त्रों को धारण करने वाला, श्रेष्ठों को सुख देने वाला उत्तम सामर्थ्य वाला होता है। वह राज्य को शत्रुओं से रहित कर देता है। दुष्टों को दण्ड देता है, उनका हिंसन करता है, श्रेष्ठों का पालन करता है। रुद्र की अध्यक्षता में दुष्ट लोग सुखी और श्रेष्ठ लोग दुखी नहीं रह सकते ॥ ३ । ६१ ॥

नारायणः । **रुद्रः**=**ईश्वर** । उष्णिक् । ऋषभः ॥

मनुष्येण कीदृशमायुर्भोक्तुमीश्वरः प्रार्थनीय इत्युपदिश्यते ॥

मनुष्य को कैसी आयु भोगने के लिये ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिये, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् । यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नोऽअस्तु त्र्यायुषम् ॥ ६२ ॥

पदार्थः—(**त्र्यायुषम्**) त्रीणि च तान्यायूंषि च त्र्यायुषम् । बाल्ययौवनवृद्धावस्थासुखकरम् । इदं पदं । अचतुरविचतुर० ॥ अ० ५ । ४ । ७७ ॥ इति सूत्रे समासान्तत्वेन निपातितम् (**जमदग्नेः**) चक्षुषः । चक्षुर्वै जमदग्निर्ऋषिर्यदनेन जगत्पश्यत्यथो मनुते तस्माच्चक्षुर्जमदग्निर्ऋषिः ॥ शत० ८ । १ । २ । ३ ॥ जमदग्नयः प्रजमिताग्नयो वा प्रज्वलिताग्नयो वा तैरभिहुतो भवति ॥ निरु० ७ । २४ ॥ अनेनापि प्रमाणेन रूपगुणग्राहकं चक्षुर्गृह्यते (**कश्यपस्य**) आदित्यस्येश्वरस्य । प्रजापतिः प्रजा असृजत यदसृजताकरोत्तद्यदकरोत् तस्मात् कूर्मः । कश्यपो वै कूर्मस्तस्मादाहुः सर्वाः प्रजाः काश्यप्य इति ॥ श० ७ । ४ । १ । ५ ॥ अनेन प्रमाणेनेश्वरस्य कश्यपसंज्ञा । एतन्निमित्तं त्रिगुणमायुर्लभेमहीत्यभिप्रायः (**त्र्यायुषम्**) ब्रह्मचर्य्यगृहस्थवानप्रस्थाश्रमसुखसंपादकं त्रिगुणमायुः (**यत्**) यादृशम् यावत् (**देवेषु**) विद्वत्सु । विद्वांसो हि देवाः ॥ श० ३ । ७ । ३ । १० ॥ (**त्र्यायुषम्**) विद्याशिक्षापरोपकारसहितं त्रिगुणमायुः (**तत्**) तादृशं तावत् (**नः**) अस्माकम् । (**अस्तु**) भवतु (**त्र्यायुषम्**)

पूर्वोक्तं त्रिगुणमायुः । अत्र एतेर्णिच्च ॥ उ० २ । ११८ ॥ अनेनेण धातोरुसिः प्रत्ययो णिद्वत्त्वाद् वृद्धिः । ईयते= प्राप्यते यत्तदायुः ॥ अयं मंत्रः शत० २ । ५ । ४ । १—७ व्याख्यातः ॥ ६२ ॥

प्रमाणार्थ—(**त्र्यायुषम्**) 'त्र्यायुष' शब्द 'अचतुरविचतुर०' (**अ० ५ । ४ । ७७**) सूत्र से समासान्त होने के कारण निपातित है। (**जमदग्नेः**) शत० (८ । १ । २ । ३) में 'जमदग्नि' शब्द का अर्थ इस प्रकार है—"जमदग्नि ऋषि का अर्थ चक्षु है क्योंकि इसी से संसार को देखता और जानता है। इसलिए चक्षु ही जमदग्नि ऋषि है। निरु० (७ । २४) में 'जमदग्नि' शब्द की निरुक्ति इस प्रकार हैं—"जमदग्नि का अर्थ पर्याप्त अग्नि वाले अथवा प्रज्वलित अग्नि वाले हैं, इनसे यह अभिहुत होता है, इस लिए यह जमदग्नि है। (**कश्यपस्य**) 'कश्यप' शब्द की व्याख्या शत० (७ । ४ । १ । ५) में इस प्रकार है—प्रजापति ने प्रजा को रचा है, जिस कारण से रचा है अर्थात् (**अकरोत्**) बनाया है, जिस कारण से बनाया है इसलिए उसे 'कूर्म' कहते हैं "कश्यपो वै कूर्मः" कश्यप अर्थात् ईश्वर को ही 'कूर्म' कहते हैं, इसलिए सारी प्रजा 'काश्यपी' कहलाती है। इस प्रमाण से ईश्वर का नाम 'कश्यप' है। उक्त ईश्वर से निर्मित त्रिगुण आयु को प्राप्त करें, यह अभिप्राय है। (**देवेषुः**) शत० (३ । ७ । ३ । १०) में 'देव' का अर्थ 'विद्वान्' है। (**त्र्यायुषम्**) यहाँ 'आयुः' शब्द में एतेर्णिच्च' उणा० (२ । ११८) सूत्र से 'इण' धातु से 'उसि' प्रत्यय और इस प्रत्यय के 'णिद्वत' होने से वृद्धि है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (२ । ५ । ४ । १—७) में की गई है ॥ ३ । ६२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **रुद्र=जगदीश्वर** ! **तव कृपया यत्** यादृशं यावत् **देवेषु** विद्वत्सु **त्र्यायुषं** त्रीणि च तान्यायूंषि च त्र्यायुषं बाल्ययौवन-वृद्धावस्थासुखकरं **यज्जमदग्नेः** चक्षुषः **त्र्यायुषं** ब्रह्मचर्यगृहस्थवानप्रस्थाश्रमसुखसम्पादकं त्रिगुणमायुः **कश्यपस्य** आदित्यस्येश्वरस्य **तव व्यवस्थासिद्धं त्र्यायुषं** विद्याशिक्षापरोपकारसहितं त्रिगुणमायुः **अस्ति तत्** तादृशं तावत् **त्र्यायुषं** पूर्वोक्तं त्रिगुणमायुः **नः**=**अस्माकमस्तु** भवतु ॥ ३ । ६२ ॥

भाषार्थ—हे (**रुद्र**) जगदीश्वर ! आपकी कृपा से (**यत्**) जैसी और जितनी (**देवेषु**) विद्वानों में (**त्र्यायुषम्**) बाल्य, यौवन ,वार्द्धक्य यह सुख देने वाली तीन अवस्थायें हैं और (**जमदग्नेः**) जगत के द्रष्टा एवं ज्ञाता (**त्र्यायुषम्**) ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ इन तीन गुणों से युक्त सुखप्रद आयु (**कश्यपस्य**) आप आदित्य ईश्वर की व्यवस्था से प्राप्त (**त्र्यायुषम्**) विद्या, शिक्षा, और परोपकार इन तीन गुणों से युक्त जो आयु है (**तत्**) वैसी और उतनी ही (**त्र्यायुषम्**) पूर्वोक्त तीनों गुणों वाली आयु (**नः**) हमें प्राप्त हो ॥ ३ । ६२ ॥

[**सष्टॄणामुत्तममाह**—]

भावार्थ—अत्र चक्षुरिन्द्रियाणां कश्यप= ईश्वरः सुष्टॄणामुत्तमोऽस्तीति विज्ञेयम् ।

भावार्थ—यहाँ, चक्षु आदि इन्द्रियों का कश्यप=ईश्वर सर्वश्रेष्ठ रचयिता है, ऐसा समझें।

[**त्र्यायुषमित्यस्य चतुरावृत्त्यभिप्रायमाह**—]

त्र्यायुषमित्यस्य चतुरावृत्या त्रिगुणादधिकं चतुर्गुणमप्यायुः संगृह्य तत्प्राप्त्यर्थं जगदीश्वरं प्रार्थ्य स्वेन पुरुषार्थश्च कर्त्तव्यः । तद्यथा—

यहाँ 'त्र्यायुषम्' पद की चार बार आवृत्ति होने से यह अभिप्राय है कि तिगुने से भी अधिक चौगुनी आयु का ग्रहण करें तथा इसकी प्राप्ति के लिये ईश्वर से प्रार्थना और अपना पुरुषार्थ भी करें। जैसे—

[हे **रुद्र=जगदीश्वर ! तव कृपया यद् देवेषु त्र्यायुषम्**]

हे जगदीश्वर ! भवत्कृपया यथा विद्वांसो विद्यापरोपकारधर्मानुष्ठानेनानन्दतया त्रीणि शतानि वर्षाणि यावत् तावदायुर्भुञ्जते,

हे जगदीश्वर ! आपकी कृपा से जैसे विद्वान् लोग विद्या, परोपकार और धर्मानुष्ठान से आनन्दपूर्वक तीन सौ वर्षों तक आयु को भोगते हैं—

[यंज्जमदग्नेस्त्र्यायुषं कश्यपस्य तत्र व्यवस्थासिद्धं त्र्यायुषमस्ति, तत् त्र्यायुषं नः=अस्माकमस्तु]

तथैव—यत्त्रिविधतापव्यतिरिक्तं शरीरेन्द्रियान्तःकरण प्राणसुखाढ्यं विद्याविज्ञानसहितमायुरस्ति, तद् वयं प्राप्य त्रिशतवर्षं चतुः शतवर्षं वा ऽऽयुः सुखेन भुञ्जीमहीति ॥ ३ । ६२ ॥

वैसे ही—तीन प्रकार के दुःखों से रहित, शरीर, इन्द्रिय, अन्तःकरण और प्राण सम्बन्धी सुखों से युक्त, विद्या और विज्ञान सहित आयु को प्राप्त करके हम लोग तीन सौ वा चार सौ वर्ष तक आयु को सुख से भोगें ॥ ३ । ६२ ॥

अन्यत्र व्याख्यात—महर्षि ने इस मन्त्र के मन्त्रांश पर सत्यार्थ-प्रकाश (**एकादश समुल्लास**) में प्रश्नोत्तर रूप से इस प्रकार प्रकाश डाला है:—

"(**प्रश्न**)—कालाग्निरुद्रोपनिषद् में भस्म लगाने का विधान लिखा है। वह क्या झूठा है ? और "त्र्यायुषं जमदग्नेः" यजुर्वेद वचन। इत्यादि वेद मन्त्रों से भी भस्म धारण का विधान और पुराणों में रुद्र की आँख के अश्रुपात से जो वृक्ष हुआ उसी का नाम रुद्राक्ष है। इसीलिए उसके धारण में पुण्य लिखा है। एक भी रुद्राक्ष धारण करे तो सब पापों से छूट स्वर्ग को जाय। यमराज और नरक का डर न रहे।

(**उत्तर**)—कालाग्निरुद्रोपनिषद् किसी रखोड़िया मनुष्य अर्थात् राख धारण करने वाले ने बनाई है। क्योंकि "यास्य प्रथमा लेखा सा भूर्लोकः" इत्यादि वचन उसमें अनर्थक हैं। जो प्रतिदिन हाथ से बनाई रेखा है वह भूलोक वा इसका वाचक कैसे हो सकते हैं। और जो "त्र्यायुषं जमदग्नेः" इत्यादि मन्त्र हैं वे भस्म वा त्रिपुंड धारण के वाची नहीं किन्तु "चक्षुर्वै जमदग्निः" शतपथ। हे परमेश्वर मेरे नेत्र की ज्योति (**त्र्यायुषम्**) तिगुण अर्थात् तीन सौ वर्ष पर्यन्त रहे और मैं भी ऐसे धर्म के काम करूँ कि जिससे दृष्टि नाश न हो।

भला यह कितनी बड़ी मूर्खता की बात है कि आँख के अश्रुपात से वृक्ष उत्पन्न हो सकता है ? क्या परमेश्वर के सृष्टिक्रम को कोई अन्यथा कर सकता है ? जैसा जिस वृक्ष का बीज परमात्मा ने रचा है उसी से वह वृक्ष उत्पन्न हो सकता है, अन्यथा नहीं। इससे जितना रुद्राक्ष, भस्म, तुलसी, कमलाक्ष, घास चन्दन आदि को कण्ठ में धारण करना है। वह सब जंगली पशुवत् मनुष्य का काम है। ऐसे वाममार्गी और शैव बहुत मिथ्याचारी, विरोधी और कर्त्तव्य कर्म के त्यागी होते हैं। उनमें जो कोई श्रेष्ठ पुरुष है वह इन बातों का विश्वास न करके अच्छे कर्म करता है। जो रुद्राक्ष भस्म धारण से यमराज के दूत डरते हैं तो पुलिस के सिपाही भी डरते होंगे !! जब रुद्राक्ष भस्म धारण करने वालों से कुत्ता, सिंह, सर्प, विच्छू, मक्खी और मच्छर आदि भी नहीं डरते तो न्यायाधीश के गण क्यों डरेंगे" ॥

महर्षि ने इस मन्त्र का विनियोग संस्कार विधि (**जातकर्म प्रकरण**) में किया और "इस मन्त्र का तीन बार जाप करें" लिखा है।

महर्षि ने इस मन्त्र का विनियोग संस्कार विधि (**चूड़ाकर्म प्रकरण**) में किया और लिखा है—"इस एक मन्त्र को बोल के सिर के पीछे के केश एक बार काट के इसी (**ओं त्र्यायुषं०**) मन्त्र को बोलते जाना और ओंधे हाथ के पृष्ठ से सिर पर हाथ फेर के मन्त्र पूरा पश्चात् छुरा नाई के हाथ में दे के" ॥

महर्षि ने इस मन्त्र के मन्त्रांश पर भ्रमोच्छेदन नामक पुस्तक में इस प्रकार प्रकाश डाला है—"स्वा०—ब्राह्मणों में जमदग्नि आदि देह धारियों का नाम यों हैं कि जहाँ-जहाँ ब्राह्मण ग्रन्थों में उनकी कथा लिखी है वहाँ-वहाँ जैसे देहधारी मनुष्यों का परस्पर व्यवहार होता है वैसा उनका भी लिखा है। इसलिए वहाँ देहधारी का ग्रहण करना योग्य है। और जहाँ मनुष्यों के इतिहास लिखने की योग्यता नहीं हो सकती वहाँ इतिहास लिखने का भी सम्भव नहीं हो सकता। जो वेदों में इतिहास होते तो वेदादि और सबसे प्राचीन नहीं हो सकते? क्योंकि जिसका इतिहास जिस ग्रन्थ में लिखा होता है वह ग्रन्थ उस मनुष्य के पश्चात् होता है।

जब कि वेदों में "त्र्यायुषं जमदग्ने०" इत्यादि मन्त्रों की व्याख्या पदार्थ विद्यायुक्त होनी ही उचित है इससे उनमें इतिहास का होना सर्वथा असम्भव है। जिस लिए जैसा मूलार्थ प्रतीत होने के कारण जमदग्नि आदि शब्दों से चक्षु आदि ही अर्थों का ग्रहण करना योग्य है वैसा ही ब्राह्मण ग्रन्थों और निरुक्त आदि में लिखा है। इसलिए यह मैंने अपने किये अर्थों के सत्य होने के लिए साक्ष्यर्थ मात्र लिखा है। राजा जी जो इस बात को जानते और इन ग्रन्थों को पढ़े होते तो भ्रमजाल में फंस कर दुःखित न होते"॥

महर्षि ने इस मन्त्र की व्याख्या ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका (**वेद संज्ञाविचार**) में प्रश्नोत्तरपूर्वक इस प्रकार की है—"**प्र०**—जैसे ऐतरेय आदि ब्राह्मण ग्रन्थों में याज्ञवल्क्य मैत्रेयी गार्गी और जनक आदि के इतिहास लिखे हैं वैसे ही (**त्र्यायुषं जमदग्नेः०**) इत्यादि वेदों में भी पाये जाते हैं इससे मन्त्र और ब्राह्मण भाग ये दोनों बराबर होते हैं फिर ब्राह्मण ग्रन्थों को वेदों में क्यों नहीं मानते हो, **उ०**—ऐसा भ्रम मत करो क्योंकि जमदग्नि और कश्यप ये नाम देहधारी मनुष्यों के नहीं हैं इसका प्रमाण शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि चक्षु का नाम जमदग्नि और प्राण का नाम कश्यप है इस कारण से यहाँ प्राण से अन्तः-करण और आँख से सब इन्द्रियों का ग्रहण करना चाहिए अर्थात् जिनसे जगत् के सब जीव बाहर और भीतर देखते हैं (**त्र्यायुषं ज०**) सो इस मन्त्र से ईश्वर की प्रार्थना करनी चाहिए कि हे जगदीश्वर आपके अनुग्रह से हमारे प्राण आदि अन्तःकरण और आँख आदि सब इन्द्रियों की (३००) तीन सौ वर्ष तक उमर बनी रहे (**यद्देवेषु**) सो जैसी विद्वानों के बीच में विद्यादि शुभ गुण और आनन्द युक्त उमर होती है (**तन्नो अस्तु०**) वैसी ही हम लोगों की भी हो तथा (**त्र्यायुषं जमदग्नेः०**) इत्यादि उपदेश से यह भी जाना जाता है कि मनुष्य ब्रह्मचर्य्यादि उत्तम नियमों से त्रिगुण चतुर्गुण आयु कर सकता है अर्थात् (४००) चार सौ वर्ष तक भी सुखपूर्वक जी सकता है इससे यह सिद्ध हुआ कि वेदों में सत्य अर्थ के वाचक शब्दों से सत्य विद्याओं का प्रकाश किया है लौकिक इतिहासों का नहीं इससे जो सायणाचार्यादि लोगों ने अपनी-अपनी बनाई टीकाओ में वेदों में जहाँ-जहाँ इतिहास वर्णन किये हैं वे सब मिथ्या है"।

भाष्यसार—१. **आयु भोगने के लिये ईश्वर प्रार्थना**—हे जगदीश्वर! आपकी कृपा से जो आयु बाल्यकाल, यौवन और वृद्धावस्था इन तीनों कालों में सुख देने वाली विद्वानों में आयु है वह आयु मुझे प्राप्त हो, और जैसे विद्वान् लोग विद्या, परोपकार और धर्मानुष्ठान इन तीन प्रकार के कार्यों में आनन्दपूर्वक तीन सौ वर्ष तक आयु को भोगते हैं वह आयु मुझे प्राप्त हो। हे जगदीश्वर! आप चक्षु आदि इन्द्रियों के सर्वश्रेष्ठ स्रष्टा कश्यप हो इसलिये तीन प्रकार के तापों से रहित शरीर, इन्द्रिय, अन्तःकरण और प्राणों के सुख से युक्त, विद्याविज्ञान से सम्पन्न तीन सौ वा चार सौ वर्ष की आयु आपकी व्यवस्था से मुझे प्राप्त हो।

२. **'त्र्यायुष्म' पद की चार बार आवृत्ति**—इस मन्त्र में 'त्र्यायुषम्' पद को चार बार पढ़ा गया

है। मनुष्य की न्यूनतम आयु १०० वर्ष है। तिगुनी आयु ३०० तीन सौ वर्ष हुई। 'त्र्यायुषम्' पद के चार बार पढ़ने से यहाँ ऋषि ने चौगुनी आयु ४०० वर्ष मनुष्य की आयु ग्रहण की है॥ ३। ६२॥

●

नारायणः। **रुद्रः=उपदेशकः/ईश्वरः**॥ भुरिग्जगती। निषादः॥

अथ रुद्रशब्देनोपदेशकगुणा उपदिश्यन्ते॥

अब रुद्र शब्द से उपदेशक के गुणों का उपदेश किया जाता है॥

शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्ते ऽअस्तु मा मा हिꣳसीः।
निर्वर्त्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्य्याय॥ ६३॥

पदार्थः—(**शिवः**) मङ्गलस्वरूपो ज्ञानमयो विज्ञानप्रदः (**नाम**) आख्या (**असि**) भवसि (**स्वधितिः**) अविनाशित्वाद् वज्रमयः। **स्वधितिरिति वज्रनामसु पठितम्॥ निघं० २। २०॥** (**ते**) तव (**पिता**) पालकः (**नमः**) सत्कारार्थे (**ते**) तुभ्यम् (**अस्तु**) भवतु (**मा**) निषेधार्थे (**मा**) माम् (**हिꣳसीः**) हिन्धि। **अत्र लोडर्थे लुङ्** (**नि**) निश्चयार्थे निवारणार्थे वा (**वर्त्तयामि**) (**आयुषे**) आयुर्भोगाय (**अन्नाद्याय**) अत्तुं योग्यमाद्यमन्नं च तस्मै। यद्वाऽन्नमोदनादिकं भोज्यं यस्मिंस्तस्मै (**प्रजननाय**) सन्तानोत्पादनाय (**रायस्पोषाय**) रायो विद्यासुवर्णादिधनस्य पोषाय। पुष्यन्ति यस्मिंस्तस्मै (**सुप्रजास्त्वाय**) शोभनाः सन्तानादयश्चक्रवर्त्तिराज्यं च प्रजा यस्मात्तस्य भावस्तस्मै (**सुवीर्य्याय**) शोभनं वीर्य्यं=शरीरात्मनो बलं पराक्रमो यस्मात्तस्मै॥ **अयं मंत्रः शत० २। ५। ४। ८—११ व्याख्यातः॥ ६३॥**

प्रमाणार्थ—(**स्वधितिः**) 'स्वधितिः' शब्द निघं० (२। २०) में वज्र-नामों में पढ़ा है। (**हिꣳसीः**) यहां लोट् अर्थ में लुङ् लकार है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (२। ५। ४। ८—११) में की गई है॥ ३। ६३॥

सपदार्थान्वयः—हे रुद्र! **यस्त्वं स्वाधितिः** अविनाशित्वाद्वज्रमयः **असि** भवसि **यस्य ते=तव शिवः** मंगलस्वरूपो ज्ञानमयो विज्ञानप्रदः, **नाम** आख्या **अस्ति**।

स त्वं मम पिता पालकः **असि ते=तुभ्यं नमः** सत्कारः **अस्तु** भवतु।

त्वं मा=मां मा हिंसीः=माहिन्ध्यहं त्वामायुषे आयुर्भोगाय **अन्नाद्याय** अत्तुं योग्यमाद्यमन्नं च तस्मै यद्वाऽन्नमोदनादिकं भोज्यं यस्मिँस्तस्मै [**प्रजननाय**] सन्तानोत्पादनाय सुप्रजास्त्वाय शोभनाः सन्तानादयश्चक्रवर्तिराज्यं च प्रजा यस्मात्तस्य भावस्तस्मै **सुवीर्य्याय** शोभनं वीर्य्यं=शरीरात्मनो बलं पराक्रमो यस्मात्तस्मै **रायस्पोषाय** रायो विद्यासुवर्णादिधनस्य पोषाय पुष्यन्ति यस्मिँस्तस्मै [**नि**]

भाषार्थ—हे (**रुद्र**) ईश्वर वा उपदेशक! आप अमर होने से वज्रमय (**असि**) हो और जो (**ते**) आप का (**शिवः**) मङ्गलस्वरूप ज्ञानमय विज्ञान देने वाला (**नाम**) नाम है—

सो आप मेरे (**पिता**) पालक हो (**ते**) आपको (**नमः**) नमस्कार (**अस्तु**) हो।

आप (**मा**) मेरी (**मा हिंसीः**) हिंसा मत करो, मैं (**आयुषे**) पूर्ण आयु के उपयोग के लिए ओदन आदि उत्तम पदार्थों के भोजन के लिये (**प्रजननाय**) सन्तान उत्पत्ति के लिये (**सुप्रजास्त्वाय**) उत्तम सन्तान आदि एवं चक्रवर्ती राज्य रूप प्रजा के लिये (**सुवीर्य्याय**) उत्तम शरीर आत्मा के बल तथा पराक्रम के लिये (**रायस्पोषाय**) विद्या और सुवर्ण आदि धन की पुष्टि के लिये (**निवर्त्तयामि**) आपके

वर्त्तयामि=त्वदाश्रयेण सर्वाणि दुःखानि निवर्त्तयामि ॥ ३ । ६३ ॥

संग से सब दुःखों को दूर भगाता हूँ ॥ ३ । ६३ ॥

[हे रुद्र !···ते=तव शिवो नमास्ति, स त्वं मम पिताऽसि, ते=तुभ्यं नमोऽस्तु]

भावार्थः—नहि कश्चिन्मनुष्यो मङ्गलमयस्य सर्वपितुः परमेश्वरस्या ज्ञापालनेनोपदेशक सङ्गेन विनैहिकपरमार्थिकसुखे प्राप्तुं शक्नोति ।

भावार्थ—कोई भी मनुष्य मङ्गलमय, सब के पिता परमेश्वर की आज्ञा पालन एवं उपदेशकों के संग के बिना लौकिक और पारमार्थिक सुखों को प्राप्त नहीं कर सकता ।

[तात्पर्यमाह—]

नैव केनापि नास्तिकत्वेन खल्वीश्वरस्य विदुषां चानादरः कर्त्तव्यः ।

कोई भी नास्तिक होकर ईश्वर का और विद्वानों का अनादर न करे ।

यो नास्तिको भूत्वैतस्यैतेषां चानादरं करोति, तस्य सर्वत्रा नादरो जायते । तस्मान्मनुष्यैरास्तिकैः सदा भवितव्यमिति ॥ ३ । ६३ ॥

जो नास्तिक होकर ईश्वर और विद्वानों का अनादर करता है, उसका सर्वत्र अनादर होता है । इसलिये मनुष्य सदा आस्तिक रहें ॥ ३ । ६३ ॥

भा० पदार्थः—शिवः=मङ्गलमयः । पिता=सर्वपिता (परमेश्वरः) ॥

विनियोग—महर्षि ने इस मन्त्र का विनियोग संस्कारविधि (**चूड़ाकर्म**) में करते हुए लिखा है—"इस मन्त्र को बोल के छुरे को दाहिने हाथ में लेवें" ॥ ३ । ६३ ॥

भाष्यसार—१. **रुद्र (उपदेशक) के गुण**—रुद्र अर्थात् उपदेशक वज्र के समान दृढ़, मङ्गलकारी, ज्ञान से भरपूर और विज्ञान का देने वाला तथा उपदेश से प्रजा का पालक होता है । ऐसे विद्वान् उपदेशकों का कभी अनादर न करें जो ऐसे विद्वानों का अनादर करता है उसका सर्वत्र अनादर होता है । उपदेशक के संग से लौकिक और पारमार्थिक सुख अर्थात् आयु, अन्नादि उत्तम भोज्य पदार्थ, उत्तम सन्तान, उत्तम चक्रवर्ती राज्य तथा प्रजा, शारीरिक तथा आत्मिक बल एवं पराक्रम तथा विद्या और सुवर्णादि धन से उत्पन्न पुष्टि की प्राप्ति होती है । तात्पर्य यह है कि सब दुःखों की निवृत्ति से सब सुखों की प्राप्ति होती है ।

२. **रुद्र (ईश्वर) के गुण**—रुद्र अर्थात् जगदीश्वर अविनाशी होने से वज्रमय, मङ्गलस्वरूप, ज्ञानमय, विज्ञान का देने वाला तथा पालक है । उसकी आज्ञा पालन से लौकिक और पारमार्थिक सुख अर्थात् आयु, अन्नादि उत्तम भोज्य पदार्थ, उत्तम सन्तान, उत्तम चक्रवती राज्य तथा प्रजा, शारीरिक तथा आत्मिक बल एवं पराक्रम तथा विद्या और सुवर्ण आदि धन से उत्पन्न पुष्टि की प्राप्ति होती है । उसी के आश्रय से सब दुःखों की निवृत्ति तथा सब सुखों की प्राप्ति होती है इसलिये नास्तिक होकर ईश्वर का अनादर न करें जो नास्तिक होकर ईश्वर का अनादर करता है उसका सर्वत्र अनादर होता है । इसलिए सब आस्तिक रहें ।

[द्वितीयाध्यायेन सहास्याध्यायस्य संगतिमाह—]

अत्र तृतीयाऽध्यायेऽग्निहोत्रादियज्ञवर्णनमग्निस्वभावार्थप्रतिपादनं, पृथिवीभ्रमणलक्षणम्, अग्निशब्देनेश्वरभौतिकार्थप्रतिपारनम् अग्निहोत्रमन्त्र प्रकाशनमीश्वरोपदथान मग्निस्वरूपमीश्वप्रार्थनं

इस तीसरे अध्याय में अग्निहोत्रादि यज्ञ का वर्णन (१-३), अग्नि के स्वभाव का प्रतिपादन (४,५), पृथिवी के भ्रमण का लक्षण (६), अग्नि शब्द से ईश्वर और भौतिक अग्नि का प्रतिपादन

तदुपासनं तत्फलवर्णनमीश्वरस्वभावप्रतिपादनं सूर्यकिरणकृत्यवर्णनं नित्योपासनं सावित्री मन्त्र प्रतिपादनमीश्वरोपासनं यज्ञफलप्रकाशनं भौतिकाग्न्यर्थवर्णनं गृहाश्रमकरणावश्यकानुष्ठानलक्षणे इन्द्रमरुतकृत्यं पुरुषार्थकरणावश्यकं पापान्निवर्त्तनं यत्रपूत्योवश्यकं सत्यत्वेन ग्रहणदान व्यवहारकरणं विद्वत्पुरुषर्त्तुस्वभाववर्णनं चतुष्टयमन्तः करणस्य लक्षणं रुद्रशब्दार्थप्रतिपादनं त्रिगुणायुष्करणावश्यकं धर्मेणायुरादिपदार्थसंग्रहणं च वर्णितमेतेनास्य तृतीयाध्यायार्थस्य द्वितीयाध्यायार्थेन सह संगतिरस्तीति बोध्यम् ॥ ३ । ६३ ॥

(१२, १४, १८, ई० भौ० २४, २६ ई०), अग्निहोत्र के मन्त्रों का प्रकाशन (१-३), ईश्वर उपस्थान (११), अग्नि का स्वरूप (७, ८, ६, १६), ईश्वर प्रार्थना, उपासना और उनके फल का वर्णन (२७, ३०, ३१), ईश्वर के स्वभाव का प्रतिपादन (२६), सूर्य किरणों के कार्य का वर्णन (३३), नित्य उपासना (३५), सावित्री मन्त्र का प्रतिपादन (३५), ईश्वर उपासना (३५), यज्ञफल का प्रकाशन (४६), भौतिक अग्नि का वर्णन (४०), गृहाश्रम का अनुष्ठान और लक्षण (४१), इन्द्र और मरुत का कार्य (४६), पुरुषार्थ करना आवश्यक (४७), पाप से निवृत्ति (४८), यज्ञपूर्ति आवश्यक (४६), सत्यता से लेन-देन का व्यवहार करना (५०), विद्वान और ऋतुओं के स्वभाव का वर्णन (२१), चार अन्तःकरणों का लक्षण (५३, ५४, ५५), रुद्र शब्द का अर्थ-प्रतिपादन (५७-६३) तिगुनी आयु करना आवश्यक (६२), धर्म से आयु आदि पदार्थों को प्राप्त करने का वर्णन है इसलिये इस तृतीय अध्याय के अर्थ की द्वितीय अध्याय के अर्थ के साथ संगति है, ऐसा समझें ॥ ३ ॥

इति श्रीपण्डितसुदर्शनदेवाचार्यकृते-दयानन्द-यजुर्वेदभाष्य-
भास्करे तृतीयोऽध्यायः सम्पूर्णः ॥ ३ ॥

॥ ओ३म् ॥

※ अथ चतुर्थाध्यायारम्भः ※

अस्मिन्नध्याये सप्तत्रिंशन्मन्त्राः सन्तीति वेदितव्यम् ॥

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दु॒रि॒तानि॒ परा॑सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआसु॑व ॥ १ ॥

य० ३० । ३ ॥

प्रजापतिः । **अब्बोषध्यौ**= **जलम्, ओषधियश्च** ॥ विराड् ब्राह्मीजगती । निषादः ॥

अथ जलगुणस्वभावकृत्यमुपदिश्यते ॥

अब चौथे अध्याय का प्रारम्भ किया जाता है, इसके प्रथम मन्त्र में जल के गुण, स्वभाव और कृत्य का उपदेश किया है ॥

एद॑मगन्म दे॒व॒यज॑नं पृथि॒व्या यत्र॑ दे॒वासो॒ ऽ अजु॑षन्त॒ विश्वे॑ ।
ऋ॒क्सा॒माभ्या॑ᳪसन्तर॑न्तो॒ यजु॑र्भी रा॒यस्पोषे॑ण॒ सम्प॒षा म॑देम ।
इ॒मा ऽ आप॒ः शमु॑ मे सन्तु दे॒वीः । ओष॑धे॒ त्राय॑स्व॒ स्वधि॑ते॒ मैन॑ᳪहिᳪसीः ॥ १ ॥

पदार्थः—(**आ**) समन्तात् (**इदम्**) वक्ष्यमाणम् (**अगन्म**) प्राप्नुयाम । अत्र लिङर्थे लुङ् (**देवयजनम्**) देवानां=विदुषां यजनं=पूजनं तेभ्यो दानं च (**पृथिव्याः**) भूमेर्मध्ये (**यत्र**) देशे (**देवासः**) विद्वांसः (**अजुषन्त**) प्रीतवन्तः सेवितवन्तः (**विश्वे**) सर्वे (**ऋक्सामाभ्याम्**) ऋचन्ति=स्तुवन्ति पदार्थान् येन स ऋग्वेदः । सामयन्ति=सान्त्वयन्ति कर्मान्नं फलं प्राप्नुवन्ति येन स सामवेदः । ऋक् च साम च ताभ्याम् । अत्र अचतुरविचतुरसुचतुरस्त्रीपुंसधेन्वनडुहर्क्साम० अ० ५ । ४ । ७७ ॥ इति सूत्रेणायं समासान्ताऽच्-प्रत्ययेन निपातितः (**संतरन्तः**) दुःखस्यान्तं प्राप्नुवन्तः (**यजुर्भिः**) यजुर्वेदस्थमन्त्रोक्तैः कर्मभिः (**रायः**) धनस्य (**पोषेण**) पुष्ट्या (**सम्**) सम्यगर्थे (**इषा**) इष्टविद्ययाऽन्नादिना वा (**मदेम**) सुखयेम । अत्र विकरणव्यत्ययः (**इमाः**) प्रत्यक्षाः (**आपः**) जलानि (**शम्**) सुखकारिकाः (**उ**) वितर्के (**मे**) मम (**सन्तु**) भवन्तु (**देवीः**) शुद्धा=रोगनाशिकाः । अत्र वा च्छन्दसीति जसः पूर्वसवर्णत्वम् (**ओषधे**) सोमाद्योषधिगणः (**त्रायस्व**) त्रायताम् (**स्वधिते**) रोगनाशने स्वधितिर्वज्रवत्प्रवर्त्तमानः । स्वधितिरिति वज्रनामसु पठितम् ॥ निघं० २ । २० ॥ (**मा**) निषेधार्थे (**एनम्**) यजमानं प्राणिसमूहं वा (**हिᳪसीः**) हिंस्यात् । अत्र लिङर्थे लुङ् ॥ अयं मन्त्रः शत० ३ । १ । १ । ११—१२ ॥ ३ । १ । २ । १–१० व्याख्यातः ॥ १ ॥

प्रमाणार्थ—(**अगन्म**) प्राप्नुयाम । यहाँ लिङ्-अर्थ में लुङ्-लकार है । (**ऋक्सामाभ्याम्**) यह शब्द 'अचतुर-विचतुर-सुचतुर-स्त्रीपुंस-धेन्वनडुहर्क्साम०' (**अ० ५ । ४ । ७७**) सूत्र से समासान्त 'अच्'

प्रत्यय से निपातित है। (**मदेम**) यहाँ विकरण प्रत्यय का व्यत्यय है। (**देवीः**) यहाँ 'वाच्छन्दासि' [अ० ६।१।१०२] सूत्र से 'जस्' प्रत्यय को पूर्वसवर्ण दीर्घ आदेश है। (**स्वधिते**) 'स्वधिति' शब्द निघं० (२।२०) में वज्र-नामों में पढ़ा है। (**हिꣳसीः**) यहाँ लिङ्-अर्थ में लुङ् लकार है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३।१।१।११-१२॥३।१।१-१०) में की गई है॥४।१॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् यथा **पृथिव्या मध्ये** भूमेर्मध्ये [**इदम्**] वक्ष्यमाणं **मनुष्य-जन्म, देवयजनं** देवानां=विदुषां यजनं=पूजनं तेभ्यो दानं च **प्राप्य, यत्र** देशे **ऋक्सामाभ्याम्** ऋचन्ति=स्तुवन्ति पदार्थान् येन स ऋग्वेदः, सामयन्ति=सान्त्वयन्ति कर्मान्तं फलं प्राप्नुवन्ति येन स सामवेदः, ऋक् च साम च ताभ्यां, **यजुर्भिः** यजुर्वेदस्थमन्त्रोक्तैः कर्मभिः **रायः** धनस्य **पोषेण** पुष्ट्या **दुःखानि सन्तरन्तः** दुःखस्यान्तं प्राप्नुवन्तः **विश्वे** सर्वे **देवासः** विद्वांसः **वयम्** [**इषा**] इष्टविद्ययाऽन्नादिना वा **सुखानि आ-अगन्म** समन्तात् प्राप्नुयाम, **अजुषन्त**= प्रीतवन्तः सेवितवन्तः [**सम्**] **मदेम सुखयेम** (सम्यक् सुखयेम)।

उ=इति वितर्के **मे**=मम **विद्या सुशिक्षाभ्यां सेविता इमाः** प्रत्यक्षाः [**देवीः**] **देव्यः**, शुद्धाः= रोगनाशिकाः **आपः** जलानि **सुखकारिकाः सन्ति, तथैव तत्र त्वं तानि जुषस्व,** [**मदेम**] **मदेमस्तवैताः शं सन्तु=सुखकारिका भवन्तु।**

यथौषधे=सोमलताद्योषधिगणः सोमाद्योषधिगणः **रोगेभ्यस्त्रायते तथा त्वं नस्त्रायस्व** (त्रायताम्)।

[**स्वधिते**] **स्वधितिः=वज्रः** रोगनाशने स्वधितिर्वज्रवत् प्रवर्त्तमानः **त्वमेनं=जीवं** यजमानं प्राणिसमूहं वा **मा हिंसीः=हननं मा कुर्य्याः** (न हिंस्यात्) ४।१॥

भाषार्थ—हे विद्वान् मनुष्य! जैसे (**पृथिव्याः**) भूमि पर [**इदम्**] इस मनुष्य जन्म और (**देवयजनम्**) विद्वानों के सङ्ग सत्कार और दान को प्राप्त करके (**यत्र**) जिस देश में (**ऋक्सामाभ्याम्**) पदार्थों की स्तुति करने वाले ऋग्वेद, कर्मान्त फलों की प्राप्ति कराने वाले सामवेद से तथा (**यजुर्भिः**) यजुर्वेद के मन्त्रों में प्रतिपादित कर्मों से (**रायः**) धन की (**पोषेण**) पुष्टि से दुःखों को (**सन्तरन्तः**) पार करते हुए (**विश्वे**) सब (**देवासः**) हम विद्वान् लोग सुखों को [**इषा**] विद्या वा अन्नादि से (**आ-अगन्म**) प्राप्त करें तथा (**अजुषन्त**) परस्पर प्रीति और सेवा करके (**संमदेम**) अच्छी प्रकार सुखी रहें।

(**उ**) विचारपूर्वक (**मे**) मेरे द्वारा विद्या और ऊँची शिक्षा के साथ सेवन किये हुए (**इमाः**) यह (**देवीः**) शुद्ध और रोगनाशक (**आपः**) जल सुखदायक होते हैं वैसे ही वहाँ तू उनका सेवन कर, तेरे लिए यह जल (**शं सन्तु**) सुखकारक हों।

जैसे (**औषधे**) सोमलता आदि औषधियाँ रोगों से रक्षा करती हैं वैसे आप (**त्रायस्व**) रक्षा करो।

(**स्वधिते**) रोगनाश में वज्र के समान प्रवृत्त होने वाले आप (**एनम्**) इस जीव, यजमान वा प्राणियों की (**मां हिंसीः**) हिंसा न करो॥ ४।१॥

[हे विद्वन्! यथा…ऋक्सामाभ्यां यजुर्भी रायस्पोषेण दुःखानि सन्तरन्तो विश्वे देवासो वयं…सुखान्यागन्म… तथैव…त्वं तानि जुषस्व]

भावार्थः—अत्र लुप्तोपमालङ्कारः॥ यथा मनुष्याः साङ्गान् सरहस्यांश्चतुरो वेदानधीत्यान्यानध्याप्य विद्यां प्रदीप्य विद्वांसो भूत्वा सुकर्मानुष्ठानेन सर्वान् प्राणिनः सुखयेयुः,

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमा अलङ्कार है। जैसे मनुष्य अङ्गों और उपनिषदों सहित चारों वेदों को पढ़कर तथा अन्यों को पढ़ाकर, विद्या को प्रकाशित कर, विद्वान् बनकर, शुभ कर्मों

के अनुष्ठान से सब प्राणियों को सुखी करें,

[यथौषधे=सोमलतद्योषधिगणो रोगेभ्यस्त्रायते तथा त्वं नस्त्रायस्व]

तथैवैतान् सत्कृत्यैतेभ्यो वैदिकविद्यां प्राप्य श्रेष्ठाचारौषधिसेवनाभ्यां दुःखान्तंगत्वा शरीरात्मपुष्ट्या धनं समुपचित्य सर्वैर्मनुष्यैरानन्दितव्यम् ॥ ४ । १ ॥

वैसे ही इन विद्वानों का सत्कार करके, इनसे वैदिक विद्या को सीखकर, उत्तम आचरण और औषध सेवन से दुःखों का अन्त करके, शारीरिक और आत्मिक पुष्टि से धन-संग्रह करके सब मनुष्य आनन्द में रहें ॥ ४ । १ ॥

अन्यत्र व्याख्यात—महर्षि ने इस मन्त्रांश का विनियोग संस्कार विधि (**चूडाकर्म विधि**) में किया है।

भाष्यसार—१. **जल**—विद्या और सुशिक्षा से सेवन किये हुये शुद्ध जल रोगनाशक और सुखकारक होते हैं।

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में उपमावाचक शब्द लुप्त होने से लुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि जैसे विद्वान् लोग चारों वेदों को पढ़कर शुभकर्मों के अनुष्ठान से सुख को प्राप्त करते हैं वैसे ही अन्य लोग भी सुखों को प्राप्त करें। तथा जैसे जल सुखकारक होते हैं वैसे विद्वान् लोग भी सब के लिए सुखकारक हों, जैसे औषधियाँ रोगों से रक्षा करती हैं वैसे विद्वान् लोग भी दुःखों से रक्षा करें ॥

●

प्रजापतिः । **आपः**=**जलानि** । स्वराडब्राह्मी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्ताभिरद्भिः किं कर्त्तव्यमित्युपदिश्यते ॥

फिर उन जलों से क्या क्या करना चाहिये ॥

आपोऽअस्मान् मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु ।
विश्वꣳहि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत ऽ एमि ।
दीक्षातपसोस्तनूरसि तां त्वा शिवाꣳ शग्मां परिदधे भद्रं वर्णं पुष्यन् ॥ २ ॥

पदार्थः—(**आपः**) जलानि (**अस्मान्**) मनुष्यादीन्प्राणिनः (**मातरः**) मातृवत्पालिकाः (**शुन्धयन्तु**) बाह्यदेशं पवित्रं कुर्वन्तु (**घृतेन**) आज्येन (**नः**) अस्मान् (**घृतप्वः**) घृतं पुनन्ति यास्ताः (**पुनन्तु**) पवित्रयन्तु (**विश्वम्**) सर्वं जगत् (**हि**) खलु (**रिप्रम्**) व्यक्तवाणीप्राप्तव्यं=वेदितव्यम् । अत्र लीरीङो ह्रस्वः ॥ उ० ५ । ५५ ॥ अनेनायं सिद्धः (**प्रवहन्ति**) प्रकर्षेण प्राप्नुवन्ति (**देवीः**) देव्यः (**उत्**) उत्कृष्टे (**इत्**) अपि (**आभ्यः**) अद्भ्यः (**शुचिः**) पवित्रः (**आ**) समन्तात् (**पूतः**) शुद्धः (**एमि**) प्राप्नोमि (**दीक्षातपसोः**) दीक्षा-ब्रह्मचर्य्यादिनियमसेवनं च तपो-धर्मानुष्ठानं च तयोः (**तनूः**) सुखविस्तारनिमित्तं शरीरम् (**असि**) अस्ति । अत्र व्यत्ययः (**ताम्**) (**त्वा**) एताम् (**शिवाम्**) कल्याणकारिकाम् (**शग्मान्**) सुखस्वरूपाम् (**परि**) सर्वतः (**दधे**) धरामि (**भद्रम्**) भजनीयम् (**वर्णम्**) स्वीकर्तुमर्हमतिसुन्दरम् (**पुष्यन्**) पुष्टं कुर्वन् ॥ अयं मन्त्रः श० ३ । १ । २ । १-११ व्याख्यातः ॥ २ ॥

प्रमाणार्थ—(**रिप्रम्**) यह शब्द 'लीरीङो ह्रस्वः' (**उणा० ५ । ५५**) सूत्र से सिद्ध है।

(असि) अस्ति । यहां व्यत्यय है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । १ । २ । १—११) में की गई है ॥ ४ । २ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्या ! **यथा भद्रं** भजनीयं **वर्णं** स्वीकर्तुमर्हमतिसुन्दरं **पुष्यन्** पुष्टं कुर्वन् **अहं या घृतत्वः** घृतं पुनन्ति यास्ताः [**देवीः**] देव्य **आपः** जलानि **विश्वं** सर्वं जगत् **रिप्रं** व्यक्तवाणी प्राप्तव्यं=वेदितव्यं [**हि**] खलु **प्रवहन्ति** प्रकर्षेण प्राप्नुवन्ति, **विद्वांसो या मातरः** मातृवत् पालिकाः, **या घृतप्वः** घृतं पुनन्ति यास्ताः **घृतेन** आज्येन **सन्ति याभिर्नः**=**अस्मान् सुखयन्ति ताभिरस्मान्** मनुष्यादीन् प्राणिनः **भवन्तः शुन्धयन्तु** बाह्यदेशं पवित्रं कुर्वन्तु **पुनन्तु** पवित्रयन्तु **च** ।

भाषार्थ—हे मनुष्यों जैसे (**भद्रम्**) सेवनीय (**वर्णम्**) ग्रहण करने योग्य अति सुन्दर रूप को (**पुष्यन्**) पुष्ट करता हुआ मैं (**घृतप्वः**) घृत को पवित्र करने वाले [**देवीः**] (**आपः**) दिव्य गुण युक्त जल (**विश्वं**) सारे जगत को (**रिप्रं**) जो व्यक्त वाणी से प्राप्त करने योग्य और जानने योग्य है [**हि**] निश्चय से (**प्रवहन्ति**) उत्तमतापूर्वक प्राप्त करते हैं । हे विद्वान् लोगों (**मातरः**) जो माता के समान पालन तथा जो (**घृतप्वः**) घृत को पवित्र करने वाले जल (**घृतेन**) घी से उत्पन्न होते हैं जिनसे आपः (**नः**) हमें सुख देते हैं उनसे (**अस्मान्**) हम मनुष्यादि प्राणियों को आप (**शुन्धयन्तु**) बाह्यदेश को शुद्ध करो और (**पुनन्तु**) अन्दर से भी पवित्र करो ।

यथाहम् **उत्** उत्कृष्ट **इत्** अपि **आभ्यः** अद्भ्यः **शुचिः** पवित्रः [**पूतः**] शुद्धः **भूत्वा या दीक्षातपसोः** दीक्षा=ब्रह्मचर्यादिनियमसेवनं च तपः=धर्मानुष्ठानं च तयोः, **तनूः** सुखविस्तारनिमित्तं शरीरम् **असि**=**अस्ति ताम्** [**आ+एमि**] समन्तात् प्राप्नोमि [**त्वा**]=**त्वामेतां** (एतां) **शिवां** कल्याणकारिकां **शग्मां** सुखस्वरूपां **परिदधे**=**सर्वतो धरामि तथा तास्तां च यूयमपि धरत** ॥ ४ । २ ॥

जैसे मैं (**उत्-इत्**) उत्कृष्ट होकर (**आभ्यः**) इन जलों से (**शुचिः**) पवित्र एवं [**पूतः**] शुद्ध होकर जो (**दीक्षातपसोः**) दीक्षा अर्थात् ब्रह्मचर्य आदि नियमों का पालन तथा तप अर्थात् धर्मानुष्ठान उन दोनों के (**तनूः**) सुखों के विस्तार के निमित्त शरीर (**असि**) है, (**ताम्**) उसे [**आ+एमि**] सब ओर से प्राप्त करता हूँ [**त्वा**] इस (**शिवाम्**) कल्याणकारक (**शग्माम्**) सुखस्वरूप शरीर को (**परिदधे**) सब ओर से धारण करता हूँ वैसे उन जलों को और शरीर को तुम भी धारण करो ॥ ४ । २ ॥

[**हे मनुष्या ! ···आपोविश्वं रिप्रं [हि] प्रवहन्ति···या मातरः—सन्ति ताभिरस्मान् भवन्तः शुन्धयन्तु, पुनन्तु च**]

भावार्थ—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ याः सर्वसुखप्रापिकाः प्राणधारिका मातृवत्पालनहेतव आपः सन्ति, ताभ्यः सर्वतः पवित्रतां सम्पाद्यैताः शोधित्वा मनुष्यैर्नित्यं संसेव्याः,

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है । जो सब सुखों को प्राप्त कराने वाले, प्राणों को धारण कराने वाले, माता के समान, पालक जल हैं, उनसे सब ओर से पवित्रता को सिद्ध करके और इनको शुद्ध करके मनुष्य नित्य सेवन करें ।

[**भद्रं वर्णं पुष्यन्नहं—**]

यतः—सुन्दरं वर्णं रोगरहितं शरीरं च

और—इनसे सुन्दर रूप तथा रोग रहित

सापाद्य नित्यं प्रयत्नेन धर्ममनुष्ठाय पुरुषार्थेनानन्दः कर्त्तव्यः ॥ ४ । २ ॥

शरीर बनाकर नित्य प्रयत्नपूर्वक धर्म का आचरण करके पुरुषार्थ से आनन्द करें ॥ ४ । २ ॥

भा० पदार्थः—विश्वम्=सर्वम् । रिप्रम्=सुखम् । मातरः=मातृवत्पालनहेतवः । भद्रम्=सुन्दरम् ॥

भाष्यसार—१. **जल से क्या करें**--जल से वर्ण को सुन्दर बनावें तथा शरीर को रोग रहित करके पुष्ट करें, घृत को पवित्र करने वाले दिव्य गुणों से युक्त जलों से सब सुखों को प्राप्त करें। माता के समान पालक जलों से सब ओर से पवित्रता को सिद्ध करें। जल से शुद्ध पवित्र होकर दीक्षा (**ब्रह्मचर्य आदि नियमों का सेवन**) तथा तप (**धर्माचरण**) को विस्तृत करने के स्थान शरीर को प्राप्त करें और जल से कल्याणकारी तथा सुखसाधक शरीर को धारण करें। शरीर से नित्य प्रयत्नपूर्वक धर्माचरण करके पुरुषार्थ से आनन्द करें॥

२. **अलंकार**—मन्त्र में उपमा वाचक शब्द लुप्त होने से वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है।

प्रजापतिः । **मेघः=स्पष्टम्** ॥ भुरिक् आर्ची त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनरस्य जलसमूहजन्यस्य मेघस्य किं निमित्तमस्तीत्युपदिश्यते ॥

इस जलसमूह से उत्पन्न हुए मेघ का क्या निमित्त है ॥

म॒ही॒नां पयो॑ऽसि वर्च्चो॒दाऽअ॑सि॒ वर्च्चो॑ मे देहि ।
वृ॒त्रस्या॑सि क॒नीन॑कश्चक्षु॒र्दाऽअ॑सि॒ चक्षु॑र्मे देहि ॥ ३ ॥

पदार्थः—(**महीनाम्**) पृथिवीनाम् । **महीति पृथिवीनामसु पठितम् ॥ निघं० १ । १ ॥** (**पयः**) रसनिमित्तम् (**असि**) अस्ति । **अत्र सर्वत्र व्यत्ययः** (**वर्चोदाः**) दीप्तिं ददातीति (**असि**) अस्ति (**वर्चः**) प्रकाशम् (**मे**) मह्यम् (**देहि**) ददाति (**वृत्रस्य**) मेघस्य (**असि**) अस्ति (**कनीनकः**) यः कनति=दीपयतीति स एव कनीनकः । **अत्र कनीधातोर्बाहुलकादौणादिक ईनप्रत्ययस्ततः स्वार्थे कन्** (**चक्षुर्दाः**) चष्टेऽनेन तद्दादातीति (**असि**) अस्ति (**चक्षुः**) नेत्रव्यवहारम् (**मे**) मह्यम् (**देहि**) ददाति ॥ **अयं मंत्र श० ३ । १ । ३ । ६—१५ व्याख्यातः ॥ ३ ॥**

प्रमाणार्थ—(**महीनाम्**) 'मही' शब्द निघं० (१ । १) में पृथिवी नामों में पढ़ा है। (**असि**) अस्ति। इस मन्त्र में सर्वत्र 'असि' पद पर व्यत्यय है। (**कनीनकः**) यह शब्द 'कनी' धातु से बहुल करके औणादिक 'ईन' प्रत्यय और स्वार्थ में 'कन्' प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । १ । ३ । ६—१५) में की गई है ॥ ४ । ३ ॥

सपदार्थान्वयः—यो महीनां पृथिवीनां **पयः** रसनिमित्तम् **असि=अस्ति, वर्चोदाः** दीप्तिं ददातीति, **असि=अस्ति, यो मे**=मह्यं **वर्चः** प्रकाशं [**देहि**]=**ददाति, वृत्रस्य** मेघस्य **कनीनकः यः** कनति=दीपयति-इति स एव कनीनकः, [**असि**]=**अस्ति, चक्षुर्दाः** चष्टेऽनेन तद् ददातीति, [**असि**]=

भाषार्थ—जो (**महीनाम्**) पृथिवियों के (**पयः**) रस का निमित्त (**असि**) है, (**वर्चोदाः**) दीप्ति का देने वाला (**असि**) है, जो (**मे**) मुझे (**वर्चः**) प्रकाश (**देहि**) देता है, जो (**वृत्रस्य**) मेघ को (**कनीनकः**) प्रकाशित करने वाला [**असि**] है, और जो (**चक्षुर्दाः**) देखने के साधन चक्षु को देने

अस्ति स सूर्यो मे=मह्यं चक्षुः नेत्रव्यवहारं [देहि]=ददाति ॥ ४ । ३ ॥

वाला [असि] है, वह सूर्य (मे) मेरे लिए (चक्षुः) नेत्र व्यवहार को (देहि) प्रदान करता है ॥ ४ । ३ ॥

[यो'''वृत्रस्य कनीनकः [असि]=अस्ति, चक्षुर्दाः [असि]=अस्ति, स सूर्यो मे=मह्यं चक्षुः [देहि]=ददाति]

भावार्थः—मनुष्यैः—नहि सूर्यस्य प्रकाशेन विना वृष्ट्युत्पत्तिश्चक्षुर्व्यवहारश्च सिध्यति, येनायं सूर्यो निर्मितस्तस्मा ईश्वराय कोटिशो धन्यवादा-देया इति वेद्यम् ॥ ४ । ३ ॥

भावार्थ—सूर्य के प्रकाश के बिना वर्षा की उत्पत्ति तथा आँखों से देखना रूप व्यवहार सिद्ध नहीं हो सकता, अतः जिसने यह सूर्य रचा है, सब मनुष्य उस ईश्वर को कोटिशः धन्यवाद देवें ॥ ४ । ३ ॥

भा० पदार्थः—वृत्रस्य कनीनकः=वृष्ट्युत्पादकः । चक्षुर्दाः=चक्षुर्व्यवहारसाधकः ॥

भाष्यसार—**जलसमूह से उत्पन्न मेघ का निमित्त क्या है?**—पृथिवीस्थ पदार्थों में रस उत्पन्न करने वाला, दीप्ति देने वाला, चक्षु व्यवहार को सिद्ध करने वाला, सूर्य जलसमूह से उत्पन्न मेघ का निमित्त है। और जिसने ऐसे अद्भुत गुणों वाला सूर्य रचा है उस ईश्वर का करोड़ों बार धन्यवाद है ॥ ४ । ३ ॥

●

प्रजापतिः । **परमात्मा**=स्पष्टम् ॥ निचृद्ब्राह्मी पंक्तिः । पंचम ॥

येन सूर्य्यादिकं जगद्रचितं सोऽस्मदर्थं किं किं कुर्य्यादित्युपदिश्यते ॥

जिसने सूर्य्य आदि सब जगत् को बनाया है, वह परमात्मा हमारे लिए क्या-क्या करे ॥

चित्पतिर्मा पुनातु वाक्पतिर्मा पुनातु देवो मा सविता पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्य्यस्य रश्मिभिः । तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य यत्कामः पुने तच्छकेयम् ॥ ४ ॥

पदार्थः—(**चित्पतिः**) चेतयति येन विज्ञानेन तस्य पतिः=पालयिताऽधिष्ठातेश्वरो भवान् (**मा**) माम् (**पुनातु**) पवित्रं करोतु (**वाक्पतिः**) यो वाचो=वेदविद्यायाः पतिः=स्वामी पालयिता (**मा**) माम् (**पुनातु**) विद्वांसं कृत्वा पवित्रयतु (**देवः**) यः स्वप्रकाशेन सर्वस्य प्रकाशकः (**मा**) माम् (**सविता**) सर्वस्य जगतो दिव्यस्य प्रसवितोत्पादकः (**पुनातु**) शोधयतु=शुद्धं करोतु (**अच्छिद्रेण**) अविनाशिना विज्ञानेन (**पवित्रेण**) शुद्धिकारकेण (**सूर्य्यस्य**) सवितृमण्डलस्य प्राणस्य वा (**रश्मिभिः**) प्रकाशैर्गमनागमनैः (**तस्य**) जगदीश्वरस्य (**ते**) तव (**पवित्रपते**) पवित्रस्य पालयितः (**पवित्रपूतस्य**) यः पवित्रैः=शुद्धैः स्वाभाविकै-र्विज्ञानादिभिर्गुणैः पूतः=पवित्रस्तस्य (**यत्कामः**) यः कामो यस्य सः (**पुने**) पवित्रो भवामि (**तत्**) पवित्रं कर्म (**शकेयम्**) शक्नुयाम् ॥ अयं मन्त्रः शत० ३ । १ । ३ । २२—२३ व्याख्यातः ॥ ४ ॥

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । १ । ३ । २२-२३) में की गई है ॥ ४ । ४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **पवित्रपते**! पवित्रस्य पालयितः! **परमात्मान्**! **चित्पतिः** चेतयति येन विज्ञानेन तस्य पतिः=पालयिताऽधिष्ठनेश्वरो भवान् **वाक्पतिः** यो वाचो=वेदविद्यायाः पतिः=

भाषार्थ—हे (**पवित्रपते**) पवित्र जनों के पालक परमात्मन्! आप (**चित्पतिः**) चिताने वाले विज्ञान के पालक अधिष्ठाता एवं ईश्वर हो आप (**वाक्पतिः**) वेद विद्या के स्वामी एवं पालक हो,

स्वामी पालयिता, **सविता** सर्वस्य जगतो दिव्यस्य प्रसवितोत्पादकः, **देवः** यः स्वप्रकाशेन सर्वस्य प्रकाशकः भवान्, **पवित्रेण** शुद्धिकारकेण **अच्छिद्रेण**=**विज्ञानेन** अविनाशिना विज्ञानेन **सूर्यस्य** सवितृमण्डलस्य प्राणस्य वा **रश्मिभिः** प्रकाशैर्गमनागमनैः **च**, **मा**=**मां मम चित्तं च पुनातु** पवित्रं करोतु, **मा**=**मां मम वाचं च पुनातु** विद्वांसं कृत्वा पवित्रयतु, **मा**=**मां मम चक्षुश्च पुनातु** शोधयतु=शुद्धं करोतु ।

(सविता) सम्पूर्ण दिव्य जगत् के उत्पादक हो, **(देवः)** अपने प्रकाश से सबको प्रकाशित करने वाले हो, इसलिये आप **(पवित्रेण)** शुद्धिकारक **(अच्छिद्रेण)** नष्ट न होने वाले विज्ञान से **(सूर्यस्य)** सूर्यमण्डल वा प्राण के **(रश्मिभिः)** प्रकाश और गमनागमन से **(मा)** मुझे और मेरे चित्त को **(पुनातु)** पवित्र करो। **(मा)** मुझे और मेरी वाणी को **(पुनातु)** विद्वान् बना कर पवित्र करो । **(मा)** मुझे और मेरे चक्षु को **(पुनातु)** शुद्ध करो ।

यस्य पवित्रपूतस्य यः पवित्रैः=शुद्धैः स्वभाविकैर्विज्ञानादिभिर्गुणैः पूतः=पवित्रस्तस्य **कृपया यत्कामः** यः कामो यस्य सः, **अहं पुने**=**पवित्रो भवामि** ।

जो **(पवित्र पूतस्य)** शुद्ध स्वाभाविक विज्ञान आदि गुणों से पवित्र है, उसकी कृपा से **(यत्कामः)** जिस कामना वाला मैं **(पुने)** पवित्र होता हूँ,

यस्य ते=तवोपासनया **[तत्]**=**पवित्रं कर्म** कर्तुं **[शकेयं]**=शक्नुयां, **तस्य** जगदीश्वरस्य **सेवा** कर्तुं योग्या मे कथं न भवेत् ॥ ४ । ४ ॥

जिस **(ते)** आप की उपासना से **[तत्]** पवित्र कर्म करने **[शकेयं]** समर्थ होता हूँ **(तस्य)** उस जगदीश्वर की सेवा क्यों न करूँ ॥ ४ । ४ ॥

[हे पवित्रपते परमात्मन् !···भवान् पवित्रेणाच्छिद्रेण=**विज्ञानेन सूर्यस्य रश्मिभिश्च मा**=**मां मम चित्तं च पुनातु, यस्य पवित्रपूतस्य कृपया यत्कामोऽहं**=**पुने**=**पवित्रो भवामि**]

भावार्थः—मनुष्यैर्येन वेदविज्ञात्रा पत्या परमेश्वरेण विद्याभूजलवायुसूर्यादयः शुद्धिकारकाः पदार्थाः प्रकाशितास्तस्योपासना पवित्रकर्मानुष्ठानाभ्यां मनुष्यैः पूर्णकामः पवित्रता च कार्या ॥ ४ । ४ ॥

भावार्थ—जिस वेद के विज्ञाता एवं जगत् के पालक परमेश्वर ने विद्या, पृथिवी, जल, वायु और सूर्य आदि शुद्धिकारक पदार्थ प्रकाशित किए हैं उसकी उपासना तथा पवित्र कर्मों के अनुष्ठान से मनुष्य पूर्ण कामना और पवित्रता को सिद्ध करें ॥ ४ । ४ ॥

भाष्यसार—**परमात्मा हमारे लिये क्या क्या करता है**—ईश्वर पवित्र जनों का पालन करने वाला, विज्ञान का पति एवं अधिष्ठाता, वेद विद्या का स्वामी, सब दिव्य जगत् का उत्पादक, अपने प्रकाश से विद्या, पृथिवी, जल, वायु और सूर्य आदि शुद्धिकारक सब पदार्थों का प्रकाशक है और जो अपने पवित्र तथा विनाश रहित विज्ञान से सूर्य वा प्राणों की रश्मियों से मेरे चित्त, वाणी और चक्षु को पवित्र करता है । जगदीश्वर स्वाभाविक विज्ञान आदि पवित्र गुणों से पवित्र है उसी की कृपा से, उपासना से, मेरी सब कामनायें पूर्ण होती हैं तथा पवित्रता प्राप्त होती है । उसकी उपासना से ही पवित्र कर्म करने का सामर्थ्य उत्पन्न होता है । इसलिए ईश्वर की सेवा करना परम आवश्यक है ॥ ४ । ४ ॥

प्रजापतिः । **ऋषिः**=**पष्टम्** ॥ निचृदार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

मनुष्यैः कथं पुरुषार्थः कर्त्तव्य इत्युपदिश्यते ॥

मनुष्यों को कैसे पुरुषार्थ करना चाहिये, यह उपदेश किया है ॥

आ वों देवास ऽ ईमहे वामं प्रयत्यध्वरे। आ वों देवास ऽ आशिषों यज्ञियांसो हवामहे ॥ ५ ॥

पदार्थः—(आ) समन्तात् (वः) युष्मान् (देवासः) ये दीव्यन्ति=विद्यादिगुणैः प्रकाशन्ते तत्सम्बुद्धौ (ईमहे) याचामहे । **ईमह इति याच्ञाकर्मसु पठितम् ॥ निघं० ३ । १९ ॥** (वामम्) प्रशस्तं गुणकर्मसमूहम् । **वाममिति प्रशस्यनामसु पठितम् ॥ निघं० ३ । ८ ॥** (प्रयति) प्रकृष्टं सुखमेति येन तस्मिन् । **अत्र कृतो बहुलमिति करणकारके कृत्** (अध्वरे) अहिंसनीये यज्ञे (आ) अभितः (वः) युष्माकं सकाशात् (देवासः)विद्वांसः (आशिषः) इच्छाः (यज्ञियासः) या यज्ञमर्हन्ति ताः (हवामहे) स्वीकुर्वीमहि । **लेट् प्रयोगोऽयम् ॥ अयं मंत्र श० ३ । १ । ३ । २४ व्याख्यातः ॥ ५ ॥**

प्रमाणार्थ—(ईमहे) 'ईमहे' पद निघं० (३ । १९) में मांगने अर्थ वाली क्रियाओं में पढ़ा है। (**वामम्**) 'वाम' शब्द निघं० (३ । ८) में प्रशस्य-नामों में पढ़ा है । (**प्रयति**) यहां 'कृतो बहुलम्' [अ० ३ । ३ । ११३] वार्त्तिक से करण-कारक में कृत् (**क्विप्**) प्रत्यय है। (**हवामहे**) यह लेट्-लकार का प्रयोग है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । १ । ३ । २४) में की गई है ॥ ४ । ५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **देवासः** ! ये दीव्यन्ति=विद्यादिगुणैः प्रकाशन्ते, तत्सम्बुद्धौ, **यथा वयं वः युष्मान् प्रयति** प्रकृष्टं सुखमेति येन तस्मिन् **अध्वरे** अहिंसनीये यज्ञे **वः=युष्माकं** युष्माकं सकाशात् **वामं** प्रशस्तं गुणकर्मसमूहम् **आईमहे=समन्तात् याचामहे ।**

हे **यज्ञिमासः** ! ये यज्ञमर्हन्ति ते **देवासः** विद्वांसः **यथाऽस्मिन् संसारे वः=युष्माकं सकाशात्** [**यज्ञियासः**]=**यज्ञियाः** या यज्ञमर्हन्ति ताः **आशिषः** इच्छाः **आहवामहे=अभितः स्वीकुर्वीमहि, तथैवास्मदर्थं भवद्भिः सततमनुष्ठेयम्** ॥ ४ । ५ ॥

भाषार्थ—हे (**देवासः**) विद्या आदि शुभ-गुणों से प्रकाशित विद्वानो ! जैसे हम लोग (**वः**) तुमसे (**प्रयति**) उत्तम सुख प्राप्त कराने वाले (**अध्वरे**) हिंसारहित यज्ञ में (**वः**) तुम्हारे (**वामम्**) प्रशंसनीय गुणों एवं कर्मों को (**आ-ईमहे**) सब ओर से माँगते हैं और—

हे (**यज्ञियासः**) यज्ञ को करने की योग्यता वाले (**देवासः**) विद्वानो ! जैसे इस संसार में (**वः**) तुम से (**यज्ञियासः**) यज्ञ को सिद्ध करने वाली (**आशिषः**) इच्छाओं को (**आहवामहे**) सब ओर से प्राप्त करें, वैसा हमारे लिये आप निरन्तर प्रयत्न करें ॥ ४ । ५ ॥

[हे···देवासः ! यथाऽस्मिन् संसारे वः=युष्माकं सकाशात् [यज्ञियासः]=यज्ञिया आशिष आहवामहे= अभितः स्वीकुर्वीमहि]

भावार्थः—मनुष्यैः परमविद्वद्भ्यः प्रशस्ता विद्याः सम्पाद्य स्वेच्छाः पूर्णाः कृत्वैतेषां सङ्गसेवे सदैव कर्त्तव्ये ॥ ४ । ५ ॥

भावार्थ—सब मनुष्य परम विद्वानों से उत्तम विद्याओं को प्राप्त करके अपनी इच्छाओं को पूर्ण कर इन विद्वानों का सङ्ग और सेवा सदा किया करें ॥ ४ । ५ ॥

भा० पदार्थः—देवासः=परम विद्वांसः । आशिषः=स्वेच्छाः ।

भाष्यसार—**मनुष्य कैसे पुरुषार्थ करें**—सब मनुष्य विद्यादि गुणों से प्रकाशित विद्वानों से उत्तम गुण कर्मों की प्राप्ति के लिए प्रार्थना करें। इस संसार में यज्ञ करने वाले परम विद्वानों से उत्तम विद्याओं को ग्रहण करके अपनी यज्ञिय इच्छाओं को पूर्ण करें। उक्त विद्वानों का सङ्ग और सेवा भी सदा किया करें। विद्वान् लोग भी पुरुषार्थ से विद्यादि शुभ गुणों का दान करते रहें ॥ ४ । ५ ॥

प्रजापतिः । **यज्ञः=स्पष्टम्** ॥ **निचृदार्ष्यनुष्टुप्** । गान्धारः ॥

किंकिमर्थः स यज्ञोनुष्ठातव्य इत्युपदिश्यते ॥

किस-किस प्रयोजन के लिये उस यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये, यह उपदेश किया है ॥

स्वाहा॑ य॒ज्ञं मन॑सः॒ स्वाहो॒रोर॒न्तरि॑क्षा॒त् स्वाहा॒ द्यावा॑पृथि॒वीभ्या॒ᳪ᳟स्वाहा॒ वाता॒दार॑भे॒ स्वाहा॑ ॥ ६ ॥

पदार्थः—(**स्वाहा**) प्रत्यक्षलक्षणया वेदस्थया वाचा (**यज्ञम्**) क्रियाजन्यम् (**मनसः**) विज्ञानात् (**स्वाहा**) सुशिक्षितया वाचा (**उरोः**) बहुनः । अत्र लिंगव्यत्ययेन पुँस्त्वम् (**अन्तरिक्षात्**) सूर्यपृथिव्योर्मध्ये वर्तमानादाकाशात् (**स्वाहा**) विद्याप्रकाशिकया वाण्या (**द्यावापृथिवीभ्याम्**) प्रकाशभूम्योः शुद्धये (**स्वाहा**) सत्यप्रियत्वादिगुणविशिष्टतया वाचा (**वातात्**) वायोः (**आ**) समन्तात् (**रभे**) कुर्वे (**स्वाहा**) सुष्ठु जुहोति=गृह्णाति ददाति यया क्रियया तया ॥ अयं मंत्रः श० ३ । १ । ३ । २५—२८ व्याख्यातः ॥ ६ ॥

प्रमाणार्थ—(**उरोः**) बहुनः । यहाँ लिङ्ग व्यत्यय से पुँल्लिङ्ग है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । १ । ३ । २५—२८) में की गई है ॥ ४ । ६ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्या ! यथाऽहं स्वाहा=वेदोक्तया** प्रत्यक्षलक्षणया वेदस्थया वाचा, **स्वाहा=सुशिक्षितया** सुशिक्षितया वाचा, **स्वाहा=विद्या प्रकाशिकया** विद्याप्रकाशिकया वाण्या, **स्वाहा=सत्यप्रियत्वादिगुणयुक्तया वाचा** सत्यप्रियत्वादिगुणविशिष्टया वाचा, **स्वाहा=सुष्ठु क्रियया** सुष्ठु जुहोति=गृह्णाति ददाति यया क्रियया तया **च उरोः** बहुनः **मनसः** विज्ञानात् **अन्तरिक्षात्** सूर्यपृथिव्योर्मध्ये वर्त्तमानादाकाशात् **वातात्** वायोः **द्यावापृथिवीभ्यां** प्रकाशभूम्योः शुद्धये **यज्ञं** क्रियाजन्यम् **आरभे=नित्यं कुर्वे** समन्तात् कुर्वे, **तथा भवन्तोऽप्यारभन्ताम्** ॥ ४ । ६ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (**स्वाहा**) प्रत्यक्षलक्षण युक्त वेदोक्त वाणी से, (**स्वाहा**) सुशिक्षित वाणी से, (**स्वाहा**) विद्या को प्रकाशित करने वाली वाणी से, (**स्वाहा**) सत्य और प्रेम आदि से युक्त वाणी से, (**स्वाहा**) लेने और देने की सुन्दर क्रिया से और (**उरोः**) बहुत (**मनसः**) विज्ञान से (**अन्तरिक्षात्**) सूर्य और पृथिवी के मध्य में विद्यमान आकाश से (**वातात्**) वायु से (**द्यावापृथिवीभ्याम्**) द्युलोक और भूलोक की शुद्धि के लिए (**यज्ञम्**) पुरुषार्थ से उत्पन्न यज्ञ को (**आरभे**) प्रयत्न से नित्य करता हूँ, वैसे आप भी किया करो ॥ ४ । ६ ॥

[हे मनुष्या ! अहं स्वाहा=**वेदोक्तया......वाचा स्वाहा=सुष्ठु क्रियया चोरोर्मनसोऽन्तरिक्षाद्वाताद्द्यावापृथिव्यां यज्ञमारभे=नित्यं कुर्वे**]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ मनुष्यैर्वेदरीत्या यो मनोवचनकर्मभिरनुष्ठितो यज्ञो भवति सोऽन्तरिक्षादिभ्यो वायुशुद्धिद्वारा प्रकाशपृथिव्योः पवित्रतां सम्पाद्य सर्वान् सुखयति ॥ ४ । ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ मनुष्य वेद की रीति से मन, वाणी और कर्म से जिस यज्ञ का अनुष्ठान करते हैं वह अन्तरिक्ष आदि में वायु की शुद्धि से प्रकाश और पृथिवी को पवित्र करके सबको सुखी करता है ॥ ४ । ६ ॥

भा० पदार्थः—वातात्=वायुशुद्धिद्वारा । द्यावापृथिवीभ्याम्=प्रकाशभूमिभ्याम् ॥

भाष्यसार—१. **यज्ञानुष्ठान का प्रयोजन**—सब मनुष्य वेदवाणी से मन, वचन, कर्म से

सूर्य और पृथिवी के मध्य में वर्तमान अन्तरिक्ष, वायु, प्रकाश और भूमि की शुद्धि के लिये यज्ञ का अनुष्ठान करें।

२. स्वाहा शब्द के अर्थ—१—प्रत्यक्ष वेदोक्त वाणी के द्वारा। २—सुशिक्षित वाणी के द्वारा। ३—विद्या को प्रकाशित करने वाली वाणी के द्वारा। ४—सत्य से प्रेम आदि गुणों से युक्त वाणी के द्वारा। ५—उत्तम लेन-देन की क्रिया के द्वारा।

३. अलङ्कार—मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि शब्द लुप्त है। इस लिये 'वाचकलुप्तोपमा' अलङ्कार है। जैसे विद्वान् लोग वेद वाणी के द्वारा यज्ञ का अनुष्ठान करें वैसे अन्य लोग भी यज्ञ का अनुष्ठान करें ॥ ४। ६ ॥

प्रजापतिः। **अग्न्यब्बृहस्पतयः**=[**अग्नि-जल-बृहस्पति**] **जगदीश्वराः**। पूर्वार्धस्य पंक्तिः। पञ्चमः। आपो देवीरित्युत्तरस्यार्षी बृहतीः। मध्यमः ॥

किमर्थः स यज्ञोऽनुष्ठातव्य इत्युपदिश्यते ॥

किसलिए उस यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

आकू॑त्यै प्र॒युजे॒ऽग्नये॒ स्वाहा॑। मे॒धायै॒ मन॑से॒ऽग्नये॒ स्वाहा॑ दी॒क्षायै॒ तप॑से॒ऽग्नये॒ स्वाहा॒ सर॑स्वत्यै पू॒ष्णे॒ऽग्नये॒ स्वाहा॑। आपो॑ देवीर्बृहतीर्विश्वशम्भुवो॒ द्यावापृथिवी॒ऽउरो॑ ऽअन्तरिक्ष। बृह॒स्पत॑ये ह॒विषा॑ विधेम॒ स्वाहा॑ ॥ ७ ॥

पदार्थः—(**आकूत्यै**) उत्साहाय (**प्रयुजे**) या धर्मक्रिया प्रकृष्टैर्गुणैर्युनक्ति योजयति वा तस्यै (**अग्नये**) अग्निप्रदीपनाय (**स्वाहा**) वेदवाणीप्रचाराय (**मेधायै**) प्रज्ञोन्नतये (**मनसे**) विज्ञानवृद्धये (**अग्नये**) विद्युद्विद्याग्रहणाय (**स्वाहा**) परोपकारकारिकायै (**दीक्षायै**) धर्मनिगमाचरणरीतये (**तपसे**) प्रतापाय (**अग्नये**) कारणरूपाय (**स्वाहा**) अध्ययनाध्यापनविद्यायै (**सरस्वत्यै**) विद्यासु शिक्षासहितायै वाचे (**पूष्णे**) पुष्टिकरणाय (**अग्नये**) जाठराग्निशोधनाय (**स्वाहा**) सत्यवाक् प्रवृत्तये (**आपः**) प्राणा जलानि वा (**देवीः**) दिव्यगुणसम्पन्नाः। **अत्र वा छन्दसीति जसः पूर्वसवर्णत्वम्** (**बृहतीः**) महागुणविशिष्टाः (**विश्वशम्भुवः**) या विश्वस्मै शं=सुखं भावयन्ति ताः (**द्यावापृथिवी**) भूमिप्रकाशौ (**उरो**) बहुसुखप्रतिपादकः (**अन्तरिक्ष**) अन्तरिक्षस्थो यज्ञः (**बृहस्पतये**) बृहत्या वाचो बृहतामाकाशादीनां च पतिः=स्वामी तस्मै जगदीश्वराय (**हविषा**) सामग्र्या सत्याप्रेमभावेन वा (**विधेम**) विधानं कुर्याम (**स्वाहा**) संगतां प्रियां शोभनां स्तुतिप्रयुक्तां वाचम् ॥ **अयं मंत्रः श० ३। १। ४। ६-१५ व्याख्यातः ॥ ७ ॥**

प्रमाणार्थ—(**देवीः**) यहाँ 'वा छन्दसि' [**अ० ६। १। १०२**] सूत्र से 'जस्' प्रत्यय को पूर्व सवर्ण दीर्घ है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३। १। ४। ६-१५) में की गई है ॥ ४। ७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्या**! **यथा वयमाकूत्यै** उत्साहाय **प्रयुजे** या धर्मक्रिया प्रकृष्टैर्गुणैर्युनक्ति-योजयति वा तस्यै, **अग्नये** अग्निप्रदीपनाय, **स्वाहा** वेदवाणीप्रचाराय, **सरस्वत्यै** विद्यासुशिक्षासहितायै वाचे, **पूष्णे** पुष्टिकरणाय,

भावार्थ—हे मनुष्यो! जैसे हम (**आकूत्यै**) उत्साह प्राप्ति के लिए (**प्रयुजे**) उत्तम-गुणों से युक्त करने वाले धर्माचरण के लिये, (**अग्नये**) अग्नि को प्रदीप्त करने के लिए, (**स्वाहा**) वेदवाणी के प्रचार के लिए, (**सरस्वत्यै**) विद्या और उत्तम-शिक्षा से

बृहस्पतये बृहत्याः=वाचो बृहतामाकाशादीनां च पतिः=स्वामी तस्मै जगदीश्वराय, **अग्नये** जाठराग्नि शोधनाय, **स्वाहा** सत्यवाक्प्रवृत्तये, **मेधायै** प्रज्ञोन्नतये, **मनसे** विज्ञानवृद्धिये, **अग्नये** विद्युद्विद्याग्रहणाय, **स्वाहा** परोपकारकारिकायै, **दीक्षायै** धर्मनिगमाचरणरीतये, **तपसे** प्रतापाय, **अग्नये** कारणरूपाय, **स्वाहा** अध्ययनाध्यापन विद्यायै, **या** [**बृहतीः**] **बृहत्यः** महागुणविशिष्टाः **विश्वशम्भुवः** या विश्वस्मै शं=सुखं भावयन्ति ताः [**देवीः**] **देव्यः** दिव्यगुणसम्पन्नाः आपः प्राणा जलानि वा **स्वाहा**=**वाक्** । **द्यावापृथिवी** भूमि प्रकाशौ **उरो** बहुसुख प्रतिपादकः [**अन्तरिक्ष**]=**अन्तरिक्षस्थे** अन्तरिक्षस्थो यज्ञः **च स्तस्ता अपि स्वाहा** सङ्गतां प्रियां शोभनां स्तुति प्रयुक्तां वाचं **क्रियया हविषा** सामग्र्या सत्यप्रेमभावेन वा **च शुद्धा विधेम** विधानं कुर्याम **तथा यूयमपि विदधत** ॥ ४ । ७ ॥

युक्त वाणी के लिए, (**पूष्णे**) पुष्टि प्राप्त करने के लिए, (**बृहस्पतये**) वाणी और आकाश आदि के स्वामी जगदीश्वर के लिए, (**अग्नये**) जाठराग्नि को शुद्ध करने के लिए, (**स्वाहा**) सच्ची वाणी बोलने के लिए, (**मेधायै**) बुद्धि को बढ़ाने के लिए, (**मनसे**) विज्ञान वृद्धि के लिए, (**अग्नये**) विद्युत् विद्या को ग्रहण करने के लिए, (**स्वाहा**) परोपकार करनेवाली क्रिया के लिए, (**दीक्षायै**) धर्म-शास्त्र के अनुसार आचरण की रीति के लिए, (**तपसे**) प्रताप प्राप्ति के लिए, (**अग्नये**) कारणरूपता के लिए, (**स्वाहा**) पढ़ने पढ़ाने की विद्या के लिए जो [**बृहतीः**] महान् गुणों से युक्त (**विश्वशम्भुवः**) सब को सुख शान्ति देने वाला [**देवीः**] दिव्य गुणों से सम्पन्न [**आपः**] प्राण व जलों की प्राप्ति के लिए (**स्वाहा**) सत्यभाषण युक्त वाणी से यज्ञ करना चाहिए । और जो (**द्यावापृथिवी**), भूमि और प्रकाश (**उरो**) बहुत सुख देने वाले (**अन्तरिक्ष**) आकाश में स्थित यज्ञ है उसको तथा (**स्वाहा**) संगत्, प्यारी, सुन्दर स्तुति युक्त वाणी को भी क्रिया से तथा (**हविषा**) यज्ञ सामग्री एवं सत्य के प्रति प्रेम भावना से शुद्ध (**विधेम**) करते हैं, वैसे तुम भी किया करो ॥ ४ । ७ ॥

[हे मनुष्या ! यथा व यमाकूत्यै, मेधायै, सरस्वत्यै, दीक्षायै, तपसे, अग्नये, पूष्णे...हविषा...विधेम तथा यूयमपि विदधत]

भावार्थः—नहि यज्ञानुष्ठानेन विनोत्साहो, मेधा, सत्यवाक्, दीक्षा, तपो, धर्मानुष्ठानम्, विद्या, पुष्टिश्च सम्भवति । न किलैतैर्विना कश्चिदपि परमेश्वरमाराद्धुं शक्नोतीति ।

भावार्थ—यज्ञ के अनुष्ठान के बिना उत्साह, मेधा, सत्य वाणी, दीक्षा, तप, धर्माचरण, विद्या और पुष्टि की सिद्धि सम्भव नहीं है । और निश्चय है कि इनके बिना कोई भी परमेश्वर की आराधना नहीं कर सकता ।

[तात्पर्यमाह—]

तस्मात्—सर्वैर्मनुष्यैरेतत् सर्वमनुष्ठाये सर्वानन्दः प्राप्तव्यः ॥ ४ । ७ ॥

इसलिए—सब मनुष्य यज्ञ के अनुष्ठान से सम्पूर्ण आनन्द को प्राप्त करें ॥ ४ । ७ ॥

भाष्यसार—१. **यज्ञानुष्ठान का प्रयोजन**—यज्ञ के अनुष्ठान से मनुष्य को उत्साह, उत्तम गुणों से संयुक्त करने वाला धर्माचरण, अग्निविद्या, वेदवाणी का प्रचार, विद्या-सुशिक्षा से युक्त वाणी, पुष्टि व परमेश्वर की प्राप्ति, जाठराग्नि की शुद्धि, सत्यभाषण में प्रवृत्ति, बुद्धि को वृद्धि, विज्ञान की वृद्धि, विद्युत्-विद्या की प्राप्ति, परोपकार में प्रवृति, तप का सामर्थ्य, अध्ययन-अध्यापन की विद्या, महान्

दिव्य गुणों से युक्त सब के लिए सुखदायक प्राण वा जलों की प्राप्ति, तथा सङ्गत, प्रिय, उत्तम वाणी की प्राप्ति होती है। इन्हीं गुणों से मनुष्य परमेश्वर की आराधना करने में समर्थ होता है ॥

२. स्वाहा शब्द के अर्थ—१. वेदवाणी का प्रचार। २. सत्य भाषण में प्रवृत्ति। ३. परोपकार करना। ४. अध्ययन-अध्यापन की विद्या। ५. वाणी। ६. सङ्गत, प्रिय, सुन्दर, ईश्वर की स्तुति करने वाली वाणी ॥ ४ ॥ ७ ॥

आत्रेयः। **ईश्वरः=स्पष्टम्**। आर्ष्यनुष्टुप्। गान्धारः ॥

मनुष्यैः परमेश्वराश्रयेण किं किं कर्त्तव्यमित्युपदिश्यते ॥

मनुष्यों को परमेश्वर के आश्रय से क्या-क्या करना चाहिये ॥

विश्वो॑ दे॒वस्य॑ ने॒तुर्मर्त्तो॑ वुरीत स॒ख्यम्। विश्वो॑ रा॒यऽइ॑षुध्यति द्यु॒म्नं वृ॑णीत पु॒ष्यसे॒ स्वाहा॑ ॥ ८ ॥

पदार्थः—(**विश्वः**) सर्वो जनः (**देवस्य**) सर्वप्रकाशकस्य (**नेतुः**) सर्वनयनकर्त्तुः परमेश्वरस्य (**मर्त्तः**) मनुष्यः। मर्त्ता इति मनुष्यनामसु पठितम् ॥ निघं० २। ३॥ (**वुरीत**) वृणीयात्। अत्र बहुलं छन्दसीति विकरणस्य लुक् (**सख्यम्**) सख्युर्भावः कर्म वा (**विश्वः**) अखिलः (**राये**) धनप्राप्तये (**इषुध्यति**) शरान्धारयेत्, लेट्प्रयोगोऽयम् (**द्युम्नम्**) धनम् (**वृणीत**) स्वीकुर्य्यात् (**पुष्यसे**) पुष्टो भवेः। अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदम्। लेट्प्रयोगोऽयम् (**स्वाहा**) सत्क्रियया ॥ अयं मंत्रः श० ३। १। ४। १७—१८ व्याख्यातः ॥ ८ ॥

प्रमाणार्थ—(**मर्त्तः**) यह शब्द निघं० (२। ३) में मनुष्य नामों में पढ़ा है। (**वुरीत**) वृणीयात्। यहाँ 'बहुलं छन्दसि' [**अ०** २। ४। ७३] सूत्र से विकरण प्रत्यय (**श्ना**) का लुक् है। (**इषुध्यति**) यह लेट् लकार का प्रयोग है। (**पुष्यसे**) यहाँ व्यत्यय से आत्मनेपद और लेट् लकार का प्रयोग है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३। १। ४। १७—१८) में की गई है ॥ ४। ८ ॥

सपदार्थान्वयः—**यथा विश्वः** सर्वो-जनः **मर्त्तः** मनुष्यः **नेतुः** सर्वनयनकर्तुः परमेश्वरस्य **देवस्य=जगदीश्वरस्य** सर्वप्रकाशकस्य **सख्यं** सख्युर्भावः कर्म वा **वुरीत** वृणीयात्, **विश्वः** अखिलः **राये** धनप्राप्तये **इषुध्यति** शरान् धारयेत्, **स द्युम्नं** धनं **वृणीत** स्वीकुर्यात्, **तथा हे मनुष्य ! एतत् सर्वमनुष्ठाय स्वाहाः सत्क्रियया त्वमपि पुष्यसे=पुष्टो-भवेः** ॥ ४। ८ ॥

भाषार्थ—जैसे (**विश्वः**) सब (**मर्त्तः**) मनुष्य (**नेतुः**) सबका नेतृत्व करने वाले परमेश्वर (**देवस्य**) सबके प्रकाशक जगदीश्वर के (**सख्यम्**) मित्रता और उसके गुण कर्म को (**वुरीत**) चुनते तथा (**विश्वः**) सम्पूर्ण (**राये**) धन प्राप्ति के लिए (**इषुध्यति**) बाणों को धारण करते हैं और वे (**द्युम्नम्**) धन को (**वृणीत**) अपना बनाते हैं। वैसे हे मनुष्य ! वैसा सब व्यवहार करके (**स्वाहा**) शुभ कर्म से तू भी (**पुष्यसे**) पुष्ट बन ॥ ४। ८ ॥

[**विश्वो मर्त्तो''' देवस्य=जगदीश्वरस्य सख्यं वुरीत, विश्वो राय इषुध्यति**]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ सर्वैर्मनुष्यैः परमेश्वरमुपास्य परस्परं मित्रतां कृत्वा युद्धे दुष्टान् विजित्य राजश्रियं प्राप्य सुखयितव्यम् ॥ ४। ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ सब मनुष्य परमेश्वर की उपासना और परस्पर मित्रता करके, युद्ध में दुष्टों को जीत, राजलक्ष्मी प्राप्त करके सुखी रहें ॥ ४। ८ ॥

भा० पदार्थः—देवस्य=परमेश्वरस्य । सख्यम्=परस्परं मित्रताम् । राये=राजश्री-प्राप्तये ।

भाष्यसार—**मनुष्य परमेश्वर के आश्रय से क्या-क्या करें**—ईश्वर सबका नेता और जगत् के सब पदार्थों का प्रकाशक है । मनुष्य उसके साथ मित्रता करें, उसकी उपासना करें । और उसके आश्रय से आपस में सब मनुष्यों के साथ मित्रता रखें, युद्ध में दुष्टों पर विजय, राजश्री तथा नाना प्रकार के धन की प्राप्ति से पुष्ट होकर सुखी रहें ।। ४ । ८ ।।

अङ्गिरसः । **विद्वान्**=स्वष्टम् ॥ आर्षी पंक्तिः । पञ्चमः ॥

मनुष्यैः कथं शिल्पसिद्धिः **कर्त्तव्येत्युपदिश्यते** ॥

मनुष्यों को शिल्पविद्या की सिद्धि कैसे करनी चाहिये, यह उपदेश किया है ॥

ऋक्सामयोः शिल्पे स्थस्ते वामारभे ते मा पातमास्य यज्ञस्योदृचः ।
शर्म्मासि शर्म्म मे यच्छ नमस्ते ऽअस्तु मा मा हिꣳसीः ॥ ९ ॥

पदार्थः—(**ऋक्सामयोः**) ऋक् च साम च तयोर्वेदयोः अध्ययनानन्तरम् (**शिल्पे**) मानस-प्रसिद्धक्रियया सिद्धे (**स्थः**) भवतः (**ते**) द्वे (**वाम्**) ये (**आ**) समन्तात् (**रभे**) आरम्भं कुर्वे (**ते**) द्वे (**मा**) माम् (**पातम**) रक्षतः । **अत्र व्यत्ययः** (**आ**) अभितः **अस्य** वक्ष्यमाणस्य (**यज्ञस्य**) शिल्पविद्यासिद्धस्य यज्ञस्य (**उदृचः**) उत्कृष्टा अधीताः=प्रत्यक्षीकृता ऋचो यस्मिंस्तस्य (**शर्म्म**) सुखम् (**असि**) अस्ति (**शर्म्म**) सुखम् (**मे**) मह्यम (**यच्छ**) ददाति । **अत्र व्यत्ययो लडर्थे लोट् च** (**नमः**) अन्नम । **नम इत्यन्ननामसु पठितम् ॥ निघं० २ । ७ ॥** (**ते**) तुभ्यम् (**अस्तु**) भवतु (**मा**) निषेधार्थे (**मा**) माम् (**हिꣳसीः**) हिन्धि । **अत्र लोडर्थे लुङ् ॥ अयं मंत्रः श० ३ । २ । १ । ५—८ व्याख्यातः ॥ ६ ॥**

प्रमाणार्थ—(**पातम्**) रक्षतः यहां व्यत्यय है । (**यच्छ**) ददाति यहां पुरुष-व्यत्यय और लट् अर्थ में लोट् लकार है । (**नमः**) यह शब्द निघं० (२ । ७) में अन्न नामों में पढ़ा है । (**हिꣳसीः**) हिन्धि । यहां लोट् अर्थ में लुङ् लकार है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । २ । १५—८) में की गई है ॥ ४ । ६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् ! अह-**मृक्सामयोः ऋक्** च साम च तयोर्वेदयोः **अध्ययनानान्तरमुदृचः** उत्कृष्टा अधीताः=प्रत्यक्षीकृता ऋचो यस्मिंस्तस्य, **अस्य** वक्ष्यमाणस्य **यज्ञस्य** शिल्प-विद्यासिद्धस्य यज्ञस्य **सम्बन्धिनी वां=ये शिल्पे** मानसप्रसिद्धक्रियया सिद्धे [**स्थः**] भवतः [**ते**] द्वे **आरभे** समन्तादारम्भं कुर्वे ।

ये [ते] द्वे मा=मां पातं=रक्षतो, ये यस्य तव सकाशान्मया गृह्यते, ते= तुभ्यं मम नमः अन्नम **अस्तु** भवतु । **त्वं मा=मां शिल्पविद्यां** शिक्षस्व, **मा**

भाषार्थ—हे विद्वन् ! मैं (**ऋक्सामयोः**) ऋग्वेद और सामवेद के अध्ययन के पश्चात् (**उदृचः**) उत्तमता से जिसमें ऋचायें प्रत्यक्ष की गई हैं उस (**अस्य**) इस उपदेश किये जाने वाले (**यज्ञस्य**) शिल्पविद्या से सिद्ध किये यज्ञ से सम्बन्धित (**वां**) जो (**शिल्पे**) मन और प्रसिद्ध प्रयोग से सिद्ध होने वाली विद्यायें [**स्थः**] हैं [**ते**] उन दोनों को (**आरभे**) सब ओर से आरम्भ करता हूँ ।

जो [**ते**] वे दो (**मा**) मुझे (**पातम्**) रक्षा करती हैं, जो तेरे पास से मैं उन्हें ग्रहण करता हूँ इसलिए (**ते**) तुझे मेरा (**नमः**) उत्तम भोजन आदि

हिंसीः=विचालनं वा मा कुर्याः न हिन्धि।

से सत्कार (अस्तु) स्वीकार हो (मा) मुझे शिल्प-विद्या की शिक्षा दो (मा हिंसीः) मुझे दुःख न दो अथवा टालो मत।

यच्छर्म=सुखम् [असि]=अस्ति तच्छर्म सुखं मे=मह्यं [आ] यच्छ=देहि अभितो ददाति ॥४।६॥

और जो (शर्म) सुख [असि] है उस (शर्म) सुख को (मे) मुझे ([आ] यच्छ) सब ओर से प्रदान करो ॥४।६॥

[हे विद्वन्! अहमृक्सामयोरध्ययनानन्तरमुद्दचोऽस्य यज्ञस्य सम्बन्धिनी वां=ये शिल्पे [स्थः] [ते] आरभे··· त्वं मा=मां शिल्पविद्यां शिक्षस्व···यच्छर्म=सुखम् [असि] अस्ति मे=मह्यं [आ] यच्छ=देहि]

भावार्थः—मनुष्यैर्विदुषां सकाशाद् वेदानधीत्य शिल्पविद्यां प्राप्यं हस्तक्रियाः साक्षात्कृत्य विमानयानादीनि कार्याणि निष्पाद्य सुखोन्नतिः कार्या ॥४।६॥

भावार्थ—सब मनुष्य विद्वानों से वेदों को पढ़ कर, शिल्प विद्या को प्राप्त कर, हस्तक्रियाओं का साक्षात्कार करके, विमान आदि कार्यों को सिद्ध करके सुख की उन्नति करें ॥४।६॥

भाष्यसार—**शिल्प की सिद्धि कैसे करें**—सब मनुष्य विद्वानों से ऋग्वेद और सामवेद का अध्ययन करके जिसमें ऋचाओं का हस्तक्रियाओं से प्रत्यक्ष किया जाता है उस शिल्प विद्या से सिद्ध होने वाले यज्ञ से सम्बन्धित क्रियाओं का आरम्भ करें क्योंकि ये शिल्प-क्रियायें मनुष्यों की रक्षा करने वाली हैं। जिन विद्वानों से शिल्प विद्या प्राप्त करें उनका उतम अन्न आदि पदार्थों से सत्कार करें और उनसे प्रार्थना करें कि हे विद्वन्! आप हमें शिल्प विद्या की शिक्षा दीजिये, हमें शिल्प विद्या से विचलित न कीजिये। इस प्रकार विद्वानों से शिल्प विद्या को सीख कर विमान आदि यानों को सिद्ध करके सुख की वृद्धि करें ॥४।६॥

अंगिरस। **यज्ञः**=स्पष्टम्। कृधीत्यन्तस्य निचृदार्षी जगती। निषादः।

उच्छ्रयस्वेत्यस्य साम्नी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

स शिल्पविद्यो यज्ञः कीदृशोस्तीत्युपदिश्यते॥

वह शिल्पविद्या यज्ञ कैसा है॥

ऊर्गस्याङ्गिरस्यूर्णम्रदा ऽ उर्ज्जं मयि धेहि। सोमस्य नीविरसि विष्णोः शर्म्मासि शर्म यजमानस्येन्द्रस्य योनिरसि सुसस्याः कृषीस्कृधि। उच्छ्रयस्व वनस्पतऽऊर्ध्वो मा पाह्यꣳहस ऽ आस्य यज्ञस्योदृचः॥ १०॥

पदार्थः—(ऊर्क्) पराक्रमान्नादिप्रदा शिल्पविद्या (असि) अस्ति। अत्र सर्वत्र व्यत्ययः (आङ्गिरस) याङ्गिरीभिरग्न्यादिभिर्निर्वृत्ता=सिद्धा सा। ऊवटमहीधराभ्यामिदं निघातत्वात् संबोधनान्तं पदमबुद्ध्वा व्याख्यातमत एतयोः स्वरज्ञानमपि नास्त्यर्थज्ञानस्य तु का कथा? (ऊर्णम्रदाः) ऊर्णमाच्छादनं मृद्नन्ति मृदन्ति संश्लेषन्ति यया सा (ऊर्जं) पराक्रममन्नादिकं वा (मयि) शिल्पिनि (धेहि) दधाति (सोमस्य) उत्पन्नस्य पदार्थसमूहस्य (नीविः) या नितरां व्ययति=संवृणोति। नौ व्योर्यलोपः॥ उ० ४। १४१॥ इत्यौणादिकसूत्रेण व्येञ्संवरण इत्यस्मादिण् प्रत्ययः। स च डित्। डित्वादाकारलोपः। यलोपस्तु सूत्रेणैव पूर्वपदस्य च दीर्घत्वम् (असि) अस्ति (विष्णोः) शिल्पविद्याव्यापकस्य

विदुषः सकाशात् प्राप्यम् (**शर्म**) सुखम् (**असि**) अस्ति (**शर्म**) सुखम् (**यजमानस्य**) शिल्पक्रियाविदः (**इन्द्रस्य**) परमैश्वर्य्येण युक्तस्य योजकस्य वा (**योनिः**) निमित्तम् (**असि**) भवति (**सुसस्याः**) शोभनानि सस्यानि= धान्यादीनि यास्यास्ताः (कृषीः))कर्षन्ति=विलिखन्ति याभिः क्रियाभिस्ताः । **अत्र कः करत् करति० ॥ अ० ८ । ३ । ५० ॥ इति विसर्जनीयस्य सत्वम्** (**कृधि**) कुरु, कारय वा (**उत्**) उत्कृष्टार्थे (**श्रयस्व**) सेवस्व, सेवते वा (**वनस्पते**) वनानां=विद्याप्रकाशकानां पतिः=पालयिता तत्संबुद्धौ वृक्षावयवो वा (**ऊर्ध्वः**) ऊर्ध्वं स्थित ऊर्ध्वं स्थापितो वा (**मा**) माम् (**पाहि**) रक्ष, रक्षति वा (**अंहसः**) पापात्तत्फलाद् दुःखाद्वा (**आ**) समन्तात् (**अस्य**) प्रत्यक्ष-मनुष्ठीयमानस्य (**यज्ञस्य**) शिल्पविद्यासाध्यस्य (**उद्दचः**) उक्तार्थस्य ॥ **अयं मंत्रः श० ३ । २ । १ । १४–३५ व्याख्यातः ॥ १० ॥**

प्रमाणार्थ—(**असि**) अस्ति । इस मन्त्र में 'असि' पद पर सर्वत्र व्यत्यय है । (**नीविः**) यह शब्द 'नौ व्योर्यलोपः' (**उणा० ४ । १४१**) सूत्र से संवरण-अर्थ वाली 'व्येञ्' धातु से 'इण्' प्रत्यय करने और उसके 'डित्' होने से आकार का लोप होकर सिद्ध होता है। यहाँ धातु का यलोप इसी सूत्र से है तथा पूर्वपद को दीर्घ है। (**कृषीस्कृधि**) यहाँ 'कः करत् करतिः' (**अ० ८ । ३ । ५०**) सूत्र से विसर्ग को सकार आदेश है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । २ । १ । १४—३५) में की गई है ॥ ४ । १० ॥

सपदार्थान्वयः—हे **वनस्पते** ! वनानां=विद्याप्रकाशकानां पतिः=पालयिता तत्सम्बुद्धौ, विद्वंस्त्वं **याऽऽङ्गिरसि** याऽऽङ्गिरीभिरग्न्यादिभिर्निर्वृत्ता=सिद्धा सा, **ऊर्णम्रदाः** ऊर्णम्= आच्छादानं मृद्नन्ति=सन्त्वेषन्ति यया सा, **ऊर्क्** = **शिल्पविद्या** पराक्रमान्नदिप्रदा शिल्पविद्या [**असि**]= **अस्ति, या ऊर्जं** पराक्रममन्नादिकं वा [**मयि**] शिल्पिनि [**धेहि**]=**दधाति, या सोमस्य** उत्पन्नस्य पदार्थसमूहस्य **नीविः** या नितरां व्ययति=संवृणोति [**असि**]=**अस्ति** ।

या विष्णोः शिल्पविद्याव्यापकस्य विदुषः सकाशात् प्राप्यं **यजमानस्य** शिल्पक्रियाविदः **इन्द्रस्य** परमैश्वर्येण युक्तस्य योजकस्य वा [**शर्म**] सुखं **योनिः** निमित्तं [**असि**]=**अस्ति** भवति ।

या **अस्य** प्रत्यक्षमनुष्ठीयमानस्य **उद्दचः** उक्तार्थस्य [उत्कृष्टा अधीताः प्रत्यक्षीकृता ऋचो यस्मिंस्तस्य] **विष्णोः** शिल्पविद्याव्यापकस्य विदुषः सकाशात् प्राप्यं **यज्ञस्य** शिल्पविद्यासाध्यस्य **शर्म**= **सुखकारिका** (सुखम्) [**असि**]=**अस्ति तामाधेहि** समन्ताद् दधाति ।

सुसस्याः शोभनानि सस्यानि=धान्यादीनि

भाषार्थ—हे (**वनस्पते**) विद्या को प्रकाशित करने वालों के पालक विद्वान् ! तुम जो (**आङ्गिरसि**) अग्नि आदि पदार्थों से सिद्ध (**ऊर्णम्रदाः**) ऊर्ण अर्थात् आच्छादन को हटाने वाली (**ऊर्क्**) पराक्रम और अन्न आदि प्रदान करने वाली **शिल्पविद्या** [**असि**] है और जो (**ऊर्जम्**) **पराक्रम और** अन्नादि को [**मयि**] मुझ शिल्पकार में [**धेहि**] धारण करती है तथा (**सोमस्य**) उत्पन्न हुए **पदार्थों** को (**नीविः**) ढकने वाली (**असि**) है। और

जो (**विष्णोः**) शिल्पविद्या में व्यापक **विद्वानों** से प्राप्त करने योग्य है, (**यजमानस्य**) शिल्पक्रिया जानने वाले (**इन्द्रस्य**) परमैश्वर्य से युक्त मनुष्यों को [**शर्म**] सुख उत्पन्न करने वाली (**योनि**) कारण [**असि**] है। और—

जो (**अस्य**) इस प्रत्यक्ष अनुष्ठान किये जाने वाले (**उद्दचः**) ऋचाओं को उत्तमता से प्रत्यक्ष करने वाले (**विष्णोः**) शिल्पविद्या में व्यापक विद्वान से प्राप्त करने योग्य है तथा (**यज्ञस्य**) शिल्प विद्या से साध्य यज्ञ के लिये (**शर्म**) सुखकारक [**असि**] है उस विद्या को (**आधेहि**) सब ओर से धारण करते हो ।

(**सुसस्याः**) उत्तम-उत्तम धान्य आदि को उत्पन्न

याभ्यस्ताः, **कृषीः** कर्षन्ति=विलिखन्ति याभिः क्रियाभिस्ताः **कृधि**=कुरु कारय वा, [**ऊर्ध्वः**] **ऊर्ध्वम्** ऊर्ध्वं स्थित ऊर्ध्वं स्थापितो वा **मामुच्छ्रयस्व** उत्कृष्टं सेवस्व सेवते वा। **सुसस्याः** शोभनानि सस्यानि=धान्यादीनि याभ्यस्ताः **कृषीः** कर्षन्ति=विलिखन्ति याभिः क्रियाभिस्ताः **च अहंसः** पापात्तत्फलाद् दुःखाद्वा [**मा**] **मां पाहि** रक्ष रक्षतिवा। **विमानादिषु यानेषु यो** [वनस्पते] **वनस्पतिः** वृक्षावयवम् **ऊर्ध्वं स्थाप्यते तमभ्युच्छ्रयस्व** सेवस्व सेवते वा ॥ ४। १० ॥

करने वाली तथा (**कृषीः**) भूमि का विलेखन करने वाली क्रियाओं को (**कृधि**) कर और करवा। (**ऊर्ध्वः**) ऊपर बैठे वा बैठाये हुए आप (**उच्छ्रयस्व**) मेरा सेवन अच्छी प्रकार करो। (**सुसस्याः**) उत्तम उत्तम धान्य आदि उत्पन्न करने वाली तथा (**कृषीः**) भूमि का विलेखन करने वाली क्रियाओं से (**अंहसः**) पाप और उसके फल दुःख से ([**मा**] **पाहि**) मेरी रक्षा करो। विमान आदि यानों में जो [वनस्पते] वृक्ष की शाखा ऊपर रखी जाती है उसका भी (**उच्छ्रयस्व**) उत्तम रीति से सेवन करो॥ ४। १० ॥

[हे वनस्पते विद्वाँस्त्वं...ऊर्क=शिल्पविद्या [असि] अस्ति...तमाधेहि, सुसस्याः कृषीः कृधि=कुरु कारय वा]

भावार्थः--मनुष्यैर्विद्वद्भ्यः शिल्पविद्यां साक्षात्कृत्यैतां प्रचार्य्य सर्वे मनुष्याः समृद्धाः कार्य्याः ॥ ४। १० ॥

भावार्थ--मनुष्य विद्वानों से शिल्पविद्या का साक्षात्कार करके और इसका प्रचार कर सब मनुष्यों को समृद्ध बनावें॥ ४। १० ॥

भाष्यसार--**शिल्पविद्या रूपी यज्ञ कैसा है**--अग्नि आदि से सिद्ध होने वाला, अज्ञान के आच्छादन को हटाने वाला, पराक्रम और अन्न आदि को देने वाला, उत्पन्न हुये सब पदार्थों को नियम में बांधने वाला है। विद्या-प्रकाशकों के स्वामी विद्वान् लोग शिल्पी जनों में इस शिल्प-यज्ञ का आधान करते हैं। यह शिल्पविद्या इसके पारंगत विद्वानों से प्राप्य है। स्वयं परमैश्वर्य से युक्त तथा अन्यों को परमैश्वर्य से युक्त करने वाले शिल्प क्रिया के ज्ञाता विद्वानों के लिए यह सुख का साधन है।

इस शिल्प विद्या से उत्तम धान्य आदि देने वाले कृषि आदि कर्मों को करें क्योंकि कृषि आदि कर्म पाप और उसके दुःख रूप फल से रक्षा करते हैं। शिल्पविद्या के द्वारा विमान आदि में स्थापित की को हुई वनस्पति (**लकड़ी से बने यन्त्र**) का सेवन करें, उनसे उपयोग लेवें॥ ४। १० ॥

अंगिरसः। **अग्निः**=**ब्रह्माद्यभिधायकः**। पूर्वस्य स्वराड् ब्राह्म्यनुष्टुप्। गान्धारः। ये देवा इत्युत्तरस्यार्ष्युष्णिक् ऋषभः।

अथानेकार्थमग्निं विज्ञाय किं किमुपकारो ग्राह्य इत्युपदिश्यते ॥

अब अनेक अर्थ वाले अग्नि को जान कर उससे क्या-क्या उपकार लेना चाहिये, इस विषय का उपदेश किया है॥

व्रतं कृणुताग्निर्ब्रह्माग्निर्यज्ञो वनस्पतिर्यज्ञियः।
दैवीं धियं मनामहे सुमृडीकामभिष्टये वर्च्चोधां यज्ञवाहसꣳ सुतीर्था नो ऽ असद्वशे।
ये देवा मनोजाता मनोयुजो दक्षक्रतवस्ते नोऽवन्तु ते नः पान्तु तेभ्यः स्वाहा ॥ ११ ॥

पदार्थः--(**व्रतम्**) नियमपूर्वकं धर्म्यानुचरणम् (**कृणुत**) स्वीकुरुत (**अग्निः**) वाचकः (**ब्रह्म**) सच्चिदानन्दलक्षणं चेतनं वाच्यम् (**अग्निः**) अभिधायकः (**यज्ञः**) अभिधेयः (**वनस्पतिः**) वनानां

पालयिताग्निसंज्ञकः (**यज्ञियः**) यो यज्ञमर्हति (**दैवीम्**) दिव्यगुणसंपन्नाम् (**धियम्**) प्रज्ञां, क्रियां वा (**मनामहे**) विजानीयाम । याचेमहि । **मनामह इति याच्ञाकर्मसु पठितम्** ॥ निघं० ३ । १९ ॥ (**सुमृडीकाम्**) सुष्ठु मृडन्ति=सुखयन्ति यया ताम् । **मृडः कीकच्कंकणौ ॥ उ० ४ । २४ ॥ अनेन मृडीकेति सिद्धम्** (**अभिष्टये**) इष्टसिद्धये । **अत्र एमन्नादिषु छन्दसि पररूपं वाच्यम् ॥ अ० ६ । १ । ९४ ॥ अनेन वार्तिकेन पररूपादस्य सिद्धिः** (**वर्चोधाम**) या वर्चो विद्यां दीप्तिं दधाति ताम् (**यज्ञवाहसम्**) या यज्ञं=परमेश्वरोपासनं शिल्पविद्यासिद्धं वा वहति=प्रापयति ताम् (**सुतीर्था**) शोभनानि तीर्थानि=वेदाध्ययनधर्माचरणादीन्याचरितानि यया सा (**नः**) अस्मदर्थम् (**असत्**) **भवेत् । लेट् प्रयोगोऽयम्** (**वशे**) प्रकाशन्ते यस्मिंस्तस्मिन् । **अत्र बाहुलकादौणादिकोऽन् प्रत्ययः** (**ये**) वक्ष्यमाणाः (**देवाः**) विद्वांसः (**मनोजाताः**) ये मनसा विज्ञानेन जायन्ते ते (**मनोयुजः**) ये मनसा=सदसद्विज्ञानेन युञ्जन्ति योजयन्ति वा ते (**दक्षक्रतवः**) दक्षाः=शरीरात्मबलानि क्रतवः=प्रज्ञाः कर्माणि वा येषां ते । **दक्ष इति बलनामसु पठितम् ॥ निघं० २ । ९ ॥** (ते) उक्ताः (नः) अस्मान् (**अवन्तु**) विद्यासत्क्रियासुशिक्षादिषु प्रवेशयन्तु (**ते**) आप्ताः (**नः**) अस्मान् (**पान्तु**) सततं रक्षन्तु (**तेभ्यः**) पूर्वोक्तेभ्यः (**स्वाहा**) येभ्यो विद्यावाक् प्राप्ता भवति ॥ **अयं मंत्रः श० ३ । २ । २ । ७—१८ व्याख्यातः ॥ ११ ॥**

प्रमाणार्थ—(**मनामहे**) यह पद निघं० (३ । १९) में मांगने अर्थ वाली क्रियाओं में पढ़ा है। (**सुमृडीकाम्**) 'मृडीक' शब्द 'मृडः कीकच्कङ्कणौ' (**उणा० ४ । २४**) सूत्र से सिद्ध होता है। (**अभिष्टये**) यहाँ 'एमन्नादिषु छन्दसि पररूपं वाच्यम्' (**अ० ६ । १ । ९४**) वार्तिक से पररूप होने से उक्त पद की सिद्धि होती है। (**असत्**) यह लेट् लकार का प्रयोग है। (**वशे**) यहां बहुल करके औणादिक 'अन्' प्रत्यय है। (**दक्षक्रतवः**) 'दक्ष' शब्द निघं० (२ । ९) में बलनामों में पढ़ा है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । २ । २ । ७—१८) में की गई है ॥ ४ । ११ ॥

सपदार्थान्वयः—**वयं यद् ब्रह्म** सच्चिदानन्दलक्षणं चेतनं वाच्यम् **अग्निनाम** [अग्निः=वाचकः] **असत्** भवेत्, **यो यज्ञः** अभिधेयः **अग्नि संज्ञः** अभिधायकः **असत्** भवेत्, **यो [यज्ञियः]** यो यज्ञमर्हति, **वनस्पतिः** वनानां पालयिताग्निसंज्ञकः, **यश्च यज्ञः** अभिधेयः **अग्निनामकस्तमुपास्य, उपकृत्याभिष्टये** इष्टसिद्धये, **या सुतीर्था** शोभनानि तीर्थानि=वेदाध्ययनधर्माचरणादीन्याचरितानि यया सा **अस्ति, तां सुमृडीकां** सुष्ठु मृडन्ति=सुखयन्ति यया तां **वर्चोधां** या वर्चः=विद्यादीप्तिं दधाति तां **[यज्ञवा हसम्]** या यज्ञम्=परमेश्वरोपासनं शिल्पविद्यासिद्धं वा वहति=प्रापयति **तां दैवीं** दिव्य गुणसम्पन्नां **धियं** प्रज्ञां क्रियां वा **मनामहे=विजानीयाम** याचेमहि।

ये वक्ष्यमाणाः **दक्षक्रतवः** दक्षाः=शरीरात्मबलानि क्रतवः=प्रज्ञाः कर्माणि वा येषां **ते मनोजाताः** ये मनसा=विज्ञानेन जायन्ते ते **मनोयुजः** ये मनसा=सदसद्विज्ञानेन युञ्जन्ति योजयन्ति वाते, **देवाः**=

भावार्थ—हम लोग जो (**ब्रह्म**) सच्चिदानन्द लक्षण युक्त चेतन ब्रह्म (**अग्निः**) अग्नि नाम वाला (**यज्ञः**) यज्ञ जिसका वाच्य और (**अग्निः**) अग्नि जिसका वाचक (**असत्**) हो, और जो [**यज्ञियः**] यज्ञ के योग्य (**वनस्पतिः**) वनों का पालक (**यज्ञः**) यज्ञ वाच्य (**अग्निः**) अग्नि है उसकी उपासना करके (**अभिष्टये**) इष्ट सिद्धि के लिए जो (**सुतीर्था**) उत्तम तीर्थ अर्थात् वेद का पढ़ना धर्माचरण आदि करने का साधन है उस (**सुमृडीकाम्**) श्रेष्ठ सुख देने वाली (**वर्चोधाम्**) विद्या रूपी प्रकाश को धारण करने वाली [**यज्ञवाहसम्**] यज्ञ अर्थात् ईश्वरोपासना एवं शिल्पविद्या प्राप्त कराने वाली (**दैवीम्**) दिव्यगुणों से युक्त (**धियम्**) बुद्धि एवं कर्म को (**मनामहे**) उस ब्रह्म से माँगते हैं।

और (**ये**) जो (**दक्षक्रतवः**) शरीर और आत्मा के बल से युक्त बुद्धि और उत्तम कर्मों से भूषित (**मनोजाताः**) विज्ञान से बने (**मनोयुजः**) सत्य असत्य को जान कर अपने मन को लगाने वाले

विद्वांसो वशे प्रकाशन्ते यस्मिंस्तस्मिन् **वर्तमानाः सन्ति, तेभ्यः** पूर्वोक्तेभ्यः **स्वाहा** येभ्यो विधावाक् (प्राप्ता भवति) **प्राप्ता भवति** ।

(**देवाः**) विद्वान् लोग हैं, जो (**वशे**) प्रकाश में रहते हैं जिनसे हमें (**स्वाहा**) विद्या से विभूषित वाणी प्राप्त होती है ।

ये वक्ष्यमाणाः **नः=अस्मदर्थं धियं** प्रज्ञां क्रियां वा **प्रकाशयन्ति तेभ्यः** पूर्वोक्तेभ्यः **पूर्वोक्तामेतां धियं** प्रज्ञां क्रियां वा **मनामहे=याचामहे** विजानीयाम याचेमहि **ते** उक्ताः **नः=अस्मान् अवन्तु** विद्या-सत्क्रियासुशिक्षादिषु प्रवेशयन्तु ।

और जो (**नः**) हमारे लिए (**धियम्**) बुद्धि और उत्तम कर्मों को प्रकाशित करते हैं (**तेभ्यः**) उन पूर्वोक्त विद्वानों से पूर्वोक्त इस (**धियम्**) बुद्धि वा कर्म को (**मनामहे**) हम जानते वा माँगते हैं (**ते**) वे विद्वान् (**नः**) हमें (**अवन्तु**) विद्या, उत्तम कर्म और उत्तम शिक्षा आदि में प्रविष्ट करें । और—

ते आप्ताः **नः=अस्मान् सततं पान्तु** सततं रक्षन्तु [**रक्षिताश्च वयं**] [**व्रतं**] नियमपूर्वकं धर्म्यानुचरणं [**कृणुत**] स्वीकुर्मः ॥ ४ । ११ ॥

(**ते**) वे आप्त जन (**नः**) हमारी सदा (**पान्तु**) रक्षा करें और रक्षित हम लोग (**व्रतम्**) नियम-पूर्वक धर्माचरण को (**कृणुत**) स्वीकार करें ॥ ४ । ११ ॥

[**वयं यद्ब्रह्माग्निनामासद्...... तमुपास्य=उपकृत्याभिष्टयेधियं मनामहे=विजानीयाम**]

भावार्थः—मनुष्यैर्यस्याग्निसंज्ञा तद् ब्रह्म विज्ञायोपास्य सुप्रज्ञा प्राप्तव्याः ।

भावार्थ—मनुष्य जिसकी अग्नि संज्ञा है उस ब्रह्म को जानकर और उसकी उपासना करके उत्तम बुद्धि को प्राप्त करें ।

[**ये देवाः=विद्वांसो वशे वर्तमानाः सन्ति, तेभ्यः स्वाहा प्राप्ता भवति**]

विद्वांसः, तया शिल्पयज्ञान् संसाध्नुवन्ति । तेषां संगमेन विद्यां प्राप्य स्वतन्त्रे व्यवहारे सदा स्थातव्यम् ।

विद्वान् लोग उस बुद्धि से शिल्पयज्ञों को सिद्ध करते हैं । उन विद्वानों के संग से विद्या को प्राप्त करके स्वतन्त्र व्यवहार में सदा स्थिर रहें ।

[**ते नः=अस्मान् सततं पान्तु**]

न हि प्रज्ञया विना कश्चित् सुखमेधते, तस्मात् सर्वैर्विद्वद्भिः सर्वेभ्यो मनुष्येभ्यो ब्रह्मविद्यां पदार्थविद्यां, बुद्धिं च दत्त्वैते सततं रक्ष्याः ।

बुद्धि के बिना कोई भी मनुष्य सुखपूर्वक आगे नहीं बढ़ सकता, अतः सब विद्वान् सब मनुष्यों को ब्रह्म विद्या, पदार्थ विद्या और बुद्धि प्रदान करके इनकी सदा रक्षा करें ।

[**रक्षिताश्च वयं व्रतं कृणुत**]

रक्षिताश्चैते परमेश्वरस्य धार्मिकाणां विदुषां च प्रियाणि कर्माणि नित्यमाचरेयुः ॥ ४ । ११ ॥

और—ये रक्षित होकर परमेश्वर और धार्मिक विद्वानों को प्यारे लगने वाले कर्मों को नित्य किया करें ॥ ४ । ११ ॥

भा० पदार्थः—व्रतम्=परमेश्वरस्य धार्मिकाणां विदुषां च प्रियं कर्म ॥

भाष्यसार—१. **अग्नि से क्या-क्या उपकार ग्रहण करें**—सच्चिदानन्द स्वरूप चेतन ब्रह्म का नाम अग्नि है, यज्ञ का नाम अग्नि है, वनों का रक्षक अग्नि है उस अग्नि=ब्रह्म की उपासना करके तथा भौतिक अग्नि से उपकार ग्रहण करके दिव्य गुणों वाली बुद्धि और दिव्य कर्मों को प्राप्त करें ।

शारीरिक और आत्मिक बल से सम्पन्न बुद्धिमान्, कर्मशील, वैज्ञानिक, सत्य-असत्य ज्ञान के विवेकी विद्वान् लोगों से शिल्प-विद्या को प्राप्त कर उनके समान स्वतन्त्र व्यवहार में स्थिर रहें तथा उन विद्वानों से बुद्धि और शिल्पक्रिया की याचना करें अर्थात् उनसे ज्ञान प्राप्त करें और शिल्पक्रियाओं को सीखें। विद्वान् लोग भी उन्हें विद्या, सत्क्रिया और सुशिक्षा आदि प्रदान करें, उनकी रक्षा करें। विद्वानों से रक्षा को प्राप्त होकर मनुष्य परमेश्वर और धार्मिक विद्वानों को प्रिय लगने वाले कर्मों का नित्य आचरण किया करें॥

२. **उत्तम प्रज्ञा (बुद्धि)**—प्रज्ञा एक तीर्थ है जिसके द्वारा तीर्थ रूप वेदाध्ययन, धर्माचरण आदि शुभ कर्मों का अनुष्ठान किया जाता है, विद्या का प्रकाश इसी प्रज्ञा से धारण किया जाता है, यज्ञ अर्थात् परमेश्वर की उपासना और शिल्प विद्या को प्राप्त कराने वाली है, दिव्य गुणों से सम्पन्न करने वाली है॥ ४। ११॥

अंगिरसः। **आपः=जलानि**॥ भुरिग् ब्राह्म्यनुष्टुप्। गान्धारः॥

एतदनुष्ठायाग्रे मनुष्यैः किं किं कर्त्तव्यमित्युपदिश्यते॥

इसका अनुष्ठान करके आगे मनुष्यों को क्या-क्या करना चाहिये, इस विषय का उपदेश किया है॥

श्वात्राः पीता भवत यूयमापो ऽ अस्माकमन्तरुदरे सुशेवाः।
ता ऽ अस्मभ्यमयक्ष्मा ऽ अनमीवा ऽ अनागसः स्वदन्तु देवीरमृता ऽ ऋतावृधः॥ १२॥

पदार्थः—(**श्वात्राः**) श्वात्रं प्रशस्तं विज्ञानं धनं वा विद्यते यासां ताः। **अत्र अर्श आदिभ्योऽच्॥ अ० ५। २। १२७॥ इति प्रशंसार्थेऽच्। श्वात्रमिति पदनामसु पठितम्॥ निघं० ४। २॥ धननामसु च॥ निघं० २। १०॥** (**पीताः**) कृतपानाः (**भवत**) नित्यं संपद्येरन् (**यूयम्**) एताः (**आपः**) प्राणा जलादयो वा (**अस्माकम्**) मनुष्याणाम् (**अन्तः**) मध्ये (**उदरे**) शरीराभ्यन्तरे (**सुशेवाः**) सुष्ठु शेवं सुखं याभ्यस्ताः। **शेवमिति सुखनामसु पठितम्॥ निघं० ३। ६॥** [ताः] (**अस्मभ्यम्**) मनुष्यादिभ्यः (**अयक्ष्माः**) अविद्यमानो यक्ष्मा क्षयरोगो याभ्यस्ताः (**अनमीवाः**) अविद्यमानोऽमीवा ज्वरादिरोगसमूहो याभ्यस्ताः (**अनागसः**) न विद्यतेऽगः पापं दोषो यासु ता निर्दोषाः (**स्वदन्तु**) सुष्ठु सेवन्ताम् (**देवीः**) दिव्यगुणसंपन्नाः। **अत्र वा च्छन्दसीति जसः पूर्वसवर्णत्वम्** (**अमृताः**) नाशरहिता अमृतरसाः (**ऋतावृधः**) या ऋतं सत्यं वर्धयन्ति ताः॥ **अयं मन्त्रः शत० ३। २। २। १९ व्याख्यातः॥ १२॥**

प्रमाणार्थ—(**श्वात्राः**) यहां 'श्वात्र' शब्द से 'अर्श आदिभ्योऽच्' (**अ० ५। २। १२७**) सूत्र से प्रशंसा अर्थ में 'अच्' प्रत्यय है। 'श्वात्र' शब्द निघं० (४। २) में पद नामों में और निघं० (२। १०) में धन नामों में पढ़ा है। (**सुशेवाः**) 'शेव' शब्द निघं० (३। ६) में सुख-नामों पढ़ा है। (**देवीः**) यहां 'वाच्छन्दसि' [**अ० ६। १। १०६**] सूत्र से 'जस' प्रत्यय को पूर्वसवर्ण दीर्घ है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३। २। २। १९) में की गई है॥ ४। १२॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्या! या **अस्माभिः पीताः** कृतपानाः **अस्माकं** मनुष्याणाम् **अन्तः** मध्ये उदरे शरीराभ्यन्तरे **स्थिता अस्मभ्यं**

भाषार्थ—हे मनुष्यो! जिनका हमने (**पीताः**) पान किया है और जो (**अस्माकम्**) हम मनुष्यों के (**अन्तः**) मध्य (**उदरे**) शरीर में स्थित

मनुष्यादिभ्यः **श्वात्राः** श्वात्रं=प्रशस्तं विज्ञानं धनं वा विद्यते यासां ताः **सुशेवाः** सुष्ठु शेवं=सुखं याभ्यस्ताः **अयक्ष्माः** अविद्यमानो यक्ष्मा=क्षयरोगो याभ्यस्ताः **अनमीवाः** अविद्यमानोऽमीवा=ज्वरादि-रोगसमूहो याभ्यस्ताः **अनागसः** न विद्यतेऽगः=पापं दोषो यासु ता निर्दोषाः **ऋतावृधः** या ऋतं=सत्यं वर्धयन्ति ताः **अमृताः** नाशरहिता अमृतरसाः **देवीः**= **देव्यः** दिव्यगुणसम्पन्नाः **आपः** प्राणा जलादयो वा **भवन्ति ता भवन्तः स्वदन्तु** सुष्ठु सेवन्ताम् ।

तदेतदनुष्ठाय यूयं सुखिनो भवत [यूयम्=एताः, भवत=नित्यं सम्पद्येरन्] ॥ ४ । १२ ॥

होकर (**अस्मभ्यम्**) हम मनुष्यों के लिये (**श्वात्रा**) उत्तम विज्ञान वा धन को प्राप्त कराने वाले (**सुशेवाः**) अत्यन्त सुख देने वाले (**अयक्ष्माः**) यक्ष्मा अर्थात् क्षयरोग को दूर करने वाले (**अनमीवाः**) ज्वरादि रोगों से पृथग्भूत (**अनागसः**) पाप एवं दोष रहित (**ऋतावृधः**) सत्य को बढ़ाने वाले (**अमृताः**) नाश रहित अमृत रस वाले (**देवीः**) दिव्यगुण युक्त (**आपः**) प्राण वा जल हैं (**ताः**) उन्हें आप लोग (**स्वदन्तु**) अच्छे प्रकार से सेवन करो ।

यह अनुष्ठान करके (**यूयम्**) तुम सदा सुखी (**भवत**) रहो [एवं (**यूयम्**) ये जल (**भवत**) नित्य सुखदायक सिद्ध हों] ॥ ४ । १२ ॥

[हे मनुष्या !···अनागसः, ऋगावृधः, अयक्ष्मा, अनमीवा आपो भवन्ति ता भवन्तः स्वदन्तु]

भावार्थः—मनुष्यैर्विद्वत्संगेन सुशिक्षया विद्यां प्राप्य सर्वथा सुपरीक्षिताः, शोधिताः, संस्कृताः शरीरात्मबलवर्धका रोगविच्छेदका जलादयः पदार्थाः सेवनीयाः ।

भावार्थ—मनुष्य, विद्वानों के संग से उत्तम शिक्षा के द्वारा विद्या को प्राप्त करके सब प्रकार से सुपरीक्षित, शुद्ध, पवित्र, शरीर और आत्मा का बल बढ़ाने वाले, रोगनाशक जल आदि पदार्थों का सेवन करें ।

[तात्पर्यमाह—]

न हि विद्याऽऽरोग्याभ्यां विना कश्चिदपि निरन्तरं कर्म कर्त्तुं शक्नोति, तस्मादेतत्सर्वदाऽनुष्ठेयम् ॥ ४ । १२ ॥

विद्या और आरोग्य के बिना कोई भी मनुष्य निरन्तर कर्म नहीं कर सकता, इसलिये जल आदि पदार्थों का सदा सेवन करें ॥ ४ । १२ ॥

भा० पदार्थः—अनागसः=सुपरीक्षिताः, शोधिताः, संस्कृताः । ऋतावृधः=शरीरात्मबल-वर्धकाः । अनमीवाः=रोगविच्छेदकाः ॥

भाष्यसार—**जल**—पान किया हुआ जल शरीर में स्थित होकर उत्तम विज्ञान, उत्तम सुख का हेतु होता है, क्षय-रोग का नाश करता है, ज्वर आदि रोगों को नष्ट करता है, दोषों को दूर हटाता है, शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाता है, मृत्यु से रक्षा करता है, दिव्य गुण प्रदान करता है। जल से विद्या और आरोग्य की प्राप्ति होती है । विद्या और आरोग्य के बिना कोई भी व्यक्ति निरन्तर कर्म नहीं कर सकता । अतः जल आदि पदार्थों का सदा यथारीति सेवन करें ॥ ४ । १२ ॥

आङ्गिरसः । **आपः**=**जलानि** ॥ भुरिगार्षी बृहती । मध्यमः ॥

पुनस्ता आपः कीदृशः सन्तीत्युपदिश्यते ॥

फिर वे जल कैसे हैं, इस विषय का उपदेश किया है ॥

इयं ते यज्ञियां तनूरपो मुञ्चामि न प्रजाम् ।

अंहोमुचः स्वाहाकृताः पृथिवीमाविंशत पृथिव्या सम्भव ॥ १३ ॥

पदार्थः—(इयम्) वक्ष्यमाणा (ते) तव (यज्ञिया) या यज्ञमर्हति सा (तनूः) शरीरम् (अपः) सुसंस्कृतानि जलानि (मुञ्चामि) प्रक्षिपामि (न) निषेधार्थे (प्रजाम्) या प्रजायते ताम् (अंहोमुचः) दुःखमोचयित्र्यः (स्वाहाकृताः) याः क्रियया सुसंस्कृताः क्रियन्ते ताः (पृथिवीम्) भूमिम् (आ) समन्तात् (विशत) प्रवेशं कुरुत (पृथिव्या) भूम्या सह (सम्) सम्यगर्थे (भव) संपद्यस्व ॥ अयं मंत्रः श० ३ । २ । २ । २०-२१ व्याख्यातः ॥ १३ ॥

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । २ । २ । २०—२१) में की गई है ॥ ४ । १३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् ! यथा **ते=तव येयं** वक्ष्यमाणा **यज्ञिया** या यज्ञमर्हति सा **तनूः** शरीरम् **अपः=प्राणान्** सुसंस्कृतानि जलानि **प्रजां=पालनीयां** या प्रजायते तां **न त्यजति, त्वं न मुञ्चसि** ।

यथैवाहमेता ईदृशं स्वशरीरं च न मुञ्चामि=न परित्यजामि न प्रक्षिपामि, **यथा यूयं पृथिव्या** भूम्या **सह सम्भवतांहोमुचः** दुःख मोचयित्र्यः **स्वाहाकृताः** याः क्रियया सुसंस्कृताः क्रियन्ते ताः **अपः** सुसंस्कृता-निजलानि **पृथिवीं** भूमिं **च आविशत=विज्ञानेन समन्तात् प्रवेशं कुरुत, अहं च सम्भवामि=आवि-शामि तथा त्वमपि सम्भव=आविश** सम्यक् सम्प-द्यस्व च ॥ ४ । १३ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् मनुष्य ! जैसे (ते) तेरा (इयम्) यह (यज्ञिया) यज्ञ के योग्य (तनूः) शरीर (अपः) शुद्ध जलों को एवं प्राणों को (प्रजाम्) उत्पन्न होने वाली पालन करने योग्य प्रजा को नहीं छोड़ता और तू भी नहीं छोड़ता ।

और जैसे मैं इन प्राण वा जलों को एवं ऐसे अपने शरीर को (न मुञ्चामि) नहीं छोड़ता, जैसे तुम (पृथिव्या) पृथिवी के साथ वैभव युक्त होते हो । और (अंहोमुचः) दुःख से मुक्त करने वाले (स्वाहाकृताः) पुरुषार्थ से विधिपूर्वक शुद्ध किये हुये (अपः) संस्कार किये हुए जलों को (पृथिवीम्) भूमि में (अविशत) विज्ञान से सब ओर से प्रविष्ट करो और जैसा मैं इसमें समर्थ हूँ और विज्ञान से पृथिवी में प्रविष्ट होता हूँ वैसे तू भी (सम्भव) बन और पृथिवी में प्रविष्ट हो ॥ ४ । १३ ॥

[इयं यज्ञिया तनूरपः=प्राणान् प्रजां=पालनीयां न त्यजति]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ सर्वैर्मनुष्यैर्विद्यया परस्परं पदार्थान् मेलयित्वा, सेवित्वा, रोगरहितं शरीरमात्मानं च पालयित्वा सुखयितव्यम् ॥ ४ । १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ सब मनुष्य विद्या से परस्पर पदार्थों को मिलाकर तथा उनका सेवन करके नीरोग शरीर और आत्मा की पालना करके सुखी रहें ॥ ४ । १३ ॥

भाष्यसार—१. **जल कैसे हैं**—इस यज्ञिय शरीर के लिए शुद्ध जलों की तथा प्राणों की आवश्यकता है । यह जल तथा प्राणों का त्याग नहीं कर सकता, प्रजा का भी परित्याग नहीं कर सकता, प्रजा की भी इसे आवश्यकता है ।

जल पृथिवी के साथ उत्पन्न हुए हैं जो दुःखों से मुक्त करने वाले एवं सुखों के देने वाले हैं जो

वैज्ञानिक क्रियाओं से शुद्ध किये जाते हैं, जो यज्ञ से शुद्ध किये जाते हैं जो पृथिवी में प्रविष्ट हो जाते हैं, विज्ञान से सर्वत्र प्रविष्ट हो जाते हैं। विद्या के द्वारा इन जल आदि पदार्थों को परस्पर मिलाकर इनका रीति से सेवन करके, शरीर और आत्मा की पालना करके सदा सुखी रहें।

२. **अलङ्कार**—मन्त्र में उपमा वाचक 'इव' आदि शब्द लुप्त है इसलिये यहाँ वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि जैसे शरीर प्राणों एवं जलों तथा प्रजा का परित्याग नहीं करता इसी प्रकार विद्वान् लोग भी प्राणविद्या, जलविद्या और प्रजाविद्या का परित्याग न करें, जैसे जल पृथिवी के साथ उत्पन्न हैं इसी प्रकार विद्वान् लोग पृथिवी पर उत्पन्न होते रहें। जैसे जल दुःखों से छुड़ाने हारे हैं इसी प्रकार विद्वान् लोग भी सब मनुष्यों को दुःखों से मुक्त करते रहें। जैसे जल यज्ञादि क्रियाओं से शुद्ध किये जाते हैं। इसी प्रकार विद्वान् लोग भी यज्ञादि शुभ कर्मों के अनुष्ठान से स्वयं शुद्ध होकर सब मनुष्यों को शुद्ध करें, पापों से बचावें, धर्म में प्रवृत्त करें। जैसे जल पृथिवी में प्रविष्ट हो जाते हैं इसी प्रकार विद्वान् लोग भी भूगर्भ विद्या को सीख कर सबको सुखी करें तथा विज्ञान से सर्वत्र अव्याहत गति वाले हों ॥ ४ । १३ ॥

आङ्गिरसः। **अग्निः**=भौतिकः ॥ स्वराडार्ष्युष्णिक्। ऋषभः ॥

पुनरग्निगुणा उपदिश्यन्ते ॥

फिर अग्नि के गुणों का उपदेश किया है ॥

अग्ने॒ त्वꣳ सु जा॑गृहि व॒यꣳसु म॑न्दिषीमहि। रक्षा॑ णो॒ऽअप्र॑युच्छन् प्र॒बुधे॑ न॒: पुन॑स्कृधि ॥ १४ ॥

पदार्थः—(**अग्ने**) अयमग्निः (**त्वम्**) यः (**सु**) श्रैष्ठ्ये (**जागृहि**) जागर्ति। अत्र व्यत्ययो लडर्थे लोट् च (**वयम्**) कर्मानुष्ठातारो नित्यं जागरिताः (**सु**) शोभने (**मन्दिषीमहि**) शयीमहि (**रक्ष**) रक्षति। अत्र द्व्यचोऽतस्तिङ इति दीर्घः (**नः**) अस्मान् (**अप्रयुच्छन्**) प्रमादमकुर्वन् (**प्रबुधे**) जागरिते (**नः**) अस्मान् (**पुनः**) (**कृधि**) करोति। अत्र व्यत्ययो लडर्थे लोट् च ॥ अयं मन्त्रः शत० ३ । २ । २ । २२ व्याख्यातः ॥ १४ ॥

प्रमाणार्थ—(**जागृहि**) जागर्ति। यहां पुरुष व्यत्यय और लट् अर्थ में लोट् लकार है। (**रक्षा**) रक्ष। यहाँ 'द्व्यचोऽतस्तिङः' [अ० ६ । ३ । १३३] सूत्र से दीर्घ है। (कृधि) करोति। यहाँ पुरुष-व्यत्यय है तथा लट् अर्थ में लोट् लकार है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । २ । २ । २२) में की गई है ॥ ४ । १४ ॥

सपदार्थान्वयः—**अग्ने** अयमग्निः **त्वं**=**योऽग्निः प्रबुधे** जागरिते **नः**=**अस्मान् सुजागृहि**-**सुष्ठु जागरयति** जागर्ति। **येन वयं** कर्मानुष्ठातारो नित्यं जागरिताः **सुमन्दिषीमहि** शोभनं शयीमहि **योऽप्रप्रयुच्छन्** प्रमादमकुर्वन् **नः**=**अस्मान् रक्ष**=**रक्षति, प्रयुच्छँश्च हिनस्ति यो नः**=**अस्मान् पुनः पुनरेवं कृधि**=**करोति सोऽस्माभिर्युक्त्या सम्यक्सेवनीयः** ॥ ४ । १४ ॥

भाषार्थ—(**अग्ने**) (**त्वम्**) यह अग्नि (**यः**) जो (**प्रबुधे**) जागने के समय (**नः**) हमें (**सुजागृहि**) अच्छे प्रकार जगाता है जिससे (**वयम्**) कर्म करने वाले हम लोग प्रतिदिन जागकर (**सुमन्दिषीमहि**) आनन्दपूर्वक सोते हैं और जो (**अप्रयुच्छन्**) प्रमाद न करता हुआ (**नः**) हमारी (**रक्ष**) रक्षा करता है तथा जो प्रमाद करता है उसे नष्ट करता है और जो (**नः**) हमें बार-बार ऐसा (**कृधि**) बनाता है उसका हम युक्ति से अच्छे प्रकार सेवन करें ॥ ४ । १४ ॥

[अग्ने त्वं=योऽग्निः प्रबुधे नः=अस्मान् सुजागृहि=सुष्ठु जागरयति, येन वयं सुपन्दिषीवहि, योऽप्रयुच्छन् नः= अस्मान् रक्ष=रक्षति, प्रयुच्छेंश्च हिनस्ति'''सोऽस्माभिर्युक्त्या सम्यक् सेवनीयः]

भावार्थः—मनुष्यैर्योऽग्निः शयन-जागरण-जीवन-मरण हेतुरस्ति, स युक्त्या संप्रयोक्तव्यः ॥ ४ । १४ ॥

भावार्थ—जो अग्नि शयन, जागरण, जीवन और मरण का हेतु है उसका सब मनुष्य युक्ति से प्रयोग करें ॥ ४ । १४ ॥

भाष्यसार—**अग्नि के गुण**—यह भौतिक अग्नि (सूर्य) जब जागने का समय होता है तब हमें जगा देता है। अग्नि के प्रताप से ही सब मनुष्य जाग कर कर्मों का अनुष्ठान करते हैं, तथा कर्मानुष्ठान से श्रान्त होकर इस अग्नि की कृपा से सूर्यास्त के पश्चात् आनन्द से सो जाते हैं। जब मनुष्य प्रमादरहित होकर इसका युक्तिपूर्वक सेवन करते हैं तब यह अग्नि उनकी रक्षा करता है, जीवन का हेतु बनता है और जब प्रमादी होकर इसका उपयोग नहीं जानते तब यह हिंसा करता है, मृत्यु का हेतु बनता है। अतः सब मनुष्य इसका युक्तिपूर्वक प्रयोग करें ॥ ४ । १४ ॥

आङ्गिरसः । **अग्निः=भौतिकः, ईश्वरो वा** । निचृद्ब्राह्मी बृहती । मध्यमः ॥

जीवा अग्निवाय्वादिनिमित्तेन जागरणे पुनर्जन्मनि वा प्रसिद्धानि मन आदीनीन्द्रियाणि प्राप्नुवन्तीत्युपदिश्यते ॥

जीव, अग्नि, वायु आदि पदार्थों के निमित्त से जगने के समय वा दूसरे जन्म में प्रसिद्ध मन आदि इन्द्रियों को प्राप्त करते हैं, इस विषय का उपदेश किया है ॥

पुन॑र्मनः॒ पुन॒रायु॑र्म॒ऽआग॑नः॒ पुनः॑ प्रा॒णः पुन॑रा॒त्मा म॒ऽआग॑न् पुन॒श्चक्षुः॒ पुनः॒ श्रोत्रं॑ म॒ऽआग॑न् ।
वै॒श्वा॒न॒रो ऽ अद॑ब्धस्तनू॒पा ऽ अ॒ग्निर्नः॑ पातु दुरि॒ताद॑व॒द्यात् ॥ १५ ॥

पदार्थः—[पुनः] जागरणे शयनानन्तरं, द्वितीये जन्मनि वा (**मनः**) विज्ञानसाधकम् (**पुनः**) पश्चाज्जन्मानन्तरम् येन (**आयुः**) येन जीवनम् (**मे**) मह्यम् (**आ**) समन्तात् (**अगन्**) प्राप्नोति । **अत्र सर्वत्र लडर्थे लुङ् । मन्त्रे घस० । इति च्लेर्लुक् । मोनोधातोरिति मकारस्य नकारः** (**पुनः**) वारंवारम् (**प्राणः**) शरीरा-धारकः (**पुनः**) पश्चात् मनुष्यदेहधारणानन्तरम् (**आत्मा**) अतति=सर्वत्र व्याप्नोतीति सर्वान्तर्य्यामी परमात्मा, स्वस्वभावो वा (**मे**) मह्यम् (**आ**) अभितः (**अगन्**) प्राप्नोति (**पुनः**) पश्चात् (**चक्षुः**) चष्टे येन तद्रूपग्राहकमिन्द्रियम् (**पुनः**) अग्रे (**श्रोत्रम्**) शृणोति शब्दान्येन तच्छब्दग्राहकमिन्द्रियम् (**मे**) मह्यम् (**आ**) आभिमुख्ये (**अगन्**) प्राप्नोति (**वैश्वानरः**) शरीरनेता जाठराग्निः । सर्वस्य नेता परमेश्वरो वा (**अदब्धः**) हिंसितुमनर्हः (**तनूपाः**) यः शरीरमात्मानं च रक्षति (**अग्निः**) अन्तस्थो विज्ञानस्वरूपो वा (**नः**) अस्मान् (**पातु**) पालयति पालयतु वा (**दुरितात्**) पापजन्यात्प्राप्तव्याद् दुःखाद् दुष्टकर्मणो वा (**अवद्यात्**) पापाचरणात् ॥ **अयं मंत्रः श० ३ । २ । २ । २३ व्याख्यातः ॥ १५ ॥**

प्रमाणार्थ—(**अगन्**) इस मन्त्र में सर्वत्र 'अगन्' पद में लट् अर्थ में लुङ् लकार है। 'मन्त्रे घस०' [**अ०** २ । ४ । ८०] सूत्र से 'च्लि' प्रत्यय का 'लुक्' और 'मो नो धातोः' [**अ०** ८ । २ । ६४] सूत्र से मकार को नकार आदेश है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । २ । २ । २३) में की गई है ॥ ४ । १५ ॥

पदार्थान्वयः—यस्य सम्बन्धेन कृपया वा **मे**=मह्यं [**पुनः**]=**जागरणे पुनर्जन्मनि वा** जागरणे शयनानन्तरं द्वितीये जन्मनि वा, **मनः** विज्ञानसाधकम् **आयुः** येन जीवनं **पुनः** पश्चाज्जन्मानन्तरं येन **आ-अगन्** समन्तात् प्राप्नोति ।

मे=**मम प्राणः** शरीरधारकः **पुनः** वारंवारकम् **आ-अगन्** समन्तात् प्राप्नोति ।

आत्मा अतति=सर्वत्र व्याप्नोतीति सर्वान्तर्यामी परमात्मा, स्वस्वभावो वा **पुनः** पश्चान्मनुष्यदेहधारणानन्तरम् **आ-अगन्** अभितः प्राप्नोति ।

मे=**मह्यं चक्षुः** चष्टे येन तद्रूपग्राहकमिन्द्रियं **पुनः** पश्चाद् **आ-अगन्** ।

श्रोत्रं शृणोति शब्दान् येन तच्छब्दग्राहकमिन्द्रियं **पुनः** अग्रे **आ-अगन्** आभिमुख्येन प्राप्नोति ।

सोऽदब्धः हिंसितुमनर्हः **तनूपाः** यः शरीरमात्मनं च रक्षति **वैश्वानरः** शरीरनेता जाठराग्निः, सर्वस्य नेता परमेश्वरो वा **अग्निः** अन्तरस्थो, विज्ञानस्वरूपो वा **नः**=**अस्मान् अवद्यात्** पापाचरणात् **दुरितात्** पापजन्यात् प्राप्तव्याद् दुःखाद् दुष्टकर्मणो वा **पातु**=**पालयति पालयतु वा** ॥ ४ । १५ ॥

भावार्थ—जिसके सम्बन्ध वा कृपा से (**मे**) मुझे (**पुनः**) शयन के पश्चात् जागने पर या पुनर्जन्म होने पर (**मनः**) विज्ञान का साधक मन तथा (**आयुः**) जीवन (**पुनः**) जन्म के पश्चात् (**आ-अगन्**) सब ओर से प्राप्त होता है।

(**मे**) मेरा (**प्राणः**) शरीर धारण करने वाला प्राण (**पुनः**) प्राण बार-बार (**आ-अगन्**) प्राप्त होता है।

(**आत्मा**) सर्वत्र व्यापक सर्वान्तर्यामी परमात्मा अथवा अपना स्वभाव (**पुनः**) मानव देह धारण के पश्चात् (**आ-अगन्**) सब प्रकार से प्राप्त होता है।

(**मे**) मुझे (**चक्षुः**) रूप ग्रहण करने वाला चक्षु-इन्द्रिय (**पुनः**) फिर (**आ-अगन्**) प्राप्त होता है।

(**श्रोत्रम्**) शब्द को ग्रहण करने वाला श्रोत्र इन्द्रिय (**पुनः**) आगे भी (**आ-अगन्**) प्राप्त होता है।

वह (**अदब्धः**) हिंसा के अयोग्य (**तनूपाः**) शरीर और आत्मा का रक्षक (**वैश्वानरः**) शरीर का नेता जाठर-अग्नि वा सबका नेता परमेश्वर (**अग्निः**) शरीर में स्थित अग्नि वा विज्ञानस्वरूप परमेश्वर (**नः**) हमारी (**अवद्यात्**) पाप-आचरण से (**दुरितात्**) पाप से प्राप्त होने वाले दुःख वा दुष्ट कर्म से (**पातु**) रक्षा करता है वा करे॥ ४ । १५ ॥

[यस्य सम्बन्धेन कृपया वा मे=मह्यं [पुनः]=**जागरणे पुनर्जन्मनि वा मनः, आयुः, प्राणः, आत्मा, चक्षुः, श्रोत्रं, पुनरागन्**]

भावार्थः—अत्र श्लेषालङ्कारः॥ यदा जीवाः शयनं मरणं च प्राप्नुवन्ति तदा यानि कार्यसिद्धिसाधनानि मनआदीनीन्द्रियाणि प्रलीनानीव भूत्वा पुनः पुनर्जागरणे जन्मान्तरे वा प्राप्नुवन्ति, तानि यस्य विद्युदग्न्यादेः सम्बन्धेन परमेश्वरस्य सत्ताव्यवस्थाभ्यां वा सगोलकानि भूत्वा कार्यकरणसमर्थानि भवन्ति ।

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष अलङ्कार है॥ जब जीव शयन और मृत्यु को प्राप्त होते हैं तब जो कार्य को सिद्ध करने वाली मन आदि इन्द्रियाँ हैं वे नष्ट सी होकर पुनः अर्थात् जागने पर वा जन्मान्तर में प्राप्त हो जाती हैं, और जो विद्युत्-अग्नि आदि के सम्बन्ध से तथा परमेश्वर की सत्ता और व्यवस्था से गोलक सहित होकर कार्य करने में समर्थ होती हैं—

[**सोऽदब्धस्तनूपा वैश्वानरोऽग्निर्नः**=**अस्मान्वद्याद्दुरितात् पातु**=**पालयति, पालयतु वा**]

स सम्यक् सेवितो जाठराग्निः सर्वं रक्षत्युपासितो जगदीश्वरः पापकर्मणः सकाशान्निवर्त्य, धर्मे प्रवर्त्य

वह अच्छे प्रकार सेवन किया हुआ जाठराग्नि सब की रक्षा करता है तथा उपासना किया जग-

पुनः पुनर्मनुष्यजन्मानि प्रापय्य दुष्टाचाराद् दुःखेभ्यश्च पृथक् कृत्वाऽऽभ्युदयिकं नैः श्रेयसिकं च सुखं प्रापयति ॥ ४ । १५ ॥

दीश्वर पाप कर्म से हटा कर, धर्म में लगा कर, बार-बार मनुष्य जन्म प्रदान करके, दुष्ट आचरण और पापों से पृथक् करके अभ्युदय और निश्श्रेयस सुख पहुँचाता है ॥ ४ । १५ ॥

अन्यत्र व्याख्यात—महर्षि ने इस मन्त्र की व्याख्या ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका (**पुनर्जन्म-विषय**) में इस प्रकार की है—"(**पुनर्मनः-पुनरात्मा**) हे सर्वज्ञ ईश्वर जब-जब हम जन्म लेवें तब-तब हमको शुद्ध मन, पूर्ण आयु, आरोग्यता, प्राण, कुशलतायुक्त जीवात्मा उत्तम चक्षु और प्राण, प्राप्त हों (**वैश्वानरोऽदब्धः**) जो विश्व में विराजमान ईश्वर है वह सब जन्मों में हमारे शरीरों का पालन करे (**अग्निर्नः**) सब पापों के नाश करने वाले आप हमको (**पातु दुरितादवद्यात्**) बुरे कामों और दुःखों से पुनर्जन्म में अलग रक्खें" ॥

भाष्यसार—१. **अग्नि (भौतिक)**—जब जीव शयन को प्राप्त हो जाता है, तब उसकी कार्य को सिद्ध करने वाली मन आदि इन्द्रियाँ नष्ट-सी हो जाती हैं किन्तु इस भौतिक अग्नि के सम्बन्ध के कारण शयन के पश्चात् जागने पर विज्ञान का साधक मन, आयु, शरीर को धारण करने वाले प्राण, आत्मा, रूप को ग्रहण करने वाला चक्षु, शब्द को ग्रहण करने वाला श्रोत्र आदि इन्द्रियाँ फिर प्राप्त हो जाती हैं। अच्छे प्रकार सेवन किया हुआ शरीर का नेता तथा रक्षक जाठराग्नि इन सब मन आदि इंद्रियों की रक्षा करता है।

२. **अग्नि (ईश्वर)**—जब मनुष्य मृत्यु को प्राप्त हो जाता है तब उसकी कार्य को सिद्धि करने वाली मन आदि इन्द्रियाँ नष्ट-सी हो जाती हैं किन्तु अग्नि अर्थात् जगदीश्वर की कृपा से पुनः अर्थात् जन्मान्तर में मन, आयु, प्राण, आत्मा, चक्षु, श्रोत्र आदि इन्द्रियाँ फिर प्राप्त हो जाती हैं। परमेश्वर की सत्ता और व्यवस्था से फिर गोलक-सहित होकर कार्य करने में समर्थ होती हैं। शरीर और आत्मा का रक्षक, सबका नेता, विज्ञानस्वरूप जगदीश्वर उपासना से पाप-कर्म से हटाता है, धर्म में प्रवृत्त करता है, बार-बार मनुष्य जन्म प्रदान करता है, दुष्टाचरण और दुःखों से पृथक् करके ऐहिक और पारमार्थिक सुख प्रदान करता है।

३. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में श्लेष अलङ्कार होने से अग्नि शब्द से भौतिक-अग्नि और ईश्वर अर्थ का ग्रहण किया है ॥ ४ । १५ ॥

●

वत्सः । **अग्निः=ईश्वरो भौतिकश्च** ॥ भुरिगार्षी पंक्तिः । पंचमः ॥

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते ॥

फिर वे ईश्वर और भौतिक अग्नि कैसे हैं, इस विषय का उपदेश किया है ॥

त्वम॑ग्ने व्र॒त॒पा ऽ अ॑सि दे॒व ऽ आ मर्त्ये॒ष्वा । त्वं य॒ज्ञेष्वीड्यः॑ ।
रा॒स्वेय॑त्सो॒मा भूयो॑ भर दे॒वो नः॑ सवि॒ता वसो॑र्दा॒ता वस्व॑दात ॥ १६ ॥

पदार्थः—(**त्वम्**) स वा (**अग्ने**) जगदीश्वर ! अग्निर्वा (**व्रतपाः**) यो व्रतं सत्यं धर्माचरण-नियमं पाति रक्षतीति (**असि**) अस्ति वा । अत्र पक्षे व्यत्ययः (**देवः**) दाता प्रकाशको वा (**आ**) समन्तात् (**मर्त्येषु**) मरणधर्मेषु मनुष्येषु कार्य्येषु वा (**आ**) अभितः (**त्वम्**) स वा (**यज्ञेषु**) सत्कारेषूपासनादिष्वग्नि-

होत्रादिषु शिल्पेषु वा (ईड्यः) स्तोतुमध्येषितुं वाऽर्हः (रास्व) देहि, ददाति वा (इयत्) प्राप्नुवन् (सोम) ऐश्वर्य्यप्रदैश्वर्य्यहेतुर्वा (आ) अभितः (भूयः) अतिशयेन बहुः (भर) भरति वा (देवः) द्योतकः (नः) अस्मभ्यम्। (सविता) सर्वस्य जगत उत्पादकः प्रेरको वा (वसोः) धनस्य (दाता) प्रापकः (वसु) धनम् (अदात्) ददति ॥ अयं मंत्रः श० ३।२।२।२४–२५ व्याख्यातः ॥ १६ ॥

प्रमाणार्थ—(असि) अस्ति। यहां पक्ष में पुरुष व्यत्यय है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३।२।२।२४-२५) में की गई है॥ ४।१६॥

[ईश्वरः]

सपदार्थान्वयः—**हे सोम !** ऐश्वर्य-प्रद **अग्ने** जगदीश्वर ! **यस्त्वं स वा मर्त्येषु** मरण-धर्मेषु मनुष्येषु **व्रतपाः** यो व्रतं=सत्यं धर्माचरण-नियमं पाति=रक्षतीति **सविता** सर्वस्य जगत् उत्पादकः **यज्ञेषु** सत्कारेषूपासनादिषु अग्निहोत्रादिषु **ईड्यः** स्तोतुमर्हः **देवः** द्योतकः **असि** अस्ति **स भवान् नः**=**अस्तभ्यं वसोः** धनस्य **दाता** प्रापकः **सन् वसु** (धनम्) [**आ-**] **अदात्**=**विज्ञान धनं ददाति** समन्ताद् ददाति, **स** [**देवः**] दाता **भूयः** अतिशयेन बहु **वसु** धनम् **आरास्व** अभितो देहि **इयत्** प्राप्नुवन् **संस्त्वमेतान्यस्मदर्थम् आभर** अभितो भर **इत्येकः** ॥

भाषार्थ—हे (**सोम**) ऐश्वर्य के दाता (**अग्ने**) जगदीश्वर ! जो (**त्वन्**) आप (**मर्त्येषु**) मरणधर्मा मनुष्यों में (**व्रतपाः**) सत्यभाषण, धर्मा-चरण आदि व्रतों का रक्षक (**सविता**) सब जगत् के उत्पादक हो तथा (**यज्ञेषु**) सत्कार, उपासना आदि में तथा अग्निहोत्रादि में (**ईड्यः**) स्तुति के योग्य (**देवः**) प्रकाशक देव(**असि**)हो। वह आप (**नः**)हमारे लिये (**वसोः**) धन को (**दाता**) प्राप्त कराने वाले होकर (**वसु**) विज्ञान-धन ([**आ-**] **अदात्**) सब ओर से देते हो वह [**देवः**] दाता (**भूयः**) अत्यधिक (**वसु**) धन (**आरास्व**) सब ओर से दीजिए (**इयत्**) प्राप्त कराते हुए (**त्वम्**) आप इनको हमारे लिए (**आभर**) धारण करते हो। यह मन्त्र का पहला अर्थ है ॥

[भौतिकाग्निः]

योऽग्ने=**अयमग्निः** [**त्वं**]=**स मर्त्येषु** कार्येषु **व्रतपाः** यो व्रतं=सत्यं धर्माचरणनियमं पाति रक्ष-तीति **सविता** सर्वस्य जगतः प्रेरकः **यज्ञेषु** शिल्पेषु **ईड्यः**=**अध्येषितव्यः** अध्येषितुमर्हः **सोमः** ऐश्वर्य-हेतुः **देवः** द्योतकः [**असि**]=**अस्ति** [**त्वम्**] **स नः**=**अस्मभ्यं वसोः** धनस्य **दाता** प्रापकः **इयत्** प्राप्नु-वन् **सन्** [**देवः**] दाता [**वसु**] धनं [**आ**+**अदात्**] समन्ताद् ददाति, **भूयः** अतिशयेन बहुः **सर्वकार्ये-ष्वारास्व**=**आरासते** समन्ताद् ददाति **आभर**= **अभितः सुखैर्भरति पुष्णातीति द्वितीय** ॥ ४। १६॥

जो (**अग्ने**) अग्नि है [**त्वम्**] वह (**मर्त्येषु**) मानवीय कार्यों में (**व्रतपाः**) सत्यभाषण, धर्मा-चरण आदि व्रतों का रक्षक (**सविता**) सब जगत् का प्रेरक है वह (**यज्ञेषु**) शिल्प कार्यों में (**ईड्य**) पूज्य अर्थात् प्रयोक्तव्य (**सोमः**) ऐश्वर्य का निमित्त (**देवः**) प्रकाशक देव [**असि**] है [**त्वम्**] वह (**नः**) हमें (**वसोः**) धन का (**दाता**) प्रदाता, धन को (**इयत्**) प्राप्त कराता हुआ [**देवः**] दाता अग्नि [**वसु**] धन [**आ**+**अदात्**] प्रदान करता है, (**भूयः**) अत्यधिक सब कार्यों में (**आरास्व**) सब ओर से देता है तथा (**आभर**) सब ओर से सुखों से पुष्ट करता है। यह मन्त्र का दूसरा अर्थ है ॥ ४। १६॥

हे···अग्ने ! यस्त्वं व्रतपाः, ईड्यः, सविता, देवः, असि, स भवान् नः=अस्मभ्य···वसु [आ-] अदात्= विज्ञानधनं ददाति]

भावार्थः—अत्रश्लेषालङ्कारः ॥ सर्वैर्मनुष्यैः सत्यस्वरूपस्य, पूजार्हस्य, सर्वजगदुत्पादकस्य, सकल सुखप्रदातुः परमेश्वरस्यैवोपासनां कृत्वा सुखयितव्यम् ।

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष अलङ्कार है ॥ सब मनुष्य सत्यस्वरूप, पूजा के योग्य, सब जगत् के उत्पादक, सकल सुख दाता परमेश्वर की ही उपासना करके सुखी रहें ।

[योऽग्ने=अयमग्निः···सर्वकार्येष्वारास्व=आरासते, आभर=अभितः सुखैर्भरति पुष्णातीति]

एवं च कार्य सिद्धये भौतिकमग्निं संप्रयोज्य सर्वाणिसुखानि प्राप्तव्यानीति ॥ ४ । १६ ॥

और इसी प्रकार कार्य-सिद्धि के लिए भौतिक अग्नि का प्रयोग करके सब सुखों को प्राप्त करें ॥ ४ । १६ ॥

भा० पदार्थः—व्रतपाः=सत्यस्वरूपः । ईड्यः=पूजार्हः । सविता=सर्वजगदुत्पादकः । देवः=सकलसुखप्रदाता ।

भाष्यसार—**१. अग्नि (ईश्वर) कैसा है**—अग्नि अर्थात् ईश्वर ऐश्वर्य का दाता, सत्य व्रतों का पालन करने वाला होने से सत्यस्वरूप, सब जगत् का उत्पादक, स्तुति और पूजा के योग्य, सब सुखों का दाता और विज्ञान धन का देने वाला है । सब मनुष्य उक्त परमेश्वर की उपासना करके सुखी रहें ।

२. अग्नि (भौतिक) कैसा है—यह भौतिक अग्नि सत्य व्रतों का रक्षक, सब जगत् को प्रेरणा (गति) देने वाला, शिल्प यज्ञों में प्रयोग के योग्य, ऐश्वर्य प्राप्ति का हेतु, और धन का प्रापक है । इस भौतिक अग्नि का सब कार्यों में प्रयोग करके सब सुखों को प्राप्त करें ॥

३. अलङ्कार—यहाँ श्लेष अलङ्कार होने से अग्नि शब्द से ईश्वर और भौतिक अग्नि अर्थ का ग्रहण किया है ॥ ४ । १६ ॥

वत्सः । **अग्निः**=ईश्वरः ॥ आर्चीत्रिष्टुप् । धैवतः ॥

एतान्सेवित्वा मनुष्येण कथं भवितव्यमित्युपदिश्यते ॥

इनको सेवन करके मनुष्यों को कैसे वर्त्तना चाहिये, इस विषय का उपदेश किया है ॥

एषा ते शुक्र तनूरेतद्वर्चस्तया सम्भव भ्राजं गच्छ । जूरसि धृता मनसा जुष्टा विष्णवे ॥ १७ ॥

पदार्थः—(**एषा**) वक्ष्यमाणा (**ते**) तव (**शुक्र**) वीर्य्यवन् विद्वन् ! (**तनूः**) शरीरम् (**एतत्**) प्रत्यक्षम् (**वर्चः**) विज्ञानं तेजो वा (**तया**) तन्वा (**सम्**) सम्यगर्थे (**भव**) निष्पद्यस्व (**भ्राजम्**) प्रकाशम् (**गच्छ**) प्राप्नुहि (**जूः**) ज्ञानी वेगवान् वा (**असि**) भवसि (**धृता**) ध्रियते यया तया । **अत्र कृतो बहुलमिति क्विप्** (**मनसा**) विज्ञानेन (**जुष्टा**) प्रीता सेविता वा (**विष्णवे**) परमेश्वराय यज्ञाय वा ॥ **अयं मन्त्रः श० ३ । २ । ४ । ६—११ व्याख्यातः ॥ १७ ॥**

प्रमाणार्थ—(**धृता**) यहां 'कृतो बहुलम्' [अ० ३ । ३ । १३] वार्त्तिक से 'क्विप्' प्रत्यय है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । २ । ४ । ६—११) में की गई है ॥ ४ । १७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे शुक्र=विद्वन् ! वीर्यवन् विद्वन् ! [एषा] वक्ष्यमाणा ते=तव **या विष्णवे** परमेश्वराय यज्ञाय वा **तनूः** शरीरम् [**असि**] =**अस्ति** (भवसि) **या त्वया धृता** ध्रियते यया तया **जुष्टा** प्रीता सेविता वा **च तया** तन्वा **जूः** ज्ञानी वेगवान् वा **सँस्त्वमेतत्** प्रत्यक्षं **वर्चः** विज्ञानं तेजो वा **सम्भव**=**सम्यग्भावय** सम्यक् निष्पद्यस्व, **भ्राजं** प्रकाशं **गच्छ** प्राप्नुहि, **मनसा** विज्ञानेन एतेन **पुरुषार्थं गच्छ**=**प्राप्नुहि** ॥ ४ । १७ ॥

भाषार्थ—हे (**शुक्र**) वीर्य वाले विद्वान् ! [**एषा**] यह (**ते**) तेरा जो (**विष्णवे**) परमेश्वर प्राप्ति वा यज्ञानुष्ठान के लिए (**तनूः**) शरीर [**असि**] है, जिसे तू (**धृता**) धारण और (**जुष्टा**) प्रेमपूर्वक सेवन करता है (**तया**) उस शरीर से (**जूः**) ज्ञानी और वेगवाला होकर (**एतत्**) इस (**वर्चः**) विज्ञान वा तेज को (**सम्भव**) सिद्ध कर तथा (**भ्राजम्**) प्रकाश को (**गच्छ**) प्राप्त कर (**मनसा**) इस विज्ञान से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष पुरुषार्थ को (**गच्छ**) प्राप्त कर ॥ ४ । १७ ॥

[हे शुक्र=विद्वन् ! [एषा] ते=तव या विष्णवे तनूः [असि]=अस्ति''तया जूः संस्त्वमेतद्वर्चः सम्भव= सम्यग्भावय,...मनसैतेन पुरुषार्थं गच्छ=प्राप्नुहि]

भावार्थः—मनुष्यैः परमेश्वराज्ञापालनेन विज्ञान युक्तेन मनसा शरीरात्मारोग्यं वर्धित्वा, यज्ञमनुष्ठाय, विज्ञानयुक्तेन मनसा सुखयितव्यम् ॥ ४ । १७ ॥

भावार्थ—सब मनुष्य परमेश्वर की आज्ञा का पालन करके विज्ञान युक्त मन के द्वारा शरीर और आत्मा के आरोग्य को बढ़ाकर, यज्ञानुष्ठान करके, विज्ञानयुक्त मन से सदा सुखी रहें ॥ ४ । १७ ॥

भा० पदार्थः—विष्णवे=परमेश्वराज्ञापालनाय, यज्ञानुष्ठानाय वा । मनसा=विज्ञान-युक्तेन मनसा ।

भाष्यसार—**अग्नि आदि का सेवन करके मनुष्य कैसे हों**—सब मनुष्यों का शरीर परमेश्वर ने अपनी आज्ञा का पालन करने के लिये एवं यज्ञानुष्ठान के लिये बनाया है । विज्ञान युक्त मन से शरीर और आत्मा के आरोग्य को बढ़ावें। इस शरीर को प्रीतिपूर्वक धारण करके, एवं इसका सेवन (**सदुपयोग**) करके ज्ञानी बनें, बलवान् बनें, विज्ञान और तेज को सिद्ध करें, विद्या-प्रकाश को प्राप्त करें, विज्ञान युक्त मन से पुरुषार्थ अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूप सुखों को प्राप्त करें ॥ ४ । १७ ॥

वत्सः । **वाग्विद्युत्**=वाणी **विद्युच्च** ॥ स्वराडार्षीबृहती । मध्यमः ॥

ते वाग्विद्युतौ कीदृशावित्युपदिश्यते ॥

वह वाणी और बिजुली कैसी है, इस विषय का उपदेश किया है ॥

तस्यास्ते सत्यसवसः प्रसवे तन्वो यन्त्रमशीय स्वाहा ।
शुक्रमसि चन्द्रमस्यमृतमसि वैश्वदेवमसि ॥ १८ ॥

पदार्थः—(**तस्याः**) वाचो विद्युतो वा (**ते**)तव (**सत्यसवसः**) सत्यं सवं=ऐश्वर्य्यं जगत्कारणं वा यस्य तस्य परमात्मनः (**प्रसवे**) उत्पादिते संसारे (**तन्वः**) शरीरस्य । **अत्र जसादिषु छन्दसि वा वचनमिति वार्तिकेनाडभावः** (**यन्त्रम्**) यन्त्रयति=संकुचति चालयति निबन्धाति वा येन तत् (**अशीय**) प्राप्नुयाम्

(**स्वाहा**) वाचं विद्युतं वा (**शुक्रम्**) शुद्धम् (**असि**) अस्ति । **अत्र सर्वत्र व्यत्ययः** (**चन्द्रम्**) आह्लादकारकम् (**असि**) अस्ति (**अमृतम्**) अमृतात्मकव्यवहारपरमार्थसुखसाधकम् (**असि**) अस्ति (**वैश्वदेवम्**) यद्विश्वेषां देवानां=विदुषामिदं तत् (**असि**) अस्ति ।। **अयं मंत्रः शत० ३ । २ । ४ । १२—१५ व्याख्यातः** ।। १८ ।।

प्रमाणार्थ—(**तन्वः**) यहां 'जसादिषु छन्दसि वा वचनम्' [**अ० ७ । ३ । १०६**] वार्तिक से 'आट्' का अभाव है । (**असि**) अस्ति । इस मन्त्र में 'असि' पद पर सर्वत्र पुरुष-व्यत्यय है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । २ । ४ । १२—१५) में की गई है ।। ४ । १८ ।।

सपदार्थान्वयः—हे जगदीश्वर ! **सत्यसवसः** सत्यं सवम्=ऐश्वर्यं जगत्कारणं वा यस्य तस्य परमात्मनः **ते**=तव **प्रसवे** उत्पादिते संसारे **या स्वाहा**=**वाग्** विद्युच्च वर्त्तते **तस्याः** वाचो विद्युतो वा **विद्यां प्राप्य यत्** [**तन्वः**] शरीरस्य **शुक्रं** शुद्धम् [**असि**]=**अस्ति**, **चन्द्रम्** आह्लादकारकम् [**असि**]=**अस्ति**, **अमृतम्** अमृतात्मकव्यवहार-परमार्थसुखसाधकम् [**असि**]=**अस्ति**, **वैश्वदेवं** यद्विश्वेषां देवानां=विदुषामिदं तत् [**असि**] **अस्ति**, **तद्यन्त्रं** यन्त्रयति=संकुचति चालयति निबध्नाति वा तत् **अहमशीय**=**प्राप्नुयाम्** ।। ४ । १८ ।।

भाषार्थ—हे जगदीश्वर ! (**सत्यसवसः**) सच्चे ऐश्वर्य वा जगत्-कारण वाले (**ते**) तुझ परमात्मा के (**प्रसवे**) पैदा किये हुए संसार में जो (**स्वाहा**) वाणी वा विद्युत् है (**तस्याः**) उस वाणी वा विद्युद्-विद्या को प्राप्त करके जो (**तन्वः**) शरीर के लिये (**शुक्रम्**) शुद्ध [**असि**] है (**चन्द्रम्**) आनन्द-दायक [**असि**] है (**अमृतम्**) अमृत रूप व्यवहार तथा परमार्थ से सुख का साधक [**असि**] है (**वैश्वदेवम्**) सब विद्वानों के लिए सुखदायक [**असि**] है, उस (**यन्त्रम्**) संकोचन चालन, निबन्धन के निमित्त यन्त्र को मैं (**अशीय**) प्राप्त करूँ ।। ४ । १८ ।।

[हे जगदीश्वर ! ··· **ते=तव प्रसवे--विद्यां प्राप्य ···यन्त्रमहमशीय=प्राप्नुयाम्**]

भावार्थः—अत्र श्लेषालङ्कारः ।। मनुष्यैरीश्वरोत्पादितायामस्यां सृष्टौ विद्यया कलायन्त्र-सिद्धेरग्न्यादिभ्यः पदार्थेभ्यः सम्यगुपकारान् गृहीत्वा सर्वाणि सुखानि सम्पादनीयानि ।। ४ । १८ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष अलङ्कार है । सब मनुष्य ईश्वर के द्वारा उत्पन्न की हुई इस सृष्टि में विद्या से कलायन्त्रों की सिद्धि करके, अग्नि आदि पदार्थों से ठीक-ठीक उपकारों को ग्रहण करके सब सुखों को सिद्ध करें ।। ४ । १८ ।।

भा० पदार्थः—प्रसवे=ईश्वरोत्पादितायामस्यां सृष्टौ । यन्त्रम्=कलायन्त्रम् ।

भाष्यसार—१. **वाणी कैसी है**—ऐश्वर्यसम्पन्न, जगत् के कारण परमात्मा की सृष्टि में वाग्-विद्या को प्राप्त करके शरीर के लिये शुद्ध, आह्लादकारक, व्यवहार और परमार्थ को सिद्ध करने वाले, विद्वानों से सम्बन्धित कलायन्त्रों को प्राप्त करें ।

२. **विद्युत कैसी है**—उक्त परमात्मा की सृष्टि में विद्युत्-विद्या को प्राप्त करके उक्त गुणों वाले कलायन्त्रों को सिद्ध करके, अग्नि आदि पदार्थों से ठीक-ठीक उपकार ग्रहण करके सब सुखों को सिद्ध करें ।। ४ । १८ ।।

वत्सः । **वाग्विद्युतौ**=**वाणी विद्युच्च** ।। निचृद् ब्राह्मीपंक्तिः । पञ्चमः ।।

पुनस्ते कीदृश्यावित्युपदिश्यते ।।

फिर वे वाणी और बिजली कैसे हैं, इस विषय का उपदेश किया है ।।

चिदसि मनासि धीरसि दक्षिणासि क्षत्रियासि यज्ञियास्यदितिरस्युभयतः शीर्ष्णी ।
सा नः सुप्राची सुप्रतीच्येधि मित्रस्त्वा पदि बध्नीतां पूषाऽध्वनस्पात्विन्द्रायाध्यक्षाय ॥१९॥

पदार्थः—(**चित्**) या विद्याव्यवहारस्य चेतयमाना वाग्विद्युद्वा (**असि**) अस्ति । अत्र सर्वत्र व्यत्ययः (**मना**) ज्ञानासाधिका (**असि**) अस्ति (**धीः**) प्रज्ञा कर्मविद्याधारिका (**असि**) अस्ति (**दक्षिणा**) दक्षन्ते=प्राप्नुवन्ति विज्ञानं विजयं च यया सा (**असि**) अस्ति (**क्षत्रिया**) या क्षत्रस्यापत्यवद्वर्त्तते (**असि**) अस्ति (**यज्ञिया**) या यज्ञमर्हति सा (**असि**) अस्ति (**अदितिः**) अविनाशिनी (**असि**) अस्ति (**उभयतःशीर्ष्णी**) उभयतः शिरोवदुत्तमा गुणा यस्यां सा । अत्र पञ्चम्या अलुक् (**सा**) (**नः**) अस्मभ्यम् (**सुप्राची**) शोभनः प्राक्=पूर्वः कालो यस्यां सा (**सुप्रतीची**) सुष्ठु प्रत्यक्=पश्चिमः कालो यस्यां सा (**एधि**) भवतु (**मित्रः**) सखा (**त्वा**) ताम् (**पदि**) पद्यते=जानाति प्राप्नोति येन व्यवहारेण तस्मिन् । अत्र कृतो बहुलमिति करणे क्विप् (**बध्नीताम्**) बद्धां कुरुताम् (**पूषा**) पुष्टिकर्त्ता (**अध्वनः**) मार्गस्य मध्ये (**पातु**) रक्षतु (**इन्द्राय**) परमैश्वर्यवते परमेश्वराय स्वामिने व्यवहाराय वा (**अध्यक्षाय**) अधिरुपरिभावेऽन्वेक्षणेऽक्षाण्यक्षिणी वा यस्य यस्माद्वा तस्मै ॥ अयं मंत्रः शत० ३ । २ । ४ । १६–२० व्याख्यात: ॥ १९ ॥

प्रमाणार्थ—(**असि**) अस्ति । इस मन्त्र में 'असि' पद पर सर्वत्र पुरुष-व्यत्यय है । (**उभयतःशीर्ष्णी**) यहां पंचमीविभक्ति का 'लुक्' नहीं है। (**पदि**) यहां 'कृतो बहुलम्' [अ० ३ । ३ । ११३] वार्त्तिक से करण-कारण में 'क्विप्' प्रत्यय है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । २ । ४ । १६-२०) में की गई है ॥ ४ । १९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे जगदीश्वर ! **सत्यसवसस्ते**=तव प्रसवे **या वाग् विद्युद्वा चित्** या विद्या व्यवहारस्य चेतयमाना वाग् विद्युद्वा [**असि**]=**अस्ति**, **मना** ज्ञानासाधिका [**असि**]=**अस्ति**, **धीः** प्रज्ञाकर्मविद्याधारिका [**असि**]=**अस्ति**, **दक्षिणा** दक्षन्ते=प्राप्नुवन्ति विज्ञानं विजयं च यया सा [**असि**]=**अस्ति**, **क्षत्रिया** या क्षत्रस्यापत्यवद् वर्तते [**असि**]=**अस्ति**, **यज्ञिया** या यज्ञमर्हति सा [**असि**]=**अस्ति**, **उभयतःशीर्ष्णी** उभयतः शिरोवदुत्तमा गुणा यस्यां सा **अदितिः** अविनाशिनी [**असि**]=**अस्ति**, **सा नः**=**अस्मभ्यं सुप्राची** शोभनः प्राक्=पूर्वः कालो यस्यां सा **सुप्रतीची** सुष्ठु प्रत्यक्=पश्चिमः कालोयस्यां सा **एधि** भवतु ।

यः पूषा पुष्टिकर्त्ता **मित्रः**=**सर्वसखो भूत्वा मनुष्यत्वाय** [**त्वा**]=**त्वां** (**तां**) **पदि** पद्यते=जानाति प्राप्नोति येन व्यवहारेण तस्मिन् **अध्याक्षाय** अधिरुपरिभावेऽन्वेक्षणेऽक्षाण्यक्षिणी वा यस्य यस्माद्वा तस्मै

भाषार्थ—हे जगदीश्वर ! सत्य ऐश्वर्य वाले आपके उत्पन्न किये इस संसार में जो वाणी वा विद्युत् है वह (**चित्**) विद्या और व्यवहार को जनाने वाली [**असि**] है, (**मना**) ज्ञान की साधक [**असि**] है (**धीः**) प्रज्ञा, कर्म और विद्या को धारण करने वाली [**असि**] है (**दक्षिणा**) विज्ञान और विजय को प्राप्त कराने वाली [**असि**] है (**क्षत्रिया**) क्षत्रिय के समान रक्षक [**असि**] है (**यज्ञिया**) यज्ञ के योग्य [**असि**] है (**उभयतः**) बाहर और भीतर दोनों ओर से (**शीर्ष्णी**) शिर के समान उत्तम गुणों वाली (**अदितिः**) अविनाशी [**असि**] है वह (**नः**) हमारे लिए (**सुप्राची**) भूतकाल में (**सुप्रतीची**) भविष्य काल एवं वर्तमान काल में भी उत्तम सुख देने वाली (**एधि**) हो ।

जो (**पूषा**) पुष्टि करने वाला है वह (**मित्रः**) सब का मित्र बन कर मनुष्यता प्राप्ति के लिए [**त्वा**] तुझ वाणी और बिजुली को (**पदि**) ज्ञान और सुख-प्राप्ति के व्यवहार में (**अध्यक्षाय**) ऊँची

इन्द्राय परमैश्वर्यवते परमेश्वराय स्वामिने व्यवहाराय वा **बध्नीतां** बद्धां कुरुताम् ।

एवं सूक्ष्म दृष्टि वाले (इन्द्राय) परमैश्वर्य से युक्त परमेश्वर स्वामी वा उत्तम व्यवहार की प्राप्ति के लिए (**बध्नीताम्**) हमारे वश में करें ।

स भवानध्वनः=व्यवहारपरमार्थ सिद्धिकरस्य मार्गस्य मध्ये नः=अस्मान् सततं पातु=रक्षतु ॥ ४ । १६ ॥

वह जगदीश्वर (**अध्वनः**) व्यावहारिक और पारमार्थिक मार्ग में (**नः**) हमारी सदा (**पातु**) रक्षा करे ॥ ४ । १६ ॥

[अनुवृत्तिमाह--]

भावार्थः—अत्र श्लेषालङ्कारः ॥ (ते), (सत्यसवसः), (प्रसवे) इति पदत्रयमत्रानुवर्त्तते ।

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष अलङ्कार है ॥ यहां (**ते**), (**सत्यसवसः**), (**प्रसवे**) इन तीन पदों की अनुवृत्ति है ।

[या वाग् विद्युद्वा चिद् [असि]=अस्ति···उभयतः शीर्ष्णी···[असि]=अस्ति, सा नः=अस्मभ्यं सुप्राची सुप्रतीच्येधि]

या बाह्याभ्यन्तर रक्षणाभ्यां सर्वोत्तमा वाग् विद्युच्च वर्तते, सैवा भूतभविष्यद्वर्त्तमानकालेषु सुखकारिण्यस्तीति वेद्यम् ।

जो बाहर और अन्दर से रक्षा करने के कारण सर्वोत्तम वाणी और विद्युत् है, वह भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल में सुखकारक है, ऐसा जानो ।

[य !···मनुष्यत्वाय [त्वा] त्वां तां पद्यध्यक्षायेन्द्राय बध्नीताम्]

यः कश्चित् परमेश्वरसभाध्यक्षोत्तमव्यवहार-सिद्धिप्रीत्याज्ञापालनाय सत्यां वाचं, विद्युद्विद्यां च दृढां निबध्नाति,

जो कोई परमेश्वर प्रोक्त उत्तम व्यवहारों की सिद्धि के लिए तथा सभाध्यक्ष की प्रीतिपूर्वक आज्ञा पालन के लिए सत्यवाणी और विद्युत्-विद्या को वश में कर लेता है,

[स भवान्···नः=अस्मान् सतत पातु=रक्षतु]

स एव मनुष्यः सर्वरक्षको भवतीति ॥ ४ । १६॥

वही मनुष्य सबका रक्षक होता है ॥ ४ ।१६ ॥

भा० पदार्थः—उभयतः शीर्ष्णी=बाह्याभ्यन्तररक्षाणाभ्यां सर्वोत्तमा [**वाग् विद्युच्च**] । सुप्राची=भूतकाले सुखकारिणी । सुप्रतीची= भविष्यत्काले सुखकारिणी । पदि=उत्तमव्यवहार सिद्धि-प्रीत्याज्ञापालने । अध्यक्षाय=सभाध्यक्षाय ।

भाष्यसार—१. **वाणी कैसी है**—ईश्वर की सृष्टि में वाणी, विद्या और व्यवहार को चेतन करने वाली, ज्ञान की साधक, बुद्धि, कर्म और विद्या को धारण करने वाली, विज्ञान प्राप्ति का साधन, क्षत्रिय के समान रक्षक, विद्वानों का सत्कार, मेल, दान आदि गुणों से युक्त, शिर के समान उत्तम गुणों वाली एवं जो बाहर और भीतर से रक्षा करने वाली, भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीनों कालों सुखकारक है ।

२. **विद्युत् कैसी है**--ईश्वर की सृष्टि में यह विद्युत् शिल्पविद्या अर लोक-व्यवहार को चेतन करने वाली, ज्ञान की साधक, प्रज्ञा, कर्म और विद्या को धारण करने का साधन, विज्ञान और विजय प्राप्ति का साधन, क्षत्रिय के समान प्रजा की रक्षक, शिर के समान उत्तम गुणों वाली तथा बाहर और अन्दर से रक्षा करने के कारण सर्वोतम, भूत, भविष्यत् और वर्तमान तीनों लोकों में सुखकारक है ।

इन उक्त गुणों वाली वाणी तथा विद्युत् को विद्वान् लोग सबके सखा होकर मानवता की प्राप्ति

के लिए, परमेश्वर प्रोक्त सब व्यवहारों की सिद्धि के लिए तथा सभाध्यक्ष लोगों की प्रीतिपूर्वक आज्ञा का पालन करने के लिए अपने वश में करते हैं। जो इस वाणी को तथा विद्युत् को अपने वश में कर लेता है वह लोकव्यवहार तथा परमार्थ सिद्धि के मार्ग में सबकी रक्षा करता है॥

३. **अलङ्कार**—यहाँ श्लेष अलङ्कार से वाणी और विद्युत् दो अर्थों का ग्रहण किया है ॥ ४ । १६ ॥

वत्स । **वाग्विद्युतौ**=**वाणी विद्युच्च** ॥ पूर्वार्द्धस्य साम्नी जगती । निषादः । उत्तरार्द्धस्य भुरिगार्ष्युष्णिक् । ऋषभः ॥

पुनस्ते कीदृश्यावित्युपदिश्यते ॥

फिर वह वाणी और बिजुली कैसी हैं, इस विषय का उपदेश किया है॥

अनु त्वा माता मन्यतामनु पिताऽनु भ्राता सगर्भ्योऽनु सखा सयूथ्यः ।
सा देवि देवमच्छेहीन्द्राय सोमᳬं रुद्रस्त्वावर्त्तयतु स्वस्ति सोमसखा पुनरेहि ॥ २० ॥

पदार्थः—(**अनु**) अन्यभावे (**त्वा**) त्वाम् (**माता**) जननी (**मन्यताम्**) विज्ञापयतु स्वीकुरुताम् (**अनु**) पुनरर्थे (**पिता**) जनकः (**अनु**) पश्चादर्थे । **अन्विति सादृश्यापरभावम् ॥ निरु० १ । ३ ॥** (**भ्राता**) बन्धुः (**सगर्भ्यः**) समानश्चासौ गर्भः सगर्भस्तस्मिन्भवः । **अत्र सगर्भसयूथसनुताद्यन् ॥ अ० । ४ । ४ । ११४ ॥ इति सूत्रेण भवार्थे यन्प्रत्ययः** (**अनु**) आनुकूल्ये (**सखा**) मित्रः (**सयूथ्यः**) समानश्चासौ यूथः समूहस्तस्मिन् भवः । पूर्वसूत्रेणास्य सिद्धिः (**सा**) पूर्वोक्ता (**देवि**) देदीप्यमाना (**देवम्**) परमेश्वरं विद्यायुक्तं शुद्धव्यवहारं वा (**अच्छ**) सम्यग्रीत्या (**इहि**) जानीहि प्राप्नुहि वा (**इन्द्राय**) परमैश्वर्य्यप्राप्तये (**सोमम्**) उत्तमपदार्थसमूहम् (**रुद्रः**) परमेश्वरः । चतुश्चत्वारिंशद्वर्षकृतब्रह्मचर्यो विद्वान् वा (**त्वा**) ताम् (**आ**) समन्तात् (**वर्त्तयतु**) प्रवृत्तं कारयतु (**स्वस्ति**) शोभनमस्ति यस्मिन् प्राप्तव्ये तत्सुखम् । **स्वस्तीति पदनामसु पठितम् ॥ निघं० ५ । ५ ॥** (**सोमसखा**) सोमः=परमेश्वरः सोमविद्याविन्मनुष्यो वा सखा=सुहृद्यस्य सः (**पुनः**) पश्चात् (**आ**) समन्तात् (**इहि**) प्राप्नुहि प्राप्नोति वा ॥ **अयं मंत्रः श० ३ । २ । ४ । २०—२१ व्याख्यातः ॥ २० ॥**

प्रमाणार्थ—(**अनु**) निरु० (१ । ३) में 'अनु' उपसर्ग का अर्थ "सादृश्य और अपरभाव (पश्चात्)" है (**सगर्भ्यः**) यह शब्द 'सगर्भसयूथसनुताद्यन्' (**अ०** ४ । ४ । ११४) सूत्र से 'सगर्भ' शब्द से 'भव' अर्थ में 'यन्' प्रत्यय करने पर सिद्ध है। (**स्वस्ति**) यह शब्द निघं० (५ । ५) में पद-नामों में पढ़ा है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । २ । ४ । २०—२१) में की गई है ॥ ४ । २० ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्य ! यथा रुद्रः**=**परमेश्वरो विद्वान् वा** परमेश्वरः, चतुश्चत्वारिंशद्वर्षकृतब्रह्मचर्यो विद्वान् वा **वर्त्तयतु** प्रवृत्तं कारयतु, **यां वाणीं विद्युतं सोमम्** उत्तम पदार्थ-समूहं, **देवं** परमेश्वरं विद्यायुक्तं शुद्धव्यवहारं वा, **स्वस्ति**=**सुखं** शोभनमस्ति यस्मिन् प्राप्तव्ये तत्सुखं, **यस्मा इन्द्राय** परमैश्वर्यप्राप्तये **आवर्त्तयतु** समन्तात् प्रवृत्तं कारयतु, **या सोमसखा** सोमः=परमेश्वरः

भावार्थ—हे मनुष्य ! जैसे (**रुद्रः**) परमेश्वर अथवा चवालीस (४४) वर्ष ब्रह्मचर्य पालन करने वाला विद्वान् (**वर्तयतु**) प्रेरणा करे, जिस वाणी, विद्युत् और (**सोमम्**) उत्तम पदार्थों को (**देवम्**) परमेश्वर वा विद्या से युक्त शुद्ध व्यवहार को (**स्वस्ति**) उत्तम सुख को जिस (**इन्द्राय**) परम ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए (**आवर्त्तयतु**) सब प्रकार प्रेरणा करे; और जिससे (**सोमसखा**) परमेश्वर वा

सोमविद्याविन्मनुष्यो वा सखा=सुहृद्यस्य सः [सा] पूर्वोक्ता **देवि**=**वाग विद्युद् वा** देदीप्यमाना **देवं**=**विद्वांसं** परमेश्वरं विद्यायुक्तं शुद्धव्यवहारं वा **एति**, तथैव त्वं **तस्मै पुनरच्छेहि**=**पुनः पुनः समन्तात् सम्यग्रीत्या प्राप्नुहि** पश्चात् सम्यग्रीत्या जानीहि प्राप्नुहि वा ।

एतद्विद्यां ग्रहीतुं त्वा=**त्वां माता** जननी **अनुमन्यताम्** अन्यभावेन विज्ञापयतु स्वीकुरुतां, **पिता** जनकः **अनुमन्यतां** पुनः विज्ञापयतु स्वीकुरुतां, **सगर्भ्यः** समानश्चासौ गर्भः सगर्भस्तस्मिन् भवः **भ्राता** बन्धुः **अनुमन्यतां** पश्चाद् विज्ञापयतु स्वीकुरुतां, **सयूथ्यः** समानश्चासौ यूथः=समूहस्तस्मिन् भवः **सखा** मित्रः **अनुमन्यताम्** अनुकूलं विज्ञापयतु स्वीकुरुतां, **त्वं च त्वा**=**एतां पुनः पुनः पुरुषार्थेनैहि**=**प्राप्नुहि**, समन्तात् प्राप्नुहि (प्राप्नोति वा) ॥ ४ । २० ॥

सोम विद्या को जानने वाला मनुष्य मैत्री करता है वह [**सा**] पूर्वोक्त (**देवि**) प्रकाशमान वाणी और विद्युत् (**देवम्**) परमेश्वर वा विद्या युक्त शुद्ध व्यवहार वाले विद्वान् को प्राप्त होती है वैसे तू उसे (**पुनः**) बार-बार (**अच्छ**) उत्तम रीति से (**इहि**) जान वा प्राप्त कर ।

इस विद्या को ग्रहण करने के लिए [**त्वा**] तुझे (**माता**) तेरी जननी (**अनुमन्यताम्**) स्वयं समझावे एवं स्वीकृति देवे, (**पिता**) तेरा पिता (**अनुमन्यताम्**) शिक्षा और स्वीकृति देवे, (**सगर्भ्यः**) उसी गर्भ से उत्पन्न हुआ अर्थात् सगा (**भ्राता**) भाई (**अनुमन्याम्**) बतलावे और स्वीकृति देवें । (**सयूथ्यः**) उसी यूथ अर्थात् समूह में रहने वाला (**सखा**) मित्र (**अनुमन्यताम्**) तेरे अनुकूल होकर तुझे कहे और स्वीकृति देवे और तू (**त्वा**) इस विद्या को बार-बार पुरुषार्थ करके (**ऐहि**) सब ओर से प्राप्त कर ॥ ४ । २० ॥

[एतद्विद्यां ग्रहीतुं त्वा=त्वां **माता, पिता, सगर्भ्यो भ्राता, सयूथ्यः सखाऽनुमन्यताम् त्वं च त्वा**=**एतां पुनः पुनः पुरुषार्थेनैहि**]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ मनुष्यैः परस्परमेवं वर्त्तितव्यं—यथा धर्मात्मा विदुषी माता, धर्मात्मा विद्वान् पिता, भ्राता, मित्रादयश्च सत्ये व्यवहारे प्रवर्तेरँस्तथैव पुत्रादिभिरप्यनुवर्तितव्यम् ।

यथा च विद्वांसो धार्मिकाः पुत्रादयो धर्मे व्यवहारे प्रवर्तेरँस्तथैव मात्रादिभिरप्यनुष्ठातव्यमित्येवं सर्वैः परस्परं वार्त्तित्वाऽऽनन्दितव्यम् ॥ ॥ ४ । २० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ सब मनुष्य परस्पर ऐसे व्यवहार करें—जैसे धर्मात्मा विदुषी माता, धर्मात्मा विद्वान् पिता, भाई और मित्र आदि सत्य व्यवहार में प्रवृत्त रहें वैसे पुत्र आदि भी उनका अनुकरण करें ।

और—जैसे विद्वान् धार्मिक पुत्र आदि धर्मयुक्त व्यवहार में प्रवृत्त हों वैसे ही माता आदि भी उनका अनुसरण करें, इस प्रकार सब परस्पर बर्ताव करके आनन्द में रहें ॥ ४ । २० ॥

भा० पदार्थः—माता=धर्मात्मा विदुषी माता । पिता=धर्मात्मा विद्वान् पिता ॥

भाष्यसार—१. **वाणी कैसी है**—वाणी की प्राप्ति के लिये रुद्र अर्थात् परमेश्वर अथवा ४४ वर्ष का रुद्र विद्वान् ब्रह्मचारी प्रेरणा करता है तथा उत्तम पदार्थ, परमेश्वर, विद्यायुक्त शुद्धव्यवहार, उत्तम सुख और परम ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए भी प्रेरणा करता है । परमेश्वर और सोमविद्या का विद्वान् जिसके सखा हैं वह हार्दिक भावों को प्रकाशित करने वाली वाणी परमेश्वर को प्राप्त कराती है, विद्यायुक्त शुद्ध व्यवहार से सुभूषित करती है ।

२. **विद्युत कैसी है**—वाणी के समान विद्युत्—विद्या की प्राप्ति के लिए भी रुद्र अर्थात्

परमेश्वर अथवा विद्वान् रुद्र ब्रह्मचारी प्रेरणा देता है। तथा उत्तम पदार्थ, परमेश्वर, विद्यायुक्त शुद्ध व्यवहार, उत्तम सुख और परम ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये भी प्रेरणा करता है। परमेश्वर और सोमविद्या का ज्ञाता विद्वान् विद्युत्-विद्या के मित्र हैं। यह विद्युत् सब पदार्थों को प्रदीप्त करने वाला है। परमेश्वर और विद्यायुक्त शुद्ध व्यवहार की प्राप्ति का साधन है।

३. **वाणी और विद्युत्-विद्या की प्राप्ति के लिए अनुमति**—इस वाणी तथा विद्युत्-विद्या को ग्रहण करने के लिये धर्मात्मा विदुषी माता, धार्मिक विद्वान् पिता, भाई तथा मित्र आदि सभी लोग अपने पुत्र आदिकों को स्वीकृति प्रदान करें।

४. **अलङ्कार**—मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि शब्द लुप्त है इसलिये वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि जैसे धर्मात्मा विदुषी माता, तथा धार्मिक विद्वान् पिता आदि विद्याप्राप्ति रूप धर्मयुक्त सत्य व्यवहार में प्रवृत्त हों वैसे पुत्र आदि भी प्रवृत रहा करें और जैसे पुत्र आदि धर्मयुक्त व्यवहार में प्रवृत्त रहें वैसे माता-पिता आदि भी धर्म-व्यवहार में प्रवृत रहा करें ॥ ४। २०॥

●

वत्सः। **वाग्विद्युतौ**=**वाणी विद्युच्च**। विराडार्षी बृहती। मध्यमः॥

पुनस्ते कीदृश्यावित्युपदिश्यते॥

फिर वह वाणी और बिजुली कैसे हैं, इस विषय का उपदेश किया है॥

वस्व्यस्यदितिरस्यादित्यासि रुद्रासि चन्द्रासि।
बृहस्पतिष्ट्वा सुम्ने रम्णातु रुद्रो वसुभिराचके॥ २१॥

पदार्थः—(**वस्वी**) याऽग्न्यादिपदार्थाख्यवसुविद्यासंवन्धिनी वसुभिश्चतुर्विशतिवर्ष कृतब्रह्मचर्य्यैः प्राप्ता सा (**असि**) अस्ति। **अत्र सर्वत्र व्यत्ययः** (**अदितिः**) प्रकाशवन्नित्या। **अतितिद्यौरिति प्रकाशकारकोऽर्थो** गृह्यते (**असि**) अस्ति (**आदित्या**) यऽऽदित्यवदर्थविद्याप्रकाशिकाऽष्टचत्वारिंशत्संवत्सरपर्यन्तानुष्ठितब्रह्मचर्य्यैः स्वीकृता सा (**असि**) अस्ति (**रुद्रा**) सा प्राणवायुसंवन्धिनी चतुश्चत्वारिंशद्वायनावधिसेवितब्रह्मचर्यैः स्वीकृता सा (**असि**) अस्ति (**चन्द्रा**) आह्लादयित्री (**असि**) अस्ति (**बृहस्पतिः**) परमेश्वरो विद्वान् वा (**त्वा**) ताम् (**सुम्ने**) सुखे (**रम्णातु**) रमयतु। **अत्रान्तर्गतो ण्यर्थो विकरणव्यत्ययश्च** (**रुद्रः**) दुष्टानां रोदयिता विद्वान् (**वसुभिः**) उषितसर्वविद्यैर्विद्वद्भिः सह (**आ**) समन्तात् (**चके**) कामितवान् कामयतां वा **अत्र पक्षे लोडर्थे** **लिट्। आचक इति कान्तिकर्मसु पठितम्॥ निघं० २। ६॥ अयं मंत्रः श० ३। २। ४। १—२ व्याख्यातः॥ २१॥**

प्रमाणार्थ—(**असि**) अस्ति। इस मन्त्र में 'असि' पद पर सर्वत्र व्यत्यय है। (**अदितिः**) प्रकाशवन्नित्या। "अदितिर्द्यौः०" इत्यादि वेद मन्त्र के प्रमाण से 'अदिति' शब्द से प्रकाशकारक अर्थ गृहीत होता है। (**रम्णातु**) रमयतु। यहाँ णिच् का अर्थ अन्तर्भावित है और विकरण प्रत्यय का व्यत्यय है। (**चके**) यहाँ पक्ष में लोट्-अर्थ में लिट्-लकार है। (**आचके**) यह पद निघं० (२। ६) में कान्ति अर्थ वाली क्रियाओं में पढ़ा है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३। २। ४। १—२) में की गई है॥ ४। २१॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् मनुष्य! **यथा या वस्वी** याऽग्न्यादि पदार्थाख्यवसुविद्या-सम्बन्धिनी, वसुभिश्चतुर्विंशतिवर्षकृत ब्रह्मचर्यैः

भावार्थ—हे विद्वान् मनुष्य! जैसे जो (**वस्वी**) अग्नि आदि पदार्थ नामक वसु विद्या से सम्बन्धित, और जिसे चौबीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य

प्राप्ता सा [**असि**]=**अस्ति, अदितिः** प्रकाशवन्नित्या [**असि**]=**अस्ति, रुद्रा** सा प्राणवायुसम्बन्धिनी, चतुश्चत्वारिंशद्वायनावधिसेवित ब्रह्मचर्यैः स्वीकृता सा [**असि**]=**अस्ति, आदित्या** याऽऽदित्यवदर्थ विद्याप्रकाशिकाऽष्टचत्वारिंशत्संवत्सरपर्यन्तानुष्ठित-ब्रह्मचर्यैः स्वीकृता सा [**असि**]=**अस्ति, चन्द्रा** आह्लादयित्री [**असि**]=**अस्ति, यां बृहस्पतिः** परमेश्वरो विद्वान् वा **सुम्ने** सुखे **रमयति=प्रेरयति, यां रुद्रः** दुष्टानां रोदयिता विद्वान् **वसुभिः** उषित सर्वविद्यैर्विद्वद्भिः **सह वर्तमानामाचके** समन्तात् कामितवान् कामयतां वा, **यामहं कामये, तथा त्वां=तां भवान् रम्णातु=रमयतु** ॥ ४ । २१ ॥

पालन करने वालों ने प्राप्त किया [**असि**] है जो (**अदितिः**) प्रकाश के समान नित्य [**असि**] है जो (**रुद्रा**) प्राण वायु से सम्बन्धित तथा चवालीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य सेवन करने वालों ने जिसे स्वीकार किया [**असि**] है, जो (**आदित्या**) आदित्य के समान पदार्थ और विद्या को प्रकाशित करने वाली एवं अड़तालीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य के अनुष्ठाता ने जिसे स्वीकार किया [**असि**] है जो (**चन्द्रा**) आनन्द-दायक [**असि**] है, जिसे (**बृहस्पतिः**) परमेश्वर वा विद्वान् (**सुम्ने**) सुख के निमित्त प्रेरित करता है, जिसको (**रुद्रः**) दुष्टों को रुलाने वाला विद्वान् (**वसुभिः**) सब विद्याओं में निवास करने वाले विद्वानों के संग रहने वाली वाणी वा विद्युत् को (**आचके**) सब ओर से चाहता है और जिसे मैं भी चाहता हूँ वैसे (**त्वा**) उस विद्या में आप भी (**रम्णातु**) रमण करो ॥ ४ । २१ ॥

[**या वस्वी [असि]=अस्ति, अदितिः [असि]=अस्ति**]

भावार्थः—अत्र श्लेषवाचकलुप्तोपमा-लङ्कारौ ॥ यथा ये वाग्विद्युतौ प्राणपृथिव्यादिभिः सह वर्तमाने अनेकव्यवहारहेतू स्तः,

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार हैं ॥ जैसे जो वाणी और विद्युत् प्राण और पृथिवी आदि के साथ अनेक व्यवहारों के साधक हैं,

[**रुद्रा [असि]=अस्ति, आदित्या [असि]=अस्ति, चन्द्रा [असि]=अस्ति**]

ये जितेन्द्रियादिधर्मपुरस्सरं यथायोग्यं कृतब्रह्मचर्यैर्मनुष्यैर्विज्ञानेन क्रियासु संप्रयोजिते सत्यौ वाग्विद्युतौ बहुसुखकारके जायेते । एते त्वमपि नित्यं सेवस्व ॥ ४ । २१ ॥

और जो जितेन्द्रियता आदि धर्माचरण पूर्वक यथायोग्य ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले मनुष्यों से विज्ञान के द्वारा क्रियाओं में प्रयुक्त किये हुए वाणी और विद्युत् अति सुखकारक होते हैं । इनका तू भी नित्य सेवन कर ॥ ४ । २१ ॥

भा० पदार्थः—चन्द्रा=बहुसुखकारिका ॥

भाष्यसार—**१. वाणी कैसी है**—इस वाणी का वसु अर्थात् अग्नि आदि पदार्थ विद्या से सम्बन्ध है, और इसे वसु अर्थात् २४ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य-पालन करने वाले विद्वान् प्राप्त करते हैं, यह प्रकाश के समान नित्य है, प्राण-वायु से इसका सम्बन्ध है, अर्थात् प्राण से इसकी उत्पत्ति होती है, रुद्र अर्थात् ४४ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्यपालन करने वाले विद्वान् इसे स्वीकार करते हैं, प्राप्त करते हैं, यह आदित्य (सूर्य) के समान पदार्थों को प्रकाशित करने वाली तथा ४८ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य पालन करने वाले विद्वानों के द्वारा विद्या का प्रकाश करने वाली और सबको आह्लादित करके अति सुख देने वाली है । परमेश्वर वेदवाणी का तथा विद्वान् वैदिक-वाणी का प्रकाश करता है ।

२. विद्युत् कैसी है—इस विद्युत् का वसु अर्थात् अग्नि आदि पदार्थ विद्या से गहरा सम्बन्ध है,

वसु ब्रह्मचारी इसे प्राप्त करते हैं, यह प्रकाश के समान नित्य है, प्राण-वायु से इसका सम्बन्ध है अर्थात् यह प्राण वायु की प्रेरक है, रुद्र ब्रह्मचारी इसे प्राप्त करते हैं, यह सूर्य के समान रात्रि में पदार्थों को प्रकाशित करती है, आदित्य ब्रह्मचारी इसे प्राप्त करते हैं, यह विद्युत्-विद्या विद्वानों को आह्लादित करने वाली है, इसके सदुपयोग से सभी आह्लादित होते हैं। परमेश्वर और विद्वान् भी इस विद्युत् विद्या का प्रकाश करता है ॥

३. **अलङ्कार**—यहाँ श्लेष अलङ्कार होने से वाणी और विद्युत् दोनों अर्थों का ग्रहण किया है, तथा मन्त्र में उपमा वाचक 'इव' आदि शब्द के लुप्त होने से वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि जैसे बृहस्पति अर्थात् परमेश्वर और विद्वान् वेदवाणी और विद्युत् विद्या को प्रकाशित करते हैं इसी प्रकार अन्य जन भी इस वाणी तथा विद्युत्-विद्या में रमण करते रहें, इसे प्रकाशित करते रहें ॥

●

वत्सः । **वाग्विद्युतौ**=वाणी विद्युच्च ॥ ब्राह्मी पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

पुनस्ते कीदृश्यावित्युपदिश्यते ॥

फिर वे वाणी और बिजुली कैसी हैं, इस विषय का उपदेश किया है ॥

अदि॑त्यास्त्वा मू॒र्द्धन्नाजि॑घर्म्मि देव॒यज॑ने पृथि॒व्याऽइडा॑यास्प॒दम॑सि घृ॒तव॒त् स्वाहा॑ ।
अ॒स्मे र॑मस्वा॒स्मे ते॒ बन्धु॒स्त्वे रा॒यो मे रा॒यो मा व॒यꣳरा॒यस्पोषे॑ण॒ वियौ॑ष्म॒ तोतो॒ राय॑: ॥२२॥

पदार्थः—(**अदित्याः**) अन्तरिक्षस्य । **अदितिरन्तरिक्षमित्यस्मादयमर्थो गृह्यते** (**त्वा**) ताम् (**मूर्द्धन्**) मूर्द्धनि वर्त्तमानाम् (**आ**) समन्तात् (**जिघर्मि**) प्रदीप्ये संचालयामि वा (**देवयजने**) देवानां=विदुषां संगतिकरण एतेभ्यो दाने वा (**पृथिव्याः**) भूमेर्मध्ये (**इडायाः**) स्तोतुमन्वेष्टुमर्हाया वेदवाण्याः । **इडेति वाङ्नामसु पठितम् ॥ निघं० १ । ११ ॥** (**पदम्**) वेदितव्यं प्राप्तव्यं वा (**असि**) अस्ति (**घृतवत्**) घृतेन पुष्टिदीप्तिकारकेणतुल्या (**स्वाहा**) यया क्रियया सुहुतं यजति तस्याः (**अस्मे**) अस्मासु (**रमस्व**) रमतां रमयतु वा (**अस्मे**) अस्माकम् । **अत्र सर्वत्र सुपां सुलुगिति शे आदेशः** (**ते**) तव (**बन्धुः**) भ्राता (**त्वे**) त्वयि (**रायः**) विद्यादिसुवर्णधनम् (**मे**) मपि (**रायः**) धनम् (**मा**) निषेधार्थे (**वयम्**) मनुष्याः (**रायः**) उक्तधनस्य (**पोषेण**) पुष्यन्ति येन तेन (**वि**) विगतार्थे (**यौष्म**) युक्ता भवेम (**तोतः**) तुवन्ति=जानन्ति प्राप्नुवन्ति हिंसन्ति वा येन सः । **अत्र तु 'गतिवृद्धिहिंसासु' इति धातोर्बाहुलकादौणादिकस्तन् प्रत्ययः** (**रायः**) विद्याराज्यसमृद्धयः ॥ **अयं मंत्रः श० ३ । ३ । १ । ४—११ व्याख्यातः ॥ २२ ॥**

प्रमाणार्थ—(**अदित्याः**) अन्तरिक्षस्य । "अदितिरन्तरिक्षम्०" इत्यादि वेद मन्त्र से 'अदिति' शब्द से 'अन्तरिक्ष' अर्थ गृहीत होता है । (**इडायाः**) 'इडा' शब्द निघं० (१ । ११) में वाणी-नामों में पढ़ा है । (**अस्मे**) अस्माकम् । यहां सर्वत्र 'सुपां सुलुक्०' [**अ० ७ । १ । ३९**] सूत्र से 'शे' आदेश है । (**तोतः**) यह शब्द गति-वृद्धि और हिंसा अर्थ वाली 'तु' धातु से बहुल करके औणादिक 'तन्' प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ३ । १ । १४—११) में की गई है ॥ ४ । २२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् मनुष्य ! **त्वं यथा या देवयजने** देवानां=विदुषां सङ्गतिकरण एतेभ्यो दाने वा **अदित्याः** अन्तरिक्षस्य **पृथिव्याः**

भाषार्थ—हे विद्वान् मनुष्य ! तू जैसे जो (**देवयजने**) विद्वानों के साथ सङ्ग करने वा इनको दान देने में (**अदित्याः**) अन्तरिक्ष के (**पृथिव्याः**)

भूमेर्मध्ये इडायाः स्तोतुमन्वेष्टुमर्हाया वेदवाण्याः [**मूर्द्धन्**] मूर्द्धनि वर्तमानां **स्वाहा** यया क्रियया सुहुतं यजति तस्याः **घृतवत्** घृतेन=पुष्टिदीप्तिकारकेण तुल्या **पदं** वेदितव्यं प्राप्तव्यं वा **असि**=**अस्ति**, **यामहम् आ+जिघर्मि** समन्तात् प्रदीप्ये सञ्चालयामि वा **त्वा**=**तां त्वमपि जिघृहि** ।

भूमि के मध्य में (**इडायाः**) स्तुति करने और खोजने योग्य वेदवाणी [**मूर्द्धन्**] शिर पर विद्यमान (**स्वाहा**) उत्तम हवन क्रिया से (**घृतवत्**) पुष्टि और दीप्ति करने वाले घृत के समान (**पदम्**) जानने प्राप्त करने योग्य वाणी और विद्युत् (**असि**) हैं, जिसको मैं (**आ+जिघर्मि**) प्रदीप्त वा सचालित करता हूँ (**त्वा**) उसे तू भी प्रदीप्त वा संचालित कर ।

या अस्मे=**अस्मासु रमते सा युष्मास्वपि रमस्व**=रमतां रमयतु वा, **यामहं रमयामि तां भवानपि स्वस्मिन् रमयतु** ।

जो (**अस्मे**) हम में रमण करती है वह तुम्हारे में भी (**रमस्व**) रमण करे । जिसे मैं रमण कराता हूँ उसे आप भी अपने में रमण कराओ ।

योऽस्मे=**अस्माकं बन्धुः** भ्राता **अस्ति स ते**=**तव अप्यस्तु**, **यो रायः**=धनसमूहः विद्यादिसुवर्णधनं **त्वय्यस्ति स मे**=**मय्यप्यस्तु** ।

जो (**अस्मे**) हमारा (**बन्धु**) भाई है वह (**ते**) आपका भी होवे और जो (**रायः**) विद्यादि और सुवर्णादि धन समूह आपके पास है वह (**मे**) मेरे पास भी हो ।

तोतः तुवन्ति=जानन्ति प्राप्नुवन्ति हिंसन्ति वा येन सः, भवान् **या रायः**=**विद्याधनसमृद्धीः प्राप्नोति ता मे**=**मय्यपि सन्तु, या मयि वर्त्तन्ते तास्त्वे**=**त्वयि अपि सन्तु, एता रायः**=**समृद्धयः** विद्याराज्यसमृद्धय **सन्ति ताः सर्वेषां सुखायापि संप्रयुक्ताः सन्तु** ।

(**तोतः**) जानने, प्राप्त करने और हिंसा के साधन आप जो (**रायः**) विद्या, धन आदि की समृद्धि को प्राप्त करते हो वह (**मे**) मुझ में भी हो, जो मुझ में हैं वे (**त्वे**) तुझ में भी हों । ये (**रायः**) विद्या, राज्य धन की समृद्धि हैं वे सबके सुख के लिए प्रयुक्त हों ।

तथैवं जानन्तो निश्चिन्वन्तोऽनुतिष्ठन्तो यूयं वयं मनुष्याः **च रायः** उक्तधनस्य **पोषेण** पुष्यन्ति येन तेन **कदाचिन्मा वियौष्म**=**कदाचिद् वियुक्ता मा भवेम, तथैव सर्वे भवन्तु** ।। ४ । २२ ।।

जैसे जानते, निश्चय करते एवं आचरण करते हुए तुम और हम (**रायः**) धन की (**पोषेण**) पुष्टि से कभी भी (**मा वियौष्म**) पृथक् न हों, वैसे सब होवें ।। ४ । २२ ।।

[हे विद्वन् मनुष्य ! त्वं यथा देवयजने···घृतवत् **पदमसि=अस्ति, यामहमाजिघर्मि त्वा=तां त्वमपि जिघृहि,···एता रायः सन्ति ताः सर्वेषां सुखायापि सं प्रयुक्ताः सन्तु,···यूयं वयं च रायस्पोषेण कदाचिन्मा वियौष्म=कदाचिद् वियुक्ता मा भवेम**]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ।। मनुष्यैर्या सत्यविद्याधर्मसंस्कृता वाग्, विद्याक्रियाभ्यां संप्रयुक्ता विद्युदादिविद्याऽस्ति सा सर्वेभ्य उपदिश्य, संग्राह्य, सुखदुःखव्यवस्थां समानां विदित्वा, सर्वमैश्वर्यं परोपकारे संयोज्य सदा सुखयितव्यम् ।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है ।। सब मनुष्य जो सत्य विद्या और धर्माचरण से शुद्ध वाणी और जो विद्या तथा क्रिया से प्रयोग में आई हुई विद्युदादि विद्या है उसका सबको उपदेश करके, ग्रहण करा, सुख-दुःख की व्यवस्था को समान जानकर, सब ऐश्वर्य परोपकार में लगा कर सदा सुखी रहें ।

नैवं कदाचिद् व्यवहारः कर्त्तव्यो येन स्वस्या-

ऐसा व्यवहार कभी न करें कि जिससे अपने

न्यस्य वैश्वर्यंह्लसः कदाचिद् भवेदिति ॥ ४ । २२ ॥ वा दूसरे के ऐश्वर्य की कभी हानि होवे ॥ ४ । २२ ॥

भाष्यसार—१. वाणी और विद्युत् कैसी है—यह वेद-वाणी तथा विद्युत् विद्वानों के सङ्ग से तथा उनका दान आदि से सत्कार करके आकाश और भूमि पर सर्वत्र स्तुति करने के योग्य हैं, अन्वेषण करने के योग्य हैं। पुष्टिकारक होम क्रिया के समान जानने योग्य हैं तथा प्राप्त करने योग्य हैं। विद्वान् लोग चहुँ ओर इसका प्रदीपन और संचालन करते हैं। यह विद्वानों में रमण करती हैं। यह विद्वानों की बन्धु (भ्राता) हैं। और उन्हें विद्यादि तथा सुवर्ण आदि धन प्राप्त कराती हैं। विद्वान् लोग इन्हें जानकर तथा प्राप्त करके और दुष्ट जनों का इससे ताड़न करके विद्या और धन की समृद्धि को प्राप्त करते हैं। यह विद्वानों की विद्या और धन की समृद्धि सबके सुख के लिये प्रयुक्त होती है। इस प्रकार वाणी और विद्युत् की महिमा को जानने वाले, निश्चयवान् तथा आचरणशील विद्वान् कभी भी धन की पुष्टि से वञ्चित नहीं होते।

२. **अलङ्कार**—मन्त्र में वाचक शब्द लुप्त है अतः वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि विद्वानों के समान अन्य जन भी वाणी तथा विद्युत् विद्या का उपदेश तथा ग्रहण करके ऐश्वर्य को प्राप्त कर उसे परोपकार में लगाकर सदा सुखी रहें तथा किसी के ऐश्वर्य की हानि न करें ॥ ४ । २२ ॥

वत्सः । **वाग्विद्युतौ**=वाणी विद्युच्च ॥ आस्तारपंक्तिश्छन्दः । पंचमः ॥

एतयोः कथमुपयोगः कार्य्य इत्युपदिश्यते ॥

वाणी और विद्युत् इन दोनों का किस प्रकार उपयोग करना चाहिये, इस विषय का उपदेश किया है ॥

समख्ये देव्या धिया सं दक्षिणयोरुचक्षसा ।
मा मऽआयुः प्रमोषीर्मो ऽ अहं तव वीरं विदेय तव देवि सन्दृशि ॥ २३ ॥

पदार्थः—(सम्) सम्यगर्थे (अख्ये) प्रकथयामि । अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदं लडर्थे लुङ् च (देव्या) देदीप्यमानया (धिया) प्रज्ञया कर्मणा वा (सम्) एकीभावे (दक्षिणया) ज्ञानसाधिकयाऽज्ञाननाशिकया च (उरुचक्षसा) उरु=बहु चक्षो=व्यक्तं वचनं दर्शनं वा यस्यास्तया (मा) निषेधे (मे) मम (आयुः) जीवनम् (प्र) क्रियायोगे (मोषीः) मुष्णीयात्खण्डयेत् । अत्र लिङर्थे लुङ् (मो) निवारणे (अहम्) सर्वप्रियं प्रेप्सुः (तव) सर्वसुहृदः (वीरम्) विक्रान्तं जनम् (विदेय) अन्यायेन विन्देय । अत्र वा छन्दसि सर्वे विधयो भवन्तीति नुमभावः । अत्रावैयाकरणेन महीधरेण भ्रान्त्या विद्लृलाभ इत्यस्य व्यत्ययेन तुदादिभ्यः शप्रत्ययेन लिङि रूपमित्यशुद्धं व्याख्यातम् । कुतः ? विद्लृ धातोः स्वत एव तुदादित्वं वर्त्तते (तव) तस्याः (देवि) दिव्यगुणैर्विराजमानायाः । अत्रार्थाद्विभक्तेर्विपरिणाम इति विभक्तेर्विपरिणामः (संदृशि) समीचीनं दृग्दर्शनं यस्मिन् व्यवहारे तस्मिन् ॥ अयं मंत्रः श० ३ । ३ । १ । १२ व्याख्यातः ॥ २३ ॥

प्रमाणार्थ—(अख्ये) प्रकथयामि । यहाँ व्यत्यय से आत्मनेपद और लट् अर्थ में लुङ् लकार है। (मोषीः) मुष्णीयात् । यहाँ लिङ् अर्थ में लुङ् लकार है। (विदेय) विन्देय । यहाँ 'वा छन्दसि सर्वे विधयो भवन्ति' [अ० महा० १ । ४ । ९] इस भाष्य-वचन से 'नुम्' का अभाव है। यहाँ पर व्याकरण-शास्त्र से अनभिज्ञ महीधर ने भ्रान्ति से इस रूप को 'विद्लृ लाभे' इस धातु का व्यत्यय से "तुदादिभ्यः शः [अ० ३ । १ । ७७] सूत्र द्वारा 'श' प्रत्यय से लिङ् लकार में सिद्ध किया है जो सर्वथा अशुद्ध है,

क्योंकि 'विद्लृ' धातु का पाठ तो तुदादिगण में है ही, फिर व्यत्यय से तुदादि में इस धातु की गणना करना भ्रान्ति नहीं तो और क्या है ? (**देवि**) यहाँ 'अर्थाद्विभक्तेर्विपरिणामः' इस सिद्धान्त से विभक्ति का विपरिणाम (**परिवर्तन**) है। इस मन्त्र की व्याख्या श॰ (३ । ३ । १ । १२) में की गई है ॥ ४ । २३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् मनुष्य! **यथा**ऽहं सर्वप्रियं प्रेप्सुः **दक्षिणया** ज्ञानसाधिकयाऽज्ञाननाशिकया च **उरुचक्षसा** उरु=बहु चक्षो=व्यक्तं वचनं दर्शनं वा यस्यास्तया **देव्या** देदीप्यमानया **धिया** प्रज्ञया कर्मणा वा **तव** तस्याः **देवि=तस्या दिव्यगुणैर्विराजमानाया वाचो विद्युतो वा, संदृशि** समीचीनं दृग्=दर्शनं यस्मिन् व्यवहारे तस्मिन् **जीवनंसमख्ये** सम्यक् प्रकथयामि, **सा मे=मम आयुः** जीवनं **मा प्रमोषीः=खण्डनं न कुर्यात्** न मुष्णीयात=खण्डयेत्, **अहं** सर्वप्रियं प्रेप्सुः **एतां समख्ये=प्रख्यातां कुर्य्यामन्यायेन** तव सर्वसुहृदः **वीरं** विक्रान्तं जनं **मो=मा संविदेय** अन्यायेन एकीभूय न विन्देय **तथैव त्वमेतत् सर्वमाचर्य्यान्यायेनापि मम** वीरं विक्रान्तं जनं **च [मो विदेय]=मा संविन्दस्व** ॥ ४ । १३ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् मनुष्य ! जैसे (**अहम्**) सबका प्रिय चाहने वाला मैं (**दक्षिणया**) ज्ञानसाधक और अज्ञान-नाशक (**उरुचक्षसा**) अत्यन्त स्पष्ट कथन वा दर्शन युक्त (**देव्या**) प्रकाशमान (**धिया**) बुद्धि वा कर्म से (**तव**) आपकी (**देवी**) दिव्यगुणों से शोभायमान उस वाणी अथवा विद्युत् के (**संदृशि**) ठीक-ठीक दर्शन कराने वाले कार्य में जीवन को (**समख्ये**) प्रसिद्ध करता हूँ। वह वाणी वा विद्युत् (**मे**) मेरे (**आयुः**) जीवन को (**मा प्रमोषीः**) खण्डित न करे और (**अहम्**) सबका प्रिय चाहने वाला मैं इस वाणी वा विद्युत् को (**समख्ये**) प्रसिद्ध करूँ तथा अन्याय से (**तव**) सब के मित्र आपके (**वीरम्**) विक्रमशाली मनुष्य को (**मो संविदेय**) अन्याय से संगठित होकर प्राप्त न होऊँ वैसे ही तू यह सब आचरण करके अन्याय से भी मेरे (**वीरम्**) विक्रमशाली मनुष्य को [**मो विदेय**] प्राप्त न हो ॥ ४ । २३ ॥

[अहं···देव्या धिया तव देवि=तस्या दिव्यगुणै विराजमानाया वाचो विद्युतो वा संदृशि जीवनं समख्ये···वीरं मो=मा संविदेय]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ मनुष्यैः शुद्धाभ्यां कर्मप्रज्ञाभ्यां वाग्विद्युद्विद्यां संगृह्य जीवनं वर्धयित्वा विद्यादिसदगुणेषु वीरान् सम्पाद्य सदा सुखयितव्यम् ॥ ४ । २३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है॥ सब मनुष्य शुद्ध कर्म और बुद्धि से वाग्-विद्या और विद्युद्-विद्या को ग्रहण करके, आयु को बढ़ाकर, वीरों को विद्यादि गुणों में सिद्ध करके सदा सुखी रहें ॥ ४ । २३ ॥

भा॰ भावार्थः—देव्या=शुद्धया।

भाष्यसार -१. **वाणी का उपयोग**—सबके प्रिय बनने के इच्छुक मनुष्य ज्ञान को सिद्ध करने वाली और अज्ञान का नाश करने वाली, स्पष्ट भाषण तथा दर्शन का साधन, दिव्य गुणों से देदीप्यमान बुद्धि के द्वारा और पुरुषार्थ से वेद-वाणी के प्रकाश में अपने जीवन का अध्ययन करें, आयु को बढ़ावें, इस वाणी को लोक में प्रख्यात करें। वीर पुरुषों को भी वाणी के द्वारा विद्यादि गुणों से भूषित करें।

२. **विद्युत् का उपयोग**—सब के प्रिय बनने के अभिलाषी मनुष्य ज्ञान साधक, अज्ञान-नाशक, व्यक्त वाचक तथा स्पष्ट दर्शक, दिव्य बुद्धि के द्वारा तथा कर्म के द्वारा दिव्यगुणों से प्रकाशित विद्युत्

के प्रकाश में अपने जीवन को सुखी बनावें, आयु को बढ़ावें, विद्युत्--विद्या को लोक में प्रख्यात करें। वीर जनों को भी विद्युत् विद्या सिखला कर सदा सुखी रहें।

३. अलङ्कार--मन्त्र में उपमा वाचक 'इव' आदि शब्द लुप्त होने से वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि जैसे विद्वान् लोग वाणी और विद्युत्—विद्या का उपयोग करें इसी प्रकार अन्य जन भी इनका उपयोग करें ॥ ४ । २३ ॥

●

वत्सः । **यज्ञः=स्पष्टम्** । पूर्वस्य ब्राह्मी जगती । निषादः ॥ अन्त्यस्य दशाक्षरस्य याजुषी पंक्तिः । पञ्चमः ॥

किं प्रतिपादनाय जिज्ञासुर्विदुषः पृच्छेदित्युपदिश्यते ॥

किस के प्रतिपादन के लिये जिज्ञासु मनुष्य विद्वानों से पूछे, इस विषय का उपदेश किया है ॥

एष ते गायत्रो भागऽइति मे सोमाय ब्रूतादेष ते त्रैष्टुभो भाग ऽ इति मे सोमाय ब्रूतादेष ते जागतो भाग ऽ इति मे सोमाय ब्रूताच्छन्दोनामानाᳬं साम्राज्यङ्गच्छेति मे सोमाय ब्रूतादास्माकोऽसि शुक्रस्ते ग्रह्यो विचितस्त्वा विचिन्वन्तु ॥ २४ ॥

पदार्थः—(**एषः**) प्रत्यक्षः (**ते**) तव (**गायत्रः**) गायत्रीप्रगाथोऽस्य सः । **सोऽस्यादिरितिच्छन्दसः प्रगाथेषु ॥ अ० ४ । २ । ५५ ॥ अनेन प्रगाथविषये प्रत्ययः** (**भागः**) सेवनीयः (**इति**) प्रकारार्थे (**मे**) मह्यम् (**सोमाय**) पदार्थविद्यासंपादकाय (**ब्रूतात्**) ब्रवीतु (**एषः**) यो विज्ञातुं योग्यः सः (**ते**) तव (**त्रैष्टुभः**) त्रिष्टुप्प्रगाथोऽस्य सः (**भागः**) अंशः (**इति**) प्रकारे (**मे**) मह्यम् (**सोमाय**) उत्तमरससंपादकाय (**ब्रूतात्**) ब्रवीतु (**एषः**) योक्तुमर्हः (**ते**) तव (**जागतः**) जगतीप्रगाथोऽस्य सः (**भागः**) स्वीकर्तुमर्हः (**इति**) प्रकारार्थे (**मे**) मह्यम् (**सोमाय**) पदार्थविद्यास्वीकारकाय (**ब्रूतात्**) उपदिशतु (**छन्दोनामानाम्**) यानि छन्दसामुष्णिगादीनां नामानि तेषाम् । **अत्र अनसन्तान्न० ॥ अ० ५ । ४ । १०३ ॥ इति सूत्रेण समासान्तष्टच् प्रत्ययः** (**साम्राज्यम्**) सम्यग्राजन्ते=प्रकाशन्ते ते सम्राजो राजानस्तेषां भावः कर्म वा तत् (**गच्छ**) प्राप्नुहि प्रापय वा (**इति**) प्रकारे (**मे**) मह्यम् (**सोमाय**) ऐश्वर्ययुक्ताय राज्याय (**ब्रूतात्**) ब्रवीतु (**आस्माकः**) योऽस्माकमयमुपदेष्टाऽधिपतिः सः (**असि**) वर्त्तसे (**शुक्रः**) पवित्रः पवित्रकारको वा (**ते**) तव (**ग्रह्यः**) ग्रहीतुं योग्यः (**विचितः**) विविधविद्याशुभगुणधनादिमिश्रितः संयुक्तः (**त्वा**) त्वां तं वा (**वि**) विविधार्थे (**चिन्वन्तु**) वर्धयन्तु । **अत्रान्तर्गतो ण्यर्थः ॥ अयं मंत्र श० ३ । ३ । २ । ४—८ व्याख्यातः ॥ २४ ॥**

प्रमाणार्थ—(**गायत्रः**) यह शब्द 'सोऽस्यादिरितिच्छन्दसः प्रगाथेषु' (**अ० ४ । २ । ५५**) सूत्र से प्रगाथ विषय में गायत्री शब्द से 'अण' प्रत्यय करने पर सिद्ध है। (**छन्दोनामानाम्**) यहाँ 'अनसन्तान्न०' (**अ० ५ । ४ । १०३**) सूत्र से समासान्त 'टच्' प्रत्यय है। (**चिन्वन्तु**) यहाँ णिच् का अर्थ अन्तर्भावित है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ३ । २ । ४—८) में की गई है ॥ ४ । २४ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे विद्वन्! त्वं विद्वांसं प्रति कोऽस्य यज्ञस्य गायत्रः** गायत्री प्रगाथोऽस्य सः **भागः** सेवनीयः **अस्तीति** एवं प्रकारं **पृच्छ,**

स विद्वान् **ते**=तस्य (तव) **एष** प्रत्यक्षः **अय-**

भावार्थ—हे विद्वान् मनुष्य ! तू विद्वान् से कौन यज्ञ का (**गायत्रः**) गायत्री वाला (**भागः**) सेवनीय भाग है (**इति**) ऐसा पूछ।

वह विद्वान् (**ते**) तुझे उस यज्ञ का (**एषः**) यह

मस्तीति एवं प्रकारं **मे**=मह्यं **सोमाय** पदार्थ विद्यासम्पादकाय **एतं ब्रूताद्**=ब्रवीतु=उपदिशतु ।

कोऽस्य यज्ञस्य त्रैष्टुभः त्रिष्टुप् प्रगार्थोऽस्य स **भागः** अंशः **अस्तीति** एवं प्रकारं त्वं **पृच्छ, स ते**=तस्य(तव) **एष** यो विज्ञातुं योग्यः सः **अयम् अस्तीति** एवं प्रकारं **समक्षे** खल्वेतं **मे**=मह्यं **सोमाय** उत्तमरससम्पादकाय **ब्रूताद्** ब्रवीतु ।

कोऽस्य यज्ञस्य जागतः जगतीप्रगाथोऽस्य स **भागः** स्वीकर्त्तुमर्हः **अस्तीति** एवं प्रकारं त्वं **पृच्छ, स ते**=तस्य (तव) **एष** योक्तुमर्हः **अयमस्तीति** एव प्रकारं **प्रसिध्क्ष्यैतं सोमाय** पदार्थविद्यास्वीकारकाय **मे**=मह्यं **ब्रूताद्** उपादिशतु ।

यथा भवान् छन्दोनामानाम्=उष्णिगादीनां छन्दसां यानि छन्दसामुष्णिगादीनां नामानि तेषां मध्ये प्रतिपादितस्य यज्ञस्योपदेशे **साम्राज्यं** सम्यग्राजन्ते=प्रकाशन्ते ते सम्राजो=राजानस्तेषां भावः कर्म वा तत् **[गच्छ]**=गच्छतु प्राप्नुहि प्रापय वा तथैवैतेषामेनं **सोमाय** ऐश्वर्ययुक्ताय राज्याय **मे**=मह्यं **ब्रूतात्** ब्रवीतु ।

यतस्त्वमास्माकः योऽस्माकमयमुपदेष्टाऽधिपतिः स **शुक्रः** पवित्रः पवित्रकारको वा **असि** वर्त्तसे, **तस्मान्ते**=तवाहं **विचितः** विविधविद्याशुभ गुणधनादिभिश्चितः संयुक्तः **ग्रह्यः** गृहीतुं योग्यः **अस्मि,**

[त्वा]=त्वं मां सर्वैरेतैर्विचिनुहि । अहं त्वां तं वा विचिनोम्येवं सोऽपिसर्वे त्वामेतं यज्ञं मां च **विचिन्वन्तु**=वर्धयन्तु विविधं वर्धन्तु ॥ ४ । २४॥

भाग है **(इति)** इस प्रकार **(मे)** मुझ **(सोमाय)** पदार्थ विद्या के सिद्ध करने वाले को इस यज्ञ का **(ब्रूतात्)** उपदेश करें ।

कौन इस यज्ञ का **(त्रैष्टुभः)** त्रिष्टुप् छन्द वाला **(भागः)** अंश है **(इति)** ऐसा तू पूछ—वह **(ते)** तुझे उसका **(एषः)** जानने के योग्य यह भाग है ऐसा समक्ष ही इसका **(मे)** मुझे **(सोमाय)** उत्तम रसों को सिद्ध करने वाले के लिए **(ब्रूतात्)** उपदेश करे ।

कौन इस यज्ञ का **(जागतः)** जगती छन्द वाला **(भागः)** स्वीकार करने योग्य भाग है **(इति)** ऐसा तू पूछ, वह **(ते)** तुझे उसका **(एषः)** यह युक्त करने योग्य भाग है इस प्रसिद्धि से उसका **(सोमाय)** पदार्थ विद्या को स्वीकार करने वाले **(मे)** मुझ को **(ब्रूतात्)** उपदेश करे ।

जैसे आप **(छन्दोनामानाम्)** उष्णिक् आदि छन्दों के मध्य में **(साम्राज्यम्)** अच्छे प्रकार प्रकाशित होने वाले राजाओं के स्वभाव वा कर्म को **[गच्छ]** प्राप्त होते हो वैसे ही **(सोमाय)** ऐश्वर्य युक्त राज्य प्राप्ति के लिए **(मे)** मुझे **(ब्रूतात्)** उपदेश करो ।

जो यह **(आस्माकः)** हमें उपदेश करने वाला स्वामी है वह **(शुक्रः)** स्वयं पवित्र तथा अन्यों को पवित्र करने वाला **(असि)** है । इसलिए **(ते)** तेरा मैं **(विचितः)** नाना विद्या, शुभ गुण तथा धन आदि से युक्त **(ग्रह्यः)** ग्रहण करने योग्य हूँ ।

तू मुझे इन सबके साथ बढ़ाइये । मैं **(त्वा)** तुझे वा उसको बढ़ाता ही हूँ, वह भी तथा सब तुम इस को और मुझे **(विचिन्वन्तु)** विविध प्रकार से बढ़ावें ॥ ४ । २४ ॥

[हे विद्वन् ! त्वं विद्वांसं प्रतिकोऽस्य यज्ञस्य गायत्रो भागो ऽस्तीति पृच्छं, स विद्वान् ते=तस्यैषोऽयमस्तीति··· एतं ब्रूताद्=ब्रवीति=उपदिशतु]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ मनुष्या विद्वद्भ्यः पृष्ट्वा सर्वा विद्याः संगृह्णीरन् ।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ सब मनुष्य विद्वानों से प्रश्न करके

विद्वांसः खल्वेताः संग्राहयन्तु ।

सब विद्याओं का संग्रह करें और विद्वान् लोग इन विद्याओं को ग्रहण करावें ।

[ते=तवाहं विचितो ग्रह्योऽस्मि,...सर्वे त्वामेतं यज्ञं मां च विचिन्वन्तु=वर्धयन्तु]

परस्परमनुग्राह्यानुग्राहकभावेन वर्त्तित्वा सर्वे वृद्धिं प्राप्य चक्रवर्त्तिराज्यं सेवेरन्निति ॥ ४ । २४ ॥

परस्पर अनुग्राह्य-अनुग्राहक भाव से वर्ताव करके सब लोग वृद्धि को प्राप्त करके चक्रवर्ती राज्य का सेवन करें ॥ ४ । २४ ॥

भा० पदार्थः—ग्रह्यः=परस्परमनुग्राह्यानुग्राहकभावः ।

भाष्यसार—जिज्ञासु मनुष्य विद्वानों से पूछे—हे विद्वान् पुरुष ! इस यज्ञ का गायत्र, त्रैष्टुभ और जागत भाग कौन सा है ? विद्वान्, पदार्थ विद्या के सम्पादक, उत्तम रस के साधक, एवं पदार्थ विद्या के स्वीकर्त्ता जिज्ञासु मनुष्य को उत्तर देवे कि यज्ञ का गायत्र आदि भाग यह है, ऐसा उपदेश करे । इस प्रकार सब मनुष्य विद्वानों से प्रश्न करके सब विद्याओं का संग्रह करे और विद्वान् लोग इन विद्याओं को ग्रहण करावें ।

जैसे विद्वान् लोग उष्णिक् आदि छन्दों से युक्त वेदों में प्रतिपादित यज्ञ के उपदेश से साम्राज्य को प्राप्त करते हैं वैसे जिज्ञासु मनुष्यों को भी इसका उपदेश करें । विद्वान् लोग स्वयं पवित्र तथा अन्यों को पवित्र करने वाले होते हैं वे विविध विद्या, शुभ गुण और धनादि से युक्त जिज्ञासु जन पर अनुग्रह करें । इस प्रकार विद्वान् और जिज्ञासु लोग परस्पर अनुग्राह्य और अनुग्राहक भाव से व्यवहार करके वृद्धि को प्राप्त हों और चक्रवर्ती राज्य का सेवन करें ॥ ४ । २४ ॥

वत्सः । **सविता=परमेश्वरः, सभाध्यक्षः** । पूर्वस्य भुरिक् शक्वरी । निषादः । सुक्रतुरित्युत्तरस्य भुरिगार्षी गायत्री । षड्जः ॥

पुनरीश्वरराजसभाप्रजागुणा उपदिश्यन्ते ॥

फिर ईश्वर, राजसभा और प्रजा के गुणों का उपदेश किया है ॥

अभि त्यं देवꣳसवितारमोण्योः कविक्रतुमर्चामि सत्यसवꣳरत्नधाममभि प्रियं मतिं कविम् ।
ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा ऽ अदिद्युतत्सवीमनि हिरण्यपाणिरमिमीत
सुक्रतुः कृपा स्वः प्रजाभ्यस्त्वा प्रजास्त्वाऽनुप्राणन्तु प्रजास्त्वमनुप्राणिहि ॥ २५ ॥

पदार्थः—(**अभि**) आभिमुख्ये (**त्यम्**) जगदीश्वरं राजसभास्थजनसमूहं वा (**देवम्**) सुखदातारम् (**सवितारम्**) देवानामग्न्यादीनां रसानां वा प्रसवितारम् (**ओण्योः**) द्यावापृथिव्योः । ओण्योरिति द्यावापृथिवीनामसु पठितम् ॥ निघं० ३ । ३० ॥ (**कविक्रतुम्**) कविः=सर्वज्ञा सकलविद्यायुक्ता क्रतुः=प्रज्ञा कर्म क्रमदर्शनं व यस्य तम् । कवि क्रान्तदर्शनो भवति कवतेर्वा ॥ निरु० १२ । १३ ॥ (**अर्चामि**) पूज्यामि (**सत्यसवम्**) सत्यं सव=ऐश्वर्य्यं जगद्वा यस्मिन्यस्य वा तम् (**रत्नधाम्**) यो रत्नानि=रमणीयानि विज्ञानानि हीरकादीनि भुवनानि वा दधातीति तम् (**अभि**) आभिमुख्ये (**प्रियम्**) यः प्रीणाति तम् (**मतिम्**) यो वेदादिशास्त्रैर्विद्वद्भिश्च मन्यते तम् (**कविम्**) वेदविद्याया उपदेष्टारं निमित्तं वा (**ऊर्ध्वा**) उत्कृष्टा (**यस्य**) सच्चिदानन्दस्वरूपस्य शुभगुणयुक्तस्य वा (**अमतिः**) रूपम् । अमतिरिति रूपनामसु पठितम् ॥ निघं० ३ । ७ ॥ (**भा**) यो

भाति प्रकाशते सः (**अदिद्युतत्**) प्रकाशितवान् । प्रकाशयति वा (**सवीमनि**) यः सूयते संसारस्तस्मिन् (**हिरण्यपाणिः**) हिरण्यानि=ज्योतींषि सूर्य्यादीनि सुवर्णादीनि वा पाणौ व्यवहारे यस्य सः । **ज्योतिर्हि** हिरण्यम् ॥ श० ४ । ३ । ४ । २१ ॥ **इति प्रमाणेन हिरण्यशब्देन ज्योतिषो ग्रहणम्** (**अमिमीत**) निर्मितवान् निर्मिमीते वा (**सुक्रतुः**) शोभनः क्रतुः=प्रज्ञा कर्म वा यस्य सः (**कृपा**) करुणा (**स्वः**) सुखमादित्यं वा । स्वरादित्यो भवति स एतानि सारयति ॥ निरु० ५ । ४ ॥ (**प्रजाभ्यः**) उत्पन्नाभ्यः सृष्टिभ्यः (**त्वा**) त्वाम् (**प्रजाः**) मनुष्यादिसृष्टयः (**त्वा**) त्वाम् (**अनुप्राणन्तु**) आयुर्भुञ्जताम् (**प्रजाः**) जगत्स्थाः (**त्वम्**) अयं वा (**अनुप्राणिहि**) जीवतोऽनुजीवनं धर धरति वा ॥ **अयं मन्त्रः श० ३ । ३ । २ । १२—१६ व्याख्यातः** ॥ २५ ॥

प्रमाणार्थ—(**ओण्योः**) यह शब्द निघं० (३ । ३०) में द्यावा-पृथिवी के नामों में पढ़ा है । (**कविक्रतुम्**) निरु० (१२ । १३) में 'कवि' शब्द की निरुक्ति इस प्रकार है—'कवि क्रान्त-दर्शी होता है', अथवा 'कु' धातु से कवि शब्द बनता है । (**अमतिः**) यह शब्द निघं० (३ । ७) में रूप-नामों में पढ़ा है । (**हिरण्यपाणिः**) शत० (४ । ३ । ४ । २१) के अनुसार 'हिरण्य' का अर्थ ज्योति है । इस प्रमाण से 'हिरण्य' शब्द से यहां ज्योति अर्थ ग्रहण किया है । (**स्वः**) निरु० (५ । ४) में 'स्वः' शब्द का अर्थ आदित्य है क्योंकि यह सब भूतों को गति कराता है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ३ । २ । १२—१६) में की गई है ॥ ४ । २५ ॥

[ईश्वरः]

सपदार्थान्वयः—हे परमात्मन् ! अहं **यस्य** सच्चिदानन्दस्वरूपस्य **सवीमनि** यः सूयते संसारस्तस्मिन् **उद्धर्वा** उत्कृष्टा **अमतिः** रूपं **भाः** यो भाति= प्रकाशते स **अदिद्युतत्** प्रकाशितवान् **कृपा** करुणा **स्वः**=**सुखम्** आदित्यं **करोति** ।

यो हिरण्यपाणिः हिरण्यानि=ज्योतींषि सूर्यादीनि पाणौ=व्यवहारे यस्य स **सक्रतुः** शोभनः क्रतुः=प्रज्ञा कर्म वा यस्य स **स्वरमिमीत**=**आदित्यं निर्मितवान्** ।

त्यं=**यं** जगदीश्वरं **ओण्योः** द्यावापृथिव्योः **सवितारं** देवानामग्न्यादीनां प्रसवितारं **कविक्रतुं** कविः= सर्वज्ञा सर्वविद्यायुक्ता प्रज्ञा यस्य तं [**सत्यसवसम्**] सत्यं सवः ऐश्वर्यं जगद्वा यस्मिन् **रत्नधां** यो रत्नानि =रमणीयानि विज्ञानानि भुवनानि वा दधातीति तं **प्रियं** यः प्रीणाति तं **मतिं** यो वेदादिशास्त्रैर्विद्वद्भिश्च मन्यते तं **कविं** वेदविद्याया निमित्तं **देवं** सुखदातारं **त्वा** त्वां **प्रजाभ्यः** उत्पन्नाभ्यः सृष्टिभ्यः **अभ्यर्चामि** अभिमुखं पूजयामि । [**त्वा**]=तं **त्वां** **प्रजाः** मनुष्यादिसृष्टयः **अनुप्राणन्तु** आयुर्भुञ्जताम्,

[ईश्वर]

भाषार्थ—हे परमात्मन् ! मैं—(**यस्य**) जिस सच्चिदानन्दस्वरूप परमेश्वर के (**सवीमनि**) उत्पन्न हुये संसार में (**उर्द्धवा**) उत्तम (**अमतिः**) रूप और (**भाः**) प्रकाश (**अदिद्युतत्**) प्रकाशित है, और जिसकी (**कृपा**) करुणा (**स्वः**) सुख एवं आदित्य को उत्पन्न करती है, और—

जो (**हिरण्यपाणिः**) ज्योतिर्मय सूर्य आदि को अपने वश में रखने वाला (**सुक्रतुः**) उत्तम प्रज्ञा और कर्म वाला है उसने (**स्वः**) आदित्य को (**अमिमीत**) बनाया है ।

(**त्यम्**) जिस (**ओण्योः**) द्युलोक और पृथिवी लोक के (**सवितारम्**) तथा अग्नि आदि देवों के उत्पन्न करने वाले (**कविक्रतुम्**) सर्वज्ञ, सब विद्या से युक्त बुद्धि वाले [**सत्यसवसम्**] सच्चे ऐश्वर्य और जगत् वाले (**रत्नधाम्**) रमणीय विज्ञान और लोकों को धारण करने वाले (**प्रियम्**) सबके प्रिय (**मतिम्**) वेदादिशास्त्रों और विद्वानों के द्वारा माने हुए (**कविम्**) वेदविद्या को उत्पन्न करने वाले (**देवम्**) सुखदायक (**त्वा**) तुझ जगदीश्वर की (**प्रजाभ्यः**) उत्पन्न सृष्टि के लिए

कृपया त्वं प्रजाः जगत्स्थाः **अनुप्राणिहि** जीवतोऽनुजीवनं धर ॥

(**अभ्यर्चामि**) प्रत्यक्ष पूजा करता हूँ। [**त्वा**] उक्त गुणों से युक्त आपकी कृपा से (**प्रजाः**) मनुष्य आदि सृष्टि (**अनुप्राणन्तु**) आयु को भोगे तथा कृपया आप (**प्रजाः**) सब प्राणियों को (**अनुप्राणिहि**) जीवन प्रदान कीजिए।

[सभाध्यक्षः]

हे सभाध्यक्ष राजपुरुष ! **अहं यस्य** शुभगुणयुक्तस्य **सवीमनि** यः सूयते संसारस्तस्मिन् **उर्द्धवा** उत्कृष्टा **अमतिः** रूपं **भाः** यो भाति=प्रकाशते स **अदिद्युतत्** प्रकाशयति **कृपा** करुणा **स्वः=सुखं करोति**।

यो **हिरण्यपाणिः** हिरण्यानि=सुवर्णादीनि पाणौ=व्यवहारे यस्य स **सुक्रतुः** शोभनः क्रतुः=प्रज्ञा कर्म वा यस्य स **स्वः** सुखं **अमिमीत** निर्मिमीते।

त्वं=यं राजसभास्थजनसमूहं **ओण्योः** द्यावापृथिव्योः **सवितारं** रसानां प्रसवितारं **कविक्रतुं** कविः=सर्वविद्यायुक्ता क्रतुः=प्रज्ञा कर्म क्रमदर्शनं यस्य तं [**सत्यसवसम्**]सत्यं सवः=ऐश्वर्यं यस्य **रत्नधां** यो रत्नानि=रमणीयानि विज्ञानानि हीरकादीनि दधातीति तं **प्रियं** यः प्रीणाति तं **मतिं** यो विद्वद्भिर्मन्यते तं **कविं** वेदविद्याया उपदेष्टारं **त्वा** त्वां **प्रजाभ्यः** उत्पन्नाभ्यः सृष्टिभ्य, **अभ्यर्चामि** अभिमुखं पूजयामि।

[**त्वा**]=**तं प्रजाः** मनुष्यादिसृष्टयः **अनुप्राणन्तु** आयुर्भुञ्जताम्, **कृपया त्वम् अयं प्रजाः** जगत्स्थाः **अनुप्राणिहि** जीवतोऽनुजीवनं धरति ॥ ४ । २५ ॥

[सभाध्यक्ष]

हे सभाध्यक्ष राजपुरुष ! मैं—(**यस्य**) जिस शुभगुणों से युक्त आपके (**सवीमनि**) उत्पन्न राज्य रूप संसार में (**उर्द्धवा**) जो उत्तम (**अमतिः**) रूप (**भाः**) प्रकाश (**अदिद्युतत्**) चमक रहा है और आपकी (**कृपा**) करुणा (**स्वः**) सुख को पैदा करती है। और—

जो (**हिरण्यपाणिः**) हिरण्य अर्थात् स्वर्ण आदि को अपने व्यवहार में रखने वाले तथा (**सुक्रतुः**) उत्तम प्रज्ञा और कर्म वाले आपने (**स्वः**) सुख को (**अमिमीत**) अपने राज्य में उत्पन्न किया है।

(**त्वम्**) राजसभा में विराजमान जनसमूह वाले (**ओण्योः**) द्यावा पृथिवी में (**सवितारम्**) रसों को उत्पन्न करने वाले (**कविक्रतुम्**) सब विद्याओं से युक्त बुद्धि वाले तथा क्रम के ज्ञाता [**सत्यसवसम्**] सच्चे ऐश्वर्य वाले (**रत्नधाम्**) रमणीय विज्ञान तथा हीरे आदि को धारण करने वाले (**प्रियम्**) सबसे प्रेम करने वाले (**मतिम्**) विद्वानों के द्वारा मान करने योग्य (**कविम्**) वेदविद्या के उपदेष्टा (**त्वाम्**) आप सभाध्यक्ष का (**प्रजाभ्यः**) उत्पन्न सृष्टि के लिये (**अभ्यर्चामि**) सबके सामने सत्कार करता हूँ।

[**त्वा**] उक्त गुणों से युक्त आपके राज्य में (**प्रजाः**) मनुष्य आदि सृष्टि (**अनुप्राणन्तु**) आयु को भोगे तथा कृपा करके (**त्वम्**) आप (**प्रजाः**) प्राणियों के (**अनुप्राणिही**) जीवन को समर्थ बनावें ॥ ४ । २५ ॥

[हे परमात्मन् ! अहं ··· यो ··· स्वरमिमीत=अदित्यं निर्मितवान्, त्वं=यमोण्योः सवितारं—देवं त्वा प्रजाभ्योऽभ्यर्चामि]

भावार्थः—अत्र श्लेषालङ्कारः ॥ मनुष्यैः सर्वजगत्स्रष्टुर्निराकारस्य व्यापिनः सर्वशक्तिमतः सच्चिदानन्दादिलक्षणस्य परमेश्वरस्य, प्रजापालन-

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष अलङ्कार है॥ सब मनुष्य सब जगत् के स्रष्टा, निराकार, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान्, सच्चिदानन्द परमेश्वर

तत्परस्य सभापतेर्धार्मिकस्य त्वैवार्चा नित्यं कर्त्त-व्या, नातो भिन्नस्य कस्यचित्।

की तथा प्रजापालन में तत्पर धार्मिक सभापति की पूजा एवं सत्कार नित्य करें, इनसे भिन्न किसी का नहीं।

[[त्वा]=तं प्रजा अनुप्राणन्तु कृपया त्वं प्रजा अनुप्राणिहि]

विद्वद्भिः प्रजास्थानां सुखायैतेषां स्तुति प्रार्थनोपदेशा नित्यं कार्याः । यतः सर्वाः प्रजा-स्तदाज्ञानुकूलाः सदा वर्त्तेरन्। यथा प्राणे सर्वेषां जीवानां प्रीतिरस्ति तथा परमात्मादिष्वपि कार्येति ॥ ४ । २५ ॥

सब विद्वान् प्रजा के प्राणियों के सुख के लिये स्तुति, प्रार्थना और उपदेश नित्य करें, जिससे सब प्रजा उनकी आज्ञा के अनुकूल सदा रहे। जैसे प्राणों की रक्षा में सब जीवों की प्रीति है वैसे परमात्मा और सभापति में भी प्रीति रखें ॥ ४ । २५ ॥

भाष्यसार—१. ईश्वर के गुण—परमात्मा सच्चिदानन्दस्वरूप, सब जगत् का स्रष्टा, निराकार, प्रकाशस्वरूप है। जिसने सुख रूप मोक्ष को तथा सूर्य आदि को भी बनाया है, ज्योतिर्मय सूर्य आदि उसके हाथ में हैं, उसके वश में हैं, ये उसके आदेशानुसार व्यवहार करते हैं, उसकी प्रज्ञा और कर्म सबसे उत्तम हैं। द्युलोक और पृथिवी लोक तथा अग्नि आदि देवों का निर्माता वही है, वह सबको जानने वाली सब विद्या से भरपूर बुद्धि से युक्त है। सब ऐश्वर्य और सब जगत् उसी के अन्दर समाया हुआ है। वह रमणीय विज्ञान और लोकों को धारण करने वाला, सर्वप्रिय, वेदादिशास्त्रों तथा विद्वानों के द्वारा माना हुआ, वेदविद्या का विधाता और सब सुखों का दाता है। इसलिये ईश्वर सब प्रजा के लिए पूजा के योग्य है।

२. **सभाध्यक्ष के गुण**—सभाध्यक्ष राजपुरुष संसार में सब शुभगुणों से युक्त होता है अर्थात् उत्कृष्ट रूप वाला, विद्यादि गुणों से प्रकाशित तथा करुणादि गुणों के कारण राज्य में सब सुख उत्पन्न करता है। वह सुवर्ण आदि को अपने हाथ में रखता है, अपने वश में रखता है, उससे व्यवहार करता है। वह उत्तम प्रज्ञा और उत्तम कर्म वाला होता है। उसकी राजसभा में जनसमूह उपस्थित होता है। वह द्युलोक और पृथिवी लोक में यज्ञों के अनुष्ठान से रसों को उत्पन्न करता है, उसकी प्रज्ञा सब विद्याओं से युक्त होती है तथा वह कर्त्तव्य कर्म के क्रम (**पूर्वापर**) का द्रष्टा (**ज्ञाता**) होता है, वह रमणीय विज्ञान और हीरे जवाहरात आदि को धारण करने वाला, सबको प्रसन्न करने वाला, विद्वानों के द्वारा मान के योग्य तथा वेदविद्या का उपदेष्टा होता है। सब प्रजाजन ऐसे सभाध्यक्ष का सबके समक्ष अर्चन करें, सत्कार करें।

३. **प्रजा के गुण**—मन्त्र में उपदिष्ट गुणों वाले ईश्वर और सभाध्यक्ष का सब प्रजा प्रत्यक्ष रूप में पूजन करे, सत्कार करे। ईश्वर और सभाध्यक्ष के आश्रय से प्रजा आयु का उपभोग करे। प्रजा ईश्वर की आज्ञा का पालन करे तथा सभाध्यक्ष के अनुकूल रहे। जैसे प्रजा प्राणों में प्रीति रखती है, उनकी रक्षा करती है, इसी प्रकार परमात्मा में भी प्रीति रखे। सभाध्यक्ष में भी प्रीति रखे ॥ ४ । २५ ॥

वत्सः । ***अग्निः***=**स्पष्टम्** ॥ भुरिग्ब्राह्मी पंक्तिः । पंचमः ॥

मनुष्यैः किं कृत्वा यज्ञः साधनीय इत्युपदिश्यते ॥

मनुष्यों को क्या-क्या साधन करके यज्ञ को सिद्ध करना चाहिये, इस विषय का उपदेश किया है ॥

शुक्रं त्वा शुक्रेण क्रीणामि चन्द्रं चन्द्रेणामृतममृतेन ।
सग्मे ते गोरस्मे ते चन्द्राणि तपसस्तनूरसि प्रजापतेर्वर्णः परमेण पशुना क्रीयसे
सहस्रपोषं पुषेयम् ॥ २६ ॥

पदार्थः—(**शुक्रम्**) शुद्धिकारकम् (**त्वा**) क्रियामयं यज्ञम् (**शुक्रेण**) शुद्धभावेन (**क्रीणामि**) गृह्णामि (**चन्द्रम्**) सुवर्णम् । चन्द्रमिति हिरण्यनामसु पठितम् ॥ निघं० १ । २ ॥ (**चन्द्रेण**) सुवर्णेन (**अमृतम्**) मोक्षसुखम् (**अमृतेन**) नाशरहितेन विज्ञानेन (**सग्मे**) गच्छतीति ग्मा पृथिवी तया सह वर्त्तते तस्मिन् यज्ञे । ग्मेति पृथिवीनामसु पठितम् ॥ निघं० १ । १ ॥ (**ते**) तव (**गोः**) पृथिव्याः सकाशात् (**अस्मे**) अस्मभ्यम् (**ते**) तव सकाशात् (**चन्द्राणि**) कांचनादीन्धातून् (**तपसः**) धर्मानुष्ठानस्याग्नेस्तापसस्य वा (**तनूः**) शरीरम् (**असि**) अस्ति । अत्र सर्वत्र व्यत्ययः (**प्रजापतेः**) प्रजानां पतिः पालनहेतुः सूर्यस्तस्य (**वर्णः**) वरीतुं योग्यः (**परमेण**) प्रकृष्टेन (**पशुना**) व्यवहृतेन विक्रीतेन गवादिना (**क्रीयसे**) क्रीयते (**सहस्रपोषम्**) असंख्यातपुष्टिम् (**पुषेयम्**) पुष्टो भवेयम् ॥ अयं मंत्रः शत० ३ । ३ । ३ । ६–६ व्याख्यातः ॥ २६ ॥

प्रमाणार्थ—(**चन्द्रम्**) 'चन्द्र' शब्द निघं० (१ । २) हिरण्य-(**सुवर्ण**) नामों में पढ़ा है। (**सग्मे**) 'ग्मा' शब्द निघं० (१ । १) में पृथिवी-नामों में पढ़ा है। (**असि**) अस्ति। यहां पुरुष-व्यत्यय है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ३ । ३ । ६–६) में की गई है ॥ ४ । २६ ॥

सपदार्थान्वयः—**अहं सग्मे** गच्छतीति ग्मा=पृथिवी तया सह वर्त्तते, तस्मिन् यज्ञे **या तपसः** धर्मानुष्ठानस्याग्नेस्तापसस्य वा **तनूः** शरीरम् **असि**=**अस्ति**, यः **पशुना** व्यवहृतेन विक्री तेन गवादिना **प्रजापतेः** प्रजानां पालनहेतुः सूर्यस्तस्य **वर्णः** वरीतुं योग्यः **क्रीयसे**=**क्रीयते**, **तं सहस्रपोषम्** असंख्यातपुष्टिं **पुषेयं** पुष्टो भवेयम् ।

हे विद्वन् ! यानि ते=**तव यस्या गोः** पृथिव्याः **सकाशात् चन्द्राणि** (काञ्चनादीन् धातून्) **उत्पन्नानि सन्ति, तान्यस्मे**=**अस्मभ्यमपि सन्तु ।**

अहं परमेण प्रकृष्टेन **शुक्रेण** शुद्ध भावेन **यं शुक्रं** शुद्धिकारकं **यज्ञं चन्द्रेण** सुवर्णेन **चन्द्रं** सुवर्णम् **अमृतेन** नाशरहितेन विज्ञानेन **अमृतं** मोक्षसुखं **च क्रीणामि** गृह्णामि **त्वा**=**तं** क्रियामयं यज्ञं **त्वमपि क्रीणीहि** ॥ ४ । २६ ॥

भाषार्थ—मैं (**सग्मे**) गमनशील पृथिवी के साथ विद्यमान यज्ञ में जो (**तपसः**) धर्मानुष्ठान अग्नि वा तपस्वी का (**तनूः**) शरीर (**असि**) है और जो (**पशुना**) बेचे हुए गौ आदि पशु से (**प्रजापतेः**) प्रजा के पालक सूर्य के (**वर्णः**) वरण करने योग्य होने से (**क्रीयसे**) खरीदा जाता है उसको (**सहस्रपोषम्**) असंख्य पोषण साधनों से पुष्ट करके (**पुषेयम्**) बलवान् रहूँ ।

हे विद्वान् मनुष्य ! (**ते**) तेरे लिए जिस (**गोः**) पृथिवी से (**चन्द्राणि**) सुवर्ण आदि धातु उत्पन्न हुई हैं वह (**अस्मे**) हमारे लिए भी हों ।

मैं (**परमेण**) उत्तम (**शुक्रेण**) शुद्धभाव से जिस (**शुक्रम्**) शुद्धि करने वाले यज्ञ को (**चन्द्रेण**) सोने से (**चन्द्रम्**) सोने को (**अमृतेन**) नाशरहित विज्ञान से (**अमृतम्**) मोक्षसुख को (**क्रीणामि**) ग्रहण करता हूँ (**त्वा**) उसे तू भी ग्रहण कर ॥ ४ । २६ ॥

[अहं सग्मे या तपसस्तनूरसि=अस्ति ... सहस्रपोषं पुषेयम्]

भावार्थः—मनुष्यैः शरीरमनोवाग्धनेन परमेश्वरस्योपासनादिलक्षणं यज्ञं सततमनुष्ठाया-

भावार्थ—सब मनुष्य शरीर, मन, वाणी और धन से परमेश्वर की उपासना आदि लक्षण

संख्याताऽतुला पुष्टिः प्राप्तव्या ॥ ४ । २६ ॥

युक्त यज्ञ का सदा अनुष्ठान करके असंख्य अतुल पुष्टि प्राप्त करें ॥ ४ । २६ ॥

भा० पदार्थः—सगमे=परमेश्वरस्योपासनादिलक्षणे यज्ञे । सहस्रपोषम्=असंख्यातामतुलां पुष्टिम् ॥

भाष्यसार—**क्या करके यज्ञ को सिद्ध करें**—शरीर को धर्मानुष्ठान से युक्त करके, इसे अग्नि के समान तेजस्वी और तपस्वी बनाकर, गौ आदि पशुओं के क्रय-विक्रय रूप व्यवहार से सूर्य के वर्ण के समान सुवर्ण आदि धन को प्राप्त करके तथा पृथिवी से उत्पन्न होने वाले काञ्चन (**सोना**) आदि धातुओं को अपना कर, अत्यन्त शुद्ध भाव से परमेश्वर की उपासना आदि लक्षणों से युक्त यज्ञ का अनुष्ठान करके अतुल पुष्टि को प्राप्त करें । सोने के व्यवहार से सोने को बढ़ावें । अमृत रूप विज्ञान से मोक्ष को प्राप्त करें तथा क्रियामय इस यज्ञ को सिद्ध करें ॥ ४ । २६ ॥

●

वत्सः । **विद्वान्**=स्पष्टम् । भूरिग्ब्राह्मी पंक्तिः । पंचमः ॥

मनुष्यैर्विदुषा सह विदुषैतैश्च कथं वर्त्तितव्यमित्युपदिश्यते ॥

मनुष्यों को विद्वान् मनुष्य के साथ और विद्वान् को सब मनुष्यों के साथ कैसे वर्त्तना चाहिये, इस विषय का उपदेश किया है ॥

मि॒त्रो न॒ ऽ एहि॒ सुमि॑त्रध॒ ऽ इन्द्र॑स्यो॒रुमावि॑श दक्षि॒णमु॒शन्नु॒शन्तं॑ स्यो॒नः स्यो॒नम् । स्वान॒ भ्राजाङ्घा॑रे॒ बम्भा॑रे॒ हस्त॒ सुह॑स्त॒ कृशा॑नवे॒ते वः॑ सोम॒क्रय॑णा॒स्तान्र॑क्षध्वं॒ मा वो॑ दभन ॥२७॥

पदार्थः—(**मित्रः**) सुहृत् सन् (**नः**) अस्मान् (**आ**) आगमने (**इहि**) प्राप्नुहि (**सुमित्रधः**) यः शोभनानि मित्राणि दधाति सः (**इन्द्रस्य**) सभाद्यध्यक्षस्य विदुषः (**उरुम्**) आ बह्वाच्छादनं स्वीकरणं वा (**आ**) समन्तात् (**विश**) (**दक्षिणम्**) उत्तमाङ्गं दक्षिणभागम् (**उशन्**) कामयन् (**उशन्तम्**) कामयन्तम् (**स्योनः**) सुखकारकः (**स्योनम्**) सुखम् । **स्योनमिति सुखनामसु पठितम् ॥ निघं० ३ । ६ ॥** (**स्वान**) स्वनत्युपदिशति यस्तत्संबुद्धौ (**भ्राज**) यो भ्राजते=प्रकाशते तत्संबुद्धौ (**अङ्घारे**) अंघस्य=छलस्यारिः शत्रुस्तत्संबुद्धौ (**बम्भारे**) बन्धानां=सुविचारनिरोधकानां शत्रुस्तात्संबुद्धौ । **अत्र वर्णव्यत्ययेन धस्य भः** (**हस्त**) हसन्ति=प्रसन्ना भवन्ति यस्मात्तत्संबुद्धौ (**सुहस्त**) शोभना हस्तक्रिया यस्य तत्संबुद्धौ (**कृशानो**) दुष्टान् कृशति तत्संबुद्धौ (**एते**) सर्वे धार्मिकाः प्रजास्था भृत्या वा (**वः**) युष्मान् (**सोमक्रयणाः**) ये सोमानुत्तमान् पदार्थान् क्रीणन्ति ते (**तान्**) सर्वान् (**रक्षध्वम्**) सततं पालयत । **अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदम्** (**मा**) **निषेधे** (**वः**) युष्मान् (**दभन**) हिंसेयुः । **अत्र व्यत्ययो लिङर्थे लङ् च ॥ अयं मंत्रः श० ३ । ३ । ३ । १०–१२ व्याख्यातः ॥ २७ ॥**

प्रमाणार्थ—(**स्योनम्**) 'स्योन' शब्द निघं० (३ । ६) में सुखनामों में पढ़ा है । (**बम्भारे**) यहां वर्ण-व्यत्यय से धकार को भकार हो गया है । (**रक्षध्वम्**) यहां व्यत्यय से आत्मनेपद है (**दभन्**) यहां व्यत्यय और लिङ्-अर्थ में लङ् लकार है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ३ । ३ । १०–१२) में की गई है ॥ ४ । २७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे स्वान ! स्वनत्युपदिशति यस्तत्सम्बुद्धौ, **भ्राज** यो भ्राजते=प्रकाशते तत्सम्बुद्धौ, **अङ्घारे** अङ्घस्य=छलस्यारिः=शत्रुस्तत्सम्बुद्धौ, **बम्भारे** बन्धानां=सुविचारनिरो-

भाषार्थ—हे (**स्वान**) उपदेश करने वाले, (**भ्राज**) प्रकाश करने वाले, (**अङ्घारे**) छल के शत्रु, (**बम्भारे**) उत्तम विचार निरोधकों के शत्रु, (**हस्त**) प्रसन्न करने वाले, (**सुहस्त**) अच्छे प्रकार

धकानां शत्रुस्तत्सम्बुद्धौ, **हस्त** हसन्ति=प्रसन्ना भवन्ति यस्मात्तत्सम्बुद्धौ, **सुहस्त** शोभना हस्तक्रिया यस्य तत्सम्बुद्धौ, **कृशानो** दुष्टान् कृशति तत्सम्बुद्धौ, **सभाद्यध्यक्ष ! सुमित्रधः** यः शोभनानि मित्राणि दधाति सः, **मित्रः** सुहृत्सन्, **स्योनः** सुखकारकः, **उशन्** कामयन् त्वं **नः=अस्मान् आ-इहि** आगम्य प्राप्नुहि ।

हस्त क्रिया को जानने वाले, (**कृशानो**) दुष्टों को निर्बल करने वाले सभा के पालक सभापते ! (**सुमित्रधः**) आप अच्छे मित्रों को धारण करने वाले, (**मित्रः**) सबके मित्र और (**स्योनः**) सुखदायक एवं (**उशन्**) कामना करने योग्य हो, आप (**नः**) हम लोगों को (**आ-इहि**) आकर प्राप्त हो ।

दक्षिणम् उत्तमाङ्गं दक्षिणभागम् **उरुं** बह्वाच्छादनं स्वीकरणं वा **उशन्तं** कामयन्तं **स्योनं** सुखम् **आविश** समन्ताद् विश ।

(**दक्षिणम्**) उत्तम अङ्ग दक्षिण भाग के समान प्राप्य (**उरुं**) अत्यन्त आच्छादित करने एवं स्वीकार करने योग्य (**उशन्तम्**) कमनीय (**स्योनम्**) सुख में (**आविश**) सब ओर से प्रवेश करो ।

हे मनुष्या ! एते सर्वे धार्मिकाः प्रजास्था भृत्या वा **इन्द्रस्य=विदुषः** सभाद्यध्यक्षस्य विदुषः **सोमक्रयणाः** ये सोमानुत्तमान् पदार्थान् क्रीणन्ति ते **मनुष्या वः=युष्मान् रक्षन्तु, यूयमेतान् रक्षध्वं** सततं पालयत ।

हे मनुष्यो ! (**एते**) ये धार्मिक जन अथवा प्रजा में स्थित भृत्य लोग जो (**इन्द्रस्य**) सभा आदि के अध्यक्ष विद्वान् के (**सोमक्रयणाः**) उत्तम पदार्थों को खरीदने वाले हैं वे (**वः**) तुम्हारी रक्षा करें और तुम उनकी (**रक्षध्वम्**) सदा पालना करो ।

यथा तान् सर्वान् वः=युष्मान् शत्रवो मा दभन्=हिंसितारो न भवेयुः न हिंसेयुः **तथैव परस्परं संप्रीत्या मिलित्वाऽनुष्ठेयम्** ॥ ४ । २७ ॥

जिससे (**तान् वः**) तुम सब को शत्रु लोग (**मा दभन्**) पीड़ा न देवें वैसे आपस में प्रीतिपूर्वक मिलकर आचरण करो ॥ ४ । २७ ॥

[**हे मनुष्या ! एते इन्द्रस्य=विदुषः सोमक्रयणा मनुष्या वः=युष्मान् रक्षन्तु, यूयमेतान् रक्षध्वम्, यथा तान् सर्वान् वः=युष्मान् शत्रवो मा दभन्=हिंसितारो न भवेयुः, तथैव परस्परं संप्रीत्या मिलित्वाऽनुष्ठेयम्**]

भावार्थः—राजप्रजापुरुषैः परस्परं प्रीत्योपकारे धर्म्ये व्यवहारे च वर्त्तित्वा शत्रून् निवार्याविद्यान्धकारं विनाश्य चक्रवर्त्तिराज्यं प्रशास्यानन्दे सदा स्थातव्यम् ॥ ४ । २७ ॥

भावार्थ—राजा और प्रजा आपस में प्रीति-पूर्वक उपकार और धर्मयुक्त व्यवहार में रह कर शत्रुओं को हटाकर अविद्या अन्धकार को नष्ट करके चक्रवर्ती राज्य पर शासन करके सदा आनन्द में रहें ॥ ४ । २७ ॥

भाष्यसार—१. **विद्वान्**—सभा आदि के अध्यक्ष विद्वान् पुरुष उपदेश करने वाले, विद्या से प्रकाशित, छल कपट आदि के शत्रु, उत्तम विचारों को बन्द करने वाले, दुष्ट जनों के शत्रु, स्वयं सदा प्रसन्न तथा अन्यों को प्रसन्न रखने वाले, कलाकौशल के ज्ञाता, दुष्टों को कृश (**निर्बल**) करने वाले, श्रेष्ठ मित्रों का धारण पोषण करने वाले, सबके सखा कामना करने के योग्य एवं सबके सुखकारक होते हैं ॥

२. **विद्वानों तथा इतर मनुष्यों का परस्पर वर्ताव**—उक्त विद्वानों को सब मनुष्य आमन्त्रित करके प्राप्त करें । उन्हें अपने उत्तमाङ्ग दक्षिण भाग में अत्यन्त कामनापूर्वक सुख से बैठावें । विद्वान् लोग उनकी रक्षा करें । सभा आदि के अध्यक्ष विद्वानों के धार्मिक भृत्य आदि भी मनुष्यों की रक्षा करें । प्रजा के लोग भी इनकी रक्षा करें । विद्वान् राजा तथा प्रजा जनों को शत्रु लोग न दबा सकें, हिंसा न

कर सकें इस प्रकार परस्पर मिल कर रहें। अविद्या-अन्धकार को नष्ट करें। चक्रवर्ती राज्य पर शासन करके सदा आनन्द में रहें ॥ ४ ॥ २७ ॥

●

वत्सः। **अग्निः**=ईश्वरः ॥ पूर्वार्द्धस्य साम्नी बृहती। मध्यमः। उत्तरार्द्धस्य साम्न्युष्णिक्। ऋषभः ॥

सर्वैर्मनुष्यैः सर्वेषु कर्तव्येषु शुभकर्मानुष्ठानेषु परमेश्वरः सदा प्रार्थनीय इत्युपदिश्यते ॥

सब मनुष्यों को उचित है कि सब करने योग्य उत्तम कर्मों के आरम्भ मध्य और सिद्ध होने पर परमेश्वर की प्रार्थना सदा किया करें, इस विषय का उपदेश किया है ॥

परि माग्ने दुश्चरिताद्बाधस्वा मा सुचरिते भज। उदायुषा स्वायुषोदस्थाममृताँ२ऽ अनु ॥२८॥

पदार्थः—(**परि**) सर्वतः (**मा**) माम् (**अग्ने**) विज्ञानस्वरूप दयालो जगदीश्वर! (**दुश्चरितात्**) दुष्टाचरणात् (**बाधस्व**) निवर्त्तय (**आ**) समन्तात् (**मा**) माम् (**सुचरिते**) यस्मिन् शोभनानि चरितानि धर्म्ये व्यवहारे तस्मिन् (**भज**) स्थापय (**उत्**) अपि (**आयुषा**) जीवनेन (**स्वायुषा**) शोभनमायुर्जीवनं=प्राणधारणं यस्मिँस्तेन सह (**उत्**) उत्कृष्टे (**अस्थाम्**) तिष्ठेयम् (**अमृतान्**) प्राप्तमोक्षान् सदेहान् विगत-देहान् वा विदुषो मुक्त्यानन्दानुत्तमान् भोगान् वा (**अनु**) आनुकूल्ये ॥ **अयं मंत्र श० ३। ३। ३। १३—१४ व्याख्यातः ॥ २८ ॥**

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३। ३। ३। १३—१४) में की गई है ॥ ४। २८ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे अग्ने=जगदीश्वर!** विज्ञानस्वरूप दयालो जगदीश्वर! **त्वं कृपया येन कर्मणाऽहं स्वायुषा** शोभनमायुर्जीवनं प्राणधारणं यस्मिंस्तेन सह **आयुषा** जीवनेन **अमृतान्=प्राप्त-मोक्षान्, सदेहान् विगतदेहान् वा विदुषो, ऽमृतात्म-भोगान् वा** प्राप्तमोक्षान् सदेहान् विगतदेहान् वा विदुषो मुक्त्यानन्दानुत्तमान् भोगान्वा **उदस्थाम्=उत्कृष्टतया प्राप्नुयाम्** (उत्कृष्टं तिष्ठेयम्)।

तेन मा=मां संयोज्य दुश्चरितात् दुष्टाचरणात् [**परि**] **उद्बाधस्व=पृथक् कुरु**, सर्वतोऽपि निवर्त्तय **पृथक् कृत्वा मा=मां येन कर्मणाऽहं सुचरिते** यस्मिन् शोभनानि चरितानि धर्म्ये व्यवहारे तस्मिन् **अन्वाभज** अनुकूलं समन्तात् स्थापय ॥ ४। २८ ॥

भावार्थ—हे (**अग्ने**) विज्ञानस्वरूप दयालु जगदीश्वर! आप की कृपा से जिस कर्म के द्वारा (**स्वायुषा**) सुन्दर जीवन के साथ और (**आयुषा**) इस जीवन से (**अमृतान्**) मोक्ष को प्राप्त, सदेह, और विदेह विद्वानों को अथवा मोक्ष के आनन्द रूप उत्तम-भोग एवं अमृतमय भोगों को (**उदस्थाम्**) उत्कृष्ट रीति से प्राप्त करूँ।

उससे (**मा**) मुझे संयुक्त करके (**दुश्चरितात्**) बुरे आचरण से ([**परि**] **उत्-बाधस्व**) सब ओर से हटा और उससे अलग करके (**मा**) मुझे (**सुचरिते**) उत्तम धर्म युक्त व्यवहार में (**अनु-आ-भज**) अनुकूलतापूर्वक सब ओर से स्थापित कर ॥ ४। २८ ॥

[हे अग्ने=जगदीश्वर! त्वं कृपया येन कर्मणाऽहं'''आयुषाऽमृतान्'''अमृतात्मभोगान्'''उदस्थाम्=उत्कृष्टतया प्राप्नुयाम्, तेन मा=मां संयोज्य दुश्चरितात् [परि] उद्बाधस्व=पृथक् कुरु]

भावार्थः—मनुष्यैरधर्मत्यागा यधर्मग्रहणाय सत्यभावेन प्रार्थितोऽयं परमात्मा तथैतानधर्माद् वियोज्य धर्मे सद्यः प्रवर्त्तयति, तथैव स्वैरपि यावज्जीवनं तावत् सर्वं धर्माचरणे नीत्वा संसार-मुक्तिसुखानि सेवनीयानि ॥ ४ । २८ ॥

भावार्थ—मनुष्यों से अधर्मत्याग और धर्म को ग्रहण करने के लिये सच्चे भाव से प्रार्थना किया हुआ यह परमात्मा जैसे इन्हें अधर्म से हटा कर धर्म में शीघ्र प्रवृत्त कर देता है वैसे स्वयं भी सारा जीवन धर्माचरण में लगा कर मनुष्य संसार-सुख और मुक्तिसुखों का सेवन करें ॥ ४ । २८ ॥

भाष्यसार—**सब शुभकर्मों के अनुष्ठान में ईश्वर प्रार्थना**—सब मनुष्य अधर्म का त्याग और धर्म का ग्रहण करने के लिये सच्ची भावना से इस प्रकार ईश्वर से प्रार्थना करें कि हे विज्ञानस्वरूप, दयालु, जगदीश्वर ! आप ऐसी कृपा कीजिए कि मैं अपने जीवनकाल में अमृत अर्थात् मोक्ष को प्राप्त, संदेह और विदेह विद्वानों को एवं अमृतमय भोगों को प्राप्त करूँ। इन से आप मुझे संयुक्त कीजिये। दुष्टाचरण रूप अधर्म से हटाकर उत्तम आचरण रूप धर्म में शीघ्र प्रवृत्त कीजिये। जिससे मैं आजीवन धर्म का ही आचरण करके संसार सुख और मुक्ति सुख का सेवन करूँ ॥ ४ । २८ ॥

वत्सः । **अग्निः=ईश्वरः** ॥ निचृदार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनः स किमर्थं प्रार्थनीय इत्युपदिश्यते ॥

फिर उस परमेश्वर की प्रार्थना किसलिये करनी चाहिये, इस विषय का उपदेश किया है ॥

प्रति पन्थामपद्महि स्वस्तिगामनेहसम् । येन विश्वाः परि द्विषो वृणक्ति विन्दते वसु ॥ २९ ॥

पदार्थः—(**प्रति**) प्रत्यक्षे वीप्सायां च (**पन्थाम्**) मार्गं मार्गम् (**अपद्महि**) प्राप्नुयाम (**स्वतिगाम्**) स्वस्ति=सुखं गच्छति येन तम् । **अत्र जनसनखन० ॥ अ० ३ । २ । ६७ ॥ अनेन विट् प्रत्ययः** (**अनेहसम्**) अविद्यमानानि एहांसि हननानि यस्मिंस्तम् । **अत्र नञि हन एह च** ॥ उ० ४ । २२४ ॥ **अनेनायं सिद्धः** (**येन**) मार्गेण (**विश्वाः**) सर्वाः (**परि**) सर्वतः (**द्विषः**) द्विषन्ति [**न**] प्रीणयन्ति याभ्यः शत्रुसेनाभ्यो दुःखक्रियाभ्यो वा ताः । **अत्र कृतो बहुलमिति हेतौ क्विप्** (**वृणक्ति**) वर्जयति । **अत्रान्तर्गतो ण्यर्थः** (**विन्दते**) लभते (**वसु**) सुखकारकं धनम् ॥ **अयं मंत्रः श० ३ । ३ । ३ । १५—१६ व्याख्यातः ॥ २६ ॥**

प्रमाणार्थ—(**स्वस्तिगाम्**) यहाँ "जनसनखन०" (**अ०** ३ । २ । ६७) सूत्र से स्वस्ति शब्द पूर्वक 'गम्' धातु से 'विट्' प्रत्यय है। (**अनेहसम्**) यह शब्द 'नञि हन एह च' (**उणा०** ४ । २२४) सूत्र से सिद्ध होता है। (**द्विषः**) यहां 'कृतो बहुलम्' [**अ०** ३ । ३ । ११३] वार्तिक से हेतु-अर्थ में 'क्विप्' प्रत्यय है। (वृणक्ति) यहां णिच् का अर्थ अन्तर्भावित है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ३ । ३ । १५—१६) में की गई है ॥ ४ । २६ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे जगदीश्वराग्ने ! त्वदनुगृहीताः पुरुषार्थिनो भूत्वा वयं येन** मार्गेण **विद्वान् विश्वाः** सर्वाः **द्विषः** द्विषन्ति=[न] प्रीणयन्ति याभ्यः शत्रुसेनाभ्यो दुःखक्रियाभ्यो वा ताः **परिवृणक्ति** सर्वतो वर्जयति, **वसु** सुखकारकं धनं **विन्दते** लभते, **तमनेहसम्** अविद्यमानानि एहांसि

भाषार्थ—हे जगदीश्वर अग्ने ! आप की कृपा से पुरुषार्थी बन कर हम लोग (**येन**) जिस मार्ग से विद्वान् मनुष्य (**विश्वाः**) सब (**द्विषः**) द्वेष करने वाली शत्रु सेनाओं से वा दुःखपूर्ण क्रियाओं से (**परिवृणक्ति**) सब ओर से हटाता है और सुख-दायक धन को (**विन्दते**) प्राप्त करता है उस

हननानि यस्मिंस्तं **स्वस्तिगां** स्वस्ति=सुखं गच्छति येन तं **पन्थां**=मार्गं मार्गं मार्गं **प्रत्यपद्महि**=**प्रत्यक्षतया व्याप्त्या प्राप्नुयाम** ॥ ४ । २९ ॥

(**अनेहसम्**) हिंसा से रहित (**स्वस्तिगाम्**) सुख को प्राप्त कराने वाले (**पन्थाम्**) प्रत्येक मार्ग को (**प्रति-अपद्महि**) प्रत्यक्ष व्याप्तिपूर्वक प्राप्त करें। ॥ ४ । २९ ॥

[हे जगदीश्वराग्ने !—**वयं येन विद्वान् विश्वा द्विषः परिवृणक्ति, वसु विन्दते तम्**...**पन्थां=मार्गं प्रत्यपद्महि=प्रत्यक्षतया व्याप्त्या प्राप्नुयाम**]

भावार्थः—मनुष्यैर्द्वेषादित्यागाय, विद्याधनप्राप्तये, धर्ममार्गप्रकाशायेश्वर प्रार्थना धर्म विद्वत्सेवा च नित्यं कार्या ॥ ४ । २९ ॥

भावार्थ—सब मनुष्य द्वेष आदि के त्याग विद्या धन की प्राप्ति तथा धर्म मार्ग का प्रकाश करने के लिये ईश्वर प्रार्थना, धर्म का सेवन और विद्वानों की सेवा नित्य करें ॥ ४ । २९ ॥

भा० पदार्थः—वसु=विद्याधनम् । पन्थाम्=धर्म मार्गम् ॥

भाष्यसार—**ईश्वर प्रार्थना किस लिये**—सब मनुष्य द्वेष आदि दुर्गुणों के परित्याग के लिए और विद्याधन की प्राप्ति के लिये तथा धर्म-मार्ग को प्रकाशित करने के लिये इस प्रकार ईश्वर प्रार्थना करें कि हे जगदीश्वराग्ने ! आप के अनुग्रह से हम लोग पुरुषार्थी होकर धर्मयुक्त सुखप्रापक मार्ग को प्राप्त करें जिस मार्ग पर चल कर विद्वान् लोग शत्रु सेनाओं को तथा द्वेषमय दुःखपूर्ण क्रियाओं को दूर हटाते हैं, सुखकारक विद्याधन को प्राप्त करते हैं। इसकी प्राप्ति के लिये हम धर्म का नित्य सेवन करें विद्वानों की भी नित्य सेवा करें ॥ ४ । २९ ॥

●

वत्सः । **वरुणः**=**ईश्वरः, सूर्यो-वायुश्च** ॥ पूर्वस्य स्वराड्याजुषी त्रिष्टुप् । अस्तभ्नादित्यन्तस्यार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

अथेश्वरसूर्य्यवायुगुणा उपदिश्यन्ते ॥

अब ईश्वर, सूर्य्य और वायु के गुणों का उपदेश किया जाता है ॥

अदि॑त्यास्त्वग॒स्यदि॑त्यै॒ सद॒ ऽ आसी॑द । अस्त॑भ्ना॒द् द्यां वृ॑ष॒भोऽअ॒न्तरि॑क्ष॒ममि॑मीत वरि॒माणं॑म्पृथि॒व्याः । आसी॑द॒द्विश्वा॒ भुव॑नानि स॒म्राड् विश्वेत्तानि॒ वरु॑णस्य व्र॒तानि॑ ॥ ३० ॥

पदार्थः—(**आदित्याः**) पृथिव्यादेः (**त्वक्**) यस्त्वचति संवृणोति सः (**असि**) अस्ति वा। अत्र पक्षे सर्वत्र व्यत्ययः (**अदित्यै**) पृथिव्यादिसृष्टये (**सदः**) स्थापनम् (**आ**) समन्तात् (**सीद**) सादयति वा । अत्र व्यत्ययोऽन्तर्गतो ण्यर्थश्च (**अस्तभ्नात्**) स्तभ्नासि, स्तभ्नाति धरति वा। अत्र लडर्थे लङ् (**द्याम्**) सूर्य्यादिकं प्रकाशं वा (**वृषभः**) श्रेष्ठः (**अन्तरिक्षम्**) अवकाशम् (**अमिमीत**) निर्मिमीते। अत्रापि लडर्थे लुङ् (**वरिमाणम्**) वरस्य भावम् (**पृथिव्याः**) अन्तरिक्षस्यावकाशस्य मध्ये। पृथिवीत्यन्तरिक्षनामसु पठितम् ॥ निघं० १ । ३ ॥ (**आ**) सर्वतः (**आसीदत्**) सादयसि सादयत्यवस्थापयति वा (**विश्वा**) सर्वाणि (**भुवनानि**) लोकान् (**सम्राट्**) यः सम्यग्राजते सः (**विश्वा**) अखिलानि (**इत्**) एव (**तानि**) एतानि (**वरुणस्य**) परमेश्वरस्य, सूर्य्यस्य, वायोर्वा (**व्रतानि**) शीलानि ॥ अयं मंत्रः श० ३ । ३ । ४ । १-५ व्याख्यातः ॥ ३० ॥

प्रमाणार्थ—(**असि**) अस्ति। इस मन्त्र में पक्ष में सर्वत्र पुरुष-व्यत्यय है। (**सीद**) सादयति। यहां पुरुष-व्यत्यय है और णिच् का अर्थ अन्तर्भावित है। (**अस्तभ्नऽत्**) स्तभ्नाति । यहां लट्-अर्थ में

लङ् लकार है। (**अमिमीत**) निर्मिमीते। यहाँ भी लट्-अर्थ में लङ्-लकार है। (**पृथिव्याः**) अन्तरिक्षस्य। 'पृथिवी' शब्द निघं० (१ । ३) में अन्तरिक्ष-नामों में पढ़ा है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ३ । ४ । १-५) में की गई है ॥ ४ । ३० ॥

[ईश्वरः]

सपदार्थान्वयः—हे जगदीश्वर! यतो **वृषभः** श्रेष्ठः त्वमदित्याः पृथिव्यादेः **त्वक्** यस्त्वचति=संवृणोति स **असि**, **अदित्यै** पृथिव्यादिसृष्टये **सदः** स्थापनम् **आसीद**=**आसादयसि**, **द्यां** सूर्यादिकम् **अस्तभ्नात्**=**स्तभ्नासि**, **वरिमाणं** वरस्य भावम् **अन्तरिक्षम्** अवकाशम् **अमिमीत**=**निर्मिमीषे**, **सम्राट्** यः सम्यग् राजते स सन् **पृथिव्याः**=**अन्तरिक्षस्य** अन्तरिक्षस्य=अवकाशस्य मध्ये **विश्वा** सर्वाणि **भुवनानि** लोकान् **आसीदत्**=**आसादयसि**।

अस्मातानि=**एतानिविश्वा**=**सर्वाणि** अखिलानि **वरुणस्य** परमेश्वरस्य **ते**=**तव** **इत्**=**एव** **व्रतानि** शीलानि **सन्तीति वयम् अपश्चहि**=**विजानीयामेत्येकः** ॥

[ईश्वर]

भाषार्थ—हे जगदीश्वर! जिससे आप (**वृषभः**) श्रेष्ठ हैं और (**आदित्यः**) पृथिवी आदि को (**त्वक्**) आच्छादित करने वाले (**असि**) हो, (**अदित्यै**) पृथिवी आदि की सृष्टि के लिये (**सदः**) स्थापन करने योग्य व्यवस्था को (**आसीद**) स्थापित करते हो, (**द्याम्**) सूर्य आदि को (**अस्तभ्नात्**) धारण करते हो (**वरिमाणम्**) अति उत्तम (**अन्तरिक्षम्**) आकाश को (**अमिमीत**) बनाते हो (**सम्राट्**) सबके राजा होकर (**पृथिव्याः**) आकाश के मध्य में (**विश्वा**) सब (**भुवनानि**) लोकों को (**आसीदत्**) सब ओर से स्थापित करते हो।

इसलिये (**तानि**) यह (**विश्वा**) सब (**वरुणस्य**) आप परमेश्वर के (**इत्**) ही (**व्रतानि**) स्वभाव हैं, ऐसा हम जानें। यह मन्त्र का पहला अर्थ है ॥

[सूर्यो वायुश्च]

यो वृषभः श्रेष्ठः **सम्राट्**=**सूर्यो वायुश्च** यः सम्यग्राजते स **अदित्याः** पृथिव्यादेः **त्वक्** यस्त्वचति=संवृणोति स **असि**=**अस्ति**, **संवृणोत्यदित्यै** पृथिव्यादिसृष्टये **सदः** स्थापनम् **आसीद**=**आसादयति**, **द्यां** प्रकाशम् **अस्तभ्नात्**=**स्तभ्नाति** धरति वा **वरिमाणं** वरस्य भावम् **अन्तरिक्षम्**=**अवकाशम्** **अमिमीत**=**निर्मिमीते**, **पृथिव्याः**=**अन्तरिक्षस्य मध्ये** अन्तरिक्षस्यावकाशस्य मध्ये **विश्वा** सर्वाणि **भुवनानि** लोकान् **आसीदत्**=**आसादयति** सर्वतः सादयत्यवस्थापयति वा **तस्य तानि**=एतानि **विश्वा**=**सर्वाणि** अखिलानि **वरुणस्य**=**सूर्यस्य वायोश्च इत्**=**एव व्रतानि**=**शीलानि सन्तीति वयम् अपश्चहीति द्वितीयः** ॥ ४ । ३० ॥

[सूर्य और वायु]

जो (**वृषभः**) श्रेष्ठ (**सम्राट्**) भलीभाँति स्वयं प्रकाशमान सूर्य और वायु (**अदित्याः**) पृथिवी आदि के (**त्वक्**) आच्छादित करने वाले (**असि**) हैं। (**अदित्यै**) पृथिवी आदि की सृष्टि के लिए (**सदः**) स्थापित किए लोकों को (**आसीद**) सब ओर से धारण करते हैं, (**द्याम्**) प्रकाश को (**अस्तभ्नात्**) धारण करते हैं (**वरिमाणं**) अति उत्तम (**अन्तरिक्षम्**) अवकाश को (**अमिमीत**) बनाते हैं (**पृथिव्याः**) अवकाश के मध्य में (**विश्वा**) सब (**भुवनानि**) लोकों को (**आसीदत्**) सब ओर से स्थापित करते हैं; (**तानि**) यह (**विश्वा**) सब (**वरुणस्य**) सूर्य और वायु के (**इत्**) ही (**व्रतानि**) स्वभाव हैं ऐसा हम जानें। यह मन्त्र का दूसरा अर्थ है ॥ ४ । ३० ॥

[अनुवृत्तिमाह—]

भावार्थः—अत्र श्लेषालङ्कारः ॥ पूर्वसमा-

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष अलङ्कार है ॥

न्मन्त्राद् 'अपप्नहि' इति पदमनुवर्त्तते ।

पूर्व मन्त्र से 'अपप्नहि' पद की अनुवृत्ति है ।

[हे जगदीश्वर! —पृथिव्याः=अन्तरिक्षस्य दिश आ भुवनान्या सीदत्=आसादयसि, अस्मात्तानि=एतानि··· ते=तव इत्=एव व्रतानि सन्ति]

परमेश्वरस्यैतैष स्वभावो यदिदं सर्वमभिव्याप्य रचयित्वा धरत्येवं सूर्यवाय्वोरपि प्रकाशधारण-स्वभावोऽस्ति ॥ ४ । ३० ॥

परमेश्वर का ही यह स्वभाव है कि वह इस सब संसार में व्यापक हो, इसको रच कर, इसे धारण कर रहा है, इसी प्रकार सूर्य और वायु का भी प्रकाश करना तथा लोकों को धारण करना स्वभाव है ॥ ४ । ३० ॥

भा० पदार्थ:—व्रतानि=स्वभावाः ॥

भाष्यसार—१. **ईश्वर के गुण**—जगदीश्वर सबसे उत्तम (श्रेष्ठ) है, वह पृथिवी आदि लोकों की त्वचा है, त्वचा के समान सब लोकों को आच्छादित किये हुए है, पृथिवी आदि की सृष्टि के लिये व्यवस्थाओं का स्थापक है, सूर्य आदि का स्तम्भक है, उत्तम आकाश का निर्माता है, वह सम्राट् बन कर आकाश के मध्य में सब लोकों को स्थापित करता है । यह सब परमेश्वर का व्रत है, शील है, स्वभाव है ॥

२. **सूर्य और वायु के गुण**—सूर्य और वायु लोक के श्रेष्ठ सम्राट् हैं, लोक में यथावत् राजमान हैं, यह दोनों पृथिवी आदि लोकों की त्वचा है, त्वचा के समान पृथिवी आदि को आच्छादित कर रहे हैं, पृथिवी आदि की सृष्टि के लिये आधार बनते हैं, प्रकाश को धारण करते हैं, आकाश को बनाते हैं, आकाश के मध्य में सब लोकों को स्थापित किये रहते हैं । यह सब सूर्य और वायु का व्रत है, शील है, स्वभाव है ।

३. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में श्लेष अलङ्कार होने से वरुण शब्द से ईश्वर, सूर्य और वायु अर्थ ग्रहण किया है ॥ ४ । ३० ॥

वत्सः । **वरुणः=ईश्वरः, सूर्यो वायुश्च** ॥ विराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्ते कीदृशा इत्युपदिश्यते ॥

फिर वे ईश्वर, सूर्य और वायु कैसे हैं, इस विषय का उपदेश किया है ॥

वनेषु व्यन्तरिक्षं ततान वाजमर्वत्सु पयऽउस्रियासु ।
हृत्सु क्रतुं वरुणो विक्ष्वग्निं दिवि सूर्यमदधात् सोममद्रौ ॥ ३१ ॥

पदार्थः— (**वनेषु**) रश्मिषु वृक्षसमूहेषु वा । वनमिति रश्मिनामसु पठितम् ॥ निघं० १ । ५ ॥ (**व**) विशेषार्थे (**अन्तरिक्षम्**) आकाशम् (**ततान**) विस्तारितवान् विस्तारयतो वा (**वाजम्**) वेगम् (**अर्वत्सु**) अश्वेषु प्राप्तवेगगुणेषु विद्युदादिषु वा । अर्वेत्यश्वनामसु पठितम् ॥ निघं० १ । १४ ॥ (**पयः**) दुग्धम् (**उस्रियासु**) गोषु । उस्रियेति गोनामसु पठतिम् ॥ निघं० १ । ११ ॥ (**हृत्सु**) हृदयेषु (**क्रतुम्**) प्रज्ञां कर्म वा (**वरुणः**) पर-मेश्वरः सूर्यो वायुर्वा (**विक्षु**) प्रजासु (**अग्निम्**) विद्युतं प्रसिद्धमग्निं वा (**दिवि**) प्रकाशे (**सूर्यम्**) सवितारम् (**अदधात्**) धत्तवान् दधाति वा (**सोमम्**) अमृतात्मकं रसं सोमवल्याद्योषधीगणं वा (**अद्रौ**) मेघे शैले वा । अद्रिरिति मेघनामसु पठितम् ॥ निघं० १ । १० ॥ अयं मन्त्रः श० ३ । ३ । ४ । ७ व्याख्यातः ॥ ३१ ॥

प्रमाणार्थ—(वनेषु) 'वन' शब्द निघं० (१ । ५) में रश्मिनामों में पढ़ा है। (अर्वत्सु) 'अर्वा' शब्द निघं० (१ । १४) में अश्वनामों में पढ़ा है। (उस्रियासु) 'उस्रिया' शब्द निघं० (२ । ११) में गौ-नामों में पढ़ा है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ३ । ४ । ७) में की गई है। ४ । ३१ ॥

[ईश्वरः]

सपदार्थान्वयः—**यो वरुणः**=**परमेश्वरः वनेषु**=**किरणेषु** रश्मिषु **अन्तरिक्षम्** आकाशं **विततान** विस्तारितवान् **अर्वत्सु** अश्वेषु **वाजं** वेगम् **उस्रियासु** गोषु **पयः** दुग्धं **हृत्सु** हृदयेषु **क्रतुं** प्रज्ञां कर्म वा **विक्षु** प्रजासु **अग्निं** विद्युतं **दिवि** प्रकाशे **सूर्यः** सवितारम् **अद्रौ** मेघे **सोमम्** अमृतात्मकं रसं **चादधात्** धत्तवान् **स एव सर्वैरुपास्यः** ॥

[ईश्वर]

भाषार्थ—जिस (**वरुण**) परमेश्वर ने (**वनेषु**) सूर्य की किरणों में (**अन्तरिक्षम्**) आकाश-(**विततान**) अच्छे प्रकार विस्तृत किया है, (**अश्वेषु**) घोड़ों में (**वाजम्**) वेग को, (**उस्रियासु**) गौवों में (**पयः**) दूध को, (**हृत्सु**) हृदयों में (**क्रतुम्**) ज्ञान व कर्म को, (**विक्षु**) प्रजा में (**अग्निम्**) विद्युत्-शक्ति को, (**दिवि**) प्रकाशमय द्युलोक में (**सूर्यम्**) सूर्य को, (**अद्रौ**) बादल में (**सोमम्**) अमृत रूप रस को (**अदधात्**) स्थापित किया है, वही सबका उपास्य है ॥

[सूर्यो वायुश्च]

यो वरुणः=**सूर्यो वायुर्वा वनेषु**=**अरण्येषु** वृक्ष-समूहेषु **अन्तरिक्षम्** आकाशं **विततान** विस्तारयतः, **अर्वत्सु** प्राप्तवेगगुणेषु विद्युदादिषु **वाजं** वेगम् **उस्रियासु** गोषु **पयः** दुग्धं **हृत्सु** हृदयेषु **क्रतुं** प्रज्ञां कर्म वा **विक्षु** प्रजासु **अग्निम्** प्रसिद्धमग्निं **दिवि** प्रकाशे **सूर्यं** सवितारम् **अद्रौ** शैले **सोमम्** सोमवल्या-द्योषधीगणं **चादधात्** दधाति, **स एव सम्यगुपयोजनीयोऽस्ति** ॥ ४ । ३१ ॥

[सूर्य और वायु]

जो (**वरुणः**) सूर्य वा वायु (**वनेषु**) वृक्ष समूह रूप अरण्यों में (**अन्तरिक्षम्**) आकाश को (**विततान**) विस्तृत करते हैं, (**अर्वत्सु**) वेगवान् विद्युत् आदि में (**वाजम्**) वेग को, (**उस्रियासु**) गौवों में (**पयः**) दूध को, (**हृत्सु**) हृदयों में (**क्रतुम्**) ज्ञान वा कर्म को (**विक्षु**) प्रजा में (**अग्निम्**) स्थूल अग्नि को, (**दिवि**) द्युलोक में (**सूर्यम्**) सूर्य को, (**अद्रौ**) पर्वत पर (**सोमम्**) सोमवल्ली आदि औषधियों को (**अदधात्**) धारण करते हैं। उनका यथावत् उपयोग करें ॥ ४ । ३१ ॥

[**यो वरुणः**=**परमेश्वरः, सूर्यो वायुर्वा वनेषु**'''**अन्तरिक्षं विततान, अर्वत्सु वाजम्, उस्रियासु पयः, हृत्सु क्रतुं, विक्ष्वग्निं, दिवि सूर्यम्, अद्रौ सोमं चादधात् स, एव सर्वैरुपास्यः सम्यगुपयोजनीयोऽस्ति**]

भावार्थः—अत्र श्लेषालङ्कारः ॥ यथा परमेश्वरः स्वविद्याप्रकाशजगद्रचनाभ्यां सर्वेषु पदार्थेषु तत्तत्स्वभावयुक्तान् गुणान् संस्थाप्य विज्ञानादिकं वायुसूर्यादिकं च विस्तृणोति तथैव वायुसूर्यावपि सर्वेभ्यः सुखं विस्तारयतः ॥ ४ । ३१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष अलङ्कार है ॥ जैसे परमेश्वर अपनी विद्या का प्रकाश और जगत् की रचना करके सब पदार्थों में मन्त्रोक्त उन-उन स्वभाव वाले गुणों को स्थापित करके विज्ञान आदि और वायु तथा सूर्य आदि का विस्तार करता है वैसे ही वायु और सूर्य भी सबके लिये सुख का विस्तार करते हैं ॥ ४ । ३१ ॥

भाष्यसार—**१. ईश्वर कैसा है**—वरुण अर्थात् परमेश्वर अपनी विद्या के प्रकाश में

आकाश का विस्तार करने वाला है अर्थात् अपनी विद्या का प्रकाश करता है तथा जगत् की रचना करता है। घोड़ों में वेग शक्ति उसी ने स्थापित की है। गौओं में दूध का आधान उसी ने किया है। सबके हृदयों में ज्ञान और कर्म स्थापना उसी ने की है। प्रजा में अग्नि का, द्युलोक में सूर्य का, मेघ में अमृतमय रस का आधान उसी ने किया है। इसलिए वह सब का उपास्य है ॥

२. **सूर्य और वायु कैसे हैं**—वरुण अर्थात् सूर्य और वायु अरण्यों में भी सुख का विस्तार करने वाले हैं। ये विद्युत् आदि में वेग, गौवों में दूध, मानव के हृदयों में प्रज्ञा और कर्म, प्रजा में भौतिक अग्नि, द्युलोक में सूर्य, पर्वत पर सोमवल्ली आदि औषधियों के धारण हैं। सब मनुष्य सूर्य और वायु का जीवन में उपयोग करें।

३. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में श्लेष अलङ्कार है इसलिए 'वरुण' शब्द से ईश्वर, सूर्य और वायु अर्थ का ग्रहण किया है ॥ ४ । ३१ ॥

●

वत्सः । **अग्निः=ईश्वरः, प्राणो विद्युच्च** ॥ निचृदार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्ते कीदृशा इत्युपदिश्यते ॥

फिर वे ईश्वर, प्राण और विद्युत् कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

सूर्य्यस्य चक्षुरारोहाग्नेरक्ष्णः कनीनकम् । यत्रैतशेभिरीयसे भ्राजमानो विपश्चिता ॥ ३२ ॥

पदार्थः—(**सूर्य्यस्य**) सवितृमण्डलस्य विद्युतो वा (**चक्षुः**) दर्शकम् (**आ**) समन्तात् (**रोह**) दर्शयसि दर्शयति वा (**अग्नेः**) भौतिकस्य (**अक्ष्णः**) दर्शनसाधकस्य (**कनीनकम्**) कनति=प्रकाशते येन तत्। अत्र कनीधातोर्बाहुलकादौणादिक ईनक प्रत्ययः (**यत्र**) यस्मिन् (**एतशेभिः**) विज्ञानवेगादिभिरागमकैर्गुणैरश्वैः। एतश इत्यश्वनामसु पठितम् ॥ निघं० १ । १४ ॥ (**ईयसे**) विज्ञायसे विज्ञायते वा (**भ्राजमानः**) प्रकाशमानः (**विपश्चिता**) मेधाविना विदुषा। विपश्चिदिति मेधाविनामसु पठितम् ॥ नि० ३ । १५ ॥ अयं मन्त्रः शत० ३ । ३ । ४ । ८ व्याख्यातः ॥ ३२ ॥

प्रमाणार्थ—(**कनीनकम्**) यह शब्द 'कनी' धातु से बहुल करके औणादिक 'ईनक' प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है। (**एतशेभिः**) 'एतश' शब्द निघं० (१ । १४) में अश्वनामों में पढ़ा है। (**विपश्चिता**) 'विपश्चित' शब्द निघं० (३ । १५) में मेधावी-नामों में पढ़ा है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ३ । ४ । ८) में की गई है ॥ ४ । ३२ ॥

[ईश्वरः]

सपदार्थान्वयः—हे परमेश्वर ! **यत्र** यस्मिन् त्वमेतशेभिः विज्ञानवेगादिभिरागमकैर्गुणैरश्वैः **भ्राजमानः** प्रकाशमानः **विपश्चिता** मेधाविना विदुषा **ईयसे** विज्ञायसे ॥

यत्र यस्मिन् त्वं **सूर्यस्य** सवितृमण्डलस्य विद्युतो वा **अग्नेः** भौतिकस्य **अक्ष्णः** दर्शनसाधकस्य **कनीनकं**

[ईश्वर]

भाषार्थ—हे परमेश्वर ! (**यत्र**) जहां आप (**एतशेभिः**) विज्ञान और वेग आदि आगमक गुणों से युक्त अश्वों से (**भ्राजमानः**) प्रकाशमान होते हुये (**विपश्चिता**) मेधावी विद्वान् से (**ईयसे**) जाने जाते हो, और—

(**यत्र**) जहां आप (**सूर्यस्य**) सूर्यमण्डल वा विद्युत् के (**अग्नेः**) भौतिक अग्नि के (**अक्ष्णः**) देखने

कनति=प्रकाशते येन तत् **चक्षुः** दर्शकम् **आरोह** समन्ताद् दर्शयसि **तत्र वयं त्वामुपासीमहि** ॥

से साधन (**कनीनकम्**) प्रकाशक (**चक्षुः**) आँख को (**आरोह**) चहुँ ओर से दिखाते हो वहां हम लोग आपकी उपासना करें ॥

[प्राणो विद्युच्च]

यत्र यस्मिन् **प्राणो विद्युद्वैतशेभिः** विज्ञानवेगादिभिरागमकैर्गुणैरश्वैः **विपश्चिता** मेधाविना विदुषा **भ्राजमानः** प्रकाशमानः [**ईयसे**]=**विज्ञायते** ।

[प्राण और विद्युत्]

जहां प्राण वा विद्युत् (**एतशेभिः**) विज्ञान, वेग आदि आगमक गुणों से युक्त अश्वों से (**विपश्चिता**) मेधावी विद्वान् के द्वारा (**भ्राजमानः**) प्रकाशमान रूप में [**ईयसे**] जाने जाते हैं, और—

यत्र यस्मिन् **स, सा च सूर्यस्य** सवितृमण्डलस्य विद्युतो वा **अग्नेः** भौतिकस्य **अक्षणः** दर्शनसाधकस्य **कनीनकं** कनति=प्रकाशते येन तत् **चक्षुः** दर्शकम् **आरोह** दर्शयति **तत्र वयं तं तां च युञ्जयाम** ॥ ४ । ३२ ॥

(**यत्र**) जहां वह प्राण और वह विद्युत् (**सूर्यस्य**) सूर्यमण्डल के वा विद्युत् के (**अग्नेः**) भौतिक अग्नि के (**अक्षणः**) देखने के साधन (**कनीनकम्**) प्रकाशक (**चक्षुः**) आँख को (**आरोह**) दिखाते हैं वहां हम लोग उस प्राण और उस विद्युत् का उपयोग करें ॥ ४ । ३२ ॥

[**हे परमेश्वर ! यत्र त्वमेतशेभिर्भ्राजमानो विपश्चितेयसे, यत्र प्राणो विद्युद्वैतशेर्भिविपश्चिता भ्राजमानो विज्ञायते तत्र त्वं, स, सा च...आरोह=समन्ताद् दर्शयति वा तत्र वयं त्वां, तं, तां चोपासीमहि, युञ्ज्याम वा**]

भावार्थः—अत्र श्लेषालङ्कारः ॥ मनुष्यैर्यथा विद्वद्भिरीश्वरः प्राणो विद्युच्च विज्ञायोपास्यते सम्प्रयुज्यते च तथैव विज्ञायोपास्य उपयोक्तव्यः संप्रयोजितव्य च ॥ ४ । ३२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष अलङ्कार है॥ जैसे विद्वान् लोग ईश्वर, प्राण और विद्युत् को जानकर ईश्वर की उपासना तथा प्राण और विद्युत् का उपयोग करते हैं वैसे सब मनुष्य जानकर उपासना और उपयोग करें ॥ ४ । ३२ ॥

भाष्यसार—**१. ईश्वर कैसा है**—परमेश्वर विज्ञान आदि गुणों से प्रकाशमान है जिसे मेधावी विद्वान् लोग ही भली प्रकार जान सकते हैं । परमेश्वर ही सूर्य, विद्युत्, भौतिक अग्नि, तथा देखने के साधन कनीनक (**तारिका**) रूप चक्षु को प्रकाशित करता है । इसलिये वह उपासना के योग्य है ।

२. प्राण और विद्युत्—प्राण तथा विद्युत् वेग आदि गुणों से युक्त हैं । इन्हें मेधावी विद्वान् ही भली-भांति जान सकते हैं । प्राण और विद्युत् ही सूर्य, भौतिक अग्नि, और देखने के साधन कनीनक (**तारिका**) रूप चक्षु के प्रकाशक हैं । इसलिये प्राण और विद्युत् का उपयोग करें ।

३. अलङ्कार—यहां श्लेष अलङ्कार से ईश्वर तथा प्राण और विद्युत् अर्थ का ग्रहण किया है ॥ ४ । ३२ ॥

वत्सः । **सूर्यविद्वांसौ**=**स्पष्टम्** ॥ पूर्वस्य निचृदार्षी गायत्री । षड्जः । स्वस्तीत्यन्तस्य याजुषी जगती । निषादः ॥

अथ सूर्य्याविद्वांसौ कथंभूतावेताभ्यां शिल्पविदौ किं कुर्य्यातामित्युपदिश्यते ॥

अब सूर्य्य और विद्वान् कैसे हैं और उन से शिल्पविद्या के जानने वाले क्या करें, यह उपदेश किया जाता है ॥

उस्रावेतं धूर्षाहौ युज्येथामनश्रू ऽ अवीरहणौ ब्रह्मचोदनौ ।
स्वस्ति यजमानस्य गृहान् गच्छतम् ॥ ३३ ॥

पदार्थः--(**उस्रौ**) रश्मिमन्तौ निवासहेतू सूर्य्यवायू । उस्रा इति रश्मिनामसु पठितम् ॥ निघं० १।५॥ गोनामसु च ॥ निघं० २।११॥ (**आ**) समन्तात् (**इतम्**) प्राप्नुतः (**धूर्षाहौ**) यौ धुरं=पृथिव्याः शरीरस्य ज्ञानानां वा धारणं सहेते तौ (**युज्येथाम्**) युज्येते=युक्तौ कुरुतः (**अनश्रू**) अव्यापिनौ (**अवीरहणौ**) वीरहननरहितौ (**ब्रह्मचोदनौ**) आत्मान्नप्राप्तिप्रेरकौ (**स्वस्ति**) सुखं सुखेन वा (**यजमानस्य**) धार्मिकस्य जीवस्य (**गृहान्**) गृहाणि (**गच्छतम्**) गमयतः॥ अयं मंत्रः शत० ३।३।४।१२ व्याख्यातः॥३३॥

प्रमाणार्थ—(**उस्रौ**) 'उस्राः' शब्द निघं० (१।५) में रश्मि-नामों में और निघं० (२।११) में गौ-नामों में पढ़ा है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३।३।४।१२) में की गई है॥ ४।३३॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्या! यथा—विद्याशिल्पे चिकीर्षू, यौ **ब्रह्मचोदनौ** आत्मान्नप्राप्तिप्रेरकौ **अनश्रू** अव्यापिनौ **अवीरहणौ** वीरहननरहितौ **उस्रौ** रश्मिमन्तौ निवास हेतु सूर्यवायू **धूर्षाहौ**=**सूर्य विद्वांसौ, गावौ,** यौ धुरं=पृथिव्याः शरीरस्य ज्ञानानां वा धारणं, सहेते तौ **वृषवद्यानचालनार्थंतं**=**प्राप्नुतः** (समन्तात् प्राप्नुतः) **युज्येथां**=**युक्तौ कुरुतः**, युज्येते=युक्तौ कुरुतः, **यजमानस्य** धार्मिकस्य जीवस्य **गृहान्** गृहाणि **स्वस्ति** (सुखं सुखेन वा) **गच्छतं**=**सुखेन गमयतस्तौ यूयं युक्त्या सेवयत**॥४।३३॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो! जैसे विद्या और शिल्प को प्राप्त करने के इच्छुक लोग, जिन (**ब्रह्मचोदनौ**) आत्मा और अन्न के प्रेरक (**अनश्रू**) अव्यापी (**अवीरहणौ**) वीरों का हनन न करने वाले (**उस्रौ**) किरणयुक्त एवं निवास के निमित्त सूर्य और वायु को तथा (**धूर्षाहौ**) पृथिवी, शरीर और ज्ञान को धारण करने वाले सूर्य और विद्वानों को तथा बैलों को, वृषभ के समान यान-संचालन के लिये (**एतम्**) प्राप्त करते हैं (**युज्येथाम्**) अथवा बैलों को यान में जोड़ते हैं, और (**यजमानस्य**) धार्मिक मनुष्य के (**गृहान्**) घरों को (**स्वस्ति**) सुखपूर्वक (**गच्छतम्**) प्राप्त कराते हैं उन्हें तुम लोग युक्ति से सेवन करो॥४। ३३॥

[हे मनुष्या! यथा विद्याशिल्पे चिकीर्षू ··· धूर्षाहौ=सूर्यविद्वांसौ, गावौ ··· एतं=प्राप्नुतः, युज्येथां=युक्तौ कुरुतः, यजमानस्य गृहान् स्वस्ति गच्छतं=सुखेन गमयतस्तौ यूयं युक्त्या सेवयत]

भावार्थः—अत्र श्लेषवाचकलुप्तोपमालङ्कारौ॥ यथा सूर्य विद्वांश्चितौ क्रमेण सर्वं प्रकाश्य, धृत्वा, सहित्वा, युक्त्वा, प्राप्य, सुखं प्रापयतस्तथैव येन शिल्पविद्यासम्पादकेन यानेषु युक्त्या सेविते अग्निजले सुखेन सर्वत्राभिगमनं कारयतः॥ ४।३३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार हैं॥ जैसे सूर्य और विद्वान् क्रमशः सबको प्रकाशित, धारण, सहन, युक्त और प्राप्त करके सुख को प्राप्त कराते हैं वैसे ही शिल्प विद्या के सम्पादक विद्वान् के द्वारा यानों में युक्ति से सेवन किये हुये अग्नि और जल सुख से सर्वत्र गमन कराते हैं॥४।३३॥

भाष्यसार—**१. सूर्य कैसा है**—शिल्प के सम्पादक विद्वान् के लिये सूर्य अन्न-प्राप्ति का प्रेरक है, यह अव्यापी अर्थात् सर्वत्र व्यापक नहीं है, वीरों का हनन करने वाला भी नहीं है, रश्मिमान् तथा सब प्राणियों के निवास का हेतु है, पृथिवी और शरीर के धारण-भार को सहन करने वाला है।

२. विद्वान् कैसा है—विद्या के अभिलाषी को विद्वान् आत्मा की प्राप्ति के लिये प्रेरणा करता है, विद्वान् अव्यापी अर्थात् सर्वत्र व्यापक नहीं होता, वह वीरों का हनन नहीं करता, विद्या की किरणों से युक्त, सूर्य और वायु के समान सब के निवास का हेतु और नाना ज्ञान-विज्ञानों को धारण करने वाला होता है।

३. सूर्य और विद्वान् से शिल्पविद् क्या करें—शिल्प के इच्छुक लोग वृषभ के समान यान के संचालन के लिये सूर्य (**अग्नि**) को तथा विद्वान् को भी प्राप्त करें तथा इनके उपयोग से धार्मिक जनों के घरों को यान के द्वारा सुख से प्राप्त करें।

४. अलङ्कार—यहां श्लेष अलङ्कार से सूर्य और विद्वान् अर्थ का ग्रहण किया है। मन्त्र में उपमावाचक शब्द लुप्त होने से वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि जैसे सूर्य और विद्वान् अपने गुणों से सबको सुख पहुँचाते हैं इसी प्रकार शिल्पविद्या के सम्पादक लोग यानादि के द्वारा सबको सुख पहुँचायें ॥ ४ । ३३ ॥

वत्सः । **अग्निः**=विद्वान् ॥ पूर्वस्य भुरिगार्ची गायत्री । षड्जः । मा त्वेत्यस्य भुरिगार्ची बृहती । मध्यमः । श्येनो भूत्वेत्यस्य विराडार्च्यनुष्टुप् । गान्धारः ।

तेन यानेन विदुषा किं किं कर्त्तव्यमित्युपदिश्यते ॥

उस यान से विद्वान् को क्या क्या करना चाहिये, इस विषय का उपदेश किया है ॥

भ॒द्रो मे॑ऽसि॒ प्रच्य॑वस्व भुवस्पते॒ विश्वा॑न्य॒भि धामा॑नि ।
मा त्वा॑ परिप॒रिणो॑ विद॒न् मा त्वा॑ परिप॒न्थिनो॑ विद॒न् मा त्वा॒ वृका॑ ऽ अघा॒यवो॑ विद॒न्
श्ये॒नो भू॒त्वा परा॑पत॒ यज॑मानस्य गृ॒हान् ग॑च्छ॒ तन्नौ॑ सँस्कृ॒तम् ॥ ३४ ॥

पदार्थः—(**भद्रः**) सुखकारी (**मे**) मम (**असि**) भवसि (**प्र**) प्रकर्षे (**च्यवस्व**) गच्छ (**भुवः**) पृथिव्याः (**पते**) स्वामिन्! (**विश्वानि**) सर्वाणि (**अभि**) आभिमुख्ये (**धामानि**) स्थानानि (**मा**) निषेधे (**त्वा**) त्वां गृहादिषूपस्थितम् (**परिपरिणः**) परितः सर्वतश्छलेन रात्रौ वा परस्वादायिनश्चोराः । छन्दसि परिपन्थिपरिपरिणौ पर्य्यवस्थातरि ॥ अ० ५ । २ । ८९ ॥ अनेनैतौ शब्दौ स्तेनविषये निपात्येते (**विदन्**) विन्दन्तु प्राप्नुवन्तु । अत्र सर्वत्र वा छन्दसि सर्वे विधयो भवन्तीति नुमटोरभावो लोडर्थे लुङ् च (**मा**) निषेधार्थे (**त्वा**) प्रवाससेविनं त्वाम् (**परिपन्थिनः**) उत्कोचका दस्यवः (**विदन्**) लभन्ताम् (**मा**) निषेधार्थे (**त्वा**) त्वामैश्वर्य्यवन्तम् (**वृकाः**) स्तेनाः । वृक इति स्तेननामसु पठितम् ॥ निघं० ३ । २४ ॥ (**अघायवः**) आत्मनोऽघं=पापमिच्छवः (**विदन्**) लभन्ताम् (**श्येनः**) श्येन इव (**भूत्वा**) (**परा**) दूरार्थे (**पत**) गच्छ (**यजमानस्य**) सङ्गमं कर्त्तुं योग्यस्य पूज्यस्य मनुष्यस्य (**गृहान्**) द्वीपखण्डदेशान्तरस्थानानि (**गच्छ**) गमनं कुरु (**तत्**) (**नौ**) आवयोः (**संस्कृतम्**) शिल्पविद्यासंस्कारयुक्तं सर्वर्त्तुकम् ॥ अयं मंत्रः शत० ३ । ३ । ४ । १४-१६ व्याख्यातः ॥ ३४ ॥

प्रमाणार्थ—(**परिपरिणः**) 'परिपरिन्' और 'परिपन्थिन्' शब्द 'छन्दसि परिपन्थिपरिपरिणौ पर्यवस्थातरि' (**अ०** ५ । २ । ८९) सूत्र से चोर-अर्थ में निपातित हैं। (**विदन्**) विदन्तु। इस मन्त्र में सर्वत्र 'वा छन्दसि सर्वे विधयो भवन्ति' [**अ० महा०** १ । ४ । ९] इस भाष्यवचन से 'नुम्' और

'अट्' का अभाव है तथा लोट् अर्थ में लुङ् लकार है। (**वृकाः**) 'वृक' शब्द निघं० (३।२४) में चोर नामों में पढ़ा है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३।३।४।१४-१६) में की गई है ॥ ४। ३४॥

सपदार्थान्वयः—हे **भुवस्पते**=**विद्वन्**! पृथिव्याः स्वामिन्! **त्वं मे**=**मम भद्रः** सुखकारी **असि** भवसि।

यन्नौ=**तव मम च** आवयोः **सँस्कृतं** शिल्पविद्या संस्कारयुक्तं सर्वर्त्तुकं **यानमस्ति** [**तत्**] **तेन विश्वानि** सर्वाणि **धामानि** स्थानानि **अभिप्रच्यवस्व**=**अभितः प्रकृष्टतया गच्छ, यथा यथा सर्वत्राभिगच्छन्तं** [**त्वा**]=**त्वां** त्वां गृहादिषूपस्थितं **परिपरिणः** परितः सर्वतश्छलेन रात्रौ वा परस्वादायिनश्चोराः, **वृकाः** स्तेनाः, **मा विदन्** न विदन्तु=प्राप्नुवन्तु **तथा प्रयतस्व**।

परदेशसेविनं [**त्वा**] **त्वां** प्रवाससेविनं त्वां **यथा परिपन्थिनः** उत्कोचका दस्यवः, **वृकाः** स्तेनाः, **मा विदन्** न लभन्तां **तथाऽनुतिष्ठ**।

यथा परदेशसेविनं [**त्वा**]=**त्वां** त्वामैश्वर्यवन्तम् **अघायवः**=**पापिनो मनुष्याः** आत्मनो ऽघं=पापमिच्छवः **मा विदन्** न लभन्तां **तथाऽनुजानीहि**।

त्व श्येनः श्येन इव **भूत्वा तेभ्यः परापत**=**गच्छैतान् वा परायत**=**दूरे गमयैवं कृत्वा यजमानस्य** सङ्गमं कर्त्तुं योगस्य पूज्यस्य मनुष्यस्य **गृहान्** द्वीप खण्ड देशान्तरस्थानानि **गच्छ** गमनं कुरु **यतो मार्गे किञ्चिदपि दुःखं न स्यात्** ॥ ४। ३४॥

भाषार्थ—हे (**भुवस्पते**) पृथिवी के स्वामी विद्वान्! आप (**मे**) मेरे लिये (**भद्रः**) सुखकारी (**असि**) हो।

जो (**नौ**) तेरा और मेरा (**संस्कृतम्**) शिल्प विद्या के संस्कार से युक्त सब ऋतुओं में सुखदायक यान है [**तत्**] उससे (**विश्वानि**) (**धामानि**) स्थानों पर (**अभिप्रच्यवस्व**) अच्छे प्रकार जा जिससे सर्वत्र जाते हुए [**त्वा**] घर में उपस्थित तुझको (**परिपरिणः**) सब ओर से छल करके अथवा रात्रि में दूसरे के धन को उठाने वाले (**वृकाः**) चोर (**मा विदन्**) प्राप्त न कर सकें ऐसा प्रयत्न कर।

परदेश में रहने वाले [**त्वा**] तुझ प्रवासी को (**परिपन्थिनः**) घूस लेने वाले डाकू (**वृकाः**) चोर (**मा विदन्**) तुझे प्राप्त न कर सकें वैसा कर।

जैसे परदेश में रहने वाले [**त्वा**] ऐश्वर्ययुक्त तुझको (**अघायवः**) पाप के इच्छुक पापी लोग (**मा विदन्**) न प्राप्त कर सकें वैसा पथ स्वीकार कर।

तू (**श्येनः**) बाज की तरह (**भूत्वा**) होकर उनसे (**परापत**) दूर ले जा, इस प्रकार करके (**यजमानस्य**) सङ्ग करने योग्य पूज्य मनुष्य के (**गृहान्**) द्वीप, खण्ड और देशान्तर में (**गच्छ**) जाकर जिससे मार्ग में कोई भी कष्ट न हो ॥ ४। ३४॥

[**यन्नौ**=**तव मम च सँस्कृतं यानमस्ति** [**तत्**]=**तेन विश्वानि धामान्यभिप्रच्यवस्व**=**अभितः प्रकृष्टतया गच्छ,**...**त्वं श्येनो भूत्वा तेभ्यः परापत**=**गच्छैतान् वा परापत**=**दूरे गमयैवं कृत्वा यजमानस्य गृहान् गच्छ, यतो मार्गे किञ्चिदपि दुःखं न स्यात्**]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः॥ मनुष्यैरुत्तमानि विमानादीनि यानानि रचयित्वा, तत्र स्थित्वा, तानि यथायोग्यं प्रचाल्य, श्येन इव द्वीपाद्यन्तरं देशं गत्वा, धनं प्राप्य, तस्मादागत्य, दुष्टेभ्यः प्राणिभ्यो दूरं स्थित्वा सर्वदा सुखं भोक्तव्यम् ॥ ४। ३४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है॥ मनुष्य—उत्तम विमान आदि यानों को रच कर, उनमें बैठकर, उन्हें यथायोग्य चला कर, बाज पक्षी के समान दीपान्तर देश में जाकर, धन प्राप्त करके, वहां से आकर, दुष्ट प्राणियों से दूर रह कर, सदा सुख का उपभोग करें ॥ ४। ३४॥

भा० पदार्थः—सँस्कृतम्=उतमम् । यानम्=विमानादि यानम् ।

भाष्यसार—यान से विद्वान् क्या क्या करे--विद्वान् पृथिवी का स्वामी और सबका सुखकारी होता है। वह शिल्प विद्या से संस्कृत, सब ऋतुओं में सुखदायक उत्तम विमान आदि यानों की रचना करता है और उनमें बैठकर उनका यथायोग्य प्रचालन करके सब धाम अर्थात् द्वीप-द्वीपान्तर देश-देशान्तर में सब ओर अच्छे प्रकार जाता है जिससे चोर, डाकू और पापी मनुष्य उसे प्राप्त नहीं कर सकते। वह बाज-पक्षी के समान यान से गति करता है, जिससे वह उक्त दुष्टों को दूर हटाता है और पूजा के योग्य श्रेष्ठ जनों के द्वीपान्तर वा देशान्तर में स्थित घरों पर यान से जाता है जिससे उसे मार्ग में कोई दुःख नहीं होता। यान के द्वारा देशान्तर में जाकर वहाँ से धन लाकर दुष्ट प्राणियों से अलग रह कर सदा सुख को भोगता है ॥ ४ । ३४ ॥

वत्सः । **सूर्य्यः=ईश्वरः सूर्यश्च** ॥ निचृदार्षी जगती । निषादः ॥

पुनरीश्वरसवितारौ कीदृशावित्युपदिश्यते ॥

फिर ईश्वर और सूर्य्य कैसे हैं, इस विषय का उपदेश किया है ॥

नमो॑ मि॒त्रस्य॒ वरु॑णस्य॒ चक्ष॑से म॒हो दे॒वाय॒ तदृ॒तꣳ स॑पर्यत ।
दू॒रे॒दृशे॑ दे॒वजा॑ताय के॒तवे॑ दि॒वस्पु॒त्राय॒ सूर्य्या॑य शꣳसत ॥ ३५ ॥

पदार्थः—(**नमः**) सत्करणमन्नं वा । नम इत्यन्ननामसु पठितम् ॥ निघं० २ । ७ ॥ (**मित्रस्य**) सर्वजगत्सुहृदः । प्रकाशस्य वा (**वरुणस्य**) श्रेष्ठस्य (**चक्षसे**) सर्वद्रष्टुर्दर्शयितुर्वा । अत्र षष्ठयर्थे चतुर्थीति वार्त्तिकेन चतुर्थी । चष्ट इति पश्यतिकर्मसु पठितम् ॥ निघं० ३ । ११ ॥ (**महः**) महसे अत्र सुपां सुलुगिति ङेर्लुक् (**देवाय**) दिव्यगुणाय (**तत्**) चेतनस्वरूपं प्रकाशस्वरूपं वा (**ऋतम्**) सत्यम् (**सपर्य्यत**)परिचरत । सपर्य्यतीति परिचरणकर्मसु पठितम् ॥ निघं० ३ । ५ ॥ (**दूरेदृशे**) यो दूरे स्थितान् दर्शयति तस्मै (**देवजाताय**) देवैर्दिव्यैर्गुणैः प्रसिद्धाय (**केतवे**) विज्ञानस्वरूपाय ज्ञापकाय वा (**दिवः**) प्रकाशस्वरूपस्य (**पुत्राय**) पवित्रकारकायाग्निपुत्राय वा (**सूर्य्याय**) चराचरात्मने । परमैश्वर्य्यहेतवे वा (**शꣳसत**) प्रशंसत ॥ अयं मंत्रः शत० ३ । ३ । ४ । २४ व्याख्यातः ॥ ३५ ॥

प्रमाणार्थ—(**नमः**) यह शब्द निघं० (२ । ७) में अन्न नामों में पढ़ा है। (**चक्षसे**) सर्वद्रष्टुः । यहाँ 'षष्ठयर्थे चतुर्थी वक्तव्या' [अ० २ । ३ । ६२] इस वार्तिक से षष्ठी के अर्थ में चतुर्थी विभक्ति है। (**चष्टे**) यह पद निघं० (३ । ११) में देखने अर्थ वाली क्रियाओं में पढ़ा है। (**महः**) महसे । यहां 'सुपां सुलुक्०' [अ० ७ । १ । ३९] सूत्र से 'ङे' प्रत्यय का लुक् है। (**सपर्य्यत**) 'सपर्य्यति' पद निघं० (३ । ५) परिचरण (**सेवा**) अर्थ वाली क्रियाओं में पढ़ा है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ३ । ४ । २४) में की गई है ॥ ४ । ३५ ॥

[ईश्वरः]

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्या ! **यथा वयं यन्मित्रस्य** सर्वजगत्सुहृदः, **वरुणस्य** श्रेष्ठस्य **दिवः** प्रकाशस्वरूपस्य **ऋतं** सत्यं **स्वरूपमस्ति,**

[ईश्वर]

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हमलोग जो (**मित्रस्य**) सब जगत् के मित्र (**वरुणस्य**) श्रेष्ठ (**दिवः**) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर के (**ऋतम्**) सच्चे

तत् चेतनस्वरूपं **यूयमपि सपर्य्यत** परिचरत ।

स्वरूप की पूजा करते हैं, वैसे तुम भी (**तत्**) उस चेतनस्वरूप की (**सपर्य्यत**) पूजा करो ।

यस्य महः महसे **दूरेदृशे** यो दूरे स्थितान् दर्शयति तस्मै **चक्षसे** सर्वद्रष्टुः **देवजाताय** देवैर्दिव्यैर्गुणैः प्रसिद्धाय **केतवे** विज्ञानस्वरूपाय **देवाय** दिव्यगुणाय **पुत्राय=पवित्रकर्त्रे** पवित्रकारकाय **सूर्याय=परमात्मने** चराचरात्मने **वयं नमः** सत्कारणं **कुर्मस्तस्मै यूयमपि कुरुत** [**शंसत**] प्रशंसत च **इत्येकः** ।।

जिस (**महः**) महान् (**दूरेदृशे**) दूर स्थित पदार्थों को दिखाने वाले (**चक्षसे**) सबके द्रष्टा (**देवजाताय**) दिव्य गुणों के कारण प्रसिद्ध (**केतवे**) विज्ञानस्वरूप (**देवाय**) दिव्यगुणों वाले (**पुत्राय**) पवित्र करने वाले (**सूर्याय**) चराचर जगत् के आत्मा परमात्मा का हम लोग (**नमः**) सत्कार करते हैं उसका तुम भी सत्कार तथा [**शंसत**] प्रशंसा करो । यह मन्त्र का पहला अर्थ है ।।

[सविता]

हे मनुष्या ! **यथा वयं यन्मित्रस्य** प्रकाशस्य वरुणस्य श्रेष्ठस्य **दिवः=प्रकाशस्वरूपस्य सूर्यलोकस्य ऋतम्=यथार्थस्वरूपं** सत्यं **सेवेमहि तत्** प्रकाशस्वरूपं **यूयमपि विद्यया सपर्य्यत** परिचरत ।

[सूर्य]

हे मनुष्यो ! जैसे हमलोग जो (**मित्रस्य**) प्रकाश करने वाले (**वरुणस्य**) श्रेष्ठ (**दिवः**) प्रकाशस्वरूप सूर्यलोक का (**ऋतम्**) सच्चास्वरूप है उसका सेवन करते हैं वैसे तुमलोग भी विद्या के द्वारा (**तत्**) उस प्रकाशस्वरूप का (**सपर्यात**) सेवन करो ।

यथा वयं यस्मै चक्षसे दर्शयितुः **देवजाताय** देवैर्दिव्यैर्गुणैः प्रसिद्धाय **केतवे** ज्ञापकाय **दिवः=अग्नेः** प्रकाशस्वरूपस्य **पुत्राय** अग्निपुत्राय **दूरेदृशे** यो दूरे स्थितान् दर्शयति तस्मै **महः** महसे **देवाय** दिव्यगुणाय **सूर्याय** परमैश्वर्यहेतवे **लोकाय** [**नमः**] अन्नं **प्राप्तयर्थं पवर्त्तेमहि, तथा यूयमपि प्रवर्त्तध्वं** [**शंसत**] प्रशंसत च ।। ४ । ३५ ।।

जैसे हम लोग जिस (**चक्षसे**) सबको दिखाने वाले (**देवजाताय**) दिव्य गुणों से प्रसिद्ध (**केतवे**) ज्ञान कराने वाले (**दिवः**) प्रकाशस्वरूप (**पुत्राय**) अग्नि के पुत्र (**दूरेदृशे**) दूर स्थित होकर सब पदार्थों को दिखाने वाले (**महः**) महान् (**देवाय**) दिव्यगुणों से युक्त (**सूर्याय**) परमऐश्वर्य के निमित्त सूर्यलोक तथा (**नमः**) अन्न की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करते हैं वैसे तुम भी सदा प्रयत्न करो और [**शंसत**] प्रशंसा किया करो ।। ४ । ३५ ।।

[हे मनुष्या ! ···यन्मित्रस्य वरुणस्य दिव ऋतं स्वरूपमस्ति तत्···सपर्यत]

भावार्थः—अत्र श्लेष—वाचकलुप्तोपमालङ्कारौ ।। यस्य कृपया, प्रकाशेन वा चोरदस्य्वादयो निवर्त्तन्ते, यतः परमेश्वरेण: समः समर्थः, सूर्येण समो लोकश्च न विद्यते, तस्मात्-सर्वैर्मनुष्यैः स एव प्रशंसनीय इति वेद्यम् ।। ४ । ३५ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार हैं ।। जिस ईश्वर की कृपा वा सूर्य के प्रकाश से चोर, दस्यु आदि लोग दूर रहते हैं क्योंकि परमेश्वर के समान समर्थ और सूर्य के समान कोई लोक नहीं है इसलिये सब मनुष्य उन्हीं की प्रशंसा किया करें ।। ४ । ३५ ।।

भाष्यसार—१. **ईश्वर कैसा है**—परमेश्वर सब जगत् का मित्र, श्रेष्ठ, प्रकाशस्वरूप, सत्यस्वरूप, चेतनस्वरूप, महान्, दूर स्थित पदार्थों को दिखाने वाला, सब का द्रष्टा, दिव्य गुणों के कारण प्रसिद्ध, विज्ञानस्वरूप, दिव्यगुणवान्, पवित्रकारक, और चराचर जगत् का आत्मा है । ईश्वर कृपा से

चोर, दस्यु आदि दुष्ट-जन निवृत्त हो जाते हैं। ईश्वर के समान संसार में कोई समर्थ नहीं। अतः ईश्वर नमस्कार के योग्य तथा प्रशंसा के योग्य है।

२. सविता (सूर्य) कैसा है—सविता अर्थात् सूर्य श्रेष्ठ, प्रकाशस्वरूप तथा सत्यस्वरूप है, विद्या से जानने योग्य है, यह सबको दिखाने वाला, अपने दिव्य गुणों के कारण प्रसिद्ध, सब पदार्थों का ज्ञापक, तथा प्रकाशस्वरूप अग्नि का पुत्र है। यह दूर स्थित हम सब मनुष्यों को सब पदार्थ दिखा रहा है। यह महान्, दिव्यगुणों से युक्त, और परम ऐश्वर्य प्राप्ति का हेतु है। इसी की महिमा से अन्न आदि पदार्थ उत्पन्न होते हैं। विद्वान् लोग इसका विद्यापूर्वक सेवन करें। इसकी प्रशंसा करें अर्थात् इसके गुणों को प्रकाशित करें। इसके प्रकाश से चोर, दस्यु आदि दुष्ट जन निवृत्त होते हैं। सूर्य के समान कोई लोक नहीं है॥

३. अलङ्कार—इस मन्त्र में श्लेष अलङ्कार से ईश्वर और सूर्य अर्थ का ग्रहण किया है। मन्त्र में उपमा वाचक 'इव' आदि शब्द लुप्त है इसलिए वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि जैसे विद्वान् लोग ईश्वर की पूजा और स्तुति करें तथा सूर्य का यथायोग्य सेवन और गुणों का वर्णन करें इसी प्रकार अन्य मनुष्य भी किया करें॥ ४। ३५॥

वत्सः। **सूर्य्यः=ईश्वरः सूर्यो वा**॥ विराड्ब्राह्मी बृहती। मध्यमः॥

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते॥

फिर वे ईश्वर और सूर्य कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

वरु॑णस्योत्त॒म्भ॑नमसि॒ वरु॑णस्य स्कम्भ॒सर्ज॑नी स्थो॒ वरु॑णस्यऽऋ॒त॒सद॑न्यसि॒।
वरु॑णस्य ऽ ऋ॒त॒सद॑नमसि॒ वरु॑णस्य ऽ ऋ॒त॒सद॑न॒मासी॑द॥ ३६॥

पदार्थः—(**वरुणस्य**) वरितुं=प्राप्तुं योग्यस्य श्रेष्ठस्य जगतः। **वरुण इति पदनामसु पठितम्॥ निघं० ५। ४॥** (**उत्तम्भनम्**) उत्कृष्टं प्रतिबन्धनम्। **अत्र उदःस्थास्तम्भोः पूर्वस्य॥ अ० ८। ४। ६१॥ अनेन सस्य पूर्वसवर्णादेशः** (**असि**) अस्ति वा (**वरुणस्य**) वायोः। अनेन ज्ञानप्राप्तिगमधातोरर्थस्य ग्रहणम् (**स्कम्भसर्जनी**) या क्रिया स्कम्भानामाधारकाणां सर्जन्युत्पादिका सा (**स्थः**) स्तः (**वरुणस्य**) सूर्य्यस्य (**ऋतसदनी**) या क्रिया ऋतानां=जलानां सदनी=गमनागमनकारिणी (**असि**) अस्ति वा (**वरुणस्य**) वरपदार्थसमूहस्य (**ऋतसदनम्**) ऋतानां=यथार्थानां पदार्थानां सदनं=स्थानम् (**असि**) अस्ति वा (**वरुणस्य**) उत्कृष्टगुणसमूहस्य (**ऋतसदनम्**) यदृतानां=सत्यानां बोधानां स्थानं तत् (**आ**) समन्तात् (**सीद**) प्रापयसि प्रापयति वा॥ **अयं मंत्रः शत० ३। ३। ४। २५-२६ व्याख्यातः॥ ३६॥**

प्रमाणार्थ—(**वरुणस्य**) 'वरुण' शब्द निघं० (५। ४) में पद-नामों में पढ़ा है। (**उत्तम्भनम्**) यहां 'उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य' (अ० ८। ४। ६१) सूत्र से सकार को पूर्वसवर्ण आदेश है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३। ३। ४। २५-२६) में की गई है॥ ४। ३६॥

[ईश्वरः]

सपदार्थान्वयः—हे जगदीश्वर! यतस्त्वं **वरुणस्य** वरितुं=प्राप्तुं योग्यस्य श्रेष्ठस्य

[ईश्वर]

भाषार्थ—हे जगदीश्वर! जिससे आप (**वरुणस्य**) वरण=प्राप्त करने योग्य श्रेष्ठ जगत्

जगतः **उत्तम्भनम्** उत्कृष्टं प्रतिबन्धनम् **असि, या वरुणस्य** वायोः **स्कम्भसर्जनी** या क्रिया स्कम्भानामाधारकाणां सर्जन्युत्पादिका सा, **या च वरुणस्य** सूर्यस्य **ऋतसदनी** या क्रिया ऋतानां=जलानां सदनी=गमनागमनकारिणी, **क्रिये स्थः=स्तस्ते धारितवानसि।**

यद् वरुणस्य वरपदार्थसमूहस्य **ऋतसदनम्** ऋतानां=यथार्थानां पदार्थानां सदनं=स्थानम् [**असि**]=**अस्ति तत्कृपया वरुणस्य** उत्कृष्टगुणसमूहस्य **ऋतसदनं** यद् ऋतानां=सत्यानां बोधानां स्थानं तत् **आसीद=समन्तात् प्रापयसि, अतस्त्वां वयमाश्रयाम इत्येकः ॥**

को (**उत्तम्भनम्**) अच्छे प्रकार बाँधने वाले (**असि**) हो और (**वरुणस्य**) वायु की (**स्कम्भसर्जनी**) स्कम्भन=धारण शक्ति को उत्पन्न करने वाली क्रिया और जो (**वरुणस्य**) सूर्य के पास (**ऋतसदनी**) ऋत अर्थात् जल पहुँचाने और वहां से वापिस लाने की जो क्रियायें (**स्थः**) हैं उनको धारण करते हो।

जो (**वरुणस्य**) उत्तम पदार्थों तथा (**ऋतसदनम्**) यथार्थ-पदार्थों का स्थान [**असि**] है उसे कृपा करके (**वरुणस्य**) उत्कृष्ट गुणों के (**ऋतसदनम्**) सत्यज्ञानों का स्थान है उसे (**आसीद**) सब ओर से प्राप्त कराते हो, इसलिये हम आप का आश्रय लेते हैं ॥ यह मन्त्र का पहला अर्थ है ॥

[सूर्यः]

यो वरुणस्य वरितुं=प्राप्तुं योग्यस्य श्रेष्ठस्य जगतः उत्तम्भनम् उत्कृष्टं प्रतिबन्धनं **धरति, या वरुणस्य** वायोः **स्कम्भसर्जनी** या क्रिया स्कम्भानाम्=आधारकाणां सर्जन्युत्पादिका सा, **या च वरुणस्य** सूर्यस्य **ऋतसदनी या** क्रिया ऋतानां=जलानां सदनी=गमनागमनकारिणी, **क्रिये, स्थः=स्तो, यस्तयोर्धारकः** [**असि**]=**अस्ति, यद् वरुणस्य** वरपदार्थसमूहस्य **ऋतसदनम्** ऋतानां=यथार्थानां पदार्थानां सदनं=स्थानम् [**असि**]=**अस्ति, तद्यो वरुणस्य** उत्कृष्टगुणसमूहस्य **ऋतसदनं** यद्दतानां=सत्यानां बोधानां स्थानं तत् **आसीद=समन्तात् प्रापयति, स कुतो नोपयोक्तव्यः। [इतिद्वितीयः]** ॥ ४। ३६ ॥

[सूर्य]

जो (**वरुणस्य**) वरुण=प्राप्त करने योग्य श्रेष्ठ जगत् के (**उत्तम्भनम्**) उत्कृष्ट बन्धन को धारण करता है और जो (**वरुणस्य**) वायु की (**स्कम्भसर्जनी**) स्कम्भन=धारण शक्ति को उत्पन्न करने वाली क्रिया और (**वरुणस्य**) सूर्य के पास (**ऋतसदनी**) जल का गमन आगमन कराने वाली क्रिया, (**स्थः**) हैं, जो उन क्रियाओं को धारण करने वाला सूर्य है जो कि (**वरुणस्य**) उत्तम पदार्थों का (**ऋतसदनम्**) यथार्थ घर [**असि**] है और जो (**वरुणस्य**) उत्तम गुणों के (**ऋतसदनम्**) यथार्थ ज्ञानों का स्थान है उसे (**आसीद**) सब ओर से प्राप्त कराता है, उस सूर्य का उपयोग क्यों न किया जाये। [**यह मन्त्र का दूसरा अर्थ है**] ॥ ४। ३६ ॥

[हे जगदीश्वर ! यतस्त्वं वरुणस्योत्तम्भनमसि, या'''स्कम्भसर्जनी'''ऋतसदनी क्रिये स्थः=स्तस्ते धारितवानसि]

भावार्थः—अत्र श्लेषालङ्कारः ॥ नहि कश्चित्परमेश्वरेण विना सर्वं जगद् रचितुं, धर्त्तुं, पालयितुं, विज्ञातुं वा शक्नोति।

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष अलङ्कार है॥ परमेश्वर के बिना सब जगत् की रचना, धारण, पालन और पूर्ण ज्ञान कोई नहीं कर सकता।

[यो वरुणस्योत्तम्भनं धरति, या'''स्कम्भसर्जनी'''ऋतसदनी क्रिये स्थः=स्तो यस्तयोर्धारकः [असि] अस्ति]

न किल कश्चित् सूर्येण विना सर्वं भूम्यादिजगत् प्रकाशितुं धर्त्तुं वा शक्नोति।

और—यह निश्चय है कि कोई सूर्य के बिना सब भूमि आदि जगत् को प्रकाशित वा धारण नहीं कर सकता।

[तात्पर्यमाह—]

तस्मात्—सर्वैर्मनुष्यैरीश्वरस्योपासनं सूर्यस्योपयोगो यथावत् कार्य इति ॥ ४ । ३६ ॥

इस लिये—सब मनुष्य ईश्वर की उपासना और सूर्य का उपयोग यथावत् किया करें ॥ ४ । ३६ ॥

भाष्यसार—**१. ईश्वर कैसा है**—जगदीश्वर श्रेष्ठ जगत् का उत्तम रचयिता है । यह वायु की स्कम्भसर्जनी और सूर्य की ऋतसदनी नामक क्रियाओं को धारण करने वाला है और जो उत्तम पदार्थों का स्थान है उसे कृपा करके प्राप्त कराता है और जो उत्तम गुणों का सच्चा बोधस्थान है उसे भी वही प्राप्त कराता है । इसलिये ईश्वर के बिना सब जगत् की रचना, इसका धारण, पालन तथा पूर्ण ज्ञान कोई भी नहीं कर सकता । अतः ईश्वर सबका उपास्य है ।

२. सूर्य कैसा है—सूर्य श्रेष्ठ जगत् का उत्कृष्ट प्रतिबन्धक है । यह वायु की स्कम्भसर्जनी तथा अपनी ऋतसदनी नामक क्रियाओं को धारण करने वाला है । यह उत्तम पदार्थों को प्राप्त कराता है तथा उत्तम-गुणों के सच्चे बोधस्थान को प्राप्त कराता है । इसलिये सूर्य के बिना कोई भी भूमि आदि जगत् को प्रकाशित नहीं कर सकता और न ही धारण कर सकता है । अतः सूर्य सब मनुष्यों के लिए उपयोग के योग्य है ।

३. अलङ्कार—इस मन्त्र में श्लेष अलङ्कार से ईश्वर और सूर्य अर्थ का ग्रहण किया है ॥ ॥ ४ । ३६ ॥

●

गोतमः । **यज्ञः=ईश्वरः, संसारश्च** ॥ निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनरेतौ कीदृशावित्युपदिश्यते ॥

फिर ये कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया गया है ॥

या ते धामा॑नि ह॒विषा॒ यज॑न्ति॒ ता ते॒ विश्वा॑ परि॒भूर॑स्तु य॒ज्ञम् ।
ग॒य॒स्फान॑: प्र॒तर॑णः सु॒वीरोऽवी॑रहा॒ प्र च॑रा सोम॒ दुर्या॑न् ॥ ३७ ॥

पदार्थः—(**या**) यानि । अत्र सर्वत्र शेश्छन्दसीति शेर्लोपः (**ते**) तव तस्य वा (**धामानि**) अधिकरणानि द्रव्याणि (**हविषा**) ग्राह्येण दातव्येन पदार्थेन साधकेन वा (**यजन्ति**) पूजयन्ति संगमयन्ति वा (**ता**) तानि (**ते**) तव तस्य वा (**विश्वा**) सर्वाणि (**परिभूः**) परितः सर्वतो भवतीति (**अस्तु**) भवतु (**यज्ञम्**) यष्टुमर्हम् (**गयस्फानः**) गयानामपत्यधनगृहाणां स्फानो=वर्धयिता । गय इत्यपत्यनामसु पठितम् ॥ निघं० २ । २ ॥ धननामसु ॥ निघं० २ । १० ॥ गृहनामसु च ॥ निघं० ३ । ४ ॥ (**प्रतरणः**) प्रतरति दुःखानि येन सः (**सुवीरः**) शोभना वीरा यस्मिन्सः (**अवीरहा**) अवीरान्=कातरान् मनुष्यान् हन्ति येन सः । अत्र कृतो बहुलमिति करणे क्विप् (**प्रचर**) विजानीह्यनुतिष्ठ (**सोम**) सोमविद्यासंपादक विद्वन् (**दुर्यान्**) गृहाणि । दुर्या इति गृहनामसु पठितम् ॥ निघं० ३ । ४ ॥ अयं मंत्रः शत० ३ । ३ । ४ । ३० व्याख्यातः ॥ ३७ ॥

प्रमाणार्थ—(**या**) यानि । इस मन्त्र में सर्वत्र 'शेश्छन्दसि बहुलम्' [अ० ६ । १ । ६८] सूत्र से 'शि' का लोप है । (**गयस्फानः**) 'गय' शब्द निघं० (२ । २) में सन्तान-नामों में, निघं० (२ । १०) में धन-नामों में और निघं० (३ । ४) में गृह-नामों में पढ़ा है । (**अवीरहा**) यहां 'कृतो बहुलम्' [अ० ३ । ३ । ११३] इस वार्तिक से करण-कारक में क्विप् प्रत्यय है । (**दुर्यान्**) 'दुर्याः' शब्द निघं० (३ । ४) में गृह-नामों में पढ़ा है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० [३ । ३ । ४ । ३०] में की गई है ॥ ४ । ३७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे जगदीश्वर ! **यथा विद्वांसो या**=यानि **ते**=तव तव तस्य वा **धामानि** अधिकरणानि द्रव्याणि **हविषा** ग्राह्येण दातव्येन पदार्थेन साधकेन वा **यजन्ति** पूजयन्ति संगमयन्ति वा **तथा ता**=तानि **विश्वा**=सर्वाणि **वयमपि यजेमैतेषां यथा यस्ते**=तव तव तस्य वा **गयस्फानः** गयानामपत्यधनगृहाणां स्फानो वर्धयिता **प्रतरणः** प्रतरति दुःखानि येन स **सुवीरः** शोभना वीरा यस्मिन् स **अवीरहा** अवीरान्=कातरान् मनुष्यान हन्ति येन स **परिभूः** परितः सर्वतो भवतीति [**यज्ञम्**]=**यज्ञः** [**सुख-**] **प्रदोऽस्ति, तथा स भवत्कृपयाऽस्मभ्यमपि सुखकार्य्यस्तु** भवतु ।

हे सोम=**विद्वन्** ! सोमविद्यासम्पादक विद्वन् ! **यथा वयमेतं यज्ञं** यष्टुमर्हम् **अनुष्ठाय, गृहेषु** [**प्रचर**]=**प्रचरेम, विजानीयाम, अनुतिष्ठेम, तथा त्वमप्येतं दुर्यान्**=**गृहाणि प्रचर, विजानीह्यनुतिष्ठ** ॥ ४ । ३७ ॥

भाषार्थ—हे जगदीश्वर ! जैसे विद्वान् लोग (**या**) जो (**ते**) आप को (**धामानि**) द्रव्यों को (**हविषा**) लेने और देने योग्य पदार्थ से वा साधन से (**यजन्ति**) पूजन वा सङ्ग करते हैं वैसे (**ता**) उन (**विश्वा**) सबका हम भी यजन करें । इनके लिए जैसे जो (**ते**) आप के (**गयस्फानः**) सन्तान, धन और घर को बढ़ाने वाला (**प्रतरणः**) दुःखों से पार करने वाला (**सुवीरः**) श्रेष्ठ वीरों वाला (**अवीरहा**) कायर लोगों को मारने वाला (**परिभूः**) व्यापक यज्ञ सुखदायक है वैसे वह आप की कृपा से हमारे लिये भी सुखकारी हो ।

हे (**सोम**) सोम विद्या को सिद्ध करने वाले विद्वान ! जैसे हम लोग इस (**यज्ञम्**) यज्ञ को करके घर में विचरण, विज्ञान प्राप्ति और अनुष्ठान करें वैसे आप भी इस यज्ञ का (**दुर्यान्**) घर-घर में (**प्रचर**) प्रचार करो, जानो, और अनुष्ठान करो ॥ ४ । ३७ ॥

[हे जगदीश्वर ! **यथा विद्वांसो या**=**यानि ते**=**तव धामानि हविषा यजन्ति तथा ता**=**तानि**···**वयमपि यजेम**]

भावार्थः—अत्र श्लेषवाचकलुप्तोपमालङ्कारौ ॥ यथा विद्वांस ईश्वरे प्रीतिं, संसारे यज्ञानुष्ठानं कुर्वन्ति तथैव सर्वैर्मनुष्यैरनुष्ठेयम् ॥ ४ । ३७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार हैं ॥ जैसे विद्वान् लोग ईश्वर में प्रीति और संसार में यज्ञानुष्ठान करते हैं वैसे ही सब मनुष्य आचरण करें ॥ ४ । ३७ ॥

भाष्यसार—१. **ईश्वर कैसा है**—विद्वान् लोग ईश्वर के दिये पदार्थों से जो पदार्थ ग्रहण और दान करने के योग्य हैं, ईश्वर का पूजन करते हैं । ईश्वर द्वारा प्रतिपादित यज्ञ सन्तान, धन और घरों को बढ़ाने वाला, दुःखों से पार उतारने वाला, श्रेष्ठ वीर-जनों को उत्पन्न करने वाला, कायर मनुष्यों को नष्ट करने वाला, सर्वव्यापक तथा सुखदायक है । इस यज्ञ का विद्वानों के समान सब मनुष्य प्रचार करें, इसे जानें और स्वयं भी अनुष्ठान करें ।

२. **संसार कैसा है**—विद्वान् लोग संसार के पदार्थों को ग्रहण-दान रूप व्यवहार से प्राप्त करते हैं । यह लेन-देन रूप व्यवहार यज्ञ कहलाता है जो कि सन्तान, धन और घरों को बढ़ाने वाला, दुःखों से दूर करने वाला, श्रेष्ठ वीरों को उत्पन्न करने वाला, कायर मनुष्यों को नष्ट करने वाला, और सर्वत्र व्यापक है । इस यज्ञ का विद्वानों के समान सब मनुष्य घर-घर में प्रचार करें, इसे अच्छी प्रकार सीखें और स्वयं भी व्यवहार करें ।

३. **अलङ्कार**—यहां श्लेष अलङ्कार से ईश्वर और संसार अर्थ का ग्रहण किया है । मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि शब्द लुप्त हैं इसलिए वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है । उपमा यह है कि विद्वानों के समान अन्य मनुष्य भी ईश्वर में प्रीति तथा संसार में यज्ञ का अनुष्ठान करें ॥ ४ । ३७ ॥

[अस्याध्यायस्य पूर्वाध्यायेनसह संगतिमाह—]

अस्मिन्नध्याये शिल्पविद्या, वृष्टिपवित्रता-सम्पादनं, विदुषां सङ्गो, यज्ञानुष्ठानमुत्साहादि-प्रापणं, युद्धकरणं, शिल्पविद्यास्तुतिर्यज्ञगुणवर्णनं, सत्यव्रतधारणं, जलाग्न्योर्गुणवर्णनं, पुनर्जन्मकथनं-मीश्वरप्रार्थनं, यज्ञानुष्ठानं, मातापित्रादेः पुत्रादिना-ऽनुकरणं, यज्ञव्याख्या, दिव्यधीप्रापणं, परमेश्व-रार्चनं, सूर्य्यगुणवर्णनं, पदार्थक्रयविक्रयोपदेशो, मित्रत्वसम्पादनं, धर्ममार्गे प्रचारकरणं, परमेश्वर-सूर्य्यगुणप्रकाशनं, चोरादिनिवारणमीश्वरसूर्य्यादि-गुणवर्णनं, यज्ञफलं चेत्युक्तमत एतदुक्तार्थानां तृतीयाध्यायार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम्।

इस अध्याय में शिल्पविद्या (६, १०), वर्षा को पवित्र बनाना (२), विद्वानों का संग (५), यज्ञ का अनुष्ठान (६), उत्साह आदि गुणों की प्राप्ति (७), युद्ध करना (८), शिल्पविद्या की स्तुति (६), यज्ञ के गुणों का वर्णन (१०), सत्य व्रत का धारण (११), जल और अग्नि के गुणों का वर्णन (१२, १३, १४), पुनर्जन्म का कथन (१५), ईश्वर प्रार्थना (२८, २६), यज्ञानुष्ठान (१७), पुत्रादि के द्वारा माता पिता आदि का अनुकरण (२०), यज्ञ की व्याख्या (२४), मेधा की प्राप्ति (२३), परमेश्वर की पूजा (२५), सूर्य के गुणों का वर्णन (३३), पदार्थों के खरीदने और बेचने का उपदेश (२६), मित्रता की सिद्धि (२७), धर्म का प्रचार (२८), परमेश्वर और सूर्य के गुणों का प्रकाश (३० से ३३), चोर आदि का निवारण (३४), ईश्वर और सूर्य आदि के गुणों का वर्णन (३५, ३६) और यज्ञ का फल (३७) में बतलाया गया है, इसलिए इस अध्याय में कथित अर्थों की तीसरे अध्याय के अर्थों के साथ संगति है। ऐसा जानो।।

[समीक्षते—]

अयमप्यध्याय ऊवट महीधरादिभिरन्यथैव व्याख्यातः ।।

[समीक्षा]

ऊवट, महीधर आदि ने इस अध्याय की व्याख्या अन्यथा ही की है।

इति श्रीपण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते-यजुर्वेदभाष्य-भास्करे चतुर्थोऽध्यायः ।। ४ ।।

॥ ओ३म् ॥

॥ अथ पञ्चमाध्यायारम्भः ॥

अब चौथे अध्याय की पूर्ति के पश्चात् पांचवें अध्याय के भाष्य का आरम्भ किया जाता है ॥

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व ॥ १ ॥

य० ३० । ३ ॥

गोतमः । विष्णुः=यज्ञः । स्वराड्ब्राह्मी बृहती । मध्यमः ॥

अथ किमर्थो यज्ञोऽनुष्ठातव्य इत्युपदिश्यते ॥

किस प्रयोजन के लिये यज्ञ का अनुष्ठान करना योग्य है, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

अ॒ग्नेस्त॒नूर॑सि॒ विष्ण॑वे त्वा॒ सोम॑स्य त॒नूर॑सि॒ विष्ण॑वे॒ त्वाऽति॑थेराति॒थ्यम॑सि॒ विष्ण॑वे त्वा श्ये॒नाय॑ त्वा सोम॒भृते॒ विष्ण॑वे त्वा॒ऽग्नये॑ त्वा रायस्पोष॒दे विष्ण॑वे त्वा ॥ १ ॥

पदार्थः—(**अग्नेः**) विद्युत्प्रसिद्धरूपस्य (**तनूः**) शरीरवत् (**असि**) भवति । **अत्र सर्वत्र व्यत्ययः** (**विष्णवे**) यज्ञानुष्ठानाय (**त्वा**) तद्धविः (**सोमस्य**) जगत्युत्पन्नस्य पदार्थसमूहस्य रसस्य वा (**तनूः**) विस्तारकम् (**असि**) भवति (**विष्णवे**) व्यापनशीलस्य वायोश्च शुद्धये (**त्वा**) तां सामग्रीम् (**अतिथेः**) अविद्यमानतिथेर्विदुषः (**आतिथ्यम्**) यदतिथेर्भावः सत्काराख्यं कर्म वा (**असि**) वर्त्तते तत् (**विष्णवे**) व्याप्तिशीलाय विज्ञानप्राप्तिलक्षणाय वा यज्ञाय (**त्वा**) तद्यज्ञसाधनम् (**श्येनाय**) श्येनवदितस्ततः सद्यो गमनाय (**त्वा**) तद्भवनं कर्म (**सोमभृते**) यः सोमान् बिभर्त्ति तस्मै यजमानाय (**विष्णवे**) सर्वविद्याकर्मव्यापनस्वभावाय (**त्वा**) तदुत्तमं सुखम् (**अग्नये**) पावकवर्द्धनाय (**त्वा**) तदिन्धनादिकं वस्तु (**रायस्पोषदे**) यो रायो=विद्याधनसमूहस्य पोषं=पुष्टिं ददाति तस्मै (**विष्णवे**) सर्वसद्गुणविद्याकर्मव्याप्तये (**त्वा**) तामेतां क्रियाम् ॥ **अयं मंत्रः शत० ३ । ४ । १ । ६–१४ व्याख्यातः ॥ १ ॥**

प्रमाणार्थ—(**असि**) अस्ति । इस मन्त्र में 'असि' पद पर सर्वत्र पुरुष-व्यत्यय है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ४ । १ । ६-१४ में की गई है ॥ ५ । १ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्या ! यथाऽहं यद्धविरग्नेः विद्युत्प्रसिद्धरूपस्य तनूः शरीरवद्

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं जो हवि (**अग्नेः**) प्रसिद्ध विद्युत् के (**तनूः**) शरीर के समान

असि=भवति **त्वा**=तद् तद्धविः **विष्णवे** यज्ञानुष्ठानाय **स्वीकरोमि** ।

(**असि**) है (**त्वा**) उस हवि को (**विष्णवे**) यज्ञ अनुष्ठान के लिये स्वीकार करता हूँ ।

या सोमस्य जगत्युत्पन्नस्य पदार्थसमूहस्य रसस्य वा [तनूः] विस्तारकं, **सामग्रचसि**=**भवति त्वा**=**तां** तां सामग्रीं **विष्णवे** व्यापनशीलस्य वायोश्च शुद्धये **उपयुञ्जामि** ।

जो (**सोमस्य**) जगत् में उत्पन्न पदार्थों की वा रस की विस्तारक-सामग्री (**असि**) है (**त्वा**) उस सामग्री का (**विष्णवे**) व्यापक वायु की शुद्धि के लिये उपयोग करता हूँ ।

यदतिथेः अविद्यमानतिथेर्विदुषः **आतिथ्यं** यदतिथेर्भावः सत्काराख्यं कर्म वा **असि**=**वर्त्तते त्वा**=**तद् तद्** यज्ञसाधनं **विष्णवे** व्याप्तिशीलाय=विज्ञानप्राप्तिलक्षणाय वा यज्ञाय **परिगृह्णामि** ।

जो (**अतिथेः**) जिसके गमनआगमन की तिथि निश्चित नहीं, उस विद्वान् का (**आतिथ्यम्**) अतिथिपन व सत्कार नामक कर्म (**असि**) है (**त्वा**) उस यज्ञ के साधन को (**विष्णवे**) व्याप्तिशील वा विज्ञान प्राप्ति रूप यज्ञ के लिये स्वीकार करता हूँ ।

यत् [**श्येनाय**]=**श्येनवच्छीघ्रगमनाय** श्येन वदितस्ततः सद्यो गमनाय **प्रवर्त्तते त्वा**=**तद्** (तद्धवनं कर्म) **अग्न्यादिषु प्रक्षियामि** ।

और जो पदार्थ (**श्येनाय**) बाज पक्षी के समान शीघ्र गमन के लिये प्रवृत्त होता है (**त्वा**) उसे अग्नि आदि में डालता हूँ ।

यत्कर्म विष्णवे सर्वविद्याकर्मव्यापनस्वभावाय, **सोमभृते** यः सोमान् बिभर्ति तस्मै यजमानाय **वर्त्तते त्वा**=**तद्** उत्तमं सुखम् **आददे** ।

और जो कर्म (**विष्णवे**) सब विद्या और कर्मों में व्यापक (**सोमभृते**) सोमों को धारण करने वाले यजमान के लिये है (**त्वा**) उस उत्तम सुख को ग्रहण करता हूँ ।

यदग्नये पावकवर्द्धनाय **वरोवृत्यते त्वा**=**तद्** तदिन्धनादिकं वस्तु **स्वीकरोमि** ।

और जो (**अग्नये**) अग्नि की वृद्धि के लिए है (**त्वा**) उस इन्धनादि वस्तु को स्वीकार करता हूँ ।

यद् रायस्पोषदे यो रायो विद्याधनसमूहस्य पोषं=पुष्टिं ददाति तस्मै **विष्णवे** सर्वसद्गुणविद्याकर्म व्याप्तये **समर्थकर्मास्त त्वा**=**तत्** तामेतां क्रियां **संगृह्णामि, तथैवैतत्सर्वं यूयमपि सेवध्वम्** ॥ ५ । १ ॥

और जो (**रायस्पोषदे**) विद्या और धन को पुष्टि देने वाले (**विष्णवे**) सब शुभ गुण, विद्या और कर्म की प्राप्ति में बलदायक है (**त्वा**) उसे उत्तम रीति से ग्रहण करता हूँ, वैसे ही इस सबको तुम भी सेवन करो ॥ ५ । १ ॥

[**यद्धविरग्नेरस्तनूरसि**=भवति **त्वा**=**तद् विष्णवे**, [**श्येना**]=**श्येनवच्छीघ्रगमनाय, विष्णवे सोमभृते, अग्नये, रायस्पोषदे विष्णवे**···**त्वा**=**तत्** संग्रह्णामि]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ मनुष्यैरेतत्फलप्राप्तये त्रिविधो यज्ञो नित्यमनुष्ठेय इति ॥ ५ । १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है । सब मनुष्य इस मन्त्र में कहे फलों को प्राप्त करने के लिये तीन प्रकार के यज्ञ का नित्य अनुष्ठान करें ॥ ५ । १ ॥

भाष्यसार—१. **यज्ञानुष्ठान किस लिये करें**—जो हवि अग्नि में होम की जाती है वह विद्युत् तथा प्रसिद्ध अग्नि का शरीर है । विद्वान् लोग यज्ञानुष्ठन के लिये उस हवि को स्वीकार करते हैं । यज्ञ में होम की हुई सामग्री जगत् में उत्पन्न पदार्थों वा रसों का विस्तार करती है । व्यापक वायु को शुद्ध करती है ।

अतिथि अर्थात् जिसके आने की तिथि निश्चित नहीं, उस विद्वान् अतिथि का गृहस्थ लोग अतिथ्य करें, सत्कार करें। यह अतिथि-यज्ञ कहलाता है। इस अतिथि यज्ञ से विज्ञान की प्राप्ति करें।

यज्ञ में होम की हुई हवि बाज पक्षी के समान आकाश में शीघ्र गति करती है, तत्काल इधर-उधर फैल जाती है। जो सबका उपकार करती है अतः हवि को अग्नि में प्रक्षेप करें।

यजमान का स्वभाव सब विद्या और शुभकर्मों को प्राप्त करने का होता है। वह सोम को धारण करने वाला होता है। उक्त यजमान का यज्ञानुष्ठान रूप कर्म उत्तम सुख प्रदान करता है।

अग्नि की वृद्धि के लिये ईंधन को ग्रहण करें। विद्या और ‍नों की पुष्टि के लिये तथा सब शुभगुण, विद्या और पुरुषार्थ की सिद्धि के लिये यज्ञानुष्ठान करें॥ ५। १॥

२. **अलङ्कार**—मन्त्र में उपमा वाचक 'इव' आदि शब्द लुप्त है इसलिये वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है विद्वानों के समान अन्य जन भी यज्ञ का अनुष्ठान करें॥ ५। १॥

गोतमः। **विष्णुर्यज्ञः**=स्पष्टम्॥ पूर्वस्यार्षी गायत्री। षड्जः। गायत्रेत्युत्तरस्यार्ची त्रिष्टुप्। धैवतः॥

पुनः स यज्ञः कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह यज्ञ कैसा है, इस विषय का उपदेश किया जाता है॥

अ॒ग्नेर्ज॒नित्र॑म॒सि वृष॑णौ स्थ ऽ उ॒र्वश्य॑स्या॒युर॑सि पु॒रू॒रवा॑ ऽ असि। गा॒य॒त्रेण॑ त्वा॒ छन्द॑सा मन्थामि॒ त्रैष्टु॑भेन त्वा॒ छन्द॑सा मन्थामि॒ जाग॑तेन त्वा॒ छन्द॑सा मन्थामि॥ २॥

पदार्थः—(**अग्नेः**) आग्नेगास्त्रादेः सिद्धिकरस्य पावकस्य (**जनित्रम्**) जनकं हविः (**असि**) भवति। अत्र सर्वत्र व्यत्ययः (**वृषणौ**) वर्षयितारौ (**स्थः**) भवतः (**उर्वशी**) ययोरूरुणि=बहूनि सुखान्यश्नुवते सा यज्ञक्रिया॥ उर्वशीति पदनामसु पठितम्॥ निघं० ५। ५॥ उर्विति बहुनामसु पठितम्॥ निघं० ३। १॥ तस्मिन्नुपपदे 'अशूङ्' धातोः संपदादिभ्यः क्विप्। ततः शार्ङ्गरवाद्यन्तर्गतत्वान्ङीन् (**असि**) भवति (**आयुः**) एति जीवनं येन तत् (**असि**) वर्त्तते (**पुरूरवाः**) पुरूणि=बहूनि शास्त्राण्युपदिशति येनाध्ययनाध्यापनेन यज्ञेन सः। पुरूरवा इति पदनामसु पठितम्॥ निघं० ५। ४॥ पुरूरवाः॥ उ० ४। २३२॥ अयमनेन पुरूपपदादुरुधातोरसिप्रत्ययान्तेन निपातितः (**असि**) भवति (**गायत्रेण**) गायत्रीप्रगाथोऽस्य तेन (**त्वा**) तमग्निम् (**छन्दसा**) चन्दन्त्यानन्दन्ति येन तेन (**मन्थामि**) विलोडनादिक्रियया निष्पादयामि (**त्रैष्टुभेन**) त्रिष्टुप् प्रगाथोऽस्य तेन (**त्वा**) तं सोमाद्योषधीसमूहम् (**छन्दसा**) सुखकारकेण (**मन्थामि**) (**जागतेन**) जगतीप्रगाथोऽस्य तेन (**त्वा**) तं सामग्रीसमूहं शत्रुदुःखसमूहं वा (**छन्दसा**) सुखसम्पादकेन (**मन्थामि**) विलोड्य निवारयामि॥ अयं मन्त्रः शत० ३। ४। १। २०-२३॥ व्याख्यातः २॥

प्रमाणार्थ—(**असि**) अस्ति। इस मन्त्र में 'असि' पद पर सर्वत्र पुरुष-व्यत्यय है। (**उर्वशी**) यह शब्द निघं० (५। ५) में पद-नामों में पढ़ा है। (**उरु**) शब्द निघं० (३। १) में बहुवाचक-नामों में पढ़ा है। 'उरु'-पूर्वक 'अशूङ्' धातु से 'सम्पदादिभ्यः क्विप्' [अ० ३। ३। १०८] इस वार्त्तिक से 'क्विप्' प्रत्यय और शार्ङ्गरवादि के अन्तर्गत इसका पाठ मान कर [**शार्ङ्गरवाद्यञोङीन्**, अ० ४। १। ७३] इस सूत्र से 'ङीन्' प्रत्यय करने पर 'उर्वशी' शब्द सिद्ध होता है। (**पुरुरवाः**) यह शब्द निघं० (५। ४) में पद-

नामों में पढ़ा है। 'पुरुरवाः' (उणा० ४। २३२) सूत्र से 'पुरु' पूर्वक 'रु' धातु से 'असि' प्रत्ययान्त होने से निपातित है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३।४।१।२०-२३) में की गई है ॥ ५।२॥

सपदार्थान्वयः--**हे मनुष्या ! यथाहं यदग्नेः** आग्नेयास्त्रादेः सिद्धिकरस्य पावकस्य **जनित्रं** जनकं हविः **असि=भवति, यौ वृषणौ** वर्षयितारौ **स्थो=भवतः, या उर्वशी** ययोरूणि=बहूनि सुखान्यश्नुवते सा यज्ञ क्रिया **असि=भवति, यः** [**आयुः**] एति जीवनं येन तत् (**असि**) वर्तते, **यः पुरूरवाः** पुरूणि=बहूनि शास्त्राण्युपदिशति येनाध्ययनाध्यापनेन यज्ञेन सः **असि=भवति, त्वा=तम्** अग्निं **गायत्रेण** गायत्री प्रगाथोऽस्य तेन **छन्दसा** चन्दन्त्यानन्दन्ति येन तेन **मन्थामि** विलोडनादिक्रियया निष्पादयामि। **त्वा**=तं तं सोमाद्योषधीसमूहं **त्रैष्टुभेन** त्रिष्टुप् प्रगाथोऽस्य तेन **छन्दसा** सुखकारकेण **मन्थामि**।

त्वा=तं तं सामग्री-समूहं शत्रुदुःखसमूहं वा **जागतेन** जगतीप्रगाथोऽस्य तेन **छन्दसा** सुखसम्पादकेन **मन्थामि** विलोड्य निवारयामि **तथैव यूयमप्येतत्सर्वमनुष्ठायैतानि निष्पादयत** ॥ ५।२॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं जो (**अग्नेः**) आग्नेय अस्त्र की सिद्धि करने वाले अग्नि का (**जनित्रम्**) उत्पादक हवि (**असि**) है, और जो (**वृषणौ**) वर्षा कराने वाले सूर्य और वायु (**स्थः**) हैं, और जो (**उर्वशी**) नाना सुखों को प्राप्त कराने वाली यज्ञ क्रिया, और जो (**आयुः**) जीवन-साधन (**असि**) है, और जो (**पुरुरवाः**) सब शास्त्रों का अध्ययन-अध्यापन रूप यज्ञ से उपदेश करने वाला **असि**) है (**त्वा**) उस अग्नि को (**गायत्रेण**) गायत्री प्रगाथ वाले (**छन्दसा**) आनन्दित करने वाले छन्द से (**मन्थामि**) विलोडन आदि क्रिया से सिद्ध करता हूँ, और (**त्वा**) उस सोम आदि औषधियों को (**त्रैष्टुभेन**) त्रिष्टुप् प्रगाथ वाले (**छन्दसा**) सुखकारक छन्द से (**मन्थामि**) मथता हूँ ॥

(**त्वा**) उस सामग्री को वा शत्रुजन्य दुःखों को (**जागतेन**) जगती प्रगाथ वाले (**छन्दसा**) सुख के साधक छन्द से (**मन्थामि**) विलोडित करके हटाता हूँ वैसे तुम भी इन सबका अनुष्ठान करके इन्हें सिद्ध करो ॥ ५।२॥

[हे मनुष्या ! यथाऽहं यदग्नेर्जनित्रमसि=भवति···त्वा=तं गायत्रेण, त्रैष्टुभेन, जागतेन छन्दसा मन्थामि, तथैव यूयमप्येतत्सर्वमनुष्ठायैतानि निष्पादयत]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ सर्वैर्मनुष्यैरेवं रीत्योक्तेन यज्ञेन परोपकारकरणं सम्पादनीयम् ॥ ५।२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ सब मनुष्य इस रीति से उक्त यज्ञ के द्वारा परोपकार को सिद्ध करें ॥ ५।२॥

भाष्यसार—१. **यज्ञ कैसा है**—यज्ञ आग्नेय अस्त्र आदि को सिद्ध करने वाली अग्नि का उत्पादक है, वर्षा का निमित्त है, नाना सुखों को प्राप्त कराने वाला है, अध्ययन अध्यापन रूप यज्ञ बहुत से शास्त्रों का उपदेश करने वाला है। यज्ञ की अग्नि गायत्री प्रगाथ वाले आनन्दकारक वेदमन्त्र से बिलोडन-आदि क्रिया से उत्पन्न की जाती है। इसकी सोम आदि औषधियाँ त्रिष्टुप्-प्रगाथ वाले सुखकारक वेदमन्त्र से मथी जाती हैं। यह जगती प्रगाथ वाले सुखसाधक वेदमन्त्र से शत्रुओं से उत्पन्न दुःखों को हटाता है।

२. **अलङ्कार**—मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि शब्द लुप्त है इसलिये वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि विद्वानों के समान सब मनुष्य उक्त रीति से यज्ञ के द्वारा परोपकार करें ॥ ५।२॥

गोतमः । यज्ञः=स्पष्टम् । आर्षीपंक्तिः । पंचमः ॥

यजमानयज्ञसम्पादकौ कीदृशौ भवेतामित्युपदिश्यते ॥

यजमान और यज्ञ की सिद्धि करने वाले विद्वान् कैसे होने चाहियें, इस विषय का उपदेश किया है ॥

भवतं नः समनसौ सचेतसावरेपसौ । मा यज्ञꣳ हिꣳसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः ॥ ३ ॥

पदार्थः—(भवतम्) स्यातम् (नः) अस्मभ्यम् (समनसौ) समानं मनो=विज्ञानं ययोस्तौ (सचेतसौ) समानं चेतसं=ज्ञानं संज्ञापनं ययोस्तौ (अरेपसौ) अविद्यमानं रेपौ=व्यक्तं प्राकृतं वचनं ययोरध्येत्रध्यापकयोस्तौ (मा) निषेधार्थे (यज्ञम्) अध्ययनाध्यापनाख्यं कर्म (हिंसिष्टम्) हिंस्याताम् (मा) निषेधार्थे (यज्ञपतिम्) एतद्यज्ञपालयितारम् (जातवेदसौ) जातं वेदो=विद्या ययोस्तौ (शिवौ) मङ्गलकारिणौ (भवतम्) भवेतम् (अद्य) अस्मिन् दिने (नः) अस्मभ्यम् ॥ अयं मंत्रः शत० ३।४।१।२४ व्याख्यातः ॥ ३ ॥

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३।४।१।२४) में की गई है ॥ ५।३ ॥

सपदार्थान्वयः—यावरेपसौ अविद्यमानं रेपो=व्यक्तं प्राकृतं वचनं ययोरध्येत्रध्यापकयोस्तौ **समनसौ** समानं मनो=विज्ञानं ययोस्तौ **सचेतसौ** समानं चेतसं=ज्ञानं संज्ञापनं ययोस्तौ **जातवेदसौ=अध्येतृ-अध्यापकौ** जातं वेदो=विद्या ययोस्तौ, **नः=अस्मभ्यमुपदेष्टारौ भवतं=स्यातां** तौ **यज्ञम्** अध्ययनाध्यापनाख्यं कर्म **यज्ञपतिम्** एतद्यज्ञ-पालयितारं **च मा हिंसिष्टं=मा=** हिंस्याताम् ।

एतावद्य अस्मिन् दिने **नः अस्मभ्यं शिवौ=मंगलकारिणौ भवतं=स्यातां** भवेतम् ॥ ५।३ ॥

भाषार्थ—जो (**अरेपसौ**) व्यक्त=प्राकृत वचन से रहित अध्येता और अध्यापक (**समनसौ**) एक मन=विज्ञान वाले (**सचेतसौ**) समान रूप से जानने-जनाने वाले (**जातवेदसौ**) विद्या को सिद्ध करने वाले जो पढ़ने-पढ़ाने वाले विद्वान् हैं वह (**नः**) हमारे लिये उपदेश करने वाले (**भवतम्**) हों, वह दोनों (**यज्ञम्**) पठन-पाठन नामक यज्ञकर्म को (**यज्ञपतिम्**) और इस यज्ञ के पालक को (**मा-हिंसिष्टम्**) कष्ट न होने देवें ।

और यह दोनों (**अद्य**) आज (**नः**) हमारे लिये (**शिवौ**) **मंगलकारी** (**भवतम्**) हों ॥ ५।३ ॥

[यावरेपसौ···जातवेदसावध्येत्रध्यापकौ नः=अस्मभ्यमुपदेष्टारौ भवतं=स्यातां, तौ यज्ञं यज्ञपतिं च मा हिंसिष्टम्=मा हिंस्याताम् एतावद्य नः=अस्मभ्यं शिवौ=मङ्गलकारिणौ भवतं=स्याताम्]

भावार्थः—मनुष्यैर्नैव कदाचिद् विद्या-प्रचारायाध्ययनमध्यापनं च त्यक्तव्यं मङ्गलाचरणं चास्य सर्वोत्कृष्टत्वात् ॥ ५।३ ॥

भावार्थ—मनुष्य विद्या के प्रचार के लिये अध्ययन-अध्यापन तथा शुभ कर्मों के आचरण का कभी परित्याग न करें क्योंकि यह सब से उत्कृष्ट हैं ॥ ५।३ ॥

विनियोग—महर्षि ने इस मन्त्र का विनियोग संस्कारविधि (**सामान्य प्रकरण**) में अष्टाजाहुति मन्त्रों में किया है ।

भाष्यसार—**यजमान और यज्ञसम्पादक कैसे हों**—अध्ययन-अध्यापन सर्वोत्कृष्ट कर्म होने से यज्ञ है । छात्र और अध्यापक इस यज्ञ के यजमान और यज्ञसम्पादक हैं । वह दोनों कठोर वचन बोलने

वाले न हों। उनका मन एक हो, विज्ञान एक हो, जानना और जनाना एक हो। अध्यापक जैसा जनावें छात्र वैसा ही जानें। दोनों विद्या को सिद्ध करने वाले हों। अध्येता और अध्यापक दोनों सब मनुष्यों को विद्या का उपदेश करने वाले हों, विद्या के प्रचार के लिये अध्ययन-अध्यापन रूप कर्म की कभी हिंसा न करें, इसे कभी न छोड़ें और उक्त शुभ कर्म करने वाले को भी कभी कष्ट न देवें। अध्येता और अध्यापक सब के लिये मङ्गलकारी हो ॥ ५ । ३ ॥

गोतमः। **अग्निः**=विद्युत् विद्वांश्च। आर्षीत्रिष्टुप्। धैवतः ॥ अत्र महीधरेण विराडित्यशुद्धं व्याख्यातम् ॥

विद्युद्विद्वदग्नी कीदृशावित्युपदिश्यते ॥

विद्युत् और विद्वान् अग्नि कैसे हैं, इस विषय का उपदेश किया है ॥

अग्नावग्निश्चरति प्रविष्ट ऽ ऋषीणां पुत्रो ऽ अभिशस्तिपावा ।
स नः स्योनः सुयजा यजेह देवेभ्यो हव्यꣳ सदमप्रयुच्छन्त्स्वाहा ॥ ४ ॥

पदार्थः—(**अग्नौ**) विद्युति (**अग्निः**) विद्वान्मनुष्यः (**चरति**) गच्छति (**प्रविष्टः**) प्रवेशं कुर्वाणः सन् (**ऋषीणाम्**) वेदार्थविदाम् (**पुत्रः**) सुशिक्षितोऽध्यापितः (**अभिशस्तिपावा**) योऽभिशस्तेराभिमुख्याद्धिसमानात्पाति=रक्षति (**सः**) विद्वान् (**नः**) अस्मभ्यम् (**स्योनः**) सुखकारी (**सुयजा**) सुष्ठु यजन्ति यस्मिन् यज्ञे तेन (**यज**) सङ्गमयतु (**इह**) जगति (**देवेभ्यः**) विद्वद्भ्यो दिव्यगुणेभ्यो वा (**हव्यम्**) दातुं ग्रहीतुं योग्यं पदार्थम् (**सदम्**) सद्यते=विज्ञायते प्राप्यते यस्तम् (**अप्रयुच्छन्**) अप्रविवासयन् (**स्वाहा**) सुहुतं हविरन्नम् ॥ अयं मंत्रः शत० ३ । ४ । १ । २५ व्याख्यातः ॥ ४ ॥

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ४ । १ । २५) में की गई है ॥ ५ । ४ ॥

सपदार्थान्वयः—योऽभिशस्तिपावा योऽभिशस्तेराभिमुख्याद्धिसमानात् पाति=रक्षति **अग्नौ** विद्युति **प्रविष्टः** प्रवेशं कुर्वाणः सन् **ऋषीणां** वेदार्थ विदां **पुत्रः** सुशिक्षितोऽध्यापितः **स्योनः** सुखकारी **सुयजा** सुष्ठु यजन्ति यस्मिन् यज्ञे तेन [**सः**] **अग्निः**=**विद्वान्**, विद्वान् मनुष्यः **अप्रयुच्छन्** अप्रविवासयन् **चरति** गच्छति, **यो**[**नः**]**अस्मभ्यमिह** जगति **देवेभ्यः** विद्वद्भ्यो दिव्यगुणेभ्यो वा **हव्यं** दातुं ग्रहीतुं योग्यं पदार्थं **सदं** सद्यते=विज्ञायते प्राप्यते यस्तं **स्वाहा**=सुहुतं हविरन्नादिकं **प्रयच्छति प्रापयति तं वयं संगच्छेमहि** ॥ ५ । ४ ॥

भाषार्थ—जो (**अभिशस्तिपावा**) सब ओर से हिंसा करने वालों से रक्षा करने वाला (**अग्नौ**) विज्ञान से विजुली में (**प्रविष्टः**) प्रवेश करने वाला (**ऋषिणाम्**) वेद के विद्वानों से (**पुत्रः**) पढ़ाया हुआ (**स्योनः**) सुखदायक है, वह (**सुयजा**) श्रेष्ठ यज्ञ से (**अग्निः**) विद्वान् मनुष्य (**अप्रयुच्छन्**) प्रमाद रहित होकर (**चरति**) विचरण करता है, और जो हमारे लिए (**इह**) इस जगत् में (**देवेभ्यः**) विद्वानों का दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिये (**हव्यम्**) देने और लेने योग्य पदार्थ तथा (**सदम्**) जानने तथा प्राप्त करने योग्य पदार्थ की (**स्वाहा**) एवं श्रेष्ठ अनादि की हवि प्रदान करता है, उस विद्वान् से हम मेल करें ॥ ५ । ४ ॥

[योऽभिशस्तिपावाऽग्नौ प्रविष्टः···अग्निः]

भावार्थः—मनुष्यैरिहयोऽग्निः किल कार्य-

भावार्थ—इस संसार में जो अग्नि कार्य-

कारणभेदेन द्विधाऽस्ति, तत्र कार्यरूपेण सूर्यादावग्नौ कारणरूपा विद्युत् सर्वभूतद्रव्येषु प्रविष्टा सती वर्तते, तस्यां च विज्ञानेन प्रविश्यैते सम्यक् संप्रयोज्य कार्योपयोगः कर्तव्यः ॥ ५ । ४ ॥

कारण भेद से दो प्रकार की है। कार्यरूप सूर्य आदि में तथा कारण रूप विद्युत् सब भौतिक पदार्थों में प्रविष्ट है उस विद्युत् में विज्ञान के द्वारा प्रविष्ट होकर और इन दोनों अग्नियों का ठीक-ठीक प्रयोग करके सब मनुष्य इनका कार्यों में उपयोग करें ॥ ५ । ४ ॥

भाष्यसार—१. **अग्नि (विद्युत्) कैसा है**—अग्नि कार्य और कारण भेद से दो प्रकार का है। कार्य रूप अग्नि सूर्य आदि में हैं तथा कारण रूप अग्नि अर्थात् विद्युत् सब भौतिक पदार्थों में प्रविष्ट है जो दुःखों से रक्षा करता है। जिसमें विज्ञान के द्वारा प्रविष्ट होकर विद्वान् पुरुष प्रमाद रहित होकर गति को प्राप्त करते हैं। यह विद्वानों के लिये देने-लेने योग्य पदार्थों को, विज्ञान को और अन्न आदि को प्राप्त कराता है।

२. **अग्नि (विद्वान्) कैसा हो**—अग्नि अर्थात् विद्वान् पुरुष विद्युत् में विज्ञान के द्वारा प्रविष्ट होकर उसका सदुपयोग करता है। उससे कष्टों का निवारण करता है। उक्त विद्वान् वेदार्थ के ज्ञाता ऋषियों का सुशिक्षित, सुखकारी पुत्र होता है। जो उत्तम यज्ञ के द्वारा प्रमादरहित होकर विचरण करता है तथा सब मनुष्यों के लिए देवों के प्रिय पदार्थ एवं विज्ञान को तथा अन्न-आदि को प्राप्त कराता है। अतः सब मनुष्य ऐसे विद्वान् पुरुषों का संग करें।

३. **समीक्षा**—यहां महीधर ने लिखा है कि 'दशाक्षरैश्चतुर्भिःपादैर्विराट्' अर्थात् दश अक्षर वाले चार चरणों से विराट् छन्द है। महीधर का अपने शब्दों में लिखा छन्द-लक्षण मन्त्र में नहीं घटता। मन्त्र में प्रत्येक चरण में दश अक्षर नहीं है। किन्तु प्रथम चरण में १०, दूसरे में ११, तीसरे में १० और चौथे में १३ अक्षर हैं। इस प्रकार सब मिलाकर ४४ अक्षर होते हैं। अतः यह ४४ अक्षर का आर्षी त्रिष्टुप् छन्द है; विराट् नहीं। महीधर छन्दोज्ञान से भी शून्य है ॥ ५ । ४ ॥

गोतमः । **त्विन्द्र॒ त्व**=ईश्वरो विद्युच्च । पूर्वस्यार्ष्युष्णिक् । ऋषभः । अनाधृष्टमित्यग्रस्य भुरिगार्षी पंक्तिः । पञ्चमः ॥

मनुष्यैः किमर्थः परमात्मा प्रार्थनीयः सा विद्युच्च स्वीकार्येत्युपदिश्यते ॥

मनुष्यों को किस-किस प्रयोजन के लिये परमात्मा की प्रार्थना, बिजुली का स्वीकार करना चाहिये, इस विषय का उपदेश किया है ॥

आप॑तये त्वा॒ परि॑पतये गृह्णामि॒ तनू॒नप्त्रे॑ शाक्व॒राय॒ शक्व॑न॒ऽ ओजि॑ष्ठाय ।
अना॑धृष्टमस्यनाधृ॒ष्यं दे॒वाना॒मोजोऽन॑भिशस्त्याभिशस्ति॒पा ऽ अ॑नभिशस्ते॒न्य-
मञ्ज॑सा स॒त्यमु॑पगेषꣳ स्वि॒ते मा॑ धाः ॥ ५ ॥

पदार्थः—(**आपतये**) समन्तात्पतिः पालको यस्मिंस्तस्मै (**त्वा**) परमेश्वरं विद्युतं वा (**परिपतये**) परितः सर्वतः पतयो यस्मिंस्तस्मै (**गृह्णामि**) स्वकरोमि (**तनूनप्त्रे**) तनूर्देहान् नयन्ति=प्राप्नुवन्ति येन तस्मै (**शाक्वराय**) शक्तिजननाय (**शक्वने**) शक्तिमद्वीरसैन्यप्राप्तये (**ओजिष्ठाय**) अतिशयेनौजो विद्यते यस्मिन्विद्याव्यवहारे तस्मै (**अनाधृष्टम्**) यन्न धृष्यते तेजस्तत् (**असि**) अस्ति (**अनाधृष्यम्**) न केनाऽपि

धर्षितुं योग्यम् (**देवानाम्**) विदुषां पृथिव्यादीनां मध्ये वा (**ओजः**) पराक्रमकारि (**अनभिशस्ति**) यन्नाभिशस्यतेऽभिहिंस्यते तत् (**अभिशस्तिपाः**) योऽभिशस्तेर्हिंसनात्पाति=रक्षति (**अनभिशस्तेन्यम्**) यदनभिशस्तेऽविद्यमानहिंसने नयति तत् (**अञ्जसा**) व्यक्तेन=शत्रूणां म्लेच्छनेन कान्त्या ज्ञापनेन वा (**सत्यम्**) यथार्थम् (**उप**) सामीप्ये (**गेषम्**) प्राप्नुयाम् (**स्विते**) सुष्ठु, ईयते=प्राप्यते येन व्यवहारेण तस्मिन्। इदं पदमवैयाकरणेन महीधरेण लेट् लकारस्य रूपमित्यशुद्धं व्याख्यातम् (**मा**) माम् (**धाः**) धेहि दधाति वा। अत्र लडर्थे लुङडभावश्च ॥ अयं मंत्रः श०३।४।२।१०-१४ व्याख्यातः ॥ ५ ॥

प्रमाणार्थ—(**स्विते**) व्याकरण से अनभिज्ञ महीधर ने इस पद को लेट् लकार का प्रयोग मान कर इसकी अशुद्ध व्याख्या की है। (**धाः**) धेहि दधाति वा। यहां लट् अर्थ में लुङ्-लकार और अट् का अभाव है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३।४।२।१०-१४) में की गई है ॥ ५।५ ॥

सपदार्थान्वयः—अहं हे जगदीश्वर! **यतस्त्वमभिशस्तिपाः** योऽभिशस्तेर्हिंसनात् पाति=रक्षति, **असि तस्मात्त्वा**=त्वां परमेश्वरं **आपतये** समन्तात् पतिः=पालको यस्मिंस्तस्मै, **परिपतये** परितः=सर्वतः पतयो यस्मिंस्तस्मै, **शाक्वराय** शक्तिजननाय, **शक्वने** शक्तिमद्वीरसैन्यप्राप्तये, **ओजिष्ठाय** अतिशयेनौजो विद्यते यस्मिन्विद्याव्यवहारे तस्मै, **तनूनप्त्रे** तनूर्देहान् नयन्ति=प्राप्नुवन्ति येन तस्मै, **गृह्णामि** स्वीकरोमि।

त्वं कृपया मा=मां यद्देवानां=विदुषां वाऽनाधृष्टं यन्न धृष्यते तेजस्तम् **अनाधृष्यं** न केनापि धर्षितुं योग्यम्, **अननिशस्ति** यन्नाभिशस्यते=ऽभिहिंस्यते तत्, **अनभिशस्तेन्यं** यदनभिशस्ते=ऽविद्यमानहिंसने नयति तत्, **ओजः** पराक्रमकारि **सत्यं** यथार्थम् **अस्ति तत् परिग्राहय**।

स्विते सुष्ठु, ईयते=प्राप्यते येन व्यवहारेण तस्तिन्, **धाः** धेहि, **यतोऽञ्जसा** व्यक्तेन शत्रूणां म्लेच्छनेन **सत्यमुपगेषं**=(समीपं) **प्राप्नुयामित्येकः**।

अहं यदनाधृष्टं यन्न धृष्यते तेजस्तम् **अनाधृष्यं** न केनापि धर्षितुं योग्यम् **अनभिशस्ति** यन्नाभिशस्यते=ऽभिहिंस्यते तत् **अनभिशस्तेन्यं** यदनभिशस्ते=ऽविद्यमानहिंसने नयति तत् **देवानां** पृथिव्यादीनां मध्ये **सत्यं** यथार्थम् **ओजः**=**वैद्युतं तेजो रूपा**

भाषार्थ—मैं, हे जगदीश्वर! जिस से आप (**अभिशस्तियाः**) कष्टों से रक्षा करने वाले (**असि**) हो इसलिये (**त्वा**) तुझ परमेश्वर को (**आपतये**) सब ओर से पालक होने, (**परिपतये**) सब ओर के पति बनने, (**शाक्वराय**) शक्ति उत्पन्न करने, (**शक्वने**) शक्तिशाली वीर-सेना की प्राप्ति करने, (**ओजिष्ठाय**) अत्यन्त ओजस्वी विद्या व्यवहार तथा (**तनूनप्त्रे**) उत्तम देह की प्राप्ति के लिए ईश्वर को (**गृह्णामि**) स्वीकार करता हूँ।

आप कृपा करके (**मा**) मुझे जो (**देवानाम्**) विद्वानों का (**अनाधृष्टम्**) जो आजतक किसी से भी धर्षित नहीं किया गया तेज है तथा (**अनाधृष्यम्**) जिसे कोई धर्षित नहीं कर सकता, दबा नहीं सकता, (**अनभिशस्ति**) जो नाश रहित, (**अनभिशस्तेन्यम्**) अहिंसा को प्राप्त कराने वाला, (**ओजः**) पराक्रमकारी (**सत्यं**) यथार्थ सत्य है उसको ग्रहण करावें।

और—(**स्विते**) सत्य प्राप्ति के सरल व्यवहार में मुझे (**धाः**) स्थापित कर, जिससे (**अञ्जसा**) स्पष्ट सत्य के शत्रुओं को नष्ट करके (**सत्यम्**) सत्य को (**उपगेषम्**) प्राप्त कर सकूँ ॥ यह मन्त्र का पहला अर्थ है ॥

जो (**अनाधृष्टम्**) धर्षण रहित तेज, तथा (**अनाधृष्यम्**) जो किसी से भी धर्षित नहीं किया जा सकता, (**अनभिशस्ति**) जिसका नाश नहीं होता, (**अनभिशस्तेन्यम्**) अहिंसा को प्राप्त कराने वाला, (**देवानाम्**) पृथिवी आदि में विद्यमान (**सत्यम्**)

अभिशस्तिपाः = विद्युत् योऽभिशस्तेर्हिंसनसनात्पाति=रक्षति, [**असि**] अस्ति **या मा=मां स्विते** सुष्ठु ईयते=प्राप्यते येन व्यवहारेण तस्मिन्, **धाः=दधाति त्वा=याम** विद्युतम् **ओजिष्ठाय** अतिशयेनौजो विद्यते यस्मिन् विद्याव्यवहारे तस्मै, **आपतये** समन्तात् पतिः=पालको यस्मिंस्तस्मै, **परिपतये** परितः सर्वतः पतयो यस्मिंस्तस्मै **तनूनप्त्रे** तनूर्देहान् नयन्ति=प्राप्नुवन्ति येन तस्मै, **शाक्वराय** शक्ति जननाय, **शक्वने** शक्तिमद्वीरसैन्य प्राप्तये, **गृह्णामि** स्वीकारोमि **यतस्तत् सत्यरूपकारणम्=** [**अञ्जसा**] कान्त्या ज्ञापनेन **उपगेषम्=विजानीयामिति द्वितीयः** ॥ ५ । ५ ॥

सत्य, यथार्थ रूप (**ओजः**) बिजुली का तेज एवं (**अभिशस्तिपाः**) दुखों से रक्षा करने वाली विद्युत् [**असि**] है, और जो (**मा**) मुझे (**स्विते**) सुख प्राप्ति के व्यवहार में (**धाः**) स्थापित करती है, (**त्वा**) जिस विद्युत् को मैं (**ओजिष्ठाय**) अत्यन्त ओज से भरपूर विद्या व्यवहार के लिये, (**आपतये**) सबका पालक होने के लिए, (**परिपतये**) सबका स्वामी बनने के लिये, (**तनूनप्त्रे**) उत्तम देह की प्राप्ति के लिये, (**शाक्वराय**) शक्ति पैदा करने के लिये, (**शक्वने**) शक्ति-सम्पन्न वीर सेना की प्राप्ति के लिए (**गृह्णामि**) स्वीकार करता हूँ। जिससे उस सत्य रूप कारण को जिससे [**अञ्जसा**] स्पष्ट, शत्रुओं के तिरस्कार, कान्ति वा ज्ञापन से (**उपगेषम्**) जान सकूँ। यह मन्त्र का दूसरा अर्थ है ॥ ५ । ५ ॥

[अहं हे जगदीश्वर ! यतस्त्वमभिशस्तिपा असि तस्मात्त्वा=त्वां'''गृह्णामि, त्वं कृपया मा=मां यद्देवानां=विदुषां वा'''सत्यमस्ति तत् परिग्राह्य, अहं यद्'''ओजः=वैद्युतं तेजोरूपाऽभिशस्तिपा विद्युत् [असि]'''त्वा'''गृह्णामि]

भावार्थः—अत्र श्लेषालङ्कारः ॥ न हि मनुष्याणां परमात्मविज्ञानेन विना सत्यं सुखं, न विद्युदादिक्रियाकौशलैर्विना सर्व सांसारिकं सुखं च भवितुमर्हति, तस्तादेतत्सर्वं प्रयत्नेन कर्त्तव्यमिति ॥ ५ । ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष अलङ्कार है ॥ मनुष्यों को परमात्मा के जाने बिना सच्चा सुख तथा विद्युत् आदि विद्या और क्रियाकौशल के बिना सब सांसारिक सुख प्राप्त नहीं हो सकता। इस लिये यह सब प्रयत्न से सिद्ध करें ॥ ५ । ५ ॥

भाष्यसार—**१. ईश्वर प्रार्थना किस लिये**—जगदीश्वर सब प्रकार के दुःखों से रक्षा करने वाला है इस लिये सब मनुष्य प्रजा के पालक एवं पति (**स्वामी**) बनने के लिए शक्ति पैदा करने के लिये, शक्तिसम्पन्न वीर सेना की प्राप्ति के लिये, ओज से युक्त विद्या-व्यवहार की सिद्धि के लिये, मानवदेह की प्राप्ति के लिये ईश्वर से प्रार्थना करें कि हे जगदीश्वर आप कृपा करके आप्त विद्वानों के तेज को हमें प्रदान कीजिये। जो तेज ऐसा है कि जिसे कोई दबा नहीं सकता, जिसका कोई हिंसन नहीं कर सकता, जो अहिंसा के मार्ग पर से जाने वाला है, जो बल पराक्रम से भरपूर और यथार्थ है सच्चा है। उस तेज को मुझ में स्थापित कीजिये जिससे मैं सत्य के शत्रुओं को नष्ट करके सत्य को प्राप्त कर सकूँ।

२. विद्युत को किस लिये स्वीकार करें—विद्युत् के तेज को कोई दबा नहीं सकता और दबाना उचित भी नहीं है क्योंकि यह तेज नष्ट करने योग्य नहीं है क्योंकि यह हमें सुरक्षा प्रदान करता है। पृथिवी आदि लोकों के मध्य में यह सत्य स्वरूप है। हमें यह कष्टों से बचाता है। यह हमें सरल-व्यवहार में स्थापित करता है, कठिन कार्यों को सरल बनाता है। अत्यन्त ओज से भरपूर विद्या की प्राप्ति के लिये, प्रजा के पालक और पति बनने के लिये, दीर्घ जीवन की प्राप्ति के लिए, शक्ति पैदा करने के लिये, शक्तिमान् वीर-सेना की प्राप्ति के लिये विद्युत् को स्वीकार करना परम आवश्यक है ॥

३. अलङ्कार—यहाँ श्लेष अलङ्कार से ईश्वर और विद्युत् अर्थ का ग्रहण किया है ॥

४. **समीक्षा**—व्याकरण से अनभिज्ञ महीधर ने 'रिवते' पद को लेट्-लकार का प्रयोग बतलाया है। जो सर्वथा अशुद्ध है।

गोतमः। **अग्निः=ईश्वरो विद्युच्च**॥ विराड् ब्राह्मी पंक्तिः। पञ्चमः॥

पुनस्ते कीदृशावित्युपदिश्यते॥

फिर वह परमात्मा और बिजुली कैसे हैं, इस विषय का उपदेश किया जाता है॥

अग्ने॑ व्रतपा॒स्त्वे व्र॑तपा॒ या तव॑ त॒नूरि॒यꣳ सा मयि॒ यो मम॑ त॒नूरे॒षा सा त्वयि॑
स॒ह नौ॑ व्रतपते व्र॒तान्यनु॑ मे दी॒क्षां दी॒क्षाप॑ति॒र्मन्य॑ता॒मनु॒ तप॒स्तप॑स्पतिः॥ ६॥

पदार्थः—(**अग्ने**) विज्ञानस्वरूप परब्रह्मन्! विद्युद्वा (**व्रतपाः**) व्रतानि=सत्यभाषणादीनि पाति यस्माद्यया वा (**त्वे**) त्वयि, तस्यां वा (**व्रतपाः**) व्रतानि=सुशीलादीनि पाति येन यया वा (**या**) वक्ष्यमाणा (**तव**) भवतस्तस्या वा (**तनूः**) विस्तृता व्याप्तिः (**इयम्**) प्रत्यक्षा (**सा**) प्रतिपादितपूर्वा (**मयि**) मम मध्ये (**यो**) या। अत्र महीधरेण या इत्यशुद्धं व्याख्यातम् (**मम**) (**तनूः**) विस्तृतं शरीरम् (**एषा**) प्रत्यक्षा (**सा**) उक्तपूर्वा (**त्वयि**) जगदीश्वरे तस्यां वा (**सह**) परस्परम् (**नौ**) आवामावयोर्वा (**व्रतपते**) व्रतानां=वेदादिविद्यानां पालयितः, पालननिमित्ता वा (**व्रतानि**) ब्रह्मचर्य्यादीनि (**अनु**) पश्चादर्थे (**मे**) मम (**दीक्षाम्**) व्रतादेशम् (**दीक्षापतिः**) व्रतादेशानामुपदेशपालकः, रक्षणनिमित्ता वा (**मन्यताम्**) स्वीकरोतु, स्वीकारयति वा (**अनु**) आनुकूल्ये (**तपः**) जितेन्द्रियत्वादिपुरःसरं धर्मानुष्ठानम् (**तपस्पतिः**) तपसः पालयिता॥ **अयं मंत्रः श० ३।४।३।६ व्याख्यातः॥ ६॥**

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३।४।३।६) में की गई है॥ ५।६॥

[ईश्वरः]

सपदार्थान्वयः—हे अग्ने=परमात्मन्! विज्ञानस्वरूप परब्रह्मन्! **व्रतपते=सत्यधर्माचरणादि नियम पालन कारयितः**! व्रतानां वेदादि विद्यानां पालयितः! **यो भवान् त्वे=त्वयि अहं व्रतपाः** व्रतादीनि=सुशीलादीनि पाति येन **अस्मि, या=इयं** वक्ष्यमाणा **तव** भवतः **तनूः** विस्तृता व्याप्तिः **अस्ति, सा** उक्तपूर्वा **मयि** मम मध्ये वर्त्तते।

यो=यैषा प्रत्यक्षा **मम** तनूः विस्तृतं शरीरं **अस्ति, सा** प्रतिपादितपूर्वा **त्वयि** जगदीश्वरे **वर्तते**।

यानि तव=अस्य भवतो **व्रतानि** ब्रह्मचर्यादीनि **तानि, मयि** मम मध्ये **सन्तु। यानि च ममोत्तमानि व्रतानि** ब्रह्मचर्यादीनि **सन्ति, तानि त्वयि** जगदीश्वरे **वर्त्तन्ताम्**।

[ईश्वर]

भाषार्थ—हे (**अग्ने**) विज्ञान स्वरूप परब्रह्म परमात्मन्! (**व्रतपते**) सत्य धर्माचरण आदि नियमों के पालन कराने वाले एवं वेदादि विद्याओं के पालक! आप हैं (**त्वे**) आपके आश्रय से मैं (**व्रतपाः**) सुशीलता आदि व्रतों का पालन करने वाला हूँ। और (**या**) यह जो (**तव**) आपकी (**तनूः**) व्यापकता है (**सा**) वह (**मयि**) मेरे हृदय में वर्तमान है।

(**या**) जो यह मेरा (**तनूः**) विशाल शरीर है वह (**त्वयि**) तुझ जगदीश्वर के सहारे पर वर्तमान है।

जितने (**तव**) इस परमेश्वर के (**व्रतानि**) ब्रह्मचर्य आदि व्रत हैं वह सब (**मयि**) मुझ में विद्यमान रहें और जो मेरे उत्तम (**व्रतानि**) ब्रह्मचर्य आदि व्रत हैं वह (**त्वयि**) तुझ जगदीश्वर की कृपा पर

वर्तमान रहें।

यो भवान् तपस्पतिः तपसः पालयिता **अस्ति, स मे**=**मह्यं** मम **तपः** जितेन्द्रियत्वादिपुरःसरं धर्मानुष्ठानं **अनुमन्यताम्**=**अनुज्ञापयतु।**

जो आप (**तपस्पतिः**) तप के रक्षक हो, सो (**मे**) मेरे लिये (**तपः**) जितेन्द्रियता आदि पूर्वक धर्माचरण की (**अनुमन्यताम्**) आज्ञा दीजिये।

यो=**भवान् दीक्षापतिः** व्रतादेशानामुपदेशपालकः **स मे मह्यं दीक्षां** व्रतादेशम् **अनुमन्यताम्**=**अनुज्ञापयतु।**

(**या**) जो आप (**दीक्षापतिः**) व्रतादेशों के उपदेश का स्वयं पालन करने वाले हो सो (**मे**) मेरे मेरे लिए (**व्रतम्**) व्रतादेश की (**अनुमन्यताम्**) अनुमति दीजिए।

एवं हे अध्यापक! त्वमहं चैतं विदित्वा परस्परं धार्मिकौविद्वांसौ भवेव, यतो नौ=**आवयोर्विद्या वृद्धिः सततं भवेत्** ॥ ५ । ६ ॥

इस प्रकार हे अध्यापक! आप और मैं उक्त इस अग्नि=परमेश्वर को जान कर आपस में धार्मिक विद्वान् बनें, जिससे (**नौ**) हम दोनों की विद्यावृद्धि निरन्तर हो ॥ ५ । ६ ॥

[विद्युत्]

अग्ने विद्युत् **व्रतपते** व्रतानां=वेदादिविद्यानां-पालननिमित्ता **या** वक्ष्यमाणा **विद्युन्निमित्तं वा सा अस्ति, त्वे**=**तस्यामहं व्रतपाः** व्रतानि=सुशीलादीनि पाति यया **अस्मि।**

(**अग्ने**) विद्युत् (**व्रतपते**) वेदादि विद्याओं के पालन का (**या**) जो निमित्त है (**त्वे**) उसके सहारे पर मैं (**व्रतपाः**) सुशीलता आदि व्रतों का पालन करने वाला हूँ।

येयं प्रत्यक्षा **तव**=**तस्यास्तनूः** विस्तृता व्याप्तिः **अस्ति, सा** उक्तपूर्वा **मयि** मम मध्ये **वर्तते, यो**=**यैषा** प्रत्यक्षा **मम तनूः** विस्तृतं शरीरम् **अस्ति, सा** प्रतिपादित-पूर्वा **त्वयि**=**तस्यां वर्त्तते।**

जो (**इयम्**) यह (**तव**) उस विद्युत् की (**तनूः**) व्यापकता है (**सा**) वह (**मयि**) मुझ में वर्तमान रहे **या** और जो यह मेरा (**तनूः**) विशाल शरीर है (**सा**) वह (**त्वयि**) उस विद्युत् के सहारे पर वर्तमान रहें।

यानि तव=**अस्या व्रतानि** ब्रह्मचर्यादीनि **तानि मयि** मम मध्ये **सन्तु, यानि च ममोत्तयानि व्रतानि** ब्रह्मचर्यादीनि **सन्ति तानि त्वयि**=**तस्यां वर्त्तन्ताम्।**

और जो (**तव**) इस विद्युत् के (**व्रतानि**) बड़े कार्य हैं, वे सब (**मयि**) मुझमें विद्यमान रहें और जो मेरे उत्तम (**व्रतानि**) महान् आचरण हैं वे सब (**त्वयि**) तुझ विद्युत् के सहारे पर वर्तमान रहें।

यो या **इयं** प्रत्यक्षा **तपस्पतिः** तपसः पालयित्री **अस्ति, सा मे**=**मह्यं** मम **तपः** जितेन्द्रियत्वादिपुरः-सरं धर्मानुष्ठानम् **अनुमन्यताम्**=**अनुज्ञापयति।**

और जो (**इयम्**) यह (**तपस्पतिः**) तप की पालक विद्युत् है वह (**मे**) मुझे (**तपः**) जितेन्द्रियता आदि पूर्वक धर्माचरण की (**अनुमन्यताम्**) अनुमति अर्थात् शक्ति प्रदान करें।

या इयं दीक्षापतिः व्रतादेशानां रक्षणनिमित्ता **सा मे**=**मह्यं दीक्षां** व्रतादेशम् **अनुमन्यताम्**=**अनुज्ञापयति।**

जो यह (**दीक्षापतिः**) व्रतादेशों की रक्षा का साधन विद्युत् है वह (**मे**) मेरे लिए (**दीक्षाम्**) व्रतादेश की (**अनुमन्यताम्**) अनुमति अर्थात् बल प्रदान करें।

एवं हे **अध्यापक! त्वमहं चैतां विदित्वा**

इस प्रकार हे अध्यापक! आप और मैं इस

परस्परं धार्मिकौ विद्वाँसौ भवेव, यतो नौ=आवयो-र्विद्यावृद्धिः सततं भवेत् ॥ ५ । ६ ॥

विद्युत् को जानकर परस्पर धार्मिक विद्वान् बनें जिससे (नौ) हम दोनों की विद्यावृद्धि सदा होती रहे ॥ ५ । ६ ॥

[हे अग्ने=परमात्मन् ! ··· या इयं तव तनूरस्ति, सा मयि वर्त्तते ···]

भावार्थः—अत्र श्लेषालङ्कारः ॥ मनुष्यैः परस्परं प्रेम्णोपकारबुद्ध्या परमेश्वरे विद्युति वा स्वस्यान्येषां च पुरुषार्थेन, व्याप्यव्यापकसम्बन्ध-विद्यां ज्ञात्वा धर्मानुष्ठाने सततं प्रवर्त्तितव्यम् ॥ ५ । ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष अलङ्कार है ॥ सब मनुष्य परस्पर प्रेमपूर्वक उपकार बुद्धि से परमेश्वर वा विद्युत् में अपने और दूसरों के पुरुषार्थ से व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध विद्या को जान कर धर्माचरण में सदा प्रवृत्त रहें ॥ ५ । ६ ॥

भाष्यसार—१. **अग्नि (ईश्वर) कैसा है**—अग्नि अर्थात् परमात्मा ज्ञानस्वरूप, परब्रह्म है। वह सत्य, धर्माचरण आदि नियमों का पालन कराने वाला, वेद आदि विद्याओं का पालक और सर्वत्र व्यापक है, तप का पालक तथा व्रतादेशों के उपदेश का पालक है।

सर्वव्यापक परमेश्वर हमारे शरीर में भी व्यापक है। ईश्वर व्यापक और हमारा शरीर व्याप्य है। ईश्वर के ब्रह्मचर्य अर्थात् वेदविद्या आदि गुण हम में वर्तमान रहें। ईश्वर में गुण व्यापक हैं उनके लिए हम व्याप्य हैं। इस व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध की विद्या को जानकर व्यक्ति धर्माचरण में प्रवृत्त हो सकता है। जब तक ईश्वर को सर्वव्यापक नहीं समझता तब तक कोई भी पूर्ण रूप से धर्माचरण में प्रवृत्त नहीं हो सकता। और जब तक ईश्वर के गुणों को नहीं जानता तब तक उन्हें जीवन में धारण भी नहीं कर सकता। इस प्रकार अध्यापक और शिष्य परस्पर धार्मिक विद्वान् होकर ईश्वर को जानकर विद्या की वृद्धि करें।

२. **अग्नि (विद्युत्) कैसा है**—अग्नि अर्थात् विद्युत् वेदविद्याओं की रक्षा का हेतु है। इसी के आश्रय से व्यक्ति सुशीलता आदि व्रतों का पालक बनता है। विद्युत् सर्वत्र व्याप्त है। यह हमारे शरीर में भी व्याप्त है। इसके महान् कार्य मुझ में व्याप्त हों और मेरे महान् कार्यों से विद्युत् विद्या का विकास हो। यह विद्युत् तप का पालक है। मैं भी इसके उपयोग से जितेन्द्रियता आदि धर्माचरण रूप तप का अनुष्ठान करूँ। यह दीक्षा अर्थात् व्रतादेशों की रक्षा का निमित्त है मैं भी दीक्षा (**व्रतादेश**) का पालन करूँ।

अध्यापक और शिष्य लोग परस्पर प्रेमपूर्वक पुरुषार्थ से विद्युत् में व्यापक गुणों को अपने व्याप्य-भूत शरीर में धारण करके व्याप्य-व्यापक विद्या के सम्बन्ध को जानकर धर्माचरण में सदा प्रवृत्त रहें। विद्युत् विद्या की वृद्धि करें।

३. **अलङ्कार**—यहां श्लेष अलङ्कार से ईश्वर और विद्युत् अर्थ का ग्रहण किया है ॥ ५ । ६ ॥

गोतमः । **त्रोम्र:=ईश्वरो, विद्युत् विद्वांश्च** ॥ आद्यस्यार्षी बृहती । मध्यमः । आप्यायेत्यन्तस्यार्षी जगती । निषादः ॥

पुनस्ते कीदृशौ विद्वांश्चेत्युपदिश्यते ॥

फिर वह ईश्वर, बिजुली और विद्वान् कैसे हैं, इस विषय का उपदेश किया है ॥

अ॒ꣳशुर॑ꣳशुष्टे देव सो॒माप्या॑यता॒मिन्द्रा॑यैकधन॒विदे॑ ।
आ तु॒भ्य॒मिन्द्रः॒ प्याय॑ता॒मा त्वमिन्द्रा॑य प्यायस्व ।
आप्या॑यया॒स्मान्त्सखी॑न्त्स॒न्न्या मे॒धया॑ स्व॒स्ति ते॑ देव सोम सु॒त्याम॑शीय ।
एष्टा॒ रा॒यः॒ प्रेषे भगा॑य ऽ ऋ॒तमृ॑तवा॒दिभ्यो॒ नमो॒ द्यावा॑पृथि॒वीभ्या॑म् ॥ ७ ॥

पदार्थः—(**अंशुरंशुः**)अवयवोऽवयवः । अत्राशूङ्व्याप्तौ संघाते भोजने चेत्यस्माद्बाहुलकादौणादिक उप्रत्ययो नुमागमश्च (**ते**) तव तस्या वा (**देव**) दिव्यगुणैः संपन्नेश्वरविद्युद्विद्वन् वा (**सोम**) सकलपदार्थानां जनक ! प्रकाशिके ! वा (**आ**) समन्तात् (**प्यायताम्**) वर्धयताम् । अत्रान्तर्गतो ण्यर्थः(**इन्द्राय**) परमैश्वर्ययुक्ताय (**एकधनविदे**) य एकेन=धर्मेण विज्ञानेन वा धनं विन्दति तस्मै (**आ**) अभितः (**तुभ्यम्**) अध्यापकाय मह्यमध्येत्रे वा (**इन्द्रः**) परमात्मा, विद्युद्वा (**प्यायताम्**) (**आ**) सर्वतः (**इन्द्राय**) दुःखविदारणाय (**प्यायस्व**) वर्धस्व, वर्धयेद्वा (**आ**) अभितः (**प्यायय**) वर्धय, वर्धयति वा (**अस्मान्**) (**सखीन्**) सुहृदः (**सन्न्या**) समानान्पदार्थान्नियति यया तया (**मेधया**) प्रज्ञया (**स्वस्ति**) सुखम् (**ते**) तव, तस्याः सकाशाद्वा (**देव**) दिव्यगुणप्रद, प्रदानहेतुर्वा (**सोम**) प्रेरक, प्रेरिका वा (**सुत्याम्**) सुन्वन्ति यया क्रियया तस्याम् (**अशीय**) व्याप्नुयां=प्राप्नुयाम् (**एष्टाः**) सर्वत इष्टकारिणः (**रायः**) धनसमूहाः (**प्र**) प्रकृष्टार्थे (**इषे**) अन्नायेच्छायै वा (**भगाय**) ऐश्वर्याय (**ऋतम्**) यथार्थम् (**ऋतवादिभ्यः**) ऋतं वदितुं शीलं येषां तेभ्यः सत्यवादिभ्यो विद्वद्भ्यः (**नमः**) सत्कारमन्नम् (**द्यावापृथिवीभ्याम्**) प्रकाशभूमिभ्याम् ॥ अयं मंत्रः शत० ३ । ४ । ३ । १८–२१ व्याख्यातः ॥ ७ ॥

प्रमाणार्थ—(**अंशुः**) यह शब्द व्याप्ति, संघात और भोजन अर्थ वाली 'अशूङ्' धातु से बहुल करके औणादिक 'उ' प्रत्यय और 'नुम्' का आगम करने पर सिद्ध होता है । (**प्यायताम्**) वर्धयताम् । यहां 'णिच्' प्रत्यय का अर्थ अन्तर्भावित है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ४ । ३ । १८-२१) में की गई है ॥ ५ । ७ ॥

[ईश्वरो विद्वांश्च]

सपदार्थान्वयः—हे **सोम** सकल पदार्थानां जनक ! **देव**=ईश्वर ! **विद्वन्** दिव्य गुणैः सम्पन्नेश्वर विद्वन् वा ! **यतस्ते सामर्थ्यमंशुरंशुः**=**अङ्गमङ्गम्** अवयवोऽवयवः **सोमेनाप्यायतां** समन्ताद् वर्धयताम् ।

इन्द्रः परमात्मा **सोमः** प्रेरको **भवान् एकधनविदे** य एकेन धर्मेण धनं विन्दति तस्मै **इन्द्राय** परमैश्वर्ययुक्ताय तुभ्यं अध्यापकाय **मह्यं** अध्येत्रे **वा** [**आ**] **प्यायताम्** अभितो वर्धयताम्, **त्वमिन्द्राय** परमैश्वर्ययुक्ताय [**आ**] **प्यायस्व**=**वर्धयस्व**, सर्वतो वर्धस्व ।

अतः सखीन् सुहृदः **अस्मान् सन्न्या समानान्**

[ईश्वर और विद्वान्]

भावार्थ—हे (**सोम**) सब पदार्थों के उत्पत्ति-कर्ता (**देव**) दिव्य गुणों से युक्त ईश्वर वा विद्वान् ! जिससे आपका सामर्थ्य (**अंशुरंशुः**) प्रत्येक अङ्ग को सोम=पुष्टिकारक औषधियों से (**आप्यायताम्**) बढ़ाता है,

और (**इन्द्रः**) परमात्मा (**सोमः**) सब को प्रेरणा देने वाले आप (**एक धनविदे**) एक धर्म से धन को प्राप्त करने वाले (**इन्द्राय**) परमैश्वर्य से युक्त (**तुभ्यम्**) अध्यापक को (**तुभ्यम्**) और मुझ अध्येता को (**अप्यायताम्**) सब ओर से बढ़ाते हो, और आप (**इन्द्राय**) परम ऐश्वर्य युक्त पुरुष को (**आप्यायस्व**) सब ओर से बढ़ाते हो,

इसलिए—(**सखीन्**) हम मित्रों को (**सन्न्या**)

पदार्थान् नयति यया तया **मेधया** प्रज्ञया [**आ**] **प्यायस्व**=**आप्यायय,** सर्वतो वर्धस्व ।

[**देव**] दिव्यगुणपद ! **यतोऽहं** [**ते**] तव **सुत्यां** सुन्वन्ति यया क्रियया तस्यां **दिव्यगुणसम्पन्नो भूत्वा एष्टाः** सर्वतः इष्टकारिणः **रायः** धनसमूहान् **अशीय** व्याप्नुयाम्=प्राप्नुयाम् ।

यैः [**प्र**] **इषे** प्रकृष्ट-अन्नाय प्रकृष्ट-इच्छायै वा **भगाय** ऐश्वर्याय **ऋतवादिभ्यः**=**विद्वद्भ्यः** ऋतं वदितुं शीलं येषां तेभ्यः सत्यवादिभ्यो विद्वद्भ्यः, **एतद् धनं दत्त्वा** [**ऋतम्**]=**सत्यां विद्यां** यथार्थम् **द्यावापृथिवीभ्यां** प्रकाश भूमिभ्याम् [**नमः**]=**अन्नं** सत्कारमन्नम् **च प्राप्य** [**स्वस्ति**]=**सर्वाणि सुखानि प्राप्नुयाम्** ॥ ५ । ७ ॥

[विद्युत्]

सपदार्थान्वयः—हे **सोम**=**विद्युत्** ! सकलपदार्थानां प्रकाशिके! **यतस्ते**=**तस्याः सामर्थ्यमंशुरंशुः**=**अङ्गमङ्गम्** अवयवोऽवयवः **सोमेनाप्यायतां समन्ताद् वर्धयताम्** ।

इन्द्रः विद्युद् [**सोम**] **सोमः** प्रेरिका **एकधनविदे** य एकेन विज्ञानेन धनं विन्दति तस्मै **इन्द्राय** परमैश्वर्ययुक्ताय **तुभ्यम्** अध्यापकाय **मह्यम्** अध्येत्रे **वा** [**आ**] **प्यायताम्**=**आप्यायति** अभितो वर्धयति । **त्वमिन्द्राय** परमैश्वर्य युक्ताय [**आ**] **प्यायस्व** ।

अतः सखीन् सुहृदः **अस्मान् सन्न्याः** समानान् पदार्थान् नयति यया तया **मेधया** प्रज्ञया [**आ**] **प्यायस्व**=**आप्याययेत्** सर्वतो वर्धयेत् ।

[**देव**] दिव्यगुणप्रदानहेतुः **यतोऽहं** [**ते**] तव **सुत्यां** सुन्वन्ति यया क्रियया तस्यां **दिव्यगुणसम्पन्नो भूत्वा एष्टाः** सर्वत इष्टकारिणः **रायः** धन समूहान् **अशीय** व्याप्नुयाम्=प्राप्नुयाम् ।

यैः [**प्र**] **इषे** प्रकृष्ट—अन्नाय प्रकृष्ट इच्छायै

प्रत्येक पदार्थ को प्राप्त कराने वाली (**मेधया**) बुद्धि से (**आप्यायस्व**) सब ओर से बढ़ाइये ।

[**देव**] हे दिव्य गुणों के दाता ईश्वर वा विद्वान् ! जिससे मैं (**ते**) आपकी (**सुत्याम्**) सवन-क्रिया में दिव्य गुणों से सम्पन्न=चतुर होकर (**एष्टाः**) सब ओर से हितकारक (**रायः**) धनों को (**अशीय**) प्राप्त करूँ ।

जिनसे (**प्र-इषे**) उत्तम अन्न और उत्तम इच्छा तथा (**भगाय**) ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए (**ऋतवादिभ्यः**) सत्य भाषण करने वाले विद्वानों को धन प्रदान करके (**ऋतम्**) सत्य विद्या को तथा (**द्यावापृथिवीभ्याम्**) सूर्य और पृथिवी के द्वारा (**नमः**) सत्कार तथा उत्तम अन्न को प्राप्त करके (**स्वस्ति**) सब सुखों को प्राप्त करूँ ॥ ५ । ७ ॥

[विद्युत्]

भाषार्थ—हे (**सोम**) सब पदार्थों को प्रकाशित करने वाली विद्युत् ! (**ते**) आपकी शक्ति (**अंशुरंशुः**) प्रत्येक अवयव को सोम=पुष्टि कारक धनों से (**आप्यायताम्**) सब ओर से बढ़ाती है ।

(**इन्द्रः**) विद्युत् (**सोम**) जो गति देने वाली है वह (**एकधनविदे**) एक विज्ञान से धन को प्राप्त करने वाले (**इन्द्राय**) परमैश्वर्य से युक्त (**तुभ्यम्**) अध्यापक (**मह्यम्**) और मुझ अध्येता को (**आप्यायताम्**) सब ओर से बढ़ाती है, वह (**इन्द्राय**) परम ऐश्वर्य युक्त पुरुष को (**आप्यायस्व**) सब ओर से समृद्ध करे ।

इसलिये—(**सखीन्**) हम मित्रों को (**सन्न्याः**) सब पदार्थों को प्राप्त कराने वाली (**मेधया**) बुद्धि से (**अप्यायस्व**) सब ओर से बढ़ायें ।

हे (**देव**) दिव्य गुणों को प्रदान करने वाली विद्युत् ! जिससे मैं (**ते**) तुम्हारी (**सुत्याम**) सवन-क्रिया में दिव्य गुणों से सम्पन्न होकर (**एष्टाः**) सर्व हितकारी (**रायः**) धनों को (**अशीय**) प्राप्त करूँ ।

और—जिन से (**प्रेषे**) उत्तम अन्न वा उत्तम

वा (भगाय) ऐश्वर्याय ऋतवादिभ्यः=विद्वद्भ्यः, ऋतं वदितुं शीलं येषां तेभ्यः सत्यवादिभ्यो विद्वद्भ्यः एतद् धनं दत्वा [ऋतम्]=सत्यां विद्यां यथार्थम् द्यावा पृथिवीभ्यां प्रकाशभूमिभ्याम् [नमः] =अन्नं सत्कारमन्नं च प्राप्य [स्वस्ति]=सर्वाणि सुखानि प्राप्नुयाम् ।। ५ । ७ ।।

इच्छा तथा (भगाय) ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये (ऋतवादिभ्यः) सत्यवादी विद्वानों के लिए यह धन प्रदान करके (ऋतम्) विद्युत्-विषयक सत्य-विद्या को और (द्यावा पृथिवीभ्याम्) सूर्य तथा भूमि से (नमः) सत्कार और अन्न को प्राप्त करके (स्वस्ति) सब सुखों को प्राप्त करूँ ।। ५ । ७ ।।

[हे सोम ! देव=ईश्वर ! विद्वन् ! यतस्ते सामर्थ्यमंशुरंशु=अङ्गमङ्गं सोमेनाप्यायताम्, अहं···रायोऽशीय, [स्वस्ति]=सर्वाणि सुखानि प्राप्नुयाम्]

भावार्थः—अत्र श्लेषालङ्कारः ।। मनुष्यैः परमेश्वरमुपास्य, विद्वांसमुपाचर्य, विद्युद्विद्यां प्रचार्य, शरीरात्मपुष्टिकरानोषधिसमूहान् धनसमुदायांश्च संगृह्य वैद्यकविद्यानुसारेण सर्वानन्दा भोक्तव्याः ।। ५ । ७ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष अलङ्कार है ।। सब मनुष्य, परमेश्वर की उपासना, विद्वानों की सेवा और विद्युत्-विद्या का प्रचार करके, शरीर और आत्मा को पुष्ट करने वाली औषधियों और धनों के संग्रह से वैद्यक विद्या के अनुसार व्यवहार करके सब आनन्दों को भोगें ।। ५ । ७ ।।

भाष्यसार—१. ईश्वर—सब पदार्थों को उत्पन्न करने वाला, दिव्य गुणों से सम्पन्न वह शरीर और आत्मा को पुष्ट करने वाली औषधियों से हमें शक्तिशाली बनाता है । सबको प्रेरणा देने वाला परमात्मा धर्म से धन कमाने वाले धनी अध्यापक और अध्येता को समृद्ध बनाता है । अपने उपासक मित्रों को सब पदार्थों को प्राप्त कराने वाली मेधा बुद्धि प्रदान करता है । जो उस दिव्य गुणों के दाता परमेश्वर की सवन क्रिया में कुशल हैं उन्हें सब अभीष्ट धन प्रदान करता है ।

२. विद्वान्—दिव्यगुणों से सम्पन्न विद्वान् ईश्वर से उत्पन्न की हुई शरीर और आत्मा को पुष्ट करने वाली औषधियों से अपने प्रत्येक अङ्ग को बलवान् बनाता है । एकमात्र धर्म से धन को कमाकर परमैश्वर्य युक्त होकर अध्ययन अध्यापन से वृद्धि को प्राप्त होता है । अपने मित्रों को मेधा बुद्धि से युक्त करता है । दिव्यगुणों को प्रदान करने वाला विद्वान् सवन-क्रिया में दिव्य गुणों से सम्पन्न होकर सर्वहितकारी धनों को प्राप्त कराता है ।

सब मनुष्य उत्तम अन्न, उत्तम कामना की सिद्धि एवं परम ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए ऐसे सत्यवादी विद्वानों को सत्कारपूर्वक पुष्कल धन प्रदान से सत्यविद्या को ग्रहण करके सब सुखों को प्राप्त करें ।

३. विद्युत्—यह विद्युत् सब पदार्थों को प्रकाशित करने वाली है । यह शरीर के प्रत्येक अङ्ग को पुष्टिकारक धनों से शक्तिशाली बनाती है । विद्युत् सबको गति देने वाली है । एकमात्र विज्ञान से धन कमाने वाले ऐश्वर्यशाली विद्युत् के अध्यापक और अध्येता को समृद्ध बनाती है । विद्युत्-विद्या से प्रेम करने वाले अपने मित्रों को सब पदार्थों को (मेधा) आशु ग्रहण करने वाली शक्ति से बढ़ाती है । यह विद्युत् दिव्य गुणों की प्राप्ति का निमित्त है । जो विद्युत् विद्या की सवन-क्रिया में कुशल हो जाता है उसे यह सब अभीष्ट धनों को प्राप्त कराती है ।

सब मनुष्य उत्तम अन्न और उत्तम कामना की सिद्धि तथा परम ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये विद्युत्-विद्या के यथार्थ मर्मज्ञ विद्वानों को सत्कारपूर्वक पुष्कल धन प्रदान करें तथा उनसे सच्ची विद्युत्-विद्या को और सूर्य और पृथिवी से श्रेष्ठ अन्न को प्राप्त करके सब सुखों को भोगें ।

४. **अलङ्कार**—यहां श्लेष अलङ्कार से ईश्वर, विद्युत् और विद्वान् अर्थ का ग्रहण किया है ।। ५ । ७ ।।

गोतमः । **अग्निः**=विद्युत् । पूर्वस्य विराडार्षी बृहती । या त इति द्वितीयस्य निचृदार्षी बृहती । मध्यमः ।।

पुनः सा विद्युत् कीदृशीत्युपदिश्यते ।।

फिर वह बिजली कैसी है, इस विषय का उपदेश किया है ।।

या तेऽ अग्नेऽयःशया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा । उग्रं वचोऽअपावधीत्त्वेषं वचो ऽ अपावधीत् स्वाहा । या ते ऽ अग्ने रजःशया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा । उग्रं वचो ऽ अपावधीत्त्वेषं वचो ऽ अपावधीत् स्वाहा । या ते ऽ अग्ने हरिशया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा । उग्रं वचो ऽ अपावधीत्त्वेषं वचो ऽ अपावधीत् स्वाहा ।। ८ ।।

पदार्थः—(**या**) वक्ष्यमाणा (**ते**) अस्याः (**अग्ने**) विद्युतः (**अयःशया**) याऽयस्सु=सुवर्णादिषु शेते सा । अय इति हिरण्यनामसु पठितम् ।। निघं० १ । २ ।। (**तनूः**) व्याप्तं=विस्तृतं शरीरम् (**वर्षिष्ठा**) अतिशयेन वृद्धा (**गह्वरेष्ठा**) गह्वरे=गहने गभीर आभ्यन्तरे तिष्ठतीति (**उग्रम्**) क्रूरं=भयङ्करम् (**वचः**) वचनम् (**अप**) व्यपेत्येतस्य प्रातिलोम्यम् ।। निरु० १ । ३ ।। (**अवधीत्**) हन्ति । अत्र सर्वत्र लडर्थे लुङ् (**त्वेषम्**) प्रदीप्तम् (**वचः**) परिभाषणम् (**अप**) पृथक्करणे (**अवधीत्**) हन्ति (**स्वाहा**) सुहुतं हविरन्नम् (**या**) (**ते**) (**अग्ने**) (**रजःशया**) या रजःसु=पृथ्व्यादिलोकेषु शेते सा (**तनूः**) व्याप्तिः (**वर्षिष्ठा**) (**गह्वरेष्ठा**) (**उग्रम्**) दुःसहम् (**वचः**) परिभाषणम् (**अप**) पृथक्करणे (**अवधीत्**)(**त्वेषम्**) प्रकाशितम् (**वचः**) वचनम् (**अप**) पृथक्करणे (**अवधीत्**) हन्ति (**स्वाहा**) सुहुतां वाचम् (**या**) (**ते**) (**अग्ने**) इत्युक्तार्थः (**हरिशया**) हरिषु=सूर्यादिष्व-श्वादिषु वा शेते सा (**तनूः**) (**वर्षिष्ठा**) (**गह्वरेष्ठा**) इत्युक्तार्थः (**उग्रं**) तीव्रम् (**वचः**) वचनम् (**अप**) (**अवधीत्**) (**त्वेषम्**) प्रकाशकम् (**वचः**) शब्दनम् (**अप**) (**अवधीत्**) (**स्वाहा**) स्वा=स्वकीया वागाहेति ।। अयं मंत्रः शत० ३ । ४ । ४ । २३-२५ व्याख्यातः ।। ८ ।।

प्रमाणार्थ—(**अयःशया**) 'अयः' शब्द निघं० (१ । २) में हिरण्य-नामों में पढ़ा है । (**अप**) निरु० (१ । ३) अनुसार 'अप' उपसर्ग का अर्थ 'वि' उपसर्ग से विपरीत है (**अवधीत्**) इस मन्त्र में 'अवधीत्' पद पर सर्वत्र लट् अर्थ में लुङ् लकार है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ४ । ४ । २३-२५) में की गई है ।। ५ । ८ ।।

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! यूयं **या** वक्ष्यमाणा **तेऽग्ने**=अस्या विद्युतो **वर्षिष्ठा** अतिशयेन वृद्धा **गह्वरेष्ठा** गह्वरे=गहने गभीर आभ्यन्तरे तिष्ठतीति [**अयः शया**] या अयस्सु=सुवर्णादिषु शेते सा **तनूः** व्याप्तं=विस्तृतं शरीरम् उग्रं क्रूरं भयङ्करं **वचः** वचनम् **अपावधीत्**= अपहन्ति, त्वेषं प्रदीप्तं **वचः** परिभाषणं **स्वाहा**= सुहुतं हविरन्नं **चापावधीत्** अपहन्ति ।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम (**या**) जो (**ते अग्ने**) इस विद्युत् का (**वर्षिष्ठा**) अत्यन्त बड़ा (**गह्वरेष्ठा**) अन्दर रहने वाला (**अयःशया**) सोने आदि में रहने वाला (**तनूः**) व्यापक विस्तृत शरीर है वह (**उग्रं**) क्रूर भयङ्कर (**वचः**) वचन को (**अपा-वधीत्**) दूर करता है, तथा (**त्वेषम्**) दीप्तिमय (**वचः**) वचन को (**अपावधीत्**) दूर करता है । तथा (**स्वाहा**) अच्छे प्रकार दी हुई हवि को और

या वक्ष्यमाणा **तेऽग्ने**=**अस्या विद्युतो वर्षिष्ठा** अतिशयेन वृद्धा **गह्वरेष्ठा** गह्वरे=गहने गभीर आभ्यन्तरे तिष्ठतीति **रजःशया** या रजःसु=सूर्यादिलोकेषु शेते सा **तनूः** व्याप्तिः **उग्रं** दुःसहम् **वचः** परिभाषणम् **अपावधीत्** अपहन्ति **त्वेषं** प्रकाशितं **वचः** वचनं **स्वाहा**=सुहुतां **वाचं चापावधीत्**=हन्ति **या** वक्ष्यमाणा **तेऽग्ने**=**अस्याविद्युतो वर्षिष्ठा** अतिशयेन वृद्धा **गह्वरेष्ठा** गह्वरे=गहने गभीर अभ्यन्तरे तिष्ठन्तीति **हरिशया** हरिषु=सूर्यादिष्वश्वयादिषु वा शेते सा **तनूः** व्याप्तिः **उग्रं** तीव्रं **वचः** वचनम् **अपावधीत्** अपहान्ति, **त्वेषं** प्रकाशकं **वचः** शब्दनं **स्वाहा**=**स्वां वाचं** स्वा स्वकीया वाग्गाहेति च **अपावधीत्**=हान्ति **तां सम्यग् विदित्वोपंकुरुत** ॥ ५ । ८ ॥

अन्न को (**अपावधीत्**) दूर ले जाता है।

(**या**) जो (**तेऽग्ने**) इस विद्युत् की (**वर्षिष्ठा**) अत्यन्तविशाल (**गह्वरेष्ठा**) अन्दर गहराई में रहने वाली (**रजःशया**) सूर्यादि लोकों में स्थित (**तनूः**) व्यापकता है वह (**उग्रम्**) असह्य (**वचः**) वचन को (**अपावधीत्**) नष्ट कर देती है और (**त्वेषम्**) प्रकाशित एवं प्रकट (**वचः**) उच्चारण को (**स्वाहा**) एवं अच्छे प्रकार प्रदान की हुई वाणी को (**अपावधीत्**) दूर ले जाती है (**या**) जो (**ते अग्ने**) इस विद्युत् की (**वर्षिष्ठा**) अत्यन्त विशाल (**गह्वरेष्ठा**) अन्दर गहराई में विद्यमान् अर्थात् छुपी हुई (**हरिशया**) हरि अर्थात् सूर्य आदि और अश्व आदि में जो (**तनूः**) व्याप्ति है वह (**उग्रम्**) तीव्र (**वचः**) वचन को (**आपवधीत्**) नष्ट करती है, (**त्वेषम्**) प्रकाशक (**वचः**) शब्द को तथा (**स्वाहा**) अपनी वाणी को (**अपवधीत्**) नष्ट करती है, उसे ठीक ठीक जानकर उपकार ग्रहण करो ॥ ५ । ८ ॥

[हे मनुष्या ! यूयं या तेऽग्ने=अस्या विद्युतो···तनूरुग्रं वचोऽपावधीत्=अपहन्ति···तां सम्यग् विदित्वोपकुरुत]

भावार्थः—मनुष्यैर्विद्युतो या व्याप्तिर्मूर्त्तामूर्त्तद्रव्यस्था वर्त्तते तां युक्त्या सम्यक् विदित्वोपसंप्रयुज्य सर्वाणि दुःखान्यपहन्तव्यानि ॥ ५ । ८ ॥

मनुष्य, विद्युत् की जो व्याप्ति मूर्त्त और अमूर्त द्रव्यों में है उसे युक्तिपूर्वक उतम रीति से जानकर तथा उसका ठीक उपयोग करके सब दुःखों को नष्ट करें ॥ ५ । ८ ॥

भा० पदार्थः—तनूः=व्याप्तिर्मूर्त्तामूर्त्तद्रव्यस्था।

भाष्यसार—**अग्नि (विद्युत्) कैसा है**—अग्नि अर्थात् विद्युत् अत्यन्त महान् है जो सब मूर्त्त और अमूर्त द्रव्यों में छुपा हुआ है, व्याप्त है अर्थात् वह सुवर्ण आदि धातुओं में, सूर्य आदि लोकों में, अश्व आदि प्राणियों में विशिष्ट रूप से विराजमान है। यह भयङ्कर, तेज, दुःसह, भाषण को दूर कर देता है। तेज भाषण को दूर करने का अभिप्राय यह है कि विद्युत् के उपयोग से ऐसा यन्त्र बनायें कि जिससे तेज बोलने की आवश्यकता न रहे। जैसे कि आजकल ध्वनि-विस्तारक (**लाउडस्पीकर**) यन्त्र है। यह (**अग्नि**) जिस प्रकार दी हुई आहुति को दूर ले जाता है इसी प्रकार विद्युत् के आश्रय से वचन (**भाषण**) भी दूर चला जाता है। इस प्रकार विद्युत्-विद्या को जानकर भाषण आदि सब दुःखों को दूर करें ॥ ५ । ८ ॥

गोतमः । **अग्निः**=**प्रसिद्धसूर्याविद्युद्रूपः** ॥ प्रथमस्य भुरिगार्षी गायत्री । षड्जः । विदेदग्निरित्यस्य भुरिग्ब्राह्मी बृहती । मध्यमः ॥ नाम्नेहोत्यस्य निचृद्ब्राह्मी जगती । निषादः । अनुत्वेत्यस्य याजुष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

अथ किमर्थोऽग्न्यादिना यज्ञोऽनुष्ठातव्य इत्युपदिश्यते ॥

अब किसलिये अग्नि आदि से यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

तप्तायनी मेऽसि वित्तायनी मेऽस्यवतान्मा नाथितादवतान्मा व्यथितात् । विदेदग्निर्नभो नामाग्ने ऽ अङ्गिर ऽ आयुना नाम्नेहि योऽस्यां पृथिव्यामसि यत्तेऽनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा दधे विदेदग्निर्नभो नामाग्ने ऽ अङ्गिर ऽ आयुना नाम्नेहि यो द्वितीयस्यां पृथिव्यामसि यत्तेऽनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा दधे विदेदग्निर्नभो नामाग्नेऽअङ्गिरऽआयुना नाम्नेहि यस्तृतीयस्यां पृथिव्यामसि यत्तेऽनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा दधे । अनु त्वा देववीतये ॥ ९ ॥

पदार्थः—(**तप्तायनी**) तप्तानि=स्थापनीयानि वस्तून्ययनं यस्या विद्युतः सा (**मे**) मम (**असि**) भवति । अत्र सर्वत्र व्यत्ययः (**वित्तायनी**) या वित्तानां=भोगानां प्रतीतानां पदार्थानामयनी=प्रापिका सा । वित्तो भोगप्रत्यययोः ॥ अ० ८ । २ । ५८ ॥ अनेन वित्तशब्दः प्रतीतार्थे भोगार्थे च निपातितः (**मे**) मम (**असि**) अस्ति (**अवतात्**) रक्षति । अत्र सर्वत्र लडर्थे लोट् (**मा**) माम् (**नाथितात्**) ऐश्वर्यात् (**अवतात्**) रक्षति (**मा**) माम् (**व्यथितात्**) भयात्संचलनात् (**विदेत्**) विजानीयात् (**अग्निः**) प्रसिद्धः (**नभः**) जलं प्रकाशं वा । नभ इति जलनामसु पठितम् ॥ निघं० १ । १२ ॥ साधारणनामसु च ॥ निघं० १ ॥ ४ ॥ (**नाम**) प्रसिद्धम् (**अग्ने**) जाठरस्थः (**अङ्गिरः**) अङ्गानां रसः (**आयुना**) जीवनेन प्रापकत्वेन वा (**नाम्ना**) प्रसिद्धया (**आ**) समन्तात् (**इहि**) एति (**यः**) अग्निः (**अस्याम्**) प्रत्यक्षायाम् (**पृथिव्याम्**) भूमौ (**असि**) वर्त्तते (**यत्**) यादृशम् (**ते**) अस्य (**अनाधृष्टम्**) यत्समन्तान्न धृष्यते तत्तेजः (**नाम**) प्रसिद्धम् (**यज्ञियम्**) यज्ञाङ्गसमूहनिष्पादकम् (**तेन**) पूर्वोक्तेन (**त्वा**) तम् (**आ**) अभितः (**दधे**) धरामि (**विदेत्**) प्राप्नुयात् (**अग्निः**) भौतिकः (**नभः**) अन्तरिक्षस्थं जलम् (**नाम**) प्रसिद्धम् (**अग्ने**) प्रसिद्धोऽग्निः (**अङ्गिरः**) अङ्गारस्थः (**आयुना**) प्रापकत्वेन (**नाम्ना**) प्रसिद्धया (**आ**) अभितः (**इहि**) प्राप्नुहि (**यः**) (**द्वितीयस्याम्**) अस्यां भिन्नायाम् (**पृथिव्याम्**) विस्तृतायां भूमौ (**असि**) अस्ति (**यत्**) येन (**ते**) (**अनाधृष्टम्**) प्रगल्भगुणसहितम् (**नाम**) प्रसिद्धम् (**यज्ञियम्**) यज्ञसम्बन्धी (**तेन**) (**त्वा**) तम् (**आ**) अभितः (**दधे**) धरामि (**विदेत्**) प्राप्नुयात् (**अग्निः**) सूर्यस्थः (**नभः**) अवकाशम् (**नाम**) प्रसिद्धम् (**अग्ने**) सूर्यरूपः (**अङ्गिरः**) अञ्चिता (**आयुना**) (**नाम्ना**) (**आ**) (**इहि**) उक्तार्थेषु (**यः**) अग्निः (**तृतीयस्याम्**) तृतीयकक्षायां वर्तमानायाम् (**पृथिव्याम्**) भूमौ (**असि**) वर्त्तते (**यत्**) येन (**ते**) (**अनाधृष्टम्**) प्रौढम् (**नाम**) प्रसिद्धम् (**यज्ञियम्**) शिल्पविद्यायज्ञसम्बन्धी (**तेन**) (**त्वा**) तम् (**आ**) अभितः (**दधे**) स्वीकरोमि (**अनु**) आनुकूल्ये (**त्वा**) तम् (**देववीतये**) देवानां=दिव्यानां गुणानां भोगानां वा प्राप्तये ॥ अत मंत्रः शत० ३ । ५ । १ । २७-३२ व्याख्यातः ॥ ९ ॥

प्रमाणार्थ—(**वित्तायनी**) यहां 'वित्त' शब्द 'वित्तो भोग प्रत्यययोः, (**अ०** ८ । २ । ५८) सूत्र से भोग और प्रतीत अर्थ में निपातित है । (**अवतात्**) रक्षति । यहां सर्वत्र लट् अर्थ में लोट् लकार है । (**नभः**) यह शब्द निघं० (१ । १२) में जल-नामों में और निघ० (१ । ४) में द्युलोक और सूर्य के साधारण-नामों में पढ़ा है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ५ । १ । २७-३२) में की गई है ॥ ५ । ९ ॥

[विद्युत्]

सपदार्थान्वयः—हे विद्यां जिघृक्षो ! **यथाहं तेत यद्**=**या तप्तायनी** तप्तानि=स्थापनीयानि वस्तून्ययनं यस्या विद्युतः सा **असि**=**अस्ति, वित्तायनी**=**विद्युत्** या वित्तानां=भोगानां प्रतीतानां पदार्थानामयनी=प्राथिका सा **असि**=**अस्ति, त्वा**=**तां वेद्मि तथा त्वमेतेनैतद्विद्यां मे**=**मम सकाशादेहि**=**प्राप्नुहि** ।

यथाऽयं सुसेवितः अग्निः सविता प्रसिद्ध **नभो**=जलं **प्रकाशं वा प्रयच्छन् मा**=**मां व्यथितात्** भयात्संचलनात् **अवतात्** रक्षति, **नाथितात्** ऐश्वर्यात् **चावतात्** रक्षति, **तथा त्वया सेवितः संस्त्वामपि रक्षेत्** ।

[विद्युत्]

भावार्थ—हे विद्या को ग्रहण करने के इच्छुक ! जैसे मैं, जो (**तप्तायनी**) स्थापन करने योग्य वस्तुओं का स्थान विद्युत् (**असि**) है, और जो (**वित्तायनी**) भोग और प्रसिद्ध पदार्थों को प्राप्त कराने वाली विद्युत् (**असि**) है (**त्वा**) उसे जानता हूँ, वैसे तू इसलिए इस विद्या को (**मे**) मुझ से (**एहि**) प्राप्त कर ।

जैसे यह अच्छे प्रकार से सेवन किया हुआ (**अग्निः**) सूर्य वा प्रसिद्ध अग्नि (**नभः**) जल और प्रकाश को देता हुआ (**मा**) मेरी (**व्यथितात्**) भय और विचलित होने से (**अवतात्**) रक्षा करती है और (**नाथितात्**) ऐश्वर्य प्रदान से (**अवतात्**) रक्षा करती है वैसे तुझ से सेवन किया हुआ अग्नि तेरी भी रक्षा करे ।

[जाठराग्निः]

यथाऽहं **योऽग्ने** जाठरस्थः **अङ्गिरः** अङ्गानां रसः **अग्निः** भौतिकः **आयुना** जीवनेन प्रापकत्वेन वा **नाम्ना** प्रसिद्धचा **अस्यां** प्रत्यक्षायां **पृथिव्यां** भूमौ **नाम**=**प्रसिद्धोऽस्ति, त्वा**=**तां देववीतये** देवानां=दिव्यानां गुणानां भोगानां वा प्राप्तये **विजानामि, तथैतेनैनं** त्वमपि **मे**=**मम सकाशादेहि**=**संजानीहि** प्राप्नुहि ।

[जाठर अग्नि]

जैसे मैं, जो (**अग्ने**) जाठराग्नि (**अङ्गिरः**) अङ्गों को रस पहुँचाने वाला (**अग्निः**) है वह (**आयुना**) जीवन का सुख-प्रापक (**नाम्ना**) नामकी प्रसिद्धि से (**अस्याम्**) इस (**पृथिव्याम्**) भूमि पर (**नाम**) प्रसिद्ध है, (**त्वा**) उस अग्नि को (**देववीतये**) दिव्यगुणों वा दिव्य भोगों की प्राप्ति के लिये मैं जानता हूँ, वैसे इसीलिये इस अग्नि को तू भी (**मे**) मुझ से (**एहि**) जान एवं प्राप्त कर ।

[यज्ञियाग्निः]

यथाऽहं तेन नाम्ना प्रसिद्धचा **यत्** यादृशम् **अनाधृष्टम्** यत्समन्तान्न धृष्यते तत्तेजः **यज्ञियम्** यज्ञाङ्गसमूहनिष्पादकं **नाम** प्रसिद्धं **तेज आदधे** अभितो धरामि, **तथा तेन त्वा**=तं **त्वमेतेनैनमस्मानन्वेहि** अनुकूलं प्राप्नुहि **सर्वो जनश्चानुविदेत्** अनुकूलतया विजानीयात् ।

[यज्ञिय अग्नि]

जैसे मैं, उस (**नाम्ना**) प्रसिद्धि से (**यत्**) जिस (**अनाधृष्टम्**) किसी ओर से न दबाये जाने वाले (**यज्ञियम्**) यज्ञाङ्गों के साधक (**नाम**) उक्त प्रसिद्ध तेज को (**आदधे**) सब ओर से धारण करता हूँ वैसे (**त्वा**) उसे तू इसको हमारे पीछे (**अन्वेहि**) प्राप्त कर और सब लोग उसको (**अनुविदेत्**) जानें ।

[प्रसिद्धाग्निः]

यथाऽहं तेन तं **योऽग्निः द्वितीयस्याम्** अस्यां भिन्नायां **पृथिव्यां** विस्तृतायां भूमौ **अग्ने** प्रसिद्धोऽग्निः **अङ्गिरः** अङ्गारस्थः **आयुना** जीवनेन प्रापकत्वेन वा

[प्रसिद्ध अग्नि]

जैसे मैं, (**तेन**) उस अग्नि को जो अग्नि (**द्वितीयस्याम्**) इससे भिन्न (**पृथिव्याम्**) विशाल भूमि पर (**अग्ने**) प्रसिद्ध अग्नि है और जो

नाम्ना प्रसिद्धया **नाम** प्रसिद्धम् **असि**=वर्त्तते, **योऽग्निः नभः**=सुखं अवकाशम् **प्रयच्छति तेन त्वा**=तं संप्रयोजयामि, तथैतेन **त्वा**=एनं त्वमेहि प्राप्नुहि, **सर्वो जनश्चानुविदेत्** अनुकूलेन प्राप्नुयात् ।

(**अङ्गिरः**) अङ्गारस्थ, (**आयुना**) जीवन वा सुख प्रापक (**नाम्ना**) प्रसिद्धि से (**नाम**) प्रसिद्ध (**असि**) है । और (**यः**) जो अग्नि (**नभः**) सुख एवं अवकाश प्रदान करती है अतः (**त्वा**) उसे प्रयोग में लाता हूँ, वैसे इसलिए (**त्वा**) इस अग्नि को तू (**एहि**) प्राप्त कर और भी सब लोग (**अनुविदेत्**) अनुकूलता से प्राप्त करें ।

यथाऽहं तेन यत्=येन **अनाधृष्टं** प्रौढ़ं **यज्ञियं** शिल्पविद्या यज्ञ सम्बन्धि **नाम** प्रसिद्धं **तेजोऽस्मै त्वा** तम् **आददे** अभितः स्वीकरोमि **तथात्वमेतेन नाम्ना** प्रसिद्धया **त्वमेहि** प्राप्नुहि, **सर्वो जनश्चानुविदेत्** प्राप्नुयात् ।

जैसे मैं जो (**अनाधृष्टम्**) बड़ा (**यज्ञियम्**) यज्ञ विद्या सम्बन्धी (**नाम**) प्रसिद्ध तेज है (**त्वा**) उसे (**आददे**) सब ओर से स्वीकार करता हूँ, वैसे तू इसी (**नाम्ना**) प्रसिद्धि से (**एहि**) उसे प्राप्त कर और सब लोग उसे (**अनुविदेत्**) प्राप्त करें ।

[सूर्याग्निः]

यथाऽहं तेन योऽग्निः सूर्यस्थः **आयुना** जीवनेन प्रापकत्वेन वा **नाम्ना** प्रसिद्धया **तृतीयस्यां** तृतीय-कक्षायां वर्तमानायां **पृथिव्यां** भूमौ **अग्नेः** सूर्यरूपः **अङ्गिरः** अञ्चिता **सूर्यरूपेण नाम** प्रसिद्धम् **असि**=वर्तते, **यः** अग्निः **नभोऽवकाशं** द्योतयति **त्वा**=तं जानामि, **तथैनमेतस्मै त्वमेहि** प्राप्नुहि **सर्वो जनोऽपि विदेत्** प्राप्नुयात् ॥ ५ । ९ ॥

[सूर्य अग्निः]

जैसे मैं जो (**अग्निः**) सूर्य में स्थित अग्नि है, वह (**आयुना**) जीवन वा सुख-प्रापक (**नाम्ना**) नाम से (**तृतीयस्याम**) तृतीय कक्षा में विद्यमान (**पृथिव्याम्**) भूमि पर (**अग्ने**) सूर्य रूप (**अङ्गिरः**) गमनशील सूर्य रूप से (**नाम**) प्रसिद्ध (**असि**) है और (**यः**) जो अग्नि (**नभः**) आकाश को चमकाती है (**त्वा**) उसे जानता हूँ, वैसे इसको इसीलिए तू (**एहि**) प्राप्त कर और सब लोग भी (**विदेत्**) प्राप्त करें ॥ ५ । ९ ॥

[यो ··· अग्निः···अस्यां पृथिव्यां नाम=प्रसिद्धोऽस्ति, योऽग्निर्द्वितीयस्यां पृथिव्यां···असि=वर्तते, योऽग्निः ··· तृतीयस्यां पृथिव्यां···सूर्यरूपेण नामासि=वर्तते···त्वां=तं जानामि, तथैनमेतस्मै त्वमेहि, सर्वोजनोऽपि विदेत्]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोमालङ्कारः ॥ यः प्रसिद्धसूर्यविद्युद्रूपेण त्रिविधोऽग्निः सर्वेषु लोकेषु बाह्याभ्यन्तरतो वर्तते तं विदित्वा विज्ञाप्य च सर्वैर्मनुष्यैः सर्वकार्यसिद्धिः सम्पादनीया ॥ ५ । ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है । ॥ जो प्रसिद्ध, सूर्य और विद्युत् रूप में तीन प्रकार का अग्नि सब लोकों में बाहर और अन्दर विद्यमान है, उसे जान कर तथा जनाकर सब मनुष्य सब कार्यों की सिद्धि करें ॥ ५ । ९ ॥

भाष्यसार—१. **अग्नि आदि से यज्ञानुष्ठान किस लिये**—(**क**) अग्नि अर्थात् विद्युत् सब वस्तुओं का आधार है, सब भोगों और पदार्थों का प्रापक है, इसका विधिपूर्वक सेवन जल और प्रकाश प्रदान करता है, यह सब भय से रक्षा करती है, ऐश्वर्य प्रदान करके रक्षा करती है । अतः विद्युत्-विद्या के पठन-पाठन रूप यज्ञ का अनुष्ठान अवश्य करते रहें ।

(**ख**) अग्नि अर्थात् जाठर-अग्नि शरीर के अङ्गों का रस है, अङ्गों में रस पहुँचाता है, रसों का परिपाक करता है, आयु और सुखों का प्रापक है । दिव्य गुणों और दिव्य भोगों की प्राप्ति का साधन है । अतः इस जाठर-अग्नि विद्या का शिक्षण रूप यज्ञ का अनुष्ठान अवश्य करते रहें ।

(ग) अग्नि अर्थात् यज्ञिय अग्नि अत्यन्त तेजस्वी है। इसके तेज को कोई दबा नहीं सकता। यह दुर्गन्ध को दूर करने वाला और सुगन्धि रूप तेज को फैलाने वाला है। इस अनाधृष्य यज्ञिय तेजःस्वरूप अग्नि का यज्ञ वेदि में आधान करें। सब मनुष्य यज्ञ विद्या को सीखें।

(घ) अग्नि अर्थात् भौतिक स्थूल सर्वप्रसिद्ध अग्नि अङ्गारों में स्थित है। जीवन तथा अन्य लौकिक सुखों का साधक है, प्रापक है। इसका विधिपूर्वक प्रयोग करें। इस स्थूल प्रसिद्ध अग्नि के प्रयोग की शिल्प विद्या को भी सीखें।

(ङ) अग्नि अर्थात् सूर्य आयु का हेतु है। आयु का परिमाण यही है। स्वयं गतिशील तथा सब जगत् को गति देने वाला है। सम्पूर्ण आकाश को प्रकाशित करता है। सब मनुष्य सूर्य-विद्या को सीखें।

इस मन्त्र में प्रतिपादित अग्नि की विद्या को सीखना यज्ञानुष्ठान है। इस यज्ञानुष्ठान से मनुष्य सब कार्यों की सिद्धि करें।

२. **तीन प्रकार की अग्नि**—इस पृथिवी पर स्थूल रूप प्रसिद्ध अग्नि है, अन्तरिक्ष में विद्युत् रूप अग्नि है, और द्युलोक में सूर्य रूप अग्नि है। मन्त्र में प्रतिपादित जाठराग्नि का विद्युत् रूप अग्नि में तथा यज्ञिय अग्नि का स्थूल प्रसिद्ध अग्नि में अन्तर्भाव है।

३. **अलङ्कार**—मन्त्र में उपमा वाचक शब्द लुप्त है इस लिये वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि विद्वानों के समान अन्य जन भी अग्नि-विद्या को सीखें ॥ ५। ९॥

गोतमः। **वाक्=वाणी**॥ ब्राह्म्युष्णिक्। ऋषभः॥

अथ सर्वासां विद्यानां मुख्यसाधिकाया वाचो गुणा उपदिश्यन्ते॥

अब सब विद्याओं की मुख्य साधिका वाणी के गुणों का उपदेश किया जाता है॥

सिꣳह्यसि सपत्नसाही देवेभ्यः कल्पस्व सिꣳह्यसि सपत्नसाही देवेभ्यः शुन्धस्व सिꣳह्यसि सपत्नसाही देवेभ्यः शुम्भस्व॥ १०॥

पदार्थः—(**सिꣳही**) हिनस्ति दोषान्यया यद्वा सिञ्चत्युच्चारयति यया वाचा सा, **हिंसेः सिंह इति हयवरडिति व्याख्याने महाभाष्यकारोक्तिः। सिचेः संज्ञायां हनुमौ कश्च॥ उ० ५। ६२॥ अनेन कप्रत्ययो हकारादेशो नुमागमश्च। अत्र सर्वत्र गौराद्याकृतिगणान्तर्गतत्वान्ङीष्** (**असि**) असि। अत्र सर्वत्र व्यत्ययः (**सपत्नसाही**) यया सपत्नान्=शत्रून् सहन्ते सा (**देवेभ्यः**) दिव्यगुणेभ्यो विद्यां चिकीर्षुभ्यः शूरवीरेभ्यः (**कल्पस्व**) अध्यापनोपदेशाभ्यां समर्थय (**सिꣳही**) अविद्याविनाशिका (**असि**) अस्ति (**सपत्नसाही**) यया सपत्नान्=दोषान् सहन्ते=मृष्यन्ति दूरी कुर्वन्ति सा (**देवेभ्यः**) धार्म्मिकेभ्यः (**शुन्धस्व**) शोधय (**सिꣳही**) दुष्टशीलविनाशिनी (**असि**) अस्ति (**सपत्नसाही**) यया सपत्नान्=दुष्टानि शीलानि सहन्ते सा (**देवेभ्यः**) सुशीलेभ्यो विद्वद्भ्यः (**शुम्भस्व**) शोभायुक्ताम् कुरु॥ **अयं मंत्रः शत० ३। ५। १। ३३ व्याख्यातः॥ १०॥**

प्रमाणार्थ—(**सिंही**) महाभाष्यकार ने 'हयवरट्' [**अ० प्रत्याहार**] सूत्र पर " 'हिंस्' धातु से सिंह शब्द बनता है" यह कहा है। 'सिचेः संज्ञायां हनुमौ कश्च' (**उणा० ५। ६२**) इस सूत्र से 'सिच्' धातु से 'क' प्रत्यय, हकार आदेश और नुम् का आगम करने पर 'सिंह' शब्द बनता है। यहां सर्वत्र गौरादि-आकृति-गण के अन्तर्गत इसका पाठ मान कर 'ङीष्' होकर 'सिंही' शब्द बना है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३। ५। १। ३३) में की गई है॥ ५। १०॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वंस्त्वं या सपत्नसाही यया सपत्नान्=शत्रून् सहन्ते सा **सिंही** हिनस्ति दोषान् यया, यद्वा सिञ्चत्युच्चारयति यया वाचा सा **वाग् [असि] अस्ति तां देवेभ्यः** दिव्य गुणेभ्यः विद्यां चिकीर्षुभ्यः शूरवीरभ्यः **कल्पस्व** अध्यापनोपदेशाभ्यां समर्थय।

या सपत्नसाही यया सपत्नान्=दोषान् सहन्ते=मृष्यन्ति दूरीकुर्वन्ति सा, **सिंही** अविद्याविनाशिका **वाग् [असि]=अस्ति, तां देवेभ्यः** धार्मिकेभ्यः **शुन्धस्व** शोधय।

या सपत्नसाही यया सपत्नान्=दुष्टानि शीलानि सहन्ते सा, **सिंही** दुष्टशीलविनाशिनी **वाग् [असि]=अस्ति तां देवेभ्यः** सुशीलेभ्यो विद्वाद्भ्यः **शुम्भस्व** शोभायुक्तां कुरु ॥ ५। १० ॥

भाषार्थ—हे विद्वन्! तू जो (**सपत्नसाही**) शत्रुओं का निवारण करने वाली (**सिंही**) दोषों का हनन करने वाली वा उच्चारण का साधन (**असि**) है उसको (**देवेभ्यः**) दिव्य गुणों वाले विद्याभिलाषी शूरवीरों के लिये (**कल्पस्व**) अध्यापन और उपदेश के लिये बलवान् बना। और—

जो (**सपत्न साही**) दोषों को दूर हटाने वाली (**सिंही**) अविद्या का नाश करने वाली वाणी (**असि**) है उसे (**देवेभ्यः**) धार्मिक लोगों के लिये (**शुन्धस्व**) शुद्ध कर। और—

जो (**सपत्नसाही**) दुष्ट-स्वभावों का मर्षण करने वाली (**सिंही**) दुष्ट स्वभाव नाशक वाणी (**असि**) है उसे (**देवेभ्यः**) सुशील विद्वानों के लिये (**शुम्भस्व**) सुशोभित कर ॥ ५। १० ॥

[हे विद्वंस्त्वं या सपत्नसाही सिंही वाग् [असि]=अस्ति तां देवेभ्यः कल्पस्व, शुन्धस्व, शुम्भस्व]

भावार्थः—त्रिविधा खलु वाग् भवति शिक्षाविद्यासंस्कृता, सत्यभाषणा, मधुरा चैषा मनुष्यैः सदा स्वकार्या ॥ ५। १० ॥

भावार्थ—वाणी तीन प्रकार की होती है, एक शिक्षा और विद्या से संस्कृत, दूसरी सत्यभाषण युक्त और तीसरी मधुर। इसे मनुष्य सदा स्वीकार करें ॥ ५। १० ॥

भाष्यसार—**वाणी के गुण**—सब विद्याओं की मुख्य साधक वाणी है। यह वाणी शत्रुओं का निवारण करने वाली, दोषों का हनन करने वाली, शब्द उच्चरण का साधन है। विद्वान् इसे देवों के अध्यापन और उपदेश कर्म के लिये समर्थ बनाता है। जिससे यह वाणी शिक्षा और विद्या से संस्कृत हो जाती है।

यह वाणी सब दोषों को दूर करने वाली, अविद्या का नाश करने वाली है। विद्वान् धार्मिक जनों के लिए इस वाणी को शुद्ध करता है। जिससे यह वाणी सत्यभाषण युक्त हो जाती है।

यह वाणी दुष्ट स्वभावों को दूर करने वाली एवं क्रोध आदि दुष्ट शीलों का विनाश करने वाली है। विद्वान् पुरुष सुशीलता आदि गुणों से भूषित देवों के लिये मधुर भाषण आदि के उपदेश से शोभायुक्त करता है। जिससे यह वाणी मधुर हो जाती है।

सब मनुष्य मन्त्र में प्रति पादित वाणी के गुणों को धारण करें ॥ ५। १० ॥

गोतमः। **वाक्**=**वाणी विद्वांश्च**। निचृद्ब्राह्मी त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

पुनः स सा कीदृशीत्युपदिश्यते ॥

फिर वह विद्वान् और वाणी कैसे हैं, इस विषय का उपदेश किया है ॥

इन्द्रघोषस्त्वा वसुभिः पुरस्तात्पातु प्रचेतास्त्वा रुद्रैः पश्चात्पातु मनोजवास्त्वा पितृभिर्दक्षिणतः पातु विश्वकर्मा त्वादित्यैरुत्तरतः पात्विदमहं तप्तं वार्बहिर्धा यज्ञान्निः सृजामि ॥ ११ ॥

पदार्थः—(**इन्द्रघोषः**) इन्द्रस्य=परमेश्वरस्य, वेदाख्याया विद्युतो वा घोषो=विविधशब्दार्थसंबन्धो यस्य यस्या वा, स सा वा वाक् । **घोष इति वाङ्नामसु पठितम् ॥ निघं० १ । ११ ॥** (**त्वा**) त्वाम् तां वाचं वा (**वसुभिः**) अग्न्यादिभिः कृतचतुर्विंशतिवर्षब्रह्मचर्य्यैर्वा सह वर्त्तमाना (**पुरस्तात्**) पूर्वस्मात् (**पातु**) रक्षतु (**प्रचेताः**) या प्रकृष्टविज्ञाना, यया प्रकृष्टतया चेतन्ति=संजानन्ति सा (**त्वा**) त्वाम् तां वा (**रुद्रैः**) या प्राणैः कृतचतुश्चत्वारिंशद्वर्षब्रह्मचर्यैः सह वा वर्त्तते, स सा वा (**पश्चात्**) पश्चिमदेशात् (**पातु**) पालयतु (**मनोजवाः**) मनोवज्जवो=वेगो यस्य यस्याः स सा वा (**त्वा**) त्वां तां वा (**पितृभिः**) ज्ञानिभिर्ऋतुभिर्वा । **ते वा एत ऋतवः ॥ शत० २ । १ । ३ । २ ॥ अनेन पितृशब्दाहतवोऽपि गृह्यन्ते । पितर इति पदनामसु पठितम् ॥ निघं० ५ । ५ ॥ अनेन ज्ञानवन्तो मनुष्या गृह्यन्ते** (**दक्षिणतः**) दक्षिणदेशात् (**पातु**) रक्षतु (**विश्वकर्मा**) विश्वनि=सर्वाणि कर्माणि यस्या यस्य वा सा वाक्, स विद्वान् वा (**त्वा**) त्वां तां वा (**आदित्यैः**) संवत्सरस्य मासैः कृताष्टाचत्वारिंशद्वर्षब्रह्मचर्य्यैः सह वा वर्त्तमाना (**उत्तरतः**) उत्तरस्माद्देशात् (**पातु**) (**इदम्**) अन्तःस्थमुदकम् ॥ **इदमित्युदकनामसु पठितम् ॥ निघं० १ । १२ ॥** (**अहम्**) (**तप्तं**) धर्मेणाध्ययनाध्यापनश्रमेण वा संतप्तम् (**वाः**) बाह्यमुदकम् । **वा इत्युदकनामसु पठितम् ॥ निघं० १ । १२ ॥** (**बहिर्धा**) या बहिर्बाह्ये देशे धरति शब्दान् सा (**यज्ञात्**) अध्ययनाध्यापनाद्धोमलक्षणाद्वा (**निः**) नितराम् (**सृजामि**) संपद्ये प्रक्षिपामि वा ॥ **अयं मंत्रः शत० ३ । ५ । २ । ४-८ व्याख्यातः ॥ ११ ॥**

प्रमाणार्थ—(**इन्द्रघोषः**) 'घोष' शब्द निघं० (१ । ११) में वाणी-नामों में पढ़ा है। (**पितृभिः**) शत० (२ । १ । ३ । २) के अनुसार 'पितृ' शब्द का अर्थ 'ऋतु' है। इस प्रमाण से पितृ-शब्द से ऋतुओं का ग्रहण होता है। 'पितृ' शब्द निघं० (५ । ५) में पद-नामों में पढ़ा है। इससे इसका अर्थ 'ज्ञानवान् मनुष्य' गृहीत होता है। (**इदम्**) यह शब्द निघं० (१ । १२) में जल-नामों में पढ़ा है। (**वाः**) यह शब्द निघं० (१ । १२) में जल-नामों में पढ़ा है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ५ । २ । ४-८) में की गई है ॥ ५ । ११ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्य** ! **यथा प्रचेताः** याः प्रकृष्ट विज्ञानः, येन प्रकृष्टतया चेतन्ति=संजानन्ति सः **इन्द्रघोषः** इन्द्रस्य=परमेश्वरस्य वेदाख्याया विद्युतो वा घोषो=विविधशब्दार्थसम्बन्धो यस्य सः **विश्वकर्मा** विश्वानि=सर्वाणि कर्माणि यस्य सः विद्वान् **अहं, यज्ञात्** अध्ययनाध्यापनाद् होमलक्षणाद् वा **इदम्=अन्तःस्थमुदकंतप्तं** धर्मेणाध्ययनाध्यापन श्रमेण वा सन्तप्तं, **बहिर्धा वर्तमानं शीतलं वाः=उदकं** बाह्यमुदकं **च निःसृजामि** नितरां सम्पद्ये, प्रक्षिपामि वा **तथा**—

या वसुभिः अग्न्यादिभिः कृतचतुर्विंशतिवर्षब्रह्मचर्यैर्वा सह वर्तमाना **इन्द्रघोषः** इन्द्रस्य=परमेश्वरस्य वेदवाण्या विद्युतो वा घोषो=विविध शब्दार्थसम्बन्धो यस्याः सा वाग् **वागस्ति** [**त्वा**]=**तां पुरात्** पूस्तर्वस्माद् **रक्षामि तथा भवानपि पातु** रक्षतु।

भाषार्थ—हे मनुष्य ! जैसे (**प्रचेताः**) उत्तम विज्ञान वाला एवं उत्तम रीति से सबको ज्ञान देने वाला (**इन्द्रघोषः**) परमेश्वर की वेदवाणी के विविध शब्दार्थ सम्बन्ध तथा विद्युत्-विद्या का ज्ञान (**विश्वकर्मा**) सब कर्मों में कुशल मैं विद्वान् (**यज्ञात्**) अध्ययन-अध्यापन रूप यज्ञ से तथा होम से (**इदम्**) इस आन्तरिक जल को जो (**तप्तम्**) धर्म और अध्ययन-अध्यापन के श्रम से तपा हुआ एवं जो (**वाः**) बाह्य शीतल जल है उसे (**निःसृजामि**) सर्वथा सिद्ध करता हूँ। और—

जो (**वसुभिः**) अग्नि आदि तथा २४ वर्ष ब्रह्मचर्य पालन करने वाले वसु ब्रह्मचारियों के साथ वर्तमान (**इन्द्रघोषः**) परमेश्वर की वेदवाणी के विविध शब्दार्थ सम्बन्ध वाली तथा विद्युत् सम्बन्धी जो वाणी है [**त्वा**] उसकी (**पुरस्तात्**) पूर्व में रक्षा करता हूँ, वैसे आप भी उसकी रक्षा करो। और—

या रुद्रैः प्राणैः कृत चतुश्चत्वारिंशद्वर्षब्रह्मचर्यैः सह वा सह **वर्तमाना, प्रचेताः** प्रकृष्टविज्ञाना, यया प्रकृष्टतया चेतन्ति=संजानन्ति सा **वागस्ति** [**त्वा**]=**तां पश्चात्** पश्चिमदेशात् **पालयामि तथा भवानपि पातु** पालयतु।

जो (**रुद्रैः**) प्राण तथा ४४ वर्ष ब्रह्मचर्य-पालन करने वाले रुद्र ब्रह्मचारियों के साथ वर्तमान (**प्रचेताः**) उत्तम विज्ञान वाली एवं प्रकृष्ट ज्ञान का साधन जो वाणी है [**त्वा**] उसकी (**पश्चात्**) पश्चिम में रक्षा करता हूँ वैसे आप भी (**पातु**) उसकी रक्षा करो। और—

या पितृभिः ज्ञानिभिर्ऋतुभिर्वा सह **वर्तमाना मनोजवा** मनोवज्जवो=वेगो यस्याः सा **वागस्ति** [**त्वा**] **तां दक्षिणतः** दक्षिणदेशाद् **अवामि, तथा भवानपि पातु** रक्षतु।

जो (**पितृभिः**) ज्ञानी पितर-जनों तथा ऋतुओं के साथ वर्तमान (**मनोजवाः**) मन के समान वेग वाली वाणी है [**त्वा**] उसकी (**दक्षिणतः**) दक्षिण में रक्षा करता हूँ वैसे आपकी (**पातु**) रक्षा करो। और—

या आदित्यैः संवत्सरस्य **मासैः**, कृताष्टाचत्वारिंशद्ब्रह्मचर्यैर्वा सह **वर्तमाना** [**विश्वकर्मा**] विश्वानि सर्वाणि कर्माणि यस्याः सा वाक् **वागस्ति** [**त्वा**] **तामुत्तरतः** उत्तरस्माद् देशाद् **रक्षामि, तथा भवानपि पातु** रक्षतु ॥ ५ । ११ ॥

जो (**आदित्यैः**) वर्ष के मास तथा ४८ वर्ष ब्रह्मचर्य-पालन करने वाले अदित्य ब्रह्मचारियों के साथ वर्तमान [**विश्वकर्मा**] सब कर्मों में व्याप्त वाणी है [**त्वा**] उसकी (**उत्तरतः**) उत्तर में रक्षा करता हूँ वैसे आप भी (**पातु**) उसकी रक्षा करो ॥ ५ । ११ ॥

[हे मनुष्य ! यथा ''' अहं यज्ञादिदमन्तःस्थमुदकं ''' निःसृजामि, तथा या वसुभिः, रुद्रैः, पितृभिः, आदित्यैः सह वर्तमाना वागस्ति [त्वा] तां ''' रक्षामि, तथा भवानपि पातु]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ मनुष्यैर्वसुरुद्रादित्यपितृभिः सेवितां यज्ञाधिकृतां वाचमुदकं च विद्यया सत्क्रियया सह सेवित्वा शुद्धं निर्मलं च सततं भावनीयम् ॥ ५ । ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ सब मनुष्य वसु, रुद्र, आदित्य और पितर जनों से सेवन की गई यज्ञ की अधिकारिणी वाणी को विद्या से एवं जल को सत्कार से सेवन करके शुद्ध और निर्मल सदा रहें ॥ ५ । ११ ॥

भाष्यसार—१. **विद्वान्**—उत्तम विज्ञान वाला तथा उत्तम रीति से ज्ञान का दाता, परमेश्वर की वेदवाणी के विविध शब्दार्थसम्बन्ध का ज्ञाता एवं विद्युत्-विद्या का वेत्ता, सब कर्मों में कुशल पुरुष विद्वान् कहलाता है। जो अध्ययन-अध्यापन रूप यज्ञ से एवं धर्म तथा अध्ययन-अध्यापन के श्रम से अन्तःकरण के रस को शुद्ध करता है। होम के द्वारा बाह्य शीतल जल को भी सिद्ध करता है।

२. **वाणी कैसी है**—उत्तम विज्ञान वाली, ज्ञान प्राप्ति की उत्तम साधन, परमेश्वर की वेदवाणी के विविध शब्दार्थसम्बन्ध को व्यक्त करने वाली एवं विद्युत्-विद्या का घोष (**उपदेश**) करने वाली, सब कर्मों में व्याप्त है। अग्नि आदि से सम्बन्धित तथा २४ वर्ष ब्रह्मचर्य-पालन करने वाले वसु ब्रह्मचारियों की इन्द्रघोष नामक वाणी की, प्राणों से सम्बन्धित तथा ४४ वर्ष ब्रह्मचर्य पालन करने वाले रुद्रब्रह्मचारियों की 'प्रचेता' नामक वाणी को, ऋतुओं से सम्बिन्धत तथा ज्ञानी पितर जनों की 'मनोजवा' नामक वाणी की, संवत्सर से सम्बन्धित तथा ४८ वर्ष ब्रह्मचर्य पालन करने वाले आदित्य ब्रह्मचारियों की 'विश्वकर्मा' नामक वाणी की सब ओर से विद्वानों के समान सब मनुष्य रक्षा करें।

३. **अलङ्कार**—मन्त्र में उपमावाचक शब्द लुप्त है इसलिये वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है।

उपमा यह है कि विद्वानों के समान सब मनुष्य होम से जल को सिद्ध करें। तथा मन्त्रोक्त वाणी की रक्षा करें ॥ ५ । ११ ॥

गोतमः । वाक्=वाणी ॥ भुरिग्ब्राह्मी पंक्तिः । पंचमः ॥

पुनः सा कीदृशीत्युपदिश्यते ॥

वह वाणी कैसी है, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

सिꣳह्यसि स्वाहा सिꣳह्यस्यादित्यवनिः स्वाहा सिꣳह्यसि ब्रह्मवनिः क्षत्रवनिः स्वाहा सिꣳह्यसि सुप्रजावनी रायस्पोषवनिः स्वाहा सिꣳह्यस्यावह देवान्यजमानाय स्वाहा भूतेभ्यस्त्वा ॥ १२ ॥

पदार्थः—(**सिंही**) अविद्याहन्त्री (**असि**) अस्ति । अत्र सर्वत्र व्यत्ययः (**स्वाहा**) वाक (**सिंही**) क्रूरत्वादिदोषनाशिका (**असि**) अस्ति (**आदित्यवनिः**) या आदित्यान्मासान्वनति=संभजति सा (**स्वाहा**) ज्योतिःशास्त्रसंस्कारयुक्ता वाणी (**सिंही**) बलेन जाड्यत्वविनाशिनी (**असि**) अस्ति (**ब्रह्मवनिः**) यया ब्रह्मविदो मनुष्या ब्रह्म=परमात्मानं वेदं वा वनन्ति=संभजन्ति सा (**क्षत्रवनिः**) यया क्षत्रं=राज्यं धनुर्विद्यां शूरवीरान्पुरुषान्वा वनन्ति=संभजन्ति सा (**स्वाहा**) अध्ययनाध्यापनराजव्यवहारकुशला वाक् (**सिंही**) चोरदस्य्वन्यायप्रलयकारिणी (**असि**) अस्ति (**सुप्रजावनिः**) यया शोभनाः प्रजा वनति=संभजति सा (**रायस्पोषवनिः**) यया रायो=विद्याधनसमूहस्य पोषं=पुष्टिं वनति=संभजति सा (**स्वाहा**) व्यवहारेण धनप्रापिका (**सिंही**) सर्वदुःखप्रणाशिका (**असि**) अस्ति (**आ**) समन्तात् (**वह**) वहति=प्रापयति (**देवान्**) विदुषो=दिव्यगुणानृतून्भोगान्वा (**यजमानाय**) यजति=विदुषः पूजयति सद्गुणान् संगच्छते ददाति वा तस्मै (**स्वाहा**) दिव्यविद्यासंपन्ना (**भूतेभ्यः**) मनुष्यादिप्राणिभ्यः ॥ अयं मंत्रः शत० ३ । ५ । २ । ११-१३ व्याख्यातः ॥ १२ ॥

प्रमाणार्थ—(**असि**) इस मन्त्र में 'असि' पद पर सर्वत्र व्यत्यय है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ५ । २ । ११-१३) में की गई है ॥ ५ । १२ ॥

सपदार्थान्वयः—**अहं याऽऽदित्यवनिः** या आदित्यान्मासान्वनति=संभजति सा, **सिंही** क्रूरत्वादिदोषनाशिका **स्वाहा** ज्योतिः शास्त्रसंस्कारयुक्ता वाणी **असि=अस्ति**,

या ब्रह्मवनिः यया ब्रह्मविदो मनुष्याः ब्रह्म=परमात्मानं वेदं वा वनन्ति=संभजन्ति सा, **सिंही** बलेन जाड्यत्वविनाशिनी **स्वाहा** अध्ययनाध्यापन-राजव्यवहारकुशला वाक् **असि=अस्ति**,

या क्षत्रवनिः यया क्षत्रं=राज्यं धनुर्विद्यां शूरवीरान् पुरुषान्वा वनन्ति=संभजन्ति सा **सिंही** चोर दस्य्वन्यायप्रलयकारिणी **स्वाहा** अध्ययनाध्यापनराजव्यवहारकुशला वाक् **असि=अस्ति**,

भाषार्थ—मैं जो (**आदित्यवनिः**) आदित्य अर्थात् मासों का विभाग करने वाली (**सिंही**) क्रूरता आदि दोषनाशक (**स्वाहा**) ज्योतिः शास्त्र के संस्कारों से युक्त वाणी (**असि**) है, और—

जो (**ब्रह्मवनिः**) ब्रह्मवेत्ता मनुष्य जिस से ब्रह्म का वा वेद का सेवन करते हैं वह (**सिंही**) बल से मूर्खता को नष्ट करने वाली (**स्वाहा**) पठन-पाठन और राजव्यवहार में कुशल वाणी (**असि**) है, और—

जो (**क्षत्रवनिः**) राज्यं, धनुर्विद्या अथवा शूरवीर पुरुषों का सेवन करने वाली (**सिंही**) चोर, डाकू और अन्याय को मिटाने वाली (**स्वाहा**) पठन-पाठन और राजव्यवहार में चतुर वाणी (**असि**) है, और—

या रायस्पोषवनिः यया रायो=विद्याधन-समूहस्य पोषं=पुष्टिं वनति=सम्भजति सा **सिंही** सर्वदुःख-प्रणाशिका **स्वाहा** व्यवहारेण धनप्रापिका **असि**=अस्ति,

जो (**रायस्पोषवनिः**) विद्या आदि उत्तम धनों की पुष्टि का सेवन करने वाली (**सिंही**) सब दुःखों का नाश करने वाली (**स्वाहा**) व्यवहार से धन प्राप्त कराने वाली वाणी है, और—

या सुप्रजावनिः यया शोभनां प्रजा वनति=सम्भजति सा **सिंही** अविद्याहन्त्री **स्वाहा** दिव्य-विद्या सम्पन्ना, **या यजमानाय** यजति=विदुषः पूजयति, सद्गुणान् संगच्छते ददाति वा तस्मै **देवान्** विदुषो दिव्यगुणानृतून्भोगान्वा **आवह**=**प्रापय**तिस मन्ताद् वहति, **तां भूतेभ्यः** मनुष्यादिप्राणिभ्यः **यज्ञान्निः-सृजामि** ॥ ५ । १२ ॥

जो (**सुप्रजावनिः**) उत्तम प्रजा का सेवन करने वाली (**सिंही**) अविद्या का नाश करने वाली (**स्वाहा**) दिव्य विद्या से युक्त जो (**यजमानाय**) देवों के पूजक, उत्तम गुणों से संगति करने वाले, दानी यजमान के लिए (**देवान्**) विद्वान् के दिव्य-गुणों को, ऋतुओं वा भोगों को (**आवह**) चहुँ ओर से प्राप्त कराती है, उस वाणी को (**भूतेभ्यः**) मनुष्य आदि प्राणियों के लिए (**यज्ञात्**) अध्ययन-अध्यापन आदि से (**निः-सृजामि**) सिद्ध करता हूँ ॥ ५ । १२ ॥

[अनुवृत्तिमाह—]

भावार्थः—अत्र पूर्वस्यान्मन्त्रात् (**यज्ञात्**) (**निः**) (**सृजामि**) इति पदत्रयमनुवर्त्तते ।

भावार्थ—यहां पूर्व मन्त्र से (**यज्ञात्**) (**निः**) (**सृजामि**) इन तीन पदों की अनुवृत्ति है ।

[**अहं याऽऽदित्यवनिः, ब्रह्मवनिः, क्षत्रवनिः, रायस्पोषवनिः, सुप्रजावनिः सिंही स्वाहा, या यजमानाय देवा-नावह=प्रापयति तां भूतेभ्यो यज्ञान्निःसृजामि**]

मनुष्यैरध्ययनादिनेदृग्लक्षणां वेदादिवाणीं प्राप्यैतां सर्वेभ्यो मनुष्येभ्योऽध्याप्यानन्दयितव्याः ॥ ५ । १२ ॥

सब मनुष्य अध्ययन आदि से मन्त्रोक्त लक्षणों से युक्त वेद आदि की वाणी को प्राप्त करके और इसे सब मनुष्यों को पढ़ाकर सबको आनन्दित करें ॥ ५ । १२ ॥

भाष्यसार—**वाणी कैसी है**—ज्योतिःशास्त्र के संस्कारों से युक्त वाणी क्रूरता आदि दोषों को नष्ट करने वाली तथा मासों का विभाग करती है । अध्ययन-अध्यापन एवं राज-व्यवहार में कुशल वाणी बलपूर्वक जड़ता (**मूर्खता**) का विनाश करने वाली तथा परमात्मा और वेद को प्राप्त कराती है तथा चोर, दस्यु और अन्याय का प्रलय करती है, राज्य, धनुर्विद्या, और शूरवीर पुरुषों की रक्षा करती है । व्यवहार से धन को प्राप्त कराने वाली वाणी सब दुःखों की नाशक तथा विद्या और धन को परिपुष्ट करती है । दिव्य विद्या से सम्पन्न वाणी अविद्या का नाशक और प्रजा को श्रेष्ठ बनाती है । यजमान के लिये दिव्यगुणों, ऋतुओं और दिव्य-भोगों को प्राप्त कराती है । अध्ययन-अध्यापन रूप यज्ञ से सब मनुष्य इस वेदोक्त वाणी को प्राणियों के कल्याण के लिये सिद्ध करें तथा इसका नित्य उपदेश करें ॥ ५ । १२ ॥

गोतमः । **यज्ञः=स्पष्टम्** ॥ भुरिगार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनरयं यज्ञः कीदृश इत्युपदिश्यते ॥

फिर यह यज्ञ कैसा है, इस विषय का उपदेश किया है ॥

ध्रुवो॑ऽसि पृथि॒वीं दृ॑ꣳह ध्रुव॒क्षिद॑स्य॒न्तरि॑क्षं दृꣳहाच्युत॒क्षिद॑सि॒ दिवं॑ दृꣳहा॒ग्नेः पुरी॑षमसि ॥ १३ ॥

पदार्थः—(ध्रुवः) निश्चलः (असि) अस्ति । अत्र सर्वत्र व्यत्ययः (पृथिवीम्) भूमिं तत्स्थं पदार्थसमूहं वा (दृꣳह) वर्धय (ध्रुवक्षित्) यो ध्रुवाणि सुखानि शास्त्राणि वा क्षियति=निवासयति सः (असि) अस्ति (अन्तरिक्षम्) आकाशस्थं पदार्थसमूहम् (दृꣳह) वर्धय (अच्युतक्षित्) योऽच्युतान्नाशरहितान्पदार्थान् क्षियति=निवासयति सः (असि) अस्ति (दिवम्) विद्यादिप्रकाशम् (दृꣳह) वर्धय (अग्नेः) विद्युदादेः (पुरीषम्) पशूनां प्रपूर्तिकरं साधनम् । पुरीष्योऽसि पशव्योऽसि ॥ शत० ६ । ४ । २ । १ ॥ (असि) अस्ति ॥ अयं मंत्रः शत० ३ । ५ । २ । १४ व्याख्यातः ॥ १३ ॥

प्रमाणार्थ—(असि) अस्ति । इस मन्त्र में 'असि' पद पर सर्वत्र व्यत्यय है । (पुरीषम्) शत० (६ । ४ । २ । १) में 'पुरीष' शब्द का अर्थ पशु है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ५ । २ । १४) में की गई है ॥ ५ । १३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् ! **यो यज्ञो** ध्रुवः निश्चलः **असि=अस्ति, पृथिवीं** भूमिं, तत्स्थं पदार्थसमूहं वा वर्धय**ति तं त्वं दृंह** वर्धय ।

यो ध्रुवक्षित् यो ध्रुवाणि सुखानि शास्त्राणि वा क्षियति=निवासयति सः, **असि=अस्ति, अन्तरिक्षम्=आकाशस्थान् पदार्थान्** आकाशस्थं पदार्थसमूहं **पोषयति तं त्वं दृंह** वर्धय ।

योऽच्युतक्षित् योऽच्युतान्=नाश रहितान् पदार्थान् क्षियति=निवासयति सः, **असि=अस्ति, दिवं** विद्यादि प्रकाशं **प्रकाशयति, तं त्वं दृहं** वर्धय ।

यो ऽग्नेः विद्युदादेः **पुरीषं** पशूनां प्रपूर्तिकरं साधनम् **असि=अस्ति, तं त्वमनुतिष्ठ** ॥ ५ । १३ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् मनुष्य ! जो यज्ञ (**ध्रुवः**) निश्चल (**असि**) है, वह (**पृथिवीम्**) भूमि को एवं भूमिस्थ पदार्थों को बढ़ाता है, उसे तू (**दृंह**) बढ़ा और—

जो यज्ञ (**ध्रुवक्षित्**) ध्रुव अर्थात् सुखों वा शास्त्रों का निवास (**असि**) है वह (**अन्तरिक्षम्**) आकाश के पदार्थों को पुष्ट करता है उसे तू (**दृंह**) बढ़ा, और—

जो यज्ञ (**अच्युतक्षित्**) अविनाशी पदार्थों का निवास (**असि**) है वह (**दिवम्**) विद्या आदि के प्रकाश को प्रकाशित करता है, उसे तू (**दृहं**) बढ़ा । और—

जो यज्ञ (**अग्नेः**) विद्युदादि से (**पुरीषम्**) पशुओं के पालन-पोषण का साधन (**असि**) है, उसका तू अनुष्ठान कर ॥ ५ । १३ ॥

[हे विद्वन् ! यो यज्ञो ध्रुवोऽसि=अस्ति, यो ध्रुवक्षित्···अन्तरिक्षम्=आकाशस्थान् पदार्थान् पोषयति, यो···दिवं प्रकाशयति तं० त्वं दृंह]

भावार्थ—मनुष्यैर्विद्याक्रियासिद्धं, त्रैलोक्यस्थपदार्थपोषकं, विद्याक्रियामयं यज्ञमनुष्ठाय सुखयितव्यम् ॥ ५ । १३ ॥

भावार्थ—सब मनुष्य विद्या और क्रिया से सिद्ध होने वाले, तीनों लोकों के पदार्थों को पुष्ट करने वाले, विद्यामय और क्रियामय यज्ञ का अनुष्ठान करके सुखी रहें ॥ ५ । १३ ॥

भाष्यसार—**यज्ञ कैसा है**—यज्ञ ध्रुव अर्थात् स्थिर वस्तु है, पृथिवी और पृथिवी के पदार्थों को बढ़ाता है, सब सुखों और शास्त्रों का निवास स्थान है, आकाश अर्थात् तीनों लोकों के पदार्थों को पुष्ट करता है, यह अविनाशी पदार्थों का निवास है तथा विद्यादि के प्रकाश को प्रकाशित करता है, अग्नि से पशुओं का पालन-पोषण करने वाला है । इस यज्ञ का अनुष्ठान करके सब सुखी रहें ॥ ५ । १३ ॥

गोतमः । **सविता**=ईश्वरः ॥ स्वराडार्षी जगती । निषादः ॥

अथ योगीश्वरगुणा उपदिश्यन्ते ॥

अब योगी और ईश्वर के गुणों का उपदेश किया जाता है ॥

युञ्जते मनं ऽ उत युंञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विंपश्चितः ।
वि होत्रां दधे वयुनाविदेकऽइन्मही देवस्यं सवितुः परिंष्टुतिः स्वाहां ॥ १४ ॥

पदार्थः—(**युञ्जते**) समादधते (**मनः**) चित्तम् (**उत**) अपि (**युञ्जते**) स्थिराः कुर्वते (**धियः**) बुद्धीः कर्माणि वा (**विप्राः**) मेधाविनः । विप्र इति मेधाविनामसु पठितम् ॥ निघं० ३ । १५ ॥ (**विप्रस्य**) अनन्तप्रज्ञाकर्मणो जगदीश्वरस्य (**बृहतः**) व्यापकस्य वा (**विपश्चितः**) अनन्तविद्यस्य परमविदुषो वा (**वि**) विविधार्थे (**होत्राः**) ये जुह्वत्याददति वा ते (**दधे**) धरे=वृणोमि कथयामि वा (**वयुनावित्**) यो वयुनानि=प्रशस्तानि कर्माणि वेत्तिः सः । वयुनमिति प्रशस्यनामसु पठितम् ॥ निघं० ३ । ८ ॥ अत्रान्येषामपि दृश्यत इति दीर्घः (**एकः**) असहायः (**इत्**) एव (**मही**) महती (**देवस्य**) सर्वप्रकाशकस्य (**सवितुः**) सकलोत्पादकस्य (**परिष्टुतिः**) परितः=सर्वतः स्तूयते यया सा (**स्वाहा**) सत्यां वाचम् ॥ अयं मन्त्रः शत० ३ । ५ । ३ । ११-१२ व्याख्यातः ॥ १४ ॥

प्रमाणार्थ—(**विप्राः**) 'विप्र' शब्द निघं० (३ । १५) में मेधावी नामों में पढ़ा है (**वयुनावित्**) 'वयुन' शब्द निघं० (३ । ८) में प्रशस्य (**उत्तम**) नामों में पढ़ा है । 'अन्येषामपि दृश्यते' [अ० ६ । ३ । १३५] इस सूत्र से दीर्घ है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ५ । ३ । ११-१२) में की गई है ॥ ५ । १४॥

सपदार्थान्वयः—यथा विहोत्राः विविधं ये जुह्वत्याददति वा ते **विप्राः** मेधाविनः **सन्ति, ते या बृहतः** व्यापकस्य वा **विप्रस्य** अनन्तप्रज्ञाकर्मणो जगदीश्वरस्य **विपश्चितः** अनन्तविद्यस्य परमविदुषो वा **सवितुः** सकलोत्पादकस्य **देवस्य**=**यस्य महेश्वरस्य** सर्व प्रकाशकस्य **मही** महती [**परिष्टुतिः**] **परिष्टुतिस्वरूपा**=परितः=सर्वतः स्तूयते यया सा **स्वाहा** सत्या वाग् **अस्ति, तां विज्ञायैतस्मिन् इत्**=**एव मनः** चित्तं **युञ्जते** समादधते, **उत**=**अपि धियः** बुद्धी कर्माणि वा **युञ्जते** स्थिराः कुर्वते, **तथैवैतां विदित्वास्मिन् वयुनावित्** यो वयुनानि=प्रशस्तानि कर्माणि वेत्ति सः **एकः** असहायं **अहं मनः** चित्तं **युञ्जे धियं च** [**दधे**] धरे=वृणोमि कथयामि वा ॥ ५ । १४ ॥

भाषार्थ—जैसे (**विहोत्राः**) विविध हवन करने वाले (**विप्राः**) मेधावी लोग हैं, वे जो (**बृहतः**) व्यापक (**विप्रस्य**) अनन्त ज्ञान और कर्म वाले जगदीश्वर की तथा (**विपश्चितः**) अनन्त विद्या वाले परम विद्वान् की तथा (**सवितुः**) सबके उत्पादक (**देवस्य**) सबके प्रकाशक महेश्वर की जो (**मही**) महान् (**परिष्टुतिः**) स्तुति रूपा (**स्वाहा**) सत्यवाणी है उसे जानकर उसी परमेश्वर में (**इत्**) ही (**मनः**) चित्त को (**युञ्जते**) लगाते हैं [**समाधिस्थ करते हैं**] (**उत**) और (**धियः**) बुद्धियों और अपने कर्मों को (**युञ्जते**) स्थिर करते हैं, वैसे ही उस सत्यवाणी को जानकर इस परमेश्वर में (**वयुनाविद्**) प्रशंसनीय कर्मों को जानने वाला (**एकः**) अकेला मैं (**मनः**) चित्त को और बुद्धि को [**दधे**] समाधिस्थ करता हूँ उस वाणी को धारण करके उसका उपदेश करता हूँ ॥ ५ । १४॥

[यथा ··· विप्राः सन्ति ते या···देवस्य=यस्य महेश्वरस्य···स्वाहाऽस्ति तां विज्ञायैतस्मिन्निदेव मनो युञ्जते, उत=अपि धियोयुञ्जते, तथैवैतां विदित्वास्मिन्···अहं मनो युञ्जे, धियं च [दधे]]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा

परमेश्वर एव मनो धियश्च समाधाय, विदुषां संगेन विद्यां प्राप्यान्येभ्य एवमेवोपदेष्टव्यम् ।। ५ । १४ ।।

अलङ्कार है ।। परमेश्वर में ही मन और बुद्धि को समाहित करके, विद्वानों के संग से विद्या को प्राप्त करके, दूसरों के लिये इसी प्रकार उपदेश करें ।। ५ । १४ ।।

भाष्यसार—१. **योगी के गुण**—विविध होम करने वाला, मेधावी, महान्, प्रज्ञा और कर्म से सम्पन्न, परम विद्वान् होता है। वह परमेश्वर की महान् स्तुति रूप वेदवाणी को जानकर परमेश्वर में अपने चित्त को, बुद्धि और कर्म को स्थिर करता है। उत्तम कर्मों को समझने वाला व्यक्ति योगी का अनुकरण करके इसी प्रकार अपने चित्त, बुद्धि और कर्म वेद की सत्यवाणी में स्थिर करते हैं।

२. **ईश्वर के गुण**—सर्वव्यापक, अनन्त प्रज्ञा और अनन्त कर्म वाला, जगत् का स्वामी, परम विद्वान्, सकल जगत् का उत्पादक, सब का प्रकाशक है। जिसकी महान् स्तुति रूप सत्य वेदवाणी को योगी लोग जानकर परमेश्वर में ही अपने मन, बुद्धि और कर्मों को स्थिर करते हैं। उत्तम कर्मों को जानने वाले व्यक्ति भी अपने मन और बुद्धि को स्थिर करते हैं। उसका उपदेश करते हैं ।।

३. **अलङ्कार**—मन्त्र में उपमावाचक शब्द लुप्त है अतः वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि योगी जनों के समान अन्य भी अपने मन और बुद्धि को परमेश्वर में स्थिर करें ।।

मेधातिथिः । **विष्णुः**=ईश्वरः ।। भुरिगार्षी गायत्री । षड्जः ।।

पुनः स जगदीश्वरः कीदृश इत्युपदिश्यते ।।

फिर वह जगदीश्वर कैसा है, इस विषय का उपदेश किया है ।।

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । समूढमस्य पांसुरे स्वाहा ।। १५ ।।

पदार्थः—(**इदम्**) प्रत्यक्षाप्रत्यक्षं जगत् (**विष्णुः**) यो वेवेष्टि=व्याप्नोति चराचरं जगत्स जगदीश्वरः (**वि**) विविधार्थे (**चक्रमे**) क्रान्तवान्=निक्षिप्तवान् क्राम्यति क्रमिष्यति वा। **अत्र सामान्येऽर्थे** लिट् (**त्रेधा**) त्रिप्रकारम् (**नि**) नितराम् (**दधे**) हितवान् दधाति धास्यति वा (**पदम्**) पद्यते=गम्यते यत्तत्। अत्र घञर्थे कविधानमिति कः प्रत्ययः (**समूढम्**) सम्यगुह्यतेऽनुनीयते शब्द्यते यत्तत् (**अस्य**) त्रिविधस्य जगतः (**पांसुरे**) पांसवो=रेणवो रजांसि रमन्ते यस्मिन्नन्तरिक्षे तस्मिन् (**स्वाहा**) सुहुतं जुहोतीत्यर्थे। **इमं मन्त्रं यास्कमुनिरेवं व्याख्यातवान् —यदिदं किंच विक्रमते विष्णुस्त्रिधा निधत्ते पदं त्रेधाभावाय पृथिव्यामंतरिक्षे दिवीति शाकपूणिः। समारोहणे विष्णुपदे गयशिरसीत्यौर्णवाभः। समूढमस्य पांसुरे प्यायनेऽन्तरिक्षे पदं न दृश्यतेऽपि वोपमार्थे स्यात्समूढमस्य पांसुर इव पदं न दृश्यत इति पांसवः। पादैः सूयत इति वा, पन्नाः शेरत इति वा, पादैः सूयन्त इति वा, पन्नाः शेरत इति वा, पंसनीया भवन्तीति वा ।। निरु० १२। १६ ।। अयं मंत्र ३। ५। ३। १३ व्याख्यातः ।। १५ ।।**

प्रमाणार्थ—(**चक्रमे**) यहां सामान्य अर्थ में लिट् लकार है। (**पदम्**) यह शब्द 'घञर्थे कविधानम्' [**अ०** ३। ३। ५८] इस वार्तिक से 'पद्' धातु से 'क' प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है। इस मन्त्र की व्याख्या यास्कमुनि ने निरु० (१२। १६) में इस प्रकार की है—"यह मध्याह्नकालीन आदित्य, इस भूभाग पर जो कुछ यह है, उस सबमें विक्रम दर्शाता है, अर्थात् भूमि के प्रत्येक पदार्थ को पूर्णतया तपाता है। यह पृथिवी में, अन्तरिक्ष में और द्युलोक में एवं तीन प्रकार से प्रकाश-किरण को धारण

करता है। अर्थात् यह विष्णु आदित्य उपर्युक्त तीनों लोकों में पूर्णतया प्रकाशित होता है। इस आदित्य की एक प्रकाश-किरण अन्तरिक्ष में गुप्त है, अर्थात् वह दृष्टिगोचर नहीं होती। अथवा, जैसे पाँ मिट्टी वाले स्थान में पादचिह्न स्पष्टतया दृष्टिगोचर नहीं होता, उसी प्रकार अन्तरिक्ष में इसका प्रकाश पूर्णतया दृष्टिगोचर नहीं होता, द्युलोक तथा भूलोक पर अधिक स्पष्ट दीखता है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३।५।३।१३) में की गई है॥ ५। १५॥

सपदार्थान्वयः—**यो विष्णुः**=**जगदीश्वरः** यो वेवेष्टि=व्याप्नोति चराचरं जगत्स जगदीश्वरः **यत्किञ्चिदिदं**=**प्रत्यक्षा-प्रत्यक्षं जगद्वर्त्तते तत्सर्वं विचक्रमे**=**रचितवान्** विविधतया क्रान्तवान्=निक्षिप्तवान् क्राम्यति, क्रमिष्यति वा,

त्रेधा त्रिप्रकारं **निदधे**=**निदधाति** नितरां हितवान्, दधाति धास्यति वा, **अस्य त्रिविधस्य जगतः परमाण्वादिरूपं स्वाहा**=**सुहुतं** सुहुतं जुहोति **समूढम्**=**अदृश्यं** सम्यगुह्यते=अनुमीयते शब्द्यते यत्तत् **पदं** पद्यते=गम्यते यत्तत् पांसुरे=अन्तरिक्षे पांसवः=रेणवो रजांसि रमन्ते यस्मिन्नन्तरिक्षे तस्मिन् निहितवानस्ति, स सर्वैः सुसेवनीयः॥ ५। १५॥

भाषार्थ—जो (**विष्णुः**) चराचर जगत् में व्यापक विष्णु जगदीश्वर है उसने जो कुछ (**इदम्**) यह प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष जगत् है, उसको (**विचक्रमे**) विविध प्रकार का रचा है, रचता है और रचेगा। और—

(**त्रेधा**) प्रकाशवान् सूर्य आदि, अप्रकाशवान् पृथिवी आदि, अदृश्य परमाणु आदि इस तीन प्रकार के जगत् को (**निदधे**) सर्वथा धारण किया, करता है, और धारण करेगा। (**अस्य**) इस तीन प्रकार के जगत् में से परमाणु आदि रूप जगत् जो कि (**स्वाहा**) सुहुत (**समूढम्**) अदृश्य (**पदम्**) प्राप्त करने योग्य है उसे (**पांसुरे**) रेणुओं के रमण स्थान अन्तरिक्ष में स्थापित किया है, वह जगदीश्वर सबके लिये उपासनीय है॥ ५। १५॥

[यो विष्णुः=जगदीश्वरो यत्किञ्चिदिदं=प्रत्यक्षाप्रत्यक्षं जगद् वर्त्तते तत्सर्वं विचक्रमे=रचितवान्। त्रेधा निदधे=निदधाति=अस्य त्रिविधस्य जगतः परमाण्वादिरूपं···पदं पांसुरे=अन्तरिक्षे निहितवानस्ति]

भावार्थः—परमेश्वरेण यत्प्रथमं प्रकाशवत् सूर्यादि, द्वितीयमप्रकाशवत् पृथिव्यादि प्रसिद्धं जगद्रचितमस्ति, यच्च तृतीयं परमाण्वाद्यदृश्यं सर्वमेतत् कारणावयवै रचयित्वाऽन्तरिक्षे स्थापितं, तत्रौषध्यादि पृथिव्यामग्न्यादिकं सूर्ये परमाण्वादिकमाकाशे निहितं, सर्वमेतत् प्राणानां शिरसि स्थापितवानस्ति।

भावार्थ—परमेश्वर ने प्रथम प्रकाशवान् सूर्य आदि, दूसरा अप्रकाशवान् पृथिवी आदि प्रसिद्ध जगत् रचा है, और जो तीसरा परमाणु आदि अदृश्य जगत् है इस सबको कारण-अवयवों से रचकर अन्तरिक्ष में स्थापित किया है, उसमें औषधि आदि को पृथिवी पर, अग्नि आदि को सूर्य में और परमाणु आदि को आकाश में स्थापित किया है। और उस सबको प्राणों को शिर पर रखा है।

[प्रमाणमाह—]

"सा हैषा गयाँस्तत्रे, प्राणा वै गयास्तत्प्राणाँस्तत्रे, तद्यद् गयाँस्तत्रे तद् गायत्री नाम"॥ शत० १४। ८। १५। ६-७॥ अनेन गयशब्देन प्राणानां ग्रहणम्॥

इस जगत् का नाम गायत्री है। क्योंकि यह गयों में फैला हुआ है। गय का अर्थ प्राण है। जिससे प्राणों में फैला हुआ है इसलिये इसे गायत्री कहते हैं। शत० १४। १८। १५। ६-७॥

[समीक्षते]

अत्र महीधरः प्रबुक्कति त्रिविक्रमावतारं कृत्वे-त्यादि, तनशुद्धं सज्जनै र्बोध्यम् ॥ ५ । १५ ॥

यहाँ त्रिविक्रम अवतार की बात जो महीधर ने लिखी है वह सब बकवास है, उसे सब सज्जन अशुद्ध समझें ॥ ५ । १५ ॥

भा० पदार्थः—विचक्रमे=रचितमस्ति ।

अन्यत्र व्याख्यात—महर्षि ने इस मन्त्र की व्याख्या ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका (**ग्रन्थ प्रामाण्याप्रामाण्य विषय**) में इस प्रकार की है—"इसका अभिप्राय यह है कि भगवान् अपने पाद अर्थात् प्रकृति परमाणु आदि सामर्थ्य के अंशों से सब जगत् को तीन स्थानों में स्थापन करके धारण कर रहा है । अर्थात् भार सहित और प्रकाश रहित जगत् को पृथिवी में, परमाणु आदि सूक्ष्म द्रव्यों को अन्तरिक्ष में तथा प्रकाशमान सूर्य और ज्ञानेन्द्रिय आदि को प्रकाश में, इस रीति से तीन प्रकार के जगत् को ईश्वर ने रचा है । फिर उन्हीं तीन भेदों में एक मूढ़ अर्थात् ज्ञानरहित जो जड़ जगत् वह अन्तरिक्ष अर्थात् पोल के बीच में स्थित है सो यह केवल परमेश्वर ही की महिमा है कि जिसने ऐसे-ऐसे अद्भुत पदार्थ रच के सबको धारण कर रक्खा है ॥"

भाष्यसार—१. **विष्णु (ईश्वर) कैसा है**—विष्णु अर्थात् जगदीश्वर चराचर जगत् में व्याप्त है । जो यह प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष जगत् है सब उसी ने रचा है । प्रकाशवान् सूर्य आदि, प्रकाश रहित पृथिवी आदि, अदृश्य परमाणु आदि इस तीन प्रकार के जगत् को कारण रूप अवयवों से रचकर ईश्वर ने इसे आकाश में स्थापित किया है । इस तीन प्रकार के जगत् का परमाणु आदि रूप ग्रहण करने के अयोग्य है, अदृश्य है, अनुमान से जानने योग्य है । ईश्वर ने औषधि आदि को पृथिवी पर, अग्नि आदि को सूर्य में, परमाणु आदि को आकाश में स्थापित किया है । और इन सबको अपने प्राणों के आधार पर स्थापित किया है । शत० १४ । १८ । १५ । ६-७ के अनुसार इस जगत् का नाम गायत्री है । गायत्री को गायत्री इस लिये कहते हैं कि यह गय अर्थात् प्राणों में फैली हुई है । यह जगत् भी प्राणों के शिर पर स्थित है । अतः गायत्री है । जगत् का आधार विष्णु जगदीश्वर सबके लिये उपासनीय है ।

२. **समीक्षा**—इस मन्त्र की व्याख्या में महीधर लिखता है कि—"विष्णुः त्रिविक्रमावतारं कृत्वा इदं विश्वं विचक्रमे विभज्य क्रमते स्म । तदेवाह । त्रेधा पदं निदधे । भूमावेकं पदमन्तरिक्षे द्वितीयं दिवि तृतीयमिति क्रमादग्निवायुसूर्यरूपेणेत्यर्थः" अर्थात् विष्णु ने त्रिविक्रम अवतार धारण करके इस विश्व को विभाग करके लाँघ दिया । उसने एक चरण भूमि पर, दूसरा आकाश में और तीसरा द्युलोक में रखा, जो अग्नि, वायु और सूर्य रूप है ।

महर्षि दयानन्द ने महीधर के इस लेख को बकवास लिखा है । और सज्जनों को चेतावनी दी है कि इस प्रकार की बातों को अशुद्ध समझ कर इन पर कभी विश्वास न करें क्योंकि परमेश्वर कभी भी अवतार धारण नहीं करता क्योंकि वह निराकार और सर्वशक्तिमान् है ।

●

वसिष्ठः । **विष्णुः=ईश्वरः सूर्यश्च** ॥ स्वराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनरीश्वरसूर्यगुणा उपदिश्यन्ते ॥

फिर ईश्वर और सूर्य के गुणों का उपदेश किया है ॥

इरा॑वती धेनु॒मती॒ हि भू॒तꣳ सू॑यव॒सिनी॒ मन॑वे दश॒स्या ।
व्य॑स्कभ्ना॒ रोद॑सी विष्णवे॒ते दा॒धर्थ॑ पृथि॒वीम॒भितो॑ म॒यूखैः॒ स्वाहा॑ ॥ १६ ॥

पदार्थः—(**इरावती**) इराः=प्रशस्तान्यन्नानि विद्यन्ते यस्यां सा । **अत्र प्रशंसार्थे मतुप् । इरेत्यन्नामसु पठितम् ॥ निघं० २ । ७ ॥** (**धेनुमती**) प्रशस्ता बह्वो धेनवो=वाचः पशवो वा सन्त्यस्यां सा । **अत्र प्रशंसार्थे भूम्यर्थे च मतुप्** (**हि**) किल (**भूतम्**) उत्पन्नं सर्वं जगत् (**सूयवसिनी**) बहूनि शोभनानि मिश्रितान्यमिश्रितानि वस्तूनि विद्यन्ते यस्यां सा (**मनवे**) मन्यते येन ज्ञानेन तस्मै बोधाय (**दशस्या**) दशा इवाचरति तस्मै । **अत्र बाहुलकादसुन् स च कित् तत आचारे क्यच्च** (**वि**) विशेषार्थे (**अस्कभ्नाः**) प्रतिबध्नासि प्रतिबध्नाति वा (**रोदसी**) प्रकाशपृथिवीलोकसमूहौ (**विष्णो**) सर्वव्यापिन् जगदीश्वर ! व्यापनशीलः प्राणो वा (**एते**) विद्वांसः (**दाधर्थ**) धरसि धरति वा । **दाधर्त्ति० ॥ अ० ७ । ४ । ६५ ॥ अनेनायं यङ्लुगन्तो निपातितः** (**पृथिवीम्**) भूमिमन्तरिक्षं वा । **पृथिवीत्यन्तरिक्षनामसु पठितम् ॥ निघं० १ । ३ ॥** (**अभितः**) सर्वतः (**मयूखैः**) ज्ञानप्रकाशादिगुणैः रश्मिभिर्वा । **मयूखा इति रश्मिनामसु पठितम् ॥ निघं० १ । ५ ॥** (**स्वाहा**) वेदवाणीं चक्षुरिन्द्रियं वा ॥ अयं मंत्रः शत० ३ । ५ । ३ । १४ व्याख्यातः ॥ १६ ॥

प्रमाणार्थ—(**इरावती**) यहां प्रशंसा-अर्थ में 'मतुप्' प्रत्यय है । 'इरा' शब्द निघं० (२ । ७) में अन्न नामों में पढ़ा है । (**धेनुमती**) यहां प्रशंसा और आधिक्य अर्थ में 'मतुप्' प्रत्यय है । (**दशस्या**) यहां बहुल करके 'असुन्' प्रत्यय और वह कित् है, पश्चात् आचार-अर्थ में 'क्यच्' प्रत्यय है । (**दाधर्थ**) यह पद "दाधर्त्ति०" (**अ० ७ । ४ । ६५**) इस सूत्र से यङ्लुगन्त निपातित है। (**पृथिवी**) यह शब्द निघं० (१ । ३) में अन्तरिक्ष-नामों में पढ़ा है। (**मयूखैः**) 'मयूख' शब्द निघं० (१ । ५) में रश्मि-नामों में पढ़ा है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ५ । ३ । १४) में की गई है ॥ ५ । १६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **विष्णो**=जगदीश्वर ! सर्वव्यापिन् जगदीश्वर ! **यस्त्वं येरावती** इराः=प्रशस्तान्यन्नानि विद्यन्ते यस्यां सा **धेनुमती** प्रशस्ता बह्वो धेनवो=वाचः पशवो वा सन्त्यस्यां सा **सूयवसिनी** बहूनि शोभनानि मिश्रतान्यमिश्रितानि वस्तूनि विद्यन्ते यस्यां सा [**पृथिवीम्**]=**भूमिं** =भूमिमन्तरिक्षं वा **स्वाहा** [वेदवाणीम्] **हि-किल, वाणीं भूतम्=उत्पन्नं सकलं जगच्च मयूखैः** ज्ञान प्रकाशादि गुणैः **अभितः** सर्वतः **दाधर्थ=धरसि ।**

रोदसी प्रकाश-पृथिवी-लोक समूहौ **व्यस्कभ्नाः= प्रतिबध्नासि** विशेषतया प्रतिबध्नासि **तस्मै** [**दशस्या**] =**दशस्याय** दशा इवाचरति तस्मै, **मनवे** मन्यते येन ज्ञानेन तस्मै बोधाय **वयमेते** विद्वांसः=**च सर्वं जगन्निवेदयामो निवेदयन्तीत्येकः ॥**

यो विष्णुः=प्राणः व्यापनशीलः प्राणः **भेरावती** इराः=प्रशस्तान्यन्नानि विद्यन्ते यस्यां सा **धेनुमती** प्रशस्ता बह्वो धेनवो=वाचः पशवो वा सन्त्यस्यां

भाषार्थ—हे (**विष्णो**) सर्वव्यापक जगदीश्वर ! आप जो (**इरावती**) उत्तम अन्नों वाली (**धेनुमती**) उत्तम धेनु अर्थात् वाणी वा पशुओं वाली (**सूयवसिनी**) नाना सुन्दर-मिश्रित अमिश्रित वस्तुओं वाली पृथिवी है उस (**पृथिवीम्**) भूमि वा आकाश को तथा (**स्वाहा**) वेदवाणी को (**हि**) निश्चय से (**भूतम्**) उत्पन्न हुए समस्त जगत् को (**मयूखैः**) ज्ञान प्रकाश आदि गुणों से (**अभितः**) सब ओर से (**दाधर्थ**) धारण करते हो । और—

(**रोदसी**) प्रकाशलोकों और पृथिवी लोकों को (**व्यस्कभ्नाः**) रोके रखते हो, उस आप के लिये तथा (**दशस्याय**) दशा के समान आप को (**मनवे**) बोध-प्राप्ति के लिए हम लोग और (**एते**) ये विद्वान् लोग इस सारे जगत् को अर्पण करते हैं । यह इस मन्त्र का पहला अर्थ है ॥

जो (**विष्णुः**) व्यापक प्राण है वह, जो (**इरावती**) उत्तम अन्नों वाली (**धेनुमती**) उत्तम धेनु अर्थात् वाणी वा पशुओं वाली (**सूयवसिनी**) नाना

सा **सूयवसिनी** बहूनि शोभनानि मिश्रितान्यमिश्रितानि वस्तूनि विद्यन्ते यस्यां सा **भूमिर्वाग्वास्ति तां पृथिवीं** भूमिमन्तरिक्षं वा **स्वाहा=वागिन्द्रियं** चक्षुरिन्द्रियं **च मयूखैः** रश्मिभिः **अभितः सर्वतः दाधर्थ=धरति, रोदसी** प्रकाश-पृथिवी-लोक-समूहौ **व्यस्कभ्नाः=प्रतिबध्नाति** विशेषं प्रतिबध्नाति **तस्मै [दशस्या] दशस्याय** दशा इवाचरति तस्मै **मनवे=प्राणाय** भूतं [हि] **किल उत्पन्नं सर्वं कार्यं जगत् प्रकाशितुं समर्थं प्राणं सर्वे विजानीतेति द्वितीयः** ।। ५ । १६ ।।

सुन्दर मिश्रित-अमिश्रित वस्तुओं वाली भूमि वा वाणी है उस (**पृथिवीम्**) भूमि वा आकाश को तथा (**स्वाहा**) वाणी तथा चक्षु इन्द्रिय की (**मयूखैः**) ज्ञान किरणों से (**अभितः**) सब ओर से (**दाधर्थ**) धारण करता है, और (**रोदसी**) प्रकाश लोक और पृथिवी लोकों को (**व्यस्कभ्नाः**) धारण करता है, उस (**दशस्याय**) दशा के तुल्य (**मनवे**) प्राण के लिये (**भूतम्**) उत्पन्न सब कार्य जगत् को [**हि**] निश्चय-पूर्वक प्रकाशित करने में समर्थ प्राण को तुम सब जानों। यह मन्त्र का दूसरा अर्थ है ।। ५ । १६ ।।

[हे विष्णो=जगदीश्वर ! यस्त्वं—[पृथिवीम्]=भूमिं स्वाहा हि किल वाणीं, भूतम्=उत्पन्नं सकलं जगच्च...अभितो दाधर्थ=धरसि, रोदसी व्यस्कभ्नाः=प्रतिबध्नासि । यो विष्णुः=प्राणो या—भूमिर्वाग्वास्ति तां—मयूखैः दाधर्थ=धरति, रोदसी व्यस्कभ्नाः=प्रतिबध्नाति]

भावार्थः—अत्र श्लेषालङ्कारः ।। यथा सूर्यः स्वकिरणैः स्वकान्तिभिः सर्वं भूम्यादिकं जगत् संस्तभ्याकृष्य धरति, तथैव परमेश्वरः प्राणो वा स्वसामर्थ्येन सर्वं प्राणादिकं जगत् रचित्वा, संधार्य, व्यवस्थापयति ।। ५ । १६ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष अलङ्कार है ।। जैसे सूर्य अपनी किरणों से एवं कान्ति से सब भूमि आदि जगत् को, रोक, खैंच कर धारण कर रहा है वैसे ही परमेश्वर वा प्राण अपने सामर्थ्य से सब प्राण आदि जगत् को रच कर धारण करके व्यवस्था में रखता है ।। ५ । १६ ।।

भा० पदार्थः—व्यस्कभ्नाः=संस्तभ्याकृष्य धरति । विष्णुः=परमेश्वरः प्राणो वा । मयूखैः=स्वकिरणैः स्वकान्तिभिः ।।

भाष्यसार—**१. विष्णु (ईश्वर) के गुण**—विष्णु अर्थात् ईश्वर सर्वव्यापक और जगत् का स्वामी है वह उत्तम अन्नों से युक्त, गौ आदि पशुओं से भरपूर, उत्तम वस्तुओं वाली पृथिवी को तथा आकाश को अर्थात् उत्पन्न मात्र सकल जगत् को धारण कर रहा है। वेदवाणी को भी वही धारण करता है । द्यावा पृथिवी को उसी ने स्वसामर्थ्य और आकर्षण शक्ति से परस्पर बांधा है। विद्वान् लोग उसके बोध के लिए उसे सब जगत् को अर्पित करते हैं ।

२. विष्णु (सूर्य) के गुण—विष्णु अर्थात् सूर्य उक्त गुणों वाली पृथिवी को, वाणी और चक्षु इन्द्रिय को अपनी किरणों से धारण कर रहा है। द्युलोक और पृथिवी लोक को आकर्षण शक्ति से धारण करता है। यही सब जगत् को प्रकाशित करने में समर्थ है।

३. प्राण—विष्णु अर्थात् प्राण सर्वत्र व्यापक है। वह उक्त गुणों वाली भूमि को तथा वाणी को अपने सामर्थ्य से सब ओर से धारण करता है। द्युलोक और पृथिवी लोक को भी धारण करता है। यह प्राण सब कार्य जगत् को प्रकाशित करने में समर्थ है। सब जगत् का आधार प्राण है ।।

४. अलङ्कार—यहाँ श्लेष अलङ्कार से विष्णु शब्द से ईश्वर, सूर्य और प्राण अर्थ का ग्रहण किया है ।। ५ । १६ ।।

वशिष्ठः । **विष्णुः=ईश्वरः, सूर्यश्च** ।। स्वराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् । धैवतः ।।

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते ।।

फिर वे ईश्वर और सूर्य कैसे हैं, इस विषय का उपदेश किया है ।।

देवश्रुतौ देवेष्वाघोषतं प्राची प्रेतमध्वरं कल्पयन्ती ऽ ऊर्ध्वं यज्ञं नयतं मा जिह्वरतम् । स्वं गोष्ठमावदतं देवी दुर्य्ये ऽआयुर्मा निर्वादिष्टं प्रजां मा निर्वादिष्टमत्र रमेथां वर्ष्मन् पृथिव्याः ॥१७

पदार्थः—(**देवश्रुतौ**) यथा दिव्यविद्याश्रुतौ विद्वांसौ (**देवेषु**) विद्वत्सु दिव्यगुणेषु वा प्रसिद्धौ (**आ**) समंतात् (**घोषतम्**) घोषं कुर्वन्तौ स्तः (**प्राची**) प्रकृष्टमञ्चति याभ्यां ते रोदसी । **अत्र सर्वत्र सुपां सुलुगिति प्रथमाद्विवचनस्य लुक्** (**प्र**) प्रकृष्टार्थे (**इतम्**) प्राप्तौ भवतः (**अध्वरम्**) अहिंसनीयम् (**कल्पयन्ती**) समर्थयन्त्यौ (**उर्ध्वम्**) उत्कृष्टगुणम् (**यज्ञम्**) विज्ञानशिल्पसंगमनीयम् (**नयतम्**) संप्राप्नुतम् (**मा**) निषेधे (**जिह्वरतम्**) कुटिलौ भवतम् (**स्वम्**) स्वकीयम् (**गोष्ठम्**) गवां स्थानम् । **अत्र घञर्थे कविधानमिति कः** (**आ**) समन्तात् (**वदतम्**) उपदिशतः (**देवी**) दिव्यगुणसंपन्ने (**दुर्ये**) गृहरूपे (**आयुः**) जीवनं तन्निमित्तं वा (**मा**) निषेधे (**निः**) नितराम् (**वादिष्टम्**) वदतम् (**प्रजाम्**) उत्पन्नां सृष्टिम् (**मा**) निषेधे (**निः**) नितराम् (**वादिष्टम्**) वदतम् (**अत्र**) अस्मिन् जगति (**रमेथाम्**) (**वर्ष्मन्**) सुखवृष्टियुक्ते (**पृथिव्याः**) अन्तरिक्षस्य मध्ये ।। **अयं मंत्रः शत० ३ । ५ । ३ । १३-२० व्याख्यातः ॥ १७ ॥**

प्रमाणार्थ—(**प्राची**) यहां 'सुपां सुलुक्' [अ० ७ । १ । ३९] इस सूत्र से प्रथमा विभक्ति के द्विवचन 'औ' प्रत्यय का लुक् है । (**गोष्ठम्**) यहां 'घञर्थे कविधानम्' [अ० ३ । ३ । ५८] इस वार्तिक 'क' प्रत्यय हुआ है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ५ । ३ । १३-२०) में की गई है ।। ५ । १७ ।।

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्या ! **यथा यौ देवेषु** विद्वत्सु दिव्य गुणेषु वा प्रसिद्धौ **देवश्रुतौ** यथा दिव्यविद्याश्रुतौ विद्वांसौ [**आ**] **घोषतं=व्यक्तं शब्दं कुरुतः** समन्ताद् घोषं कुर्वन्तौ स्तः, **ये प्राची** प्रकृष्टमञ्चति याभ्यां ते रोदसी **कल्पयन्ती** समर्थयन्त्यौ **उर्ध्वम् उत्कृष्ट-गुणम्** [**अध्वरम्**] अहिंसनीयं [**यज्ञं**] विज्ञानशिल्पसंगमनीयम् [**प्र**] **एत**=(प्रकृष्टं) प्राप्तौ भवतः [**नयतम्**]=**नयतः** सम्प्राप्नुतः, **ते च रोदसी यथा माजिह्वरतं=कुटिले न भवेतां** न कुटिलौभवतं **तथा कुरुतम्** ।

ये देवी दिव्यगुण-सम्पन्ने **दुर्ये** गृहरूपे **स्वं** स्वकीयं **गोष्ठं** गवां स्थानं [**आवदम**]=**समन्तात् प्राप्नुतः** समन्तात् उपदिशतः **ताभ्यां कस्याप्यायुः** जीवनं तन्निमित्तं वा **मा न निर्वादिष्टं** नितरां वदतं **प्रजाम्** उत्पन्नां सृष्टिं **मा निर्वादिष्टं=विनष्टाम्मा कुरुतम्** नितरां न वदतम् ।

[**पृथिव्याः**] **पृथिव्याम् अन्तरिक्षस्य च मध्ये**

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे जो ईश्वर और सूर्य (**देवेषु**) विद्वानों वा दिव्य गुणों में (**देवश्रुतौ**) दिव्य विद्या के श्रोता विद्वान् (**अघोषतम्**) सब ओर घोषणा करें कि जो (**प्राची**) प्रकृष्ट गति वाले द्युलोक और पृथिवी लोक (**कल्पयन्ती**) सामर्थ्य वाले, (**ऊर्ध्वम्**) उत्कृष्ट गुण वाले (**यज्ञम्**) विज्ञान और शिल्प विद्या को (**प्र-एत**) प्राप्त हों और (**नयतम्**) दूसरों को भी प्राप्त करें और वे दोनों (**रोदसी**) द्युलोक और पृथिवी लोक जिससे (**मा-जिह्वरतम्**) कुटिलता युक्त न हों वैसा करें । और—

जो (**देवी**) दिव्य गुणों से सम्पन्न (**दुर्ये**) घर में (**स्वम्**) अपनी (**गोष्ठम्**) गोशाला में [**आवदतम्**) सब ओर से प्राप्त हों, और हमें उपदेश करें । उनसे किसी का भी (**आयुः**) जीवन वा जीवन-साधन (**मा निर्वादिष्टम्**) नष्ट मत करो (**प्रजाम्**) उत्पन्न सृष्टि को (**मा निर्वादिष्टम्**) नष्ट मत करो ।

(**पृथिव्याः**) पृथिवी और अन्तरिक्ष में (**वर्ष्मन्**)

[**वर्ष्मन्**]=**वर्ष्मणि** सुखवृष्टि युक्ते [**यत्र**] **जगति** अस्मिन् जगति **रयेथां तथानुतिष्ठत्** ॥ ५ । १७ ॥

सुखकारक वृष्टि से युक्त (**अत्र**) इस जगत् में रमण करें, वैसा करो ॥ ५ । १७ ॥

[**हे मनुष्या ! यथा देवेषु देव श्रुतौ [आ] घोषतं=व्यक्तं शब्दं कुरुतः, ये—च रोदसी यथा मा जिह्वरतं=कुटिले न भवेतां तथा कुरुतं—**]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ मनुष्यैर्यावज्जगदन्तरिक्षस्य मध्ये वर्त्तते तावता सर्वेण बहूनि सुखानि सम्पादनीयानि ॥ ५ । १७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ जितना जगत् अन्तरिक्ष के मध्य में वर्तमान है उस सबसे मनुष्य बहुत-से सुखों को सिद्ध करें ॥ ५ । १७ ॥

औतथ्यो दीर्घतमाः । **विष्णुः**=ईश्वरः । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

अथ व्यापकेश्वरगुणा उपदिश्यन्ते ॥

अब व्यापक ईश्वर के गुणों का उपदेश किया जाता है ॥

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि । योऽअस्कभायदुत्तरꣳ सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायो विष्णवे त्वा ॥ १८ ॥

पदार्थः—(**विष्णोः**) व्यापकस्य परमेश्वरस्य (**नु**) शीघ्रम् (**कम्**) सुखस्वरूपम् (**वीर्याणि**) पराक्रमयुक्तनि कर्माणि (**प्र**) प्रकृष्टार्थे (**वोचम्**) कथयेयम् (**यः**) अनन्तपराक्रमः (**पार्थिवानि**) पृथिव्या विकारा, अन्तरिक्षे विदितानि वा । **अत्र तत्र विदित इति च ॥ अ० ५ । १ । ४३ ॥ अनेनाञ्प्रत्ययः** (**विममे**) विविधतया मिमीते (**रजांसि**) लोकान्, **लोका रजांस्युच्यन्ते ॥ निरु० ४ । १९ ॥** (**यः**) सर्वाधारः (**अस्कभायत्**) प्रतिबध्नाति (**उत्तरम्**) अन्तावयवम् (**सधस्थम्**) यत्सह तिष्ठति तत्कारणं सत्संगृह्य (**विचक्रमाणः**) यथायोग्यं जगद्रचनाय कारणपादान् प्रक्षिपन्=नियोजयन् (**त्रेधा**) त्रिप्रकाराणि (**उरुगायः**) यो बहूनर्थान्वेदद्वारा गायत्युपदिशति सः (**विष्णवे**) व्यापनशीलाय यज्ञाय (**त्वा**) त्वाम् ॥ **अयं मंत्रः शत० ३ । ५ । ३ । २१ ॥ व्याख्यातः ॥ १८ ॥**

प्रमाणार्थ—(**पार्थिवानि**) 'पार्थिव' शब्द 'तत्र विदित इति च' (अ० ५ । १ । ४३) इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है । (**रजांसि**) निरु० (४ । १९) के अनुसार 'रजांसि' शब्द का अर्थ लोक है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ५ । ३ । २१) में की गई है ॥ ५ । १८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्या ! यूयं यः** अनन्तपराक्रमः, **विचक्रमाणः** यथायोग्यं जगद्रचनाय कारण पादान् प्रक्षिपन्=नियोजयन् **उरुगायः** यो बहून् पदार्थान् वेदद्वारा गायत्युपदिशति सः, **विष्णुः**=**जगदीश्वरः**, **पार्थिवानि** पृथिव्या विकारा अन्तरिक्षे विदितानि वा **रजांसि** लोकान् **त्रेधा** त्रिप्रकाराणि **विममे** विविधतया मिमीते ।

यः सर्वाधारः **उत्तरम्** अन्तावयवं **सधस्थं** यत्

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम (**यः**) जो अनन्त पराक्रम वाला (**विचक्रमाणः**) यथायोग्य जगत् रचने के लिये कारण द्रव्यों को गति देने वाला (**उरुगायः**) वेद द्वारा नाना अर्थों का उपदेश करने वाला विष्णु जगदीश्वर है वह (**पार्थिवानि**) पृथिवी के विकारों को वा अन्तरिक्ष में प्रसिद्ध (**रजांसि**) लोकों को (**त्रेधा**) तीन प्रकार से (**विममे**) निर्माण करता है । और—

(**यः**) जो सर्वाधार (**उत्तरम्**) अन्तिम अवयव

सह तिष्ठति तत् कारणं तत् संगृह्य **अस्कभायत्**=प्रतिबध्नाति, **यो विष्णवे**=उपासनादियज्ञाय व्यापनशीलाय यज्ञाय **आश्रीयते, यस्य विष्णोः** व्यापकस्य परमेश्वरस्य **वीर्याणि** पराक्रमयुक्तानि कर्माणि **विद्वांसो वदन्ति यं सर्वे संश्रयन्ते, [त्वा]** त्वां **कम्**=सुखरूपं सुखस्वरूपं **देवमहं प्रवोचं** प्रकृष्टं कथयेयं **नु**=शीघ्रमाश्रये ॥ ५ । १८ ॥

(**सधस्थम्**) जो साथ रहने वाला कारण रूप है उसे ग्रहण करके (**अस्कभायत्**) जगत् को धारण करता है, और (**विष्णवे**) उपासनादि व्यापक यज्ञ के लिये जिसकी शरण में जाते हैं, जिस (**विष्णोः**) व्यापक परमेश्वर के (**वीर्याणि**) पराक्रमयुक्त कर्मों का विद्वान् लोग उपदेश करते हैं, जिसकी सब शरण लेते हैं [**त्वा**] उस (**कम्**) सुखस्वरूप देव का मैं (**प्रवोचम्**) उपदेश करूँ और (**नु**) शीघ्र प्राप्त करूँ । ५ ॥ १८ ॥

[हे मनुष्या ! यूयं यः··· विष्णुः=जगदीश्वरः पार्थिवानि रजांसि त्रेधा विममे, य उत्तरं सधस्थमस्कभायत्=प्रतिबध्नाति··· [त्वा] ···देवमहं प्रवोचं, नु=शीघ्रमाश्रये]

भावार्थः—सर्वैर्मनुष्यैर्येन परमेश्वरेण पृथिवीसूर्यत्रसरेणुभेदेन त्रिविधं जगद्रचित्वा ध्रियते, स एवोपासनीयः ॥ ५ । १८ ॥

भावार्थ—सब मनुष्य, जिस परमेश्वर ने पृथिवी, सूर्य और त्रसरेणु भेद से तीन प्रकार का जगत् रच के धारण किया है, उसकी ही उपासना करें ॥ ५ । १८ ॥

भा० पदार्थ—त्रेधा=पृथिवीसूर्यत्रसरेणुभेदेन त्रिविधं जगत् ॥

भाष्यसार—**विष्णु (व्यापक ईश्वर) के गुण**—विष्णु अर्थात् ईश्वर अनन्त पराक्रम वाला, यथायोग्य जगत् की रचना के लिये कारण द्रव्यों को गति देने वाला, नाना पदार्थों का वेद के द्वारा उपदेश करने वाला है । जो अन्तरिक्ष में विद्यमान पृथिवी, सूर्य और त्रसरेणु भेद से तीन प्रकार के जगत् की रचना करता है । जो सर्वाधार जगदीश्वर सब स्थूल पदार्थों के सह-वर्तमान अन्तिम कारण रूप जगत् को धारण कर रहा है । उपासनादि यज्ञ का वही आश्रय है । विद्वान् लोग उसके पराक्रम-युक्त कर्मों का उपदेश करते हैं । सब उसी का सहारा लेते हैं । उस सुखस्वरूप देव का उपदेश करें, उसकी स्तुति करें और शीघ्र उसी का आश्रय लेवें ॥ ५ । १८ ॥

औतथ्यो दीर्घतमाः । **विष्णुः=ईश्वरः** ॥ निचृदार्षी जगती । निषादः ॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते ॥

फिर वह जगदीश्वर कैसा है, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

दिवो वा विष्ण ऽ उत वा पृथिव्या महो वा विष्णऽउरोरन्तरिक्षात् ।
उभा हि हस्ता वसुना पृणस्वा प्रयच्छ दक्षिणादोत सव्याद्विष्णवे त्वा ॥ १९ ॥

पदार्थः—(**दिवः**) प्रसिद्धात् विद्युतो वा (**वा**) पक्षान्तरे (**विष्णो**) वेवेष्टि=व्याप्नोति चराचरं जगत् तत्सम्बुद्धौ (**उत**) अपि (**वा**) पक्षान्तरे (**पृथिव्याः**) भूमेःसकाशात् (**महः**) महत्तत्वात् (**वा**) पक्षान्तरे (**विष्णो**) सर्वान्तःप्रविष्ट ! (**उरोः**) बहोरनन्तात् (**अन्तरिक्षात्**) आकाशात् (**उभा**) द्वौ (**हि**) खलु (**हस्ता**) बलवीर्य्यौ बाहू वा । **अत्रोभयत्र सुपामित्याकारादेशः** (**वसुना**) द्रव्येण सह (**पृणस्व**) प्रीणीहि प्रीणय वा (**आ**) समन्तात् (**प्र**) प्रकृष्टार्थ (**यच्छ**) देहि (**दक्षिणात्**) दक्षिणपार्श्वात् (**आ**) अभितः

(उत) च (सव्यात्) वामपार्श्वात् (विष्णवे) यज्ञाय (त्वा) त्वाम् ॥ अयं मंत्रः शत० ३ । ५ । ३ । २२ व्याख्यातः ॥ १९ ॥

प्रमाणार्थ—(उभा, हस्ता) यहां दोनों शब्दों में 'सुपां सुलुक्०' [अ० ७ । १ । ३९] सूत्र से आकार-आदेश है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ५ । ३ । २२) में की गई है ॥ ५ । १९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विष्णो ! वेवेष्टि=व्याप्नोति चराचरं जगत् तत्सम्बुद्धौ **त्वं कृपयाऽस्मान् दिवः=प्रसिद्धाग्नेर्विद्युतो वा वसुना** द्रव्येण सह **आपृणस्व** समन्तात् प्रीणीहि प्रीणाय वा **सुखानि प्रायच्छ समन्तात्** प्रकृष्टं देहि ।

उत=अपि पृथिव्याः सकाशात् (पृथिव्याः=भूमेः सकाशात्) **उत्पन्नेभ्यः पदार्थेभ्यो [महः] महत्तत्त्वाच्चाव्यक्तादुत** अपि **उरोः** बहोरनन्तात् **अन्तरिक्षात्** आकाशात् **वा, वसुना** द्रव्येण सह **द्यां पृणस्व** प्रीणीहि प्रीणय वा ।

हे **विष्णो** सर्वान्तः प्रविष्ट ! **त्वं दक्षिणात्** दक्षिणपार्श्वात् **उत=च सव्यात्** वाम पार्श्वात् **सुखानि [आ] प्रयच्छ** समन्तात् प्रकृष्टं देहि । **तं त्वा=त्वां विष्णवे=यज्ञाय वयमर्चयेम** ॥ ५ । १९ ॥

भाषार्थ—हे (**विष्णो**) चराचर जगत् में व्यापक जगदीश्वर ! आप कृपा करके हमें (**दिवः**) प्रसिद्ध अग्नि (**वा**) अथवा विद्युत् (**वसुना**) द्रव्य से (**आपृणस्व**) सब ओर से तृप्त करो एवं सब सुखों को (**प्रयच्छ**) प्रदान करो ।

(**उत**) और (**पृथिव्याः**) भूमि से उत्पन्न पदार्थों से [**महः**] महत्तत्त्व अव्यक्त प्रकृति से (**उत**) और (**वा**) अथवा (**उरः**) अनन्त (**अन्तरिक्षात्**) अन्तरिक्ष से (**वसुना**) द्रव्यों के द्वारा (**द्यां पृणस्व**) द्यौ को तृप्ति एवं कान्तियुक्त करो ।

हे (**विष्णो**) सबके अन्दर प्रविष्ट जगदीश्वर ! आप (**दक्षिणात्**) दक्षिण पार्श्व से (**उत**) और (**सव्यात्**) वाम पार्श्व से सब सुखों को ([**आ**] **प्रयच्छ**) सब ओर से प्रदान करो । (**त्वा**) आप की हम लोग (**विष्णवे**) यज्ञ के लिये अर्चना करें, पूजा करें ॥ ५ । १९ ॥

[हे विष्णो ! त्वं कृपयाऽस्मान् दिवः=प्रसिद्धाग्नेर्विद्युतो वा वसुनापृणस्व, उत=अपि पृथिव्याः सकाशादुत्पन्नेभ्यः पदार्थेभ्यो [महः] महत्तत्त्वाच्चाव्यक्तादुतोरोरन्तरिक्षाद् वा वसुना द्यां पृणस्व, हे विष्णो! त्वं··· सुखानि [आ] प्रयच्छ, तं त्वा=त्वां विष्णवे=यज्ञाय वयमर्चयेम]

भावार्थः—येन व्यापकेनेश्वरेण महत्तत्त्वसूर्यभूम्यन्तरिक्षवाय्वग्निजलादीन् पदार्थान् तत्रस्थानन्यांश्चौषध्यादीन् मनुष्यादींश्च रचित्वा धृत्वा सर्वेभ्यः प्राणिभ्यः सुखानि धीयन्ते, तस्यैवोपासना सर्वैः कार्येति ॥ ५ । १९ ॥

भावार्थ—जिस व्यापक ईश्वर ने महत्तत्त्व, सूर्य, भूमि, अन्तरिक्ष, वायु, अग्नि, जल आदि पदार्थों को और उन में स्थित औषधि तथा मनुष्य आदि को रच कर और धारण करके सब प्राणियों के लिए सुखों को धारण किया है सब मनुष्य उसकी ही उपासना करें ॥ ५ । १९ ॥

भाष्यसार—**विष्णु (ईश्वर) कैसा है**—विष्णु अर्थात् ईश्वर चराचर जगत् में व्यापक है । जो प्रसिद्ध अग्निः, विद्युत्, पृथिवी, महत्तत्त्व, अव्यक्त महत्तत्व से उत्पन्न पदार्थ, अनन्त आकाश तथा इनमें विद्यमान औषधि तथा मनुष्य आदि प्राणियों को रच कर इन्हें धारण कर रहा है । सबके अन्दर प्रविष्ट ईश्वर सब ओर से सब प्राणियों को सुख प्रदान करता है । यज्ञमय विष्णु (ईश्वर) की प्राप्ति के लिये उसकी अर्चना करें, उपासना करें ॥ ५ । १९ ॥

औतथ्यो दीर्घतमाः । **विष्णुः**=ईश्वरः ॥ विराडार्षी त्रिष्टुप् । पञ्चमः ।

पुनः स कथंभूत इत्युपदिश्यते ॥

फिर वह जगदीश्वर कैसा है, इस विषय का उपदेश किया है ॥

प्र तद्विष्णुं स्तवते वीर्य्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥ २० ॥

पदार्थः—(**प्र**) प्रकृष्टार्थे (**तत्**) तस्मात् (**विष्णुः**) व्यापकेश्वरः (**स्तवते**) स्तौत्युपदिशति । अत्र बहुलं छन्दसीति शपो ह्यलुक् (**वीर्येण**) पराक्रमेण (**मृगः**) यो मार्ष्टि न्विच्छति बधाय जीवानिति ईश्वर-पक्षे तु मार्ष्टि व्यवस्थापनाय जीवानिति (**न**) इव (**भीमः**) बिभ्यति जीवा अस्मादिति व्याघ्रः । भीमादयोऽपादान इति निपातनात् (**कुचरः**) यः कुत्सितं प्राणिवधं चरति । (**गिरिष्ठाः**) गिरौ तिष्ठतीति । क्विबन्तोऽयं प्रयोगः (**यस्य**) (**उरुषु**) बहुषु (**त्रिषु**) त्रिविधेषु जगत्सु (**विक्रमणेषु**) विविधक्रमेषु (**अधिक्षियन्ति**) निवसन्ति (**भुवनानि**) लोकजातानि (**विश्वा**) सर्वाणि ॥ अयं मंत्रः शत० ३ । ५ । ३ । २३ व्याख्यातः ॥ २० ॥

प्रमाणार्थ—(**स्तवते**) यहां 'बहुलं छन्दसि' [**अ०** २ । ४ । ७३] सूत्र से 'शप्' का लुक् नहीं है । (**भीमः**) यह शब्द 'भीमादयोऽपादाने' [**अ०** ३ । ४ । ७४] इस सूत्र द्वारा निपातित है । (**गिरिष्ठाः**) यह प्रयोग क्विबन्त है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ५ । ३ । २३) में की गई है ॥ ५ । २० ॥

सपदार्थान्वयः—**यस्योरुषु** बहुषु **त्रिषु** त्रिविधेषु जगत्सु **विक्रमणेषु** विविधक्रमेषु [**विश्वा**] =**विश्वानि** सर्वाणि **भुवनानि** लोकजातानि (**अधिक्षियन्ति**) निवसन्ति, **यश्चासौ विष्णुः** व्यापकेश्वरः **वीर्येण** पराक्रमेण **भीमः** बिभ्यति जीवा अस्मादिति व्याघ्र **कुचरः** यः कुत्सितं प्राणिवधं चरति **गिरिष्ठाः** गिरौ तिष्ठतीति **मृगो न**=**सिंह इव**, मार्ष्टि न्विच्छति बधाय जीवानिति, ईश्वर पक्षे तु मार्ष्टि व्यवस्थापनाय जीवानिति **विचरन्** [**प्रस्तवते**]=**उपदिशति** प्रकृष्टतयास्तौति=उपदिशति [**तत्**]=**तस्मात् स नैव कदापि विस्मरणीयः** ॥ ५ । २० ॥

भाषार्थ—जिस जगदीश्वर के (**उरुषु**) विशाल (**त्रिषु**) तीन प्रकार के जगत् के (**विक्रमणेषु**) चरणों में [**विश्वा**] सब (**भुवनानि**) लोक (**अधिक्षियन्ति**) निवास करते हैं, और जो वह (**विष्णुः**) व्यापक ईश्वर (**वीर्येण**) अपने बल से (**भीमः**) भयंकर (**कुचरः**) निन्दित प्राणिवध करने वाले (**गिरिष्ठाः**) पर्वत में रहने वाले (**मृगो न**) बध के लिये जीवों को ढूँढने वाले सिंह के समान, विचरण करता हुआ [**प्रस्तवते**] उत्तम उपदेश करता है (**तत्**) इसलिये उसे कभी नहीं भूलना चाहिये ॥ ५ । २० ॥

[यस्य ··· त्रिषु विक्रमणेषु [विश्वा]=विश्वानि भुवनान्यधिक्षियन्ति, यश्चासौ विष्णुर्वीर्येण ··· मृगो न=सिंह इव विचरन् [प्रस्तवते]=उपदिशति]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः ॥ यथा सिंहः स्वपराक्रमेण यथेष्टं विक्रमते तथैव जगदीश्वरः खलु पराक्रमेण सर्वान् लोकान् नियच्छति ॥ ५ । २० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है ॥ जैसे सिंह अपने पराक्रम से यथेष्ट विचरण करता है वैसे ही जगदीश्वर भी अपने पराक्रम से सब लोकों को नियम में रखता है ॥ ५ । २० ॥

भाष्यसार—१. **विष्णु (ईश्वर) कैसा है**—विष्णु अर्थात् व्यापक ईश्वर के रचे हुए तीन प्रकार के जगत् में सब लोक निवास करते हैं । जैसे अपने पराक्रम से जीवों को डराने वाला, प्राणियों को वध करने वाला, पर्वत में रहने वाला, जीवों को वध के लिए ढूँढने वाला सिंह बन में विचरण करता

है वैसे पराक्रमशाली ईश्वर सब लोकों का नियमन करता है। जीवों की व्यवस्था करता है। उन्हें उपदेश करता है। इसलिए उसे कभी न भूलें। जो ईश्वर को भूल जाते हैं वह उनके लिये सिंह के समान भयङ्कर होता है॥

२. **अलङ्कार**—यहां 'न' पद उपमावाचक है इसलिये उपमा अलङ्कार है। यहां ईश्वर की सिंह के साथ उपमा की गई है ॥ ५ । २० ॥

औतथ्यो दीर्घतमाः। **विष्णुः**=ईश्वरः [**जगदीश्वर**] ॥ भुरिगार्ची पंक्तिः। पञ्चमः॥

पुनः स कथंभूत इत्युपदिश्यते ॥

फिर वह जगदीश्वर कैसा है, इस विषय का उपदेश किया जाता है॥

विष्णो॑ र॒राट॑म॒सि॒ विष्णो॑: श्नप्त्रे॑ स्थो॒ विष्णो॒: स्यूर॑सि॒ विष्णो॑र्ध्रु॒वो॒ऽसि ।
वै॒ष्ण॒वम॑सि॒ विष्ण॑वे त्वा ॥ २१॥

पदार्थः—(**विष्णोः**) व्यापकस्य सकाशात् (**रराटम्**) परिभाषितं जगत् (**असि**) अस्ति। अत्र सर्वत्र व्यत्ययः (**विष्णोः**) सर्वत्राभिप्रविष्टस्य (**श्नप्त्रे**) शुद्धे इव। अत्र ष्णा शौच इत्यस्य वर्णव्यत्ययेन सस्य शः (**स्थः**) तिष्ठतः (**विष्णोः**) सर्वसुखाभिव्याप्तात् (**स्यूः**) यः सीव्यति सः (**असि**) अस्ति (**विष्णोः**) सर्वजगत्पालकात् (**ध्रुवः**) निश्चलः (**असि**) अस्ति (**वैष्णवम्**) यद् विष्णोर्यज्ञस्येदं साधनं साधकं वा तत् (**असि**) अस्ति (**विष्णवे**) यज्ञाय (**त्वा**) त्वाम्॥ अयं मंत्रः शत० ३।५।३।२४--२५॥ व्याख्यातः॥ २१॥

प्रमाणार्थ—(**असि**) अस्ति। इस मन्त्र में 'असि' पद पर सर्वत्र व्यत्यय है। (**श्नप्त्रे**) 'श्नप्त्र' शब्द शुद्धि अर्थ वाली 'ष्णा' धातु के वर्णव्यत्यय से सकार को शकार करके सिद्ध होता है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३।५।३।२४--२५) में की गई है॥ ५।२१॥

सपदार्थान्वयः—यदिदं विविधं जगदसि=अस्ति तद्विष्णोः व्यापकस्य सकाशात् **रराटम्** परिभाषितं जगत् **असि**=अस्ति, **विष्णोः सकाशादुत्पद्य वर्तत इति यावत्।**

विष्णोः सर्वसुखाभिव्याप्तात् **स्यूः** यः सीव्यति सः **असि**=**अस्ति**, [**विष्णोः**] सर्वजगत्पालकात् [**ध्रुवः**] निश्चलः [**असि**] अस्ति, **सर्वं जगद्वैष्णवं** यद् विष्णोर्यज्ञस्येदं साधनं साधकं वा तत् **असि**=**अस्ति।**

यस्य विष्णोः सर्वत्राभिप्रविष्टस्य **जगति द्वे श्नप्त्रे इव**=शुद्धे इव **जडचेतनसमूहौ स्थः**=**वर्तेते** तिष्ठतः, **तं सर्वजगदुत्पादकं जगदीश्वरं** [**त्वा**] त्वां **विष्णवे**=**यज्ञानुष्ठानाय वयमाश्रयामः** ॥ ५। २१॥

भावार्थ—जो यह नाना प्रकार का जगत् (**असि**) है वह (**विष्णोः**) व्यापक विष्णु की (**रराटम्**) परिभाषा (**असि**) है। अर्थात् उसको बतलाने वाला है, एवं विष्णु से उत्पन्न होकर विद्यमान है।

(**विष्णोः**) सब सुखों से भरपूर विष्णु से (**स्यूः**) सीया हुआ (**असि**) है, [**विष्णोः**] सब जगत् के पालक विष्णु से [**ध्रुवः**] स्थिर [**असि**] है। सारा जगत् (**वैष्णवम्**) विष्णु अर्थात् यज्ञ का साधन वा साधक (**असि**) है।

जिस (**विष्णोः**) सर्वत्र प्रविष्ट विष्णु के जगत् में दो (**श्नप्त्रे**) शुद्ध जड़ और चेतन समूह (**स्थः**) है। उस सब जगत् के उत्पादक [**त्वा**] आप जगदीश्वर का हम लोग (**विष्णवे**) यज्ञानुष्ठान के लिये आश्रय ग्रहण करते हैं॥ ५।२१॥

[यदिदं त्रिविधं जगदसि=अस्ति, तद् विष्णो रराटमसि=अस्ति, स्यूरसि=अस्ति, [ध्रुवः] असि=अस्ति, तं सर्वजगदुत्पादकं जगदीश्वरं [त्वा] त्वां विष्णवे=यज्ञानुष्ठानाय वयमाश्रयामः]

भावार्थः—मनुष्यैः सर्वस्यास्य जगतः परमेश्वर एव रचको, धारको, व्यापक इष्टदेवोऽस्तीति विज्ञाय सर्वकामसिद्धिः सम्पादनीया ॥ ५ । २१ ॥

भावार्थ—इस सारे जगत् का परमेश्वर ही रचने वाला, धारण करने वाला, व्यापक इष्टदेव है। सब मनुष्य ऐसा समझकर सब कामनाओं की सिद्धि करें ॥ ५ । २१ ॥

अन्यत्र व्याख्यात—महर्षि ने 'वैष्णवमसि' इस मन्त्रांश को सत्यार्थ प्रकाश (**एकादश समुल्लास**) में वैष्णव-मत की समीक्षा में उद्धृत किया है।

भाष्यसार—**विष्णु (ईश्वर) कैसा है**—यह तीन प्रकार का जगत् विष्णु अर्थात् व्यापक ईश्वर की परिभाषा है अर्थात् उसका बोधक है, विष्णु से उत्पन्न होकर विद्यमान है। सब सुखों से भरपूर विष्णु ने इसको सीया है, बनाया है, सब जगत् के पालक विष्णु ने इसे स्थिर किया है, धारण किया है, इस लिये यह जगत् वैष्णव कहलाता है। सर्वत्र प्रविष्ट विष्णु के जगत् के जड़ और चेतन दो शुद्ध रूप हैं। सब जगत् का उत्पादक, जगत् का स्वामी विष्णु यज्ञानुष्ठान के लिये, सब कामनाओं की सिद्धि के लिये, आश्रय करने योग्य है। सब का इष्टदेव है ॥ ५ । २१ ॥

औतथ्यो दीर्घतमाः । **यज्ञः**=**स्पष्टम्** ॥ पूर्वार्द्धस्य साम्नी पंक्तिः । पंचमः । आदद इत्युत्तरस्य भुरिगार्षी बृहती । मध्यमः ॥

पुनरयं यज्ञः किमर्थः कर्त्तव्य इत्युपदिश्यते ॥

फिर यह यज्ञ किसलिये करना चाहिये, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

देवस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्रस॒वे॒ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम् ।
आद॑दे॒ नार्य॑सी॒दम॒हꣳ रक्ष॑सां ग्री॒वा ऽ अपि॑ कृन्तामि ।
बृ॒हन्न॑सि बृ॒हद्र॑वा बृ॒हतीमिन्द्रा॑य॒ वाचं॑ वद ॥ २२ ॥

पदार्थः--(**देवस्य**) सर्वप्रकाशकस्यानन्दप्रदेश्वरस्य (**त्वा**) तम् (**सवितुः**) सकलस्य जगत उत्पादकस्य (**प्रसवे**) यथा **सृष्टौ** (**अश्विनोः**) प्राणापानयोरध्वर्य्योर्वा (**बाहुभ्याम्**) यथाबलवीर्याभ्याम् (**पूष्णः**) पुष्टिकारिकायाः । पृथिव्याः । पूषेति पृथिवी नामसु पठितम् ॥ निघं० १ । १ ॥ (**हस्ताभ्याम्**) यथाऽऽनन्दप्रदाभ्यां धारणाकर्षणाभ्याम् (**आ**) समन्तात् (**ददे**) स्वीकरोमि (**नारी**) नराणामियं क्रिया (**असि**) अस्ति वा । अत्र सर्वत्र व्यत्ययः (**इदम्**) प्रत्यक्षं पालकं कर्म (**अहम्**) (**रक्षसाम्**) दुष्टस्वभावानाम् (**ग्रीवाः**) कण्ठान् (**अपि**) निश्चये (**कृन्तामि**) छिनद्मि (**बृहन्**) वर्धमानो वर्धयन् (**असि**) अस्ति वा (**बृहद्रवाः**) यथा बृहच्छब्दवान् (**बृहतीम्**) महतीम् (**इन्द्राय**) परमैश्वर्यप्रापकाय (**वाचम्**) वाणीम् (**वद**) उपदिश ॥ अयं मंत्रः शत० ३ । ५ । ४ । ४-८ व्याख्यातः ॥ २२ ॥

प्रमाणार्थ—(**पूष्णः**) 'पूषा' शब्द निघं० (१ । १) में पृथिवी-नामों में पढ़ा है। (**असि**) अस्ति । इस मन्त्र में 'असि' पद पर सर्वत्र व्यत्यय है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ५ । ४ । ४-८) में की गई है ॥ ५ । २२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्य ! यथाऽहं

भाषार्थ—हे मनुष्य ! जैसे मैं विद्वान्

देवस्य सर्वप्रकाशकस्यानन्द प्रदेश्वरस्य **सवितुः** सकलस्य जगत उत्पादकस्य **प्रसवे** यथासृष्टौ **अश्विनोः** प्राणानापानयोरध्वर्य्योर्वा **यथाबाहुभ्यां** यथाबलवीर्याभ्यां **पूष्णः** पुष्टिकारिकायाः पृथिव्याः **यथा हस्ताभ्यां** यथाऽऽनन्दप्रदाभ्यां धारणाकर्षणाभ्यां **यं यज्ञमाददे समन्तात्** स्वीकरोमि त्वा=**तं त्वमपि तथादत्स्व।**

(**देवस्य**) सर्वप्रकाशक, आनन्ददाता (**सवितुः**) सब जगत् के उत्पादक परमेश्वर की (**प्रसवे**) सृष्टि में (**अश्विनोः**) प्राण और अपान के वा अध्वर्युओं के (**बाहुभ्यां**) बलवीर्य से (**पूष्णः**) पुष्टि देने वाली पृथिवी के (**हस्ताभ्याम्**) आनन्ददायक धारण आकर्षणों से जिस यज्ञ को (**आददे**) चहुँ ओर से स्वीकार करता हूँ (**त्वा**) उसे तू भी वैसे ही ग्रहण कर। और—

यथाऽहं [नारी]=नारीं=यज्ञक्रियां (नराणामियं क्रिया) **इदं** प्रत्यक्षं पालकं कर्म **यज्ञानुष्ठानं कर्म चाददे** स्वीकरोमि **तथा त्वमपि आदत्स्व।**

जैसे मैं (**नारी**) नरों के शुभ कार्यों को तथा (**इदम्**) इस सबके पालक यज्ञानुष्ठान कर्म को (**आददे**) स्वीकार करता हूँ, वैसे तू भी ग्रहण कर। और—

यथाऽहं रक्षसां दुष्टस्वभावानां **ग्रीवाः** कण्ठान् **कृन्तामि** छिनद्मि **तथा त्वमपि कृन्त।**

जैसे मैं (**रक्षसाम्**) दुष्ट स्वभाव वाले राक्षसों के (**ग्रीवाः**) कण्ठों का (**कृन्तामि**) छेदन करता हूँ वैसे तू भी छेदन कर। और—

यथा चाहमेतदनुष्ठानेन बृहद्रवाः यथा बृहच्छब्दवान् **बृहन्** वर्धमानो वर्धयन् **भवामि तथा त्वमपि भव।**

जैसे मैं इन उक्त कार्यों को करने से (**बृहद्रवाः**) बड़ा स्तुति भाजन एवं (**बृहन्**) बड़ा कहलाता हूँ, वैसे तू भी बन। और—

यथा चाहमिन्द्राय परमैश्वर्यप्रापकाय **बृहतीं** महतीं **वाचं** वाणीं **वदामि तथा चैतां त्वमपि वद** उपदिश॥ ५। २२॥

जैसे मैं (**इन्द्राय**) परम ऐश्वर्य के दाता को (**बृहतीम्**) महती बड़ी (**वाचम्**) वेदवाणी का उपदेश करता हूँ वैसे इसका तू भी (**वद**) उपदेश कर॥ ५। २२॥

[**हे मनुष्य ! यथाऽहं देवस्य···प्रसवे···यथं** यज्ञमाददे त्वा=तं त्वमपि तथादत्स्व···]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः॥ यथा विद्वद्भिरीश्वरसृष्टौ विद्यया पदार्थान् सुपरीक्ष्य कार्येषू पयुज्य सुखानि प्राप्यन्ते, तथैव मनुष्यै रिदमनुष्ठाय सुखानि प्रापणीयानि॥ ५। २२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है॥ जैसे विद्वान् लोग ईश्वर की सृष्टि में विद्या के द्वारा पदार्थों की भली भाँति परीक्षा करके, उनका कार्यों में उपयोग कर सुखों को प्राप्त करते हैं वैसे ही सब मनुष्य इस यज्ञ का अनुष्ठान करके सुखों को प्राप्त करें॥ ५। २२॥

भाष्यसार—**१. यज्ञ किस लिये करें**—सबके प्रकाशक, आनन्द के दाता, सकल जगत् के उत्पादक ईश्वर की सृष्टि में विद्वान् लोग प्राण-अपान के बल और वीर्य से, पुष्टिकारक पृथिवी के धारण और आकर्षण शक्ति से यज्ञ को ग्रहण करते हैं, नरों की की हुई क्रिया होने से यज्ञ क्रिया को नारी कहते हैं जो सबका पालन करने वाली है इसलिये विद्वान् लोग इसे ग्रहण करते हैं। विद्वान् लोग राक्षसों की ग्रीवा का छेदन करते हैं क्योंकि यह भी यज्ञ है। विद्वान् बहुत उपदेश करने वाला होता है जिससे वह सर्वत्र वृद्धि को प्राप्त होता है। उपदेश करना यज्ञ है। जो विद्वान् को परम-ऐश्वर्य प्रदान करता है। विद्वान् उसके लिए वाणी (**विद्या**) का उपदेश करता है। विद्यादान यज्ञ है।

ईश्वर की इस सृष्टि में विद्वानों के समान सब मनुष्य मन्त्रोक्त यज्ञानुष्ठान से सब सुखों को प्राप्त करें ॥ ५ । २२ ॥

दीर्घतमाः । **यज्ञः=उपकारः** । आद्यस्य याजुषी बृहती । मध्यमः । आसुरी गायत्री । षड्जः । निष्टच इत्यस्य ब्राह्म्यनुष्टुप् । गान्धारः । यम्मे सबन्धुरित्युत्तरस्य स्वराड् ब्राह्म्युष्णिक् ऋषभः ॥

सृष्टेर्मनुष्यैः कीदृश उपकारो ग्राह्य इत्युपदिश्यते ॥

सृष्टि से मनुष्यों को किस प्रकार का उपकार ग्रहण करना चाहिये, इस विषय का उपदेश किया है ॥

र॒क्षो॒हणं॑ वलग॒हनं॑ वैष्ण॒वीमि॒दम॒हं तं ब॑ल॒गमुत्कि॑रामि॒ यं मे॒ निष्ट्यो॒ यम॒मात्यो॑ निच॒खाने॒दम॒हं तं ब॑ल॒गमुत्कि॑रा॒मि॒ यं मे॑ स॒मा॒नो यम॑स॑मानो निच॒खाने॒दम॒हं तं ब॑ल॒गमु॒त्कि॑रा॒मि॒ यं मे॒ सब॑न्धु॒र्यम॑स॑बन्धु॒र्नि॑च॒खाने॒दम॒हं तं ब॑ल॒गमु॒त्कि॑रा॒मि॒ यं मे॑ स॒जा॒तो यम॑स॑जातो निच॒खानो॒त्कृ॒त्या॒ङ्कि॑रामि ॥ २३ ॥

पदार्थः—(**रक्षोहणम्**) यथा येन धार्मिकेण पुरुषेण रक्षांसि हन्यन्ते तथा (**बलगहनम्**) यथा यो बलानि गाहते तम् । अत्र गाहूधातोर्बाहुलकादौणादिकः क्युः प्रत्ययो ह्रस्वत्वं च (**वैष्णवीम्**) विष्णोर्व्यापकस्येमां वाचम् (**इदम्**) कर्म (**अहम्**) कर्मानुष्ठाता (**तम्**) यज्ञम् (**बलगम्**) बलं गच्छन्तम् (**उत्**) उत्कृष्टम् (**किरामि**) विक्षिपामि (**यम्**) यज्ञम् (**मे**) मम (**निष्टचः**) नेशन्ति=समादधते येन यज्ञेन तत्सहितः साधुर्विद्वान् । अत्र निशधातोर्बाहुलकादौणादिकस्तः प्रत्ययस्ततो यत् (**यम्**) यज्ञम् (**अमात्यः**) मेधावी खानकः प्रधानभृत्यः (**निचखान**) यथा नितरां खातवान् (**इदम्**) भूगर्भविद्यापरीक्षार्थं स्थानम् (**अहम्**) भूगर्भविद्यावेत्ता (**तम्**) कृष्याद्याख्यं यज्ञम् (**बलगम्**) बलप्रापकम् (**उत्**) उत्कृष्टे (**किरामि**) (**यम्**) अध्ययनाध्यापनाख्यम् (**मे**) मम (**समानः**) सदृशः (**यम्**) पूर्वोक्तम् (**असमानः**) असदृशः (**निचखान**) यथा नितरां खनति (**इदम्**) कर्म (**अहम्**) अध्यापकोऽध्येता वा (**तम्**) (**बलगम्**) आत्मबलप्रापकम् (**उत्**) उत्कृष्टे (**किरामि**) विक्षपामि (**यम्**) परस्परं पालनहेतुं यज्ञम् (**मे**) मम (**सबन्धुः**) यथा समाना बन्धवो यस्य मित्रस्य सः (**यम्**) पूर्वोक्तम् (**असबन्धुः**) यथा असमाना बन्धवो यस्य सः (**निचखान**) यथा नितरां खातवान् खनति वा (**इदम्**) कर्म (**अहम्**) सर्वसुहृत् (**तम्**) (**बलगम्**) राज्यबलप्रापकम् (**उत्**) उत्कृष्टे (**किरामि**) प्रक्षिपामि (**यम्**) उत्कर्षप्रापकम् (**मे**) मम (**सजातः**) यथा सहैव जातः (**यम्**) उक्तम् (**असजातः**) यथा यः सह न जातः (**निचखान**) यथा नित्यं खातवान् खनति वा (**उत्**) उत्कृष्टे (**कृत्याम्**) करोति यया ताम् (**किरामि**) प्रक्षिपामि ॥ अयं मंत्रः शत० ३ । ५ । ४ । ८--१२ व्याख्यातः ॥ २३ ॥

प्रमाणार्थ—(**बलगहनम्**)यहां 'गाहू' धातु से बहुल करके औणादिक 'क्यु' प्रत्यय और ह्रस्व है । (**निष्टचः**) यह शब्द 'निश' धातु से बहुल करके औणादिक 'त' प्रत्यय, तत्पश्चात् 'यत्' प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ५ । ४ । ८--१२) में की गई है ॥ २३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **विद्व-मनुष्य** ! **यथा कश्चिद् बलगहनं** यथा यो बलानि गाहते तं **यथा रक्षोहणं** यथा येनधार्मिकेण पुरुषेण रक्षांसि हन्यन्ते तथा, **वैष्णवीं** विष्णो=व्यपिकस्येमां **वाचमनुष्ठाय यं** (यज्ञं) **बलगं=यज्ञं** बलं गच्छन्तं

भावार्थ—हे विद्वान् मनुष्य ! जैसे (**बलगहनम्**) बलों का विलोडन करने (**रक्षोहणम्**) धार्मिक जनों से राक्षसों का हनन कराने वाले यज्ञ को तथा (**वैष्णवीम्**) व्यापक विष्णु की वाणी का अनुष्ठान करके जिस (**बलगम्**) बलदायक यज्ञ को

[**इदम्**] कर्म [**च**] **यथाहं** कर्मानुष्ठाता **उत्किरामि** उत्कृष्टं विक्षिपामि **तथा त्वमेप्येतमुत्किर ।**

और [**इदम्**] इस कर्म को (**अहम्**) यज्ञ करने वाला मैं (**उत्किरामि**) ऊँचा उठाता हूँ वैसे तू भी इसे ऊँचा उठा ।

यथा कस्यचिन्मे=मम निष्टचः नेशन्ति=समादधते येन यज्ञेन तत् सहितः साधुर्विद्वान् **अमात्यो** मेधावी खानकः प्रधानभृत्यः **यं=यज्ञमिदं=स्थानादि च** भूगर्भ-विद्या-परीक्षार्थं स्थानं **निचखान** यथा नितरां खातवान् **तथा तव भृत्यो निखनतु ।**

जैसे (**मे**) मेरे (**निष्ट्यः**) यज्ञ करने वाला श्रेष्ठ विद्वान् (**अमात्यः**) मेधावी यज्ञभूमि का खनन करने वाले प्रधान भृत्यने (**यम्**) जिस यज्ञ को एवं (**इदम्**) भूगर्भ-विद्या के परीक्षास्थान आदि को (**निचखान**) खोदा है, वैसे तेरा भृत्य भी खोदे । और—

यथाऽहं भूगर्भविद्यावेत्ता **यं** पूर्वोक्तं **बलगं** बलप्रापकं **यज्ञमुत्किरामि** उत्कृष्टं विक्षिपामि **तथा तं** कृष्याद्याख्यं यज्ञं **त्वमप्युत्किर ।**

जैसे (**अहम्**) भूगर्भविद्या का जानने वाला मैं (**यम्**) जिस पूर्वोक्त (**बलगम्**) बल प्राप्त कराने वाले यज्ञ को समुन्नत करता हूँ वैसे तू (**तम्**) उस कृषि आदि यज्ञ को समुन्नत कर । और—

यथा मे=मम वा समानः सदृशः **असमानः** असदृशः **च यं=यज्ञं** अध्ययनाध्यापना ख्यम् **इदं=कर्म च निचखान** यथा नितरां खनति **तथा तवापि निखनतु ।**

जैसे (**मे**) मेरे (**समानः**) सदृश वा (**असमानः**) असदृश व्यक्ति (**यम्**) जिस अध्ययन-अध्यापन रूप यज्ञ को और (**इदम्**) इस यज्ञ कर्म को (**निचखान**) नियमपूर्वक करता है वैसे तेरे समान वा असमान व्यक्ति भी किया करें । और—

यथाऽहम् अध्यापकोऽध्येता वा **यम्** अध्ययनाध्यापनाख्यम् **बलगम्** आत्मबलप्रापकं **यज्ञमुत्किरामि** उतकृष्टं विक्षिपामि **तथा त्वमप्येतमुत्किर ।**

जैसे (**अहम्**) मैं अध्यापक वा शिष्य (**यम्**) जिस पठन-पाठन नामक (**बलगम्**) आत्मिक-बल देने वाले यज्ञ को (**उत्किरामि**) बढ़ता हूँ वैसे तू भी इस यज्ञ को बढ़ा । और—

यथा मे=ममः सबन्धुः यथा समाना बन्धवो यस्य मित्रस्य सः **असबन्धुः** यथा असमाना बन्धवो यस्य सः **च यं** परस्परं पालन-हेतुं **यज्ञमिदं=कर्म च निचखान** यथा नितरां खातवान् खनति वा **तथा तवापि चैतं निखनतु ।**

जैसे मेरा (**सबन्धुः**) बन्धु के समान अर्थात् मित्र और (**असबन्धुः**) बन्धु के असमान अर्थात् अमित्र (**यम्**) जिस परस्पर रक्षा के निमित यज्ञ को और (**इदम्**) इस यज्ञ कर्म को (**निचखान**) गहराई तक ले जाता है, वैसे तेरा मित्र वा अमित्र भी इस यज्ञ को गहराई तक पहुँचाए । और—

यथाऽहं सर्वसुहृद् **यं** पूर्वोक्तं **बलगं=यज्ञं** राज्यबलप्रापकम् **उत्किरामि** उत्कृष्टं प्रक्षियामि **तथा त्वमप्येतमुत्किर ।**

जैसे (**अहम्**) सब का मित्र मैं (**यम्**) जिस पूर्वोक्त (**बलगम्**) राज्यबल प्राप्त कराने वाले यज्ञ को (**उत्किरामि**) विस्तृत करता हूँ वैसे तू भो इसे विस्तृत कर । और—

यथा मे=मम सजातः यथा सहैव जातः **असजातः** यथा यः सह न जातः **च यम्** उत्कर्षप्रापकम् **यज्ञं कृत्यां** करोति यया तां **निचखान** यथा नित्यं खातवान् खनति वा **तथा तवाप्येतमेतां च निखनतु ।**

जैसे (**मे**) मेरा (**सजातः**) साथी अथवा (**असजातः**) मुझ से छोटा वा बड़ा व्यक्ति (**यम्**) जिस उन्नति शिखर पर पहुँचाने वाले यज्ञ को एवं (**कृत्याम्**) क्रिया को (**निचखान**) नित्य करता है, वैसे तेरा साथी वा दूसरा तुझ से छोटा-बड़ा व्यक्ति

यथाऽहं सर्वसुहृत् **एतत्सर्वमुत्किरामि** उत्कृष्टं प्रक्षिपामि **तथा त्वमप्येनमुत्किर** ॥ ५ । २३ ॥

भी इसे नित्य करें । और—

जैसे (**अहम्**) सबका मित्र मैं इन पूर्वोक्त सब कर्मों को (**उत्किरामि**) बढ़ाता हूँ, वैसे तू भी इन्हें बढ़ा ॥ ५ । २३ ॥

[हे विद्वन्मनुष्य !···बलगं=यज्ञं यथाहमुत्किरामि तथा त्वमप्येतमुत्किर···]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ मनुष्यैरस्यामीश्वरसृष्टौ धार्मिकविद्वदनुकरणं कार्यं नेतरेषामिति ॥ ५ । २३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ सब मनुष्य ईश्वर की इस सृष्टि में धार्मिक विद्वानों का अनुकरण करें, अन्यों का नहीं । यह तात्पर्य है ॥ ५ । २३ ॥

भाष्यसार—१. **सृष्टि से मनुष्य कैसा उपकार ग्रहण करें**—विद्वान् लोग बल अर्थात् शत्रु सेना का विलोडन करने वाले, धार्मिक पुरुषों के द्वारा राक्षसों का हनन करने वाले, बल को प्राप्त कराने वाले यज्ञकर्म का अनुष्ठान करें तथा वेदवाणी का भी प्रचार करें । यज्ञ से सबका समाधान करने वाले विद्वान् अपने मेधावी प्रधान भृत्य से यज्ञवेदि तथा भूगर्भविद्या की परीक्षा के लिये स्थान का खनन करावें । भूगर्भ विद्या का वेत्ता विद्वान् बलदायक इस भूगर्भविद्या रूप यज्ञ को समुन्नत करे । अध्यापक तथा अध्येता छात्र आत्मिक बल के देने वाले अध्ययन-अध्यापन रूप यज्ञ को नित्य बढ़ावें । विद्वानों के बन्धु तथा अबन्धु भी परस्पर रक्षा रूप यज्ञ का अनुष्ठान करें । विद्वान् पुरुष सबके मित्र होकर राज्यबल को प्राप्त कराने वाले यज्ञ का अनुष्ठान करें । विद्वानों के समान आयु वाले तथा छोटे वा बड़े पुरुष भी उत्कर्ष पर पहुँचाने वाले यज्ञकर्म का नित्य आचरण करें ।

धार्मिक विद्वानों के इस आचरण का सब मनुष्य अनुकरण करें ।

२. **अलङ्कार**—मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि शब्द लुप्त है । इसलिये वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है । उपमा यह है कि धार्मिक विद्वानों के समान सब मनुष्य सृष्टि से उपकार ग्रहण करें ॥ ५ । २३ ॥

औतथ्यो दीर्घतमाः । **सूर्यविद्वांसौ**=**स्पष्टम्** ॥ भुरिगार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

अथ सूर्यसभाद्यध्यक्षगुणा उपदिश्यन्ते ॥

अब सूर्य और सभा आदि के अध्यक्ष विद्वान् के गुणों का उपदेश किया जाता है ॥

स्वराडसि सपत्नहा सत्रराडस्यभिमातिहा जनराडसि रक्षोहा सर्वराडस्यमित्रहा ॥ २४ ॥

पदार्थः—(**स्वराट्**) यः स्वयं राजते सः (**असि**) अस्ति वा । अत्र सर्वत्र पक्षे व्यत्ययः (**सपत्नहा**) यः सपत्नान्=शत्रून् मेधावयमान् वा हन्ति सः (**सत्राट्**) यः सत्रेषु=यज्ञेषु राजते सः (**असि**) अस्ति वा (**अभिमातिहा**) येऽभिमिमत इत्यभिमातयस्तान् हन्ति सः । अत्रौणादिकः क्तिच् (**जनराट्**) **यो** जनेषु=धार्मिकेषु विद्वत्सु राजते सः (**असि**) अस्ति वा (**रक्षोहा**) यो रक्षांसि=दुष्टान् हन्ति सः (**सर्वराट्**) यः सर्वस्मिन् राजते सः (**असि**) अस्ति वा (**अमित्रहा**) यो येन वाऽमित्रान्=शत्रून् हन्ति सः ॥ अयं मंत्रः शत० ३ । ५ । ४ । १४ व्याख्यातः ॥ २४ ॥

प्रमाणार्थ—(असि) अस्ति । इस मन्त्र में 'असि' पद पर पक्ष में सर्वत्र व्यत्यय है । (अभिमातिहा) यहां 'अभिमाति' शब्द 'मा' धातु से औणादिक 'क्तिच्' प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ५ । ४ । १४) में की गई है ॥ ५ । २४ ॥

[विद्वान्]

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् मनुष्य ! **यतस्त्वं स्वराट्** य स्वयं राजते सः, **असि, तस्मात् सपत्नहा** यः सपत्नान्=शत्रून् हन्ति सः, **असि**=भवसि । **यतस्त्वं सत्रराट्** यः सत्रेषु=यज्ञेषु राजते सः **असि, तस्मादभिमातिहा** येऽभिमिमत इत्यभिमातयस्तान् हन्ति सः, **वर्तसे** । **यतस्त्वं जनराट्** यो जनेषु=धार्मिकेषु विद्वत्सु राजते सः, **असि, तस्माद् रक्षोहा** यो रक्षांसि=दुष्टान् हन्ति सः, **असि**=भवसि । **यतस्त्वं सर्वराट्** यः सर्वस्मिन् राजते सः, **असि, तस्मादमित्रहा** यो ऽमित्रान्=शत्रून् हन्ति सः, **असि**=**भवसीत्येकः** ॥

[विद्वान्]

भाषार्थ—हे विद्वान् मनुष्य ! जिससे तू (**स्वराट्**) स्वतन्त्र, (**असि**) है, इसलिए (**सपत्नहा**) शत्रुओं को नष्ट करने वाला (**असि**) है । क्योंकि तू (**सत्रराट्**) यज्ञों का राजा (**असि**) है, इसलिये (**अभिमातिहा**) अभिमानी लोगों को नष्ट करने वाला है । क्योंकि तू (**जनराट्**) धार्मिक विद्वानों का राजा (**असि**) है, इसलिए (**रक्षोहा**) दुष्ट, राक्षस जनों का हनन करने वाला (**असि**) है । क्योंकि तू (**सर्वराट्**) सबका राजा (**असि**) है, इसलिये (**अमित्रहा**) अमित्र अर्थात् विरोधियों का विनाश करने वाला (**असि**) है । यह इस मंत्र का पहला अर्थ है ॥

[सूर्यः]

यतोऽयं सूर्यलोकः स्वराट् यः स्वयं राजते सः, [**असि**] **अस्ति तस्मात् सपत्नहा** मेघावयवान् हन्ति सः, [**असि**]=**भवति** । **यतोऽयं सत्रराट्** यः सत्रेषु=यज्ञेषु राजते सः, [**असि**]=**अस्ति तस्मादभिमातिहा** ये अभिमिमत इत्यभि मातयस्तान् हन्ति सः, [**असि**] **वर्तते** । **यतोऽयं जनराट्** यो जनेषु=धार्मिकेषु विद्वत्सु राजते सः, [**असि**] **अस्ति तस्माद्रक्षोहा** यो रक्षांसि=दुष्टान् हन्ति सः **जायते** । **यतोऽयं सर्वराट्** यः सर्वस्मिन् राजते सः [**अस्ति**] **अस्ति तस्मादमित्रहा** यो येन वाऽमित्रान्=शत्रून् हन्ति सः, **वर्तत इति द्वितीयः** ॥ ५ । २४ ॥

[सूर्य]

जिससे यह सूर्यलोक (**स्वराट्**) स्वयं प्रकाशमान (**असि**) है इसलिये मेघों को नष्ट करने वाला (**असि**) है । क्योंकि यह (**सत्रराट्**) यज्ञों का राजा (**असि**) है इसलिये (**अभिमातिहा**) अभिमानी जनों को नष्ट करने वाला है । क्योंकि यह (**जनराट्**) धार्मिक विद्वान् लोगों का राजा (**असि**) है, इसलिये (**रक्षोहा**) अपने प्रकाश से दुष्ट राक्षस लोगों को दूर भगाने वाला है । क्योंकि यह (**सर्वराट्**) सबको प्रकाशित करने वाला है इसलिये (**अभित्रहा**) अमित्र अर्थात् शत्रुओं को नष्ट करने वाला है । यह इस मन्त्र का दूसरा अर्थ है ॥ ५ । २४ ॥

[हे विद्वन्मनुष्य ! यतस्त्वं स्वराडसि तस्मात् सपत्नाहऽसि=भवसि'''']

भावार्थः—अत्र श्लेषालङ्कारः ॥ हे विद्वन् ! यथा सूर्यः स्वप्रकाशेन चोरव्याघ्रादीन् भीषयित्वा सर्वान् सुखयति, तथैव त्वं शत्रून् निवार्य प्रजाः सुखय ॥ ५ । २४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष अलङ्कार है ॥ हे विद्वान् पुरुष ! जैसे सूर्य अपने प्रकाश से चोर, व्याघ्र आदिकों को डरा कर सब लोगों को सुख देता है वैसे ही तू सब शत्रुओं का निवारण करके प्रजा को सुखी कर ॥ ५ । २४ ॥

भाष्यसार—**१. सभा आदि के अध्यक्ष विद्वान् के गुण**—विद्वान् पुरुष स्वयं राजा होने से शत्रुओं का हनन करने वाला, यज्ञों का राजा होने से अभिमानी जनों का हन्ता, धार्मिक विद्वान् जनों

का राजा होने से दुष्ट राक्षसों को नष्ट करने वाला, सब का राजा होने से अमित्र अर्थात् शत्रुओं का हन्ता होता है।

२. **सूर्य के गुण**—सूर्य स्वयं प्रकाशमान होने से मेघों को नष्ट करने वाला, यज्ञों का राजा होने से अभिमानी जनों को नष्ट करने वाला, धार्मिक विद्वान् जनों का राजा होने से दुष्ट राक्षस चोर आदि को अपने प्रकाश से दूर भगाने वाला, सबका मित्र होने से शत्रुओं को दूर करने वाला है।

३. **अलङ्कार**—यहाँ श्लेष अलङ्कार से विद्वान् और सूर्य अर्थ का ग्रहण किया है ॥ ५। २४ ॥

औतथ्यो दीर्घतमाः। **यज्ञः=स्पष्टम् [यज्ञ]** ॥ आद्यस्य ब्राह्मी बृहती। मध्यमः बलगहना-उपेत्युत्तरस्यार्षी पंक्तिः। पंचमः ॥

यजमानः सभाद्यध्यक्षादयो यज्ञानुष्ठातृन्मनुष्यान् यज्ञसामग्रीं ग्राहयेयुरित्युपदिश्यते ॥

यजमान तथा सभा आदि के अध्यक्ष आदि लोग यज्ञानुष्ठान करने वाले मनुष्यों को यज्ञ सामग्री का ग्रहण करावें, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

रक्षोहणो वो बलगहनः प्रोक्षामि वैष्णवान्रक्षोहणो वो बलगहनोऽवनयामि वैष्णवान्रक्षोहणो वो बलगहनोऽवस्तृणामि वैष्णवान्रक्षोहणौ वां बलगहनाऽउपदधामि वैष्णवी रक्षोहणौ वां बलगहनौ पर्यूहामि वैष्णवी वैष्णवमसि वैष्णवा स्थ ॥ २५ ॥

पदार्थः—(**रक्षोहणः**) यथा यूयं ये रक्षांसि=दुःखानि हथ तथा (**वः**) युष्मानेतांश्च (**बलगहनः**) यथा यो बलानि गाहते तथा भूतोऽहम् (**प्र**) प्रकृष्टार्थे (**उक्षामि**) सिञ्चामि (**वैष्णवान्**) विष्णुर्यज्ञो देवता येषां तान् (**रक्षोहणः**) यथा यूयं रक्षांसि=दुष्टान् दस्य्वादीन् हथ तथा तान् (**वः**) युष्मानेतान्वा (**बलगहनः**) यथा यो बलानि=शत्रुसैन्यानि गाहते तथाऽहम् (**अव**) विनिग्रहार्थे (**नयामि**) प्राप्नोमि प्रापयामि वा (**वैष्णवान्**) विष्णोर्यज्ञस्येमान् (**रक्षोहणः**) यथा यूयं रक्षांसि=शत्रून् हथ तथाऽहं तान् (**वः**) युष्मानेतान्वीरान्वा (**बलगहनः**) यथाऽहं बलानि=स्वसैन्यानि गाहे तथा व्यूहशिक्षया विलोडयत (**अव**) विनिग्रहे (**स्तृणामि**) आच्छादयामि (**वैष्णवान्**) यज्ञानुष्ठातॄन् (**रक्षोहणौ**) यथा रक्षसां हन्तारौ प्रजासभाद्यध्यक्षौ तथाऽहम् (**वाम्**) उभौ (**बलगहनौ**) यथा युवां बलानि गाहेथे तथाऽहम् (**उप**) समीप्ये (**दधामि**) धरामि (**वैष्णवी**) विष्णोरियं क्रिया (**रक्षोहणौ**) यथा रक्षसां=शत्रूणां हन्तारौ भवथस्त-थाऽहम् (**वाम्**) उभौ (**बलगहनौ**) यथा युवां बलानि गाहेथे तथाऽहम् (**परि**) सर्वतः (**ऊहामि**) तर्केण निश्चिनोमि (**वैष्णवी**) विष्णोः=समग्रविद्याव्यापकस्येयं रीतिस्ताम् (**वैष्णवम्**) विष्णोरिदं विज्ञानम् (**असि**) अस्ति (**वैष्णवाः**) विष्णोर्व्यापकस्येम उपासकाः (**स्थ**) भवत ॥ **अयं मंत्रः श० ३। ५। ४। १८-२४** व्याख्यातः ॥ २५ ॥

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३। ५। ४। १८-२४) में की गई है ॥ ५। २५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **सभाध्यक्षादयो मनुष्याः! यूयं यथा रक्षोहणः** यथा यूयं ये रक्षांसि=दुःखानि हथ तथा **स्थ, तथा बलगहनः** यथा यो बलानि गाहते तथाभूतः **अहं वः=युष्मान् सत्कृत्यै-**

भावार्थ—हे सभाध्यक्ष आदि मनुष्यो! तुम लोग जैसे (**रक्षोहणः**) दुःखों का नाश करने वाले हो वैसे (**बलगहनः**) सैन्य का विलोडन करने वाला मैं (**वः**) तुम्हारा सत्कार करके इन दुष्ट लोगों को

तान् दुष्टान् युद्धे शस्त्रैः प्र-उक्षामि प्रकृष्टं सिञ्चामि ।

युद्ध में शस्त्रों द्वारा (**प्रोक्षामि**) रक्त धारा से सींचता हूँ ।

यथा रक्षोहणः यथा यूयं रक्षांसि=दुष्टान् दस्य्वादीन् हथ तथा **यूयं नो दुःखानि हथ, तथा बलगहनः** यथा यो बलानि=शत्रुसैन्यानि गाहते तथा **अहं वः**=**युष्मान्** [**वैष्णवान्**] विष्णुः=यज्ञो देवता येषां तान् **सुखैः सम्मान्यैतानवनयामि** प्राप्नोमि प्रापयामि वा ।

और जैसे (**रक्षोहणः**) राक्षस आदि दुष्ट दस्यु आदि को मारने वाले आप लोग हमारे दुःखों को को नष्ट करते हो वैसे (**बलगहनः**) बल अर्थात् शत्रु सेना का विलोडन करने वाला मैं (**वः**) तुम [**वैष्णवान्**] विष्णु अर्थात् यज्ञ देवता वाले, सब सुखद वस्तुओं से सम्मान करके आप लोगों को (**अवनयामि**) प्राप्त करता हूँ ।

यथा रक्षोहणः यथा यूयं रक्षांसि=शत्रून् हथ तथा तान् **वैष्णवान्** विष्णोः=यज्ञस्येमान् **वः**=**युष्मानेताँश्च** एतान् वीरान् वा **अवस्तृणीथ तथा बलगहनः** यथाहं बलानि=स्वसैन्यानि गाहे तथा व्यूहशिक्षया विलोडयत **अहमेवैतान्** [**वैष्णवान्**] यज्ञानुष्ठातॄन् **अवस्तृणामि** आच्छादयामि ।

और जैसे (**रक्षोहणः**) शत्रुओं का हनन करने वाले, (**वैष्णवान्**) यज्ञ करने वाले आप (**वः**) अपने लोगों की वा इन वीरों की रक्षा करते हो तथा (**बलगहनः**) जैसे मैं अपने सैन्य का विलोडन करता हूँ वैसे तुम भी करो। तथा मैं इन (**वैष्णवान्**) यज्ञ करने वालों की (**अवस्तृणामि**) रक्षा करता हूँ ।

यथा रक्षोहणौ यथा रक्षसां हन्तारौ प्रजासभाद्यध्यक्षौ तथा, **बलगहनौ** यथा युवां बलानि गाहेथे तथाऽहं **यज्ञस्वामि-सम्पादकौ वाम्** उभौ **उपधत्तस्तथैवाहमेतानुपदधामि** समीपं धरामि ।

और जैसे (**रक्षोहणौ**) राक्षसों का हनन करने वाले प्रजा एवं सभा आदि के अध्यक्ष (**बलगहनौ**) सैन्य का विलोडन करके यज्ञ के सम्पादक तथा स्वामी बनाने वाले (**वाम्**) दोनों का तुम धारण करते हो वैसे मैं इनको (**उपदधामि**) समीप धारण करता हूँ ।

यथा रक्षोहणौ यथा रक्षसां=शत्रूणां हन्तारौ भवथस्तथा **बलगहनौ** यथा युवां बलानि गाहेथे तथा **वाम्** उभौ **या वैष्णवी** विष्णोरियं (क्रिया) **क्रियाऽस्ति तथा पर्यूहतस्तथैवाहमेतां पर्यूहामि** सर्वतस्तर्केण निश्चिनोमि ।

जैसे (**रक्षोहणौ**) शत्रुओं को नष्ट करने वाले (**बलगहनौ**) सैन्य का विलोडन करने वाले (**वाम्**) दोनों जिस (**वैष्णवी**) विष्णु की क्रिया से निश्चय करते हैं, वैसे ही मैं इस क्रिया का (**पर्यूहामि**) सब ओर से निश्चय करता हूँ ।

यद् वैष्णवं विष्णोरिदं विज्ञानं **ज्ञानं** [**वैष्णवी**] विष्णोः=समग्रविद्याव्यापकस्येयं रीतिस्तां **यूयं सर्वत ऊहथ तदहमपि पर्यूहामि** सर्वतस्तर्केण निश्चिनोमि ।

और जो (**वैष्णवम्**) विष्णु के ज्ञान–विज्ञान को तथा [**वैष्णवी**] समस्त विद्या से परिपूर्ण विष्णु की रीति को तुम लोग सब ओर से अहित करते हो, उसे मैं भी (**पर्यूहामि**) सब ओर से तर्क से निश्चय करता हूँ ।

यथा यूयं वैष्णवाः विष्णोः=व्यापकस्येम उपासकाः **स्थ** भवत **तथा वयमपि भवेम** ।। ५ । २५ ।।

और जैसे तुम लोग (**वैष्णवाः**) व्यापक विष्णु के उपासक (**स्थ**) हो, वैसे हम भी बनें ।। ५ । २५ ।।

[**हे सभाध्यक्षादयो मनुष्याः ! यूयं यथा रक्षोहणः** स्थ, तथा बलगहनोऽहं वः=युष्मान् सत्कृत्यैतान् दुष्टान् **युद्धे शस्त्रैः प्रोक्षामि, यथा यूयं** वैष्णवा स्थ तथा वयमपि भवेम]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारौ॥ मनुष्यैः परमेश्वरोपासना-युक्त व्यवहाराभ्यां पूर्णं शरीरात्मबलं सम्पाद्य, यज्ञेन प्रजापालनं, शत्रून् विजित्य सार्वभौमराज्यं च प्रशासनीयम्॥ ५। २५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है॥ सब मनुष्य परमेश्वर की उपासना तथा युक्त व्यवहार से पूर्ण शारीरिक और आत्मिक बल को सिद्ध करके यज्ञ से प्रजा का पालन तथा शत्रुओं को जीतकर सार्वभौम राज्य का शासन करें॥ ५। २५॥

भाष्यसार—१. **सभाध्यक्ष आदि विद्वान् यज्ञकर्त्ताओं को यज्ञसामग्री का ग्रहण करावें**—सभा के अध्यक्ष आदि विद्वान् पुरुष जैसे दुःखों का विनाश करें वैसे यज्ञानुष्ठाता मनुष्य उनका सत्कार करके दुष्टों का युद्ध में शस्त्रों से संहार करें। जैसे उक्त विद्वान् पुरुष दुष्ट दस्यु आदि लोगों का विनाश करें वैसे यज्ञानुष्ठाता मनुष्य उन यज्ञ-देवता वाले विद्वानों का सब सुखों से सम्मान करके उन्हें प्राप्त करें उनका संग करें। जैसे उक्त विद्वान् शत्रुओं का हनन करें, यज्ञकर्त्ता, तथा वीर पुरुषों की रक्षा करें वैसे यज्ञानुष्ठाता मनुष्य अपने सैन्य को व्यूहरचना की शिक्षा देकर यज्ञकर्त्ता जनों की एवं वीर पुरुषों की रक्षा करे। जैसे प्रजा के अध्यक्ष और सभा के अध्यक्ष विद्वान् पुरुष राक्षस का हनन करने वाले शत्रु की सेना का विलोडन करने वाले यज्ञ के स्वामी तथा यज्ञ सम्पादक को अपने पास रखते हैं वैसे यज्ञानुष्ठाता मनुष्य भी उन्हें अपने पास रखें। जैसे शत्रुओं का हनन करने वाले उक्त विद्वान् यज्ञक्रिया में दृढ़ विश्वास रखते हैं वैसे यज्ञानुष्ठाता मनुष्य भी इस यज्ञक्रिया का तर्क से निश्चय करें।

जो विष्णु अर्थात् ईश्वर का ज्ञान-विज्ञान है एवं समग्र विद्या से भरपूर ईश्वर की रीति है उसे जैसे उक्त विद्वान् पुरुष तर्क से निश्चय करते हैं वैसे यज्ञानुष्ठाता मनुष्य भी तर्क से निश्चय करें। जैसे उक्त विद्वान् वैष्णव=विष्णु अर्थात् ईश्वर के उपासक हैं वैसे यज्ञानुष्ठाता मनुष्य भी ईश्वर के उपासक बनें। इस प्रकार ईश्वर की उपासना तथा राज्य सम्बन्धी उचित व्यवहार को सीख कर, शरीर और आत्मिक बल को प्राप्त करके यज्ञ से प्रजा का पालन करें। शत्रुओं पर विजय प्राप्त करें। सार्वभौम चक्रवर्ती राज्य पर शासन करें।

२. **अलङ्कार**—मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि शब्द लुप्त है इसलिये वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि सभाध्यक्ष आदि विद्वानों के समान यज्ञानुष्ठाता मनुष्य भी युद्ध में शत्रुओं का संहार करें इत्यादि॥ ५। २५॥

औतथ्यो दीर्घतमाः। **यज्ञः=स्पष्टम्**॥ आद्यस्य निचृदार्षी पंक्ति। पञ्चमः। यवोऽसीत्युत्तरस्य निचृदार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

किमर्थोऽयं यज्ञोऽनुष्ठातव्य इत्युपदिश्यते॥

किसलिये इस यज्ञ को करना चाहिये, इस विषय का उपदेश किया है॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। आददे नार्यसीदमहꣳ रक्षसां ग्रीवाऽअपिकृन्तामि। यवोऽसि यवयास्मद्द्वेषो यवयारातीर्दिवे त्वाऽन्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वा शुन्धन्ताँल्लोकाः पितृषदनाः पितृषदनमसि॥ २६॥

पदार्थः—(**देवस्य**) सर्वानन्दप्रदस्य (**त्वा**) त्वां होमशिल्पाख्ययज्ञकर्त्तारम् (**सवितुः**) सकलो-

त्पादकस्येश्वरस्य (**प्रसवे**) यथा सृष्टौ तथा (**अश्विनोः**) प्राणापानयोः (**बाहुभ्याम्**) यथा बलवीर्याभ्यां तथा (**पूष्णः**) पुष्टिमतो वीरस्य (**हस्ताभ्याम्**) यथा प्रबलभुजदण्डाभ्यां तथा (**आ**) समन्तात् (**ददे**) गृह्णामि (**नारि**) नराणामियं शक्तिमती स्त्री तत्सम्बुद्धौ (**असि**) भवति (**इदम्**) विश्वम् (**अहम्**) सभाध्यक्षः (**रक्षसाम्**) दुष्टकर्मकारिणां प्राणिनाम् (**ग्रीवाः**) शिरांसि (**अपि**) निश्चये (**कृन्तामि**) छिनद्मि (**यवः**) मिश्रणामिश्रणकर्ता (**असि**) वर्तसे (**यवय**) श्रेष्ठैर्गुणैः सह मिश्रय, दोषेभ्यश्च दूरीकारय। **अत्र वा छन्दसीति वृद्धचभावः** (**अस्मत्**) स्वेभ्यः (**द्वेषः**) ईर्ष्यादिदोषान् (**यवय**) दूरीकारय (**अरातीः**) शत्रून् (**दिवे**) सत्यधर्मप्रकाशाय (**त्वा**) त्वाम् (**अन्तरिक्षाय**) आकाशे गमनाय (**त्वा**) त्वाम् (**पृथिव्यै**) पृथिवीस्थपदार्थपुष्टये (**त्वा**) त्वाम् (**शुन्धन्ताम्**) पवित्रीकुर्वताम् (**लोकाः**) सर्वे (**पितृषदनाः**) यथा पितृषु=ज्ञानिषु सीदन्ति तथा (**पितृषदनम्**) यथा विद्यावन्तो ज्ञानिनस्सीदन्ति यस्मिंस्तत्तथा (**असि**) अस्ति ॥ **अयं मन्त्रः शत० ३। ६। १। ४-१४ व्याख्यातः ॥ २६ ॥**

प्रमाणार्थ—(**यवय**) यहां 'वा छन्दसि' [अ० १। ४। ६] इस वार्त्तिक से वृद्धि का अभाव है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३। ६। १। ४-१४) में की गई है ॥ ५। २६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्य ! **यथाऽहं सवितुः** सकलोत्पादकस्येश्वरस्य **देवस्य** सर्वानन्दप्रदस्य **प्रसवे** यथा सृष्टौ तथा, **यथा ऽश्विनोः** प्राणापानयोः **बाहुभ्यां** यथा बलवीर्याभ्यां तथा, **यथा पूष्णः** पुष्टिमतो वीरस्य **हस्ताभ्यां** यथा प्रबलभुजदण्डाभ्यां तथा, **अनेकानुपकारानाददे** समन्तात् गृह्णामि, **इदं=विश्वं संरक्ष्य रक्षसां** दुष्टकर्मकारिणां प्राणिनां **ग्रीवाः** शिरांसि **अपि** निश्चयेन **कृन्तामि** छिनद्मि, **यथा पदार्थान् यावयामि तथा त्वमप्यादत्स्व यवय** श्रेष्ठैर्गुणैः सह मिश्रय, दोषेभ्यश्च दूरीकारय **च**।

भाषार्थ—हे मनुष्य ! जैसे मैं विद्वान् (**सवितुः**) सब के उत्पत्तिकर्ता (**देवस्य**) सब आनन्द देने वाले ईश्वर की (**प्रसवे**) सृष्टि में (**अश्विनोः**) प्राण और अपान के (**बाहुभ्याम्**) बल वीर्य से और (**पूष्णः**) बलवान् वीर के (**हस्ताभ्याम्**) बलशाली भुजाओं से अनेक उपकारों को (**आददे**) ग्रहण करता हूँ तथा (**इदम्**) इस विश्व का संरक्षण करके (**रक्षसाम्**) दुष्ट कर्म करने वाले प्राणियों के (**ग्रीवाः**) शिरों का (**अपि**) निश्चय ही (**कृन्तामि**) छेदन करता हूँ और जैसे पदार्थों को मिलाता वा पृथक् करता हूँ वैसे तू भी कर एवं (**यवय**) श्रेष्ठ गुणों से पदार्थों को संयुक्तकर तथा दोषों से दूर कर और करा। और—

यथा ऽहं द्वेषः ईर्ष्यादि दोषान् **अरातीः=शत्रून् अस्मत्** स्वेभ्यः **दूरी कारयामि, तथा त्वमपि यवय** दूरी कारय।

जैसे मैं (**द्वेषः**) ईर्ष्या आदि दोषों को तथा (**अरातीः**) शत्रुओं को (**अस्मत्**) अपने लोगों से दूर करता हूँ वैसे तू भी (**यवय**) दूर हटा।

हे विद्वन्! यथाऽहं समाध्यक्षः **दिवे** सत्यधर्म प्रकाशाय **त्वा=त्वां तमन्तरिक्षाय** आकाशे गमनाय **त्वा=त्वां पृथिव्यै** पृथिवीस्थपदार्थपुष्टये **त्वा=त्वामाश्रयामि तथा सर्वे जना आश्रयन्ताम्**।

हे विद्वान् मनुष्य ! जैसे (**अहम्**) सभा का अध्यक्ष मैं (**दिवे**) सत्य धर्म को प्रकाशित करने के लिये, (**अन्तरिक्षाय**) आकाश की यात्रा के लिये, (**पृथिव्यै**) पृथिवी के पदार्थों की पुष्टि के लिए, (**त्वा**) आपका आश्रय लेता हूँ, वैसे सब लोग विद्वानों का आश्रय ग्रहण किया करें। और—

यथा पितृषदनं यथा विद्यावन्तो ज्ञानिनस्सीदन्ति यस्मिँस्तत्तथा [**असि**]=**अस्ति, येन पितृषदनाः**

जैसे (**पितृषदनम्**) ज्ञानी लोगों की सभा (**असि**) है, जिससे (**पितृषदनाः**) ज्ञानी लोगों में बैठने वाले

यथा पितृषु ज्ञानिषु सीदन्ति तथा **लोकाः** सर्वे **शुन्धन्ति यदहं शुन्धे, तथेदं सर्वं** विश्वम् **शुन्धन्तां** पवित्री कुर्वताम् ।

हे नारि ! नराणामियं शक्ति मती स्त्री तत्सम्बुद्धौ, **त्वमप्येतत्सर्वमेवमेव समाचर** ॥ ५ । २६ ॥

(**लोकाः**) सब लोग शुद्ध होते हैं और मैं शुद्ध होता हूँ वैसे (**इदम्**) उस सारे संसार को ज्ञानी पितर लोग (**शुन्धन्ताम्**) पवित्र करें ।

हे (**नारि**) नरों की सबला स्त्री ! तू भी इस सब उपदेश का इसी प्रकार आचरण कर ॥ ५ । २६ ॥

[हे मनुष्य !⋯यथा पितृषदनम् [असि] अस्ति, येन पितृषदना लोकाः शुन्धन्ति, यदहं शुन्धे, तथेदं सर्वं शुन्धन्ताम्] ।

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः ॥ मनुष्यैर्यथाक्रियं यथानुक्रमं विद्वदाश्रयं कृत्वा यज्ञमनुष्ठाय सर्वेषां शुद्धिः सम्पादनीया ॥ ५ । २६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है ॥ सब मनुष्य क्रिया के अनुसार तथा यथाक्रम विद्वानों का आश्रय करके यज्ञानुष्ठान से सब की शुद्धि करें ॥५ । २६ ॥

भाष्यसार—१. **यज्ञानुष्ठान किस लिए करें**—जैसे विद्वान् पुरुष सकल जगत् के उत्पादक, सब आनन्द के दाता ईश्वर की सृष्टि में प्राण और अपान के बल-वीर्य से, बलवान् वीर पुरुष के हाथों से अनेक उपकार ग्रहण करते हैं, संसार की रक्षा के लिये दुष्ट कर्म करने वाले राक्षसों की ग्रीवा (**गर्दन**) का छेदन करते हैं, सृष्टि के पदार्थों को श्रेष्ठ गुणों से युक्त और दोषों से मुक्त करते हैं, ईर्ष्या आदि दोषों को तथा शत्रुओं को दूर हटाते हैं वैसे सब मनुष्य इस यज्ञ का अनुष्ठान करें ।

जैसे सभाध्यक्ष आदि सत्यधर्म को जानने के लिये, आकाश में गति करने के लिये, पृथिवी के पदार्थों के पोषण के लिये विद्वानों की शरण में जाते हैं वैसे सब मनुष्य भी इस यज्ञ का अनुष्ठान करें ।

जैसे पितर अर्थात् विद्यावान् ज्ञानी लोगों की सभा में बैठने वाले ज्ञानी पुरुष शुद्ध हो जाते हैं वैसे इस यज्ञानुष्ठान से समस्त विश्व को पवित्र करें । पुरुषों के समान देवियाँ भी इस यज्ञ का अनुष्ठान करें ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार यह है कि विद्वानों के समान सब मनुष्य यज्ञानुष्ठान से विश्व को पवित्र करें ॥ ५ ।२६ ॥

औतथ्यो दीर्घतमाः । **यज्ञः**=स्पष्टम् ॥ ब्राह्मी जगती । निषादः ॥

सेवितः सभाध्यक्षोऽनुष्ठितो यज्ञश्च किं करोतीत्युपदिश्यते ॥

अच्छे प्रकार सेवन किया हुआ सभापति और अनुष्ठान किया हुआ यज्ञ क्या करता है, इस विषय का उपदेश किया है ॥

उद्दिवँ स्तभानान्तरिक्षं पृण दृँहस्व पृथिव्यां द्युतानस्त्वा मारुतो मिनोतु मित्रावरुणौ ध्रुवेण धर्मणा । ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि रायस्पोषवनि पर्यूहामि । ब्रह्म दृँह क्षत्रं दृँहायुर्दृँह प्रजां दृँह ॥ २७ ॥

पदार्थः—(**उत्**) उत्कृष्टे (**दिवम्**) प्रकाशम् (**स्तभान**) (**अन्तरिक्षम्**) आकाशं तत्रस्थप्राणि-वर्गं च। **अत्र तात्स्थ्योपाधिना प्राणिनामपि ग्रहणाम्** (**पृण**) अत्रान्तर्भाविणिजर्थः (**दृंहस्व**) वर्धय (**पृथिव्याम्**) भूमौ (**द्युतानः**) यथा दिवं=सद्विद्यागुणं विस्तारयति तथा (**त्वा**) त्वाम् (**मारुतः**) वायुः (**मिनोतु**) प्रक्षिपति (**मित्रावरुणौ**) यथा प्राणापानौ तथा (**ध्रुवेण**) निश्चलेन (**धर्मणा**) धर्मेण (**ब्रह्मवनि**) यथाबल-विद्यासंभाजितारं तथा। **अत्र सर्वत्र सुपां सुलुगिति विभक्तेर्लुक्** (**त्वा**) त्वाम् (**क्षत्रवनि**) क्षत्रस्य=राज्यस्य संसेवयितारं तथा (**रायस्पोषवनि**) यथा रायो=धनसमूहस्य पोषं=पुष्टिं वनन्ति=सेवन्ते यस्मात्तथा (**परि**) सर्वतः (**ऊहामि**) वितर्कयामि (**ब्रह्म**) विद्यां विद्वांसं वा (**दृंह**) वर्धय वर्धयति वा (**क्षत्रम्**) राज्यं क्षण्यते=हिंस्यते नश्यते पदार्थो येन सः क्षतो=घातादिस्ततस्त्रायते=रक्षतीति क्षत्रः=क्षत्रियादिवीरस्तम् (**दृंह**) वर्धय (**आयुः**) जीवनम् (**दृंह**) वर्धय (**प्रजाम्**) उत्पादनीयाम् (**दृंह**) वर्धय ॥ **अयं मंत्रः शत० ३। ६। १। १५-१८ व्याख्यातः ॥ २७ ॥**

प्रमाणार्थ—(**अन्तरिक्षम्**) यहां तात्स्थ्य-उपाधि से अन्तरिक्षस्थ प्राणियों का भी ग्रहण होता है। (**पृण**) यहां 'णिच्' प्रत्यय का अर्थ अन्तर्भावित है। (**ब्रह्मवनि**) यहाँ 'सुपां सुलुक्०' [**अ०** ७। १। ३९] इस सूत्र से 'अम्' विभक्ति का लुक् है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३। ६। १। १५-१८) में की गई है ॥ ५। २७ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे परमविद्वन्!** **यथा त्वा**=**त्वां मारुतो** वायुः **ध्रुवेण** निश्चलेन **धर्मणा** धर्मेण **मिनोतु** प्रक्षिपति, **मित्रावरुणौ** यथा प्राणापानौ तथा, **मिनुतस्तथा त्वं कृपयाऽस्मदर्थं दिवं** प्रकाशं [**उत्+स्तभान**]=**उत्तभान, अन्तरिक्षम्** आकाशं तत्रस्थ प्राणिवर्गं च **पृण** [**दृँहस्व**] वर्धय।

पृथिव्यां भूमौ **द्युतानः** यथा दिवं=सद्विद्यागुणं विस्तारयति तथा, **सन् सुखानि दृंह** वर्धय, **ब्रह्म** विद्यां विद्वांसं वा **दृंह** वर्धय वर्धयति वा **क्षत्रं** राज्यं क्षण्यते=हिंस्यते नश्यते पदार्थो येन स क्षतः=घातादि स्ततस्त्रायते=रक्षतीति क्षत्रः=क्षत्रिया-दिवीरस्तं, **दृंह** वर्धय, **आयुः** जीवनं **दृंह** वर्धय **प्रजाम्** उत्पादनीयां **दृंह** वर्धय।

[**ब्रह्मवनि**] **ब्रह्मवनिं** यथा बलविद्यासंभानि-तारं तथा, [**क्षत्रवनि**] **क्षत्रवनिं** क्षत्रस्य=राज्यस्य संसेवयितारं तथा, [**रायस्पोषवनि**] **रायस्पोषवनिं** यथा रायो=धनसमूहस्य पोषं=पुष्टिं वनन्ति=सेवन्ते यस्मात्तथा, **त्वामहं पर्यूहामि** सर्वतो वितर्कयामि **तथा त्वां सर्वे मनुष्याः पर्यूहन्तु** ॥ ५। २७ ॥

भाषार्थ—हे परम विद्वान् मनुष्य! **जैसे** (**त्वा**) तुझे (**मारुतः**) वायु (**ध्रुवेण**) स्थिर (**धर्मणा**) धर्म से (**मिनोतु**) संयुक्त करता है, और (**मित्रावरुणौ**) प्राण तथा अपान (**मिनुतः**) प्रेरित करते हैं, वैसे तू कृपा करके हमारे लिये (**दिवम्**) विद्या प्रकाश को (**उत-स्तभान**) आकाश तथा वहां के प्राणि वर्ग को (**पृण**) तृप्त कर और (**दृंहस्व**) बढ़ा।

(**पृथिव्याम्**) भूमि पर (**द्युतानः**) श्रेष्ठ विद्या-गुण का विस्तार करता हुआ सब सुखों को (**दृंह**) बढ़ा (**ब्रह्म**) विद्या को वा विद्वान् को (**दृंह**) बढ़ा (**क्षत्रम्**) राज्य को नष्ट करने वाले आघातों से रक्षा करने वाले क्षत्रिय वीर पुरुष को (**दृंह**) बढ़ा (**आयुः**) जीवन को (**दृंह**) बढ़ा (**प्रजाम्**) सन्तान को (**दृंह**) बढ़ा और—

(**ब्रह्मवनिम्**) बल विद्या का सेवन करने वाले (**क्षत्रवनिम्**) राज्य का सेवन करने वाले, (**रायस्पोषवनिम्**) धनों की पुष्टि का सेवन करने वाले आप को मैं (**पर्यूहामि**) सब ओर से समझता हूँ वैसे आप को सब मनुष्य सब ओर से समझें ॥ ५। २७ ॥

[हे परम विद्वन् ! यथा त्वा=त्वां मारुतो ध्रुवेण धर्मणा भिनोतु '''तथा त्वं कृपयाऽस्मदर्थं दिवं [उत्+स्तभान] उत्तभान, अन्तरिक्षं पृण]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ हे मनुष्या ! यूयं-यथा जगदीश्वरः सत्यभावेन प्रार्थितः, सद्विद्वांश्च सेवितः सर्वान् सुखयति, तथैवायं यज्ञो विद्यादीन् संवर्ध्य सर्वान् मनुष्यादीन् प्राणिनः सुखयतीति विजानीत ॥ ५ । २७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ हे मनुष्यो ! जैसे जगदीश्वर सत्य भाव से प्रार्थना करने पर तथा श्रेष्ठ विद्वान् सेवा करने पर सब को सुख देता है वैसे ही यह यज्ञ विद्या आदि को बढ़ाकर सब मनुष्य आदि प्राणियों को सुखी करता है, ऐसा तुम जानो ॥ ५ । २७ ॥

भाष्यसार—१. **सेवा से सभाध्यक्ष क्या करता है**—परम् विद्वान् सभाध्यक्ष को वायु तथा प्राण अपान अपने निश्चल धर्म से संयुक्त करें । अर्थात् विद्वान् पुरुष वायु एवं प्राण अपान के समान अपने धर्भ पर स्थिर रहता है तथा विद्याप्रकाश को ऊँचा उठाता है, आकाश को तथा आकाशस्थ सब प्राणियों को यज्ञादि शुभ कार्य से तृप्त करता है । पृथिवी पर सद्विद्या आदि गुणों का विस्तार करता हुआ सुखों को बढ़ाता है, विद्वानों को बढ़ाता है, वीर क्षत्रियों को बढ़ाता है, आयु को बढ़ाता है, और प्रजा को बढ़ाता है । अतः बल, विद्या, राज्य तथा धनों की पुष्टि से युक्त परम विद्वान् की सब मनुष्य सेवा करें ।

२. **सेवन किया हुआ यज्ञ क्या करता है**—परम् विद्वानों के द्वारा सेवन किया हुआ यज्ञ, वायु तथा प्राणपान के समान स्थिर धर्म से युक्त करता है, विद्या के प्रकाश को ऊँचा उठाता है, आकाश और वहां के प्राणियों का तर्पण करता है, पृथिवी पर सद्विद्या आदि गुणों का विस्तार करके सुखों को बढ़ाता है, विद्वान्, वीर पुरुष, जीवन और प्रजा की वृद्धि करता है । बल, विद्या, राज्य और धनों की पुष्टि प्रदान करता है । विद्वानों के समान यज्ञ का सब मनुष्य अनुष्ठान करें ॥

३. **अलङ्कार**—मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि शब्द लुप्त होने से वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है । परम विद्वानों के समान सब मनुष्य मन्त्रोक्त यज्ञ का अनुष्ठान करें यह उपमा है ॥

औतथ्यो दीर्घतमाः । **यज्ञः=स्पष्टम्** ॥ आर्षी जगती । निषादः ॥

पुनस्तेन किं भविष्यतीत्युपदिश्यते ॥

फिर उस यज्ञ से क्या होता है, इस विषय का उपदेश किया है ॥

ध्रुवासि ध्रुवोऽयं यजमानोऽस्मिन्नायतने प्रजया पशुभिर्भूयात् ।
घृतेन द्यावापृथिवी पूर्येथामिन्द्रस्य छदिरसि विश्वजनस्य छाया ॥ २८ ॥

पदार्थः—(**ध्रुवा**) निश्चला (**असि**) भवसि (**ध्रुवः**) निश्चलः (**अयम्**) वक्ष्यमाणः (**यजमानः**) यज्ञकर्त्ता (**अस्मिन्**) वर्तमाने यज्ञे (**आयतने**) आयन्ति=आगच्छन्ति प्राणिनो यस्मिँस्तज्जगत्तस्मिन् जगति स्थाने यज्ञे वा (**प्रजया**) राज्येन सन्तानसमूहेन वा (**पशुभिः**) हस्त्यश्वगवादिभिः (**भूयात्**) (**घृतेन**) आज्यादिना (**द्यावापृथिवी**) आकाशभूमी (**पूर्येथाम्**) (**इन्द्रस्य**) परमैश्वर्यस्य (**छदिः**) दुःखापवारकत्वेन प्रापकः प्रापिका वा (**असि**) भवसि (**विश्वजनस्य**) विश्वस्मिन् जगति सर्वस्य जनसमूहस्य (**छाया**) दुःखछेदकाश्रयो वा ॥ अयं मंत्र शत० ३ । ६ । १ । १६-२२ व्याख्यातः ॥ २८ ॥

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ६ । १ । १६-२२) में की गई है ॥ ५ । २८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **यज्ञानुष्ठात्रि यजमानपत्नि** ! **यथा त्वमस्मिन्** वर्तमाने यज्ञे **आयतने**=जगति, **स्वस्थानेयज्ञे वा**, आयान्ति=आगच्छन्ति प्राणिनो यस्मिँस्तज्जगत्तस्मिन् जगति स्थाने यज्ञे वा **प्रजया** राज्येन सन्तानसमूहेन वा **पशुभिः** हस्त्यश्वगवादिभिः **सह ध्रुवा** निश्चला **असि**, भवसि, **तथाऽयं** वक्ष्यमाणः **यजमानः** यज्ञकर्त्ता **अपि ध्रुवः** निश्चलः **अस्ति** ।

युवां घृतेन आज्यादिना **द्यावापृथिवी** आकाश भूमी **पूर्येथां**=पूरणे कुर्यातम् ।

इन्द्रस्य परमैश्वर्यस्य **छदिः** दुःखार्यवारकत्वेन प्रापकः प्रापिका वा **असि** भवसि । **विश्व जनस्य** विश्वस्मिन् जगति सर्वस्य जनसमूहस्य **छाया** दुःखछेदकाश्रयो वा **असि** भवसि, **यत्संगेन प्राणिसमूहः सुखी भूयात्, अस्मात्तां तं त्वां वयं प्रशंसामः** ॥ ५ । २८ ॥

भाषार्थ—हे यज्ञ करने वाली यजमान की पत्नी ! जैसे तू (**अस्मिन्**) इस (**आयतने**) प्राणियों के आगमन-स्थान जगत् में, अपने घर में अथवा यज्ञ में (**प्रजया**) राज्य वा सन्तानों (**पशुभिः**)हाथी, घोड़े, गाय आदि पशुओं के साथ (**ध्रुवा**) स्थिर (**असि**) है वैसे (**अयम्**) यह (**यजमानः**) यज्ञ करने वाला यजमान भी (**ध्रुवः**) स्थिर है ।

तुम दोनों (**घृतेन**) घृत आदि से यज्ञ करके (**द्यावापृथिवी**) आकाश और भूमि को (**पूर्येथाम्**) सुख से भरपूर करो ।

तू यजमान वा यजमानपत्नी (**इन्द्रस्य**) परम ऐश्वर्य को (**छदिः**) दुःख निवारक होने से प्राप्त करने वाला वा प्राप्त करने वाली (**असि**) है, (**विश्वजनस्य**) जगत् के सब लोगों के (**छाया**) दुःख का उच्छेद करने वाला आश्रय है, जिसके संग से सब प्राणी सुखी हों । इसलिए हम उस यजमान-पत्नी तथा यजमान की प्रशंसा करते हैं ॥ ५ । २८ ॥

[हे यज्ञानुष्ठात्रि यजमानपत्नि ! यथा त्वम् ··· ध्रुवासि तथायं यजमानोऽपि ध्रुवोऽस्ति, इन्द्रस्य छदिरसि, यत्संगेन प्राणिसमूहः सुखी भूयात्, अस्मात्तां तं त्वां वयं प्रशंसामः]

भावार्थः—मनुष्यैर्याभ्यां यज्ञानुष्ठातृभ्यां यजमानतत्पत्नीभ्यां, येन यज्ञेन च निश्चला विद्या, सुखानि च प्राप्य, दुःखानि नश्येयुस्तौ सदा सत्कर्त्तव्यौ, यज्ञश्च सदाऽनुष्ठेयः ॥ ५ । २८ ॥

भावार्थ—सब मनुष्य, जिन यज्ञ करने वाले यजमान तथा उसकी पत्नी से, जिस यज्ञ से स्थिर विद्या और सुखों की प्राप्ति से दुःखों का विनाश हो उनका सदा सत्कार करें तथा यज्ञ का नित्य अनुष्ठान करते रहें ॥ ५ । २८ ॥

भाष्यसार—**यज्ञानुष्ठान से क्या होगा**—जो यज्ञ करने वाला यजमान और उसकी पत्नी भी इस संसार में अपने घर में यज्ञानुष्ठान करने में स्थिर होते हैं, जो घृतादि यज्ञसामग्री से आकाश और भूमि को परिपूर्ण कर देते हैं उन्हें राज्य, सन्तान, हाथी, घोड़े, गाय आदि पशु अर्थात् संसार के सब सुख प्राप्त होते हैं और सब दुःखों के नाश से परम ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है । संसार उन्हें दुःखों के उच्छेद के लिये अपना आश्रय समझता है । यज्ञ से सब प्राणीसमूह सुखी होता है । इसलिये यज्ञ करने वालों की सब लोग प्रशंसा करें तथा यज्ञ का नित्य अनुष्ठान किया करें ॥ ५ । २८ ॥

औतथ्यो दीर्घतमाः । **ईश्वरसभाध्यक्षौ**=ईश्वरः सभाध्यक्षश्च ॥

अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

ईश्वरसभाध्यक्षाभ्यां किं किं भवितुं योग्यमित्युपदिश्यते ॥

ईश्वर और सभाध्यक्ष का क्या-क्या होना योग्य है, इस विषय का उपदेश में किया है ॥

परिं त्वा गिर्वणो गिरं ऽइमा भंवन्तु विश्वतः । वृद्धायुमनु वृद्धंयो जुष्टाः भवन्तु जुष्टंयः ॥ २९ ॥

पदार्थः—(**परि**) सर्वतः (**त्वा**) त्वाम् (**गिर्वणः**) गीर्भिः स्तोतुमर्ह (**गिरः**) स्तुतिवाचः (**इमाः**) मत्कृताः (**भवन्तु**) (**विश्वतः**) सर्वाः । अत्र प्रथमान्तात्तसिः (**वृद्धायुम्**) वृद्ध इव आचरन्तम् । क्याच्छन्दसीत्युः (**अनु**) पश्चाद्भावे (**वृद्धयः**) वृद्धचन्ते यास्ताः (**जुष्टाः**) प्रीताः, सेविता वा (**भवन्तु**) (**जुष्टयः**) जुष्यन्ते= प्रीयन्ते यास्ताः ॥ अयं मन्त्रः शत० ३ । ६ । १ । २४ व्याख्यातः ॥ २९ ॥

प्रमाणार्थ—(**विश्वतः**) यहां [इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते अ० ५ । ३ । १४ **सूत्र से**] प्रथमा-विभक्तचन्त से 'तसि' प्रत्यय है । **वृद्धायुम्**) यहाँ 'क्याच्छन्दसि' [**अ**० ३ । २ । १७०] इस सूत्र से 'उ' प्रत्यय है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ६ । १ । २४) में की गई है ॥ ५ । २९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे [**गिर्वणः**]= **गिर्वण=ईश्वर सभाध्यक्ष** ! गीर्भिः स्तोतुमर्ह । इमाः=**मत्कृता विश्वतः** सर्वाः **गिरः** स्तुतिवाचः [**त्वा**]=**त्वां परि**=**परितः** सर्वतः **भवन्तु । न तत्क्षरण एव किन्तु वृद्धायुं** वृद्ध इव आचरन्तं **त्वामनु** पश्चात् **वद्धयः** वृध्यन्ते यास्ताः **जुष्टयः** जुष्यन्ते= प्रीयन्ते यास्ताः **जुष्टाः** प्रीताः सेविता वा **च भवन्तु** ॥ ५ । २९ ॥

भाषार्थ—हे [**गिर्वणः**] वाणी से स्तुति करने योग्य ईश्वर ! वा सभापते ! (**इमाः**) यह मुझ से की गई (**विश्वतः**) सब (**गिरः**) स्तुतियाँ (**त्वा**) आपके (**परि**) सब ओर (**भवन्तु**) प्राप्त हों। मेरी स्तुतियाँ क्षणिक न हों किन्तु (**वृद्धायुम्**) वृद्ध पुरुष के समान आचरण करने वाले आपके (**अनु**) पीछे भी (**वृद्धयः**) बढ़ने वाली (**जुष्टयः**) प्रीति बढ़ाने वाली और (**जुष्टाः**) प्यारी लगने वाली वा सेवन करने योग्य (**भवन्तु**) हों ॥ ५ । २९ ॥

[हे [गिर्वणः]=गिर्वणः !=ईश्वर ! सभाध्यक्ष ! इमाः=मत्कृता विश्वतो गिरः [त्वा]=त्वां परि=परितो भवन्तु]

भावार्थः—अत्र श्लेषालङ्कारः ॥ हे मनुष्या ! यथाऽखिलैः शुभगुणकर्मभिः सह वर्त्तमानो जगदीश्वरः सभापतिर्वा स्तोतुमर्होऽस्ति, तथैव युष्माभिरपि भवितव्यम् ॥ ५ । २९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष अलङ्कार है ॥ हे मनुष्यो ! जैसे सब शुभ गुण कर्मों से युक्त जग-दीश्वर अथवा सभापति स्तुति करने योग्य है वैसे ही तुम भी शुभ कर्मों से स्तुति-भाजन बनो ॥ ५ । २९ ॥

भाष्यसार—**१. ईश्वर और सभाध्यक्ष**—जगदीश्वर और सभापति सब शुभ गुण कर्मों से युक्त होने के कारण हमारे लिये स्तुति के योग्य हैं। हमारी की हुई स्तुति रूप वाणियाँ उन्हें सब ओर से प्राप्त हों । हमारी स्तुति क्षणिक नहीं हो अपितु वृद्ध पुरुष के समान चिरस्थायी हों, बढ़ने वाली हों, प्रीति बढ़ाने वाली हों, प्यारी लगने वाली हों, सेवन करने योग्य हों, ईश्वर और सभाध्यक्ष के समान हम भी अपने शुभ गुण कर्मों से लोक में स्तुति के पात्र बनें ॥

२. अलङ्कार—यहां श्लेष अलङ्कार से ईश्वर और सभाध्यक्ष अर्थ का ग्रहण किया है ॥ ५ । २९ ॥

मधुच्छन्दाः । **ईश्वरसभाध्यक्षौ**=**ईश्वरः सभाध्यक्षश्च** । आर्च्युष्णिक् । ऋषभः ॥

पुनस्तौ कथंभूतावित्युपदिश्यते ॥

फिर ईश्वर और सभाध्यक्ष कैसे हैं, इस विषय का उपदेश किया है ॥

इन्द्र॑स्य स्यूर॒सीन्द्र॑स्य ध्रु॒वो॑ऽसि । ऐ॒न्द्रम॑सि वैश्वदे॒वम॑सि ॥ ३० ॥

पदार्थः—(**इन्द्रस्य**) परमैश्वर्यस्य (**स्यूः**) यः सीवयति=सह योजयति सः (**असि**) भवसि (**इन्द्रस्य**) सूर्यादि राज्यस्य वा (**ध्रुवः**) निश्चलो=निश्चलकर्त्ता (**असि**) (**ऐन्द्रम्**) इन्द्रस्य=परमैश्वर्यस्येदमधिकरणम् (**असि**) (**वैश्वदेवम्**) यथा विश्वेषां देवानामिदमन्तरिक्षमधिकरणं तथा (**असि**) ॥ अयं मन्त्रः शत० ३ । ६ । १ । २५–२६ व्याख्यातः ॥ ३० ॥

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ६ । १ । २५-२६) में की गई है ॥ ५ । ३० ॥

[ईश्वरः]

सपदार्थान्वयः—हे जगदीश्वर ! **यथा वैश्वदेवम्**=**अन्तरिक्षं** यथा विश्वेषां देवानामिदन्तरिक्षमधिकरणं तथा [**असि**]=**अस्ति, तथा त्वमैन्द्रं**=**परमैश्वर्यस्याधिकणरम्** इन्द्रस्य=परमैश्वर्यस्येदमधिकरणम् **असि** ।

अत एव सर्वेषामस्मदादीनामिन्द्रस्य=**परमैश्वर्यस्य स्यूः** यः सीवयति=सह योजयति सः **असि** भवसि । **इन्द्रस्य**=**सूर्यादिलोकस्य** सूर्यादेः **ध्रुवः** निश्चलः=निश्चलकर्त्ता **असि** ॥

[सभाध्यक्षः]

हे **सभाध्यक्ष** ! **यथा वैश्वदेवम्**=**अन्तरिक्षं** यथा विश्वेषां देवानामिदमन्तरिक्षमधिकरणं तथा [**असि**]=**अस्ति, तथा त्वमैन्द्रं**=**परमैश्वर्यस्यधिकरणम्** इन्द्रस्य=परमैश्वर्यस्येदमधिकरणम् **असि** ।

अत एव सर्वेषामस्मदादीनामिन्द्रस्य=**परमैश्वर्यस्य स्यूः** यः सीवयति=सह योजयति सः **असि** भवसि, **इन्द्रस्य**=**राज्यस्य** (राज्यस्य) **ध्रुवः**= निश्चलो=निश्चलकर्त्ता **असि** ॥ ५ । ३० ॥

[ईश्वर]

भाषार्थ—हे जगदीश्वर ! जैसे (**वैश्वदेवम्**) सब लोकों का आधार यह आकाश [**असि**] है वैसे आप (**ऐन्द्रम्**) परम ऐश्वर्य के आधार (**असि**) हो ।

इसलिये — हम सबको (**इन्द्रस्य**) परम ऐश्वर्य के साथ (**स्यूः**) सीमने वाले=जोड़ने वाले (**असि**) हो । और (**इन्द्रस्य**) सूर्य आदि लोकों के (**ध्रुवः**) स्थिर-दृढ़ करने वाले (**असि**) हो ।

[सभापति]

हे सभाध्यक्ष ! जैसे (**वैश्वदेवम्**) सब लोकों का आधार आकाश [**असि**] है वैसे आप (**ऐन्द्रम्**) परम ऐश्वर्य के आधार (**असि**) हो ।

इसलिये ही—हम सबको (**इन्द्रस्य**) परम ऐश्वर्य के साथ (**स्यूः**) सीमने वाले=जोड़ने वाले (**असि**) हो और (**इन्द्रस्य**) राज्य को (**ध्रुवः**) स्थिर करने वाले (**असि**) हो ॥ ५ । ३० ॥

[हे जगदीश्वर ! सभाध्यक्ष वा यथा'''त्वमैन्द्रं=परमैश्वर्यस्याधिकरणमस्ति, अतएव सर्वेषामस्मदादीनामिन्द्रस्य=परमैश्वर्यस्य स्यूरसि]

भावार्थः—अत्र श्लेषोपमालङ्काराः ॥ यथा सकलैश्वर्याधिष्ठानमीश्वरोऽस्ति तथा सभाध्यक्षादिभिरपि भवितव्यम् ॥ ५ । ३० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और उपमा अलङ्कार हैं ॥ जैसे सकल ऐश्वर्य का आधार ईश्वर है वैसे सभाध्यक्ष आदि भी ऐश्वर्य से भरपूर हों ॥ ५ । ३० ॥

भाष्यसार—१. **ईश्वर**—जैसे सब लोकों का आधार अन्तरिक्ष है वैसे परम ऐश्वर्य का आधार ईश्वर है । इसलिये वही हमें परम ऐश्वर्य से संयुक्त करता है । सूर्य आदि लोकों का स्थिरकर्त्ता भी वही ईश्वर है ।

२. सभाध्यक्ष—सब लोकों के आधार आकाश के समान परम ऐश्वर्य का आधार सभाध्यक्ष होता है। इसीलिये वह समस्त प्रजा को परम ऐश्वर्य से संयुक्त रखता है। और अपने राज्य को भी अचल रखता है।

३. अलङ्कार—यहां श्लेष अलङ्कार से ईश्वर और सभाध्यक्ष अर्थ का ग्रहण किया है। उपमा यह है कि सब लोकों के आधार अन्तरिक्ष के समान ईश्वर और सभाध्यक्ष परम ऐश्वर्य के आधार हैं॥ ५। ३०॥

मधुच्छन्दाः। **अग्निः**=**ईश्वरो विद्वाँश्च**। विराडार्ष्यनुष्टुप्। गान्धारः॥

पुनस्तौ कथंभूतावित्युपदिश्यते॥

फिर जगदीश्वर और विद्वान् कैसे हैं, इस विषय का उपदेश किया है॥

विभूरसि प्रवाहणो वह्निरसि हव्यवाहनः। श्वात्रोऽसि प्रचेतास्तुथोऽसि विश्ववेदाः॥ ३१॥

पदार्थः—(**विभूः**) यथा व्यापक आकाशो वैभवयुक्तो राजा वा (**असि**) (**प्रवाहणः**) यथा वायुर्महानदो वा तथा (**वह्निः**) वोढा (**असि**) (**हव्यवाहनः**) यथाऽग्निर्हव्यानि वहति तथा (**श्वात्रः**) ज्ञानवान्। श्वात्रतीति गतिकर्मसु पठितम्॥ निघं० २। २४॥ (**असि**) (**प्रचेताः**) यथा प्राणः प्रचेतयति तथा (**तुथः**) ज्ञानवर्धकः (**असि**) (**विश्ववेदाः**) यथा सूत्रात्मा पवनस्तथा॥ **अयं मन्त्रः** शत० ३। ६। १। २५-२६ **व्याख्यातः**॥ ३१॥

प्रमाणार्थ—(**श्वात्रः**) 'श्वात्रति' पद निघं० (२। २४) में गत्यर्थक क्रियाओं में पढ़ा है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३। ६। १। २५-२६) में की गई है॥ ५। ३१॥

[ईश्वरः]

सपदार्थान्वयः—हे जगदीश्वर! **यस्मात्त्वं यथाऽऽकाशस्तथा विभूः** यथा व्यापक आकाशः, **असि, यथा वायुस्तथा प्रवाहणः** यथा वायुस्तथा, **असि, यथा वह्निः** वोढा **तथा हव्यवाहनः** यथाऽग्निर्हव्यानि वहति तथा **असि, यथा प्राणस्तथा प्रचेताः** यथा प्राणः प्रचेतयति तथा **श्वात्रः** ज्ञानवान् **असि, यथा सूत्रात्मा पवनस्तथा विश्ववेदाः** यथा सूत्रात्मा पवनस्तथा **तुथः** ज्ञानवर्धकः **चासि, तस्मात् सत्कर्त्तव्योऽसीति वयं विजानीमः**॥

[ईश्वर]

भाषार्थ—हे जगदीश्वर! जिससे आप—(**विभूः**) आकाश के समान व्यापक (**असि**) हो, आप (**प्रवाहणः**) वायु के समान पदार्थों के वाहक (**असि**) हो, (**वह्निः**) अग्नि के समान (**हव्यवाहनः**) हव्य द्रव्यों को वहन करने वाले (**असि**) हो, (**प्रचेताः**) प्राण के समान चेतन करने वाले एवं (**श्वात्रः**) ज्ञानवान् (**असि**) हो (**विश्ववेदाः**) पवन के समान सूक्ष्म एवं (**तुथः**) ज्ञान के बढ़ाने वाले (**असि**) हो, इसलिये सत्कार के योग्य हो, ऐसा हम जानते हैं॥

[विद्वान्]

हे विद्वान्! **यस्मात्त्वं यथा वैभवयुक्तो राजा तथा विभूः** यथा वैभवयुक्तो राजा, **असि, यथा महानदस्तथा प्रवाहणः** यथा महानदस्तथा **असि, यथा वह्निः** वोढा **तथा हव्यवाहनः** यथाऽग्निर्हव्यानि वहति तथा **असि, यथा प्राणस्तथा प्रचेताः** यथा

[विद्वान्]

हे विद्वान् पुरुष! जिससे आप—(**विभूः**) वैभव=ऐश्वर्य से युक्त राजा के समान (**असि**) हो, (**प्रवाहणः**) महानद के समान विद्यादि के प्रापक (**असि**) हो, (**वह्निः**) अग्नि के समान (**हव्यवाहनः**) हव्य-द्रव्यों को वहन करने वाले (**असि**) हो, (**प्रचेताः**)

प्राणः प्रचेतयति तथा **श्वात्रः** ज्ञानवान् **असि, यथा सूत्रात्मा पवनस्तथा विश्ववेदाः** यथा सूत्रात्मा पवनस्तथा **तुथः** ज्ञानवर्धकः **चासि, तस्मात् सत्कर्त्तव्यो ऽसीति वयं विजानीमः** ।। ५ । ३१ ।।

प्राण के समान चेतना देने वाला एवं (**श्वात्रः**) ज्ञानवान् हो, (**विश्ववेदाः**) सूक्ष्म वायु के समान एवं (**तुथः**) ज्ञान के वर्द्धक (**असि**) हो, इसलिए सत्कार के योग्य हो, ऐसा हम जानते हैं ।। ५ । ३१ ।।

[हे जगदीश्वर वा विद्वन् ! यस्मात्त्वं यथाऽऽकाशो वैभवयुक्तो राजा वा तथा विभूरसि···तस्मात्सत्कर्त्तव्यो ऽसीति वयं विजानीमः]

भावार्थः—अत्र श्लेषोपमालङ्कारौ ।। न सर्वैर्मनुष्यैरीश्वरविदुषोः सत्कारः कदापि त्यक्तव्यो, नैतयोः प्राप्त्या विना कस्यचिद् विद्यासुखलाभो भवितुमर्हति, तस्मात्तौ सर्वथा वेद्यौस्तः ।। ५ । ३१ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और उपमा अलङ्कार हैं ।। सब मनुष्यों को योग्य है कि ईश्वर और विद्वानों के सत्कार का परित्याग कभी न करें क्योंकि ईश्वर और विद्वानों की प्राप्ति के बिना किसी को भी विद्या और सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती, इसलिए वे सर्वथा जानने योग्य हैं ।। ५ । ३१ ।।

अन्यत्र व्याख्यात—महर्षि ने इस मन्त्र की व्याख्या आर्याभिविनय (**द्वितीय प्रकाश**) में इस प्रकार की है—"हे व्यापकेश्वर ! आप विभु हो अर्थात् सर्वत्र प्रकाशित, वैभवैश्वर्ययुक्त हो किन्तु और कोई नहीं । विभु आप सब जगत् के प्रवाहण (**स्वस्वनियमपूर्वक चलाने वाले**) तथा सबके निर्वाहकारक भी हो । हे स्वप्रकाशक सर्वरसवाहकेश्वर ! आप वह्नि हैं अर्थात् सब हव्य उत्कृष्ट रसों के भेदक, आकर्षक तथा यथावत् स्थापक हो । हे आत्मन् ! आप शीघ्र व्यापनशील हो तथा प्रकृष्ट ज्ञानस्वरूप प्रकृष्ट ज्ञान के देने वाले हो । हे सर्ववित् ! आप तुथ और विश्ववेदा हो । 'तुथो वै ब्रह्म' (**यह शतपथ की श्रुति है**) सब जगत् में विद्यमान प्राप्त और लाभ कराने वाले हो" ।। १६ ।।

भाष्यसार—**१. ईश्वर**—जगदीश्वर आकाश के समान सर्वत्र व्यापक है, वायु के समान पदार्थों को प्राप्त कराने वाला है, जैसे अग्नि हव्य-द्रव्यों का वहन करती है इसी प्रकार समस्त जगत् का वोढा है, जैसे प्राण चेतना देने वाले हैं उसी प्रकार वह चेतन एवं ज्ञानवान् है, पवन के समान सूक्ष्म है इसलिये जगदीश्वर सब के लिये उपासनीय है, पूज्य है । क्योंकि ईश्वर के उपासना के बिना सब सुखों की प्राप्ति कदापि नहीं हो सकती ।

२. **विद्वान्**—विद्वान् का यश आकाश के समान सर्वत्र व्यापक होता है, वह वायु के समान विद्यादि गुणों का प्राप्त कराने वाला, अग्नि के समान दिव्यगुणों को वहन करने वाला, प्राण के समान चेतन (**पुरुषार्थी**) एवं ज्ञानवान्, पवन के समान सूक्ष्म विषयों का ज्ञाता तथा ज्ञान का बढ़ाने वाला होता है । इसलिये वह सब के लिए सत्कार के योग्य है ।

३. **अलङ्कार**—यहाँ श्लेष अलङ्कार से ईश्वर और विद्वान् अर्थ का ग्रहण किया है । यहां आकाश, वायु, प्राण और पवन से ईश्वर और विद्वान् की उपमा की गई है, इसलिये उपमा अलङ्कार भी है ।। ५ । ३१ ।।

मधुच्छन्दाः । **अग्निः**=**ईश्वरो विद्वांश्च** ।। स्वराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् । धैवतः ।।

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते ।।

फिर ईश्वर और विद्वान् कैसे हैं, इस विषय का उपदेश किया जाता है ।।

उशिगसि कविरङ्घारिरसि बम्भारिरवस्यूरसि दुवस्वाञ्छुन्ध्यूरसि मार्जालीयः सम्राडसि कृशानुः परिषद्योऽसि पवमानो नभोऽसि प्रतक्वा मृष्टोऽसि हव्यसूदनऽऋतधामासि स्वर्ज्योतिः ॥३२॥

पदार्थः—(**उशिक्**) कान्तिमान् (**असि**) (**कविः**) क्रान्तप्रज्ञः कान्तदर्शनो वा (**अंघारिः**) अंघस्य=कुटिलगामिनो जीवस्यारिः शत्रुः (**असि**) (**बम्भारिः**) बन्धस्यारिः । अत्र वर्णव्यत्ययेन धस्य भः (**अवस्यूः**) योऽवसीव्यति तारादितन्तून् सन्तानयति येन वा सः (**असि**) (**दुवस्वान्**) दुवः=प्रशस्तं परिचरणं विद्यते यस्य सः (**शुन्ध्यूः**) शुद्धः (**असि**) (**मार्जालीयः**) शोधकः । स्याचतिमृजेरालचघालञ्चालीयचः ॥ उ० १ । ११६ ॥ अनेन सूत्रेणात्र मृजूष् शुद्धौ इत्यस्मादालीयच् प्रत्ययः (**सम्राट्**) यथा सम्यग्राजते तथा (**असि**) (**कृशानुः**) तनूकर्त्ता (**परिषद्यः**) परिषदि भवः (**असि**) (**पवमानः**) पवित्रकारकः (**नभः**) यो नभते=हन्ति परपदार्थहर्त्तॄन् सः । नभत् इति वधकर्मसु पठितम् ॥ निघं० २ । १६ ॥ (**असि**) (**प्रतक्वा**) यथा प्रतकति=प्रकर्षेण हर्षतीति । अत्रान्येभ्योपि दृश्यन्त इति वनिप्, तथा (**मृष्टः**) यो मर्षति मर्षयति वा (**असि**) (**ऋतधामा**) यथा सत्यं जलं वा दधाति तथा (**असि**) (**स्वर्ज्योतिः**) यथा स्वरन्तरिक्षलोकसमूहं द्योतते तथा ॥ ३२ ॥

प्रमाणार्थ—(**बम्भारिः**) यहां वर्ण-व्यत्यय से धकार को भकार हो गया है। (**मार्जालीयः**) यह शब्द 'स्याचतिमृजेरालज्वालञ्चालीयचः' (**उणा०** १ । ११६) इस सूत्र से शुद्धि अर्थ वाली 'मृजूष्' धातु से 'आलीयच्' प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है। (**नभः**) 'नभते' पद निघं० (२ । १६) में वध-अर्थ वाली क्रियाओं में पढ़ा है। (**प्रतक्वा**) यहां 'तक्' धातु से 'अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते' [**अ०** ३ । २ । ७५] इस सूत्र से 'वनिप्' प्रत्यय है ॥ ३२ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे भगवन् ! यतस्त्वम् उशिक्** कान्तिमान् **असि, अङ्घारिः** अंघस्य=कुटिल गामिनो जीवस्यारिः=शत्रुः **कविः** क्रान्तप्रज्ञः क्रान्तदर्शनो वा **असि, बम्भारिः** बन्धस्यारिः **अवस्यूः** योऽवसीव्यति तारादितन्तून् सन्तानयति येन वा सः **असि, दुवस्वान्** दुवः=प्रशस्तं परिचरणं विद्यते यस्य सः **शुन्ध्यूः** शुद्धः **मार्जालीयः** शोधकः **असि,** [**सम्राट्**] यथा सम्यग् राजते तथा [**कृशानुः**] तनूकर्त्ता [**असि**] **पवमानः** पवित्रकारकः **परिषद्यः** परिषदि भवः **असि** ।

यथा प्रतक्वा यथा प्रतकति=प्रकर्षेण हर्षतीति **तथान्तरिक्षप्रकाशको नभः** यो नभते=हन्ति परपदार्थहर्त्तॄन् सः **असि, यथा हव्यसूदनः** यथा हव्यानि सूदते **तथा मृष्टः** यो मर्षति मर्षयति वा **असि** ।

यथा स्वर्ज्योतिः यथा स्वरन्तरिक्षलोकसमूहं द्योतते तथा, **ऋतधामा** यथा सत्यं जलं वा दधाति

भावार्थ—हे भगवन् ! [**ईश्वर वा विद्वान्**] आप (**उशिक्**) कान्तिमान् (**असि**) हो (**अङ्घारिः**) कुटिल गति वाले जीव के शत्रु तथा (**कविः**) क्रान्तमति का क्रान्तदर्शी (**असि**) हो, (**बम्भारिः**) बन्धन से मुक्त करने वाले तथा (**अवस्यूः**) सुख के तन्तुओं को फैलाने वाले (**असि**) हो, (**दुवस्वान्**) पूजा करने के योग्य तथा (**शुन्ध्यूः**) शुद्ध और (**मार्जालीयः**) शुद्धि करने वाले (**असि**) हो। [**सम्राट्**] सब के राजा तथा [**कृशानुः**] दुष्टों को निर्बल करने वाले [**असि**] हो (**पवमानः**) पवित्र करने वाले (**परिषद्यः**) सभासद् (**असि**) हो।

क्योंकि आप (**प्रतक्वा**) अत्यन्त हर्षित करने वाले, आकाश के प्रकाशक (**नभः**) और पर पदार्थों के हर्ता अर्थात् चोरों के हनन करने वाले (**असि**) हो, (**हव्य सूदनः**) होम के द्रव्यों को शुद्ध करने वाले तथा (**मृष्टः**) सहनशील एवं सहन शक्ति देने वाले (**असि**) हो। और—

(**स्वर्ज्योतिः**) अन्तरिक्ष को प्रकाशित करने वाले (**ऋतधामा**) सत्य वा जल को धारण करने

तथा, **असि** । **तथा सत्यस्थायी वर्तसे तथैव तत्तद्गुणेन प्रसिद्धो भवान् सर्वैरुपासनीयोऽस्तीति विजानीमः** ॥ ५ । ३२ ॥

वाले (**असि**) हो । और—आप सत्य पर दृढ़ रहने वाले हो, उक्त गुणों से प्रसिद्ध आप सबके उपासनीय हो, ऐसा हम जानते हैं ॥ ५ । ३२ ॥

[हे भगवन् ! यतस्त्वमुशिगसि'''ऋतधामासि=तथासत्यस्थायी वर्तसे तथैव तत्तद्गुणेन प्रसिद्धो भवान् सर्वेरूपासनीयोऽस्ति]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः ॥ येन जगदीश्वरेण यादृग्गुणं जगन्निर्मितं तादृग्गुणेन प्रसिद्धः स सर्वैर्मनुष्यैरुपासनीयः ॥ ५ । ३२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है ॥ जिस जगदीश्वर ने जैसे गुणों वाला जगत् रचा है वैसे गुणों से प्रसिद्ध वह ईश्वर सब मनुष्यों के लिये उपासना के योग्य है ॥ ५ । ३२ ॥

अन्यत्र व्याख्यात—महर्षि ने इस मन्त्र की व्याख्या आर्याभिविनय (**द्वितीय प्रकाश**) में इस प्रकार की है—"हे सर्वप्रिय ! आप 'उशिक्' कमनीयस्वरूप अर्थात् सब लोग जिसको चाहते हैं। क्योंकि आप कवि पूर्णविद्वान् हो तथा आप अङ्‌घारि हो अर्थात् स्वभक्तों का जो अघ (**पाप**) उसके अरि (**शत्रु**) हो । उस समस्त पाप के नाशक हो । तथा 'बम्भारिः' स्वभक्तों और सर्वजगत् के पालन तथा धारण करने वाले हो । 'अवस्युरसि दुवस्वान्' अन्नादि पदार्थ अपने भक्तों धर्मात्माओं को देने की इच्छा सदा करते हो तथा परिचरणीय विद्वानों से सेवनीयतम हो । 'शुन्ध्युरसि मार्जालीयः' शुद्ध स्वरूप और सब जगत् के शोधक तथा पापों का मार्जन् (**निवारण**) करने वाले आप ही हो । अन्य कोई नहीं। 'सम्राडसिक्रुशानु' सब राजाओं के महाराज तथा कृश दीन जनों के प्राण के सुखदाता आप ही हो। 'परिषद्योऽसि पवमानः' हे न्यायकारिन् ! पवित्र परमेश्वर ! सभा के आज्ञापक, सभ्य, सभापति, सभाप्रिय सभारक्षक, आप ही हो तथा पवित्रस्वरूप, पवित्रकारक सभा से ही सुखदायक पवित्रप्रिय आप ही हो। 'नभोऽसि प्रतक्वा' हे निर्विकार ! आकाशवत् आप क्षोभरहित, अतिसूक्ष्म होने से आप का नाम नभ है तथा '**प्रतक्वा**' सबके ज्ञाता, सत्यासत्यकारी जनों के कर्मों को साक्ष्य रखने वाले कि जिसने जैसा पाप वा पुण्य किया हो उसको वैसा फल मिले, अन्य का पुण्य वा पाप अन्य को कभी न मिले । 'मृष्टोऽसि हव्यसूदनः' मृष्ट शुद्ध स्वरूप, सब पापों के मार्जक शोधक तथा 'हव्यसूदनः' मिष्ट, सुगन्ध, रोगनाशक, पुष्टिकारक इन द्रव्यों से वायु-वृष्टि की शुद्धि करने कराने वाले हो अतएव सब द्रव्यों के विभागकर्त्ता आप ही हो । इससे आप का नाम 'हव्यसूदन' है । 'ऋतधामासि स्वर्ज्योतिः' हे भगवन् ! आपका ही धाम स्थान सर्वजगत् सत्य और यथार्थ स्वरूप है । यथार्थ (**सत्य**) व्यवहार में ही आप निवास करते हो । 'स्वः' आप सुखस्वरूप और सुखकारक हों तथा 'ज्योतिः' स्वप्रकाश और सुख के प्रकाशक आप ही हैं" ॥ १७ ॥

भाष्यसार—१. **अग्नि (ईश्वर) कैसा है**—भगवान् कान्तिमान्, कुटिलगामी जीवों का शत्रु, क्रान्तप्रज्ञ, क्रान्तदर्शी, बन्धन से मुक्त, तार आदि तन्तुओं का विस्तारक, पूजा के योग्य, शुद्ध, शुद्ध-करने वाला, सम्राट्, दुष्टों को निर्बल करने वाला, पवित्रकारक, जगत् रूप परिषद् में विद्यमान, सदा अत्यन्त प्रसन्न, आकाश का प्रकाशक, पर पदार्थों के हर्ता के हन्ता, सहनशील एवं सहनशक्ति के दाता, अन्तरिक्ष लोक समूह के समान प्रकाशित, सत्य को तथा जल आदि जगत् के पदार्थों को धारण करने वाला है । इन गुणों से प्रसिद्ध ईश्वर सबके लिये उपासनीय है।

२. **अग्नि (विद्वान्) कैसा है**—ऐश्वर्यशाली विद्वान् विद्यादि गुणों से कान्तिमान्, कुटिलगामी जीवों का शत्रु, क्रान्तप्रज्ञ क्रान्तदर्शी कवि, बन्धन से मुक्त होने का अभिलाषी, तार आदि तन्तुओं का विस्तारक, सेवा के योग्य, स्वयं सत्यभाषा आदि से शुद्ध तथा उपदेश से सबको शुद्ध करने वाला सम्राट्, दुष्टों को क्षीण करने वाला, पवित्रकारक, सभ्य, सदा हर्षित, आकाश को प्रकाशित करने वाला, पर पदार्थों के हरण करने वाले चोर डाकू आदि का हन्ता, होम के पदार्थों का शोधक, सहनशील, सूर्य

के समान द्युतिमान, सत्य को धारण करने वाला एवं लौकिक जल आदि पदार्थों से सम्पन्न होता है। इसलिए सबके लिये विद्वान् सत्कार के योग्य होता है।

३. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि जैसे जिन-जिन गुणों से प्रसिद्ध है वैसे उन-उन गुणों से उपासनीय है ॥

मधुच्छन्दाः । **अग्निः=ईश्वरः** ॥ ब्राह्मी पंक्तिः । पञ्चमः ॥

पुनर्यथेश्वरो वर्त्तते तथा विद्वद्भिरपि भवितव्यमित्युपदिश्यते ॥

जैसा ईश्वर है वैसा विद्वानों को भी होना चाहिये, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

स॒मु॒द्रोऽसि वि॒श्वव्य॑चाऽअ॒जोऽस्येक॑पाद॒हि॑रसि बु॒ध्न्यो॒ वाग॑स्यै॒न्द्रम॑सि॒ सदो॒ऽस्यृ॒तस्य॑ द्वारौ॒ मा मा॒ सन्ता॑प्त॒मध्व॑नामध्वपते॒ प्र मा॑ तिर स्व॒स्ति मे॒ऽस्मिन् प॒थि दे॑व॒याने॑ भूयात् ॥ ३३ ॥

पदार्थः—(**समुद्रः**) समुद्द्रवन्ति भूतानि यस्मात् सः (**असि**) (**विश्वव्यचाः**) यथा विश्वस्मिन् व्यचोव्याप्तिर्यस्यास्ति तथा (**अजः**) यः कदाचिन्न जायते (**असि**) (**एकपात्**) एकस्मिन् पादे विश्वं यस्यास्ति (**अहिः**) समस्तविद्यासु व्यापनशीलः (**असि**) (**बुध्न्यः**) बुध्नेऽन्तरिक्षे भवः। **बुध्नमन्तरिक्षं भवति ॥ निरु० १०।४४ ॥** (**वाक्**) यथा व्यक्ति सा (**असि**) (**ऐन्द्रम्**) परमैश्वर्य्यस्येदम् (**असि**) (**सदः**) सीदन्ति यस्मिँस्तत् (**असि**) (**ऋतस्य**) सत्यस्य कारणस्य व्यवहारस्य वा (**द्वारौ**) बाह्याभ्यन्तरस्थे मुखे (**मा**) माम् (**मा**) निषेधे (**सम्**) सम्यगर्थे (**ताप्तम्**) तपेः। **अत्र लिङर्थे लुङ्** (**अध्वनाम्**) यथा विद्याधर्मशिल्पमार्गाणाम् (**अध्वपते**) धर्मव्यवहारमार्गपालयितः (**प्र**) प्रकृष्टार्थे (**मा**) माम् (**तिर**) तारय (**स्वस्ति**) सुखम् (**मे**) मम (**अस्मिन्**) प्रत्यक्षे (**पथि**) मार्गे (**देवयाने**) यथा विदुषां गमनागमनाधिकरणे तथा (**भूयात्**) भवतु ॥ ३३ ॥

प्रमाणार्थ—(**बुध्न्यः**) निरु० (१०।४४) में 'बुध्न' शब्द का अर्थ अन्तरिक्ष है। (**ताप्तम्**) तपेः। यहां लिङ्-अर्थ में लुङ्-लकार है ॥ ५।३३ ॥

सपदार्थान्वयः—**यथेश्वरः समुद्रः** समुद्द्रवन्ति भूतानि यस्मात् सः, **विश्वव्यचाः** विश्वस्मिन् व्यचो=व्याप्तिर्यस्यास्ति सः [**असि**]=**अस्ति, स एक पाद्** एकास्मिन् पादे विश्वं यस्यास्ति, **अजः** यः कदाचिन्न जायते [**असि**]=**अस्ति, अहिः** समस्तविद्यासु व्यापनशीलः **बुध्न्यः** बुध्ने=अन्तरिक्षे भवः [**असि**]=**अस्ति,** [**वाग्**] यया वक्ति सा [**असि**]=**अस्ति**।

हे [**अध्वनाम्**] यथा विद्याधर्मशिल्पमार्गाणां **अध्वपतेः**! धर्मव्यवहारमार्गपालयितः! **यथैन्द्रं** परमैश्वर्यस्येदं **सदः** सीदन्ति यास्मिँस्तत् [**असि**]=**अस्ति, यथा स ऋतस्य** सत्यस्य=कारणस्य व्यवहारस्य वा **द्वारौ** बाह्याभ्यन्तरस्थे मुखे **न सन्तापयति**

भाषार्थ—ईश्वर (**समुद्रः**) सब भूतों को गति देने वाला (**विश्वव्यचाः**) विश्व में व्यापक [**असि**] है, उसके [**एकपाद्**] एक चरण में सारा विश्व है, वह (**अजः**) अजन्मा [**असि**] है, वह (**अहिः**) सब विद्याओं से भरपूर तथा (**बुध्न्यः**) आकाश के समान सर्वव्यापक [**असि**] है और वह [**वाक्**] वेदवाणी स्वरूप है [**असि**] है।

हे [**अध्वनाम्**] विद्या, धर्म और शिल्प मार्गों के (**अध्वपते**) धर्मपूर्वक पालन करने वाले विद्वान्! जैसा वह ईश्वर (**ऐन्द्रम्**) परम-ऐश्वर्य का (**सदः**) घर [**असि**] है और जैसे वह (**ऋतस्य**) जगत् के कारण-कार्य रूप (**द्वारौ**) बाह्य और आन्तरिक

तथा [मा] मां मा [सं+ताप्तम्]=सन्तापयेः न सन्तपेः, [मा] मां [प्र+तिर] प्रकृष्टं तारय।

सुखों को दुःखयुक्त नहीं करता वैसे आप [मा] मुझे (मा [सन्ताप्तम्]) सन्ताप-युक्त न करो अपितु भवसागर से [मा] मुझे [प्र+तिर] सुख-पूर्वक पार करो।

यथा चास्मिन् प्रत्यक्षे **देवयाने** विदुषां गमनागमनाधिकरणे **पथि** मार्गे **स्वस्ति** सुखं **भूयात्** भवतु **तथा त्वं सततं प्रयतस्व** ॥ ५ । ३३ ॥

और—जैसे (**अस्मिन्**) इस (**देवयाने**) विद्वानों के गमनागमन के (**पथि**) मार्ग में (**स्वस्ति**) सुख (**भूयात्**) हो वैसे आप सदा प्रयत्न करो॥ ५ । ३३ ॥

[यथेश्वरः···अहिः···[असि]=अस्ति, [वाग्] [असि]=अस्ति]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः॥ यथा कृपयमाण ईश्वरोऽस्मिन् संसारे सर्वेषां जीवानां शिक्षादिकर्मसु प्रवर्त्तते तथा विद्वद्भिरपि वर्त्तितव्यम्।

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है॥ जैसे कृपालु ईश्वर इस संसार में सब जीवों के शिक्षा आदि कर्मों में प्रवृत्त होता है वैसे विद्वान् लोग भी प्रवृत्त हों।

[यथा स ऋतस्य द्वारौ न सन्तापयति तथा [मा] मा [सं+ताप्तम्]]

यथेश्वरस्य जगत्कारणस्य जीवानां वाऽनादित्वाज्जन्मराहित्येनाविनाशित्वं वर्त्तते तथा स्वस्य बोध्यम।

जैसे ईश्वर, जगत् का कारण वा जीव अनादि और अजन्मा होने से अविनाशी हैं वैसे अपने आपको भी समझें।

[यथा चास्मिन् देवयाने पथि स्वस्ति भूयात्, तथा त्वं सततं प्रयतस्व]

यथा परमेश्वरस्य कृपोपासनासृष्टिविद्यापुरुषार्थैः सहैव वर्तमानानां मनुष्याणां विद्वन्मार्गप्राप्तिस्तत्र सुखं च जायते; तथा नेतरेषामिति॥ ५ । ३३ ॥

जैसे परमेश्वर की कृपा, उपासना, सृष्टि विद्या और पुरुषार्थ के साथ वर्तमान मनुष्यों को विद्वानों के मार्ग की प्राप्ति और उसमें सुख उत्पन्न होता है वैसे अन्यों को नहीं॥ ५ । ३३ ॥

अन्यत्र व्याख्यात—महर्षि ने इस मन्त्र की व्याख्या आर्याभिविनय (**द्वितीय प्रकाश**) में इस प्रकार की है—" 'समुद्रोऽसि विश्वव्यचाः' हे द्रवणीयस्वरूप ! सब भूत मात्र आप ही में द्रवे हैं, क्योंकि कार्य कारण में ही मिले हैं। आप सबके कारण हो तथा सहज से सब जगत् को विस्तृत किया है। इससे आप 'विश्वव्यचाः' हैं। 'अजोऽस्येकपात्' आप का जन्म कभी नहीं होता और यह सब जगत् आपके किञ्चिन्मात्र एक देश में है, आप अनन्त हो। 'अहिरसि बुध्न्यः' आपकी हीनता कभी नहीं होती तथा सब जगत् के मूल कारण और अन्तरिक्ष में भी सदा आप ही पूर्ण रहते हो। 'वागस्यैन्द्रमसिसदोऽसि' सब शास्त्र के उपदेशक अनन्त विद्यास्वरूप होने से आप 'वाक्' हो। परमैश्वर्यस्वरूप सब विद्वानों में अत्यन्त शोभायमान होने से आप 'ऐन्द्र' हो। सब संसार आप में ठहर रहा है इससे आप सदः(**सभास्वरूप**) हो 'ऋतस्य द्वारौ मा मा सन्ताप्तम्' सत्य विद्या और धर्म ये दोनों मोक्षस्वरूप आपकी प्राप्ति द्वार हैं, उनको सन्ताप युक्त हम लोगों के लिये कभी मत रखो किन्तु सुखस्वरूप ही खुले रखो, जिससे हम लोग सहज से आपको प्राप्त हों। 'अध्वनामित्यादि' हे अध्वपते ! परमार्थ और व्यवहार मार्गों में मुझ को कहीं क्लेश मत होने दे किन्तु उन मार्गों में मुझको स्वस्ति (आनन्द) ही आप की कृपा से रहे, किसी प्रकार का दुःख न रहे" ॥ १८ ॥

भाष्यसार—१. **ईश्वर के समान विद्वान् भी हों**—ईश्वर सब भूतों को गति देने वाला विश्व में व्यापक है। उसके एक चरण में समस्त विश्व है। वह अजन्मा, समस्त विद्याओं से भरपूर, अन्तरिक्ष में विद्यमान एवं वेदवाणी रूप है। जैसे परम ऐश्वर्य का धाम, ईश्वर है तथा जैसे उसने कारण-कार्य रूप जगत् के द्वारों को सब के लिये खोल रखा है वैसे विद्या, धर्म और शिल्प मार्गों के धर्मपूर्वक पालन करने वाले विद्वान् पुरुष भी विद्या, धर्म और शिल्प के मार्गों को सबके लिये खुले रखें, उन्हें सन्तापयुक्त न करें, विद्यादि मार्गों से सब मनुष्यों को दुःखों से पार करें, भवसागर को तरें तथा अन्यों को भी तारें। सब मनुष्य ऐसा प्रयत्न करें कि विद्वानों के मार्ग सदा सुखयुक्त हों। विद्वान् पुरुष भी ईश्वर के समान शिक्षा आदि कार्यों में प्रवृत्त रहें। ईश्वर, प्रकृति और जीव के समान अपने आपको अविनाशी समझें। ईश्वर की कृपा प्राप्ति, उपासना करने, सृष्टिविद्या को सीखने और पुरुषार्थ करने में सदा प्रवृत्त रहें ॥ ५। ३३ ॥

२. **अलङ्कार**—उपमा यह है कि विद्वान् भी ईश्वर के समान हों।

मधुच्छन्दाः। **अग्निः**=**विद्वान्** ॥ स्वराड्ब्राह्मी बृहती। मध्यमः ॥

पुनर्विद्वांसः कीदृशाः सन्तीत्युपदिश्यते ॥

विद्वान् कैसे हैं, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

मित्रस्य॑ मा॒ चक्षु॑षेक्षध्व॒मग्न॑यः सगराः सग॑रा स्थ॒ सग॑रेण॒ नाम्ना॒ रौद्रे॑णानी॑केन पा॒त मा॑ग्नयः पिपृ॒त मा॑ग्नयो गोपा॒यत॑ मा॒ नमो॑ वोऽस्तु मा मा॑ हिꣳसिष्ट ॥ ३४ ॥

पदार्थः—(**मित्रस्य**) सुहृदः (**मा**) माम् (**चक्षुषा**) दृष्ट्या (**ईक्षध्वम्**) सम्प्रेक्षध्वम् (**अग्नयः**) नेतारो=नयन्ति श्रेष्ठान् पदार्थान् (**सगराः**) सगरोऽन्तरिक्षमवकाशो येषान्ते। अर्शआदित्वादच् (**सगराः**) सगरोतरिक्षं विद्योपदेशावकाशो येषां ते (**स्थ**) भवत (**सगरेण**) अन्तरिक्षेण सह (**नाम्ना**) प्रसिद्धया (**रौद्रेण**) शत्रुरोदयितॄणामिदं तेन (**अनीकेन**) सैन्येन (**पात**) रक्षत (**मा**) माम् (**अग्नयः**) ज्ञानवन्तः (**पिपृत**) विद्यागुणैः पूर्णान् कुरुत (**मा**) माम् (**अग्नयः**) सभाध्यक्षादयः (**गोपायत**) पालयत (**मा**) माम् (**नमः**) नमस्कारः (**वः**) युष्मभ्यम् (**अस्तु**) भवतु (**मा**) निषेधे (**मा**) माम् (**हिंसिष्ट**) ॥ ३४ ॥

प्रमाणार्थ—(**सगराः**) यहां 'अर्श आदिभ्योऽच्' [**अ० ५। ३। १२७**] इस सूत्र से '**अच**' प्रत्यय है ॥ ५। ३४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वांसः! **सगराः** सगरो=ऽन्तरिक्षमवकाशो येषां ते, **अग्नयः** नेतारो=नयन्ति श्रेष्ठान् पदार्थान् **यूयं** [**मा**]=**मां मित्रस्य** सुहृदः **चक्षुषा** दृष्ट्या **ईक्षध्वं** सम्प्रेक्षध्वं **यूयं सगराः** सगरो=ऽन्तरिक्षं विद्योपदेशावकाशो येषां ते **स्थ** भवत।

हे **अग्नयः**! ज्ञानवन्तः! **सगरेण** अन्तरिक्षेण सह **रौद्रेण** शत्रुरोदयितॄणामिदं तेन **नाम्ना** प्रसिद्धया **अनीकेन** सैन्येन [**मा**]=**मां पात** रक्षत, [**पिपृत**] विद्यादिगुणैः पूर्णान् कुरुत [**हे अग्नयः**!] सभाध्य-

भाषार्थ—हे विद्वान् मनुष्यो! आप (**सगराः**) अच्छे कामों के लिये अवकाश=समय वाले (**अग्नयः**) श्रेष्ठ पदार्थों को प्राप्त कराने वाले हो, अतः [**मा**] मुझे (**मित्रस्य**) मित्र की (**चक्षुषा**) दृष्टि से (**ईक्षध्वम्**) देखो, तथा (**सगराः**) विद्यादि उपदेश के लिये अवकाश=समय वाले ही (**स्थ**) रहो।

हे (**अग्नयः**) ज्ञानवान् विद्वानो! (**सगरेण**) अवकाश सहित (**रौद्रेण**) शत्रुओं को रुलाने वाली (**नाम्ना**) प्रसिद्ध (**अनीकेन**) सेना से [**मा**] मेरी (**पात**) रक्षा करो एवं [**पिपृत**] विद्यादि गुणों से

क्षादयः [**मा**]=**मां गोपायत** पालयत, [**मा**]=**मां मा हिंसिष्ट । एतदर्थं वः=युष्मभ्यं नमः** नमस्कारः **अस्तु** भवतु ।। ५ । ३४ ।।

परिपूर्ण करो। हे [**अग्नयः**] सभाध्यक्ष आदि विद्वानो! [**मा**] मेरी (**गोपायत**) पालना करो [**मा**] मेरी (**मा हिंसिष्ट**) हिंसा न करो। इस लिये (**वः**) तुम्हें मेरा (**नमः**) नमस्कार (**अस्तु**) हो ।। ५ । ३४ ।।

[हे **अग्नयः** !···[**मा**]=**मां पात**, [**पिपृत**] ,···**एतदर्थं वः=युष्मभ्यं नमोऽस्तु**]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः।। यथा विद्यादानेन विद्वांसः सर्वान् मनुष्यमान् सुखयन्ति, तथैतान् कार्येषु विद्ययोपयुक्ताः सन्तोऽध्येतारोऽपि सुखयन्तु ।। ५ । ३४ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है।। जैसे विद्यादान से विद्वान् लोग सब मनुष्यों को सुखी करते हैं वैसे इन विद्वानों को विद्या के निमित्त कार्यों में लगे हुये विद्यार्थी भी सुखी रखें ।। ५ । ३४ ।।

भाष्यसार—**विद्वान् कैसे हैं**—विद्वान् पुरुष शुभ कार्यों के लिये अवकाश (**समय**) रखने वाले, श्रेष्ठ पदार्थों को प्राप्त करने और कराने वाले होते हैं। वे सबको मित्र की दृष्टि से देखते हैं। विद्यादि शुभ गुणों के उपदेश के लिये समय देते हैं, तैयार रहते हैं। ज्ञानी विद्वान् शत्रुओं को रुलाने वाली अपनी प्रसिद्ध सेना से श्रेष्ठ जनों की रक्षा करते हैं, जिज्ञासुओं को विद्यादि शुभ गुणों से भरपूर कर देते हैं। वे सभाध्यक्ष आदि पदों को प्राप्त करके सज्जनों की पालना करते हैं, उनकी हिंसा कभी नहीं करते। जैसे विद्वान् पुरुष विद्यादान से सज्जनों को सुखी करते हैं वैसे अध्येता सज्जन पुरुष भी उनका नमस्कार आदि से सत्कार करते हैं ।। ५ । ३४ ।।

मधुच्छन्दाः । **अग्निः**=ईश्वरः ।। विराड् ब्राह्मी बृहती । मध्यमः ।।

ईश्वरः कीदृश इत्युपदिश्यते ।।

ईश्वर कैसा है, इस विषय का उपदेश किया है ।।

ज्योतिरसि विश्वरूपं विश्वेषां देवानांꣳ समित् । त्वꣳ सोम तनूकृद्भ्यो द्वेषोभ्योऽन्यकृतेभ्य ऽ उरु यन्तासि वरूथꣳ स्वाहा जुषाणो ऽ अप्तुराज्यस्य वेतु स्वाहा ।। ३५ ।।

पदार्थः—(**ज्योतिः**) सर्वप्रकाशकः (**असि**) (**विश्वरूपम्**) यथा सर्व रूपं यस्मिँस्तथा (**विश्वेषाम्**) अखिलानाम् (**देवानाम्**) विदुषाम् (**समित्**) यथा सम्यगिध्यते तथा (**त्वम**) (**सोम**) ऐश्वर्यप्रद (**तनूकृद्भ्यः**) यथा विस्तारकारिभ्यस्तथा (**द्वेषोभ्यः**) यथा द्विषन्ति तेभ्यस्तथा (**अन्यकृतेभ्यः**) यथाऽन्यैर्यानि क्रियन्ते तेभ्यः (**उरु**) बहु (**यन्ता**) नियमकर्त्ता (**असि**) (**वरूथम्**) वर्त्तमहं गृहम् । **वरूथमिति गृहनामसु पठितम् ।। निघं० ३ । ४ ।।** (**स्वाहा**) वाचम् (**जुषाणः**) प्रीतः (**अप्तुः**) व्यापकः (**आज्यस्य**) विज्ञानस्य (**वेतु**) जानातु (**स्वाहा**) वाचा ।। **अयं मन्त्रः शत० ३ । ६ । ३ । ६-८ व्याख्यातः ।। ३५ ।।**

प्रमाणार्थ—(**वरूथम्**) यह शब्द निघं० (३ । ४) में गृह-नामों में पढ़ा है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ६ । ३ । ६-८) में की गई है ।। ५ । ३५ ।।

सपदार्थान्वयः—हे **सोम** ! ऐश्वर्यप्रद ! **यथा त्वं विश्वेषाम्** अखिलानां **देवानां** विदुषां

भाषार्थ—हे (**सोम**) ऐश्वर्य के दाता ईश्वर ! जैसे (**त्वम्**) आप (**विश्वेषां**) सब

विश्वरूपं यथा सर्वं रूपं यस्मिँस्तथा **ज्योतिः** सर्व-प्रकाशकः **समित्** यथा सम्यगिध्यते तथा **असि** ।

(**देवानाम्**) विद्वानों के (**विश्वरूपम्**) सब रूपों वाली (**ज्योतिः**) ज्योति एवं सर्वप्रकाशक (**समित्**) समिधा (**असि**) हो । और--

तनूकृद्भ्यः यथाविस्तारकारिभ्यस्तथा, **द्वेषोभ्यः** यथा द्विषन्ति तेभ्यस्तथा, **अन्य कृतेभ्यः** यथाऽन्यैर्यानि क्रियन्ते तेभ्यः **च यन्ता** नियमकर्ता **असि** ।

(**तनूकृद्भ्यः**) अपना विस्तार करने वाले के (**द्वेषोभ्यः**) द्वेष करने वालों के (**अन्यकृतेभ्यः**) धर्मात्माओं से अन्य अर्थात् पापीजनों के (**यन्ता**) नियामक (**असि**) हो ।

तथोरु बहुः **वरुथं** वर्त्तुमर्हं गृहं **स्वाहा** वाचम् **अप्तुः** व्यापकः **आज्यस्य** विज्ञानस्य **जुषाणः** प्रीतः **सन् मनुष्यः स्वाहा** वाचा **वेतु** जानातु ॥ ५ । ३५ ॥

वैसे (**उरु**) विशाल (**वरूथम्**) वरण करने योग्य घर को और (**स्वाहा**) वेदवाणी को (**अप्तुः**) प्राप्त करने वाला तथा (**आज्यस्य**) विज्ञान से (**जुषाणः**) प्रेम करने वाला मनुष्य (**स्वाहा**) वेद-वाणी से एवं विद्वानों के उपदेश से उक्त ईश्वर को (**वेतु**) जाने ॥ ५ । ३५ ॥

[हे सोम ! यथा त्वं ··· यन्तासि]

भावार्थः—यस्मात् परमेश्वरः सर्वेषां लोकानां नियन्तास्ति तस्मादेते नियमेषु चलन्ति ॥ ५ । ३५ ॥

भावार्थ—जिससे परमेश्वर सब लोकों का नियन्ता है इसलिये ये सब लोक नियमों में चलते हैं ॥ ५ । ३५ ॥

भा० पदार्थः—यन्ता=सर्वेषां लोकानां नियन्ता ।

भाष्यसार—**ईश्वर कैसा है**—ईश्वर ऐश्वर्य का देने वाला है । सब विद्वानों का रूप उसमें विद्यमान है अर्थात् सब विद्वानों की विद्या का मूल ईश्वर है । सबका प्रकाशक है तथा स्वयं प्रकाश स्वरूप है । विस्तार करने वाले, द्वेष करने वाले, पाप करने वाले लोगों का नियामक है । सब लोकों का नियन्ता भी वही है । इसलिये सब लोक अपने-अपने नियमों में चलते हैं । सब के घरों में और वाणी में व्यापक है । विज्ञान् से प्रसन्न होकर सब मनुष्य वेदवाणी से उस ईश्वर को जानें ॥ ५ । ३५ ॥

अगस्त्यः । **अग्निः**=ईश्वरः । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ।

पुनरीश्वरः किमर्थः प्रार्थनीय इत्युपदिश्यते ॥

फिर ईश्वरप्रार्थना किसलिये करनी चाहिये, इस विषय का उपदेश किया है ॥

अग्ने नय सुपथा राये ऽ अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमऽउक्तिं विधेम ॥ ३६ ॥

पदार्थः—(**अग्ने**) सर्वनेतः परमात्मन् ! (**नय**) प्रापय (**सुपथा**) यथा सुकृतः शोभनेन धर्म्य-मार्गेण गच्छन्ति तथा (**राये**) परमश्रीमोक्षसुखप्राप्तये (**अस्मान्**) अभ्युदयनिःश्रेयससुखस्पृहावतः (**विश्वानि**) सर्वाणि (**देव**) सर्वानन्दप्रापक सर्वजगत्प्रकाशक ! (**वयुनानि**) प्रशस्तानि कर्माणि प्रज्ञाश्च । **वयुनमिति प्रशस्यनामसु पठितम् ॥ निघं० ३ । ८ ॥ वयुनं वेतेः कान्तिर्वा प्रज्ञा वा ॥ निरु० ५ । १४ ॥ वयुनानि विद्वान् प्रज्ञानानि प्रजानन् ॥ निरु० ८ । २० ॥** (**विद्वान्**) यः सर्वं वेत्ति सः (**युयोधि**) दूरीकुरु । **अत्र बहुलं छन्दसीति शपः श्लुः**

(**अस्मत्**) अस्माकं सकाशात् (**जुहुराणम्**) कुटिलम् (**एनः**) दुःखफलं पापम् (**भूयिष्ठाम्**) बहुतमाम् (**ते**) तव (**नम उक्तिम्**) यथा नमोभिरुक्तिं विदधति तथा (**विधेम**) वदेम ।। अयं मन्त्रः शत० ३ । ६ । ३ । ११ व्याख्यातः ।। ३६ ।।

प्रमाणार्थ—(**वयुनानि**) 'वयुन' शब्द निघं० (३ । ६) में प्रशस्य (उत्तम) नामों से पढ़ा है । निरु० (५ । १४) के अनुसार 'वयुन' 'वी' धातु से बनता है और इसका अर्थ कान्ति और प्रज्ञा है । इस बात को निरु० (८ । २०) में पुष्ट किया गया है "वयुन को जानता हुआ अर्थात् प्रज्ञान को जानता हुआ" । (**युयोधि**) यहां 'बहुलं छन्दसि' [२ । ४ । ७३] इस सूत्र से शप् को श्लु हो गया है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ६ । ३ । ११) में की गई है । ५ । ३६ ।।

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने** ! सर्वनेतः परमात्मन् । **देव** ! सर्वानन्दप्रापक सर्वजगत्-प्रकाशक ! **जगदीश्वर** ! **विद्वान्** यः सर्वं वेत्ति सः **त्वं, यथा सुकृतो राये** परमश्रीमोक्षसुखप्राप्तये **सुपथा** तथा सुकृतः शोभनेन धर्म्ममार्गेण गच्छन्ति तथा, **विश्वानि** सर्वाणि **वयुनानि** प्रशस्तानि कर्माणि प्रज्ञाश्च **प्राप्नुवन्ति, तथाऽस्मान्** अभ्युदय निःश्रेयससुखस्पृहावतः, **नय** प्रापय ।

(**जुहुराणम्**) कुटिलम् **एनः** दुःखफलं पापम् **अस्मत्** अस्माकं सकाशात् **युयोधि** दूरी कुरु ।

वयं ते=**तव भूमिष्ठां** बहुतमां **नम उक्तिं** यथा नमोभिरुक्तिं विदधति तथा **विधेम** वदेम ।।५ । ३६ ।।

भाषार्थ—हे (**अग्ने**) सब के नेता (**देव**) सब आनन्दों को प्राप्त कराने वाले, सब जगत् के प्रकाशक जगदीश्वर ! आप (**विद्वान्**) सबको जानने वाले हो । जैसे उत्तम कर्म करने वाले धर्मात्मा लोग (**राये**) लक्ष्मी और मोक्ष सुख की प्राप्ति के लिये (**सुपथा**) धर्मात्माओं के धर्मयुक्त मार्ग से (**विश्वानि**) सब (**वयुनानि**) उत्तम कर्म और प्रज्ञा को प्राप्त करते हैं, वैसे (**अस्मान्**) अभ्युदय और निःश्रेयस सुख की भी कामना करने वाले हम लोगों (**नय**) प्राप्त करा । और—

(**जुहुराणम्**) कुटिलम् (**एनः**) दुःख फल वाले पाप को (**अस्मत्**) हम से (**युयोधि**) दूर कर ।

हम लोग (**ते**) आपकी (**भूयिष्ठाम्**) अत्यन्त (**नम उक्तिम्**) स्तुति एवं प्रशंसा (**विधेम**) सदा किया करें ।। ५ । ३६ ।।

[**हे अग्ने···जगदीश्वर ! त्वं यथा सुकृतो राये सुपथा विश्वानि वयुनानि प्राप्नुवन्ति, तथाऽस्मान् नय**]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः ।। यथा प्रेम्णोपासितः सन् जगदीश्वरो जीवान् दुष्ट मार्गाद् वियोज्य धर्ममार्गे स्थापयित्वैहिकपारमार्थिक-सुखानि तत्तत्कर्मानुसारेण ददाति तथा न्यायाधी-शैरपि विधेयम् ।। ५ । ३६ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है ।। जैसे प्रेम से उपासना किया हुआ जगदीश्वर जीवों को दुष्ट-मार्ग से हटाकर धर्म-मार्ग में लगा-कर ऐहिक और पारमार्थिक सुखों को उनके कर्मा-नुसार प्रदान करता है वैसे न्यायाधीश लोग भी किया करें ।। ५ । ३६ ।।

अन्यत्र व्याख्यात— महर्षि ने इस मन्त्र की व्याख्या संस्कार विधि में इस प्रकार की है—"अर्थः—हे (**अग्ने**) स्वप्रकाश, ज्ञानस्वरूप, सब जगत् के प्रकाश करने हारे (**देव**) सकल सुखदाता परमेश्वर, आप जिससे (**विद्वन्**) संपूर्ण विद्यायुक्त हैं, कृपा करके (**अस्मान्**) हम लोगों को (**राये**) विज्ञान वा राज्यादि ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (**सुपथा**) अच्छे धर्मयुक्त आप्त लोगों के मार्ग से (**विश्वानि**) सम्पूर्ण (**वयुनानि**) प्रज्ञान और उत्तम कर्म (**नय**) प्राप्त कराइये और (**अस्मत्**) हम से (**जुहुराणम्**) कुटिलता-

युक्त (एनः) पाप रूप कर्म को (युयोधि) दूर कीजिये। इस कारण हम लोग (ते) आपकी (भूयिष्ठाम्) बहुत प्रकार की स्तुति रूप (नम उक्तिम्) नम्रतापूर्वक प्रशंसा (विधेम) सदा किया करें और सर्वदा आनन्द में रहें ॥(ईश्वरस्तुति०)॥

भाष्यसार— १. **ईश्वर प्रार्थना किस लिये**—परमात्मा सब का नेता, सब आनन्दों को प्राप्त कराने वाला तथा सब जगत का प्रकाशक, और सर्वज्ञ विद्वान् है। वह प्रार्थना करने पर जैसे शुभ कर्म करने वाले धर्मात्मा पुरुष परम लक्ष्मी एवं मोक्ष सुख को प्राप्त करने के लिये धर्म-मार्ग से चल कर सब उत्तम कर्मों और उत्तम बुद्धि प्राप्त करते हैं वैसे अभ्युदय और निःश्रेयस सुख चाहने वालों को भी प्राप्त कराता है। प्रेमपूर्वक उपासना से ईश्वर जीवों को पाप-रूप कुटिल दुष्ट-मार्ग से हटा कर पुण्यरूप सरल धर्म-मार्ग में चलाता है उन्हें उनके कर्मानुसार ऐहिक और पारमार्थिक सुख प्रदान करता है।

२. **अलङ्कार**—यहाँ उपमा यह है कि ईश्वर धर्मात्मा पुरुषों के समान हमें भी धर्म-मार्ग पर चलावे। जैसे ईश्वर कर्मानुसार सुख-प्रदान करता है वैसे विद्वान् न्यायधीश भी आचरण करें॥ ५। ३६॥

●

अगस्त्यः। **अग्निः**=शूरवीरः॥ आर्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

पुनः शूरगुणा उपदिश्यन्ते॥

फिर ईश्वर की उपासना करने हारे शूरवीर के गुणों का उपदेश किया है॥

अयं नोऽ अग्निर्वरिवस्कृणोत्वयं मृधः पुरऽ एतु प्रभिन्दन्।
अयं वाजाञ्जयतु वाजसातावयꣳ शत्रूञ्जयतु जर्हृषाणः स्वाहा॥ ३७॥

पदार्थः—(**अयम्**) परमेश्वरोपासको जनः (**नः**) अस्माकं प्रजास्थानां जीवानाम् (**अग्निः**) स्वयं प्रकाशमानोऽग्निरिव पापिनां दग्धा (**वरिवः**) भृशं रक्षणम् (**कृणोतु**) करोतु (**अयम्**) युद्धकुशलः (**मृधः**) कुत्सितान् (**पुरः**) पुरस्तात् (**एतु**) गच्छतु (**प्रभिन्दन्**) यथा शत्रुदलं विदारयँस्तथा (**अयम्**) वीराणां प्रहर्षकः (**वाजान्**) संग्रामान् (**वाजसातौ**) यथा संग्रामे तथा (**अयम्**) विजयप्रापकः (**शत्रून्**) अरीन् (**जयतु**) (**जर्हृषाणः**) अतिशयेन हृष्टः (**स्वाहा**) शोभनां वाचं वदन् सन्॥ **अयं मन्त्रः शत० ३। ६। ३। १२ व्याख्यातः॥ ३७॥**

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३। ६। ३। १२) में की गई है॥ ५। ३७॥

सपदार्थान्वयः—**अयं** परमेश्वरोपासको जनः **अग्निः**=**परमेश्वरोपासको जनः**, स्वयं प्रकाशमानोऽग्निरिव पापिनां दग्धा **नः** अस्माकं प्रजास्थानां-जीवानां **वरिवः** भृशं रक्षणं **वृणोतु** करोतु।

यथा [**अयं**]=**कश्चिद्वीरः** युद्ध कुशलः **वाजसातौ** यथा संग्रामे तथा **मृधः** कुत्सितान् **शत्रून्** अरीन् **पुरः** पुरस्तात् **एति तथायं** वीराणां प्रहर्षकः, **यथा च कश्चिद्वीरो मृधः** कुत्सितान् **शत्रून्** अरीन् **प्रभिन्दन्**

भाषार्थ—यह (**अग्निः**) परमेश्वर का उपासक शूरवीर मनुष्य, जो स्वयं प्रकाशमान अग्नि के समान पापियों का दहन करने वाला है, वह (**नः**) हमारी प्रजा के प्राणियों की (**वरिवः**) सुरक्षा (**कृणोतु**) करे।

जैसे [**अयम्**] कोई युद्धकुशल वीर (**वाजसातौ**) युद्ध में (**मृधः**) निन्दनीय (**शत्रून्**) शत्रुओं के (**पुरः**) सामने (**एति**) डट जाता है वैसे ही (**अयम्**) यह भी वीरों को प्रसन्न करने वाला है और जैसे कोई

यथा शत्रुदलं विदारयँस्तथा **वाजान्** संग्रामान् [**जयतु**] **जयति, पुरः** पुरस्तात् **एतु** गच्छतु, **तथाऽयं** विजयप्रापकः **जर्हृषाणः** अतिशयेन हृष्टः **स्वाहा**= **शोभनां वाचं वदन्** शोभनां वाचं वदन् सन् **जयतु** ॥ ५ । ३७ ॥

वीर (**मृधः**) निन्दनीय (**शत्रून्**) शत्रुओं का एवं (**प्रभिन्दन्**) शत्रु दल का विदारण करने वाला (**वाजान्**) संग्रामों को (**जयतु**) विजय करके (**पुरः**) सामने (**एतु**) आता है, वैसे (**अयम्**) यह वीर विजय को प्राप्त करने वाला (**जर्हृषाणः**) अत्यन्त हर्षित होकर (**स्वाहा**) उत्तम वाणी बोलता हुआ (**जयतु**) विजय को प्राप्त करे ॥ ५ । ३७ ॥

[अयमग्निः परमेश्वरोपासको जनो नो वरिवः कृणोतु]

भावार्थः—ये परेशोपासनां न विदधते नैव तेषां सर्वत्र विजयो जायते । ये सुशिक्षितान् वीरान् सत्कृत्य सेनां न रक्षन्ति तेषां सर्वत्र अपराजयो भवति ।

भावार्थ—जो मनुष्य परमेश्वर की उपासना नहीं करते उनकी सर्वत्र विजय नहीं होती, और जो सुशिक्षित वीरों का सत्कार करके सेना की रक्षा नहीं करते उनकी सर्वत्र पराजय होती है ।

[तात्पर्यमाह—]

तस्मादेतद्द्वयं मनुष्यैः सदाऽनुष्ठेयामिति ॥ ५ । ३७ ॥

इसलिये परमेश्वर की उपासना और वीरों का सत्कार इन दो कार्यों का मनुष्य सदा अनुष्ठान करें ॥ ५ । ३७ ॥

भाष्यसार—**शूर के गुण**—शूर पुरुष परमेश्वर का उपासक, स्वयं प्रकाशमान अग्नि के समान पापियों को दग्ध करने वाला, और प्रजा का संरक्षक होता है । जो शूर पुरुष परमेश्वर की उपासना नहीं करते उनको सर्वत्र विजय प्राप्त नहीं होती । और जो नेता शूर-वीरों का सत्कार करके सेना की रक्षा नहीं करते उनकी सर्वत्र पराजय होता है । क्योंकि युद्ध कुशल शूर पुरुष ही संग्राम में दुष्ट शत्रुओं के सामने डट जाता है तथा वीरों में हर्ष की वर्षा करता है । शूर पुरुष ही निन्दनीय शत्रुओं का एवं शत्रुदल का विदारण करके संग्राम में विजय प्राप्त करता है । जब वह शूर अन्य वीरों के सामने जाता है तब विजय प्राप्त करने वाले वीर पुरुष अत्यन्त प्रसन्न होकर उसकी प्रशंसा में सुन्दर वाणी बोलते हैं स्वाहा स्वाहा (**वाह-वाह**) कहते हैं और विजय प्राप्त करते हैं ॥ ५ । ३७ ॥

अगस्त्यः । **विष्णुः**=**ईश्वरः शूरश्च** ॥ भुरिगार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते ॥

फिर वे कैसे हैं, यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

उरु विष्णो विक्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि । घृतं घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर स्वाहा ॥ ३८ ॥

पदार्थः--(**उरु**) बहु (**विष्णो**) यथा सर्वव्यापकेश्वरः सर्वं जगन्निर्मातुं तथा (**विक्रमस्व**) गच्छ (**उरु**) बहु (**क्षयाय**) निवासार्थाय गृहाय विज्ञानादिप्राप्तये वा (**नः**) अस्मान् (**कृधि**) कुरु (**घृतम्**) आज्यम् (**घृतयोने**) यथा घृतयोनिरग्निस्तथा तत्सम्बुद्धौ (**पिब**) (**प्रप्र**) प्रकृष्टार्थे (**यज्ञपतिम्**) यथा होत्रादयो यज्ञपतिं रक्षन्तो यतन्ते तथा (**तिर**) प्लवस्व (**स्वाहा**) यज्ञक्रियायाः ॥ **अयं मंत्रः शत० ३ । ६ । ३ । १५ व्याख्यातः ॥ ३८ ॥**

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ६ । ३ । १५) में की गई है ॥ ५ । ३८ ॥

पदार्थान्वयः—यथा [विष्णो]=विष्णुः सर्वव्यापकेश्वरः सर्वं जगन्निर्मातुं **विक्रमते, तथोरु** बाहु **विक्रमस्व** गच्छ । **नः** अस्मान् **क्षयाय** निवासार्थाय गृहाय विज्ञानादिप्राप्तये वा **उरु** बहु **कृधि** कुरु ।

भाषार्थ—जैसे [**विष्णो**] विष्णु अर्थात् सर्वव्यापक ईश्वर सब जगत् को निर्माण में समर्थ है वैसे, हे शूरवीर! तू भी (**उरु**) बहुत अच्छे प्रकार से (**विक्रमस्व**) समर्थ बन और (**नः**) हमें (**क्षयाय**) निवास के लिये घर वा विज्ञानादि की प्राप्ति के लिए (**उरु**) अत्यन्त समर्थ (**कृधि**) बना ।

हे **घृतयोने** ! यथा घृतयोनिरग्निस्तथा तत्सम्बुद्धौ **यथाग्निराज्यं पिबति तथा त्वं घृतम्** आज्यम् **प्रप्र** प्रकृष्टं **पिब** ।

हे (**घृतयोने**) घृत से प्रदीप्त अग्नि के तुल्य तेजस्वी वीर पुरुष ! जैसे अग्नि घृत को पीती है वैसे तू (**घृतम्**) घी का (**प्र प्र पिब**) बार बार पान कर । और—

यथा च ऋत्विगादयो यज्ञपतिं यथाहोत्रादयो यज्ञपतिं रक्षन्तो यतन्ते तथा **संरक्ष्य दुःखं तरन्ति, तथा त्वं स्वाहा** यज्ञक्रियायाः **वाचं वदन् सन् विजयेन यज्ञेन यज्ञं प्रप्र-तिर** प्रकृष्टं प्लवस्व ॥ ५ । ३८ ॥

जैसे ऋत्विगादि लोग (**यज्ञपतिम्**) यजमान की रक्षा करके दुःख से पार होते हैं, वैसे तू भी (**स्वाहा**) यज्ञ की वाणी को बोलता हुआ विजय रूप यज्ञ से शुभ कर्मों का (**प्रप्र-तिर**) प्रस्तार कर ॥ ५ । ३८ ॥

[यथा [विष्णो] विष्णुर्विक्रमते तथोरु विक्रमस्व]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः ॥ यथा परमेश्वरो व्यापकत्वात् सर्वं जगद्रचितुं रक्षितुं समर्थः सर्वान् सुखयति तथानन्दयितव्यम् ।

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है ॥ जैसे परमेश्वर व्यापक होने से सब जगत् की रचना और रक्षा में समर्थ है और सबको सुख देता है वैसे शूर पुरुष सबको आनन्दित करें ।

[हे घृतयोने ! यथाग्निराज्यं पिबति तथा त्वं घृतं प्रप्रपिब]

यथा चाग्निरिन्धनानि प्रदहति तथा शत्रवः प्रदग्धव्याः ।

जैसे अग्नि ईंधन को जलाती है वैसे शूर पुरुष शत्रुओं का दहन करें ।

[यथा च ऋत्विगादयो यज्ञपतिं संरक्ष्य दुःखं तरन्ति तथा त्वं स्वाहा वाचं वदन् सन् विजयेन यज्ञेन यज्ञं प्रप्रतिर]

यथा होत्रादयो धार्मिकं यज्ञपतिं प्राप्य स्वकार्याणि साध्नुवन्ति तथा प्रजास्थाः पुरुषा धर्मात्मानं सभापतिं प्राप्य सुखानि साध्नुवन्तु ॥ ५ । ३८ ॥

जैसे ऋत्विक् आदि धार्मिक यजमान को प्राप्त करके अपने कार्यों को सिद्ध करते हैं वैसे प्रजा के लोग धर्मात्मा सभापति को प्राप्त करके सुखों को सिद्ध करें ॥ ५ । ३८ ॥

भाष्यसार—१. **ईश्वर और शूर कैसे हैं**—विष्णु अर्थात् ईश्वर सर्वव्यापक होने से जगत् की रचना और रक्षा करने में समर्थ होकर सबको सुख-प्रदान करता है । इसी प्रकार वीर पुरुष भी अपने शूरता-आदि गुणों से सब वीर पुरुषों में व्यापक होकर प्रजा का निवास-स्थान घर की रक्षा तथा विज्ञान-प्राप्ति आदि कार्य करने-कराने में समर्थ होता है ।

अग्नि की योनि=निमित्त घृत है । इस लिये वह घृत को प्राप्त करके प्रदीप्त होता है । जैसे यह अग्नि घृत तथा ईंधन आदि को जलाती है इसी प्रकार शूर पुरुष शत्रुओं का दहन करता है ।

जैसे ऋत्विक् आदि विद्वान् पुरुष धार्मिक यजमान को प्राप्त करके, उसको रक्षा करके दुःखों

को तरते हैं, अपने कार्यों को सिद्ध करते हैं वैसे प्रजा भी धर्मात्मा शूरवीर सभापति को प्राप्त करके सब सुखों को सिद्ध करती है।

२. **अलङ्कार**—यहां उपमा यह है कि शूर पुरुष ईश्वर के समान प्रजा की रक्षा करे। अग्नि के समान शत्रुओं का दहन करे। ऋत्विक् आदि के समान प्रजा का संरक्षण करे ॥ ५। ३८ ॥

अगस्त्यः। **सोमसवितारौ**=सभाध्यक्षोराजा, प्रेरक ॥ आद्यस्य साम्नी बृहती। मध्यमः। एतत्त्वमित्युत्तरस्या निचृदार्षी पंक्तिः। पञ्चमः ॥

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते ॥

सभाध्यक्ष, राजा और प्रजा कैसी हैं, इस विषय का उपदेश किया है।

देव॑ सवितरे॒ष ते॒ सोम॒स्तꣳ र॑क्षस्व॒ मा त्वा॑ दभन्। ए॒तत्त्वं दे॑व सोम दे॒वो दे॒वाँ२ ऽ उपा॑गा ऽ इ॒दम॒हं म॑नु॒ष्या॒न्त्स॒ह रा॒यस्पोषे॑ण॒ स्वाहा॒ निर्वरु॑णस्य॒ पाशा॑न्मुच्ये ॥ ३९ ॥

पदार्थः—(**देव**) सकलविद्याद्योतक (**सवितः**) ऐश्वर्यवन् (**एषः**) प्रत्यक्षः (**ते**) तव (**सोमः**) ऐश्वर्यसमूहः (**तम्**) (**रक्षस्व**) अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदम् (**मा**) निषेधे (**त्वा**) त्वाम् (**दभन्**) हिंस्युः। अत्र लिङर्थे लङडभावश्च (**एतत्**) एतस्मात् (**त्वम्**) सभाध्यक्षो राजा (**देव**) सुखप्रद (**सोम**) सन्मार्गे प्रेरक (**देवः**) विद्याप्रकाशस्थः (**देवान्**) दिव्यान् विदुषः (**उप**) सामीप्ये (**अगाः**) गच्छ (**इदम्**) त्वदनुष्ठितं (**अहम्**) (**मनुष्यान्**) मननशीलान् (**सह**) (**रायः**) धनसमुदायस्य (**पोषेण**) पुष्ट्या (**स्वाहा**) सत्यां वाचं वदन् सन् (**निः**) नितराम् (**वरुणस्य**) दुःखेनाच्छादकस्य तिरस्कर्त्तुः (**पाशात्**) बन्धनात् (**मुच्ये**) मुक्तो भवामि ॥ अयं मन्त्रः श०३।६।३।१८-२० व्याख्यातः ॥ ३९ ॥

प्रमाणार्थ—(**रक्षस्व**) यहां व्यत्यय से आत्मनेपद है। (**दभन्**) यहाँ लिङ्-अर्थ में लङ्-लकार और अट् का अभाव है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३।६।३।१८--२०) में की गई है ॥ ५ ॥ ३९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे देव! सकलविद्याद्योतक! **सवितः**! ऐश्वर्यवन्! **सभाध्यक्ष**! **यथाऽहं भवत्सहायेन स्वकीयमैश्वर्यं रक्षामि तथा त्वं य एष** ते तव **सोमः** ऐश्वर्यसमूहः **अस्ति तं रक्षस्व**।

यथा मां शत्रवो न हिंसन्ति तथा त्वा=त्वाम-**स्मत् सहाये मा दभन्** न हिंस्युः।

हे देव! सुखप्रद! **सोम**! सन्मार्गे प्रेरक! **देवः** विद्याप्रकाशस्थः त्वं सभाध्यक्षो राजा **यथैतत्**=**एतस्माद् देवान्** दिव्यान् विदुषः **उपागाः** समीपं गच्छ **तथा ऽहमप्युपागाम्**।

भाषार्थ—हे (**देव**) सकल विद्या के प्रकाशक (**सवितः**) ऐश्वर्यवान् सभाध्यक्ष! जैसे मैं आपकी सहायता से अपने ऐश्वर्य की रक्षा करता हूँ, वैसे आप जो यह (**ते**) आपकी (**सोमः**) ऐश्वर्य राशि है उसकी रक्षा करो। और—

जैसे मुझे शत्रु नहीं दबाते हैं, वैसे (**त्वा**) तुझे भी हमारी सहायता से (**मा दभन्**) न दबावें।

हे (**देव**) सुखदाता! (**सोम**) श्रेष्ठ मार्ग पर चलने की प्रेरणा देने वाले (**देवः**) विद्या से प्रकाशित (**त्वम्**) सभापति राजा, आप जैसे (**एतत्**) इन (**देवान्**) दिव्य गुणों वाले विद्वानों के (**उपागाः**) समीप जाते हैं, वैसे मैं भी उनके संग में रहूँ। और—

यथाऽहमिदं त्वदनुष्ठितं **अनुष्ठाय रायः** धनसमुदायस्य **पोषेण** पुष्ट्या **सह वर्तमानो मनुष्यान्** मननशीलान् **देवान्** दिव्यान् विदुषः **चैत्य वरुणस्य** दुःखेनाच्छादकस्य तिरस्कर्त्तुः **पाशात्** बन्धनात् **निर्मुच्ये** नितरां मुक्तो भवामि **तथा त्वमपि निर्मुच्यस्व** ॥ ५ । ३९ ॥

जैसे मैं (**इदम्**) आप के द्वारा किये कार्य का अनुष्ठान करके (**रायः**) धनों की (**पोषेण**) पुष्टि से युक्त होकर (**मनुष्यान्**) विचारशील लोगों को तथा (**देवान्**) दिव्यगुणों वाले विद्वानों को प्राप्त कर (**वरुणस्य**) दुःख से आच्छादित करने वाले एवं तिरस्कार करने वाले वरुण के (पाशात्) बन्धन से (**निर्मुच्ये**) मुक्त होता हूँ वैसे तू भी मुक्त हो ॥ ५ । ३९ ॥

[हे···सवितः=सभाध्यक्ष ! यथाऽहं भवत्सहायेन स्वकीयमैश्वर्यं रक्षामि तथा त्वं य एव ते सोमोऽस्ति तं रक्षस्व,···त्वं यथैतत्=एतस्माद् देवानुयागास्तथाऽहमप्युयागाद्,···वरुणस्य पाशान्निर्मुच्ये तथा त्वमपि निर्मुच्यस्व]

भावार्थः--अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ सर्वेषां मनुष्याणामियं योग्यतास्ति यदप्राप्तस्यैश्वर्यस्य पुरुषार्थेन प्राप्तिस्तद्रक्षोन्नती कृत्वा, धार्मिकान् मनुष्यान् संगत्यैतेन सत्कृत्य च, धर्ममनुष्ठाय, विज्ञानमुन्नीय, दुःखबन्धनान्मुक्ता भवन्तु ॥ ५ । ३९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ सब मनुष्यों को यह योग्य है कि वे अप्राप्त ऐश्वर्य की पुरुषार्थ से प्राप्ति तथा उसकी रक्षा और उन्नति करके, धार्मिक मनुष्यों का संग तथा ऐश्वर्य से उनका सत्कार करके, धर्मानुष्ठान कर और विज्ञान की उन्नति करके दुःखबन्धन से मुक्त हों ॥ ५ । ३९ ॥

भा० पदार्थः—देवान्=धार्मिकान् मनुष्यान् । पाशात्=दुःखबन्धनात् ॥

भाष्यसार—**सभाध्यक्ष राजा और प्रजा कैसी हो**—सब विद्याओं को प्रकाशित करने वाला, ऐश्वर्यवान् सुखदायक, सन्मार्ग में प्रेरणा करने वाला सभाध्यक्ष राजा हो । राजा और प्रजा परस्पर के सहयोग से ऐश्वर्य की रक्षा करें, परस्पर ऐसा व्यवहार रखें कि उन्हें शत्रु दबा न सकें, हिंसन न कर सकें, दोनों धार्मिक विद्वान् मनुष्यों का संग करें । इस प्रकार परस्पर के प्रेम-पूर्ण व्यवहार से अप्राप्त ऐश्वर्य की पुरुषार्थ से प्राप्ति करके उसका पोषण करें अर्थात् उसकी रक्षा और उन्नति करें । विचारशील धार्मिक विद्वान् मनुष्यों के संग से धर्मानुष्ठान करके विज्ञान को बढ़ाकर दुःख बन्धन से मुक्त हों ।

२. **अलङ्कार**—मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि शब्द लुप्त है इसलिये वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है । उपमा यह है कि राजा के समान प्रजा, और प्रजा के समान राजा परस्पर ऐश्वर्य की प्राप्ति, रक्षा और उन्नति आदि कार्य करें ॥

अगस्त्यः । **अग्निः=आचार्यः शिष्यश्च** । निचृद् ब्राह्मी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तौ कथं वर्त्तेयातामित्युपदिश्यते ॥

फिर वे आचार्य और शिष्य कैसे वर्ताव करें, यह उपदेश किया है ॥

अग्ने॑ व्रतपा॒स्त्वे व्र॑तपा॒ या तव॑ त॒नूर्मय्यभू॒देषा सा त्वयि॒ यो मम॑ त॒नूस्त्वय्यभू॑दि॒यꣳ सा मयि॑ । य॒था॒य॒थं नौ॑ व्रतपते व्र॒तान्यनु॑ मे दी॒क्षां दी॒क्षाप॑ति॒रम॒ꣳस्तानु॒ तप॒स्तप॑स्पतिः ॥ ४० ॥

पदार्थः—(**अग्ने**) विज्ञानोन्नत (**व्रतपाः**) यथा सत्यपालको विद्वाँस्तथा तत्सम्बुद्धौ (**ते**) तव (**व्रतपाः**) पूर्ववत् (**या**) (**तव**) (**तनूः**) व्याप्तिनिमित्तं शरीरम् (**मयि**) त्वत्सखे (**अभूत्**) भवतु (**एषा**) समक्षे वर्त्तमाना (**सा**) (**त्वयि**) मन्मित्रे (**यो**) या (**मम**) (**तनूः**) विद्याविस्तृतिः (**त्वयि**) मदध्यापके (**अभूत्**) भवति (**इयम्**) गोचरा (**सा**) (**मयि**) त्वच्छिष्ये (**यथायथम्**) यथार्थम् (**नौ**) आवाम् (**व्रतपते**) यथा सत्यानां रक्षकस्तथा तत्सम्बुद्धौ (**व्रतानि**) नियतानि सत्याचरणानि (**अनु**) पश्चादर्थे (**मे**) मम (**दीक्षाम्**) व्रतोपदेशम् (**दीक्षापतिः**) यथाव्रतादेशपालकः (**अमंस्त**) मन्यते तथा (**अनु**) पश्चाद्योगे (**तपः**) प्राक्क्लेशमुत्तरानन्दं ब्रह्मचर्य्यम् (**तपस्पतिः**) यथा ब्रह्मचर्य्यादिपालकः ॥ **अयं मन्त्रः शत० ३ । ६ । ३ । २१** व्याख्यातः ॥ ४० ॥

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ६ । ३ । २१) में की गई है ॥ ५ । ४० ॥

सपदार्थान्वयः—**व्रतपाः** यथा सत्यपालको विद्वाँस्तथा तत्सम्बुद्धौ **अग्ने** ! विज्ञानोन्नत ! **विद्वांस्त्वं यथा मे व्रतपाः** सत्यपालको विद्वान् **अभूत्** भवतु **तथा ते** तव **अहं व्रतपा भवेयम्** ।

या तव तनूः व्याप्तिनिमित्तं शरीरं **सा मयि** त्वत्सखे **भवतु, यैषा** समक्षे वर्त्तमाना **त्वयि** मन्मित्रे **मतिरस्तीयं गोचरा सा मयि स्यात्** ।

यो=या मम तनूः विद्याविस्तृतिः **सा त्वयि** मदध्यापके **भवतु** ।

हे व्रतपते ! यथा सत्यानां रक्षकस्तथा तत्सम्बुद्धौ **यथाऽयं जनो व्रतपतिरभूत्=भवति तथा त्वं चाहं च नौ** आवां **सखायौ भूत्वा यथायथं** यथार्थ **व्रतानि=सत्याचरणानि** नियतानि सत्याचरणानि **अनुचरेव** ।

हे मित्र ! यथा तव दीक्षापतिः यथा व्रतादेशपालकः **तुभ्यं दीक्षां** व्रतोपदेशम् **अमँस्त** मन्यते **तथा मे=मम** व्रतोपदेशम् **दीक्षां अन्वमँस्त** ।

यथा ते=तव तपस्पतिः यथा ब्रह्मचर्यादिपालकः **त्वदर्थं तपः** प्राक्क्लेशमुत्तरानन्दं ब्रह्मचर्य्यम् **अन्वमंस्त** पश्चान्मन्यते **यथा मे=ममापि तपस्पतिः** ब्रह्मचर्यादिपालकः **मदर्थं तपः** प्राक्क्लेशमुत्तरानन्दं ब्रह्मचर्यम् **अमँस्त** ॥ ५ । ४० ॥

भाषार्थ—(**व्रतपाः**) सत्य का पालन करने वाले (**अग्ने**) विज्ञान से समुन्नत विद्वान् ! आप जैसे मेरे (**व्रतपाः**) सत्य व्रतों का पालन करने वाले आचार्य (**अभूत्**) हो वैसे मैं (**ते**) आपके बतलाये व्रतों का पालन करने वाला बनूँ। और—

जो आपका (**तनूः**) विद्यादि कार्यों में व्याप्ति का निमित्त शरीर है, वह (**मयि**) आपके सखा मुझ में रहे। और जो (**एषा**) यह (**त्वयि**) मेरे मित्र आप में बुद्धि है, वह (**मयि**) मुझ में हो। और—

(**यो**) जो (**मम**) मेरा (**तनूः**) विद्या का विस्तार है (**सा**) वह (**त्वयि**) मेरे अध्यापक में हो।

हे (**व्रतपते**) सत्य भाषण आदि व्रतों के रक्षक ! जैसे यह व्यक्ति व्रतपति है, वैसे आप और मैं एवं दोनों मित्र मिलकर (**यथायथम्**) वास्तव में उसके (**व्रतानि**) सत्य व्यवहार आदि व्रतों का अनुकरण करें।

हे मित्र ! जैसे आपका (**दीक्षापतिः**) व्रतादेशों का पालन करने वाला आचार्य तुझे (**दीक्षाम्**) व्रतोपदेश को (**अमँस्त**) समझता है, वैसे (**मे**) मेरे (**दीक्षाम्**) व्रतोपदेश को भी बतलाये।

जैसे (**ते**) आपका (**तपस्पतिः**) ब्रह्मचर्य्य आदि का पालन करने वाला आचार्य आपको (**तपः**) पहले कष्ट और बाद में आनन्द देने वाले ब्रह्मचर्य की (**अन्वमँस्त**) शिक्षा देता है, वैसे (**मे**) मेरा (**तपस्पतिः**) ब्रह्मचर्य्य आदि का पालन करने वाला

आचार्य मेरे (**तपः**) पहले कष्ट और बाद में आनन्द देने वाले ब्रह्मचर्य की (**अमंस्त**) शिक्षा करें ॥ ५ । ४० ॥

[व्रतपा अग्ने विद्वाँस्त्वं यथा मे व्रतपा अभूत्, तथा ते ऽहं व्रतपा भवेयम्]

भावार्थः—यथा पूर्वं विद्वत्कारिणोऽध्यापका अभूवन् तथा ऽस्मदादिभिरपि भवितव्यम् ।

भावार्थ—जैसे पहले विद्वानों को बनाने वाले अध्यापक लोग हुये हैं वैसे हम भी बनें ।

[त्वं चाहं च नौ सखायौ भूत्वा यथायथं व्रतानि=सत्याचरणान्यनुचरेव]

यावन्मनुष्याः सुखदुःखहानिलाभव्यवस्थायां परस्परं स्वात्मवन्न वर्त्तन्ते न तावत् पूर्णं सुखं लभन्ते, तस्मादेतत्सर्वं मनुष्यैः कुतो नानुष्ठेयम् ॥ ५ । ४० ॥

जब तक सब मनुष्य सुख-दुःख तथा हानि-लाभ की व्यवस्था में परस्पर अपनी आत्मा के समान वर्ताव नहीं करते हैं तब तक पूर्ण सुख को प्राप्त नहीं होते । इसलिये इस वेदोक्त सत्यव्यवहार का आचरण सब मनुष्य क्यों न करें ॥ ५ । ४० ॥

भाष्यसार—**आचार्य और शिष्य कैसे हों**—विद्वान् आचार्य सत्य-भाषण आदि सत्य-व्रतों का पालन करने वाला और विज्ञान में समुन्नत होता है । वह अपने पूर्वज अध्यापकों के समान व्रतपालक बनकर अपने शिष्यों को भी व्रतपालक बनाता है । शिष्य लोग आचार्य की शारीरिक सेवा करते हैं तथा आचार्य के पास विद्यमान बुद्धि, विद्या आदि गुणों को उनके प्रिय होकर ग्रहण करते हैं । शिष्य भी अपने शरीर को तथा अपनी विद्या को भी आचार्य में अर्पित कर देते हैं । प्राप्त की हुई विद्या को आचार्य की ही कृपा समझते हैं ।

आचार्य और शिष्य किसी अन्य व्रतपति को देखकर बड़े उत्साहित होते हैं । उससे दोनों यह प्रेरणा लेते हैं कि जैसे यह व्यक्ति व्रतपति बना है इसी प्रकार हम दोनों परस्पर सखा होकर यथार्थ रूप में इस व्रतपति के सत्याचरण रूप व्रतों का अनुकरण करें ।

शिष्य आचार्य से प्रार्थना करता है कि हे आचार्य ! आप मेरे हितकारी मित्र हो । जैसे आपके दीक्षापति (**व्रतादेशों के पालक**) आचार्य ने आपको दीक्षा दी है वैसे आप मुझे भी दीक्षित कीजिये । और जैसे आपके तप-पति (**ब्रह्मचर्य आदि व्रतों के पालक**) आचार्य ने आपको प्रारम्भ में कष्टदायक प्रतीत होने वाले तथा परिणाम में आनन्द देने वाले ब्रह्मचर्य आदि तप की शिक्षा दी है वैसे आप मेरे तप-पति बन कर मुझे आनन्द-प्रद ब्रह्मचर्य आदि तप-आचरण की शिक्षा कीजिये ।

भाव यह है कि आचार्य और शिष्य समान सब मनुष्य सुख-दुःख हानि-लाभ में परस्पर आत्मवत् प्रेम-पूर्वक व्यवहार करके पूर्ण सुख को प्राप्त करें ॥ ५ । ४० ॥

अगस्त्यः । **विष्णुः**=**विद्वान्** ॥ भुरिगार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः स्वरः ॥

पुनस्तौ कथं वर्त्तेयातामित्युपदिश्यते ॥

फिर विद्वान् तथा अन्य मनुष्य कैसे वर्त्तें, इस विषय का उपदेश किया है ॥

उरु विष्णो विक्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि ।
घृतं घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर स्वाहा ॥ ४१ ॥

पदार्थः—(**उरु**) बहु (**विष्णो**) यथा व्यापनशीलो वायुर्विक्रमते तथा तत्सबुद्धौ (**विक्रमस्व**) पादैः विद्याङ्गैः संपद्यस्व (**उरु**) विस्तीर्णे (**क्षयाय**) विज्ञानोन्नतये (**नः**) अस्मान् (**कृधि**) कुर्य्याः (**घृतम्**) उदकम् (**घृतयोने**) यथाजलनिमित्ता विद्युद्वर्त्तते तथा तत्संबुद्धौ (**पिब**) (**प्रप्र**) प्रकृष्टमिव (**यज्ञपतिम्**) यथाऽहं यज्ञपतिं तथा त्वम् (**तिर**) दुःख प्लवस्व (**स्वाहा**) सुहुतं हविः ॥ **अयं मन्त्रः शत० ३। ६। ४। २-३ व्याख्यातः ॥ ४१ ॥**

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३। ६। ४। २-३) में की गई है ॥ ५। ४१ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **विष्णो** ! यथा व्यापनशीलो वायुर्विक्रमते तथा तत्सम्बुद्धौ **त्वं उरु** बहु **क्षयाय** विज्ञानोन्नतये **विक्रमस्व** पादैः विद्याङ्गैः सम्पद्यस्व **नः**=**अस्मान् सुखिनः** [**उरु**]=विस्तीर्ण **कृधि** कुर्य्याः।

हे **घृतयोने** !=**यथा विद्युत् तथा,** यथा जल-निमित्ता विद्युत् वर्तते तथा, तत्सम्बुद्धौ **घृतम्** उदकं **पिब,**

यथाऽहं यज्ञपतिं सन्तरामि तथा स्वाहा सुहुतं हविः **अनुतिष्ठन् प्रप्रतिर** दुःखं प्रकृष्टमिन प्लवस्व ॥ ५। ४१ ॥

भाषार्थ—हे (**विष्णो**) व्यापक वायु के समान विक्रमशाली विद्वान् ! आप (**उरु**) अत्यन्त (**क्षयाय**) विज्ञान की उन्नति के लिये (**विक्रमस्व**) अपनी विद्या के अङ्गों से सम्पन्न बनो और (**नः**) हमें [**उरु**] अत्यन्त सुखी (**कृधि**) करो। और—

हे (**घृतयोने**) घृत अर्थात् जल निमित्तक विद्युत् के समान जल का पान करने वाले विद्वान् ! आप (**घृतम्**) जल का (**पिब**) पान करो, और—

जैसे मैं (**यज्ञपतिम्**) यजमान को दुःख से पार करता हूँ वैसे (**स्वाहा**) अच्छे प्रकार होमकर्म का अनुष्ठान करके (**प्रप्रतिर**) अच्छे प्रकार से दुःख को पार करो ॥ ५। ४१ ॥

[**हे विष्णो ! त्वं उरु क्षयाय विक्रमस्व, नः=अस्मान् सुखिनः कृधि**]

भावार्थ—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः॥ यथा पवनः सर्वान् सुखयन् सर्वाधिष्ठानमस्ति तथैव विदुषा सम्पत्तव्यम् ॥ ५। ४१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है ॥ जैसे पवन सबको सुख देता हुआ सबका अधिष्ठान है वैसे विद्वान् ! लोग भी बनें ॥ ५। ४१ ॥

भाष्यसार—१. **विष्णु (विद्वान) कैसा हो**—विष्णु अर्थात् व्यापनशील वायु जैसे सबको सुख देता है तथा सबका आधार है इसी प्रकार विद्वान् भी विज्ञान की उन्नति के लिये विद्या के अङ्गों में व्यापक होकर सबको सुख प्रदान करे। प्रजा का आधार बने। विद्युत् का निमित्त जल है। उस जल का विद्वान् पुरुष पान करें अर्थात् विद्युत्-विद्या और जल-विद्या को सीखें। यज्ञपति अर्थात् यज्ञ आदि शुभ कर्मों का पालन करने वाले श्रेष्ठ पुरुष जैसे दुःख से पार होते हैं वैसे विद्वान् पुरुष भी यज्ञानुष्ठान से दुःखों को तरें ॥ ५। ४१ ॥

२. **अलंकार**—मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि शब्द लुप्त है इसलिये वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि पवन के समान विद्वान् पुरुष सब को सुखी करें तथा सब के आधार बनें। विद्वान् के समान सब मनुष्य व्यवहार करें ॥ ५। ४१ ॥

अगस्त्यः । **अग्निः**=विद्वान् । स्वराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

मनुष्यैः पूर्वोक्ताभ्यां विरुद्धा मनुष्या न सेवनीया इत्युपदिश्यते ॥

मनुष्य पूर्वोक्त विद्वान् और शूरवीरों के अतिरिक्त लोगों की सेवा न करें ॥

अत्यन्याँ२ऽ अगां नान्याँ२ऽ उपागामर्वाक् त्वा परेभ्योऽविदं परोऽवरेभ्यः ।
तं त्वा जुषामहे देव वनस्पते देवयज्यायै देवास्त्वा देवयज्यायै जुषन्तां विष्णवे त्वा ।
ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनꣳ हिꣳसीः ॥ ४२ ॥

पदार्थः—(**अति**) अत्यन्ते (**अन्यान्**) पूर्वोक्तभिन्नानविदुषः (**अगाम्**) प्राप्नुयाम् (**न**) निषेधे (**अन्यान्**) अविदुषो विरुद्धान्=विदुषः (**उप**) सामीप्ये (**अगाम्**) प्राप्नुयाम् (**अर्वाक्**) अवरः (**त्वा**) त्वम् (**परेभ्यः**) उत्तमेभ्यः (**अविदम्**) लभेय (**परः**) उत्कृष्टः (**अवरेभ्यः**) अनुकृष्टेभ्यः (**तम्**) अनु (**त्वा**) त्वाम् (**जुषामहे**) प्रीणीयाम (**देव**) कमनीय (**वनस्पते**) वनानां रक्षक (**देवयज्यायै**) यथा दिव्यानां संगतये तथा (**देवाः**) विद्वांसः (**त्वा**) त्वाम् (**देवयज्यायै**) यथोत्तमगुणदानाय तथा (**जुषन्ताम्**) सेवन्ताम् (**विष्णवे**) यज्ञाय (**त्वा**) त्वाम् (**ओषधे**) यथा सोमद्योषधिगणस्त्रायते तथा (**त्रायस्व**) रक्ष (**स्वधिते**) दुःखविच्छेदक (**मा**) निषेधे (**एनम्**) ओषधिगणं परं पुरुषं वा (**हिंसीः**) विनाशयेः ॥ अयं मन्त्रः शत० ३ । ६ । ४ । ५– १० व्याख्यातः ॥ ४२ ॥

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ६ । ४ । ५-१०) में की गई है ॥ ५ । ४२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **वनस्पते** ! वनानां रक्षक ! **देव** ! कमनीय ! **विद्वन्** ! यथा **त्वमन्यान्** पूर्वोक्तभिन्नानविदुषः **अतीत्यान्यान्** अविदुषो विरुद्धान्=विदुषः **उपागच्छसि तथाहमन्यान् मागां** न प्राप्नुयाम् **अन्यान्**=अविदुषो विरुद्धान्=विदुषः **उपागां** समीपं प्राप्नुयाम् ।

यस्त्वं **परेभ्यः** उत्तमेभ्यः **परः** उत्कृष्टः **अस्यवरेभ्यः** अनुकृष्टेभ्यः **अर्वाक्** अवरः **च तं त्वामविदं** लभेय ।

यथा देवा विद्वांसः **देवयज्यायै** यथा दिव्यानां संगतये मथा **त्वा=त्वां जुषन्ते, तथा त्वा=त्वां वयं जुषामहे** प्रीणीयाम् ।

यथा वयं देवयज्यायै यथोत्ताम गुणदानाय तथा **त्वां जुषामहे** प्रीणीयाम **तथैते सर्वे तं त्वां जुषन्ताम्** सेवन्ताम् ।

भाषार्थ—हे (**वनस्पते**) वनो के रक्षक, (**देव**) कामना करने के योग्य विद्वान् ! जैसे आप (**अन्यान्**) पूर्वोक्त विद्वानों से भिन्न अर्थात् मूर्खों को छोड़ कर (**अन्यान्**) मूर्खों से अन्य अर्थात् विद्वानों के पास जाते हो, वैसे मैं (**अन्यान्**) मूर्खों के पास (**न अगाम्**) न जाऊँ तथा (**अन्यान्**) मूर्खों से अन्य अर्थात् विद्वानों के (**उप-अगाम्**) पास जाऊँ । और—

जो आप (**परेभ्यः**) बड़ों से (**परः**) बड़े हो और (**अवरेभ्यः**) निकृष्टों से (**अर्वाक्**) दूर हो, (**तम्**) उन आपको (**अविदम्**) मैं प्राप्त करूँ । और—

जैसे (**देवाः**) विद्वान् लोग (**देवयज्यायै**) दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिये (**त्वा**) आपकी सेवा और आप से प्रेम करते हैं वैसे (**त्वा**) आपकी हम लोग (**जुषामहे**) सेवा करें । और—

जैसे हम लोग (**देवयज्यायै**) उत्तम गुणों को देने के लिये आपकी (**जुषामहे**) सेवा करते हैं वैसे ये सब लोग आपकी (**जुषन्ताम्**) सेवा करें ।

यथौषधिगणो विष्णवे यज्ञाय **सम्भूय सर्वान्** त्रायते, तथा हे **औषधे**=सर्वरोगनिवारक ! यथा सोमाद्योषधिगणस्त्रायते तथा **स्वधिते**=दुःख-विच्छेदक विद्वन् ! **त्वा**=त्वां **विष्णवे**=यज्ञाय वयं **जुषामहे** प्रीणीयाम् ।

जैसे औषधियाँ मिल कर सबकी रक्षा करती हैं वैसे हे (**ओषधे**) सोम आदि औषधियों के समान सबकी रक्षा एवं सब रोगों का निवारण करने वाले (**स्वधिते**) दुःख विनाशक विद्वान् ! (**त्वा**) आप की (**विष्णवे**) संगति के लिए हम लोग (**जुषामहे**) प्रीति और सेवा करें।

हे देव ! कमनीय ! **विद्वन्** ! **यथाऽहमिमं यज्ञं न हिंसामि तथैनं** औषधिगणं परं पुरुषं वा **त्वमपि मा न हिंसीः** विनाशयेः ॥ ५ । ४२ ॥

हे देव कामना करने योग्य **विद्वान्** जैसे मैं इस यज्ञ का विनाश नहीं करता वैसे (**एनम्**) इस औषधि गण का श्रेष्ठ पुरुष का तू भी (**मा हिंसीः**) विनाश मत कर ॥ ५ । ४२ ॥

[हे...विद्वन् ! **यथा त्वमन्यानतीत्यान्यानुपागच्छसि तथा हमन्यानागामन्यानुपागाम्**]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । मनुष्यैर्नीच व्यवहारान् नीचपुरुषांश्च त्यक्त्वोत्तमा व्यवहारा उत्तमा पुरुषाश्च प्रतिदिनमेषितव्याः ।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है ॥ सब मनुष्य नीच-व्यवहारों और नीच पुरुषों को छोड़ कर उत्तम-व्यवहारों और उत्तम पुरुषों की प्रतिदिन कामना करें ।

[**यस्त्वं परेभ्यः परोऽस्यवरेभ्यो ऽर्वाक् च, तं त्वामविदम्**]

उत्तमेभ्य उत्तमशिक्षाऽविरेभ्यो ऽवरा च ग्राह्या ।

बड़ों से बड़ी शिक्षा और छोटों से छोटी शिक्षा ग्रहण करें ।

[**हे देव ! विद्वन् ! यथाऽहमिमं यज्ञं न हिंसामि तथैनं त्वमपि मा हिंसीः**]

यज्ञो यज्ञसामग्री च कदाचिन्न हिंसनीया, सर्वैः परस्परं सुखेन भवितव्यम् ॥ ५ । ४२ ॥

यज्ञ और यज्ञ की सामग्री का कभी विनाश न करें । सब परस्पर सुख से रहें ॥ ५ । ४२ ॥

भाष्यसार— **१. मनुष्य पूर्वोक्त विद्वानों को छोड़कर अन्यों की सेवा न करें**—विद्वान् पुरुष वनों के रक्षक तथा कामना करने के योग्य होते हैं वे मूर्खों को छोड़कर विद्वान् पुरुषों का ही संग करते हैं । वे उत्तम पुरुषों से ऊँची शिक्षा तथा छोटे पुरुषों से छोटी शिक्षा ग्रहण करते हैं, निकृष्ट जनों से दूर रहते हैं । वे विद्वानों के संग के लिये उनसे प्रेम करते हैं तथा उनकी सेवा भी करते हैं । जैसे वन में उत्पन्न होने वाली औषधियाँ यज्ञ के लिये मिलकर अर्थात् यज्ञसामग्री बन कर सब की रक्षा करती हैं इसी प्रकार विद्वान् भी सब रोगों की निवारक औषधि हैं जो दुःखों का छेदन करती हैं । उक्त औषधि-रूप विद्वानों को यज्ञ के लिये प्रसन्न किया जाता है, उनकी सेवा की जाती है । विद्वान् पुरुष यज्ञ का कभी हिंसन नहीं करते, यज्ञ की सामग्री रूप औषधियों का तथा श्रेष्ठ पुरुषों का हिंसन नहीं करते अपितु उनकी रक्षा करते हैं ।

सब मनुष्य विद्वानों के समान मूर्खों के संग का परित्याग और विद्वानों के संग का ग्रहण करें । उत्तम जनों से उत्तम शिक्षा तथा छोटे पुरुषों से छोटी शिक्षा प्राप्त करें । दुष्ट-जनों से दूर रहें । विद्वानों का संग तथा उत्तम गुणों की प्राप्ति के लिये विद्वानों की सेवा करें, उन्हें प्रसन्न रखें । औषधियों के समान सबके रक्षक बनें, दुःखों का उच्छेद करें, । यज्ञ और यज्ञ सामग्री का कभी विनाश न करें । श्रेष्ठ पुरुषों की सदा रक्षा करें । परस्पर सुख से रहें ॥

२. अलंकार--मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि शब्द लुप्त है इसलिये वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि विद्वानों के समान सब पुरुष मूर्खों के संग का परित्याग आदि कर्मों का अनुष्ठान करें ॥ ५ । ४२॥

अगस्त्यः । **यज्ञः=स्पष्टम्** ॥ ब्राह्मी त्रिष्टुप् । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यैर्यज्ञार्था विद्या सर्वदा संसेवनीयेत्युपदिश्यते ॥

मनुष्य यज्ञ के लिये विद्या का नित्य सेवन करें ॥

द्यां मा लेखीर॒न्तरि॑क्षं मा हि॑ꣳसीः पृथि॒व्या सम्भ॑व ।
अ॒यꣳ हि त्वा॒ स्वधि॑ति॒स्तेति॑जानः प्र॒णि॒नाय॑ मह॒ते सौभ॑गाय ।
अतु॒स्त्वं दे॑व वनस्पते श॒तव॑ल्शो॒ विरो॑ह स॒हस्र॑वल्शा॒ वि व॒यꣳरु॑हेम ॥ ४३ ॥

पदार्थः—(**द्याम्**) सूर्य्यप्रकाशम् (**मा**) निषेधे (**लेखीः**) लिखेः (**अन्तरिक्षम्**) अवकाशम् (**मा**) निषेधे (**हिंसीः**) हन्याः (**पृथिव्या**) सह (**सम्**) क्रियायोगे (**भव**) (**अयम्**) वक्ष्यमाणः (**हि**) यतः (**त्वा**) त्वाम् (**स्वधितिः**) यथा वज्रस्तथा (**तेतिजानः**) भृशं तीक्ष्णः (**प्रणिनाय**) यथा त्वं प्रणयेस्तथा (**महते**) विशिष्टाय पूज्यतमाय (**सौभगाय**) सुष्ठु भगानामैश्वर्य्याणां भवाय (**अतः**) कारणात् (**त्वम्**) (**देव**) आनन्दित (**वनस्पते**) वनानां रक्षक (**शतवल्शः**) यथा बह्वंकुरो वृक्षस्तथा (**विरोह**) विविधतया प्रादुर्भव (**सहस्रवल्शाः**) यथा बहुमूला वृक्षा रोहन्ति तथा (**वि**) विविधतया [(**वयम्**)] (**रुहेम**) वर्द्धेमहि ॥ अयं मंत्रः शत० ३ । ६ । ४ । १३-१६ व्याख्यातः ॥ ४३ ॥

प्रमाणार्थ--इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ६ । ४ । १३-१६) में की गई है ॥ ५ । ४३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन्! यथाहं **द्यां** सूर्यप्रकाशं **न लिखामि तथा त्वमेनां मा लेखीः** न लिखेः ।

यथाऽहमन्तरिक्षम् अवकाशं **न हिंसामि, तथा त्वमेतन्मा हिंसीः** न हन्याः ।

यथाऽहं पृथिव्या सह संभवामि, तथैतया सह त्वमपि सम्भव ।

हि=यतः कारणात् यथा [अयम्] वक्ष्यमाणः **तेतिजानः** भृशं तीक्ष्णः **स्वधितिः** यथा वज्रस्तथा **शत्रून् विच्छिद्यैश्वर्य्यं प्रापयति तथा त्वमपि प्रापयेः ।**

अतः कारणात् **वयं त्वा** त्वां **महते** विशिष्टाय पूज्यतमाय **सौभगाय** सुष्ठु भगानामैश्वर्य्याणां भवाय **सम्भावयेम, यथा कश्चिदैश्वर्य्यं प्राणिनाय=प्राप-**

भाषार्थ—हे विद्वान् ! जैसे मैं (**द्याम्**) सूर्य के प्रकाश को नहीं छोड़ता हूँ वैसे तू भी विद्या-प्रकाश को (**मा लेखीः**) मत छोड़ । और—

जैसे मैं (**अन्तरिक्षम्**) अवकाश का नाश नहीं करता हूँ वैसे तू भी अवकाश (**समय**) का (**मा हिंसीः**) नाश न कर । और—

जैसे मैं (**पृथिव्या**) पृथिवी के साथ प्रकट होता हूँ वैसे तू भी इसके साथ उत्तम कार्यों से प्रकट रह । और—

(**हि**) क्योंकि जैसे (**तेतिजानः**) अत्यन्त तीक्ष्ण (**स्वधितिः**) वज्र=शस्त्र शत्रुओं का नाश करके ऐश्वर्य्य को प्राप्त कराता है वैसे आप भी ऐश्वर्य्य को प्राप्त कराओ ।

(**अतः**) इसलिये हम लोग (**त्वा**) आपको (**महते**) विशेष पूजा के योग्य (**सौभागाय**) उत्तम ऐश्वर्य्यों की उत्पत्ति के लिये सत्कार करें । और

यति यथा त्वं प्रणयेस्तथा **तथा वयं त्वां प्रापयेम ।**

जैसे कोई ऐश्वर्य को (**प्रणिनाम**) प्राप्त कराता है, वैसे हम लोग भी आपको प्राप्त करायें ।

हे **देव** ! आनन्दित ! **वनस्पते** ! वनानां रक्षक! **पूर्वोक्तेन** महता **सौभगेन यथा शतवल्श**:=**वृक्षः** यथा बह्वङ्कुरो वृक्षस्तथा **विरोहति तथा [त्वम्] विरोह** विविधतया प्रादुर्भव ।

हे (**देव**) आनन्दमय (**वनस्पते**) वनों के रक्षक विद्वान् पूर्वोक्त महान् ऐश्वर्य्य से जैसे (शतवल्शः) बहुत अंकुरों वाला वृक्ष विशेषतः बढ़ता है, वैसे आप (**विरोह**) विविध प्रकार से बढ़ो । और—

यथा सहस्रवल्शाः=**वनस्पतयः** यथा बहुमूला वृक्षाः **विरोहन्ति तथा वयमपि [विरुहेम]**=**विरोहेम** विविधतया वर्द्धेमहि ॥ ५ । ४३ ॥

जैसे (**सहस्रवल्शाः**) बहुमूल्य वृक्ष एवं वनस्पतियाँ बढ़ती हैं वैसे हम लोग भी [**विरुहेम**] नाना प्रकार से बढ़ें ॥ ५ । ४३ ॥

[हे विद्वन् ! यथाऽहं द्यां न लिखामि तथा त्वमेनां मा लेखीः, यथाऽहमन्तरिक्षं न हिंसामि तथा त्वमेतन्मा हिंसीः, यथा [अयम्]···शत्रून् विच्छिद्यैश्वर्यं प्रापयति तथा त्वमपि प्रापयेः,···वयं, त्वा महते सौभगाय सम्भावयेम, यथा शतवल्शः=वृक्षो विरोहति तथा [त्वम्] विरोह]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ इह संसारे केनचिन्मनुष्येण विद्याप्रकाशाभ्यासः कदाचिन्नैव त्याज्यः, स्वातन्त्र्यावकाशश्चैश्वर्यसम्भावनायोगेनासंख्यातोन्नतिकरणं चेति ॥५।४३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ इस संसार में कोई भी मनुष्य विद्या-प्रकाश, विद्याभ्यास, स्वतन्त्रता का अवसर, ऐश्वर्य उत्पादन के योग से असंख्य उन्नति करना, इनका परित्याग कभी न करे । ॥ ५ । ४३ ॥

भा० पदार्थः—लिखामि=त्यजामि ।

भाष्यसार—१. **मनुष्य यज्ञ के लिये विद्या का सदा सेवन करें**—जैसे ईश्वर सूर्य के प्रकाश को कभी तिरोहित नहीं करता इसी प्रकार विद्वान् पुरुष भी विद्या प्रकाश को तथा विद्याभ्यास को कभी न छोड़े । जैसे ईश्वर आकाश का हिंसन नहीं करता अर्थात् इसका विनाश नहीं करता अपितु इसे सदा विद्यमान रखता है इसी प्रकार विद्वान् पुरुष स्वतन्त्रता-अवकाश एवं शुभ कर्मों के लिए अमूल्य समय का कभी नाश न करें । जैसे ईश्वर पृथ्वी के साथ से अर्थात् सदा से विद्यमान है इसी प्रकार विद्वान् पुरुष भी अपने यश से पृथिवी के साथ तक अमर रहें । जैसे अत्यन्त तीक्ष्ण वज्र शत्रुओं का छेदन करके ऐश्वर्य को प्राप्त कराता है वैसे विद्वान् पुरुष दुष्ट का छेदन करके श्रेष्ठ जनों को ऐश्वर्य प्राप्त करायें ।

उक्त कार्यों को सम्पन्न करने वाले विद्वान् का सब मनुष्य महान् ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये सत्कार करें । ऐश्वर्य को स्वयं प्राप्त करके विद्वानों को भी ऐश्वर्य प्रदान करें । जिससे बहुत अंकुरों वाले वृक्ष के समान विद्वान् पुरुष विविध प्रकार की उन्नति करें ।

२. **अलङ्कार**—मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि शब्द लुप्त है अतः वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है । उपमा यह है जैसे ईश्वर सूर्य का त्याग नहीं करता वैसे विद्वान् भी विद्याप्रकाश तथा विद्याभ्यास का त्याग न करें । जैसे ईश्वर अन्तरिक्ष का हिंसन नहीं करता अर्थात् इसे सदा वर्तमान रखता है वैसे शुभ कर्मों के अवसर का लोप न करें । इत्यादि ॥ ५ । ४३ ॥

[पूर्वापराध्यायार्थसंगतिमाह —]

अत्र यज्ञानुष्ठानस्वरूपसम्पादक विद्वत्परमात्मप्रार्थना, विद्याप्राप्तिविद्वद्व्याप्तिनिरूपणमग्न्यादिना

इस अध्याय में यज्ञानुष्ठान का स्वरूप (१, २), यज्ञसम्पादक विद्वान् (३), परमात्मा की प्रार्थना

यज्ञसाधनं, सर्वविद्यानिमित्तवाचो व्याख्याध्ययनाध्यापनयज्ञ विवृतियोगाभ्यासलक्षणं, सृष्ट्युत्पत्तिरीश्वरसूर्यकर्माभिधानं, प्राणापान क्रियानिरूपणं, विभोरीश्वरस्य व्याप्त्युक्तिर्यज्ञानुष्ठानं, सृष्टेरूपकारग्रहणं, सूर्यसभाध्यक्षगुणाभिलाषो, यज्ञानुष्ठानशिक्षादानं, सवितृसभाध्यक्षकृत्योपदेशो, यज्ञात्सिद्धिरीश्वरसभाध्यक्षाभ्यां कार्यनिष्पत्तिरेतयोः स्वरूपकृत्यवर्णनमीश्वरवद्विदुषां वर्त्तमानं लक्षणं चेश्वरोपासनं, शूरवीरगुणकथनमीश्वर विद्युद्गुणवर्णनं, परमैश्वर्यप्राप्तिराकाशादिदृष्टान्तेन विद्युद्गुणवर्णनमीश्वरोपासकगुणप्रकाशनं, सर्वबन्धनाद्विमुक्तिः, परस्परवर्णनप्रकारो, दुष्टत्यागेन विदुषां संगकरणावश्यकता, मनुष्यैर्यज्ञसिद्धये विद्यासंग्रहणं चोक्तमतः पञ्चमाध्यायोक्तार्थानां चतुर्थाध्यायोक्तार्थैः साकं संगतिरस्तीति वेदितव्यम् ।। ५ ।।

(५), विद्याप्राप्ति और विद्वानों की विद्या में व्याप्ति का निरूपण (४), अग्नि आदि से यज्ञ की सिद्धि (६), सब विद्या की निमित्त वाणी की व्याख्या (१०, ११), अध्ययन-अध्यापन रूप यज्ञ का विवरण (१२), योगाभ्यास का लक्षण (१४), सृष्टि की उत्पत्ति (१५), ईश्वर और सूर्य के कर्मों का कथन (१६, १७), प्राण-अपान की क्रिया का निरूपण (१६), विभु ईश्वर की व्याप्ति का कथन (१८-२१), यज्ञ का अनुष्ठान (२२), सृष्टि से उपकार-ग्रहण (२३), सूर्य और सभाध्यक्ष के गुणों की कामना (२४), यज्ञानुष्ठान की शिक्षा देना (२५, २६), ईश्वर और सभाध्यक्ष के कार्यों का उपदेश (२६), यज्ञ से सिद्धि (२७, २८), ईश्वर और सभाध्यक्ष से कार्य की सिद्धि (३०), इन के स्वरूप और कार्य का वर्णन (३२), ईश्वर के समान विद्वानों का वर्ताव और लक्षण (३३), ईश्वर की उपासना (३६), शूरवीर के गुणों का कथन (३७), ईश्वर और विद्युत् के गुणों का वर्णन (३८), परम ऐश्वर्य की प्राप्ति (४३), आकाश आदि के दृष्टान्त से विद्युत् के गुणों का वर्णन (४१), ईश्वर के उपासक के गुणों का प्रकाशन, सब बन्धनों से मुक्ति, परस्पर वर्णन का प्रकार, दुष्टों का त्याग तथा विद्वानों के संग की आवश्यकता (४२), यज्ञ सिद्धि के लिये विद्या-संग्रह का उपदेश किया है, इसलिये पञ्चम अध्याय में कहे अर्थों की चतुर्थ अध्याय में कहे अर्थों के साथ संगति है, ऐसा जानें ।। ५ ।।

इति श्रीयुतपण्डितसुदर्शनदेवाचार्यकृते यजुर्वेदभाष्य-भास्करे पञ्चमोऽध्यायः ।।

॥ ओ३म् ॥

※ अथ षष्ठाध्यायस्यारम्भः ※

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व ॥ १ ॥

य० ३० । ३ ॥

अगस्त्य: । **सविता**=ईश्वरः । निचृद् पंक्तिः । यवोऽसीत्यस्यासुरी उष्णिक् दिवेत्यस्य च भुरिगार्ष्युष्णिक् छन्दसी । ऋषभः पञ्चमः ॥

अथ राज्याभिषेकाय सुशिक्षितं सभाध्यक्षं विद्वांसं प्रत्याचार्य्यादयः किं किमुपदिशेयुरित्युपदिश्यते ॥

अब पाँचवें अध्याय के पश्चात् षष्ठाऽध्याय (६) का आरम्भ है । इसके प्रथम मन्त्र में राज्याभिषेक के लिये अच्छी शिक्षा से युक्त सभाध्यक्ष विद्वान् को आचार्य्यादि विद्वान् लोग क्या-क्या उपदेश करें, यह उपदेश किया है ॥

दे॒वस्य॑ त्वा स॒वि॒तुः प्र॑स॒वे॒ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम् । आद॑दे॒ नार्य॑सी॒-द॒महꣳ रक्ष॑सां ग्री॒वा ऽ अपि॑कृन्ता॒मि । यवो॑ऽसि य॒वया॒स्मद् द्वेषो॑ य॒वयारा॑ती॒र्दिवे त्वा॒ऽन्तरि॑क्षाय त्वा पृथि॒व्यै त्वा॒ शुन्ध॑न्ताँल्लो॒काः पि॑तृषद॑नाः पितृषद॑नमसि ॥ १ ॥

पदार्थः--(**देवस्य**) द्योतमानस्य (**त्वा**) त्वां सभाध्यक्षम् (**सवितुः**) सर्वविश्वोत्पादकस्य (**प्रसवे**) यथेश्वरसृष्टौ (**अश्विनोः**) प्राणोदानयोः (**बाहुभ्याम्**) यथा बलवीर्याभ्याम् (**पूष्णः**) पुष्टिमितित्तस्य प्राणस्य (**हस्ताभ्याम्**) धारणाकर्षणाभ्याम् (**आददे**) गृह्णामि (**नारि**) यज्ञसहकारिणि (**असि**) (**इदम्**) युद्धाख्यं कृत्वा (**अहम्**) (**रक्षसाम्**) दुष्टाकर्मकारिणाम् (**ग्रीवाः**) कण्ठान् (**अपि**) (**कृन्तामि**) छिनद्मि (**यवः**) संयोगविभागकर्त्ता (**असि**) (**यवय**) वा छन्दसि ॥ अ० १ । ४ । ६ ॥ भा० वा० ॥ इति वृद्ध्यभावः (**अस्मत्**) अस्माकं सकाशात् (**द्वेषः**) द्वेषकान् (**यवय**) वियुहि (**अरातीः**) शत्रून् (**दिवे**) विद्यादिप्रकाशाय (**त्वा**) **त्वां न्यायप्रकाशम्** (**अन्तरिक्षाय**) **अन्तरक्षयमिति ॥ निरु० २ । १० ॥ अन्तरिक्षमित्यन्तरिक्षनामसु पठितम् ॥ निघं० १ । ३ ॥** (**त्वा**) सत्यानुष्ठानवकाशदम् (**पृथिव्यै**) भूमिराज्याय (**त्वा**) राज्यविस्तारकम् (**शुन्धन्ताम्**) (**लोकाः**) न्यायदृष्ट्या समीक्षणीयाः (**पितृषदनाः**) यथा पितृषु सीदन्ति ते । **पितर इति पदनामसु पठितम् ॥ निघं० ५ । ५ ॥** (**पितृषदनम्**) यथा विद्वत्स्थानम् (**असि**) ॥ **अयं मन्त्रः श० ३ । ७ । १ । १–२ व्याख्यातः ॥ १ ॥**

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र में (**यवय**) पद में 'वा छन्दसि' (**अ० १ । ४ । ६ भा० वा०**) से वृद्धि का प्रतिषेध हुआ है (**अन्तरिक्षाय**) निघण्टु (१-३) में अन्तरिक्ष शब्द अन्तरिक्ष नामों में पढ़ा है ।

(**पितरः**) पितर शब्द निघण्टु (५-५) में पद नामों में पढ़ा है। इस मन्त्र की व्याख्या शतपथ में (३। ७। १। १-२) में की है॥ ६। १॥

सपदार्थान्वयः--हे **सभाऽध्यक्ष** ! यथा **पितृषदनाः** यथा पितृषु सीदन्ति ते, **देवस्य** द्योतमानस्य **सवितुः** सर्वविश्वोत्पादकस्य **प्रसवे** यथेश्वरसृष्टौ **अश्विनोः** प्राणोदानयोः **बहुभ्यां** यथाबलवीर्य्याभ्यां **पूष्णः** पुष्टिनिमित्तस्य प्राणस्य **हस्ताभ्यां** धारणाऽऽकर्षणाभ्यां [**त्वा**]=**त्वां** त्वां सभाध्यक्षम् **आददति** गृह्णन्ति **तथाऽहम् आ+ददे** गृह्णामि। **यथा** ऽहम् [**इदं**] युद्धाख्यं कृत्वा **रक्षसां** दुष्टकर्मकारिणां **ग्रीवाः** कण्ठान् **कृन्तामि** छिनद्मि **तथा** त्वमपि **कृन्त**।

भाषार्थ—हे सभाऽध्यक्ष विद्वन्! जैसे (**पितृषदनाः**) पितरों में रहने वाले विद्वान् लोग देवस्य प्रकाशमान (**सवितुः**) सकल विश्व के उत्पादक (**प्रसवे**) ईश्वर की सृष्टि में (**अश्विनोः**) प्राण और उदान के (**बाहुभ्याम्**) बल एवं वीर्य्य से तथा (**पूष्णः**) पुष्टिकारक प्राण के (**हस्ताभ्याम्**) धारण और आकर्षण से [**त्वा**] तुझ सभाध्यक्ष को ग्रहण करते हैं, वैसे मैं (**आ+ददे**) ग्रहण करूँ। और—जैसे (**अहम्**) मैं [**इदम्**] युद्ध करके (**रक्षसाम्**) दुष्टकर्म करने वाले लोगों के (**ग्रीवाः**) कण्ठों को (**कृन्तामि**) काटता हूँ वैसे तू भी काट।

हे **सभाध्यक्ष** ! **त्वं यवः** संयोगविभागकर्ता **असि, अस्मद्** अस्माकं सकाशात् **द्वेषः द्वेषकान् यवय** वियुङ्हि, **अरातीः** शत्रून् **यवय** वियुङ्हि, **तथा**ऽहं **दिवे** विद्यादिप्रकाशाय **त्वा** त्वां न्यायप्रकाशम्, **अन्तरिक्षाय त्वा** सत्याऽनुष्ठानाऽवकाशदं, **पृथिव्यै** भूमिराज्याय **त्वा**=**त्वां** राज्यविस्तारकं, **शुन्धामि**, **तथेमे पितृषदनाः** यथा पितृषु सीदन्ति ते, **लोकाः** न्यायदृष्ट्या समीक्षणीयाः **त्वां शुन्धन्ताम्**।

हे सभाध्यक्ष ! आप (**यवः**) संयोग और विभाग करने वाले (**असि**) हो। अतः (**अस्मत्**) हमारे पास से (**द्वेषः**) द्वेषी लोगों को (**यवय**) हटा, (**अरातीः**) शत्रुओं को (**यवय**) हटा। तथा मैं (**दिवे**) विद्यादि के प्रकाश के लिये (**त्वा**) तुझ न्यायप्रकाशक को, (**अन्तरिक्षाय**) सत्याऽनुष्ठान के लिये (**त्वा**) तुझ सत्याऽऽचरण का अवसर देने वाले को, (**पृथिव्यै**) विशालराज्य के लिए (**त्वा**) तुझ राज्य के विस्तारक को, (**शुन्धामि**) शुद्ध करता हूँ, वैसे (**पितृषदनाः**) विद्वान् जो (**लोकाः**) न्याय की चक्षु से देखने वाले हैं, वे तुझे शुद्ध करें।

यतस्त्वं **पितृषदनं** यथा विद्वत्स्थानम् **इवाऽसि** तस्मात् पितृपालको भव।

क्योंकि—आप (**पितृषदनम्**) विद्वानों के धाम के समान (**असि**) हो इसलिये विद्वानों के पालक बनो।

हे सभापते **नारि** यज्ञसहकारिणि ! **भवलाऽप्येवमेव** कार्य्यम्॥ ६। १॥

हे सभापति की (**नारि**) यज्ञसंगिनी देवी ! आप भी इसी प्रकार आचरण करें॥ ६। १॥

[हे सभाध्यक्ष ! यथा पितृषदना देवस्य सवितुः प्रसवे…[त्वा] त्वामाददति तथाऽहमाददे, यथाऽहम् [इदं] रक्षसां ग्रीवाः कृन्तामि तथा त्वमपि कृन्त]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः॥ ये विद्यानिष्णाता ईश्वरसृष्टौ स्वस्य परेषां च दुष्टतां विधूय राज्यं सेवन्ते, ते सुखिनो भवन्ति॥ ६। १॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है॥ जो विद्या में निष्णात् विद्वान् लोग ईश्वर की सृष्टि में अपनी और दूसरों की बुराई को दूर हटाकर राज्य का सेवन करते हैं वे सदा सुखी रहते हैं॥ ६। १॥

भा० पदार्थः—पितृषदनाः=विद्यानिष्णाताः ॥

भाष्यसार—**१. राज्याभिषेक के लिये सुशिक्षित सभाध्यक्ष विद्वान् को आचार्य आदि लोग क्या-क्या उपदेश करें**—हे सुशिक्षित सभाध्यक्ष विद्वान् ! ईश्वर सर्वत्र प्रकाशमान तथा सकल विश्व का उत्पादक है उस ईश्वर की सृष्टि में पितरों की सभा में बैठने वाले विद्वान् लोग तुझे प्राण और उदान के बल वीर्य के कारण तथा वायु के समान धारण-आकर्षण शक्ति होने के कारण तुझे सभाध्यक्ष रूप में स्वीकार करते हैं। मैं तेरा आचार्य भी तुझे उक्त गुणों के कारण सभाध्यक्ष रूप में स्वीकार करता हूँ। तू युद्ध करके दुष्ट कर्म करने वाले राक्षसों के कण्ठों का छेदन कर और अपनी बुराइयों को भी दूर हटा।

हे सभाध्यक्ष ! तेरे अन्दर संयोग और विभाग करने की भी शक्ति है, इसलिये हमसे द्वेष करने वालों की, तथा हमारे शत्रुओं का विभाग कर। उन्हें संयुक्त न होने दे। उनमें फूट डाल।

आप न्याय के प्रकाशक हो इसलिये विद्यादि शुभ गुणों के प्रकाश के लिये, आप सत्याचरण का अवसर देने वाले हो इसलिये सत्य का आचरण करने के लिये, आप राज्य के विस्तारक हो अतः भूमि पर राज्य करने के लिये मैं आपका राज्याभिषेक करता हूँ। और पितरों की सभा में बैठने वाले सबको न्याय चक्षु से देखने वाले विद्वान् लोग भी आपका राज्याभिषेक करते हैं। आप विद्वानों के धाम के समान हो इसलिये उक्त पितर विद्वानों के पालक बनो। आपकी यज्ञसंगिनी देवी भी आपके समान ही आचरण करे।

विद्यानिष्णात सभाध्यक्ष लोग आचार्य के इस उपदेश के अनुसार अपनी और दूसरों की बुराई को हटाकर राज्य की सेवा करें जिससे सब सुखी रहें॥

२. अलङ्कार—मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि शब्द लुप्त है। इसलिये वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि सुशिक्षित सभाध्यक्ष को राज्य अभिषेक के लिये जैसे पितर (**विद्वान्**) लोग उन्हें स्वीकार करें वैसे प्रजाजन भी उन्हें सभाध्यक्ष मानें। सभापति की पत्नी भी सभापति के समान आचरण करें॥

शाकल्यः। **सविता**=ईश्वरः॥ निचृद्गायत्री। षड्जः। देवस्त्वेत्यस्य स्वराट्
पंक्तिश्छन्दः पञ्चमः स्वरः॥

पुनः सोऽभिषिक्तः सभाध्यक्षः कथं प्रवर्त्ततेत्युपदिश्यते॥

वह अभिषेक किया हुआ सभाध्यक्ष राजा कैसे वर्ते।

अ॒ग्रे॒णीर॑सि स्वावे॒शऽउ॑न्ने॒तॄणा॑मे॒तस्य॑ वि॒त्ताद॑धि॑ त्वा स्थास्यति दे॒वस्त्वा॑ स॒वि॒ता मध्वा॑नक्तु सुपिप्प॒लाभ्य॒स्त्वौष॑धीभ्यः। द्याम॑ग्रे॒णास्पृ॑क्ष॒ऽआन्तरि॑क्षं॒ मध्ये॑नाप्राः पृ॒थि॒वीमुप॑रेणादृꣳहीः॥२॥

पदार्थः—(**अग्रेणीः**) यथाध्यापकाः शिष्यान् पिता स्वसंतानान् वा पुरस्तादेव सुशिक्षया विद्यां प्रापयति तथा (**असि**) (**स्वावेशः**) यथाप्तः शोभनं धर्ममाविशति तथा नेता (**उन्नेतॄणाम्**) यथोन्नेतॄणां=उत्कर्षप्रापयितॄणां राज्यं तथा (**एतस्य**) प्रकृतं राज्यं पालयितुम् (**वित्तात्**) विजानीहि (**अधि**) उपरिभावे (**त्वा**) त्वाम् (**स्थास्यति**) (**देवः**) अखिलराज्येश्वरः (**त्वा**) त्वाम् (**सविता**) सर्वस्य विश्वस्य जनिता (**मध्वा**) मधुरगुणेन (**अनक्तु**) सिञ्चतु (**सुपिप्पलाभ्यः**) यथा सुष्ठुफलाभ्यः (**त्वा**) त्वाम् (**औषधीभ्यः**) प्रसिद्धाभ्यः (**द्याम्**) विद्यान्यायप्रकाशम् (**अग्रेण**) पुरस्तात् (**अस्पृक्षः**) स्पृश। **अत्र सर्वत्र**

लडर्थे लुङ् (आ) समन्तात् (अन्तरिक्षम्) धर्मप्रचारस्यावकाशम् (मध्यमेन) मध्यमावस्थाविशेषेण (अप्राः) पिपृहि (पृथिवीम्) भूमिराज्यम् (उपरेण) उत्कृष्टनियमेन (अदृꣳहीः) प्राप्य वर्द्धस्व ॥ अयं मंत्रः शत० ३।७।१।६ व्याख्यातः ॥ २ ॥

प्रमाणार्थ—(अस्पृक्षः) इस मन्त्र में सर्वत्र लट् अर्थ में लुङ् लकार है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३।७।१।६) में की गई है ॥ ६।२॥

सपदार्थान्वयः—हे **सभाध्यक्ष!** **यथाऽग्रेणीः** यथाऽध्यापकाः शिष्यान् पिता स्वसन्तानान् वा पुरस्तादेव सुशिक्षया विद्यां प्रापयति तथा **अस्ति, तथा त्वमसि।**

उन्नेतॄणां यथोन्नेतॄणाम्=उत्कर्षप्रापयितॄणां राज्यं तथा **स्वावेशः** यथाऽऽप्तः शोभनं धर्ममाविशति तथा नेता **सन् एतस्य**=**एतं राज्यं** प्रकृतं राज्यं पालयितुं **वित्तात्** विजानीहि।

हे राजन्! **यथा ते [त्वा]**=**त्वां राजपुरुषसमूहः सुपिप्पलाभ्यः** यथा सुष्ठुफलाभ्यः **ओषधीभ्यः** प्रसिद्धाभ्यो **मध्वा** मधुरगुणेन **अनक्तु** सिञ्चतु **एवं प्रजापुरुषसमूहोऽपि [त्वा]**=**त्वां च अनुक्तु** सिञ्चतु।

त्वमग्रेण पुरस्ताद् **यशसा द्यां** विद्यान्यायप्रकाशम् **अस्पृक्षः** स्पृश। **मध्यमेन** मध्यमाऽवस्थाविशेषेण **अन्तरिक्षं** धर्म प्रचारस्याऽवकाशम् **आ+अप्राः** समन्तात् पिपृहि, **उपरेण** उत्कृष्टनियमेन **पृथिवीं** भूमिराज्यं **प्राप्येव अहँहीः** प्राप्य वर्द्धस्व।

देवः अखिलराज्येश्वरः **सविता**=**सर्वप्रेरको** जगदीश्वरः सर्वस्य विश्वस्य जनिता **त्वा** त्वाम् **अधि+स्थास्यति** उपरि स्थास्यति ॥ ६।२॥

भाषार्थ—हे सभाऽध्यक्ष राजन्! जैसे (**अग्रेणीः**) अध्यापक शिष्यों को और पिता अपने सन्तानों को प्रथम ही उत्तम शिक्षा से विद्या प्राप्त कराता है, वैसे ही आप (**असि**) हो। और—

(**उन्नेतॄणां**) उन्नति करने वालों के राज्य का तथा इस वर्त्तमान राज्य का पालन करने के लिए (**स्वावेशः**) आप्त-पुरुष उत्तम धर्म में प्रवेश करने वाला नेता बनकर (**एतस्य**) इसके इस राज्य को (**वित्तात्**) जान।

हे राजन्! जैसे [**त्वा**] तुझे राजपुरुष लोग (**सुपिप्पलाभ्यः**) उत्तम फल वाली (**ओषधीभ्यः**) औषधियों के (**मध्वा**) मधुर रस से (**अनक्तु**) सींचे, इस प्रकार प्रजा के लोग भी [**त्वा**] तुझे (**अनक्तु**) सींचा करें।

तू (**अग्रेण**) **पूर्व** यश से (**द्यां**) विद्या और न्यायप्रकाश का (**अस्पृक्षः**) स्पर्श कर। (**मध्यमेन**) मध्यम अवस्था से (**अन्तरिक्षम्**) धर्म-प्रचार के अवसर को (**आ+अप्राः**) चहुँ ओर से पूर्ण कर। (**उपरेण**) उत्तम नियम से (**पृथिवीम्**) भूमि के राज्य को प्राप्त करके (**अहँहीः**) बढ़ा।

(**देवः**) अखिल राज्य का स्वामी (**सविता**) सब का प्रेरक, सारे विश्व का उत्पादक जगदीश्वर (**त्वा**) तुझ को (**अधि+स्थास्यति**) ऊपर, ऊँचे आसन पर बैठाएगा ॥ ६।२॥

[हे राजन्! यथा ते [त्वा]=त्वां राजपुरुषसमूहः **अनक्तु, एवं प्रजापुरुषसमूहोऽपि [त्वा]=त्वां चानक्तु**]

भावार्थः—न हि कश्चिज्जनो राजप्रजापुरुषैरस्वीकृतो राज्यमर्हति,

भावार्थ—राजा और प्रजा से अस्वीकृत कोई भी व्यक्ति राज्य नहीं कर सकता।

[त्वमग्रेण यशसा द्यामस्पृक्षः, मध्यमेनान्तरिक्षमाप्राः, उपरेण पृथिवीं प्राप्येवाहꣳहीः]

न चापि राज्ञानादृतः साम्राज्यं कीर्त्यनुक्रमेण विना सैन्यापत्यं, दण्डनेतृत्वं, सर्वलोकाधिपतित्वं च ॥ ६।२॥

और—राजा से तिरस्कृत साम्राज्य को तथा कीर्ति-परम्परा के बिना सेनापति, दण्ड-नेता तथा सब लोकों का अधिपति नहीं बन सकता ॥ ६।२॥

भा० पदार्थः—यशसा=कीर्त्यनुक्रमेण ।

भाष्यसार—**अभिषिक्त सभाध्यक्ष**—जैसे अध्यापक अपने शिष्यों को वा पिता अपनी सन्तान को प्रथम से सुशिक्षित करता है इसी प्रकार सभाध्यक्ष प्रथम से ही सुशिक्षित होता है। यह सभाध्यक्ष उत्कर्ष पर पहुँचाने वाले लोगों का नेता बनकर राज्य का पालन करना जानता है। राजा लोग उत्तम फल वाली औषधियों से तथा मधुर पदार्थों से सभाध्यक्ष का सत्कार करें अर्थात् उसे सभाध्यक्ष स्वीकार करें इसी प्रकार प्रजा भी उसका सम्मान करे। क्योंकि राजा और प्रजा से अस्वीकृत, असम्मानित कोई भी व्यक्ति राज्य नहीं कर सकता। यश-परम्परा के बिना भी कोई व्यक्ति सेनापति, दण्डनेता और सर्वलोकाधिपति नहीं बन सकता इसलिये प्रथम यश से द्युलोक का स्पर्श करे अर्थात् विद्या और न्याय प्रकाश से अपने यश को बढ़ावे। दूसरे यश से अन्तरिक्ष को भरपूर करे अर्थात् धर्म प्रचार का सबको आकाश=अवकाश (**अवसर**) प्रदान करे। तीसरे यश से पृथिवी को बढ़ावे अर्थात् उत्कृष्ट नियमों से भूमि के राज्य का विस्तार करे। ऐसे आचरण करने से अखिल राज्य का स्वामी सबका प्रेरक, सकल विश्व का उत्पादक जगदीश्वर सभाध्यक्ष को सर्वोपरि विराजमान रखता है ॥ ६ । २ ॥

दीर्घतमाः । **विष्णुः=ईश्वरः** ॥ आर्च्युष्णिक् । अत्राहेत्यस्य भुरिगार्च्युष्णिक् छन्दः,

ब्रह्मदृꣳहेत्यस्य आसुरी गायत्री षड्जः । निचृत्प्राजापत्या बृहती छन्दः, मध्यमः स्वरः ।
ऋषभः स्वरः । ब्रह्मवनित्वेत्यस्य ॥

पुनस्तं कीदृशं विदित्वा वाणिज्यकर्म्म कुर्वाणाः जना आश्रयन्तीदमुपदिश्यते ॥

वाणिज्य कर्म करने वाले मनुष्य उस सभाध्यक्ष राजा को कैसा जानकर आश्रय करते हैं॥

या ते॒ धामा॑न्युश्मसि॒ गम॑ध्यै॒ यत्र॒ गावो॒ भूरि॑शृङ्गाऽअ॒यासः॑ ।

अत्राह॒ तदु॑रुगा॒यस्य॒ विष्णोः॑ प॒रमं प॒दमव॑भारि॒ भूरि॑ । ब्र॒ह्म॒वनि॑ त्वा क्षत्र॒वनि॑

रायस्पोष॒वनि॒ पर्यू॑हामि । ब्रह्म॑ दृꣳह क्ष॒त्रं दृꣳहायु॑र्दृꣳह प्र॒जां दृꣳह ॥ ३ ॥

पदार्थः—(**या**) यानि (**ते**) तव सभाध्यक्षस्य (**धामानि**) दधति सुखानि येषु तानि राज्य-प्रबन्धस्थानानि देशदेशान्तरवाणिज्यार्हाणि (**उश्मसि**) उश्मः=कामयामहे (**गमध्यै**) गन्तुं=प्राप्तुम (**यत्र**) येषु (**गावः**) रश्मयः । **गाव इति रश्मिनामसु पठितम् ॥** निघं० १ । ५ ॥ (**भूरिशृङ्गाः**) भूरीणि शृङ्गाणि=प्रकाशा यासु ताः । **शृङ्गाणीति ज्वलतोनामसु पठितम् ॥** निघं० १ । १७ ॥ (**अयासः**) अयन्त इत्ययासः । मही-धरेणात्रायगतावित्यस्य यदयन्तीति परस्मैपदमुक्तं तदसदात्मनेपदोपयोग्यत्वात् (**अत्र**) येषु (**अह**) निश्चये (**तत्**) तस्य (**उरुगायस्य**) उरुर्बहुर्गायः=स्तुतिर्यस्य तस्य । **अत्र गंशब्द इत्यस्माद् घञर्थे कविधानमिति कर्म्मणिकः** (**विष्णोः**) व्यापकस्य परमेश्वरस्य (**परमम्**) सर्वथोत्कृष्टम् (**पदम्**) पत्तुं योग्यम् (**अव**) क्रियायोगे (**भारि**) भ्रियते । **अत्र लडर्थे लुङ् भृञ्धातोश्चिणि परेऽडभावः । अत्र बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपि ॥ अ० ६ । ४ । ७५ ॥ इति सूत्रेणाडभावः** (**भूरि**) बहु (**ब्रह्मवनि**) ब्रह्मणो वेतृणां संविभक्तारं ततथा (**त्वा**) त्वाम् (**क्षत्रवनि**) क्षत्रस्य=राज्यस्य क्षत्रियाणां वा संविभाजकम् (**रायस्पोषवनि**) रायो=धनस्य पोषो=दृढता तस्याः संविभाजिनम् (**परि**) परितः (**ऊहामि**) विविधतया तर्कयामि (**ब्रह्म**) परमात्मानं वेदं वा (**दृंह**) स्थिरीकुरु (**क्षत्रम्**) राज्यं धनुर्वेदविदं क्षत्रियं वा (**दृंह**) उन्नय (**आयुः**) जीवनम् (**दृंह**) (**प्रजाम्**) स्वसंतानान्=संरक्षणीयान् जनान् (**दृंह**) ब्रह्मचर्य्यराज्यधर्माभ्यां परिपालय ॥

अत्राह यास्कमुनिः—ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः । अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमवभाति भूरि । ऋ० १ । १५४ । ६ ॥ तानि वां वास्तूनि कामयामहे

गमनाय यत्र गावो भूरिश्रृङ्गाः बहुश्रृङ्गाः । भूरीति बहुनामधेयं प्रभवतीति सतः, श्रृङ्गं श्रयतेर्वा श्रृणोतेर्वा शम्नातेर्वा शरणायोद्गतमिति वा शिरसो निर्गतमिति वाऽयासोऽयनास्तत्र तदुरुगायस्य विष्णोर्महागतेः परमं पदं परार्ध्यस्थमवभाति भूरिपादः पद्यते ॥ निरु० २ । ७ ॥ अयं मन्त्रः श० ३ । ७ । १ । १५ व्याख्यातः ॥ ३ ॥

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या यास्कमुनि ने (**नि० २ । ७**) में की है । (**गावः**) गाव शब्द निघण्टु में (१ । १५) रश्मि नामों में पढ़ा है । (**भूरिशृङ्गाः**) शृङ्गाणि शब्द निघण्टु (१ । १७) में प्रकाशार्थक शब्दों में पढ़ा है । (**उरुगायस्य**) इसमें गाय शब्द (**गै शब्दे**) धातु से 'घञर्थे कविधानम्' वार्त्तिक से घञर्थ में कर्म में 'क' प्रत्यय हुआ है । (**भारि**) यहां लट् अर्थ में लुङ् है और भृञ् धातु से चिण् प्रत्यय परे होने पर 'बहुलं छन्दस्यमाङ् योगेऽपि' (**अ० ६-४-७५**) सूत्र से अडागम नहीं हुआ । इस मन्त्र की व्याख्या शतपथ में (३ । ७ । १ । १५) की है ।

सपदार्थान्वयः—हे **सभाध्यक्ष** ! **या**=**यानि ते** तव सभाऽध्यक्षस्य **धामानि** दधति सुखानि येषु तानि राज्यप्रबन्धस्थानानि देशदेशाऽन्तरवाणिज्याऽर्हाणि **गमध्यै**=**गन्तुं** गन्तुं=प्राप्तुं **वयमुश्मसि** उश्मः=कामयामहे, **तानि किंभूतानि सन्ति ? यत्र**=**येषु उरुगायस्य** उरुर्बहुर्गायः स्तुतिर्यस्य तस्य **विष्णोः** व्यापकस्य परमेश्वरस्य **भूरिश्रृङ्गाः** भूरीणि श्रृङ्गाणि=प्रकाशा यासु ताः, **गावः** रश्मयो **अयासः** अयन्त इत्ययासो **भवन्ति, तदुक्तन्याय मार्गाः प्रकाशन्त एवेति यावत्** ।

अत्राह=**एषु हि** (**अत्र**=येषु=**अह**=निश्चयेन) **तत्**=**तस्य विष्णोः** व्यापकस्य परमेश्वरस्य **परमं** सर्वथोत्कृष्टं **पदं** पत्तुं योग्यं **विद्वद्भिः भूरि** बहु **अव**+**भारि** ध्रियते । **अतः** [**त्वा**]=**त्वां यथा ब्रह्मवनि**=ब्रह्मणो वेतॄणां संविभक्तारं तत्तथा, **यथा क्षत्रवनि** क्षत्रस्य=राज्यस्य क्षत्रियाणां वा संविभाजकं, **यथा रायस्पोषवनि** रायो=धनस्य पोषो=दृढ़ता तस्याः संविभाजिनं **तथा परि**+**ऊहामि** परितो विविधतया तर्कयामि ।

त्वं ब्रह्म परमात्मानं वेदं वा **दृँहे** स्थिरीकुरु, **क्षत्रं** राज्यं धनुर्वेदविदं क्षत्रियं वा **दृँह** उन्नय, **आयुः** जीवनं **दृँह** उन्नय, **प्रजां** स्वसन्तानान् संरक्षणीयान् जनान् **दृँह** ब्रह्मचर्यराज्यधर्माभ्यां परिपालय ॥ ६ । ३ ॥

भाषार्थ—हे सभाध्यक्ष ! (**या**) जो (**ते**) आपके (**धामानि**) सुख को धारण कराने वाले, व्यापार करने के योग्य राज्य प्रबन्ध के स्थान हैं हम लोग उन्हें (**गमध्यै**) प्राप्त करने की (**उश्मसि**) कामना करते हैं । वे स्थान कैसे हैं ?—(**यत्र**) जिन में (**उरुगायस्य**) अत्यन्त स्तुति के योग्य (**विष्णोः**) व्यापक परमेश्वर की (**भूरिशृंगाः**) अत्यन्त प्रकाश वाली (**गावः**) रश्मियाँ (**अयासः**) प्राप्त हैं अर्थात् वहां ईश्वरोक्त न्याय के मार्ग प्रकाश से युक्त हैं ।

(**अत्र**) इन मार्गों में (**अह**) निश्चय ही उस (**विष्णोः**) व्यापक परमेश्वर के (**परमम्**) सब प्रकार से उत्कृष्ट (**पदम्**) प्राप्त करने योग्य पद को विद्वान् लोग (**भूरि**) सर्वथा (**अवभारि**) धारण करते हैं । इसलिये मैं [**त्वा**] आप सभाध्यक्ष को (**ब्रह्मवनि**) ब्रह्म वेत्ता लोगों की (**क्षत्रवनि**) राज्य तथा क्षत्रिय लोगों की (**रायस्पोषवनि**) धन के पोषक वैश्य लोगों की सेवा करने वाला (**पर्यूहामि**) समझता हूँ । इसलिये—

आप (**ब्रह्म**) परमात्मा वा वेद को (**दृँह**) अपने राज्य में स्थिर करो (**क्षत्रम्**) राज्य वा धनुर्वेद के विद्वान् क्षत्रिय को (**दृँह**) समुन्नत करो (**आयुः**) जीवन को (**दृँह**) उन्नत करो (**प्रजाः**) अपनी सन्तान तथा रक्षा के योग्य जनों का (**दृँह**) ब्रह्मचर्य तथा राज्यधर्म से परिपालन करो ॥ ६ । ३ ॥

[हे सभाध्यक्ष ! या=यानि ते धामानि गमध्यै=गन्तुं वयमुश्मसि तानि किंभूतानि सन्ति?]

भावार्थः—नहि सभाध्यक्षरक्षित स्थान-

भावार्थ—सभाध्यक्ष से रक्षित स्थान की

कामनया विना कश्चिदपि सुखं प्राप्तुं शक्नोति। कामना के बिना कोई भी मनुष्य सुख को प्राप्त नहीं कर सकता।

[यत्र=येषु···विष्णो र्भूरिश्रृङ्गा गावोऽयासः, तदुक्त न्यायमार्गाः प्रकाशन्त एवेति यावत्, तस्य विष्णोः परमं पदं विद्वद्भिर्भूर्यवभारि]

नहि कोऽपि जनः परमेश्वरमनाहत्य धर्मराज्यं भोक्तुमर्हति। कोई भी मनुष्य परमेश्वर का अनादर करके धर्मराज्य का भोग नहीं कर सकता।

[त्वं ब्रह्म दृंह, क्षत्रं दृंह, आयुर्दृंह, प्रजा दृंह]

नैव कोऽपि विज्ञानं, सेनां, जीवनं, प्रजां चारक्षित्वा समेधत इति। ६। ३॥ कोई भी मनुष्य विज्ञान, सेना, जीवन और प्रजा की रक्षा के बिना वृद्धि को प्राप्त नहीं होता॥ ६। ३॥

भा० पदार्थः—ब्रह्म=विज्ञानम्। क्षत्रम्=सेनाम्।

भाष्यसार—**वाणिज्य कर्म करने वाले लोग तथा सभाध्यक्ष**—देश देशान्तर में वाणिज्य (**व्यापार**) कर्म करने वाले लोग सभाध्यक्ष द्वारा राज्य प्रबन्ध से सुरक्षित स्थानों को प्राप्त करने की कामना करें क्योंकि सभाध्यक्ष से रक्षित स्थान की कामना के बिना कोई भी वाणिज्य कर्म करने वाला व्यक्ति सुख को प्राप्त नहीं कर सकता।

सभाध्यक्ष द्वारा रक्षित स्थान भी ऐसे होने चाहिये जहाँ सर्वव्यापक परमेश्वर की बहुत स्तुति पाई जाती हो। परमेश्वर के न्याय प्रकाश की किरणें चमकती हों। न्याय का मार्ग प्रशस्त हो। जहाँ विद्वान् लोग परमेश्वर के परम पद को प्राप्त करते हों। क्योंकि कोई भी व्यक्ति परमेश्वर का अनादर करके, धर्मराज्य का उपभोग नहीं कर सकता।

सभाध्यक्ष राजा ब्रह्म के ज्ञाता विद्वानों का, राज्य का तथा क्षत्रिय लोगों का, धन के पोषक वैश्य जनों का रक्षक होता है। इस लिये वह परमात्मा, वेद, राज्य, धनुर्वेद के ज्ञाता क्षत्रिय, जीवन, अपनी सन्तान और प्रजा को उन्नत बनाता है। क्योंकि कोई भी व्यक्ति इनकी रक्षा के बिना वृद्धि को प्राप्त नहीं कर सकता॥ ६। ३॥

मेधातिथिः। **विष्णुः**=ईश्वरः॥ निचृदार्षी गायत्री। षड्जः॥

अथ सभाध्यक्षः सभ्यादीन्मनुष्यान्प्रति किं किमुपदिशेदित्याह॥

अब सभापति अपने सभासद् आदि मनुष्यों को क्या-क्या उपदेश करे, यह इस मन्त्र में कहा है॥

विष्णोः कर्म्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे। इन्द्रस्य युज्यः सखा॥ ४॥

पदार्थः—(**विष्णोः**) व्यापकस्य (**कर्माणि**) जगत् उत्पत्तिस्थितिसंहृत्यादीनि (**पश्यत**) संप्रेक्षध्वम् (**यतः**) येन विज्ञानेन (**व्रतानि**) नियतसत्यभाषणादीनि (**पस्पशे**) बध्नाति। अत्र लडर्थे लिट् (**इन्द्रस्य**) परमेश्वरस्य (**युज्यः**) युनक्ति सदाचारेणेति युज्यः। अत्रौणादिकः क्यप् (**सखा**) मित्रम्॥ अयं मंत्रः शत० ३। ७। १। १७ व्याख्यातः॥ ४॥

प्रमाणार्थ—(**पस्पशे**) यहाँ लट्-अर्थ में लिट्-लकार है। (**युज्यः**) यहां 'युज्' धातु से उणादि का 'क्यप्' प्रत्यय है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३। ७। १। १७) में की गई है॥ ६। ४॥

सपदार्थान्वयः—हे सभ्यजनाः ! यूयं यथा इन्द्रस्य परमेश्वरस्य युज्यः युनक्ति सदाचारेणेति युज्यः सखा मित्रं विष्णोः व्यापकस्य कर्म्माणि जगत उत्पत्तिस्थितिसंहृत्यदीनि पश्यन्नहं यतः=विज्ञानेन येन विज्ञानेन मनसि व्रतानि=सत्यभाषणादिनियमान् नियतसत्यभाषणादीनि पस्पशे=बध्नामि (बध्नाति) तथा तेनैव विज्ञानेन तानि यूयं पश्यत संप्रेक्षध्वम्, यतो राज्यकर्मणि सत्याऽनुष्ठातारो भवत ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे सभ्य जनो ! तुम लोग, जैसे मैं (**इन्द्रस्य**) परमेश्वर का (**युज्यः**) सदाचार से युक्त (**सखा**) मित्र होकर (**विष्णोः**) सर्वव्यापक ईश्वर के (**कर्माणि**) जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और संहृति रूप कर्मों को देखता हुआ (**यतः**) जिस विज्ञान से मन में (**व्रतानि**) नियत सत्यभाषण आदि नियमों को (**पस्पशे**) बांधता हूँ, वैसे उसी विज्ञान से उन उत्पत्ति, स्थिति, संहृति आदि कर्मों को तुम लोग भी (**पश्यत**) देखो, जिससे राज्य कर्मों का सत्यतापूर्वक अनुष्ठान करने वाले बन सको ॥ ६ । ४ ॥

[विष्णोः कर्माणि पश्यन्नहं यतः=विज्ञानेन मनसि व्रतानि=सत्यभाषणादि नियमान् पस्पशे=बध्नामि]

भावार्थः—नहि परमेश्वराविरोधसत्याचरणाभ्यां विना कश्चिदीश्वरगुणकर्मस्वभावान् द्रष्टुमर्हति, न तथाभूतेन विना राज्यकर्माणि यथार्थतया सेवितुं शक्नोति, नो खलु सत्याचरणमन्तरा राज्यं वर्धयितुं प्रभुर्भवति ॥ ६ । ४ ॥

भावार्थ—परमेश्वर का अविरोध और सत्य आचरण के बिना कोई भी मनुष्य ईश्वर के, गुण, कर्म, स्वभावों को नहीं देख सकता, वैसा बने बिना कोई राज्य कार्यों का यथार्थ रूप में सेवन नहीं कर सकता, सत्य आचरण के बिना कोई भी राज्य को बढ़ाने में समर्थ नहीं होता ॥ ६ । ४ ॥

भा० पदार्थः—कर्माणि=ईश्वरगुणकर्मस्वभावान् । व्रतानि=सत्याचरणम् ॥

भाष्यसार—**सभाध्यक्ष का सभ्यजनों के प्रति उपदेश**—हे सभ्य जनो ! जैसे मैं परमेश्वर का सदाचार से युक्त सुयोग्य मित्र बन कर उस सर्वव्यापक ईश्वर के जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय आदि कर्मों को देखता हूँ वैसे तुम भी देखो । किन्तु परमेश्वर का अविरोध (**मित्रता**) तथा सत्य आचरण के बिना कोई भी व्यक्ति ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभावों को नहीं देख सकता, अतः परमेश्वर के सखा बनो तथा जिस विज्ञान युक्त मन से मैं सत्यभाषण आदि व्रतों का अनुष्ठान करता हूँ तुम लोग भी उसी विज्ञान युक्त मन से सत्य का आचरण करो । क्योंकि परमेश्वर का मित्र और सत्याचरणी बने बिना कोई भी व्यक्ति राज्य कार्यों की यथार्थरूप में सेवा नहीं कर सकता, सत्याचरण के बिना कोई भी व्यक्ति राज्य को बढ़ाने में समर्थ नहीं हो सकता ॥ ६ । ४ ॥

मेधातिथिः । **विष्णुः=ईश्वरः** ॥ आर्षी गायत्री । षड्जः ॥

तदनुष्ठानेन किं फलमित्याह ॥

पूर्व मन्त्रोक्त कर्मों के अनुष्ठान से क्या फल होता है, यह उपदेश किया है ॥

तद्विष्णोः परमं पदꣳ सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् ॥ ५ ॥

पदार्थः—(**तत्**) (**विष्णोः**) पूर्वमंत्रप्रतिपादितस्य जगदुत्पत्तिस्थितिसंहृतिविधातुः परमेश्वरस्य (**परमम्**) सर्वोत्कृष्टम् (**पदम्**) प्राप्तुमर्हम् (**सदा**) सर्वस्मिन् काले (**पश्यन्ति**) अवलोकन्ते (**सूरयः**) वेदविदः स्तोतारः । सूरिरिति स्तोतृनामसु पठितम् । निघं० ३ । १६ ॥ (**दिवीव**) आदित्यप्रकाश इव (**चक्षुः**) चष्टेऽनेन तत् (**आततम्**) व्याप्तिमत् ॥ अयं मन्त्रः शत० ३ । ७ । १ । ८ व्याख्यातः ॥ ५ ॥

प्रमाणार्थ—(सूरयः) 'सूरि' शब्द निघं० (३ । १६) में स्तोतृ-नामों में पढ़ा है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ७ । १ । ८) में की गई है ॥ ६ । ५ ॥

सपदार्थान्वयः—भोः सभ्यजनाः ! **येन पूर्वोक्तेन कर्मणा सूरयः**=**स्तोतारो** वेदविदः स्तोतारो **विष्णोः** पूर्वमन्त्रप्रतिपादितस्य जगदुत्पत्ति-स्थितिसंहृतिविधातुः परमेश्वरस्य **यत् परमं** सर्वोत्कृष्टं **पदं** प्राप्तुमर्हं **दिवि** आदित्यप्रकाशे **आततं** व्याप्तिमत् **चक्षुः** चष्टेऽनेन तद् **इव सदा** सर्वस्मिन् काले **पश्यन्ति** अवलोकन्ते । **तेनैव तद् यूयमपि सततं पश्यत** सम्प्रेक्षध्वम् ॥ ६ । ५ ॥

भाषार्थ—हे सभ्य जनो ! पूर्व मन्त्र में प्रोक्त जिस कर्म से (**सूरयः**) वेद के ज्ञाता, स्तुति करने वाले विद्वान् लोग (**विष्णोः**) पूर्व मन्त्र में प्रतिपादित जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करने वाले परमेश्वर का जो (**परमम्**) सब से उत्कृष्ट (**पदम्**) प्राप्त करने योग्य पद है उसे (**दिवि**) सूर्य के प्रकाश में (**आततम्**) विस्तृत (**चक्षुः**) नेत्र के समान (**सदा**) तीनों कालों में (**पश्यन्ति**) देखते हैं। उन्हीं पूर्व मन्त्रोक्त कर्मों से उसे तुम लोग भी सदा (**पश्यत**) देखो ॥ ६ । ५ ॥

[**पूर्वमन्त्रात् पदानुवृत्तिमलङ्कारं च प्राह**—]

भावार्थः—अत्र मन्त्रे पूर्वमन्त्रयात् "पश्यत" इत्यस्य पदस्यानुवृत्तिः क्रियते, पूर्णोपमालङ्कारश्चास्ति ।

भावार्थ—इस मन्त्र में पूर्व **मन्त्र से** 'पश्यत' इस पद की अनुवृत्ति है। और यहाँ पूर्णोपमा **अलङ्कार** है।

[**येन पूर्वोक्तेन कर्मणा सूरयः=स्तोतारो विष्णोर्यत् परमं पदं दिवि**······पश्यन्ति, तेनैव तद् यूयमपि पश्यत्]

निर्धूतमला विद्वांसः स्वविद्याप्रकाशेन यथेश्वर-गुणान् दृष्ट्वा विशुद्धाचरणशीला जायन्ते तथा ऽस्माभिरपि भवितव्यम् ॥ ६ । ५ ॥

निर्मल विद्वान् लोग अपने विद्या प्रकाश से जैसे ईश्वर के गुणों को देख कर विशुद्ध आचरणशील हो जाते हैं वैसे हम लोग भी बनें ॥ ६ । ५ ॥

भा० पदार्थः—सूरयः=निर्धूतमला विद्वांसः, विशुद्धाचरणशीलाः ॥

भाष्यसार—१. **पूर्व मन्त्रोक्त कर्मों के अनुष्ठान का फल**—पूर्व मन्त्र में ईश्वर के सृष्टि, स्थिति और प्रलय आदि कर्मों के देखने का उपदेश किया गया है। उसका फल यह होता है कि पूर्व मन्त्रोक्त कर्मों के सूक्ष्म दर्शन से ईश्वर के स्तोतर वेदज्ञ विद्वान् पुरुष सब मलों से रहित हो जाते हैं, उनका आचरण विशुद्ध हो जाता है, वे अपने विद्या के प्रकाश से ईश्वर के गुणों के प्रत्यक्ष द्रष्टा बन जाते हैं। जैसे सूर्य के प्रकाश में विद्यमान मूर्त पदार्थों को चक्षु प्रत्यक्ष देखती है इसी प्रकार वे ईश्वर के परम पद को प्रत्यक्ष देखते हैं।

२. **अलङ्कार**—मन्त्र में उपमावाचक 'इव' शब्द विद्यमान है इसलिये पूर्णोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है सूर्य के प्रकाश में जैसे चक्षु सब मूर्त्तिमान् पदार्थों को देखती है वैसे वेदज्ञ निर्मल विद्वान् पुरुष ईश्वर के परम पद को प्रत्यक्ष देखते हैं ॥ ६ । ५ ॥

दीर्घतमाः । **विद्वांसः=स्पष्टम्** । आर्ष्युष्णिक् । ऋषभः । दिवः सूनुरसीत्यस्य भुरिक् साम्नी बृहती । मध्यमः ॥

पुनरेतदुपासकः सभाध्यक्षः कीदृगित्युपदिश्यते ॥

फिर यह उपासना करने वाला सभाध्यक्ष किस प्रकार का होता है, यह उपदेश किया है ॥

परिवीरसि परि त्वा दैवीर्विशो व्ययन्तां परीमं यजमानꣳ रायो मनुष्याणाम् ।
दिवः सूनुरस्येष ते पृथिव्याँल्लोकऽ आरण्यस्ते पशुः ॥ ६ ॥

पदार्थः—(**परिवीः**) यथा परितः=सर्वतः सर्वा विद्यातेति=व्याप्नोति तथा (**असि**) (**परि**) सर्वतः (**त्वा**) त्वां सभाध्यक्षम् (**दैवीः**) देवानां=विदुषामिमाः (**विशः**) प्रजाः (**व्ययन्ताम्**) विशिष्टतया प्राप्नुवन्तु जानन्तु वा (**परि**) सर्वतः (**इमम्**) प्रत्यक्षम् (**यजमानम्**) यज्ञानुष्ठातारम् (**रायः**) धनानि (**मनुष्याणाम्**) (**दिवः**) प्रकाशमयात् सूर्यात् [**सूनुः**] सूयत=उत्पद्यते किरणसमूह इव (**असि**) (**एषः**) (**ते**) तव (**पृथिव्याम्**) (**लोकः**) राष्ट्र=राज्यस्थानम् (**आरण्यः**) अरण्ये भवः (**ते**) तव (**पशुः**) पश्यक अ-तुष्पात् सिंहादिः ॥ अयं मंत्रः शत० ३ । ७ । १-२१ व्याख्यातः ॥ ६ ॥

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ७ । १-२१) में की गई है ॥ ६ । ६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे सभाऽध्यक्ष राजन्! त्वं परिवीः=**सर्वविद्याव्यापकवद्** यथा परितः=सर्वतः सर्वा विद्या व्येति=व्याप्नोति तथा **असि**, त्वा=त्वां **दैवीः** देवानां=विदुषामिमा **विशः** प्रजाः **परि**+**व्ययन्तां** सर्वतो विशिष्टतया प्राप्नुवन्तु जानन्तु वा।

[**इमं**] प्रत्यक्षं [**यजमानं**] यज्ञाऽनुष्ठातारं [**मनुष्याणां**] [**रायः**] धनानि [**परि**+**व्ययन्तां**] सर्वतो विशिष्टतया प्राप्नुवन्तु । **त्वं दिवः** प्रकाशमयात् सूर्य्यात्, **सूनुः** सूयत=उत्पद्यते किरणसमूह (**इव**) इव **असि** । **एषः ते**=**तव लोकः** राष्ट्र=राज्यस्थानम् **अस्तु** । **आरण्यः** अरण्ये भवः **पशुः**=**सिंहादिः** पश्यकश्चतुष्पात् सिंहाऽऽदिः **अप्यधीनोऽस्तु** ॥ ६ । ६ ॥

भाषार्थ—हे सभाध्यक्ष राजन्! आप (**परिवीः**) सब ओर से सब विद्याओं में व्यापक ईश्वर के समान (**असि**) हो, इसलिये (**त्वा**) आपको (**दैवीः**) देव अर्थात् विद्वानों की (**विशः**) प्रजा (**परि**+**व्ययन्ताम्**) सब ओर से विशेष रूप से प्राप्त हो अथवा आपको राजा समझे।

[**इमम्**] इस [**यजमानम्**] यज्ञादि शुभ कर्मों का अनुष्ठान करने वाले आपको [**मनुष्याणाम्**] मनुष्यों के [**रायः**] धन [**परि**+**व्ययन्ताम्**] सब ओर से विशेषतया प्राप्त हों। आप (**दिवः**) प्रकाशमय सूर्य से उत्पन्न (**सूनुः**) किरण समूह के समान (**असि**) हो। (**एषः**) यह (**ते**) आपका (**लोकः**) राष्ट्र अर्थात् राज्य का स्थान हो। (**आरण्यः**) जंगली (**पशुः**) सिंह आदि चतुष्पाद पशु भी आपके अधीन हों ॥ ६ । ६ ॥

[हे सभाध्यक्ष राजन्!...त्वा=त्वां दैवीर्विशः परि+व्ययन्ताम्, [मनुष्याणां] [रायः] [परिव्ययन्ताम्]]

भावार्थः—राज्यमाचरन्तं राजानं प्रजाजना अभ्याश्रित्य करं विनयन्तु ।

भावार्थ—राज्य करने वाले राजा के प्रजा आश्रित होकर उसे कर-प्रदान करे।

[आरण्यः पशुः=सिंहादिरप्यधीनोऽस्तु]

स राजा प्रजापालनाय सिंहादिपशून् दस्युप्रभृतींश्च निहत्य स्वप्रजा यथायोग्यं धर्मे संस्थापयेत् ॥ ६ । ६ ॥

वह राजा प्रजा के पालन के लिये सिंह आदि पशुओं तथा डाकू आदि पुरुषों को मार कर अपनी प्रजा को यथायोग्य धर्म में स्थापित करे ॥ ६ । ६ ॥

भा० पदार्थः—रायः=कराः ॥

भाष्यसार—**ईश्वरोपासक सभाध्यक्ष कैसा हो**—सभाध्यक्ष राजा सब विद्याओं में

व्यापक हो। उसकी प्रजा विद्वान् हो जो उसे सब दृष्टि से, विशेष रूप से राजा स्वीकार करे, राजा समझे, और अपने आपको उसके आश्रित माने। यज्ञ आदि शुभ कर्म करने वाले इस सभाध्यक्ष राजा को उसकी प्रजा धन (कर) प्रदान करें जैसे प्रकाशमय सूर्य से किरण समूह उत्पन्न होकर अन्धकार का विनाश करता है इसी प्रकार सब विद्याओं से भरपूर सभाध्यक्ष भी अविद्या अन्धकार को नष्ट करके एक आदर्श राष्ट्र का निर्माण करे। जिसमें प्रजा के पालन के लिये सिंह आदि जंगली पशुओं का तथा चोर-डाकू आदि दुष्ट पुरुषों को वध करके अपनी प्रजा को यथायोग्य धर्म में स्थापित रखें ॥ ६ । ६ ॥

मेधातिथिः । **त्वष्टा**=सभापतिः ॥ निचृद् आर्षी बृहती । मध्यमः ।

पुनः स तान्प्रति किं कुर्य्यात् ते च तं प्रति किं कुर्य्युरित्युपदिश्यते ॥

फिर वह प्रजाजनों के प्रति क्या करे और वे प्रजाजन उस राजा के प्रति क्या करें, यह उपदेश किया है ॥

उपावीरस्युप देवान्दैवीर्विशः प्रागुरुशिजो वह्नितमान्। देव त्वष्टर्वसु रम हव्या ते स्वदन्ताम् ॥ ७ ॥

पदार्थः—(उपावीः) उपागतपालक इव (**असि**) [उप] (देवान्) विदुषः (**दैवीः**) देवसम्बन्धिनीर्दिव्याः (**विशः**) प्रजाः (**प्र**) प्रकृष्टार्थे (**अगुः**) अगमन् (उशिजः) कमनीयान् (**वह्नितमान्**) अतिशयिता वह्नयो=वोढारस्तान् (**देव**) दिव्यगुणसम्पन्न ! (**त्वष्टः**) सर्वदुःखच्छित् (**वसु**) वसूनि= धनानि । **अत्र सुपां सुलुक् ॥ अ० ७ । १ । ३९ ॥ इति शसो लुक्** (**रम**) रमस्व । **अत्रात्मनेपदे व्यत्ययेन परस्मैपदम्** (**हव्या**) होतुमत्तुमर्हाणि (**ते**) तव (**स्वदन्ताम्**) भुञ्जताम् ॥ **अयं मंत्रः । शत० ३ । ७ । ३ । ९—१२ व्याख्यातः ॥ ७ ॥**

प्रमाणार्थ—(**वसु**) वसूनि । यहां 'सुपां सुलुक्०' (अ० ७ । १ । ३९) सूत्र से 'शस्' प्रत्यय का लुक् है। (**रम**) रमस्व । यहां आत्मनेपद में व्यत्यय से परस्मैपद है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ७ । ३ । ९—१२) में की गई है ॥ ६ । ७ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे देव !** दिव्यगुण-सम्पन्न ! **त्वष्टः=सभापते !** सर्वदुःखच्छित् ! **यत् स्त्वमुपावीः** उपागतपालक (इव) **इवासि । तस्माद् दैवीः** देवसम्बन्धिनीर्दिव्याः **विशः** प्रजाः **यथा उशिजः** कमनीयान् **वह्नितमान्** अतिशयिता वह्नयो=वोढारस्तान् **देवान्** विदुषः **उप+प्र+अगुः** प्रकृष्टतयाऽगमन् **तथा त्वां प्राप्नुवन्ति ।**

यथैतास्त्वदाश्रयेणाढ्या भूत्वा रमन्ते तथा त्वमपि तासु रम=रमस्व ।

[**यथा**] **भवानेतेषां पदार्थान् भुङ्क्ते तथैते** ते तव **हव्या=होतुमर्हाणि हव्यानि** होतुमत्तुमर्हाणि **वसु=वसूनि** वसूनि धनानि **स्वदन्तां** भुञ्जताम् ॥ ६ । ७ ॥

भाषार्थ—हे (**देव**) दिव्य गुणों से युक्त (**त्वष्टः**) सब दुःखों का छेदन करने वाले सभापते ! जिससे आप (**उपावीः**) शरणागत के पालक ईश्वर के समान (**असि**) हो इसलिये (**दैवीः**) दिव्य गुणों से युक्त (**विशः**) प्रजा (**उशिजः**) कामना करने के योग्य (**वह्नितमान्**) अत्यन्त सुखों को प्राप्त कराने वाले (**देवान्**) विद्वानों के (**उपप्रागुः**) पास जाती हैं वैसे आप को प्राप्त हो ।

जैसे यह प्रजा आपके आश्रय से आढ्य (**धन-वान**) होकर सुख में रमण करती है वैसे आप भी उसमें (**रम**) रमण करो ।

जैसे आप इन प्रजा-जनों के पदार्थों का उपभोग करते हो वैसे ये प्रजाजन भी (**ते**) आपके (**हव्या**) खाने योग्य पदार्थों का एवं (**वसु**) धनों का (**स्व-दन्ताम्**) आस्वादन करें ॥ ६ । ७ ॥

[हे···त्वष्टः=सभापते ! ···विशो वथा उशिजो वह्नितमान् देवानुपप्रागुस्तथा त्वां प्राप्नुवन्ति, यथैतास्त्वदाश्रयेणाढ्या भूत्वा रमन्ते तथा त्वमपि तासु रम=रमस्व]

भावार्थः—यथा गुणग्राहिण उत्तमगुणं सेवन्ते तथा न्यायविचक्षणं राजानं प्रजाश्च सेवन्ते, येन मिथः प्रीत्या परस्परस्योन्नतिर्भवतीति ॥ ६ । ७ ॥

भावार्थ—जैसे गुणग्राही लोग उत्तम गुण का सेवन करते हैं वैसे न्यायकुशल राजा की और प्रजा की सेवा करें, जिससे परस्पर प्रीतिपूर्वक एक-दूसरे की उन्नति होती है ॥ ६ । ७ ॥

भाष्यसार—सभाध्यक्ष राजा और प्रजा का परस्पर व्यवहार—सभाध्यक्ष राजा दिव्य गुणों से सम्पन्न, सबके दुःखों का छेदन करने वाला होता है। जो उसकी शरण में आता है वह उसी की रक्षा करता है। जैसे प्रजा-जन कामना करने के योग्य, सब सुखों को प्राप्त कराने वाले विद्वानों के पास जाते हैं इसी प्रकार दिव्य गुणों से युक्त प्रजा उक्त सभाध्यक्ष राजा के समीप जाती है। भाव यह है कि जैसे गुणग्राही प्रजा-जन उत्तम गुण वाले विद्वानों की सेवा करते हैं वैसे न्यायकुशल राजा की तथा श्रेष्ठ प्रजा-जनों की भी सेवा करते हैं।

सभाध्यक्ष राजा के आश्रय से प्रजा-जन आढ्य (**सम्पन्न**) होकर सुखों में रमण करते हैं, तथा राजा भी प्रजा के आश्रय से सुख में रमण करता है। राजा और प्रजा-जन एक दूसरे के धन आदि पदार्थों का उपभोग करें इससे परस्पर प्रेम बढ़ कर एक-दूसरे की उन्नति होती है ॥ ६ । ७ ॥

दीर्घतमाः । **बृहस्पतिः=परम विद्वान्** ॥ प्राजापत्यानुष्टुप् । गान्धारः ।
ऋतस्य त्वेत्यस्य भुरिक् प्राजापत्या बृहती । मध्यमः ॥

अथ पित्रादयः स्वसन्तानान् कथमध्यापकाय प्रदद्युः स च तान् कथं गृह्णीयादित्युपदिश्यते ॥

अब पिता आदि अपने सन्तानों को अध्यापक को कैसे दें ? और वह उनको कैसे स्वीकार करे ? यह उपदेश किया है ॥

रेव॑ती॒ रम॑ध्वं॒ बृह॑स्पते धा॒रया॒ वसू॑नि । ऋ॒तस्य॑ त्वा देवह॒विः पाशे॑न॒ प्रति॑मुञ्चामि॒ धर्षा॒ मानु॑षः ॥ ८ ॥

पदार्थः—(**रेवतीः**) रायः=प्रशस्तानि धनानि विद्यन्ते यासु ताः प्रजाः (**रमध्वम्**) क्रीडध्वम् (**बृहस्पते**) बृहत्या=वेदवाचः पते=पातः, परमविद्वन् ! (**धारय**) अत्र अन्येषामपि दृश्यते ॥ अ० ६ । ३ । १३७ ॥ इति दीर्घः (**वसूनि**) (**ऋतस्य**) सत्यन्यायाख्ययज्ञस्य (**देवहविः**) यथा देवानां हविरादातुमर्हं चरित्रमस्ति तथा (**पाशेन**) बन्धनेन (**प्रति**) (**मुञ्चामि**) (**धर्ष**) धृष्णुहि । द्व्यचोतस्तिङः ॥ अ० ६ । ३ । १३५ ॥ इति दीर्घः । विकरणव्यत्ययेन शप च (**मानुषः**) सर्वशास्त्रमननशीलः ॥ अयम्मंत्रः शत० ३ । ७ । ३ । १३ व्याख्यातः ॥ ८ ॥

प्रमाणार्थ—(**धारया**) धारय । यहाँ 'अन्येषामपि दृश्यते' (**अ०** ६ । ३ । १३७) सूत्र से दीर्घ है । (**धर्षा**) धर्ष । यहां 'द्व्यचोऽतस्तिङः' (**अ०** ६ । ३ । १३५) सूत्र से दीर्घ है । इसी में विकरण-व्यत्यय से 'शप्' भी है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ७ । ३ । १३) में की गई है ॥ ६ । ८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे रेवतीः रेवत्यः= प्रजाः ! रायः=प्रशस्तानि धनानि विद्यन्ते यासु ताः प्रजाः ! यूयं विद्यासु, शिक्षासु रमध्वं क्रीडध्वम् ।

हे बृहस्पते बृहत्याः=वेदवाचः, पते=पातः परमविद्वन् ! त्वमृतस्य सत्यन्यायाऽऽख्ययज्ञस्य

भाषार्थ—हे (**रेवतीः**) पशस्त धन वाले प्रजा-जनो ! तुम लोग विद्या और शिक्षा में (**रमध्वम्**) रमण करो, क्रीडा करो ।

हे (**बृहस्पते**) वेदवाणी के रक्षक परम विद्वान् ! आप (**ऋतस्य**) सत्य और न्याय नामक यज्ञ के

वसूनि [धारया] धारय। अथ शिष्यायोपदिशति गुरुः।

हे राजन् प्रजाजन वा! मानुषः सर्वशास्त्र-मननशील अहं पाशेन=अविद्याबन्धमनेन बन्धनेन देवहविः यथा देवानां हविरादातुमर्हं चरित्रमस्ति तथा यथा, तथा [त्वा]=त्वां प्रति+मुञ्चामि। त्वं विद्यासु, शिक्षासु [धर्षा] धर्ष=धृष्टो भव धृष्णुहि ॥ ६। ८॥

(वसूनि) धनों को (धारया) धारण करो। अब गुरु शिष्य को उपदेश करता है।

हे राजन् वा प्रजा-जन! (मानुषः) सब शास्त्रों का मनन करने वाला मैं आचार्य तुझे (पाशेन) अविद्या के बन्धन से (देवहविः) विद्वानों के चरित्र की शिक्षा देकर [त्वा] तुझ शिष्य को (प्रति-मुञ्चामि) मुक्त करता हूँ। तू विद्या और शिक्षा में [धर्षा] समर्थ बन॥ ६। ८॥

[हे (रेवतीः) रेवत्यः=प्रजाः! यूयं विद्यासु, शिक्षासु रमध्वम्, हे राजन् प्रजाजन वा! मानुषोऽहं पाशेन=अविद्याबन्धनेन'''[त्वा]=त्वां प्रतिमुञ्चामि]

भावार्थः—विद्वद्भिः सुशिक्षया कुमाराणां कुमारीणां च जगदीश्वरात् पृथिवीपर्यन्तपदार्थानां बोधः सम्पादनीयो यतस्ते मूर्खत्व बन्धनं परित्यज्य सदा सुखिनः स्युरिति॥ ६। ८॥

भावार्थ—विद्वान पुरुष उत्तम शिक्षा से कुमारों और कुमारियों को जगदीश्वर से लेकर पृथिवी पर्यन्त पदार्थों का बोध करावें, जिससे वे मूर्खता के बन्धन को छोड़कर सदा सुखी रहें॥ ६। ८॥

भा० पदार्थः—पाशेन=मूर्खत्व बन्धनेन॥

भाष्यसार—**पिता आदि अपने सन्तानों को किस प्रकार अध्यापकों को प्रदान करें तथा अध्यापक उन्हें कैसे ग्रहण करें**—माता-पिता अपने सन्तानों को जब अध्यापक को प्रदान करें तब सन्तानों को कहें कि तुम अब अपने गुरु अध्यापक के पास रह कर सब विद्याओं और सब शिक्षाओं में रमण करो। और अध्यापक से कहें कि हे वेदवाणी के रक्षक परम विद्वान् (बृहस्पते) अध्यापक! आप मेरी सन्तान को सत्य और न्याय सम्बन्धी यज्ञ के धनो को धारण कराओ जिससे यह प्रजा (सन्तान) प्रशस्त धन वाली हो।

जब राजा वा प्रजा-जन अपने सन्तान को अध्यापक के पास ले जावें तब गुरु (**अध्यापक**) उन्हें उपदेश करे कि हे राजन्! वा प्रजा-जन! में सब शास्त्रों का मनन करने वाला हूँ। जैसे देवों का चरित्र ग्रहण करने योग्य है इसी प्रकार मैं आपके सन्तान को देव के चरित्र से युक्त करूँगा, तथा अविद्या एवं मूर्खता के बन्धन से मुक्त करूँगा, और मैं इन्हें सब विद्याओं और सब शिक्षाओं में समर्थ बनाऊँगा। जिससे ये सदा सुखी रहें। आप लोग भी सब विद्याओं और शिक्षाओं में सुदृढ़ बनो॥ ६। ८॥

दीर्घतमाः। **सविता**=ऐश्वर्यवान् देवः। **अश्विनौ**=सूर्याचन्द्रमसौ। **पूषा**=पृथिवी। च। प्राजापत्या बृहती। मध्यमः। अग्नीषोमाभ्यामित्यस्य पङ्क्तिः। पञ्चमः॥ अग्निषोमाभ्यां त्वेत्यस्य याजुषी त्रिष्टुप्। धैवतः।

पुनः स शिष्यं किमुपदिशेदित्याह॥

फिर वह गुरु शिष्य को क्या उपदेश करे, यह इस मन्त्र में कहा है॥

दे॒वस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वे॒ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम्। अ॒ग्नीषोमा॑भ्यां॒ जुष्टं॒ नियु॑नज्मि। अ॒द्भ्यस्त्वौष॑धी॒भ्योऽनु॑ त्वा मा॒ता मन्यता॒मनु॑ पि॒तानु॒ भ्राता॒ सग॑र्भ्यो॒ऽनु॒ सखा॒ सयू॑थ्यः। अ॒ग्नीषोमा॑भ्यां त्वा॒ जुष्टं॒ प्रोक्षा॑मि॥ ९॥

पदार्थः—(**देवस्य**) वेदविद्याप्रकाशकस्य (**त्वा**) त्वां विद्यार्थिनम् (**सवितुः**) सकलैश्वर्यवतः (**प्रसवे**) प्रसूयते विश्वस्मिन् यस्तस्मिन् (**अश्विनोः**) सूर्य्याचन्द्रमसोः (**बाहुभ्याम्**) तत्तद्गुणाभ्याम् (**पूष्णः**) पृथिव्याः। पूषेति पृथिवीनामसु पठितम्॥ निघं० १।१॥ (**हस्ताभ्याम्**) हस्त इव वर्त्तमानाभ्यां धारणाकर्षणाभ्याम् (**अग्नीषोमाभ्याम्**) एतयोस्तेजःशान्तिगुणाभ्याम् (**जुष्टम्**) प्रीतम् (**नि**) (**युनज्मि**) (**अद्भ्यः**) यथाजलेभ्यः (**ओषधीभ्यः**) रोगनिवारिकाभ्यः (**अनु**) (**त्वा**) त्वाम् (**माता**) जननी (**मन्यताम्**) (**अनु**) (**पिता**) जनकः (**अनु**) (**भ्राता**) बन्धुः (**सगर्भ्यः**) सोदरः (**अनु**) (**सखा**) सुहृत् (**सयूथ्यः**) ससैन्यः (**अग्नीषोमाभ्याम्**) पूर्वोक्ताभ्याम् (**त्वा**) (**जुष्टम्**) प्रीतम् (**प्र उक्षामि**) सिञ्चामि॥ अयम्मंत्रः शत० ३।७।४।३–५ व्याख्यातः॥ ६॥

प्रमाणार्थ—(पूष्णः) 'पूषा' शब्द निघं० (१।१) में पृथिवी-नामों में पढ़ा है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३।७।४।३–५) में की गई है॥ ६।६॥

सपदार्थान्वयः—हे शिष्य! अहं **सवितुः** सकलैश्वर्य्यवतो **देवस्य** वेदविद्याप्रकाशकस्य **प्रसवे** प्रसूयते विश्वस्मिन् यस्तस्मिन् **अश्विनोः** सूर्य्याचन्द्रमसोः **बाहुभ्यां** तत्तद्गुणाभ्यां **पूष्णः** पृथिव्याः **हस्ताभ्यां** हस्त इव वर्त्तमानाभ्यां धारणाऽऽकर्षणाभ्यां [**त्वा**]=**त्वां** त्वां विद्यार्थिनम् **आददे**।

अग्नीषोमाभ्याम् एतयोस्तेजः शान्तिगुणाभ्यां **जुष्टं** प्रीतं **त्वा**=त्वां त्वां विद्यार्थिनं **ये ब्रह्मचर्य्यधर्माऽनुकूला आप=ओषधयश्च सन्ति ताभ्यो अद्भ्यः** यथा जलेभ्यः **ओषधीभ्यः** रोगनिवारिकाभ्यो **नि+युनज्मि**।

[त्वा]=त्वां **मत्समीपे स्थातुं माता**=जननी **अनु+मन्यताम्**, **पिता** जनको **अनु+मन्यताम्** **सगर्भ्यः** सोदरो **भ्राता** बन्धुः **अनु+मन्यताम्**, **सखा** सुहृद् **अनु+मन्यताम्**, **सयूथ्यः** ससैन्यः **अनु+मन्यताम्**, **अग्नीषोमाभ्यां** पूर्वोक्ताभ्यां **जुष्टं**=प्रीतियुक्तं प्रीतं [त्वा] **त्वामहं प्र+उक्षामि**=**तद्गुणैरभिषिञ्चामि** सिञ्चामि॥ ६॥

भाषार्थ—हे शिष्य! मैं (**सवितुः**) सकल ऐश्वर्य वाले (**देवस्य**) वेदविद्या के प्रकाशक ईश्वर के (**प्रसवे**) इस उत्पन्न संसार में (**अश्विनोः**) सूर्य और चन्द्रमा के (**बाहुभ्याम्**) गुणों को तथा (**पूषणः**) पृथिवी के (**हस्ताभ्याम्**) हाथ के समान धारण और आकर्षण रूप गुणों को तुझ में स्थापित करने के लिये [**त्वा**] तुझे विद्यार्थी स्वीकार करता हूँ।

और—(**अग्निषोमाभ्याम्**) अग्नि के तेज और सोम के शान्ति गुण के लिये (**त्वा**) तुझ विद्यार्थी को, जो ब्रह्मचर्य-धर्म के अनुकूल जल और औषधियाँ हैं उन (**अद्भ्यः**) जल और (**ओषधीभ्यः**) रोगनिवारक औषधियों को ग्रहण करने के लिये (**नियुनज्मि**) नियुक्त करता हूँ।

और [**त्वा**] तुझे मेरे पास रहने के लिये तेरी (**माता**) जननी (**अनु+मन्यताम्**) अनुमति दे, तेरा (**पिता**) जनक (**अनुमन्यताम्**) अनुमति दे, (**सगर्भ्यः**) सगा (**भ्राता**) भाई (**अनु+मन्यताम्**) अनुमति दे, (**सखा**) मित्र (**अनु+मन्यताम्**) अनुमति दे, (**सयूथ्यः**) साथी (**अनु+मन्यताम्**) अनुमति दे और—(**अग्नीषोमाभ्याम्**) पूर्वोक्त अग्नि और सोम के तेज और शान्ति गुणों को ग्रहण कराने के लिये (**जुष्टम्**) प्रेमपूर्वक [**त्वा**] तुझे (**प्रोक्षामि**) उन गुणों से मैं अभिषिक्त करता हूँ॥ ६।६॥

[हे शिष्य! अहं सवितुर्देवस्य प्रसवे···[त्वा]=त्वामाददे, त्वा=त्वां ये ब्रह्मचर्यधर्मानुकूला आप ओषधयश्च सन्ति ताभ्यो···नियुनज्मि, [त्वा]=त्वां मत्समीपे स्थातुं माता=जननी, पिता, सगर्भ्यो भ्राता, सखा, सयूथ्योऽनुमन्यताम्, [त्वा]=त्वामहं प्रोक्षामि=तद्गुणैरभिषिञ्चामि]

भावार्थः—अस्मिन् संसारे मात्रादिभिः

भावार्थ—इस संसार में माता, पिता

पित्रादिभिर्बन्धुवर्गैर्मित्रवर्गैश्च स्वापत्यादीनि सुशिक्ष्य, तैं ब्रह्मचर्यं कारतिव्यं, यतस्ते सद्गुणिनः स्युरिति ॥ ६ । ६ ॥

आदि तथा बन्धु और मित्र वर्ग अपने सन्तानों को उत्तम शिक्षा देकर उन से ब्रह्मचर्य का पालन करावें, जिससे वे श्रेष्ठ गुणों वाले बन सकें ॥ ६ । ६ ॥

भाष्यसार—गुरु शिष्य को क्या उपदेश करे—हे शिष्य ! ईश्वर सकल ऐश्वर्य से सम्पन्न तथा वेदविद्या का प्रकाशक है, उसके उत्पन्न किये इस संसार में सूर्य और चन्द्रमा के तेज और शान्ति गुणों को तथा पृथिवी के धारण और आकर्षण गुणों को तुझ में आधान करने के लिये तुझे विद्या-अर्थी रूप में ग्रहण करता हूँ । तेज और शान्ति गुणों को प्रेम-पूर्वक ग्रहण करने के लिये तथा तेरे ब्रह्मचर्य-धर्म के अनुकूल, जल औषधि आदि पदार्थों को भी ग्रहण करने के लिये तुझे आज्ञा देता हूँ । मेरे पास में उत्तम शिक्षा ग्रहणपूर्वक ब्रह्मचर्य-पालन करने के लिये तेरे माता-पिता, सगे भाई, मित्र और साथियों की अनुमति चाहता हूँ । और कामना करता हूँ कि तेरे माता-पिता तथा बन्धु और मित्र वर्ग भी तुझे उत्तम शिक्षा से ब्रह्मचर्य-पालन का उपदेश करें । मैं तेज और शान्ति आदि गुणों से तुझे सींचता हूँ ॥ ६ । ६ ॥

मेधातिथिः । **आपः**=जलानि ॥ प्राजापत्या बृहती । मध्यमः । सन्त इत्यस्य विराडार्ची बृहती । मध्यमः ॥

अथोपनीतेन शिष्येण विद्यासुशिक्षाग्रहणाग्निहोत्रादियज्ञोऽवश्यमनुष्ठातव्य इति गुरूरुपदिशेत् ॥

अब यज्ञोपवीत होने के पश्चात् शिष्य विद्या और उत्तम शिक्षा का ग्रहण तथा अग्निहोत्रादि यज्ञ का अनुष्ठान अवश्य करे, ऐसा उपदेश गुरु किया करे, यह इस मन्त्र में कहा है ॥

अपां पेरुरस्यापो देवीः स्वदन्तु स्वात्तं चित्सद्देवहविः ।
सं ते प्राणो वातेन गच्छता॑ समङ्गानि यजत्रैः सं यज्ञपतिराशिषा ॥ १० ॥

पदार्थः—(**अपाम्**) जलानाम् (**पेरुः**) रक्षकः (**असि**) (**आपः**) (**देवीः**) शुद्धा दिव्यसुखप्रदाः (**स्वदन्तु**) (**स्वात्तम्**) स्वेन समन्तात् गृहीतम् (**चित्**) अपि (**सत्**) (**देवहविः**) देवेभ्यो हविरिव (**सम्**) (**ते**) तव (**प्राणः**) (**वातेन**) पवनेन सह (**गच्छताम्**) (**अङ्गानि**) शिर आदीनि (**यजत्रैः**) यज्ञसाधकैर्विद्वद्भिः सह (**यज्ञपतिः**) यज्ञस्य पालकः (**आशिषा**) अयम्मंत्रः शत० ३ । ७ । ४ । ६-६ व्याख्यातः ॥ १० ॥

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ७ । ४ । ६-६) में की गई है ॥ ६ । १० ॥

सपदार्थान्वयः—हे शिष्य ! त्वमपां जलानां पेरुः रक्षकः असि । **संसारस्थाः प्राणिनस्त्वद्यज्ञशोधिता देवीः** शुद्धाः दिव्यसुखप्रदाः **आपश्चित्** अपि **स्वात्तं=धर्माऽनुष्ठानस्वीकृतं** स्वेन समन्ताद् गृहीतं [**सद्**] देवहविः देवेभ्यो हविरिव इव सं+स्वदन्तु ।

भावार्थ—हे शिष्य ! तू (**आपाम्**) जलों का (पेरुः) रक्षक (**असि**) है । संसार के सब प्राणी तेरे यज्ञ से शुद्ध हुए (**देवीः**) शुद्ध एवं दिव्य सुखदायक (**आपः**) जलों का (**चित्**) और (**स्वात्तम्**) धर्माचरण पूर्वक ग्रहण किए हुये [**सद्**] उत्तम (देवहविः) होम के द्रव्यों का (**संस्वदन्तु**) आस्वादन करें ।

मदाशिषा [ते]=**तव अङ्गानि** शिर आदीनि **यजत्रैः** यज्ञसाधकैर्विद्वद्भिः (सह) सह [सम्]

मेरे आशीर्वाद से [ते] तेरे (**अङ्गानि**) शिर आदि अवयव (**यजत्रैः**) यजमान विद्वानों के साथ

गच्छन्ताम्, प्राणो वातेन पवनेन सह **सं+गच्छन्ताम्। त्वं यज्ञपतिः** यज्ञस्य पालको **भव** ॥ १० ॥

[सम्] संगत रहें तथा **(प्राणः)** प्राण भी **(वातेन)** पवन के साथ **(सं+गच्छताम्)** संगत रहे। तू **(यज्ञपतिः)** यज्ञ का पालक बन ॥ ६। १० ॥

[हे शिष्य ! त्वमपां पेरुरसि, संसारस्थाः प्राणिनस्त्वद्यज्ञसंशोधिता देवीरपश्चित् स्वात्तं=धर्मानुष्ठान स्वीकृतं देवहुतिरिव सं-स्वदन्ताम्]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ या यज्ञे प्रास्ताहुतयस्ता आदित्यमुपतिष्ठन्ते, आदित्याकर्षणशक्त्या पृथिवीजलाकर्षणेन वृष्टिर्भवति, ततोऽन्नमन्नाद् भूतानीति परम्परासम्बन्धेन यज्ञशोधिता अपो, हुतद्रव्यं च सर्वे जीवा भुञ्जते ॥ ६। १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है॥ जो यज्ञ में आहुतियाँ डाली जाती हैं वे सूर्य में पहुँचती हैं, सूर्य की आकर्षण शक्ति से पृथिवी के जल का आकर्षण होने से वर्षा होती है, वर्षा से अन्न तथा अन्न से प्राणी जीवित रहते हैं, इस परम्परा सम्बन्ध से यज्ञ से शुद्ध जल और होम किये हुये द्रव्य का सब प्राणी सेवन करते हैं ॥ ६। १० ॥

भाष्यसार—**१. शिष्य के लिये गुरु का उपदेश**—हे शिष्य ! जो यज्ञ में आहुति डाली जाती हैं वे सब सूर्य में पहुँचती हैं, फिर सूर्य की आकर्षण शक्ति से पृथिवीस्थ जल का आकर्षण होने से वर्षा होती है। इस लिए तू जलों का रक्षक बन कर अग्निहोत्र रूप यज्ञ का अनुष्ठान कर। जिससे संसार के सब प्राणी तेरे यज्ञ से शुद्ध किये दिव्य सुखदायक जलों का सेवन कर सकें। दिव्य जल की वर्षा से उत्तम अन्न उत्पन्न होता है, अन्न ही प्राणियों के जीवन का आधार है। और जैसे धर्मानुष्ठान से स्वीकार किये हुये उत्तम यज्ञ शेष का विद्वान् लोग आस्वादन करते हैं इसी प्रकार परम्परा सम्बन्ध से तेरे यज्ञ से शुद्ध तथा उत्पन्न जल और अन्न का सब प्राणी सेवन करते हैं। इसलिये जगत् के कल्याणार्थ हे शिष्य तू विद्या और शिक्षा का ग्रहण कर तथा अग्निहोत्र का अवश्य अनुष्ठान कर।

हे शिष्य ! मैं तुझे आशीर्वाद देता हूँ कि तेरे शिर आदि सब अङ्ग यज्ञ करने वाले विद्वानों के साथ संगत रहें। तू यज्ञकर्त्ता विद्वानों का प्रतियोगी न बनकर सहयोगी बन। तेरे प्राण पवन के साथ संगत रहें। वायु के समान बलवान रहें। जिससे तू विद्या, शिक्षा तथा अग्निहोत्र रूप यज्ञों का पति **(पालक)** बन सके।

२. अलङ्कार—मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि शब्द लुप्त है इसलिये वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि जैसे देव लोग हवि **(यज्ञशेष)** का आस्वादन करते हैं वैसे सब मनुष्य यज्ञ से शुद्ध तथा उत्पन्न अन्न और जल का आस्वादन करें ॥ ६। १० ॥

मेधातिथिः। **वातः**=**वायुः**। भुरिगार्च्युष्णिक्। ऋषभः। उरोरित्यस्य भुरिगार्च्युष्णिक्। वर्षो इत्यस्य स्वराडार्च्युष्णिक्। ऋषभः ॥

अथ यज्ञकर्तृकारयित्रोः कर्त्तव्यमुपदिश्यते ॥

अब यज्ञ करने और कराने वालों के कर्त्तव्य का उपदेश किया जाता है॥

घृतेनाक्तौ पशूँस्त्रायेथाᳬं रेवति यजमाने प्रियं धाऽआविश।
उरोरन्तरिक्षात्सजूर्देवेन वातेनास्य हविषस्त्मना यज समस्य तन्वा भव।
वर्षो वर्षीयसि यज्ञे यज्ञपतिं धाः स्वाहा देवेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ॥ ११ ॥

पदार्थः—(घृतेन) (अक्तौ) घृतेनासक्तचित्तौ यज्ञकर्त्ता यज्ञकारयिता च (पशून्) गवादीन् (त्रायेथाम्) रक्षेताम (रेवति) प्रशस्तैश्वर्ययुक्ते (यजमाने) यज्ञानुष्ठातरि (प्रियम्) प्रसन्नतासम्पादि सुखम् (धाः) धेहि। अत्र लोडर्थे लुङ् अडभावश्च (आ) समन्तात् (विश) (उरोः) बहोः (अन्तरिक्षात्) (सजूः) मित्रमिव (देवेन) सर्वगतेन (वातेन) वायुना सह (अस्य) (हविषः) होतव्यस्य। कर्मणि षष्ठी (त्मना) आत्मना (यज) संगच्छस्व=एकीभव (सम्) (अस्य) (तन्वा) (भव) (वर्षो) यज्ञकर्म्मणा सर्वसुखसेचक! (वर्षीयसि) सर्वसुखमभिवर्षति [यज्ञे] (यज्ञपतिम्) यज्ञपालकम (धाः) धेहि (स्वाहा) सत्कृत्यनुकूलाम् (देवेभ्यः) दीव्यन्ति=प्रकाशन्ते सत्कर्म्मानुष्ठानेन ये तेभ्यो धर्मिष्ठेभ्यो विद्वद्भ्यः (देवेभ्यः) शुभेभ्यो गुणेभ्यः (स्वाहा) सत्कृत्यनुरूपाम ॥ अयम्मंत्रः शत० ३।८।१।५--१६ व्याख्यातः ॥ ११॥

प्रमाणार्थ—(धाः) धेहि। यहाँ लोट् अर्थ में लुङ् लकार है तथा 'अट्' का अभाव है। (हविषः) यहाँ कर्म में षष्ठी विभक्ति है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३।८।१।५--१६) में की गई है ॥ ६। ११॥

सपदार्थान्वयः—हे यज्ञकर्तृकारयितारौ! घृतेनाक्तौ=घृतमनस्कौ घृतेनाऽऽसक्तचित्तौ यज्ञकर्त्ता यज्ञकारयिता च युवां पशून् गवादीन् त्रायेथां रक्षेयाम। त्वमेकैको देवेन सर्वगतेन वातेन वायुना सह सजूः मित्रमिव उरोः बहोः अन्तरिक्षात् प्रियं=प्रेमोत्पादकं सुखं प्रसन्नतासंपादि सुखं रेवति प्रशस्तैश्वर्ययुक्ते यजमाने यज्ञाऽनुष्ठातरि धाः धेहि, आ+विश=तत्स्वान्तवृत्तिमाप्नुहि समन्ताद् विश। अस्य हविषः होतव्यस्य त्मना=आत्मना यज संगच्छस्व=एकीभव। अस्य तन्वा सम्+भव=एकीभव न द्वैधमाचर।

हे वर्षो यज्ञकर्मणा सर्वसुखसेचक! त्वं देवेभ्यः दीव्यन्ति=प्रकाशन्ते सत्कर्माऽनुष्ठानेन ये तेभ्यो धर्मिष्ठेभ्यो विद्वद्भ्यः स्वाहा सत्कृत्यनुकूलां देवेभ्यः शुभेभ्यो गुणेभ्यः स्वाहा सत्कृत्यनुरूपां तद्यज्ञं दिदृक्षुभ्यः पुनः पुनरागतेभ्यो विद्वद्भ्योऽसकृत् सत्कृत्यनुरूपां वाचमुदीरयन् वर्षीयसि सर्वसुखमभिवर्षति यज्ञे यज्ञपतिं यज्ञपालकं धाः धेहि ॥ ६। ११॥

भाषार्थ—हे (घृतेन, अक्तौ) घृत चाहने वाले यज्ञ करने और यज्ञ कराने वालो! तुम दोनों (पशून्) गौ आदि पशुओं की (त्रायेथाम्) रक्षा करो। और तुम एक-एक होकर (देवेन) सर्वव्यापक (वातेन) वायु के साथ (सजूः) मित्र के समान (उरोः) बृहत् (अन्तरिक्षात्) आकाश से (प्रियम्) प्रेम उत्पन्न करने वाले सुख को (रेवति) उत्तम ऐश्वर्य सम्पन्न (यजमाने) यज्ञ करने वाले पुरुष में (धाः) स्थापित करो, और (आविश) उसके अतः-करण में प्रविष्ट हो जाओ, इस यजमान की (हविषः) हवि के (त्मना) आत्मा के साथ (यज) संगत हो जाओ, और (अस्य) इसके (तन्वा) शरीर के साथ (सम्+भव) एक होकर रहो, भेदभाव न रखो।

हे (वर्षो) यज्ञ के द्वारा सब सुखों की वर्षा करने वाले आप (देवेभ्यः) शुभ कर्मों के अनुष्ठान से प्रकाशित धार्मिक विद्वानों के लिये (स्वाहा) सत्कार के अनुकूल एवं (देवेभ्यः) शुभ गुणों की प्राप्ति के लिये (स्वाहा) सत्कार के अनुरूप, तथा उसके यज्ञ को देखने के इच्छुक होकर बार-बार आने वाले विद्वानों के लिये अनेक बार सत्कारपूर्ण वाणी को उच्चारण करके (वर्षीयसि) सब सुखों की वर्षा करने वाले (यज्ञे) यज्ञ में (यज्ञपतिम्) यज्ञरक्षक को (धाः) स्थिर करो ॥ ६। ११॥

[हे यज्ञकर्तृकारयितारौ!···युवां पशून् त्रायेथाम्, त्वमेकैको देवेन वातेन···प्रियं=प्रेमोत्पादकं सुखं···यजमाने धाः]

भावार्थः—यज्ञार्थं घृतादिमभीप्सुभिर्मनुष्यैः पशवो रक्षणीया, घृतादिसद्द्रव्येणाग्निहोत्रादियज्ञान् संपाद्य तैर्जलवायू संशोध्य सर्वेषां प्राणिनामभीष्टं संसाध्यम् ॥ ६ । ११ ॥

भावार्थ—यज्ञ के लिये घृत आदि को प्राप्त करने के इच्छुक मनुष्य पशुओं की रक्षा करें, घृत आदि श्रेष्ठ द्रव्य से अग्निहोत्र आदि यज्ञों को सिद्ध करके, उनसे जल और वायु को शुद्ध कर सब प्राणियों का अभीष्ट सिद्ध करें ॥ ६ । ११ ॥

भाष्यसार—**यज्ञ करने-कराने वालों का कर्त्तव्य**—यज्ञ के लिये घृत आदि को प्राप्त करने के इच्छुक यज्ञ करने और कराने वाले मनुष्य गौ आदि पशुओं की रक्षा करें। वे दोनों घृत आदि उत्तम द्रव्यों से अग्निहोत्र आदि यज्ञों को सिद्ध करके सर्व-गत वायु के साथ विशाल आकाश से प्रसन्नता उत्पन्न करने वाले सुख को ऐश्वर्यवान् यजमान में स्थापित करें। यज्ञ से अपने अन्तःकरण की वृत्तियों को प्राप्त करें, जानें अन्तःकरण में प्रविष्ट हों। यज्ञ की हवि के साथ संगत हों, हवि के स्वरूप के समान एक होकर रहें, भेदभाव उत्पन्न न करें।

यज्ञ करने कराने वाले यज्ञ कर्म से सबको सुख से सींचने वाले हों और वे सत्कर्मों के अनुष्ठान से प्रकाशित धार्मिक विद्वानों के लिये उनके सत्कार के अनुकूल वाणी बोलें। उनके यज्ञ को देखने के इच्छा से बार-बार आने वाले विद्वानों के लिये भी अनेक बार सत्कारपूर्ण वाणी बोलें। सब सुखों की वर्षा करने वाले यज्ञ में यजमान को स्थिर रखें। यज्ञ से जल और वायु की शुद्धि से सब प्राणियों का अभीष्ट सिद्ध करें ॥ ६ । ११ ॥

मेधातिथिः। **विद्वांसः**=स्पष्टम् ॥ भुरिक् प्राजापत्यानुष्टुप्। गान्धारः। घृतस्येत्यस्य भुरिगासुर्यनुष्टुप् ॥

स विद्वान् कीदृग्भवेदित्युपदिश्यते ॥

वह विद्वान् कैसा हो, इस विषय का उपदेश किया है ॥

माहिर्भूर्मा पृदाकुर्नमस्तऽआतानानर्वा प्रेहि। घृतस्य कुल्याऽउपऽऋतस्य पथ्याऽअनु ॥ १२ ॥

पदार्थः—(**मा**) निषेधे (**अहिः**) सर्पवत् (**भूः**) भवेः। **अत्र लिङर्थे लुङ्** (**पृदाकुः**) मूढवदभिमानी व्याधवद्वा हिंसकः (**नमः**) अन्नम्। **नम इत्यन्ननामसु पठितम् ॥ निघं० २। ७ ॥** (**ते**) तुभ्यम् (**आतान**) समन्तात्सुखं तनितः (**अनर्वा**) अश्वहीनः। **अर्वेत्यश्वनामसु पठितम् ॥ निघं० १। १४ ॥** (**प्र**) प्रकृष्टार्थे (**इहि**) गच्छ (**घृतस्य**) उदकस्य (**कुल्याः**) घृतधाराः (**उप**) (**ऋतस्य**) सत्यस्य (**पथ्याः**) वीथीः (**अनु**) **अयम्मन्त्रः शत० ३। ८। २। १–३ व्याख्यातः ॥ १२ ॥**

प्रमाणार्थ—(**भूः**) भवेः। यहां लिङ् अर्थ में लुङ् लकार है। (**नमः**) यह शब्द निघं० (२। ७) में अन्न-नामों में पढ़ा है। (**अनर्वा**) 'अर्वा' शब्द निघं० (१। १४) में अश्व-नामों में पढ़ा है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३। ८। २। १–३) में की गई है ॥ ६। १२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **आतान**! समन्तात् सुखं तनितः! **त्वमहिः** सर्पवत् **मा न भूः** भवेः। **पृदाकुः** मूढवदभिमानी व्याधवद्वा हिंसको **मा न भूः** भवेः। **ते**=**तुभ्यं नमः** अन्नम् **अस्तु**,

भावार्थ—हे (**आतान**) चहुँ ओर सुख का विस्तार करने वाले विद्वान्! तू (**अहिः**) सर्प के समान कुटिलगामी (**मा**) मत (**भूः**) बन, (**पृदाकुः**) मूढ़ के समान अभिमानी अथवा व्याध के समान

सर्वत्र त्वत्सुखायाऽन्नादि पदार्थः पुरत एव वर्त्तत इति भावः ।

हिंसक (**मा**) मत (**भूः**) बन, (**ते**) तेरे लिये (**नमः**) अन्न हो अर्थात् सर्वत्र तेरे सुख के लिये अन्न आदि पदार्थ पहले ही वर्तमान रहें ।

अनर्वा अश्वहीनो **घृतस्य** उदकस्य **कुल्याः** घृतधारा **इव ऋतस्य** सत्यस्य **पथ्याः** वीथीः [**अनु**] **प्र**+**उप**+**इहि** प्रकृष्टतया गच्छ ॥ ६ । १२ ॥

और तू (**अनर्वा**) अश्व आदि के बिना ही (**घृतस्य**) जल की (**कुल्याः**) धाराओं के समान (**ऋतस्य**) सत्य के (**पथ्याः**) मार्गों को [**अनु**] अनुकूलतापूर्वक (**प्र**+**उप**+**इहि**) उत्तम रीति से प्राप्त कर ॥ ६ । १२ ॥

[हे आतान ! त्वयहिर्मा भूः, पृदाकुर्मा भूः ।...घृतस्य कुल्या इवर्तस्य पथ्या [अनु] प्र+उप+इहि]

भावार्थः—केनापि मनुष्येण धर्म-मार्गे कुटिलमार्गगामिसर्पादिवत् कुटिलाचरणेन न भवितव्यं, किन्तु—सर्वदा सरलभावेनैव भवितव्यम् ॥ ६ । १२ ॥

भावार्थ—कोई भी मनुष्य धर्म-मार्ग में कुटिलमार्ग-गामी सर्प आदि के समान कुटिल आचरण वाला न हो किन्तु प्रत्येक मनुष्य सदा सरल स्वभाव वाला ही हो ॥ ६ । १२ ॥

भाष्यसार—**विद्वान् कैसा हो**—सब ओर सुख का विस्तार करने वाला विद्वान् धर्म के मार्ग में कुटिल-मार्ग-गामी सर्प के समान कुटिल आचरण न करे तथा मूढ़ मनुष्य के समान अभिमानी न हो, व्याध वा व्याघ्र के समान हिंसक भी न हो। सब विद्वान् का अन्न से सत्कार करें। सर्वत्र उसे सुख पहुँचाने के लिये अन्न आदि उत्तम उसके सामने प्रस्तुत करें। जैसे जल की धारायें अपने पथ पर उत्तम रीति से घोड़ों के बिना ही गति करती हैं इसी प्रकार विद्वान् भी सत्य के पथ पर चलें। सदा सरल भाव से व्यवहार करें ॥ ६ । १२ ॥ ●

मेधातिथिः । **आपः=सद्गुणेषु व्याप्ताः स्त्रियः** ॥ निचृदार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

अथ वटुभिर्ब्रह्मचारिणीभिश्च गुरुपत्न्यः कथं सम्माननीया इत्युपदिश्यते ॥

अब ब्रह्मचारी बालक और ब्रह्मचारिणी कन्याओं को गुरुपत्नियों का कैसे मान करना चाहिये, यह उपदेश किया जाता है ॥

देवीरापः शुद्धा वोड्ढ्वꣳ सुपरिविष्टा देवेषु सुपरिविष्टा वयं परिवेष्टारो भूयास्म ॥ १३ ॥

पदार्थः—(**देवीः**) सद्विद्याप्रकाशवत्यः (**आपः**) आप्तवन्ति सद्गुणान् यास्ताः (**शुद्धाः**) सत्कर्म्मानुष्ठानपूताः (**वोड्ढ्वम्**) स्वयंवरविवाहविधिं प्राप्नुत । अत्र वह प्रापण इत्यस्माल्लोटि मध्यमबहुवचने । 'बहुलं छन्दसि' इति शपो लुकि कृते, 'सहिवहोरोदवर्णस्य' ॥ अ० ६ । ३ । ११२ ॥ इत्यनेनौकारः अत्र वर्त्तमाने लोट् । (**सुपरिविष्टाः**) तत्तत्सेवासन्मुख्य एव । (**देवेषु**) सद्विद्यादिदिव्यगुणेषु विद्वत्सु (**सुपरिविष्टाः**) तथा भूता एव (**वयम्**) (**परिवेष्टारः**) परितो व्याप्ताः (**भूयास्म**) ॥ अत्र मन्त्रः शत० ३ । ८ । २ । ३ व्याख्यातः ॥ १३ ॥

प्रमाणार्थ—(**वोड्ढवम्**) यहां प्रापण अर्थ वाली 'वह' धातु से लोट् लकार के मध्यम पुरुष में 'बहुलं छन्दसि' [**अ० २ । ४ । ७३**] सूत्र से 'शप्' का लुक् करके 'सहिवहोरोदवर्णस्य' (**अ० ६ । ३ । ११२**) इस सूत्र से अकार को ओकार करके 'वोड्ढ्वम्' सिद्ध होता है। यहाँ वर्तमान-काल के अर्थ में लोट् लकार है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ८ । २ । ३) में की गई है ॥ ६ । १३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे कुमार्यः । यथाऽऽपः=**सद्गुणेषु** व्याप्ताः आप्नुवन्ति सद्गुणान् यास्ताः, शुद्धाः सत्कर्माऽनुष्ठानपूताः, **देवीः=विदुष्यः सत्स्त्रियः** सद्विद्याप्रकाशवत्यो, **देवेषु=सद्विद्यादिदिव्यगुणेषु विद्वत्सु स्वपतिषु** सद्विद्यादिदिव्यगुणेषु विद्वत्सु **सुपरिविष्टाः** तत्तत्सेवासम्मुख्य एव, **कृतब्रह्मचर्य्याः स्वसमान्वरान् स्वीकृतवत्यो; यथा च ते विद्वांसस्ता विदुषीः प्राप्तास्तथा यूयं स्त्रीभावेनाऽस्मान्** [**वोड्ढ्वम्**]=**प्राप्नुत**, स्वयंवरविवाहविधिं प्राप्नुत । **एवं** [**सुपरिविष्टाः**] तथा भूता एव **वयमपि परिवेष्टारः** परितो व्याप्ताः **भूयास्म** ॥ ६ । १३ ॥

भाषार्थ—हे कुमारियो ! जैसे (**आपः**) शुभ गुणों को प्राप्त करने वाली (**शुद्धाः**) शुभ कर्मों के अनुष्ठान से पवित्र (**देवीः**) श्रेष्ठ विद्या से प्रकाशित विदुषी स्त्रियाँ (**देवेषु**) उत्तम विद्या आदि दिव्य गुणों वाले विद्वान् पतिओं में (**सुपरिविष्टाः**) सेवा भाव से प्रविष्ट होकर, ब्रह्मचर्यपूर्वक अपने समान गुण वाले वरों को प्राप्त हुई हैं और जैसे वे विद्वान् पुरुष उन विदुषी स्त्रियों को प्राप्त हुए हैं, वैसे तुम स्त्रीभाव से हमें [**वोड्ढ्वम्**] स्वयंवर विवाह विधि से प्राप्त होओ, इसी प्रकार [**सुपरिविष्टाः**] रक्षा भाव से तुम में प्रविष्ट होकर हम (**परिवेष्टारः**) तुम्हारे सब ओर विद्यमान (**भूयास्म**) रहें, रक्षक बनें ॥ ६ । १३ ॥

[हे कुमार्यः ! **यथा···देवीः=विदुष्यः सत्स्त्रियो देवेषु=···**विद्वत्सु सुपरिविष्टाः कृतब्रह्मचर्याः स्वसमान् वरान् स्वीकृतवत्यो, **यथा च ते विद्वांसस्ता विदुषीः प्राप्तास्तथा यूयं स्त्रीभावेनास्मान्** [वोड्ढ्वम्] **प्राप्नुत, एवं** [सुपरिविष्टाः] **वयमपि परिवेष्टारो भूयास्म**]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ यथा विदुष्यो विदुषां स्त्रियः पातिव्रत्यधर्मतत्परा भवन्ति, तथा ब्रह्मचारिण्यः कन्यास्तद्गुणस्वभावा भवेयुर्ब्रह्मचारिण्यो गुरुजनस्वभावाः स्युः, यतः सुशिक्षया स्त्रीपुत्रादिरक्षणशीला भवेयुरिति ॥ ६ । १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ जैसे विदुषी अर्थात् विद्वानों की स्त्रियाँ पतिव्रत धर्म में तत्पर रहती हैं वैसे ब्रह्मचारिणी कन्यायें विदुषी स्त्रियों के गुण और स्वभाव वाली हों, ब्रह्मचारिणियाँ अपने गुरुजनों के समान स्वभाव वाली हों जिससे उत्तम शिक्षा से स्त्री और पुत्र आदि की रक्षा करने वाली हों ॥ ६ । १३ ॥

भाष्यसार—**१. ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणियाँ गुरुपत्नियों का कैसे सम्मान करें**—जैसे सद्गुणों को प्राप्त करने वाली, शुभ कर्मों के अनुष्ठान से पवित्र, सद्विद्या से प्रकाशित विदुषी श्रेष्ठ स्त्रियाँ, श्रेष्ठ विद्यादि दिव्य गुणों वाले विद्वान् पतियों को ब्रह्मचर्य करके अपने समान वरों को प्राप्त हुई हैं और जैसे विद्वान् लोग उन विदुषियों को प्राप्त हुये हैं वैसे ब्रह्मचारिणी कन्यायें स्त्रीभाव से स्वयंवर विवाह विधि से विद्वान् पतियों को प्राप्त हों । जैसे विदुषी स्त्रियाँ पतिव्रत धर्म का पालन करती हैं वैसे ब्रह्मचारिणी कन्यायें भी पतिव्रत धर्म का पालन करें । ब्रह्मचारी तथा ब्रह्मचारिणियाँ अपने गुरुजनों के श्रेष्ठ स्वभाव का अनुकरण करें जिससे वे उत्तम शिक्षा से स्त्री तथा अपने पुत्र आदि की रक्षा करने में समर्थ हो सकें ॥

२. **अलङ्कार**—मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि शब्द लुप्त है इसलिये वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है । उपमा यह है कि ब्रह्मचारिणी कन्यायें विदुषी स्त्रियों के समान आचरण करें ॥ ६ । १३ ॥

मेधातिथिः । **विद्वांसः**=स्पष्टम् ॥ भुरिगार्षी जगती । निषादः ॥

अथ कथं ना गुरुपत्न्यो गुरवश्च यथायोग्यशिक्षया स्वस्वान्तेवासिनः सद्गुणेषु प्रकाशयन्तीन्युपदिश्यते ॥

अब वे गुरुपत्नी और गुरुजन यथायोग्य शिक्षा से अपने-अपने विद्यार्थियों को अच्छे गुणों में कैसे प्रकाशित करते हैं, यह उपदेश किया है ॥

वाचँ ते शुन्धामि प्राणं तें शुन्धामि चक्षुस्ते शुन्धामि श्रोत्रँ ते शुन्धामि नाभिँ ते शुन्धामि मेढ्रँ ते शुन्धामि पायुं तें शुन्धामि चरित्राँस्ते शुन्धामि ॥ १४ ॥

पदार्थः—(**वाचम्**) वक्तचनया तां वाणीम् (**ते**) तव (**शुन्धामि**) निर्मलीकरोमि (**प्राणम्**) प्राणिति येन तं जीवनहेतुम् (**ते**) (**शुन्धामि**) (**चक्षुः**) चष्टेऽनेन तन्नेत्रम् (**ते**) (**शुन्धामि**) (**श्रोत्रम्**) शृणोति येन तत् (**ते**) (**शुन्धामि**) (**नाभिम्**) नह्यते=बध्यते यथा ताम् (**ते**) (**शुन्धामि**) (**मेढ्म्**) मेहत्यनेन तदुपस्थेन्द्रियम् (**ते**) (**शुन्धामि**) (**पायुम्**) पात्यनेन तं गुह्येन्द्रियम् (**ते**) (**शुन्धामि**) (**चरित्रान्**) व्यवहारान् (**ते**) (**शुन्धामि**) ॥ अयम्मंत्रः शत० ३ । ८ । २ । ६ व्याख्यातः ॥ १४ ॥

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ८ । २ । ६) में की गई है ॥ ६ । १४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे शिष्य ! विविध-शिक्षाभिस्ते तव **अहं वाचं** वक्तयनया तां वाणीं **शुन्धामि** निर्मलीकरोमि, **ते** तव **प्राणं** प्राणिति येन तं जीवनहेतुं **शुन्धामि** निर्मलीकरोमि, **ते** तव **चक्षुः** चष्टेऽनेन तन्नेत्रं **शुन्धामि** निर्मलीकरोमि, **ते** तव **श्रोत्रं** शृणोति येन तत् **शुन्धामि** निर्मलीकरोमि, **ते** तव **नाभिं** नह्यते=बध्यते यथा तां **शुन्धामि** निर्मलीकरोमि, **ते** तव **मेढ्ं** मेहत्यनेन तदुपस्थेन्द्रियं **शुन्धामि** निर्मलीकरोमि, **ते** तव **पायुं** पात्यनेन तं गुह्येन्द्रियं **शुन्धामि** निर्मलीकरोमि, **ते** तव **चरित्रान्** व्यवहारान् **शुन्धामि** निर्मलीकरोमि ॥ ६ । १४ ॥

भाषार्थ—हे शिष्य ! विविध शिक्षाओं से मैं (**ते**) तेरी (**वाचम्**) भाषण के साधन वाणी को (**शुन्धामि**) निर्मल करता हूँ, (**ते**) तेरे (**प्राणम्**) जीवन के हेतु प्राण को (**शुन्धामि**) निर्मल करता हूँ, (**ते**) तेरे (**चक्षुः**) दर्शन के साधन नेत्र को (**शुन्धामि**) निर्मल करता हूँ, (**ते**) तेरे (**श्रोत्रम्**) सुनने के साधन श्रोत्र को (**शुन्धामि**) निर्मल करता हूँ, (**ते**) तेरी (**नाभिम्**) बन्धन रूप नाभि को (**शुन्धामि**) निर्मल करता हूँ, (**ते**) तेरी (**मेढ्म्**) मूत्र और वीर्य का सेचन करने वाली उपस्थ इन्द्रिय को (**शुन्धामि**) निर्मल करता हूँ, (**ते**) तेरी (**पायुम्**) पालक गुदेन्द्रिय को (**शुन्धामि**) निर्मल करता हूँ और (**ते**) तेरे (**चरित्रान्**) सब व्यवहारों को (**शुन्धामि**) निर्मल करता हूँ ॥ ६ । १४ ॥

[**हे शिष्य ! विविधशिक्षाभिस्तेऽहं वाचं, प्राणं, चक्षुः, श्रोत्रं, नाभिं, मेढ्ं, पायुं, चरित्रान् शुन्धामि**]

भावार्थः—गुरुभिर्गुरुपत्नीभिश्च वेदोपवेद-वेदाङ्गोपाङ्गशिक्षया देहेन्द्रियान्तःकरणात्मनःशुद्धि-शरीर पुष्टिप्राणसन्तुष्टीः प्रदाय, सर्वे कुमाराः सर्वाः कन्याश्च सद्गुणेषु प्रवर्त्तयितव्या इति । ६ । १४ ॥

भावार्थ—गुरु और गुरुपत्नियाँ वेद, उपवेद, वेदाङ्ग और उपाङ्ग की शिक्षा से देह, इन्द्रिय, अन्तःकरण, आत्मा और मन की शुद्धि, शरीर की पुष्टि तथा प्राणों की सन्तुष्टि प्रदान करके सब कुमारों और कुमारियों को अच्छे गुणों में प्रवृत्त करें ॥ ६ । १४ ॥

भाष्यसार—**गुरुपत्नियाँ और गुरुजन कैसे यथायोग्य शिक्षा से अपने-अपने शिष्यों को सद्गुणों में प्रवृत्त करते हैं**—गुरुपत्नियाँ अपनी शिष्या ब्रह्मचारिणी कुमारियों को तथा गुरुजन अपने शिष्य ब्रह्मचारी कुमारों को इस प्रकार यथायोग्य शिक्षा देकर सद्गुणों में प्रवृत्त करें कि हे शिष्य ! मैं वेद, उपवेद, वेदाङ्ग, उपाङ्ग की शिक्षा से तेरी वाणी को शुद्ध करता हूँ। तेरे जीवन-हेतु प्राणों को निर्मल करता हूँ, तेरे नेत्रों को, तेरे श्रोत्रों को, तेरी नाभि को, तेरी उपस्थ इन्द्रिय को, तेरी गुदेन्द्रिय को तथा तेरे सब व्यवहारों को निर्मल करता हूँ अर्थात् तेरी देह, अन्तःकरण, आत्मा और मन की शुद्धि, शरीर की पुष्टि और प्राणों की सन्तुष्टि प्रदान करके श्रेष्ठ गुणों में प्रवृत्त करता हूँ ॥ ६ । १४ ॥

मेधातिथिः । **विद्वांसो**=**स्पष्टम्** ॥ भुरिगार्ची त्रिष्टुप् । यत्ते इत्यस्य आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ।

पुनरुक्तोर्थः प्रकारान्तरेण प्रकाश्यते ॥

फिर प्रकारान्तर से उक्त अर्थ को प्रकाशित किया जाता है ॥

मन॑स्तऽआप्या॑यतां वाक् त॒ऽआप्या॑यतां प्रा॒णस्त॒ऽआप्या॑यतां चक्षु॑स्तऽ
आप्या॑यता॒ꣳ श्रोत्रं॑ त॒ऽआप्या॑यताम् । यत्ते॑ क्रू॒रं यदास्थि॑तं॒ तत्त॒ऽआप्या॑यतां
निष्ट्या॑यतां॒ तत्ते॑ शुध्यतु शमहो॑भ्यः । ओष॑धे॒ त्राय॑स्व॒ स्वधि॑ते॒ मैन॑ꣳ हिꣳसीः ॥ १५ ॥

पदार्थः—(**मनः**) संकल्पविकल्पात्मकम् (**ते**) तव (**आ**) (**प्यायताम्**) सत्कर्म्मानुष्ठानेन वर्द्धताम् (**वाक्**) (**ते**) (**आ**) (**प्यायताम्**) (**प्राणः**) (**ते**) (**आ**) (**प्यायताम्**) (**चक्षुः**) (**ते**) (**आ**) (**प्यायताम्**) (**श्रोत्रम्**) (**ते**) (**आ**) (**प्यायताम्**) (**यत्**) (**ते**) तव (**क्रूरम्**) दुश्चरित्रम् (**यत्**) (**आस्थितम्**) निश्चितम् (**तत्**) (**ते**) (**आ**) (**प्यायताम्**) (**निः**) पृथगर्थे (**त्यायताम्**) संहन्यताम् (**तत्**) (**ते**) (**शुध्यतु**) (**शम्**) सुखम् (**अहोभ्यः**) कालविशेषेभ्यः (**ओषधे**) ओषो=विज्ञानं धीयते यस्मिँस्तत्संबुद्धौ । **अत्र ओष गतावित्यस्माद्** गतिरत्र विज्ञानं गृह्यते (**त्रायस्व**) (**स्वधिते**) स्वेष्वात्मीयेषु धितिः=पोषणं यस्यास्तत्संबुद्धौ (**मा**) निषेधे (**एनम्**) पूर्वोक्तम् (**हिंसीः**) कुशिक्षया, लालनेन वा मा विनाशयेः ॥ १५ ॥

प्रमाणार्थ—(**औषधे**) यहाँ गति-अर्थ वाली 'ओष' धातु का रूप समझना चाहिए और गति से अभिप्राय विज्ञान का है ॥ ६ । १५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे शिष्य ! **मदीय-शिक्षणेन ते**=**तव मनः** संकल्पविकल्पऽऽत्मकम् **आ**+**प्यायतां** सत्कर्माऽनुष्ठानेन वर्ध्दताम्, **ते** तव **वाग् आ**+**प्यायताम्** सत्कर्माऽनुष्ठानेन वर्धताम् **ते** तव **प्राणः आ**+**प्यायतां** सत्कर्मानुष्ठानेन वर्द्धताम्, **ते** तव **चक्षुः आ**+**प्यायतां** सत्कर्माऽनुष्ठानेन वर्द्धताम्, ते तव **श्रोत्रम् आ**+**प्यायतां** सत्कर्म्माऽनुष्ठानेन वर्द्धताम्, ते तव **यत् क्रूरं**=**दुश्चरित्रं तत् निष्**+**ट्यायतां**=**दूरीगच्छतु** पृथक्तया संहन्यताम्, **यत् ते**=**तव आस्थितं**=**निश्चितं तद् आ**+**प्यायतां** सत्कर्माऽनुष्ठानेन वर्धताम्, **इत्थं** ते तव **सर्वं शुद्धयतु**,

भाषार्थ—हे शिष्य ! मेरी शिक्षा से (**ते**) तेरा (**मनः**) संकल्प-विकल्प आत्मक **मन** (**आप्यायताम्**) शुभ कर्मों के अनुष्ठान से उन्नत हो, (**ते**) तेरी (**वाग्**) वाणी (**आप्यायताम्**) बढ़े। (**ते**) तेरा (**प्राणः**) प्राण (**आप्यायताम्**) शुभ कर्मों के अनुष्ठान से बलवान हो, (**ते**) तेरी (**चक्षुकः**) चक्षु इन्द्रिय(**आप्यायताम्**)शुभ कर्मों के अनुष्ठान से देखने में समर्थ रहे, (**ते**) तेरी (**श्रोत्रम्**) श्रोत्र इन्द्रिय (**आप्यायताम्**) सुनने में समर्थ रहे, और जो (**ते**) तेरा(**क्रूरम्**) दुराचरण है वह(**निष्टचायताम्**) दूर हो, तथा जो (**ते**) अपना उद्देश्य (**आस्थितम्**)

अहोभ्यः=**दिनेभ्यः** कालविशेषेभ्यः **तुभ्यं शं सुखम् अस्तु** ।

निश्चित किया है वह (**आप्यायताम्**) शुभ कर्मों के अनुष्ठान से पूरा हो, इस प्रकार (**ते**) तेरा सब कुछ पवित्र हो, (**अहोभ्यः**) सब दिन तेरे लिये (**शम्**) सुख हो ।

अथ स्वस्वामिनि शिष्यलालनापरं गुरुपत्नी-वाक्यम् हे ओषधे=**विज्ञानवराऽध्यापक** ! ओषो=विज्ञानं धीयते यस्मिँस्तत्सम्बुद्धौ ! **त्वमेनं** पूर्वोक्तं **शिष्यं त्रायस्व, मा न हिंसीः** कुशिक्षया, लालनेन वा विनाशयेः ।

गुरुपत्नी का अपने स्वामी के प्रति शिष्य लालना परक वचन है (**ओषधे**)–विज्ञान को धारण करने वाले एवं विज्ञान के श्रेष्ठ अध्यापक स्वामिन् ! आप (**एनम्**) इस शिष्य की (**त्रायस्व**) रक्षा कीजिये किन्तु (**मा-हिंसीः**) कुशिक्षा वा व्यर्थ लाड से इसे नष्ट न कीजिये ।

स च स्वपत्नीं प्रत्याह हे स्वधिते=**अध्यापिके स्त्रि** ! स्वेष्वात्मीयेषु धितिः=पोषणं यस्यास्तत्सम्बुद्धौ । **त्वमेनां** पूर्वोक्तां **त्रायस्व, मा हिंसीः** कुशिक्षया लालनेन वा मा विनाशयेः ॥ ६ । १५ ॥

गुरु अपनी पत्नी से कहता है—हे (**स्वधिते**) अपने सन्तानादि का पोषण करने वाली अध्यापिके ! तू भी (**एनाम्**) इस शिष्या की (**त्रायस्व**) रक्षा कर (**मा-हिंसीः**) कुशिक्षा और व्यर्थ लाड से इसे नष्ट न कर ॥ ६ । १५ ॥

[**हे शिष्य ! मदीयशिक्षणेन ते**=**तव मनः, वाक्, प्राणः, चक्षुः, श्रोत्रम् आप्यायताम्**, ते यत् क्रूरं=**दुश्चरित्रं तन्निष्टचायताम्**=**दूरी गच्छतु**]

भावार्थः—सत्कर्मानुष्ठानेन सर्वस्योन्नतिर्भवत्यतः सर्वैर्मनुष्यैर्गुरुशिक्षया समस्तसत्कर्मानुष्ठेयम् । गुरवो गुणग्रहणायैव शिष्याणां ताडनं विदधति, ततस्तेषामिदमभ्युदयनिःश्रेयसकारि जायत एवेति बोध्यम् । दम्पती परस्परमेवमुपदिशेताम्—

भावार्थ—शुभ कर्मों के अनुष्ठान से सब सबकी उन्नति होती है अतः सब मनुष्य गुरुशिक्षा के अनुसार सब शुभ कर्मों का अनुष्ठान करें । गुरु लोग गुणों को ग्रहण कराने के लिये ही शिष्यों का ताडन करते हैं, इसलिये उनका यह ताड़न अभ्युदय और निःश्रेयसकारी होता है । स्त्री-पुरुष परस्पर इस प्रकार उपदेश करें—

[**अथ स्वस्वामिनि शिष्यलालनपरं गुरुपत्नी वाक्यम्**—हे ओषधे=विज्ञानवराऽध्यापक ! त्वमेनं **शिष्यं त्रायस्व मा हिंसीः**]

हे पते ! भवानयं शिष्यो यथा सद्यो विद्वान् स्यात्तथा प्रयतताम् ।

हे पते ! आप जैसे यह शिष्य शीघ्र विद्वान् हो वैसा आप प्रयत्न कीजिये ।

[**स च स्वपत्नीं प्रत्याह—हे स्वधिते**=**अध्यापिके स्त्रि** ! त्वमेनां त्रायस्व, मा हिंसीः]

हे धर्मपत्नि ! भवती यथेयं कन्या तूर्णं विदुषी भवेत्तथा विदधातु ॥ ६ । १५ ॥

हे धर्मपत्नि ! आप जैसे यह कन्या शीघ्र विदुषी हो वैसा प्रयत्न कीजिये ॥ ६ । १५ ॥

भाष्यसार—**गुरुपत्नी और गुरुजनों का अपने शिष्यों के लिये उपदेश**—हे शिष्य ! मेरी शिक्षा से तेरा संकल्प-विकल्प रूप मन, वाणी, चक्षु, श्रोत्र आदि इन्द्रियाँ शुभकर्मों के अनुष्ठान से वृद्धि को प्राप्त हों । शुभ कर्मों के अनुष्ठान से सबकी उन्नति होती है इसलिये सब मनुष्य गुरुजनों की शिक्षा के अनुसार समस्त शुभ कर्मों का अनुष्ठान करें ।

गुरुजन गुणों को ग्रहण कराने के लिये ही शिष्यों का ताडन करते हैं । ताडन से शिष्य में

विद्यमान क्रूरता अर्थात् दुश्चरित्र को दूर करते हैं तथा निश्चित रूप से स्थापित करने योग्य गुणों को शुभकर्मों की शिक्षा से स्थापित हैं। शिष्य के सब मन, प्राण आदि की शुद्धि करते हैं जिससे सब दिन वे सुखी रहते हैं। इसलिये गुरुजनों की शिक्षा एवं ताड़न शिष्यों के लिए अभ्युदयकारी तथा निःश्रेयसकारी सिद्ध होता है।

गुरु की पत्नी अपने स्वामी को शिष्य के लालन विषय में इस प्रकार कहती है—हे पते! आप विज्ञान के श्रेष्ठ अध्यापक हो इसलिये आप इस शिष्य की रक्षा कीजिये, कुशिक्षा तथा लाड़-प्यार से इसे नष्ट मत कीजिये। और आप ऐसा प्रयत्न कीजिये जिससे यह शिष्य शीघ्र विद्वान् हो जाये।

गुरु भी अपनी पत्नी को शिष्य के लालन विषय में इस प्रकार कहता है—हे धर्मपत्नि! तू अपने पुत्रों का पोषण करने वाली एवं श्रेष्ठ अध्यापिका है। तू अपनी इस शिष्या कन्या की रक्षा कर, कुशिक्षा एवं लाड़-प्यार से इसे नष्ट मत कर और ऐसा प्रयत्न कर जिससे यह कन्या शीघ्र विदुषी हो जाये ॥ ६। १५॥ ●

मेधातिथिः। **द्यावापृथिव्यौ**=भूमिप्रकाशौ॥ ब्राह्म्युष्णिक्। ऋषभः॥
घृतेन इत्यस्यापि ब्राह्म्युष्णिक्।

अथ शिष्यवर्गेषु यथायोग्योपदेशकरणमाह॥

अब शिष्यवर्गों में यथायोग्य उपदेश करने का वर्णन है॥

रक्षसां भागोऽसि निरस्तꣳरक्षऽइदमुहꣳरक्षोऽभितिष्ठामीदमहꣳरक्षोऽवबाधऽ इदमहꣳ रक्षोऽधमं तमो नयामि। घृतेन द्यावापृथिवी प्रोर्णुवाथां वायो वे स्तोकानामग्निराज्यस्य वेतु स्वाहा स्वाहाकृते ऽऊर्ध्वनभसं मारुतं गच्छतम्॥ १६॥

पदार्थः—(**रक्षासाम्**) रक्षन्ति परार्थहननेन स्वार्थमिति रक्षांसि तेषाम् (**भागः**) सेवनीयः (**असि**) **निरस्तम्**) निःसृतम् (**रक्षः**) सर्वतः स्वार्थरक्षकः परार्थहन्ता (**इदम्**) (**अहम्**) (**रक्षः**) (**अभि**) सन्मुखे (**तिष्ठामि**) (**इदम्**) (**अहम्**) (**रक्षः**) रक्षति सर्वतः स्वार्थतनिमित्तीभूतं कर्म (**अव**) अर्वागर्थे (**बाधे**) नाशयामि (**इदम्**) (**अहन्**) (**रक्षः**) (**अधमम्**) नीचं (**तमः**) अन्धकारम् (**नयामि**) प्रापयामि (**घृतेन**) जलेन (**द्यावापृथिवी**) भूमिप्रकाशौ (**प्र**) प्रकृष्टार्थे (**ऊर्णुवाथाम्**) आच्छादयताम् (**वायो**) वाति=जानाति सूचयति सदसत्पदार्थानिति वा वायुस्तत्संबुद्धौ (**वेः**) विद्धि। **अत्र लोडर्थे लङ्** (**स्तोकानाम्**) स्वल्पानाम्। **शेषविवक्षातःकर्मणि षष्ठी** (**अग्निः**) सर्वविद्याप्राप्तो विद्वान् (**आज्यस्य**) स्नेहद्रव्यस्य (**वेतु**) (**स्वाहा**) (**स्वाहाकृते**) सत्यवाचामुपगते व्यवहारे (**ऊर्ध्वनभसम्**) ऊर्ध्वं नभो=जलं यस्मात्तम् (**मारुतम्**) (**गच्छतम्**)॥ १६॥

प्रमाणार्थ—(**वेः**) विद्धि। यहां लोट् अर्थ में लङ् लकार है। (**स्तोकानाम्**) यहां शेष विवक्षा से कर्मकारक में षष्ठी-विभक्ति है॥ ६। १६॥

सपदार्थान्वयः—हे दुष्टकर्मकारिन्! **त्वं रक्षसां** रक्षन्ति परार्थहननेन स्वार्थमिति रक्षांसि तेषां **भागः** सेवनीयो **असि, अतो रक्षः** सर्वतः स्वार्थरक्षकः पराऽर्थहन्ता **निरस्तं** निःसृतं **भव, अहमिदं रक्षः** सर्वतः स्वार्थरक्षकं परार्थहन्तारम्

भाषार्थ—हे दुष्ट कर्म करने वाले जन! तू (**रक्षसाम्**) परार्थ-घात से स्वार्थ की रक्षा करने वाले दुष्टों का (**भागः**) एक भाग (**असि**) है, इस लिये (**रक्षः**) सब ओर से स्वार्थ का रक्षक और परार्थ का घातक तू (**निरस्तम्**) निकल जा, दूर

अभि + तिष्ठामि=**तिरस्करणाय** तत्सम्मुख-मुपविशामि, न केवलमभितिष्ठामि, किन्तु **अहमिदं रक्षः**=**दुष्टस्वभाविनं** रक्षति सर्वतः स्वार्थनिमित्तीभूतं कर्म **अव+बाधे**=**अर्वाचीनो यथा स्यात्तथा हन्मि** अर्वाक्तया नाशयामि । **यतो न पुनः सम्मुखो भूयादिति भावः । अहमिदं**=**रक्षः** रक्षति सर्वतः स्वार्थनिमित्तीभूतं कर्म **अधमं** नीचं **तमः** अन्धकारं **नयामि**=**दुःसहदुःखं प्रापयामि च ।**

हो । मैं (**इदम्**:) इस (**रक्षः**) सब ओर से स्वार्थ के रक्षक और परार्थ के घातक का (**अभितिष्ठामि**) तिरस्कार करने के लिये साम्मुख्य करता हूँ, न केवल साम्मुख्य ही करता हूँ किन्तु मैं (**इदम्**) इस (**रक्षः**) सब ओर से स्वार्थ-कर्म के रक्षक दुष्ट स्वभाव वाले पुरुष का (**अवबाधे**) नाश करता हूँ, जिससे वह फिर कभी सामने न हो । और मैं (**इदम्**) इस (**रक्षः**) सब ओर से स्वार्थ कर्म के रक्षक जन को (**अधमम्**) नीचे (**तम्**) अन्धकार में (**नयामि**) असह्य दुःख पहुँचाता हूँ ।

हे **वायो**=**गुणग्राहकसदसद्विवेचनशील शिष्य** ! वाति=जानाति सूचयति सदसत्पदार्थानिति वा वायुस्तत्सम्बुद्धौ ! **त्वं स्तोकानां** स्वल्पानां **स्तोकान्**=**सूक्ष्मव्यवहारान्** वेः=विद्धि । **त्वद्यज्ञशोधितेन घृतेन** जलेन **द्यावापृथिवी** भूमिप्रकाशौ **प्र+ऊर्ण्वाथाम्**=(प्रकृष्टम्) **आच्छादयेतां । अग्नि**=**समस्तविद्याऽऽपन्नो विद्वान् तवाज्यस्य** स्नेहद्रव्यस्य **स्नेहद्रव्यं स्वाहा वेतु**=**जानातु, तथा स्वाहाकृते** सत्यवाचामुपगते व्यवहारे **पूर्वोक्ते द्यावापृथिव्यौ ऊर्ध्वनभसं**=**त्वद्यज्ञशोधितजलमूर्ध्वप्रापकं** ऊर्ध्व नभो=जलं यस्मात्तं **मारुत्तं गच्छतम्** ।। प्राप्नुम् । ६ । १६ ।।

हे (**वायो**) गुणों को ग्रहण करने वाले, सत्य और असत्य पदार्थों का विवेचन करने वाले शिष्य ! तू (**स्तोकानाम्**) सूक्ष्म से सूक्ष्म व्यवहारों को (**वेः**) जान, और तेरे यज्ञ से शुद्ध किये (**घृतेन**) जल से (**द्यावापृथिवी**) प्रकाश और भूमि (**प्रोर्णुवाथाम्**) अच्छे प्रकार आच्छादित रहें । और-(**अग्निः**) सब विद्याओं को प्राप्त विद्वान् पुरुष तेरे (**आज्यस्य**) घृतादि पदार्थों की (**स्वाहा**) होम क्रिया-को (**वेतु**) जाने तथा (**स्वाहाकृते**) सत्य वेदवाणी से युक्त यज्ञ व्यवहार में पूर्वोक्त प्रकाश और भूमि (**ऊर्ध्व-नभसम्**) तेरे यज्ञ से शुद्ध किये जल को ऊपर पहुँचाने वाले (**मारुतं गच्छतम्**) वायु को प्राप्त हों ।। ६ । १६ ।।

[हे वायो=गुणग्राहकसदसद्विवेचनशील शिष्य ! त्वं स्तोकानां स्तोकान्=सूक्ष्म व्यवहातान् वे=विद्धि]

भावार्थः—बुद्धिमन्तः सदसद्विवेचका विद्वांसः शिष्येषु यथायोग्यशिक्षणमनुविदधति ।

भावार्थ—बुद्धिमान, सत्य और असत्य का विवेचन करने वाले विद्वान् अपने शिष्यों में यथा योग्य शिक्षा का उपदेश करते हैं ।

[त्वद्यज्ञशोधितेन घृतेन द्यावापृथिवी प्रोर्णवाथाम्'''द्यावापृथिव्यौ ऊर्ध्वनभसं=त्वद्यज्ञशोधित-जलमूर्ध्वप्रापकं मारुतं गच्छतम्]

यज्ञकर्मणा जलवायुशुद्धचा वृष्टिर्भवति, वृष्ट्यैव सर्वप्राणिभ्यः सुखं संपद्यते ।। ६ । १६ ।।

यज्ञ कर्म से जल और वायु की शुद्धि होने से वर्षा होती है, वर्षा से ही सब प्राणियों को सुख होता है ।। ६ । १६ ।।

भाष्यसार—**शिष्य वर्गों में यथायोग्य उपदेश**— बुद्धिमान्, सत्य और असत्य का विवेचन करने वाले विद्वान् लोग अपने शिष्यों में इस प्रकार शिक्षा करते हैं कि हे शिष्यो ! तुम जो लोग दुष्ट कर्म करने वाले, परार्थ के हनन से स्वार्थ की रक्षा करने वाले राक्षस हैं उन्हें बाहर निकालो, उनका तिरस्कार करो, केवल तिरस्कार ही नहीं अपितु उन्हें पीड़ा दो तथा उनका नाश करो जिससे वे कभी सम्मुख न हो

सकें। उन्हें नीचे अन्धकार में रखो, दुसह दुःख पहुँचाओ।

हे गुणों के ग्राहक, सत्य और असत्य का विवेचन करने वाले शिष्यो! तुम सूक्ष्म से सूक्ष्म व्यवहारों को समझो। यज्ञ एक सूक्ष्म विद्या है। यज्ञ से शुद्ध जल से द्युलोक और भूलोक को परिपूर्ण करो। समस्त विद्याओं को जानने वाला विद्वान् घृतादि स्नेह द्रव्यों के तत्त्व को अच्छी प्रकार जानता है। उनसे तुम भी घृतादि स्नेह द्रव्यों के तत्त्व को समझो कि सत्य वेदवाणी से यज्ञ में स्वाहा किये हुए घृतादि स्नेह द्रव्य जल और वायु को शुद्ध करके वर्षा को उत्पन्न करते हैं। वर्षा से ही सब प्राणी सुखी होते हैं॥ ६। १६॥

दीर्घतमाः। **आपः**=जलानि: ॥ निचृद्ब्राह्म्यनुष्टुप्। गान्धारः ॥

शुद्धेन जलेन किं भावनीयमित्युपदिश्यते ॥

अब शुद्ध जल से क्या करना चाहिये, यह उपदेश किया है॥

इदमापः प्रवहतावद्यं च मलं च यत्। यच्चाभिदुद्रोहानृतं यच्च शेपेऽअभीरुणम्। आपो मा तस्मादेनसः पवमानश्च मुञ्चतु॥ १७॥

पदार्थः—(**इदम्**) वक्ष्यमाणम् (**आपः**) आप्नुवन्तीत्यापः (**प्र**) (**वहत**) अत्र लडर्थे लोट् (**अवद्यम्**) निन्द्यम् (**च**) विकारिसमुच्चये (**मलम्**) अशुद्धिकरम् (**यत्**) (**च**) प्रकृतिविरुद्धग्रहणे (**यत्**) (**च**) लोकविप्रुष्टसमुच्चये (**अभिदुद्रोह**) यथाभिद्रुह्यति तथा (**अनृतम्**) असत्यम् (**यत्**) (**च**) परुषवचः समुच्चये (**शेपे**) आक्रुश्यामि (**अभीरुणम्**) निर्भयम् (**आपः**) (**मा**) माम् (**तस्मात्**) (**एनसः**) धर्मविरुद्धाचरणात् (**पवमानः**) पवित्रीकरो व्यवहारः (**च**) शुद्धोपदेशसमुच्चये (**मुञ्चतु**) पृथक् करोतु॥ १७॥

प्रमाणार्थ—(**प्रवहत**) यहाँ लट् अर्थ में लोट्-लकार है॥ ६। १७॥

सपदार्थान्वयः—[हे] **आपः=सर्वविद्याव्यापिनो विपश्चितः!** आप्नुवन्तीत्यापः, **यूयं-यथाऽऽपः शुद्धकरास्तथा मम यदवद्यं=निन्द्यं कर्म** निन्द्यं, **यच्च** विकारि **मलम्=अविद्यारूपम्** अशुद्धिकरं **तदिदं=वक्ष्यमाणं प्र+वहत=अपनयत, च** प्रकृतिविरुद्धग्रहणं **पुनः यदहमनृतम्** असत्यं **कं च** लोकविप्रष्टं [**अभि**]+**दुद्रोह** यथाऽभिद्रह्यति तथा, **च** परुषवचः **यत् अभीरुणं=निरपराधिनं पुरुषं** निर्भयं **शेपे** आक्रुश्यामि, **तस्मात्=पूर्वोक्तादेनसः** धर्मविरुद्धाचरणाद् **मा=मां पृथक् रक्षतु, यथा पवमानः** पवित्रीकरो व्यवहारः [**च**] शुद्धोपदेशश्च **मालिन्यन्मां सद्यो दूरीकरोतु तथाऽन्यानपि मुञ्चतु=पृथक् करोतु**॥ ६। १७॥

भाषार्थ—हे (**आपः**) सब विद्याओं में व्यापक विद्वानो! तुम—जैसे जल शुद्धिकारक हैं, वैसे मेरा जो (**अवद्यम्**) निन्दनीय कर्म है, (**च**) और जो विकार उत्पन्न करने वाला (**मलम्**) अशुद्धि-कारक अविद्या रूप कर्म है उसे (**प्रवहत**) बहा दीजिये अर्थात् दूर कीजिये, (**च**) और जो स्वभाव से विरुद्ध (**अनृतम्**) मिथ्या व्यवहार है, (**च**) और जो लोकविरुद्ध ([**अभि**] **दुद्रोह**) किसी से द्रोह किया है, (**च**) और जो कठोर वचन से (**अभीरुणम्**) निरपराधी पुरुष को (**शेपे**) शाप दिया है, (**तस्मात्**) इस पूर्वोक्त (**एनसः**) धर्म विरुद्ध आचरण रूप पाप से (**मा**) मुझे पृथक् रखो, और जिस प्रकार (**पवमानः**) पवित्र व्यवहार [**च**] और शुद्ध उपदेश मलिनता से मुझे शीघ्र दूर करता है, वैसे अन्यों को भी (**मुञ्चतु**) पाप से पृथक् करें॥ ६। १७॥

[[हे] आपः=सर्वविद्याव्यापिनो विपश्चितः ! यूयं यथाऽऽपः शुद्धिकरास्तथा मम यदवद्यं=निन्द्यं कर्म··· प्रवहत=अपनयत]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार उपमालङ्कारश्च ॥ विद्वान् जलमिव सांसरिकपदार्थानां शोधको भूत्वा धर्म्यं कर्माचरेत् ।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा और उपमा अलङ्कार हैं ॥ विद्वान् पुरुष जल के समान सांसारिक पदार्थों का शोधक होकर धर्मानुसार कर्म का आचरण करें ।

[तस्मात्=पूर्वोक्तादेनसो मा=मां पृथक् रक्षतु, यथा पवमान: [च] मालिन्यान्मां सद्यो दूरी करोतु]

मनुष्यैरीश्वरप्रार्थनया दुष्टाचारात् पृथक् भूत्वा निर्मलेषु विद्यादिग्रहणकर्मसु सदा प्रवर्तितव्यमिति ॥ ६ । १७ ॥

सब मनुष्य ईश्वर प्रार्थना से दुष्ट आचरण से पृथक् होकर निर्मल विद्यादि ग्रहण करने के कर्मों में सदा प्रवृत्त रहें ॥ ६ । १७ ॥

भा० पदार्थः—एनसः=दुष्टाचारात् ॥ पवमानः=निर्मलं विद्यादिग्रहणकर्म ॥

भाष्यसार—**१. शुद्ध जल से क्या करें**—जैसे जल सर्वत्र व्यापक है, इसी प्रकार विद्वान् लोग सब विद्याओं में व्यापक हों, सब विद्याओं के ज्ञाता हों। जैसे जल सांसारिक पदार्थों को शुद्ध करने वाला है इसी प्रकार विद्वान् लोग स्वयं धर्मानुसार शुद्ध कर्मों का आचरण करें तथा संसार के निन्द्य, विकारी, अविद्यामय अशुद्धिकारक, स्वभावविरुद्ध, असत्य, लोकनिन्दित कर्मों का शोधन करें। द्रोह, कठोर वचन, निरपराधी पुरुष को दण्ड, धर्मविरुद्ध आचरण आदि पाप कर्म से स्वयं सदा पृथक् रहें तथा संसार को भी पृथक् रखें। अपने पवित्र व्यवहार और शुद्ध उपदेश से जल के तुल्य मलिनता को शीघ्र दूर करें।

विद्वानों के समान सब मनुष्य ईश्वर प्रार्थना से दुष्ट आचरण से सदा पृथक् रहें और विद्या आदि की प्राप्ति रूप निर्मल कर्मों में सदा लगे रहें ॥ ६ । १७ ॥

२. अलङ्कार—मन्त्र में उपमावाचक शब्द लुप्त है इस लिये वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि जैसे जल सांसारिक पदार्थों का शोधक है इसी प्रकार विद्वान् लोग भी संसार के अविद्यादि मलों का शोधन करें ॥ ६ । १७ ॥

दीर्घतमाः । **अग्निः**=**युद्धजन्यक्रोधाग्निः** ॥ प्राजापत्यानुष्टुप् । गान्धारः । रेडसीत्यस्य दैवीपङ्क्तिः । श्रीणात्वित्यस्य आर्ची पंक्तिः । पञ्चमः ॥

अथ रणे योद्धा कीदृग्भवेदित्युपदिश्यते ॥

अब रण में युद्ध करने वाला कैसा हो, यह उपदेश किया जाता है ॥

सं ते मनो मनसा सं प्राणः प्राणेन गच्छताम् । रेडस्यग्निष्ट्वा श्रीणात्वापस्त्वा समरिणन्वातस्य त्वा ध्राज्यै पूष्णो रंह्या ऽ ऊष्मणो व्यथिषत्प्रयुतं द्वेषः ॥ १८ ॥

पदार्थः—(सम्) (ते) तव (मनः) अन्तःकरणम् (मनसा) विज्ञानेन (सम्) (प्राणः) (प्राणेन) बलेन (गच्छताम्) (रेट्) शत्रुहिंसकः । अत्र रिषतेर्हिंसार्थात् कर्त्तरि क्विप् (असि) (अग्निः) युद्धजन्यक्रोधाग्निः (त्वा) त्वाम् (श्रीणातु) परिपचतु (त्वा) त्वाम् (आपः) जलानि (सम्) (अरिणन्) प्राप्नुवन्तु । रिणतीति गतिकर्म्मसु पठितम् ॥ निघं० २ । १४ ॥ (वातस्य) वायोः (ध्राज्यै) गत्यै । अत्र गत्यर्थाद् ध्रजधातोः ॥ इञ् वपादिभ्यः ॥ अ० ३ । ३ । १०८ भा० वा० ॥ इतीञ् प्रत्ययः (त्वा) (पूष्णः) पोषकस्यादित्यस्य (रंह्यै) गत्यै (ऊष्मणः) आतपात् (व्यथिषत्) व्यथते (प्रयुतम्) एतत्संख्याकम् (द्वेषः) द्वेष्टि येन सः ॥ अयम्मन्त्रः शत० ३ । ८ । ३ । ६-३१ व्याख्यातः ॥ १८ ॥

प्रमाणार्थ—(रेट्) शत्रु हिंसकः। यहां हिंसा अर्थ वाली "रिष्" धातु से कर्ता-कारक में 'विच्' प्रत्यय है। (अरिणन्) 'रिणाति' पद निघं० (२। १४) में गत्यर्थक क्रियाओं में पढ़ा है। (ध्राज्यै) यहां गति अर्थ वाली 'ध्रज्' धातु से 'इञ् वपादिभ्यः' (अ० ३। ३। १०८) इस भाष्य वार्तिक से 'इञ्' प्रत्यय है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३। ८। ३। ६—३१) में की गई है॥ ६। १८॥

सपदार्थान्वयः—हे **योद्धः**! **संग्रामे ते** तव **मनः** अन्तःकरणं **मनसा** विज्ञानेन **प्राणः प्राणेन** बलेन **च सम्+गच्छताम्**।

भाषार्थ—हे योद्धा! संग्राम में (ते) तेरा (**मनः**) अन्तःकरण (**मनसा**) विज्ञान से और (**प्राणः**) प्राण (**प्राणेन**) बल से (**सम्+गच्छताम्**) संगत रहे।

हे वीर! त्वं रेट् शत्रुहिंसको **असि, त्वा**=त्वाम् **अग्निः**=युद्धजन्यक्रोधाऽग्निः **श्रीणातु** परिपचतु। त्वं **प्रयुतम्** एतत्सङ्ख्याकं **शत्रुसैन्यं प्राप्य तज्जन्याद् ऊष्मणः** आतपाद् **द्वेषः** द्वेष्टि येन सः, **मा व्यथिषत्** व्यथते। [**त्वा**]=**त्वां वातस्य ध्राज्यै**=**वातस्य गतिमिर्युद्धकर्मणि गत्यै** (वायोः गत्यै) **यद्वा पूष्णो** (पोषकरस्याऽऽदित्यस्य) **रंह्यै**=**सूर्यस्य गतिरिव युद्धभूमिषु गत्यै**=**यथार्थतया युद्धकर्मणि प्रवृत्त्यै** (गत्यै) **आपः** जलानि [**त्वा**] त्वाम् **सम्+अरिणन्** प्राप्नुवन्तु॥ ६। १८॥

हे वीर! तू (**रेट्**) शत्रुओं का हिंसन करने वाला (**असि**) है, (**त्वा**) तुझे (**अग्निः**) युद्ध से उत्पन्न क्रोध की अग्नि (**श्रीणातु**) परिपक्व बनाये। तू (**प्रयुतम्**) करोड़ों शत्रुओं की सेना को प्राप्त करके तथा उससे उत्पन्न (**ऊष्मणः**) सन्तापयुक्त (**द्वेषः**) द्वेष से (**मा व्यथिषत्**) व्यथित न हो [**त्वा**] तुझे (**वातस्य ध्राज्यै**) युद्ध-कर्म में वायु की गतियों के समान गति करने के लिये अथवा—(**पूष्णः**) पुष्टि करने वाले सूर्य की (**रंह्यै**) गति के समान युद्ध-भूमियों में गति करने के लिये अर्थात् यथार्थ रूप से युद्ध-कर्म में प्रवृत्त होने के लिये (**आपः**) जल [**त्वा**] तुझे (**सम्-अरिणन्**) प्राप्त हों॥ ६। १८॥

[हे योद्धः! संग्रामे ते मनो मनसा, प्राणः प्राणेनच संगच्छताम्। हे वीर! त्वा=त्वां···यथार्थतया युद्धकर्मणि प्रवृत्त्यै आपः [त्वा] समरिणन्]

भावार्थः—मनुष्यैः संग्रामे मनः समाधाय स्वबलवर्द्धकान्नपानशस्त्रादिपदार्थान् सम्पाद्यन् शत्रून् निहत्य संग्रामो विजेतव्य इति॥ ६। १८॥

भावार्थ—मनुष्य युद्ध में मन को लगाकर, अपने बल को बढ़ाने वाले अन्न, पान एवं शस्त्र आदि पदार्थों को सिद्ध करके शत्रुओं को मारकर संग्राम में विजयी हों॥ ६। १८॥

भाष्यसार—**रण में योद्धा कैसा हो**—संग्राम (**युद्ध**) में योद्धा का अन्तःकरण विज्ञान से युक्त हो, प्राण बल से संयुक्त हो। योद्धा वीर शत्रुओं का हनन करने वाला हो। वीर की युद्धजन्य क्रोध अग्नि शत्रुओं का पचन करने वाली हो। विशाल शत्रु सेना भी योद्धा वीर को व्यथित न कर सके। युद्ध में वायु की गति के समान तथा युद्ध भूमि में सूर्य की गति के समान विविध गति करने वाला हो। युद्ध कर्म में प्रवृत्त रहने के लिये बल को बढ़ाने वाले अन्न, जल, शस्त्र आदि पदार्थ सदा प्राप्त हों। योद्धा वीर संग्राम में शत्रुओं का हनन करके विजय को प्राप्त करें॥ ६। १८॥

दीर्घतमाः। **विश्वेदेवाः**=**विद्वांसः**॥ ब्राह्म्यनुष्टुप्। गान्धारः॥

पुनस्तत्र किं भवितुमर्हतीत्युपदिश्यते॥

फिर युद्धकर्म में क्या होना चाहिये, यह उपदेश किया है॥

घृतं घृतपावानः पिबत वसां वसापावानः पिबतान्तरिक्षस्य हविरसि स्वाहा ।
दिशः प्रदिशऽ आदिशो विदिशऽ उद्दिशो दिग्भ्यः स्वाहा ॥ १९ ॥

पदार्थः—(घृतम्) उदकम् ॥ घृतमित्युदकनामसु पठितम् ॥ निघं० १ । १२ ॥ (घृतपावानः) उदकपा वीराः (पिबत) (वसाम्) वीररसनीतम् (वसापावानः) वसां=निवासं पान्ति ते (पिबत) (अन्तरिक्षस्य) आकाशस्य (हविः) आदीयत इति (असि) (स्वाहा) युद्धानुकूलां शोभनां वाचम् (दिशः) पूर्वाद्याः (प्रदिशः) अभ्यन्तरदिशः (आदिशः) आभिमुख्यदिशः (विदिशः) विरुद्धदिशः (उद्दिशः) या उद्दिश्यन्ते ताः (दिग्भ्यः) पूर्वप्रतिपादिताभ्यः सर्वाभ्यः (स्वाहा) तत्तस्थानानुकूलां शोभनां वाचम् ॥ अयम्मन्त्रः शत० ३ । ८ । ३ । ३२-३६ व्याख्यातः ॥ १९ ॥

प्रमाणार्थ—(घृतम्) यह शब्द निघं० (१ । १२) में जल-नामों में पढ़ा है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ८ । ३ । ३२-३६) में की गई है ॥ ६ । १९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे घृतपावानो=वीराः ! उदकपा वीराः ! **यूयं घृतम्** उदकं **पिबत ।**

हे वसापावानः वसां=निवासं पान्ति ते ! **यूयं वसां** वीररसनीतिं **पिबत ।**

हे सेनाध्यक्ष ! चक्रव्यूहादि सेनारचक ! त्वं प्रतिवीरमन्तरिक्षस्य आकाशस्य **हवि** आदीयते इति **असि, इति स्वाहा=शोभनया वाचा** युद्धाऽनुकूलां शोभनां वाचं, **सर्वान् वीरान् या दिशः** पूर्वाऽऽद्याः, **प्रदिशः** अभ्यन्तरदिशः, **आदिशः** आभिमुख्यदिशः, **विदिशः** विरुद्धदिशः, **उद्दिशः** या उद्दिश्यन्ते ताः, **च सन्ति, ताभ्यः सर्वाभ्यो दिग्भ्यः** पूर्वप्रतिपादिताभ्यः **सर्वाभ्यः सर्वाः सेनाः** [**स्वाहा**] तत्तत्स्थानाऽनुकूलां शोभनां वाचं **विभज्य शत्रून् विजयध्वम्** ॥ १९ ॥

भाषार्थ—हे (**घृतपावानः**) जल पीने वाले वीरो ! तुम (**घृतम्**) जल का (**पिबत**) पान करो ।

हे (**वसापावानः**) निवास की रक्षा करने वाले वीरो ! तुम (**वसाम्**) वीर रस से पूर्ण नीति का (**पिबत**) पान करो ।

हे सेनाध्यक्ष! चक्रव्यूह आदि सेना के रचयिता! तू प्रत्येक वीर के लिये (**अन्तरिक्षस्य**) आकाश की (**हविः**) ग्रहण करने योग्य आहुति के समान (**असि**) है, इस लिये (**स्वाहा**) युद्ध के अनुकूल सुन्दर वाणी से सब वीरों को आदेश दे, तथा जो (**दिशः**) पूर्व आदि दिशायें, (**प्रदिशः**) आग्नेयी आदि अन्तर्दिशायें, (**आदिशः**) सामने की दिशायें, (**विदिशः**) पीछे की दिशायें, (**उद्दिशः**) लक्ष्य-दिशायें हैं, उन सब (**दिग्भ्यः**) दिशाओं के लिये [**स्वाहा**] उस-उस स्थान के अनुकूल सुन्दर वाणी से सेनाओं को विभक्त करके शत्रुओं पर विजय प्राप्त करो ॥ ६ । १९ ॥

[हे सेनाध्यक्ष ! चक्रव्यूहादिसेनारक्षक ! त्वं प्रतिवीरमन्तरिक्षस्य हविरसि, इति स्वाहा=शोभनया वाचा सर्वान् वीरान् या दिशः, प्रदिशः, आदिशः, विदिशः, उद्दिशः सन्ति ताभ्यः सर्वाभ्यो दिग्भ्यः सर्वाः सेनाः [स्वाहा] विभज्य शत्रून् विजयध्वम्]

भावार्थः— सेनाध्यक्षाणामुचितमस्ति—स्वसेनास्थान् वीरान् शरीरबलयुक्तान् युद्धविद्यासुशिक्षितान् सम्पाद्य युद्धे सर्वासु दिक्षु यथायोग्यान् स्वसेनाभागान् संस्थाप्य सर्वतः शत्रूना वृत्य विजित्य

भावार्थ—सेनाध्यक्षों को यह उचित है कि अपनी सेना के वीरों को शारीरिक बल से युक्त तथा युद्धविद्या में सुशिक्षित करके, युद्ध में सब दिशाओं में यथायोग्य अपनी सेना के भागों को

च न्यायेन प्रजां पालयेयुरिति ॥ ६ । १९ ॥

स्थापित करके, सब ओर से शत्रुओं को घेर कर और उन्हें जीत कर न्याय से प्रजा का पालन करें ॥ ६ । १९ ॥

भाष्यसार—**रण में क्या करें**—युद्ध में वीर लोग जल का पान करें, निवास-स्थानों की रक्षा करने वाले वीर निवासों की रक्षा करें तथा वीर रस से परिपूर्ण नीति को स्वीकार करें। सेनाध्यक्षों को उचित है कि वे चक्रव्यूह आदि सेना की रचना करें। वे अपनी सेना के प्रत्येक वीर को शारीरिक बल की वृद्धि के लिये हवि रूप अन्न आदि उत्तम-पदार्थ प्रदान करें तथा युद्धानुकूल श्रेष्ठ वाणी से युद्ध विद्या की उत्तम शिक्षा करें। युद्ध में पूर्व आदि सब दिशाओं में जैसे योग्य समझें वैसे अपनी सेना के भागों को स्थापित करके सब ओर से शत्रुओं को घेर कर विजय प्राप्त करें और न्याय से प्रजा का पालन करें ॥ ६ । १९ ॥

दीर्घतमाः । **त्वष्टा**=**सेनापतिः** ॥ ब्राह्मी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तत्रान्योन्यं कथं वर्त्तेरन्नित्युपदिश्यते ॥

फिर संग्राम में वीर पुरुष आपस में कैसे वर्तें, यह उपदेश किया है ॥

ऐन्द्रः प्राणो ऽ अङ्गे॑ऽ अङ्गे ऽ निदी॑ध्यदैन्द्रः ऽ उदानो ऽ अङ्गे॑ ऽ अङ्गे निधी॑तः ।
देव॑ त्वष्टर्भूरि॑ ते सꣳस॑मेतु सल॑क्ष्मा यद्विषु॑रूपं भवा॑ति ।
देवत्रा यन्त॒मव॑से सखायोऽनु॑ त्वा माता पि॒तरो॑ मदन्तु ॥ २० ॥

पदार्थः—(**ऐन्द्रः**) इन्द्रो=जीवो देवताऽस्य स ऐन्द्रः (**प्राणः**) शरीरस्थो वायुविशेषः (**अङ्गे-अङ्गे**) यथा प्रत्यङ्गं प्रकाशते (**नि**) नितराम् (**दीध्यत्**) युद्धे शत्रून् वञ्चित्वा स्वयं प्रकाशेत (**ऐन्द्रः**) विद्युद्देवताकः (**उदानः**) य ऊर्ध्वमनिति (**अङ्गे-अङ्गे**) प्रत्यङ्गम् (**निधीतः**) निहित इव (**देव**) दिव्यविद्या-सम्पन्न सेनाध्यक्ष ! (**त्वष्टः**) शत्रुबलच्छेत्तः ! (**भूरि**) बहु (**ते**) तव (**सम् सम्**) एकीभावे । अत्र प्रसमुपोदः पादपूरणे ॥ अ० ८ । १ । ६ ॥ इति समित्यस्य द्वित्वम् (**एतु**) प्राप्नोतु (**सलक्ष्म**) समानं लक्ष्म यस्य तत् । अत्र अन्येषामपि दृश्यते ॥ अ० ६ । ३ । १३७ ॥ इति दीर्घः (**यत्**) (**विषुरूपम्**) व्यापकं विविधरूपं वा (**भवाति**) भवतु (**देवत्रा**) देवं देवमिति देवत्रा (**यन्तम्**) गच्छन्तम् (**अवसे**) रक्षणाद्याय (**सखायः**) सुहृदः सन्तः (**अनु**) (**त्वा**) त्वाम् (**माता**) जननी (**पितरः**) रक्षका जनकाः (**मदन्तु**) हर्षन्तु ॥ अयम्मन्त्रः शत० ३ । ८ । ३ । ३७ व्याख्यातः ॥ २० ॥

प्रमाणार्थ—(**सम् सम्**) यहां 'प्रसमुपोदः पादपूरणे' (**अ०** ८ । १ । ६) इस सूत्र से 'सम्' को द्वित्व हुआ है । (**सलक्ष्मा**) यहां 'अन्येषामपि दृश्यते' (**अ०** ६ । ३ । १३७) इस सूत्र से दीर्घ है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ८ । ३ । ३७) में की गई है ॥ ६ । २० ॥

सपदार्थान्वयः—हे त्वष्टः शत्रुबलच्छेत्तः ! **देव=सेनापते** ! **भगवन्** दिव्यविद्यासम्पन्न सेनाध्यक्ष ! **अङ्गे अङ्गे** यथा प्रत्यङ्गं प्रकाशते **ऐन्द्रः** इन्द्रो=जीवो देवताऽस्य स ऐन्द्रः **प्राणः** शरीरस्थो वायुविशेषः **इव अवसे** रक्षणाद्याय **संग्रामे नि+दीध्यत्** नितरां युद्धे शत्रून् वञ्चित्वा स्वयं प्रकाशेतु, **यद्वा अङ्गे अङ्गे** प्रत्यङ्गम् [**ऐन्द्रः**]

भावार्थ—हे (**त्वष्टः**) शत्रु की सेना का छेदन करने वाले (**देव**) दिव्यविद्या से युक्त सेनापते ! भगवान् ! आप (**अङ्गे-अङ्गे**) शरीर के प्रत्येक अङ्ग में विद्यमान (**एन्द्रः**) इन्द्र अर्थात् जीव देवता वाले (**प्राणः**) प्राण वायु के समान (**अवसे**) रक्षा आदि कार्यों के लिये (**संग्रामे**) युद्ध में (**नि+दीध्यत्**) शत्रुओं को जीतकर स्वयं प्रकाशित हों,

विद्युद्देवताकः **उदानः** य ऊर्ध्वमनिति **इव संग्रामे नि+धीतः** निहित इव **भवति, यत् ते**=तव **विषुरूपं** व्यापकं विविधरूपं वा **सलक्ष्म** समानं लक्ष्म यस्य तद्, **भवाति** भवतु **तत्संग्रामे भूरि** बहु **यथा स्यात्तथा सम्+सम्+एतु** एकीभूय प्राप्नोतु । **सखायः** सुहृदः सन्तो **माता** जननी **पितरः** रक्षका जनकाः **च देवत्रा** देवं देवमिति देवत्रा **धर्म्यं युद्धं व्यवहारं वा यन्तं** गच्छन्तं **त्वा**=त्वाम् **अनु+मदन्तु** हर्षन्तु ॥ २० ॥

अथवा (**अङ्गे अङ्गे**) शरीर के प्रत्येक अङ्ग में [**एन्द्रः**] विद्युत् देवता वाले (**उदानः**) उदान वायु के समान संग्राम में [**नि+धीतः**] सर्वोपरि निहित हो, जो (**ते**) तेरा (**विषुरूपम्**) व्यापक वा विविध प्रकार का (**सलक्ष्म**) विशेष चिह्न वाला रूप (**भवाति**) है वह (**संग्रामे**) युद्ध में (**भूरि**) जैसे भी हो वैसे (**सम्+सम्+एतु**) अत्यन्त एकता को उत्पन्न करे, (**सखायः**) मित्र (**माता**) जननी (**पितरः**) रक्षक पिता आदि और (**देवत्रा**) सब विद्वान् लोग धर्म-युद्ध वा धर्माचरण को (**यन्तम्**) प्राप्त होते हुये (**त्वा**) तुझे (**अनुमदन्तु**) हर्षित करें ॥ ६ । २० ॥

[हे···देव=सेनापते ! भगवन् ! अङ्गे अङ्गे ऐन्द्रः प्राण इवावसे संग्रामे निदीध्यत्, यद्वा···**उदान इव** संग्रामे निधीतो भवति···सखायो माता पितरश्च देवत्रा धर्म्यं युद्धं—यन्तं त्वा=त्वामनुमदन्तु]

भावार्थः—सेनापतिः सर्वमित्रो ऽङ्गे ऽङ्गे प्राण उदान इव संग्रामे विचरन् सेनास्थवीरान् प्रजास्थपुरुषांश्च हर्षयित्वा शत्रून् विजयेत ॥ ६ ।२० ॥

भावार्थ—सब का मित्र सेनापति प्रत्येक अङ्ग में प्राण और उदान के समान युद्ध में विचरण करता हुआ सेना के वीरों तथा प्रजा के पुरुषों को हर्षित करके शत्रुओं पर विजय प्राप्त करें ॥ ६ । २० ॥

भाष्यसार—**रण में परस्पर कैसे वर्तें**—रण में सेनापति शत्रु के बल का छेदन करने वाला एवं दिव्य विद्या से सम्पन्न होता है। वह जैसे जीवात्मा से सम्बन्धित शरीरस्थ प्राण-वायु प्रत्येक अङ्ग में विचरण करता है, अथवा विद्युत्-सम्बन्धी उदान-वायु प्रत्येक अङ्ग में विचरण करता है वैसे सेनापति सेना के प्रत्येक अङ्ग में विचरण करे। अर्थात् सेना में व्यापक रूप से विराजमान रहे। निरीक्षण के लिये विविध रूप धारण करके भी विचरण करे और परिचायक विशेष चिह्न भी समान रूप से रखे। संग्राम में सब के साथ एक जैसा व्यवहार कर। भेदभाव न रखे। मित्र, माता, पिता तथा प्रत्येक विद्वान् धर्मयुक्त व्यवहार तथा धर्मयुद्ध में जाते हुये सेनापति का सम्मान करे और सेनापति सेना के वीरों को तथा प्रजा के पुरुषों को हर्षित करके शत्रुओं पर विजय प्राप्त करे ॥ ६ । २० ॥

दीर्घतमाः । **सेनापतिः**=स्पष्टम् । साम्नी उष्णिक् ॥ देवं सवितारमित्यस्क ब्राह्मी उष्णिक । यज्ञं गच्छेत्यस्य भुरिगार्षी उष्णिक् । मनो में इत्यस्य आर्षी उष्णिक् । ऋषभः ॥

अथ राष्ट्रकर्मानुष्ठातुमर्हाय शिष्याय गुरुः किं किमुपादिशेदित्याह ॥

अब राज्यकर्म करने योग्य शिष्य को गुरु क्या २ उपदेश करे, यह कहा है ॥

स॒मु॒द्रं ग॑च्छ॒ स्वाहा॒ऽन्तरि॑क्षं गच्छ॒ स्वाहा॑ दे॒वꣳ स॑वि॒तारं॑ गच्छ॒ स्वाहा॑ मि॒त्रावरु॑णौ गच्छ॒ स्वाहा॑ऽहोरा॒त्रे ग॑च्छ॒ स्वाहा॒ छन्दा॑ꣳसि गच्छ॒ स्वाहा॒ द्यावा॑पृथि॒वी ग॑च्छ॒ स्वाहा॑ य॒ज्ञं ग॑च्छ॒ स्वाहा॒ सोमं॑ गच्छ॒ स्वाहा॑ दि॒व्यं नभो॑ गच्छ॒ स्वाहा॒ग्निं वै॑श्वान॒रं ग॑च्छ॒ स्वाहा॒ मनो॑ मे॒ हार्दि॑ यच्छ॒ दिवं॑ ते धू॒मो ग॑च्छतु॒ स्व॒र्ज्योतिः॑ पृथि॒वीं भस्म॒नापृ॑ण॒ स्वाहा॑ ॥ २१ ॥

पदार्थः—(**समुद्रम्**) समुद्द्रवन्ति जलानि यस्मिन् तमुदधिम् (**गच्छ**) (**स्वाहा**) वृहन्नौका-रचनादिविद्यासिद्धेन यानेन (**अन्तरिक्षम्**) आकाशम् (**गच्छ**) (**स्वाहा**) खगोलप्रकाशिकया विद्यया सम्पादितेन विमानेन (**देवम्**) द्योतमानं (**सवितारम्**) परमेश्वरम् (**गच्छ**) जानीहि (**स्वाहा**) वेदवाचा सत्सङ्गसंस्कृतया वा (**मित्रावरुणौ**) प्राणोदानौ (**गच्छ**) प्राणायामाभ्यासेन विद्धि (**स्वाहा**) योगयुक्तया वाचा (**अहोरात्रे**) अहश्च रात्रिश्चाहोरात्रे । हेमन्तशिशिरावहोरात्रे च छन्दसि ॥ अ० २ । ४ । २८ ॥ अनेन नपुंसकत्वम् (**गच्छ**) कालविद्यया जानीहि याहि वा (**स्वाहा**) ज्योतिर्बोधयुक्तया वाचा (**छन्दांसि**) ऋग्यजुः-सामाथर्वाणश्चतुरो वेदान् (**गच्छ**) पठनपाठनपुरस्सरेण श्रवणमनननिदिध्यासनसाक्षात्कारेण विजानीहि (**स्वाहा**) वेदाङ्गादिविज्ञानसहितया वाचा (**द्यावापृथिवी**) द्यौश्च पृथिवी च तौ भूमिसूर्यौ तद्गतावभीष्टदेश-देशान्तराविति यावत् (**गच्छ**) जानीहि (**स्वाहा**) भूमियानाकाशयानरचनभूगोलभूगर्भखगोलविद्यया (**यज्ञम्**) अग्निहोत्रशिल्पराजव्यवहारादिकम् (**गच्छ**) स्वाहा (**सोमम्**) ओषधिसमूहम् (**गच्छ**) जानीहि (**स्वाहा**) वैद्यकशास्त्रबोधार्हया वाचा (**दिव्यम्**) व्यवहर्त्तव्यं शुद्धम् (**नभः**) जलम् (**गच्छ**) प्राप्नुहि (**स्वाहा**) तद्गुणविज्ञापयित्र्या वाचा (**अग्निम्**) विद्युतम् (**वैश्वानरम्**) सर्वत्र प्रकाशमानम् (**गच्छ**) जानीहि (**स्वाहा**) तद्बोधयुक्तया वाण्या (**मनः**) चित्तम् (**मे**) मम (**हार्द्दि**) हृदयस्यातिशयेन प्रियम् (**यच्छ**) निधेहि (**दिवम्**) सूर्यम् (**ते**) तव (**धूमः**) यन्त्रज्वलनवाष्पः (**गच्छतु**) (**स्वः**) सुखम् (**अन्तरिक्षम्**) आकाशम् (**ज्योतिः**) ज्वालाम् (**पृथिवीम्**) (**भस्मना**) (**आ**) समन्तात् (**पृण**) योजय (**स्वाहा**) यज्ञानुष्ठानयन्त्र-रचनविद्यया ॥ अयम्मन्त्रः शत० ३ । ८ । ४ । ११—१८ तथा ८ । ५ । १—५ व्याख्यातः ॥ २१ ॥

प्रमाणार्थ—(**अहोरात्रे**) यहाँ 'हेमन्तशिशिरावहोरात्रे च छन्दसि' (**अ०** २ । ४ । २८) सूत्र से नपुंसक लिङ्ग है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ८ । ४ । ११—१८ तथा ८ । ५ । १–५) में की गई है ॥ ६ । २१ ॥

सपदार्थान्वयः—हे राजकर्माऽनुष्ठानार्ह विद्वन् ! त्वं **स्वाहा** बृहन्नौकारचनादि-विद्यासिद्धेन यानेन **समुद्रं** समुद्द्रवन्ति जलानि यस्मिन् तमुदधिं **गच्छ** । **स्वाहा** खगोलप्रकाशिकया विद्यया सम्पादितेन विमानेन **अन्तरिक्षम्** आकाशं **गच्छ** । **स्वाहा** वेदवाचा सत्सङ्गसंस्कृतया वा **देवं** द्योतमानं **सवितारं** परमेश्वरं **गच्छ** जानीहि । **स्वाहा** योगयुक्तया वाचा **मित्रावरुणौ** प्राणोदानौ **गच्छ** प्राणायामाऽभ्यासेन विद्धि । **स्वाहा** ज्योतिर्बोध-युक्तया वाचा **अहोरात्रे** अहश्च रात्रिश्चाऽहोरात्रे **गच्छ** कालविद्यया जानीहि याहि वा । [**स्वाहा**] वेदाङ्गादिविज्ञानसहितया वाचा [**छन्दांसि**] ऋग्यजुः सामाऽथर्वणश्चतुरो वेदान् [**गच्छ**] पठनपाठनपुर-स्सरेण श्रवणमनननिदिध्यासनसाक्षात्कारेण विजा-नीहि । [**स्वाहा**] भूमियानाऽऽकाशयानरचनभूगोल-भूगर्भखगोलविद्यया [**द्यावापृथिवी**] द्यौश्च पृथिवी च तौ भूमिसूर्य्यौ तद्गतावभीष्टदेशदेशान्तराविति

भावार्थ—हे राजकर्म करने में समर्थ विद्वन् ! तू (**स्वाहा**) बड़ी नौका आदि, विद्या से सिद्ध किये यान से (**समुद्रम्**) जलों के गति-स्थल समुद्र में (**गच्छ**) जा । (**स्वाहा**) खगोल को प्रकाशित करने वाली विद्या से सिद्ध किये विमान से (**अन्त-रिक्षम्**) आकाश में (**गच्छ**) जा । (**स्वाहा**) वेद-वाणी वा सत्सङ्ग से परिष्कृत वाणी से (**देवम्**) प्रकाशस्वरूप (**सवितारम्**) परमेश्वर को (**गच्छ**) जान । (**स्वाहा**) योग विद्या से (**मित्रावरुणौ**) प्राण और उदान को (**गच्छ**) प्राणायाम के अभ्यास से जान । (**स्वाहा**) ज्योतिषविद्या से (**अहोरात्रे**) दिन और रात को (**गच्छ**) कालविद्या से जान वा प्राप्त कर । (**स्वाहा**) वेदाङ्ग आदि विज्ञान-युक्त वाणी से [**छन्दांसि**] ऋग्, यजुः, साम, अथर्व चार वेदों को [**गच्छ**] पठन-पाठन पूर्वक श्रवण, मनन, निदिध्यासन, साक्षात्कार से जान । [**स्वाहा**] भूमियान, आकाशयान की रचना

यावद् [गच्छ] जानीहि । **स्वाहा यज्ञम्** अग्निहोत्र-शिल्पराजव्यवहारादिकं **गच्छ** ! **स्वाहा** वैद्यकशास्त्र-बोधाऽर्हया वाचा **सोमम्** ओषधिसमूहं **गच्छ** जानिहि **स्वाहा** तद्गुणविज्ञापयित्र्या वाचा **दिव्यं** व्यवहर्त्तव्यं शुद्धं **नभः** जलं **गच्छ** प्राप्नुहि । **स्वाहा** तद्बोधयुक्त्या वाण्या **अग्निं** विद्युतं **वैश्वानरं** सर्वत्रप्रकाशमानं **च गच्छ** जानीहि, **मे**=**मम मनः** चित्तं **हार्दि** हृदयस्यातिशयेन प्रियं **यच्छ** निर्वेहि । **ते**=**तव धूमः** यन्त्रज्वलनवाष्पो **दिवं** सूर्यं **ज्योतिः** ज्वालां **स्वः** सुखं **गच्छतु** । **त्वं स्वाहा** यज्ञानुष्ठानयन्त्ररचनविधया **भस्मना पृथिवीमापृण** समन्ताद् योजय ॥ ६ । २१ ॥

एवं भूगोल, भूगर्भ तथा खगोलविद्या से [**द्यावापृथिवी**] भूमि और सूर्य तथा उनके अन्तर्गत देश देशान्तरों को [**गच्छ**] जान । (**स्वाहा**) वेदवाणी से (**यज्ञम्**) अग्निहोत्र, शिल्प और राजव्यवहार को (**गच्छ**) जान । (**स्वाहा**) वैद्यकशास्त्र की विद्या से (**सोमम्**) औषधियों को (**गच्छ**) जान । (**स्वाहा**) तद्गुणविज्ञापक वाणी से (**दिव्यम्**) व्यवहार में लाने योग्य शुद्ध (**नभः**) जल को (**गच्छ**) प्राप्त कर । (**स्वाहा**) तत्बोधक वाणी से (**अग्निम्**) विद्युत् को (**वैश्वानरम्**) और सर्वत्र प्रकाशमान अग्नि को (**गच्छ**) जान । (**मे**) मेरे (**मनः**) चित्त को (**हार्दि**) प्रीतियुक्त (**यच्छ**) कर । (**ते**) तेरा (**धूमः**) यन्त्रों की अग्नि की भांप (**दिवम्**) सूर्य की (**ज्योतिः**) ज्योति को (**स्वः**) सुखपूर्वक (**गच्छतु**) प्राप्त हो । (**त्वम्**) तू (**स्वाहा**) यज्ञानुष्ठान और यन्त्र बनाने की विद्या से (**भस्मना**) धूल से पृथिवी को (**आपृण**) भर दे ॥ ६ । २१ ॥

[हे राजकर्मानुष्ठानार्ह विद्वन् ! त्वं स्वाहा समुद्रं गच्छ, स्वाहा, ऽन्तरिक्षं गच्छ, [स्वाहा, द्यावापृथिवी गच्छ] स्वाहा यज्ञं गच्छ, स्वाहा सोमं गच्छ......]

भावार्थः—धर्मादि राज्यव्यापारकरणवृत्तिमभीप्सुभिर्जनैर्भूमियानान्तरिक्षयानाकाशयानैर्विविधयन्त्रकलारचनैश्च सर्वाः सामग्रीः सम्पाद्य द्रव्यसंचयः कार्यः ॥ ६ । २१ ॥

भावार्थ—धर्म आदि, राज्य और व्यापार वृत्ति के अभिलाषी मनुष्य भूमियान, अन्तरिक्षयान, आकाशयान और विविध यन्त्रकला की रचनाओं से सब सामग्री सिद्ध करके द्रव्यों का संचय करें ॥ ६ । २१ ॥

भाष्यसार—**राजकर्म करने के योग्य शिष्य को गुरु का उपदेश**—हे धर्म आदि, राज्य और व्यापार करने के अभिलाषी विद्वान् ! तू विशाल नौका आदि की रचना करके समुद्र-यात्रा कर, विमान बनाकर आकाश में विचरण कर, वेदवाणी तथा श्रेष्ठ जनों के सङ्ग से प्रकाशस्वरूप परमेश्वर को जान, योगविद्या से एवं प्राणायाम के अभ्यास से प्राण और उदान को जान, ज्योतिष विद्या से एवं काल विद्या से दिन और रात्रि को समझ, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष इन वेदाङ्गों से ऋग्, यजुः, साम और अथर्व इन चार वेदों को पठन-पाठन पूर्वक श्रवण, मनन, निदिध्यासन और साक्षात्कार से जान । भूमियान, आकाशयान की रचना भूगोल, भूगर्भ और खगोलविद्या से भूमि तथा सूर्य और इनके अन्तर्गत देश-देशान्तरों को जान । होम आदि क्रिया से अग्निहोत्र, शिल्प और राजव्यवहार आदि को जान । वैद्यकशास्त्र के बोध से औषधियों को जान । जल के गुणों की ज्ञापक विद्या से व्यवहार में लाने योग्य शुद्ध जल को प्राप्त कर । विद्युत् का बोध कराने वाली विद्या से विद्युत् तथा सर्वत्र प्रकाशमान अग्नि को जान । हृदय से अत्यन्त प्रेम करने वाले मेरे चित्त को अपने चित्त में धारण कर । तेरे यन्त्रों की अग्नि की भांप सूर्य की ज्योति को प्राप्त करे । तू यज्ञानुष्ठान और यन्त्र बनाने की विद्या से

उत्पन्न धूल से इस पृथिवी को भर दे। इस प्रकार सब सामग्री तैयार करके द्रव्यों का संचय कर॥ ६। २१॥

दीर्घतमाः। **वरुणः=सभापतिः**॥ स्वाराड् ब्राह्म उष्णिक्। ऋषभः। सुमित्रिया न इत्यस्य त्रिपाद् विराड् गायत्री। षड्जः॥

अथ वाणिज्यार्थं राजप्रबन्धमाह॥

अब व्यापार करने के लिये राज-व्यवस्था का उपदेश किया है॥

मापो मौषधीर्हिंसीर्धाम्नो धाम्नो राजँस्ततो वरुण नो मुञ्च।
यदाहुरघ्न्या ऽ इति वरुणेति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च।
सुमित्रिया न ऽ आप ऽ ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु
योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः॥ २२॥

पदार्थः—(**मा**) निषेधे (**अपः**) जलानि (**मा**) निषेधे (**ओषधीः**) यवादीन् (**हिंसीः**) (**धाम्नो धाम्नः**) स्थानात् स्थानात् (**राजन्**) सभापते! (**ततः**) तस्मात् (**वरुण**) प्रशस्त (**नः**) अस्मान् (**मुञ्च**) (**यत्**) (**आहुः**) (**अघ्न्याः**) हन्तुमयोग्या गावस्ताः। **अघ्न्या इति** गोनामसु पठितम्॥ निघं० २। ११॥ (**इति**) अनेन प्रकारेण (**वरुण**) न्यायकारिन्! (**इति**) प्रकारान्तरे (**शपामहे**) (**ततोवरुण नो मुञ्च**) (**सुमित्रियाः**) सुमित्राणीव (**नः**) अस्मभ्यम् (**आपः**) (**ओषधयः**) (**सन्तु**) (**दुर्मित्रियाः**) दुर्मित्राणीव (**तस्मै**) द्विषते (**सन्तु**) (**यः**) अमित्रः (**अस्मान्**) (**द्वेष्टि**) (**यम्**) (**च**) (**वयम्**) (**द्विष्मः**)॥ **अयं मन्त्रः** शत० ३। ८। ५। ९-११ व्याख्यातः॥ २२॥

प्रमाणार्थ—(**अघ्न्याः**) यह शब्द निघं० (२। ११) में गो-नामों में पढ़ा है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३। ८। ५। ९-११) में की गई है॥ ६। २२॥

सपदार्थान्वयः—**हे राजन्!** सभापते! त्वम् **अपः** जलानि **ओषधीः** यवादीन् **च मा न हिंसीः**। न केवलमिदमेव कुर्य्याः **किन्तु ततः** तस्माद् **धाम्नो धाम्नः** स्थानात् स्थानात् [**नः**]= **अस्मान् मा न मुञ्च**।

हे वरुण प्रशस्त! **अघ्न्याः** हन्तुमयोग्या गावस्ताः, **इति** अनेन प्रकारेण **यद् भवन्त आहुः वयं** चेत्थं **शपामहे। ततः** तस्मात् **त्वं** [**नः**] अस्मभ्यं **मा मुञ्च वयमपि न मुञ्चामः**।

हे वरुण न्यायकारिन्। [**इति**] प्रकारान्तरे **नः** अस्मभ्यम् **आप ओषधयश्च सुमित्रियाः**=**सुमित्रवत्** सुमित्राणीव **सन्तु**। **यः** अमित्रः **अस्मान् द्वेष्टि यम्**

भाषार्थ—हे (**राजन्**) सभापते! आप (**अपः**) जलों को (**औषधीः**) जौ आदि औषधियों को (**मा**) मत (**हिंसीः**) नष्ट करो केवल यही नहीं किन्तु आप (**ततः**) उस उस (**धाम्नो धाम्नः**) स्थान से [**नः**] हमें (**मा**) मत (**मुञ्च**) छुड़ा।

हे (**वरुण**) प्रशस्त सेनापते! (**अघ्न्याः**) हनन करने के अयोग्य गौवें हैं (**इति**) ऐसा (**यत्**) जो आप (**आहुः**) कहते हैं और हम भी इसी प्रकार (**शपामहे**) कहते हैं (**ततः**) इसीलिये आप [**नः**] हमें (**मा मुञ्च**) न छोड़ें और हम भी आपको न छोड़ें।

हे (**वरुण**) न्यायकारिन् [**इति**] इस प्रकार (**नः**) हमारे लिए (**आपः**) जल और (**औषधयः**) औषधियाँ (**सुमित्रियाः**) श्रेष्ठ मित्र के समान

अमित्रं च वयं द्विष्मः, तस्मै द्विषते **दुर्मित्रियाः**= शत्रुवद् दुर्मित्राणीव **सन्तु** ॥ ६ । २२ ॥

(**सन्तु**) हों । (**यः**) जो शत्रु (**अस्मान्**) हम लोगों से (**द्वेष्टि**) द्वेष करता है और (**यं च**) जिस शत्रु से (**वयम्**) हम (**द्विष्मः**) द्वेष करते हैं (**तस्मै**) उस शत्रु के लिये (**दुर्मित्रियाः**) दुष्ट मित्र के समान (**सन्तु**) हों ॥ ६ । २२ ॥

[हे वरुण [इति] न आप ओषधयश्च सुमित्रियाः=सुमित्रवत् सन्तु, योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तस्मै दुर्मित्रियाः=शत्रुवत् सन्तु]

भावार्थः—राजपुरुषाः प्रजाभ्योऽनीत्या धनं न गृह्णीयुः। राजरक्षणाय प्रतिज्ञां कुर्युरन्यायं वयं न करिष्याम इति दुष्टान् सततं दण्डयेयुरिति ॥ ६ । २२ ॥

भावार्थ—राजपुरुष प्रजा से अन्याय से धन ग्रहण न करें। राजा की रक्षा की प्रतिज्ञा करें कि हम अन्याय नहीं करेंगे तथा दुष्टों को सदा दण्ड दें ॥ ६ । २२ ॥

भाष्यसार—वाणिज्य के लिये राज-व्यवस्था—व्यापार को समुन्नत करने का अभिलाषी राजा जल तथा जौ आदि औषधियों का विनाश न करे केवल इतना ही नहीं अपितु वाणिज्य के स्थानों से व्यापारियों को पृथक् न करे। राजा और व्यापारी जन गौ आदि पशुओं की हत्या न करें किन्तु इन्हें अहिंसनीय समझें। गौ आदि पशुओं से राजा और व्यापारी दूर न रहें अपितु उनका पालन-पोषण करें। राजपुरुष न्यायकारी हों। अन्याय से प्रजा से धन ग्रहण न करें। राजा ऐसी व्यवस्था करे कि प्रजा के लिये जल और औषधियाँ श्रेष्ठ मित्र के समान उपकारक हों और श्रेष्ठ जनों से द्वेष करने वाले शत्रुओं के लिये जल और औषधियाँ शत्रु के समान अपकारक हों। राजपुरुष राजा की रक्षा के लिये प्रतिज्ञा-बद्ध हों कि हम अन्याय कभी नहीं करेंगे और दुष्टों को सदा दण्ड देंगे और श्रेष्ठों की रक्षा करेंगे ॥ ६ । २२ ॥

दीर्घतमाः। **अब्यज्ञसूर्याः**=जलयज्ञसूर्याः। निचृदार्ष्यनुष्टुप्। गान्धारः॥

पुनरन्योऽन्यं मिलित्वा राजप्रजे केन किं किं कुर्यातामित्याह ॥

फिर परस्पर मिल कर राजा और प्रजा किससे क्या-क्या करें, इस विषय का उपदेश किया है ॥

हविष्मतीरिमाऽआपो हविष्माँ२ऽ आविवासति ।
हविष्मान्देवोऽअध्वरो हविष्माँ२ऽअस्तु सूर्यः ॥ २३ ॥

पदार्थः—(**हविष्मतीः**) प्रशस्तानि हवींषि विद्यन्ते यासु ताः (**इमाः**) प्रत्यक्षाः (**आपः**) जलानि (**हविष्मान्**) प्रशस्तानि हवींषि विद्यन्ते यस्य वायोः सः। दीर्घादटि समानपादे ॥ अ० ८ । ३ । ९ ॥ इति रुः। आतोऽटि नित्यम् ॥ अ० ८ । ३ । ३ ॥ इति सानुनासिकत्वम् (**आ**) समन्तात् (**विवासति**) सेवते। विवासतीति परिचरणकर्मसु पठितम ॥ निघं० ३ । ५ ॥ (**हविष्मान्**) (**देवः**) सुखयिता। (**अध्वरः**) यज्ञः (**हविष्मान्**) (**अस्तु**) (**सूर्यः**) ॥ अयं मन्त्रः शत० ३ । ६ । २ । १० व्याख्यातः ॥ २३ ॥

प्रमाणार्थ—(**हविष्माँ२ऽ आविवासति**) यहां 'दीर्घादटि समानपादे' (अ० ८ । ३ । ९) इस सूत्र से नकार को 'रुत्व' और 'आतोऽटि नित्यम्' (अ० ८ । ३ । ३) इस सूत्र से सानुनासिकता है। (**विवासति**) यह पद निघं० (३ । ५) में सेवा-अर्थ वाली क्रियाओं में पढ़ा है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ६ । २ । १०) में की गई है ॥ ६ । २३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वांसः ! यथा **इमाः** प्रत्यक्षा **आपः** जलानि **हविष्मतीः**=हविष्मत्यः प्रशस्तानि हवींषि विद्यन्ते यासु ताः, **स्युरयं वायुर्हविष्मान्** प्रशस्तानि हवींषि विद्यन्ते यस्य वायोः सः, **एव आ+विवासति**=सर्वान् परिचरति समन्तात् सेवते। **देवः** सुखयिता **अध्वरः** यज्ञो **हविष्मान्** प्रशस्तानि हवींषि विद्यन्ते यस्य सः, **स्यात्**। **सूर्य्यः हविष्मान्** प्रशस्तानि हवींषि विद्यन्ते यस्य सः, **अस्तु**=भवेत्, तथा भवन्तो यज्ञेनैतान् शुद्धान् कुर्वन्तु ॥ ६ । २३ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् लोगो ! जैसे (**इमाः**) यह (**आपः**) जल (**हविष्मतीः**) यज्ञ की प्रशस्त हवि से युक्त हों, और यह वायु भी (**हविष्मान्**) यज्ञ की प्रशस्त हवि से युक्त होकर ही (**आ+विवासति**) सब ओर से सबकी परिचर्या=सेवा करता है, सब को सुख-प्रदान करता है । (**देवः**) सुख देने वाला (**अध्वरः**) यज्ञ (**हविष्मान्**) उत्तम हवि से सुगन्धित हो। (**सूर्यः**) सूर्य (**हविष्मान्**) उत्तम हवि से युक्त (**अस्तु**) हो तथा आप लोग यज्ञ से इन जल, वायु और सूर्य को शुद्ध करें ॥ ६ । २३ ॥

[हे विद्वांसः ! यथेमा आप हविष्मतीः=हविष्मत्यः स्युरयं वायुर्हविष्मानेवाविवासति=सर्वान् परिचरति]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ येन वायुजलसंयोगेनानेकानि सुखानि साध्यन्ते, यैर्विविधदेशदेशान्तरगमनेन वस्तुप्रापणं भवति। तैरेतत्कर्म क्रियाविचक्षण एव कर्त्तुं शक्नोति।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है॥ जिस वायु और जल के संयोग से अनेक सुख सिद्ध होते हैं, जिनसे विविध देश-देशान्तर में जाने से वस्तुओं की प्राप्ति होती है, उनसे यह कर्म क्रिया-कुशल व्यक्ति ही कर सकता है।

[देवोऽध्वरो हविष्मान् स्यात्, सूर्यो हविष्मानस्तु=भवेत्, तथा भवन्तो यज्ञेनैतान् शुद्धान् कुर्वन्तु]

यो विविधक्रियाप्रकाशकोऽस्ति, स यज्ञो वृष्ट्यादिसुखकरो भवति ॥ ६ । २३ ॥

जो नाना क्रियाओं का प्रकाशक यज्ञ है वह वर्षा आदि सुखों को उत्पन्न करने वाला है ॥ ६ । २३ ॥

भाष्यसार—१. **राजा और प्रजा परस्पर मिल कर किससे क्या-क्या करें**—राजा और प्रजा के लोग परस्पर मिल कर जल और वायु को यज्ञ की हवि से युक्त करें क्योंकि यज्ञ की हवि से परिष्कृत जल और वायु सबकी चहुँ ओर से परिचर्या करते हैं, सेवा करते हैं, सबको सुख पहुँचाते हैं। वायु और जल के संयोग से अनेक सुखों को सिद्ध करें तथा इनके उपयोग से नाना देश-देशान्तर में जाकर वस्तुओं को प्राप्त करें। जल और वायु से यह कार्य कोई क्रिया-कुशल व्यक्ति ही कर सकता है; सब नहीं।

सब सुखों को देने वाला यज्ञ श्रेष्ठ हवियों वाला हो। यज्ञ की श्रेष्ठ व हवियाँ सूर्य को प्राप्त हों जिससे सूर्य भी श्रेष्ठ हवियों से युक्त हो। यज्ञ से विद्वान् लोग जल, वायु तथा सूर्य को शुद्ध करें। नाना क्रियाओं को प्रकाशित करने वाला यज्ञ वर्षा आदि सुखों को उत्पन्न करने वाला होता है अतः राजा और प्रजा परस्पर मिल कर यज्ञ से जल आदि पदार्थों को शुद्ध करें ॥ ६ । २३ ॥

मेधातिथिः। **आपः**=**गुरुपत्न्यः** ॥ आर्षी त्रिष्टुप्। धैवतः। अमूर्य्येत्यस्य त्रिपाद् गायत्री। षड्जः ॥

अथ गुरुपत्न्यो ब्रह्मचर्यमनुवर्त्तिनीः कन्याः किं किमुपदिशेयुरित्याह ॥

अब गुरुपत्नी ब्रह्मचर्य्य के अनुकूल जो कन्याजन हैं उन को क्या-क्या उपदेश करें, यह वर्णन किया है ॥

अ॒ग्नेर्वोऽप॑न्नगृहस्य॒ सद॑सि सादयामीन्द्रा॒ग्न्योर्भा॑ग॒धेयीं स्थ मि॒त्रावरु॑णयोर्भाग॒धेयीं स्थ॒ विश्वे॑षां दे॒वानां॑ भाग॒धेयीं स्थ। अ॒मूर्याऽउप॒ सूर्ये॒ याभि॑र्वा॒ सूर्यः॑ स॒ह ता नो॑ हिन्वन्त्वध्व॒रम् ॥२४॥

पदार्थः—(**अग्नेः**) विद्यादिगुणप्रकाशितस्य सभ्यजनस्य (**वः**) युष्मान् युष्माकं वा (**अपन्नगृहस्य**) अप्राप्तगृहस्य कुमारब्रह्मचारिणः (**सदसि**) सीदन्ति बुद्धिविषया यस्मिन्निति सदः अध्ययनाध्यापननिमित्ता सभा, तत्र (**सादयामि**) स्थापयामि (**इन्द्राग्न्योः**) सूर्यविद्युतोर्गुणानाम् (**भागधेयीः**) विभागविज्ञानयुक्ताः । नामरूपभागेभ्यः स्वार्थे धेयः प्रत्ययः । अ० ५ । ४ । ३६ भा० वा० ॥ केवलमामक० ॥ अ० ४ । १ । ३० ॥ इत्यादिना ङीप् (**स्थ**) भवथ (**मित्रावरुणयोः**) प्राणोदानयोः (**भागधेयी**) (**स्थ**) (**विश्वेषाम्**) सर्वेषाम् (**देवानाम्**) विदुषां पृथिव्यादीनां वा (**भागधेयी**) (**स्थ**) (**अमूः**) प्रत्यक्षाः (**याः**) (**उप**) (**सूर्ये**) सवितृलोके (**याभिः**) (**वा**) पक्षान्तरे (**सूर्यः**) सूर्यलोकः (**सह**) (**ताः**) (**नः**) अस्माकम् (**हिन्वन्तु**) प्रीणन्तु (**अध्वरम्**) गृहाश्रमक्रियासिद्धिकरं यज्ञम् ॥ २४ ॥

प्रमाणार्थ—(**भागधेयीः**) यह शब्द 'नामरूपभागेभ्यः स्वार्थे धेयः प्रत्ययः' (**अ० ५ । ४ । ३६**) भा० वार्तिक से 'धेय' प्रत्यय और 'केवलमामक०' (**अ० ४ । १ । ३०**) इत्यादि सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है ॥ ६ । २४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **ब्रह्मचारिण्यः** ! **यूयं याः अमूः** प्रत्यक्षाः **स्वयंवरविवाहं कृतवत्यः** **सन्ति, यूयम् इन्द्राग्न्योः** सूर्य्यविद्युतोर्गुणानां **भागधेयीः** विभागविज्ञानयुक्ताः स्थ भवथ, **मित्रावरुणयोः** प्राणोदानयोः **भागधेयीः** विभागविज्ञानयुक्ताः **स्थ** भवथ । **विश्वेषां** सर्वेषां **देवानां** विदुषां पृथिव्यादीनां वा **भागधेयीः** विभागविज्ञानयुक्ताः स्थ भवथ **ता वः=युष्मान्** युष्मान् **अपन्नगृहस्य** अप्राप्तगृहस्य कुमारब्रह्मचारिणो **अग्नेः** विद्यादिगुणप्रकाशितस्य सभ्यजनस्य **सदसि** सीदन्ति बुद्धिविषया यस्मिन्निति सदः, अध्ययनाऽध्यापननिमित्ता सभा तत्र **अहं सादयामि** स्थापयामि । **या उप सूर्य्ये=सूर्य्यगुणेषु** सवितृलोके **तिष्ठन्ति वा** पक्षान्तरे **याभिः सह सूर्य्यः** सूर्य्यलोको **वर्त्तते ताः नः=अस्माकम् अध्वरं=विवाहं** गृहाऽऽश्रमक्रियासिद्धिकरं यज्ञं **कृत्वा हिन्वन्तु** प्रीणन्तु ॥ ६ । २४ ॥

भाषार्थ—हे ब्रह्मचारिणियों ! जो (**अमूः**) ये तुम स्वयंवर विवाह को कर चुकी हो, सो तुम (**इन्द्राग्न्यो**) सूर्य और विद्युत् के गुणों को (**भागधेयीः**) पृथक्-पृथक् जानने वाली (**स्थ**) हो, (**मित्रावरुणयोः**) प्राण और उदान को (**भागधेयीः**) पृथक्-पृथक् जानने वाली (स्थ) हो, (**विश्वेषाम्**) सब (**देवानाम्**) विद्वानों वा पृथिवी आदि को (**भागधेयीः**) पृथक्-पृथक् जानने वाली (**स्थ**) हो, उन (वः) तुम को (**अपन्नगृहस्य**) घर को अप्राप्त कुमार ब्रह्मचारी की (**अग्ने**) विद्या आदि गुणों से प्रकाशित सभ्यजन की (**सदसि**) बौद्धिक विषयों के रमण स्थान तथा अध्ययन-अध्यापन की हेतु सभा में मैं (**सादयामि**) स्थापित करता हूँ । जो ब्रह्मचारिणियाँ (**उप-सूर्ये**) सूर्य के गुणों से युक्त तेजस्विनी हैं अथवा जिनके साथ (**सूर्यः**) सूर्य के गुण वर्तमान हैं उन्हें (**नः**) हम (**अध्वरम्**) गृहाश्रम के कर्मों को सिद्ध करने वाले विवाह-यज्ञ को करके (**हिन्वन्तु**) प्रसन्न करें ॥ ६ । २४ ॥

[**हे ब्रह्मचारिण्यः ! यूयं या अमूः** स्वयंवरविवाहं कृतवत्यः सन्ति ... ता वः=**युष्मानपन्नगृहस्याग्नेः** सदस्यहं सादयामि]

भावार्थः—ब्रह्मचर्यधर्ममनुवर्त्तिनीनां कन्यानामविवाहितैः स्वतुल्यगुणकर्मस्वभावैः पुरुषैः सहैव

भावार्थ—ब्रह्मचर्य धर्म का अनुसरण करने वाली कन्याओं का अविवाहित अपने तुल्य

विवाहकरणयोग्यताऽस्तीति हेतोर्गुरुपत्न्यो ब्रह्मचारिणीः कन्यास्तादृशमेवरेपदिशन्तु खल्वापत्काले कृतविवाहयोर्नियोगो भवितुमर्हति नान्यथेति ॥ ६ । २४ ॥

गुण कर्म स्वभाव वाले पुरुषों के साथ ही विवाह करना योग्य है, इसलिये गुरु-पत्नियाँ ब्रह्मचारिणी कन्याओं को ऐसा ही उपदेश करें, केवल आपत्काल में विवाहित स्त्री-पुरुषों का नियोग हो सकता है; अन्यथा नहीं ॥ ६ । २४ ॥

भाष्यसार—**गुरुपत्नियाँ ब्रह्मचारिणी कन्याओं को क्या-क्या उपदेश करें**—गुरुओं की पत्नियाँ ब्रह्मचारिणी कन्याओं को यह उपदेश करें कि हे ब्रह्मचारिणी कन्याओ ! तुम स्वयंवर विवाह करो क्योंकि ब्रह्मचर्य धर्म का पालन करने वाली कन्याओं को अविवाहित अपने तुल्य गुण, कर्म, स्वभाव वाले पुरुषों के साथ विवाह करना योग्य है, केवल आपत्काल में ही विवाहित स्त्री-पुरुषों का नियोग हो सकता है; अन्यथा नहीं ।

हे ब्रह्मचारिणी कन्याओ ! तुम सूर्य और विद्युत् के गुणों को पृथक्-पृथक् जानने वाली हो, तुम प्राण और उदान के भेद को जानने वाली हो । सब विद्वानों तथा पृथिवी आदि के भेद जानने वाली हो । इस लिये मैं तुम्हें घर को अप्राप्त कुमार ब्रह्मचारी जो विद्यादि गुणों से प्रकाशित सभ्य है उसकी सभा में स्थापित करती हूँ ।

जो ब्रह्मचारिणी कन्यायें सूर्य के तेज आदि गुणों से तेजस्विनी हैं, जिनके साथ सूर्य विद्यमान है अर्थात् जो विद्यादि प्रकाश और तेज आदि से विभूषित हैं वे विवाह संस्कारपूर्वक अपने तुल्य वरों को प्राप्त करके उन्हें प्रसन्न करें ॥ ६ । २४ ॥

मेधातिथिः । **सोमः**=**उपदेशः** ॥ विराडार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्ताः किं किमुपदिशेयुरित्याह ॥

फिर वे क्या-क्या उपदेश करें, यह वर्णन किया है ॥

हृदे त्वा मन॑से त्वा दि॒वे त्वा सूर्या॑य त्वा । ऊ॒र्ध्वमि॒मम॑ध्व॒रं दि॒वि दे॒वेषु॒ होत्रा॑ यच्छ ॥ २५ ॥

पदार्थः—(**हृदे**) हृत्सुखाय (**त्वा**) त्वाम् (**मनसे**) सदसन्मननाय (**त्वा**) त्वाम् (**दिवे**) सर्वसुखद्योतनाय (**त्वा**) त्वाम् (**सूर्य्याय**) सूर्यगुणाय (**त्वा**) त्वाम् (**ऊर्ध्वम्**) उत्कृष्टम् (**इमम्**) प्रत्यक्षम् (**अध्वरम्**) अविनश्वरं यज्ञम् (**दिवि**) **शुभगुणप्रकाशे** (**देवेषु**) विद्वत्सु (**होत्राः**) हवनकर्मानुष्ठात्र्यः (**यच्छ**) उपगृह्णीहि ॥ अयं मंत्रः शत: ३ । ६ । ३ । ४—५ व्याख्यातः ॥ २५ ॥

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ६ । ३ । ४—५) में की गई है ॥ ६ । २५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **ब्रह्मचारिणि कन्ये ! त्वं यथा वयं सर्वा देवेषु**=**स्वपतिषु** विद्वत्सु **समीपवर्त्तिन्यो होत्राः**=**हवनकर्माऽनुष्ठात्र्यः स्मस्तथा भव ।**

यथा वयं हृदे हृत्सुखाय **त्वा** त्वां, **मनसे** सदसन्मननाय **त्वा** त्वां, **दिवे** सर्वसुखद्योतनाय **त्वा** त्वां, **सूर्य्याय** सूर्य्यगुणाय **त्वा** त्वाम् **अनुशास्मस्तथा दिवि** शुभगुणप्रकाशे **इमं** प्रत्यक्षम् **अध्वरम्** अविनश्वरं

भाषार्थ—हे ब्रह्मचारिणी कन्या ! तू जैसे हम सब (**देवेषु**) अपने विद्वान् पतियों के समीप (**होत्राः**) यज्ञ-कर्म करने वाली हैं वैसी तू हो ।

जैसे हम लोग (**हृदे**) हार्दिक सुख के लिये (**त्वा**) तुझे, (**मनसे**) सत्य और असत्य के मनन के लिये (**त्वा**) तुझे, (**दिवे**) सब सुखों को प्रकाशित करने के लिये (**त्वा**) तुझे, (**सूर्य्याय**) सूर्य के गुणों

यज्ञम् ऊर्ध्वम् उत्कृष्टं **यच्छ** उपगृह्णीहि ॥ ६ । २५ ॥

के ज्ञान के लिये (**त्वा**) तुझे, शिक्षा करती हैं, वैसे तू (**दिवि**) शुभ गुणों के प्रकाश में (**इमम्**) इस (**अध्वरम्**) अविनाशी यज्ञ को (**ऊर्ध्वम्**) उत्कृष्ट रीति से (**यच्छ**) ग्रहण कर ॥ ६ । २६ ॥

[हे ब्रह्मचारिणि कन्ये ! त्वं यथा वयं सर्वा देवेषु=स्वपतिषु समीपवर्त्तिन्यो होत्राः=हवनकर्माऽनुष्ठात्र्यः स्मस्तथा भव]

भावार्थः—यथा पतिव्रताः स्वपतिषु तत्प्रियमाचरन्त्योऽग्निहोत्रादिकर्मसु निरताः स्युस्तथा विवाहानन्तरं ब्रह्मचारिणीभिरपि परस्परमनुवर्त्तितव्यमिति ॥ ६ । २५ ॥

भावार्थ—जैसे पतिव्रता स्त्रियाँ अपने पतियों के प्रति प्रिय आचरण करती हुई अग्निहोत्र आदि शुभ कर्मों में रत रहती हैं वैसे ब्रह्मचारिणी कन्यायें भी विवाह के पश्चात् परस्पर अपने पतियों के साथ मिलकर रहें ॥ ६ । २५ ॥

भा० भावार्थः—होत्राः=अग्निहोत्रादिकर्मसु निरताः ॥

भाष्यसार—**गुरुपत्नियाँ ब्रह्मचारिणियों को** क्या-क्या उपदेश करें—गुरुओं की पत्नियाँ ब्रह्मचारिणियों को यह उपदेश करें कि हे ब्रह्मचारिणियो ! जैसे हम पतिव्रत धर्म का पालन करने वाली अपने विद्वान् पतियों के प्रति प्रियाचरण करती हुई अग्निहोत्र आदि शुभ कर्मों में रत रहती हैं वैसे तुम भी विवाह के पश्चात् परस्पर अपने विद्वान् पतियों के अनुकूल रहो। जैसे हम तुम्हें हार्दिक सुख, सत्य-असत्य के ज्ञान, सब सुखों के प्रकाश तथा सूर्य के तेज आदि गुणों को धारण करने के लिये उपदेश करती हैं वैसे शुभ गुणों के प्रकाश के लिये इस सत्यस्वरूप विवाह-यज्ञ को उत्तम रीति से ग्रहण करो ॥ ६ । २५ ॥

मेधातिथिः ॥ **सोमादयोलिङ्गोक्ताः**=राजादयः ॥ भुरिक् गायत्री ।
षड्जः । श्रृणोत्वित्यस्यार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

अथ गुरुजनः क्षत्रियं शिष्यं प्रजाजनांश्च प्रत्युपदिशति ॥

अब गुरुजन, क्षत्रिय शिष्य और प्रजाजनों को उपदेश करता है ॥

**सोम॑ राज॒न्विश्वा॒स्त्वं प्र॒जा ऽ उ॒पाव॑रोह॒ विश्वा॒स्त्वां प्र॒जा ऽ उ॒पाव॑रोहन्तु ।
शृ॒णोत्व॒ग्निः स॒मिधा॒ हवं॑ मे शृ॒ण्वन्त्वापो॒ धि॒षणा॑श्च दे॒वीः ।
श्रोता॑ ग्रावाणो वि॒दुषो॒ न य॒ज्ञᳪं शृ॒णोतु॑ दे॒वः स॑वि॒ता हवं॑ मे॒ स्वाहा॑ ॥ २६ ॥**

पदार्थः—(**सोम**) प्रशस्तैश्वर्ययुक्त (**राजन्**) सर्वोत्कृष्टगुणैः प्रकाशमान ! (**विश्वाः**) सर्वाः (**त्वम्**) (**प्रजाः**) पालनीयाः (**उपावरोह**) उपवर्तस्व (**विश्वाः**) सर्वाः (**त्वाम्**) पितरमपत्यानीव सुखाय (**प्रजाः**) प्रजननीयाः (**उपावरोहन्तु**) समुपाश्रयन्तु (**श्रृणोतु**) (**अग्निः**) पावकः (**समिधा**) समिधेव (**हवम्**) अर्चनम् (**मे**) मम (**शृण्वन्तु**) (**आपः**) शुभगुणकर्मव्याप्ताः (**धिषणाः**) धृष्टा वाचो यासां ताः । **धिषणेति वाङ् ना० ॥ निघं० १ । ११ ॥** (**च**) पक्षान्तरे (**देवीः**) विदुष्यः (**श्रोत**) शृणुत । **अत्र तस्य स्थाने तप्तनप्तनथनाश्च ॥ अ० ७ । १ । ४५ ॥ अनेन तबादेशः । द्व्यचोतस्तिङः अ० ६ । ३ । १३५ ॥ इति दीर्घः । बहुलं छन्दसि ॥ अ० २ । ४ । ७३ ॥ इति श्नुलोपश्च** (**ग्रावाणः**) सदसद्विवेचका विद्वांसः । **ग्रावाण इति पदनामसु पठितम् ॥ नि० ५ । ३ ॥** (**विदुषः**) (**न**) इव (**यज्ञम्**) (**शृणोतु**) (**देवः**) विद्याप्रकाशितः (**सविता**)

ऐश्वर्य्यवान् (**हवम्**) (**मे**) मम (**स्वाहा**) स्तुतियुक्ता वाग्यथा तथा ॥ अयम्मंत्रः शत० ३ । ९ । ३ । ६—२४ व्याख्यातः ॥ २६ ॥

प्रमाणार्थ—(**धिषणाः**) यह शब्द निघं० (१ । ११) में वाणी-नामों में पढ़ा है । (**श्रोत**) शृणुत । यहाँ 'त' के स्थान में 'तप्तनप्तनथनाश्च' (**अ०** ७ । १ । ४५) इस सूत्र से 'तप्' आदेश है और 'द्वचचोऽतस्तिङः' (**अ०** ६ । ३ । १३५) इस सूत्र से दीर्घ है तथा 'बहुलं छन्दसि' (**अ०** २ । ४ । ७३) इस सूत्र से 'श्नु' प्रत्यय का लोप है । (**ग्रावाणः**) यह शब्द निघं (५ । ३) पद नामों में पढ़ा है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ९ । ३ । ६—२४) में की गई है ॥ ६ । २६ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे सोम** ! प्रशस्तैश्वर्य्ययुक्त ! **राजन्** ! सर्वोत्कृष्टगुणैः प्रकाशमान ! **त्वं पितेव विश्वाः** सर्वाः **प्रजाः** पालनीया **उप+अव+रोह** उपवर्त्तस्व । **त्वां** पितरमपत्यानीव सुखाय **विश्वाः** सर्वाः **प्रजाः** प्रजननीया **अपत्यानीव उप+अव+रोहन्तु** समुपाशयन्तु । **भवान् समिधा** समिधेव **अग्निः** पावकः **इव मे=मम प्रजाजनस्य हवम्** अर्चनं **शृणोतु** । **या आपः** शुभगुणकर्मव्याप्ताः **धिषणाः** धृष्टा वाचो यासां ताः, **देवीः=देव्यः** विदुष्यः **पत्न्यश्च मातरमिव स्त्रीन्यायं शृण्वन्तु** ।

हे ग्रावाणः=स्तावका विद्वांसः सभासदः ! सदसद्विवेचका विद्वांसः ! **यूयं मम हवम्** अर्चनं **श्रोत** शृणुत । **देवः** विद्याप्रकाशितः **सविता** ऐश्वर्य्यवान् **भवान् विदुषः यज्ञं न=इव मे=मम हवम्** अर्चनं **स्वाहा** स्तुतियुक्ता वाग्यथा तथा **शृणोतु** ॥ २६ ॥

भाषार्थ—हे (**सोम**) प्रशस्त ऐश्वर्ययुक्त (**राजन्**) सब उत्तम गुणों से प्रकाशमान राजन् ! आप पिता के समान (**विश्वाः**) सब (**प्रजाः**) पालन करने योग्य प्रजा के (**उपावरोह**) समीप रहें, (**त्वाम्**) और तुझ पिता को सुख के लिये (**विश्वाः**) सब (**प्रजाः**) उत्पन्न प्रजा सन्तान के समान (**उपावरोहन्तु**) अपना आश्रय समझें । और आप (**समिधा**) समिधा तथा (**अग्निः**) अग्नि के समान (**मे**) मेरे प्रजा-जनों की (**हवम्**) स्तुति को (**शृणोतु**) सुनिये । और जो (**आपः**) शुभ गुण-कर्मों से युक्त (**धिषणाः**) विद्या से विभूषित (**देवीः**) विदुषी देवियाँ (**च**) और पत्नियाँ हैं वे माता के समान स्त्रियों के न्याय को सुनें ।

हे (**ग्रावाणः**) स्तुति करने वाले सत्य और असत्य का विवेक करने वाले विद्वान् सभासद् लोगो ! तुम मेरी (**हवम्**) स्तुति को (**श्रोत**) सुनो । और (**देवः**) विद्या से प्रकाशित (**सविता**) ऐश्वर्यवान् आप (**विदुषः**) विद्वान् के यज्ञ के (**न**) समान (**मे**) मेरी (**हवम्**) स्तुति की एवं (**स्वाहा**) स्तुतियुक्त वाणी को (**शृणोतु**) सुनिये ॥ ६ । २६ ॥

[हे······**राजन्** ! **त्वं पितेव विश्वाः प्रजा उपावरोह**······]

भावार्थः—राजा प्रजाश्च परस्परानुमत्या सर्वान् राज्यव्यवहारान् पालयेयुरिति ॥ ६ । २६ ॥

भावार्थ—राजा और प्रजा परस्पर अनुमति से सब राज्य व्यवहारों का पालन करें ॥ ६ । २६ ॥

भाष्यसार—**गुरुजन का क्षत्रिय शिष्य और प्रजाजनों के प्रति उपदेश**—गुरु कहता है कि हे प्रशस्त ऐश्वर्य से युक्त, सब उत्कृष्ट गुणों से प्रकाशमान राजन् ! तू पिता के समान सब प्रजा का पालन कर । जैसे सन्तान सुख-प्राप्ति के लिये अपने पिता का आश्रय करती है इसी प्रकार सब प्रजा सन्तान के समान तेरा आश्रय ग्रहण करें । जैसे समिधा अग्नि को ग्रहण करती है, उसे स्वीकार करती है इसी प्रकार आप प्रजाजनों की स्तुति को सुनिये, स्वीकार कीजिये । और जो शुभ-गुण कर्मों से युक्त

विद्या से विभूषित विदुषी स्त्रियाँ और राज-पत्नियाँ हैं वे माता के समान स्त्रियों की बातों को सुनें तथा उचित न्याय करें ।

राजा कहता है कि हे स्तुति करने वाले, सत्य और असत्य के विवेचक विद्वान् सभासदो ! तुम मेरे सत्कार युक्त कथन को सुनो । विद्या से प्रकाशित, ऐश्वर्यसम्पन्न विद्वान् के यज्ञ के समान मेरे सत्कारपूर्ण वचनों को एवं सत्यवाणी को सुनो । इस प्रकार राजा और प्रजा के लोग परस्पर अनुमति से सब राज्य के न्याय आदि व्यवहारों की रक्षा करें ।। ६ । २६ ।।

मेधातिथिः । **आपः**=**आप्ताः प्रजाः** ।। निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ।।

पुनरेते कथं वर्त्तेरन्नित्युपदिश्यते ।।

फिर राजा और प्रजा कैसे वर्त्ताव करें, यह उपदेश किया है ।।

देवीरापो ऽ अपांनपाद्यो वं ऽ ऊर्म्मिर्हविष्य ऽ इन्द्रियावान् मदिन्तमः ।
तं देवेभ्यो देवत्रा दत्त शुक्रपेभ्यो येषां भाग स्थ स्वाहा ।। २७ ।।

पदार्थः—(**देवीः**) दिव्याः (**आपः**) आप्ताः प्रजाः (**अपां**) (**नपात्**) अविनश्वरः (**यः**) (**वः**) युष्माकम् (**ऊर्मिः**) जलतरङ्ग इव (**हविष्यः**) हविर्भ्यो हितः (**इन्द्रियावान्**) प्रशस्तानीन्द्रियाणि यस्मिन् सः (**मदिन्तमः**) मदयतीति मदी सोतिशयितः । **नाद् घस्य अ० ८ । २ । १७ ।। इति मदिन् शब्दान्नुडागमः** (**तम्**) (**देवेभ्यः**) विद्वद्भ्यः (**देवत्रा**) दिव्यान् गुणान् (**दत्त**) (**शुक्रपेभ्यः**) शुक्रं=वीर्यं रक्षन्ति तेभ्यः (**येषाम्**) (**भागः**) (**स्थ**) (**स्वाहा**) **अयमन्त्रः शत० ३ । ६ । ३ । २५ व्याख्यातः ।। २७ ।।**

प्रमाणार्थ—(**मदिन्तमः**) यह 'नाद्घस्य' (अ० ८ । २ । १७) इस सूत्र से 'मदिन्' शब्द से परे 'नुट्' का आगम है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ६ । ३ । २५) में की गई है ।। ६ । २७ ।।

सपदार्थान्वयः—हे **आपः** आप्ताः प्रजाः ! **देवीः**=**देव्यः प्रजाः** दिव्याः ! **यूयं राजभक्ता स्थ**=**भवत** । **शुक्रपेभ्यः** शुक्रं=वीर्यं रक्षन्ति तेभ्यो **देवेभ्यः** विद्वद्भ्यो **येषां वः**=**युष्माकम् अपांनपात्** अविनश्वरः **ऊर्मिः** जलतरङ्ग **इव इन्द्रियावान्** प्रशस्तानीन्द्रियाणि यस्मिन् सः, **मदिन्तमः** मदयतीति मदी सोऽतिशयितः **हविष्यः** हविर्भ्यो हितो **भागः अस्ति, तं स्वाहा**=**सद्वाचा गृह्णीत । यथा राजादयः सभ्या जना देवत्रा**=**दिव्यान् भोगान्** दिव्यान् गुणान् **युष्मभ्यं प्रददति तथैतेभ्यो यूयमपि दत्त** ।। २७ ।।

भाषार्थ—हे (**आपः**) आप्त (**देवीः**) दिव्य-गुण युक्त प्रजाजनो ! तुम राजभक्त (**स्थ**) बनो । और (शुक्रपेभ्यः) वीर्य की रक्षा करने वाले (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये जो (वः) तुम्हारा (अपांनपात्) अविनाशी, (ऊर्मिः) जलतरङ्ग के समान (इन्द्रियवान्) इन्द्रियों को बलवान् बनाने वाला (मदिन्तमः) अत्यन्त आनन्द देने वाला (हविष्यः) हवि के लिये हितकारी, (**भागः**) भाग है उसे (स्वाहा) श्रेष्ठ वाणी से ग्रहण करो । और जैसे राजा आदि सभ्य लोग (देवत्रा) दिव्य गुण युक्त भोगों को तुम्हें प्रदान करते हैं वैसे इन्हें तुम भी (दत्त) कर प्रदान करो ।। ६ । २७ ।।

[**हे आपो देवीः**=**देव्यः प्रजाः ! यूयं राजभक्ता स्थ**=**भवत**'''**यथा राजादयः सभ्या जना देवत्रा**=**दिव्यान् भोगान् युष्मभ्यं प्रददति तथैतेभ्यो यूयमपि दत्त**]

भावार्थः—प्रजाजनानामिदमुचितमुत्कृष्ट-गुणं सभापतिं मत्वा राज्यपालनाय करं दत्वा

भावार्थ—प्रजा-जनों को यह उचित है कि कि उत्कृष्ट गुण वाले सभापति को स्वीकार करके

न्यायं प्राप्नुयुरिति ॥ ६ । २७ ॥

राज्य की रक्षा के लिये कर-प्रदान करके न्याय को प्राप्त करें ॥ ६ । २७ ॥

भाष्यसार—**राजा और प्रजा का वर्त्ताव**—श्रेष्ठ एवं दिव्य गुणों से युक्त प्रजा-जन राजभक्त हों। वीर्य की रक्षा करने वाले विद्वानों की सेवा के लिये, जल में सदा वर्तमान जलतरङ्ग के समान, इन्द्रियों को प्रशस्त (**सबल**) करने वाले, अत्यन्त आनन्ददायक, यज्ञ की हवि के लिये भी हितकारी अपने भोग्य पदार्थों को प्रजा-जन राजा से सत्कारपूर्ण वाणी से ग्रहण करें। जैसे राजा आदि सभ्य लोग दिव्य गुणों से युक्त भोग पदार्थों को प्रदान करते हैं वैसे प्रजाजन भी उत्कृष्ट गुण वाले राजा को राज्य की रक्षा के लिये कर-प्रदान करें तथा न्याय को प्राप्त करें ॥ ६ । २७ ॥

मेधातिथिः । **प्रजाः=स्पष्टम्** ॥ निचृदार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

अथाध्यापको जनः प्रतिजनं किं किमुपदिशेदित्युच्यते ॥

अब अध्यापक जन प्रत्येक जन को क्या-क्या उपदेश करे, यह वर्णन किया है ॥

कार्षिरसि समुद्रस्य त्वा क्षित्याऽउन्नयामि । समापोऽअद्भिरग्मत समोषधीभिरोषधीः ॥ २८ ॥

पदार्थः—(**कार्षिः**) कर्षति हलेन भूमिमिति **इञ् वपादिभ्यः अ० ३ । ३ । १०८ ॥ वा वा० ॥ इतीञ्** (**असि**) (**समुद्रस्य**) अन्तरिक्षस्य । **समुद्र इत्यन्तरिक्षनामसु पठितम् ॥ निघं० १ । ३ ॥** (**त्वा**) त्वाम् (**अक्षित्यै**) (**उत्**) उत्कृष्टे (**नयामि**) (**सम्**) (**आपः**) जलानि (**अद्भिः**) जलैरेव (**अग्मत**) प्राप्नुत **लोडर्थे लुङ्** (**सम्**) (**ओषधीभिः**) सोमादिभिः (**ओषधीः**) **अयं मन्त्रः शत० ३ । ६ । ३ । २६–३१ व्याख्यातः ॥ २८ ॥**

प्रमाणार्थ—(**कार्षिः**) यहाँ 'इञ् वपादिभ्यः' (**अ०** ३ । ३ । १०८) इस भाष्य वार्त्तिक से 'इञ्' प्रत्यय है। (**समुद्रस्य**) अन्तरिक्षस्य । 'समुद्र' शब्द निघं० (१ । ३) में अन्तरिक्ष-नामों में पढ़ा है। (**अग्मत**) प्राप्नुत । यहाँ लोट्-अर्थ में लुङ् लकार है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ६ । ३ । २६-३१) में की गई है ॥ ६ । २८ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे वैश्यजन ! त्वं कार्षिः** कर्षति हलेन भूमिमिति **असि** । [**त्वा**]=**त्वां समुद्रस्य** अन्तरिक्षस्य **अक्षित्यै सम्+उत्+नयामि** उत्कृष्टतया नयामि । **सर्वे यूयं यज्ञशोधिताभिः अद्भिः** जलैः **एव आपः** जलानि **ओषधीभिः** सोमादिभिः **औषधीः** सोमादीन् **सम्+अग्मत** प्राप्नुत ॥ ६ । २८ ॥

भाषार्थ—हे वैश्य जन ! तू (**कार्षिः**) हल से भूमि को जोतने वाला (**असि**) है। [**त्वा**] तुझे (**समुद्रस्य**) आकाश को (**अक्षित्यै**) जल-परमाणुओं से पूर्ण करने के लिये (**समुन्नयामि**) उत्साहित करता हूँ। तुम सब यज्ञ से शुद्ध किये (**अद्भिः**) जलों से (**आपः**) जलों को तथा (**ओषधीभिः**) सोम आदि औषधियों के होम से (**ओषधीः**) सोम आदि औषधियों को (**समग्मतः**) प्राप्त करो ॥ ६ । २८ ॥

[**सर्वे यूयं यज्ञशोधिताभिरद्भिरेवाँप, ओषधीभिरोषधीः समग्मत**]

भावार्थः—क्षेत्रादिभूमिषु नानौषधयो जायन्त, ओषधीभिरग्निपोत्रादयो यज्ञा, यज्ञैरन्तरिक्षं जलपरमाणुभिः पूर्णं भवतोति हेतोः—

भावार्थ—खेतों आदि में नाना प्रकार की औषधियाँ उत्पन्न होती हैं, औषधियों से अग्निहोत्र आदि **यज्ञ** किये जाते हैं, यज्ञों से आकाश जल के परमाणुओं से परिपूर्ण हो जाता है। इसलिये—

[हे वैश्यजन ! त्वं कार्षिरसि, [त्वा]=त्वां समुद्रस्याक्षित्यै समुन्नयामि]

विद्वांसो निर्बुद्धिजनान् क्षेत्रादिषु नयन्ति, कुतस्ते विद्यामभ्यसितुं समर्था एव न भवन्तीति ॥ ६ । २८ ॥

विद्वान् लोग निर्बुद्धि लोगों को खेतों आदि में ले जाते हैं। क्योंकि वे विद्याभ्यास करने में समर्थ ही नहीं होते ॥ ६ । २८ ॥

भाष्यसार—विद्वान् अध्यापक प्रत्येक जन को क्या-क्या उपदेश करे—विद्वान् अध्यापक उपदेश करता है कि हे वैश्य ! तू हल से भूमि को जोतने वाला है। मैं तुझे आकाश को जल के परमाणुओं से परिपूर्ण करने के लिये शिक्षा करता हूँ। क्योंकि जल के बिना हल सफल नहीं हो सकता। अतः प्रत्येक मनुष्य जलों को शुद्ध करने के लिए यज्ञ करे तथा यज्ञ से शुद्ध किये हुये जलों का ही उपयोग करे । सोम आदि औषधियों का यज्ञ में होम करे क्योंकि सोम आदि औषधियों के होम से वर्षा और शुद्ध वर्षा से सोम आदि दिव्य औषधियाँ उत्पन्न होती हैं। इस प्रकार औषधियों से औषधियों को प्राप्त करें। ये औषधियाँ खेतों आदि में उत्पन्न होती हैं । इनसे अग्निहोत्र आदि यज्ञ किये जाते हैं। यज्ञ से आकाश जल के परमाणुओं से भर जाता है। जिससे वर्षा होती है। वर्षा से ही सब औषधियाँ पैदा होती हैं। खेतों आदि में औषधियों को उत्पन्न करने के लिये विद्वान् लोग निर्बुद्धि लोगों को ले जाते हैं क्योंकि वे निर्बुद्धि होने से विद्याभ्यास नहीं कर सकते ॥ ६ । २८ ॥

मधुच्छन्दाः । **अग्निः**=**सर्वगुणसम्पन्नो विद्वान्** ॥ भुरिगार्षी गायत्री । षड्जः ॥

अथ स विद्वांसं किमाहेत्युपदिश्यते ॥

अब वह अध्यापक को क्या कहता है, यह उपदेश किया है ॥

यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः । स यन्ता शश्वतीरिषः स्वाहा ॥ २९ ॥

पदार्थः—(यम्) (अग्ने) सर्वगुणवर ! (पृत्सु) संग्रामेषु । पृत्स्विति संग्रामनामसु **पठितम्** ॥ **निघं० २। १७** ॥ (**मर्त्यम्**) मनुष्यम् (**अवाः**) रक्षेः (**वाजेषु**) अन्ननिमित्तक्षेत्रादिषु (**यम्**) (**जुनाः**) गमयेः (**सः**) (**यन्ता**) (**शश्वतीः**) अविनश्वराः (**इषः**) इष्यन्ते यास्ताः प्रजाः (**स्वाहा**) उत्साहिकया वाचा ॥ **अयं मन्त्रः श० ३ । ६ । ३ । ३१-३२ व्याख्यातः ॥ २९ ॥**

प्रमाणार्थ—(पृत्सु) यह शब्द निघं० (२ । २७) में सङ्ग्राम-नामों में पढ़ा है । इस मन्त्र की व्याख्या (३ । ६ । ३ । ३१-३२) में की गई है ॥ ६ । २९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने** सर्वगुणवर ! **त्वं पृत्सु** सङ्ग्रामेषु **यं मर्त्यं** मनुष्यम् **अवाः** रक्षेः, **यं च वाजेषु** अन्ननिमित्तक्षेत्राऽऽदिषु **जुनाः** गमयेः **सः शश्वतीः** अविनश्वराः **इषः** इष्यन्ते यास्ताः प्रजाः [**स्वाहा**] उत्साहिकया वाचा **यन्ता** स्यात् ॥ ६ । २९ ॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) सब गुणों का वरण करने वाले विद्वान् ! तू (पृत्सु) युद्धों में (**यम्**) जिस (मर्त्यम्) मनुष्य की (अवाः) रक्षा करता है और (यम्) जिसे (**वाजेषु**) अन्न के हेतु क्षेत्र आदि में (जुनाः) पहुँचाता है, वह मनुष्य (**शश्वतीः**) अविनाशी (**इषः**) कामना के योग्य प्रजा को [**स्वाहा**] उत्साहित करने वाली वाणी से (**यन्ता**) प्राप्त करने वाला हो ॥ ६ । २९ ॥

[हे अग्ने ! त्वं पृत्सु यं मर्त्यमवा…स शश्वतीरिषः [स्वाहा] यन्ता स्यात्]

भावार्थः—गुरुशिक्षया सर्वस्य सुखं वर्द्धत एव ॥ ६ । २९ ॥

भावार्थ—गुरुजनों की शिक्षा से सब का सुख बढ़ता ही है ॥ ६ । २९ ॥

भाष्यसार—**प्रत्येक व्यक्ति विद्वान् अध्यापक को क्या कहे**—हे सब गुणों का वरण करने वाले विद्वान् अध्यापक ! आप युद्धों में मनुष्यों की रक्षा करते हो, अन्न के उत्पत्ति-स्थान खेतों आदि में निर्बुद्धि जनों को ले जाते हो, जो वहाँ नाना प्रकार की औषधियों को उत्पन्न करते हैं। औषधियों से यज्ञ और यज्ञ से वर्षा, और वर्षा से सबको सुख होता है। इसलिये आप शाश्वत कमनीय प्रजा को प्राप्त करो ॥ ६ । २९ ॥

मधुच्छन्दाः । **सविता**=जगदीश्वरः । स्वराडार्षी पंक्तिः । उत्तमेनेत्यस्य
निचृदार्ष्यनुष्टुप् गान्धारः । पञ्चमः ॥

अथ सभापतिः करधनप्रदं प्रजापुरुषं कथं स्वीकुर्यादित्युपदिश्यते ॥

अथ सभापति कर-धन देने वाले प्रजाजनों को कैसे स्वीकार करे यह गुरुजन का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
आददे रावासि गभीरमिममध्वरं कृधीन्द्राय सुषूतमम् ॥
उत्तमेन पविनोर्ज्जस्वन्तं मधुमन्तं पयस्वन्तं निग्राभ्या स्थ देवश्रुतस्तर्पयत मा ॥ ३० ॥

पदार्थः—(**देवस्य**) सर्वसुखप्रदातुः (**त्वा**) त्वां करधनदातारम् (**सवितुः**) सकलैश्वर्य्यस्य प्रसवितुर्जगदीश्वरस्य (**प्रसवे**) प्रसूते जगति (**अश्विनोः**) सूर्य्याचन्द्रमसोः (**बाहुभ्याम्**) बलवीर्य्याभ्याम् (**पूष्णः**) सोमाद्योषधिगणस्य (**हस्ताभ्याम्**) रोगनाशकधातुसाम्यकारकाभ्यां गुणाभ्याम् (**आददे**) गृह्णामि (**रावा**) दाता (**असि**) (**गभीरम्**) अगाधगुणम् (**इमम्**) प्रत्यक्षम् (**अध्वरम्**) निष्कौटिल्यम् (**कृधि**) कुरु (**इन्द्राय**) परमैश्वर्यवते मह्यम् (**सुषूतमम्**) सुष्ठु सूते तम् (**उत्तमेन**) प्रशस्तेनेव (**पविना**) वाचा। पविरिति वाङ् नामसु पठितम् ॥ निघं० १ । ११ ॥ (**ऊर्जस्वन्तम्**) उत्तमपराक्रमसम्बन्धिनम् (**मधुमन्तम्**) प्रशस्तमध्वादिपदार्थयुक्तम् (**पयस्वन्तम्**) बहुदुग्धादिमन्तम् (**निग्राभ्याः**) नितरां ग्रहीतुं योग्याः (**स्थ**) भवथ (**देवश्रुतः**) ता देवान् शृण्वन्ति ताः (**तर्पयत**) प्रीणीत (**मा**) माम् ॥ अयम्मन्त्रः शत ३ । ९ । ४ । ३—६ व्याख्यातः ॥ ३० ॥

प्रमाणार्थ—(**पविना**) 'पवि' शब्द निघं० (१ । ११) में वाणी-नामों में पढ़ा है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ९ । ४ । ३–६) में की गई है ॥ ६ । ३० ॥

सपदार्थान्वयः—हे **प्रजाजन** ! **अहं देवस्य** सर्वसुखप्रदातुः **सवितुः** सकलैश्वर्य्यस्य प्रसवितुर्जगदीश्वरस्य **प्रसवे** प्रसूते जगति **अश्विनोः** सूर्य्याचन्द्रमसोः **बाहुभ्यां** बलवीर्य्याभ्यां **पूष्णः** सोमाद्योषधिगणस्य **हस्ताभ्यां** रोगनाशकधातुसाम्यकारकाभ्यां गुणाभ्यां [**त्वा**]=त्वाम् **आ**+**ददे** गृह्णामि । त्वं [**रावा**] दाता [**असि**], **इन्द्राय** **मह्य** परमैश्वर्य्यवते मह्यम् **उत्तमेन** प्रशस्तेनेव

भाषार्थ—हे प्रजा-जन ! मैं (**देवस्य**) सकल सुखदाता (**सवितुः**) सकल ऐश्वर्य के उत्पन्न करने वाले जगदीश्वर के (**प्रसवे**) उत्पन्न जगत् में (**अश्विनोः**) सूर्य और चन्द्रमा के (**बाहुभ्याम्**) बल और वीर्य से तथा (**पूष्णः**) सोम आदि औषधियों के (**हस्ताभ्याम्**) रोगनाशक एवं धातु साम्यकारक गुणों से [**त्वा**] तुझे (**आददे**) स्वीकार करता हूँ। तू [**रावा**] दाता [**असि**] है। मुझ

पविना=**वचसा** वाचा **इमं** प्रत्यक्षं **गभीरम्** अगाध-गुणं **सुवृतमं** सुष्ठु सूते तम्, **ऊर्ज्जस्वन्तम्** उत्तम-पराक्रमसम्बन्धिनं **[मधुमन्तम्]** प्रशस्तमध्वादि-पदार्थयुक्तं **[पयस्वन्तम्]** बहुदुग्धादिमन्तं **करदायम्-ध्वरं** निष्कौटिल्यं **कृधि** कुरु ।

(**इन्द्राय**) परम ऐश्वर्यवान् के लिये (**उत्तमेन**) श्रेष्ठ (**पविना**) वचन से (**इमम्**) इस (**गभीरम्**) अगाध गुण वाले (**सुवृतमम्**) उत्तम सुख को उत्पन्न करने वाले (**ऊर्ज्जस्वन्तम्**) उत्तम पराक्रम वाले **[मधुमन्तम्]** श्रेष्ठ मधु आदि पदार्थों से युक्त **[पयस्वन्तम्]** बहुत दूध आदि पदार्थों वाले कर को (**अध्वरम्**) कुटिलता रहित (**कृधि**) कर ।

हे **देवश्रुतः** या देवान् शृण्वन्ति ताः प्रजाः ! **यूयं निग्राभ्याः**=**मया नितरां** ग्रहीतुं **योग्याः** नितरां ग्रहीतुं योग्याः **स्थ** भवथ । **मा**=**मामनेन तर्प्पयत** प्रीणीत ॥ ६ । ३० ॥

हे (**देवश्रुतः**) विद्वानों के उपदेश को ग्रहण करने वाले प्रजा-जनो ! तुम (**निग्राभ्याः**) मुझ से अत्यन्त स्वीकार करने योग्य (**स्थ**) हो । (**मा**) मुझे इस कर-प्रदान से (**तर्प्पयत**) तृप्त करो ॥ ६ । ३० ॥

[हे प्रजाजन ! अहं······[त्वा]=त्वामाददे । त्वं···इन्द्राय मह्यंकरदायमध्वरं कृधि,···
हे देवश्रुतः प्रजाः । यूयं···मामनेन तर्पयत]

भावार्थः—प्रजाजनानां योग्यतास्तिराजा-नमागत्य तस्मै सर्वेषां स्वकीयपदार्थानां यथायोग्य-मंशं दद्युर्यतः स भूमिगतपदार्थानामंशभागी भवतीति ॥ ६ । ३० ॥

भावार्थ—प्रजा-जनों को योग्य है कि वे राजा के समीप आकर अपने सब पदार्थों का यथा योग्य भाग उसे प्रदान करें क्योंकि वह भूमि में उत्पन्न होने वाले पदार्थों का अंशभागी होता है ॥ ६ । ३० ॥

भाष्यसार—**राजा कर देने वाले पुरुषों को कैसे स्वीकार करे**—सभापति राजा से कहता है कि हे प्रजा-जनो ! मैं सब सुखों के दाता, सकल ऐश्वर्य को उत्पन्न करने वाले जगदीश्वर की इस सृष्टि में सूर्य और चन्द्रमा के बल-वीर्य से, सोम आदि औषधियों के रोगनाशक तथा धातुओं को सम रखने वाले गुणों से तुम्हें स्वीकार करता हूँ । अर्थात् मैं तुम्हें सूर्य और चन्द्रमा के समान बल और वीर्य से युक्त करता हूँ तथा औषधियों के उत्पादन तथा सेवन से तुम्हें रोग रहित रखता हूँ । तुम अपने सब पदार्थों में से, यथा योग्य भाग देने वाले हो इसलिये मुझे परम ऐश्वर्य सम्पन्न बनाने के लिये तुम उत्तम वाणी से, अगाध गुण वाले, उत्तम सुख को उत्पन्न करने वाले, उत्तम पराक्रम वाले, मधु और दुग्ध आदि आदि के हेतु कर-धन को कुटिलता रहित होकर प्रदान करो ।

विद्वानों के उपदेश को मानने वाले उक्त प्रजा-जनों को राजा कर-प्रदान से सर्वथा स्वीकार करे तथा प्रजा-जन उसे कर-धन देकर तृप्त रखें क्योंकि राजा भूमि-आदि में उत्पन्न पदार्थों का अंशभागी होता है ॥ ६ । ३० ॥

मधुच्छन्दाः । **प्रजापतिर्देवता**=स्पष्टम् । ब्राह्म्युष्णिक् प्रजांमे इत्यस्य आर्ष्युष्णिक् । ऋषभः ॥

अथ राजा सभ्यजनान् सभा राजानञ्च किमुपदिशेदित्याह ॥

अब राजा अपने सभासदों और सभा राजा को क्या उपदेश करे, यह उपदेश किया है ॥

मनों मे तर्प्पयत वाचं मे तर्प्पयत प्राणं मे तर्प्पयत चक्षुर्मे तर्प्पयत श्रोत्रं मे तर्प्पयता-त्मानं मे तर्प्पयत प्रजां मे तर्प्पयत पशून्मे तर्प्पयत गणान्मे तर्प्पयत गणा मे मा वितृषन् ॥ ३१ ॥

पदार्थः—(**मनः**) अन्तःकरणम् (**मे**) मम (**तर्प्पयत**) (**वाचम्**) (**मे**) (**तर्प्पयत**) (**प्राणम्**) (**मे**) (**तर्प्पयत**) (**चक्षुः**) (**मे**) (**तर्प्पयत**) (**श्रोत्रम्**) (**मे**) (**तर्प्पयत**) (**आत्मानम्**) (**मे**) (**तर्प्पयत**) (**प्रजाम्**) सन्तानादिकाम् (**मे**) (**तर्प्पयत**) (**पशून्**) गोहस्त्यश्वादीन् (**मे**) (**तर्प्पयत**) (**गणान्**) परिचारकादीन् (**मे**) (**तर्प्पयत**) (**गणाः**) (**मे**) मम (**मा**) निषेधार्थे (**वि**) विरुद्धार्थे (**तृषन्**) तृषिता भवन्तु। **अत्र लोडर्थे लुङ्॥ अयं मन्त्रः। शत० ३।६।४।७—८ व्याख्यातः॥ ३१॥**

प्रमाणार्थ—(**तृषन्**) तृषिता भवन्तु। यहाँ लोट् अर्थ में लुङ् लकार है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३।६।४।७-८) में की गई है॥ ६।३१॥

सपदार्थान्वयः—**हे सभाजनाः प्रजाजना वा! यूयं स्वगुणैः मे**=**मम मनः** अन्तःकरणं **तर्प्पयत। मे** मम **वाचं** वाणीं **तर्प्पयत। मे** मम **प्राणं तर्प्पयत। मे** मम **चक्षुः तर्प्पयत। मे** मम **श्रोत्रं तर्प्पयत। मे**=**मम आत्मानं तर्प्पयत। मे** मम **प्रजां** सन्तानाऽऽदिकं **तर्प्पयत। मे** मम **पशून्** गोहस्त्यश्वादीन् **तर्प्पयत। मे** मम **गणान्** परिचारकाऽऽदीन् **तर्प्पयत। यतो मे** मम **गणाः** परिचारकादयो **मा वि+तृषन्**=**तृषिता मा भवन्तु** नहि तृषिता भवन्तु॥ ६।३१॥

भाषार्थ—हे सभाजनो! वा प्रजाजनो! तुम अपने गुणों से (**मे**) मेरे (**मनः**) अन्तःकरण को (**तर्प्पयत**) तृप्त करो। (**मे**) मेरी (**वाचम्**) वाणी को (**तर्प्पयत**) तृप्त करो। (**मे**) मेरे (**प्राणम्**) प्राणों को (**तर्प्पयत**) तृप्त करो। (**मे**) मेरे (**चक्षुः**) नेत्रों को (**तर्प्पयत**) तृप्त करो। (**मे**) मेरे (**श्रोत्रम्**) कानों को (**तर्प्पयत**) तृप्त करो। (**मे**) मेरी (**आत्मानम्**) आत्मा को (**तर्प्पयत**) तृप्त करो। (**मे**) मेरी (**प्रजाम्**) सन्तान आदि प्रजा को (**तर्प्पयत**) तृप्त करो। (**मे**) मेरी (**पशून्**) गौ, हाथी, घोड़े आदि पशुओं को (**तर्प्पयत**) तृप्त करो। (**मे**) मेरे (**गणान्**) सेवक आदिकों को (**तर्प्पयत**) तृप्त करो जिससे (**मे**) मेरे (**गणाः**) सेवक आदि (**मा वितृषन्**) तृषा आदि दुःखों से व्याकुल न हों॥ ६।३१॥

[**हे सभाजनाः प्रजाजना वा! यूयं स्वगुणैर्मे**=**मम मनस्तर्पयत**······]

भावार्थः—सभाधीनमेव राज्यप्रबन्धो भवितुमर्हति। यतः सर्वे प्रजाजना राजसेवका, राजजनाः प्रजासेविनो भूत्वा स्वेषु स्वेषु कर्मसु प्रवृत्त्यान्योऽन्यमभिमोदयेयुरिति॥ ६।३१॥

भावार्थ—राज्य का प्रबन्ध सभा के अधीन ही हो सकता है, क्योंकि सब प्रजा-जन राजा के सेवक होते हैं और राजा लोग प्रजा के सेवक होकर अपने-अपने कार्यों में प्रवृत्त रहकर एक दूसरे को प्रसन्न रखते हैं॥ ६।३१॥

भाष्यसार—**राजा और सभा**—राजा सभासदों को यह उपदेश करता है कि सभासदो वा प्रजाजनो! तुम लोग अपने गुणों से मेरे अन्तःकरण, वाणी, प्राण, चक्षु, श्रोत्र, आत्मा, सन्तान, गाय, हाथी, घोड़ा आदि पशु और सेवक-गणों को तृप्त करो। जिससे मेरे भृत्य आदि को किसी प्रकार का दुःख न हो। इस सभा के अधीन ही सब राज्य प्रबन्ध है। सब प्रजा-जन मेरे सेवक हैं और मैं भी प्रजा का सेवक हूँ॥ ६।३१॥

मधुच्छन्दाः। **सभापतीराजा**=**सभाध्यक्षो राजा**॥ पञ्चपाज्ज्योतिष्मती जगती। निषादः॥

राज्यव्यवहारः सभाधीन एव तर्हि कस्मै प्रयोजनाय प्रजापुरुषैः सभापतिस्स्वीकार्य्य इत्युपदिश्यते॥

जो राज्य-व्यवहार सभा के ही आधीन हो तो किसलिये, प्रजाजनों को सभापति को स्वीकार करना चाहिये, यह उपदेश किया है ॥

इन्द्राय त्वा वसुमते रुद्रवत ऽ इन्द्राय त्वादित्यवत ऽ इन्द्राय त्वाभिमातिघ्ने ।
श्येनाय त्वा सोमभृतेऽग्नये त्वा रायस्पोषदे ॥ ३२ ॥

पदार्थः—(**इन्द्राय**) परमैश्वर्य्याय (**त्वा**) त्वाम् (**वसुमते**) बहवो वसवश्चतुर्विंशतिवर्षब्रह्मचर्यसंपन्ना विद्वांसो विद्यते यत्र तस्मै कर्म्मणे (**रुद्रवते**) प्रशस्ताः कृतचतुश्चत्वारिंशद्वर्षब्रह्मचर्या विद्वांसो वीराः शत्रुरोदयितारो रुद्रा भवन्ति यत्र तस्मै (**इन्द्राय**) परमविद्याप्रकाशेनाविद्याविदारकाय (**त्वा**) त्वाम् (**अभिमातिघ्ने**) येनाभिमानयुक्ताः शत्रवो हन्यन्ते तस्मै (**श्येनाय**) श्येनवत्प्रवर्त्तमानाय (**त्वा**) त्वाम् (**सोमभृते**) यः सोममैश्वर्य्यसमूहं बिभर्त्तीति तस्मै (**अग्नये**) विद्युदाद्याय (**त्वा**) त्वाम् (**रायः**) धनस्य (**पोषदे**) पुष्टिप्रदाय । **सुपां सुलुगिति ङेः स्थाने "शे" इत्यादेशः ॥ अयं मन्त्रः शत० ३ । ६ । ४ । ६–१० व्याख्यातः ॥ ३२ ॥**

प्रमाणार्थ—(**रायस्पोषदे**) यहाँ 'सुपां सुलुक्०' [अ० ७ । १ । ३६] इस सूत्र से 'ङे' के स्थान में 'शे' आदेश है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ६ । ४ । ६–१०) में की गई है ॥ ६ । ३२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **सभापते** ! **वसुमते** बहवो वसवश्चतुर्विंशतिवर्षब्रह्मचर्य्यसम्पन्ना विद्वांसो विद्यन्ते यत्र तस्मै कर्म्मणे **वयं रुद्रवते** प्रशस्ताः कृतचतुश्चत्वारिंशद्वर्षब्रह्मचर्य्या विद्वांसो वीराः शत्रुरोदयितारो रुद्रा भवन्ति यत्र तस्मै **इन्द्राय** परमैश्वर्य्याय **त्वा** त्वाम्, **आदित्यवते इन्द्राय** परमविद्याप्रकाशेनाऽविद्याविदारकाय **त्वा** त्वाम्, **अभिमातिघ्ने** येनाऽभिमानयुक्ताः शत्रवो हन्यन्ते तस्मै **इन्द्राय त्वा** त्वाम्, **सोमभृते** यः सोममैश्वर्य्यसमूहं बिभर्त्तीति तस्मै **श्येनाय** श्येनवत् प्रवर्त्तमानाय **त्वा** त्वाम्, **रायस्पोषदे** धनस्य पुष्टिप्रदाय **अग्नये** विद्युदाद्याय **त्वा=त्वां वृणुमः** ॥ ६ । ३२ ॥

भाषार्थ—हे सभापते राजन् ! (**वसुमते**) चौबीस (२४) वर्ष ब्रह्मचर्य सेवन करने वाले अनेक विद्वान् जिससे उत्पन्न होते हैं उस कर्म के लिये, (**रुद्रवते**) चवालीस (४४) वर्ष ब्रह्मचर्य सेवन करने वाले उत्तम, वीर, शत्रुओं को रुलाने वाले विद्वान् जिससे होते हैं उस कर्म के लिये, (**इन्द्राय**) परम ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (त्वा) तुझे, (**आदित्यवते**) अड़तालीस (४८) वर्ष ब्रह्मचर्य सेवन करने वाले विद्वान् जिससे होते हैं उस कर्म के लिये (**इन्द्राय**) श्रेष्ठ विद्या के प्रकाश से अविद्या का विदारण करने के लिये (त्वा) तुझे, (**अभिमातिघ्ने**) अभिमानी शत्रुओं के हनन के लिये, (**इन्द्राय**) श्रेष्ठों की रक्षा के लिये (त्वा) तुझे, (**सोमभृते**) ऐश्वर्यों को धारण करने वाले के लिये (**श्येनाय**) बाज-पक्षी के समान चेष्टा करने वाले के लिये (त्वा) तुझे (**रायस्पोषदे**) धन को पुष्ट करने वाले (**अग्नये**) विद्युत् आदि की प्राप्ति के लिये (त्वा) तुझे हम (**वृणुमः**) निर्वाचित करते हैं ॥ ६ । ३२ ॥

[**हे सभापते !** वसुमते वयं रुद्राय इन्द्राय त्वा, अदित्यवत इन्द्राय त्वा, अभिमातिघ्न इन्द्राय त्वा, सोमभृते श्येनाय त्वा, रायस्पोषदेऽग्नये त्वा=त्वां वृणुमः]

भावार्थः—य इन्द्रानिलयमार्काग्निवरुण चन्द्रवित्तेशानां गुणैर्युक्तो विद्वत्प्रियो विद्याप्रचारी

भावार्थ—जो इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, चन्द्र, और धनवान् के गुणों से युक्त, विद्वानों

सर्वेभ्यः सुखं दद्यात्, स एव सर्वै राजा मन्तव्य इति ॥ ६ । ३२ ॥

का प्रिय, विद्या का प्रचारक और सबको सुख देवे उसे ही सब राजा मानें ॥ ६ । ३२ ॥

भाष्यसार—**सभापति राजा का प्रयोजन**—राजा का व्यवहार जब सभा के ही अधीन है तब प्रजा-जन राजा को किस प्रयोजन के लिये स्वीकार करें ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि हे सभापते राजन् ! हम लोग तुझे इस लिये वरण करते हैं कि जिससे आप २४ वर्ष ब्रह्मचर्य-पालन करने वाले विद्वान् वसु ब्रह्मचारी, ४४ वर्ष ब्रह्मचर्य-पालन करने वाले विद्वान्, शत्रुओं को रुलाने वाले, वीर रुद्र ब्रह्मचारी, परम ऐश्वर्य से सम्पन्न इन्द्र, ४८ वर्ष ब्रह्मचर्य-पालन करने वाले आदित्य ब्रह्मचारी, परम-विद्या के प्रकाश से अविद्या का विनाश करने वाले, अभिमानी शत्रुओं का विनाशक, विनीत विद्वानों के रक्षक, ऐश्वर्यों को धारण करने वाले, बाज पक्षी के समान चेष्टा करने वाले, धन को बढ़ाने वाले, तथा विद्युत् आदि के गुणों से युक्त हो । इन गुणों के कारण तथा सबको सुख देने वाले होने से हम तुझे राजा मानते हैं ॥ ६ । ३२ ॥

मधुच्छन्दाः । **सोमः**=**ऐश्वर्यदात्ता सभापतिः** ॥ भुरिगार्षी बृहती । मध्यमः ॥

ईदृशः सभापतिः प्रजायै किं प्रापयितुं शक्नोतीत्युपदिश्यते ॥

ऐसा सभापति प्रजा को क्या लाभ पहुँचा सकता है, यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

यत्ते सोम दिवि ज्योतिर्यत्पृथिव्यां यदुरावन्तरिक्षे ।
तेनास्मै यजमानायोरु रायेकृद्ध्यधि दात्रे वोचः ॥ ३३ ॥

पदार्थः—(**यत्**) (**ते**) तव (**सोम**) सकलैश्वर्यप्रेरक ! (**दिवि**) सूर्य्ये (**ज्योतिः**) ज्योतिरिव (**यत्**) (**पृथिव्याम्**) (**यत्**) (**उरौ**) विस्तृते (**अन्तरिक्षे**) अन्तराल आकाशे (**तेन**) (**अस्मै**) (**यजमानाय**) परोपकारार्थयज्ञानुष्ठात्रे (**उरु**) बहु (**राये**) धनाय (**कृधि**) कुरु (**अधि**) अधिकार्थे (**दात्रे**) (**वोचः**) उच्याः । **अत्र लिङर्थे लुङ् । छन्दस्य माङ्योगेऽपि ॥ ६ । ४ । ७५ ॥ इत्वडभावः ॥ अयं मंत्रः शत० ३ । ६ । ४ । १२—१५ व्याख्यातः ॥ ३३ ॥**

प्रमाणार्थ—(**वोचः**) यहाँ लिङ् अर्थ में लुङ् लकार है। 'बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपि' (**अ०** ६ । ४ । ७५) इस सूत्र से 'अट्' का अभाव है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ६ । ४ । १२—१५) में की गई है ॥ ६ । ३३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **सोम**=**सभापते** सकलैश्वर्य्यप्रेरक ! **ते**=**तव यत् दिवि** सूर्य्ये, **यत् पृथिव्यां** भूमौ, **यत् उरौ** विस्तृते **अन्तरिक्षे** अन्तराल आकाशे [**ज्योतिः**]=**ज्योतिरिव राज्यकर्माऽस्ति तेन त्वं दात्रे**=**अस्मै यजमानाय** परोपकारार्थयज्ञाऽनुष्ठात्रे **उरु** बहु **कृधि** कुरु, **राये** धनाय **अधि**+**वोचः** अधिकमुच्याः **च** ॥ ६ । ३३ ॥

भाषार्थ—हे (**सोम**) सकल ऐश्वर्य के प्रेरक सभापते ! (**ते**) तेरा जो (**दिवि**) सूर्य में, जो (**पृथिव्याम्**) भूमि पर और जो (**उरौ**) विस्तृत, (**अन्तरिक्षे**) मध्यवर्ती आकाश में [**ज्योतिः**] ज्योति के समान राज्य-कर्म है, उससे आप (**दात्रे**) परोपकारार्थ यज्ञ करने वाले इस यजमान के लिये (**उरु**) अपने राज्य को उत्कृष्ट (**कृधि**) बना तथा (**राये**) धनादि पदार्थों को (**अधिवोचः**) अत्यन्त बढ़ा ॥ ६ । ३३ ॥

[हे सोम=सभापते ! ते=तव यत्······[ज्योतिः]=ज्योतिरिव राज्यकर्माऽस्ति तेन त्वं दात्रे=अस्मै यजमानायो रु कृधि, रायेऽधिवोचश्च]

भावार्थः- अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ सभापतिः स्वराज्योत्कर्षेण विद्यादिशुभगुणकर्मसु सर्वाञ्जनान् सुशिक्ष्य निरालस्यान् सम्पादयेत्, यतस्ते पुरुषार्थमनुवर्तिनो भूत्वा धनादिपदार्थान् सततं वर्द्धयेयुरिति ॥ ६ । ३३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ सभापति राजा अपने राज्य के उत्कर्ष से सब लोगों को विद्यादि शुभ गुण-कर्मों में सुशिक्षित करके, पुरुषार्थी बनावे, जिससे वे पुरुषार्थ करके धन आदि पदार्थों को सदा बढ़ावें ॥ ६ । ३३ ॥

भा० पदार्थः—राये=धनादिपदार्थानां वृद्धये ॥

भाष्यसार—१. **सभापति राजा और प्रजा**—पूर्व मन्त्र में प्रतिपादित गुणों से भूषित राज प्रजा को क्या प्राप्त करा सकता है ? इसका उत्तर यह है कि सकल ऐश्वर्य को देने वाला सभापति राजा सूर्य, पृथिवी और विशाल आकाश में अपने राज्य के उत्कर्ष से सब लोगों को विद्यादि शुभ गुण-कर्म स्वभावों में प्रशिक्षित करके आलस्य आदि दोषों से दूर रखता है। परोपकार के लिये यज्ञ करने वाले पुरुषार्थी लोगों के धन आदि पदार्थों को सदा वृद्धि करता है ॥

२. **अलङ्कार**—मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि शब्द लुप्त है इसलिये वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि राज्यकर्म सूर्य, पृथिवी और आकाश में विद्यमान ज्योति के समान है ॥ ६ । ३३ ॥

मधुच्छन्दाः । **यज्ञः=सत्सङ्गतिः** ॥ स्वराडार्षी बृहती । मध्यमः ॥

अथोक्तानां सभापत्यादिविदुषां पत्न्यः कीदृशकर्मानुष्ठात्र्यो भवन्त्वित्युपदिश्यते ॥

अब उक्त सभाध्याक्षादि विद्वानों की स्त्रियाँ कैसे कर्म्म करने वाली हों, यह उपदेश किया है ॥

श्वात्रा स्थ वृत्रतुरो राधोगूर्त्ताऽअमृतस्य पत्नीः ।
ता देवीर्देवत्रेमं यज्ञं नयतोपहूताः सोमस्य पिबत ॥ ३४ ॥

पदार्थः—(श्वात्राः) श्वात्रं=शीघ्रं कर्मविज्ञानं वर्त्तते यासां ताः । **अर्शादित्वादच् । श्वात्रमिति क्षिप्रनामसु पठितम्** ॥ निघं० ५ । ३ ॥ (स्थ) भवत (वृत्रतुरः) वृत्रं=मेघं तूर्वति यास्ता विद्युत् इव (**राधोगूर्त्ताः**) धनवर्द्धिन्य एव (**अमृतस्य**) अतिस्वादिष्टस्य (**पत्नीः**) पत्न्यः (ताः) (**देवीः**) वेदीप्यमानाः (**देवत्रा**) देवेषु पतिषु (**इमम्**) गृहसंबन्धिनम् (**यज्ञम्**) संगन्तव्यम् (**नयत**) (**उपहूताः**) सामीप्यमाहूताः (**सोमस्य**) सोमाद्योषधिनिष्पादितस्य सारम् **अत्र कर्मणि षष्ठी** (**पिबत**) ॥ **अयम्मंत्रः शत० ३ । ६ । ४ । १६-१७ व्याख्यातः** ॥ ३४ ॥

प्रमाणार्थ—(श्वात्राः) यहां 'अर्श आदिभ्योऽच्' [अ० ५ । २ । १२७] इस सूत्र से 'अच्' प्रत्यय है। 'श्वात्र' शब्द निघं० (५ । ३) में शीघ्र नामों में पढ़ा है। (सोमस्य) यहां कर्म कारक में षष्ठी विभक्ति है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ६ । ४ । १६–१७) में की गई है ॥ ६ । ३४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे देवीः=देव्यो वेदीप्यमानाः! [पत्नीः]=पत्न्यः स्त्रियः यूयं वृत्रतुर वृत्रं=मेघं तूर्वति यास्ता विद्युत् इव राधोगूर्त्ता धनवर्द्धिन्य **एव सत्यो यज्ञसहकारिण्यः** श्वात्राः श्वात्रं=शीघ्रं कर्मविज्ञानं वर्तते यासां ताः स्थ

भाषार्थ—हे (देवीः) विद्या आदि गुणों से देदीप्यमान [पत्नीः] स्त्रियो ! तुम (**वृत्रतुरः**) वृत्र अर्थात् मेघ का हनन करने वाली विद्युतों के समान (राधोगूर्त्ताः) धन को बढ़ाने वाली होकर यज्ञ कर्म में सहयोगिनी तथा (श्वात्राः) शीघ्र कर्म-विज्ञान

भवत, **ताः देवत्रा** देवेषु=पतिषु **इमं** गृहसम्बन्धिनं **यज्ञं** संगन्तव्यं **नयत** । **उपहूताः** सामीप्यमाहूता **इव** **अमृतस्य**—सोमस्यातिस्वादिष्टं **सोमाद्योषधिरसं** सोमाद्योषधिनिष्पादितस्य सारं **पिबत** ॥ ६ । ३४ ॥

को प्राप्त करने वाली (**स्थ**) बनो । और (**देवत्रा**) अपने पत्नियों में (**इमम्**) इस गृहसम्बन्धी (**यज्ञम्**) व्यवहार को (**नयत**) प्राप्त करो । और (**उपहूताः**) पास बुलाई हुई (**अमृतस्य सोमस्य**) अत्यन्त स्वादिष्ट सौम आदि औषधि से निष्पन्न रस का (**पिबत्**) पान करो ॥ ६ । ३४ ॥

[हे देवीः=देव्यः [पत्नीः]=पत्न्यः स्त्रियः ! यूयं···यज्ञसहकारिण्यः इत्रात्राः स्थ, ता देवत्रा इमं यज्ञं नयत]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ यथा विदुष्यो विद्वत्स्त्रियः स्वधर्मव्यवहारेण स्वपतीन् प्रसादयन्ति तथैव पुरुषाः स्वाः स्त्रीस्सततं प्रसादयेयुः,

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ जैसे विद्वानों की विदुषी स्त्रियाँ अपने धर्मयुक्त व्यवहार से अपने पतियों को प्रसन्न करती हैं वैसे पुरुष भी अपनी स्त्रियों को सदा प्रसन्न रखें ।

[उपहूता इवामृतस्य=सोमस्यातिस्वादिष्ठं सोमाद्योषधिरसं पिबत]

इत्थं परस्परानुमोदेन गृहाश्रमधर्ममलङ्कुर्वन्तु ॥ ६ । ३४ ॥

इस प्रकार परस्पर प्रसन्नता से गृहाश्रम धर्म को अलंकृत करें ॥ ६ । ३४ ॥

भाष्यसार—**१. सभापति आदि विद्वानों की पत्नियों के कर्म**—पूर्व मन्त्र में प्रतिपादित सभापति आदि विद्वानों की पत्नियाँ कैसे कर्म वाली हों ? इसका उत्तर यह है कि दिव्य गुणों से प्रकाशित विदुषी स्त्रियाँ जैसे विद्युत् मेघ का हनन करने वाली है वैसे विद्या के प्रकाश से अविद्या-अन्धकार का नाश करने वाली, धन को बढ़ाने वाली, यज्ञादि शुभ कर्मों में सहयोग करने वाली, कर्त्तव्य कर्मों को शीघ्र जानने वाली होती हैं । अपने विद्वान् पतियों के साथ गृह सम्बन्धी शुभ कार्यों को प्राप्त होती हैं । इस प्रकार परस्पर मेल से अति स्वादिष्ट सोम आदि रसों का पान करें ।

जैसे विद्वानों की विदुषी स्त्रियाँ अपने उक्त धर्मयुक्त व्यवहार से अपने पतियों को प्रसन्न करती हैं वैसे विद्वान् भी स्त्रियों को प्रसन्न करें । इस प्रकार स्त्री-पुरुष परस्पर प्रसन्नता से गृहाश्रम को स्वर्ग बनावें ॥

२. अलङ्कार—मन्त्र में उपमा-वाचक शब्द लुप्त है । इसलिये वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है । उपमा यह है कि विद्वान् पुरुषों की विदुषी स्त्रियाँ जैसे अपने पतियों को प्रसन्न करती हैं वैसे पुरुष भी अपनी स्त्रियों को प्रसन्न रखें ॥ ६ । ३४ ॥

मधुच्छन्दाः । **द्यावापृथिव्यौ**=**सूर्यलोकः पृथिवी च** । भुरिगार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ।

पुनः स्त्रीपुरुषौ परस्परं कथं वर्त्तेयातामित्युपदिश्यते ॥

फिर स्त्री पुरुष परस्पर कैसा वर्ताव करें, यह उपदेश किया है ॥

मा भेर्मा संविक्था ऽ ऊर्जं धत्स्व धिषणे वीड्वी सती वीडयेथामूर्जं दधाथाम् ।
पाप्मा हतो न सोमः ॥ ३५ ॥

पदार्थः—(**मा**) (**भेः**) मा बिभीयाः । लिङर्थे लुङ् (**मा**) (**सम्**) (**विक्थाः**) भयं कम्पनं च कुर्याः

(**ऊर्ज्जम्**) स्वशरीरात्मबलं पराक्रमं वा (**धत्स्व**) (**धिषणे**) द्यावापृथिव्याविव (**वीड्वी**) बलवती । **वीड्वीति बलनामसु पठितम् ॥ निघं० २ । ९ ॥** (**सती**) सद्गुणयुक्त (**वीडयेथाम्**) दृढबलौ भवेताम् (**ऊर्ज्जम्**) सन्तानादिभ्योऽपि बलं पराक्रमं च (**दधाथाम्**) (**पाप्मा**) अपराधः (**हतः**) नष्टः (**न**) इव (**सोमः**) ॥ **अयं मन्त्रः श० २ । ६ । ४ । १८ व्याख्यातः ॥ ३५ ॥**

प्रमाणार्थ—(**भेः**) यहाँ लिङ् अर्थ में लुङ् लकार है । (**वीड्वी**) यह शब्द निघं० (२ । ९) में बल नामों में पढ़ा है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (२ । ६ । ४ । १८) में की गई है ॥ ६ । ३५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे स्त्रि ! त्वं **वीड्वी** बलवती **सती** सद्गुणयुक्ता **पत्युः सकाशान्मा भेः** मा बिभीयाः, **मा सम्+विक्थाः** भयं कम्पनं च कुर्य्याः, **ऊर्ज्जं** स्वशरीराऽऽत्मबलं पराक्रमं वा **धत्स्व** ।

भाषार्थ—हे स्त्रि ! तू (**वीड्वी**) बलवती, (**सती**) श्रेष्ठ गुणों से युक्त होकर पति से (**मा भेः**) मत डर तथा (**मा संविक्थाः**) भयभीत एवं कम्पित तथा विचलित मत हो और (**ऊर्ज्जम्**) अपने शरीर तथा आत्मा के बल वा पराक्रम को (**धत्स्व**) धारण कर ।

हे पुरुष ! त्वमप्येवं भवेः, युवां धिषणे द्यावापृथिव्यौ **इव ऊर्ज्जं** सन्तानादिभ्योऽपि बलं पराक्रमं च **दधाथाम्, वीडयेथां** दृढबलौ भवेताम् । **एवमनुवर्तिनोर्युवयोः पाप्मा** अपराधो **हतः** नष्टो **भवतु । सोमो न**=**चन्द्र इवाऽऽह्लादशान्त्यादिगुणवृन्दः प्रकाशितो भवतु** ॥ ६ । ३५ ॥

हे पुरुष ! तू भी ऐसा ही बन। तुम **दोनों** (**धिषणे**) द्युलोक और पृथिवी के समान (**ऊर्ज्जम्**) सन्तान आदि के लिये बल और पराक्रम को (**दधाथाम्**) धारण करो तथा (**वीड्येथाम्**) दृढ़ बल वाले बनो । इस प्रकार परस्पर अनुकूल रहने वाले तुम दोनों का (**पाप्मा**) क्लेश (**हतः**) नष्ट हो (**सोमः**) चन्द्र के (**न**) समान सुख और शान्ति आदि गुण-गण प्रकाशित हो ॥ ६ । ३५ ॥

[हे स्त्रि ! त्वं···**पत्युः सकाशान्मा भेः, मा संविक्थाः**, ऊर्जं धत्स्व । हे पुरुष ! त्वमप्येवं भवेः]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ इत्थं स्त्रीपुरुषौ व्यवहारमनुवर्त्तेयातां यतः परस्परं भयोद्वेगौ नश्येतामात्मनो दृढोत्साहः प्रीतिर्गृहाश्रमव्यवहारसिद्धिरैश्वर्यं च वर्द्धेत ।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ इस प्रकार स्त्री और पुरुष व्यवहार करें कि जिससे परस्पर भय और उद्वेग नष्ट हों तथा आत्मिक दृढ़-उत्साह, प्रीति, गृहाश्रम के व्यवहारों की सिद्धि और ऐश्वर्य की वृद्धि हो ।

[**एवमनुवर्तिनोर्युवयोः पाप्मा हतो भवतु, सोमो न**=**चन्द्र इवाऽऽह्लादशान्त्यादिगुणवृन्दः प्रकाशितो भवतु**]

दोषदुःखानि निवर्त्य चन्द्र इव परस्परमाह्लादकारिणी भवेताम् ॥ ६ । ३५ ॥

दोष और दुःखों को हटाकर चन्द्र के समान परस्पर आनन्दकारी हों ॥ ६ । ३५ ॥

भाष्यसार—१. **स्त्री पुरुष का परस्पर वर्ताव**—बलवती और सद्गुणों से युक्त स्त्री पति से कभी भयभीत और उद्विग्न न हो किन्तु शारीरिक और आत्मिक बल वा पराक्रम को धारण करें । पुरुष भी इसी प्रकार व्यवहार करें । स्त्री और पुरुष परस्पर ऐसा व्यवहार करें जिससे भय और उद्वेग नष्ट हों । आत्मा में दृढ़ उत्साह और प्रीति उत्पन्न हो, गृहाश्रम के व्यवहारों की सिद्धि और ऐश्वर्य की वृद्धि हो । स्त्री और पुरुष द्यावा पृथिवी के समान अपनी सन्तानों के लिये बल और पराक्रम को धारण

करें स्वयं सदा दृढ़ बल वाले हों। इस प्रकार परस्पर अनुयायी होने से दोष और दुःखों की निवृत्ति होती है तथा चन्द्र के समान आनन्द और शान्ति आदि गुण प्रकाशित होते हैं ॥

२. **अलङ्कार**—मन्त्र में उपमावाचक शब्द लुप्त है इसलिये वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि जैसे स्त्री पति से भय और उद्वेग न माने तथा अपने शरीर और आत्मा के बल को बढ़ावे वैसे पुरुष भी स्त्री से भय और उद्वेग न माने तथा अपने शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाया करें।

मन्त्र में आगे 'न' उपमावाचक शब्द विद्यमान होने से उपमा-अलङ्कार भी है। उपमा यह है कि चन्द्र के समान स्त्री और पुरुष के आनन्द और शान्ति आदि गुण प्रकाशित हों ॥ ६ । ३५ ॥

मधुच्छन्दाः ॥ **सोमः=पित्रादीनां सेवा** ॥ उष्णिक् ॥ ऋषभः ॥

अथैतयोरपत्यानि किं किं कुर्युस्तौ कथं पालयेयुरित्याह ॥

अब उनके पुत्र क्या २ करें और वे पुत्रों को कैसे पालें, यह उपदेश किया है ॥

प्रागपागुदगधराक्सर्वतस्त्वा दिश ऽआधावन्तु । अम्ब निष्पर समरीर्विदाम् ॥ ३६ ॥

पदार्थः—(**प्राक्**) पूर्वस्याः (**अपाक्**) पश्चिमायाः (**उदक्**) उत्तरस्याः (**अधराक्**) दक्षिणस्याः (**सर्वतः**) अन्याभ्यः (**त्वा**) त्वाम् (**दिशः**) (**आ**) समन्तात् (**धावन्तु**) (**अम्ब**) अमति=प्रेमभावेन प्राप्नोति तत्संबुद्धौ। अत्रोणादिर्वन् प्रत्ययः (**निः**) नितराम् (**पर**) पालय (**सम्**) (**अरीः**) सुखप्रापिकाः प्रजाः (**विदाम्**) विदताम्। विद ज्ञान इत्यस्माल्लोटि प्रथमबहुवचने। लोपस्त आत्मनेपदेषु ॥ ७ । १ । ४१ ॥ अनेन तकारलोपे सवर्णदीर्घे विदामिति रूपम् ॥ अयं मन्त्रः शत० ३ । ६ । ४ । २०—२३ व्याख्यातः ॥ ३६ ॥

प्रमाणार्थ—(**अम्ब**) यहाँ उणादि का 'वन्' प्रत्यय है। (**विदाम्**) विदताम्। यह रूप ज्ञान-अर्थ वाली 'विद' के लोट् लकार के 'प्रथम-पुरुष के बहुवचन का है। 'लोपस्त आत्मनेपदेषु' (अ० ७। १। ४१) इस सूत्र से तकार लोप करके सवर्ण-दीर्घ करने पर 'विदाम्' रूप सिद्ध होता है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३। ६। ४। २०-२३) में की गई है ॥ ६। ३६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अम्ब** ! अमति =प्रेमभावेन प्राप्नोति तत्सम्बुद्धौ ! **त्वं या अरीः**= **सुखप्रापिकाः प्रजास्ते प्राक्** पूर्वस्याः, **अपाक्** पश्चिमायाः, **उदक्** उत्तरस्याः, **अधराक्** दक्षिणस्याः, **सर्वतः** अन्याभ्यो **दिशः**, [**त्वा**]=त्वाम् **आ+धावन्तु** समन्ताद् धावन्तु। **तास्त्वं निः+पर**= **नितरां रक्ष** नितरां पालय। **ता अपि त्वा**=त्वां **सं+विदाम्**=**जानन्तु** विदताम् ॥ ६। ३६ ॥

भाषार्थ—हे (**अम्ब**) प्रेमभाव से प्राप्त होने वाली माता ! तू जो (**अरीः**) तेरी सुख प्राप्त कराने वाली सन्तान आदि प्रजा है वह (**प्राक्**) पूर्व (**अपाक्**) पश्चिम (**उदक्**) उत्तर (**अधराक्**) दक्षिण तथा (**सर्वतः**) अन्य सब दिशाओं से [**त्वा**] तुझे (**आ+धावन्तु**) सब ओर से प्राप्त हो। उसकी तू (**निः+पर**) सर्वथा पालना कर। वह प्रजा भी (**त्वा**) तुझे (**सम्+विदाम्**) अच्छी प्रकार समझे अर्थात् तेरी सेवा करे ॥ ६। ३६ ॥

[हे अम्ब ! त्वं या अरीः=सुखप्रापिकाः प्रजाः···तास्त्वं निः+पर=नितरां रक्ष]

भावार्थः—मातापित्रोर्योग्यता ऽस्ति— स्वापत्यानि विद्यादिसद्गुणेषु नियोज्य निरन्तरं रक्षणीयानि।

भावार्थ—माता-पिता को योग्य है कि वे अपनी सन्तानों को विद्यादि श्रेष्ठ गुणों में लगा कर उनकी सदा रक्षा करें।

[ता अपि त्वा=त्वां सं+विदाम्=जानन्तु]

अपत्यानां योग्यताऽस्तिसर्वतः पित्रोः सेवनं कुर्युरिति ॥ ६ । ३६ ॥

सन्तानों को योग्य है कि वे सब ओर से माता-पिता की सेवा करें ॥ ६ । ३६ ॥

भा० पदार्थः—अरीः=स्वापत्यानि । निः+परः=निरन्तरं रक्ष ॥

भाष्यसार— सन्तान क्या करे और माता-पिता उसे कैसे पालें—सन्तानों को अत्यन्त प्रेम-भाव से प्राप्त होने वाली माता के पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण अर्थात् सब ओर से, सुख-देने वाली प्रजा विराजमान रहे। और माता-पिता अपनी सन्तानों को विद्या आदि शुभ गुणों में लगाकर उनकी निरन्तर पालन करें और सन्तान उनकी उत्तम-रीति से सेवा करें ॥ ३ । ३६ ॥

गौतमः । **इन्द्रः=परमैश्वर्यवान् सभापतिः** ॥ भुरिगार्ष्यनुष्टुप् । गांधारः ॥

अथ प्रजाजनाः कृतं सभापतिं कथं प्रशंसेयुरित्युपदिश्यते ॥

अब प्रजाजन बनाये हुये सभापति की कैसे प्रशंसा करें, यह उपदेश किया है ॥

त्वमङ्ग प्रशंꣳसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् ।
न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ॥ ३७ ॥

पदार्थः—(त्वम्) (अङ्ग) संबोधने (प्र) (शंसिषः) प्रशंस लेडमेध्यमैकवचनप्रयोगः (**देवः**) शत्रून् विजिगीषुः (**शविष्ठ**) बहु शवो=बलं विद्यते यस्य स शवस्वान् सोऽतिशयितस्तत्सम्बुद्धौ । **अत्र शव शब्दाद्भूम्न्यर्थे मतुप् तत इष्ठन् । विन्मतोर्लुक् ॥ अ० ५ । ३ । ६५ ॥ इति मतुपो लुक् । टेः ॥ अ० ६ । ४ । १५५ ॥ अनेन टिलोपः** (मर्त्यम्) प्रजास्थं मनुष्यम् (न) निषेधे (त्वत्) (अन्यः) (मघवन्) ईश्वर इव समृद्ध (**अस्ति**) (**मर्डिता**) सुखयिता (इन्द्र) परमैश्वर्य्यान्वित (ब्रवीमि) (ते) तुभ्यम् (वचः) प्राक्प्रतिपादितं राजधर्मानुरूपं वचः ॥ **अयं मन्त्रः शत० ३ । ६ । ४ । २४ व्याख्यातः ॥ ३७ ॥**

प्रमाणार्थ—(**शंसिषः**) यह लेट् लकार के मध्यमपुरुष के एकवचन का प्रयोग है। (**शविष्ठ**) यहाँ 'शव' शब्द से आधिक्य अर्थ में 'मतुप्' प्रत्यय करने के बाद इष्ठन्' प्रत्यय है। 'विन्मतोर्लुक्' (अ० ५ । ३ । ६५) इस सूत्र से 'मतुप्' प्रत्यय का 'लुक्' है। 'टेः' (अ० ६ । ४ । १५५) इस सूत्र से 'टि' भाग का लोप है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (३ । ६ । ४ । २४) में की गई है ॥ ६ । ३७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे अङ्ग ! शविष्ठ ! बहु शवो= बलं विद्यते यस्य स शवस्वान् सोऽतिशयितस्तत्सम्बुद्धौ ! **मघवन्** ! ईश्वर इव समृद्ध ! **इन्द्र=सभापते** ! परमैश्वर्य्यान्वित ! **त्वं मर्त्यं** प्रजास्थं मनुष्यं **प्र+शंसिषः** प्रशंस । **न त्वदन्यो मर्डिता** सुखयिता देवः शत्रून् विजिगीषुः **अस्ति** । **अतोऽहं ते=तुभ्यं वचः** प्राक्प्रतिपादितं राजधर्माऽनुरूपं वचो **ब्रवीमि** ॥ ६ । ३७ ॥

भाषार्थ—हे (**अङ्ग**) प्रिय (**शविष्ठ**) अत्यन्त बलशाली (**मघवन्**) ईश्वर के समान समृद्ध (**इन्द्र**) परम ऐश्वर्य-युक्त सभापते ! आप (**मर्त्यम्**) प्रजा के मनुष्यों की (**प्र+शंसिषः**) प्रशंसा करो। (त्वदन्यः) आप से भिन्न दूसरा कोई (**मर्डिता**) सुख देने वाला (**देवः**) और शत्रुओं को जीतने वाला (न) नहीं (**अस्ति**) है, इसलिये मैं (**ते**) आप को (**वचः**) पूर्वोक्त राजधर्म के अनुरूप वचन (**ब्रवीमि**) कहता हूँ ॥ ६ । ३७ ॥

[हे···इन्द्र=सभापते ! त्वं मर्त्यं प्र+शंसिषः । न त्वदन्यो मर्डिता देवोऽस्ति]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः ॥ यथा पक्ष-

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार

पातविरहः सर्वसुहृदीश्वरस्तदनुकूलः सभापती राज्य-धर्मानुवर्ती राजा प्रशंसनीयं प्रशंसन्, निन्द्यं निन्दनं, दण्डार्हं दण्डयन्, रक्षितव्यं रक्षन् सर्वेषामभीष्टं सम्पादयेत् ॥ ६ । ३७ ॥

है ॥ जैसे पक्षपात रहित, सबका मित्र ईश्वर है उसके अनुकूल सभापति राज्य-धर्म का पालक राजा भी प्रशंसनीय की प्रशंसा, निन्दनीय की निन्दा, दण्डनीय को दण्ड और रक्षा करने योग्य की रक्षा करके सब का अभीष्ट सिद्ध करे ॥ ६ । ३७ ॥

भाष्यसार—**१. प्रजा-जन सभापति राजा की कैसे प्रशंसा करें**—प्रजा के लोग राजा की इस प्रकार प्रशंसा करें कि हे राजन् ! आप अत्यन्त प्रिय लगने वाले, अत्यन्त बलशाली, ईश्वर के समान समृद्ध, और परम ऐश्वर्य से युक्त इन्द्र हो । जैसे ईश्वर पक्षपात रहित होने से सबका मित्र है वैसे आप भी राज्य-धर्म का पालन करके प्रजा के प्रशंसनीय जनों की प्रशंसा और निन्दनियों की निन्दा करते हो और जो दण्ड देने के योग्य हैं उन्हें दण्ड देते हो और जो रक्षा के योग्य हैं उनकी रक्षा करते हो । इसलिये आप से बढ़ कर सुख देने वाला तथा शत्रुओं को जीतने वाला कोई नहीं है । इसलिये हम इन राजधर्म के अनुरूप प्रशंसा-वचनों को आपके लिये उच्चारण करते हैं । आप सबके अभीष्ट को सिद्ध कीजिये ॥ ६ । ३७ ॥

[पूर्वापराध्यायार्थसंगतिमाह—]

अत्राध्याये राज्याभिषेकपुरःसरं शिक्षा, राज्यकृत्यं, प्रजायाराजाश्रयः, सभाध्यक्षादिकृत्यं, विष्णोः परमपदादिवर्णनं, सभाध्यक्षेण तदुपासनं, परस्परं राजसभाकृत्यं, गुरुणा शिष्यस्त्रीकारस्तच्छिक्षाकरणं, यज्ञानुष्ठानं, हुतद्रव्यफलं, विद्वल्लक्षणं, मनुष्यकृत्यं, मनुष्याणां परस्परं वर्तमानं, दुष्टदोषनिवृत्तिफलमीश्वरात् किं किं प्रार्थनीयं, रणे योद्धृवर्णनं, युद्धकृत्यं, युद्धेऽन्योऽन्यवर्त्तमानप्रकारो, योद्धृणामनुमोदनं, राज्यप्रबन्धकरणं, तत्र साध्यसाधनं, राज्यकर्मकरणं प्रतीश्वरोपदेशो, राज्यकर्मानुष्ठानं, राजप्रजाकृत्यं, प्रजाराजसभयोः परस्परानुवर्तनं, प्रजया सभापत्युत्कर्षकरणं, प्रजाजनं प्रति सभापतिप्रेरणं, प्रजयास्वीकर्त्तव्यं, सभापतेर्लक्षणं, प्रजाराजसभयोः परस्परं प्रतिज्ञाकरणं, सभापतिस्वीकरणप्रयोजनं, प्रजासुखाय सभापतेः कर्तव्यकर्मानुष्ठानं, सभापत्यादीनां पत्नीभिः किं किं कर्म कर्तव्यं, स्त्रीपुंसयोः परस्परमनुवर्त्तमानं, पितरौ प्रति सन्तानकृत्यं, सभापतिं प्रति प्रजाजनोपदेशवर्णनं चास्तीत्यतः पञ्चमाध्यायोक्तार्थैः सहास्य षष्ठाध्यायस्यार्थानां सङ्गतिरस्तीति वेद्यम् ॥ ६ ॥

इस अध्याय में राज्याभिषेकपूर्वक शिक्षा (१), राज्य के कार्य (२), प्रजा का राजा के आश्रय होना (३), सभाध्यक्ष आदि के कर्त्तव्य (४), विष्णु के परम पद आदि का वर्णन (५), सभाध्यक्ष द्वारा विष्णु की उपासना (६), राजा और सभा के परस्पर कर्त्तव्य (७), गुरु के द्वारा शिष्य को स्वीकार करना और उसे शिक्षा देना (८, ९), यज्ञ का अनुष्ठान (१०), होम किये द्रव्य का फल (११), विद्वान् का लक्षण (१२), मनुष्य का कर्त्तव्य (१३), मनुष्यों का परस्पर व्यवहार (१४-१६), दुष्ट दोषों की निवृत्ति का फल एवं ईश्वर से क्या-क्या प्रार्थना करें (१७), रण में योद्धा का वर्णन (१८), रण में परस्पर व्यवहार का प्रकार (२०), योद्धाओं का अनुमोदन (२१), राज्य का प्रबन्ध करना (२२), साध्य कार्य के साधन (२३), राज्य-कार्य करने के लिये ईश्वर का उपदेश (२४), राज्य-कार्यों का अनुष्ठान (२५), राजा और प्रजा का कर्तव्य (२६), प्रजा और राजसभा का परस्पर व्यवहार (३१), प्रजा के द्वारा सभापति का उत्कर्ष (३२), प्रजा के प्रति सभापति की प्रेरणा (३३), प्रजा के द्वारा सभापति को स्वीकार करना (३२), सभापति का लक्षण (३२), प्रजा और राजसभा की परस्पर

प्रतिज्ञा (३१), सभापति को स्वीकार करने का प्रयोजन (३२), प्रजा के सुख के लिये सभापति का कर्त्तव्य कर्मों का अनुष्ठान (३३), सभापति आदि की पत्नियाँ क्या-क्या कर्म करें (३४), स्त्री-पुरुषों का परस्पर व्यवहार (३५), माता-पिता के प्रति सन्तान का कर्त्तव्य (३६), सभापति के प्रति प्रजा-जनों के उपदेश का वर्णन (३६) है इसलिये पाँचवें अध्याय में कहे अर्थों के साथ इस छठे अध्याय के अर्थों की संगति है ॥ ६ ॥

इति श्रीपण्डितसुदर्शनदेवाचार्यकृते दयानन्द-यजुर्वेदभाष्य-भास्करे षष्ठोऽध्यायः ॥

॥ ओ३म् ॥

❋ अथ सप्तमाध्यायस्यारम्भः ❋

अब सप्तम अध्याय का प्रारम्भ किया जाता है ॥

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्नऽआ सुव ॥ १ ॥

य० ३० । ३ ॥

गोतमः । **प्राणः**=बाह्याभ्यन्तरव्यवहारः। निचृदार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

तस्य प्रथमन्त्रे सृष्टिनिमित्तो बाह्याभ्यन्तरव्यवहार उपदिश्यते ॥

इस सप्तम अध्याय के प्रथम मन्त्र में सृष्टि के निमित्त बाहर और भीतर के व्यवहार का उपदेश है ॥

वाचस्पतये पवस्व वृष्णोऽअꣳशुभ्यां गभस्तिपूतः । देवो देवेभ्यः पवस्व येषां भागोऽसि ॥ १ ॥

पदार्थः—(**वाचः**) वाण्याः (**पतये**) पालकेश्वराय (**पवस्व**) पवित्रो भव (**वृष्णः**) वीर्य्यवतः (**अंशुभ्याम्**) बाहुभ्यामिव (**गभस्तिपूतः**) गभस्तिभिः=किरणैः पूत इव । **गभस्तय इति रश्मिनामसु पठितम् ॥ निघं १ । ५ ॥** (**देवः**) विद्वान् (**देवेभ्यः**) विद्वद्भ्यः (**पवस्व**) शुद्धो भव (**येषाम्**) विदुषाम् (**भागः**) भजनीयः (**असि**) ॥ **अयम्मंत्रः शत० ४ । १ । १ । ८—११ व्याख्यातः ॥ १ ॥**

प्रमाणार्थ—(**गभस्तिपूतः**) 'गभस्ति' शब्द निघं० (१ । ५) में किरण-नामों में पढ़ा है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । १ । १ । ८–११) में की गई है ॥ ७ । १ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्य ! त्वं **वाचस्पतये** वाण्याः पालकेश्वराय **पवस्व** पवित्रो भव, **वृष्णो** वीर्यवतः **अंशुभ्यां** बाहुभ्याम् **इव** **बाह्याभ्यन्तरव्यवहाराय गभस्तिपूतः** गभस्तिभिः =किरणैः पूतः **इव देवः** विद्वान् **भूत्वा येषां**= **विदुषां भागः** भजनीयः **असि, तेभ्यो देवेभ्यः** विद्वद्भ्यः **पवस्व** शुद्धो भव ॥ ७ । १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्य ! तू (**वाचस्पतये**) वेदवाणी के पति ईश्वर को जानने के लिये (**पवस्व**) पवित्र बन, (**वृष्णः**) बलवान् पुरुष के (**अंशुभ्याम्**) बाहुओं के समान बाहर और अन्दर के व्यवहार को सिद्ध करने के लिये (**गभस्तिपूतः**) सूर्य-किरणों से पवित्र पदार्थ के समान वेदवाणी से पवित्र (**देवः**) विद्वान् होकर (**येषाम्**) जिन विद्वानों का (**भागः**) सेवक (**असि**) है, उन (**देवेभ्यः**) विद्वानों के सङ्ग से (**पवस्व**) पवित्र बन ॥ ७ । १ ॥

[हे मनुष्य ! त्वं वाचस्पतये पवस्व,···देवो भूत्वा येषां विदुषां भागोऽसि, तेभ्यो देवेभ्यः पवस्व]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ।। सर्वेषां जीवानां योग्यताऽस्तिवेदपति सततं पूतं परमेश्वरं विज्ञाय विदुषां सङ्गेन विद्यादिगुणेषु सुस्नाताः सत्यवागनुष्ठातारः स्युरिति ।। ७ । १ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है ।। सब मनुष्यों को योग्य है कि वेदवाणी के पति, नित्य शुद्ध, परमेश्वर को जान कर, विद्वानों के सङ्ग से विद्यादि गुणों में स्नान करके सत्य वाणी के पालक बनें ।। ७ । १ ।।

भाष्यसार—१. **सृष्टिनिमित्त बाहर और अन्दर का व्यवहार**—मनुष्य इस सृष्टि में वेदवाणी के पति, नित्य शुद्ध, परमेश्वर को जानने के लिये बाहर और अन्दर से पवित्र बने और जैसे बलवान् पुरुष के बाहु बाह्य तथा आन्तरिक अर्थात् सामाजिक और व्यक्तिगत व्यवहार के साधक होते हैं ऐसे ही उक्त दोनों व्यवहारों को सिद्ध करने के लिये, सूर्य की किरणों से पवित्र पदार्थ के समान विद्यादि गुणों में स्नान करने से पवित्र होकर विद्वान् पुरुष वेदोक्त सत्य वाणी का आचरण करे। विद्वानों का सेवक होकर व्यक्ति विद्वानों के सङ्ग से पवित्रता को प्राप्त करे ।।

२. **अलङ्कार**—मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि शब्द लुप्त होने से वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि प्रत्येक मनुष्य बलवान् पुरुष के बाहुओं के समान सामाजिक और व्यक्तिगत व्यवहारों को सिद्ध करने के लिये विद्वानों के संग से वेदोक्त सत्यवाणी का अनुष्ठान करे ।। ७ । १ ।।

गोतमः । **सोमः**=**ऐश्वर्ययुक्तो विद्वान्** । निचृदार्षी पंक्तिः । पञ्चमः ।।

मनुष्याः परस्परं कथं व्यवहरेयुरित्याह ।।

मनुष्य परस्पर कैसे व्यवहार करें, यह उपदेश किया है ।।

मधुमतीर्न ऽ इषस्कृधि यत्ते सोमादाभ्यं नाम जागृवि तस्मै ते सोम सोमाय । स्वाहा स्वाहोर्वन्तरिक्षमन्वेमि ।। २ ।।

पदार्थः—(**मधुमतीः**) मधुरगुणवतीः (**नः**) अस्मभ्यम् (**इषः**) अन्नानि (**कृधि**) कुरु (**यत्**) यस्मात् (**ते**) तव (**सोम**) ऐश्वर्य्ययुक्त विद्वन् ! (**अदाभ्यम्**) अहिंसनीयम् (**नाम**) संज्ञा (**जागृवि**) जागरूकं प्रसिद्धम् (**तस्मै**) (**ते**) तुभ्यम् (**सोम**) शुभकर्मसु प्रेरक ! (**सोमाय**) ऐश्वर्य्यस्य प्राप्तये (**स्वाहा**) सत्यां क्रियाम् (**स्वाहा**) सत्यां वाचम् (**उरु**) विस्तीर्णम् (**अन्तरिक्षम्**) अवकाशम् (**अनु**) (**एमि**) अनुगच्छामि ।। **अयं मंत्रः** शत० ४ । १ । १ । १२–२१ व्याख्यातः ।। २ ।।

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । १ । १ । १२–२१) में की गई है ।। ७ । २ ।।

सपदार्थान्वयः—हे सोम=ऐश्वर्य-युक्त विद्वन् ! त्वं **नः**=**अस्मभ्यं मधुमतीः** मधुर—गुणवतीः **इषः** अन्नानि **कृधि** कुरु, तथा—

हे सोम ! शुभकर्मसु प्रेरक ! **अहं यत्**=**यस्मात् ते**=**तवाऽदाभ्यम्** अहिंसनीयं **जागृवि** जागरूकं प्रसिद्धं **नाम** संज्ञा **अस्ति, तस्मै सोमाय** ऐश्वर्यस्य

भाषार्थ—हे (**सोम**) ऐश्वर्य-युक्त विद्वान् ! आप (**नः**) हमारे लिये (**मधुमतीः**) मधुर गुणों वाले (**इषः**) अन्नों को (**कृधि**) उत्पन्न करो, तथा—

हे (**सोम**) शुभ कर्मों में प्रेरणा करने वाले विद्वान् ! (**यत्**) जिससे (**ते**) आप (**अदाभ्यम्**) अहिंसक और (**जागृवि**) जागरूक (**नाम**) नाम से

प्राप्तये **ते**=**तुभ्यं च स्वाहा**=**सत्यां क्रियां स्वाहा**=**सत्यां वाणीं** सत्यां वाचम् उरु विस्तीर्णम् **अन्तरिक्षम्** अवकाशं **चान्वेमि** अनुगच्छामि ॥ ७। २॥

प्रसिद्ध हो इसलिये (**सोमाय**) ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये तथा (**ते**) आपके लिये मैं (**स्वाहा**) सत्य कर्म एवं (**स्वाहा**) सत्यवाणी और (**उरु**) महान् (**अन्तरिक्षम्**) अवसर को (**अनु**+**एमि**) प्राप्त करूँ ॥ ७। २॥

[**हे सोम**=**ऐश्वर्ययुक्त विद्वन् ! त्वं नो मधुमतीरिषः कृधि**]

भावार्थः--मनुष्या यथा स्वसुखायान्नजलादिपदार्थान् सम्पादयेयुस्तथाऽन्येभ्योऽपि देयाः,

भावार्थ--मनुष्य जैसे अपने सुख के लिये अन्न, जल आदि पदार्थों को सिद्ध करें वैसे उन्हें दूसरों के लिये भी प्रदान करें।

[**हे सोम ! अहं यत्**=**यस्मात्ते**=**तवादाभ्यं जागृवि नामास्ति, तस्मै सोमाय ते**=**तुभ्यं च स्वाहा**=**सत्यां क्रियां, स्वाहा**=**सत्यां वाणीमुर्वन्तरिक्षं चान्वेमि**]

यथा कश्चित् स्वस्य प्रशंसां कुर्यात् तथान्यस्य स्वयमपि कुर्यात्, यथा विद्वांसः सद्गुणवन्तः सन्ति तथा तेऽपि भवेयुरिति ॥ ७। २॥

जैसे कोई अपनी प्रशंसा करे, वैसे दूसरे की स्वयं भी प्रशंसा करे, जैसे विद्वान् लोग शुभ गुणों वाले होते हैं वैसे दूसरे भी होवें ॥ ७। २॥

भाष्यसार--**मनुष्य परस्पर कैसे व्यवहार करें**--ऐश्वर्य-सम्पन्न विद्वान् मधुर गुणयुक्त अन्न जल आदि पदार्थों को अपने सुख के लिये तथा दूसरों के लिये भी उत्पन्न करे। विद्वान् लोग शुभ कर्मों में प्रेरणा करने वाले होते हैं। जैसे वे शुभ कर्मों के कारण प्रशंसा के पात्र होते हैं, वैसे वे अन्य शुभ कर्म करने वालों की भी प्रशंसा करें। विद्वान् लोग हिंसा आदि दोषों से रहित तथा शुभ कर्मों के अनुष्ठान में सदा जागरूक होने से लोक में प्रसिद्ध होते हैं, इसलिए अन्य जन भी विद्वानों के समान ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये सत्य-कर्मों का अनुष्ठान तथा उनकी सत्य-वाणी का अनुसरण करें। विद्वान् तथा अन्य साधारण जन परस्पर अनुकरण से सद्गुणों से युक्त हों ॥ ७। २॥

गोतमः। **विद्वांसः**=**स्पष्टम्** ॥ विराट् ब्राह्मी जगती। निषादः॥

पुनरात्मकृत्यमाह ॥

फिर इस मंत्र में आत्मक्रिया का निरूपण किया है ॥

स्वाङ्कृतोऽसि विश्वेभ्य ऽ इन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यो मनस्त्वाष्टु स्वाहा।
त्वा सुभव सूर्य्याय देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्यो देवांशो यस्मै त्वेडे।
तत्सत्यमुपरिप्रुता भङ्गेन हतोऽसौ फट् प्राणाय त्वा व्यानाय त्वा ॥ ३ ॥

पदार्थः--(**स्वाङ्कृतः**) स्वयंकृत इव (**असि**) (**विश्वेभ्यः**) समस्तेभ्यः (**इन्द्रियेभ्यः**) श्रोत्रादिभ्यः (**दिव्येभ्यः**) दिवि भवेभ्यः (**पार्थिवेभ्यः**) पृथिव्यां विदितेभ्यः (**मनः**) शुद्धं विज्ञानम् (**त्वा**) त्वाम् (**अष्टु**) व्याप्नोतु (**स्वाहा**) वेदोक्ता वाक् (**त्वा**) त्वाम् (**सुभव**) भवतीति भवः शोभनश्चासौ भवश्च सुभवस्तत्संबुद्धौ (**सूर्य्याय**) सवित्रे (**देवेभ्यः**) शोधकेभ्यो वाय्वादिभ्यः (**त्वा**) त्वाम् (**मरीचिपेभ्यः**) किरणरक्षितृभ्य इव (**देव**) दिव्यात्मन् (**अंशो**) सूर्यवत् प्रकाशमान (**यस्मै**) (**त्वा**) त्वाम् (**ईडे**) स्तौमि (**तत्**) (**सत्यम्**) (**उपरिप्रुता**) उपरि प्रवते यस्तेन (**भंगेन**) मर्दनेन (**हतः**) नष्टः (**असौ**) शत्रुः (**फट्**) विशीर्णः

(**प्राणाय**) जीवनहेतवे (**त्वा**) (**व्यानाय**) विविधमानयति यस्मा इव (**त्वा**) त्वाम् ॥ अयम्मन्त्रः शत० ४।१।१।२२—२८ व्याख्यातः ॥ ३ ॥

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४।१।१।२२—२८) में की गई है॥ ७।३॥

सपदार्थान्वयः—हे **अंशो** ! सूर्यवत् प्रकाशमान **देव** !=दिव्यात्मन् ! **यस्त्वं दिव्येभ्यः** दिवि भवेभ्यः **विश्वेभ्यः** समस्तेभ्यः **इन्द्रियेभ्यः** श्रोत्रादिभ्यः **पार्थिवेभ्यः** पृथिव्यां विदितेभ्यः **मरीचिपेभ्यः** किरणरक्षितृभ्य इव **देवेभ्यः** शोधकेभ्यो वाय्वादिभ्यः **स्वाङ्कृतः** स्वयंकृत इव **असि**, **तं** [**त्वा**]=**त्वां मनः** शुद्धं विज्ञानं **स्वाहा** वेदोक्ता वाक् **चाष्टु** व्याप्नोतु।

हे सुभव ! भवतीति भवः शोभनश्चासौ भवश्च सुभवस्तत्सम्बुद्धौ ! **यस्मै सूर्याय**=**चराचरात्मने परमेश्वराय** सवित्रे [**त्वा**]=**त्वामहमीडे** स्तौमि, **तत्सत्यं**=**परेशं गृहाण, उपरिप्रुतेव** उपरि प्रवते यस्तेन **येन त्वया भङ्क्तेन** मर्दनेन **असौ**=**शत्रुः फट्** विशीर्णः **हतः** नष्टः **तं त्वा**=**त्वां प्राणाय** जीवनहेतवे **ईडे** स्तौमि, **व्यानाय** विविधमानयति यस्मा इव **त्वा**=**त्वाम् ईडे** स्तौमि। ७।३॥

भाषार्थ—हे (**अंशो**) सूर्य के समान **प्रकाशमान** (**देव**) दिव्य गुणों से युक्त जीवात्मन् ! जो आप (**दिव्येभ्यः**) दिव्य (**विश्वेभ्यः**) सब (**इन्द्रियेभ्यः**) श्रोत्र आदि इन्द्रियों से तथा (**पार्थिवेभ्यः**) पृथिवी लोक में प्रसिद्ध (**मरीचियेभ्यः**) किरणों के रक्षक (**देवेभ्यः**) शोधक वायु आदि से (**स्वाङ्कृतः**) स्वयं बनाये हुये से (**असि**) हो, उक्त गुणों से युक्त [**त्वा**] आप को (**मनः**) शुद्ध विज्ञान और (**स्वाहा**) वेदोक्त वाणी (**अष्टु**) प्राप्त हो।

हे (**सुभव**) श्रेष्ठ गुणों से विभूषित विद्वन् ! (**यस्मै**) जिससे (**सूर्याय**) चराचर के आत्मा, सकल जगत् के उत्पादक परमेश्वर को जानने के लिये [**त्वा**] आपकी में (**ईडे**) स्तुति करता हूँ (**तत्**) उस (**सत्यम्**) सत्य-स्वरूप परमेश्वर को ग्रहण कराओ, (**उपरिप्रुतेव**) सबके ऊपर विराजमान आपके (**भङ्क्तेन**) मर्दन से (**असौ**) वह शत्रु (**फट्**) निर्बल होकर (**हतः**) नष्ट होता है। इसलिये (**त्वा**) आपकी (**प्राणाय**) जीवन-प्राप्ति के लिये (**ईडे**) स्तुति करता हूँ, (**व्यानाय**) विविध गुणों की प्राप्ति के लिये (**त्वा**) आपकी (**ईडे**) स्तुति करता हूँ॥ ७।३॥

[**हे अंशो देव**=दिव्यात्मन् ! यस्त्वं दिव्येभ्यो विश्वेभ्य इन्द्रियेभ्यः, पार्थिवेभ्यः......देवेभ्यः स्वाङ्कृतोऽसि, तं [त्वा]=त्वां मनः स्वाहा चाष्टु,......सूर्याय=चराचरात्मने परमेश्वराय [त्वा]=त्वामहमीडे, येन त्वया भङ्क्तेनासौ शत्रुः फड्हतस्तं त्वा=त्वां प्राणायेडे]

भावार्थः—स्वयंभूमिर्जीवैर्देहप्राणेन्द्रियान्तःकरणानि निर्मलीकृत्य, धर्म्यव्यापारेषु प्रवर्त्य, परमेश्वरोपासने च संस्थाय, पुरुषार्थेन दुष्टान् हत्वा श्रेष्ठान् रक्षित्वानन्दितव्यमिति॥ ७।३॥

भावार्थ—स्वयंभू जीव, देह, प्राण, इन्द्रिय और अन्तःकरण को निर्मल करके, उन्हें धर्म-कार्यों में लगाकर और परमेश्वर की उपासना में स्थित होकर, पुरुषार्थ से दुष्टों का नाश और श्रेष्ठों की रक्षा करके सदा आनन्द में रहें॥ ७।३॥

भाष्यसार—**जीवात्मा के कर्म**—दिव्य गुणों से युक्त जीवात्मा सूर्य के समान प्रकाशमान है। यह दिव्य गुणों से युक्त सब श्रोत्र आदि इन्द्रियों से तथा पृथिवी लोक में प्रसिद्ध, किरणों के रक्षक,

शुद्धिकारक वायु आदि पदार्थों से बना हुआ सा दिखाई देता है, वास्तव में वह इन्द्रियों से पृथक् है तथा वायु आदि पदार्थों से भी नहीं बना हुआ है। वह स्वयंभू है। मन अर्थात् शुद्ध विज्ञान और देववाणी को जीवात्मा प्राप्त करता है। वह स्वयंभू जीवात्मा देह, प्राण, इन्द्रिय और अन्तःकरण को निर्मल करके तथा उन्हें धर्म-कार्यों में लगाकर, चराचर के आत्मा, सकल जगत् के उत्पादक परमेश्वर की उपासना में स्वयं स्थित होकर उस सत्यस्वरूप परब्रह्म को प्राप्त करता है। यह जीवात्मा सब जड़ पदार्थों के ऊपर विराजमान होकर अपने पुरुषार्थ से दुष्टों की हिंसा और श्रेष्ठों की रक्षा करके सदा आनन्द में रहता है। जीवन के हेतु, विविध गुणों के धाम इस जीवात्मा की स्तुति करें अर्थात् इसके गुणों को जानें ।। ७ । ३ ।।

गोतमः । **मघवा**=धनिसदृशो योगजिज्ञासुः । आर्ष्युष्णिक् । ऋषभः ।।

पुनरात्मनाभ्यन्तरे कथं प्रयतितव्यमित्याह ।।

फिर मन से आत्मा के बीच में कैसे प्रयत्न करे, यह उपदेश किया है ।।

उपयामगृहीतोऽस्यन्तर्य्यच्छ मघवन् पाहि सोमम् । उरुष्य रायऽएषो यजस्व ।। ४ ।।

पदार्थः—(**उपयामगृहीतः**) उपात्तैर्यमैर्गृहीत इव (**असि**) (**अंतः**) आभ्यंतरस्थान् प्राणादीन (**यच्छ**) निगृहाण (**मघवन्**) परमपूजित धनिसदृश! (**पाहि**) रक्ष (**सोमम्**) योगसिद्धमैश्वर्य्यम् (**उरुष्य**) बहुना योगाभ्यासेनाविद्यादिक्लेशानन्तं नय । **अत्रोरुपपदात् षोऽन्तकर्म्मणीत्यस्मात् क्विप् ततो नामधातुत्वात् क्विप् ततो मध्यमैकवचनप्रयोगः** (**रायः**) ऋद्धिसिद्धिधनानि (**आ**) समंतात् (**इषः**) इच्छासिद्धीः, (**यजस्व**) ।। **अयं मन्त्रः** शत० ४ । १ । १ । १५ । व्याख्यातः ।। ४ ।।

प्रमाणार्थ—(**उरुष्य**) 'उरु' शब्द के उपपद रहते अन्तकर्म अर्थ वाली 'षो' धातु से 'क्विप्' प्रत्यय और इस के नाम-धातु होने से पुनः 'क्विप्' प्रत्यय है तथा उससे फिर मध्यम-पुरुष के एकवचन का यह प्रयोग बना है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । १ । १ । १५) में की गई है ।। ७ । ४ ।।

सपदार्थान्वयः—हे **योगजिज्ञासो** ! **यतस्त्वमुपयामगृहीत इव** उपात्तैर्यमैर्गृहीत इव **असि**, **तस्मादन्तः** आभ्यन्तरस्थान् प्राणादीत् **यच्छ** निगृहाण ।

हे **मघवन्** ! परमपूजित धनिसदृश ! **सोमं** योगसिद्धमैश्वर्यं **पाहि** रक्ष **क्लेशान् उरुष्य** बहुना योगाभ्यासेनाविद्यादिक्लेशानन्तं नय **यतो रायः** ऋद्धिसिद्धिधनानि **इषः** इच्छासिद्धीः **आ+यजस्व** ।। समन्ताद्यजस्व ।। ७ । ४ ।।

भाषार्थ—हे योग के जिज्ञासु ! जिससे तू (**उपयामगृहीतः**) यमों को ग्रहण करने वाले के तुल्य (**असि**) है, इसलिये (**अन्तः**) अन्दर विद्यमान प्राण आदि का (**यच्छ**) निग्रह कर।

हे (**मघवन्**) परम पूज्य धनी के समान ! तू (**सोमम्**) योग-सिद्ध ऐश्वर्य की (**पाहि**) रक्षा कर, (**उरुष्य**) अत्यन्त योगाभ्यास से अविद्या आदि क्लेशों का अन्त कर तथा (**रायः**) ऋद्धि-सिद्धि रूप धनों और (**इषः**) इच्छासिद्धियों को (**आ-यजस्व**) सब ओर से सिद्ध कर ।। ७ । ४ ।।

[**हे योगजिज्ञासो ! यतस्त्वमुपयामगृहीत इवासि, तस्मादन्तर्यच्छ, सोमं पाहि, क्लेशानुरुष्य, यतो राय इष आयजस्व**]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ।। योगार्थिना यमादिभिर्योगाङ्गैश्चित्तादीन् निरुध्या-

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है ।। योग का जिज्ञासु यम आदि योग के

विद्यादिदोषान् निवार्य संयमेनर्द्धिसिद्धयो निष्पाद्यन्ताम् ॥ ७ । ४ ॥

अङ्गों से चित्त आदि का निरोध करके, अविद्या आदि दोषों को हटा कर संयम से ऋद्धि-सिद्धियों को प्राप्त करे ॥ ७ । ४ ॥

भा० पदार्थः—उपयामगृहीतः=यमादिभिर्योगाङ्गैर्निरुद्धचित्तः ॥

भाष्यसार—१. **जीवात्मा का आन्तरिक प्रयत्न**—योग का जिज्ञासु आत्मा यम आदि योग के अङ्गों से चित्त का निरोध करने वाले योगी के समान होकर अन्दर विद्यमान प्राण आदि का निग्रह करे अर्थात् प्राण आदि को वश में करे। जैसे धनवान् पुरुष पूजा के योग्य होता है, इसी प्रकार योग-सिद्धि रूप धन से सम्पन्न योगी भी परम पूज्य है। क्योंकि वह योग-सिद्ध ऐश्वर्य की रक्षा करता है, योगाभ्यास से अविद्या आदि क्लेशों का अन्त करता है, ऋद्धि-सिद्धि रूप धनों को तथा कामना-सिद्धि को प्राप्त करता है। यह सब जीवात्मा के आन्तरिक प्रयत्न से सम्भव है ॥

२. **अलङ्कार**—मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि शब्द लुप्त होने से वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि योग का जिज्ञासु पुरुष यम आदि योग के अङ्गों से चित्तवृत्ति का निरोध करने वाले योगी के समान बने, तथा जैसे धनवान् पुरुष पूज्य होता है वैसे योग-सिद्धि रूप धन से सम्पन्न योगी भी लोक में परम पूज्य बने ॥

३. **योग के अङ्ग**—१. यम—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह। २. नियम—शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान। ३. आसन। ४. प्राणायाम। ५. प्रत्याहार। ६. धारणा। ७. ध्यान। ८. समाधि। ९. संयम।

४. **रिद्धि-सिद्धि**—१. अणिमा। २. लघिमा। ३. महिमा। ४. प्राप्ति। ५. प्राकाम्य। ६. वशित्व। ७. ईशितत्व। ८. जहाँ कामावसायित्व वहां सत्यसङ्कल्पतः। ये आठ ऋद्धियाँ हैं। इनकी विशेष व्याख्या योग दर्शन व्यासभाष्य में देख लेवें। १. ऊह (**तारतार**)। २. शब्द (**सुतार**)। ३. अध्ययन (**तार**)। ४. आध्यात्मिक दुःखों का विघात (**प्रमोद**)। ५. आधिभौतिक दुःखों का विघात (**मुदित**)। ६. आधिदैविक दुःखों का विघात (**मोदमान**)। ७. सुहृत्प्राप्ति (**रम्यक**)। ८. दान (**सदामुदित**)। ये आठ सिद्धियाँ हैं इनकी विशेष व्याख्या सांख्य में देख लेवें ॥ ७ । ४ ॥

गोतमः। **ईश्वरः=स्पष्टम्**। आर्षी पंक्तिः। पंचमः ॥

अथेश्वरः प्राथमकल्पिकाय योगिने विज्ञानमाह ॥

अब ईश्वर जो योग में प्रथम ही प्रवृत्त होता है, उसके लिये विज्ञान का उपदेश करता है ॥

अन्तस्ते द्यावापृथिवी दधाम्यन्तर्दधाम्युर्वन्तरिक्षम्।
सजूर्देवेभिरवरैः परैश्चान्तर्यामे मघवन् मादयस्व ॥ ५ ॥

पदार्थः—(**अन्तः**) आकाशाभ्यन्तर इव (**ते**) तव (**द्यावापृथिवी**) भूमिसूर्य्याविव (**दधामि**) स्थापयामि (**अन्तः**) शरीराभ्यन्तरे (**दधामि**) स्थापयामि (**उरु**) बहु (**अन्तरिक्षम्**) अन्तरालमवकाशम् (**सजूः**) मित्र इव (**देवेभिः**) विद्वद्भिः (**अवरैः**) निकृष्टैः (**परैः**) उत्तमैश्वर्य्यव्यवहारैः (**च**) समुच्चये (**अन्तर्यामे**) यमानामयं यामः, अन्तश्चासौ यामश्च तस्मिन् (**मघवन्**) परमोत्कृष्टधनितुल्य (**मादयस्व**) हर्षयस्व ॥ **अयं मन्त्रः** शत० ४ । १ । २ । १६ व्याख्यातः ॥ ५ ॥

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । १ । २ । १६) में की गई है ॥ ७ । ५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मघवन्** परमोत्कृष्टधनितुल्य **योगिन् ! अहं ते**=तव **अन्तः** आकाशाभ्यन्तर इव **द्यावापृथिवी** भूमिसूर्यौ इव **विज्ञानादिपदार्थान् दधामि**, स्थापयामि, **उरु** बहु **अन्तरिक्षम्** अन्तरालमवकाशम् **अन्तः** शरीराभ्यन्तरे **दधामि** स्थापयामि, **सजूः** मित्र इव त्वं **देवेभिः**=आप्तैः विद्वद्भिः **अवरैः** निकृष्टैः **परैः** उत्तमैश्वर्यव्यवहारैः **च** सहान्तर्यामि यमानामयं यामः, अन्तश्चासौ यामश्च तस्मिन् **वर्त्तमानः** सन्नन्यान् **मादयस्व** हर्षयस्व ॥ ७ । ५ ॥

भाषार्थ—हे (**मघवन्**) परम धनवान् के समान योगी ! मैं (**ते**) तेरे (**अन्तः**) अन्दर (**द्यावापृथिवी**) आकाश में स्थित सूर्य और भूमि के समान विज्ञान आदि पदार्थों को (**दधामि**) स्थापित करता हूँ तथा (**उरु**) पर्याप्त (**अन्तरिक्षम्**) मध्यवर्ती अवकाश को (**अन्तः**) शरीर के अन्दर (**दधामि**) स्थापित करता हूँ (**सजूः**) मित्र के समान आप (**देवेभिः**) अत्यन्त आप्त विद्वानों (**अवरैः**) निकृष्ट मनुष्यों (**परैः**) उत्तम ऐश्वर्य का व्यवहार करने वाले पुरुषों के साथ (**अन्तर्यामि**) आन्तरिक यम आदि योगाङ्गों से उत्पन्न आनन्द में वर्तमान होकर दूसरों को भी (**मादयस्व**) हर्षित करो ॥ ७ । ५ ॥

[हे मघवन् योगिन्नहं ते=तवान्तर्द्यावापृथिवी इव विज्ञानादिपदार्थान् दधामि]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ ईश्वर उपदिशति—ब्रह्माण्डे यादृशा यावन्तः पदार्थाः सन्ति, तादृशास्तावन्तो मम ज्ञाने वर्तन्ते, योगविद्यारहितस्तान द्रष्टुं न शक्नोति, नहीश्वरोपासनया विना कश्चिद्योगी भवितुमर्हति ॥ ७ । ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ ईश्वर उपदेश करता है कि संसार में जैसे और जितने पदार्थ हैं वे सब वैसे और उतने मेरे ज्ञान में वर्त्तमान हैं, योग विद्या से रहित मनुष्य उनको देख नहीं सकता, और ईश्वरोपासना के बिना कोई योगी नहीं हो सकता ॥ ७ । ५ ॥

भाष्यसार—१. **प्राथमकल्पिक योगी के लिये ईश्वर का उपदेश**—ईश्वर उपदेश करता है कि ब्रह्माण्ड में जितने भी पदार्थ जिस स्वरूप में हैं उन सब पदार्थों को मैं उसी स्वरूप में जानता हूँ। जैसे आकाश में सूर्य और भूमि को मैंने स्थापित किया है, वैसे हे योगी पुरुष ! ब्रह्माण्ड के सब पदार्थों के विज्ञान को तेरे अन्दर स्थापित करता हूँ। तू योगी होने से उक्त पदार्थ विज्ञान को ग्रहण कर सकता है और जो योगविद्या से रहित मनुष्य है, वह ब्रह्माण्ड के इन पदार्थों को यथार्थ रूप में नहीं देख सकता और मेरी उपासना के बिना कोई योगी भी नहीं हो सकता। तू मेरे मित्र के समान है। इसलिये आप विद्वानों, निम्न कोटि के मनुष्यों और उत्तम ऐश्वर्य का व्यवहार करने वाले जनों के साथ योगज आनन्द में रह तथा अन्यों को भी योग-आनन्द से प्रसन्न कर।

२. **अलंकार**—मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि शब्द लुप्त होने से वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि जैसे ईश्वर सूर्य और पृथिवी को आकाश में स्थापित करता है, वैसे योगी के हृदयाकाश में सब पदार्थों के विज्ञान को स्थापित करता है। योगी ईश्वर के सखा के समान है ॥ ७ । ५ ॥

गोतमः । **योगी**=**योगजिज्ञासुः** । भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनरीश्वरो योगजिज्ञासुं प्रत्याह ॥

फिर ईश्वर योगविद्या चाहने वाले के प्रति उपदेश करता है ॥

स्वाङ्कृतोऽसि विश्वेभ्य ऽ इन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्युः पार्थिवेभ्यो मनस्त्वाष्टु स्वाहा । त्वा सुभव सूर्य्याय देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्य ऽ उदानाय त्वा ॥ ६ ॥

पदार्थः—(**स्वाङ्कृतः**) स्वयंसिद्धोऽनादिस्वरूपः (**असि**) (**विश्वेभ्यः**) अखिलेभ्यः (**इन्द्रियेभ्यः**) कार्य्यसाधकतमेभ्यः (दिव्येभ्यः) निर्मलेभ्य (**पार्थिवेभ्यः**) पृथिव्यां विदितेभ्यः (**मनः**) योगमननम् (**त्वा**) त्वां योगमभीप्सुम् (अष्टु) प्राप्नोतु (**स्वाहा**) सत्यवचनरूपा क्रिया (**त्वा**) त्वाम् (**सुभव**) सुष्ठ्वैश्वर्य्य (**सूर्य्याय**) सूर्य्यस्येव योगप्रकाशाय (**देवेभ्यः**) प्रशस्तगुणपदार्थेभ्यः (**त्वा**) त्वाम् (**मरीचिपेभ्यः**) रश्मिभ्यः। **मरीचिपा इति रश्मिनामसु पठितम् ॥ निघं० १ । ५ ॥** (**उदानाय**) उत्कृष्टाय जीवनबलसाधनायैव (**त्वा**) त्वाम् ॥ अयम्मन्त्रः शत० ४ । १ । २ । २१-२४ व्याख्यातः ॥६॥

प्रमाणार्थ—(**मरीचिपेभ्यः**) 'मरीचिपा', शब्द निघं० (१ । ५) में किरण-नामों में पढ़ा है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । १ । २ । २१–२४) में की गई है ॥ ७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **सुभव** ! सुष्ठ्वैश्वर्य **योगिन्** ! **त्वं स्वाङ्कृतः** स्वयंसिद्धोऽनादिस्वरूपः **असि**, **अहं दिव्येभ्यः** निर्मलेभ्यः **विश्वेभ्यः** अखिलेभ्यः [**इन्द्रियेभ्यः**] कार्यसाधकतमेभ्यः **देवेभ्यः** प्रशस्तगुणपदार्थेभ्यः **मरीचिपेभ्यः**, रश्मिभ्यः **च त्वा**=**त्वां** योगमभीप्सुं **स्वीकरोमि**, **पार्थिवेभ्यः** पृथिव्यां विदितेभ्यः **त्वा**=**त्वां स्वीकरोमि**, [**सूर्याय**] सूर्यस्येव योगप्रकाशाय [**उदनाय**] उत्कृष्टाय जीवनबलसाधनायैव [**त्वा**]=**त्वां** [**स्वीकरोमि**], **यतस्त्वा** त्वां **मनः** योगमननं **स्वाहा**=**सत्यारूढा क्रिया** सत्यवचनरूपा क्रिया **चाष्टु** प्राप्नोतु ॥ ७ । ६ ॥

भाषार्थ—हे (**सुभव**) उत्तम ऐश्वर्य वाले योगी पुरुष ! तू (**स्वाङ्कृतः**) स्वयंसिद्ध तथा अनादि-स्वरूप (**असि**) है, मैं (**दिव्यभ्यः**) निर्मल (**विश्वेभ्यः**) सब [**इन्द्रियेभ्यः**] कार्यों के अत्यन्त साधक इन्द्रियों के लिये (**देवेभ्यः**) श्रेष्ठ गुण वाले पदार्थों और (**मरीचिपेभ्यः**) किरणों के लिये (**त्वा**) तुझे स्वीकार करता हूँ, (**पार्थिकवेभ्यः**) पृथिवीलोक में प्रसिद्ध पदार्थों के लिये (**त्वा**) तुझे स्वीकार करता हूँ, [**सूर्याय**] सूर्य के समान, योग का प्रकाश करने के लिये [**उदानाय**] उत्तम जीवन और बल की सिद्धि के लिये [**त्वा**] तुझे स्वीकार करता हूँ जिससे (**त्वा**) तुझे (**मनः**) योग-विज्ञान यथा (**स्वाहा**) सत्य भाषण रूप कर्म (**अष्टुः**) प्राप्त हो ॥ ७ । ६ ॥

[हे सुभव योगिंस्त्वं स्वाङ्कृतोऽसि, अहं दिव्येभ्यो विश्वेभ्यः [इन्द्रियेभ्यः]'''त्वा स्वीकरोमि, [उदानाय त्वा स्वीकरोमि]]

भावार्थः—यावन्मनुष्यः श्रेष्ठाचारी न भवति तावदीश्वरोऽपितं न स्वीकरोति, यावदयं न स्वीकरोति तावत्तस्यात्मबलं पूर्णं न भवति, यावदिदं न जायते तावन्नात्यन्तं सुखं भवतीति ॥ ७ । ६ ॥

भावार्थ—जब तक मनुष्य श्रेष्ठ आचरण वाला नहीं होता तब तक ईश्वर भी उसे नहीं अपनाता, और जब तक यह नहीं अपनाता तब तक आत्मिक बल पूर्ण नहीं होता, जब तक आत्म-बल पूर्ण नहीं होता तब तक अत्यन्त सुख उत्पन्न नहीं होता ॥ ७ । ६ ॥

भाष्यसार—योगजिज्ञासु के प्रति ईश्वर का उपदेश—योगी के प्रति ईश्वर उपदेश करता है कि हे उत्तम ऐश्वर्य से सम्पन्न योगी पुरुष ! तू स्वयंसिद्ध और अनादि स्वरूप है। तेरी कार्य को सिद्ध करने वाली सब इन्द्रियाँ निर्मल हैं, तू उत्तम गुण वाले सूर्यकिरण तथा पार्थिव पदार्थों का ज्ञाता है। श्रेष्ठाचारी होने से मैं तुझे स्वीकार करता हूँ—अपनाता हूँ। जैसे सूर्य सब पार्थिव पदार्थों को प्रकाशित करता है, इसी प्रकार योगविद्या को संसार में प्रकाशित करने के लिये, उत्कृष्ट जीवन तथा पूर्ण आत्मबल की सिद्धि के लिये तुझे स्वीकार करता हूँ—अपनाता हूँ। क्योंकि जब तक मैं स्वीकार नहीं करता तब तक

किसी का भी आत्म-बल पूर्ण नहीं होता और जब तक आत्म-बल पूर्ण नहीं होता तब तक किसी को भी अत्यन्त सुख प्राप्त नहीं हो सकता। इसलिये मेरे अपनाने के उपरान्त ही तुझे योग विज्ञान तथा सत्य पर आरूढ़ होने का सामर्थ्य प्राप्त होता है ॥ ७ । ६ ॥

वशिष्ठः । **वायुः**=**योगी** ॥ निचृज्जगती । निषादः ॥

पुनर्योगिकृत्यमाह ॥

फिर योगी को कृत्य का उपदेश किया है ॥

आ वा॑यो भूष शुचिपा ऽ उप॑ नः स॒हस्रं॑ ते नि॒युतो॑ विश्ववार ।

उपो॑ ते॒ऽअन्धो॒ मद्य॑मयामि॒ यस्य॑ देव दधि॒षे पू॑र्व॒पेयं॑ वा॒यवे॑ त्वा ॥ ७ ॥

पदार्थः—(**आ**) समन्तात् (**वायो**) वायुरिव वर्त्तमान (**भूष**) अलंकुरु (**शुचिपाः**) शुचि=पवित्रतां पालयतीति शुचिपाः=पवित्रपालक (**उप**) (**नः**) अस्मान् (**सहस्त्रम्**) (**ते**) तव (**नियुतः**) नियुज्यन्ते ये तान् निश्चितान् शमादिगुणान् । अत्र कर्म्मणि क्विप् (**विश्ववार**) विश्वान् सर्वानानन्दान् वृणोति तत्सम्बुद्धौ (**उपो**) समीपम् (**ते**) (**अन्धः**) अन्नम् (**मद्यम्**) तृप्तिप्रदम् (**अयामि**) प्राप्नोमि (**यस्य**) (**देव**) योगेनात्म प्रकाशित (**दधिषे**)धरसि (**पूर्वपेयम्**) पूर्वैः पातुं योग्यमिव (**वायवे**) (**त्वा**) त्वाम् ॥ अयं मन्त्र शत० ४ । १ । ३ । १८ व्याख्यातः ॥ ७ ॥

प्रमाणार्थ—(**नियुतः**) यहां कर्म-कारक में 'क्विप्' प्रत्यय है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । १ । ३ । १८) में की गई है ॥ ७ । ७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **शुचिपाः** ! शुचि=पवित्रतां पालयतीति शुचिपाः=पवित्रपालक ! **वायो** ! वायुरिव वर्तमान ! **त्वं** [**नः**] अस्मान् **सहस्रं नियुतः** नियुज्यन्ते ये तान् निश्चितान् शमादि-गुणान् **आ**+**भूष** समन्तादलंकुरु ।

हे **विश्ववार** ! विश्वान् सर्वानानन्दान् वृणोति तत्सम्बुद्धौ ! **ते**=**तव सकाशान्मद्यं** तृप्तिप्रदम् **अन्धः** अन्नम् **उपो**+**अयामि** समीपं प्राप्नोमि ।

हे देव ! योगेनात्मप्रकाशित ! **यस्य ते**=**तव पूर्वपेयं** पूर्वैः पातुं योग्यामिव **अस्ति, यच्च त्वं** [**उप**]+**दधिषे** धरसि **तद वायवे त्वा**=**त्वाम् अहं स्वीकरोमि** ॥ ७ । ७ ॥

भाषार्थ—हे (**शुचिपाः**) शुचि अर्थात् पवित्रता की रक्षा करने वाले (**वायो**) वायु के समान योगी जन ! तू [**नः**] हमें (**सहस्रम्**) नाना (**नियुतः**) निश्चित शम आदि गुणों से (**आ**+**भूष**) अलंकृत कर ।

हे (**विश्ववार**) सब आनन्दों का वरण करने वाले योगी ! मैं (**ते**) आप के पास से (**मद्यम्**) तृप्तिकारक (**अन्धः**) अन्न को (**उपो**+**अयामि**) प्राप्त करता हूँ ।

हे (**देव**) योग से प्रकाशित आत्मा वाले योगी ! (**यस्य**) जिस (**ते**) आपका (**पूर्व पेयम्**) पूर्वजों से पीने योग्य जल है, और जिसे आप [(**उप**)+**दधिषे**] धारण कर रहे हो उसे (**वायवे**) प्राण-शक्ति के लिए (**त्वा**) तुझे मैं स्वीकार करता हूँ ॥ ७ । ७ ॥

[हे···वायो ! त्वं [नः]···आभूष, हे विश्ववार ! ते सकाशान्मन्ध उपो+अयामि, हे देव ! यस्य ते पूर्वपेयमस्ति···तद् वायवे त्वाहं स्वीकरोमि]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा

यो योगी प्राण इव सर्वानलङ्करोति, ईश्वर इव सद्गुणेषु व्याप्नोत्यन्नजले इव सर्वान् सुखयति, स एव योगे प्रभवति ॥ ७ । ७ ॥

अलङ्कार है ॥ जो योगी प्राण के समान सब को अलंकृत करता है, ईश्वर के समान श्रेष्ठ गुणों में व्याप्त होता है, अन्न और जल के समान सबको सुख देता है, वही योग में समर्थ होता है ॥ ७ । ७ ॥

भा० पदार्थः—पूर्वपेयम्=जलम् ।

भाष्यसार—१. **योगी के कर्म**--योगी पवित्र कर्मों का पालन करने वाला होता है । जैसे प्राण समस्त शरीर को धारण करते हैं वैसे योगी अपने निर्धारित शम-दम आदि गुणों को धारण करने से अलंकृत होता है । योगी सब आनन्दों को वरण करने वाला होता है तथा ईश्वर के समान सब श्रेष्ठ गुणों में व्याप्त होता है जैसे तृप्तिकारक अन्न और जल सबको सुख देते हैं वैसे योगी भी सबको सुख देता है । योगी का आत्मा योग से प्रकाशित होता है, योग-विद्या को वह धारण करता है, प्राणविद्या (**योगविद्या**) की प्राप्ति के लिये सब मनुष्य योगी को स्वीकार करें—अपनायें ॥

२. **अलङ्कार**--मन्त्र में उपमावाचक शब्द लुप्त होने से वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है । उपमा यह है कि योगी प्राण के समान, सबका अलङ्कर्त्ता, ईश्वर के समान श्रेष्ठ गुणों में व्याप्त, अन्न-जल के समान सब के लिये सुखदायक होता है ॥ ७ । ७ ॥

मधुच्छन्दाः । **इन्द्रवायू=योगोपदेष्टा, योगाभ्यासी च** । इन्द्रवायू इत्यस्यार्षी गायत्री । उपयामगृहीत इत्स्यार्षी स्वराड् गायत्री । षड्जः ॥

पुनः स योगी कीदृशो भवतीत्युच्यते ॥

फिर वह योगी कैसा होता है, यह उपदेश किया है ॥

इन्द्रवायू ऽ इमे सुता ऽ उप प्रयोभिरागतम् । इन्दवो वामुशन्ति हि । उपयामगृहीतोऽसि वायवऽइन्द्रवायुभ्यां त्वैष ते योनिः सजोषोभ्यां त्वा ॥ ८ ॥

पदार्थः--(**इन्द्रवायू**) प्राणसूर्य्यसदृशौ योगस्योपदेष्टृभ्यासिनौ (**इमे**) समक्षाः (**सुताः**) निष्पन्नाः पदार्थाः (**उप**) समीपे (**प्रयोभिः**) कमनीयैर्लक्षणैः (**आगतम्**) आगच्छतम् । **गम्लृ गतावित्यस्माद् । बहुलं छन्दसि ॥ अ० २ । ४ । ७३ ॥ इति शपो लुकि सति** शित्वाभावाच्छस्याभावः । **अनुदात्तोपदेश० ॥ अ० ६ । ४ । ३७ ॥ इत्यादिना मलोपश्च** (**इन्दवः**) सुखकारका जलादिपदार्थाः । **इन्दुरित्युदकनामसु पठितम् ॥ निघं० १ । १२ ॥** (**वाम्**) युवाम् (**उशन्ति**) कामयन्ते (**हि**) सादृश्ये (**उपयामगृहीतः**) योगस्य यमनियमाङ्गैः सह स्वीकृतः (**असि**) (**वायवे**) वायुवद्गत्यादिसिद्धये यद्वा वाति=प्रापयति योगबलेन व्यवहारानिति वायुर्योगविचक्षणस्तस्मै तादृशसम्पन्नाय (**इन्द्रवायुभ्याम्**) विद्युत्प्राणाभ्यामिव योगाकर्षणनिष्कर्षणाभ्याम् (**त्वा**) त्वाम (**एषः**) योगः (**ते**) तव (**योनिः**) गृहम् **योनिरिति गृहनामसु पठितम् ॥ निघं ३ । ४ ॥** (**सजोषोभ्याम्**) यौ जोषसा=सेवनेन सह वर्त्तमानौ ताभ्याम् (**त्वा**) त्वाम् ॥ **अयं मन्त्रः शत० ४ । १ । ३ । १८ व्याख्यातः ॥ ८ ॥**

प्रमाणार्थ--(**आगतम्**) यहाँ गति अर्थ वाली 'गम्' धातु से 'बहुलं छन्दसि' (**अ० २ । ४ । ७३**) इस सूत्र से 'शप्' का लुक् होने पर शित्वाभाव से छत्व नहीं है तथा 'अनुदात्तोपदेश०' (**अ० ६ । ४ । ३७**) इस सूत्र से मकार का लोप होने से यह प्रयोग सिद्ध है । (**इन्दवः**) 'इन्दु' शब्द निघं० (१ । १२) में जल-नामों में पढ़ा है । (**योनिः**) 'योनि' शब्द निघं० (३ । ४) में गृह-नामों में पढ़ा है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । १ । ३ । १८) में की गई है ॥ ७ । ८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे इन्द्रवायू ! प्राण-सूर्यसदृशौ योगस्योपदेष्ट्भ्यासिनौ ! **हि** सादृश्ये **यत इमे** समक्षाः **सुताः** निष्पन्नाः पदार्थाः **इन्दवः** सुखकारका जलादिपदार्थाः **वां** युवाम् **उशन्ति** कामयन्ते **तस्माद्युवामेतैः प्रयोभिः** कथनीयैर्लक्षणैः **पदार्थैः सहैवोप+आगतम्=उपागच्छतम्** समीप-आगच्छतम् ।

भावार्थ—हे (**इन्द्रवायू**) योग के उपदेशक तथा अभ्यासी पुरुषो ! तुम दोनों (**हि**) सूर्य और प्राण के सदृश हो । इसलिये (**इमे**) ये (**सुताः**) सब उत्पन्न हुये (**इन्दवः**) सुखकारक जल आदि पदार्थ (**युवाम्**) तुम दोनों को (**उशन्ति**) चाहते हैं, इस लिये तुम दोनों इन (**प्रयोभिः**) साक्षात् करने योग्य पदार्थों के साथ (**उप+आगतम्**) हमारे समीप आओ ।

भो योगमभीप्सो ! त्वमनेनाध्यापकेन वायवे वायुवद्गत्यादिसिद्धये यद्वा वाति=प्रापयति योग-बलेन व्यवहारानिति वायुः=योगविचक्षणस्तस्मै तादृशसम्पन्नाय **उपयामगृहीतः** योगस्य यमनियमाङ्गैः सह स्वीकृतः **असि** ।

हे योगाभिलाषी ! इस योगाध्यापक के द्वारा तू (**वायवे**) वायु के समान गति आदि की सिद्धि के लिये अथवा योग-बल से व्यवहारों को प्राप्त कराने वाले योग कुशल योगी बनाने के लिये (**उपायमगृहीतः**) योग के यम-नियम आदि अङ्गों सहित स्वीकार किया गया (**असि**) है ।

हे भगवन् ! योगाध्यापक एष योगस्ते=तव योनिः=सर्वदुःखनिवारकं गृहमिवास्ति । इन्द्रवायुभ्यां विद्युत्प्राणाभ्यामिव योगाकर्षण निष्कर्षणाभ्यां । **जुष्टं त्वा=त्वां**

हे योगैश्वर्य से युक्त योगाध्यापक ! यह योग (**ते**) तेरा (**योनिः**) सब दुःखों का निवारण करने वाले घर के समान है । (**इन्द्रवायुभ्याम्**) विद्युत और प्राण के समान श्वास को खैंचना और बाहर निकालना रूप योग विद्या से (**जुष्टं**) युक्त (**त्वा**) तुझे,

तथा [हे] योगमभीप्सो ! सजोषोभ्यां यौ जोषसा =सेवनेन सह वर्त्तमानौ ताभ्याम् **उक्तगुणाभ्यां जुष्टं त्वा=त्वां चाहं वश्मि** ॥ ७ । ८ ॥

तथा [हे] योग के जिज्ञासु पुरुष ! (**सजोषाभ्याम्**) सेवन करने योग्य इन उक्त गुणों से (**जुष्टम्**) युक्त (**त्वा**) तुझे, मैं (**वश्मि**) चाहता हूँ ॥ ७ । ८ ॥

[हे इन्द्रवायू ! हि यत इमे सुता इन्दवो वायुशन्ति, तस्माद्युवामेतैः प्रयोभिः पदार्थैः सहैवोप+आगतम्=उपागच्छतम्]

भावार्थः—त एव जना योगिनस्सिद्धाश्च भवितुं शक्नुवन्ति ये योगविद्याभ्यासं कृत्वेश्वरमारभ्य भूमिपर्यन्तान् पदार्थान् साक्षात्कर्तुं प्रयतन्ते,

भावार्थ—वे ही लोग योगी और सिद्ध बन सकते हैं जो योग-विद्या का अभ्यास करके ईश्वर से लेकर पृथिवी पर्यन्त पदार्थों को साक्षात् करने का प्रयत्न करते हैं,

[भो योगमभीप्सो ! त्वमनेनाध्यापकेन वायवे उपयामगृहीतोऽसि]

यमादिसाधनान्विताश्च योगे रमन्ते,

और-यम आदि साधनों से युक्त होकर योग में रमण करते हैं,

[हे भगवन् ! योगाध्यापक ! ···इन्द्रवायुभ्यां जुष्टं त्वा=त्वां···वश्मि]

ये चैतान् सेवन्ते तेऽप्येतत्सर्वं प्राप्नुवन्ति;

और जो इन योगी जनों की सेवा करते हैं, वे

नेतरे ॥ ७ । ८ ॥

भी यह सब कुछ प्राप्त करते हैं; दूसरे नहीं ॥ ७ । ८ ॥

भा० पदार्थः—इन्द्रवायू=योगसिद्धजनौ । इन्दवः=ईश्वरमारभ्य भूमिपर्यन्ताः पदार्थाः । उशन्ति=साक्षात्कर्तुं प्रयतन्ते । उपयामगृहीतः=यमादिसाधनान्वितः ॥

भाष्यसार—योगी कैसा होता है—जैसे सूर्य अपने प्रकाश में पदार्थों को स्पष्ट दिखाता है, वैसे योगविद्या का उपदेष्टा योगी यौगिक तथ्यों का स्पष्ट उपदेश करता है । जैसे पृथिवी आदि लोकों का आधार वायु है, वैसे योगाभ्यासी के लिये योगविद्या का आधार प्राण है । योगविद्या का उपदेष्टा योगी और योगाभ्यासी दोनों ईश्वर तथा उत्पन्न हुए पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश इन पदार्थों के साक्षात् करने की कामना करें । इन पदार्थों के लक्षणों को जानकर अर्थात् इनका साक्षात्कार करके ही वे लोगों के पास जावें और उन्हें भी इन पदार्थों का साक्षात् करावें ।

योगाभ्यासी वायु के समान गति आदि की सिद्धि के लिये अथवा योगबल से सब व्यवहारों की प्राप्ति में कुशल बनने के लिये योग के यम-नियम आदि अङ्गों को ग्रहण करके योगाध्यापक का शिष्यत्व स्वीकार करे और उससे विनयपूर्वक कहे कि हे भगवन् ! योगाध्यापक ! आपके पास जो योगविद्या है, वह घर के समान सब दुःखों का निवारण करने वाली है । इसलिये विद्युत् और प्राण के समान जो श्वास को खैंचना और बाहर निकालना रूप योगविद्या से युक्त आपकी मैं सदा कामना करता हूँ । योगाध्यापक योगाजिज्ञासु को उत्तर देता है कि हे योगाभिलाषी ! प्रीतिपूर्वक सेवन करने योग्य जो श्वास का आकर्षण और निष्कर्षण रूप योग विद्या है तुझे उससे युक्त करने की मैं भी सदा कामना करता हूँ ॥ ७ । ८ ॥

गृत्समदः । **मित्रावरुणौ=अध्यापकाध्येतारौ** । आर्षी गायत्री । उपयामगृहीतोसीत्यस्यासुरी गायत्री । षड्जः ॥

पुनरध्यापकशिष्यकृत्यमाह ॥

फिर अध्यापक और शिष्य के कर्म का उपदेश किया है ॥

अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोमऽ ऋतावृधा । ममेदिह श्रुतꣳहवम् ।
उपयामगृहीतोऽसि मित्रावरुणाभ्यां त्वा ॥ ९ ॥

पदार्थः—(**अयम्**) (**वाम्**) युवयोः (**मित्रावरुणा**) प्राणोदानाविव वर्त्तमानौ (**सुतः**) निष्पादितः (**सोमः**) योगैश्वर्य्यवृन्दः (**ऋतावृधा**) यौ ऋतं=विज्ञानं वर्द्धयतस्तौ (**मम**) योगविद्याप्रियस्य (**इत्**) इव (**इह**) अस्मिन् योगविद्याग्राहके व्यवहारे (**श्रुतम्**) शृणुतम् (**हवम्**) स्तुतिसमूहम् (**उपयामगृहीतः**) (**असि**) (**मित्रावरुणाभ्याम्**) (**त्वा**) त्वाम् ॥ अयं मंत्रः शत० ४ । १ । ४ । ७ व्याख्यातः ॥ ९ ॥

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । १ । ४ । ७) में की गई है ॥ ७ । ९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मित्रावरुणा प्राणोदानाविव वर्त्तमानौ **ऋतावृधा** यौ ऋतं=विज्ञानं वर्द्धयतस्तौ **अध्यापकाध्येतारौ** ! [वाम्]= **युवयोरयं सोमः** योगैश्वर्यवृन्दः **सुतः** निष्पादितः

भाषार्थ—हे (**मित्रावरुणा**) प्राण और उदान के समान (**ऋतावृधा**) विज्ञान को बढ़ाने वाले अध्यापक और शिष्य लोगो ! [**वाम्**] तुम्हारा यह (**सोमः**) योग-ऐश्वर्य का वृन्द (**सुतः**)

अस्ति, युवामिह मम हवं स्तुतिसमूहं श्रुतं शृणुतम् ।

हे यजमान ! यतस्त्वमुपयामगृहीत इत्=एव (इव) असि, अतोऽहं मित्रावरुणाभ्यां सह वर्त्तमानं त्वा=त्वां गृह्णामि ॥ ७ । ९ ॥

तैयार है । तुम दोनों (इह) यहां (मम) मेरी (हवम्) स्तुतियों को (श्रुतम्) सुनो ।

हे यजमान ! तू (उपयामगृहीतः) यम आदि योगाङ्गों से युक्त (इत्) ही है, इसलिये मैं (मित्रावरुणाभ्याम्) प्राण और उदान के साथ वर्तमान (त्वा) तुझ को ग्रहण करता हूँ ॥ ७ । ९ ॥

[हे···ऋतावृधा अध्यापकाध्येतारौ ··· युवामिह मम हवं श्रुतं, हे यजमान ! यतस्त्वमुपयामगृहीत इत्=एवासि, अतोऽहं मित्रावरुणाभ्यां सह वर्तमानं त्वा=त्वां गृह्णामि]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ मनुष्याणामुचितमेतद्—विद्यां गृहीत्वोपदेशं श्रुत्वा, यमेनियमान् धृत्वा, योगाभ्यासेन सह वर्त्तितव्यम् ॥ ७ । ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ मनुष्यों को यह उचित है कि वे विद्या को ग्रहण करके, उपदेश सुनकर, यम-नियमों को धारण करके योगाभ्यास से युक्त रहें ॥ ७ । ९ ॥

भा० पदार्थः—ऋतावृधा=विद्याग्रहीतारौ । हवम्=उपदेशम् । उपयामगृहीतः=धृतयमनियमः । मित्रावरुणाभ्याम्=प्राणोदानाभ्याम् ॥

भाष्यसार—१. **अध्यापक और शिष्य के कर्म**—जैसे शरीर में प्राण और उदान हैं, वैसे समाज में अध्यापक और शिष्य हैं । अध्यापक 'मित्र' है और शिष्य 'वरुण' हैं । ये दोनों विद्या एवं विज्ञान को बढ़ाने वाले, योग ऐश्वर्य से सम्पन्न तथा विद्वानों के उपदेश को सुनने वाले होते हैं । यम-नियम आदि योगाङ्गों को गृहण करके—धारण करके, सदा योगाभ्यास से संयुक्त रहते हैं । योगाभ्यास को कभी नहीं छोड़ते ॥

२. **अलङ्कार**—मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि शब्द लुप्त होने से वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है । यहाँ अध्यापक शिष्य की प्राण और उदान से उपमा की गई है ॥ ७ । ९ ॥

त्रिसदस्युः । **मित्रावरुणौ**=**उत्तमौ योगिजनौ** । ब्राह्मी बृहती । मध्यमः ॥

पुनरेतयोः कृत्यमाह ॥

फिर भी योग पढ़ने पढ़ाने वालों के कृत्य का उपदेश किया है ॥

राया वयꣳ स॑सवाꣳसो॑ मदेम ह॒व्येन॑ दे॒वा यव॑सेन॒ गावः॑ ।
तां धे॒नुं मि॑त्रावरुणा यु॒वं नो॑ वि॒श्वाहा॑ धत्त॒मन॑पस्फुरन्तीमे॒ष ते॒ योनि॑र्ऋता॒युभ्यां॑ त्वा ॥ १० ॥

पदार्थः—(**राया**) धनेन सह (**वयम्**) पुरुषार्थिनः (**ससवांसः**) संविभक्ताः (**मदेम**) हृष्येम (**हव्येन**) गृहीतव्येन (**देवाः**) विद्वांसः (**यवसेन**) अभीष्टेन तृणबुसादिना (**गावः**) गवादयः पशवः (**ताम्**) (**धेनुम्**) धयति=पिबत्यानन्दरसमनया ताम् । धेनुरिति वाङ् नामसु पठितम् ॥ निघं० १ । ११ ॥ (**मित्रावरुणा**) प्राणवत् सखायावुत्तमौ जनौ (**युवम्**) युवाम् (**नः**) अस्मभ्यम् (**विश्वाहा**) सर्वाणि दिनानि (**धत्तम्**) (**अनपस्फुरन्तीम्**) विज्ञापयित्रीमिव योगविद्याजन्यां वाचम् (**एषः**) (**ते**) (**योनिः**) (**ऋतायुभ्याम्**) आत्मन ऋतमिच्छद्भ्यामिव (**त्वा**) त्वाम् ॥ अयम्मन्त्रः शत० ४ । १ । ४ । १० व्याख्यातः ॥ १० ॥

प्रमाणार्थ—(धेनुम्) 'धेनु' शब्द निघं० (१ । ११) में वाणी-नामों में पढ़ा है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । १ । ४ । १०) में की गई है ॥ ७ । १० ॥

सपदार्थान्वयः—हे **ससवांसः** संविभक्ताः **देवाः** ! विद्वांसः ! **वयं** पुरुषार्थिनः **यवसेन** अभीष्टेन तृणबुसादिना **गावः** गवादयः पशवः **इव** **हव्येन** ग्रहीतव्येन **राया** धनेन सह **मदेम** हृष्येम ।

हे **मित्रावरुणा** ! प्राणवत् सखायावुत्तमौजनौ ! **युवं**=**युवां** **नः**=**अस्मभ्यं** **विश्वाहा**=**विश्वान्यहानि** सर्वाणि दिनानि **अनपस्फुरन्तीं** विज्ञापयित्रीमिव योगविद्याजन्यां वाचं **तां** **धेनुं** धयति=पिबत्यानन्दरसमनया तां **धत्तम्** ।

हे **यजमान** ! **यस्यैव ते विद्याबोधो योनिरस्ति**-**अत ऋतायुभ्यम्** आत्मन ऋतमिच्छद्भ्यामिव **सहितं** **त्वा**=**त्वां** **वयं** पुरुषार्थिनः **आददीमहे** ॥ ७ । १० ॥

भाषार्थ—हे (**ससवांसः**) बुरे-भले कर्मों का विवेक करने वाले (**देवाः**) विद्वानो ! (**वयम्**) हम पुरुषार्थी लोग, (**यवसेन**) अभीष्ट तृण, भूसा आदि से (**गावः**) गौ आदि पशुओं के समान (**हव्येन**) ग्रहण करने योग्य (**राया**) धन से (**मदेम**) प्रसन्न रहें ।

हे (**मित्रावरुणा**) प्राण के समान सखा, उत्तम अध्यापक और शिष्य जनो ! (**युवम्**) तुम दोनों (**नः**) हमारे लिये (**विश्वाहा**) सब दिन (**अनपस्फुरन्तीम्**) सब विद्याओं का उपदेश करने वाली, योगविद्या से उत्पन्न वेदवाणी जो (**धेनुम्**) आनन्द-रस का पान कराने वाली कामधेनु है, उसे (**धत्तम्**) धारण करो ।

हे यजमान ! यह तेरा विद्याबोध (**योनिः**) घर के समान दुःख का निवारण करने वाला है, इसलिये (**ऋतायुभ्याम्**) उक्त अध्यापक और शिष्य दोनों विद्या के इच्छुक जनों सहित (**त्वा**) आपको (**वयम्**) हम पुरुषार्थी लोग स्वीकार करते हैं ॥ ७ । १० ॥

[हे मित्रावरुणा ! युवं=युवां नः=अस्मभ्यं विश्वाहा=विश्वान्यहान्यनपस्फुरन्तीं तां धेनुं धत्तम्]

भावार्थः — अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ ॥ मनुष्यैः पुरुषार्थेन विद्वत्संगेन च परोपकारनिष्पादयित्रीं कामदुघां वेदवाचं प्राप्यानन्दयितव्यम् ॥ ७ । १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचक लुप्तपमा अलङ्कार है ॥ सब मनुष्य पुरुषार्थ और विद्वानों के संग से परोपकार को सिद्ध करने वाली कामधेनु रूप वेदवाणी को प्राप्त करके आनन्द में रहें ॥ ७ । १० ॥

भा० पदार्थः—अनपस्फुरन्तीम्=परोकारनिष्पादयित्रीं वेदवाचम् । धेनुम्=कामदुघाम् ॥

भाष्यसार—**योगविद्या के अध्यापक और शिष्य के कर्म**—विद्वान् लोग सत्य और असत्य को संविभक्त करने वाले होते हैं और पुरुषार्थी लोग, जैसे गौ आदि पशु उत्तम तृण घास, और भूसा आदि से प्रसन्न होते हैं, वैसे ग्रहण करने योग्य धन से बड़े प्रसन्न होते हैं ।

योगविद्या के अध्यापक और शिष्य प्राण और उदान के समान पर परस्पर सखा होते हैं । वे दोनों सदा परोपकार को सिद्ध करने वाली, सब विद्याओं का उपदेश करने वाली, योगविद्या से प्राप्त करने योग्य, आनन्द रस का पान कराने वाली, कामधेनु रूप वेदवाणी को धारण करते हैं ।

जैसे घर सब दुःखों का निवारण करके सब सुख प्रदान करता है, उसी प्रकार विद्याबोध भी

दुःखों का निवारक और सुखों का उत्पादक है। इसलिये सब मनुष्य पुरुषार्थ से और आत्मा से विद्या (**विज्ञान**) की कामना करने वाले विद्वानों के सङ्ग से उक्त वेदवाणी को प्राप्त करके सदा आनन्द में रहें॥ ७। १०॥

मेधातिथिः। **अश्विनौ**=**योगाध्येत्रध्यापकौ**॥ ब्राह्मी उष्णिक्। ऋषभः॥

पुनरप्येतयोः कर्त्तव्यमुपदिश्यते॥

फिर भी इन योगविद्या पढ़ने पढ़ाने वालों के करने योग्य काम का उपदेश किया है॥

या वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती। तया यज्ञं मिमिक्षतम्।
उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वैष ते योनिर्माध्वीभ्यां त्वा॥ ११॥

पदार्थः—(**या**) (**वाम्**) युवयोः (**कशा**) वाणी। कशेति वाङ्नामसु पठितम्॥ निघं० १। ११॥ (**मधुमती**) प्रशस्तमाधुर्य्यगुणयुक्तेव। (**अश्विना**) सूर्य्यचन्द्रवत् प्रकाशमानौ (**सूनृतावती**) उषा इव (**तया**) (**यज्ञम्**) योगम् (**मिमिक्षतम्**) सेक्तुमिच्छतम् (**उपयामगृहीतः**) उपनियमैः स्वीकृतः (**असि**) (**अश्विभ्याम्**) प्राणापानाभ्याम् (**त्वा**) त्वाम् (**एषः**) (**ते**) तव (**योनिः**) गृहम् (**माध्वीभ्याम्**) सुनीतियोगरीतिभ्याम् (**त्वा**) त्वाम्॥ अयं मंत्रः शत० ४। १। ५। १७ तथा ४। १। ६। १—७॥ व्याख्यातः॥ ११॥

प्रमाणार्थ—'कशा' यह शब्द निघं० (१। ११) में वाणी-नामों में पढ़ा है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४। १। ५। १७ तथा ४। १। ६। १-७) में की गई है॥ ७। ११॥

सपदार्थान्वयः—हे **अश्विनौ** सूर्य-चन्द्रवत् प्रकाशमानौ **योगाध्येत्रध्यापकौ! या वां** युवयोः **मधुमती** प्रशस्तमाधुर्यगुणयुक्तेव **सूनृतावती** उषा इव **कशा** वाणी **अस्ति, तया यज्ञं** योगं **मिमिक्षतं** सेक्तुमिच्छतम्।

हे **योगमभीप्सो! त्वमुपयामगृहीतः** उपनियमैः स्वीकृतः **असि, किंच ते**=**तवैष योगो योनिः** गृहम् **अस्ति, अतोऽश्विभ्यां** प्राणापानाभ्यां **सह वर्त्तमानं** [**त्वा**]=त्वाम्, हे **योगाध्यापक! माध्वीभ्यां** सुनीतियोगरीतिभ्यां **सह वर्त्तमानं च** [**त्वा**]=**त्वां वयमुपाश्रयामः**॥ ७। ११॥

भाषार्थ—हे (**अश्विनौ**) सूर्य और चन्द्र के समान योगविद्या से प्रकाशमान योग के अध्येता और अध्यापक जनो! जो (**वाम्**) तुम दोनों की (**मधुमती**) उत्तम मधुरगुण से युक्त (**सूनृतावती**) उषा के समान अन्धकार को दूर करने वाली (**कशा**) वाणी है, उससे (**यज्ञम्**) योग विद्या को (**मिमिक्षतम्**) बढ़ाने की कामना करो।

हे योग के अध्येता! तू (**उपयामगृहीतः**) यम-नियमों के पालन करने के कारण अपनाया गया है, और (**ते**) तेरा जो (**एषः**) यह योग (**योनिः**) घर के समान सुखदायक है, इसलिये (**अश्विभ्याम्**) प्राण और अपान से युक्त [**त्वा**] तुझको, तथा—हे योग के अध्यापक! (**माध्वीभ्याम्**) उत्तम आचरण और योगरीति से युक्त [**त्वा**] तुझ को हम लोग अपना आश्रय मानते हैं॥ ७। ११॥

[हे **अश्विनौ**=**योगाध्येत्रध्यापकौ या वां मधुमती**······**कशाऽस्ति तया यज्ञं मिमिक्षतम्**]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः॥ योगिनो मधुरवाचाध्येतॄन् प्रतियोगमुपदिशेयुः।

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है॥ योगी लोग मधुर वाणी से शिष्यों को योग का उपदेश करें।

[ते=तवैष योगो योनिरस्ति]

आत्मसर्वस्वं योगमेव मन्येरन् ।	वे योग को ही अपना सर्वस्व समझें ।

[हे योगाध्यापक ! माध्वीभ्यां सह वर्तमानं च [त्वा]=त्वां वयमुपाश्रयामः]

इतरे जनास्तादृशं योगिनं सर्वत्राऽऽश्रयेयुरिति ॥ ७ । ११ ॥	दूसरे लोग ऐसे योगी का सर्वत्र सङ्ग करें ॥ ७ । ११ ॥

भाष्यसार—१. **योग के अध्यापक और अध्येता का कर्त्तव्य**—योग का अध्यापक योग-विद्या का सूर्य है और योग का अध्येता शिष्य चन्द्र है। वह योगाध्यापक सूर्य से योगविद्या के प्रकाश को ग्रहण करता है। इस प्रकार दोनों सूर्य-चन्द्रमा के समान योग-विद्या से प्रकाशमान रहें और उषा के समान अन्धकार को दूर करने वाली मधुर वाणी से योगविद्या को सींचने (बढ़ाने) की कामना करें। अपने शिष्यों के लिये योग का उपदेश करें। और योग को ही अपना सर्वस्व समझें।

सब लोग यम-नियमों का पालन करने वाले योगाभिलाषी पुरुष का सङ्ग करें। क्योंकि उसका जो योग है, वह घर के समान दुःख का निवारण करने वाला और सब सुखों का देने वाला है। तथा वह प्राण-अपान रूप योग विद्या से युक्त है। और जो योग का अध्यापक है, उसका भी सङ्ग करें क्योंकि वह भी उत्तम आचरण और योगरीति का ज्ञाता है।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि योगाध्यापक सूर्य के समान योग विद्या से प्रकाशमान है तथा योगाध्येता शिष्य चन्द्र के समान है। जैसे चन्द्र सूर्य से प्रकाश ग्रहण करता है, इसी प्रकार योगाध्येता शिष्य योगाध्यापक रूप सूर्य से योगविद्या रूप प्रकाश ग्रहण करता है। दूसरी उपमा यह है कि योग के अध्यापक और अध्येता की वाणी उषा के समान है। जैसे उषा अन्धकार का विनाश करके प्रकाश का विस्तार करती है वैसे उनकी वाणी भी अविद्या-अन्धकार का विनाश करके योगविद्या रूप प्रकाश का विस्तार करती है॥ ❁

वत्सारः काश्यपः। **विश्वेदेवाः**=**विद्वांसः**। निचृदार्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः।
उपयामगृहीत इत्यस्य पङ्क्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः॥

पुनर्योगिगुणाः उपदिश्यन्ते ॥

फिर भी योगी के गुणों का उपदेश किया है॥

तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा ज्येष्ठतातिं बर्हिषदंꣳस्वर्विदम् ।
प्रतीचीनं वृजनं दोहसे धुनिमाशुं जयन्तमनु यासु वर्द्धसे ।
उपयामगृहीतोऽसि शण्डाय त्वैष ते योनिर्वीरतां पाह्यपमृष्टः शण्डो देवास्त्वा
शुक्रपाः प्रणयन्त्वनाधृष्टासि ॥ १२ ॥

पदार्थः—(**तम्**) योगम् (**प्रत्नथा**) प्राक्तनानां योगिनामिव (**पूर्वथा**) पूर्वेषां योगिनामिव (**विश्वथा**) सर्वेषामिव (**इमथा**) इदानीन्तनानामिव (**ज्येष्ठतातिम्**) प्रशस्तं ज्येष्ठम् (**बर्हिषदम्**) यो बर्हिरन्तरिक्षे सीदति तम् (**स्वर्विदम्**)स्वः=सुखं वेदयति तम् (**प्रतीचीनम्**) अविद्यादिदोषेभ्यः प्रतिकूलम् (**वृजनम्**) योगबलम् (**दोहसे**) प्रपिपर्षि (**धुनिम्**) इन्द्रियकम्पकम् (**आशुम्**) शीघ्रं सिद्धप्रदम् (**जयन्तम्**) उत्कर्षप्रापकम् (**अनु**) क्रियायोगे (**यासु**) कुशलासु (**वर्द्धसे**) शमादिषु स्वात्मानमुन्नयसि (**उपयामगृहीतः**) उप-

यामाः=शौचादयो नियमा गृहीता येन सः (**असि**) वर्त्तसे (**शण्डाय**) (**त्वा**) त्वाम (**एषः**) योगयुक्तः स्वभावः (**ते**) योगविद्याध्यापकस्य तव (**योनिः**) सुखहेतुः (**वीरताम्**) वीरस्य भावम् (**पाहि**) रक्ष (**अपमृष्टः**) अपमृज्यते=दूरीक्रियतेऽविद्यादिक्लेशैर्यः सः, शुद्धः (**शण्डः**) शमान्वितः (**देवाः**) देदीप्यमाना योगिनः (**त्वा**) त्वाम् (**शुक्रपाः**)शुक्रं=योगवीर्य्यं योगबलं वा पान्ति ते (**प्र**) (**नयन्तु**) (**अनाधृष्टा**) समन्ताद्धर्षितुमनर्हा (**असि**) अस्तु ॥ **अयं मंत्रः शत० ४ । १ । ६ । ९—१५ व्याख्यातः ॥ १२ ॥**

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत०(४ । १ । ६ । ९–१५) में की गई है ॥ ७ । १२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **योगिन्** ! **त्वमुपयामयामगृहीतः** उपयामाः=शौचादयो नियमा गृहीता येन स **असि** वर्त्तसे, **ते=तव** योगविद्याध्यापकस्य तव **एष=योगस्वभावः** योगयुक्तः स्वभावः **योनिः=सुखहेतुरस्ति ।**

येन योगेन त्वमपमृष्टः अपमृज्यते=दूरीक्रियतेऽविद्यादिक्लेशैर्यः स शुद्धः **शण्डः** शमान्वितः **असि** वर्त्तसे, **यासु** कुशलासु **योगक्रियासु** त्वं **वर्द्धसे** शमादिषु स्वात्मानमुन्नयसि, **विश्वथा** सर्वेषामिव **प्रत्नथा** प्राक्तनानां योगिनामिव **पूर्वथा** पूर्वेषां योगिनामिव **इमथा** इदानीन्तनानामिव **ज्येष्ठतातिं** प्रशस्तं ज्येष्ठं **बर्हिषदं** यो बर्हिरन्तरिक्षे सीदति तं **स्वर्विदं** स्वः=सुखं वेदयति तं **प्रतीचीनम्** अविद्यादिदोषेभ्यः प्रतिकूलम् **आशुं** शीघ्रं सिद्धिप्रदं **जयन्तम्** उत्कर्षप्रापकं **धुनिम्** इन्द्रियकम्पकं **वृजनं** योगबलं **दोहसे** प्रपिपर्सि **च, तं योगबलं शुक्रपाः** शुक्रं=योगवीर्यं योगबलं वा पान्ति ते **देवाः** देदीप्यमाना योगिनः **[त्वा]=त्वां प्रणयन्तु, तस्मै शण्डाय तुभ्यमस्य योगस्यानाधृष्टा** समन्ताद्धर्षितुमनर्हा **वीरता [असि] अस्तु, त्वमिमां वीरतां** वीरस्य भावं **पाहि** रक्ष **तदनु त्वामियं वीरता पातु** ॥ ७ । १२ ॥

भाषार्थ—हे योगिन् ! आप (**उपयामगृहीतः**) शौच, सन्तोष आदि योग-नियमों से युक्त (**असि**) हो, और जो (**ते**) योग विद्या के अध्यापक आपका (**एषः**) यह योगयुक्त स्वभाव है वह (**योनिः**) सुख का हेतु है ।

और जिस योग से आप (**अपमृष्टः**) अविद्या आदि क्लेशों से दूर होकर शुद्ध तथा (**शण्डः**) शान्ति से युक्त (**असि**) हो, और (**यासु**) जिन कुशल योग क्रियाओं में आप (**वर्द्धसे**) शम आदि गुणों में अपने आत्मा को उन्नत करते हो, और जिसे (**विश्वथा**) सब (**प्रत्नथा**) प्राचीन (**पूर्वथा**) हम से पूर्ववर्ती और (**इमथा**) वर्तमान काल के योगियों के समान (**ज्येष्ठतातिम्**) अत्यन्त श्रेष्ठ (**बर्हिषदम्**) हृदयाकाश में स्थित (**स्वर्विदम्**) सुखदायक (**प्रतीचीनम्**) अविद्या आदि दोषों से प्रतिकूल (**आशुम्**) शीघ्र सिद्धि देने वाले (**जयन्तम्**) उत्कर्ष पर पहुँचाने वाले (**धुनिम्**) इन्द्रियों को कंपाने वाले (**वृजनम्**) योगबल को (**दोहसे**) प्रपूर्ण करते हो, उस योग बल को (**शुक्रपाः**) योगबल की रक्षा करने वाले (**देवाः**) योगविद्या से देदीप्यमान योगी लोग [**त्वा**] तुझे (**प्रणयन्तु**) प्रदान करें, और (**शण्डाय**) शम आदि से युक्त तेरे लिये इस योग की (**अनाधृष्टाः**) अदम्य वीरता [**असि**] हो और आप इस [**वीरताम्**] वीरता की रक्षा करें । तत्पश्चात् यह वीरता आपकी रक्षा करें ॥ ७ । १२ ॥

[हे योगिन् !···ते=**तवैष योगस्वभावो योनिः=सुखहेतुरस्ति, ये न योगेन** त्वम् पभृष्टः शण्डोऽसि, यासु योगक्रियासु त्वं **वर्द्धसे**···**प्रतीचीनं**···वृजन दोहसे, तं योगबल शुक्रपा देवाः [त्वा] =त्वां प्रणयन्तु]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः ॥ हे योगिन ! यथा शमादिगुणप्रसक्तः पुरुषो योगबलेन विद्या-

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है ॥ हे योगी ! जैसे शम आदि गुणों से युक्त पुरुष

बलमुन्नेतुं शक्नोति, सा चाविद्याध्वान्तौघविध्वंसिनी योगविद्या पुरुषानभ्येत्ययथार्थं सुखयति, तथा त्वामपि सुखयतु ॥ ७ । १२ ॥

योगबल से विद्याबल को उन्नत कर सकता है और अविद्या अन्धकार के दल को नष्ट करने वाली योगविद्या पुरुषों को प्राप्त होकर यथार्थ सुख देती है, वैसे तुझे भी सुख प्रदान करे ॥ ७ । १२ ॥

भा० पदार्थः—शण्डः=शमादिगुणप्रसक्तः पुरुषः । वर्द्धसे=विद्याबलमुन्नेतुं शक्नोषि । प्रतीचीनम्=अविद्याध्वान्तौघविध्वंसनम् ॥

भाष्यसार—१. **योगी के गुण**—योगी, शौच, सन्तोष आदि नियमों से युक्त होता है। योग विद्या के अध्यापक योगी का योगयुक्त स्वभाव सुख का हेतु होता है । योगी अविद्या आदि क्लेशों से दूर होने से शुद्ध और शम आदि गुणों से युक्त होता है । योग क्रियाओं में कुशल होकर वह शम आदि गुणों से अपनी आत्मा को उन्नत करता है ।

योगी सब प्राचीन, पूर्ववर्ती और अर्वाचीन योगियों के समान योग-बल का दोहन करता है। जो योगबल अत्यन्त श्रेष्ठ, हृदय रूप आकाश में विराजमान, सुखदायक, अविद्यान्धकार का विनाशक, प्रत्येक कार्य में शीघ्र सिद्धि प्रदान करने वाला, उत्कर्ष पर पहुँचाने वाला और इन्द्रिय-दोषों का शोधक है। इस योगबल की रक्षा करने वाले योगविद्या से देदीप्यमान योगी लोग इस योग बल को योग जिज्ञासुओं को प्रदान करते हैं । जो शमादि गुणों से युक्त योगी है, उसके योग बल से अदम्य वीरता उत्पन्न होती है । योगी उस वीरता की रक्षा करता है और वीरता उसकी रक्षा करती है ॥

२. **अलंकार**--इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है । उपमा यह है कि योगविद्या योगी पुरुष के समान अन्य पुरुषों को भी प्राप्त होकर सुख-प्रदान करे ॥

३. **नियम**—शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान ॥

४. **क्लेश**—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष अभिनिवेश ॥

५. **शम आदि**--शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान । इस शम-आदि षट्क सम्पत्ति की व्याख्या सत्यार्थप्रकाश नवमसमुल्लास में देख लेवें ॥

वत्सारः कश्यपः । **विश्वेदेवाः**=**विद्वांसः** । निचृदार्षीत्रिष्टुप् । धैवतः । शुक्रस्येत्यस्य प्राजापत्या गायत्री । षड्जः ॥

उक्तयोगमनुष्ठाता योगी कीदृग् भवतीत्युपदिश्यते ॥

उक्त योग का अनुष्ठान करने वाला योगी कैसा होता है, यह उपदेश किया है ॥

सुवीरो वीरान् प्रजनयन् परीह्यभि रायस्पोषेण यजमानम् ।
संजग्मानो दिवा पृथिव्या शुक्रःशुक्रशोचिषा निरस्तः शण्डः शुक्रस्याधिष्ठानमसि ॥ १३ ॥

पदार्थः—(**सुवीरः**) शोभनश्चासौ वीर इव (**वीरान्**) उत्कृष्टगुणान् (**प्रजनयन्**) निष्पादयन्नेव (**परि**) सर्वतः (**इहि**) प्राप्नुहि (**अभि**) आभिमुख्ये (**रायः**) धनस्य (**पोषेण**) पुष्ट्या (**यजमानम्**) दातारम् (**संजग्मानः**) संगतवान् (**दिवा**) सूर्य्येण (**पृथिव्या**) भूम्या सह (**शुक्रः**) वीर्य्यवान् (**शुक्रशोचिषा**) शुक्रस्य=शोधकस्य सूर्य्यस्य शोचिर्दीपनं तेनेव (**निरस्तः**) निःसारितोऽन्धकार इव (**शण्डः**) शमादिसहितः (**शुक्रस्य**) शोधकस्य योगस्य (**अधिष्ठानम्**) अधितिष्ठन्ति यस्मिन्निति तत् (**असि**) ॥ **अयं मन्त्रः शतः ४ । २ । १ । १६ व्याख्यातः ॥ १३ ॥**

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४।२।१।१६) में की गई है ॥ ७। १३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे योगिन् ! **सुवीरः** शोभनश्चासौ वीर इव त्वं **वीरान्** उत्कृष्टगुणान् **प्रजनयन्** निष्पादयन्नेव **परि+इहि** सर्वतः प्राप्नुहि, **एवं यजमानं** दातारम् **अभि** अभिमुख्येन **रायः** धनस्य **पोषेण** पुष्ट्या **संजग्मानः** संगतवान् **दिवा** सूर्येण **पृथिव्या** भूम्या सह **शुक्रः** वीर्य्यवान् **शुक्रशोचिषा** शुक्रस्य=शोधकस्ये सूर्यस्य शोचिर्दीपनं तेनेव **निरस्त एव**=विषयवासनारहितः निःसारितोऽन्धकार इव **शण्डः** शमादिसहितः **त्वं शुक्रस्य** शोधकस्य योगस्य **अधिष्ठानम्** अधितिष्ठन्ति यस्मिन्निति तत् **असि** ॥ ७। १३ ॥

भाषार्थ—हे योगी ! (**सुवीरः**) श्रेष्ठ वीर के समान तू (**वीरान्**) उत्कृष्ट गुणों को (**प्रजनयन्**) उत्पन्न करता हुआ हो। (**परि+इहि**) सब ओर प्राप्त हो। इस प्रकार (**यजमानम्**) दाता को (**अभि**) सब ओर से (**रायः**) धन की (**पोषेण**) पुष्टि से (**संजग्मानः**) संगत करके, (**दिवा**) सूर्य और (**पृथिव्या**) भूमि के सहाय से (**शुक्रः**) वीर्यवान् होकर (**शुक्रशोचिषा**) शुक्र अर्थात् शुद्धिकारक सूर्य के प्रकाश के समान (**निरस्त**) अविद्यान्धकार एवं वासना से रहित तथा (**शण्डः**) शम आदि गुण सहित तू (**शुक्रस्य**) इन्द्रिय दोषों के शोधक योग का (**अधिष्ठानम्**) आधार (**असि**) है ॥ ७। १३ ॥

[**हे योगिन् !......त्वं वीरान् प्रजनयन् परीहि,......शुक्रशोचिषा निरस्त एव विषयवासनारहितः... शण्डस्त्वं शुक्रस्याधिष्ठानमसि**]

भावार्थः—शमदमादिगुणाधिष्ठानो योगाभ्यासनिरतो योगी स्वयोगविद्याप्रचारेण जिज्ञासूनामात्मवलं वर्द्धयन् सर्वथा सूर्य इव प्रकाशमानो भवति ॥ ७। १३ ॥

भावार्थ—शम, दम आदि गुणों का आधार, योगाभ्यास में रत योगी अपने योग-विद्या के प्रचार से जिज्ञासुओं के आत्मबल को बढ़ाता हुआ सर्वथा सूर्य के समान प्रकाशमान होता है ॥ ७। १३ ॥

भाष्यसार—**योगी कैसा होता है**—योगी श्रेष्ठ वीर-पुरुष के समान उत्कृष्ट गुणों को उत्पन्न करने वाला होता है। योगाभ्यास में रत योगी सब ओर प्राप्त होता है अर्थात् अपनी योगविद्या का प्रचार करता है। अपने यजमानों अर्थात् योगविद्या के जिज्ञासुओं को योगधन की पुष्टि से संगत करता है, उनके आत्मबल की वृद्धि करता है। सूर्य और भूमि आदि पदार्थों के उपयोग से बलवान् होकर सूर्य के समान प्रकाशमान होता है, अविद्या अन्धकार को नष्ट करता है, विषय वासना से रहित और शम-दम आदि गुणों से सहित होकर इन्द्रिय-दोषों के शोधक योग के शम-दम आदि गुणों का अधिष्ठान होता है ॥ ७। १३ ॥

वत्सारः काश्यपः। **विश्वेदेवाः=विद्वांसः**। विराड् जगतीः। निषादः॥

अथ शिष्यायाध्यापककृत्यमाह ॥

अब शिष्य के लिये अध्यापक के कर्त्तव्य का उपदेश किया है ॥

अच्छिन्नस्य ते देव सोम सुवीर्य्यस्य रायस्पोषस्य ददितारः स्याम ।
सा प्रथमा सँस्कृतिर्विश्ववारा स प्रथमो वरुणो मित्रो ऽ अग्निः ॥ १४ ॥

पदार्थः—(**अच्छिन्नस्य**) अखण्डितस्य (**ते**) तुभ्यं तव वा (**देव**) योगजिज्ञासो (**सोम**) प्रशस्तगुण शिष्य ! (**सुवीर्य्यस्य**) शोभनानि वीर्य्याणि=पराक्रमाणि यस्मात् तस्येव (**रायः**) सर्वविद्याजनितस्य बोधधनस्य (**पोषस्य**) पुष्टेः (**ददितारः**) (**स्याम**) (**सा**) (**प्रथमा**) आदिमा (**संस्कृतिः**) विद्यासुशिक्षाजनिता

नीतिः (विश्ववाराः) सर्वैरेव स्वीकर्त्तुं योग्या (सः) (प्रथमः) (वरुणः) श्रेष्ठः (मित्रः) सखा (अग्निः) पावक इव देदीप्यमानः ।। अयं मन्त्रः शत० ४ । २ । १ । २२–२७ व्याख्यातः ॥ १४ ॥

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । २ । १ । २२–२७) में की गई है ॥ ७ । १४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **देव** ! योग-जिज्ञासो ! **सोम** ! प्रशस्तगुण शिष्य ! **वयमध्यापकास्ते**=**तुभ्यं सुवीर्यस्य** शोभनानि वीर्याणि=पराक्रमाणि यस्मात् तस्य **इव अच्छिन्नस्य** अखण्डितस्य **रायः** सर्वविद्याजनितस्य बोधधनस्य **पोषस्य** पुष्टेः **ददितारः स्याम, या प्रथमा** आदिमा **विश्ववारा** सर्वैरेव स्वीकर्तुं योग्या **संस्कृतिः** विद्यासुशिक्षाजनिता नीतिः **अस्ति, सा तुभ्यं सुखदा भवतु ।**

यो ऽस्माकं मध्ये वरुणः श्रेष्ठः **अग्निरिव** पावक इव देदीप्यमानः **अध्यापकोऽस्ति, स प्रथमस्ते** तव **मित्रः** सखा **भवतु** ।। ७ । १४ ॥

भाषार्थ—हे (**देव**) योग के जिज्ञासु ! (**सोम**) उत्तम गुण युक्त शिष्य ! हम अध्यापक लोग (**ते**) तेरे लिये (**सुवीर्यस्य**) उत्तम बल पराक्रम के समान (**अच्छिन्नस्यं**) अखण्डित (**रायः**) सब विद्याओं से उत्पन्न बोध-धन की (**पोषस्य**) पुष्टि के (**ददितारः**) दाता (**स्याम**) हों, और जो (**प्रथमा**) आदिम (**विश्ववारा**) सब से स्वीकार करने योग्य (**संस्कृतिः**) विद्या और सुशिक्षा से उत्पन्न नीति है वह तेरे लिये सुखदायक हो ।

और—जो हमारे मध्य में (**वरुणः**) श्रेष्ठ (**अग्निः**) अग्नि के समान विद्या से देदीप्यमान अध्यापक है वह (**प्रथम**) पहला (**ते**) तेरा (**मित्र**) सखा हो ॥ ७ । १४ ॥

[हे देव !···वयमध्यापकास्ते=तुभ्यं···रायस्पोषस्य ददितारः स्याम]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः ॥ योगविद्या-सम्पन्नमनसां योगिनां योग्यतास्ति—जिज्ञासुभ्यो नित्यं योगविद्यां प्रदाय ते सुशरीरात्मबलाः सम्पादनीयाः ॥ ७ । १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है ॥ योगविद्या से युक्त मन वाले योगियों को योग्य है कि वे योगजिज्ञासुओं को योगविद्या प्रदान करके उन्हें उत्तम शरीर और आत्मा के बल से युक्त करें ॥ ७ । १४ ॥

भाष्यसार—१. **शिष्य के लिये अध्यापक का कर्त्तव्य**—योगविद्या के अध्यापक उत्तम गुण वाले योगविद्या के जिज्ञासु शिष्य को उत्तम बल पराक्रम के समान अखण्डित ज्ञान-धन की पुष्टि प्रदान करें। और उन्हें नित्य योग-विद्या प्रदान करके शारीरिक और आत्मिक बल से सम्पन्न बनावें । और जो प्रथम, सब से स्वीकार करने योग्य संस्कृति है उसे शिष्यों के लिये सुखद बनावें । और श्रेष्ठ, अग्नि के समान योगविद्या से देदीप्यमान अध्यापक शिष्यों के सखा हों ॥

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि जैसे अग्नि प्रकाश से देदीप्यमान है वैसे अध्यापक योगविद्या से देदीप्यमान हो ॥ ७ । १४ ॥

वत्सारः काश्यपः । **विश्वेदेवाः**=विद्वांसः ॥ निचृिदब्राह्म्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

अथ स्वामिसेवककृत्यमाह ॥

अब स्वामी और सेवक के कर्म्म का उपदेश किया है ॥

स प्र॒थमो बृह॒स्पति॑श्चिकि॒त्वाँस्तस्मा॑ ऽ इन्द्रा॑य सु॒तमाजु॑होत॒ स्वाहा॑ ।
तृ॒म्पन्तु॒ होत्रा॒ मध्वो॒ याः स्वि॑ष्टा॒ याः सुप्री॑ता॒ सुहु॑ता॒ यत्स्वाहाया॑डग्नीत् ॥ १५ ॥

पदार्थः—(सः) (**प्रथमः**) आदिमः (**बृहस्पतिः**) बृहत्या विद्यायुक्ताया वाचः पालकः (**चिकित्वान्**) विज्ञानवान् (**तस्मै**) (**इन्द्राय**) ऐश्वर्य्याय (**सुतम्**) निष्पदितं व्यवहारम् (**आजुहोत**) आदत्त (**स्वाहा**) सत्यां वाचम् (**तृम्पन्तु**) प्रीणन्तु (**होत्राः**) स्वीकर्तुमर्हाः (**मध्वः**) माधुर्यादिगुणोपेताः (**याः**) (**स्विष्टाः**) शोभनानीष्टानि याभ्यस्ताः (**याः**) (**सुप्रीताः**) सुप्रसन्नाः (**सुहुताः**) सुष्ठु हुतानि योगादानरूपाणि कर्म्माणि याभिर्योगिनीभिः स्त्रीभिस्ताः (**यत्**) या (**स्वाहा**) शोभनया वाचा (**अयाट्**) अयाक्षीत् (**अग्नीत्**) संप्रेषितः ।। अयम्मन्त्रः शत० ४ । २ । १ । २७–२८ व्याख्यातः ॥ १५ ॥

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । २ । १ । २७–२८) में की गई है ॥ ७ । १५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे शिष्याः ! **यूयं यथा स पूर्वोक्तो मित्रः प्रथमः** आदिमः **चिकित्वान्** विज्ञानवान् **बृहस्पतिः** बृहत्याः=विद्ययुक्ताया वाचः पालकः **यस्मै प्रयतेत, तस्मै इन्द्राय** ऐश्वर्याय **स्वाहा** सत्यां वाचं **सुतं** निष्पादितं व्यवहारम् **आजुहोत** आदत्त **तथा यत्=यः होत्राः** स्वीकर्तुमर्हाः **या मध्वः** माधुर्यादिगुणोपेताः **स्विष्टाः** शोभनानीष्टानि याभ्यस्ताः **याः सुहुताः** सुष्ठु हुतानि=योगादानरूपाणि कर्माणि याभिर्योगिनीभिः स्त्रीभिस्ताः **सुप्रीताः** सुप्रसन्नाः स्त्रियोऽग्नीत् सम्प्रेषितः **कश्चिद्योगी च स्वाहा** शोभनया वाचा **अयाट्** अयाक्षीत् **तथा भवन्तस्तृम्पन्तु** प्रीणन्तु ।। ७ । १५ ।।

भाषार्थ—हे शिष्यो ! तुम जैसे वह पूर्वोक्त मित्र (**प्रथमः**) आदिम (**चिकित्वान्**) विज्ञानवान् (**बृहस्पतिः**) विद्यायुक्त वाणी का पालक विद्वान् (**यस्मै**) जिस ऐश्वर्य के लिये प्रयत्न करे उस (**इन्द्राय**) ऐश्वर्य के लिये (**स्वाहा**) सत्यवाणी और (**सुतम्**) श्रेष्ठ व्यवहार को (**आजुहोत**) ग्रहण करो । और—(**यत्**) जो (**होत्राः**) स्वीकार करने योग्य तथा जो (**मध्वः**) मधुरता आदि गुणों से युक्त (**स्विष्टाः**) शुभ कर्मों से प्रेम करने वाली और जो (**सुहुताः**) उत्तम योग को ग्रहण करने वाली (**सुप्रीता**) सदा प्रसन्न रहने वाली योगिनी स्त्रियाँ हैं, वे और जो (**अग्नीत्**) सत्प्रेरणा से युक्त कोई योगी है, वह (**स्वाहा**) उत्तम वाणी से (**अयाट्**) तृप्त करता है, वैसे आप लोग भी (**तृम्पन्तु**) तृप्त करें ।। ७ । १५ ।।

[हे शिष्याः ! यूयं यथा स पूर्वोक्तो ··· **बृहस्पतिर्यस्मै प्रयतेत तस्मै इन्द्राय स्वाहा सुतमाजुहोत, तथा यत्=** तथा होत्राः···स्त्रियो, ऽग्नीत् **कश्चिद् योगी च स्वाहाऽयाट् तथा भवन्तस्तृम्पन्तु**]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ यथा योगिनो विद्वांसो योगिन्यो विदुष्यश्च परमैश्वर्यप्राप्तये प्रयतन्ते, यथा वा सेवकः स्वामिसेवनमाचरति तथैवान्यैस्तत्तत्कर्मणि प्रवृत्त्य स्वाभीष्टसिद्धिः सम्पादनीया ॥ ७ । १५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ जैसे योगी विद्वान् और योगिनी विदुषियाँ परम ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करते हैं, और जैसे सेवक स्वामी की सेवा करता है, वैसे ही अन्य लोगों को अपने अपने कामों में प्रवृत्त होकर अपने अभीष्ट की सिद्धि करनी चाहिये ॥ ७ । १५ ॥

भाष्यसार—१. **स्वामी और सेवक का कर्त्तव्य**—यहाँ स्वामी का अभिप्राय विद्वान् योगी और सेवक का अभिप्राय योग-जिज्ञासु शिष्य है । स्वामी अपने सेवक अर्थात् शिष्य से कहता है कि हे शिष्य ! जैसे पूर्वोक्त सब का सखा, आदिम, विज्ञानवान्, विद्या से युक्त वाणी का पालक बृहस्पति जिस योग-ऐश्वर्य के लिये प्रयत्न करता है, उसके लिये तू भी सत्यवाणी और श्रेष्ठ व्यवहार को ग्रहण

कर। योगिनी विदुषी स्त्रियाँ जो स्वीकार करने के योग्य हैं, मधुरभाषण आदि गुणों से भूषित हैं, जिन्हें शुभ कार्य प्रिय हैं, उत्तम योग रूप शुभ कर्मों को ग्रहण करने वाली हैं और जो अत्यन्त प्रसन्न रहती हैं, जैसे वे योग रूप परम ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करती हैं, और उत्तम वाणी सब को तृप्त करती हैं, वैसे तू भी कर। और जैसे सत्प्रेरणा देने वाला कोई विद्वान् योगी योग रूप परम ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करता है, तथा उत्तम वाणी से सबको तृप्त करता है, वैसे तू भी कर।

जैसे यह स्वामी और सेवक अपने-अपने कर्त्तव्य पर आरूढ़ रहकर सिद्धि को प्राप्त करते हैं, वैसे अन्य लोग भी अपने-अपने कार्यों में प्रवृत्त रह कर अपने अभीष्ट कार्यों को सिद्ध करें॥

२. अलङ्कार—यहाँ मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि शब्द लुप्त होने से वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है जैसे—विद्वान् योगी और विदुषी योगिनी योग रूप परम ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते हैं, वैसे सेवक योगजिज्ञासु शिष्य भी प्रयत्न करें॥ ७। १५॥

वत्सारः काश्यपः। **विश्वेदेवाः**=विद्वांसः॥ आद्यस्य निचृदार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः।
उपयाम इत्यस्य साम्नी गायत्री। षड्जः॥

अथ सभाध्यक्षेण राज्ञा किं कर्त्तव्यमित्युपदिश्यते॥

अब सभाध्यक्ष राजा को क्या करना चाहिये, इस विषय का उपदेश किया है॥

अयं वेनश्चोदयत् पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायू रजसो विमाने।
इममपाᳬसङ्गमे सूर्यस्य शिशुं न विप्रा मतिभी रिहन्ति।
उपयामगृहीतोऽसि मर्काय त्वा॥ १६॥

पदार्थः—(**अयम्**) (**वेनः**) कमनीयश्चन्द्रः (**चोदयत्**) प्रेरयति अत्र लडर्थे लङडभावश्च (**पृश्निगर्भाः**) पृश्निरन्तरिक्षं गर्भो येषां ते पृश्निगर्भाः (**ज्योतिर्जरायुः**) ज्योतिषां जरायुरिवाच्छादकः (**रजसः**) लोकसमूहस्य (**विमाने**) विगतं मानं=परिमाणं यस्यान्तरिक्षस्य तस्मिन् (**इमम्**) प्रत्यक्षम् (**अपाम्**) जलानाम् (**संगमे**) संग्राम इव। संगम इति 'संग्रामनामसु पठितम्॥ निघं० २। १७॥ (**सूर्य्यस्य**) मार्तण्डस्य (**शिशुम्**) शासनीयं=कुमारं=बालकम् (**न**) इव (**विप्राः**) मेधाविनः (**मतिभिः**) बुद्धिभिः (**रिहन्ति**) सत्कुर्वन्ति। रिहंतीत्यर्चतिकर्म्मसु पठितम्॥ निघं० ३। १४॥ (**उपयामगृहीतः**) राज्याङ्गैर्युक्तः (**मर्काय**) मृत्युनिमित्ताय वायवे (**त्वा**) त्वाम्॥ इमं मंत्र निरुक्तकार एवं समाचष्टे—वेनो वेनतेः कान्तिकर्म्मणस्तस्यैषा भवति॥ निरु० १०। ३८॥ अयं वेनश्चोदयत् पृश्निगर्भा प्राष्टवर्णगर्भा आप इति वा ज्योतिर्जरायुर्ज्योतिरस्य जरायुस्थानीयं भवति जरायुजरया गर्भस्य जरया यूयत इति वा। इममपां च संगमने सूर्य्यस्य च शिशुमिव विप्रा मतिभी रिहन्ति लिहन्ति स्तुवंति वर्द्धयन्ति पूजयंतीति वा॥ शिशुः शंसनीयो भवति शिशीतेर्वा स्याद् दानकर्म्मणश्चिरलब्धो गर्भो भवति। निरु०। १०। ३९॥ अयं मंत्रः शत० ४। २। १। १०–११ व्याख्यातः॥ १६॥

प्रमाणार्थ—(**चोदयत्**) यहाँ लट् अर्थ में लङ् लकार और अट् का अभाव है। (**सङ्गमे**) 'सङ्गमे' शब्द निघं० (२। १७) में सङ्ग्राम-नामों में पढ़ा है। (**रिहन्ति**) यह पद निघं० (३। १४) में पूजा-अर्थ वाली क्रियाओं में पढ़ा है।

इस मन्त्र की व्याख्या निरुक्त में (१०। ३८) की है और शतपथ में (४। २। १। १०–११) व्याख्या की है।

सपदार्थान्वयः—हे शिल्पविधिविद्-विद्वन् ! त्वमुपयामगृहीतः राज्याङ्गैर्युक्तः **अस्यतो-ऽहं रजसः** लोकसमूहस्य **मध्ये पृश्निगर्भाः** पृश्निरन्तरिक्षं गर्भो येषां **ते** पृश्निगर्भाः **लोका इव, ज्योतिर्जरायुः** ज्योतिषां जरायुरिवाच्छक **इव, अयं वेनः** कमनीयश्चन्द्रः **चोदयत्** प्रेरयति, **इमं** प्रत्यक्षं **चन्द्रमपां** जलानां **सूर्यस्य** मार्तण्डस्य **संगमे** संग्राम इव **शिशुं** शासनीयं कुमारं बालकं **विप्राः** मेधाविनः **मतिभिः** बुद्धिभिः **रिहन्ति** सत्कुर्वन्ति **न**=इव, **मर्काय=दुष्टानां प्रशमनाय श्रेष्ठव्यवहारस्थापनाय मृत्युनिमित्ताय वायवे च विमाने** विगतं मानं=परिमाणं यस्यान्तरिक्षस्य तस्मिन् **त्वा=त्वां गृह्णामि** ॥ ७ । १६ ॥

भाषार्थ—हे शिल्प विद्या की विधि जानने वाले सभाध्यक्ष विद्वान् ! आप (**उपयामगृहीतः**) राज्य के अङ्गों से युक्त (**असि**) हो, इसलिये **मैं** (**रजसः**) लोकों के मध्य में (**पृश्निगर्भाः**) सब लोक जिसके गर्भ में हैं उस अन्तरिक्ष लोक के समान, (**ज्योतिर्जरायुः**) ज्योतिर्मय तारागणों को जरायु के समान ढांपने वाले के तुल्य (**अयम्**) जो यह (**वेनः**) मनोहर चन्द्रमा (**चोदयत्**) गति करता है, (**इमम्**) इस (**चन्द्रम्**) चन्द्रमा के समान, तथा (**अपाम्**) जल और (**सूर्यस्य**) सूर्य के (**संगमे**) युद्ध के समान, और जैसे (**शिशुम्**) शिक्षा करने योग्य बालक को (**विप्राः**) विद्वान् लोग (**मतिभिः**) विद्या दान से (**रिहन्ति**) सत्कृत करते हैं उस शिशु के समान, और (**मर्काय**) दुष्टों को शान्त करने के लिये तथा श्रेष्ठों के व्यवहार को स्थापित करने के लिये तथा दुष्टों की मृत्यु के हेतु वायुविद्या को जानने के लिये (**विमाने**) परिमाण रहित अन्तरिक्ष में (**त्वाम्**) तुझे स्वीकार करता हूँ ॥ ७ । १६ ॥

[हे शिल्पविधिविद्विद्वन् ! त्वमुपयामगृहीतोऽस्यतोऽहं······**अयं वेनश्चोदयदियं चन्द्रमपां सूर्यस्य संगमे······न=इव, मर्काय=दुष्टानां प्रशमनाय, श्रेष्ठ व्यवहारस्थापनाय च······त्वा=त्वां गृह्णामि**]

भावार्थः—सभाध्यक्षेण सूर्याचन्द्रसोर्गुणानिव श्रेष्ठगुणान् प्रकाशयित्वा दुष्टप्रशमनेन श्रेष्ठ-व्यवहारेण सज्जना आह्लादयितव्याः ॥ ७ । १६ ॥

भावार्थ—सभाध्यक्ष विद्वान् सूर्य और चन्द्रमा के गुणों के समान श्रेष्ठ गुणों को प्रकाशित करके दुष्टों के शमन से श्रेष्ठ व्यवहार के द्वारा सज्जनों को आनन्दित करे ॥ ७ । १६ ॥

भाष्यसार—सभाध्यक्ष राजा का कर्त्तव्य—सभाध्यक्ष विद्वान् राजा शिल्प विद्या की विधि का ज्ञाता हो, राज्य के अङ्गों से युक्त हो, जैसे सब लोक अन्तरिक्ष के गर्भ में हैं, इस प्रकार सब सभाध्यक्ष के अधीन रहें, जैसे चन्द्रमा अपने तेज से ज्योतिर्मय तारागणों को आच्छादित कर लेता है, वैसे सभाध्यक्ष भी अपने तेज से सब को जरायु के समान आच्छादित करने वाला हो, जैसे चन्द्रमा कमनीय है, सबको प्यारा लगता है, वैसे सभाध्यक्ष भी सब को प्रिय लगने वाला एवं सब से प्रेम करने वाला हो, जैसे चन्द्रमा गतिशील है वैसे स्वयं पुरुषार्थी एवं राज्य का संचालन करने वाला हो। जैसे जल अर्थात् मेघ और सूर्य के युद्ध में सूर्य का विजय और मेघ का पराजय होता है, वैसे युद्ध में विजय प्राप्त करने वाला हो। जैसे मेधावी विद्वान् लोग विद्यादान से बालक का सत्कार करते हैं, वैसे सभाध्यक्ष राजा अपनी प्रजा रूप सन्तान का सत्कार करे। प्रजा भी सभासद राजा का पूर्ण सम्मान करे। जैसे उक्त सूर्य और चन्द्रमा पदार्थों को प्रकाशित करते हैं, वैसे सभाध्यक्ष श्रेष्ठ गुणों को प्रकाशित करके दुष्टों का शमन और श्रेष्ठ व्यवहारों की स्थापना कर सज्जनों को आनन्दित करे। सभाध्यक्ष दुष्टों की मृत्यु के लिये वायुविद्या का

ज्ञाता हो। प्रजाजन परिमाणरहित अर्थात् अत्यन्त विशाल प्राङ्गण वाली सभा में सभाध्यक्ष राजा का वरण करे, राजा स्वीकार करे ॥ ७। १६ ॥

वत्सारः काश्यप। **विश्वेदेवाः**=विद्वांसः। स्वराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

सभाध्यक्ष राजा के कर्त्तव्य का फिर उपदेश किया है ॥

मनो न येषु हवनेषु तिग्मं विपः शच्या वनुथो द्रवन्ता।
आ यः शर्य्याभिस्तुविनृम्णोऽअस्याश्रीणीतादिशं गभस्तावेष ते योनिः प्रजाः॥
पाह्यपमृष्टो मर्को देवास्त्वा मन्थिपाः प्रणयन्त्वनाधृष्टासि ॥ १७ ॥

पदार्थः—(मनः) विज्ञानम् (न) इव (येषु) (हवनेषु) धर्म्मगौवादानेषु (तिग्मम्) वज्रवत्तीव्रम्। तिग्ममिति वज्रनामसु पठितम् ॥ निघं० २। २० ॥ (विपः) विविधं पातीति विपो मेधावी। विप इति मेधाविनामसु पठितम् ॥ निघं० ३। १५ ॥ (शच्या) प्रज्ञया। शचीति प्रज्ञानामसु पठितम् ॥ निघं० ३। ९ ॥ (वनुथः)। कामयेथे। वनोतीति कांतिकर्म्मसु पठितम् ॥ निघं० २। ६॥ (द्रवन्ता) गन्तारौ। अत्र सुपां सुलुगित्याकारादेशः ॥ अ० ७। १। ३९ ॥ (आ) (यः) (शर्य्याभिः) गतिभिः (तुविनृम्णः) तुवीनि=बहूनि धनानि यस्य सः। तुवीति बहुनामसु पठितम् ॥ निघं० ३। १ ॥ (अस्य) (अश्रीणीत) श्रीणाति पचति आदिशंदिशमभिव्याप्येव (गभस्तौ) अङ्गुल्या निर्देशे। गभस्तय इत्यङ्गुलीनामसु पठितम् ॥ निघं० २। ५ ॥ (एषः) राजधर्म्मः (ते) तव (योनिः) गृहम् (प्रजाः) संरक्षणीयाः (पाहि) (अपमृष्टः) दूरीकृतः (मर्कः) मरणदुःखदो दुर्नयः (देवाः) विद्वांसः (त्वा) त्वाम् (मन्थिपाः) ये मन्थन्ति शत्रून् तान् वीरान् पांति ते (प्र) (नयंतु) प्रीणयंतु (अनाधृष्टा) अधर्षणीया (असि) लोडर्थे लट्। अयं मन्त्रः शत० ४। १। ६। १२-१५ व्याख्यातः ॥ १७ ॥

प्रमाणार्थ—(तिग्मम्) यह शब्द निघं० (२। २०) वज्र-नामों में पढ़ा है। (विपः) यह शब्द निघं० (३। १५) में मेधावी-नामों में पढ़ा है। (शच्या) 'शची' शब्द निघं० (३। ९) में प्रज्ञा-नामों में पढ़ा है। (वनुथः) कामयेथे। 'वनोति' पद निघं० (२। ६) में कान्ति-अर्थ वाली क्रियाओं में पढ़ा है। (द्रवन्ता) गन्तारौ। यहां 'सुपां सुलुक्०' (अ० ७। १। ३९) इस सूत्र से आकार आदेश है। (तुविनृम्णः) 'तुवि' शब्द निघं० (३। १) में बहु नामों में पढ़ा है। (गभस्तौ) 'गभस्ति' शब्द निघं० (२। ५) में अंगुली-नामों में पढ़ा है। (असि) यहाँ लोट् अर्थ में लट् लकार है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४। १। ६। १२-१५) में की गई है ॥ ७। १७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे शिल्पविद्याविचक्षण सभापते विद्वन्! एषः राजधर्मः ते=तव योनिः गृहम् अस्ति, त्वं यथा यस्तुविनृम्णः तुवीनि=बहूनि धनानि यस्य सः प्रज्ञापतिर्विपः विविधं पातीति विपो मेधावी प्रजाजनश्चैतौ द्वौ युवां येषु हवनेषु धर्मगौवादानेषु शर्याभिः गतिभिः तिग्मं वज्रवत्तीव्रं मनः विज्ञानं न इव [द्रवन्ता]=द्रवन्तौ गन्तारौ सन्तौ शच्या प्रज्ञया सह आवनुथः कामयेथे,

भावार्थ—हे शिल्पविद्या में कुशल सभापति विद्वान्! (एषः, ते) यह तेरा राजधर्म (योनिः) घर के समान सुखदायक है, तू-जैसे जो (तुविनृम्णः) अति धनवान् (विपः) विविध जनों की रक्षा करने वाला मेधावी राजा और प्रजाजन तुम दोनों जिन (हवनेषु) धर्म-कार्यों में (शर्याभिः) नाना चेष्टाओं से (तिग्मं) वज्र के समान तीव्र (मनः) मन के (न) तुल्य [द्रवन्ता] शीघ्र गमन करने वाले होकर

इत्थं प्रत्येकः प्रजाजनोऽस्य गभस्तौ अंङ्गुल्या निर्देशे आदिशं दिशमभिव्याप्येव यथा स्यात्तथा शत्रूना श्रीणीतः श्रीणाति=पचति, मर्कः मरणदुःखदो दुर्नयः चापमृष्टः दूरीकृत भवतु, प्रजाः संरक्षणीयाः पाहि, मन्थिपाः मन्थन्ति शत्रून् तान् वीरान् पान्ति ते देवाः विद्वांसः त्वा=त्वां प्रणयन्तु प्रीणयन्तु ।

(शच्या) बुद्धिपूर्वक (आवनुथः) इच्छा करते हो, इस प्रकार प्रत्येक प्रजाजन (अस्य) इस सभापति के (गभस्तौ) अंगुली के इशारे पर (आदिशम्) दिशाओं को घेर कर जैसे भी हो, वैसे शत्रुओं को (आ+श्रीणीत) भून डाले, और (मर्कः) मृत्यु दुःख देने वाली अनीति (अपमृष्टः) दूर हो, और तू (प्रजाः) रक्षा करने योग्य प्रजा की (पाहि) रक्षा कर। (मन्थिपाः) शत्रुओं का मन्थन करने वाले वीरों के रक्षक (देवाः) विद्वान् लोग (त्वा) तुझे (प्रणयन्तु) प्रसन्न रखें ।

हे प्रजे ! यतोऽनाधृष्टा=निर्भया स्वतन्त्रा अधर्षणीया त्वमसि, तं राजानं सततं रक्ष ॥ ७ । १७ ॥

हे प्रजा ! इस सभापति राजा के कारण (अनाधृष्टा) तू निर्भय एवं स्वतन्त्र (असि) है, इसलिये इस उक्त राजा की सदा रक्षा कर ॥ ७ । १७ ॥

[हे शिल्पविद्यादिचक्षण सभापते विद्वन् ! एव ते=तव योनिरस्ति, त्वं···प्रजाः पाहि, मन्थिपा देवास्त्वा=त्वां प्रणयन्तु]

भावार्थः--प्रजापुरुषा राज्यकर्मणि यं राजानमाश्रयेयुस्स तेषां न्यायेन रक्षां कुर्यात् । ते च तं न्यायाधीशं प्रति स्वाभिप्रायं प्रवदेयुः। राजसेवकाश्च न्यायकर्मणैव प्रजापुरुषान् रक्षेयुरिति ॥ ७ । १७ ॥

भावार्थ—प्रजा के लोग राज्य कार्य में जिसे राजा मानें वह उनकी न्यायपूर्वक रक्षा करे और वे उस न्यायाधीश के सामने अपना अभिप्राय बतलावें और राजा के सेवक न्याय-कर्म से ही प्रजा-जनों की रक्षा करे ॥ ७ । १७ ॥

भाष्यसार—**सभाध्यक्ष राजा का कर्त्तव्य**—सभापति विद्वान् राजा शिल्प विद्या में कुशल हो। जैसे घर दुःखों का निवारण करके सुख प्रदान करता है, वैसे राजा का धर्म भी दुःख निवारक और सुखदायक हो। राजा अतिधनवान् तथा विविध प्रजा की रक्षा करने वाला मेधावी विद्वान् हो। राजा और प्रजाजन दोनों मिलकर शुभ कार्यों में विविध चेष्टाओं से मन के समान शीघ्र गति करने वाले हों। दोनों बुद्धिपूर्वक कामना करें। प्रजा का प्रत्येक व्यक्ति राजा के निर्देश पर सब दिशाओं को घेर कर शत्रुओं को भून डाले। राजा की दुर्नीति मृत्यु दुःख का हेतु होती है, उससे सदा दूर रहे। प्रजा के लोग राज्य-कार्यों में जिसको राजा मानें, वह उनकी न्यायपूर्वक रक्षा करे, और प्रजा के लोग न्यायाधीश के सामने अपना अभिप्राय बतलावें। राजा के सेवक भी न्याय से प्रजा की रक्षा करें। विद्वान् लोग शत्रुओं का मन्थन करने वाले वीरों की रक्षा करके राजा को सदा प्रसन्न रखें। सभाध्यक्ष राजा से रक्षित प्रजा निर्भय और स्वतन्त्र होती है। इसलिये वह राजा की सदा रक्षा करे ॥ ७ । १७ ॥ ●

वत्सारः काश्यपः । **प्रजापतिः**=**न्यायाधीशः** ॥ निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः ॥
मन्थिनोधिष्ठानमित्यस्य प्राजापत्या गायत्री । षड्जः ॥
न्यायाधीशेन प्रजाः प्रति कथं वर्त्तितव्यमित्युपदिश्यते ॥
न्यायाधीश को प्रजाजनों के प्रति कैसे वर्त्तना चाहिये, यह उपदेश किया है ॥

सुप्रजाः प्रजाः प्रजनयन् परीह्यभि रायस्पोषेण यजमानम् ।
संजग्मानो दिवा पृथिव्या मन्थी मन्थिशोचिषा निरस्तो मर्को मन्थिनोऽधिष्ठानमसि ॥ १८ ॥

पदार्थः—(**सुप्रजाः**) शोभना प्रजा यस्य स सुप्रजाः स यथा स्यात्तथा (**प्रजाः**) प्रजा एव (**प्रजनयन्**) परमेश्वर इव प्रकटयन् (**परि**) सर्वतः (**इहि**) जानीहि (**अभि**) आभिमुख्ये (**रायः**) धनसमूहस्य (**पोषेण**) पुष्ट्या (**यजमानम्**) सुखप्रदम् (**संजग्मानः**) धीरतादिशुभगुणेष्वासक्तः (**दिवा**) सूर्य्येण (**पृथिव्या**) भूम्या (**मन्थी**) मन्थितुं शीलमस्य न्यायाधीशस्य सः (**मन्थिशोचिषा**) सूर्यदीप्त्येव (**निरस्तः**) नितरां प्रक्षिप्त इव (**मर्कः**) मृत्युनिमित्तः खल्वन्यायकारी (**मन्थिनः**) न्यायकारिणः (**अधिष्ठानम्**) आधार इव (**असि**) ।। अयं मन्त्रः शत० ४ । २ । १ । १७–२० व्याख्यातः ।। १८ ।।

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । २ । १ । १७–२०) में की गई है ।। ७ । १८ ।।

सपदार्थान्वयः—भो न्यायाधीश ! **सुप्रजाः** शोभना प्रजा यस्य स सुप्रजाः स यथा स्यात्तथा **त्वं प्रजाः** प्रजा एव **प्रजनयन्** परमेश्वर इव प्रकटयन् **रायः** धनसमूहस्य **पोषेण** पुष्ट्या **सहः यजमानं** सुखप्रदम् **अभि**+**परि**+**इहि** आभिमुख्येन सर्वतो जानीहि, **सर्वथा तस्य धनवृद्धिमिच्छ, मन्थी** मन्थितुं शीलमस्य न्यायाधीशस्य सः **त्वं दिवा** सूर्येण **पृथिव्या** भूम्या **संजग्मानः** धीरतादिशुभगुणेष्वासक्तः **भव, तद्गुणीभवेति भावः, यतस्त्वं मन्थिनः** न्यायकारिणः **अधिष्ठानाम्** आधार इव **अस्यतस्ते मन्थिशोचिषा** सूर्यदीप्त्येव **मर्कः** मृत्युनिमित्तः खल्वन्यायकारी **निरस्तः** नितरां प्रक्षिप्त इव **भवतु** ।। ७ । १८ ।।

भाषार्थ—हे न्यायाधीश राजन् ! तू (**सुप्रजाः**) जैसे श्रेष्ठ प्रजा वाला हो सके वैसे (**प्रजाः**) प्रजा को ही (**प्रजनयन्**) परमेश्वर के समान उत्पन्न करके (**रायः**) धनों का (**पोषेण**) पुष्टि से (**यजमानम्**) सुखदायक यजमान को (**अभि**+**परि**+**इहि**) भली-भाँति जान और सर्वथा उसकी धन वृद्धि की कामना कर । (**मन्थी**) सत्यासत्य का मन्थन करने वाला तू न्यायाधीश (**दिवा**) सूर्य (**पृथिव्या**) और पृथिवी के दृष्टान्त से (**संजग्मानः**) धीरता आदि गुणों से युक्त हो, जिससे तू राजा (**मन्थिनः**) न्यायाधीश का (**अधिष्ठानम्**) आधार (**असि**) है, इसलिये (**ते**) तेरी (**मन्थिशोचिषा**) सूर्य के समान दीप्ति से (**मर्कः**) मृत्यु का हेतु अन्यायकारी पुरुष (**नरस्तः**) सर्वथा दूर रहे ।। ७ । १८ ।।

[भो न्यायाधीश ! सुप्रजास्त्वं प्रजाः प्रजनयन् रायस्पोषेण सह यजमानमभिपरीहि]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः ।। न्यायाधीशो यजमानस्य पुरोहित इव प्रजाः सततं पालयेत् ।। ७ । १८ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है ।। न्यायाधीश यजमान के पुरोहित के समान प्रजा की सदा पालना करें ।। ७ । १८ ।।

भाष्यसार—१. **न्यायाधीश राजा का प्रजा के प्रति वर्ताव**—न्यायाधीश राजा ऐसा प्रयत्न करे कि जिस से वह उत्तम प्रजा वाला हो । जैसे परमेश्वर प्रजा को उत्पन्न करता है, ऐसे प्रजा का निर्माण करे । जैसे पुरोहित सुखदायक यजमान को जानता है, इसी प्रकार सुखदायक प्रजा-जनों को भली-भाँति जाने और उनके धन की वृद्धि की सदा कामना करे । न्यायाधीश राजा सत्य और असत्य का मन्थन करने वाला हो, सूर्य के समान तेजस्वी और पृथिवी के समान धीरता आदि गुणों से युक्त हो और न्यायकारी जनों का सदा आधार बने, उनका समर्थन करे और जो अन्यायकारी हों, उनसे सदा दूर रहे, उनकी कभी सहायता न करे ।।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है । उपमा यह है कि न्यायाधीश राजा यजमान के पुरोहित के समान प्रजा की सदा रक्षा करे ।। ७ । १८ ।।

वत्सार: काश्यपः । **विश्वेदेवाः**=राजानो राजसभासदश्च ॥ भुरिगार्षी पंक्तिः धैवतः ।

अथ राजसभ्यजनकृत्यमाह ॥

अब राजा और सभासदों के कर्त्तव्य का उपदेश किया जाता है ॥

ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ ।
अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम् ॥ १९ ॥

पदार्थः—(**ये**) (**देवासः**) दिव्यगुणयुक्ताः (**दिवि**) विद्युति (**एकादश**) प्राणापानोदानव्यानसमाननागकूर्म्मकृकलदेवदत्तधनंजयजीवाः (**स्थ**) सन्ति । अत्र पुरुषव्यत्ययः (**पृथिव्याम्**) भूमौ (**अधि**) उपरिभावे (**एकादश**) पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशादित्यचन्द्रनक्षत्राहंकारमहत्तत्त्वप्रकृतयः (**स्थ**) सन्ति (**अप्सुक्षितः**) प्राणेषु क्षयन्ति=निवसन्ति ते (**महिना**) महिम्ना (**एकादश**) श्रोत्रत्वक्चक्षूरसनाघ्राणवाक्पाणिपादपायूपस्थमनांसि (**स्थ**) सन्ति (**ते**) (**देवासः**) राजसभासदो विद्वांसः (**यज्ञम्**) राजप्रजासम्बद्धव्यवहारम् (**इमम्**) प्रत्यक्षम् (**जुषध्वम्**) सेवध्वम् ॥ अयम्मंत्रः शत० ४ । २ । २ । ६ व्याख्यातः ॥ १९ ॥

प्रमाणार्थ—(**स्थ**) सन्ति । यहाँ पुरुष-व्यत्यय है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । २ । २ । ६) में की गई है ॥ ७ । १९ ॥

सपदार्थान्वयः—ये महिना=स्वमहिम्ना महिम्ना दिवि विद्युति एकादश प्राण-अपान-उदान-व्यान समान-नाग-कूर्म्म-कृकल-देवदत्त-धनञ्जय-जीवाः देवासः दिव्यगुणयुक्ताः स्थ=सन्ति, पृथिव्यां भूमौ अधि उपरि एकादश पृथिवी-अप्-तेजो वायु-आकाश-आदित्य-चन्द्र-नक्षत्र-अहंकार-महत्तत्त्व-प्रकृतयः स्थ=सन्ति अप्सुक्षितः प्राणेषु क्षयन्ति=निवसन्ति ते चैकादश श्रोत्रत्वक्-चक्षू-रसना-घ्राण-वाक् पाणि-पाद-पायु-उपस्थ-मनांसि स्थ=सन्ति ते यथा स्वस्वकर्मसु वर्त्तन्ते तद्वद्वर्त्तमाना-हे देवासः=राजसभायाः सभ्यजना ! राजसभासदो विद्वांसः ! यूयमिमं प्रत्यक्षं यज्ञं राजप्रजा सम्बद्ध-व्यवहारं जुषध्वं सेवध्वम् ॥ ७ । १९ ॥

भाषार्थ—(**ये**) जो (**महिना**) अपनी महिमा से (**दिवि**) विद्युत् में (**एकादश**) १ प्राण, २ अपान, ३ उदान, ४ व्यान, ५ समान, ६ नाग, ७ कूर्म, ८ कृकल, ९ देवदत्त, १० धनञ्जय, ११ जीव (**देवासः**) दिव्य गुणों से युक्त (**स्थ**) हैं, और जो (**पृथिव्याम्**) पृथिवी (**अधि**) पर (**एकादश**) १ पृथिवी, २ जल, ३ अग्नि, ४ वायु, ५ आकाश, ६ सूर्य, ७ चन्द्र, ८ नक्षत्र, ९ अहंकार, १० महत्तत्व और ११ प्रकृति (**स्थ**) सन्ति, और जो (**अप्सुक्षितः**) प्राणों में निवास करने वाले (**एकादश**) १ श्रोत्र, २ त्वचा, ३ चक्षु, ४ रसना, ५ घ्राण, ६ वाक्, ७ पाणि, ८ पाद, ९ पायु, १० उपस्थ और ११ मन (**स्थ**) हैं, वे जैसे अपने अपने कर्मों में वर्तमान हैं, वैसे हे (**देवासः**) राजसभा के रक्षक सभ्य पुरुषों एवं राजसभा के सदस्य विद्वानो ! तुम लोग (**इमम्**) इस (**यज्ञम्**) राजा और प्रजा से सम्बन्धित व्यवहार को (**जुषध्वम्**) सेवन करो ॥ ७ । १९ ॥

[ये···दिव्येकादश देवासः स्थ=सन्ति···ते यथा स्वस्वकर्मसु वर्त्तन्ते तद्वद्वर्त्तमाना हे देवासः=राजसभायाः सभ्यजना यूयमिमं यज्ञं जुषध्वम्]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ यथा स्वस्वकर्मणि प्रवर्त्तमाना इमेऽन्तरिक्षादिषु

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ जैसे ये अन्तरिक्ष आदि में पदार्थ

पदार्थाः सन्ति तथा सभाजनैस्स्वस्वन्यायकर्मणि प्रयतितव्यम् ॥ ७ ॥ १९ ॥

अपने अपने कर्म में रत हैं वैसे सभाजन भी अपने अपने न्यायकर्म में प्रयत्नशील रहें ॥ ७ । १९ ॥

भाष्यसार—१. **राजा और सभाजनों का कर्त्तव्य**—जैसे अपनी महत्ता से अन्तरिक्ष में प्राण आदि ग्यारह देव, पृथिवी पर पृथिवी जल आदि ग्यारह-पदार्थ और प्राणों में निवास करने वाली श्रोत्र आदि ग्यारह इन्द्रियाँ अपने अपने कर्मों में वर्तमान रहती हैं, वैसे राजा और सभाजन अपने राजा और प्रजासम्बन्धी न्यायकार्यों में सदा प्रयत्नशील रहें।

२. **अलङ्कार**—मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि शब्द लुप्त होने से वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है—अन्तरिक्ष आदि में विद्यमान अपने अपने कार्यों में वर्त्तमान प्राण आदि पदार्थों के समान राजा और सभाजन अपने अपने न्याय आदि कार्यों में सदा प्रयत्नशील रहें ॥ ७ । १९ ॥

वत्सारः काश्यपः । **यज्ञः=राजप्रजापालको यज्ञः** । निचृदार्षी जगती । निषादः ॥

अथ राज्ञां विदुषां चोपदेशप्रकारमाह ॥

अब राजा और विद्वानों के उपदेश की रीति का वर्णन किया है ॥

उपयामगृहीतोऽस्याग्रयणोऽसि स्वाग्रयणः ।
पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं विष्णुस्त्वामिन्द्रियेण पातु विष्णुं त्वं पाह्यभि सवनानि पाहि ॥ २० ॥

पदार्थः—(**उपयामगृहीतः**) विनयादिराजगुणैर्युक्तः (**असि**) (**आग्रयणः**) समन्तादग्राणि विज्ञानयुक्तानि प्रशस्तानि कर्म्माण्ययते सः । **शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम् । इति पररूपम्** (**असि**) (**स्वाग्रयणः**) शोभनश्चासावाग्रयणश्च तद्वत् (**पाहि**) (**यज्ञम्**) राजप्रजापालकम् (**पाहि**) (**यज्ञपतिम्**) संगतस्य न्यायस्य पालकम् (**विष्णुः**) सकलशुभगुणकर्म्मव्यापी विद्वान् (**त्वाम्**) (**इन्द्रियेण**) मनसा धनेन वा । **इन्द्रियमिति धननामसु पठितम् ॥ निघं० २ । १० ॥** (**पातु**) (**विष्णुम्**) विद्वांसम् (**त्वम्**) न्यायाधीशः (**पाहि**) (**अभि**) (**सवनानि**) ऐश्वर्य्याणि (**पाहि**) ॥ **अयं मन्त्रः शत० ४ । २ । २ । ९—११ व्याख्यातः ॥ २० ॥**

प्रमाणार्थ—(**आग्रयणः**) यहाँ 'शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्' [अ० ६ । १ । ९४] इस वार्तिक से पररूप है। (**इन्द्रियेण**) 'इन्द्रिय' शब्द निघं० (२ । १०) में धन-नामों में पढ़ा है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । २ । ९–११) में की गई है ॥ ७ । २० ॥

सपदार्थान्वयः—हे सभापते राजन् उपदेशक वा ! **यतस्त्वमुपयामगृहीतः** विनयादिराजगुणैर्युक्तः **असि, अतो यज्ञं** राजप्रजापालकं **पाहि, स्वाग्रयण इव** शोभनश्चासावाग्रयणश्च तद्वत् **आग्रयणः** समन्तादग्राणि=विज्ञानयुक्तानि प्रशस्तानि कर्माण्ययते सः **असि, तस्माद् यज्ञपतिं** संगतस्य न्यायस्य पालकं **पाहि, अयं विष्णुः** सकलशुभगुणकर्म व्यापी विद्वान् **इन्द्रियेण** मनसा धनेन वा **त्वां पातु,** त्वं न्यायाधीशः **एनं विष्णुं** विद्वांसं **पाहि, सवनानि** ऐश्वर्याणि **अभिपाहि** ॥ ७ । २० ॥

भाषार्थ—हे सभापते राजन् ! वा उपदेशक विद्वान् ! क्योंकि आप (**उपयामगृहीतः**) विनय आदि राजगुणों से युक्त हो, इसलिये (**यज्ञम्**) राजा और प्रजा के पालक यज्ञ की (**पाहि**) रक्षा करो, आप (**स्वाग्रयणः**) उत्तम कर्म करने वाले के समान (**आग्रयणः**) विज्ञानयुक्त उत्तम कर्म करने वाले (**असि**) हो, इसलिये (**यज्ञपतिम्**) उचित न्याय के पालक की (**पाहि**) रक्षा करो, और यह (**विष्णुः**) सकल शुभ गुण-कर्मों से युक्त विद्वान् (**इन्द्रियेण**) मन वा धन से (**त्वाम्**) आपकी (**पातु**) रक्षा करे और (**त्वम्**) आप न्यायाधीश इस

(विष्णुम्) विद्वान् की (पाहि) रक्षा करो, (सवनानि) ऐश्वर्यों की (अभिपाहि) सुरक्षा करो ॥ ७ । २० ॥

[हे सभापते राजन् उपदेशक वा !···त्वम्···यज्ञं पाहि, यज्ञपतिं पाहि, अयं विष्णुरिन्द्रियेण त्वां पातु, त्वमेनं विष्णुं पाहि, सवनान्यभिपाहि]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ राज्ञो विदुषां च योग्यतांऽस्तिते सततं राज्योन्नतिं कुर्युर्नहि राज्योन्नत्या विना विद्वांसः स्वास्थ्येन विद्यां प्रचारयितुमुपदेष्टुं च शक्नुवन्ति, न खलु विदुषां संगोपदेशाभ्यां विना कश्चिद् राज्यं रक्षितुमर्हति, न खलु राज प्रजोत्तम विदुषां परस्परं प्रीतिमन्तरैश्वर्योन्नतिरैश्वर्योन्नत्या विनाऽऽनन्दश्च सततं जायते ॥ ७ । २० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ राजा और विद्वानों को योग्य है कि वे निरन्तर राज्य की उन्नति करें, क्योंकि राज्य की उन्नति के बिना विद्वान् लोग स्वस्थता से विद्या का प्रचार और उपदेश नहीं कर सकें, विद्वानों के संग और उपदेश के बिना कोई राज्य की रक्षा नहीं कर सकता, और राजा, प्रजा और श्रेष्ठ विद्वानों की परस्पर प्रीति के बिना ऐश्वर्य की उन्नति नहीं हो सकती और ऐश्वर्य की उन्नति के बिना निरन्तर आनन्द भी नहीं हो सकता ॥ ७ । २० ॥

भाष्यसार—**राजा और विद्वानों को उपदेश करने की रीति**—विनय आदि राजगुणों से युक्त सभापति राजा और वेदादि शास्त्रों के ज्ञान से युक्त विद्वान् उपदेशक को योग्य है कि वे राजा और प्रजा की पालना करने वाले यज्ञ की रक्षा करें एवं निरन्तर राज्य की उन्नति करें। क्योंकि राज्य की उन्नति के बिना विद्वान् लोग निश्चिन्ततापूर्वक विद्या का प्रचार तथा उपदेश नहीं कर सकते। राजा और विद्वान् लोग स्वयं उत्तम विज्ञान युक्त कर्मों को करते हुये यथावत् न्याय के पालक पुरुषों की रक्षा करें। सकल शुभ गुणों से युक्त विद्वान् अपने विज्ञान से राजा की रक्षा करे और न्यायाधीश राजा भी विद्वानों की धन से पालना करे। क्योंकि विद्वानों के संग और उपदेश के बिना कोई भी राजा राज्य की रक्षा नहीं कर सकता, अपितु राजा, प्रजा और उत्तम विद्वान् लोग परस्पर प्रीतिपूर्वक राज्य के ऐश्वर्य की वृद्धि करें। क्योंकि ऐश्वर्य की उन्नति के बिना निरन्तर आनन्द प्राप्त नहीं होता ॥ ७ । २० ॥

वत्सारः काश्यपः । **सोमः**=**सोम्यगुणसम्पन्नो राजा** ॥ स्वराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् । धैवतः ।
एष त इत्यस्य याजुषी जगती । निषादः ॥

अथ राजकृत्यमाह ॥

अब राजा के कर्म का उपदेश किया जाता है ॥

सोमः पवते सोमः पवतेऽस्मै ब्रह्मणेऽस्मै क्षत्रायास्मै सुन्वते यजमानाय पवतऽइषऽऊर्ज्जे पवतेऽद्भ्यऽओषधीभ्यः पवते द्यावापृथिवीभ्यां पवते सुभूताय पवते विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यऽएष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥ २१ ॥

पदार्थः—(सोमः) सोम्यगुणसम्पन्नो राजा (पवते) विजानीयात् । लेट्प्रयोगः (सोमः) राज-

सभायाः सभासत् प्रजाजनो वा (**पवते**) पूतो भवेत् (**अस्मै**) प्रत्यक्षाय (**ब्रह्मणे**) परमेश्वराय वेदाय वा (**अस्मै**) (**क्षत्राय**) राज्याय क्षत्रियाय वा (**अस्मै**) (**सुन्वते**) सर्वविद्यासिद्धान्तं निष्पादयते (**यजमानाय**) संगच्छमानाय (**पवते**) (**इषे**) अन्नाय (**उर्ज्जे**) पराक्रमाय (**पवते**) (**अद्भ्यः**) जलेभ्यः प्राणेभ्यो वा (**ओषधीभ्यः**) सोमादिभ्यः (**पवते**) (**द्यावापृथिवीभ्याम्**) सूर्य्यभूमिभ्याम् (**पवते**) (**सुभूताय**) सुष्ठुसत्याय व्यवहाराय (**पवते**) (**विश्वेभ्यः**) समस्तेभ्यः (**त्वा**) त्वाम् (**देवेभ्यः**) दिव्येभ्यो गुणेभ्यः (**एषः**) राजधर्म्मगुणग्रहणम् (**ते**) तव (**योनिः**) वसतिः (**विश्वेभ्यः**) अखिलेभ्यः (**त्वा**) त्वाम् (**देवेभ्यः**) विद्वद्भ्यः ।।
अयं मन्त्रः श० ४ । २ । १२-१६ तथा ब्रा० ३ । १-६ व्याख्यातः ॥ २१ ॥

प्रमाणार्थ—(**पवते**) विजानीयात् । यह लेट् लकार का प्रयोग है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । २ । २ । १२-१६ तथा ब्रा० ३ । १-६) में की गई है ।। ७ । २१ ।।

सपदार्थान्वयः—हे विद्वांसः ! **यथाऽयं सोमः** सोम्यगुणसम्पन्नो राजा **अस्मै** प्रत्यक्षाय **ब्रह्मणे** परमेश्वराय वेदाय वा **पवते** विजानीयात्, **अस्मै क्षत्राय** राज्याय क्षत्रियाय वा **पवते** पूतो भवेत्, **अस्मै सुन्वते** सर्वविद्यासिद्धान्तं निष्पादयते **यजमानाय** सङ्गच्छमानाय **पवते, इषे** अन्नाय **ऊर्ज्जे** पराक्रमाय **पवते, अद्भ्यः** जलेभ्यः प्राणेभ्यो वा **ओषधीभ्यः** सोमादिभ्यः **पवते, द्यावापृथिवीभ्यां** सूर्य्यभूमिभ्यां **पवते, सुभूताय** सुष्ठुसत्याय व्यवहाराय **पवते, तद्वत् सोमः सभ्यजनः प्रजाजनः** राजसभायाः सभासत् प्रजाजनो वा **अप्येतस्मै सर्वस्मै पवताम्** ।

भाषार्थ—हे विद्वानो ! जैसे यह (**सोमः**) सोम्य गुण से भूषित राजा (**अस्मै**) इस (**ब्रह्मणे**) परमेश्वर वा वेद को (**पवते**) जाने, (**अस्मै**) इस (**क्षत्राय**) राज्य वा क्षत्रियों की रक्षा के लिये (**पवते**) पवित्र आचरण वाला हो, (**अस्मै**) इस (**सुन्वते**) सब विद्याओं के सिद्धान्त को जानने वाले (**यजमानाय**) एवं संगतिकारक विद्वान् को (**पवते**) यज्ञ से पवित्र करता है, (**इषे**) अन्न और (**ऊर्ज्जे**) पराक्रम को (**पवते**) पवित्र करता है, (**अद्भ्यः**) जल वा प्राणों तथा (**ओषधीभ्यः**) सोम आदि औषधियों को (**पवते**) पवित्र करता है, (**द्यावापृथिवीभ्याम्**) सूर्य और भूमि को (**पवते**) पवित्र करता है, (**सुभूताय**) उत्तम सत्य व्यवहार के लिये स्वयं (**पवते**) पवित्र रहता है, वैसे (**सोमः**) राजसभा के सभासद वा प्रजाजन भी इन सब को पवित्र करें तथा स्वयं पवित्र रहें ।

हे राजन् ! **यस्य ते**=**तव एषः** राजधर्मगुणग्रहणं **योनिः** वसतिः **अस्ति, तं**=[**त्वा**] **त्वां विश्वेभ्यः** समस्तेभ्यः **देवेभ्यः** विद्विद्भ्य **वयं स्वीकुर्मः, तथा विश्वेभ्यः** अखिलेभ्यः [**देवेभ्यः**] **गुणेभ्यश्च** दिव्येभ्यो गुणेभ्यः **त्व**=**त्वामङ्गीकुर्महे** ।। ७ । २१ ।।

हे राजन् ! (**ते**) आपका (**एषः**) यह राजधर्म ही (**योनिः**) निवास है, इसलिए (**त्वा**) आपको (**विश्वेभ्यः**) सब (**देवेभ्यः**) विद्वानों के सत्कार के लिये हम स्वीकार करते हैं तथा (**विश्वेभ्यः**) सब (**देवेभ्यः**) दिव्य गुणों को ग्रहण करने के लिये (**त्वा**) आप को अङ्गीकार करते हैं ।। ७ । २१ ।।

[हे विद्वांसः ! यथाऽयं सोमोऽस्मै ब्रह्मणे पवते···सुभूताय पवते, तद्वत् सोमः=सभ्यजनः प्रजाजनोऽप्येतस्मै सर्वस्मै पवताम्]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ।। यथा चन्द्रलोकः सर्वस्यै जगते हितकारी वर्त्तते, यथा च राजा सभ्यजनप्रजाजनाभ्यां सह तदुपकाराय

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है ।। जैसे चन्द्रलोक सब जगत् के लिये हितकारी है, और जैसे राजा सभा-जनों और प्रजा

धर्मानुकूलं व्यवहारमाचरति तथैव सभ्यजनप्रजाजनौ राजा सह वर्त्तेताम् ।

जनों के साथ उनके उपकार के लिये धर्मानुकूल व्यवहार करता है, वैसे ही सभाजन और प्रजाजन राजा के साथ व्यवहार करें ।

य उत्तमव्यवहारगुणकर्म्मानुष्ठाता भवति, स एव राजा सभ्यजनश्च न्यायाधीशो भवितुमर्हति, यो धर्मात्मा जनः स एव प्रजायामग्रचो गणनीयोऽस्त्येवमेते त्रयः परस्परं प्रीत्या पुरुषार्थेन विद्यादिगुणेभ्यः पृथिव्यादिपदार्थेभ्यश्चाखिलं सुखं प्राप्तुं शक्नुवन्ति ॥ ७ । २१ ॥

जो उत्तम व्यवहार, गुण और कर्मों का आचरण करने वाला है, वही राजा, सभा का सदस्य और न्यायाधीश हो सकता है, जो धर्मात्मा पुरुष हो वही प्रजा में अग्र-गण्य है, इस प्रकार ये तीनों परस्पर प्रीतिपूर्वक पुरुषार्थ से विद्या आदि गुण और पृथिवी आदि पदार्थों से सब सुख प्राप्त कर सकते हैं ॥ ७ । २१ ॥

भा० पदार्थः—सोमः=चन्द्रलोकः । पवते=हितकारी भवति ॥ सुभूताय=धर्मानुकूलव्यवहाराय ॥

भाष्यसार—१. **राजा के कर्म**—सोम्य गुण से युक्त राजा परमेश्वर और वेद को जाने, राज्य और क्षत्रिय जनों की रक्षा के लिये पवित्र आचरण वाला हो, जैसे चन्द्रलोक सब जगत् के लिए हितकारी है, वैसे सब का हित करे, राजा राजसभा के सदस्य और प्रजाजनों के साथ उनके उपकार के लिये धर्मानुकूल आचरण करे तथा वे भी राजा के साथ ऐसा ही व्यवहार करें । सब विद्या के सिद्धान्तों के मर्मज्ञ यज्ञ करने वाले विद्वानों का हित करे, यज्ञ से अन्न, बल, जल, प्राण, औषधि, सूर्य, भूमि को पवित्र करे अपने सत्य व्यवहार से सबको पवित्र करे, राजा के समान सभा के सदस्य और प्रजाजन भी अपने आचरण से सब को पवित्र करें । प्रजाजन उसे ही राजा तथा न्यायाधीश मानें, जो उत्तम व्यवहार और उत्तम गुण कर्मों वाला हो, प्रजा में जो धर्मात्मा हो, उसे ही अग्रणी बनावें । राजा राजधर्म आदि गुणों को ही अपना घर समझे अर्थात् सदा उनमें निवास करे और उक्त दिव्य गुणों के कारण सभासद, प्रजाजन उसे राजा स्वीकार करें । सार यह है कि जब राजा, राजसभा के सदस्य और प्रजाजन ये तीनों परस्पर प्रीतिपूर्वक मिलकर चलते हैं, तभी अखिल सुख को प्राप्त करते हैं, अन्यथा नहीं ।

२. **अलङ्कार**—मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि शब्द लुप्त होने से वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि राजा के समान सभा के सदस्य और प्रजाजन भी सबको पवित्र करें, सबका हित सम्पादन करें ॥ ७ । २१ ॥

वत्सारः काश्यपः । **विश्वेदेवाः=विद्वांसो दिव्यगुणा वा** । निचृदष्टिः मध्यमः ॥

कीदृशं जनं सेनापतिं कुर्य्यादित्युपदिश्यते ॥

अब कैसे मनुष्य को सेनापति करे, यह उपदेश किया है ॥

उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा बृहद्वते वयस्वत ऽ उक्थाव्यं गृह्णामि ।
यत्त ऽ इन्द्र बृहद्वयस्तस्मै त्वा विष्णवे त्वैष ते योनिरुक्थेभ्यस्त्वा देवेभ्यस्त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामि ॥ २२ ॥

पदार्थः—(**उपयामगृहीतः**) सुनियमैरधीतविद्यः (**असि**) (**इन्द्राय**) परमैश्वर्यवते (**त्वा**) त्वाम् (**बृहद्वते**) प्रशस्तानि बृहंति=कर्म्माणि यस्य तस्मै (**वयस्वते**) बहु जीवनं विद्यते यस्य तस्मै (**उक्थाव्यम्**)

प्रशंसार्हाणि स्तोत्राणि शस्त्रविशेषाणि वा तस्य तमिव सेनापतिम् (**गृह्णामि**) (**यत्**) (**ते**) तव (**इन्द्र**) (**बृहत्**) (**वयः**) जीवनम् (**तस्मै**) (**त्वा**) त्वाम् (**विष्णवे**) परमेश्वराय यज्ञाय वा (**त्वा**) त्वाम् (**एषः**) (**ते**) तव (**योनिः**) स्थित्यर्थः स्थानविशेषः (**उक्थेभ्यः**) प्रशंसनीयेभ्यो वेदोक्तेभ्यः कर्म्मभ्यः (**त्वा**) त्वाम् (**देवेभ्यः**) विद्वद्भ्यो दिव्यगुणेभ्यो वा (**त्वा**) त्वाम् (**देवाव्यम्**) उक्तानां देवानां पालकम् (**यज्ञस्य**) राज्यपालनादेः (**आयुषे**) जीवनाय (**गृह्णामि**) ॥ अयं मंत्रः शत० ४ । २ । ३ । १०–११ व्याख्यातः ॥ २२ ॥

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । २ । ३ । १०–११) में की गई है ॥ ७ । २२ ॥

सपदार्थान्वयः—धर्मार्थकाममोक्षा-निच्छुरहं हे **इन्द्र**=**सेनापते** ! **त्वमुपयामगृहीतः** सुनियमैरधीतविद्यः **असि**, **अतो बृहद्वते** प्रशस्तानि वृहन्ति=कर्म्माणि यस्य तस्मै, **वयस्वते** बहु जीवनं विद्यते यस्य तस्मै, **इन्द्राय** परमैश्वर्यवते **उक्थाव्यं** प्रशंसार्हाणि स्तोत्राणि शस्त्रविशेषाणि वा तस्य तमिव सेनापतिं **त्वा**=**त्वां गृह्णामि** ।

यत् ते तव **बृहद् वयः** जीवनं **तस्मै**=**तत्पालनाय** [**त्वा**] त्वां, **विष्णवे** परमेश्वराय यज्ञाय वा **त्वा**=**त्वां गृह्णामि** ।

एषः = **सेनाधिकारस्ते** तव **योनिः** स्थित्यर्थः स्थानविशेषः **अस्ति** ।

उक्थेभ्यः प्रशंसनीयेभ्यो वेदोक्तेभ्यः कर्म्मभ्यः **त्वा**=**त्वां देवेभ्यः** विद्वद्भ्यो दिव्यगुणेभ्यो वा **देवाव्यम्** उक्तानां देवानां पालकं **त्वा**=**त्वां यज्ञस्य** राज्यपालनादेः **आयुषे**=**वर्द्धनाये** जीवनाय **अपि गृह्णामि** ॥ ७ । २२ ॥

भाषार्थ—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का इच्छुक मैं (**राजा**)—हे (**इन्द्र**) सेनापते ! तूने (**उपयाम गृहीतः**) ब्रह्मचर्य आदि श्रेष्ठ नियमपूर्वक विद्या का अध्ययन किया (**असि**) है, इसलिये (**बृहद्वते**) उत्तम कर्मों वाले (**वयस्वते**) बड़ी आयु वाले (**इन्द्राय**) परम ऐश्वर्य से सम्पन्न (**उक्थाव्यम्**) प्रशंसा के योग्य शस्त्र-विशेषों से युक्त (**त्वाम्**) तुझको (**गृह्णामि**) सेनापति के रूप में ग्रहण करता हूँ, स्वीकार करता हूँ ।

और जो (**ते**) तेरी (**बृहद्**) बड़ी (**वयः**) आयु है (**तस्मै**) उसकी रक्षा के लिये [**त्वा**] तुझको, तथा (**विष्णवे**) परमेश्वर वा शुभ कर्म की प्राप्ति के लिये (**त्वा**) तुझ को, (**गृह्णामि**) ग्रहण करता हूँ ।

(**एषः**) यह सेनाधिकार (**ते**) तेरा (**योनिः**) रहने का स्थान विशेष अर्थात् घर (**अस्ति**) है ।

(**उक्थेभ्यः**) प्रशंसनीय वेदोक्त कर्मों के लिये (**त्वा**) तुझको, (**देवेभ्यः**) विद्वानों वा दिव्य गुणों की रक्षा के लिये (**देवाव्यम्**) देवों के रक्षक (**त्वा**) तुझको तथा—(**यज्ञस्य**) राज्य के पालन आदि और (**आयुषे**) जीवन की वृद्धि के लिये भी (**गृह्णामि**) तुझको सेनापति रूप में ग्रहण करता हूँ ॥ ७ । २२ ॥

[हे **इन्द्र**=**सेनापते** ! त्वमुपयामगृहीतोऽसि, **अतो**···उक्थाव्यं त्वा=त्वां गृह्णामि, देवाव्यं त्वा=त्वां यज्ञस्यायुषे=वर्द्धनायापि गृह्णामि]

भावार्थः—सर्ववेत्ता विद्वान् राज्यव्यवहारे सैन्यवीराणां पालनाय सुशिक्षितं शस्त्रास्त्रपरम-प्रवीणं यज्ञकर्मानुष्ठातारं वीरपुरुषं सेनापतित्वे-ऽभियुञ्जीयात् । सभापतिसेनापती परस्परानुमत्या

भावार्थ—सब विद्याओं को जानने वाला विद्वान् राजा राज्य व्यवहार में सेना के वीर पुरुषों की रक्षा के लिये सुशिक्षित, शस्त्र-अस्त्र विद्या में परम चतुर, यज्ञ का अनुष्ठान करने वाले वीर पुरुष

राज्यं यज्ञं च वर्द्धयातामिति ॥ ७ । २२ ॥

को सेनापति पद पर नियुक्त करें। और—राजा तथा सेनापति परस्पर अनुमति से राज्य और यज्ञ को बढ़ावें ॥ ७ । २२ ॥

भा० पदार्थः—उपयामगृहीतः=सुशिक्षितः । उक्थाव्यम्=शस्त्रास्त्रपरमप्रवीणम् । देवाव्यम्=वीरपुरुषम् ।

भाष्यसार—राजा कैसे पुरुष को सेनापति बनावे—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का इच्छुक, सब विद्याओं का वेत्ता विद्वान् राजा उत्तम ब्रह्मचर्य आदि नियमपूर्वक विद्या पढ़े हुये (**सुशिक्षित**), यज्ञ आदि प्रशस्त कर्म करने वाले, बड़ी आयु वाले, परम ऐश्वर्य से सम्पन्न, शस्त्र-अस्त्र विद्या में अत्यन्त चतुर पुरुष को सेनापति पद पर नियुक्त करे। और वह सेनापति सेना के वीर पुरुषों के महान जीवन की रक्षा करे। परमेश्वर की प्राप्ति और यज्ञ आदि शुभ कर्मों की रक्षा के लिये सदा प्रयत्न करे। राजा के दिये सेनाधिकार को अपना घर समझे अर्थात् सदा उसमें निवास करे, उसका परित्याग कदापि न करे। प्रशंसनीय वेदोक्त कर्म, विद्वान् पुरुष और दिव्य गुणों की सदा रक्षा करे। राज्य की रक्षा तथा प्रजा की आयुवृद्धि के लिये सतत प्रयत्न करे। इस प्रकार सभापति राजा और सेनापति परस्पर राज्य और यज्ञ आदि शुभ कर्मों की वृद्धि करे ॥

वत्सारः काश्यपः । **विश्वेदेवाः=विद्वांसः** ॥ मित्रावरुणाभ्यामित्यस्यानुष्टुप्, इन्द्राग्निभ्यामित्यस्य प्राजापत्यानुष्टुप्, इन्द्रावरुणाभ्यामित्यस्य स्वराट् साम्न्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥ इन्द्राबृहस्पतिभ्यामित्यस्य भुरिगार्ची गायत्री । षड्जः ॥ इन्द्राविष्णुभ्यामित्यस्य भुरिक् साम्न्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

सर्वविद्याप्रवीणं सभापतिं कुर्य्यादित्युपदिश्यते ॥

सब विद्याओं में प्रवीण पुरुष को सभापति बनावे, यह उपदेश किया है ॥

मित्रावरुणाभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राय त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राग्निभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्रावरुणाभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञास्यायुषे गृह्णामीन्द्राबृहस्पतिभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राविष्णुभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामि ॥ २३ ॥

पदार्थः—(**मित्रावरुणाभ्याम्**) सख्युत्कृष्टाभ्याम् (**त्वा**) सभापतिं पूर्णविद्यमुपदेशकं वा (**देवाव्यम्**) यो देवानवति स देवावीस्तम्। **अवितृस्तृतंत्रिभ्य ईः ॥ उ० ३ । १५८ ॥** इति रक्षणाद्यर्थादवधातोरीः प्रत्ययः (**यज्ञस्य**) अग्निहोत्रादे राज्यपालनान्तस्य (**आयुषे**) उन्नत्यै (**गृह्णामि**) (**इन्द्राय**) परमैश्वर्य्यवते (**त्वा**) त्वाम् (**देवाव्यम्**) विद्वद्रक्षकम् (**यज्ञस्य**) सत्संगतिकरणस्य (**आयुषे**) (**गृह्णामि**) (**इन्द्राग्निभ्याम्**) विद्युत्प्रसिद्धाभ्यां वह्निभ्याम् (**त्वा**) त्वाम् (**देवाव्यम्**) दिव्यविद्याबोधकम् (**यज्ञस्य**) शिल्पविद्याकार्य्यसिद्धिकरस्य (**आयुषे**) (**गृह्णामि**) वृणोमि (**इन्द्रावरुणाभ्याम्**) विद्युज्जलाभ्याम् (**त्वा**) त्वाम् (**देवाव्यम्**) एतद्विद्याव्यापकम् (**यज्ञस्य**) क्रियाकौशलसंगतस्य (**आयुषे**) (**गृह्णामि**) (**इन्द्राबृहस्पतिभ्याम्**) राजानूचानाभ्यां विद्वद्भ्याम् (**त्वा**) त्वाम् (**देवाव्यम्**) प्रशस्तयोगविद्याप्रापकम् (**यज्ञस्य**) योगविद्याप्रापकस्य विज्ञानस्य (**आयुषे**) (**गृह्णामि**) अङ्गीकरोमि (**इन्द्राविष्णुभ्याम्**) ईश्वरवेदज्ञानाभ्याम् (**त्वा**) त्वाम् (**देवाव्यम्**) ब्रह्मविदां तर्पकम् (**यज्ञस्य**) ज्ञानमयस्य (**आयुषे**) वृद्धये (**गृह्णामि**) ॥ **अयं मन्त्रः शत० ४ । २ । ३ । १२–१८ । व्याख्यातः ॥ २३ ॥**

प्रमाणार्थ—(देवाव्यम्) रक्षण-आदि अर्थ वाली 'अव' धातु से 'अवितृस्तृतान्त्रिभ्य ईः' उणा० (३ । १५८) इस सूत्र रे 'ई' प्रत्यय करने पर 'देवावी' शब्द सिद्ध होता है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । २ । ३ । १२-१८) में की गई है ॥ ७ । २३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **सभापते** ! **धर्मार्थकाममोक्षानिच्छुरहं यज्ञस्य** अग्निहोत्रादे राज्यपालनान्तस्य **आयुषे** उन्नत्यै **मित्रावरुणाभ्यां** सख्युत्कृष्टाभ्यां **देवाव्यं** यो देवानवति स देवावीस्तं **त्वां** सभापतिं पूर्णविद्यमुपदेशकं वा **गृह्णामि** ।

हे **सेनापते विद्वन्** ! **यज्ञस्य** सत्सङ्गतिकरणस्य **आयुषे** उन्नत्यै **इन्द्राय** परमैश्वर्यवते **देवाव्यं** विद्वद्रक्षकं **त्वा** त्वां गृह्णामि ।

हे **शस्त्रास्त्रविद्याविद्** ! **यज्ञस्य** शिल्पविद्या कार्य्यसिद्धि करस्य **आयुषे** उन्नत्यै **इन्द्राग्निभ्यां** विद्युत्प्रसिद्धाभ्यां वह्निभ्यां **देवाव्यं** दिव्यविद्याबोधकं **त्वा**=**त्वां गृह्णामि** वृणोमि ।

हे **शिल्पिन्** ! **यज्ञस्य** क्रियाकौशलसङ्गतस्य **आयुषे** उन्नत्यै **इन्द्रावरुणाभ्यां** विद्युज्जलाभ्यां **देवाव्यम्** एतद्दिव्यविद्याव्यापकं **त्वा**=**त्वां गृह्णामि** ।

तथा यज्ञस्य योगविद्याप्रापकस्य विज्ञानस्य **आयुषे** उन्नत्यै **इन्द्राबृहस्पतिभ्यां** राजाऽनूचानाभ्यां विद्वद्भ्यां **देवाव्यं** प्रशस्तयोगविद्याप्रापकं **त्वा**=**त्वां गृह्णामि** अङ्गीकरोमि ।

हे **विद्वन्** ! **यज्ञस्य** ज्ञानमयस्य **आयुषे** वृद्धये **इन्द्राविष्णुभ्याम्** ईश्वरवेदज्ञानाभ्यां **देवाव्यं** ब्रह्मविदां तर्पकं **त्वा**=**त्वां गृह्णामि** ॥ ७ । २३ ॥

भाषार्थ—हे सभापते ! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का इच्छुक मैं—(**यज्ञस्य**) अग्निहोत्र से लेकर राज्यपालन पर्यन्त यज्ञ की (**आयुषे**) उन्नति के लिये एवं (**मित्रावरुणाभ्याम्**) सबका मित्र और श्रेष्ठ पुरुष बनने के लिये (**देवाव्यम्**) देवों के रक्षक (**त्वाम्**) तुझ सेनापति को वा पूर्णविद्या के उपदेशक विद्वान् को (**गृह्णामि**) स्वीकार करता हूँ ।

हे सेनापते विद्वन् ! (**यज्ञस्य**) सत्सङ्गति की (**आयुषे**) उन्नति के लिये एवं (**इन्द्राय**) परम ऐश्वर्यवान् होने के लिये (**त्वा**) तुझ (**देवाव्यम्**) देवों के रक्षक विद्वान् को (**गृह्णामि**) मैं ग्रहण करती हूँ ।

हे शस्त्र-अस्त्र विद्या को जानने वाले विद्वान् ! (**यज्ञस्य**) शिल्पविद्या के कार्यों को सिद्ध करने वाले यज्ञ की (**आयुषे**) उन्नति के लिये एवं (**इन्द्राग्निभ्याम्**) विद्युत् विद्या और प्रसिद्ध अग्नि विद्या को जानने के लिए (**त्वा**) तुझ (**देवाव्यम्**) दिव्य विद्या के बोधक विद्वान् को (**गृह्णामि**) वरता हूँ ।

हे शिल्पिन् ! (**यज्ञस्य**) क्रियाकौशल से युक्त यज्ञ की (**आयुषे**) उन्नति के लिये एवं (**इन्द्रावरुणाभ्यम्**) विद्युत् और जल विद्या को जानने के लिये (**त्वा**) तुझ (**देवाव्यम्**) दिव्य विद्या से युक्त विद्वान् को (**गृह्णामि**) स्वीकार करता हूँ ।

और—(**यज्ञस्य**) योगविद्या के प्रापक विज्ञान की (**आयुषे**) उन्नति के लिये एवं (**इन्द्राबृहस्पतिभ्याम्**) राजा और अनूचान विद्वान् बनने के लिये (**देव्याव्यम्**) (**त्वा**) तुझ (**देवाव्यम्**) प्रशस्त योग विद्या के प्रापक विद्वान् को (**गृणामि**) अङ्गीकार करता हूँ ।

हे विद्वन् ! (**यज्ञस्य**) ज्ञानमय यज्ञ की (**आयुषे**) वृद्धि के लिये एवं (**इन्द्राविष्णुभ्याम्**) ईश्वर और वेदज्ञान की प्राप्ति के लिये (**त्वा**) तुझ (**देवाव्यम्**)

ब्रह्मवेत्ता को तृप्त करने वाले विद्वान् को (**गृह्णामि**) ग्रहण करता हूँ ॥ ७ । २३ ॥

[हे सभापते ! धर्मार्थकाममोक्षानिच्छुरहं यज्ञस्यायुवे.........त्वां गृह्णामि]

भावार्थः—प्रजाजनैः सकलशास्त्रप्रचाराय सर्वविद्याकुशलोऽतिशयितब्रह्मचर्यादिकर्मानुष्ठाता सभाध्यक्षः कर्त्तव्यः सोऽपि प्रीत्या सकलशास्त्रं प्रचारयेत् ॥ ७ । २३ ॥

भावार्थ—प्रजा के लोग सब शास्त्रों के प्रचार के लिये सब विद्याओं में कुशल, अत्यन्त ब्रह्मचर्य आदि कर्मों के अनुष्ठान करने वाले पुरुष को सभाध्यक्ष बनावें, और वह प्रीतिपूर्वक सब शास्त्रों का प्रचार करें ॥ ७ । २३ ॥

भाष्यसार—**सब विद्याओं में प्रवीण पुरुष को सभापति बनावें**—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के इच्छुक प्रज-जन यज्ञ अर्थात् अग्निहोत्र से लेकर राज्यपालन पर्यन्त शुभ कर्मों की उन्नति के लिये देवों के रक्षक पुरुष को सभापति बनावें। सत्सङ्गति आदि कर्मों की उन्नति और परम ऐश्वर्यवान् बनने के लिये विद्वानों के रक्षक पुरुष को सभापति बनावें। शस्त्र-अस्त्र विद्या के वेत्ता, दिव्यविद्या के बोधक पुरुष को शिल्पविद्या के कार्यों को सिद्ध करने वाले पुरुषों की उन्नति के लिये तथा विद्युत्-विद्या और अग्नि विद्या को जानने के लिये सभापति बनावें। क्रियाकौशल की उन्नति के लिये, विद्युत्-विद्या और जल -विद्या को जानने के लिये, शिल्पी अर्थात् दिव्य शिल्प विद्या को व्यापक रूप से जानने वाले पुरुष को सभापति बनावें । योगविद्या के प्रापक विज्ञान की उन्नति के लिए विद्वान् राजा तथा विद्वान् अनूचानजनों की रक्षा के लिये प्रशस्त योग-विद्या के प्रापक पुरुष को सभापति बनावें। ज्ञानमय यज्ञ की वृद्धि के लिये, ईश्वर और वेद-ज्ञान की प्राप्ति के लिए ब्रह्मवेत्ताओं को तृप्त करने वाले पुरुष को सभापति बनावें। भाव यह है कि सब शास्त्रों के प्रचार के लिए, सब विद्याओं में कुशल, ब्रह्मचर्य आदि शुभ कर्मों के अनुष्ठान' करने वाले पुरुष को सभापति बनावें। ❁

भारद्वाजः । **विश्वेदेवाः**=**विद्वांसः** । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

अथ विद्वत्कृत्यमाह ॥

अब विद्वानों के कर्त्तव्य का उपदेश किया जाता है ॥

मूर्द्धानं दिवो ऽ अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत ऽ आ जातमग्निम् ।
कविꣳ सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः ॥ २४ ॥

पदार्थः—(**मूर्द्धानम्**) शिरोवद्वर्त्तमानम् (**दिवः**) द्योतमानस्य सूर्य्यस्य (**अरतिम्**) ऋच्छति =प्राप्नोति तम् (**पृथिव्याः**) (**वैश्वानरम्**) यो विश्वान् नरानानन्दान् नयति तम् । वैश्वानरः कस्माद्विश्वान्नरान्नयति विश्व एनं नरा नयन्तीति वापि वा विश्वानर एव स्यात् ॥ निरु० ७ । २१ ॥ (**ऋते**) सत्ये । ऋतमिति सत्यनामसु पठितम् ॥ निघं० ३ । १० ॥ (**आ**) समन्तात् (**जातम्**) प्रसिद्धम् (**अग्निम्**) शुभगुणैः प्रकाशमानम् (**कविम्**) क्रान्तदर्शनम् (**सम्राजम्**) चक्रवर्त्तिनमिव (**अतिथिम्**) अतिथिवत्पूज्यम् (**जनानाम्**) सत्पुरुषाणाम् (**आसन्**) मुखे । अत्रास्य शब्दस्य ॥ पद्दन्नोमास० अ० ६ । १ । ६३ ॥ अनेनासन्नादेशः । सुपां सुलुक् ॥ अ० ७ । १ । ३९ ॥ इति सप्तम्येकवचनस्य लुक् (**आ**) समन्तात् (**पात्रम्**) पाति=रक्षति समस्तं शिल्पव्यवहारं यस्तम् (**जनयन्त**) उत्पादयन्तु । अत्र लोडर्थे लङडभावश्च (**देवाः**) धनुर्वेदविदो विद्वांसः ॥ अयं मन्त्रः शत० ४ । २ । ४ । २४ तथा ब्रा० ५ । १ व्याख्यातः ॥ २४ ॥

प्रमाणार्थ—(वैश्वानरम्) निरु० (७ । २१) में वैश्वानर की व्याख्या इस प्रकार की है—'वैश्वानर' विद्वान् को 'वैश्वानर' क्यों कहते हैं ? इसलिए कि वह सब नरों को आनन्द पहुँचाता है और सभी नर इस वैश्वानर को ले जाते हैं अथवा विश्वानर ही वैश्वानर है । (**ऋते**) 'ऋत' शब्द निघं० (३ । १०) में सत्य-नामों में पढ़ा है । (**आसन्**) यहां 'आस्य' शब्द को 'पद्दन्नोमास्०' (**अ**० ६ । १ । ६३) इस सूत्र से 'आसन्' आदेश और 'सुपां सुलुक०' (७ । १ । ३६) इस सूत्र से सप्तमी के एक वचन का लुक है । (**जनयन्त**) उत्पादयन्तु । यहां लोट् अर्थ में लङ् लकार और अट् का अभाव है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । २ । ४ । २४ **तथा ब्रा**० ५ । १) में की गई है ॥ ७ । २४ ॥

सपदार्थान्वयः—**यथा देवाः=धनुर्वेदविदो विद्वांसो धनुर्वेदशिक्षया दिवः** द्योतमानस्य सूर्य्यस्य **मूर्द्धानं** शिरोवद्वर्त्तमानं, **पृथिव्या अरतिम्** ऋच्छति=प्राप्नोति तम्, **ऋते** सत्ये **आ+जातं** समन्तात् प्रसिद्धं, **वैश्वानरं** यो विश्वान् नरान् आनन्दान नयति तं, **जनानां** सत्पुरुषाणाम् **अतिथिम्** अतिथिवत्पूज्यम्, **आसन्** मुखे **पात्रं** पाति=रक्षति समस्तं शिल्पव्यवहारं यस्तं **कविं** क्रान्तदर्शनम् **अग्निं** शुभगुणैः प्रकाशमानं **सम्राजमिव** चक्रवर्त्तिनमिव **आजनयन्त** समन्ताद् उत्पातयन्तु **तथा सर्वैरानुष्ठेयम्** ॥ ७ । २४ ॥

भाषार्थ—जैसे (**देवाः**) धनुर्वेद के वेत्ता विद्वान् लोग धनुर्वेद की शिक्षा से (**दिवः**) प्रकाशमान सूर्य के (**मूर्द्धानम्**) शिर के समान, (**पृथिव्या**) पृथिवी को (**अरतिम्**) प्राप्त होने वाले, (**ऋते**) सत्य में (**आ+जातम्**) चहुँ ओर प्रसिद्ध, (**वैश्वानरम्**) सब नरों को आनन्द पहुँचाने वाले, (**जनानाम्**) सत्पुरुषों के (**अतिथिम्**) अतिथि के समान पूज्य, (**आसन्**) मुख्य रूप में (**पात्रम्**) समस्त शिल्प-व्यवहारों को रखने वाले, (**कविम्**) आर-पार देखने के साधन (**अग्निम्**) शुभ गुणों से प्रकाशमान भौतिक अग्नि को (**सम्राजमिव**) चक्रवर्ती सम्राट् के समान (**अर+जनयन्त**) उत्पन्न करें, वैसे सब लोग उनका अनुकरण करें ॥ ७ । २४ ॥

[**यथा देवाः=धनुर्वेदविदो विद्वांसो धनुर्वेदशिक्षया······अग्निं समाजमिवाजनयन्त, तथा सर्वैरनुष्ठेयम्**]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः ॥ यथा सत्पुरुषा धनुर्वेदज्ञाः परोपकारिणो विद्वांसो धनुर्वेदोक्त क्रियाभिर्यानेषु शस्त्रास्त्रविद्यायां चानेकधाग्निं प्रदीप्य शत्रून् विजयन्ते तथैवान्यैरपि सर्वैर्जनैराचरणीयम् ॥ ७ । २४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है ॥ जैसे सत्पुरुष, धनुर्वेद के जानने वाले, परोपकारी विद्वान् लोग धनुर्वेद में प्रतिपादित क्रियाओं से यानों में तथा शस्त्र-अस्त्र विद्या की सिद्धि में अनेक बार अग्नि को प्रदीप्त कर शत्रुओं पर विजय प्राप्त करते हैं वैसे अन्य सब लोग भी आचरण करें ॥ ७ । २४ ॥

भाष्यसार—१. **विद्वानों का कर्त्तव्य**—धनुर्वेद के वेत्ता परोपकारी, श्रेष्ठ विद्वानों का कर्त्तव्य है, कि—वे धनुर्वेद की शिक्षा से एवं धनुर्वेद में प्रतिपादित क्रियाओं से यानों में तथा शस्त्र—अस्त्र विद्या की सिद्धि में अनेक बार (**पुनः पुनः**) अग्नि को प्रदीप्त करें और शत्रुओं पर विजय प्राप्त करें ।

वह अग्नि कैसा है ? इसके उत्तर में वेद कहता है कि वह प्रकाशमान सूर्य के सिर के समान है, सूर्य से पृथिवी को प्राप्त होने वाला है, अपने प्रकाश, दाह आदि सत्य गुणों से लोक में सर्वत्र प्रसिद्ध है, सब नरों को आनन्द पहुँचाने वाला है, जैसे सत्पुरुष अतिथि की पूजा करते हैं, वैसे वह अग्नि भी पूजा के योग्य है, मुख रूप में सब शिल्प व्यवहारों की रक्षा करने वाला है, आर-पार देखने का साधन है, अपने

श्रेष्ठ तेज आदि गुणों से प्रकाशमान है। सम्राट् के समान चक्रवर्ती है।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार यह है कि विद्वानों के समान अन्यजन भी उक्त भौतिक अग्नि का उपयोग करें॥

३. **विनियोग**—महर्षि ने इस मन्त्र का संस्कार विधि में सीमन्तोन्नयन संस्कार में विनियोग किया है॥ ७। २४॥

भरद्वाजः। **वैश्वानरः**=ईश्वरः॥ याजुष्यनुष्टुप्। गान्धारः। ध्रुवोसित्यस्य ध्रुवमित्यस्य च विराडार्षी बृहती। मध्यमः॥

अथेश्वरगुणा उपदिश्यन्ते॥

अब ईश्वर के गुणों का उपदेश किया जाता है॥

उपयामगृहीतोऽसि ध्रुवोऽसि ध्रुवक्षितिर्ध्रुवाणां ध्रुवतमोऽच्युतानामच्युतक्षित्तम ऽ एष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा। ध्रुवं ध्रुवेण मनसा वाचा सोममव नयामि। अथा न ऽ इन्द्र ऽ इद्विशोऽसपत्नाः समनसस्करत्॥ २५॥

पदार्थः—(उपयामगृहीतः) यमानां समूहो यामम्, उपगतं च तद्यामं चोपयाममुपयामेन गृहीत उपयामगृहीतः परमेश्वरः (**असि**) (**ध्रुवः**) स्थिरः (**असि**) (**ध्रुवक्षितिः**) ध्रुवाः क्षितयो=भूमयो यस्मिन् (**ध्रुवाणाम्**) आकाशादीनां मध्ये (**ध्रुवतमः**) अतिशयेन ध्रुवो ध्रुवतमः (**अच्युतानाम्**) कारण-जीवानाम् (**अच्युतक्षितमः**) अच्युतं क्षयति निवासयति सोऽतिशयितः (**एषः**) सत्यमार्गप्रकाशः (**ते**) तव (**योनिः**) स्थानमिव (**वैश्वानराय**) विश्वेषां नराणां नायकाय=सत्यप्रकाशकाय (**त्वा**) त्वाम् (**ध्रुवम्**) निश्चयम् (**ध्रुवेण**) निष्कम्पेण (**मनसा**) अन्तःकरणेन (**वाचा**) वाण्या (**सोमम्**) सकलजगतः प्रसवितारम् (**अव**) (**नयामि**) स्वीकरोमि (**अथ**) अनन्तरम् (**नः**) अस्माकम् (**इन्द्रः**) सर्वदुःखविदारकः (**इत्**) एव (**विशः**) प्रजाः (**असपत्नाः**) अजातशत्रवः (**समनसः**) समानं मनः=स्वांतं यासां ताः (**करत्**) करोतु। लेट्प्रयोगोऽयम्॥ अयं मन्त्रः शत० ४। २। ४। २४ व्याख्यातः॥ २५॥

प्रमाणार्थ—(करत्) यह लेट् लकार का प्रयोग है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४। २। ४। २४) में की गई है॥ ७। २५॥

सपदार्थान्वयः—हे **परमेश्वर**! त्वमुपयामगृहीतः यमानां समूहो यामम्, उपगतं च तद्यामं चोपयाममुपयामेन गृहीतः परमेश्वरः **असि**, **ध्रुवः** स्थिरः **असि**, **ध्रुवक्षितिः** ध्रुवाः क्षितयः=भूमयो यस्मिन् **ध्रुवाणाम्** आकाशादीनां मध्ये (**ध्रुवतमः**) अतिशयेन ध्रुवो ध्रुवतमः, **तथा चाच्युतानां** कारणजीवानाम् **अच्युतक्षित्तमः** अच्युतं क्षयति=निवासयति सोऽतिशयितः **असि**।

एषः सत्यमार्गप्रकाशः ते तव **योनिः** स्थानमिव अस्ति। अस्मै वैश्वानराय=राज्यप्रकाशकाय

भाषार्थ—हे परमेश्वर! आप (**उपयाम-गृहीतः**) यम और नियमों से ग्रहण करने के योग्य (**असि**) हो, (**ध्रुवः**) स्थिर (**असि**) हो, (**ध्रुवक्षितिः**) सब भूमियाँ आप में स्थिर हैं, (**ध्रुवाणाम्**) आकाश आदि स्थिर पदार्थों में (**ध्रुवतमः**) अत्यन्त स्थिर आप ही हो, और (**अच्युतानाम्**) कारण द्रव्य और जीवों के (**अच्युतक्षित्तमः**) सर्वथा निवास-स्थान (**असि**) आप ही हो। और—

(**एषः**) यह सत्य मार्ग का प्रकाश (**ते**) आपके (**योनिः**) स्थान के समान है, इस (**वैश्वानराय**)

विश्वेषां नराणां नायकाय, सत्यप्रकाशाय **ध्रुवेण** निष्कम्पेण **मनसा** अन्तःकरणेन **ध्रुवया वाचा** वाण्या **च सोमं** सकलजगतः प्रसवितारं **त्वां ध्रुवं** निश्चयम् **अवनयामि** स्वीकरोमि ।

सब नरों के नायक सत्यप्रकाश की प्राप्ति के लिये (**ध्रुवेण**) स्थिर (**मनसा**) अन्तःकरण से तथा स्थिर (**वाचा**) वाणी से (**सोमम्**) सकल जगत् के उत्पादक आपको मैं (**ध्रुवम्**) निश्चयपूर्वक (**अवनयामि**) स्वीकार करता हूँ ।

अथ अनन्तरम् **इन्द्रः** सर्वदुःखविदारकः **भवान् नः** अस्माकं **विशः** प्रजाः **असपत्नाः** आजातशत्रवः **समनसः** समानं मनः=स्वान्तं यासां ताः **इद्=एव करत्=करोतु** ॥ ७ । २५ ॥

(**अथ**) और (**इन्द्रः**) सब दुःखों का विदारक करने वाले आप (**नः**) हमारी (**विशः**) प्रजा को (**असपत्नाः**) शत्रुरहित तथा **समनसः** समान मन वाली (**इद्**) ही (**करत्**) कीजिये ॥ ७ । २५ ॥

[हे परमेश्वर ! त्वमुपयामगृहीतोऽसि, ध्रुवोऽसि, ध्रुवक्षितिर्ध्रुवाणां ध्रुवतमस्तथा चा च्युतानाम च्युताक्षित्तमोऽसि]

भावार्थः—यो नित्यानां नित्यो ध्रुवाणामपि ध्रुवः परमेश्वरस्तस्य सर्वजगत्प्रेरकस्य प्राप्तया योगाभ्यासानुष्ठानेन चैव विज्ञानं जायते, नान्यथा ॥ ७ । २५ ॥

भावार्थ—जो नित्य पदार्थों में नित्य और स्थिर पदार्थों में सब से अधिक स्थिर परमेश्वर है, उस सब जगत् के उत्पादक ईश्वर की प्राप्ति और योगाभ्यास के अनुष्ठान से ही विज्ञान की उत्पत्ति होता है, अन्यथा नहीं ॥ ७ । २५ ॥

भा० पदार्थः—अच्युतानाम्=नित्यानाम् ।

भाष्यसार—**ईश्वर के गुण**—परमेश्वर यम-नियमों से ग्रहण करने के योग्य है, स्थिर है, पृथिवी आदि स्थिर पदार्थ उसी में स्थिर हैं, आकाश आदि स्थिर पदार्थों में सब से अधिक स्थिर है, कारण अर्थात् प्रकृति और जीव जो नित्य पदार्थ हैं उन सबसे अधिक नित्य है, अर्थात् कभी विकारभाव को प्राप्त नहीं होता और कभी शरीर धारण नहीं करता । कारण (**प्रकृति**) और जीवों का निवास-स्थान है । सत्य मार्ग का प्रकाश उसका स्थान है । सब नरों के नायक एवं सत्य के प्रकाशक परमेश्वर को अचल अन्तःकरण से तथा अचल (**स्थिर**) वाणी से सकल जगत् के उत्पादक परमेश्वर को निश्चय से प्राप्त करें । सब दुःखों का विदारण करने वाला परमेश्वर प्रजा को शत्रु-रहित तथा एक मन (**विचार**) वाली करे ॥ ७ । २५ ॥

देवश्रवा । **यज्ञः=स्पष्टम्** ॥ स्वराड् ब्राह्मी बृहती । मध्यमः ॥

अथेश्वरो यज्ञानुष्ठातारमुपदिशति ॥

अब ईश्वर यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले को उपदेश करता है ॥

यस्ते॑ द्र॒प्स स्कन्द॑ति यस्ते॑ ऽ अ॒ꣳशुर्ग्राव॑च्युतो धि॒षण॑योरु॒पस्था॑त् ।
अ॒ध्व॒र्य्वोर्वा॒ परि॑ वा॒ यः प॒वित्रा॒त्तं ते॑ जुहोमि॒ मन॑सा वष॑ट्कृत॒ꣳस्वाहा॑ दे॒वाना॑मु॒त्क्रम॑णमणमसि ॥२६॥

पदार्थः—(**यः**) यजमानः (**ते**) तव (**द्रप्सः**) यज्ञपदार्थसमूहः । अत्र वा शर्प्र करणे खर्परे लोप इति विसर्जनीयलोपः ॥ अ० ८ । ३ । ३६ ॥ भा० वा० (**स्कन्दति**) अन्यान् प्रति गच्छति (**यः**) (**ते**) तव (**अंशुः**) संविभागः । अत्रामधातोरुः प्रत्ययः शकारागमश्च (**ग्रावच्युतः**) ग्राव्णो=मेघाच्च्युतः ग्रावेति मेघनामसु पठितम् ॥ निघं० १ । १० ॥ (**धिषणयोः**) द्यावापृथिव्योः । धिषणे इति द्यावापृथिवीनामसु पठितम् ॥ निघं० ३ । ३० ॥

(उपस्थात्) समीपस्थात् (अध्वर्य्योः) (वा) होत्रादीनां समुच्चये (परि) सर्वतः (वा) शुद्धगुणानां समुच्चये (यः) शुद्धपदार्थसमूहः (पवित्रात्) निर्मलात् (तम्) (ते) तुभ्यम् (जुहोमि) ददामि (मनसा) सुविचारेण (वषट्कृतम्) संकल्पितमिव (स्वाहा) सत्यवाचा (देवानाम्) आप्तानां विदुषाम् (उत्क्रमणम्) ऊर्ध्वक्रमणं तेज इव (असि) ॥ अयं मन्त्रः शत० ४ । २ । ५ । २५ व्याख्यातः ॥ २६ ॥

प्रमाणार्थ—(द्रप्स स्कन्दति) यहां 'वा शर्प्रकरणे खर्परे लोपः' (अ० ८ । ३ । ३६) इस भाष्यवार्त्तिक से विसर्ग का लोप है। (अंशुः) यहां 'अम्' धातु से 'उ' प्रत्यय और शकार का आगम है। (ग्रावच्युतः) 'ग्राव' शब्द निघं० (१ । १०) में मेघ-नामों में पढ़ा है। (धिषणयोः) 'धिषणे' शब्द निघं० (३ । ३०) द्यावापृथिवी-नामों में पढ़ा है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । २ । ५ । २५) में की गई है ॥ ७ । २६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **यज्ञपते ! यः** यजमानः **ते** तव **द्रप्सः** यज्ञपदार्थसमूहः **स्कन्दति**=**वायुना सह सर्वत्र गच्छति**, अन्यान् प्रति गच्छति, **यश्च ते** तव **ग्रावच्युतः** ग्राव्णः=मेघाच्चयुतः **अंशुः** संविभागः **धिषणयोः** द्यावापृथिव्योः **पवित्रात्** निर्मलात् **उपस्थात्** समीपस्थात् **यः** शुद्ध पदार्थ-समूहः **वा**=**अध्वर्य्योः** होत्रादीनां **सकाशात्** [**परि**]=**परितः** सर्वतः **वा** शुद्धगुणान् **प्रकाशते, तस्मात्तमहं ते** तुभ्यं **स्वाहा** सत्य वाचा **मनसा** सुविचारेण **वषट्कृतं** सङ्कल्पितमिव **जुहोमि**=**तत्फलप्रदानेन तुभ्यं प्रयच्छामि** ददामि, **यतस्त्वं यज्ञानुष्ठाता देवानाम्** आप्तानां विदुषाम् **उत्क्रमणम्** ऊर्ध्वक्रमणं तेज **इवासि** ॥ ७ । २६ ॥

भाषार्थ—हे यज्ञ के पति ! (**यः**) जो यज्ञ का साधन रूप (**ते**) तेरा (**द्रप्सः**) यज्ञ के पदार्थों का समूह (**स्कन्दति**) वायु के साथ सर्वत्र गति करता है एवं अन्यों को प्राप्त होता है, और जो (**ते**) तेरा (**ग्रावच्युतः**) मेघ से छूटा हुआ (**अंशुः**) यज्ञ के पदार्थों का भाग (**धिषणयोः**) प्रकाश और भूमि के (**पवित्रात्**) निर्मल (**उपस्थात्**) समीपवर्त्ती स्थान से, और (**यः**) जो शुद्ध पदार्थों का समूह (**वा**) अध्वर्यु एवं होता आदि के पास से [**परि**] सब ओर से (**वा**) शुद्ध गुणों को प्रकाशित करता है, इसलिये उसे मैं (**ते**) तेरे लिये (**स्वाहा**) सत्यवाणी और (**मनसा**) शुभ विचार से (**वषट्कृतम्**) सङ्कल्प-पूर्वक (**जुहोमि**) उसे फल सहित तुझे प्रदान करता हूँ, जिससे तू यज्ञपति (**देवानाम्**) आप्त विद्वानों को (**उत्क्रमणम्**) तेज के समान ऊँचा उठाने वाला (**असि**) है ॥ ७ । २६ ॥

[हे यज्ञपते ! यस्ते द्रप्सः स्कन्दति=वायुना सह सर्वत्र गच्छति, यश्च ते ग्रावच्युतोंऽशुर्धिषणयोः पवित्राद्रुपस्थात्······प्रकाशते, तस्मात्तमहं······जुहोमि]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः ॥ होत्रादयो विद्वांसोऽतीवदृढया सामग्र्या यज्ञमनुष्ठीयमानान् सुरभियुक्तान् पदार्थानग्नौ प्रक्षिपन्ति ते जलवायू संशोध्य मेघेन सह पृथिवीं प्राप्य, सर्वान् रोगान् निवर्त्त्य, सर्वान् प्राणिन आनन्दयन्ति। अतः सर्वैर्मनुष्यैरयं यज्ञः सदा सेव्यः ॥ ७ । २६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है ॥ होता आदि विद्वान् लोग अत्यन्त बलदायक सामग्री से यज्ञ करते हुये जिन सुगन्धित पदार्थों को अग्नि में छोड़ते हैं, वे जल और वायु को शुद्ध करके, बादल के साथ पृथिवी पर आकर, सब रोगों को हटाकर सब प्राणियों को आनन्द देते हैं। इसलिये सब मनुष्य इस यज्ञ का सदा सेवा करें। ७ । २६ ॥

भाष्यसार—१. **ईश्वर का यज्ञपति को उपदेश**—ईश्वर उपदेश करता है कि हे यजमान ! जो अत्यन्त बलदायक एवं सुगन्धकारक यज्ञ की सामग्री को तू अग्नि में छोड़ता है, वह वायु के

साथ मिलकर सर्वत्र फैल जाती है, तथा सब मनुष्यों को प्राप्त हो जाती है। बादल से जल-कण रूप में पृथक् हुआ उस यज्ञ-सामग्री का अंश, द्युलोक और भूलोक के पवित्र उपस्थ में विद्यमान उस शुद्ध यज्ञ सामग्री का अंश, होता, अध्वर्यु आदि विद्वानों के हाथ से अग्नि में छूटा हुआ यज्ञसामग्री का अंश सब ओर शुद्ध गुणों का प्रसार कर देता है। इसलिये मैं वेदोक्त सत्य वाणी से और उत्तम विचारपूर्वक संकल्प के समान तुझे उक्त यज्ञ को प्रदान करता हूँ और साथ में उस यज्ञ का फल भी बतलाता हूँ। क्योंकि हे यजमान! तू आप्त विद्वान् पुरुषों में ऊपर को गति करने वाले तेज के समान है। इसलिये तू इस यज्ञानुष्ठान में आप्त-विद्वानों को आगे बढ़ने की प्रेरणा कर। उन्हें इस दिशा में प्रकाश प्रदान कर ॥

२. **अलङ्कार**--इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार यह है कि होता, अध्वर्यु आदि विद्वानों के समान सब मनुष्य यज्ञ का सेवन करें ॥ ७ । २६ ॥

देवश्रवा । **यज्ञपतिः=विद्यादाता गुरुः** । प्राणायेत्यस्य व्यानायेत्यस्य चासुर्य्यनुष्टुप्, उदानायेत्यस्यासुर्य्युष्णिक्, वाचेम इत्यस्य साम्नी गायत्री, क्रतूदक्षाभ्यामित्यस्यासुरी गायत्री, श्रोत्रायमेद्रत्यस्यासुर्य्यनुष्टुप्, चक्षुर्भ्यामित्यस्य चासुर्य्युष्णिक् छन्दांसि । अनुष्टुभो गान्धारो गायत्र्याः षड्ज उष्णिज ऋषभश्च स्वरः ॥

पुनरध्ययनाध्यापनाख्ययज्ञकर्त्तुर्विषयान्तरमाह ॥

फिर पठनपाठन नामक यज्ञ करने वाले को विषयान्तर का उपदेश किया है ॥

प्राणायं मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व व्यानायं मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वोदानायं मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व वाचे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व क्रतूदक्षाभ्यां मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व श्रोत्राय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व चक्षुर्भ्यां मे वर्चोदसौ वर्चसे पवेथाम् ॥ २७ ॥

पदार्थः--(**प्राणाय**) प्राणिति=जीवयतीति प्राणो=हृदयस्थो वायुस्तस्मै (**मे**) मम (**वर्चोदाः**) यथायोग्यं प्रकाशं ददाति, तत्संबुद्धौ (**वर्चसे**) विद्याप्रकाशाय (**पवस्व**) पवित्रतया प्राप्नुहि (**व्यानाय**) सर्वशरीरगतवायवे (**मे**) मम (**वर्चोदाः**) दीप्तिप्रदो जाठराग्निरिव (**वर्चसे**) अन्नाय । **वर्च इत्यन्ननामसु पठितम् ॥ निघं० २ । ७ ॥** (**पवस्व**) (**उदानाय**) (**मे**) मम (**वर्चोदाः**) वर्चो=विद्याबलं ददा पराक्रमाय (**पवस्व**) (**वाचे**) वाण्यै (**मे**) मम (**वर्चोदाः**) सत्यवक्तृत्वप्रदः (**वर्चसे**) प्रागल्भ्याय (**पवस्व**) प्रवर्त्तस्व (**क्रतूदक्षाभ्याम्**) प्रज्ञाबलाभ्याम् (**मे**) मम (**वर्चोदाः**) विज्ञानप्रदः (**वर्चसे**) शब्दार्थसंबन्धविज्ञानाय (**पवस्व**) उपदिश (**श्रोत्राय**) शब्दज्ञानाय (**मे**) मम (**वर्चोदाः**) तज्ज्ञानदः (**वर्चसे**) अध्ययनदीप्त्यै (**पवस्व**) प्रापको भव (**चक्षुर्भ्याम्**) (**मे**) मम (**वर्चोदसौ**) सूर्य्याचन्द्रमसाविवातिश्रध्यापकौ (**वर्चसे**) शुद्धसिद्धांतप्रकाशाय (**पवेथाम्**) प्राप्नुतम् ॥ अयं मंत्रः शत० ४ । ५ । ६ । २ व्याख्यातः ॥ २७ ॥

प्रमाणार्थ--(**वर्चसे**) 'वर्चः' शब्द निघं० (२ । ७) में अन्न-नामों में पढ़ा है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । ५ । ६ । २) में की गई है ॥ ७ । २७ ॥

सपदार्थान्वयः--हे **वर्चोदाः** यथा-योग्यं प्रकाशं ददाति तत सम्बुद्धौ **अध्येतरध्या-**

भाषार्थ--हे (वर्चोदाः) यथायोग्य प्रकाश देने वाले छात्र एवं अध्यापक! तू [मे] मेरे

पक ! त्वं [मे]=मम **प्राणाय** प्राणिति जीवयतीति प्राणः=हृदयस्थो वायुस्तस्मै **वर्चसे** विद्याप्रकाशाय **पवस्व** पवित्रतया प्राप्नुहि।

(**प्राणाय**) जीवित रखने वाले, हृदय में स्थित प्राण वायु को (**वर्चसे**) विद्या प्रकाश के लिये (**पवस्व**) पवित्रतापूर्वक प्राप्त कर।

हे **वर्चोदाः** ! दीप्तिप्रदो जाठराग्निरिव ! [**मे**] **मम व्यानाय** सर्वशरीरगत वायवे **वर्चसे** अन्नाय **पवस्व**।

हे (**वर्चोदाः**) दीप्ति प्रदान करने वाले जाठराग्नि के समान छात्र एवं अध्यापक ! तू [**मे**] मेरे (**व्यानाय**) सम्पूर्ण शरीर में विद्यमान व्यान नामक वायु को (**वर्चसे**) अन्न के लिये (**पवस्व**) पवित्रतापूर्वक प्राप्त कर।

हे **वर्चोदाः** वर्चः=विद्याबलं ददातीति **मे**=**ममोदानाय वर्चसे** पराक्रमाय **पवस्व**।

हे (**वर्चोदाः**) विद्याबल को देने वाले छात्र एवं अध्यापक ! तू (**मे**) मेरे (**उदानाय**) उदान नामक प्राण को (**वर्चसे**) पराक्रम के लिये (**पवस्व**) पवित्रतापूर्वक प्राप्त कर।

हे **वर्चोदाः** सत्यवक्तृत्वप्रद ! **मे**=**मम वाचे** वाण्यै **वर्चसे** प्रागल्भ्याय **पवस्व** प्रवर्त्तस्व।

हे (**वर्चोदाः**) सत्यभाषण की शक्ति देने वाले छात्र एवं अध्यापक ! तू (मे) मेरी (**वाचे**) वाणी तथा (**वर्चसे**) प्रगल्भता की प्राप्ति के लिये (**पवस्व**) सदा प्रवृत्त रह।

हे [**वर्चोदाः**] विज्ञानप्रद [**मे**] मम **क्रतूदक्षाभ्यां**] प्रज्ञाबलाभ्यां [**वर्चसे**] शब्दार्थ सम्बन्धविज्ञानाय [**पवस्व**] उपदिश।

हे [**वर्चोदाः**] विज्ञान देने वाले छात्र एवं अध्यापक ! तू [**मे**] मेरे (**क्रतूदक्षाभ्याम्**) बुद्धि और बल तथा [**वर्चसे**] शब्दार्थ सम्बन्ध के विज्ञान के लिये [**पवस्व**] सदा उपदेश कर।

हे [**वर्चोदाः**] तज्ज्ञानदः [**मे**] मम [**श्रोत्राय**] शब्दज्ञानाय [**वर्चसे**] अध्ययनदीप्त्यै [**पवस्व**] प्रापको भव।

हे [**वर्चोदाः**] शब्द-ज्ञान को देने वाले छात्र एवं अध्यापक ! तू [**मे**] मेरे (**श्रोत्राय**) शब्द ज्ञान और [**वर्चसे**] अध्ययन-दीप्ति का [**पवस्व**] प्रापक बन।

हे **वर्चोदसौ** ! सूर्य्याचन्द्रमसाविवातिथ्यध्यापकौ **युवां मे** मम **चक्षुर्भ्यां वर्चसे** शुद्धसिद्धान्त प्रकाशाय **पवेथां** प्राप्नुतम्॥ ७। २७॥

हे (**वर्चोदसौ**) सूर्य और चन्द्रमा के समान अतिथि और अध्यापक लोगो ! तुम (**मे**) मेरी (**चक्षुर्भ्याम्**) चक्षु और (**वर्चसे**) शुद्ध सिद्धान्त प्रकाश को (**पवेथाम्**) प्राप्त करो॥ ७। २७॥

[हे वर्चोदाः ! अध्येतरध्यापक ! त्वं [मे]=मम प्राणाय वर्चसे पवस्व...]

भावार्थः—यो मनुष्यो विद्यावृद्धये पठनपाठन रूपं यज्ञं कर्म करोति, स सर्वपुष्टिसन्तुष्टिकरो भवत्यत एवं सर्वैरनुष्ठातव्यम्॥ ७। २७॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्या-वृद्धि के लिये पठन-पाठन रूप यज्ञ-कर्म को करता है वह सबकी पुष्टि और सन्तुष्टि करने वाला होता है, अतः इस प्रकार सब मनुष्य उक्त यज्ञ का अनुष्ठान करें॥ ७। २७॥

भाष्यसार—**पठन-पाठन रूप यज्ञ करने वाले के लिये ईश्वर का उपदेश**—पठन-पाठन रूप यज्ञ को करने वाले छात्र और अध्यापक लोग यथायोग्य विद्या-प्रकाश को देने वाले हों और वे ईश्वर

की दी हुई हृदयस्थ प्राण-शक्ति को तथा उसके विद्याप्रकाश को पवित्र आचरण से प्राप्त करें । शरीर में दीप्ति देने वाले जाठर अग्नि के समान छात्र और अध्यापक परमेश्वर की दी हुई, सब शरीर में विद्यमान व्यान-वायु को और अन्न को पवित्र आचरण से एवं यज्ञ आदि से प्राप्त करें । समाज में विद्याबल को प्रदान करने वाले छात्र और अध्यापक परमेश्वर की दी हुई उदान-वायु और पराक्रम को पवित्र आचरण से प्राप्त करें । सत्यभाषण करने वाले छात्र और अध्यापक परमेश्वर की वेदवाणी और प्रगल्भता को प्राप्त करने में प्रवृत्त रहें । विज्ञान को देने वाले छात्र और अध्यापक ईश्वर की प्रज्ञा, बल से शब्दार्थ सम्बन्ध के विज्ञान का उपदेश करें । शब्द ज्ञान का उपदेश करने वाले छात्र और अध्यापक ईश्वर के शब्द ज्ञान और वेदाध्ययन से उत्पन्न दीप्ति को प्राप्त करने वाले हों । सूर्य और चन्द्रमा के समान अविद्या अन्धकार का विनाश करने वाले अतिथि और अध्यापक लोग ईश्वर की वेदज्ञान रूप चक्षु को तथा उसके शुद्ध सिद्धान्त रूप प्रकाश को प्राप्त करके विद्या की वृद्धि के लिये पठन-पाठन रूप यज्ञ-कर्म को करते रहें, जिससे सब की पुष्टि और सन्तुष्टि होती रहे ॥ ७ । २७ ॥

देवश्रवाः । **यज्ञपतिः=विद्वान्** । ब्राह्मी बृहती । मध्यमः ॥

पुनस्तदेवाह ॥

पठन-पाठन रूप यज्ञ का फिर उपदेश किया है ॥

आत्मने मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वौजसे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वायुषे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व विश्वाभ्यो मे प्रजाभ्यो वर्चोदसौ वर्चसे पवेथाम् ॥ २८ ॥

पदार्थः—(**आत्मने**) इच्छादिगुणसमवेताय स्वस्वरूपाय (**मे**) मम (**वर्चोदाः**) योगब्रह्मविद्याप्रद ! (**वर्चसे**) निजात्मप्रकाशाय (**पवस्व**) प्रापय (**ओजसे**) आत्मबलाय । ओज इति बलनामसु पठितम् ॥ निघं० २ । ६ ॥ (**मे**) मम (**वर्चोदाः**) विद्याप्रद ! (**वर्चसे**) योगबलप्रकाशाय (**पवस्व**) विज्ञापय (**आयुषे**) जीवनाय (**मे**) (**वर्चोदाः**) वर्चो=बलं ददाति तत्सम्बुद्धौ (**वर्चसे**) रोगापहारकायौषधाय (**पवस्व**) गमय (**विश्वाभ्यः**) समस्ताभ्यः (**मे**) मम (**प्रजाभ्यः**) पालनीयाभ्यः (**वर्चोदसौ**) न्यायप्रकाशकौ सर्वाधिष्ठातारौ सभापतिन्यायाधीशावित्र योगारूढयोगजिज्ञासू (**वर्चसे**) सद्गुणप्रकाशाय (**पवेथाम्**) प्रापयेथाम् ॥ अयं मन्त्रः शत० ४ । ५ । ६ । ३ व्याख्यातः ॥ २८ ॥

प्रमाणार्थ—(**ओजसे**) 'ओजः' शब्द निघं० (२ । ६) में बल-नामों में पढ़ा है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । ५ । ६ । ३) में की गई है ॥ ७ । २८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे वर्चोदाः=विद्वन् ! योगब्रह्मविद्याप्रद ! त्वं मे=ममात्मने इच्छादिगुणसमवेताय स्वस्वरूपाय **वर्चसे** निजात्मप्रकाशाय **पवस्व** प्रापय ।

हे **वर्चोदाः** ! विद्याप्रद ! **मे** मम **ओजसे** आत्मबलाय **वर्चसे** योगबलप्रकाशाय **पवस्व** विज्ञापय ।

हे **वर्चोदाः** ! वर्चः=बलं ददाति तत्सम्बुद्धौ !

भाषार्थ—हे (**वर्चोदाः**) योग और ब्रह्मविद्या को देने वाले विद्वान् ! तू (**मे**) मेरे (**आत्मने**) इच्छा आदि गुणों से युक्त अपने स्वरूप को और (**वर्चसे**) अपने आत्मा के प्रकाश को (**पवस्व**) प्राप्त कर और करा ।

हे (**वर्चोदाः**) विद्या प्रदान करने वाले विद्वान् ! तू (**मे**) मेरे (**ओजसे**) आत्मबल और (**वर्चसे**) योग बल के प्रकाश को (**पवस्व**) जान और जना ।

हे (**वर्चोदाः**) बल देने वाले विद्वान् ! तू (**मे**)

मे=ममाऽऽयुषे जीवनाय **वर्चसे** रोगापहारकायौषधाय पवस्व गमय ।

हे वर्चोदसौ ! न्यायप्रकाशकौ सर्वाधिष्ठातारौ सभापतिन्यायधीशाविव योगारूढ़-योगजिज्ञासू ! युवां मे=मम विश्वाभ्यः समस्ताभ्यः प्रजाभ्यः पालनीयाभ्यः वर्चसे सद्गुणप्रकाशाय पवेथां प्रापयेथाम् ॥ ७ । २८ ॥

मेरे (**आयुषे**) जीवन और (**वर्चसे**) रोगापहारक औषध को (**पवस्व**) प्राप्त कर और करा ।

हे (**वर्चोदसौ**) न्याय के प्रकाशक, सब के अधिष्ठाता, सभापति न्यायाधीश के समान योगारूढ़ योग जिज्ञासु पुरुषो ! तुम (मे) मेरी (**विश्वाभ्यः**) समस्त (**प्रजाभ्यः**) प्रजा के लिये (**वर्चसे**) सद्गुण के प्रकाश को (**पवेथाम्**) प्राप्त करो और कराओ ॥ ७ । २८ ॥

[हे वर्चोदाः=विद्वन् ! त्वं मे=ममात्मने वर्चसे पवस्व,...हे वर्चोदसौ ! युवां मे=मम विश्वाभ्यः प्रजाभ्यो वर्चसे पवेथाम्]

भावार्थः—नैव योगेन विना कश्चिदपि पूर्णविद्यो भवति, न च पूर्णया विद्वत्तया विना स्वात्मपरमात्मनोर्बोधः कथंचिज्जायते, नापि तेन विना सत्पुरुषवत् प्रजाः पालयितुं कश्चिदपि शक्नोति, तस्माद्योगविधिरयं सर्वजनैः संसेव्यः ॥ ७ । २८ ॥

भावार्थ—योग के बिना कोई भी मनुष्य पूर्ण विद्यावान् नहीं होता, और पूर्ण विद्वत्ता के बिना आत्मा और परमात्मा का बोध किस प्रकार नहीं हो सकता, और इस बोध के बिना सत्पुरुष के समान कोई प्रजा का पालन नहीं कर सकता, अतः योगविद्या का सब सेवन करें ॥ ७ । २८ ॥

भाष्यसार—**पठन-पाठन रूप यज्ञ का उपदेश**—ईश्वर उपदेश करता है कि हे योग एवं ब्रह्मविद्या को देने वाले विद्वान् ! तू इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और ज्ञान गुणों से युक्त आत्मा और इसके प्रकाश को योग से प्राप्त कर । योग के बिना कोई भी मनुष्य पूर्ण विद्वान नहीं हो सकता, पूर्ण विद्या के बिना कोई आत्मा और परमात्मा का बोध प्राप्त नहीं कर सकता ।

हे विद्या के दाता विद्वान् ! तू आत्मबल और योगबल और स्वयं जानकर सब को जना, उसका उपदेश कर । हे बल के दाता विद्वान् ! तू दीर्घ आयु और उसके लिये रोगापहारी औषध को स्वयं प्राप्त कर और करा । योगारूढ़ गुरु और योगजिज्ञासु शिष्य दोनों सब प्रजा के लिये सद्गुणों के प्रकाश को प्रदान करें । योग के बिना श्रेष्ठ पुरुषों के समान कोई भी प्रजा का पालन नहीं कर सकता। इसलिये सब योगविधि का अवश्य सेवन करें ॥ ७ । २८ ॥

देवश्रवाः । **प्रजापतिः=सभापती राजा** ॥ आर्चीपंक्तिः । भूर्भुवस्वरित्यस्य भुरिक्साम्नी पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

सभापती राजा प्रजासेनासभ्यजनान् प्रति किं किं वदेदित्याह ॥

सभापति राजा, प्रजा सेना और सभ्यजनों को क्या-क्या कहे, यही अगले मन्त्र में कहा है ॥

कोऽसि कतमोऽसि कस्यासि को नामासि । यस्य ते नाममन्महि यं त्वा सोमेनातीतृपाम ।
भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याᳬं सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः ॥ २९ ॥

पदार्थः—(**कः**) (**असि**) (**कतमः**) बहूनां मध्ये कः (**असि**) (**कस्य**) (**असि**) (**कः**) (**नाम**) ख्यातिः (**असि**) (**यस्य**) (**ते**) तव (**नाम**) (**अमन्महि**) विजानीमहि । **अत्र लिङर्थे लङ् । बहुलं छन्दसि ॥**

अ० २ । ४ । ७३ ॥ इति विकरणलुक् (**यम**) (**त्वा**) त्वाम् (**सोमेन**) ऐश्वर्य्येण (**अतितृपाम**) तर्प्पयाम (**भूः**) भूमेः (**भुवः**) अन्तरिक्षस्य (**स्वः**) आदित्यलोकस्य (**सुप्रजाः**) सुष्ठुप्रजासहितः (**प्रजाभिः**) अनुकूलाभि पालनीयाभिः सह (**स्याम्**) भवेयम् (**सुवीरः**) प्रशस्तवीरयुक्तः (**वीरैः**) शरीरात्मबलयुक्तैर्युद्धकुशलैः सह (**सुपोषः**) प्रशस्तपुष्टिः (**पोषैः**) पुष्टिभिः ॥ **अयं मंत्रः शत० ४ । ५ । ६ । ४ व्याख्यातः ॥ २६ ॥**

प्रमाणार्थ--(**अमन्महि**) विजानीमहि । यहां लिङ् अर्थ में लङ् लकार है । 'बहुलं छन्दसि' (अ० २ । ४ । ७३) इस सूत्र से विकरण-प्रत्यय का लुक् है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । ५ । ६ ।४) में की गई है ॥ ७ । २६ ॥

सपदार्थान्वयः—सभ्यसेनास्थप्रजाजना **वयं, त्वं कोऽसि, कतमः** बहूनां मध्ये कः **असि, कस्यासि, को नामासि**=**किन्नाम्ना प्रसिद्धः** ख्यातिः **असि, यस्य ते**=**तव नाम वयममन्महि** विजानीमहि, **यं त्वा**=**त्वां सोमेन** ऐश्वर्येण **अतीतृपाम** तर्प्पयाम **इति पृच्छामो, ब्रूहि । तान् प्रति सभापतिराह—भूः** भूमेः **भुवः** अन्तरिक्षस्य **स्वः** आदित्यलोकस्य **लोकसुखमिवात्मसुखमभीप्सुरहं युष्माभिः प्रजाभिः** अनुकूलाभिः पालनीयाभिः सह **सुप्रजाः** सुष्ठुप्रजा-सहितः **वीरैः** शरीरात्मबलयुक्तैर्युद्धकुशलैः सह **सुवीरः** प्रशस्तवीरयुक्तः **पोषैः** पुष्टिभिः **सुपोषः** प्रशस्त-पुष्टिः **च स्यां** भवेयम् **इति प्रतिजाने** ॥ ७ । २६ ॥

भाषार्थ—सभ्य एवं सेना के प्रजाजन हम लोग–आप (**कः**) कौन (**असि**) हैं ? (**कतमः**) बहुत लोगों के मध्य में कौन (**असि**) हैं ? (**कस्य**) किसके (**असि**) हैं ? (**को नामा**) किस नाम से प्रसिद्ध (**असि**) हैं ? (**यस्य**) जिस (**ते**) आपके (**नाम**) नाम को (**अमन्महि**) जानें, (**यम्**) जिस (**त्वा**) आपको (**सोमेन**) ऐश्वर्य से (**अतीतृपाम**) तृप्त करें, ऐसा हम पूछते हैं । कृपया आप बतलाइये । उन्हें सभापति उत्तर देता है—(**भूः**) भूमि (**भुवः**) अन्त-रिक्ष और (**स्वः**) आदित्य अर्थात् स्वर्गलोक के सुख के समान आत्म-सुख का अभिलाषी मैं—तुम (**प्रजाभिः**) सदा अनुकूल रहने वाले प्रजाजनों से (**सुप्रजाः**) श्रेष्ठ प्रजा वाला और (**वीरैः**) शरीर और आत्मा के बल से युक्त युद्धकुशल वीरों से (**सुवीरः**) उत्तम वीरों वाला तथा (**पोषैः**) पुष्टि-कारक पदार्थों से (**सुपोषः**) उत्तम पुष्टि वाला (**स्याम्**) बनूँ, मैं ऐसी प्रतिज्ञा करता हूँ ॥ ७ । २६ ॥

[सभापतिराह—भूर्भुवःस्वर्लोकसुखमिवात्मसुखमभीप्सुरहं युष्माभिः प्रजाभिः सुप्रजा वीरैः सुवीरः पोषैः सुपोषश्च स्यामिति प्रतिजाने]

भावार्थः—सभापती राजा सत्यन्याय-प्रियव्यवहारेण सभ्यसैन्यप्रजाजनानभिरक्ष्य वर्द्धयेत्, प्रबलतरवीरान् सेनासु सम्पादयेद्यत उत्कृष्टसुखवर्द्ध-केन राज्येन भूम्यादिसुखं प्राप्नुयादिति ॥ ७ । २६ ॥

भावार्थ—सभापति राजा सत्य, न्याययुक्त प्रिय व्यवहार से सभा, सेना और प्रजा के जनों की रक्षा करके, उन्हें समुन्नत करे, अति बलवान् वीरों को सेनाओं में रखे, जिससे उत्कृष्ट सुख के वर्द्धक राज्य से भूमि आदि लोकों के सुख को प्राप्त करे ॥ ७ । २६ ॥

भाष्यसार—१. **सभापति राजा के प्रति प्रश्न**—सभा, सेना और प्रजा के पुरुष सभापति राजा से प्रश्न करें कि हे राजन् ! आप कौन हैं ? बहुत पुरुषों में कौन से हैं ? किसके हैं ? आपका क्या

नाम है ? हम आपका नाम जानना चाहते हैं ? कृपया आप अपना पूर्ण परिचय दें, जिससे हम आपको धन ऐश्वर्य से तृप्त करें ।

२. **सभापति राजा का उत्तर**--सभा, सेना और प्रजा के पुरुषों को सभापति राजा अपना पूर्ण परिचय देवे और उनसे कहे कि मैं पृथिवी, आकाश और द्युलोक में सर्वत्र सुख चाहता हूँ। सब लोकों के तुल्य आत्म-सुख का भी अभिलाषी हूँ। अपने अनुकूल प्रजा-जनों से मैं उत्तम प्रजा वाला कहलाऊँ। शरीर और आत्मा के बल से युक्त, युद्ध में कुशल वीरों से श्रेष्ठ वीरों वाला बनूँ। राज्य में घृत, दूध आदि पुष्टिकारक पदार्थों से उत्तम पुष्टिकारक पदार्थों वाला होऊँ।

मैं सत्य, न्याय और प्रिय व्यवहार से सभा, सेना और प्रजा के पुरुषों की रक्षा तथा उनकी सब प्रकार की वृद्धि करूँगा। सेनाओं में अत्यन्त बलवान् वीरों को रखूँगा। दूध, घृत आदि पुष्टिकारक पदार्थों से प्रजा-जनों को सुपुष्ट करूँगा। इस प्रकार उत्कृष्ट सुख के वर्द्धक राज्य से भूमि, अन्तरिक्ष और द्युलोक के सब सुखों को प्राप्त करूँगा। मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ ॥

३. **विनियोग**--महर्षि ने इस मन्त्र का संस्कारविधि के नामकरण संस्कार में विनियोग किया है ॥ ७ । २९ ॥

उपयामगृहीतोसीत्यस्य देवश्रवाः । **प्रजापतिः**=**राजा** ॥ आद्यस्य साम्नी गायत्री,
द्वितीयस्यासुर्य्यनुष्टुप्, तृतीयचतुर्थपंचमानां साम्नी गायत्री, षष्ठस्यासुर्य्यनुष्टुप्,
सप्तमाष्टमयोर्याजुषी पंक्तिर्नवमस्य साम्नी गायत्री, दशमस्यासुर्य्यनुष्टुप्
एकादशस्य साम्नी गायत्री, द्वादशस्यासुर्य्यनुष्टुप्, त्रयोदशस्यासुर्य्युष्णिक्
छन्दांसि । अत्र गायत्र्या षड्जः, अनुष्टुभो गांधारः, पंक्तेः पंचमः,
उष्णिज ऋषभश्च स्वराः ॥

पुनर्विषयान्तरेण तदेवाह ॥

राजा, प्रजा, सेना और सभ्य जनों को क्या-क्या कहे, यह विषयान्तर से उपदेश किया है ॥

उपयामगृहीतोऽसि मधवे त्वोपयामगृहीतोऽसि माधवाय त्वोपयामगृहीतोऽसि शुक्राय त्वोपयामगृहीऽसि शुचये त्वोपयामगृहीतोऽसि नभसे त्वोपयामगृहीतोऽसि नभस्याय त्वोपयामगृहीतोऽसीषे त्वोपयामगृहीतोऽस्यूर्ज्जे त्वोपयामगृहीतोऽसि सहसे त्वोपयामगृहीतोऽसि सहस्याय त्वोपयामगृहीतोऽसि तपसे त्वोपयामगृहीतोऽसि तपस्याय त्वोपयामगृहीतोस्यᳪंहसस्पतये त्वा ॥ ३० ॥

पदार्थः— **(उपयामगृहीतः)** सुनियमैस्स्वीकृतः **(असि)** **(मधवे)** चैत्रमासाय **(त्वा)** त्वाम् **(उपयामगृहीतः)** **(असि)** **(माधवाय)** वैशाखमासाय **(त्वा)** त्वाम् **(उपयामगृहीतः)** **(असि)** **(शुक्राय)** ज्येष्ठाय **(त्वा)** त्वाम् **(उपयामगृहीतः)** **(असि)** **(शुचये)** आषाढाय **(त्वा)** त्वाम् **(उपयामगृहीतः)** **(असि)** **(नभसे)** श्रावणाय **(त्वा)** त्वाम् **(उपयामगृहीत)** **(असि)** **(नभस्याय)** भाद्राय **(त्वा)** त्वाम् **(उपयामगृहीतः)** **(असि)** **(इषे)** आश्विनाय **(त्वा)** त्वाम् **(उपयामगृहीतः)** **(असि)** **(ऊर्ज्जे)** कार्त्तिकाय **(त्वा)** त्वाम् **(उपयामगृहीतः)** **(असि)** **(सहसे)** मार्गशीर्षाय **(त्वा)** त्वाम् **(उपयामगृहीतः)** **(असि)** **(सहस्याय)** पौषाय **(त्वा)** त्वाम् **(उपयामगृहीतः)** **(असि)** **(तपसे)** माघाय **(त्वा)** त्वाम् **(उपयामगृहीतः)** **(असि)** **(तपस्याय)** फाल्गुनाय **(त्वा)** त्वाम् **(उपयामगृहीतः)** **(असि)** **(अंहसस्पतये)** सर्वेषां वेगस्य पालकाय

(त्वा) त्वाम् ॥ अयं मन्त्रः शत० ४ । ३ । १ । १४-२३ व्याख्यातः ॥ ३० ॥

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । ३ । १ । १४-२३) में की गई है ॥ ७ । ३०॥

सपदार्थान्वयः—हे राजन् ! यतस्त्वमुपयामगृहीतः सुनियमैस्स्वीकृतः **असि, तस्मात् त्वा**=त्वां **मधवे** चैत्रमासाय **वयं स्वीकुर्म्मः** ।

भावार्थ—हे राजन् ! जिससे आप (**उपयामगृहीतः**) उत्तम नियमों से स्वीकृत (**असि**) हो, इसलिये (**त्वा**) आपको (**मधवे**) चैत्र मास के लिये हम स्वीकार करते हैं ।

सभापतिराह—हे **प्रजासभासेनाजनाः ! यतो युष्माकं प्रत्येकं उपयामगृहीतोऽस्ति, तस्मादेकैकं त्वा**=त्वां मधवे चैत्रमासाय **अहं स्वीकरोमि । इत्थं सर्वत्र योजना कार्या ।**

सभापति कहता है—हे प्रजा, सभा और सेना के पुरुषो ! क्योंकि तुम में से प्रत्येक व्यक्ति (**उपयामगृहीतः**) उत्तम नियमों से स्वीकृत है, इस लिये एक-एक करके (**त्वा**) तुम्हें (**मधवे**) चैत्र मास के लिये मैं स्वीकार करता हूँ । इस प्रकार सकल मन्त्र की योजना करें ।

[अथ योजना क्रियते—]

[**हे राजन् ! यतस्त्वमुपयामगृहीतोऽसि तस्मात्वा** त्वां **माधवाय** वैशाखमासाय, **त्वा** त्वां **शुक्राय,** ज्येष्ठाय, **त्वा** त्वां **शुचये** आषाढाय, **त्वा** त्वां **नभसे** श्रावणाय, **त्वा** त्वां **नभस्याय** भाद्राय, **त्वा** त्वां **इषे** आश्विनाय, **त्वा** त्वाम् **ऊर्ज्जे** कार्त्तिकाय, **त्वा** त्वां **सहसे** मार्गशीर्षाय, **त्वा** त्वां **सहस्याय** पौषाय, **त्वा** त्वां **तपसे** माघाय, **त्वा** त्वां **तपस्याय** फाल्गुनाय, **त्वा** त्वाम् **अहंसस्पतये** सर्वेषां वेगस्य पालकाय **वयं स्वीकुर्मः** ।

[योजना इस प्रकार है]

[हे राजन् । जिससे आप (**उपयामगृहीतः**) उत्तम नियमों से स्वीकृत (**असि**) हो, इसलिये (**त्वा**) आपको (**माधवाय**) वैशाख मास के लिये (**त्वा**) आपको (**शुक्राये**) ज्येष्ठ मास के लिये, **त्वा** आपको (**शुचये**)आषाढ़ मास के लिये, (**त्वा**)आपको (**नभसे**) श्रावण मास के लिए, (**त्वा**) आपको (**नभध्याय**) भाद्र मास के लिए, (**त्वा**) आपको (**इषे**) आश्विन मास के लिये, (**त्वा**) आपको (**ऊर्जे**) कार्त्तिक मास के लिये, (त्वा) आपको (**सहसे**) मार्गशीर्ष मास के लिये, (**त्वा**) आपको (**सहस्याय**)पौष मास के लिये, (**त्वा**) आपको (**तपसे**) माघ मास के लिये, (**त्वा**) आपको (**तपस्याय**) फाल्गुन मास के लिये, (**त्वा**) आपको (**अहंसस्पतये**) सबके बल की रक्षा के लिये हम स्वीकार करते हैं ।

सभापतिराह—हे **प्रजासभासेनाजनाः । यतो युष्माकं प्रत्येक उपयामगृहीयोऽस्ति, तस्मादेकैकं त्वा**=त्वां **माधवाय** वैशाखमासाय, **त्वा** त्वां **शुक्राय** ज्येष्ठाय, **त्वा** त्वां **शुचये** आषाढाय, **त्वा** त्वां **नभसे** श्रावणाय, **त्वा** त्वां **नभस्याय** भाद्राय, **त्वा** त्वाम् **इषे** आश्विनाय, **त्वा** त्वाम् **ऊर्ज्जे** कार्त्तिकाय, **त्वा** त्वां **सहसे** मार्गशीर्षाय, **त्वा** त्वां **सहस्याय** पौषाय, **त्वा** त्वां **तपसे** माघाय, **त्वा** त्वां **तपस्याय** फाल्गुनाय, **त्वा** त्वाम् **अहंसस्पतये** सर्वेषां वेगस्य पालकाय

सभापति कहता है—हे प्रजा, सभा और सेना के पुरुषो ! क्योंकि तुम में से प्रत्येक(**उपयामगृहीतः**) उत्तम नियमों से स्वीकृत है, इस लिये एक-एक करके (**त्वा**) तुम्हें (**माधवाय**) वैशाख मास के लिये, (**त्वा**) तुम्हें (**शुक्राय**) ज्येष्ठ मास के लिये, (**त्वा**) तुम्हें (**शुचये**) आषाढ़ मास के लिये, (**त्वा**) तुम्हें (**नभस्याय**) भाद्र मास के लिये, (**त्वा**) तुम्हें (**इषे**) आश्विन मास के लिये, (**त्वा**) तुम्हें (**ऊर्ज्ज**) कार्त्तिक मास के लिये, (**त्वा**) तुम्हें (**सहसे**) मार्ग-

अहं स्वीकरोमि ।। ७ । ३० ।।]

शीर्ष मास के लिये, (त्वा) तुम्हें (सहस्याय) पौष मास के लिये, (त्वा) तुम्हें (तपसे) माघ मास के लिये, (त्वा) तुम्हें (तपस्याय) फाल्गुन मास के लिये, (त्वा) तुम्हें (अहंसस्पतये) सबके बल की रक्षा के लिये – मैं स्वीकार करता हूँ ।। ७ । ३० ।।]

[हे राजन् ! यतस्त्वमुपयामगृहीतोऽसि तस्मात् त्वा मधवे वयं स्वीकुर्मः, सभापतिराह—हे प्रजासभासेना जनाः ! यतो युष्माकं प्रत्येक उपयामगृहीतोऽस्ति तस्मादेकैकं त्वा=त्वां स्वीकरोमि]

भावार्थः—सभापतिर्यथाकालं श्रेष्ठं राज्यं प्राप्याप्तव्यवहारेण प्रजाजनेभ्यः सर्वं सुखं दद्यात्, ते च राजाज्ञानुकूलव्यवहारे वर्त्तेरन्निति ।। ७ । ३० ।।

भावार्थ—सभापति राजा यथाकाल श्रेष्ठ राज्य को प्राप्त करके आप्त व्यवहार से प्रजा जनों को सब सुख प्रदान करे और वे राजा की आज्ञा के अनुकूल व्यवहार में वर्तमान रहें ।। ७ । ३० ।।

भाष्यसार—**१. प्रजा का राजा के प्रति कथन**—हे राजन् ! आप उत्तम नियमों के अनुसार स्वीकार किये गये हमारे राजा हो, इसलिये आपको चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्त्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ और फाल्गुन इन वर्ष के १२ मासों में होने वाले सब सुखों की प्राप्ति के लिए हम प्रजाजन आप को राजा स्वीकार करते हैं । सब के बल की रक्षा करने वाले आप ही हो । आपकी आज्ञा के अनुकूल व्यवहार में हम सदा वर्तमान रहेंगे ।

२. राजा का प्रजा के प्रति कथन—हे प्रजा, सभा और सेना के पुरुषो ! तुम में से प्रत्येक व्यक्ति को मैंने नियमानुसार अपनी प्रजा स्वीकार किया है । इसलिये चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्र-पद, आश्विन, कार्त्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ, फाल्गुन इन वर्ष के १२ मासों में यथाकाल श्रेष्ठ राज्य को प्राप्त करके आप्त-जनों के व्यवहार के अनुसार सब सुख प्रदान करूँगा । तुम प्रजा, सभा और सेना के पुरुष ही मेरे सब बलों के रक्षक हो । इसलिये मैं तुम्हें प्रजा रूप में स्वीकार करता हूँ ।। ७ । ३० ।।

विश्वामित्रः । **इन्द्राग्नी**=**सभापतिसभासदौ** । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ।।

अथ राज्यव्यवहारेण नियुक्ते कर्म्मणि प्रवर्त्तमानौ राजप्रजापुरुषौ प्रति कश्चित् सत्कारेणाह ।।

अब राज्य के व्यवहार से नियत राजकर्म्म में प्रवृत्त हुए राजा और प्रजा के पुरुषों के प्रति कोई सत्कार से कहता है ।।

इन्द्राग्नी ऽ आगतं सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम् । अस्य पातं धियेषिता ।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राग्निभ्यां त्वैष ते योनिरिन्द्राग्निभ्यां त्वा ।। ३१ ।।

पदार्थः—(**इन्द्राग्नी**) सूर्य्याग्नी इव प्रकाशमानौ सभापतिसभासदौ (**आगतम्**) आगच्छतम् (**सुतम्**) सुनुतम् । अत्र बहुलं छन्दसि ।। अ० २ । ४ । ७३ ।। इति विकरणस्य लुक् (**गीर्भिः**) सुशिक्षिताभिर्वाग्भिः (**वरेण्यम्**) (**नभः**) सुखम् । नभ इति साधारणनामसु पठितम् ।। निघं० १ । ४ ।। (**अस्य**) नभसः । कर्म्मणि षष्ठी (**पातम्**) रक्षतम् (**धिया**) प्रज्ञया कर्म्मणा वा (**इषिता**) प्रेषितौ प्रार्थितौ वा (**उपयामगृहीतः**) (**असि**) (**इन्द्राग्निभ्याम्**) (**त्वा**) त्वाम् (**एषः**) राजन्यायः (**ते**) तव (**योनिः**) गृहम् (**इन्द्राग्निभ्याम्**) (**त्वा**) त्वाम् ।। अयं मंत्रः शत० ४ । ३ । १ । २४ व्याख्यातः ।। ३१ ।।

प्रमाणार्थ—(सुतम्) सुनुतम् । यहाँ 'बहुलं छन्दसि' (**अ०** २ । ४ । ७३) इस सूत्र से विकरण-प्रत्यय का लुक् है । (**नभः**) सुखम् । 'नभः' शब्द निघं० (१ । ४) में साधारण-नामों में पढ़ा है । (**अस्य**) यहाँ कर्म-कारक में षष्ठी विभक्ति है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । ३ । १ । २४) में की गई है ॥ ७ । ३१ ॥

सपदार्थान्वयः—हे राजप्रजाजनौ ! **युवामिन्द्राग्नी** सूर्याग्नी इव प्रकाशमानौ सभापति-सभासदौ **इवाऽऽगतम्** आगच्छतं, **गीर्भिः** सुशिक्षिताभिर्वाग्भिः **अस्मभ्यं वरेण्यं नभ** सुखंसुतं सुनुतम्, **धिया** प्रज्ञया कर्म्मणा वा **इषिता** प्रेषितौ प्रार्थितौ वा **युवामस्य**=**नभसः पातं** रक्षतम् ।

तावाहतुः—हे **प्रजाजन** ! त्वामुपयामगृहीतोऽसि, **त्वा**=त्वामिन्द्राग्निभ्यां स्वीकृतं वयं मन्यामहे, **एषः** राजन्यायः **ते** तव **योनिः** गृहम् अस्ति, अतः [**त्वा**]=त्वामिन्द्राग्निभ्यां चेतयामहे ॥ ७ । ३१ ॥

भाषार्थ—हे राजा और प्रजा के पुरुषो ! (**इद्राग्नी**) सूर्य और अग्नि के समान प्रकाशमान तुम दोनों [**सभाति, सभासद**] (**आगतम्**) आओ । और (**गीर्भिः**) उत्तम शिक्षायुक्त वचनों से हमारे लिये (**वरेण्यम्**) वरण करने योग्य (**नभः**) सुख को (**सुतम्**) उत्पन्न करो । और (**धिया**) ज्ञान वा कर्म से (**इषिता**) प्रेरित वा प्रार्थित होकर तुम दोनों (**अस्य**) इस सुख की (**पातम्**) रक्षा करो ।

वे दोनों कहते हैं—हे प्रजा के जन ! तू (**उपयामगृहीतः**) उत्तम नियमों से स्वीकृत है, (**त्वा**) तुझे (**इन्द्राग्नीभ्याम्**) सभापति और सभासद् से स्वीकृत मानते हैं । (**एषः**) यह राजा का न्याय (**ते**) तेरा (**योनिः**) घर है, इसलिये [**त्वा**] तुझे (**इन्द्राग्निभ्याम्**) सभापति और सभासद् के सत्कार के लिये सचेत करते हैं ॥ ७ । ३१ ॥

[**हे राजप्रजाजनौ ! युवामिन्द्राग्नी इवागतं, गीर्भिरस्यभ्यं वरेण्यं नभः सुतम्**]

भावार्थः—नह्येकाकी पुमान् यथोक्त-राज्यकर्म कर्त्तुं शक्नोति, अतः प्रजाजनान् सत्कृत्य राज्यकर्मणि नियोजयेत्, ते च यथोक्त-व्यवहारेण तं राजानं सत्कुर्युरिति ॥ ७ । ३१ ॥

भावार्थ—अकेला पुरुष यथोक्त राज्य के कार्य नहीं कर सकता इसलिये प्रजा-जनों का सत्कार करके उन्हें राज्य के कार्यों में नियुक्त करें और वे यथोक्त व्यवहार से उस राजा का सत्कार करें ॥ ७ । ३१ ॥

भाष्यसार—**१. राजा और प्रजा के प्रति किसी का सत्कारपूर्वक कथन**—राज्य के कार्यों में लगे हुए राजा और प्रजा के पुरुषों को कोई कहता है कि हे राजन् और प्रजा-जन ! तुम दोनों सूर्य और अग्नि के समान अपने गुणों से प्रकाशमान हो । आप आइये और उत्तम शिक्षा से युक्त वेदवाणी से हमारे लिये सुख का उपदेश कीजिये, मैं आपको प्रेरणा करता हूँ, मैं आप से प्रार्थना करता हूँ, कि आप अपने ज्ञान से और कर्म से वरणीय सुख की रक्षा कीजिये ।

२. राजा और प्रजाजन का उसके प्रति उतर—हे प्रजा के पुरुष ! तू नियमानुसार मुझ से प्रजा रूप में स्वीकार किया गया है । तू सभापति और सभासदों से स्वीकार किया गया है । यह राजन्याय तेरे लिये सुख का घर है । अकेला राजा और अकेला प्रजाजन राज्य के कार्यों का संचालन नहीं कर सकता । इस लिये मैं तुम्हें सत्कारपूर्वक न्याय आदि राज्य-कार्यों में नियुक्त करता हूँ । सभापति (**राजा**) और सभासद् का आप्त-व्यवहार से सत्कार करने के लिये सचेत करता हूँ ॥ ७ । ३१ ॥

त्रिशोक । **विश्वेदेवाः**=विद्वांसः । आद्यस्यार्षी गायत्री । षड्जः ।
उपेत्यस्वार्च्युष्णिक् । ऋषभः ॥

अथोक्तमर्थं प्रकारान्तरेणाह ॥

अब उक्त विषय को प्रकारान्तर से कहा है ॥

आ घा ये ऽ अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् । येषामिन्द्रो युवा सखा । उपयामगृहीतोऽस्यग्नीन्द्राभ्यां त्वैष ते योनिरग्नीन्द्राभ्यां त्वा ॥ ३२ ॥

पदार्थः— (**आ**) समन्तात् (**घ**) एव । अत्र ऋचितुनुघ० ॥ ६ । ३ । १३३ ॥ इति दीर्घः (**ये**) वेदपारगा विद्वांसः (**अग्निम्**) विद्युदादिस्वरूपम् (**इन्धते**) प्रदीपयन्ति (**स्तृणन्ति**) यन्त्रैश्छादयन्ति (**बर्हिः**) अन्तरिक्षम् (**आनुषक्**) अनुकूलतया (**येषाम्**) विदुषाम् (**इन्द्रः**) सकलैश्वर्य्यवान् सभापतिः प्रत्येकाङ्गपुष्टः (**युवा**) तरुणावस्थः (**सखा**) सुहृत् (**उपयामगृहीतः**) (**असि**) (**अग्नीन्द्राभ्याम्**) सकलराज्यकर्म्मविचारविचक्षणाभ्यामग्नीन्द्रगुणयुक्ताभ्याम् (**त्वा**) त्वाम् (**एषः**) (**ते**) (**योनिः**) (**अग्नीन्द्राभ्याम्**) (**त्वा**) त्वाम् ॥ ३२ ॥

प्रमाणार्थ—(**घा**) घ । यहां 'ऋचितुनुघ०' (६ । ३ । १३३) से दीर्घ है ॥ ७ । ३२ ॥

सपदार्थान्वयः— ये = वेदपारगा **विद्वांसस्सभासदोऽग्निं** विद्युदादिस्वरूपं **घ** एव **इन्धते** प्रदीपयन्ति, **येषां** विदुषाम् **आनुषक्** अनुकूलतया **बर्हिः** अन्तरिक्षम् **आस्तृणन्ति** समन्ताद् यन्त्रैश्छादयन्ति, **युवा** तरुणावस्थः **इन्द्रः**=**सभापतिः** सकलैश्वर्यवान् सभापतिः प्रत्येकाङ्गपुष्टः **सखा** सुहृत् **अस्ति, यस्त्वमग्नीन्द्राभ्यां** सकलराज्यकर्म्मविचारविचक्षणाभ्यामग्नीन्द्रगुणयुक्ताभ्याम् **उपयामगृहीतोऽसि, यस्य ते**=**तवैष योनिरस्ति, तं** [**त्वा**]=**त्वां प्राप्ता वयमग्नीन्द्राभ्यां** [**त्वा**]= **त्वामुपदिशामः** ॥ ७ । ३२ ॥

भाषार्थ—(**ये**) जो वेद के पारंगत विद्वान् सभासद् लोग (**अग्निम्**) विद्युत् आदि स्वरूप वाली अग्नि को (**घ**) ही (**इन्धते**) प्रदीप्त करते हैं और (**येषाम्**) जिन विद्वानों की (**आनुषक्**) अनुकूलता से (**बर्हि**) अन्तरिक्ष को (**आस्तृणन्ति**) सब ओर से यन्त्रों से आच्छादित करते हैं, और जिनका (**युवा**) तरुण (**इन्द्रः**) सकल ऐश्वर्य वाला, प्रत्येक अङ्ग से पुष्ट सभापति (**सखा**) मित्र है, जो तू (**अग्नीन्द्राभ्याम्**) सकल राज्य के कार्य और विचार में कुशल अग्नि और इन्द्र के गुणों से (**उपयामगृहीतः**) स्वीकार किया गया (**असि**) है, जिस (**ते**) आपका (**एषः**) यह गुण (**योनिः**) घर है, उस [**त्वा**] आपको प्राप्त होकर हम विद्वान् लोग (**अग्नीन्द्राभ्याम्**) अग्नि और इन्द्र के गुणों के लिये [**त्वा**] आपको उपदेश करते हैं ॥ ७ । ३२ ॥

[यस्त्वमग्नीन्द्राभ्यामुपयामगृहीतोऽसि, **यस्य ते**=**तवैष योनिरस्ति**, तं [त्वा]=**त्वां प्राप्ता वयमग्नीन्द्राभ्यां** [त्वा]=त्वामुपदिशामः]

भावार्थः—राजधर्मे सर्वकर्मणः सभाधीनत्वाद् विचारसभासुप्रवृत्तेषु राजवर्गीयजनेषु द्वौ, त्रयो बहवो वा सभासदः स्वविचारेण यमर्थं निष्पा-

भावार्थ—राजधर्म में सब कार्यों के सभा अधीन होने से विचारसभाओं में प्रवृत्त राजपुरुषों में से दो, तीन वा बहुत से सभासद् अपने

दयेयुस्तदनुकूला एव प्रजाजना वर्त्तेरन् ।। ७ । ३२ ।। विचार से जिस अर्थ को सिद्ध करें उसके अनुकूल ही प्रजा अपना वर्त्ताव रखे ।। ७ । ३२ ।।

भाष्यसार—**प्रजा का राजा के प्रति कथन**—वेद के पारंगत विद्वान् सभासद् राज्य के लिये अग्नि के विद्युत् आदि रूपों को वैज्ञानिक विधि से प्रकाशित करते हैं और वे अपने से महान् विद्वानों की अनुमति से, उनके कथन के अनुकूल आचरण करके अन्तरिक्ष (आकाश) को अग्नि विद्या से यन्त्र बना कर आच्छादित कर देते हैं। उक्त विद्वानों का तरुण, सकल ऐश्वर्य से सम्पन्न, प्रत्येक अङ्ग से हृष्ट-पुष्ट सभापति (**इन्द्र**) सखा है । राज्य के सब कार्यों के विचार करने में विचक्षण उक्त विद्वानों के गुणों से युक्त पुरुष को विद्वान् लोग राजा (**इन्द्र**) स्वीकार करें । राज्य के सब कार्य सभा के अधीन हों राजवर्गीय विद्वानों की विचार सभायें हों । उनमें दो, तीन अथवा बहुत से सभासद् मिलकर विचारपूर्वक जिस नियम को स्थिर करें, उसके अनुकूल ही सब प्रजाजन अपना वर्त्ताव रखें ।। ७ । ३२ ।।

मधुच्छन्दा । **विश्वेदेवाः**=विद्वांसः ।। आद्यस्यार्षी गायत्री । षड्जः । उपयाम इत्यस्यार्ची बृहती । मध्यमः ।।

अध्यापकाध्येतृणां परस्परं कर्त्तव्यमुपदिश्यते ।।

पढ़ने और पढ़ाने वालों का परस्पर कर्त्तव्य का उपदेश किया है ।।

ओमा॑सश्चर्षणीधृतो॒ विश्वे॑ देवास॒ ऽ आग॑त । दा॒श्वाꣳसो॑ दा॒शुषः॑ सुतम् ।
उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽसि॒ विश्वे॑भ्यस्त्वा दे॒वेभ्य॑ ऽ ए॒ष ते॒ योनि॒र्विश्वे॑भ्यस्त्वा दे॒वेभ्यः॑ ।। ३३ ।।

पदार्थः—(**ओमासः**) अवन्ति=सद्गुणै रक्षन्ति ते (**चर्षणीधृतः**) चर्षणयो=मनुष्यास्तान् धरन्ति=पोषयन्ति ते । **अन्येषामपि दृश्यते ।। अ० ६ । ३ । १३७ ।। इति दीर्घः** (**विश्वे**) सर्वे (**देवासः**) विद्वांसः (**आ**) (**गत**) (**दाश्वांसः**) उत्कृष्टज्ञानं दत्तवन्तः । **दाश्वान् साह्वान् ।। ६ । १ । १२ ।। इति निपातनम्** (**दाशुषः**) दानशीलस्योत्तमजनस्य (**सुतम्**) सवति=सत्कर्मानुष्ठानेनैश्वर्यं प्राप्नोति तं बालकम् (**उपयामगृहीतः**) अध्यापननियमैः स्वीकृतः (**असि**) (**विश्वेभ्यः**) अखिलेभ्यः (**त्वा**) त्वाम् (**देवेभ्यः**) (**विद्वद्भ्यः**) (**एषः**) विद्याशिक्षासंग्रहः (**ते**) तव (**योनिः**) कारणम् (**विश्वेभ्यः**) अखिलेभ्यः (**देवेभ्यः**) विद्वद्भ्यः (**त्वा**) त्वाम् **।। अयं मन्त्रः श० ४ । ३ । १ । २७ व्याख्यातः ।। ३३ ।।**

प्रमाणार्थ—(**चर्षणीधृतः**) यहां 'अन्येषामपि दृश्यते' (अ० ६ । ३ । १३७) इस सूत्र से दीर्घ है । (**दाश्वांसः**) यह 'दाश्वान् साह्वान्' (अ० ६ । १ । १२) इस सूत्र से निपातित है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । ३ । १ । २७) में की गई है ।। ७ । ३३ ।।

सपदार्थान्वयः—हे **चर्षणीधृतः** ! चर्षणयः=मनुष्यास्तान् धरन्ति=पोषयन्ति ते ! **ओमासः** अवन्ति=सद्गुणै रक्षन्ति ते **विश्वे** सर्वे **देवासः**! विद्वांसः ! **यूयं दाश्वांसः** उत्कृष्टज्ञानं दत्तवन्तः **दाशुषः** दानशीलस्योत्तमजनस्य **सुतं** सवति=सत्कर्मानुष्ठानेनैश्वर्यं प्राप्नोति तं बालकम् **आगत** ।

भाषार्थ—हे (**चर्षणीधृतः**) सब मनुष्यों का पोषण करने वाले, (**ओमासः**) अपने सद्गुणों से रक्षा करने वाले (**विश्वे**) सब (**देवास**) विद्वानो ! तुम (**दाश्वांसः**) उत्कृष्ट ज्ञान के देने वाले हो, अतः (**दाशुषः**) दानशील उत्तम पुरुष के (**सुतम्**) शुभ कर्मों के अनुष्ठान से ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाले बालक को (**आगत**) प्राप्त करो, शरण में लो ।

हे दाशुषः दानशीलस्योत्तमजनस्य **सुताध्येतः !** त्वमुपयामगृहीतः अध्यापननियमैः स्वीकृतः **असि, अतस्त्वा** त्वां **विश्वेभ्यः** अखिलेभ्यः **देवेभ्यः** विद्वद्भ्यः तत्सेवनायाज्ञापयामि, **यतस्ते** तव **एषः** विद्याशिक्षा-संग्रहः **योनिः** कारणम् **अस्ति, अतस्त्वा** त्वां **विश्वेभ्यः** अखिलेभ्यः **देवेभ्यः** विद्वद्भ्यः **शिक्षयामि** ॥ ७ । ३३ ॥

हे (**दाशुषः**) दानशील, उत्तम पुरुष के पुत्र विद्यार्थी ! तू (**उपयामगृहीतः**) अध्यापन के नियमानुसार स्वीकार किया गया (**असि**) है, अतः (**त्वा**) तुझे (**विश्वेभ्यः**) सब (**देवेभ्यः**) विद्वानों की सेवा करने के लिये आज्ञा देता हूँ, क्योंकि (**ते**) तेरा (**एषः**) यह विद्या और शिक्षा को ग्रहण करना (**योनिः**) कारण है। इसलिये (**त्वा**) तुझे (**विश्वेभ्यः**) सब (**देवेभ्यः**) विद्वानों से (**शिक्षयामि**) शिक्षा दिलाता हूँ ॥ ७ । ३३ ॥

[हे···विश्वे देवासः ! यूयं दाश्वांसो दाशुषः सुतमागत]

भावार्थः--सर्वेषां विदुषां विदुषीणां च योग्यताऽस्ति-सर्वेभ्यो बालकेभ्यः कन्याभ्यश्चाहर्निशं विद्यादानं, राज्ञां धनिनां च पदार्थैः स्वजीविकां च कुर्युः । ते राजानो धनिनश्च विद्यासुशिक्षाभ्यां प्रवीणा भूत्वा स्वस्याध्यापकेभ्यो विद्वद्भ्यो विदुषीभ्यश्च धनादिपदार्थान् दत्त्वा तेषां सेवनं कुर्युः ।

भावार्थ—सब विद्वानों और विदुषियों को योग्य है कि वे सब बालक और कन्याओं को दिन-रात विद्या देवें, राजा और धनी जनों के पदार्थों से अपनी जीविका करें। वे राजा और धनी लोग विद्या और उत्तम शिक्षा से प्रवीण होकर अपने अध्यापक विद्वान् और विदुषियों को धन आदि पदार्थ देकर उनकी सेवा करें।

[हे दाशुषः सुताध्येतः ! त्वमुपयामगृहीतोऽसि, अतस्त्वा विश्वेभ्यो देवेभ्यस्तत्सेवनायाज्ञापयामि]

मातापितरावष्टवार्षिककुमारान् कुमारीश्च विद्याब्रह्मचर्यसेवनशिक्षाकरणाय विद्वद्भ्यो विदुषीभ्यश्च समर्पयेताम्,

माता-पिता आठ वर्ष के कुमार और कुमारियों को विद्या, ब्रह्मचर्य सेवन और उत्तम शिक्षा के लिये विद्वानों और विदुषियों को सौंप दें।

[त्वा विश्वेभ्यो देवेभ्यः शिक्षयामि]

तेऽध्येतारो विद्याग्रहणे चेतो नित्यमभिदध्युस्तथाऽध्यापकाश्च विद्यासुशिक्षादाने नित्यं प्रयतेरन् ॥ ७ । ३३ ॥

वे पढ़ने वाले विद्या-ग्रहण में मन को नित्य लगावें और अध्यापक लोग भी विद्या और उत्तम शिक्षा देने में नित्य प्रयत्न करें ॥ ७ । ३३ ॥

भा० पदार्थः—देवासः=विद्वांसः, विदुष्यश्च । दाशुषः=राज्ञः, धनिश्च । सुतम्=बालकं कन्यां च ।

भाष्यसार—**१. अध्यापकों का कर्त्तव्य**—विद्वान् अध्यापक और विदुषी अध्यापिकायें मनुष्यों का पोषण करने वाले और अपने सद्गुणों से मनुष्यों की रक्षा करने वाले तथा उत्कृष्ट ज्ञान को देने वाले होते हैं। विद्वान् अध्यापक सब बालकों को और विदुषी अध्यापिकायें सब कन्याओं को दिन-रात विद्यादान करें। दाता राजा और धनी लोगों के दिए पदार्थों से अपनी जीविका चलावें। राजा और धनी पुरुष भी उक्त विद्वानों से विद्या और उत्तम शिक्षा ग्रहण करके प्रवीण बनें तथा उन्हें धन आदि पदार्थ प्रदान करके उनकी सेवा करें।

२. अध्येताओं (शिष्यों) का कर्त्तव्य—प्रथम माता-पिता का कर्त्तव्य है कि वे आठ वर्ष के कुमार और कुमारियों को विद्या, ब्रह्मचर्य सेवन और उत्तम शिक्षा की प्राप्ति के लिये यथायोग्य विद्वानों

और विदुषियों को सौंप देवें और वे उन्हें अध्यापन नियमों के अनुसार स्वीकार करें। छात्र और छात्राओं का कर्त्तव्य है कि विद्या प्राप्ति के लिये अपने अध्यापक और अध्यापिकाओं की सेवा करें। क्योंकि विद्या और उत्तम शिक्षा का संग्रह करना ही उनके लिये सुख का हेतु है इसलिए कुमार और कुमारियाँ विद्या के ग्रहण करने में अपने चित्त को नित्य लगाये रखें ॥ ७ । ३३ ॥

गृत्समद । **विश्वेदेवाः**=विद्वांसः । आद्यस्यार्षी गायत्री । षड्जः । उपयाम इत्यस्य निचृदार्ष्युष्णिक । ऋषभः ॥

अथ प्रत्यहमध्यापनविषयमाह ॥

अब प्रतिदिन अध्यापन विषय का उपदेश किया जाता है ॥

विश्वे देवास ऽ आगत शृणुता म इमꣳ हवम् । एदं बर्हिर्निषीदत ।
उपयामगृहीतोऽसि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य ऽ एष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥ ३४ ॥

पदार्थः—(विश्वे) सर्वे (देवासः) विद्वांसः (आ) (गत) आगच्छत (शृणुत) अत्र संहितायाम् ॥ अ० ६ । ३ । ११४ ॥ इति दीर्घः (मे) मम विद्यार्थिनः (इमम्) वक्ष्यमाणम् (हवम्) स्तुतिवादम् (आ) समन्तात् (इदम्) अस्माभिर्दत्तम् (बर्हिः) उत्तममासनम् (नि) नितराम् (सीदत) आध्वम् (उपयामगृहीतः) (असि) (विश्वेभ्यः) समस्तेभ्यः (त्वा) त्वाम् (देवेभ्यः) अध्यापकेभ्यः (एषः) सकलविद्यासंग्रहः (ते) तव (योनिः) गृहम् (विश्वेभ्यः) (त्वा) त्वाम् (देवेभ्यः) ॥ अयं मन्त्रः शत० ४ । २ । ५ । २६ व्याख्यातः ॥ ३४ ॥

प्रमाणार्थ—(शृणुता) 'शृणुता' यहां 'संहितायाम्' (अ० ६ । ३ । ११४) इस सूत्र से दीर्घ है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । २ । ५ । २६) में की गई है ॥ ७ । ३४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे पूर्वमन्त्रप्रतिपादित-गुणकर्मस्वभावाविश्वे सर्वे देवासः ! विद्वांसः! **यूयमस्माकं निकटमागत** आगच्छत, **अस्माभिर्दत्तमिदं बर्हिः=आसनम्** उत्तममासनम् **आनिषीदत** समन्तान्नितराम् माध्वम; **मे=मम** विद्यार्थिनः **इमं** वक्ष्यमाणं **हवं** स्तुतिवादं **शृणुत** ।

गृहस्थाः स्वपुत्रादीन् प्रत्येवं ब्रूयुः -**यतस्त्वमुपयामगृहीतोऽसि, तस्मात्** त्वा=त्वां **विश्वेभ्यः** समस्तेभ्यः **देवेभ्यः** अध्यापकेभ्यः **प्रयच्छेम, ते=तवैषः** सकलविद्यासङ्ग्रहः **योनिः** गृहम् **अस्ति, त्वा=त्वां विश्वेभ्योः देवेभ्योऽधिकां विद्यां दापयेम** ॥ ७ । ३४ ॥

भावार्थ—हे पूर्व मन्त्र में प्रतिपादित गुण, कर्म, स्वभाव वाले (विश्वे) सब (देवासः) विद्वानो ! आप हमारे निकट (आगत) आओ, हमारे दिये हुये इस (बर्हिः) उत्तम आसन पर (आनिषीदत) उत्तम रीति से बैठो, और (मे) मुझ विद्यार्थी के (इमम्) इस (हवम्) स्तुतिवाद को (शृणुत) सुनो।

गृहस्थ लोग अपने पुत्र आदि को ऐसा कहें—हे पुत्र ! क्योंकि तू (उपयामगृहीतः) नियमानुसार स्वीकार किया गया है (असि) है, इसलिये (त्वा) तुझको हम (विश्वेभ्यः) सब (देवेभ्यः) अध्यापकों के लिए (प्रयच्छेम) सौंपते हैं, और (ते) तेरा (एषः) सब विद्याओं को ग्रहण करना (योनिः) सुख-धाम है, इसलिये (त्वा) तुझे (विश्वेभ्यः) सब (देवेभ्यः) अध्यापकों से अधिक विद्या दिलाते हैं ॥ ७ । ३४ ॥

[हे······विश्वे देवासः ! यूयमस्माकं निकटमागत, अस्माभिर्दत्तमिदं बर्हिः=आसनमानिषीदत, मे=ममेमं हवं शृणुत]

भावार्थः—एके विद्वांसोऽन्वहं विद्यार्थिनः पाठयेयुरपरे विपश्चितो विद्वांसः प्रतिमासमध्येतॄणां परीक्षणं च कुर्युः। तत्कृत्वाऽध्यापकाः प्रतिततीव्रबुद्धीन् परीश्रमं कुर्वतोऽध्येतॄनतिश्रमेण पाठयेयुरिति ॥ ७ । ३४ ॥

भावार्थ—कुछ विद्वान् लोग प्रतिदिन विद्यार्थियों को पढ़ावें और दूसरे परीक्षक विद्वान लोग प्रतिमास छात्रों की परीक्षा किया करें। उस परोक्षा से तीव्रबुद्धि, परिश्रमी सिद्ध होने वाले छात्रों को अध्यापक लोग अति परिश्रम से पढ़ाया करें। ७ । ३४ ॥

भाष्यसार—**प्रतिदिन अध्यापन**—विद्यार्थी जनों का कर्त्तव्य है कि वे पूर्व मन्त्र में प्रतिपादित गुण, कर्म, स्वभाव वाले विद्वानों को अत्यन्त सत्कारपूर्वक कहें कि हे गुरुजनो ! आप हमारे समीप आइये और हमारे द्वारा दिये इस आसन पर बैठिये और हमारी स्तुति को सुनिये।

गृहस्थों का कर्त्तव्य है कि वे अपने पुत्र आदि को ऐसा उपदेश करें कि तुम अब नियमानुसार विद्यादि शुभ गुणों को ग्रहण करने योग्य हो, इसलिये हम तुम्हें सुयोग्य विद्वानों को सौंपते हैं। क्योंकि सकल विद्याओं का संग्रह करना ही तुम्हारे लिये सुख का धाम है, इसलिये हम सुयोग्य विद्वानों से तुम्हें अधिक से अधिक विद्या दिलाते हैं।

विद्वानों का कर्त्तव्य है कि वे विद्यार्थीजनों को प्रतिदिन पढ़ावें और दूसरे प्रकाण्ड विद्वान् प्रतिमास उनकी परीक्षा किया करें। परीक्षा के उपरान्त जिन विद्यार्थियों को परीक्षक विद्वान् तीव्र बुद्धि और पुरुषार्थी समझें उन्हें अत्यन्त परिश्रम से पढ़ावें ॥ ७ । ३४ ॥

विश्वामित्र । **प्रजापतिः=राजा** । निचृदार्षीत्रिष्टुपः । धैवतः । उपायाम इत्यस्यार्ष्युष्णिक् । ऋषभः ॥

अथ राजाऽध्यापनादिव्यवहाररक्षणं कथं कुर्य्यादित्युपदिश्यते ॥

अब राजा अध्यापन आदि व्यवहार की रक्षा किस प्रकार से करे, यह उपदेश किया है ॥

इन्द्रं मरुत्व ऽ इह पाहि सोमं यथा शार्य्याते ऽ अपिबः सुतस्यं ।
तव प्रणीती तवं शूर शर्म्मन्नाविवासन्ति कवयः सुयज्ञाः ।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वतऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥ ३५ ॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) सर्वविघ्नविदारक सकलैश्वर्य्ययुक्त सम्राट् ! (**मरुत्वः**) मरुतः=प्रशस्ता धर्म्मसम्बद्धाः प्रजा यस्य तत्सम्बुद्धौ (**इह**) अस्मिन् संसारे (**पाहि**) रक्ष (**सोमम्**) सकलगुणैश्वर्य्यकल्याणकर्माध्ययनाध्यापनाख्यं यज्ञम् (**यथा**) (**शार्यतते**) शर्य्याभिरंगुलिभिर्निर्वृत्तानि कर्म्माणि शार्य्याणि तान्यतति=व्याप्नोति स शार्य्यातिस्तस्मिन् । शर्य्या इत्यङ्गुलिनामसु पठितम् ॥ निघं० २ । ५ ॥ (**अपिबः**) (**सुतस्य**) (**तव**) (**प्रणीती**) प्रकृष्टां नीतिम् । अत्र सुपां सुलुक् ॥ अ० ७ । १ । ३९ ॥ इति पूर्वसवर्णादेशः (**तव**) (**शूर**) धर्म्मविरोधिहिंसक (**शर्म्मन्**) न्यायगृहे । अत्र सुपां सुलुगिति ङेर्लुक् । न ङि सम्बुद्धयोः ॥ अ० ८ । २ । ८ ॥ इति नलोपाभावः (**आ**) (**विवासन्ति**) परिचरन्ति । विवासतीति परिचरणकर्म्मसु पठितम् ॥ निघं० ३ । ५ ॥ (**कवयः**) मेधाविनः । कविरिति मेधाविनामसु पठितम् ॥ निघं० ३ । १५ ॥ (**सुयज्ञाः**) शोभनोऽध्ययनाध्यापनाख्यो यज्ञो येषां त इव (**उपयामगृहीतः**) (**असि**) (**इन्द्राय**) परमैश्वर्य्याय (**त्वा**) त्वाम् (**मरुत्वते**) प्रजासम्बन्धाय । अत्र सम्बन्धे मतुप् झय इति मस्य वत्वम् (**एषः**) (**ते**) (**योनिः**) (**इन्द्राय**) (**त्वा**) (**मरुत्वते**) ॥ अयं मंत्र शत० ४ । ३ । ३ । १३ व्याख्यातः ॥ ३५ ॥

प्रमाणार्थ—(शार्य्याते) 'शर्य्या' शब्द निघं० (२ । ५) में अङ्गुली-नामों में पढ़ा है। (प्रणीती) यहाँ 'सुपां सुलुक्०' (अ० ७ । १ । ३९) इस सूत्र से पूर्णसवर्ण-आदेश है। (शर्म्मन्) यहाँ 'सुपां सुलुक्०' [अ० ७ । १ ।३९] इस सूत्र से 'ङि' का लुक् और 'न ङिसम्बुद्धयोः' (अ० ८ । २ । ८) इस सूत्र से न लोप का अभाव है। (विवासन्ति) 'विवासति' पद निघं० (३ । ५) में पूजा अर्थात् धातुओं में पढ़ा है। (कवयः) 'कवि' शब्द निघं० (३ । १५) में मेधावी नामों में पढ़ा है। (मरुत्वते) यहां सम्बन्ध अर्थ में 'मतुप्' प्रत्यय है, 'झयः' [८ । २ । १०] इस सूत्र से नकार को वकार हो गया है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । ३ । ३ । १३) में की गई है ॥ ७ । ३५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मरुत्वः ! मरुतः=प्रशस्ता धर्म्मसम्बद्धाः प्रजा यस्य तत्सम्बुद्धौ **इन्द्र**! सर्वविघ्नविदारक सकलैश्वर्ययुक्त सम्राट् ! **त्वमिह** अस्मिन् संसारे **यथा शार्य्याते** शर्य्याभिरङ्गुलिभिर्निर्वृत्तानि कर्माणि शार्य्याणि तान्यतति=व्याप्नोति स शार्य्यातिस्तस्मिन् **सुतस्यापिबः, तथा सोमं** सकलगुणैश्वर्य्यं कल्याणकर्माध्ययनाध्यापनाख्यं यज्ञं **पाहि** रक्ष।

हे शूर ! धर्मविरोधिहिंसक ! **तव शर्म्मन्**=न्यायगृहे **सुयज्ञा** शोभनोऽध्ययनाध्यापनाख्यो यज्ञो येषां त इव **कवयः** मेधाविनः **तव प्रणीतिं** प्रकृष्टां नीतिम् **आविवासन्ति** परिचरन्ति, **यतस्त्वमुपयामगृहीतोऽसि, तस्मात्** [**त्वा**]=**त्वामिन्द्राय** परमैश्वर्याय **मरुत्वते** प्रजासम्बन्ध्याय **वयं सेवेमहि**।

ते=**तवैष**=**विद्याप्रचारो योनिरस्ति, अतः** [**त्वा**] **त्वामिन्द्राय** परमैश्वर्य्याय **मरुत्वते** प्रजासम्बन्धाय **मन्यामहे** ॥ ७ । ३५ ॥

भाषार्थ—हे (**मरुत्वः**) धार्मिक प्रजा वाले (**इन्द्र**) सब विघ्नों का विदारण करने वाले, सकल ऐश्वर्ययुक्त सम्राट् ! आपने (**इह**) इस संसार में जैसे (**शार्य्याते**) अङ्गुलियों से निष्पन्न होने वाले कर्मों में सदा प्रवृत्त होकर (**सुतस्य**) सोम का (**अपिबः**) पान किया है, वैसे (**सोमम्**) सकल गुण, ऐश्वर्य, कल्याण-कर्म के हेतु पठन-पाठन नामक यज्ञ की (**पाहि**) रक्षा करो।

हे (**शूर**) धर्म के विरोधियों की हिंसा करने वाले शूर ! (**तव**) तेरा (**शर्मन्**) न्यायालय में (**सुयज्ञाः**) उत्तम अध्ययन-अध्यापन नामक यज्ञ के तुल्य (**कवयः**) मेधावी लोग (**तव**) तेरी (**प्रणीतिम्**) श्रेष्ठ नीति को (**आविवासन्ति**) सेवन करते हैं, क्योंकि आप (**उपयामगृहीतः**) उत्तम नियमों से स्वीकार किये हुये (**असि**) हो, इसलिये [**त्वा**] आपकी (**इन्द्राय**) परम ऐश्वर्य के लिये तथा (**मरुत्वते**) प्रजा सम्बन्ध के लिये हम सेवा करते हैं।

(**ते**) आपका (**एषः**) यह विद्या प्रचार (**योनिः**) घर है अतः [**त्वा**] आपको (**इन्द्राय**) परम ऐश्वर्य के लिये (**मरुत्वते**) प्रजा-सम्बन्ध के लिये राजा मानते हैं ॥ ७ । ३५ ॥

[हे शूर ! तव शर्मन्=न्यायगृहे सुयज्ञा इव कवयस्तव प्रणीतिमाविवासन्ति]

भावार्थः—सर्वेषां विदुषामुचितमस्ति—न्यायराजसभाज्ञां नोल्लङ्घेरन्, तथैते राजसभासभ्यजना अपि विद्वदाज्ञां नोल्लङ्घेरन्।

भावार्थ—सब विद्वानों को उचित है कि न्यायसभा और राजसभा की आज्ञा का उल्लंघन न करें और वैसे ये राजसभा के सदस्य भी विद्वानों की आज्ञा का उल्लंघन न करें।

[[त्वा]=त्वामिन्द्राय मरुत्वते मन्यामहे]

यः सर्वोत्कृष्टस्तं सभापतिं कुर्युः। स सभापति-

जो पुरुष सब से उत्कृष्ट हो उसे सभापति

हत्तमनीत्या सर्वराज्य प्रबन्धं कुर्यात् ॥ ७ । ३५ ॥ बनावें । वह सभापति उत्तम नीति से सब राज्य का प्रबन्ध करें ॥ ७ । ३५ ॥

भाष्यसार—राजा के द्वारा अध्यापन आदि कार्यों की रक्षा—प्रशंसा के योग्य, धार्मिक प्रजा वाला, सब विघ्नों का विनाश करने वाला, सकल ऐश्वर्य से युक्त सम्राट् इस संसार में जैसे उसने हाथों से निष्पन्न होने वाले कर्म में प्रवृत्त होकर सोमरस का पान किया है, वैसे सकल गुण, ऐश्वर्य और कल्याण कर्म के हेतु पठन-पाठन रूप यज्ञ की रक्षा करें।

अध्ययन-अध्यापन रूप यज्ञ का अनुष्ठान करने वाले मेधावी विद्वानों को उचित है कि वे धर्म-विरोधी दुष्ट जनों के हिंसक राजा के न्यायालय की और राजसभा की उत्तम नीति का सेवन करें अर्थात् इनकी आज्ञा का कभी उल्लंघन न करें। राज्य सभा के सदस्य भी उक्त विद्वानों की आज्ञा का उल्लंघन न करें।

जो उत्तम नियमों का आचरण करने के कारण सब से उत्कृष्ट पुरुष हो, उसे ही सभापति रूप में स्वीकार करें। परम ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये तथा उससे प्रजा रूप सम्बन्ध के लिये उसकी सेवा करें।

राजा का कर्त्तव्य है कि वह विद्या का प्रचार करे। क्योंकि यह उसके लिये सुख का हेतु है। विद्याप्रचारक सभापति को परम ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये तथा प्रजा रूप सम्बन्ध के लिये प्रजा-जन राजा मानें और वह सभापति उत्तम नीति से सब राज्य का प्रबन्ध करें ॥ ७ । ३५ ॥

विश्वामित्रः । **प्रजापतिः=राजा** । विराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः । उपयामेत्यस्य द्वितीयभागस्यार्षी उष्णिक् तृतीयस्य साम्न्युष्णिक् । ऋषभः ॥

पुनः राजप्रजाकृत्यमाह ॥

फिर राजा और प्रजा के कर्त्तव्य का उपदेश किया है ॥

मुरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिं दिव्यᳬं शासमिन्द्रम् ।
विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रᳬं सहोदामिह तᳬं हुवेम ।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मुरुत्वत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा मुरुत्वते ।
उपयामगृहीतोऽसि मुरुतां त्वौजसे ॥ ३६ ॥

पदार्थः—(**मरुत्वन्तम्**) प्रशस्तप्रजायुक्तम् (**वृषभम्**) सर्वोत्तमम् (**वावृधानम्**) अतिशयेन शुभगुणकर्मसु वर्द्धमानम् (**अकवारिम्**) कौति=धर्म्ममुपदिशतीति कवो न कवोऽकवोऽधर्म्मात्मा तस्यारिः =शत्रुस्तम् (**दिव्यम्**) शुद्धम् (**शासम्**) शासितारम् (**इन्द्रम्**) ऐश्वर्य्यवन्तम् (**विश्वासाहम्**) विश्वान्=सर्वान् सहते तम् । अत्र विश्वपूर्वात् सहधातोः । छन्दसि सहः ॥ ३ । २ । ६३ ॥ इति ण्विः । अन्येषामपि दृश्यते ॥ अ० ६ । ३ । १३७ ॥ इति दीर्घश्च (**अवसे**) रक्षणाद्याय (**नूतनाय**) नवीनाय (**उग्रम्**) प्रचण्डपराक्रमम् (**सहोदाम्**) यः सहो=बलं ददाति तम् (**इह**) अस्यां प्रजायाम् (**तम्**) (**हुवेम**) स्वीकुर्वीमहि (**उपयामगृहीतः**) सर्वनियमोपनियमसामग्रीसहितः (**असि**) (**इन्द्राय**) परमैश्वर्याय (**त्वा**) त्वाम (**मरुत्वते**) प्रशंसितप्रजायुक्ताय (**एषः**) (**ते**) (**योनिः**) (**इन्द्राय**) (**त्वा**) (**मरुत्वते**) (**उपयामगृहीतः**) (**असि**) (**मरुताम्**) (**त्वा**) त्वाम् (**ओजसे**) बलाय ॥ अयं मन्त्रः शत० ४ । ३ । ३ । १४ व्याख्यातः ॥ ३६ ॥

प्रमाणार्थ—(**विश्वासाहम्**) यहां 'विश्व' शब्द पूर्वक 'सह' धातु से 'छन्दसि सहः'

(अ० ३ । २ । ६३) इस सूत्र से 'ण्वि' प्रत्यय है और 'अन्येषामपि दृश्यते' (अ० ६ । ३ । १३७) इस सूत्र से दीर्घ है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । ३ । ३ । १४) में की गई है ।। ७ । ३६ ।।

सपदार्थान्वयः—**कवयो वयं नूतनाय** नवीनाय **अवसे** रक्षणाद्याय **मरुत्वन्तं** प्रशस्तप्रजायुक्तं **वृषभं** सर्वोत्तमं **वावृधानम्** अतिशयेन शुभगुणकर्मसु वर्द्धमानम् **अकवारिं** कौति=धर्म्ममुपदिशतीति कवः, न कवोऽकवोऽधर्म्मात्मा तस्यारिः=शत्रुस्तं **दिव्यं** शुद्धं **विश्वासाहं** विश्वान्=सर्वान् सहते तम् **उग्रं** प्रचण्डपराक्रमं **सहोदां** यः सहः=बलं ददाति तं **शासं** शासितारं **तं पूर्वोक्तमिन्द्रम्** ऐश्वर्य्यवन्तं **हुवेम** स्वीकुर्वीमहि ।

हे **मुख्यसभासद्** ! **यतस्त्वमुपयामगृहीतः** सर्वनियमोपनियमसामग्रीसहितः **असि, तस्मात्वा**=त्वां **मरुत्वते** प्रशंसित प्रजायुक्ताय **इन्द्राय** परमैश्वर्य्याय **यतस्ते**=**तवैष योनिरस्ति, अतस्त्वा मरुत्वते** प्रशंसित प्रजायुक्ताय **इन्द्राय** परमैश्वर्य्याय **यतस्त्वमुपयामगृहीतः** सर्वनियमोपनियमसामग्रीसहितः **असि, तस्मान्मरुतामोजसे**=**बलाय च** त्वा=**त्वां हुवेम** स्वीकुर्वीमहि ।। ७ । ३६ ।।

भाषार्थ—हम कवि लोग (**नूतनाय**) नवीन (**अवसे**) रक्षा आदि के साधनों के लिये (**मरुत्वन्तम्**) उत्तम प्रजा से युक्त (**वृषभम्**) सब से उत्तम, (**वावृधानम्**) शुभ गुण कर्मों में अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त हुये (**अकवारिम्**) धर्म का उपदेश न करने वाले अर्थात् अधर्मात्मा जन के शत्रु (**दिव्यम्**) शुद्ध (**विश्वासहम्**) सब से सहनशीलता का वर्ताव करने वाले (**उग्रम्**) तीव्र पराक्रम वाले (**सहोदाम्**) बल को देने वाले (**शासम्**) शासन करने वाले उस पूर्वोक्त (**इन्द्रम्**) ऐश्वर्य से सम्पन्न राजा को (**हुवेम्**) स्वीकार करते हैं ।

हे मुख्य सभासद् ! क्योंकि आप (**उपयामगृहीतः**) सब नियम और उपनियम के साधनों से युक्त (**असि**) हो, इसलिये (**त्वा**) आपको (**मरुत्वते**) उत्तम प्रजा से युक्त तथा (**इन्द्राय**) परम ऐश्वर्य से सम्पन्न होने के लिये, और क्योंकि (**ते**) आपका (**एषः**) यह ऐश्वर्य (**योनिः**) प्रजा के सुख का कारण है, इस लिये (**त्वा**) आपको (**मरुत्वते**) उत्तम प्रजा से युक्त तथा (**इन्द्राय**) परम ऐश्वर्यवान् होने के लिये, और क्योंकि आप (**उपयामगृहीतः**) सब नियम-उपनियम के साधनों से युक्त (**असि**) हो, इसलिये (**मरुताम्**) प्रजा के (**ओजसे**) बल के लिये (**त्वा**) आपको (**हुवेम्**) मुख्य सभासद् स्वीकार करते हैं ।। ७ । ३६ ।।

[अनुवृत्तिमाह—]

भावार्थः—अत्र पूर्वस्मान्मन्त्रात् 'कवयः' इत्येतत् पदमनुवर्त्तते ।

भावार्थ—यहां पूर्व मन्त्र से 'कवयः' इस पद की अनुवृत्ति आती है ।

[कवयो वयं···तं पूर्वोक्तमिन्द्रं हुवेम]

प्रजाजनानां योग्यतास्ति यः सर्वोत्तमः सकलगुणयुक्तो विपश्चिच्छूरवीरो भवेत्तं सभाया मुख्यकर्मणि संस्थापयेयुः ।

प्रजा-जनों को योग्य है कि वे जो सब से उत्तम, सकल गुण युक्त, विद्वान् और शूरवीर पुरुष हो, उसे सभा के मुख्य कार्य में नियुक्त करें, और—

[हे मुख्यसभासद् !···मरुतामोजसे च त्वा=त्वां हुवेम]

स सभायां सत्यन्यायधर्मयुक्तराज्यकर्मणा

वह सभा में सत्य, न्याय और धर्म से युक्त

प्रजाबलं वर्द्धयेत् ॥ ७ । ३६ ॥

राज्य के कार्य से प्रजा के बल को बढ़ावे ॥ ७ । ३६ ॥

भा० पदार्थ—ओजसे=प्रजाबलाय ॥

भाष्यसार—**राजा और प्रजा का कर्त्तव्य**—मेधावी प्रजा-जन नूतन रक्षा आदि कार्यों के लिये प्रशंसनीय प्रजा वाले, सर्वोतम, अत्यन्त शुभ गुण कर्मों से युक्त, अधर्मात्माओं के शत्रु, सहनशील, प्रचण्ड पराक्रमी शूरवीर, बलदायी, शासनकुशल, ऐश्वर्यसम्पन्न विद्वान् पुरुष को सभा के मुख्य कार्यों में नियुक्त करें ।

सब नियम-उपनियमों को जानने वाला उक्त मुख्य सभापति राजा अपनी प्रशंसनीय प्रजा और परम ऐश्वर्य को सब सुखों का हेतु समझे और प्रशंसनीय प्रजा तथा परम ऐश्वर्य की स्थिति के लिये सब नियम-उपनियमों से संयुक्त रहे । सभापति पद पर नियुक्त होकर सत्य, न्याय और धर्म से युक्त राज्य-कार्यों के द्वारा प्रजा के बल की वृद्धि करे ॥ ७ । ३६ ॥

विश्वामित्रः । **प्रजापतिः=सभापतिः, सेनाध्यक्षश्च** । आद्यस्य निचृदार्षी त्रिष्टुप्, उपयामेत्यस्य प्राजापत्या त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

अथ सेनापतिकृत्यमाह ॥

अब सेनापति के कर्त्तव्य का उपदेश किया जाता है ॥

सजोषा॑ऽइन्द्र॒ सग॑णो म॒रुद्भि॒ सोमं॑ पिब वृत्र॒हा शू॑र वि॒द्वान् ।
ज॒हि शत्रूँ॒२ऽरप॒ मृधो॑ नुद॒स्वाथाभ॑यं कृणुहि वि॒श्वतो॑ नः ।
उ॒प॒या॒मगृ॑ही॒तो॒ऽसी॒न्द्रा॑य त्वा म॒रुत्व॑तऽए॒ष ते॒ योनि॑रिन्द्रा॑य त्वा म॒रुत्व॑ते ॥ ३७ ॥

पदार्थः—(**सजोषाः**) समानं जोषः=प्रीतिर्यस्य (**इन्द्र**) सर्वसुखधारक सेनापते ! (**सगणः**) गणेन=स्वजन सेनापरिकरेण सहितः (**मरुद्भिः**) वायुभिरिव (**सोमम्**) सकलपदार्थरसम् (**पिब**) (**वृत्रहा**) यो वृत्रं=मेघं हन्ति स वृत्रहा सूर्य्यस्तद्वत् (**शूर**) शत्रुविनाशक निर्भय (**विद्वान्**) सकलविद्यावेता (**जहि**) विनाशय (**शत्रून्**) सत्यन्याय विरोधे प्रवर्त्तमानान् (**अप**) दूरीकरणे (**मृधः**) मर्द्धन्ति=उन्दन्ति परसुखैः स्वमनांसि येषु तान् संग्रामान् (**नुदस्व**) प्रेरय (**अथ**) अनन्तरम् (**अभयम्**) (**कृणुहि**) (**विश्वतः**) सर्वतः (**नः**) अस्मभ्यम् (**उपयामगृहीतः**) सेनासु नियमस्वीकृतः (**असि**) (**इन्द्राय**) परमैश्वर्यप्रापकाय युद्धाय (**त्वा**) त्वाम् (**मरुत्वते**) प्रशस्तानि मरुदस्त्राणि विद्यन्ते यस्मिंस्तस्मै (**एषः**) सेनाकृत्यव्यवहारः (**ते**) (**योनिः**) (**इन्द्राय**) (**त्वा**) (**मरुत्वते**) ॥ ३७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे इन्द्रः=सेनापते ! सर्वसुखधारक सेनापते ! शूर ! शत्रुविनाशक निर्भय यतस्त्वमुपयामगृहीतः सेनासु नियमस्वीकृतः **असि, अतो मरुत्वते** प्रशस्तानि मरुदस्त्राणि विद्यन्ते यस्मिंस्तस्मै **इन्द्राय** परमैश्वर्य्यप्रापकाय युद्धाय **त्वा**=त्वामुपदिशामि, **किमित्यपेक्षायामाह—ते**= **तवैषः** सेनाकृत्यव्यवहारः **योनिरस्ति, अतः** [**त्वा**]= **त्वां मरुत्वत इन्द्राय प्रयत्नमानमङ्गी करोमि ।**

भावार्थ—हे (**इन्द्र**) सब सुखों को धारण करने वाले सेनापते ! (**शूर**) शत्रुविनाशक ! निर्भय ! क्योंकि आप (**उपयामगृहीतः**) सेनाओं में नियमों के अनुसार स्वीकार किये गये (**असि**) हो, इसलिये (**मरुत्वते**) उत्तम वायु-अस्त्रों वाले (**इन्द्राय**) परम ऐश्वर्य के प्रापक युद्ध के लिये (**त्वा**) आपको उपदेश करता हूँ । वह उपदेश क्या है—(**ते**) तेरा (**एषः**) यह सेना सम्बन्धी कार्य-व्यवहार (**योनिः**)

सुख का घर है, इसलिये [**त्वा**] आपको (**मरुत्वते**) वायु-अस्त्रों वाले (**इन्द्राय**) परम ऐश्वर्य के प्रापक युद्ध के लिये प्रयत्न करने वाले को सेनापति स्वीकार करता हूँ ।

सजोषाः समानं जोषः=प्रीतिर्यस्य **सगणः** गणेन=स्वजन सेनापरिकरेण सहितः त्वं **मरुद्भिः** वायुभिरिव **वृत्रहा** यो वृत्रं=मेघं हन्ति स वृत्रहा सूर्य्य **इव सोमं** सकलपदार्थरसं **पिब**, तं **पीत्वा विद्वान्** सकल विद्यावेत्ता **सन् शत्रून्** सत्यन्यायविरोधे प्रवर्त्तमानान् **जहि** विनाशय ।

(**सजोषाः**) सबसे प्रीति करने वाले, (**सगणः**) अपने सेवा-समूह से युक्त आप (**मरुद्भिः**) वायु के सहाद से (**वृत्रहा**) मेघों का हनन करने वाले सूर्य के समान (**सोमम्**) सकल पदार्थों के रस का (**पिब**) पान करो, उसे पीकर (**विद्वान्**) सकल विद्याओं का वेत्ता बनकर (**शत्रून्**) सत्य और न्याय के विरोध में लगे हुये लोगों का (**जहि**) विनाश करो ।

अथ अनन्तरं **मृधः** मर्द्धन्ति=उन्दन्ति परसुखैः स्वमनांसि येषु तान् संग्रामान् **अपनुदस्व** दूरीकरणाय प्रेरय, **नः=अस्मभ्यं विश्वतः** सर्वतः **अभयं कृणुहि** ॥ ७ । ३७ ॥

(**अथ**) और--(**मृधः**) दूसरों के सुख-साधनों से जिसमें लोग अपने मनों को प्रसन्न करते हैं उन संग्रामों को (**अपनुदस्व**) दूर करो, तथा (**नः**) हमारे लिये (**विश्वतः**) सर्वत्र (**अभयम्**) अभय (**कृणुहि**) करो ॥ ७ । ३७ ॥

[हे इन्द्र=सेनापते ! ···सजोषाः सगणस्त्वं वृत्रहा इव सोमं पिब, तं पीत्वा विद्वान् सन् शत्रून् जहि]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः ॥ यथा जीवः प्रेम्णा स्वस्य मित्रस्य वा शरीरस्य रक्षणं करोति तथा राजा प्रजां पालयेत्, यथा वा—सूर्यो वायुविद्युद्भ्यां संहत्य मेघान्निहत्यं जलेन सर्वस्मै सुखं ददाति तथा राजा युद्धसाधनानि सम्पाद्य शत्रून् निहत्य प्रजायै सुखं दद्यात् ।

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है ॥ जैसे जीव प्रेम के कारण अपने वा मित्र के शरीर की रक्षा करता है वैसे राजा प्रजा का पालन करे, अथवा जैसे सूर्य वायु और विद्युत् के साथ मिलकर मेघों का हनन करके जल से सबको सुख देता है, वैसे राजा युद्ध के साधनों को सिद्ध करके शत्रुओं का हनन कर प्रजा को सुख देवें ।

[अथ मृधोऽपनुदस्व, नः=अस्मभ्यं विश्वतोऽभयं कृणुहि]

धर्मात्मभ्योऽभयं दुष्टेभ्यो भयं च दद्यात् ॥ ७ । ३७ ॥

धर्मात्माओं को अभयदान और दुष्टों को भय प्रदान करें ॥ ७ । ३७ ॥

भाष्यसार—१. **सेनापति का कर्त्तव्य**—सेनापति सब सुखों को धारण करने वाला, शत्रुओं का विनाश करने वाला और निर्भय हो । सेनाओं में नियमानुसार उसे सेनापति स्वीकार किया जाये । वह सेनापति प्रशंसनीय वायु-अस्त्रों वाले, परम ऐश्वर्य के प्रापक युद्ध के लिये सेना सम्बन्धी कर्त्तव्य का परित्याग न करे। क्योंकि उसका कर्त्तव्य-पालन ही सबके सुख का हेतु है । इस लिए वह प्रशस्त वायु-अस्त्रों वाले परम ऐश्वर्य के प्रापक युद्ध के लिये सदा प्रयत्न करे । जैसे प्राणी प्रेम के कारण अपने मित्र की अथवा अपने शरीर की रक्षा करता है, वैसे अपने परिजनों तथा सेनासमूह से प्रजा की रक्षा करे। अथवा-जैसे सूर्य वायु और विद्युत् के साथ मिलकर, मेघों का हनन करके वर्षा के द्वारा सब औषधि-

वनस्पति आदि पदार्थों में रस का आधान कर सबको सुख-प्रदान करता है, वैसे सब विद्याओं का वेत्ता सेनापति वायु-अस्त्र आदि युद्ध के साधनों को सिद्ध करके सत्य और न्याय का विरोध करने वाले शत्रु जनों का हनन कर प्रजा को सुख देवे। युद्ध से धर्मात्माओं को अभयदान और दुष्टों को भय-प्रदान करता रहे ॥

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि जैसे सूर्य मेघों का हनन करता है, वैसे विद्वान् राजा शत्रुओं का विनाश करे ॥ ७ । ३७ ॥

विश्वामित्रः । **प्रजापतिः**=राजा । निचृदार्षीत्रिष्टुप् । उपयामेत्यस्य प्राजापत्या त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

अथ सभाध्यक्षायोपदेशः क्रियते ॥

अब सभाध्यक्ष के लिये उपदेश किया जाता है ॥

मुरुत्वाँ॑२ऽ इन्द्र वृष॒भो रणा॑य॒ पिबा॒ सोम॑मनुष्व॒धं मदा॑य ।
आसि॑ञ्चस्व ज॒ठरे॒ मध्व॑ ऽ ऊ॒र्म्मिं त्वꣳ राजा॑सि प्रति॑पत्सु॒ताना॑म् ।
उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽसीन्द्रा॑य त्वा म॒रुत्व॑त ऽ ए॒ष ते॒ योनि॒रिन्द्रा॑य त्वा म॒रुत्व॑ते ॥ ३८ ॥

पदार्थः--(**मरुत्वान्**) प्रशस्ता मरुतः=प्रजा सेना वा विद्यन्ते यस्य सः (**इन्द्र**) शत्रुजित् (**वृषभः**) शरीरात्मबलैश्वर्य्ययुक्तः (**रणाय**) संग्रामाय । रण इति संग्रामनामसु पठितम् ॥ निघं० २ । १७ ॥ (**पिब**) अत्र द्व्यचोऽतस्तिङः ॥ अ० ६ । ३ । १३५ ॥ इति दीर्घः (**सोमम्**) सोमाद्योषधिसमूहम् (**अनुष्वधम्**) सर्वेषु पक्वान्नेष्वनुकूलम् । अत्र विभक्त्यर्थेऽव्ययीभावः समासः (**मदाय**) हर्षाय (**आसिञ्चस्व**) (**जठरे**) उदरे (**मध्वः**) मधुरस्य (**ऊर्म्मिम्**) लहरीम् (**त्वम्**) सभासेनापतिः (**राजा**) प्रकाशमानः (**असि**)(**प्रतिपत्**) पद्यते= विचार्य्यते योऽर्थविषयः स पद् । पतं पतं प्रतीति प्रतिपत् (**सुतानाम्**) सुसंस्कारेण निष्पादितानामन्नानाम् (**उपयामगृहीतः**) राजनियमैः स्वीकृतः (**असि**) (**इन्द्राय**) परमैश्वर्यप्रापकाय रणाय (**त्वा**) (**मरुत्वते**) प्रशस्तानि मरुदस्त्राणि विद्यन्ते यत्र तस्मै (**एषः**) (**ते**) (**योनिः**) (**इन्द्राय**) राज्यैश्वर्य्याय (**त्वा**) (**मरुत्वते**) प्रजापालनसम्बद्धाय ॥ ३८ ॥

प्रमाणार्थ—(**रणाय**) 'रण' शब्द निघं० (२ । १७) में संग्राम-नामों में पढ़ा है। (**पिबा**) पिब । यहां 'द्व्यचोऽतस्तिङः' (**अ० ६ । ३ । १३५**) इस सूत्र से दीर्घ है। (**अनुष्वधम्**) यहां विभक्ति-अर्थ में अव्ययीभाव समास है।

सपदार्थान्वयः—हे **इन्द्र**! शत्रुजित् **यतस्त्वमुपयामगृहीतः** राजनियमैः स्वीकृतः **असि, तस्माद्वयं त्वा**=**त्वां मरुत्वते** प्रशस्तानि मरुदस्त्राणि विद्यन्ते यत्र तस्मै **इन्द्राय** परमैश्वर्यप्रापकाय रणाय **नियोजयामः, यतस्ते**=**तवैव योनिरस्ति, तस्मात् त्वा**=**त्वां मरुत्वते** प्रजापालनसम्बद्धाय **इन्द्राय** राज्यैश्वर्याय **ब्रूमः** । **किं तत्? तदाह**—**त्वं** सेनापतिः **प्रतिपत्** पद्यते=विचार्य्यते योऽर्थविषयः स पद्, पतं पतं प्रतीति प्रतिपत् **राजा**=**प्रत्येककर्म्मणि प्रकाश-**

भावार्थ—हे (**इन्द्र**) शत्रुओं को जीतने वाले सभाध्यक्ष! क्योंकि आप (**उपयामगृहीतः**) राज नियमों के अनुसार स्वीकार किये गये (**असि**) हो, इसलिये हम (**त्वा**) आपको (**मरुत्वते**) उत्तम वायु-अस्त्रों वाले (**इन्द्राय**) परम ऐश्वर्य के प्रापक रण के लिये नियुक्त करते हैं, क्योंकि (**ते**) आपका (**एषः**) यह रण (**योनिः**) सुख का घर है इसलिये (**त्वा**) आपको (**मरुत्वते**) प्रजा-पालन से सम्बद्ध (**इन्द्राय**) राज्य की ऐश्वर्य-वृद्धि का उपदेश करते

मानो मरुत्वान् प्रशस्ता मरुतः=प्रजा सेना वा विद्यन्ते यस्य सः **वृषभः** शरीरात्मबलैश्वर्ययुक्तः **अस्ति, अतो रणाय** सङ्ग्रामाय **अनुष्वधं** सर्वेषु पक्वान्नेष्वनुकुलं **मदाय** हर्षाय **सोमं** सोमाद्योषधिसमूहं **पिब, सुतानां**=अन्नानां सुसंस्करेण निष्पादितानामन्नानां **मध्वः** मधुरस्य **ऊर्मिं** लहरीं **जठरे** उदरे **आञ्चिस्व** ॥ ७ । ३८ ॥

हैं। वह उपदेश क्या है ? वह यह है कि (**त्वम्**) आप सेनापति (**प्रतिपत्**) प्रत्येक विचारणीय विषयों के प्रति सावधान, (**राजा**) प्रत्येक कर्म में प्रकाशमान, (**मरुत्वान्**) उत्तम प्रजा वा सेना वाले, (**वृषभः**) शरीर और आत्मा के बल एवं ऐश्वर्य से युक्त (**असि**) हो, इसलिये (**रणाय**) संग्राम के लिये (**अनुष्वधम्**) सब पक्वान्नों में विद्यमान् (**मदाय**) हर्ष की प्राप्ति के लिये (**सोमम्**) सोम आदि औषधियों का (**पिब**) पान करो और—(**सुतानाम्**) उत्तम संस्कार से तैयार किये अन्नों के (**मध्वः**) मधुर गुण की ((**ऊर्मिम्**) लहरी का (**जठरे**) उदर में (**आसिंचस्व**) सेचन करो ॥ ७ । ३८ ॥

[हे इन्द्र······त्वा=त्वां मरुत्वत इन्द्राय ब्रूमः, किं तत् ? तदाह—त्वं······वृषभोऽस्यतो रणायानुष्वधं मदाय सोमं पिब, सुतानाम्=अन्नानां मध्व ऊर्मिं जठर आसिञ्चस्व]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः ॥ सभासेनापत्यादिमनुष्या उत्तमोत्तमान् पदार्थान् भुक्त्वा शरीरात्मबलं सम्पाद्य शत्रून् विजित्य न्याय व्यवस्थया सर्वान् पालयेयुरिति ॥ ७ । ३८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है ॥ सभापति और सेनापति आदि मनुष्य उत्तम-उत्तम पदार्थों के भोजन से शरीर और आत्मा के बल को प्राप्त कर तथा शत्रुओं को जीत कर न्याय-व्यवस्था से सबका पालन करें ॥ ७ । ३८ ॥

भाष्यसार—सभाध्यक्ष के लिये उपदेश—हे सभाध्यक्ष ! आप शत्रुओं को जीतने वाले हो, राजनियमों के अनुसार हमसे सभाध्यक्ष स्वीकार किये गये हो । इसलिये प्रशस्त वायु-अस्त्रों वाले, परम ऐश्वर्य के प्रापक रण के लिये हम आपको नियुक्त करते हैं । क्योंकि यह रण आपके लिये सुख का हेतु है । इसलिये प्रजापालन से सम्बद्ध राज्य-ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये आपको उपदेश करते हैं ।

सभापति और सेनापति आदि लोग प्रत्येक विचारणीय विषय के प्रति अत्यन्त सावधान रहें, राज्य सम्बन्धी प्रत्येक कर्म में प्रकाशमान (**उपस्थित**) रहें, प्रशस्त प्रजा और सेना वाले हों, शरीर और आत्मा के बल से युक्त रहें, सङ्ग्राम के लिये उत्तम-उत्तम पक्वान्नों का सेवन करें तथा हर्ष-प्राप्ति के लिये सोम आदि औषधियों का पान करें । न्याय-व्यवस्था से सब प्रजा का पालन करें ॥ ७ । ३८ ॥

महानित्यस्य भरद्वाजः । **प्रजापतिः**=जगदीश्वरः । आद्यस्य भुरिक् पङ्क्तिः । पञ्चमः । उपयामेत्यस्य साम्नी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥ अथेश्वरः स्वगुणानाह ॥

अथेश्वरः स्वगुणानाह

अब ईश्वर अपने गुणों का उपदेश करता है ॥

महाँ२ऽ इन्द्रो नृवदा चर्षणिप्राऽ उत द्विबर्हाऽ अमिनः सहोभिः ।
अस्मद्र्यग्वावृधे वीर्यायोरुः पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत ।
उपयामगृहीतोऽसि महेन्द्राय त्वैष ते योनिर्महेन्द्राय त्वा ॥ ३९ ॥

पदार्थः—(**महान्**) सर्वोत्कृष्टः पूज्यतमश्च (**इन्द्रः**) अत्युत्कृष्टैश्वर्यः (**नृवत्**) न्यायशीलैर्मनुष्यैस्तुल्यः (**आ**) (**चर्षणिप्राः**) चर्षणीन्=मनुष्यान् प्राति=सुखैः प्रपूरयति सः (**उत**) अपि (**द्विबर्हाः**) द्वे बर्हसी=व्यावहारिकपारमार्थिकवृद्धिकरे विज्ञाने यस्य सः । **द्विबर्हा इति पदनामसु पठितम् ॥ निघं० ४ । ३ ॥** (**अमिनः**) अनुपमोऽतुलपराक्रमः । **अमिनो मितमात्रो महान् भवत्यमितो वा ॥ निरु० ६ । १६ ॥** (**सहोभिः**) बलैः (**अस्मद्रचक्**) अस्मानञ्चति=सर्वज्ञतया जानाति (**वावृधे**) वर्द्धते वर्द्धयति वा (**वीर्य्याय**) पराक्रमाय (**उरुः**) बहुः (**पृथुः**) विस्तीर्णः (**सुकृतः**) शोभनं कृतं क्रियते येन सः (**कर्त्तृभिः**) सुकर्म्मकारिभिर्जीवैः सह (**भूत्**) भवति, **अत्राडभावः** (**उपयामगृहीतः**) योगाभ्यासेन स्वीकर्त्तुं योग्यः (**असि**) (**महेन्द्राय**) अनुत्तमायैश्वर्य्याय (**त्वा**) (**एषः**) (**ते**) (**योनिः**) (**महेन्द्राय**) (**त्वा**) त्वाम् ॥ अयं मन्त्रः शत० ४ । ३ । ३ । १८ व्याख्यातः ॥ ३९ ॥

प्रमाणार्थ—(**द्विबर्हाः**) यह शब्द निघं० (४ । ३) पद-नामों में पढ़ा है । (**अमिनः**) इस शब्द का अर्थ निरु० (६ । १६) में इस प्रकार किया है—"मितमात्र का अर्थ 'महान्' है जो अत्यन्त महान् हो वह, 'अमित' कहाता है; 'अमित' ही 'अमिन' होता है" (**भूत्**) यहां 'अट' का अभाव है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । ३ । ३ । १८) में की गई है ॥ ७ । ३९ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे भगवन् जगदीश्वर ! यतस्त्वमुपयामगृहीतः** योगाभ्यासेन स्वीकर्तुं योग्यः **असि, तस्मान्महेन्द्राय** अनुत्तमायैश्वर्य्याय त्वा **वयमुपास्महे, उत=अपि यतस्ते=तवैष योनिरस्ति, तस्मात्** [त्वा] त्वां **महेन्द्राय** अनुत्तमायैश्वार्य्याय **वयं सेवामहे ।**

यो महान् सर्वोत्कृष्टः पूज्यतमश्च् **नृवत्** न्याय शीलैर्मनुष्यैस्तुल्यः **आचर्षणिप्राः** चर्षणीन्=मनुष्यान् प्राति=सुखैः प्रपूरयति सः **द्विबर्हाः** द्वे बर्हसी=व्यावहारिक पारमार्थिक वृद्धि करे विज्ञाने यस्य सः **अस्मद्रचक्** अस्मानश्वति=सर्वज्ञतया जानाति **अमिनः** अनुपमोऽतुलपराक्रमः **उरुः** बहुः **पृथुः** विस्तीर्णः **कर्तृभिः** सुकर्म्मकारिभिर्जीवैः **सह सुकृतः** शोभनं कृतं क्रियते येन सः **इन्द्रः** अत्युत्कृष्टैश्वर्यः **भूत्** भवति, **तमेवाश्रितः सर्वोजनः सहोभिः** बलैः **सह वीर्य्याय** पराक्रमाय **वावृधे** वर्द्धते वर्द्धयति वा ।। ७ । ३९ ।।

भाषार्थ—हे भगवन् जगदीश्वर ! क्योंकि आप (**उपयामगृहीतः**) योगाभ्यास से प्राप्त करने योग्य (**असि**) हो, अतः (**महेन्द्राय**) अत्युत्तम ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (**त्वा**) आपकी हम उपासना करते हैं, (**उत**) और--क्योंकि (**ते**) आपका (**एषः**) यह ऐश्वर्य (**योनिः**) निवास है, इस लिये [**त्वा**] आप के (**महेन्द्राय**) अत्युत्तम् ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये हम सेवन करते हैं । और—

जो ईश्वर (**महान्**) सब से उत्कृष्ट और पूज्यतम, (**नृवत्**) न्यायशील मनुष्यों के तुल्य, (**आचर्षणिप्राः**) मनुष्यों को सुखों से भरपूर करने वाला, (**द्विबर्हाः**) व्यावहारिक और पारमार्थिक दो प्रकार की वृद्धि करने वाले विज्ञान से युक्त, (**अस्मद्रचक्**) हम सबको अपनी सर्वज्ञता से जानने वाला, (**अमिनः**) अनुपम एवं अतुल पराक्रम वाला, (**उरुः**) विशाल, (**पृथुः**) विस्तृत, (**कर्तृभिः**) शुभ कर्म करने वाले जीवों के साथ (**सुकृतः**) उत्तम कर्म करने वाला, (**इन्द्रः**) अत्यन्त उत्कृष्ट ऐश्वर्य वाला (**भूत्**) है, सब मनुष्य उसी के आश्रित होकर (**सहोभिः**) सब बलों के साथ (**वीर्याय**) पराक्रम को (**वावृधे**) बढ़ाते हैं ।। ७ । ३९ ।।

[यो महान्...इन्द्रो भूत्, तमेवाश्रितः सर्वो जनः सहोभिः सह वीर्याय वावृधे]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः । ईश्वरम-

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार

नाश्रित्य कश्चिदपि पुरुषः प्रजाः पालयितुं न शक्नोति, यथेश्वरः शाश्वतं न्यायमाश्रित्य सर्वान् प्राणिनः सुखयति, तथैव राजापि सर्वान् तर्पयेत् ॥ ७ । ३९ ॥

है। ईश्वर के आश्रय के बिना कोई भी पुरुष प्रजा का पालन नहीं कर सकता, जैसे ईश्वर सत्य न्याय के आश्रय से सब प्राणियों को सुख देता है वैसे ही राजा भी सब प्रजा को तृप्त करे॥ ७ । ३९ ॥

भाष्यसार—१. **ईश्वर के गुणों का उपदेश**—हे भगवन् जगदीश्वर ! आप योगाभ्यास से प्राप्त करने योग्य हो। इसलिये अत्युत्तम योग रूप ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये हम आपकी उपासना करते हैं। यह अत्युत्तम योग रूप ऐश्वर्य ही आपका निवास हो, इस में आप निवास करते हो, इसलिये इस अनुत्तम ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये हम आपका सेवन करते हैं।

आप सर्वोत्तम और पूज्यतम हो, न्यायकारी हो, धर्मात्मा मनुष्यों को सुख से भरपूर करने वाले हो, व्यावहारिक और पारमार्थिक विज्ञान की वृद्धि करने वाले हो, सर्वज्ञता से सबको जानने वाले हो, विशाल हो, विस्तृत हो, शुभ कर्म करने वाले जीवों को शुभ फल देने वाले हो, अत्यन्त उत्कृष्ट ऐश्वर्य वाले हो। इसलिये आपके आश्रय से ही सब मनुष्य बल और पराक्रम की वृद्धि कर सकते हैं। आपके आश्रय के बिना कोई भी मनुष्य प्रजा का पालन नहीं कर सकता।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि जैसे ईश्वर सत्य न्याय से सब प्राणियों को सुख देता है वैसे राजा भी सबको सुख देवे॥ ७ । ३९ ॥

वत्सः । **प्रजापतिः=ईश्वरः** । आर्षीगायत्री । उपयामेत्यस्य विराडार्षी गायत्री । षड्जः ।

पुनरीश्वरगुणा उपदिश्यन्ते ॥

फिर भी ईश्वर के गुणों का उपदेश किया जाता है॥

म॒हाँ२ऽ इन्द्रो॒ य ऽ ओज॑सा प॒र्जन्यो॑ वृ॒ष्टि॒माँ२ऽ इ॑व । स्तोमै॑र्व॒त्सस्य॑ वावृधे ।
उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽसि म॒हेन्द्राय॑ त्वै॒ष ते॒ योनि॑र्म॒हेन्द्राय॑ त्वा ॥ ४० ॥

पदार्थः—(**महान्**) महागुणकर्मस्वभावः (**इन्द्रः**) अखिलैश्वर्यः (**यः**) (**ओजसा**) अनन्तबलेन (**पर्जन्यः**) मेघः (**वृष्टिमानिव**) बह्व्यो वृष्ट्यो विद्यन्ते यस्मिंस्तद्वत् (**स्तोमैः**) स्तुतिभिः (**वत्सस्य**) यो वदति तस्य (**वावृधे**) अत्यन्तं वर्द्धते (**उपयामगृहीतः**) यमनियमादिभिर्योगाङ्गैः साक्षात् स्वीकृतः (**असि**) (**महेन्द्राय**) योगजाय महैश्वर्य्याय (**त्वा**) त्वाम् (**एषः**) (**ते**) तव (**योनिः**) निमितम् (**महेन्द्राय**) मोक्षप्रापकाय महैश्वर्य्याय (**त्वा**) त्वाम् ॥ ४० ॥

सपदार्थान्वयः—**हे अनादिसिद्ध महायोगिन् सर्वव्यापिन्नीश्वर ! यतस्त्वं योगिभि रूपयामगृहीतः** यमनियमादिभिर्योगाङ्गैः साक्षात् स्वीकृतः **असि, तस्मात्त्वा=त्वां महेन्द्राय** योगजाय महैश्वर्य्याय **उपश्रयामहे** ।

भावार्थ—हे अनादिसिद्ध, महायोगी, सर्वव्यापक ईश्वर ! क्योंकि आप योगी जनों से (**उपयामगृहीतः**) यम-नियम आदि योग के अङ्गों द्वारा साक्षात् प्राप्त किये गये (**असि**) हो, अतः (**त्वा**) आपका (**महेन्द्राय**) योग से उत्पन्न महान् ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (**उपश्रयामहे**) आश्रय ग्रहण करते हैं।

यतस्ते=तव एषः योगोयोनिः निमित्तम् **अस्ति, अतस्त्वा=त्वां महेन्द्राय** मोक्षप्रापकाय महैश्वर्य्याय

क्योंकि—(**ते**) आपका (**एषः**) यह योग (**योनिः**) ऐश्वर्य प्राप्ति का निमित्त है, अतः (**त्वा**) आपका

वय ध्यायेम।

यो महान् महागुणकर्मस्वभावः **वृष्टिमान्** बह्वो वृष्टयो विद्यन्ते यस्मिन् **पर्जन्यः** मेघः **इव वत्सस्य** यो वदति तस्य **स्तोमैः** स्तुतिभिः **ओजसा** अनन्तबलेन **इन्द्रः** अखिलैश्वर्यः **सुखवर्षको भवति, तं विदित्वा योगी वावृधे=अत्यन्त वर्धते** ॥ ७ । ४० ॥

(**महेन्द्राय**) मोक्षदायक महान् ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये हम लोग ध्यान करते हैं। और—

जो (**महान्**) महान् गुण, कर्म स्वभाव वाला (**वृष्टिमान्**) बहुत वर्षा करने वाले (**पर्जन्यः**) मेघ के समान, (**वत्सस्य**) स्तुति करने वाले की (**स्तोमैः**) स्तुतियों से और (**ओजसा**) अनन्त बल से (**इन्द्रः**) अखिल ऐश्वर्य वाला इन्द्र सुख की वर्षा करने वाला है, उसे जानकर योगी (**वावृधे**) अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त करता है ॥ ७ । ४० ॥

[यो महान् वृष्टिमान् पर्जन्य इव···इन्द्रः सुखवर्षको भवति, तं विदित्वा योगी वावृधे]

भावार्थः—यथा मेघो वृष्टिसमये स्वजलसमूहेन सर्वान् पदार्थान् तर्पयन् सन् वर्द्धयति तथैवेश्वरो योगाराधन तत्परं योगिनमभिवर्द्धयति ॥ ७ । ४० ॥

भावार्थ—जैसे मेघ वर्षा के समय में अपने जल से सब पदार्थों को तृप्त करके बढ़ाता है वैसे ही ईश्वर योगाराधन में तत्पर योगी को समुन्नत करता है ॥ ७ । ४० ॥

भाष्यसार—ईश्वर के गुणों का उपदेश—हे अनादि सिद्ध, महायोगीन्, सर्वव्यापक ईश्वर! योगी लोग यम-नियम आदि योग के अङ्गों से आपका साक्षात्कार करते हैं, इसलिये हम भी योगज महान् ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये आपकी उपासना करते हैं। यह योग ही आपकी प्राप्ति का निमित्त है इसलिये मोक्षदायक इस योगज महान् ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये हम आपका ध्यान करते हैं।

आपके गुण, कर्म, स्वभाव महान् हैं। जैसे वर्षा के समय में मेघ अपने जल से सब पदार्थों को तृप्त करके उन्हें बढ़ाता है, वैसे आप हम स्तोता जनों की नानाविधि स्तुतियों से प्रसन्न होकर सुख की वर्षा करते हो, और योगीजनों को अत्यन्त समुन्नत बनाते हो क्योंकि आप अनन्त बलवान् होने से अखिल ऐश्वर्य के स्वामी हो, इन्द्र हो ॥ ७ । ४० ॥

प्रस्कण्व। **सूर्य्यः=आदित्यो ब्रह्म च।** भुरिगार्षी गायत्री। षड्जः ॥

अथ सूर्य्यदृष्टान्तेनेश्वरस्य गुणा उपदिश्यन्ते ॥

अब सूर्य्य के दृष्टान्त से ईश्वर के गुणों का उपदेश किया जाता है ॥

उदु॒ त्यं जा॒तवे॑दसं दे॒वं व॑हन्ति के॒तवः॑। दृ॒शे विश्वा॑य॒ सूर्य्यं॒ स्वाहा॑ ॥ ४१ ॥

पदार्थः—(**उत्**) क्रियायोगे (**उ**) वितर्के (**त्यम्**) अमुम् (**जातवेदसम्**) जातानि-भूतानि सर्वाणि वेदजातान् मूर्त्तिमतः पदार्थान् विन्दत इति वा तम्। इमं मन्त्रं यास्कमुनिरेवं निर्वक्ति—जातवेदाः कस्माज्जातानि वेद जातानि वैनं विदुर्जाते जाते विद्यत इति वा जातवित्तो वा जातप्रज्ञानो यत्तज्जातः पशूनविन्दतेति तज्जातवेदसो जातवेदस्त्वमिति ॥ निरु० ७ । १९ ॥ (**देवम्**) दिव्यगुणसम्पन्नम् (**वहन्ति**) प्रापयन्ति (**केतवः**) प्रज्ञानानि केतुरिति प्रज्ञानामसु पठितम् ॥ निघं० ३ । ९ ॥ (**दृशे**) द्रष्टुम् दृशे विख्ये च ॥ अ० ३ । ४ । ११ ॥ (**विश्वाय**) सर्वार्थाय (**सूर्य्यम्**) यः स्त्रियते विज्ञाप्यते वा विद्वैर्विद्वद्भिश्च तम् (**स्वाहा**) सत्यया वाचा ॥ इमं मन्त्रं यास्कमुनिरेवं व्याचष्टे—उद्वहन्ति तं जातवेदसं रश्मयः केतवः सर्वेषां भूतानां दर्शनाय सूर्य्यमिति कमन्यमादित्यादेवमवक्ष्यत् ॥ निरु० १२ । १५ ॥ अयं मन्त्रः शत० ४ । ६ । २ । २ व्याख्यातः ॥ ४१ ॥

प्रमाणार्थ—(**जातवेदसम्**) यास्कमुनि ने निरु० (७ । १६) में 'जातवेदाः' शब्द का निर्वचन इस प्रकार किया है—'जातवेदाः' को 'जातवेदाः' क्यों कहते हैं ? इसलिये कि यह समस्त प्रसिद्ध पदार्थों को जानता है, अथवा समस्त प्राणी इसे जानते हैं, अथवा प्रत्येक पदार्थों में यह विद्यमान है। यह विद्या और प्रज्ञा वाला है; क्योंकि प्रसिद्ध होते ही इसने सब पशुओं (**दृश्यमान पदार्थों**) को प्राप्त कर लिया इसलिये यह 'जातवेदाः' कहलाया है"। (**केतवः**) 'केतु' शब्द निघं० (३ । ६) में प्रज्ञा नामों में पढ़ा है। (**दृशे**) यह पद 'दृशे विख्ये च' (अ० ३ । ४ । ११) इस सूत्र से निपातित है। यास्कमुनि ने निरु० (१२ । १५) इस मन्त्र की व्याख्या इस प्रकार की है "केतु (**प्रज्ञा**) के समान रश्मियाँ सब प्राणियों की दर्शनशक्ति के लिये सूर्य को ऊपर उठाती हैं, आदित्य से भिन्न ऐसा किसे कहा जा सकता है"। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । ६ । २ । २) में की गई है ॥ ७ । ४१ ॥

सपदार्थान्वयः—यथा किरणा **विश्वाय** सर्वार्थाय **दृशे** द्रष्टुं **जातवेदसं** जातानि भूतानि सर्वाणि वेद, जातान् मूर्त्तिमतः पदार्थान् विन्दत इति वा तं **त्यम्** अमुं **सूर्य्यं** यः स्रियते विज्ञाप्यते वा विदैर्विद्वद्भिश्च तं **देवं** दिव्यगुणसम्पन्नम् [**उ**] सवितर्कम **उद्**+**वहन्ति** प्रापयन्ति इव, [**तथा**] **विदुषः केतवः** प्रज्ञानानि **स्वाहा** सत्यया वाचा **अन्यान् मनुष्यान् परं ब्रह्म प्रापयन्ति** ॥ ७ । ४१ ॥

भाषार्थ—जैसे किरणें (**विश्वाय**) सब पदार्थों को (**दृशे**) देखने के लिए (**जातवेदसम्**) उत्पन्न हुये सब भूतों को जानने वाले ईश्वर अथवा उत्पन्न मूर्त्तिमान् पदार्थों को प्राप्त होने वाले [**सूर्य**] (**त्यम्**) उस (**सूर्यम्**) ग्रह-वेताओं से प्राप्त करने योग्य और विद्वानों से बतलाने योग्य (**देवम्**) दिव्य गुणों से युक्त सूर्य को [**उ**] वितर्कपूर्वक (**उद्**+**वहन्ति**) प्राप्त कराती हैं, वैसे विद्वान् पुरुष के (**केतवः**) श्रेष्ठ ज्ञान (**स्वाहा**) सत्य वेदवाणी से नाना मनुष्यों को पर-ब्रह्म की प्राप्ति कराते हैं ॥ ७ । ४१ ॥

[यथा किरणा ··· सूर्यं ··· उद्वहन्ति ··· [तथा] विदुषः केतवः ···मनुष्यान् परं ब्रह्म प्रापयन्ति]

भावार्थः—यथा प्राणिभ्यः किरणाः सूर्यं प्रकाशयन्ति, तथा मनुष्यस्य प्रज्ञानानीश्वरं प्रापयन्ति ॥ ७ । ४१ ॥

भावार्थ—जैसे प्राणियों के लिये किरणें सूर्य को प्रकाशित करती हैं वैसे मनुष्य का प्रकृष्ट ज्ञान ईश्वर को प्राप्त कराता है ॥ ७ । ४१ ॥

भाष्यसार—**सूर्य के दृष्टान्त से ईश्वर के गुणों का उपदेश**—सब मूर्त्तिमान् पदार्थों को प्राप्त, ग्रह-वेत्ताओं से प्राप्त करने योग्य, दिव्यगुणों से युक्त सूर्य को जैसे उसकी किरणें उसे प्रकाशित करती हैं वैसे विद्वान् मनुष्य का प्रकृष्ट ज्ञान पर-ब्रह्म को प्राप्त कराता है। जो पर-ब्रह्म सब उत्पन्न प्राणियों को जानने वाला है, विद्वान् पुरुषों से जानने योग्य है, और दिव्यगुणों से युक्त है ॥ ७ । ४१ ॥

कुत्स । **सूर्य्यः**=**आदित्यः, ईश्वरश्च** । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनरित्थमेवेश्वरस्य गुणा उपदिश्यन्ते ॥

फिर भी वैसे ही ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है ॥

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्रा द्यावापृथिवी ऽ अन्तरिक्षꣳ सूर्य्य ऽ आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा ॥ ४२ ॥

पदार्थः—(**चित्रम्**) अद्भुतम् (**देवानाम्**) चक्षुरादीनामिव विदुषाम् (**उत्**) उद्गमने (**अगात्**) प्राप्नोति (**अनीकम्**) बलवत्तरं सैन्यमिव प्रसिद्धम्, अनिति-जीवयति सर्वान् प्राणिनः सः । **अनिहृषिभ्यां किच्च ॥ उ० ४ । १७ ॥ अनेन ईकन् प्रत्ययः** (**चक्षुः**) दर्शकम् (**मित्रस्य**) सख्युः प्राणस्य वा (**वरुणस्य**) श्रेष्ठस्योदानस्य वा (**अग्नेः**) विद्युतः (**आ**) समन्तात् (**अप्राः**) यः प्राति=पिपर्त्ति । **अत्र लडर्थे लुङ्** (**द्यावापृथिवी**) भूमिवियतौ (**अन्तरिक्षम्**) सर्वन्निर्गतमनन्तमाकाशम् (**सूर्य्यः**)स्वयंप्रकाशः (**आत्मा**) अतति=सर्वत्र व्याप्नोति (**जगतः**) जङ्गमस्य (**तस्थुषः**) स्थावरस्य (**च**) जीवानां समुच्चये (**स्वाहा**) सत्यया क्रियया ।। **इमं मन्त्रं यास्कमुनिरेवं समाचष्टे—चायनीयं देवानामुदगमदनीकं ख्यानं मित्रस्य वरुणस्याग्नेश्चापूपुरद् द्यावापृथिव्यौ चान्तरिक्षं च महत्त्वेन तेन सूर्य आत्मा जङ्गमस्य च स्थावरस्य च ॥ निरु० १२ । १६ ॥ अयं मंत्रः शत० ४ । ३ । ४ । १० व्याख्यातः ॥ ४२ ॥**

प्रमाणार्थ—(**अनीकम्**) यहां 'अनिहृषिभ्यां किच्च' उणा० (४ । १७) इस सूत्र से 'अन्' धातु से 'ईकन्' प्रत्यय और वह कित् है । (**अप्राः**) यहां लट् अर्थ में लुङ् लकार है। इस मन्त्र की व्याख्या **यास्कमुनि ने निरुक्त में** (१२-१६) की है ।

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! युष्माभिः—सूर्य्यः** स्वयंप्रकाशः **स्वाहा** सत्यया क्रियया **देवानां** चक्षुरादीनामिव विदुषां **मित्रस्य** सख्युः प्राणस्य वा **वरुणस्य** श्रेष्ठस्योदानस्य वा **अग्नेः** विद्युतः **चित्रम्** अद्भुतम् **अनीकं** बलवत्तरं सैन्यमिव प्रसिद्धम् अनिति=जीवयति सर्वान् प्राणिनः सः **चक्षुः** दर्शकम् **उद्-अगात्** उदगस्य प्राप्नोति, **जगतः** जङ्गमस्य **तस्थुषः** स्थावरस्य **च** जीवानां **आत्मा** अतति=सर्वत्र व्याप्नोति **सन्द्यावापृथिवी** भूमिवियतौ **अन्तरिक्षं** सर्वन्निर्गतमनन्तमाकाशम् **आ+अप्राः** समन्ताद् यः प्राति=पिपर्त्ति **इव यो जगदीश्वरोऽस्ति, स एव सततमुपासनीयः** ॥ ७ । ४२ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—जो (**सूर्यः**) स्व-प्रकाश वाला, सूर्य (**स्वाहा**) सत्य क्रिया से (**देवानाम्**) चक्षु के समान विद्वानों को, (**मित्रस्य**) सखा वा प्राण को, (**वरुणस्य**) श्रेष्ठ पुरुष वा उदान को (**अग्नेः**) विद्युत् को (चित्रम्) अद्भुत (**अनीकम्**) बलवान् सैन्य के समान प्रसिद्ध एवं सब प्राणियों को जीवन देने वाला (**चक्षुः**) नेत्र को (**उद्+अगात्**) उदय होकर प्रदान करता है, और जो (**जगतः**) चेतन (**तस्थुषः**) जड़ (**च**) और सब प्राणियों का (**आत्मा**) सर्वव्यापक आत्मा होकर (**द्यावापृथिवी**) पृथिवी, आकाश और (**अन्तरिक्षम्**) सर्वत्र व्याप्त अनन्त आकाश को (**आ+अप्राः**) सब ओर से पूर्ण करता है, उस सूर्य के समान जो जगदीश्वर है, उसकी ही सदा उपासना करो ॥ ७ । ४२ ॥

[**हे मनुष्याः ! युष्माभिः—सूर्यः······मित्रस्य······चक्षुरुदगात् । जगतस्तस्थुषश्चात्मा सन् द्यावापृथिव्यन्तरिक्षमाप्रा इव यो जगदीश्वरोऽस्ति, स एव सततमुपासनीयः**]

भावार्थः—यतः परमेश्वर आकाश इव सर्वत्र व्याप्तः, सवितेव स्वयम्प्रकाशः, प्राण इव सर्वान्तर्याम्यस्त्यतः सर्वेभ्यो जीवेभ्यः सत्यासत्यविज्ञापकोऽस्ति ।

यस्य परमेश्वरस्य ज्ञीप्सा भवेत् स योगमभ्यस्य स्वात्मन्येव तं द्रष्टुं शक्नोति; नान्यत्रेति ॥ ७ । ४२ ॥

भावार्थ—जिससे परमेश्वर आकाश के समान सर्वत्र व्याप्त, सूर्य के समान स्वयं प्रकाशमान, प्राण (**वायु**) के समान सर्वान्तर्यामी है इसलिये सब जीवों को सत्य और असत्य का बोध कराने वाला है ।

जिसे परमेश्वर को जानने की इच्छा हो वह योगाभ्यास करके अपने आत्मा में ही उसे देख सकता है; अन्यत्र नहीं ॥ ७ । ४२ ॥

१. **अन्यत्र व्याख्यात**—महर्षि ने इस मन्त्र का पञ्चमहायज्ञविधि में ब्रह्मयज्ञ (**सन्ध्या**) में विनियोग किया है और इसका भाष्य इस प्रकार किया है:—

भाष्यम्—स एव देवः सूर्यः (**जगतः**) जङ्गमस्य (**तस्थुषः**) स्थावरस्य च (**अस्य**) अतति= नैरन्तर्येण सर्वत्र व्याप्नोतीत्यात्मा तथा (**आप्रा०**) द्यौः पृथिवी अन्तरिक्षं चैतदादि सर्वं जगद् रचयित्वा आ समन्ताद् धारयन् सन् रक्षति (**चक्षुः**) एव एवैतेषां प्रकाशकत्वाद् बाह्यभ्यन्तरयोश्चक्षुः प्रकाशको विज्ञानमयो विज्ञापकश्चास्ति । अतएव (**मित्रस्य**) सर्वेषु द्रोहरहितस्य मनुष्यस्य सूर्यलोकस्य प्राणस्य वा (**वरुणस्य**) वरेषु=श्रेष्ठेषु कर्मसु गुणेषु वर्त्तमानस्य च (**अग्नेः**) शिल्पविद्याहेतो रूप गुण दाह प्रकाशकस्य विद्युतो भ्राजमानस्यापि चक्षुः सर्वसत्योपदेष्टा प्रकाशकश्च (**देवानाम्**) स दिव्यगुणवतां विदुषामेव हृदये (**उदगात्**) उत्कृष्टतया प्राप्तोऽस्ति प्रकाशको वा तदेव ब्रह्म (**चित्रम्**) अद्भुतस्वरूपम् । अत्र प्रमाणम्—"**आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धाऽऽश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः**" (**कठोपनि० वल्ली २**) ।।" आश्चर्यस्वरूपत्वाद् ब्राह्मणः । तदेव ब्रह्म सर्वेषां चास्माकं (**अनीकम्**) सर्वदुःखनाशार्थं कामक्रोधादिशत्रुविनाशार्थं बलमस्ति । तद्विहाय मनुष्याणां सर्वसुखकरं शरणमन्यन्नास्त्येवेति वेद्यम् ।

(**स्वाहा**) अथात्र स्वाहाशब्दार्थे प्रमाणम् । निरुक्तकारा आहुः—"स्वाहाकृतयः स्वाहेत्येत्, सु आहेति वा, स्वां वागाहेति वा, स्वं प्राहेति वा, स्वाहुतं हविर्जुहोतीति वा" (**निरु० अ० ८ । खं० २**) ।।

स्वाहाशब्दस्यायमर्थः—(**सु आहेति वा**) सु=सुष्ठु कोमलं मधुरं कल्याणकरं प्रियं वचनं सर्वैर्मनुष्यैः सदा वक्तव्यम् । (**स्वा वागहेति वा**) या स्वकीया वाग् ज्ञानमध्ये वर्त्तते, सा यदाह तदेव वागिन्द्रियेण सर्वदा वाच्यम् । (**स्वं प्राहेति वा**) स्वं स्वकीयपदार्थं प्रत्येव स्वत्वं वाच्यम्, न परपदार्थं प्रति चेति । (**स्वाहुतं ह०**) सुष्ठुरीत्या संस्कृत्य संस्कृत्य हविः सदा होतव्यमिति स्वाहाशब्दपर्यायार्थाः । स्वमेव पदार्थं प्रति वयं सर्वदा सत्यं वदाम इति, न कदाचित् परपदार्थं प्रति मिथ्या वदेमेति ।। ३ ।।

भाषार्थ—(**चित्रं देवाना०**) (**सूर्य आत्मा०**) प्राणों और जड़ जगत् की जो आत्मा है उसको सूर्य कहते हैं (**आ प्रा द्यो०**) जो सूर्य और अन्य सब लोकों को बना के धारण और रक्षण करने वाला है (**चक्षुमित्रस्य**) जो मित्र अर्थात् रागद्वेष रहित मनुष्य तथा सूर्यलोक और प्राण का चक्षु= प्रकाश करने वाला है (**वरुणस्या०**) सब उत्तम कामों में जो वर्त्तमान मनुष्य प्राण, अपान और अग्नि का प्रकाश करने वाला है । (**चित्रं देवानां**) जो अद्भुत-स्वरूप विद्वानों के हृदय में सदा प्रकाशित रहता है (**अनीकम्**) जो सकल मनुष्यों के सब दुःख नाश करने के लिये परम उत्तम बल है वह परमेश्वर (**उदगात्**) हमारे हृदयों में यथावत् प्रकाशित रहे ।। ३ ।।" (**पञ्चमहायज्ञविधि**) ।।

२. "सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च" इस यजुर्वेद के वचन से जो जगत् नाम प्राणी चेतन और जंगम अर्थात् जो चलते-फिरते हैं 'तस्थुषः' अप्राणी अर्थात् स्थावर जड़ अर्थात् पृथिवी आदि हैं उन सबके आत्मा होने और रूप सबके प्रकाश करने से परमेश्वर का नाम 'सूर्य' है । (**सत्यार्थ० प्रथम समु०**) ।। ७ । ४२ ।।

भाष्यसार—१. **ईश्वर के गुणों का उपदेश**—ईश्वर सूर्य के समान स्वप्रकाशस्वरूप है । जैसे चक्षु आदि इन्द्रियाँ अपने अर्थों को प्रत्यक्ष ग्रहण करती हैं, वैसे प्रत्यक्ष द्रष्टा विद्वानों का, मित्र जनों का, श्रेष्ठ जनों का ईश्वर चक्षु के समान मार्गदर्शक है । वायु (**प्राण, उदान**) के समान अन्तर्यामी है । विद्युत् आदि का दर्शक (**कर्ता**) वही है । वह अद्भुत है । बलवान् सेना के समान सर्वत्र प्रसिद्ध है, एवं प्राणियों का जीवन वही है । सब का द्रष्टा है । चेतन और जड़ पदार्थों का आत्मा है अर्थात् सब में सर्वत्र व्यापक है । द्युलोक, भूलोक और अन्तरिक्ष में सब ओर परिपूर्ण है । वह आकाश के समान सर्वत्र

व्याप्त है । इसलिये सब जीवों को सत्य-असत्य का बोध कराने वाला वही है। जो परमेश्वर को स्वयं जानकर सबको जनाना चाहता है वह योगाभ्यास करके अपने आत्मा में उसके दर्शन करे, उसकी नित्य उपासना करे ।। ७ । ४२ ।। ⊛

आङ्गिरसः । **अन्तर्यामी जगदीश्वरः**=स्पष्टम् । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ।।

अथैतदीश्वरप्रार्थनामाह ।।

अब ईश्वर की प्रार्थना का उपदेश किया जाता है ।।

अग्ने नयं सुपथा राये ऽ अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमऽउक्तिं विधेम स्वाहा ।। ४३ ।।

पदार्थः—(**अग्ने**) सर्वेषां प्रकाशक ! (**नय**) प्रापय (**सुपथा**) योगमार्गेण (**राये**) योगसिद्धये (**अस्मान्**) योगिनः (**विश्वानि**) अखिलानि (**देव**) योगप्रद ! (**वयुनानि**) योगविज्ञानानि (**विद्वान्**) यो वेत्ति सर्वं योगं सः (**युयोधि**) वियोजय (**अस्मत्**) अस्माकं योगानुष्ठातॄणां सकाशात् (**जुहुराणम्**) अस्मदन्तःकरणस्य कौटिल्यम् (**एनः**) दुष्कृतात्मकमपराधम् (**भूयिष्ठाम्**) भूयसीम् (**ते**) तव योगोपदेष्टुः परमगुरोः (**नमउक्तिम्**) नतिपुरःसरां स्तुतिम् (**विधेम**) कुर्य्याम (**स्वाहा**) सत्यया स्वकीयया वाचा वेदवाचा वा ।। **अयं मन्त्रः श० ४ । ३ । ४ । १२ व्याख्यातः ।। ४३ ।।**

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । ३ । ४ । १२) में की गई है ।। ७ । ४३ ।।

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने** ! सर्वेषां प्रकाशक **त्वं राये** योगसिद्धये **अस्मान्** योगिनः **विश्वानि** अखिलानि **वयुनानि** योगविज्ञानानि [**सुपथा**] योगमार्गेण **नय** प्रापय, **यतो वयं स्वाहा** सत्यया स्वकीयया वाचा वेदवाचा वा **ते** तव योगोपदेष्टुः परमगुरोः **भूयिष्ठां** भूयसी **नम उक्तिं** नतिपुरः सरां स्तुतिं विधेम् कुर्याम ।

हे **देव** ! योगप्रद [**विद्वान्**] यो वेति सर्व योगं सः त्वं **कृपया जुहुराणम्** अस्मदन्तः करणस्य कौटिल्यम् **एनः** दुष्टतात्मकमपराधं **च अस्मद्** अस्माकं योगानुष्ठातॄणां सकाशात् **युयोधि** वियोजय ।। ७ । ४३ ।।

भाषार्थ—हे (**अग्ने**) सबके प्रकाशक जगदीश्वर ! आप (**राये**) योग की सिद्धि के लिये (**अस्मान्**) हम योगी लोगों को (**विश्वानि**) सब (**वयुनानि**) योग के विज्ञानों को (**सुपथा**) योग-मार्ग से (**नय**) प्राप्त कराओ । जिससे हम लोग (**स्वाहा**) अपनी सत्य वाणी वा वेदवाणी के द्वारा (**ते**) योगोपदेष्टा परमगुरु आपकी (**भूयिष्ठाम्**) अत्यन्त (**नम उक्तिम्**) नम्रतापूर्वक स्तुति (**विधेम्**) करें ।

हे (**देव**) योग-विद्या के दाता ! [**विद्वान्**] सब योग को जानने वाले जगदीश्वर ! आप कृपा करके (**जुहुराणम्**) हमारे अन्तःकरण की कुटिलता को और (**एनः**) दुष्टता रूप अपराध को (**अस्मत्**) हम योगी जनों के पास से (**युयोधि**) दूर कीजिये ।। ७ । ४३ ।।

[हे अग्ने ! त्वं राये अस्मान् विश्वानि वयुनानि [सुपथा] नय, यतो वयं स्वाहा ते भूयिष्ठां नम उक्तिं विधेम]

भावार्थः—न कश्चिदपि पुरुषः परमात्मनः सत्यप्रेमभक्त्या बिना योगसिद्धं प्राप्नोति । यश्चेत्थं-

भावार्थ—कोई भी पुरुष परमात्मा की सच्ची प्रेमभक्ति के बिना योगसिद्धि को प्राप्त

शूतो योगबलेन परमेश्वरं स्मरति तस्मै स दयालुः शीघ्रं योगसिद्धिं ददाति ।। ७ । ४३ ।।

नहीं कर सकता ! और जो सच्ची प्रेमभक्ति से योग बल के द्वारा परमेश्वर को स्मरण करता है उसे वह दयालु परमात्मा शीघ्र योगसिद्धि प्रदान करता है ।। ७ । ४३ ।।

भाष्यसार—ईश्वर प्रार्थना—हे सबके प्रकाशक ईश्वर ! आप योग सिद्धि के लिये हम योगी जनों को सम्पूर्ण योगविज्ञान योगमार्ग से प्राप्त कराइये । जिससे हम सत्य भाषणादि युक्त अपनी वाणी से अथवा आपकी वेदवाणी से योग के उपदेष्टा परमगुरु आपकी बहुत प्रकार की नम्रता-पूर्वक स्तुति करें ।

हे योग के प्रदाता देव ! आप सम्पूर्ण योग को जानने वाले हो, सो कृपा करके हमारे अन्तःकरण की कुटिलता और पाप को दूर कर दीजिये ।। ७ । ४३ ।।

आंगिरसः । **प्रजापतिः**=**सद्वैद्यः** । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ।।

अथ संग्रामे ब्रह्मोपासकैः शूरवीरैः कथं योद्धव्यमित्युपदिश्यते ।।

अब संग्राम में परमेश्वर के उपासक शूरवीरों को किस प्रकार युद्ध करना चाहिये, इस विषय का उपदेश किया जाता है ।।

अयं नोऽ अग्निर्वरिवस्कृणोत्वयं मृधः पुरऽ एतु प्रभिन्दन् ।
अयं वाजाञ्जयतु वाजसातावयꣳ शत्रूञ्जयतु जर्हृषाणः स्वाहा ।। ४४ ।।

पदार्थः—(**अयम्**) सर्वाभिरक्षकः (**नः**) अस्माकम् (**अग्निः**) वैद्यविद्याप्रकाशकः सर्वरोगनिवारकः सद्वैद्यः (**वरिवः**) सुखकारकं सेवनम् (**कृणोतु**) करोतु (**अयम्**) मुख्ययोद्धा (**मृधः**) संग्रामात् (**पुरः**) पुरस्तात् (**एतु**) गच्छतु (**प्रभिन्दन्**) विदारयन् (**अयम्**) वक्तृत्वेनापदेष्टुं कुशलो योद्धा (**वाजान्**) वेगादिगुणयुक्तान् स्वसेनास्थान् वीरान् (**जयतु**) उत्कर्षतु (**वाजसातौ**) वाजानां=संग्रामाणां संविभागे (**अयम्**) सर्वोत्कृष्टः (**शत्रून्**) धर्मशातकान् (**जयतु**) स्वोत्कर्षाय तिरस्करोतु (**जर्हृषाणः**) भृशमाह्लादितः (**स्वाहा**) वैद्यकयुद्धविद्यया शिक्षितया वाचा । स्वाहेति वाङ् नामसु पठितम् ।। निघं० १ । ११ ।। अयम्मंत्रः शत० ४ । ३ । ४ । १३ व्याख्यातः ।। ४४ ।।

प्रमाणार्थ—(स्वाहा) यह शब्द निं० (१ । ११) में वाणी-नामों में पढ़ा है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । ३ । ४ । १३) में की गई है ।। ७ । ४४ ।।

सपदार्थान्वयः—**अयं** सर्वाभिरक्षकः **अग्निः** वैद्यविद्याप्रकाशकः सर्वरोगनिवारकः सद्वैद्यः **स्वाहा** वैद्यक युद्धविद्यया शिक्षितया वाचा **वाजसातौ** वाजानां=सङ्ग्रामाणां संविभागे **नः** अस्माकं **वरिवः** सुखकारकं सेवनः **कृणोतु** करोतु ।

अयं मुख्ययोद्धा **प्रभिन्दन्** विदारयन् **मृधः** सङ्ग्रामात् **पुरः** पुरस्तात् **एतु** गच्छतु ।

भाषार्थ—(**अयम्**) यह सबकी रक्षा करने वाला (**अग्निः**) वैद्यक विद्या का प्रकाशक, सब रोगों का निवारक उत्तम वैद्य (**स्वाहा**) वैद्यक-विद्या और युद्ध विद्या से सुशिक्षित वाणी के द्वारा (**वाजसातौ**) युद्धों के अवसर पर (**नः**) हमारी (**वरिवः**) सुखकारक सेवा (**कृणोतु**) करे । और—

(**अयम्**) यह मुख्य योद्धा (**प्रभिन्दन्**) शत्रु-दल का विदारण करता हुआ (**मृधः**) सङ्ग्राम के (**पुरः**) अग्रभाग में (**एतु**) बढ़ता जाये । और—

अयं वक्तृत्वेनोपदेष्टुं कुशलो योद्धा वाजान् वेगादिगुणयुक्तान् स्वसेनास्थान् वीरान् **जयतु** उत्कर्षतु ।

अयं सर्वोत्कृष्टः **जर्हृषाणः** भृशमह्लादितः **सन् शत्रून्** धर्मशातकान् जयतु स्वोत्कर्षाय तिरस्करोतु ॥ ७ । ४४ ॥

(**अयम्**) भाषण के द्वारा उपदेश करने में कुशल यह योद्धा (**वाजान्**) वेग आदि गुणों से युक्त अपनी सेना के वीरों को (**जयतु**) उत्कृष्ट बनावें। और—

(**अयम्**) यह सब से उत्कृष्ट (**जर्हृषाणः**) अत्यन्त प्रसन्न होकर (**शत्रून्**) धर्म का विनाश करने वाले शत्रुओं को (**जयतु**) अपने उत्कर्ष के लिये तिरस्कृत करें ॥ ७ । ४४ ॥

[अयमग्निः स्वाहा **वाजसातौ नो वरिवः कृणोतु**]

भावार्थः—यहाँ युद्धकर्मणि चत्वारो वीरा अवश्यमेव भवेयुस्तेष्वेको वैद्यकक्रियाकुशलः सर्वरक्षकः,

भावार्थ—जब—युद्धकर्म में चार वीर अवश्य हों, उनमें एक एक वैद्यक शास्त्र की क्रियाओं में कुशल, सबका रक्षक वैद्य हो,

[**अयं वाजान् जयतु**]

द्वितीयो हि शौर्यादिगुणप्रदेन व्याख्यानेन हर्षयिता,

दूसरा शौर्य आदि गुणों को देने वाले व्याख्यान से वीरों को हर्षित करने वाला उपदेशक हो,

[**अयं जर्हृषाणः सन् शत्रून् जयतु**]

तृतीयः शत्रूणां तिरस्कर्ता,

तीसरा शत्रुओं को तिरस्कृत करने वाला शूर हो,

[**अयं प्रभिन्दन् मृधः पुर एतु**]

चतुर्थः शत्रुघातुकः स्यात्, तदा सर्वा युद्धक्रिया प्रशस्ता भवेत् ॥ ७ । ४४ ॥

चौथा शत्रुओं का घातक वीर हो, तब—सब युद्ध की क्रिया प्रशंसनीय होती है ॥ ७ । ४४ ॥

भा० पदार्थः—अग्निः=वैद्यक क्रियाकुशलः सर्वरक्षकः ॥

भाष्यसार—**संग्राम में ब्रह्मोपासक शूरवीर कैसे युद्ध करें**—संग्राम में चार प्रकार के वीर अवश्य हों :—

१. उनमें एक वैद्य हो, जो सब की रक्षा करने वाला, वैद्यक विद्या की क्रियाओं में चतुर हो। और वह वैद्यक विद्या और युद्ध विद्या में सुशिक्षित वाणी से युद्ध के विभागों में वीरों की सुखदायक सेवा करें।

२. दूसरे वीर ऐसे हों जो वक्तृत्व कला में कुशल हों। वे शौर्य आदि गुणों को बढ़ाने वाले व्याख्यान से वेगादि गुणों से युक्त अपनी सेना के वीरों के मनोबल को ऊँचा उठावें, उनके मन को हर्षित करें।

३. तीसरे वीर ऐसे हों जो स्वयं सर्वोत्कृष्ट हों, सदा प्रसन्न रहने वाले हों वे धर्म का विनाश करने वाले शत्रुओं का तिरस्कार करें और अपने उत्कर्ष को बढ़ावें।

४. चौथे वीर ऐसे हों जो मुख्य योद्धा हों, शत्रु सेना का विदारण करने वाले हों, संग्राम में आगे-आगे बढ़ने वाले हों, शत्रुओं के घातक हों। जब ये चार प्रकार के वीर संग्राम में हों तभी युद्ध की प्रत्येक क्रिया प्रशंसनीय होगी; अन्यथा नहीं ॥ ७ । ४४ ॥

आङ्गिरसः । **अग्निःपतिः**=सभापती राजा । विराड् जगती । निषादः ॥

अथ सभात्रयेण राज्यं शासनीयमित्युपदिश्यते ॥

अब तीन सभायें राज्य का शासन करें, यह उपदेश किया है ॥

रूपेण वो रूपमभ्यागां तुथो वो विश्ववेदा विभजतु ।
ऋतस्य पथा प्रेत चन्द्रदक्षिणा वि स्वः पश्य व्युन्तरिक्षं यतस्व सदस्यैः ॥ ४५ ॥

पदार्थः—(**रूपेण**) चक्षुर्ग्राह्येण प्रियेण (**वः**) युष्माकम् (**रूपम्**) स्वरूपम् (**अभि**) सम्मुखे (**आ**) समन्तात् (**अगाम्**) (**तुथः**) ज्ञानवृद्धः । अत्र तु गतिवृद्धिहिंसास्वित्यस्मादौणादिकस्थक् प्रत्ययः (**वः**) युष्मान् (**विश्ववेदाः**) यः परमात्मा विश्वं=सर्वं वेत्ति तद्वद्वर्त्तमानः (**वि**) (**भजतु**) विभागं करोतु (**ऋतस्य**) सत्यस्य (**पथा**) मार्गेण (**प्र**) (**इत**) प्राप्नुत (**चन्द्रदक्षिणाः**) चन्द्रं=सुवर्णं दक्षिणा=दानं येषां ते । चन्द्रमिति हिरण्यनामसु पठितम् ॥ निघं० १ । २ ॥ (**वि**) (**स्वः**) उपतपन्नादित्य इव । स्वरादित्यो भवति ॥ निरु० २ । १४ ॥ (**पश्य**) प्रचक्ष्व (**वि**) विविधार्थे (**अन्तरिक्षम्**) क्षयरहितमन्तर्यामि स्वाभाविकं ब्रह्म विज्ञानं वा । अन्तरिक्षम् कस्मादन्तरा क्षान्तं भवत्यन्तरेमे इति वा शरीरेष्वन्तरक्षयमिति वा । निरु० २ । १० ॥ (**यतस्व**) प्रयत्नं कुरु (**सदस्यैः**) सदसि भवैः सभ्यैर्जनैः सह अयं मन्त्रः शत० ४ । ३ । ४ । १४—१८ व्याख्यातः ॥ ४५ ॥

प्रमाणार्थ—(**तुथः**) यहां गति वृद्धि हिंसा-अर्थ वाली 'तु' धातु से उणादिक 'थक्' प्रत्यय है । (**चन्द्रदक्षिणा**) 'चन्द्र' शब्द निघं० (१ । २) में हिरण्य-नामों में पढ़ा है । (**स्वः**) निरु० (२ । १४) में 'स्वः' शब्द का अर्थ आदित्य है । (**अन्तरिक्षम्**) इस शब्द की निरुक्ति निरु० (२ । १०) में इस प्रकार की है—"अन्तरिक्ष को अन्तरिक्ष क्यों कहते हैं ? इसलिये कि पृथिवी और द्युलोक के बीच में यह शून्य रहता है, अथवा यह उन दोनों लोकों के बीच में रहता है, अथवा यह सब शरीरों के बीच में अक्षय रूप से विद्यमान रहता है ।" इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । ३ । ४ । १४-१८) में की गई है ॥ ७ । ४५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे सेनाप्रजाजनाः ! **यथाहं रूपेण** चक्षुर्ग्राह्येण प्रियेण **वः**=**युष्माकं रूपं** स्वरूपम् **अभ्यागाम्** अभिमुखं समन्तादगाम्, **तथा विश्ववेदाः** यः परमात्मा विश्वं=सर्वं वेत्ति तद्वद्वर्त्तमानः **वः** युष्मान् **विभजतु** विभागं करोतु ।

तुथः ज्ञानवृद्धः **त्वं स्वः** उपतपन्नादित्य इव **ऋतस्य** सत्यस्य **पथा** मार्गेण **अन्तरिक्षं** क्षयरहितमन्तर्यामि स्वाभाविकं ब्रह्मविज्ञानं वा **विपश्य** विविधं प्रचक्ष्व ।

सभायां सदस्यैः सदसिभवैः सभ्यैर्जनैः सह **ऋतस्य** सत्यस्य **पथा** मार्गेण **प्रयतस्व** प्रयत्नं कुरु ।

भाषार्थ—हे सेना और प्रजा के पुरुषो ! जैसे मैं सभापति (**रूपेण**) नेत्रों से ग्रहण करने योग्य प्रिय रूप से (**वः**) तुम्हारे (**रूपम्**) स्वरूप को (**अभ्यागाम्**) प्राप्त होता हूँ वैसे (**विश्ववेदाः**) सर्वज्ञ परमात्मा के समान (**वः**) तुम्हें (**विभजतु**) राजा न्याय से युक्त करे । और—

(**तुथः**) ज्ञान-वृद्ध आप (**स्वः**) चमकते हुये सूर्य के समान (**ऋतस्य**) सत्य के (**पथा**) मार्ग से (**अन्तरिक्षम्**) क्षय रहित, स्वभाव से अन्तर्यामी ईश्वर को वा ब्रह्मविज्ञान को (**विपश्य**) विविध प्रकार से देख । और—

सभा में (**सदस्यैः**) सभा के सभ्य जनों के साथ (**ऋतस्य**) सत्य के (**पथा**) मार्ग से (**प्रयतस्व**) प्रयत्न कर । और—

चन्द्रदक्षिणाः चन्द्रं=सुवर्णं दक्षिणा=दानं येषा ते **यूयम् ऋतस्य** सत्यस्य **धर्म्यं मार्गं वि+इत** प्राप्नुत ॥ ७ । ४५ ॥

(**चन्द्रदक्षिणाः**) सुवर्ण का दान करने वाले तुम लोग (**ऋतस्य**) सत्य के धर्मयुक्त मार्ग को (**वि+इत**) प्राप्त करो ॥ ७ । ४५ ॥

[**हे सेनाप्रजाजनः ! यथाहं रूपेण वः=युष्माकं रूपमभ्यागां तथा विश्ववेदा वो विभजतु**]

भावार्थः—सभापति राजा स्वात्मजानिव प्रजासेनासभ्यपुरुषान् प्रीणयेत्, तथा पक्षपातरहितः परमेश्वर इव सततं न्यायं कुर्यात्। धार्मिकाणां सभ्यानां जनानां तिस्नः सभा भवेयुः—

भावार्थ—सभापति राजा अपने पुत्रों के समान प्रजा, सेना और सभा के पुरुषों को प्रसन्न रखे और पक्षापात से रहित परमेश्वर के समान सदा न्याय करे। धार्मिक सभ्य पुरुषों की तीन सभा हों—

[**तुथस्त्वं स्वरिवर्तस्य पथान्तरिक्षं विपश्य**]

तास्वेका राजसभा=यया राजकार्याणि निष्पद्येरन् सर्वे विघ्ना निवर्त्तेरँश्च।

उनमें एक राजसभा हो जिससे सब राजकार्य सिद्ध हों तथा सब विघ्न दूर किये जायें।

[**सभायां सदस्यैः सहर्तस्य यथा प्रयतस्व**]

द्वितीया विद्यासभा—यया विद्याप्रचारः स्यादविद्या नश्येत्।

दूसरी विद्यासभा हो जिससे विद्या का प्रचार और अविद्या का नाश किया जाय।

[**चन्द्र दक्षिणा यूयमृतस्य धर्म्यं मार्गं वीत**]

तृतीया धर्मसभा—यया धर्मोन्नतिरधर्मेहानिश्च सततं भवेत्।

तीसरी धर्मसभा हो जिससे धर्म की उन्नति और अधर्म की हानि सदा करें।

सर्वे स्वात्मानं परमात्मानं समीक्ष्यान्यायमार्गात् पृथग् भूत्वा, धर्मं सेवित्वा, समयं पर्यालोच्य सत्यासत्य निर्णये प्रयतेरन् ॥ ७ । ४५ ॥

सब अपने आत्मा और परमात्मा को देखकर अन्याय के मार्ग से हटकर, धर्म का सेवन कर, समयानुसार सत्य और असत्य के निर्णय में प्रयत्न करें ॥ ७ । ४५ ॥

भाष्यसार—**तीन सभाओं द्वारा राज्य का शासन**—सभापति राजा अपने पुत्रों के समान प्रियभाव से सेना और प्रजा जनों को प्रसन्न रखे। जैसे परमात्मा सब पदार्थों का यथार्थ वेत्ता है वैसे सत्य और असत्य का यथार्थ वेत्ता बनकर पक्षपात रहित होकर परमेश्वर के समान सदा न्याय करे। इस न्याय व्यवस्था को चलाने के लिये धार्मिक सभ्य जनों की तीन सभाओं का निर्माण करेः—

१. **राजसभा**—इस राजसभा में ज्ञान-वृद्ध लोग हों। जिन का ज्ञान प्रचण्ड आदित्य के समान हो। जिससे वे सत्य के मार्ग पर चल कर नाशरहित, अन्तर्यामी स्वाभाविक ब्रह्म को अथवा विज्ञान को विविध प्रकार से देख सकें। अपने इस अद्भुत ब्रह्मज्ञान एवं विज्ञान से राजकार्यों को सिद्ध करें तथा राज कार्य में उपस्थित होने वाले विघ्नों का निवारण करें।

२. **विद्यासभा**—राजा विद्यासभा के सभ्य सदस्यों के साथ सत्य के मार्ग पर चलने का पूर्ण प्रयत्न करे। इस सभा के सदस्य यह प्रयत्न करें कि राज्य में विद्या का प्रचार और अविद्या का नाश हो।

३. **धर्मसभा**—राजा धर्मसभा के सदस्य विद्वानों का सुवर्ण आदि उत्तम पदार्थों की दक्षिणा से सत्कार करे। और विद्वान् लोग सदा सत्य धर्म के मार्ग पर चलें तथा ऐसा प्रयत्न करें कि जिससे धर्म की उन्नति और अधर्म की सदा हानि हो ॥ ७ । ४५ ॥ ●

आङ्गिरसः । **विद्वांसः**=स्पष्टम् । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

अथ दक्षिणा कस्मै कथं च दातव्येत्युपदिश्यते ॥

अब दक्षिणा किस को और क्यों देनी चाहिये, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

ब्राह्मणम॒द्य वि॑देयं पितृमन्तं॑ पैतृमत्यमृषि॑मार्षे॒यꣳ सु॒धातुद॑क्षिणम् ।

अ॒स्मद्रा॑ता देव॒त्रा ग॑च्छत प्रदा॒तार॒मावि॑शत ॥ ४६ ॥

पदार्थः—(**ब्राह्मणम्**) वेदेश्वरविदम् (**अद्य**) (**विदेयम्**) अत्र छान्दसो वर्णलोपो वा इति नलोपः (**पितृमन्तम्**) प्रशस्ताः पितरो=रक्षकाः सत्यासत्योपदेशकाः विद्यन्ते यस्य तमिव (**पैतृमत्यम्**) पितृमतां भावमेव (**ऋषिम्**) वेदार्थविज्ञापकम् (**आर्षेयम्**) ऋषीणामिदं योगजं विज्ञानं प्राप्तम् (**सुधातुदक्षिणम्**) शोभना धातवो दक्षिणा यस्य दातुस्तम् (**अस्मद्राताः**) येऽस्मभ्यं रान्ति=शुभान् गुणान् ददति ते (**देवत्रा**) देवेषु=पवित्रगुणकर्मस्वभावेषु वर्त्तमानाः (**गच्छत**) प्राप्नुत (**प्रदातारम्**) प्रकृष्टतया दानशीलम् (**आ**) समन्तात् (**विशत**) ॥ अयं मन्त्रः शत० ४ । ३ । ४ । १९—२४ व्याख्यातः ॥ ४६ ॥

प्रमाणार्थ—(**विदेयम्**) यहां 'छान्दसौ वर्ण लोपो वा' इससे न का लोप है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । ६ । ४ । १९–२४) में की गई है ॥ ७ । ४६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **प्रजासभासेना जनाः** ! यथाहमद्य **ब्राह्मणं** वेदेश्वर विदं **पितृमन्तं** प्रशस्ताः पितरः रक्षकाः सत्यासत्योपदेशका विद्यन्ते यस्य तमिव **पैतृमत्यं** पितृमतां भावमेव **ऋषिं** वेदार्थ विज्ञापकम् **आर्षेयम्** ऋषीणामिदं योगजं विज्ञानं प्राप्तं **सुधातु दक्षिणं** शोभना धातवो दक्षिणा यस्य दातुस्तं **प्रदातारं** प्रकृष्टतया दानशीलं **च विदेयं तथा अस्मद्राताः** येऽस्मभ्यं सन्ति शुभान् गुणान् ददति ते **सन्तो यूयं देवत्रा** देवेषु=पवित्र-गुणकर्मस्वभावेषु वर्त्तमानाः **गच्छत** प्राप्नुत **शुभान् गुणान् आ+विशत** (समन्ताद् विशत) ॥ ७ । ४६ ॥

भाषार्थ—हे प्रजा, सभा और सेना के पुरुषो ! जैसे मैं (**अद्य**) अब (**ब्राह्मणम्**) वेद और ईश्वर के वेत्ता को, (**पितृमन्तम्**) उत्तम रक्षक एवं सत्य और असत्य के उपदेशकों वाले पुरुष का, (**पैतृमत्यम्**) पितृमानों के गुणों को (**ऋषिम्**) वेदार्थ के बतलाने वाले को, (**आर्षेयम्**) ऋषियों के योगज विज्ञान को प्राप्त हुये पुरुष को (**सुधातु-दक्षिणम्**) उत्तम धातुओं की दक्षिणा देने वाले को, और (**प्रदातारम्**) अत्यन्त दानशील पुरुष को प्राप्त होता हूँ, वैसे (**अस्मद्राताः**) हमारे लिये शुभ गुणों के दाता होकर तुम लोग (**देवत्रा**) पवित्र गुण, कर्म स्वभावों में विराजमान होकर (**गच्छत**) हमें प्राप्त होओ और शुभ गुणों में (**आविशत**) सब ओर से प्रवेश करो ॥ ७ । ४६ ॥

[हे प्रजासभासेनाजनाः ! यथाऽहमद्य ... आर्षेयं ... विदेयम्]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ उत्साहितेन पुरुषेण किमाप्तुमशक्यमस्ति, को नाम खलु प्रयत्नेन विदुषः से वित्वार्षं योगविज्ञानं सधितुं न शक्नुयात् ।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ उत्साही पुरुष क्या प्राप्त नहीं कर सकता ? प्रयत्न से विद्वानों की सेवा करके आर्ष योगविज्ञान को कौन सिद्ध नहीं कर सकता ।

[यूयं ... शुभान् गुणानाविशत]

नहि कश्चिदपि विद्वान् सद्गुणस्वभावग्रहणाद् विरज्येत ।

कोई भी विद्वान् उत्तम गुण और स्वभाव के ग्रहण करने से विरक्त न हो ।

[सुधातुदक्षिणं प्रदातारं च विदेयम्]

नहि दातॄन् कार्पण्यं कदाचिदाविशत्यतो यै दक्षिणायां प्रशस्ताः पदार्थाः प्रदयन्ते तेषामतुला कीर्त्तिः कुतो न जायेत ॥ ७ । ४६ ॥

दाता जनों को कृपणता कभी नहीं आती। जो दक्षिणा में सुवर्ण आदि प्रशस्त पदार्थ देते हैं उनकी अतुल कीर्ति क्यों न हो ॥ ७ । ४६ ॥

भाष्यसार—**दक्षिणा किसको और क्यों दें**—सभापति राजा वेद और ईश्वर के जानने वाले ब्राह्मणों को, सत्य और असत्य का विवेकपूर्ण उपदेश करने वाले पितरों तथा पितृमानों को, पितृमत्ता से युक्त सज्जन पुरुषों को, वेदार्थ को समझाने वाले ऋषि जनों को, ऋषियों के योगज विज्ञान को प्राप्त करने वाले विद्वानों को सुवर्ण आदि प्रशस्त पदार्थों की दक्षिणा देवे और ऋषियों के योगज विज्ञान को भी प्राप्त करे। उत्साही पुरुष के लिये कुछ भी अप्राप्य नहीं है अतः उक्त विद्वानों की प्रयत्न-पूर्वक सेवा करके योगज विज्ञान को अवश्य सिद्ध करे। विद्वानों को दक्षिणा देने से कभी कृपणता (**टोटा**) नहीं आती किन्तु दक्षिणा में उत्तम सुवर्ण आदि पदार्थों के देने से अतुल कीर्ति बढ़ती है।

विद्वानों का कर्तव्य है कि वे जिन राजा आदि सत्पुरुषों से दक्षिणा प्राप्त करें उन्हें शुभ गुणों की शिक्षा देवें और स्वयं भी पवित्र गुण, कर्म स्वभावों में वर्तमान रहें, इन से विरक्त कभी न हों ॥ ७ । ४६ ॥

आङ्गिरसः । **वरुणः=वेद वेत्ताऽध्यापकः** । आद्यस्य भुरिक् प्राजापत्या, रुद्राय त्वेत्यस्य स्वराट् प्राजापत्या, जगती, बृहस्पते त्वेत्यस्य निचृदार्ची, जगतीः, जगती ! यमाय त्वेत्यस्य विराडार्ची जगत्यश्छन्दांसि । निषादः ॥

अथ कस्मै प्रयोजनाय दानं प्रतिग्रहणं च सेवितव्यमित्युपदिश्यते ॥

अब किस प्रयोजन के लिये दान और प्रतिग्रह का सेवन करना चाहिये, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

अग्नये त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्वमशीयायुर्दात्र ऽएधि मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे रुद्राय त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्वमशीय प्राणो दात्र ऽएधि वयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे बृहस्पतये त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्वमशीय त्वग्दात्र ऽएधि मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे यमाय त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्वमशीय हयो दात्र ऽएधि वयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे ॥ ४७ ॥

पदार्थः—(**अग्नये**) चतुर्विंशतिवर्षपर्यन्तम्ब्रह्मचर्य्यं संसेव्याग्निवत्तेजस्विभवाय (**त्वा**) वसुसंज्ञकमध्यापकम् (**मह्यम्**) (**वरुणः**) वरः=सर्वोत्तमः प्रशस्तविद्योऽनूचानो विद्वानध्यापकः (**ददातु**) (**सः**) विद्यार्थी (**अमृतत्वम्**) क्रियासिद्धं नित्यं विज्ञानम् (**अशीय**) प्राप्नुयाम् (**आयुः**) अधिकं जीवनम् (**दात्रे**) विद्यादानशीलाय वरुणाय (**एधि**) वर्धयिता भव (**मयः**) सुखम् । **मय इति सुखनामसु पठितम्** ॥ निघं० ३ । ६ ॥ (**मह्यम्**) विद्यार्थिने (**प्रतिग्रहीत्रे**) प्रतिग्रहकर्त्रे स्वस्तु (**रुद्राय**) चतुश्चत्वारिंशद्वर्षपर्यन्तम्ब्रह्मचर्य्य सुसेव्य रुद्रगुणधारणाय (**त्वा**) रुद्राख्यमध्यापकम् (**मह्यम्**) विद्यार्जनतत्पराय (**वरुणः**) वरगुणप्रदः (**ददातु**) (**सः**) (**अमृतत्वम्**) (**अशीय**) (**प्राणः**) योगसिद्धबलयुक्तः (**दात्रे**) (**एधि**) वर्धय (**वयः**) अवस्था-त्रये सुखभोगं जीवनम् (**मह्यम्**) विद्याग्रहणप्रवृत्ताय (**प्रतिग्रहीत्रे**) अध्यापकादागताया विद्यायाः संचेत्रे (**बृहस्पतये**) अष्टचत्वारिंशद्वर्षपयन्तं ब्रह्मचर्य्यं सेवित्वा बृहत्या=वेदविद्यावाचः पालकाय (**त्वा**) पूर्णविद्या-

ध्यापयितारम् (**मह्यम्**) पूर्णविद्यामभीप्सवे (**वरुणः**) (**ददातु**) (**सः**) (**अमृतत्वम्**) (**अशीय**) (**त्वक्**) स्पर्शेन्द्रियसुखम् (**दात्रे**) (**एधि**) (**मयः**) सुखविशेषम् (**मह्यम्**) (**प्रतिग्रहीत्रे**) (**यमाय**) गृहाश्रमजन्यविषयसेवनादुपरताय यमनियमादियुक्ताय (**त्वा**) सर्वदोषरहितमुपदेशकम् (**मह्यम्**) सत्या-सत्ययो निश्चयकरणशीलाय (**वरुणः**) सत्योपदेष्टाप्तः (**ददातु**) (**सः**) (**अमृतत्वम्**) (**अशीय**) (**हयः**) ज्ञानवर्द्धनम् । हिगति वृद्धयोरित्यस्मादौणादिकोऽसुन् प्रत्ययः (**दात्रे**) (**एधि**) (**वयः**) चिरजीवनसुखम् (**मह्यम्**) सर्ववृद्धि चिकीर्षवे (**प्रतिग्रहीत्रे**) ।। अयं मन्त्रः शत० ४ । ३ । ४ । २८--३१ व्याख्यातः ॥ ३७ ॥

प्रमाणार्थ—(मयः) यह शब्द निघं० (३ । ६) में सुखनामों में पढ़ा है । (हयः) यहाँ गति और वृद्धि अर्थ वाली 'हि' धातु से उणादि का 'असुन्' प्रत्यय है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । ३ । ४ । २८--३१) में की गई है ॥ ७ । ४७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **वसुसंज्ञकाध्यापक** ! **यस्मा अग्नये** चतुर्विंशतिवर्षपर्य्यन्तं ब्रह्मचर्य्यं संसेव्याग्निवत्तेजस्विभवाय **मह्यं त्वा** वसुसंज्ञकमध्यापकं **वरुणः** वरः=सर्वोत्तमः प्रशस्तविद्योऽनूचाना विद्वानध्यापकः **ददातु, सः** विद्यार्थी **अहं यदमृतत्वं** क्रियासिद्धं नित्यं विज्ञानम् **अशीय** प्राप्नुयां **तत्तस्मै दात्रे** विद्यादानशीलाय वरुणाय **आयुः**=**चिरजीवनम्** अधिक जीवनं **एधि** वर्धयिता भव, **प्रतिग्रहीत्रे** प्रतिग्रहकर्त्रे **मह्यं**=**शिष्याय** विद्यार्थिने **मयः** सुखं **च** ।

भाषार्थ—हे वसु नामक अध्यापक ! जिस (**अग्नये**) चौबीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य का सेवन कर अग्नि के समान तेजस्वी होने के लिये मुझे (**त्वा**) आप वसु नामक अध्यापक को (**वरुणः**) सब से उत्तम, प्रशंसनीय विद्या वाला अनूचान अध्यापक देवे, (**सः**) वह उक्त विद्यार्थी मैं जिस (**अमृतत्वम्**) क्रिया से सिद्ध नित्य विज्ञान को (**अशीय**) प्राप्त करूँ, वह उस (**दात्रे**) विद्या का दान करने वाले वरुण के लिये (**आयुः**) चिर आयु को (**एधि**) बढ़ाने वाला हो, और—(**प्रतिग्रहीत्रे**) विद्या को ग्रहण करने वाले (**मह्यम्**) मुझ शिष्य विद्यार्थी के लिये (**मयः**) सुख को बढ़ाने वाला हो ।

हे **रुद्रसंज्ञकाध्यापक** ! **यस्मै रुद्राय** चतुश्चत्वारिंशद्वर्षपर्य्यन्तं ब्रह्मचर्यं सुसेव्य रुद्रगुणधरणाय **मह्यं** विद्यार्ज्जनतत्पराय **त्वा** रुद्राख्यमध्यापकं **वरुणः** वरगुणप्रदः **ददातु, सोऽहं यदमृतत्वमशीय तत्तस्मै दात्रे वरुणाय प्राणः** योगसिद्धबलयुक्तः **त्वमेधि** वर्धय, **प्रतिग्रहीत्रे** अध्यापकादागताया विद्यायाः संचेत्रे **मह्यं** विद्याग्रहणे प्रवृत्ताय **वयः** अवस्थात्रये सुखभोगं जीवनं **च** ।

हे रुद्र नामक अध्यापक ! जिस (**रुद्राय**) चवालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य का सेवन करके रुद्र गुणों को धारण करने के लिये (**मह्यम्**) मुझ विद्यार्जन में तत्पर विद्यार्थी को (**त्वा**) आप रुद्र नामक अध्यापक को (**वरुणः**) श्रेष्ठ गुणों को देने वाला अध्यापक देवे, (**सः**) वह उक्त विद्यार्थी मैं जिस (**अमृतत्वम्**) विज्ञान को (**अशीय**) प्राप्त करूँ वह उस (**दात्रे**) विद्या-दान करने वाले वरुण के लिये (**प्राणः**) योग से प्राप्त बल से युक्त होकर तू (**एधि**) वृद्धि को प्राप्त हो और (**प्रतिग्रहीत्रे**) अध्यापक से प्राप्त विद्या का संचय करने वाले (**मह्यम्**) विद्या के ग्रहण में प्रवृत्त मुझ विद्यार्थी के लिये (**वयः**) तीनों अवस्थाओं में सुखभोग युक्त जीवन को बढ़ा ।

हे **आदित्यनामाध्यापक** ! **यस्मै बृहस्पतये** अष्ट-

हे आदित्य नामक अध्यापक ! जिस (**बृहस्पते**)

चत्वारिंशद्वर्षपर्यन्तं ब्रह्मचर्यं सेवित्वा बृहत्याः=वेदविद्यावाचः पालकाय **मह्यं** पूर्णविद्याममभीप्सवे **त्वा** पूर्णविद्याऽध्यापयितारं **वरुणो ददातु, सोऽहं यदमृतत्वम् अशीय तत्तस्मै दात्रे वरुणाये [त्वक्]**=त्वगिन्द्रियसुखं स्पर्शेन्द्रियसुखम् **त्वम् एधि, प्रतिग्रहीत्रे मह्यं** पूर्णविद्यामभीप्सवे **सुखं च,**

अड़तालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य का सेवन करके वेद-विद्या रूप वाणी के पालन (**मह्यम्**) मुझ पूर्ण विद्या के अभिलाषी को (**त्वा**) आप पूर्ण विद्या के अध्यापक को (**वरुणः**) श्रेष्ठ अध्यापक देवे, (**सः**) वह उक्त विद्यार्थी मैं जिस (**अमृतत्वम्**) विज्ञान को (**अशीय**) प्राप्त करूँ वह उस (**दात्रे**) विद्या-दान करने वाले वरुण के लिये [**त्वक्**] स्पर्श-इन्द्रिय के सुख को तू (**एधि**) बढ़ा और—

यस्मै [यमाय] जितेन्द्रिययमाय गृहाश्रमजन्य-विषयसेवनादुपरताय यमनियमादियुक्ताय **मह्यं** सत्यासत्ययोर्निश्चयकरणशीलाय **त्वा** सर्वदोषरहित मुपदेशकं **वरुणः** सत्योपदेष्टाऽऽप्तः **ददातु, सोऽहं यदमृतत्वमशीय तत्तस्मै दात्रे वरुणाय हयः**=ज्ञान-**वर्द्धनं त्वमेधि, प्रतिग्रहीत्रे मह्यं** सर्ववृद्धि चिकीर्षवे **वयः**=अवस्थात्रय **सुखं** चिरजीवनसुखं **च** ॥ ७ । ४७ ॥

(**प्रतिग्रहीत्रे**) विद्या ग्रहण करने वाले (**मह्यम्**) मुझ पूर्ण विद्या के अभिलाषी के लिये सुख को बढ़ावे। और—जिस [**यमाय**] गृहाश्रम सम्बन्धी विषयों के सेवन से उपरत यमनियम आदि से युक्त जितेन्द्रिय (**मह्यम्**) मुझ सत्य और असत्य के निश्चय करने वाले को (**त्वा**) आप सब दोषों से रहित उपदेष्टा आप्त पुरुष देवे, (**सः**) उक्त विद्यार्थी मैं जिस (**अमृतत्वम्**) विज्ञान को (**अशीय**) प्राप्त करूँ, वह उस (**दात्रे**) विद्या-दान करने वाले वरुण के लिये (**हयः**) ज्ञान की वृद्धि को तू (**एधि**) समृद्ध कर, और (**प्रतिग्रहीत्रे**) विद्या को ग्रहण करने वाले (**मह्यम्**) मुझ सबकी वृद्धि के इच्छुक के लिये (**वयः**) तीनों अवस्थाओं के सुख और चिर आयु को बढ़ा ॥ ७ । ४७ ॥

[हे वसुसंज्ञकाध्यापक ! यस्मा अग्नये मह्यं त्वा वरुणो ददातु]

भावार्थः—सर्वेषां जनानां योग्यमस्ति—यः सर्वोत्कृष्टोऽनूचानो विद्वान् भवेत्तस्य सकाशादितरानध्यापकान् परीक्ष्य स्व स्वकन्याः पुत्रान् तत्तत्सदृशादध्यापकात्पाठ्येयुः।

अध्येतारश्च स्व स्वबुद्धिं न्यूनाधिकां ज्ञात्वा स्व-स्वसदृशानध्यापकान् प्रीत्या सेवमानास्तेभ्यो नैरन्तर्येण विद्याग्रहणं कुर्युः ॥ ७ । ४७ ॥

भावार्थ—सब पुरुषों को योग्य है कि जो सब से उत्कृष्ट अनूचान विद्वान् हो उससे अन्य अध्यापकों की परीक्षा करके अपनी कन्या और पुत्रों को उनके सदृश अध्यापकों से शिक्षा दिलावें।

पढ़ने वाले छात्र अपनी अपनी बुद्धि को न्यून और अधिक जानकर अपने सदृश अध्यापकों की प्रीतिपूर्वक सेवा करके उनसे निरन्तर विद्या ग्रहण करें ॥ ७ । ४७ ॥

भाष्यसार—**दान देने और दक्षिणा लेने का प्रयोजन**—सर्वोत्तम, प्रशस्त विद्या वाले अनूचान विद्वान् अध्यापक लोग बालक को २४ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य का सेवन करके तेजस्वी बनने के लिये वसु अध्यापक की परीक्षा करके उसे सौंप देवें। वह बालक क्रियासिद्ध नित्य-विज्ञान को प्राप्त करें, जो विज्ञान विद्या का दान करने वाले अनूचान विद्वानों की आयु को बढ़ाने वाला है और विद्या ग्रहण करने वाले शिष्य के लिये सुख का हेतु है।

उक्त अनूचान विद्वान् लोग बालक को ४४ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य का सेवन करके रुद्र-गुणों को धारण करने के लिये रुद्र अध्यापक की परीक्षा करके उसे सौंप देवें। वह बालक क्रियासिद्ध नित्य-विज्ञान को प्राप्त करे जो विज्ञान विद्यादान करने वाले अनूचान विद्वानों के योगसिद्ध बल को बढ़ाने वाला है। और अध्यापक से प्राप्त विद्या का संचय करने वाले, विद्या ग्रहण में लगे हुये बालक के लिये तीनों अवस्थाओं में सुख और जीवन प्रदान करता है।

अनूचान विद्वान् लोग बालक को ४८ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य सेवन करके वेदवाणी का पालक (**बृहस्पति**) बनने के लिये आदित्य अध्यापक की परीक्षा करके उसे सौंप दें। वह बालक क्रियासिद्ध नित्य-ज्ञान को प्राप्त करें। जो विज्ञान विद्या का दान करने वाले अनूचान विद्वान् के स्पर्शेन्द्रिय के सुख को बढ़ाने वाला है और पूर्ण विद्या के अभिलाषी बालक के लिये सुख का हेतु है।

सत्य का उपदेश करने वाला आप्त विद्वान्, सब दोषों से रहित उपदेशक को, गृहाश्रम के विषयों के सेवन से उपरत (**वानप्रस्थ**) यम-नियम आदि का पालन करने वाले, सत्य-असत्य का निश्चय करने वाले मुझ वानप्रस्थ को देता है। सो मैंने जिस विज्ञान (**अमृत**) को प्राप्त किया है वह उक्त आप्त विद्वान् के लिये भी ज्ञानवर्द्धक है और सबकी वृद्धि चाहने वाले आप उपदेशक के लिये भी तीनों अवस्थाओं में सुख-दायक एवं चिरायु का हेतु है॥

इस मन्त्र में प्रतिपादित विज्ञान (**विद्या**) की प्राप्ति करने-कराने के लिये राजा आदि सत्पुरुष, विद्वानों के लिये सुवर्ण आदि उत्तम पदार्थों का दान करें और विद्वान् लोग इसी उद्देश्य से उक्त दान को दक्षिणा रूप में ग्रहण करें॥ ७। ४७॥ ●

आङ्गिरसः। **आत्मा**=**परमेश्वरः**। आर्ष्युष्णिक्। ऋषभः॥

अथेश्वरो जीवानुपदिशति॥

अब ईश्वर जीवों को उपदेश करता है॥

कोऽदात्कस्मा ऽ अदात्कामोऽदात्कामायादात्।
कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामैतत्ते॥ ४८॥

पदार्थः—(**कः**) (**अदात्**) कर्म्मफलानि ददाति (**कस्मै**) (**अदात्**) (**कामः**) कामयते यः परमेश्वरः (**अदात्**) ददाति (**कामाय**) कामयमानाय जीवाय (**अदात्**) ददाति (**कामः**) यः काम्यते सर्वैर्योगिभिः स परमेश्वरः (**दाता**) सर्वपदार्थप्रदायकः (**कामः**) जीवः (**प्रतिग्रहीता**) (**काम**) कामयते असौ तत्सम्बुद्धौ (**एतत्**) आज्ञापनम् (**ते**) त्वदर्थम्॥ **अयं मन्त्रः शत० ४। ३। ४। ३२ व्याख्यातः॥ ४८॥**

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४। ३। ४। ३२) में की गई है॥ ७। ४८॥

सपदार्थान्वयः—**कोऽदात्** कर्मफलानि ददाति, **कस्मा अदात्, कामः** कामयते यः परमेश्वरः **अदात्** ददाति, **कामाय** कामयमानाय जीवाय **अदात्** ददाति, **कामः** यः काम्यते सर्वैर्योगिभिः स परमेश्वरः **दाता** सर्वपदार्थदायकः **कामः** जीवः **प्रतिग्रहीता।**

भाषार्थ—[प्रश्न]—(क) कौन (**अदात्**) कर्म-फल देता है? (**कस्मै**) किसको (**अदात्**) कर्म-फल देता है? (**कामः**) कामना करने वाला परमेश्वर (**अदात्**) कर्म-फल देता है। (**कामाय**) कामना करने वाले जीव को (**अदात्**) कर्म-फल देता है। (**कामः**) सब योगी जनों से कामना करने योग्य

परमेश्वर (**दाता**) सब पदार्थों का दाता है और (**कामः**) जीव (**प्रतिग्रहीता**) उन्हें ग्रहण करने वाला है।

हे **काम=जीव** ! कामयते ऽसौ तत्सम्बुद्धौ **ते** त्वदर्थमेतद् आज्ञापनं **सर्वं** मयाऽऽज्ञप्तमिति त्व निश्चिनुहि ॥ ७ । ४८ ॥

हे (**काम**) कामना करने वाले जीव ! (**ते**) तेरे लिये (**एतद्**) यह सब आज्ञा मैंने दी है, ऐसा तू निश्चय जान ॥ ७ । ४८ ॥

[**कोऽदात्, कस्या अदात्, कामोऽदात्, कामायादात्, कामो दाता, कामः प्रतिग्रहीता**]

भावार्थः—अस्मिञ्जगति कर्मकर्त्तारो जीवः फलप्रदातेश्वरो ऽस्तीति विज्ञेयम् ।

भावार्थ—इस जगत् में कर्म करने वाले जीव और फल देने वाला ईश्वर है, ऐसा समझे।

[**हे काम=जीव ! ते=त्वदर्थमेतत्सर्वं मयाऽऽ ज्ञाप्तमिति त्वं निश्चिनुहि**]

न हि कामनया विना केनचित् चक्षुषो निमेषोन्मेषनङ्कर्त्तु शक्यते, तत्सर्वैर्मनुष्यैर्विचारेण धर्मस्यैव कामना कार्या; नेतरस्य चेतीश्वराज्ञा ऽस्ति । अत्राहमनुः—

कामना के बिना कोई चक्षु का निमेष (**मींचना**) उन्मेष (**खोलना**) भी नहीं कर सकता, अतः सब मनुष्य विचारपूर्वक धर्म की ही कामना करें; अधर्म की नहीं; यह ईश्वर की आज्ञा है। यहां मनु कहते हैं—

कामात्मता न प्रशस्ता न चैवेहास्त्यकामता ।
काम्योहि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः ॥
अकामस्य क्रिया काचिद् दृश्यते नेह कर्हिचित् ।
यद्याद्धि कुरुते किञ्चित्तेत्तत्कामस्य चेष्टितम् ॥

"**अर्थ**—अत्यन्त कामातुरता और निष्कामता किसी के लिये भी श्रेष्ठ नहीं, क्योंकि जो कामना न करे तो वेदों का ज्ञान और वेदविहित उत्तम कर्म किसी से न हो सकें ॥

मनुष्यों को निश्चय करना चाहिये कि निष्काम पुरुष में नेत्र का संकोच-विकास का होना भी सर्वथा असम्भव है इससे यह सिद्ध होता है कि जो जो कुछ भी करता है वह वह चेष्टा कामना के बिना नहीं है ॥" (**सत्यार्थ० समु० ३**) ॥ ७ । ४८ ॥

भाष्यसार—**ईश्वर का जीवों को उपदेश**—कर्मों का फल कौन देता है ? ईश्वर। किस को देता है ? जीव को। ईश्वर कैसा है ? जिस की सब योगी लोग कामना करते हैं ? सब पदार्थों को देने वाला कौन है ? ईश्वर। ग्रहण करने वाला कौन है ? जीव । इस प्रकार प्रश्न-उत्तर रूप में ईश्वर ने जीवों को उपदेश किया है कि कामना के बिना कोई चक्षु का निमेष-उन्मेष भी नहीं कर सकता। अतः मनुष्य विचारपूर्वक धर्म की ही कामना करे; अधर्म की नहीं। यह ईश्वर की आज्ञा है ॥ ७ । ४८ ॥

पूर्वापराध्यायसंगतिमाह—]

अस्मिन्नध्याये–बाह्याभ्यन्तरव्यवहारो, मनुष्याणां परस्परं वर्त्तमानमात्मकर्मात्मनि मनसः प्रवर्त्तनं, प्रथमकल्पाय योगिन ईश्वरोपदेशो जिज्ञासुं प्रति च, योगिकृत्यं, तल्लक्षणमध्याय कशिष्यकर्म, योगविद्याभ्यासिनां कृत्यं, योगेनान्तः करणशोधनं,

भाषार्थ—इस अध्याय में—बाहर भीतर का व्यवहार (१), मनुष्यों का परस्पर वर्ताव (२), आत्मा के कर्म (३), आत्मा में मन की प्रवृत्ति (४), प्रथम कल्प योगी के लिये ईश्वर का उपदेश (५), जिज्ञासु के प्रति ईश्वरोपदेश (६),

योगाभ्यासिलक्षणं, शिष्याध्यापकव्यवहारः, स्वामि सेवककृत्यं, न्यायाधीशेन प्रजारक्षण प्रकारो, राजसभ्यजनकृत्यं, राजोपदेशकरणं, राजभिः कार्यं, परीक्ष्य सेनापतिकरणं, पूर्णविद्यस्य सभापतित्वाधिकारो, विद्वत्कृत्यमीश्वरोपासकोपदेशो, यज्ञानुष्ठातुर्विषयः, प्रजादीन् प्रति सभापतेर्वर्त्तनं, राजप्रजाजनसत्कारो ऽध्यापकाध्येतॄणां परस्परं प्रवृत्तिः, प्रतिदिनं पठनविषयो विद्यावृद्धिकरणं राज्ञः कर्त्तव्यं कर्म सेनापतिकृत्यं, सभाध्यक्षादिक्रियेश्वरगुणवर्णनं, तत्प्रार्थना, शूरवीरैर्युद्धानुष्ठानं, सेनास्थपुरुषकृत्यं, ब्रह्मचर्यसेवनप्रकारः, ईश्वरस्य जीवान् प्रत्युप्तदेशश्चोक्तो ऽतएतदध्यायार्थस्योक्तषष्ठाध्यायार्थेन सह सङ्गतिरत्तीति बोध्यम् ॥ ७ ॥

योगी के कर्म (७), योगी का लक्षण (८), अध्यापक और शिष्य के कर्म (९-१०), योगविद्या के अभ्यासियों के कर्म (११), योग से अन्तःकरण की शुद्धि (१२), योगाभ्यासी का लक्षण (१३), शिष्य और अध्यापक का व्यवहार (१४), स्वामी और सेवक का कर्त्तव्य (१५), न्यायाधीश के द्वारा प्रजा की रक्षा का प्रकार (१८), राजा और सभ्य जनों का कर्त्तव्य (१९), राजा को उपदेश करना (२०), राजाओं के कार्य (२१), परीक्षा करके सेनापति बनाना (२२), पूर्ण विद्वान् को सभापति का अधिकार (२३), विद्वानों का कर्त्तव्य (२४), ईश्वर के उपासक के लिये उपदेश (२५), यज्ञानुष्ठाता का विषय (२६–२८), प्रजा आदि के प्रति सभापति का वर्त्ताव (२९–३०), राजा और प्रजा जनों का सत्कार (३१–३२), अध्यापक और अध्येताओं की परस्पर प्रवृत्ति (३३), प्रतिदिन अध्ययन एवं विद्या की वृद्धि (३४), राजा का कर्त्तव्य कर्म (३५, ३६), सेनापति का कर्त्तव्य (३७), सभाध्यक्ष आदि का कार्य (३८), ईश्वर के गुणों का वर्णन (३९–४२) ईश्वर प्रार्थना (४३), शूरवीर के द्वारा युद्धानुष्ठान (४४), सेना के पुरुषों का कर्त्तव्य (४५), ब्रह्मचर्य सेवन का प्रकार (४७), ईश्वर का जीवों के प्रति उपदेश है अतः इस अध्याय की उक्त षष्ठ अध्याय के अर्थ के साथ संगति है ॥ ७ ॥

इति श्रीयुतपण्डितसुदर्शनदेवाचार्यकृते दयानन्द-वेदभाष्य-भास्करे
सप्तमोऽध्यायः ॥

।। ओ३म् ।।

❋ अथाष्टमाध्यायस्यारम्भः ❋

अब आठवें अध्याय का आरम्भ किया जाता है ।।

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व ।। १ ।।

य० ३० । ३ ।।

आङ्गिरसः । **बृहस्पतिस्सोमः**=**विद्वान् ब्रह्मचारी** । आर्ची पंक्तिः । पञ्चमः ।।

तस्य प्रथममन्त्रेण गृहस्थधर्माय ब्रह्मचारिण्या कन्यया कुमारो ब्रह्मचारी स्वीकरणीय इत्युपदिश्यते ।।

उस के प्रथम मन्त्र से गृहस्थ धर्म के लिये ब्रह्मचारिणी कन्या को कुमार ब्रह्मचारी स्वीकार करना चाहिये, यह उपदेश किया है ।।

उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽस्यादि॒त्येभ्य॑स्त्वा ।
विष्ण॑ऽउरुगायै॒ष ते॒ सोम॒स्तꣳ र॑क्षस्व॒ मा त्वा॑ दभन् ।। १ ।।

पदार्थः—(**उपयामगृहीतः**) शास्त्रनियमोपनियमा गृहीता येन सः (**असि**) (**आदित्येभ्यः**) कृताष्टचत्वारिंशद्वर्षब्रह्मचर्य्येभ्यः पुंभ्यः (**त्वा**) त्वां सेविताष्टचत्वारिंशद्वर्षब्रह्मचर्यम् (**विष्णो**) सर्वशुभविद्या-गुणकर्मस्वभावव्याप्ताप्त ! (**उरुगाय**) उरुणि=बहूनि शास्त्राणि गायति=पठति तत्सम्बुद्धौ (**एषः**) प्रत्यक्षो गृहाश्रमः (**ते**) तव (**सोमः**) मृदुगुणवर्द्धकः (**तम्**) (**रक्षस्व**) मा (**निषेधे**) (**त्वा**) त्वाम् (**दभन्**) दभ्नवन्तु=हिंसन्तु । **अथ लोडर्थे लुङडभावश्च ।। अयं मन्त्रः शत० ४ । ३ । ५ । ६-८ व्याख्यातः ।। १ ।।**

प्रमाणार्थ—(**दभन्**) दभ्नवन्तु । यहाँ लोट् अर्थ में लुङ् लकार और अट् का अभाव है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । ३ । ५ । ६-८) में की गई है ।। ८ । १ ।।

सपदार्थान्वयः—**हे कुमारब्रह्मचारिन्! सेवितचतुर्विंशतिवर्षब्रह्मचर्या ब्रह्मचारिण्यहमादित्येभ्यः** कृताष्टचत्वारिंशद्वर्षब्रह्मचर्य्यभ्यः पुंभ्यः [**त्वा**]=त्वां सेविताष्ट चत्वारिंशद्वर्षब्रह्मचर्यम् **अङ्गीकरोमि, त्वमुपयामगृहीतः** शास्त्रनियमोपनियमा गृहीता येन सः **असि** ।

भावार्थ—हे कुमार ब्रह्मचारिन् ! चौबीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य का सेवन करने वाली मैं ब्रह्मचारिणी (**आदित्येभ्यः**) अड़तालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले पुरुषों में से [**त्वा**] अड़तालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य का सेवन करने वाले आपको स्वीकार करती हूँ क्योंकि आप (**उपयामगृहीतः**) शास्त्र के नियम-उपनियमों को

ग्रहण किये हुये (**असि**) हो।

हे **विष्णो** ! सर्वशुभविद्यागुणकर्मस्वभावव्याप्ताप्त **ते**=**तवैषः** प्रत्यक्षो गृहाश्रमा **सोमः** मृदुगुणवर्द्धकः **अस्ति तं त्वं** [**रक्षस्व**]=**रक्ष**।

हे (**विष्णो**) सब शुभ विद्या गुण, कर्म स्वभावों को व्याप्त करने वालों में आप्त आदित्य ब्रह्मचारिन् ! (**ते**) आपका (**एषः**) यह गृहाश्रम (**सोमः**) मृदु गुणों को बढ़ाने वाला है, उसकी आप [**रक्षस्व**] रक्षा करो।

हे उरुगाय ! उरुणि=बहूनि शास्त्राणि गायति-पठति तत्सम्बुद्धौ, **त्वां कामबाणा मा दभन्**=**मा हिंसन्तु** ॥ ८ । १ ॥

हे (**उरुगाय**) नाना शास्त्रों को पढ़ने वाले आदित्य ब्रह्मचारिन् ! आपको काम बाण (**मा दभन्**) पीड़ित न करें ॥ ८ । १ ॥

[हे कुमारब्रह्मचारिन् ! सेवितचतुर्विंशतिवर्षब्रह्मचर्या ब्रह्मचारिण्याहमादित्येभ्यः [त्वा]=त्वामङ्गीकरोमि, त्वमुपयामगृहीतोऽसि]

भावार्थः — सर्वासां सेवितब्रह्मचर्याणां युवतीनां कन्यानामिदमवश्यमभीप्सितव्यम्—ता स्वस्वसदृशरूपगुणकर्मस्वभावविद्यान् बलाधिकान् स्वाभीष्टान् हृद्यान् पतीन् स्वयंवरविधिनोरीकृत्य परिचरेयुः । एवं—ब्रह्मचारिभिरपि स्वतुल्ययुवत्यः स्त्रीत्वोङ्गीकर्त्तव्याः । एवं द्वाभ्यां सनातनो गृहस्थधर्मः पालनीयः ।

भावार्थ—ब्रह्मचर्य का सेवन की हुई सब युवती कन्याओं को ऐसी आकांक्षा अवश्य रखनी चाहिये कि वे अपने सदृश रूप, गुण, कर्म, स्वभाव और विद्या वाले, अपने से अधिक बलवान्, अपने अभीष्ट, हृदय को प्रिय लगने वाले पतियों, को स्वयंवर विधि से स्वीकार करके उनकी सेवा किया करें। इसी प्रकार कुमार ब्रह्मचारी भी अपने तुल्य युवतियों को स्त्री-रूप में स्वीकार करें। इस प्रकार दोनों स्त्री-पुरुष सनातन गृहस्थ धर्म का पालन करें।

[हे उरुगाय ! त्वां कामबाणा मा दभन्=हिंसन्तु]

परस्परमत्यन्तं विषयभोगलोलुपवीर्यक्षयाः कदाचिन्न विधेयाः । किन्तु—सदार्तुगामिनौ सन्तौ दशसन्तानानुत्पाद्य तान् सुशिक्ष्यैश्वर्यमुन्नीय प्रीत्या रमेताम् ।

परस्पर अत्यन्त विषयलोलुप होकर वीर्य का क्षय कभी न करें, किन्तु सदा ऋतुगामी होकर, दस सन्तान उत्पन्न करें और उन्हें सुशिक्षित कर ऐश्वर्य की उन्नति से प्रीतिपूर्वक गृहाश्रम में रमण करें।

[हे विष्णो ! ते=तवैष सोमोऽस्ति, तं त्वं [रक्षस्व]=रक्ष]

यथेतरेतरस्मिन्नप्रसन्नता वियोगसिव्यभिचारादयो दोषा न भवेयुः, तथानुष्ठाय परस्परं सर्वथा सर्वदा रक्षा कार्या ॥ ८ । १ ॥

जैसे—परस्पर अप्रसन्नता, वियोग तथा व्यभिचार आदि दोष उत्पन्न न हों वैसा आचरण करके परस्पर सब प्रकार से सदा रक्षा किया करें ॥ ८ । १ ॥

भाष्यसार—१. **गृहस्थ धर्म**—चौबीस वर्ष ब्रह्मचर्य का सेवन करके ब्रह्मचारिणी युवती कन्या अड़तालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य का सेवन करने वाले आदित्य ब्रह्मचारी को स्वयंवर विधि से पति स्वीकार करके उसकी परिचर्या (**सेवा**) किया करे। किन्तु वह उसके ही सदृश रूप, गुण, कर्म, स्वभाव और विद्या वाला हो। उससे अधिक बलवान हो। उसे अभीष्ट एवं हृदय को प्रिय लगने वाला हो। इसी

प्रकार उक्त कुमार ब्रह्मचारी भी अपने तुल्य युवती कन्या को स्त्रीरूप में स्वीकार करे। दोनों मिलकर सनातन गृहस्थधर्म का पालन करें।

सब शुभ विद्या, गुण, कर्म और स्वभावों से युक्त आप्त विद्वान् पति तथा पत्नी परस्पर अत्यन्त विषयभोग में लोलुप होकर वीर्य का क्षय न करें। सदा ऋतुगामी हों। सन्तानों को सुशिक्षित करें। ऐश्वर्य को बढ़ाकर प्रीतिपूर्वक गृहाश्रम में रमण करें। परस्पर अप्रसन्न न हों। वियोग और व्यभिचार आदि दोषों से दूर रहें। एक दूसरे की सब प्रकार सब काल से रक्षा किया करें।

२. **ब्रह्मचारिणी कन्या**—चौबीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य का सेवन करने वाली हो।

३. **कुमार ब्रह्मचारी**—सब शुभ विद्या, गुण, कर्म स्वभावों को प्राप्त होने से आप्त विद्वान् हो **(विष्णु)**। अड़तालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य का सेवन करने वाला हो **(आदित्य)**। सब शास्त्रों का वेत्ता हो **(उरुगाय)** ॥ ८ । १ ॥

आङ्गिरसः ॥ **गृहपतिर्मघवा**=**धनवान्गृहस्थी** । भुरिक् पंक्तिः । पञ्चमः ॥

पुनस्तमेवाह ॥

गृहस्थ धर्म का फिर उपदेश किया है ॥

कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे ।
उपोपेन्नु मघवन्भूय ऽ इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यतऽआदित्येभ्यस्त्वा ॥ २ ॥

पदार्थः—**(कदा)** कस्मिन् काले **(चन)** अपि **(स्तरीः)** स्वभावाच्छादकः संकुचितः **(असि)** भवसि **(न)** निषेधे **(इन्द्र)** परमैश्वर्य्यपते ! **(सश्चसि)** प्राप्नोषि । **सश्चतीति गतिकर्मसु पठितम् ॥ निघं०** २ । १४ ॥ **(दाशुषे)** दानशीलाय **(उपोप)** सामीप्ये । **उपर्य्यध्यधसः सामीप्ये ॥ अ०** ८ । १ । ७ ॥ इति द्वित्वम् **(इत्)** एव **(नु)** क्षिप्रम् । न्विति **क्षिप्रनामसु पठितम् ॥ निघं०** २ । १५ ॥ **(मघवन्)** प्रशंसितधनयुक्त **(भूयः)** अधिकम् **(इत)** एव **(नु)** शीघ्रम् **(ते)** तव **(दानम्)** **(देवस्य)** विदुषः **(पृच्यते)** संबध्यते **(आदित्येभ्यः)** मासेभ्य **(त्वा)** त्वां सुखदातारम् ॥ **अयं मन्त्रः शत०** ४ । ३ । ५ । १०—११ **व्याख्यातः ॥ २ ॥**

प्रमाणार्थ—**(सश्चसि)** 'सश्चति' पद निघं० (२ । १४) में गत्यर्थक क्रियाओं में पढ़ा है। **(उपोप)** यहां 'उपर्य्यध्यधसः सामीप्ये' (अ० ८ । १ । ७) इस सूत्र से द्वित्व है। **(नु)** यह शब्द निघं० (२ । १५) में क्षिप्र-नामों में पढ़ा है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । ३ । ५ । १०–११) में की गई है ॥ ८ । २ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **इन्द्र**=**परमैश्वर्ययुक्तपते** ! **यतस्त्वं कदा** कस्मिन् काले **चन** अपि **स्तरीः** स्वभावाच्छादकः संकुचितः **न**+**असि** भवसि, **तस्माद् दाशुषे** दानशीलाय **इत** एव **नु** क्षिप्रम् **उपोप**+**सश्चसि** समीपं प्राप्नोषि।

हे मघवन् ! प्रशंसित-धनयुक्त ! **देवस्य** विदुषः **ते**=**तव यद् दानमित्** एव **नु** शीघ्रं **भूयः** अधिकं **पृच्यते** सम्बध्यते, **अतोऽहं स्त्रीत्वेनादित्येभ्यः** मासेभ्यः

भाषार्थ—हे **(इन्द्र)** परम ऐश्वर्य से युक्त पते ! क्योंकि आप **(कदा)** कभी **(चन)** भी **(स्तरीः)** स्वभाव को छुपाने वाले छली, कपटी एवं संकोची **(न)** नहीं **(असि)** हो, इसलिये **(दाशुषे)** दानशील के **(इत्)** ही **(नु)** शीघ्र **(उपोप**+**सश्चसि)** समीप पहुँच जाते हो।

हे **(मघवन्)** प्रशंसनीय धन से युक्त पते ! **(देवस्य)** आप विद्वान् का जो दान है वह **(इत्)** ही **(नु)** शीघ्र **(भूयः)** अधिकता से **(पृच्यते)** सम्बद्ध

सदा सुख प्रापकं त्वा=त्वां त्वां सुखदातारम् आश्रये ॥ ८ । २ ॥

होता है इसलिये मैं स्त्री-भाव से (आदित्येभ्यः) बारह महीनों [सदा] के लिये (त्वा) सुख पहुँचाने वाले आप को मैं आश्रय ग्रहण करती हूँ ॥ ८ । २ ॥

[हे इन्द्र=परमैश्वर्ययुक्तपते ! यतस्त्वं कदाचन स्तरीर्नासि, तस्माद् दाशुष इन्नूपोपसश्चसि,…… अतोऽहं स्त्रीत्वेनादित्येभ्यः सदा सुखप्रापकं त्वा=त्वामाश्रये]

भावार्थः—विवाहकामनया युवत्या स्त्रिया यश्छलकपटाचरणरहितः, सत्यभावप्रकाशक, एक-स्त्रीव्रतो, जितेन्द्रिय, उद्योगी, धार्मिको, दाता, विद्वान् भवेत् तमुपयम्य निरन्तरमानन्दितव्यम् ॥ ८ । २ ॥

भावार्थ—विवाह की कामना वाली युवती स्त्री को उचित है कि वह छल-कपट के आचरण से रहित, सत्य भावों का प्रकाशक, एक स्त्री का व्रती, जितेन्द्रिय, पुरुषार्थी, धार्मिक, दानशील और विद्वान् हो उसके साथ विवाह करके सदा आनन्द में रहे ॥ ८ । २ ॥

भा० पदार्थः—स्तरीः=छली, कपटी ।

भाष्यसार—१. **गृहस्थ-धर्म**—विवाह की कामना करने वाली युवती स्त्री को उचित है कि वह इन्द्र अर्थात् परम ऐश्वर्य से युक्त, अपने स्वभाव को न छुपाने वाला अर्थात् छल-कपट के आचरण से रहित, सत्य भावों को प्रकाशित करने वाले, एक स्त्री के व्रती, जितेन्द्रिय, पुरुषार्थी, धार्मिक, प्रशंसित, धनवान्, दानशील, विद्वान् हो उसके साथ विवाह करके सदा आनन्द में रहे ॥

२. **पति**—परम ऐश्वर्य से युक्त हो (**इन्द्र**) । प्रशंसित धन से युक्त हो (मघवा) ॥ ८ । २ ॥

आङ्गिरसः । **आदित्यो गृहपतिः=विद्यावान् गृहस्थः** । निचृदार्षी पंक्तिः । पञ्चमः ॥

पुनर्गृहस्थधर्ममाह ॥

गृहस्थ धर्म का फिर उपदेश किया है ॥

कृदा चन प्रयुच्छस्युभे निपासि जन्मनी ।
तुरीयादित्य सवनं त ऽ इन्द्रियमातस्थावमृतं दिव्यादित्येभ्यस्त्वा ॥ ३ ॥

पदार्थः—(**कदा**) (**चन**) (**प्र**) (**युच्छसि**) अत्यन्तं प्रमाद्यसि (**उभे**) द्वे (**नि**) नितराम् (**पासि**) (**जन्मनी**) वर्त्तमानं प्राप्स्यमानं च (**तुरीय**) चतुर्थवत् । अत्र अर्श आदित्वादच् (**आदित्य**) विद्यया सूर्य्य इव प्रकाशमान ! (**सवनम्**) सवति=प्रसूयतेऽनेन तत् (**ते**) तव (**इन्द्रियम्**) मनआदिकार्य्यसाधकम् (**आ**) (**तस्थौ**) (**अमृतम्**) मरणधर्म्मरहितम् (**दिवि**) द्योतनात्मके व्यवहारे (**आदित्येभ्यः**) संवत्सरेभ्यः (**त्वा**) त्वां दृढेन्द्रियम् ॥ अयं मन्त्रः शत० ४ । ३ । ५ । १२ व्याख्यातः ॥ ३ ॥

प्रमाणार्थ—(**तुरीय**) यहाँ 'अर्श आदिभ्योऽच्' [५ । २ । १२७] इस सूत्र से 'अच्' प्रत्यय है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । ३ । ५ । १२) में की गई है ॥ ८ । ३ ॥

सपदार्थान्वयः— अत्र नेत्यध्याहार्य्यम् ।

भाषार्थ—इस मन्त्र में 'न' पद का अध्याहार आकांक्षा से करना योग्य है ।

हे पते ! त्वं यदि कदाचन न प्रयुच्छसि अत्यन्तं न प्रमाद्यसि **तर्हि स्वकीये उभे** द्वे **जन्मनी** वर्तमानं प्राप्स्यमानं च **नि+पासि** नितरां पासि ।

हे पते ! आप यदि (**कदाचन्**) कभी भी (**न प्रयुच्छसि**) अत्यन्त प्रमाद नहीं करते हो तो अपने (**उभे**) दोनों (**जन्मनी**) वर्तमान और आगामी दोनों जन्मों की (**नि+पासि**) सर्वथा रक्षा करते हो ।

हे आदित्य ! विद्यया सूर्य्य इव प्रकाशमान, **यदि ते**=**तव सवनं** सवति=प्रसूयतेऽनेन तत् **इन्द्रियं** मनआदिकार्य्यसाधकम् **आतस्थौ, तर्हि दिवि** द्योतनात्मके व्यवहारे **अमृतं** मरणधर्मरहितं **प्राप्नुयाः** ।

हे (**आदित्य**) विद्या से सूर्य के समान प्रकाशमान पते ! यदि (**ते**) आपकी (**सवनम्**) उत्पत्ति का साधन उपस्थेन्द्रिय एवं (**इन्द्रियम्**) मन आदि कार्य साधक इन्द्रियाँ (**आतस्थौ**) वश में हैं तो आप (**दिवि**) विद्या के प्रकाशात्मक व्यवहार में (**अमृतम्**) अविनाशी परम सुख को प्राप्त करो ।

हे तुरीय ! चतुर्थवत् **आदित्येभ्यः** संवत्सरेभ्यः **त्वा**=**त्वां** त्वां दृढेन्द्रियम् **अहमुपयच्छे** ॥ ८ । ३ ॥

हे (**तुरीय**) संन्यासी के समान संयमी पते ! मैं (**आदित्येभ्यः**) सदा के लिये (**त्वा**) दृढ़ इन्द्रिय वाले आपको मैं पति स्वीकार करती हूँ ॥ ८ । ३ ॥

[**हे पते ! त्वं यदि कदाचन न प्रयुच्छसि तर्हि स्वकीये उभे जन्मनी निपासि**]

भावार्थः—यः प्रमादी विवाहितां स्त्रियं त्यक्त्वा परस्त्रियं सेवते स इहामुत्र च दुर्भगो भवति ।

भावार्थ—जो प्रमादी पुरुष विवाहित स्त्री को छोड़ कर परस्त्री का सेवन करता है वह इस लोक और परलोक में दुर्भागी होता है ।

[**हे आदित्य ! यदि ते=तव सवनमिन्द्रियमातस्थौ तर्हि दिव्यमृतं प्राप्नुयाः**]

यश्च संयमी, स्वस्त्रीसेवी, त्यक्तपरस्त्रीः स उभयत्र परमं सुखं कथं न भुञ्जीत ।

और—जो संयमी, अपनी स्त्री का सेवन करने वाली, परस्त्री-त्यागी होता है वह इस लोक और परलोक में परम सुख का भोगने वाला होता है।

[**हे तुरीय ! आदित्येभ्यस्त्वा=त्वामहमुपयच्छे**]

अतः सर्वासां स्त्रीणां योग्यतास्ति—जितेन्द्रियान् पतीन् सेवेरन्निति ॥ ८ । ३ ॥

इसलिये सब स्त्रियों को योग्य है कि वे जितेन्द्रिय पतियों का सेवन करें ॥ ८ । ३ ॥

भाष्यसार—**१. गृहस्थ-धर्म**—जो पुरुष प्रमादी होकर अपनी विवाहित स्त्री को छोड़कर परस्त्री का सङ्ग करता है उसके दोनों जन्म बिगड़ जाते हैं अर्थात् वह इस लोक और परलोक में भी दुरवस्था को प्राप्त होता है । और जो विद्या से सूर्य के समान प्रकाशमान होकर जननेन्द्रिय तथा कार्य-साधक मन आदि इन्द्रियों को स्थिर करके अर्थात् संयमी, स्वस्त्री का सेवन करने वाला, परस्त्री त्यागी होकर गृहाश्रम के व्यवहार में प्रवृत्त होता है वह दोनों लोकों में अमृत अर्थात् परम सुख का उपभोग करता है । इसलिये सब स्त्रियों को योग्य है कि वे तुरीयाश्रमी=सन्यासी के समान संयमी, जितेन्द्रिय, दृढ़ेन्द्रिय पुरुषों को ही पति रूप में स्वीकार करके उनका सेवन करें ॥

२. पति—अप्रमादी, संयमी, स्वस्त्रीसेवी, परस्त्री त्यागी हो । विद्या से सूर्य के समान प्रकाशमान हो (**आदित्य**) । तुरीयाश्रमी संन्यासी के समान जितेन्द्रिय हो (**तुरीय**) । दृढ़-इन्द्रिय वाला हो ॥ ८ । ३ ॥

कुत्सः । **आदित्यो गृहपतिः**=विद्यावान् गृहस्थः ॥ निचृज्जगती । निषादः ॥

पुनर्गृहाश्रमविषयमाह ॥

गृहाश्रम विषय का फिर उपदेश किया है ॥

यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृडयन्तः ।
आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादꣳहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासदादित्येभ्यस्त्वा ॥ ४ ॥

पदार्थः—(**यज्ञः**) स्त्रीपुरुषाभ्यां सङ्गमनीयः (**देवानाम्**) विदुषाम् (**प्रति**) प्रतीतम् (**एति**) प्रापयति (**सुम्नम्**) सुखम् । सुम्नमिति सुखनामसु पठितम् ॥ निघं० ३ । ६ ॥ (**आदित्यासः**) आदित्यवद्विद्यादिशुभगुणैः प्रकाशमानाः (**भवत**) (**मृडयन्तः**) सर्वान् सुखयन्तः (**आ**) (**वः**) युष्माकम् (**अर्वाची**) सुशिक्षाविद्याभ्यासात्पश्चाद्विज्ञानमञ्चति=प्राप्नोत्यनया सा (**सुमतिः**) शोभना चाऽसौ मतिः (**ववृत्यात्**) वर्त्तताम् । अत्र बहुलं छन्दसि ॥ अ० २ । ४ । ७६ ॥ इति शपः श्लुर्व्यत्ययेन परस्मैपदञ्च (**अंहोः**) सुखप्रापकस्य गृहाश्रमस्याऽनुष्ठानस्य (**चित्**) अपि (**या**) (**वरिवोवित्तरा**) वरिवः=सत्यं व्यवहारं वेत्यनया साऽतिशयिता (**असत्**) भवेत् । लेट्प्रयोगोऽयम् (**आदित्येभ्यः**) सर्वेभ्यो मासेभ्यः (**त्वा**) त्वाम् ॥ अयं मन्त्रः शत० ४ । ३ । ५ । १५ व्याख्यातः ॥ ४ ॥

प्रमाणार्थ—(**सुम्नम्**) यह शब्द निघं० (३ । ६) में सुख-नामों में पढ़ा है । (**ववृत्यात्**) वर्त्तताम् । यहां 'बहुलं छन्दसि' (अ० २ । ४ । ७६) इस सूत्र से 'शप्' को श्लु और व्यत्यय से परस्मैपद है । (**असत्**) भवेत् । यह लेट् लकार का प्रयोग है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । ३ । ५ । १५) में की गई है ॥ ८ । ४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे आदित्यासः आदित्यवद्विद्यादिशुभगुणैः प्रकाशमानाः **यूयं देवानां** विदुषां **वः**=युष्माकं **यो गृहाश्रमाख्यो यज्ञः** स्त्रीपुरुषाभ्यां संगमनीयः **सुम्नं** सुखं **प्रति-एति** प्रतीतं प्रापयति, या-अंहोः सुखप्रापकस्य गृहाश्रमस्यानुष्ठानस्य **वरिवोवित्तरा** वरिवः=सत्यं व्यवहारं वेत्त्यनया साऽतिशयिता **सुमतिः** शोभना चासौ मतिः **आववृत्यात्** वर्त्तताम् ।

या त्वा त्वाम् **आदित्येभ्यः** सर्वेभ्यो मासेभ्यः **प्राप्तोत्तम विद्या शिक्षाऽसत्** भवेत् **तया चित्** अपि **युक्त्या वा वां सदा मृडयन्तः** सर्वान् सुखपन्तः **भवत** ॥ ८ । ४॥

भाषार्थ—हे (**आदित्यासः**) सूर्य के समान विद्यादि शुभ गुणों से प्रकाशमान विद्वानो ! आप लोग और (**वः**) आप (**देवानाम्**) विद्वानों का जो गृहाश्रम नामक (**यज्ञः**) स्त्री-पुरुष के द्वारा प्राप्त करने योग्य जो यज्ञ है वह (**सुम्नम्**) सुख को (**प्रति+एति**) प्राप्त कराता है । और जो (**अंहोः**) सुखदायक गृहाश्रम के व्यवहार की (**वरिवोवित्तरा**) सत्य व्यवहार को जानने का अत्युत्तम साधन रूप (**सुमतिः**) श्रेष्ठ बुद्धि है वह (**आववृत्यात्**) सदा वर्तमान रहे । और—

जो (**त्वा**) आपको (**आदित्येभ्यः**) सब महीनों से सम्बन्धित उत्तम विद्या और शिक्षा प्राप्त (**असत्**) है उससे (**चित्**) भी अथवा युक्ति से (**वाम्**) स्त्री-पुरुष को सदा (**मृडयन्तः**) सुखी रखो ॥ ८ । ४ ॥

[हे आदित्यासः! यूयं देवानां वः=युष्माकं यो गृहाश्रमाख्यो यज्ञः सुम्नं प्रत्येति, या……सुमतिराववृत्यात्, या त्वादित्येभ्यः प्राप्तोत्तमविद्यासुशिक्षाऽसत् तया सदा मृडयन्तो भवत]

भावार्थः—विवाहं कृत्वा स्त्रीपुरुषाभ्यामा-

भावार्थ—स्त्री पुरुषों को चाहिये कि वे

प्तानां विदुषां संगाद्येन येन कर्मणा विद्यासुशिक्षा बुद्धिवर्द्धनं सौहार्दं परोपकारश्च वर्द्धेत, तत्तदनुष्ठेयमिति ॥ ८ । ४ ॥

विवाह करके आप्त विद्वानों के संग से, जिस-जिस कर्म से विद्या, सुशिक्षा, बुद्धि, मित्रता और परोपकार की वृद्धि हो वैसा आचरण करें ॥ ८ । ४ ॥

भावार्थ—१. **गृहाश्रम**—सूर्य के समान विद्या आदि गुणों से प्रकाशमान गृहस्थ लोग आप्त विद्वानों के संग से सुखदायक गृहाश्रम रूप यज्ञ का अनुष्ठान करें। सुख के प्रापक गृहाश्रम के सत्य व्यवहार को जनानी वाली सुमति=विद्या और सुशिक्षा हैं। और जो उत्तम विद्या और शिक्षा प्राप्त हो उससे तथा अपनी युक्ति से भी सबको सुखी करो। गृहाश्रम रूप यज्ञ से विद्या, सुशिक्षा, बुद्धि, मित्रता और परोपकार को बढ़ाओ ॥

२. गृहपति लोग विद्या आदि शुभ गुणों से सूर्य के समान प्रकाशमान रहें (**आदित्य**) । ८ । ४ ॥

विवस्वन्नित्यस्य कुत्सः । **गृहपतयः**=गृहस्थाः ॥ आद्यस्य प्राजापत्याऽनुष्टुप् । गान्धारः । अदित्युत्तरस्य निचृदार्षी जगती । निषादः ॥

पुनरपि गृहस्थधर्म्ममाह ॥

गृहस्थ धर्म का फिर उपदेश किया है ॥

विवस्वन्नादित्यैष ते सोमपीथस्तस्मिन् मत्स्व ।
श्रदस्मै नरो वचसे दधातन यदाशीर्दा दम्पती वाममश्नुतः ।
पुमान् पुत्रो जायते विन्दते वस्वधा विश्वाहारप ऽएधते गृहे ॥ ५ ॥

पदार्थः—(**विवस्वन्**) विविधे स्थाने वसति तत्संबुद्धौ (**आदित्य**) अविनाशिस्वरूप विद्वान्! (**एषः**) गृहाश्रमः (**ते**) तव (**सोमपीथः**) सोमः पीयते यस्मिन् सः (**तस्मिन्**) गृहाश्रमे (**मत्स्व**) आनन्दितो भव (**श्रत्**) सत्यम् । श्रत् इति सत्यनामसु पठितम् ॥ निघं० ३ । १० ॥ (**अस्मै**) (**नरः**) ये नयन्ति तत्सम्बुद्धौ (**वचसे**) गृहाश्रमवाग्व्यहाराय (**दधातन**) धरत । (**यत्**) यस्मिन् । सुपां सुलुक् ॥ अ० ७ । १ । ३९ ॥ इति सुपोलुक् (**आशीर्दा**) आशीरिच्छां ददाति सः (**दम्पती**) जायापती (**वामम्**) प्रशस्यं गृहाश्रम धर्मम् । वाम इति प्रशस्यनामसु पठितम् ॥ निघं० ३ । ८ ॥ (**अश्नुतः**) व्याप्नुतः (**पुमान्**) (**पुत्रः**) पुन्नाम्नो वृद्धावस्थाजन्यदुःखात् त्रायते सः । अत्राह मनुः पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात् त्रायते पितरं सुतः । तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयंभुवा ॥ अ० ९ श्लो० १३८ ॥ (**जायते**) उत्पद्यते (**विन्दते**) लभते (**वसु**) धनम् (**अधा**) अधेत्यनन्तरे । अत्र पृषोदरादित्वात् थस्य धः । निपातस्य च ॥ अ० ६ । ३ । १३६ ॥ इति दीर्घः (**विश्वाहा**) बहूनि च तान्यहानि च । अत्र शेश्छन्दसि बहुलम् ॥ अ० ६ । १ । ७० ॥ इति लुक् ॥ विश्वमिति बहुनामसु पठितम् । निघं० ३ । १ ॥ (**अरपः**) निष्पापः (**एधते**) वर्द्धते (**गृहे**) ॥ अयं मन्त्रः शत० ४ । ३ । ५ । १६—२४ तथा ४ । ४ । ४ । १—५ व्याख्यातः ॥ ५ ॥

प्रमाणार्थ—(**श्रत्**) 'श्रत्' शब्द (**निघं० ३–१०**) में सत्य-नामों में पढ़ा है । (**यत्**) यहां 'सुपां सुलुक०' (**अ०** ७ । १ । ३९) सूत्र से सुप् का लुक् हुआ है । (**वामम्**) 'वाम' शब्द (**निघं० ३ । ८**) में प्रशस्य-नामों में पढ़ा है। (**अधा**) यहां 'पृसोदरादि मानकर धकार के स्थान पर धकार हो गया। और 'निपातस्य च' (**अ०** ६ । ३ । १३६) सूत्र से दीर्घ हुआ है। (**विश्वाहा**) यहाँ 'शेश्छन्दसि बहुलम्' (**अ०** ६ । १ । ७०) सूत्र से शि प्रत्यय का लुक् (**अदर्शन**) हुआ है। और विश्व शब्द (**निघं०** ३ । १) में बहुवाचक

शब्दों में पढ़ा है। इस मन्त्र की व्याख्या (**शत**० ४। ३। ५। १६—२४ **तथा** ४। ४। ४। १-५) में की है। पुत्र शब्द का अर्थ मनुस्मृति (**अ**० ६ श्लो० १३८) में इस प्रकार किया है:—

क्योंकि पुम् नामक नरक (**वृद्धावस्थाजन्यदुःखादि**) से पितादि की रक्षा करता है इसलिये सन्तान को स्वयंभू मनु ने स्वयं पुत्र कहा है।

सपदार्थान्वयः—हे **विवस्वन** विविधे स्थाने वसति तत्सम्बुद्धौ **आदित्य** अविनाशिस्वरूप विद्वन्! **गृहिन्**! **एषः** गृहाश्रमः **ते**=**तव सोमपीथः** सोमः पीयते यस्मिन् सः **गृहाश्रमो ऽस्ति तस्मिन्** गृहाश्रमे **त्वं विश्वाहा** बहूनि च तान्यहानि च **मत्स्व** =**हर्षितो भव** आनन्दितो भव।

हे [**नरः**]=**नराः** ये नयन्ति तत्सम्बुद्धौ **गृहाश्रमस्था यूयमस्मै वचसे** गृहाश्रमवाग्व्यवहाराय **श्रत्** सत्यं **दधातन** धरत।

यद=**यस्मिन् गृहे दम्पती** जायापती **वामं** प्रशस्यं गृहाश्रमं धर्मम् **अश्नुतः** व्याप्नुतः **तस्मिन्** गृहाश्रमे **आशीर्दा** आशोरिच्छां ददाति सः **अरपः** निष्पापः **पुमान् पुत्रः** पुन्नाम्नो वृद्धावस्थाजन्यदुःखात् त्रायेत सः **जायते** उत्पद्यते, **वसु** धनं **विन्दते** लभते **एधते** वर्द्धते **च** ॥ ८। ५॥

भाषार्थ—हे (**विवस्वन्**) विविध प्रकार के स्थान में रहने वाले (**आदित्य**) अविनाशी स्वरूप विद्वान् गृहस्थ! (**एषः**) यह (**ते**) तेरा (**सोमपीथः**) जो सोमपान का स्थान गृहाश्रम है (**तस्मिन्**) उस गृहाश्रम में तू (**विश्वाहा**) बहुत दिन तक (**मत्स्व**) हर्षित एवं आनन्दित रह।

हे [**नरः**] गृहस्थ धर्म को प्राप्त करने वाले गृहस्थ लोगो! तुम (**अस्मै**) इस (**वचसे**) गृहाश्रम सम्बन्धी वाग्व्यवहार के लिये (**श्रत्**) सत्य को (**दधातन्**) धारण करो।

(**यद्**) जिस घर में (**दम्पती**) स्त्री-पुरुष (**वामम्**) प्रशंसनीय गृहाश्रम धर्म को (**अश्नुतः**) प्राप्त होते हैं (**तस्मिन्**) उस घर में (**आशीर्दाः**) इच्छा पूरी करने वाला (**अरपः**) निष्पाप (**पुमान्**) पुल्लिङ्ग (**पुत्रः**) वृद्धावस्था के दुःख रूप नरक से रक्षा करने वाला पुत्र (**जायते**) उत्पन्न होता है, (**वसु**) धन (**विन्दते**) प्राप्त होता है और (**एधते**) धन बढ़ता है॥ ८। ५॥

[हे···**गृहिन्**! **एष ते**=**तव सोमपीथो गृहाश्रमोऽस्ति** तस्मिंस्त्वं विश्वाहा मत्स्व=हर्षितो भव,
हे [नरः]=**नरा···यूयमस्मै वचसे श्रद्दधातन, यद्**=यस्मिन् गृहे दम्पती वाममश्नुतस्तस्मि-
न्नाशीर्दा अरपः पुमान् पुत्रो जायते, वसु विन्दते, एधते च]

भावार्थः—स्त्रीपुंसौ सुप्रेम्णा परस्परपरीक्षापूर्वकं स्वयंवरोदवाहं विधाय, सत्याचरणेन सन्तानानुत्पाद्य, महदैश्वर्यं लब्ध्वा, सुखं नित्यमुन्नीयेताम्॥ ८। ५॥

भावार्थ—स्त्री-पुरुष अति प्रेम से परस्पर परीक्षापूर्वक स्वयं विवाह करके, सत्याचरण से सन्तानों को उत्पन्न कर महान् ऐश्वर्य की प्राप्ति कर, नित्य सुख को बढ़ाया करें॥ ८। ५॥

भाष्यसार—**गृहस्थ-धर्म**—यह गृहाश्रम गृहपति के लिये सोमपान करने का स्थान है अतः गृहपति सदा इस गृहाश्रम में आनन्दित रहे। गृहस्थों का धर्म यह है कि वे गृहाश्रम सम्बन्धी वाग्व्यवहार में सदा सत्य को धारण करें, मिथ्याभाषण कभी न करें। जिस घर में स्त्री-पुरुष दोनों मिलकर इस सत्यभाषण रूप प्रशस्त गृहाश्रम धर्म का पालन करते हैं उस घर में माता-पिता की इच्छा को पूर्ण करने वाले आज्ञाकारी धर्मात्मा (**निष्पाप**) पुत्र उत्पन्न होते हैं जो माता-पिता की वृद्धावस्था से उत्पन्न दुःख (**नरक**) से रक्षा करते हैं। उन्हें महान् ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। उनका ऐश्वर्य बढ़ता है। वे नित्य सुख को बढ़ाते हैं॥ ८। ५॥

भरद्वाजः । **गृहपतयः**=गृहस्थाः ॥ निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनश्च गृहाश्रमिणा कथं प्रयतितव्यमित्युपदिश्यते ॥

फिर गृहस्थों को किस प्रकार प्रयत्न करना चाहिये, इस विषय का उपदेश किया है ॥

वाममद्य सवितर्वाममु श्वो दिवेदिवे वाममस्मभ्यꣳ सावीः ।
वामस्य हि क्षयस्य देव भूरेरया धिया वामभाजः स्याम ॥ ६ ॥

पदार्थः—(**वामम्**) प्रशस्यं सुखम् (**अद्य**) अस्मिन्नहनि (**सवितः**) सर्वस्यैश्वर्यस्य प्रसवितरीश्वर ! (**वामम्**) (**उ**) वितर्के (**श्वः**) परस्मिन् दिने (**दिवेदिवे**) प्रतिदिनम् (**वामम्**) (**अस्मभ्यम्**) (**सावीः**) सव । अत्र लोडर्थे लुङडभावश्च (**वामस्य**) अत्युत्कृष्टस्य (**हि**) खलु (**क्षयस्य**) गृहस्य (**देव**) सुखप्रद ! (**भूरेः**) बहुपदार्थान्वितस्य (**अया**) अनया । छांदसो वर्णलोपो वा ॥ अ० ८ । २ । २५ भा० ॥ इति नलोपः (**धिया**) श्रेष्ठबुद्ध्या (**वामभाजः**) प्रशस्यकर्म्मसेविनः (**स्याम**) भवेम ॥ अयं मन्त्रः शत० ४ । ४ । १ । ६ व्याख्यातः ॥ ६ ॥

प्रमाणार्थ—यहाँ (**सावीः**) सव । यहां लोट् अर्थ में लुङ् और अट् का अभाव है । (**अया**) अनया । यहां 'छन्दसो वर्णलोपश्च' (अ० ८ । २ । २५) इस भाष्य वार्तिक से 'न' का लोप है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । ४ । १ । ६) में की गई है ॥ ८ । ६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे देव ! सुखप्रद सवितः=**पुरुषार्थेन बह्वैश्वर्यजनक** ! सर्वस्यैश्वर्यस्य प्रसवितरीश्वर **त्वमस्मभ्यमद्य** अस्मिन्नहनि **वामं** प्रशस्यं सुखम् उ श्वः परस्मिन् दिने **वामं वा दिवे दिवे** प्रतिदिनं वामं सावीः=**सव, येन वयमया** अनया **धिया** श्रेष्ठबुद्ध्या **भूरेः** बहुपदार्थान्वितस्य **वामस्य** अत्युत्कृष्टस्य **क्षयस्य**=**गृहाश्रमस्य** गृहस्य **मध्ये वामभाजः** प्रशस्यकर्मसेविनः हि खलु **स्याम** भवेम ॥ ८ । ६ ॥

भाषार्थ—हे (**देव**) सुखदायक, (**सवितः**) पुरुषार्थ से बहुत ऐश्वर्य को देने वाले एवं सब ऐश्वर्य को उत्पन्न करने वाले ईश्वर ! आप हमारे लिये (**अद्य**) आज (**वामम्**) प्रशंसनीय सुख, (**उ**) और (**श्वः**) कल (**वामम्**) प्रशंसनीय सुख, अथवा (**दिवे दिवे**) प्रतिदिन (**वामम्**) प्रशंसनीय सुख (**सावीः**) उत्पन्न कीजिये, जिससे हम लोग (**अया**) इस (**धिया**) उत्तम बुद्धि से, (**भूरेः**) बहुत पदार्थों से युक्त (**वामस्य**) अत्युत्तम (**क्षयस्य**) गृहाश्रम में (**वामभाजः**) उत्तम कर्मों का सेवन करने वाले (**हि**) निश्चय से (**स्याम**) हों ॥ ८ । ६ ॥

[हे···सवितः=**पुरुषार्थेन बह्वैश्वर्यजनक** ! **त्वमस्मभ्यमद्य, श्वः, दिवेदिवे वामं सावीः=सव, येन वयमया धिया क्षयस्य=गृहाश्रमस्य मध्ये वामभाजो हि स्याम**]

भावार्थः—गृहस्थैर्जनै रीश्वरानुग्रहेण परमपुरुषार्थेन प्रशस्तधिया मांगलिकाः सन्तो गृहाश्रमिणो भूत्वैवं प्रयतेरन्, यतस्त्रिषु कालेषु प्रवृद्धसुखाः स्युः ॥ ८ । ६ ॥

भावार्थ—गृहस्थ जन ईश्वर के अनुग्रह, परम पुरुषार्थ और प्रशस्त बुद्धि से मङ्गलकारी गृहाश्रमी बन कर इस प्रकार प्रयत्न करें कि जिससे तीनों कालों में अत्यन्त सुखी रहें ॥ ८ । ६ ॥

भाष्यसार—**गृहाश्रमी कैसा प्रयत्न करें**—गृहपति प्रथम ईश्वर से इस प्रकार प्रार्थना करें कि हे सब सुखों के दाता, पुरुषार्थ से सब ऐश्वर्य के उत्पादक जगदीश्वर ! आप हमारे लिये आज, कल, प्रतिदिन अर्थात् तीनों कालों में प्रशस्त सुख को उत्पन्न कीजिये । जिससे हम लोग इस श्रेष्ठ बुद्धि

से नाना पदार्थों से भूषित, अत्युत्तम गृहाश्रम में उत्तम कर्मों को सेवन करने वाले हों।

गृहस्थ लोग जैसी ईश्वर से प्रार्थना करें वैसा ही उसकी प्राप्ति में परम पुरुषार्थ भी किया करें। ईश्वर के अनुग्रह, अपने परम पुरुषार्थ और प्रशस्त बुद्धि से उत्तम कर्मों के सेवन करने से सुख की अभिवृद्धि होती है ॥ ८। ६॥

भरद्वाजः। **सविता गृहपतिः**=सन्तानेप्सुगृहस्थः। विराड् ब्राह्म्यनुष्टुप्। गान्धारः॥

पुनश्च गृहस्थधर्ममुपदिश्यते ॥

गृहस्थ धर्म का फिर उपदेश किया है॥

उपयामगृहीतोऽसि सावित्रोऽसि चनोधाश्चनोधाऽअसि चनो मयि धेहि। जिन्व यज्ञं जिन्व यज्ञपतिं भगाय देवाय त्वा सवित्रे॥ ७॥

पदार्थः--(**उपयामगृहीतः**) उपयामेन विवाहनियमेन गृहीतः (**असि**) (**सावित्रः**) सविता=सकलजगदुत्पादकः परमेश्वरो देवता यस्य सः (**असि**) (**चनोधाः**) चनांस्यन्नानि दधातीति। चन इत्यन्ननामसु पठितम् ॥ निघं० ६। १६॥ (**चनोधाः**) अभ्यासेनाधिकार्थो ग्राह्यः, सर्वेभ्योऽधिकान्नवान् गम्यते॥ अभ्यासे भूयांसमर्थं मन्यते॥ निरु० १०। ४२॥ (**असि**) (**चनः**) (**मयि**) अन्नग्रहणनिमित्तायां विवाहितायां स्त्रियाम् (**धेहि**) धर (**जिन्व**) प्राप्नुहि जानीहि वा। जिन्वतीति गतिकर्मसु पठितम् ॥ निघं० २। १४॥ (**यज्ञम्**) धर्म्मदृढैः पुरुषैः संगन्तव्यम् (**जिन्व**) प्रीणीहि (**यज्ञपतिम्**) गृहाश्रमस्य पालकं पुरुषं पालिकां स्त्रियं वा (**भगाय**) धनाढ्याय सेवनीयायैश्वर्याय। भग इति धननामसु पठितम् ॥ निघं० २। १०॥ (**देवाय**) दिव्याय कमनीयाय (**त्वा**) त्वाम् (**सवित्रे**) संतानोत्पादकाय। अयं मन्त्रः शत० ४। ४। १। ६ व्याख्यातः॥ ७॥

प्रमाणार्थ—(**चनोधाः**) 'चन' शब्द निघं० (६। १६) में अन्न-नामों में पढ़ा है। निरु० (१०। ४२) के अनुसार "अभ्यास (**द्वित्व**) में अधिक अर्थ माना जाता है।" (**जिन्व**) 'जिन्वति' पद निघं० (२। १४) में गत्यर्थक क्रियाओं में पढ़ा है। (**भगाय**) 'भग' शब्द निघं० (२। १०) में अन्न-नामों में पढ़ा है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४। ४। १। ६) में की गई है॥ ८। ७॥

सपदार्थान्वयः—हे पुरुष! त्वया यथाहं नियमोपनियमैः संगृहीतास्मि तथा मया त्वमुपयामगृहीतः उपयामेन=विवाहनियमेन गृहीतः असि।

त्वं चनोधाः चनांस्यन्नानि दधातीति **चनोधाः** अभ्यासेनाधिकार्थो ग्राह्यः, सर्वेभ्योऽधिकान्नवान् गम्यते, **असि, सावित्रः** सविता=सकलजगदुत्पादकः परमेश्वरो देवता यस्य स **चासि तथाहमस्मि, त्वं मयि** अन्नग्रहणनिमित्तायां विवाहितायां स्त्रियां **चनो-धेहि** धर **अहमपि त्वयि दध्याम्।**

भाषार्थ—हे पुरुष! आपने जैसे मुझे विवाह के नियम-उपनियमों के अनुसार ग्रहण किया है वैसे आप भी मुझ से (**उपयामगृहीतः**) विवाह नियमों के अनुसार स्वीकार किये गये (**असि**) हो।

आप (**चनोधाः**) अन्नों को धारण करने वाले हो (**चनोधाः**) दो बार कहने का अर्थ यह है कि आप सब से अधिक अन्न को धारण करने वाले (**असि**) हो, और (**सावित्रः**) सकल जगत् के उत्पादक परमेश्वर को देवता मानने वाला (**असि**) हो, मैं भी वैसी ही हूँ। आप (**मयि**) अन्न-ग्रहण की निमित्त मुझ विवाहित स्त्री में (**चनः**) अन्न (**धेहि**) रखो और मैं भी आप में अन्न रखूँ।

त्वं **यज्ञं** धर्मदृढैः पुरुषैः संगन्तव्यं **जिन्व** प्रीणीहि **अहमपि जिन्वेयम्** ।

आप (**यज्ञम्**) धर्म पर दृढ़ रहने वाले पुरुषों से प्राप्त करने योग्य यज्ञ को (**जिन्व**) पूर्ण करो और मैं भी पूरा करूँ ।

सवित्रे सन्तानोत्पादकाय **देवाय** दिव्याय कमनीयाय **भगाय** धनाद्याय **यज्ञपत्नीं मां जिन्व** प्राप्नुहि जानीहि वा **एतस्मै यज्ञपतिं** गृहश्रमस्य पालकं पुरुषं पालिकां स्त्रियं वा [**त्वा**]=**त्वामहमपि जिन्वेयम्** ॥ ८ । ७ ॥

(**सवित्रे**) सन्तान-उत्पादक होने के लिये (**देवाय**) दिव्य कमनीय भोगों की तथा (**भगाय**) धन आदि की प्राप्ति के लिये (**यज्ञपत्नीम्**) यज्ञ संगिनी मुझ पत्नी को (**जिन्व**) प्राप्त करो वा समझो और इसी उद्देश्य के लिये (**यज्ञपतिम्**) गृहाश्रम पालक [**त्वा**] आपको मैं भी प्राप्त होऊँ वा पति समझूँ ॥ ८ । ७ ॥

[हे पुरुष ! त्वया यथाहं ...संगृहीतास्मि तथा मया त्वमुपयामगृहीतोऽसि, त्वं वनोधा...असि, सवित्रश्चासि तथाहमस्मि, त्वं यज्ञं जिन्वाहमपि जिन्वेयम्]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ विवाहित स्त्रीपुरुषौ प्राप्तयनुकूलव्यवहारेण परस्परमैश्वर्यं प्राप्नुयातां प्रीत्या सन्तानोत्पत्तिं चाचरेताम् ॥ ८ । ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ विवाहित स्त्री-पुरुष लाभ के अनुसार व्यवहार से परस्पर ऐश्वर्य को प्राप्त करें और प्रीतिपूर्वक सन्तानोत्पत्ति करें ॥ ८ । ७ ॥

भाष्यसार—**१. गृहाश्रम-धर्म**—स्त्री-पुरुष विवाह के नियम उपनियमों के अनुसार एक दूसरे को स्वीकार करें । अन्न आदि पदार्थों को पुष्कल मात्रा में धारण करें । अन्न आदि पदार्थों की कोई कमी न हो । स्त्री और पुरुष दोनों सकल जगत् के उत्पादक परमेश्वर को अपना उपास्य देवता मानें । धार्मिक पुरुष जिन यज्ञ आदि शुभकर्मों का अनुष्ठान करते हैं उनका विवाहित स्त्री-पुरुष आचरण किया करें । सन्तान को उत्पन्न करने वाला, दिव्यगुणों से युक्त, कामना करने के योग्य, पतिदेव धन आदि ऐश्वर्य के उपभोग के लिये यज्ञपत्नी को प्राप्त करे और उसे यज्ञसंगिनी पत्नी समझे । पत्नी भी उक्त पतिदेव को धन आदि के उपभोग के लिये प्राप्त करे और उसे अपना पति समझे । इस प्रकार दोनों स्त्री-पुरुष लाभकारी व्यवहार से परस्पर ऐश्वर्य को प्राप्त करके प्रीति से सन्तानोत्पत्ति करें ॥

२. अलङ्कार—मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि शब्द लुप्त है अतः वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है । उपमा यह है कि पति के समान पत्नी भी उसे पति स्वीकार करे, अन्न आदि पदार्थों को धारण करे, एक ईश्वर को देवता माने, यज्ञ आदि शुभ कर्मों का अनुष्ठान करे ॥ ८ । ७ ॥

उपयामगृहीतोऽसीत्यस्य भरद्वाजः । **विश्वेदेवा गृहपतयः**=विद्वांसो गृहस्थाः । आद्यस्य प्राजापत्या गायत्री छन्दः । षड्जः । सुशर्म्मेत्यस्य निचृदार्षी बृहती । मध्यमः ॥

पुनरपि गृहिकर्त्तव्यमुपदिश्यते ॥

गृहस्थ के कर्त्तव्यों का फिर उपदेश किया है ॥

उपयामगृहीतोऽसि सुशर्म्मासि सुप्रतिष्ठानो बृहदुक्षाय नमः ।
विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यऽ एष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥ ८ ॥

पदार्थः--(**उपयामगृहीतः**) (**असि**) (**सुशर्म्मा**) शोभनानि गृहाणि यस्य सः । शर्म्मेति गृहनामसु पठितम् ॥ निघं० ३ । ४ ॥ (**असि**) (**सुप्रतिष्ठानः**) सुष्ठु प्रतिष्ठानं=प्रतिष्ठा यस्य सः (**बृहस्पताय**) बृहद्वीर्य्यमुक्षति=सिञ्चति तस्मै ।॥ बृहदिति महन्नामसु पठितम् ॥ निघं० ३ । ३ ॥ (**नमः**) अन्नम् । नम इत्यन्ननामसु पठितम् ॥ निघं० २ । ७ ॥ (**विश्वेभ्यः**) अखिलेभ्यः (**त्वा**) त्वाम् (**देवेभ्यः**) कमनीयदिव्यसुखेभ्यः (**एषः**) (**ते**) (**योनिः**) गृहम् (**विश्वेभ्यः**) समस्तेभ्यः (**त्वा**) त्वाम् (**देवेभ्यः**) विद्वद्भ्यः ॥ अयंमन्त्रः शत० ४ । ४ । १ । १४-१८ तथा ४ । ४ । २ । १-११ व्याख्यातः ॥ ८ ॥

प्रमाणार्थ—(**सुशर्म्मा**) 'शर्म्मा' शब्द निघं० (३ । ४) में गृह नामों में पढ़ा है । (**बृहदुक्षाय**) 'बृहत्' शब्द निघं० (३ । ३) में महान्-नामों में पढ़ा है । (**नमः**) यह शब्द निघं० (२ । ७) में अन्न-नामों में पढ़ा है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । ४ । १ । १४–१८ **तथा** ४ । ४ । २ । १–११) में की गई है ॥ ८ । ८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे पते ! **अहं यस्त्वमुपयामगृहीतोऽसि सुप्रतिष्ठानः** सुष्ठु प्रतिष्ठानं=प्रतिष्ठा यस्य सः **सुशर्म्मा** शोभनानि गृहाणि यस्य सः, **असि तस्मै बृहदुक्षाय** बृहद्वीर्य्यमुक्षति=सिञ्चति तस्मै **तुभ्यं नमोऽस्तु=सुसंस्कृतं हृद्यमन्नमुचितसमये ददामि ।**

यथाहं यस्य ते=तवैव योनिः=प्रासादः गृहम् **अस्ति, तं त्वा** त्वां **विश्वेभ्यः** अखिलेभ्यः **देवेभ्यः कमनीयदिव्यसुखेभ्यः सेवे तथा त्वं विश्वेभ्यः** समस्तेभ्यः **देवेभ्यः** विद्वद्भ्यः **मां नियुङ्ज** ॥ ८ । ८ ॥

भाषार्थ—हे पते ! मैं—जो आप (**उपयामगृहीतः**) विवाह नियमानुसार मुझ से स्वीकार किये गये (**असि**) हो सो (**सुप्रतिष्ठानः**) उत्तम प्रतिष्ठा वाले और (**सुशर्मा**) सुन्दर घर वाले (**असि**) हो, सो (**बृहदुक्षाय**) वीर्य-सेचन करने वाले आपको (**नमः**) सुसंस्कृत, प्रिय अन्न ठीक समय पर देती हूँ ।

जैसे मैं—जिस (**ते**) आपका (**एषः**) यह (**योनिः**) घर [**प्रासाद**] है उस (**त्वा**) आपकी (**विश्वेभ्यः**) सब (**देवेभ्यः**) इष्ट दिव्य सुखों के लिये सेवा करती हूँ वैसे आप—(**विश्वेभ्यः**) सब (**देवेभ्यः**) विद्वानों की सेवा के लिये (**माम्**) मुझे नियुक्त कीजिये ॥ ८ । ८ ॥

[हे पते ! यस्त्वमुपयामगृहीतोऽसि˙˙˙सुशर्मासि तस्मै बृहदुक्षाय तुभ्यं नमोऽस्तु=सुसंस्कृतं हृद्यमन्नमुचितसमये ददामि]

भावार्थः—यस्य गृहाश्रममभीप्सोर्जनस्य सर्वर्तुसुखसम्पादकं गृहं स्यात्, स्वयं च वीर्यवान् तमेव स्त्री पतित्वेन गृह्णीयात्, तस्मै यथोचित समये सुखं दद्यात्, स्वयं च तस्यै दिव्य सुखमादद्यात् ।

भावार्थ—जिस गृहाश्रम के अभिलाषी जन के पास सब ऋतुओं में सुख देने वाला घर हो, और वह स्वयं वीर्यवान् हो उसे ही स्त्री पति रूप में ग्रहण करे और उसे यथोचित समय पर सुख देवे और स्वयं पति भी उस स्त्री को दिव्य सुख सब ओर से प्रदान करे।

[त्वा विश्वेभ्यो देवेभ्यः सेवे तथा त्वं विश्वेभ्यो देवेभ्यो मां नियुङ्ज]

तौ द्वौ विदुषां सेवनमाचरेताम् ॥ ८ । ८ ॥

वे दोनों स्त्री-पुरुष विद्वानों की सेवा किया करें ॥ ८ । ८ ॥

भा० पदार्थः—सुशर्मा=यस्य गृहाश्रममभीप्सोर्जनस्य सर्वर्तुसुखसम्पादकं गृहं स्यात् सः । बृहदुक्षाय=वीर्यवते । नमः=दिव्यसुखम् ॥

भाष्यसार—**गृहस्थ का कर्त्तव्य**—विद्वान् गृहपति उत्तम प्रतिष्ठा वाला हो, गृहाश्रम के अभिलाषी जन के पास सब ऋतुओं में सुख देने वाला घर हो, वह वीर्य सेचन में समर्थ हो, वीर्यवान् हो। उक्त गुणों वाले पुरुष को स्त्री पति रूप में स्वीकार करे, उसे यथोचित समय पर सुसंस्कृत, हृदय को प्रिय लगने वाले एवं हृदय के लिये हितकारी अन्न आदि पदार्थ बनाकर दिया करे, खिलाया करे, एवं सब सुख दिया करे। जैसे पति का प्रासाद (**महल**) सुखों का साधक है वैसे स्त्री सब कमनीय दिव्य सुखों की प्राप्ति के लिए पति की सेवा किया करे। पति अपनी स्त्री को सब विद्वानों की सेवा में नियुक्त करे और स्वयं भी विद्वानों की सेवा किया करे ॥ ८। ८॥

उपयामगृहीतोऽसीत्यस्य भरद्वाजः। **गृहपतयो विश्वेदेवाः**=गृहस्था विद्वांसः ॥ आद्यस्य प्राजापत्यागायत्री, बृहस्पतिसुतस्येति मध्यमस्यार्ष्युष्णिक्, अहमित्युत्तरस्य स्वराडार्षी पंक्तिश्च। क्रमेणषड्जर्षभपञ्चमाः॥

पुनर्गार्हस्थ्यधर्म्ममाह ॥

उपयामगृहीतोऽसि बृहस्पतिसुतस्य देव सोम त ऽ इन्दोरिन्द्रियावतः पत्नीवतो ग्रहाँ२ ऽ ऋध्यासम्। अहं परस्तादहमवस्ताद्यदन्तरिक्षं तदु मे पिताभूत। अहꣳ सूर्यमुभयतो ददर्शाहं देवानां परमं गुहा यत् ॥ ९ ॥

पदार्थः—(**उपयामगृहीतः**) (**असि**) (**बृहस्पतिसुतस्य**) बृहत्या=वेदवाण्याः पतेः=पालकस्य पुत्रस्य (**देव**) कमनीयतम (**सोम**) ऐश्वर्य्यसम्पन्न (**ते**) तव (**इन्द्रोः**) सोमगुणसम्पन्नस्य (**इन्द्रियावतः**) बहुधनयुक्तस्य इन्द्रियमिति धनना० ॥ निघं० २। १० ॥ (**पत्नीवतः**) प्रशस्ता यज्ञसम्बन्धिनी जाया यस्य (**ग्रहान्**) गृह्यन्ते=स्वीक्रियन्ते विवाहकाले नियतशिक्षाविषया ये तान् (**ऋध्यासम्**) वर्द्धिषीय (**अहम्**) (**परस्तात्**) उत्तरस्मात् (**अहम्**) (**अवस्तात्**) अर्वाचीनात् समयात् (**यत्**) (**अन्तरिक्षम्**) अन्तरं क्षयमन्तःकरणे क्षयरहितं विज्ञानम् (**तत्**) (**उ**) वितर्के (**मे**) मम (**पिता**) पालको जनकः (**अभूत्**) भवति। वर्तमाने लट् उक्तपूर्वापरभावतः (**अहम्**) (**सूर्यम्**) चराचरात्मानमीश्वरम् (**उभयतः**) (**ददर्श**) दृष्टवान् दृष्टवती चास्मि (**अहम्**) (**देवानाम्**) विदुषाम् (**परमम्**) अत्युत्तमम् (**गुहा**) गुह्यन्ते संव्रियन्ते सकला विद्या यथा बुद्ध्या तस्याम्। अत्र सुपां सुलुक् ॥ अ० ७। १। ३९ ॥ इति ङेर्लुक् (**यत्**) ॥ अयं मंत्रः शत० ४। ४। २। १२—१४ व्याख्यातः ॥ ९ ॥

प्रमाणार्थ—(**इन्द्रियावतः**) 'इन्द्रिय' शब्द निघं० (२। १०) में धन नामों में पढ़ा है। (**अभूत्**) भवति। यहाँ पूर्व-अपर भाव से वर्तमान काल में लट् लकार है। (**गुहा**) यहां 'सुपां सुलुक्०' (७। १। ३९) इस सूत्र से 'ङि' का लुक् है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४। ४। २। १२—१४) में की गई है ॥ ८। ९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **सोम** ऐश्वर्यसम्पन्न **देव**! कमनीयतम **यतस्त्वं मया कुमार्योपयामगृहीतः** [उपयामेन=विवाहनियमेन गृहीतः] **असि तस्येन्दोः** सोमगुणसम्पन्नस्य **इन्द्रियावतः** बहुधनयुक्तस्य **पत्नीवतः** प्रशस्ता यज्ञसम्बन्धिनी जाया यस्य **बृहस्पति सुतस्य** बृहत्याः=वेदवाण्या

भावार्थ—हे (**सोम**) ऐश्वर्य से सम्पन्न, (**देव**) कामना करने के योग्य पति देव! क्योंकि आप मुझ कुमारी से (**उपयामगृहीतः**) विवाह नियमानुसार स्वीकार किये गये (**असि**) हो, सो (**इन्दोः**) सोम्य गुणों से सम्पन्न, (**इन्द्रियावतः**) बहुत धन से युक्त (**पत्नीवतः**) प्रशस्त यज्ञ-सङ्गिनी

पतेः=पालकस्य पुत्रस्य **ते**=**तव ग्रहान्** गृह्यन्ते=स्वीक्रियते विवाहकाले नियत शिक्षाविषया ये तान् **प्राप्याहं परस्ताद्** उत्तरस्माद् **अवस्ताद्** अर्वाचीनात् समयात **ऋध्यासं** वर्द्धिषीय ।

देवी वाले, (**बृहस्पतिसुतस्य**) वेदवाणी के पालक के पुत्र (**ते**) आपके (**ग्रहान्**) विवाह समय में स्वीकार करने योग्य नियत शिक्षा विषयों को प्राप्त करके मैं (**परस्ताद्**) भविष्य (**अवस्ताद्**) और वर्तमान काल में (**ऋध्यासम्**) वृद्धि को प्राप्त होऊँ ।

यद्देवानां विदुषां **गुहा** गुह्यन्ते=सं व्रियन्ते सकला विद्या यथा बुद्धया तस्याम् **स्थितमन्तरिक्षं**=**विज्ञानम्** अन्तरं क्षयमन्तः करणे क्षयरहितं विज्ञानम् [अहम्] **अन्वेमि तत्त्वमपि प्राप्नुहि ।**

और (**यत्**) जो (**देवानाम**) विद्वानों की (**गुहा**) सब विद्या जिसमें छुपी हुई हैं उस बुद्धि में स्थित (**अन्तरिक्षम्**) नाशरहित विज्ञान को [**अहम्**] मैं [**अन्वेमि**] प्राप्त करती हूँ उसे आप भी प्राप्त करो ।

या मे=**मम् पिता**=**पालकोऽध्यापको वा** जनकः **विद्वान्भूत्** भवति **तत्सकाशात् पूर्णां विद्यां प्राप्याहं यम्परमम्** अत्युत्तमं **सूर्य्यं** चराचरात्मानमीश्वरम् **उभयतो ददर्श** दृष्टवान् दृष्टवती चास्मि **तं त्वमपि पश्य** ॥ ८ । ९ ॥

और--जो (**मे**) मेरा (**पिता**) जनक, अध्यापक वा विद्वान् (**अभूत्**) है उससे पूर्ण विद्या को प्राप्त करके मैं जिस (**परमम्**) अत्युत्ताम (**सूर्यम्**) चराचर के आत्मा ईश्वर को (उभयतः) पूर्ण विद्या और शिक्षा से (**ददर्श**) देख चुकी हूँ उसे आप भी देखो ॥ ८ । ९ ॥

[हे···**देव ! यतस्त्वं मया कुमार्योपयामगृहीतोऽसि, तस्य**···**ते**=तवाहं ग्रहान् प्राप्याहं परस्तादवस्ताद्ध्यासम्]

भावार्थः--स्त्रीपुरुषौ परस्परं विवाहात्पूर्वं सम्यक् परीक्षां कृत्वा तुल्यगुणकर्मस्वभावरूप बलारोग्यपुरुषार्थविद्यायुक्तौ स्वयंवरविधानेन विवाहं विधायेत्थं प्रयतेतां यतो धर्मार्थकाममोक्षाणां वृद्धिं प्राप्नुयाताम् ।

भावार्थ--स्त्री और पुरुष विवाह से पूर्व परस्पर अच्छी प्रकार परीक्षा करके तुल्य गुण, कर्म, स्वभाव, रूप, बल, आरोग्य, पुरुषार्थ और विद्या से युक्त होकर स्वयंवर विधि से विवाह करके ऐसा प्रयत्न करें कि जिस से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की वृद्धि को प्राप्त करें ।

[**यो मे**=**मम पिता**=पालकोऽध्यापको वा विद्वान्भूत् तत्सकाशात् पूर्णं विद्यां प्राप्याहं यं परमं सूर्यमुभयतो ददर्श तं त्वमपि पश्य]

यस्य मातापितरौ विद्वांसौ न स्यातां त योरपत्यान्यप्युत्तमानि भवितुं न शक्नुवन्ति । अतः पूर्णविद्यासुशिक्षौ भूत्वैव गृहाश्रममारभेताम् ॥ ८ । ९ ॥

जिसके माता-पिता विद्वान् नहीं होते उनके सन्तान भी उत्तम नहीं हो सकते, अतः पूर्ण विद्या और सुशिक्षा से युक्त होकर ही गृहाश्रम का आरम्भ करें ॥ ८ । ९ ॥

भा० पदार्थः--ऋध्यासम्=वृद्धि प्राप्नुयाम । पिता=विद्वान् पिता, विदुषी माता च ॥

भाष्यसार--**गृहस्थ-धर्म**--जो पुरुष ऐश्वर्य से सम्पन्न और कमनीयतम (**अति सुन्दर**) हो उसे ही कुमारी विवाह नियमपूर्वक पति स्वीकार करे । और वह सोम्य अर्थात् चन्द्र के गुणों से सम्पन्न, अति धनवान्, अपनी पत्नी को यज्ञ में संग रखने वाला, वेदवाणी के पालक पिता का पुत्र हो । उसके साथ विवाह करे । तात्पर्य यह है कि स्त्री और पुरुष विवाह से पूर्व परस्पर परीक्षा करके अपने

समान गुण, कर्म, स्वभाव, रूप, बल, आरोग्य, पुरुषार्थ और विद्या वाले ही स्वयंवर विधि से विवाह करें। विवाह के समय में ग्रहण करने योग्य शिक्षाओं को प्राप्त होकर ऐसा प्रयत्न किया करें कि जिससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष तक वृद्धि को प्राप्त हो सकें ॥ ८ । ९ ॥

भरद्वाजः । **गृहपतयः**=गृहस्थाः । विराड् ब्राह्मी बृहती । मध्यमः ॥

पत्नी स्वपुरुषस्य कथं प्रशंसां प्रार्थनाञ्च कुर्य्यादित्युपदिश्यते ॥

पत्नी अपने पुरुष की किस प्रकार से प्रशंसा और प्रार्थना करे, इस विषय का उपदेश किया है ॥

अग्ना३इ पत्नीवन्त्सजूर्देवेन त्वष्ट्रा सोमं पिब स्वाहा ।
प्रजापतिर्वृषासि रेतोधा रेतो मयि धेहि प्रजापतेस्ते वृष्णो रेतोधसो रेतोधामशीय ॥ १० ॥

पदार्थः—(**अग्ना३इ**) सर्वसुखप्रापक ! (**पत्नीवन्**) प्रशस्ता यज्ञसम्बन्धिनी पत्नी यस्य तत्सम्बुद्धौ (**सजूः**) यः समानं जुषते सः (**देवेन**) दिव्यसुखप्रदेन (**त्वष्ट्रा**) सर्वदुःखविच्छेदकेन गुणेन (**सोमम्**) सोमवल्ल्यादिनिष्पन्नमाह्लादकमासवविशेषम् (**पिब**) (**स्वाहा**) सत्यवाग्विशिष्टया क्रियया (**प्रजापतिः**) सन्तानादिपालकः (**वृषा**) वीर्य्यसेचकः (**असि**) (**रेतोधाः**) रेतोवीर्य्यंदधातीति (**रेतः**) वीर्य्यम् (**मयि**) विवाहितायां स्त्रियाम् (**धेहि**) धर (**प्रजापतेः**) सन्तानादिरक्षकस्य (**ते**) तव (**वृष्णः**) वीर्य्यवतः (**रेतोधसः**) पराक्रमधारकस्य (**रेतोधाम्**) वीर्य्यधारकमिति पराक्रमवन्तम्पुत्रम् (**अशीय**) प्राप्नुयाम् ॥

अयं मन्त्रः शत० ४ । ४ । २ । १५—१८ व्याख्यातः ॥ १० ॥

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । ४ । २ । १५-१८) में की गई है ॥ ८ । १० ॥

सपदार्थान्वयः—हे [**अग्ना३इ**]=अग्ने सर्वसुखप्रापक **स्वामिन्** ! **मया सजूः** यः समानं जुषते सः **त्वं देवेन** दिव्यसुखप्रदेन **त्वष्ट्रा** सर्व दुःख विच्छेदकेन गुणेन **स्वाहा** सत्यवाग्विशिष्टया क्रियया **सोमं** सोमवल्ल्यादिनिष्पन्नमाह्लादकभासव विशेषं **पिब** ।

हे पत्नीवन् ! प्रशस्ता यज्ञसम्बन्धिनी पत्नीं यस्य तत्सम्बुद्धौ **त्वं वृषा** वीर्य्यसेचकः **रेतोधाः** रेतः=वीर्य्यं दधातीति **प्रजापतिः** सन्तानादिपालकः **असि,** **मयि** विवाहितायां स्त्रियां रेतः वीर्य्यं **धेहि** धर ।

हे स्वामिन् ! **अहं वृष्णः** वीर्य्यवतः **रेतोधसः** पराक्रमधारकस्य **प्रजापतेः** सन्तानादिरक्षकस्य **ते**=**तव सकाशाद्** **रेतोधां**=पुत्रं वीर्य्य धारकमिति पराक्रमवन्तं पुत्रम् **अशीय** प्राप्नुयाम् ॥ ८ । १० ॥

भावार्थ—हे [**अग्ना३**] सब सुखों के प्रापक स्वामिन् ! मेरे (**सजूः**) साथ आप (**देवेन**) दिव्य सुखदायक (**त्वष्ट्रा**) सब दुःखों के छेदक गुण से और (**स्वाहा**) सत्यवाणी से युक्त क्रिया से (**सोमम्**) सोमलता आदि से तैयार, आनन्ददायक आसव का (**पिब**) पान करो ।

हे (**पत्नीवन्**) प्रशंसनी यज्ञसङ्गिनी देवी वाले पतिदेव ! आप (**वृषा**) वीर्य का सेचन करने वाले, (**रेतोधाः**) वीर्य को धारण करने वाले और (**प्रजापतिः**) सन्तान आदि के पालक (**असि**) हो, सो (**मयि**) मुझ विवाहित स्त्री में (**रेतः**) वीर्य का (**धेहि**) आधान करो ।

हे स्वामिन् ! मैं (**वृष्णः**) वीर्यवान्, (**रेताधसः**) पराक्रम को धारण करने वाले, (**प्रजापतेः**) सन्तान आदि के रक्षक (**ते**) आप से (**रेतोधाम्**) वीर्य को धारण करने वाले अर्थात् पराक्रमी पुत्र को (**अशीय**) प्राप्त करूँ ॥ ८ । १० ॥

[हे [अग्ना३]=अग्ने स्वामिन् ! मया सजूस्त्वं देवेन त्वष्ट्रा स्वाहा सोमं पिब]

भावार्थः--इह जगति मनुष्यजन्म प्राप्य स्त्रीपुरुषौ ब्रह्मचर्योत्तमविद्यासद्गुणपराक्रमिणौ भूत्वा विवाहं कुर्याताम् ।

भावार्थ—इस जगत् में मनुष्य-जन्म को प्राप्त करके स्त्री और पुरुष ब्रह्मचर्य से उत्तम-विद्या और सद्गुणों में समर्थ होकर विवाह करें ।

[हे स्वामिन् ! अहं वृष्ण······ते=तव सकाशाद् रेतोधां=पुत्रमशीय]

विवाहमर्यादयैव सन्तानोत्पत्तिरतिक्रीडाजन्यसुखसम्भोगं प्राप्य नित्यं प्रमुदेताम् ।

विवाह की मर्यादा से ही सन्तानोपत्ति तथा रति-क्रीड़ा के सुख का उपभोग प्राप्त करके नित्य आनन्द में रहें ।

विना विवाहेन पुरुषः स्त्रियं, वा—स्त्री पुरुषं मनसापि नेच्छेद्यतः स्त्रीपुरुषसम्बन्धेन मनुष्यवृद्धिर्भवति, तस्माद् गृहाश्रमं कुर्याताम् ॥ ८ । १० ॥

विवाह के बिना पुरुष स्त्री को अथवा स्त्री पुरुष को मन से भी न चाहे क्योंकि स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध से मनुष्यों की वृद्धि होती है अतः गृहाश्रम किया करें ॥ ८ । १० ॥

भाष्यसार--१. **पत्नी द्वारा अपने पुरुष की प्रशंसा**--हे स्वामिन् ! आप सब सुखों को प्राप्त कराने वाले हो, दिव्य सुखों के दायक तथा सब दुःखों के विच्छेदक गुणों से भूषित हो, प्रशंसनीय यज्ञ से सम्बन्धित पत्नी वाले हो, वीर्य के सेचक, धारक और प्रजा के पालक हो ।

२. **पत्नी द्वारा अपने पुरुष से प्रार्थना**—हे स्वामिन् ! आप मेरे साथ सत्य-क्रिया के द्वारा सोमलता आदि से निष्पन्न चित्त को आह्लादित करने वाले आसव का पान कीजिये, आप पत्नीमान्, वीर्यसेचक, वीर्यधारक और प्रजापति होकर मुझ विवाहित स्त्री में वीर्य का आधान कीजिये । मैं उक्त गुणों से सुशोभित आपके पास से पराक्रमी पुत्र को प्राप्त करूँ ॥ ८। १० ॥

भरद्वाजः । **गृहपतयः**=गृहस्थाः ॥ निचृदार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनर्गार्हस्थ्यधर्म्ममाह ॥

गृहस्थ धर्म का फिर उपदेश किया है ॥

उपयामगृहीतोऽसि हरिरसि हारियोजनो हरिभ्यां त्वा ।
हर्योर्धाना स्थ सहसोमा ऽ इन्द्राय ॥ ११ ॥

पदार्थः—(**उपयामगृहीतः**) उपयामाय=गृहश्रमाय गृहीतः (**असि**) (**हरिः**) हरते=वहते यथायोग्यं गृहाश्रमव्यवहारान् (**असि**) (**हारियोजनः**) हरीन् योजयति यः सारथिः स हरियोजनः । हरियोजन एव हारियोजनस्तद्वत् (**हरिभ्याम्**) सुशिक्षिताभ्यां तुरंगाभ्याम् (त्वा) त्वाम् (हर्य्योः) अश्वयोः (**धानाः**) धारकाः । अत्र दधातेरौणादिको नः प्रत्ययः (**स्थ**) भवत (सहसोमाः) सोमेन=श्रेष्ठगुणसमूहेन सह वर्त्तमाना इव (**इन्द्राय**) परमैश्वर्य्यप्राप्तये ।' अयं मंत्रः शत० ४ । ४ । ३ । १–१० व्याख्यातः ॥ ११ ॥

प्रमाणार्थ—(**धानाः**) यहाँ 'धा' धातु से औणादिक 'न' प्रत्यय है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । ४ । ३ । १—१०) में की गई है ॥ ८ । ११ ॥

सपदार्थान्वयः—हे पते ! त्वमुपयामगृहीतः उपयामाय=गृहाश्रमाय गृहीतः **असि हारियोजनः** हरिन् योजयति यः सारथिः स हरियोजनः,

भाषार्थ—हे पते ! आप (**उपयामगृहीतः**) मुझसे गृहाश्रम के लिये स्वीकार किये गये (**असि**) हो, और (**हारियोजनः**) घोड़ों को रथ में जोड़ने

हरियोजन एव हारियोजनस्तद्वद् **इव हरिः** हरते=वहते यथायोग्यं गृहाश्रमव्यवहारान् **असि, अतो हरिभ्यां** सुशिक्षिताभ्यां तुरङ्गाभ्यां **युक्ते स्पन्दने विराजमानं त्वा**=त्वामहं **सेवे।**

यूयं गृहाश्रमिणः सन्त इन्द्राय परमैश्वर्यप्राप्तये **सहसोमाः** सोमेन=श्रेष्ठगुणसमूहेन सह वर्त्तमाना इव **सन्तो हर्य्योः** अश्वयोः **धानाः** धारकाः **स्थ** भवत ॥ ८ ॥ ११ ॥

वाले सारथि के समान (**हरिः**) यथायोग्य गृहाश्रम के व्यवहारों को वहन करने वाले (**असि**) हो, इसलिये (**हरिभ्याम्**) प्रशिक्षित घोड़ों से युक्त रथ में विराजमान (**त्वा**) आपकी मैं (**सेवे**) सेवा करती हूँ।

आप गृहाश्रमी बनकर (**इन्द्राय**) परम ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए (**सहसोमाः**) श्रेष्ठ गुणों से युक्त होकर (**हर्य्योः**) घोड़ों को (**धानाः**) धारण करने वाले (**स्थ**) बनो ॥ ८ । ११ ॥

[यूयं गृहाश्रमिणः सन्त इन्द्राय सह सोमाः सन्तो हर्य्योर्धानाः स्थ]

भावार्थः—ब्रह्मचर्यसंस्कृता विवाहमिच्छवो युवतयः कन्या युवानश्चान्योऽन्यस्य धनोन्नतिं परीक्ष्य विवाहं कुर्य्यातां, नो चेद्धनाभावे दुःखोन्नतिर्भवेत्।

भावार्थ—ब्रह्मचर्य से पवित्र हुये विवाह की इच्छुक युवती कन्यायें और युवक कुमार परस्पर धनसम्पत्ति की परीक्षा करके विवाह करें, नहीं तो धन के अभाव में दुःख की ही वृद्धि होती है।

[तात्पर्यमाह—]

एवमुपयम्य परस्परमाह्लादयन्तः सन्तः प्रतिदिनमैश्वर्यमुन्नयेयुः ॥ ८ । ११ ॥

इस प्रकार विवाह करके परस्पर आनन्द को प्राप्त होकर ऐश्वर्य को बढ़ावें ॥ ८ । ११ ॥

भाष्यसार—**गृहस्थ-धर्म**—पत्नी गृहाश्रम के लिये पति को स्वीकार करे। जैसे सारथी रथ में घोड़ों को युक्त करता है तथा अपने गन्तव्य को प्राप्त करता है वैसे पति यथायोग्य गृहाश्रम के व्यवहारों को प्राप्त करने वाला हो। पत्नी सुशिक्षित अश्वों से भूषित रथ में विराजमान अपने पति को प्राप्त करे अर्थात् ब्रह्मचर्य से पवित्र होकर विवाह के इच्छुक युवा और युवतियाँ परस्पर धन की परीक्षा करके विवाह करें क्योंकि धन के अभाव में गृहाश्रम में दुःख की ही वृद्धि होती है।

गृहाश्रमी लोग परम ऐश्वर्य की प्रति के लिये श्रेष्ठ गुणों से युक्त होकर अश्वों को धारण करने वाले हों। स्त्री-पुरुष परस्पर आह्लाद को प्राप्त होकर प्रतिदिन ऐश्वर्य की वृद्धि किया करें ॥ ८ । ११ ॥

भारद्वाजः। **गृहपतयः**=**गृहस्थाः** ॥ आर्षीपंक्तिः। पञ्चमः।

अथ गृहस्थानां मित्रतामाह ॥

अब गृहस्थों की मित्रता का उपदेश किया जाता है ॥

यस्ते॑ऽअश्व॒सनि॑र्भ॒क्षो यो गो॒सनि॒स्तस्य॑ तऽइ॒ष्टय॑जुष स्तु॒तस्तो॑मस्य श॒स्तो-क्थ॒स्योप॑हूत॒स्योप॑हूतो भक्षयामि ॥ १२ ॥

पदार्थः—(**यः**) (**ते**) तव (**अश्वसनिः**) अश्वानामग्न्यादिपदार्थानां वा सनिर्दाता (**भक्षः**) सेवनीयः (**यः**) (**गोसनिः**) गोः संस्कृतवाचो भूमेर्विद्याप्रकाशादेः सनिर्दाता (**तस्य**) (**ते**) तव (**इष्टयजुषः**) इष्टानि यजूंषि यस्य (**स्तुतस्तोमस्य**) स्तुतः स्तोमः सामवेदगानविशेषो येन सः [**तस्य**] (**शस्तोक्थस्य**)

शस्तानि=प्रशंसितानि उक्थानि=ऋक्सूक्तानि येन तस्य (**उपहूतस्य**) सत्कारेणाहूयोपस्थितस्य (उपहूतः) सम्मानित उपस्थितः (**भक्षयामि**) लेट्प्रयोगोऽयम् ॥ अयं मन्त्रः शत० ४ । ४ । ३ । ११-१३ व्याख्यातः ॥ १२ ॥

प्रमाणार्थ—(**भक्षयामि**) यह लेट् लकार का प्रयोग है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । ४ । ३ । ११-१३) में की गई है ॥ ८ । १२ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे प्रिय वीरपते ! यस्त्वं मयोपहूतः** सम्मानित उपस्थितः **अश्वसनिः** अश्वानामग्न्यादिपदार्थानां वा सनिः = दाता, **गोसनिः** गोः=संस्कृतवाचो भूमेर्विद्याप्रकाशादेः सनिः=दाता **असि, तस्य शस्तोक्थस्य** शस्तानि= प्रशंसितानि उक्थानि=ऋक्सूक्तानि येन तस्य **इष्टयजुषः** इष्टानि यजूंषि यस्य **स्तुतस्तोमस्य** स्तुतः स्तोमः=सामवेदगानविशेषो येन सः [तस्य] **उपहूतस्य** सत्कारेणाहूयोपस्थितस्य [**ते**]=**तव यो भक्षः** सेवनीयः **अस्ति, तमुपहूता सत्यहं भक्षयामि ।**

हे प्रिये सखि ! या त्वमश्वसनिः अश्वानामग्न्यादिपदार्थानां वा सनिः=दात्री **गोसनिः** गोः= संस्कृतवाचो भूमेर्विद्याप्रकाशादेः सनिः=दात्री **असि, तस्याः शस्तोक्थायाः** शस्तानि प्रशंसितानि उक्थानि =ऋक्सूक्तानि यया तस्याः **इष्टयजुषः** इष्टानि यजूंषि यस्याः **स्तुतस्तोमायाः** स्तुतः स्तोमः= सामवेदगानविशेषो यया सा [तस्याः] **उपहूतायाः** सत्कारेणाहूयोपस्थितायाः **ते=तव यो भक्षः** सेवनीयः **अस्ति, तमुपहूता** सम्मानितोपस्थिता **अहं भक्षयामि** ॥ ८ । १२ ॥

भाषार्थ—हे प्रिय, वीरपते ! जो आप मुझ से (**उपहूतः**) सम्मानित होकर उपस्थित हो सो (**अश्वसनिः**) अश्व अथवा अग्नि आदि पदार्थों के दाता और (**गोसनिः**) संस्कृत वाणी, भूमि तथा विद्याप्रकाश आदि के दाता (**असि**) हो, सो (**शस्तोक्थस्य**) ऋग्वेद के सूक्तों की प्रशंसा करने वाले, (**इष्टयजुषः**) यजुर्वेद से प्रेम करने वाले, (**स्तुतस्योमस्य**) सामवेद के गानविशेष की स्तुति करने वाले, (**उपहूतस्य**) सत्कारपूर्वक बुलाने से उपस्थित हुये [**ते**] आप का जो (**भक्षः**) सेवनीय पदार्थ है उसी को (**उपहूता**) सम्मान से बुलाई हुई सेवन करती हूँ।

हे प्रिये सखि ! जो तू (**अश्वसनिः**) अश्व अथवा अग्नि आदि पदार्थों की दात्री (**गोसनिः**) संस्कृत वाणी, भूमि तथा विद्या प्रकाश आदि की दात्री (**असि**) हो। सो (**शस्तोक्थायाः**) ऋग्वेद के सूक्तों प्रशंसा करने वाली (**इष्टयजुषः**) यजुर्वेद से प्रेम करने वाली, (**स्तुतस्तोमायाः**) सामवेद के गान विशेष का स्तवन करने वाली (**उपहूतायाः**) सत्कार-पूर्वक बुलाने से उपस्थित हुई (**ते**) आपका, जो (**भक्षः**) सेवनीय पदार्थ है उसी को (**उपहूता**) सम्मान से बुलाने पर उपस्थित हुई मैं (**भक्षयामि**) सेवन करती हूँ ॥ ८ । १२ ॥

[हे वीरपते ! ···शस्तोक्थस्येष्टयजुषः स्तुतस्तोमस्योपहूतस्य [ते]=तव यो भक्षोऽस्ति तमुहूता सत्यहं भक्षयामि, हे प्रिये सखि ! ···उपहूतायास्ते=तव यो यक्षोऽस्ति तमुप्रहूताऽहं भक्षयामि]

भावार्थः—सदुत्साहवर्द्धकेषु कार्येषु—गृहाश्रममाचरन्त्यः स्त्रियः स्वसखिस्त्रीजनान्, गृहाश्रमिणः पुरुषा वा स्वेष्टमित्रबन्धुजनादीनाहूय यथायोग्यं सत्कारेण भोजनादिना प्रसादयेयुरन्योऽन्यमुपदेशं, शास्त्रार्थं विद्याविवाग्विलासं च कुर्युः ॥ ८ । १२ ॥

भावार्थ—अच्छे उत्साह-वर्द्धक कार्यों में गृहाश्रमी स्त्रियाँ अपनी सखी स्त्रियों को, अथवा पुरुष अपने इष्ट, मित्र, बन्धु जन आदि को यथायोग्य सत्कार एवं भोजन आदि से उन्हें प्रसन्न करें और परस्पर उपदेश, शास्त्रार्थ, विद्या वाग्विलास किया करें ॥ ८ । १२ ॥

भाष्यसार—**गृहस्थों की मित्रता**—गृहस्थ पुरुष उत्सव आदि कार्यों में अश्व अथवा अग्नि

आदि पदार्थों का दाता हो, शुद्ध वाणी, भूमि तथा विद्याप्रकाश आदि का भी दाता हो, अर्थात् परस्पर उपदेश, शास्त्रार्थ तथा विद्या से युक्त वाग्विलास का करने वाला हो, ऋग्वेद का प्रशंसक, यजुर्वेद का प्रिय, सामवेद का गायक हो। ऐसे श्रेष्ठ गृहस्थ पुरुषों को पारिवारिक उत्सवों में निमन्त्रित करके गृहस्थ लोग उनका यथायोग्य सत्कार करें उन्हें भोजन आदि से प्रसन्न करें। गृहस्थ स्त्रियाँ भी इसी प्रकार से आचरण करें ॥ ८ । १२ ॥

देवकृतस्येत्यस्य भारद्वाजः । **गृहपतयो विश्वेदेवा**=विद्वांसो गृहपस्थाः ।
मनुष्यकृतस्येत्यस्य साम्न्युष्णिक्, पितृकृतस्येत्यस्यात्मकृतस्येत्यस्य च निचृत्साम्न्युष्णिक्, एनस इत्यस्य प्राजापत्योष्णिक्, यच्चाहमित्यस्य निचृदार्ष्युष्णिक् च छन्दांसि ॥ ऋषभः ॥

पूर्वोक्तविषयं प्रकारान्तरेणाह ॥

गृहस्थों की मित्रता का प्रकारान्तर से उपदेश किया है ॥

देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि मनुष्यकृतस्यैनसोऽवयजनमसि पितृकृतस्यैनसोऽवयजनमस्यात्मकृतस्यैनसोऽवयजनमस्येनसऽ एनसोऽवयजनमसि । यच्चाहमेनो विद्वाँश्चकार यच्चाविद्वाँस्तस्य सर्वस्यैनसोऽवयजनमसि ॥ १३ ॥

पदार्थः—(**देवकृतस्य**) दानशीलकृतस्य (**एनसः**) पापस्य (**अवयजनम्**) पृथक्करणम् (**असि**) (**मनुष्यकृतस्य**) साधारणजनेनाचरितस्य (**एनसः**) अपराधस्य (**अवयजनम्**) दूरीकरणम् (**असि**) (**पितृकृतस्य**) जनककृतस्य (**एनसः**) विरोधाचरणस्य (**अवयजनम्**) परिहरणम् (**असि**) (**आत्मकृतस्य**) स्वयमाचरितस्य (**एनसः**) पापस्य (**अवयजनम्**) (**असि**) (**एनसः**) (**एनसः**) अधर्म्मस्याधर्म्मस्य (**अवयजनम्**) परिहरणम् (**असि**) (**यत्**) अतीते काले (**च**) वर्त्तमाने (**अहम्**) (**एनः**) अधर्म्माचरणम् (**विद्वान्**) जानन् सन् (**चकार**) कृतवान् करोमि करिष्यामि वा । अत्र छन्दसि लुङ् लिङ् लिटः ॥ अ० ३ । ४ । ६ ॥ इति कालसामान्ये लिट् (**यत्**) (**च**) अविद्यासमुच्चये (**अविद्वान्**) अजानन् सन् (**तस्य**) (**सर्वस्य**) (**एनसः**) दुष्टाचरणस्य (**अवयजनम्**) दूरीकरणम् (**असि**) ॥ अयं मन्त्रः शत० ४ । ३ । ६ । १ व्याख्यातः ॥ १३ ॥

प्रमाणार्थ—(**चकार**) यहां 'छन्दसि लुङ्लिङ् लिटः' (अ० ३ । ४ । ६) इस सूत्र से सामान्य काल में लिट् लकार है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । ३ । ६ । १) में की गई है ॥ ८ । १३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे सर्वोपकारिन् सखे ! त्वं **देवकृतस्य** दानशीलकृतस्य **एनसः** पापस्य **अवयजनं** पृथक्करणम् **असि, मनुष्यकृतस्य** साधारणजनेनाचरितस्य **एनसः** अपराधस्य **अवयजनं** दूरीकरणम् **असि, पितृकृतस्य** जनककृतस्य **एनसः** विरोधाचरणस्य **अवयजनं** परिहरणम् **असि, आत्मकृतस्य** स्वयमाचरितस्य **एनसः** पापस्य **अवयजनमसि, एनस एनसः** अधर्मस्याधर्मस्य **अवयजनं** परिहरणम् **असिः विद्वान्** जानन् सन् **अहं यत्**

भावार्थ—हे सबका उपकार करने वाले मित्र ! आप (**देवकृतस्य**) दान करने वाले पुरुष के किये (**एनसः**) पाप को (**अवयजनम्**) पृथक् करने वाले (**असि**) हो, (**मनुष्यकृतस्य**) साधारण पुरुष के किये (**एनसः**) अपराध को (**अवयजनम्**) दूर करने वाले (**असि**) हो, (**पितृकृतस्य**) पिता के किये (**एनसः**) विरोध-आचरण का (**अवयजनम्**) परिहार करने वाले (**असि**) हो, (**आत्मकृतस्य**) स्वयं किये (**एनसः**) पाप को (**अवयजनम्**) पृथक् करने

अतीते काले **च** वर्त्तमाने **एनः=पापम्** अधर्माचरणं **चकार=कृतवान् करोमि करिष्यामि वा अविद्वान्** अजानन् सन् **अहं यत्** अतीते काले **च** वर्त्तमाने **एनः** अधर्म्माचिरणं **कृतवान् करोमि, करिष्यामि वा तस्य सर्वस्यैनसः** दुष्टाचरणस्य **अवयजनं** दूरीकरणं **चासि** ॥ ८ । १३ ॥

वाले (**असि**) हो, (**एनस एनसः**) प्रत्येक अधर्म का (**अवयजनम्**) परिहार करने वाले (**असि**) हो, (**विद्वान्**) जानते हुये (**अहम्**) मैंने (**यत्**) जो भूतकाल में (**च**) और वर्त्तमान काल में (**एनः**) अधर्माचरण (**चकार**) किया है, कर रहा हूँ वा करूँगा, तथा—(**अविद्वान्**) न जानते हुये (**अहम्**) मैंने (**यत्**) जो भूतकाल में (**च**) और वर्त्तमान काल में जो (**एनः**) अधर्माचरण किया है, कर रहा हूँ वा करूँगा (**तस्य**) उस (**सर्वस्य**) सब (**एन सः**) दुष्टाचरण को (**अवयजनम्**) दूर करने वाले हो ॥ ८ । १३ ॥

[हे सर्वोपकारिन् सखे ! त्वं देवकृतस्यैँ, मनुष्यकृतस्य, पितृकृतस्य, आत्मकृतस्यैँनसोऽवयजनमसि, विद्वानहं यच्चैनः=पापं चकार=कृतवान्, करोमि, करिष्यामि वा, अविद्वानहं यच्चैनः कृतवान्, करोमि, करिष्यामि वा तस्य सर्वस्यैँनसोऽवयजनं चासि]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः ॥ यथा विद्वान् गृहाश्रमी पुरुषो दानादिप्रसक्तपुरुषाणामपराध-दूरीकरणे प्रयतेत, जानन्नजानन् वात्मकृतमपराधं स्वयं त्यजेदन्यकृतमन्यस्मान्निवारयेत्, तथा नुष्ठाय सर्वे यथोक्तं सुखं प्राप्नुयुरिति ॥ ८ । १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है ॥ जैसे विद्वान् गृहस्थ पुरुष दानशील पुरुषों के अपराधों को दूर करने में प्रयत्न करे, जाने वा बिना जाने अपने किये अपराध को स्वयं छोड़े, अन्यकृत अपराध को उन्हीं से निवारण करावे, वैसा आचरण करके सब लोग यथोक्त सुख को प्राप्त करें ॥ ८ । १३ ॥

अन्यत्र व्याख्यात—हे सर्वपापप्रणाशक ! (**देवकृत०**) इन्द्रिय, विद्वान् और दिव्य-गुणयुक्त जन के दुःख के नाशक एक ही आप हो, अन्य कोई नहीं । एवं मनुष्य=मध्यस्थजन, पितृ=परमविद्यायुक्त जन और (**आत्मकृत०**) जीव के पापों तथा (**एनसः**) पापों से भी बड़े पापों से आप ही 'अवयजन' हो, अर्थात् सर्वपाप से अलग हो और हम सब मनुष्यों को भी पाप से दूर रखने वाले एक आप ही दयामय पिता हो । हे महानन्तविद्य ! जो-जो मैंने विद्वान् वा अविद्वान् होके पाप किया हो, उन सब पापों का छुड़ाने वाला आपके बिना कोई भी इस संसार में हमारा शरण नहीं है, इस से हमारे अविद्यादि सब पाप छुड़ा के शीघ्र हमको शुद्ध करो, (**आर्याभि:** २ । १९) ॥ ८ । १३ ॥

भाष्यसार—**१. गृहस्थों की मित्रता**—गृहस्थ लोग परस्पर मित्रभाव से वर्तें । मित्र-भाव से विद्वानों के अपराधों को दूर करें । साधारण मनुष्यों के अपराधों को दूर हटावें । पितर अर्थात् जनक आदि जनों के विरोधाचरण का निवारण करें । स्वयं किये हुये पापों को दूर करें । प्रत्येक अधर्म का परिहार करें । जाने वा बिना जाने जो अधर्माचरण किया हो, वर्तमान में किया जा रहा हो वा भविष्य में करने का हो उसे दूर करें । इस प्रकार मित्रता से सब दुष्टाचरण का निवारण करके सुख को प्राप्त करें ॥

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है । उपमा यह है कि विद्वान् गृहस्थ पुरुष के समान सब लोग परस्पर अपराधों का निवारण करें ॥ ८ । १३ ॥

भरद्वाजः । **गृहपतयः**=गृहस्थाः ॥ विराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तदेवाह ॥

गृहस्थों की मित्रता विषय का फिर उपदेश किया है ॥

सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सꣳ शिवेन ।
त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् ॥ १४ ॥

पदार्थः—(**सम्**) क्रियायोगे (**वर्चसा**) अध्ययनाध्यापनप्रकाशेन (**पयसा**) जलेनान्नेन वा । पय इत्युदकनामसु पठितम् ॥ निघं० । १ । १२ ॥ अन्ननामसु च ॥ निघं० २ । ६ ॥ (**सम्**) (**तनूभिः**) शरीरैः (**अगन्महि**) प्राप्नुयाम । अत्र गम्लृधातोर्लिङर्थे लुङ् । मन्त्रे घसह्वर० ॥ अ० २ । ४ । ८० ॥ इत्यादिना च्लेर्लुक् । म्वोश्च ॥ अ० ८ । २ । ६५ ॥ इति मस्य नः (**मनसा**) विज्ञानवतान्तःकरणेन (**सम्**) (**शिवेन**) कल्याणकारकेण (**त्वष्टा**) सर्वव्यवहाराणां तनुकर्त्ता (**सुदत्रः**) सुदानः (**वि**) (**दधातु**) करोतु (**रायः**) धनानि (**अनु**) (**मार्ष्टु**) पुनः पुनः शुन्धतु (**तन्वः**) शरीरस्य (**यत्**) (**विलिष्टम्**) विशेषेण न्यूनमङ्गम । अयं मन्त्रः शत० । ४ । ४ । ४ । १४—१५ व्याख्यातः ॥ १४ ॥

प्रमाणार्थ—(**पयसा**) 'पयः' शब्द निघं० (१ । १२) में जल-नामों में और निघं० (२ । ६) में अन्न-नामों में पढ़ा है । (**अगन्महि**) यहां 'गम्लृ' धातु से लिङ् अर्थ में लुङ् लकार है । 'मन्त्रे घसह्वर०' (अ० २ । ४ । ८०) इस सूत्र से 'च्लि' का लुक् है । 'म्वोश्च' (अ० ८ । २ । ६५) इस सूत्र से 'म' को 'न' हो गया है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । ४ । ४ । १४—१५) में की गई है ॥ ८ । १४ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे अध्यापक ! त्वष्टा** सर्वव्यवहाराणां तनुकर्ता **सुदत्रः** सुदानः **विद्वान् भवान् संशिवेन** कल्याणकारकेण **मनसा** विज्ञानवताऽन्तःकरणेन **संवर्चसा** अध्ययनाध्यापनप्रकाशेन **पयसा** जलेनान्नेन वा **यत्तन्वः** शरीरस्य **विलिष्टं** विशेषेण न्यूनमङ्गम् **अनुमार्ष्टु** पुनः पुनः शुन्धतु । **रायः** धनानि **विदधातु** करोतु **तत्तानि च वयन्तनूभिः** शरीरैः **सम-अगन्महि** प्राप्नुयाम ॥ ८ । १४ ॥

भाषार्थ—हे अध्यापक ! आप (**त्वष्टा**) सब व्यवहारों को सूक्ष्म करने वाले और (**सुदत्रः**) विद्या का दान करने वाले विद्वान् हो । इसलिये (**संशिवेन**) कल्याणकारक (**मनसा**) विज्ञानयुक्त अन्तःकरण से (**संवर्चसा**) अध्यय-अध्यापन के प्रकाश से (**पयसा**) जल वा अन्न से (**यत्**) जो (**तन्वः**) शरीर सम्बन्धी (**विलिष्टम्**) विशेष न्यूनता है उसे (**अनुमार्ष्टु**) बार बार दूर करो तथा (**रायः**) धनों को (**विदधातु**) प्रदान करो और हम लोग उस न्यूनता को तथा उक्त धनों को (**तनूभिः**) अपने शरीरों से (**समगन्महि**) पूरा करें तथा प्राप्त करें ॥ ८ । १४ ॥

[हे अध्यापक ! त्वष्टा सुदत्रो विद्वान् भवान् संशिवेन मनसा, संवर्चसा पयसा यत्तन्वो विलिष्टमनुमार्ष्टु]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ मनुष्याणां योग्तास्तिपुरुषार्थेन विद्यां सम्पाद्य, विधिवदन्नोदकं संसेव्य, शरीराण्यरोगीकृत्य, मनो धर्मे निवेश्य, सदा सुखोन्नतिं कृत्वा, या

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ मनुष्यों को योग्य है कि पुरुषार्थ से विद्या को प्राप्त करके, विधिपूर्वक अन्न-जल का सेवन करके, शरीर को नीरोग बना, मन को धर्म

काचिन्न्यूनतास्ति तां सम्पूरयन्तु ।

में लगा, सदा सुख की उन्नति करके जो कोई कमी हो उसे पूरा करें ।

यथा कश्चित् सुहृत् सख्युः सुखाय वर्त्तेत तथा तत्सुखाय स्वयमपि वर्त्तेत ॥ ८ । १४ ॥

जैसे कोई मित्र अपने सखा के लिये वर्ताव करे वैसे उसके सुख के लिये स्वयं भी आचरण करे ॥ ८ । १४ ॥

भाष्यसार—१. **गृहस्थों की मित्रता**—गृहस्थ पुरुष विद्वान् अध्यापक से मित्रभाव से इस प्रकार निवेदन करे कि हे अध्यापक ! आप सब व्यवहारों को सूक्ष्म (लघु) करने वाले हो, पुरुषार्थ से विद्या को सिद्ध करके उसके श्रेष्ठ दाता हो, सो आप कल्याणकारक मन से मेरे मन को धर्म में लगाओ, पठन-पाठन रूप प्रकाश से मेरी बुद्धि को प्रकाशित करो, विधिपूर्वक अन्न-जल सेवन की शिक्षा से मेरे शरीर को नीरोग करो, तात्पर्य यह है कि मेरे किसी भी अङ्ग में जो कोई न्यूनता आपको दिखलाई देती है उसे आप पूरा करो । मेरे लिये सदा सुख की वृद्धि करो ।

२. **अलङ्कार**—मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि शब्द लुप्त है अतः वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है । उपमा यह है कि जैसे एक मित्र अपने मित्र के सुख के लिये प्रयत्न करता है वैसे सब मनुष्य पारस्परिक सुख-वृद्धि के लिये सदा प्रयत्न किया करें ॥ ८ । १४ ॥

समिन्द्रेत्यस्यात्रिः । **गृहपतिः=गृहस्थः** ॥ भुरिगार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनर्मित्रकृत्यमाह ॥

मित्र के कर्त्तव्य का फिर उपदेश किया है ॥

समिन्द्र णो मनसा नेषि गोभिः सꣳ सूरिभिर्मघवन्त्सꣳस्वस्त्या ।
सं ब्रह्मणा देवकृतं यदस्ति सं देवानाꣳसुमतौ यज्ञियानाꣳ स्वाहा ॥ १५ ॥

पदार्थः—(**सम्**) (**इन्द्र**) परमैश्वर्ययुक्त गृहपते ! (**नः**) अस्मान् (**मनसा**) विज्ञानसहितेनान्तःकरणेन (**नेषि**) प्राप्नोषि । अत्र बहुलं छन्दसि ॥ अ० २ । ४ । ७३ ॥ इति शबभावः (**गोभिः**) धेनुभिः सुष्ठुवाग्युक्तैर्व्यवहारैर्वा (**सम्**) (**सूरिभिः**) मेधाविभिर्विद्वद्भिरिव (**मघवन्**) परमपूजितधनयुक्त ! (**सम्**) (**स्वस्त्या**) सुखेन (**सम्**) (**ब्रह्मणा**) बृहता=वेदज्ञानेन धनेन वा । ब्रह्मेति धननामसु पठितम् ॥ निघं० २ । १० ॥ (**देवकृतम्**) इन्द्रियकृतं कर्म्म (**यत्**) (**अस्ति**) (**सम्**) (**देवनाम्**) आप्तानां विपश्चिताम् (**सुमतौ**) शोभनायां बुद्धाविव (**यज्ञियानाम्**) यज्ञस्य पतिं विधातुमर्हाणाम् (**स्वाहा**) सत्यया वाचा ॥ अयं मन्त्रः शत० ४ । ४ । ४ । ७ व्याख्यातः ॥ १५ ॥

प्रमाणार्थ—(**नेषि**) प्राप्नोषि । यहाँ 'बहुलं छन्दसि' (अ० २ । ४ । ७३) इस सूत्र से 'शप्' का अभाव है । (**ब्रह्मणा**) 'ब्रह्म' शब्द निघं० (२ । १०) में धन-नामों में पढ़ा है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । ४ । ४ । ७) की गई है ॥ ८ । १५ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मघवन् !** परम-पूजितधनयुक्त **इन्द्र=विद्यादिपरमैश्वर्ययुक्त सम-ध्यापकोपदेशक ! यतस्त्वं संमनसा** विज्ञानसहितेनान्तःकरणेन **सन्मार्गं, गोभिः** धेनुभिः सुष्ठुवाग्युक्तैर्व्यवहारैर्वा **संस्वस्त्या** सुखेन **पुरुषार्थं, सूरभिः**

भावार्थ—हे (**मघवन्**) परम पूजित धन वाले (**इन्द्र**) विद्या आदि परम ऐश्वर्य से युक्त उत्तम अध्यापक और उपदेशक ! क्योंकि आप—(**संमनसा**) विज्ञानयुक्त अन्तःकरण से सन्मार्ग को, (**गोभिः**) गायों वा उत्तम वाणी-व्यवहारों से एवं

मेधाविभिर्विद्वद्भिरिव **सह ब्राह्मणा** बृहता वेदज्ञानेन धनेन वा **विद्यां, [यत्] यज्ञियानां** यज्ञस्य पतिं विद्यातुमर्हाणां **देवानाम्** आप्तानां विपश्चितां **स्वाहा** सत्यया वाचा **सुमतौ** शोभनायां बुद्धाविव **देवकृतम्= यज्ञकृत** इन्द्रियकृतं कर्म्म **[अस्ति तत्] नः=अस्मान् सम्-नेषि** प्राप्नोषि **तस्माद् भवानस्माभिः सत्कर्त्तव्योऽसि** ॥ ८ । १५ ॥

(**संस्वस्त्या**) सुख से पुरुषार्थ को, (**सूरिभिः**) मेधावी विद्वानों के साथ (**ब्रह्मणा**) महान् वेदज्ञान वा धन से विद्या को [**यत्**] और जो (**यज्ञियानाम्**) यज्ञ के पति बनने के योग्य (**देवानाम्**) आप्त विद्वानों की (**स्वाहा**) सत्य वाणी से (**सुमतौ**) उत्तम बुद्धि में (**देवकृतम्**) यज्ञ कर्म [**अस्ति**] है उसे (**नः**) हमें (**सन्नेषि**) प्राप्त कराते हो इसलिये आप हमारे पूज्य हो ॥ ८ । १५ ॥

[हे मघवन्निन्द्र=विद्यादिपरमैश्वर्ययुक्त समध्यापकोपदेशक ! यतस्त्वं संमनसा सन्मार्गं, गोभिः संस्वस्त्या पुरुषार्थं···नः=अस्मान् सम्+नेषि, तस्माद् भवानस्माभिः सत्कर्त्तव्योऽस्ति]

भावार्थः—गृहस्थैर्विद्वांसोऽतः पूजनीया यतस्ते बालकान् स्वशिक्षया सुगुणयुक्तान् राजाप्रजाजनांश्चैश्वर्यसहितान् सम्पादयन्ति ॥ ८ । १५ ॥

भावार्थ—गृहस्थ लोग विद्वानों की इसलिये पूजा करें कि जिससे वे बालकों को अपनी शिक्षा के द्वारा श्रेष्ठ गुणों से, राजा और प्रजा जनों को ऐश्वर्य से युक्त करते हैं ॥ ८ । १५ ॥

भाष्यसार—मित्रों का कर्त्तव्य—विद्या आदि परम पूजित धन से युक्त श्रेष्ठ अध्यापक और उपदेशक लोग गृहस्थ जनों के मित्र हैं क्योंकि वे विज्ञान युक्त मन से सन्मार्ग का उपदेश करते हैं। गौ आदि पशुओं की रक्षा, सत्यभाषण आदि उत्तम वाग्व्यवहार तथा अन्य सुख के साधनों से पुरुषार्थ (**धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष**) प्राप्ति का उपदेश करते हैं। मेधावी विद्वानों के द्वारा उत्तम शिक्षा से महान् वेदज्ञान वा धन सहित विद्या को प्राप्त करने का बालकों, राजा और प्रजा जनों को उपदेश करते हैं। यज्ञ के पति बनने के योग्य आप्त विद्वानों की सत्यभाषण युक्त वाणी से सुमति की प्राप्ति के लिये यज्ञकर्म का उपदेश करते हैं। इसलिये सबके सत्कार के योग्य होते हैं ॥ ८ । १५ ॥

संवर्चसा इत्यस्यात्रिः । **गृहपतिः=गृहस्थः** ॥ विराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तदेवाह ॥

मित्र के कर्त्तव्य का फिर उपदेश किया है ॥

सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सꣳ शिवेन ।
त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् ॥ १६ ॥

पदार्थः—(**सम्**) एकीभावे (**वर्चसा**) तेजसा (**पयसा**) रात्र्या । पय इति रात्रिनामसु पठितम् ॥ निघं० १ । ७ ॥ (**सम्**) (**तनुभिः**) बलविशिष्टशरीरैर्विद्वद्भिः । (**अगन्महि**) प्राप्नुयाम (**मनसा**) मननेन (**सम्**) (**शिवेन**) सुखप्रदेन (**त्वष्टा**) अविद्याविच्छेदकः (**सुदत्रः**) सुष्ठुज्ञानकर्ता (**विदधातु**) (**रायः**) विद्यादिधनानि (**अनु**) (**मार्ष्टु**) (**तन्वः**) शरीरस्य (**यत्**) (**विलिष्टम्**) रोमादिमललेशम् ॥ अयं मन्त्रः शत० ४ । ४ । ४ । ८ व्याख्यातः ॥ १६ ॥

प्रमाणार्थ—(**पयसा**) रात्र्या । 'पयः' शब्द निघं० (१ । ७) में रात्रि-नामों में पढ़ा है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । ४ । ४ । ८) में की गई है ॥ ८ । १६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे आप्ता विद्वांसः!

भाषार्थ—हे आप्त विद्वानो ! आपकी

युष्माकं सुमतौ प्रवृत्ता वयं—**यो युष्माकं मध्ये** श्रेष्ठः **सुदत्रः** सुष्ठुज्ञानकर्त्ता **त्वष्टा** अविद्याविच्छेदकः **विद्वानस्मभ्यं संवर्चसा** तेजसा **पयसा** रात्र्या **संतनूभिः** बलविशिष्टशरीरैर्विद्वद्भिः **सं शिवेन** सुखप्रदेन **मनसा** मननेन **यान् रायः** विद्यादिधनानि **विदधातु, यत्तन्वः** शरीरस्य **विलिष्टं** रोमादिमललेशम् **अनुमार्ष्टु, तैस्ताँस्तच्चागन्महि** प्राप्नुयाम ॥ ८ । १६ ॥

सुमति में प्रवृत्त हुये हम लोग—जो हमारे मध्य में श्रेष्ठ (**सुदत्रः**) उत्तम ज्ञान का दाता, (**त्वष्टा**) अविद्या का विच्छेन करने वाला विद्वान् हमारे लिये (**संवर्चसा**) तेजोयुक्त दिन तथा (**पयसा**) रात्रि से, (**संतनूभिः**) बलवान् शरीरों वाले विद्वानों से, (**संशिवेन**) सुखदायक (**मनसा**) मनन से जिन (**रायः**) विद्या आदि धनों का (**विदधातु**) विधान करे और जो (**तन्वः**) शरीर के (**विलिष्टम्**) रोम आदि मलों का लेश है उसे (**अनुमार्ष्टु**) बार-बार शुद्ध करो। उक्त दिन आदि साधनों से उक्त धनों को प्राप्त करें तथा उक्त मल को साफ करें ॥ ८ । १६ ॥

[हे आप्ता विद्वांसः ! युष्माकं सुमतौ प्रवृत्ता वयं—यो युष्माकं मध्ये विद्वानस्मभ्यं संवर्चसा पयसा'''यान् रायो विदधातु यत्तन्वो विलिष्टमनुमार्ष्टु, तैस्ताँस्तच्चागन्महि]

भावार्थः—मनुष्यैरहर्निशमाप्तसंगेन धर्मार्थकामोक्षाः सम्यक् साधनीयाः ॥ ८ । १६ ॥

भावार्थ—सब मनुष्य दिन-रात आप्त विद्वानों के संग से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को उत्तम रीति से सिद्ध करें ॥ ८ । १६ ॥

भा० पदार्थः—संवर्चसा=अह्ना । रायः=धर्मार्थकाममोक्षान् ॥

भाष्यसार—**मित्रों का कर्त्तव्य**—आप्त विद्वान् लोग गृहस्थ जनों के मित्र होते हैं अतः उनकी सम्मति के अनुसार कार्यों में प्रवृत्त होकर गृहस्थ लोग दिन-रात बलवान् आप्त विद्वानों के संग से तथा कल्याणकारी मन से विद्या आदि धनों एवं धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सिद्ध करें। शरीर के सब मलों का मार्जन करें ॥ ८ । १६ ॥ ●

अत्रिः । **विश्वेदेवा गृहपतयः**=**विद्वांसो गृहस्थाः** ॥ स्वराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनर्गार्हस्थ्यकर्म्म आह ॥

गृहस्थों के कर्म्म का फिर उपदेश किया है ॥

धाता रातिः सवितेदं जुषन्तां प्रजापतिर्निधिपा देवो ऽ अग्निः ।
त्वष्टा विष्णुः प्रजया सꣳरराणा यजमानाय द्रविणं दधात स्वाहा ॥ १७ ॥

पदार्थः—(**धाता**) गृहाश्रमधर्त्ता (**रातिः**) सर्वेभ्यः सुखदायकः (**सविता**) सकलैश्वर्य्योत्पादकः (**इदम्**) गृहकृत्यम् (**जुषन्ताम्**) प्रीत्या सेवन्ताम् (**प्रजापतिः**) सन्तानादिपालकः (**निधिपाः**) विद्यावृद्धिरक्षकाः (**देवः**) दोषविजेता (**अग्निः**) अविद्यान्धकारदाहकः (**त्वष्टा**) सुखविस्तारकः (**विष्णुः**) सर्वशुभगुणकर्म्मसु व्याप्तः (**प्रजया**) स्वसंतानादिना (**संरराणाः**) सम्यग्दातारः सन्तः (**यजमानाय**) यज्ञानुष्ठात्रे (**द्रविणम्**) द्रवन्ति भूतानि यस्मिन् तद्धनम् । द्रविणमिति धननामसु पठितम् ॥ निघं० २ । १० ॥ (**दधात**) धरत (**स्वाहा**) सत्यया क्रियया ॥ अयम्मन्त्रः शत० ४ । ४ । ४ । ६ व्याख्यातः ॥ १७ ॥

प्रमाणार्थ—(**द्रविणम्**) यह शब्द निघं० (२ । १०) में धन-नामों में पढ़ा है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । ४ । ४ । ६) में की गई है ॥ ४ । १७ ॥

सपदार्थान्वयः— हे गृहस्थाः ! भवन्तो-धाता गृहाश्रमधर्त्ता **रातिः** सर्वेभ्यः सुख-दायकः **सविता** सकलैश्वर्योत्पादकः **प्रजापतिः** सन्तानादिपालकः **निधिपाः** विद्यावृद्धिरक्षकाः **देवः** दोषविजेता **अग्निः** अविद्याऽन्धकारदाहकः **त्वष्टा** सुखविस्तारकः **विष्णुः** सर्वशुभगुणकर्म्मसु व्याप्तः **इवैतत्स्वभावा भूत्वा प्रजया** स्वसन्तानादिना सह **संरराणाः** सम्यग्दातारः सन्तः **स्वाहा** सत्यया क्रियया इदं गृहकृत्यं **जुषन्तां** प्रीत्या सेवन्ताम्, **बलवन्तो भूत्वा यजमानाय** यज्ञानुष्ठात्रे **स्वाहा** सत्यया क्रियया **द्रविणं** द्रवन्ति भूतानि यस्मिंतद् धनं **दधात** धरत ॥ ८ । १७ ॥

भाषार्थ—हे गृहस्थो ! आप लोग—(**धाता**) गृहाश्रम को धारण करने वाले, (**रातिः**) सबके लिये सुखदायक, (**सविता**) सकल ऐश्वर्य के उत्पादक, (**प्रजापतिः**) सन्तान आदि के पालक, (**निधिपाः**) विद्यावृद्धि के रक्षक, (**देवः**) दोषों के विजेता, (**अग्निः**) अविद्या-अन्धकार के नाशक, (**त्वष्टा**) सुख के विस्तारक, (**विष्णुः**) शुभ गुण कर्मों में व्यापक इन स्वभावों वाले होकर (**प्रजया**) अपने सन्तान आदि के सहित (**संरराणाः**) उत्तम दाता होकर (**स्वाहा**) सत्यकर्म से (**इदम्**) इस गृह-कार्य का (**जुषन्ताम्**) प्रीतिपूर्वक सेवन करो, बलवान होकर (**यजमानाय**) यज्ञ करने वाले पुरुष के लिये (**स्वाहा**) सत्य कर्म से (**द्रविणम्**) धन को (**दधात**) धारण करो ॥ ८ । १७ ॥

[हे गृहस्थाः ! भवन्तो-धाता रातिः सविता प्रजापतिः··· देवः ···त्वष्टा···इवैतत्स्वभावा भूत्वा···इदं जुषन्ताम्, बलवन्तो भूत्वा···द्रविणं दधात]

भावार्थः—गृहस्थैः सततं यथोचितसमये गृहाश्रमे स्थित्वा सद्गुणकर्मधारणमैश्वर्योन्नति-रक्षणे, प्रजापालनं, सुपात्रेभ्योदानं, दुःखिनां दुःख-च्छेदनं, शत्रुविजयः, शरीरात्मबलप्राप्तिश्च धार्य्या ॥ ८ । १७ ॥

भावार्थ—गृहस्थ लोग सदा यथोचित समय में गृहाश्रम में रहकर शुभ गुण-कर्मों का धारण, ऐश्वर्य की उन्नति तथा रक्षा, प्रजा का पालन, सत्यपात्रों को दान, दुःखी जनों के दुःखों का निवारण, शत्रुओं पर विजय, शारीरिक और आत्मिक बल को धारण करे ॥ ८ । १७ ॥

भा० पदार्थः—धाता=सद्गुणकर्मधर्ता । रातिः=सुपात्रेभ्यो दाता सविता=ऐश्वर्यस्य । समुन्नेता रक्षकश्च । प्रजापतिः=प्रजापालकः । देवः=शत्रुविजेता । त्वष्टा=दुःखिनां दुःखच्छेदकः ॥ ८ । १७ ॥

भाष्यसार—**गृहस्थ के कर्म**—गृहस्थ लोग यथोचित समय में गृहाश्रम में रहकर शुभ गुण-कर्मों को धारण करें । सबको सुख प्रदान करें एवं सत्पात्रों को दान करें । सकल ऐश्वर्य के उत्पादक, उन्नायक और रक्षक हों । सन्तान तथा प्रजा के पालक हों । विद्या की वृद्धि और रक्षा करने वाले हों । दोषों और शत्रुओं को जीतने वाले हों । अविद्या अन्धकार को नष्ट करने वाले हों । सुखों का विस्तार करने वाले एवं दुःखों के उच्छेदक हों । सब शुभ गुण-कर्मों में वर्तमान रहें । अपने सन्तानों के सहित श्रेष्ठ दानी बनकर सत्य कर्मों से घर के कार्यों का प्रीतिपूर्वक सेवन करें । शारीरिक और आत्मिक बल को प्राप्त करके यज्ञ आदि शुभ कर्मों का अनुष्ठान करने वाले जनों के लिये धन को धारण करें ॥८।१७॥

अत्रिः । **गृहपतयः**=गृहस्थाः ॥ आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनर्गृहकृत्यमाह ॥

घर के कार्यों का फिर उपदेश किया है ॥

सुगा वों देवाः सदनाऽअकर्म्म य ऽ आजग्मेदथं सवनं जुषाणाः ।
भरमाणा वहमाना हवीथंष्यस्मे धत्त वसवो वसूनि स्वाहा ॥ १८ ॥

पदार्थः—(**सुगा**) सुष्ठु गन्तुं=प्राप्तुं योग्यानि । अत्र शेश्छन्दसि बहुलम् ॥ अ० ६ । १ । ७० ॥ इति लुक् (**वः**) युष्माकम् (**देवाः**) व्यवहारमाणाः (**सदना**) सीदंति=गच्छन्ति पुरुषार्थेन येषु तानि गृहाणि (**अकर्म्म**) अकार्ष्म कुर्याम । अत्र डुकृञ् धातोर्लुङि मन्त्रे घस० ॥ अ० २ । ४ । ८० ॥ इत्यादिना च्लेर्लुक् (**ये**) (**आजग्म**) प्राप्नुवन्तु (**इदम्**) प्रत्यक्षम् (**सवनम्**) ऐश्वर्यम् (**जुषाणाः**) सेवमानाः (**भरमाणाः**) धरमाणाः (**वहमानाः**) प्राप्नुवंतः (**हवींषि**) दातुमादातुमर्हाणि (**अस्मे**) अस्मभ्यम् । अत्र भ्यसः स्थाने सुपां सुलुक् ॥ अ० ७ । १ । ३९ ॥ इति शे इत्यादेशः (**धत्त**) धरत (**वसवः**) ये वसंति सद्गुणकर्मसु ते (**वसूनि**) धनानि । वस्विति धननामसु पठितम् । निघं० २ । १० ॥ (**स्वाहा**) श्रेष्ठक्रियया । अयं मन्त्रः शत० ४ । ४ । ४ । व्याख्यातः ॥ १८ ॥

यास्कमुनिराह—सुगा वो देवाः सदनमकर्म्म य आजग्मुः सवनमिदं जुषाणाः जक्षिवांसः पपिवांसश्च विश्वेऽस्मे धत्त वसवो वसूनि स्वाहा मनानि वो देवाः सुपथान्यकर्म्म य आगच्छत सवनानीमानि जुषाणाः स्वादितवंतः पीतवन्तश्च सर्वेऽस्मासु धत्त वसवो वसूनि ॥ निरु० १२ । ४२ ॥ १८ ॥

प्रमाणार्थ—(**सुगा**) यहाँ 'शेश्छन्दसि बहुलम्' (**अ०** ६ । १ । ७०) सूत्र से शि का लुक् होता है । (**अकर्म**) यहाँ डुकृञ् धातु से लुङ् लकार में 'मन्त्रे घस०' (**अ०** २ । ४ । ८०) सूत्र से च्लिप्रत्यय का लुक् हुआ है । (**अस्मे**) यहाँ भ्यस् प्रत्यय के स्थान पर 'सुपां सुलुक्०' (**अ०** ७ । १ । ३९) सूत्र से शे आदेश हुआ है । (**वसूनि**) 'वसु' शब्द का निघण्टु में (**नि०** २ । १०) धन के नामों में पाठ है । इस मन्त्र की व्याख्या (**शत०** ४ । ४ । ४ । १०) में व्याख्या की है । यास्क मुनि ने निरुक्त में (**नि०** १२ । ४२) इस मन्त्र की व्याख्या की है ।

सपदार्थान्वयः—हे वसवः ! ये वसन्ति सद्गुणकर्मसु ते **देवाः** ! व्यवहारमाणाः, **ये वयं स्वाहा** श्रेष्ठक्रियाया **इदं** प्रत्यक्षं **सवनम्** ऐश्वर्यं **जुषाणाः** सेवमानाः **भरमाणाः** धरमाणाः **वहमानाः** प्राप्नुवन्तः **वः**=**युष्मभ्यं यानि सुगा** सुष्ठु गन्तुं=प्राप्तुं योग्यानि **सदना** सीदन्ति=गच्छन्ति पुरुषार्थेन येषु तानि गृहाणि **हवींषि** दातुमादातुमर्हाणि **वसूनि** धनानि **अकर्म्म** अकार्ष्म, कुर्याम, **आजग्म** प्राप्नुवन्तु **तेभ्योऽस्मे** अस्मभ्यं **तानि यूयमपि धत्त** धरत ॥ ८ । १८ ॥

भाषार्थ—हे (**वसवः**) शुभ गुण कर्मों में वास करने वाले (**देवाः**) व्यवहार-कुशल विद्वानो ! जो हम लोग (**स्वाहा**) श्रेष्ठ कर्म से (**इदम्**) इस (**सवनम्**) ऐश्वर्य को (**जुषाणाः**) सेवन (**भरमाणाः**) धारण (**वहमानाः**) प्राप्त करके (**वः**) तुम्हारे लिये जिन (**सुगा**) अच्छी प्रकार प्राप्त करने योग्य (**सदना**) घरों को तथा (**हवींषि**) देने और लेने योग्य (**वसूनि**) धनों को (**अकर्म**) उत्पन्न करें उन्हें आप (**आजग्म**) प्राप्त करो । (**अस्मे**) हमारे लिये उन्हें आप भी (**धत्त**) धारण करो ॥ ८ । १८ ॥

[हे वसवः ! देवा ये वयं······इदं सवनं जुषाणा······सदना······वसून्यकर्माजग्म तेभ्योऽस्मे तानि यूयमपि धत्त]

भावार्थः—यथा पितृपतिश्वशुरश्वश्रूमित्रस्वामिनः पदार्थैः पुत्रपुत्रीस्त्रीसखिभृत्यानां पालनं कुर्वन्तः सुखं ददति तथैव पुत्रादयोऽप्येतेषां सेवनं कुर्य्युः ॥ ८ । १८ ॥

भावार्थ—जैसे पिता, पति, श्वशुर, सास, मित्र और स्वामी लोग नाना पदार्थों से पुत्र, पुत्री, स्त्री, मित्र और भृत्य जनों का पालन करके सुख प्रदान करते हैं वैसे पुत्र आदि भी इनकी सेवा किया करें ॥ ८ । १८ ॥

भा० पदार्थः—देवाः=पितृपतिश्वशुरश्वश्रूमित्रस्वामिनः ॥

भाष्यसार—घर के कार्य—शुभ गुण-कर्मों में निवास करने वाले पिता, पति, श्वशुर, सास, मित्र, स्वामी आदि देव जनों के लिये पुत्र, पुत्री, स्त्री, मित्र, भृत्य आदि लोग श्रेष्ठ कर्मों से ऐश्वर्य को प्राप्त करें। अर्थात् ऐश्वर्य से देव-जनों की सेवा करें तथा देव-जन भी पुत्र आदि का पालन करके इन्हें सुख प्रदान करें। ऐश्वर्य से सुखदायक घरों का निर्माण करें। लेन-देन के योग्य धनों को प्राप्त करें तथा उन्हें बढ़ावें ॥ ८ । १८ ॥ ●

अत्रिः । **विश्वेदेवा गृहपतयः**=विद्वांसो गृहस्थाः ॥ भुरिगार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनर्गृहकृत्यमाह ॥

घर के कार्यों का फिर उपदेश किया है ॥

याँ२ऽ आवह ऽ उशतो देव देवाँस्तान् प्रेरय स्वे ऽ अग्ने सधस्थे ।
जक्षिवाꣳसः पपिवाꣳसश्च विश्वेऽसुं घर्म्मꣳ स्वरातिष्ठतानु स्वाहा ॥ १९ ॥

पदार्थः—(**यान्**) वक्ष्यमाणान् (**आ**) (**अवहः**) प्राप्नुयाः (**उशतः**) विद्यादिसद्गुणान् कामयमानान् (**देव**) दिव्यशीलयुक्ताध्यापक ! (**देवान्**) विदुषः (**तान्**) (**प्र**) (**ईरय**) नियोजय (**स्वे**) स्वकीये (**अग्ने**) विज्ञानाढ्य विद्वन् ! (**सधस्थे**) सहस्थाने (**जक्षिवांसः**) अन्नं जग्धवन्तः (**पपिवांसः**) पीतवन्तः (**च**) अन्यसुखसेवनसमुच्चये (**विश्वे**) सर्वे (**असुम्**) प्रज्ञाम् । असुरिति प्रज्ञानामसु पठितम् ॥ निघं० ३ । ९ ॥ अस्यति दोषाननेन सोऽसुः=प्रज्ञा ताम् (**धर्म्मम्**) अन्नं यज्ञं वा । धर्म्म इत्यन्ननामसु पठितम् ॥ निघं० १ । ९ ॥ यज्ञनामसु च ॥ निघं० ३ । १७ ॥ (**स्वः**) सुखम् (**आ**) सर्वतः (**तिष्ठत**) (**अनु**) (**स्वाहा**) सत्यया वाचा ॥ अयं मन्त्रः शत० ४ । ४ । ४ । ११ व्याख्यातः ॥ १९ ॥

प्रमाणार्थ—(**असुम्**) 'असु' शब्द निघं० (३ । ९) में प्रज्ञा-नामों में पढ़ा है । (**धर्मम्**) 'धर्म' शब्द निघं० (१ । ९) में अन्न-नामों में और निघं० (३ । १७) में यज्ञ-नामों में पढ़ा है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । ४ । ४ । ११) में की गई है ॥ ८ । १९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे देव ! दिव्यशीलयुक्ताध्यापक **अग्ने** ! विज्ञानाढ्य विद्वन् ! **त्वं स्वे** स्वकीये **सधस्थे** सहस्थाने **यान्** वक्ष्यमाणान् **उशतः** विद्यादिसद्गुणान् कामयमानान् **देवान्** विदुषः **आ-अवहः** प्राप्नुयाः **तान्** धर्म्मे **प्रेरय** नियोजय ।

हे गृहस्थाः ! **जक्षिवांसः** अन्नं जग्धवन्तः **पपिवांसः** पीतवन्तः **विश्वे** सर्वे **यूयं स्वाहा** सत्यया वाचा **धर्म्मम्** अन्नं यज्ञं वा **असुं** प्रज्ञाम् अस्यति दोषाननेन सोऽसुः=प्रज्ञा ताम्, **स्वः** सुखं **चानु-आ-तिष्ठत**

भाषार्थ—हे (**देव**) दिव्य स्वभाव से युक्त अध्यापक एवं (**अग्ने**) विज्ञानवान् विद्वान् ! तू (**त्वे**) अपने (**सधस्थे**) घर में (**यान्**) जिन (**उशतः**) विद्या आदि शुभ गुणों की कामना करने वाले (**देवान्**) विद्वानों को (**आवहः**) प्राप्त करता है उन्हें धर्म में (**प्रेरय**) प्रेरित कर, लगा।

हे गृहस्थो ! (**जक्षिवांसः**) अन्न आदि भक्ष्य पदार्थों को खाने वाले तथा (**पपिवांसः**) दुग्ध आदि को पीने वाले होकर (**विश्वे**) तुम सब लोग (**स्वाहा**) सत्यवाणी से (**धर्मम्**) अन्न वा यज्ञ को,

सर्वतस्तिष्ठत ॥ ८ । १९ ॥

(असुम्) दोषों को दूर फेंकने वाली प्रजा को और (स्वः) सुख को (अनु-आ-तिष्ठत) सब ओर से प्राप्त करो ॥ ८ । १९ ॥

[हे देवाग्ने ! त्वं···देवानावहस्तान् धर्मे प्रेरय, हे गृहस्थाः !···यूयं स्वाहा धर्ममसुं स्वश्चान्वातिष्ठ]

भावार्थः—इहाध्यापकेनोपदेष्ट्रा ये जना विद्यां शिक्षां प्रापिताः सत्यधर्म्म कर्माचारिणो भवेयुस्ते सुखभाजिनः स्युर्नेतरे ॥ ८ । १९ ॥

भावार्थ—इस संसार में उपदेश करने वाले अध्यापक के द्वारा जो लोग विद्या और शिक्षा को प्राप्त होकर सत्य धर्म और कर्म का आचरण करने वाले होते हैं वे ही सुख भागी होते हैं; दूसरे नहीं ॥ ८ । १९ ॥

भाष्यसार—**घर के कार्य**—उपदेश करने वाले अध्यापक लोग दिव्य शील से युक्त हों, तथा वे विज्ञान से भरपूर विद्वान् हों, वे विद्या आदि शुभ गुणों की कामना करने वाले विद्वानों को प्राप्त करें तथा उन्हें धर्माचरण में प्रेरित करें, क्योंकि जो सत्यधर्म और सत्यकर्म का अनुष्ठान करते हैं वे ही सुखभागी होते हैं, दूसरे नहीं। गृहस्थ लोग उत्तम अन्न का भक्षण करने वाले तथा दुग्ध आदि पदार्थों का पान करने वाले हों। सत्यभाषण आदि शुभ कर्मों से अन्न, यज्ञ, प्रज्ञा और सब सुखों को प्राप्त करें ॥ ८ । १९ ॥

अत्रिः । **गृहपतयः**=**गृहस्थाः** ॥ स्वराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

अथ व्यवहारिणे गृहस्थायोपदिशति ॥

अब व्यवहार करने वाले गृहस्थ के लिये ईश्वर उपदेश करता है ॥

व॒यꣳ हि त्वा॑ प्र॒यति॑ य॒ज्ञे ऽअ॒स्मिन्नग्ने॒ होता॑र॒मवृ॑णीमही॒ह ।

ऋध॑गया॒ ऽऋध॑गु॒ताश॑मिष्ठाः प्र॒जा॒नन् य॒ज्ञमुप॑याहि वि॒द्वान्त्स्वाहा॑ ॥ २० ॥

पदार्थः—(**वयम्**) गृहाश्रमस्थाः (**हि**) यतः (**त्वा**) विद्वांसम् (**प्रयति**) प्रयत्यते जनैर्यस्तस्मिन्। **कृतो बहुलम् ॥ अ० ३ । ३ । १३ वा० ॥ इति कर्म्मणि क्विप्** (**यज्ञे**) सम्यग्ज्ञातव्ये (**अस्मिन्**) (**अग्ने**) विज्ञापक विद्वन् ! (**होतारम्**) यज्ञनिष्पादकम् (**अवृणीमहि**) स्वीकुर्वीमहि । **अत्र लिङर्थे लङ्** (**इह**) अस्मिन् संसारे (**ऋधक्**) समृद्धिवर्द्धके (**अयाः**) यजेः=सङ्गच्छस्व । **अत्र लिङर्थे लङ्** (**ऋधक्**) समृद्धिर्यथास्यात्तथा (**उत**) अपि (**अशमिष्ठाः**) शमादिगुणान् गृहाण (**प्रजानन्**) (**यज्ञम्**) (**उप**) (**याहि**) उपगतं प्राप्नुहि (**विद्वान्**) वेत्ति यज्ञविद्याक्रियाम् (**स्वाहा**) शास्त्रोक्तया क्रियया ॥ **अयं मन्त्रः शत० ४ । ४ । ४ । १२ व्याख्यातः ॥२०॥**

प्रमाणार्थ—(**प्रयति**) यहाँ 'कृतो बहुलम्' (अ० ३ । ३ । ११३) इस वार्तिक से कर्म-कारक में 'क्विप्' प्रत्यय है। (**अवृणीमहि**) यहाँ लिङ्-अर्थ में लङ् लकार है (**अयाः**) यहाँ लिङ्-अर्थ में लङ् लकार है इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । ४ । ४ । १२) में की गई है ॥ ८ । २० ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने** ! विज्ञापक विद्वन् **वयं** गृहाश्रमस्थाः **इह** अस्मिन् संसारे [**अस्मिन्**] **प्रयति** प्रयत्यते जनैर्यस्तस्मिन् **यज्ञे** सम्यग्ज्ञातव्ये **त्वा** विद्वांसं [**हि**] यतः **होतारं** यज्ञनिष्पादकं **अवृणीमहि** स्वीकुर्वीमहि, **विद्वान्**

भावार्थ—हे (**अग्ने**) उपदेश करने वाले विद्वान् ! (**वयम्**) हम गृहस्थ लोग (**इह**) इस संसार में [**अस्मिन्**] इस (**प्रयति**) प्रयत्न-साध्य (**यज्ञे**) उत्तम रीति से जानने योग्य यज्ञ में (**त्वा**) आप विद्वान् पुरुष को [**हि**] जिससे (**होतारम्**)

वेत्ति यज्ञविद्याक्रियां **प्रजानँस्त्वमस्मा**न्**अयाः** यजेः= संगच्छस्व, **ऋधक्** समृद्धिवर्द्धकं **यज्ञं स्वाहा** शास्त्रोक्तया क्रियया **उपयाहि** उपगतं प्राप्नुहि, **उत**=**अपि याहि, ऋधक्** समृद्धिर्यथा स्यात्तथा **अशमिष्ठाः** शमादिगुणान् गृहाण ॥ ८ । २० ॥

यज्ञ करने वाला होता (**अवृणीमहि**) स्वीकार करते हैं, इसलिये आप (**विद्वान्**) यज्ञ की विद्या और क्रिया को जानने वाले (**प्रजानन्**) तत्त्ववेत्ता होकर आप हम से (**अयाः**) मिल जाओ (**ऋधक्**) समृद्धि को बढ़ाने वाले (**यज्ञम्**) यज्ञ को (**स्वाहा**) शास्त्रोक्त क्रिया से (**उपयाहि**) हमारे समीप प्राप्त करो (**उत**) और (**याहि**) चले जाओ, तथा (**ऋधक्**) जिस प्रकार समृद्धि हो सके वैसे (**अशमिष्ठाः**) शम आदि गुणों को ग्रहण करो ॥ ८ । २० ॥

[हे अग्ने ! वयमिह [अस्मिन्] प्रयति यज्ञे त्वा [हि] होतारमवृणीमहि]

भावार्थः—सर्वेषां व्यवहरतां योग्यतास्ति—यो मनुष्यो यत्र कर्मणि विचक्षणः स तस्मिन्नेव कार्येऽभिप्रयोज्यः ॥ ८ । २० ॥

भावार्थ—सब व्यवहारी जनों को योग्य है कि जो मनुष्य जिस कर्म में चतुर हो उसे उसी कार्य में प्रवृत्त करें ॥ ८ । २० ॥

भाष्यसार—**व्यवहारी गृहस्थ के लिये उपदेश**—व्यवहारी गृहस्थ लोग इस संसार में उपदेश करने वाले विद्वान् पुरुष को यज्ञ में होता (**यज्ञसाधक**) नियुक्त करें, और जो मनुष्य जिस कर्म में कुशल हो उसे उसी कर्म में प्रवृत्त किया करें। यज्ञ की विद्या और क्रिया को जानने वाला विद्वान् गृहस्थ-जनों के साथ संगत रहे और उन्हें समृद्धि-कारक यज्ञ का शास्त्रोक्त क्रिया के अनुसार उपदेश किया करे। गृहस्थ जनों की जिस विधि से समृद्धि हो वैसे शम आदि गुणों की शिक्षा किया करे ॥ ८ । २० ॥

अत्रिः । **गृहपतयः**=गृहस्थाः । स्वराडार्ष्युष्णिक् । ऋषभः ॥

पुनर्गृहस्थकर्म्मविधिमाह ॥

गृहस्थों का कर्म का फिर उपदेश किया है ॥

देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित । मनसस्पत ऽ इमं यज्ञꣳ स्वाहा वाते धाः ॥ २१ ॥

पदार्थः—(**देवाः**) सत्यासत्यस्तावका गृहस्थाः (**गातुविदः**) स्वगुणकर्मस्वभावेन गातुं=पृथ्वीं विदन्तः । गातुरिति पृथ्वीनामसु पठितम् ॥ निघं० १ । १ ॥ (**गातुम्**) भूगर्भ विद्यान्वितं भूगोलम् (**वित्त्वा**) विज्ञाय (**गातुम्**) पृथिवीराज्यादिनिष्पन्नमुपकारम् (**इत**) प्राप्नुत (**मनसस्पते**) निगृहीतमनाः (**इमम्**) प्राप्तम् (**देव**) दिव्यविद्याव्युत्पन्न (**यज्ञम्**) सर्वसुखावहं गृहाश्रमम् (**स्वाहा**) धर्म्मया क्रियया (**वाते**) विज्ञातव्ये व्यवहारे । वात इति पदनामसु पठितम् ॥ निघं० ५ । ४ ॥ (**धा**) धेहि । अत्राडभावः ॥ अयं मन्त्रः शत० ४ । ४ । ४ । १३ व्याख्यातः ॥ २१ ॥

प्रमाणार्थ—(**गातुविदः**) 'गातु' शब्द निघं० (१ । १) में पृथिवी नामों में पढ़ा है। (**वाते**) 'वात' शब्द निघं० (५ । ४) में पद-नामों में पढ़ा है। (धाः) यहां 'अट्' का अभाव है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । ४ । ४ । १३) में की गई है ॥ ८ । २१ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **गातुविदः** स्वगुणकर्मस्वभावेन गातुं=पृथ्वीं विदन्तः **देवाः** !

भाषार्थ—हे (**गातुविदः**) अपने गुण, कर्म, स्वभाव से पृथिवी को जानने वाले (**देवाः**) सत्य

सत्यासत्यस्तावका गृहस्थाः **यूयं** **गातुं** भूगर्भविद्यान्वितं भूगोलं **वित्त्वा** विज्ञाय **गातुं** पृथिवीराज्यादिनिष्पन्नमुपकारम् **इत** प्राप्नुत ।

हे **मनसस्पते** निगृहीतमनाः **देव** ! दिव्यविद्याव्युत्पन्न **प्रतिगृहस्थस्त्वं** **स्वाहा** धर्म्मया क्रियया **इमं** प्राप्तं यज्ञं सर्वसुखावहं गृहाश्रमं **वाते** विज्ञातव्ये व्यवहारे **धाः** धेहि ॥ ८ । २१ ॥

और असत्य को यथार्थ कहने वाले गृहस्थो ! तुम लोग (**गातुम्**) भूगर्भविद्या से युक्त भूगोल को (**वित्त्वा**) जानकर (**गातुम्**) पृथिवी के राज्य आदि से उत्पन्न उपकार को (**इत**) प्राप्त करो।

हे (**मनसस्पते**) मन को वश में रखने वाले (**देव**) दिव्य विद्या में व्युत्पन्न प्रत्येक गृहस्थ पुरुष ! तू (**स्वाहा**) धर्मयुक्त कर्म से (**इमम्**) इस (**यज्ञम्**) सब सुखों को प्राप्त कराने वाले गृहाश्रम को (**वाते**) लोक-व्यवहार में (**धाः**) धारण कर ॥ ८ । २१ ॥

[हे गातुविदो देवाः ! यूयं गातुं वित्त्वा गातुमित, हे मनसस्पते देव ! प्रतिगृहस्थस्त्वं स्वाहेमं यज्ञं वाते धाः]

भावार्थः—गृहस्थानां योग्यतास्ति अतिप्रयत्नेन भूगर्भादिविद्याः संप्राप्य जितेन्द्रियाः परोपकारिणो भूत्वा सद्धर्मेण गृहाश्रमव्यवहारानुन्नीय सर्वान् प्राणिनः सुखयेयुः ॥ ८ । २१ ॥

भावार्थ—गृहस्थों को योग्य है कि वे अति प्रयत्न से भूगर्भ आदि विद्याओं को प्राप्त करके जितेन्द्रिय तथा परोपकारी होकर सत्य धर्म से गृहाश्रम के व्यवहारों को उन्नत करके सब प्राणियों को सुखी करें ॥ ८ । २१ ॥

भा० पदार्थः—मनसस्पते=जितेन्द्रिय ॥

भाष्यसार—**गृहस्थ के कर्म**—गुण, कर्म, स्वभाव से पृथ्वी को जानने वाले, सत्य और असत्य को यथावत् कहने वाले गृहस्थ लोग भूगर्भ आदि विद्याओं को जानकर पृथिवी के राज्य से होने वाले उपकारों को प्राप्त करें। प्रत्येक गृहस्थ मन का पति अर्थात् जितेन्द्रिय, परोपकारी तथा दिव्य विद्याओं में व्युत्पन्न होकर सत्य धर्म के आचरण से सब सुखों को प्राप्त कराने वाले गृहाश्रम के व्यवहारों को समुन्नत करें तथा यज्ञादि शुभ कर्मों से सब प्राणियों को सुखी करें ॥ ८ । २१ ॥

यज्ञ यज्ञमित्यस्यात्रिऋषिः । **गृहपतयः=गृहस्थाः** ॥ भुरिक् साम्न्युष्णिक् । ऋषभः स्वरः ।
एष इत्यस्य विराडार्ची बृहती । मध्यमः ॥

पुनर्गृहस्थेभ्यो विशेषोपदेशमाह ॥

गृहस्थों के लिए फिर विशेष उपदेश किया है ॥

यज्ञ॑ य॒ज्ञं ग॑च्छ य॒ज्ञप॑तिं गच्छ॒ स्वां योनिं॒ गच्छ॒ स्वाहा॑ ।
ए॒ष ते॑ य॒ज्ञो य॑ज्ञपते स॒हसू॑क्तवाकः॒ सर्व॑वीर॒स्तं जु॑षस्व॒ स्वाहा॑ ॥ २२ ॥

पदार्थः—(**यज्ञ**) यो यजति=संगच्छते सः यज्ञो=गृहस्थस्तत्सम्बुद्धौ । अत्रौणादिको न-प्रत्ययः (**यज्ञम्**) विद्वत्सत्काराख्यं गृहाश्रमधर्म्मम् (**गच्छ**) प्राप्नुहि (**यज्ञपतिम्**) संगम्यानां=गृहाश्रमिणां पालकं राजानम् (**गच्छ**) (**स्वाम्**) स्वकीयाम् (**योनिम्**) प्रकृति=स्वात्मस्वभावम् (**गच्छ**) (**स्वाहा**) सत्यया क्रियया (**एषः**) विद्यमानः (**ते**) तव (**यज्ञ**) सम्पूजनीयः प्रजारक्षणनिमित्तो विद्याप्रचारार्थो गृहाश्रमः (**यज्ञपते**) राजधर्म्माग्निहोत्रादिपालक (**सहसूक्तवाकः**) ऋग्यजुरादिलक्षणैः सूक्तैर्वाकैः सह वर्तमानः (**सर्ववीरः**) शरीरात्मबलसुभूषिताः सर्वे वीरा यस्मात् (**तम्**) (**जुषस्व**) सेवस्व (**स्वाहा**) सत्यन्यायप्रकाशिकया वाचा ॥ अयं मन्त्रः शत० ४ । ४ । ४ । १४ व्याख्यातः ॥ २२ ॥

प्रमाणार्थ--(**यज्ञः**) यहां औणादिक 'न' प्रत्यय है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । ४ । ४ । १४) में की गई है ॥ ८ । २२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **यज्ञ** ! यो यजति =सङ्गच्छते स यज्ञः=गृहस्थस्तत्सम्बुद्धौ **त्वं स्वाहा** सत्यया क्रियया **यज्ञं** विद्वत्सत्काराख्यं गृहाश्रमधर्म्मं **गच्छ** प्राप्नुहि, **यज्ञपतिं** सङ्गम्यानां गृहाश्रमिणां पालकं=राजानं **गच्छ** प्राप्नुहि, **स्वां** स्वकीयां **योनिं** प्रकृतिं स्वात्मस्वभावं **गच्छ** प्राप्नुहि ।

यज्ञपते ! राजधर्माग्निहोत्रादिपालक ! **ते** तव **य एष** विद्यमानः **सहसूक्तवाकः** ऋग्यजुरादिलक्षणैः सूक्तैर्वाकैः सह वर्त्तमानः **सर्ववीरः** शरीरात्मबलसुभूषिताः सर्वे वीरा यस्मात् **यज्ञः** सम्पूजनीयः प्रजारक्षणनिमित्तो विद्याप्रचारार्थो गृहाश्रमः **अस्ति, तं त्वं स्वाहा** सत्यन्याय प्रकाशिकया वाचा **जुषस्व** सेवस्व ॥ ८ । २२ ॥

भाषार्थ—हे (**यज्ञ**) शुभ कर्मों से संगत होने वाले गृहस्थ पुरुष ! तू (**स्वाहा**) सत्य कर्म से (**यज्ञम्**) विद्वानों के सत्कार नामक गृहाश्रम के धर्म को (**गच्छ**) प्राप्त हो, (**यज्ञपतिम्**) सङ्ग करने के योग्य, गृहस्थ-जनों के पालक राजा को (**गच्छ**) प्राप्त हों, और (**स्वाम्**) अपने (**योनिः**) आत्मा के स्वभाव को (**गच्छ**) प्राप्त हो ।

हे (**यज्ञपते**) राजधर्म और अग्निहोत्र आदि के पालक गृहस्थ ! (**ते**) तेरा जो (**एषः**) यह (**सहसूक्तवाकः**) ऋग्वेद और यजुर्वेद के सूक्त एवं अनुवाकों से युक्त, (**सर्ववीरः**) सब वीरों को शरीर और आत्मा के बल से सुभूषित करने वाला, (**यज्ञः**) पूजा के योग्य प्रजा की रक्षा का निमित्त, विद्या का प्रचारक गृहाश्रम है, उसे तू (**स्वाहा**) सत्य और न्याय की प्रकाशक वाणी से (**जुषस्व**) सेवन कर ॥ ८ । २२ ॥

[हे यज्ञ ! त्वं स्वाहा यज्ञं गच्छ, यज्ञपतिं गच्छ, स्वां योनिं गच्छ]

भावार्थः—प्रजाजनो गृहस्थः पुरुषः प्रयत्नेन गृहकर्माणि यथावत् कुर्यात्, राजभक्तया राजाश्रयेण सद्धर्मव्यवहारेण च गृहाश्रमं परिपालयेत्,

भावार्थ—प्रजा-जन गृहस्थ पुरुष प्रयत्न से घर के कार्य किया करें, राजभक्ति, राजाश्रय और धर्मयुक्त व्यवहार से गृहाश्रम का पालन करें ।

[यज्ञपते ! ते य एष सहसूक्तवाकः ··· यज्ञोऽस्ति, तं त्वं स्वाहा जुषस्व]

राजा च सद्विद्याप्रचारेण सर्वान् पोषयेत् ॥ ८ । २२ ॥

और—राजा श्रेष्ठ विद्या के प्रचार से सबका पोषण करे ॥ ८ । २२ ॥

भाष्यसार—**गृहस्थों के लिये विशेष उपदेश**—श्रेष्ठ जनों के साथ सङ्गति रखने वाला गृहस्थ पुरुष यज्ञादि सत्य-कर्मों से विद्वानों के सत्कार रूप गृहाश्रम धर्म को प्राप्त करे । गृहाश्रमी जनों के पालक राजा को प्राप्त करे, राजा में भक्ति रखें एवं राजा का आश्रय ग्रहण करें । अपनी आत्मा के स्वभाव को प्राप्त करे अर्थात् उत्तम धर्मयुक्त व्यवहार करे । राजधर्म और अग्निहोत्र आदि के रक्षक राजा का गृहाश्रम ऋग्वेदादि के सूक्तों का प्रचारक हो, शारीरिक और आत्मिक बल से भूषित वीरों को उत्पन्न करने वाला हो, प्रजा का रक्षक और वेदविद्या के प्रचार का हेतु हो ॥ ८ । २२ ॥

अत्रिः । **गृहपतयः**=गृहस्थाः । आद्यस्य याजुष्युष्णिक् । ऋषभः । उरुमित्यस्य शुनःशेप । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः । नम इत्यस्यासुरी गायत्री । षड्जः ।।

अथ राजोपदेशमाह ।।

अब राजा के लिये उपदेश किया जाता है ।।

माहिर्भूर्म्मा पृदाकुः । उरुᳬहि राजा वरुणश्चकार सूर्य्याय पन्थामन्वेतवा ऽउ । अपदे पादा प्रतिधातवेऽकरुतापवक्ता हृदयाविधश्चित् । नमो वरुणायाभिष्ठितो वरुणस्य पाशः ।। २३ ।।

पदार्थः—(**मा**) निषेधे (**अहिः**) सर्प्पवत् क्रुद्धो विषधरः (**भूः**) भवेः (**मा**) (**पृदाकुः**) कुत्सितवाक् (**उरुम्**) बहुगुणान्वितं न्यायम् (**हि**) खलु (**राजा**) प्रशस्तगुणस्वभावैः प्रकाशमानः (**वरुणः**) वरः (**चकार**) कुर्य्याः । **अत्र लिङर्थे लिट्** (**सूर्य्याय**) चराचरात्मेश्वरप्रकाशाय (**पन्थाम्**) न्यायमार्गम् (**अन्वेतवै**) अनुक्रमेण गन्तुम् (**उ**) वितर्के (**अपदे**) चौरादिनिष्पादितेऽप्रसिद्धे व्यवहारे (**पादा**) चरणौ । **अत्राकारादेशः** (**प्रतिधातवे**) प्रतिधर्त्तुम् (**अकः**) कुरु (**उत**) अपि (**अपवक्ता**) मिथ्यावादी (**हृदयाविधः**) यो हृदयमाविध्यति सः (**चत्**) इव (**नमः**) वज्रम् (**वरुणाय**) प्रशस्तैश्वर्याय (**अभिष्ठितः**) अभितः स्थितः जाज्वल्यमानः (**वरुणस्य**) वीरगुणोपेतस्य (**पाशः**) बन्धनम् ।। **अयं मन्त्रः शत० ४ । ४ । ४ । ३—११ व्याख्यातः ।। २३ ।।**

प्रमाणार्थ—(**चकार**) यहाँ लिङ् अर्थ में लिट् लकार है । (**पादा**) यहाँ ['सूपा० सुलुक्०' अ० ७ । १ । ३९] इस सूत्र से आकार आदेश है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । ४ । ४ । ३—११) में की गई है ।। ८ । २३ ।।

सपदार्थान्वयः—हे राजन् सभेश्वर ! त्वं [वरुणः] वरः [**राजा**] प्रशस्तगुणस्वभावैः प्रकाशमानः **वरुणाय** प्रशस्तैश्वर्याय **उरुं** बहुगुणान्वितं **न्यायं कुर्वन्नन्वेतवै** अनुक्रमेण गन्तुम् **अपदे** चौरादिनिष्पादितेऽप्रसिद्धे व्यवहारे **पादा** चरणौ **प्रतिधातवे** प्रतिधर्त्तुम् **अकः** कुरु ।

सूर्य्याय चराचरात्मेश्वर प्रकाशाय **पन्थां** न्यायमार्गं [हि] खलु **चकार** कुर्य्याः ।

उत अपि—**अपवक्ता** मिथ्यावादी **हृदयाविधः** यो हृदयमाविध्यति सः **चित्**=**इव मा पृदाकुः** कुत्सितवाक् **मा अहिः** सर्प्पवत् क्रुद्धो विषधरः **भूः** भवेः ।

भाषार्थ—हे राजन्, सभापते ! आप [**वरुणः**] श्रेष्ठ और [**राजा**] प्रशंसनीय गुण स्वभावों से प्रकाशमान हो इसलिये (**वरुणाय**) प्रशस्त ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (**उरुम्**) नाना गुणों से युक्त न्याय को करके (**अन्वेतवै**) उसके अनुकूल चलने के लिये तथा (**अपदे**) चोर आदि के छिपे हुये व्यवहार में (**पादा**) पैरों को (**प्रतिधातवै**) रखने के लिये (**अकः**) न्याय कर ।

और—(**सूर्याय**) चराचर के आत्मा ईश्वर के प्रकाश के लिये (**पन्थाम्**) न्याय-मार्ग को [हि] ही (**चकार**) बना ।

(उत) और—(**अपवक्ता**) मिथ्यावादी एवं (**हृदयाविधः**) हृदय का वेध करने वाले दुर्जन के (**चित्**) समान (**पृदाकुः**) कुत्सित वाणी वाला एवं (**अहिः**) क्रुद्ध, विषधर सर्प के समान (**मा भूः**) मत हो ।

यथा **वरुणस्य** वीरगुणोपेतस्य **तवाभिष्ठितः** अभितः स्थितो जाज्वल्यमानः **नमः** वज्रं **पाशः** बन्धनं **च प्रकाशेत तथा सततं प्रयतस्व** ॥ ८ । २३ ॥

जैसे—(**वरुणस्य**) वीर-गुणों से युक्त आपका (**अभिष्ठितः**) सर्वत्र विद्यमान एवं चमकता हुआ (**नमः**) वज्र और (**पाशः**) बन्धन प्रसिद्ध होवे वैसा निरन्तर प्रयत्न कर ॥ ८ । २३ ॥

[हे राजन् सभेश्वर ! त्वं······न्यायं कुर्बन्नन्वेतवै अपदे पादा प्रतिधातवेऽकः, सूर्याय पन्थां [हि] चकार]

भावार्थः—प्रजापुरुषाणां योग्यतास्तियो हि विद्वान्, जितेन्द्रियो, धार्मिकः, पिता पुत्रानिव-प्रजापालने तत्परः, सर्वेभ्यः सुखकारी भवेत् तं सभापतिं कुर्वीरन्,

भावार्थ—प्रजा-जनों को योग्य है कि वे—जो विद्वान्, जितेन्द्रिय, धार्मिक, जैसे पिता पुत्रों का पालन करता है वैसे प्रजा पालन में तत्पर और सब के लिये सुखकारी हो उसे सभापति बनावें,

[उत– अपवक्ता हृदयाविधश्चिदिव मा पृदाकुर्माहिर्भूः]

राजा, वा प्रजापुरुषः कदापि दुष्ट कर्म्मकारी न भवेत्, कथंचिद्यति स्यात् तर्हि प्रजा यथापराधं राजानं दण्डयेत् राजा च प्रजापुरुषं, कदाप्यपरोधिनं दण्डेन विना न त्यजेत्, अनपराधिनं च वृथा न पीडयेत् ।

राजा अथवा प्रजा जन कभी भी दुष्ट कर्म करने वाले न हों, यदि किसी प्रकार कोई करे तो प्रजा अपराध के अनुसार राजा को दण्ड देवे और राजा प्रजा को दण्ड दिया करे, अपराधी को कभी भी दण्ड के बिना न छोड़े, और निर्दोष को वृथा पीड़ा कभी न देवें ।

[सूर्याय पन्थां हि चकार]

एवं—सर्वे न्यायाचरणतत्परा भूत्वा प्रयतेरन्, यतोऽधिका मित्रोदासीनशत्रवो न स्युः, पुनर्विद्या-धर्म्ममार्गान् शुद्धान् प्रचार्य्य सर्वे परमात्मभक्ति-परायणा भूत्वा सदा सुखिनः स्यु ॥ ८ । २३ ॥

इस प्रकार सब न्यायाचरण में तत्पर होकर प्रयत्न करें जिससे अधिक लोग मित्र, उदासीन और शत्रु न हों। तत्पश्चात् विद्या और धर्म के मार्गों को साफ करके सब लोग परमात्मा की भक्ति में लीन होकर सदा सुखी रहें ॥ ८ । २३ ॥

भाष्यसार—**राजा के लिये उपदेश**—सभापति राजा प्रशस्त गुण स्वभावों से प्रकाशमान हो अर्थात् वह विद्वान्, जितेन्द्रिय, धार्मिक, जैसे पिता अपने पुत्रों का पालन करता है वैसे प्रजा का पालन करने वाला तथा सबके लिये सुखकारी हो । प्रशस्त ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये नाना गुणों से युक्त न्याय का आचरण करे । चोर आदि दुष्ट-जनों के द्वारा छुप कर किये कार्यों को जानने वाला हो । चराचर के आत्मा ईश्वर के प्रकाश की प्राप्ति के लिये सदा न्यायाचरण में तत्पर रहे क्योंकि न्यायाचरण से अधिक लोग मित्र, उदासीन और शत्रु नहीं बनते । विद्या और धर्म के मार्गों को साफ करे । जिससे सब लोग परमात्मा की भक्ति में तत्पर होकर सुखी रहें ।

जैसे अजगर (**पृदाकु**) कुत्सित शब्द करने वाला होता है वैसे राजा कुत्सित मिथ्या भाषण करने वाला न हो, और जैसे सर्प डस कर प्राणी के हृदय को बींधता है वैसे राजा क्रुद्ध विषधर के समान प्रजा को पीड़ा न देवे । तात्पर्य यह है कि राजा और प्रजा में से कोई भी मिथ्यभाषण आदि दुष्ट कर्म करने वाला न हो यदि दुष्टाचरण करें तो दोनों दण्ड के अधिकारी हों। राजा का वीरतापूर्ण वज्र और पाश प्रजा में सर्वत्र प्रकाशित रहे । किन्तु दण्ड-प्रयोग में राजा यह विशेष ध्यान रखे कि अपराधी को दण्ड के बिना न छोड़े और निर्दोष को वृथा पीड़ित न करे ॥ ८ । २३ ॥

अत्रिः । **गृहपतिः**=गृहस्थः ।। आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ।

अथोभयेषां गृहस्थानामुपदेशमाह ।।

अब राजा और प्रजाजन गृहस्थों के लिये उपदेश किया जाता है ।।

अ॒ग्नेरनी॑कम॒प ऽ आवि॑वेशा॒पान्नपा॑त् प्रति॒रक्ष॑न्नसु॒र्य्य॒म् ।
दमे॑ दमे स॒मिधं॑ यक्ष्यग्ने॒ प्रति॑ ते जि॒ह्वा घृ॒तमुच्च॑रण्य॒त् स्वाहा॑ ।। २४ ।।

पदार्थः—(**अग्नेः**) पावकस्य (**अनीकम्**) सैन्यमिव ज्वालासमूहम् (**अपः**) जलानि (**आ**) (**विवेश**) (**अपाम्**) आप्नुवन्ति याभिस्तासामुदकानाम् (**नपात्**) नाधःपतनशीलः (**प्रति**) (**रक्षन्**) पालयन् (**असुर्य्यम्**) असुरेषु=मेघेषु प्राणक्रीडासधनेषु भवं द्रव्यम् (**दमेदमे**) दाम्यन्ति जना यस्मिन् तस्मिन् गृहे गृहे । दम इति गृहनामसु पठितम् ।। निघं० ३ । ४ ।। वीप्सया द्वित्वम् (**समिधम्**) समिध्यते=प्रकाश्यतेऽर्थ-तत्त्वमनया क्रियया ताम् (**यक्षि**) यजसि=संगच्छसे । अत्र बहुलं छन्दसि ।। अ० २ । २ । ७३ ।। इति शपो लुक् (**अग्ने**) विज्ञानयुक्त ! (**प्रति**) (**ते**) तव (**जिह्वा**) रसेन्द्रियम् (**घृतम्**) आज्यम् (**उत्**) (**चरण्यत्**) चरण-मिवाचरेत् । वा छन्दसि ।। अ० १ । ४ । ६ । भा० ।। इत्यत्राल्लोप ईत्त्वाऽभावश्च (**स्वाहा**) सत्यया क्रियया ।। अयं मन्त्रः शत० ४ । ४ । ५ । १२ व्याख्यातः ।। २४ ।।

प्रमाणार्थ—(**दमे दमे**) 'दम' शब्द निघं० (३ । ४) में गृह-नामों में पढ़ा है । वीप्सा से यहां द्वित्व है । (यक्षि) यहां 'बहुलं छन्दसि' (**अ**० २ । ४ । ७३) इस सूत्र से शप् का लुक् है । (**चरण्यात्**) यहाँ 'वा छन्दसि' (**अ**० १ । ४ । ६) इस भाष्य वार्त्तिक से आकार का लोप और ईत्व का अभाव है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । ४ । ५ । १२) में की गई है ।। ८ । २४ ।।

सपदार्थान्वयः—हे [**अग्ने**] विज्ञान-युक्त गृहस्थ ! त्वमग्नेः पावकस्य **अनीकं** सैन्यमिव ज्वालासमूहम् **अपः** जलानि **च आविवेश** ।

अपाम् आप्नुवन्ति याभिस्तासाम्=उ-दकानां **नपात्** नाधःपतनशीलः **त्वमसुर्यम्** असुरेषु=मेघेषु प्राणक्रीडासधनेषु भव द्रव्यं **प्रतिरक्षन्** पालयन् **दमे दमे** दामयन्ति जना यस्मिन् तस्मिन् गृहे गृहे **समिधं** समिध्यते=प्रकाशतेऽर्थतत्त्वमनया क्रियया तां **यक्षि** यजसि=सङ्गच्छसे ।

ते तव **जिह्वा** रसनेन्द्रियं **घृतम्** आज्यम् **उत स्वाहा** सत्यया क्रियया **उत्-चरण्यत्** चरणमिवा-चरेत् ।। ८ । २४ ।।

भाषार्थ—हे [**अग्ने**] विज्ञानवान् गृहस्थ पुरुष ! तू (**अग्नेः**) अग्नि की (**अनीकम्**) सेना के समान ज्वालाओं में और (**अपः**) जलों में (**आवि-वेश**) प्रवेश कर, इनके तत्व को जान ।

तू (**अपाम्**) सुख प्राप्ति के साधन जलों का (**नपात्**) रक्षक होकर (**असुर्यम्**) मेघ, प्राणक्रीड़ा और धनवानों के पास विद्यमान जल-द्रव्य की (**प्रतिरक्षन्**) पालना करता हुआ (**दमे दमे**) जनों के शान्ति के स्थान प्रत्येक घर में (**समिधम्**) पदार्थों के प्रकाशक अग्नि के प्रदीपन से (**यक्षि**) संयुक्त है ।

(**ते**) तेरी (**जिह्वा**) रसना (**घृतम्**) घी को और (**स्वाहा**) सत्यभाषण से (**उत्-चरण्यत**) चरण के समान सर्वत्र गति को प्राप्त हो ।। ८ । २४ ।।

[हे [अग्ने] गृहस्थ ! त्वमग्नेरनीकमपश्चाविवेश, अपांनपात्त्वमसुर्यं प्रतिरक्षन् दमे दमे समिधं यक्षि]

भावार्थः—अग्निजले सर्वेषां सांसारिक पदार्थानां हेतू स्तः, अतो गृहस्थो विशेषतोऽनयोर्गु-णान् ज्ञात्वा,

भावार्थ—अग्नि और जल सब सांसारिक पदार्थों के कारण हैं, इसलिये गृहस्थ जन विशेषकर इनके गुणों को जानकर,

[ते जिह्वा घृतमुत स्त्राहोच्चरण्यत्]

गृहस्य सर्वाणिकार्य्याणि सत्यव्यवहारेण कुर्यात् ॥ ८ । २४ ॥ घर के सब कार्यों को सत्य व्यवहार से सिद्ध करें ॥ ८ । २४ ॥

भाष्यसार—**गृहस्थ राजा और प्रजा के लिये उपदेश**—विज्ञानवान् गृहस्थ को योग्य है कि वह सेना के समान ज्वालाओं वाली अग्नि में तथा जल में विज्ञान से प्रवेश करे अर्थात् उनके गुणों को जानकर उनका उपयोग करे, क्योंकि अग्नि और जल सांसारिक पदार्थों के मुख्य हेतु हैं। जलों का रक्षक गृहस्थ मेघों में विद्यमान जल की रक्षा करे, जनता के प्राणों की रक्षा करे, धनवानों के द्रव्यों की रक्षा करे। प्रत्येक घर में पदार्थों को प्रकाशित करने वाली अग्नि से यज्ञ करे। गृहस्थ की रसना घृत में विचरण करे तथा सत्यभाषण से निर्बाध सर्वत्र व्यवहार करे ॥ ८ । २४ ॥

अत्रिः । **गृहपतिः**=स्पष्टम् । भुरिगार्षी पंक्तिः । पञ्चमः ॥

पुनर्गृहस्थोपदेशमाह ॥

गृहस्थों के लिये फिर उपदेश किया है ॥

समुद्रे ते हृदयमप्स्वन्तः सं त्वा विशन्त्वोषधीरुतापः ।
यज्ञस्य त्वा यज्ञपते सूक्तोक्तौ नमोवाके विधेम यत् स्वाहा ॥ २५ ॥

पदार्थः—(**समुद्रे**) सम्यग् द्रवीभूते व्यवहारे (**ते**) तव (**हृदयम्**) (**अप्सु**) प्राणेषु (**अन्तः**) अन्तःकरणम् (**सम्**) (**त्वा**) (**विशन्तु**) (**ओषधीः**) यवाद्याः (**उत**) अपि (**आपः**) जलानि (**यज्ञस्य**) गृहाश्रमानुकूलस्य व्यवहारस्य (**त्वा**) त्वाम् (**यज्ञपते**) गृहाश्रमस्य रक्षक ! (**सूक्तोक्तौ**) सूक्तानां=वेदस्थानां प्रामाण्यस्योक्तिर्यस्मिन् गृहाश्रमे (**नमोवाके**) वेदस्थस्य नम इत्यन्नस्य सत्कारस्य च वाका=वचनानि यस्मिन् (**विधेम**) निष्पादयेम (**यत्**) यतः (**स्वाहा**) प्रेमोत्पादयित्र्या वाचा ॥ अयं मन्त्रः शत० ४ । ४ । ५ । १३–२० व्याख्यातः ॥ २५ ॥

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । ४ । ५ । १३—२०) में की गई है ॥ ८ । २५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **यज्ञपते** ! गृहाश्रमस्य रक्षक ! **यथा वयं स्वाहा** प्रेमोत्पादयित्र्या वाचा **यज्ञस्य** गृहाश्रमानुकूलस्य व्यवहारस्य **सूक्तोक्तौ** सूक्तानां=वेदस्थानां प्रामाण्यस्योक्तिर्यस्मिन् गृहाश्रमे **नमोवाके** वेदस्थस्य नम इत्यन्नस्य सत्कारस्य च वाका वचनानि यस्मिन् **समुद्रे** सम्यग्द्रवीभूते व्यवहारे **अप्सु** प्राणेषु **च ते**=तव **हृदयमप्सु** प्राणेषु **अन्तः**=अन्तःकरणं **विधेम** निष्पादयेम **तथा तेन विदिता ओषधीः** यवाद्याः **त्वा समाविशन्तु**, **उत**= **अपि आपः** जलानि **तव सुखकारिकाः सन्तु** ॥ ८ । २५ ॥

भावार्थ—हे (**यज्ञपते**) गृहस्थ आश्रम के रक्षक ! जैसे—हम लोग (**स्वाहा**) प्रेम-उत्पादक वाणी से (**यज्ञस्य**) गृहाश्रम के अनुकूल व्यवहार के साधक (**सूक्तोक्तौ**) वेदों के सूक्तों का प्रामाण्य बतलाने वाले (**नमोवाके**) वेदोक्त अन्न और स्तुति-वचनों वाले गृहाश्रम में एवं (**समुद्रे**) उत्तम गतिशील व्यवहार में और (**अप्सु**) प्राणों में (**ते**) तेरे (**हृदयम्**) हृदयों को और (**अप्सु**) प्राणों में (**अन्तः**) अन्तःकरण को (**विधेम**) स्थापित करते हैं, वैसे—उस हृदय और अन्तःकरण से जानी हुई (**औषधीः**) जौ आदि औषधियाँ (**त्वा**) तुझे (**समा-**

विशन्तु) प्राप्त हों, (**उत**) और (**आपः**) जल तेरे लिये सुखकारक हों ।। ८ । २५ ।।

[हे यज्ञपते ! यथा वयं···ते=तव हृदयमन्तः करणं विधेम तथा तेन विदिता ओषधीस्त्वा समाविशन्तु, उताप्यापस्ते सुखकारिकाः सन्तु]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ।। अध्यापकोपदेशका गृहस्थान् सत्यां विद्या ग्राहयित्वा प्रयत्नसाध्ये गृहकृत्यानुष्ठाने सर्वान् युञ्जीयुः । यतश्चैते शरीरात्मबलं वर्द्धयेरन् ।। ८ । २५ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है ।। अध्यापक और उपदेशक लोग गृहस्थों को सत्य-विद्या ग्रहण कराकर प्रयत्न से सिद्ध होने वाले गृह-कार्यों के अनुष्ठान में सबको लगावें, जिससे ये गृहस्थ लोग शरीर और आत्मा के बल को बढ़ा सकें ।। ८ । २५ ।।

भाष्यसार—**गृहस्थ के लिये उपदेश**—अध्यापक और उपदेशक लोगों का कर्त्तव्य है कि वे गृहाश्रम रूप यज्ञ के रक्षक गृहस्थ पुरुष के हृदय को प्रेमोत्पादक वाणी से गृहाश्रम में स्थापित करें । कैसा है वह गृहाश्रम कि जिसमें वेद के प्रमाण वचनों की सिद्धि होती है अन्न आदि से विद्वान् अध्यापक और उपदेशक लोगों का सत्कार करना चाहिये इत्यादि वेदोक्त-वचनों की सार्थकता होती है । यह कोमल व्यवहारों से युक्त है । सबके प्राणों का रक्षक है । इस गृहाश्रम के व्यवहार से गृहस्थ यव (**जौ**) आदि ओषधियों को प्राप्त करे, सुखकारक जलों को भी करे, शरीर और आत्मा के बल को बढ़ावे ।। ८ । २५ ।।

अत्रिः । **गृहपतयः**=**गृहस्थाः** ।। स्वराडार्षी बृहती । मध्यमः ।।

अथ विवाहितस्त्रीभ्यः कर्त्तव्यमुपदिश्यते ।।

अब विवाहित स्त्रियों के कर्त्तव्य का उपदेश किया जाता है ।।

देवीराप ऽ एष वो गर्भस्तꣳ सुप्रीतꣳ सुभृतं बिभृत ।
देव सोमैष ते लोकस्तस्मिञ्छञ्च वक्ष्व परि च वक्ष्व ।। २६ ।।

पदार्थः—(**देवीः**) देदीप्यमाना विदुष्यः (**आपः**) सर्वाः शुभगुणकर्म्मविद्याव्यापिन्यः (**एषः**) (**वः**) युष्माकं (**गर्भः**) (**तम्**) (**सुप्रीतम्**) सुष्ठु प्रीतिनिबद्धम् (**सुभृतम्**) सुष्ठु धारितम् (**बिभृत**) धरत, पुष्यत (**देव**) दिव्यगुणैः कमनीय ! (**सोम**) ऐश्वर्य्याढ्य गृहस्थजन ! (**एषः**) प्रत्यक्षः (**ते**) तव (**लोकः**) लोकनीयः पुत्रपत्यादिसंबन्धसुखकरो गृहाश्रमः (**तस्मिन्**) (**शम्**) कल्याणकारकं ज्ञानम् (**च**) शिक्षाम् (**वक्ष्व**) प्रापय (**परि**) (**च**) अनुक्तसमुच्चये (**वक्ष्व**) वह ।। अयं मन्त्रः शत० ४ । ४ । ५ । २१ व्याख्यातः ।। २६ ।।

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । ४ । ५ । २१) में की गई है ।। ८ । २६ ।।

सपदार्थान्वयः—हे आपः सर्वाः शुभगुणकर्म्म विद्याव्यापिन्यः **देवीः**=**देव्यः** ! देदीप्यमाना विदुष्यः **यूयं वः** =**युष्माकं य एष गर्भो-लोकः** लोकनीयः=पुत्र पत्यादिसम्बन्धसुखकरो गृहाश्रमः **तं सुप्रीतं** सुष्ठु प्रीतिनिबद्धं **सुभृतं** सुष्ठु

भावार्थ—हे (**आपः**) सब शुभ गुण, कर्म और विद्याओं को प्राप्त (**देवीः**) अति शोभायुक्त विदुषी स्त्रियो ! तुम—जो (**वः**) तुम्हारा (**एषः**) यह (**गर्भोलोकः**) पुत्र पति आदि के सम्बन्ध के लिए सुखदायक गृहाश्रम है उसे (**सुप्रीतम्**) उत्तम

धारितं **यथा स्यात्तथा बिभृत** धरत पुष्यत ।

प्रीति से युक्त तथा (**सुभृतम्**) जैसे उत्तम रीति से धारण किया जा सके वैसे (**बिभृत**) धारण करो, पुष्ट करो ।

हे **देव** ! दिव्यगुणैः कमनीय **सोम** ऐश्वर्य्याढ्य गृहस्थजन ! **य एष ते=तव लोकः** लोकनीयः= पुत्रपत्यादिसम्बन्धसुखकरो गृहाश्रमः **अस्ति, तस्मिन् शं** कल्याणकारकं ज्ञानं [**च**] **चात्-शिक्षां वक्ष्व** प्रापय [**च**] **चाद् रक्षणं परिवक्ष्व** वह ॥ ८ । २६ ॥

हे (**देव**) दिव्य गुणों के कारण कामना करने योग्य, (**सोम**) ऐश्वर्य से भरपूर गृहस्थ पुरुष ! जो (**एषः**) यह (**ते**) तेरा (**लोकः**) पुत्र, पति आदि के सम्बन्ध के लिये सुखदायक गृहाश्रम है उसमें (**शम्**) कल्याणकारक ज्ञान [**च**] और शिक्षा को (**वक्ष्व**) प्राप्त कर [**च**] और रक्षा को (**परिवक्ष्व**) प्राप्त हो ॥ ८ । २६ ॥

[हे···देवीः=देव्यः ! **यूयं** वः=**युष्माकं य एष गर्भो लोकस्तं सुप्रीतं**···बिभृत]

भावार्थः—विदुषी स्त्री यथोक्तविवाह-विधिना विद्वांसं पतिं प्राप्य तन्मनोरञ्जनपुरःसरं गर्भमादधीत,

भावार्थ—विदुषी स्त्री यथोक्त विवाह विधि से विद्वान् पति को प्राप्त करके उसके मनोरंजन पूर्वक गर्भ को धारण करें ।

[हे ··· **सोम** ! य एष ते=तव लोकोऽस्ति तस्मिन् शं [**च**] **चाच्छिक्षां** वक्ष्व [**च**] **चादरक्षणं परिवक्ष्व**]

स च पतिः स्त्रीरक्षणे तन्मनोरञ्जने च नित्य-मुत्सहेत ॥ ८ । २६ ॥

और वह पति स्त्री की रक्षा और उसके मनो-रंजन में नित्य उत्साही रहे ॥ ८ । २६ ॥

भाष्यसार—**विवाहित स्त्रियों के लिये कर्त्तव्य**—सब शुभ गुण, कर्म और विद्या से भूषित विदुषी स्त्रियाँ पुत्र, पति आदि सम्बन्धों के कारण सुखकारी गृहाश्रम को अति प्रीतिपूर्वक धारण करें अर्थात् विदुषी स्त्रियाँ वेदोक्त विवाह विधि से विद्वान् पति जनों को प्राप्त करके उनके मनो-रञ्जन पूर्वक गर्भ को धारण करें । दिव्य गुणों के कारण कामना करने के योग्य, ऐश्वर्य से भरपूर गृहस्थ पतिदेव भी सुखकारी गृहाश्रम में कल्याणकारी ज्ञान और शिक्षा प्रदान करे, स्त्री की रक्षा और उसके मनोरञ्जन में नित्य उत्साही रहे ॥ ८ । २६ ॥

अत्रिः । **दम्पती=स्त्रीपुरुषौ** । भुरिक् प्राजापत्यानुष्टुप् । गान्धारः । अवदेवैरि-त्यस्य स्वराडार्षी बृहती । मध्यमः ॥

पुनर्गृहस्थधर्म्मे स्त्रीविषयमाह ॥

फिर गृहस्थ धर्म्म में स्त्री विषयक उपदेश किया है ॥

अव॑भृथ निचुम्पुण निचेरुर॑सि निचुम्पुणः ।
अव॑ दे॒वैर्दे॒वकृ॑तमेनो॑ऽयासिष॒मव॒ मर्त्यै॒र्मर्त्य॑कृतं पुरु॒राव्णो॑ देव रि॒षस्पा॑हि ।
दे॒वाना॑ᳪ स॒मिद॑सि ॥ २७ ॥

पदार्थः—(**अवभृथ**) यो निषेकेण गर्भं बिभर्त्ति तत्सम्बुद्धौ (**निचुम्पुण**) नितरां मन्दगा-मिन् ! (**निचेरुः**) यो धर्म्मेण द्रव्याणि नित्यं चिनोति (**असि**) (**निचुम्पुणः**) नित्यं कमनीयः (**अव**) अर्वा-गर्थे (**देवैः**) विद्वद्भिः (**देवकृतम्**) कामिभिरनुष्ठितम् (**एनः**) दुष्टाचरणम् (**अयासिषम्**) प्राप्तवती (**अव**) निषेधे (**मर्त्यैः**) मृत्युधर्म्मैः (**मर्त्यकृतम्**) साधारणमनुष्याचरितम् (**पुरुराव्णः**) पुरवो=बहवो रावाणोऽप-

राधदानशीला यस्मिन् तस्मात् (**देव**) विजिगीषो ! (**रिषः**) धर्म्मस्य हिंसनात् (**पाहि**) रक्ष (**देवानाम्**) विदुषां मध्ये (**समित्**) सम्यग्दीप्तः (**असि**) ॥ अयं मन्त्रः शत० ४ । ४ । १ । २२--२३ तथा ४ । ५ । १–१६ थता ४ । ५ । २ । १–३ व्याख्यातः ॥ २७ ॥

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । ४ । १ । २२–२३ **तथा** ४ । ५ । १–१६ **तथा** ४ । ५ । २ । १–३) में की गई है ॥ ८ । २७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अवभृथ** ! यो निषेकेण गर्भं बिभर्त्ति तत्सम्बुद्धौ, **निचुम्पुण** नितरां मन्दगामिन् **पते** ! **त्वं निचुम्पुणः** नित्यं कमनीयः **निचेरुः** यो धर्म्मेण द्रव्याणि नित्यं चिनोति **असि**, **देवानां** विदुषां मध्ये **समित्** सम्यग्दीप्तः **असि** ।

भाषार्थ—हे (**अवभृथ**) वीर्यसेचन से गर्भ को भरने वाले (**निचुम्पुण**) नितान्त मन्दगामी पते ! आप (**निचुम्पणः**) सदा कामना के योग्य और (**निचेरुः**) धर्मपूर्वक द्रव्यों का नित्य संग्रह करने वाले (**असि**) हो तथा (**देवानाम्**) विद्वानों के मध्य में (**समित**) अच्छी प्रकार विद्या से प्रदीप्त हो ।

हे **देव** ! विजिगीषो **देवैः** विद्वद्भिः **मर्त्यैः** मृत्युधर्मैः **सह वर्त्तमानस्त्वं यद्देवकृतं** कामिभिरनुष्ठितम् [**मर्त्यकृतम्**] साधारणमनुष्याचरितम् **एनः**=**अपराधं** दुष्टाचरणम् **अहम्** [**अव**]-**अयासिषं न** प्राप्तवती **तस्मात् पुरुराव्णः** पुरवः=बहवो राव्णः=अपराधदानशीला यस्मिन् तस्मात् **रिषः** धर्मस्य हिंसनात् **मां पहि**=**दूरे रक्ष** ॥ ८ । २७ ॥

हे (**देव**) विजय के अभिलाषी पते ! (**देवैः**) विद्वानों और (**मर्त्यैः**) मरणधर्मा मनुष्यों के साथ व्यवहार करते हुये आप—जो (**देवकृतम्**) कामी जनों से तथा [**मर्त्यकृतम्**] साधारण मनुष्यों के किये (**एनः**) दुष्टाचरण रूप अपराध है उसे मैं (**अव**+**अयासिषम्**) प्राप्त न होऊँ इसलिये (**पुरुराव्णः**) नाना अपराधों को उत्पन्न करने वाले (**रिषः**) धर्म की हिंसारूप पाप से मुझे (**पाहि**) दूर रखो ॥ ८ । २७ ॥

[हे देव !···त्वं **यद्देवकृतं** [**मर्त्यकृतम्**] **एनः**=**अपराधमहम्** [**अव**] **अयासिषं तस्मात् पुरुराव्णो रिषो मां पाहि**=**दूरे रक्ष**]

भावार्थः—स्त्री स्वपतिं प्रार्थयेद्यथाहं सेव्यं प्रसन्नचित्तं त्वामनुदिनमिच्छामि तथा त्वमपिमामिच्छ, स्वबलेन रक्ष च । यतोऽहं कस्यचिद्दुष्टाचरणशीलज्जनाद्दुश्चरितं कथंचिन्न प्राप्नुयां भवाँश्च नाप्नुयात् ॥ ८ । २७ ॥

भावार्थ—स्त्री अपने पति से प्रार्थना करे कि जैसे मैं सेवा करने योग्य, प्रसन्न चित्त वाले आपको प्रतिदिन चाहती हूँ वैसे आप भी मुझे चाहें और अपने बल से रक्षा करें । जिससे मैं किसी दुष्टाचारी मनुष्य से दुरचरित को कभी प्राप्त न होऊँ और आप भी प्राप्त न होओ ॥ ८ । २७ ॥

भाष्यसार—**गृहस्थ धर्म में स्त्री विषयक उपदेश**—स्त्री कहती है कि हे पते ! आप निषेक से गर्भाधान करने वाले, नितान्त मन्द गमन करने वाले, नित्य कामना करने योग्य, धर्म से द्रव्यों का नित्य चयन करने वाले और विद्वानों में विद्यादि शुभ गुणों से प्रकाशमान हो । इसलिये सेवा करने के योग्य सदा प्रसन्न चित्त रहने वाले आपकी मैं प्रतिदिन कामना करती हूँ वैसे आप भी मेरी नित्य कामना करो और अपने बल से मेरी रक्षा करो ।

हे विजय की कामना करने वाले पतिदेव ! आप विद्वानों और साधारण मनुष्यों के सङ्ग रहते

हो। मेरी कामना है कि मैं कामी और साधारण जनों द्वारा किये जाने वाले दुष्टाचरण को प्राप्त न होऊँ इसलिये आप पतिव्रत धर्म के हिंसन रूप पाप से मुझे दूर रखिये और स्वयं भी पापाचरण से दूर रहिये ॥ ८ । २७ ॥

अत्रिः। **दम्पती**=स्त्रीपुरुषो। एवायमित्यस्यापि साम्न्यासुर्युष्णिक्। ऋषभः। यथायमित्यस्य प्राजापत्यानुष्टुप्। गान्धारः ॥

अथ गार्हस्थ्यधर्म्मे गर्भव्यवस्थामाह ॥

अब गृहस्थ धर्म्म में गर्भ की व्यवस्था का उपदेश किया जाता है ॥

एजंतु दशमास्यो गर्भो जरायुणा सह। यथायं वायुरेजति यथा समुद्रऽएजति।
एवायं दशमास्यो ऽअस्रज्जरायुणा सह ॥ २८ ॥

पदार्थः—(एजतु) चलतु (**दशमास्यः**) दशसु मासेषु भवः (**गर्भः**) ग्रियते=सिच्यते गृह्यते वा स गर्भः। गर्भो गृभेर्गृणात्यर्थे। गिरत्यनर्थानिति वा यदा हि स्त्री गुणान् गृह्णाति गुणाश्चास्या गृह्यन्ते ॥ निरु० १०। २३ ॥ (**जरायुणा**) आवरणेन (**सह**) (**यथा**) (**अयन्**) (**वायुः**) (**एजति**) कम्पते (**यथा**) (**समुद्रः**) उदधिः (**एजति**) वर्द्धते (**एव**) अवधारणार्थे (**अयम्**) वर्त्तमानः (**दशमास्यः**) (**अस्रत्**) स्रंसतोऽधः स्रवतु। लोडर्थे लुङ् (**जरायुणा**) (**सह**) ॥ अयं मन्त्रः शत० ४। ५। २। ४—६ व्याख्यातः ॥ २८ ॥

प्रमाणार्थ—(**गर्भः**) गर्भ शब्द का निर्वचन निरुक्त (१०—२३) में ग्रहणार्थक 'गृभ्' धातु से अथवा सेचनार्थक 'गॄ' धातु से माना हैं। (**अस्रत्**) यहाँ लोट् अर्थ में लङ् लकार है। इस मन्त्र की व्याख्या शत०(४। ५। २। ४—६) में की गई है ॥ ८। २८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे दम्पती ! **यथाऽयं वायुरेजति** कम्पते **यथा समुद्रः** उदधिः **एजति** वर्द्धते तथा जरायुणा आवरणेन **सह दशमास्यः** दशसु मासेषु भवः **गर्भः** ग्रियते=सिच्यते गृह्यते वा **स** गर्भः एजतु=क्रमेण वर्द्धतां चलतु एवं **वर्द्धमानाऽयं** वर्त्तमानः **जरायुणा** आवरणेन **सह दशमास्यः** दशसु मासेषु भवः **एवास्रत्**=स्रंसतां स्रंसतोऽधःस्रवतु ॥ ८। २८ ॥

भाषार्थ—हे स्त्री-पुरुषो ! जैसे यह वायु (**एजति**) चलता है और जैसे (**समुद्रः**) समुद्र (**एजति**) बढ़ता है वैसा (**जरायुणा**) जरायु के (**सह**) साथ (**दशमास्यः**) दस महीनों में पूर्ण होने वाला (**गर्भः**) पुरुष से सेचन किया और स्त्री से ग्रहण किया हुआ गर्भ (**एजतु**) क्रम से बढ़े, इस प्रकार बढ़ता हुआ (**अयम्**) यह (**जरायुणा**) जरायु के साथ (**दशमाससयः**) दस मास में पूर्ण होकर ही (**अस्रत्**) नीचे को स्रवित हो, उत्पन्न हो ॥ ८। २८ ॥

[हे दम्पती !……दशमास्यो गर्भ एजतु=क्रमेण वर्द्धताम्, एवं वर्द्धमानो ऽयं जरायुणा सह दशमास्य एवास्रत्=स्रंसताम्]

भावार्थः—ब्रह्मचर्येण शरीरपुष्टिमनः सन्तुष्टि-विद्यावृद्धिसम्पन्नो कृतविवाहौ दम्पती यत्नेन गर्भरक्षणं कुर्यातां, यतः स दशमास्यो दशमासात् पूर्वं न स्खलेत्। यो हि दशमासादूर्ध्वं जायते स प्रायशो बलबुद्धियुक्तो भवति, तस्मात् पूर्वमुत्पद्यते

भावार्थ—ब्रह्मचर्य से शरीर से पुष्ट, मन से सन्तुष्ट तथा विद्या वृद्धि से सम्पन्न विवाहित स्त्री पुरुष यत्न से गर्भ की रक्षा करें जिससे वह गर्भ दस मास से पूर्व स्खलित न हो। जो दस मास के उपरान्त जन्म लेता है वह प्रायः बलवान और

नायं तादृग्भवति ॥ ८ । २८ ॥

बुद्धिमान् होता है और जो उससे पूर्व उत्पन्न होता है वह वैसा नहीं होता ॥ ८ । २८ ॥

अन्यत्र व्याख्यात—'एजतु दशमास्यो०' इस मन्त्र का विनियोग गर्भाधान-संस्कार तथा जातकर्म संस्कार में किया गया है (**संस्कारविधि**) ॥ ८ । २८ ॥

भाष्यसार—**गृहस्थधर्म में गर्भव्यवस्था**—ब्रह्मचर्य सेवन से शरीर से पुष्ट, मन से सन्तुष्ट, विद्यावृद्धि से सम्पन्न विवाहित स्त्री-पुरुषों को योग्य है कि वे यत्न से गर्भ की रक्षा करें। सुरक्षित गर्भ वायु के समान गतिशील हो, समुद्र के समान बढ़े, जरायु के साथ क्रम से बढ़ता रहे, पूर्ण वृद्धि को प्राप्त हुआ गर्भ जरायु के साथ दस मास में ही स्रवित हो,—जो गर्भ दस मास के उपरान्त जन्म लेता है वह प्रायः बलवान् और बुद्धिमान् होता है और जो इससे पूर्व उत्पन्न हो जाता है वह वैसा बलवान् और बुद्धिमान् नहीं होता ॥ ८ । २८ ॥

अत्रिः । **दम्पती**=स्त्रीपुरुषौ । भुरिगार्युष्णुष्टुप् । गांधारः ॥

पुनरपि गार्हस्थ्यधर्म्मे गर्भव्यवस्थामाह ॥

फिर भी गृहस्थ धर्म्म में गर्भ की व्यवस्था का उपदेश किया है ॥

यस्यै ते युज्ञियो गर्भो यस्यै योनिर्हिरुण्ययी ।
अङ्गान्यह्रुता यस्य तं मात्रा समंजीगमुंस्वाहा ॥ २९ ॥

पदार्थः—(**यस्यै**) सुलक्षणायाः स्त्रियाः । **षष्ठ्यर्थे चतुर्थी** (ते) तव (यज्ञियः) यो यज्ञमर्हति (**गर्भः**) (**यस्यै**) सुभगायाः (**योनिः**) जन्मस्थानम् (**हिरण्ययी**) रोगरहिता शुद्धा (**अङ्गानि**) अंकितानि व्यंजकानि वा । **अंगांगेति क्षिप्रनामांकितमेवाकिंतम्भवति ॥ निरु० ५ । १७ ॥** (**अह्रुता**) अकुटिलानि सरलानि शोभनानि **शेश्छन्दसि बहुलम् ॥ अ० ६ । १ । ७० ॥ इति लुक्** (**यस्य**) (**तम्**) (**मात्रा**) गर्भमानकर्त्र्या त्वया सह समागम्य (**सम्**) (**अजीगमम्**) सम्यक् प्राप्नुयाम् (**स्वाहा**) धर्म्मयुक्तया क्रियया ॥ **अयं मन्त्रः शत० ४ । ४ । ३ । १०—११ व्याख्यातः ॥ २९ ॥**

प्रमाणार्थ—(**यस्यै**) यहाँ षष्ठी के अर्थ में चतुर्थी विभक्ति है । (**अङ्गानि**) निरु० (५ । १७) के अनुसार 'अङ्ग' शब्द का प्रयोग शीघ्रता से नामाङ्कन या केवल अङ्कित करने में होता है । (**अहुता**) यहां 'शेश्छन्दसि बहुलम्' (**अ० ६ । १ । ७०**) इस सूत्र से 'शि' का लुक् है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । ४ । ३ । १०—११) में की गई है ॥ ८ । २९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विवाहिते सुभगे ! **अहं पतिर्यस्यैः=यस्याः** सुलक्षणायाः स्त्रियाः **ते=तव हिरण्ययी** रोगरहिता शुद्धा **योनिः** जन्मस्थानम् **अस्ति, यस्यै=यस्याः** सुभगायाः **तव यज्ञियः** यो यज्ञमर्हति **गर्भोऽस्ति तस्यां त्वयि यस्य गर्भस्याह्रुता=अकुटिलानि** अकुटिलानि=सरलानि शोभनानि **अङ्गानि** अङ्कतानि व्यञ्जकानि वा **स्युः**, तं **मात्रा=गर्भमानकर्त्र्या त्वया सह** गर्भमानकर्त्र्या त्वया सह समागम्य **स्वाहा** धर्म्मयुक्तया

भाषार्थ—हे विवाहित सौभाग्यवती स्त्री ! मैं पति (**यस्यै**) जिस उत्तम लक्षणों से युक्त (ते) तेरी जो (**हिरण्ययी**) रोगरहित, शुद्ध (**योनिः**) योनि है, और (**यस्यै**) जिस सौभाग्यवती का जो (**यज्ञियः**) श्रेष्ठ गर्भ है उस तुझ में जिस गर्भ के (**अह्रुता**) कुटिलता रहित, सरल सुन्दर (**अङ्गानि**) पुंस्त्व आदि को व्यक्त करने वाले अङ्ग हों, उस गर्भ को (**मात्रा**) गर्भ का निर्माण करने वाली तुझ स्त्री के साथ समागम करके

क्रियया **समृअजीगमं**=**सम्यक् प्राप्नुयाम्** ॥ ८।२९ ॥

(**स्वाहा**) धर्मयुक्त गर्भाधान क्रिया से (**सम्-अजीगमम्**) उत्तम रीति से प्राप्त करूँ ॥ ८ । २९ ॥

[हे विवाहिते सुभगे ! अहं पतिर्यस्यै=यस्यास्ते=तव हिरण्ययी योनिरस्ति,
यस्यै=यस्यास्तव यज्ञियो गर्भोऽस्ति]

भावार्थः—पुरुषेण गृहाश्रमे जितेन्द्रियता, वीर्य्यशुद्धयुन्नतिब्रह्मचर्यता सम्पादनीया, स्त्रियाप्येवं चान्यद्गर्भधारणं गर्भाशययोन्यारोग्यकरणं तद्रक्षणं च कार्य्यम् ।

भावार्थ—पुरुष को योग्य है कि वह गृहाश्रम में जितेन्द्रिता, वीर्य की शुद्धि, वीर्य की उन्नति और ब्रह्मचर्यभाव को सिद्ध करे, स्त्री भी इसी प्रकार करे, और गर्भ का धारण, गर्भाशय और योनि की नीरोगता तथा उनकी रक्षा करे।

[त्वयि यस्य गर्भस्याह्रुता=अकुटिलान्यङ्गानि स्युः, तं मात्रा=गर्भमानकर्त्र्या
त्वया सह स्वाहा समजीगमं=सम्यक् प्राप्नुयाम्]

परस्पराह्लादेन सन्तानोत्पादने कृते प्रशस्तरूपगुणकर्मस्वभावान्यपत्यानि जायन्त इति वेद्यम् ॥ ८ । २९ ॥

परस्पर प्रसन्नतापूर्वक सन्तान की उत्पत्ति से प्रशंसनीय रूप, गुण, कर्म स्वभाव वाले बालक जन्म लेते हैं, ऐसा निश्चित जानें ॥ ८ । २९ ॥

विनियोग—यस्यै ते यज्ञियो०, इस मन्त्र का विनियोग गर्भाधान-संस्कार में किया गया है (**संस्कारविधि**) ॥ ८ । २९ ॥

भाष्यसार—**गृहस्थ धर्म में गर्भव्यवस्था**—पुरुष को चाहिये कि वह गृहाश्रम में जितेन्द्रिय रहे, वीर्य की शुद्धि और उन्नति करे, ब्रह्मचर्य का पालन करे । स्त्री भी इसी प्रकार किया करे। पुरुष—सुन्दर, उत्तम लक्षणों से युक्त, रोगरहित शुद्ध योनि वाली, अपनी पत्नी के साथ धर्मयुक्त गर्भाधान की क्रिया करे। गर्भाधान के उपरान्त स्त्री को उचित है कि वह उत्तम रीति से गर्भधारण, गर्भाशय और योनि को नीरोग रखे और उनकी रक्षा भी करे। जो स्त्री-पुरुष परस्पर प्रसन्नता से सन्तान-उत्पत्ति करते हैं उनके बालक प्रशंसनीय रूप, गुण, कर्म, स्वभाव वाले होते हैं, कुटिल अङ्गों वाले नहीं ॥ ८ । २९ ॥

अत्रिः । **दम्पती**=**स्त्रीपुरुषौ** । आर्षी जगती । मध्यमः ॥

पुनर्गर्भव्यवस्थामाह ॥

गर्भ-व्यवस्था का फिर उपदेश किया है ॥

पुरुदस्मो विषुरूप ऽ इन्दुरन्तर्महिमानमानञ्ज धीरः ।
एकपदीं द्विपदीं त्रिपदीं चतुष्पदीमष्टापदीं भुवनानु प्रथन्ताᳬं स्वाहा ॥ ३० ॥

पदार्थः—(**पुरुदस्मः**) पुरुर्बहुर्दस्म=उपक्षयो दुःखानां यस्मात् सः (**विषुरूपः**) विषूणि=व्याप्तानि रूपाणि येन सः (**इन्दुः**) परमैश्वर्य्यकारी (**अन्तः**) आभ्यन्तरे (**महिमानम्**) पूज्यं ब्रह्मचर्य्यजितेन्द्रियत्वादिशुभकर्म्मसंस्कारजन्यम् (**आनञ्ज**) अञ्जयेत्=कामयेत । **अत्र लिङर्थे लिट्** (**धीरः**) सर्वव्यवहारध्यानशीलः (**एकपदीम्**) एकमोमिति पदं प्राप्तव्यं यस्यां ताम् (**द्विपदीम्**) द्वे अभ्युदय-निःश्रेयसे सुखे पदे यस्यां ताम् (**त्रिपदीम्**) त्रीणि वाङ्मनःशरीरस्थानि सुखानि यस्यास्ताम् (**चतुष्पदीम्**) चत्वारि धर्म्मार्थकाममोक्षाः पदानि यस्यास्ताम् (**अष्टापदीम्**) अष्टौ ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राश्चत्वारो वर्णा ब्रह्मचर्य्यगृहस्थ-

वानप्रस्थसन्न्यासाश्चत्वार आश्रमाः पदानि=प्राप्तव्यानि यस्यास्ताम् (**भुवना**) भवन्ति भूतानि येषु तानि गृहाणि। शेश्छन्दसि बहुलम् ॥ अ० ६। १। ७० ॥ इति लुक् (**अनु**) (**प्रथन्ताम्**) प्रख्यान्तु (**स्वाहा**) सत्यां सकलविद्यायुक्तां वाचम् ॥ अयं मन्त्रः शत० ४। ५। २। १२—१६ व्याख्यातः ॥ ३० ॥

प्रमाणार्थ—(**आनञ्ज**) अञ्जयेत्। यहां लिङ् अर्थ में लिट् लकार है। (**भुवना**) यहां 'शेश्छन्दसि बहुलम्' (**अ० ६। १। ७०**) इस सूत्र से 'शि' का लुक् है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४। ५। २। १२—१६) में की गई है॥ ८। ३०॥

सपदार्थान्वयः—**पुरुदस्मः** पुरु=बहुर्दस्म=उपक्षयो दुःखानां यस्मात् सः **विषुरूपः** विषूणि=व्याप्तानि रूपाणि येन सः **इन्दुः** परमैश्वर्यकारी **धीरः** सर्वव्यवहारध्यानशीलः **गृहस्थो धर्मेणः विवाहितायाः स्त्रिया अन्तः** आभ्यन्तरे **महिमानं** पूज्यं ब्रह्मचर्यजितेन्द्रियत्वादिशुभकर्म्मसंस्कारजन्यम् **आनञ्ज** अञ्जयेत्=कामयेत्।

हे गृहस्थाः! **यूयं सृष्टयुन्नतिं विधाय यामेकपदीम्** एकमोमितिपदं=प्राप्तव्यं यस्यां तां **द्विपदीं** द्वे अभ्युदय=निःश्रेयसे सुखे पदे यस्यां तां **त्रिपदीं** त्रीणि वाङ्मनःशरीरस्थानि सुखानि यस्यास्तां **चतुष्पदीं** चत्वारि धर्म्मार्थकाममोक्षाः पदानि यस्यास्ताम् **अष्टापदीम्** अष्टौ ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राश्चत्वारो वर्णा ब्रह्मचर्य्यगृहस्थवानप्रस्थसंन्यासाश्चत्वार आश्रमाः पदानि=प्राप्तव्यानि यस्यास्तां **स्वाहा=समस्तविद्यान्वितां वाचं** सत्यां सकलविद्यायुक्तां वाचं **विदित्वा** [**भुवना**]=**भुवनानि** भवन्ति भूतानि येषु तानि गृहाणि **प्रथन्तां** प्रख्यान्तु, **तथा सर्वान् मनुष्याननुप्रथन्ताम्** ॥ ८। ३०॥

भाषार्थ—(**पुरुदस्मः**) नाना दुःखों का क्षय करने वाला (**विषुरूपः**) रूपों को व्याप्त करने वाला (**इन्दुः**) परम ऐश्वर्य को उत्पन्न करने वाला (**धीरः**) सब व्यवहारों की ओर ध्यान देने वाला गृहस्थ पुरुष धर्म से विवाहित स्त्री (**अन्तः**) में (**महिमानम्**) पूज्य, ब्रह्मचर्य जितेन्द्रियता आदि शुभ कर्मों के संस्कार से उत्पन्न होने वाले गर्भ की (**आनञ्ज**) कामना करे।

हे गृहस्थो! तुम लोग सृष्टि की उन्नति करके जैसे (**एकपदीम्**) एक-प्राप्त करने योग्य 'ओम' पद वाली (**द्विपदीम्**) दो-अभ्युदय और निःश्रेयस सुख को देने वाली (**त्रिपदीम्**) तीन-वाणी, मन और शरीर के सुखों को प्राप्त कराने वाली (**चतुष्पदीम्**) चार-धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष पदों को प्रदान करने वाली (**अष्टापदीम्**) आठ-अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण और ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्त और संन्यास चार आश्रमों को प्राप्त कराने वाली (**स्वाहा**) समस्त विद्याओं से युक्त वेदवाणी को जानकर [**भुवना**] प्राणियों को निवास-स्थान घरों को (**प्रथन्ताम्**) प्रथित करो, विस्तृत बनाओ। वैसे ही मनुष्यों की वृद्धि करो॥ ८। ३०॥

[**गृहस्थो धर्मेण विवाहितायाः स्त्रिया अन्तर्महिमानमानञ्ज**, हे गृहस्थाः! **यूयं सृष्टयुन्नतिं विधाय**···**स्वाहा=समस्तविद्यान्वितां** वाचं विदित्वा [भुवना] भुवनानि **प्रथन्तां तथा सर्वान्** मनुष्याननुप्रथन्ताम्]

भावार्थः—दम्पतिभ्यां सर्वां गृहाश्रमविद्यामभिव्याप्य, तदनुसारेण सन्तानानुत्पाद्य, मनुष्यवृद्धिं विधाय, ब्रह्मचर्येणाखिलविद्याः सर्वान् ग्राहयित्वा सुखानि प्राप्यानुमोदेताम्॥ ८। ३०॥

भावार्थ—स्त्री-पुरुष सब गृहाश्रम विद्या को प्राप्त करके, उसके अनुसार सन्तानों को उत्पन्न कर, मनुष्यों की वृद्धि कर, ब्रह्मचर्य से समस्त विद्याओं को सबको ग्रहण कराकर सुखों को प्राप्त करके स्वयं प्रसन्न रहें तथा सबको प्रसन्न रखें॥ ८। ३०॥

भाष्यसार—गृहस्थ धर्म में गर्भव्यवस्था— गृहस्थ पुरुष नाना प्रकार से दुःखों का क्षय करने वाला, रूपों को व्याप्त करने वाला (**रूपवान्**), परम ऐश्वर्य को उत्पन्न करने वाला, और सब व्यवहारों में ध्यान देने वाला हो। वह धर्म से विवाहित स्त्री में ब्रह्मचर्य, जितेन्द्रियता आदि शुभ कर्मों के संस्कार से उत्पन्न होने वाले महिमाशाली सन्तान की कामना करे। सन्तानोत्पत्ति से सृष्टि की उन्नति करके समस्त विद्या से युक्त वेदवाणी को जाने। जो वाणी एकपदी, द्विपदी, त्रिपदी, चतुष्पदी और अष्टापदी भेद से भाष्य में पाँच प्रकार की व्याख्यात है। उस वाणी को जान कर प्रथम गृहों का विस्तार करे तत्पश्चात् मनुष्यों का विस्तार करे॥ ८। ३०॥

गोतमः। **दम्पती**=स्त्रीपुरुषौ। आर्षी गायत्री। षड्जः॥

पुनरपि गार्हस्थ्यधर्मविषयमाह॥

गृहस्थ धर्म का फिर उपदेश किया है॥

मरु॑तो॒ यस्य॒ हि क्षये॑ पा॒था दि॒वो वि॑महसः। स सु॑गो॒पात॑मो॒ जनः॑॥ ३१॥

पदार्थः—(**मरुतः**) हिरण्यानि रूपाण्यत्विजो विद्वांसश्च। मरुदिति हिरण्यना०॥ निघं० १। २॥ रूपना० ३। ७॥ ऋत्विङ् ना० ३। १॥ पदनामसु च॥ निघं० ५। ५॥ (**यस्य**) गृहस्थस्य (**हि**) खलु (**क्षये**) गृहे (**पाथ**) प्राप्नुत द्व्यचोतस्तिङः॥ अ० ६। ३। १३५॥ इतिः दीर्घः (**दिवः**) दिव्या गुणाः स्वभावाः क्रिया वा (**विमहसः**) विविधतया पूजनीयाः (**सः**) (**सुगोपातमः**) शोभनधर्म्मेण गां=पृथिवीं वाचं वा पाति सोऽशयितः (**जनः**) प्रसिद्धः॥ अयं मन्त्रः शत० ४। ५। २। १७ व्याख्यातः॥ ३१॥

प्रमाणार्थ—(**मरुतः**) 'मरुत्' शब्द निघं० (१। २) में, हिरण्यः-नामों में, निघं० (३। ७) में रूप-नामों में, निघंः (३। १) में ऋत्विङ्नामों में और निघं० (५। ५) में पद-नामों में पढ़ा है। (**पाथा**) पाथ। यहां 'द्व्यचोऽतस्तिङः' (**अ०** ६। ३। १३५) इस सूत्र से दीर्घ है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४। ५। २। १७) में की गई है॥ ८। ३१॥

सपदार्थान्वयः—हे **कृतविवाहा विमहसः** विविधतया पूजनीयाः **ऋत्विजो मरुतः** हिरण्यानि, रूपाणि, ऋत्विजो विद्वांसश्च **गृहस्थाः!** **यूयं यस्य गृहस्थस्य क्षये=गृहे हिरण्यानि सुरूपाणि दिवः** दिव्या गुणाः स्वभावाः क्रिया वा **पाथ** प्राप्नुत **स हि** खलु **सुगोपातमः** शोभनधर्मेण गां=पृथिवीं वाचं वा पाति सोऽतिशयितः **जनः** प्रसिद्ध **सदा सेव्यः**॥ ८। ३१॥

भाषार्थ—हे विवाहित, (**विमहसः**) विविध प्रकार से पूजनीय, (**मरुतः**) हिरण्यवान्, रूपमान्, ऋत्विक्, विद्वान् गृहस्थो! तुम लोग जिस गृहस्थ के (**क्षये**) घर में सुवर्ण, उत्तम रूप, (**दिवः**) दिव्य गुण, स्वभाव और कर्मों को (**पाथ**) पाते हो (**हि**) निश्चय ही उस (**सुगोपातमः**) उत्तम वेदोक्त धर्म से गौ अर्थात् पृथिवी वा वेदवाणी के सर्वथा पालक (**जनः**) प्रसिद्ध पुरुष की सदा सेवा करो॥ ८। ३१॥

[हे...गृहस्थाः! **यूयं यस्य गृहस्थस्य क्षये=गृहे हिरण्यानि सुरूपाणि दिवः पाथ, स हि सुगोपातमो जनः सदा सेव्यः**]

भावार्थः—नहि केनचित् मनुष्येण किल ब्रह्मचर्यसुशिक्षाविद्याशरीरात्मबलारोग्य पुरुषार्थैश्वर्यसज्जनसङ्गालस्यत्यागयमनियमसेवनसुसहायैर्विना

भावार्थ—यह बात निश्चित है कि कोई भी मनुष्य ब्रह्मचर्य, सुशिक्षा विद्या, शरीर और आत्मा का बल, आरोग्य, पुरुषार्थ, ऐश्वर्य, सज्जनों

गृहाश्रमो धर्तुं शक्यः । न ह्येतेन विना धर्मार्थकाममोक्षसिद्धिर्भवितुं योग्या, तस्मादयं सर्वैः प्रयत्नेन सेवितव्यः ॥ ८ । ३१ ॥

का संग, आलस्य का त्याग, यम-नियमों का सेवन और उत्तम सहायकों के बिना गृहाश्रम को धारण नहीं कर सकता। इसके बिना धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि सम्भव नहीं अतः इसका सब लोग प्रयत्नपूर्वक सेवन करें ॥ ८ । ३१ ॥

भा० पदार्थः—दिवः=ब्रह्मचर्यसुशिक्षाविद्याशरीरात्म बलारोग्यपुरुषार्थैश्वर्यसज्जनसङ्गालस्यत्यागयमनियमसेवनसुसहायाः ॥

भाष्यसार—**गृहस्थ-धर्म**—विवाहित गृहस्थ लोग विविध प्रकार से पूजनीय, हिरण्यवान्, रूपवान्, ऋत्विक् और विद्वान् होते हों और वे जिस गृहस्थ के घर में हिरण्य, सरूप, दिव्य गुण, स्वभाव और कर्म अर्थात् ब्रह्मचर्य, सुशिक्षा, विद्या, शरीर और आत्मा का बल, आरोग्य, पुरुषार्थ, ऐश्वर्य, सज्जनों का संग, आलस्य का त्याग, यम-नियमों का सेवन और सुसहाय को प्राप्त करें उसी प्रसिद्ध गृहस्थ-जन की सेवा करें क्योंकि वही गृहाश्रम को उत्तम रीति से धारण करने में समर्थ होता है। वही इस पृथिवी और वेदवाणी का रक्षक है। वही धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि को प्राप्त करने वाला है ॥ ८ । ३१ ॥

मेधातिथिः । **दम्पती**=स्त्रीपुरुषौ ॥ आर्षी गायत्री । षड्जः ॥

पुनर्गार्हस्थ्यकर्म्मोपदेशमाह ॥

फिर गृहस्थों के कर्म्मों का उपदेश किया है ॥

मही द्यौः पृथिवी च न ऽ इमं यज्ञं मिमिक्षताम् । पिपृतां नो भरीमभिः ॥ ३२ ॥

पदार्थः—(**मही**) महती पूज्या (**द्यौः**) दिव्या पुरुषाकृतिः (**पृथिवी**) विस्तृतशीला क्षमाधारणादिशक्तिमती (**च**) (**नः**) अस्माकम् (**इमम्**) वर्त्तमानम् (**यज्ञम्**) विद्वत्पूज्यं गृहाश्रमम् (**मिमिक्षताम्**) सुखैः सेक्तुमिच्छताम् (**पिपृताम्**) पिपूर्त्तः (**नः**) अस्माकम् (**भरीमभिः**) धारणपोषणादिगुणयुक्तैर्व्यवहारैर्वा पदार्थैः सह ॥ **अयं मन्त्रः शत० ४ । ५ । २ । १८ व्याख्यातः ॥ ३२ ॥**

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । ५ । २ । १८) में की गई है ॥ ८ । ३२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे दम्पती ! भवन्तौ **मही द्यौः**=**महान् प्रकाशमानः पतिः**, [मही=महती पूज्या द्यौः=दिव्यापुरुषाकृतिः] **मही** महती पूज्या [**पृथिवी**]=**पृथ्वी** विस्तृतशीला क्षमाधारणादिशक्तिमती **स्त्री च त्वं भरीमभिः** धारण पोषणादि गुणयुक्तैर्व्यवहारैर्वा पदार्थैः सह **नः**=**अस्माकं** [**च**] **चादन्येषामिमं** वर्त्तमानं **यज्ञं** विद्वत्पूज्यं गृहाश्रमं **मिमिक्षतां** सुखैः सेक्तुमिच्छतां **पिपृतां** पिपूर्त्तः **च** ॥ ८ । ३२ ॥

भाषार्थ—हे स्त्री-पुरुषो ! आप लोग—(**मही**) महान्, पूज्य (**द्यौः**) दिव्य गुणों से प्रकाशमान जो पति है और (**मही**) पूज्या (**पृथिवी**) विस्तृत [उदार] स्वभाव वाली एवं क्षमा, धारण आदि शक्ति से सम्पन्न जो स्त्री है, उक्त दोनों स्त्री-पुरुष (**भरीमभिः**) धारण-पोषण आदि गुणों से युक्त व्यवहारों वा पदार्थों से (**नः**) हमारे [**च**] और दूसरों के भी (**इमम्**) इस (**यज्ञम्**) विद्वानों से पूजा करने योग्य गृहाश्रम को (**मिमिक्षताम्**) सुखों से सींचने की इच्छा करो और (**पिपृताम्**) सुखों से भरपूर करो ॥ ८ । ३२ ॥

[मही द्यौः=महान् प्रकाशमानः पतिः]

भावार्थः—यथा सूर्यो जलाद्याकृष्य वर्षित्वा पाति, पृथिव्यादिपदार्थान् प्रकाशयतिः तद्वदयं पतिः सद्गुणान् पदार्थान् संगृह्य तद्दानेन रक्षेत्, विद्यादि गुणान् प्रकाशयेत्।

भावार्थ—जैसे सूर्य जलादि को खैंचकर वर्षा करके रक्षा करता है, पृथिवी आदि पदार्थों को प्रकाशित करता है वैसे यह पति उत्तम गुण वाले पदार्थों को संगृहीत करके उनके दान से रक्षा करे, विद्या आदि गुणों को प्रकाशित करे।

[मही [पृथिवी]=पृथ्वी स्त्री]

यथेयं पृथिवी सर्वान् प्राणिनो धृत्वा पालयति तथेयं स्त्री गर्भादीन् धृत्वा पालयेत्।

जैसे यह पृथिवी सब प्राणियों को धारण करके पालन करती है वैसे यह स्त्री गर्भ आदि को धारण करके पालन करे।

[भरीमभिर्नः=अस्माकं [च] चादन्येषामिमं यज्ञं मिमिक्षतां पिपृतां च]

एवं—सहितौ भूत्वा स्वार्थं संसाध्य मनोवाक्कर्मभिरन्यान् सर्वान् प्राणिनः सततं सुखयेताम्॥ ८।३२॥

इस प्रकार स्त्री-पुरुष दोनों मिलकर स्वार्थ को सिद्ध करके सब प्राणियों को निरन्तर सुखी करें॥ ८।३२॥

भा० पदार्थः—भरीमभिः=मनोवाक्कर्मभिः। मिमिक्षताम्=सुखयेताम्॥

भाष्यसार—**गृहस्थ के कर्मों का उपदेश**—जैसे सूर्य जलादि का आकर्षण शक्ति से संग्रह करके तथा वर्षा से उसका दान करके प्राणियों की रक्षा करता है वैसे पति भी उत्तम गुण वाले पदार्थों का संग्रह करके उनके दान से प्राणियों की रक्षा किया करे। जैसे सूर्य अपने प्रकाश से पृथिवी आदि पदार्थों को प्रकाशित करता है वैसे पति भी विद्या आदि गुणों को प्रकाशित करे। जैसे यह पृथिवी विस्तृत है, क्षमा और प्राणियों को धारण करने की शक्ति से सम्पन्न है वैसे स्त्री भी विशाल हृदय वाली, क्षमाशील और गर्भ आदि को धारण करने वाली हो। इस प्रकार स्त्री और पुरुष दोनों मिल कर अपने प्रयोजन को सिद्ध करें। धारण-पोषण आदि गुणों से युक्त व्यवहारों से वा पदार्थों से एवं मन, वचन, कर्म से सब प्राणियों को सुख-प्रदान करें। इस प्रकार विद्वानों द्वारा पूज्य इस गृहाश्रम को सुखों से भरपूर करें॥ ८।३२॥

गोतमः। **गृहपतयः**=गृहस्थाः। आर्ष्यनुष्टुप्। गान्धारः। उपयामेत्यस्य विराडार्ष्युष्णिक्। ऋषभः॥

अथ प्रकारान्तरेण गृहस्थधर्म्ममाह॥

अब प्रकारान्तर से गृहस्थ धर्म्म का उपदेश किया है॥

आतिष्ठ वृत्रहन्रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी। अर्वाचीनꣳ सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना। उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा षोडशिनऽ एष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने॥ ३३॥

पदार्थः—(आ) (तिष्ठ) (वृत्रहन्) वृत्रान्=शत्रून् हन्ति तत्सम्बुद्धौ (रथम्) रमणीयं विद्याप्रकाशं यानं वा (युक्ता) युक्तौ (ते) तव (ब्रह्मणा) जलेन धनेन वा (हरी) हरणशीलौ धारण-कर्षणगुणाविवाश्वौ (अर्वाचीनम्) अधोगामि (सु) (ते) तव (मनः) अन्तःकरणम् (ग्रावा) मेघः। ग्राव इति मेघना॥ निघं० १।१०॥ (कृणोतु) (वग्नुना) वाण्या। वग्नुरिति वाङ् ना०॥ निघं० १।११॥ (उपयाम-

गृहीतः) उपयामासामग्री गृहीता येन सः (**असि**) (**इन्द्राय**) परमैश्वर्य्याय (**त्वा**) त्वाम् (**षोडशिने**) प्रशस्ताः षोडश कला विद्यन्ते यस्मिंस्तस्मै (**एषः**) गृहाश्रमः (**ते**) तव (**योनिः**) गृहम् (**इन्द्राय**) ऐश्वर्य्यप्रदाय गृहाय (**त्वा**) त्वाम् (**षोडशिने**) ॥ **अयंमन्त्रः शत० ४ । ५ । ४ । १-६ व्याख्यातः ॥ ३३ ॥**

प्रमाणार्थ—(**ग्रावा**) यह शब्द निघं० (१ । १०) में मेघ-नामों में पढ़ा है। (**वग्नुः**) यह शब्द निघं० (१ । ११) में वाणी-नामों में पढ़ा है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । ५ । ४ । १-६) में की गई है ॥ ८ । ३३ ॥

सपदार्थान्वयः— हे **वृत्रहन्** ! वृत्रान्=शत्रून् हन्ति तत्सम्बुद्धौ **ग्रावा** मेघः **इव** सुखवर्षिता **गृहस्थ** ! **ते**=**तव यत्र रथे ब्रह्मणा** जलेन धनेन वा **सह हरी** हरणशीलौ धारणाकर्षण-गुणाविवाश्वौ **युक्ता**=**युक्तौ, स्वीक्रियेते तं** [**रथम्**] रमणीयं विद्याप्रकाशं मानं वा **त्वमातिष्ठ**।

अस्मिन् गृहाश्रमे ते=**तव यन्मनः** अन्तःकरणम् **अर्वाचीनम्** **अनुत्कृष्टगति** अधोगामि **जायते तद् वग्नुना**=**वेदवाचा** वाण्या **भवान्** [**सु**]=**शान्तं कृणोतु**।

यतस्त्वमुपयामगृहीतः उपयामा=सामग्री गृहीता येन सः **अस्यतः षोडशिने** प्रशस्ताः षोडश कला विद्यन्ते यस्मिंस्तस्मै **इन्द्राय** परमैश्वर्याय **त्वा**=**त्वामुपदिशामि**।

हे गृहाश्रममभीप्सो ! **एषः** गृहाश्रमः **ते** तव **योनिः** गृहम् **अस्ति**। **अस्मै षोडशिने** प्रशस्ताः षोडश कला विद्यन्ते यस्मिंस्तस्मै **इन्द्राय** ऐश्वर्यप्रदाय गृहाय **त्वा**=**त्वां नियुनज्मीति** ॥ ८ ॥ ३३ ॥

भाषार्थ—हे (**वृत्रहन्**) शत्रुओं का हनन करने वाले, (**ग्रावा**) मेघ के समान सुख की वर्षा करने वाले गृहस्थ (**ते**) तेरे जिस रथ में (**ब्रह्मणा**) जल वा धन के सहित (**हरी**) हरणशील, धारण और आकर्षण गुण वाले (**युक्ता**) जुड़े हुये घोड़े स्वीकार किये जाते हैं उस [**रथम्**] रथ में (**आतिष्ठ**) बैठ।

इस गृहाश्रम में (**ते**) तेरा जो (**मनः**) अन्तः-करण (**अर्वाचीनम्**) अधोगति को प्राप्त होता है उसे (**वग्नुना**) वेदवाणी से आप [**सु**] शान्त करो।

जिससे तूने (**उपयामगृहीतः**) गृहस्थ-सामग्री को ग्रहण किया (**असि**) है इसलिये (**षोडशिने**) प्रशस्त सोलह कला वाले (**इन्द्राय**) परम ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (**त्वा**) तुझे उपदेश करता हूँ।

हे गृहाश्रम के अभिलाषी पुरुष ! (**एषः**) यह गृहाश्रम (**ते**) तेरा (**योनिः**) घर है। इस (**षोडशिने**) प्रशस्त सोलह कला वाले (**इन्द्राय**) ऐश्वर्य को देने वाले घर के लिये (**त्वा**) तुझे नियुक्त करता हूँ ॥ ८ । ३३ ॥

[हे ··· **गृहस्थ** ! ··· **यतस्त्वमुपयामगृहीतोऽस्यतः षोडशिन इन्द्राय त्वामुपदिशामि, हे गृहाश्रममभीप्सो** ! **एष ते योनिरस्ति, अस्मै षोडशिन इन्द्राय त्वा**=**त्वां नियुनज्मि**]

भावार्थः—गृहाश्रमाधीना एव सर्व आश्र-मास्ते वेदोक्तसदव्यवहारेण सेविताः सन्तोऽभ्युदय-निःश्रेयससुखसम्पत्तये भवन्त्येवातः परमैश्वर्यप्राप्तये गृहाश्रम एव सेव्य इति ॥ ८ । ३३ ॥

भावार्थ—सब आश्रम गृहाश्रम के ही अधीन हैं, वे वेदोक्त श्रेष्ठ व्यवहार से सेवन किये हुये ही अभ्युदय और निःश्रेयस सुख की सिद्धि के लिये होते हैं, अतः परम ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये गृहा-श्रम का सेवन अवश्य करें ॥ ८ । ३३ ॥

भा० पदार्थः—षोडशिने=अभ्युदयनिःश्रेयससुखसम्पत्तये। इन्द्राय=परमैश्वर्यप्राप्तये ॥

भाष्यसार—**गृहस्थ धर्म**—गृहस्थ पुरुष का कर्त्तव्य है कि वह शत्रुओं का हनन करने

वाला हो, मेघ के समान सुख की वर्षा करने वाला हो। उसके रथ में धारण और आकर्षण गुण वाले घोड़े जुड़े हों। वह रथ जल और धन से युक्त हो। गृहस्थ पुरुष ऐसे रथ में विराजमान होकर अपने कार्यों की सिद्धि किया करे। विद्याप्रकाश रूप रस से भी गृहस्थ पुरुष सुभूषित रहे। जिससे गृहस्थ-सम्बन्धी सब व्यवहारों में गतिमान् हो सके।

इस गृहाश्रम में जब कभी गृहस्थ पुरुष का मन रथ के समान अधोगामी होवे तब उसे वेदज्ञान की लगाम से रोके, शान्त करे। सब सामग्री से युक्त गृहस्थ पुरुष सोलह कलाओं से युक्त परम ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये गृहाश्रम का सेवन करे। वास्तव में गृहाश्रम के अधीन ही अन्य सब आश्रम हैं। वेदोक्त विधि से अभ्युदय और निःश्रेयस की प्राप्ति के लिये उनका सेवन करें।

युक्ष्वा हीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। **गृहपतिः**=गृहस्थः॥ विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः। उपयामेत्यस्य पूर्ववच्छन्दः स्वरश्च॥

अथ राजविषये प्रतिपादितप्रकारेण गृहस्थधर्म्ममाह॥

अब राजविषय में प्रतिपादित-विधि से गृहाश्रम धर्म उपदेश किया जाता है॥

युक्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा। अथा न ऽ इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर। उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा षोडशिन ऽ एष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने॥ ३४॥

पदार्थः—(**युक्ष्व**) (**हि**) खलु (**केशिना**) प्रशस्ताः केशा विद्यन्ते ययोस्तौ। **अत्र सर्वत्र सुपां सुलुक्॥ अ० ७। १। ३९॥** इति विभक्तेराकारः (**हरी**) यानस्य हरणशीलौ (**वृषणा**) वृषवद्बलिष्ठौ (**कक्ष्यप्रा**) कक्ष्यं प्रातः पिपूर्तः (**अथ**) आनन्तर्य्ये (**नः**) अस्माकम् (**इन्द्र**) शत्रुविदारक सेनाध्यक्ष! (**सोमपाः**) ऐश्वर्यरक्षक! (**गिराम्**) वाचम् (**उपश्रुतिम्**) उपगतां श्रूयमाणाम् (**चर**) विजानीहि। **अत्र चर इत्यस्य गत्यर्थत्वात् प्राप्त्यर्थो गृह्यते** (**उपयामगृहीतः**) इत्यादि पूर्ववत्॥ **अयं मन्त्रः शत० ४। ५। ३। १०-११ व्याख्यातः॥ ३४॥**

प्रमाणार्थ—(**केशिना**) यहाँ 'सुपां सुलुक्०' (**अ०** ७। १। ३९) इस सूत्र से विभक्ति को आकार हो गया है। (**चर**) विजानीहि। 'चर' धातु के गत्यर्थक होने से यहाँ प्राप्ति-अर्थ गृहीत होता है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४। ५। ३। १०-११) में की गई है॥ ८। ३४॥

सपदार्थान्वयः—हे **सोमपाः** ऐश्वर्य-रक्षक **इन्द्र**! शत्रुविदारक सेनाध्यक्ष! **त्वं केशिना** प्रशस्ताः केशा विद्यन्ते ययोस्तौ **वृषणा** वृषवद्-बलिष्ठौ **कक्ष्यप्रा** कक्ष्यं प्रातः पिपूर्तः **हरी** यानस्य हरणशीलौ **रथे युक्ष्व**।

अथेत्यनन्तरं नः=**अस्माकं गिरां** वाचम् **उप-श्रुतिम्** उपगतां श्रूयमाणां **हि** खलु **चर** विजानीहि। **उपयामेत्यस्यान्वयोऽपि पूर्ववत्॥** ८। ३४॥

भाषार्थ—हे (**सोमपाः**) ऐश्वर्य के रक्षक (**इन्द्र**) शत्रुओं का विदारण करने वाले सेनाध्यक्ष! तू (**केशिना**) प्रशस्त बालों वाले (**वृषणा**) बैल के समान बलवान् (**कक्ष्यप्रा**) (**कक्ष्यप्रा**) कक्ष्य अर्थात् तंग से परिपूर्ण (**हरी**) यान का हरण करने वाले घोड़ों को रथ में (**युक्ष्व**) जोड़।

(**अथ**) और फिर (**नः**) हमारी (**वाचम्**) वाणी को (**उपश्रुतिम्**) जो पास में सुनाई दे रही है उसे (**हि**) निश्चयपूर्वक (**चर**) जान। 'उपयाम०' इत्यादि शेष मन्त्र का अन्वय पूर्ववत् है॥ ८। ३४॥

[पूर्वपदसम्बन्धमाह—]

भावार्थः—अस्मिन् मन्त्रे 'रथे' इति पदस्य सम्बन्धः।

भावार्थ—इस मन्त्र में 'रथे' पद का सम्बन्ध है।

[हे···इन्द्र ! त्वं···हरी रथे युक्ष्व]

प्रजासभासेनाजनाः सभाध्यक्षं ब्रूयुः–शुचिना त्वया न्यायस्थितये चत्वारि सेनाङ्गानि सुशिक्षितानि हृष्ट-पुष्टानि रक्षणीयानि।

प्रजा, सभा और सेना के पुरुष सभाध्यक्ष को कहें कि आप पवित्र होकर न्याय को स्थिर रखने के लिये चारों सेना के अङ्गों को सुशिक्षित हृष्ट-पुष्ट रखें।

[अथ···नः=अस्माकं गिरामुपश्रुतिं हि चर]

पुनरस्माकं प्रार्थनानुकूल्येन राजैश्वर्यरक्षापि कार्येति ॥ ८ । ३४ ॥

फिर—हमारी प्रार्थना के अनुसार राजा के ऐश्वर्य की रक्षा भी करें ॥ ८ । ३४ ॥

भाष्यसार—**राजविषयक गृहस्थधर्म**—सेना का अध्यक्ष राजा के ऐश्वर्य का रक्षक और शत्रुओं का विदारण करने वाला हो। जो प्रशस्त केशों वाले, वृषभ के समान बलवान्, तंग को धारण करने वाले, यान को चलाने वाले घोड़ों को रथ में युक्त करें। सभाध्यक्ष का कर्त्तव्य है कि वह न्याय को जगत् में स्थिर रखने के लिये चारों सेना के अङ्गों को सुशिक्षित और हृष्ट-पुष्ट रखे और जो उसके अधीन हों उनके निवेदन को सुना करें ॥ ८ । ३४ ॥

गोतमः । **गृहपतिः**=**गृहस्थः** । विराडार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ।
उपयामेत्यस्य सर्वं पूर्ववत् ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजविषयक गृहस्थ धर्म का फिर उपदेश किया है ॥

इन्द्रमिद्धरी वहतोऽप्रतिधृष्टशवसम् । ऋषीणां च स्तुतीरुप यज्ञं च मानुषाणाम् ।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा षोडशिनऽ एष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने ॥ ३५ ॥

पदार्थः—(**इन्द्रम्**) परमैश्वर्य्यवर्द्धकं सेनारक्षकम् (**इत्**) एव (**हरी**) शिक्षितावश्वौ (**वहतः**) (**अप्रतिधृष्टशवसम्**) धृष्टम्प्रगल्भं शवो=बलं येन तम्प्रतीति (**ऋषीणाम्**) मन्त्रार्थद्रष्टॄणां विदुषाम् (**च**) वीराणाम् (**स्तुतीः**) गुणस्तवनानि (**उप**) यज्ञम् संगमनीयं व्यवहारम् (**च**) (**मानुषाणाम**) (**उपयामेति**) पूर्ववत् ॥ अयं मन्त्रः शत० ४ । ४ । ५ । १ व्याख्यातः ॥ ३५ ॥

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । ४ । ५ । १) में की गई है ॥ ८ । ३५ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे सोमपाः ! त्वं षोडशिन इन्द्राय यौ हरी** शिक्षितावश्वौ **अप्रतिधृष्टशवसं** धृष्टं=प्रगल्भं शवः=बलं येन तम्प्रतीति, **इन्द्रं** परमैश्वर्य्यवर्द्धकं सेनारक्षकं [**इत**] एव **वहतः**, **ताभ्यामृषीणां** मन्त्रार्थद्रष्टॄणां विदुषां [**च**] **चाद्**

भाषार्थ—हे (**सोमपाः**) ऐश्वर्य के रक्षक गृहस्थ ! तू (**षोडशिने**) सोलह कला वाले (**इन्द्राय**) इन्द्र के लिये जो (**हरी**) शिक्षित घोड़े (**अप्रतिधृष्टशवसम्**) जिसके बल को पराजित नहीं किया जा सकता उस (**इन्द्रम्**) परम ऐश्वर्य के वर्द्धक सेनारक्षक

वीराणां स्तुतीः गुणस्तवनानि **मानुषाणां यज्ञं** संगमनीयं व्यवहारं [**च**] **चात् पालनमुपचर ।**

को [**इत्**] ही (**वहतः**) देशान्तर में ले जाते हैं, उनसे (**ऋषीणाम्**) मन्त्रार्थ के द्रष्टा विद्वानों की [**च**] और वीरों की (**स्तुतीः**) स्तुतियों को तथा (**मानुषाणाम्**) मनुष्यों के (**यज्ञम्**) संगम के योग्य व्यवहार का [**च**] और पालना का उप [**चर**] उपाय करो ।

यस्य ते=तवैव योनिरस्ति यस्त्वमुपयामगृहीतोऽसि तं त्वाम् षोडशिन इन्द्राय जना उपाश्रयन्तु वयमपि त्वामाश्रयेम ॥ ८ । ३५ ॥

(**ते**) आपका (**एषः**) यह उक्त व्यवहार (**योनिः**) निवास है । और जो (**उपयामगृहीतः**) सब सामग्री से युक्त हो उस आप को (**षोडशिने**) सोलह कला से युक्त (**इन्द्राय**) इन्द्र की प्राप्ति के लिये लोग आपकी शरण लें और हम लोग भी आपका आश्रय ग्रहण करें ॥ ८ । ३५ ॥

[**अनुवृत्तिमाह**—]

भावार्थः—अत्र पूर्वस्मान्मन्त्रात् 'इन्द्र सोमपाश्चरेति' पदत्रयमनुवर्त्तते ।

भावार्थ—इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से इन्द्र, सोमपाः, चर, इन तीन पदों की अनुवृत्ति है ।

[हे सोमपाः ! त्वं…ऋषीणां [च] चाद् वीराणां स्तुतीर्मानुषाणां यज्ञं [च] चात्पालनमुपचर]

राज्ञो राजसभासभयानां प्रजास्थानां जनानामिदं योग्यमस्ति—प्रशंसनीयविदुषां सकाशाद्विद्योपदेशं प्राप्यान्येषामुपकारादिकं च सततं कुर्य्युः ॥ ८ । ३५ ॥

राजा, राजसभा के सदस्य और प्रजा जनों को यह योग्य है कि वे प्रशंसनीय विद्वानों से विद्या-उपदेश को प्राप्त करके अन्यों का उपकार आदि सदा किया करें ॥ ८ । ३५ ॥

भाष्यसार—**राजविषयक गृहस्थ धर्म**—परम ऐश्वर्य का वर्द्धक सेनाध्यक्ष ऐसा हो कि जिसके बल को शत्रु लोग कदापि पराजित न कर सके और वह सोलह कला से युक्त परम ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये सुशिक्षित दो अश्वों के वाहन का उपयोग करे । ऋषि अर्थात् मन्त्रार्थ द्रष्टा प्रशंसनीय विद्वानों की तथा वीरजनों की स्तुति को प्राप्त करे । मनुष्यों के व्यवहार को जाने तथा उनकी रक्षा भी करे । विद्वानों से विद्या ग्रहण करके परोपकार में सदा लगा रहे ॥ ८ । ३५ ॥ ●

विवस्वान् । **परमेश्वरः=स्पष्टम्** । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

अथ गृहाश्रममिच्छद्भ्यो जनेभ्यः परमेश्वर एवोपास्य इत्युपदिश्यते ॥

अब गृहाश्रम की इच्छा करने वालों को ईश्वर की ही उपासना करनी चाहिये, यह उपदेश किया है ॥

यस्मान्न जातः परोऽ अन्योऽ अस्ति यऽ आविवेश भुवनानि विश्वा ।
प्रजापतिः प्रजया सꣳरराणस्त्रीणि ज्योतीꣳषि सचते स षोडशी ॥ ३६ ॥

पदार्थः—(**यस्मात्**) परमात्मनः (**न**) निषेधे (**जातः**) प्रसिद्धः (**परः**) उत्तमः (**अन्यः**) भिन्नः (**अस्ति**) (**यः**) (**आविवेश**) (**भुवनानि**) स्थानानि (**विश्वा**) सर्वाणि । **अत्र शेर्लुक्** (**प्रजापतिः**) विश्वस्याध्यक्षः (**प्रजया**) सर्वेण संसारेण (**संरराणः**) सम्यग्दातृशीलः । **अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदम् । बहुलं छन्दसि ॥**

अ० २ । ४ । ७३ ॥ इति शपः स्थाने श्लुः (त्रीणि) (ज्योतींषि) सूर्य्यविद्युदग्न्याख्यानि (सचते) सर्वेषु समवैति (सः) (षोडशी) प्रशस्ताः षोडश कला विद्यन्ते यस्मिन्सः । इच्छा प्राणः श्रद्धा पृथिव्यापोऽग्निर्वायुराकाशमिन्द्रियाणि मनोऽन्नं वीर्य्यन्तपो मन्त्रा लोको नाम चैताः कलाः प्रश्नोपनिषदि प्रतिपादिताः ॥ अयम्मन्त्रः शत० ४ । ४ । ५ । ६ व्याख्यातः ॥ ३६ ॥

प्रमाणार्थ—(विश्वा) यहाँ ['शेश्छन्दसि बहुलम्', अ० ६ । १ । ६८] इस सूत्र से 'शि' का लुक् है । (संरराणः) यहाँ व्यत्यय से आत्नेपद और 'बहुलं छन्दसि' (अ० २ । ४ । ७३) इस सूत्र से 'शप्' के स्थान में 'श्लु' है । (षोडशी) प्रश्नोपनिषद् में [६ । ४] में—"इच्छा, प्राण, श्रद्धा, पृथिवी, आप्, अग्नि, वायु, आकाश, इन्द्रियाँ, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, लोक और नाम" इन सोलह कलाओं का प्रतिपादन किया गया है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । ४ । ५ । ६) में की गई है ॥ ८ । ३६ ॥

सपदार्थान्वयः—**यस्मात्** परमात्मनः **परः** उत्तमः **अन्यः** भिन्नः **न जातः** प्रसिद्धः [**अस्ति**] ।

किंच—**यो** विश्वा सर्वाणि **भुवनानि** स्थानानि **आविवेश**, **स प्रजापतिः** विश्वस्याध्यक्षः **प्रजया** सर्वेण संसारेण **संरराणः** सम्यग्दातृशीलः **षोडशी** प्रशस्ताः षोडश कलाः [इच्छा प्राणः श्रद्धा पृथिव्यापोऽग्निर्वायुराकाशमिन्द्रियाणि मनोऽन्नं वीर्यं तपो मन्त्रा लोको नाम च] विद्यन्ते यस्मिन् सः **त्रीणि ज्योतींषि** सूर्य्य विद्युदग्न्याख्यानि **सचते** सर्वेषु समवैति ॥ ८ । ३६ ॥

भाषार्थ—(**यस्मात्**) जिस परमात्मा से (**परः**) उत्तम (**अन्य**) (**अन्यः**) दूसरा कोई (**न जातः**) प्रसिद्ध नहीं [**अस्ति**] है ।

और—जो (**विश्वा**) सब (**भुवनानि**) स्थानों में (**आविवेश**) प्रविष्ट है, व्यापक है, वह (**प्रजापतिः**) विश्व का अध्यक्ष (**प्रजया**) सब संसार के द्वारा (**संरराणः**) श्रेष्ठ दाता एवं (**षोडश**) १. इच्छा, २. प्राण, ३. श्रद्धा, ४. पृथिवी, ५. जल, ६. अग्नि, ७. वायु, ८. आकाश, ९. इन्द्रियाँ, १०. मन, ११. अन्न, १२. वीर्य, १३. तप, १४. मन्त्र, १५. लोक और १६. नाम रूप सोलह कलाओं वाला (**त्रीणिज्योतीषि**) सूर्य, विद्युत् और अग्नि नामक तीनों ज्योतियों में (**सचते**) समवेता हो रहा है, व्यापक है ॥ ८ । ३६ ॥

[यो विश्वा भुवनान्याविवेश, स प्रजापतिः प्रजया संरराणः षोडशी त्रीणि ज्योतींषि सचते]

भावार्थः—गृहाश्रममिच्छद्‌भिर्मनुष्यैः—यः सर्वत्राभिव्यापी, सर्वेषां लोकानां स्रष्टा, धर्ता, दाता, न्यायकारी, सनातनः, सच्चिदानन्दो, नित्य शुद्धबुद्ध-मुक्तस्वभावः, सूक्ष्मात् सूक्ष्मः, महतो महान्, सर्वशक्तिमान् परमात्मास्ति,

भावार्थ—गृहाश्रम की कामना करने वाले मनुष्यों को चाहिये कि वे जो सर्वव्यापक, सब लोकों का स्रष्टा तथा धर्ता है और जो दाता, न्यायकारी, सनातन, सच्चिदानन्द, नित्य शुद्ध-बुद्ध-मुक्त स्वभाव, सूक्ष्म से सूक्ष्म, महान् से भी महान्, सर्वशक्तिमान् परमात्मा है—

[यस्मात्परोऽन्यो न जातः [अस्ति]]

यस्मात् कश्चिदपि पदार्थ उत्तमः समो वा नास्ति, स एवोपास्यः ॥ ८ । ३६ ॥

जिससे कोई भी पदार्थ उत्तम वा उसके तुल्य नहीं है, उस परमात्मा की ही उपासना करें ॥ ८ । ३६ ॥

अन्यत्र व्याख्यात—(क) जिससे बड़ा, तुल्य वा श्रेष्ठ न हुआ, न है और न कोई कभी होगा, उसको परमात्मा कहना। जो (**विश्वा भुवनानि**) सब भुवन=लोक सब पदार्थों के निवास-स्थान, असंख्यात लोकों को आवेश=प्रविष्ट होके पूर्ण हो रहा है, वही ईश्वर प्रजा का पति=स्वामी है। सब प्रजा को रम रहा और सब प्रजा में रम रहा है। (**त्रीणि ज्योतीꣳषि**) तीन ज्योति=अग्नि, वायु और सूर्य इनको जिसने रचा है। सब जगत् के व्यवहार और पदार्थ विद्या की उत्पत्ति के लिए इन तीनों को मुख्य समझना। (**स षोडशी**) सोलह कला जिसने उत्पन्न की हैं, इससे सोलह कलावान् ईश्वर कहाता है। वे सोलह कला ये हैं—१. ईक्षण=विचार, २. प्राण, ३. श्रद्धा, ४. आकाश, ५. वायु, ६. अग्नि, ७. जल, ८. पृथिवी, ९. इन्द्रिय, १०. मन, ११. अन्न, १२. वीर्य=पराक्रम, १३. तप=धर्मानुष्ठान, १४ मन्त्र=वेदविद्या, १५. कर्मलोक=चेष्टा-स्थान और १६. लोकों में नाम। इतनी कलाओं के बीच में सब जगत् है और परमेश्वर में अनन्त कला है। उसकी उपासना छोड़ के जो दूसरे की उपासना करता है, वह सुख को प्राप्त कभी नहीं होता किन्तु सदा दुःख में ही पड़ा रहता है॥ आर्याभि० २। १४॥

(ख) (**यस्मात्**) जिस परब्रह्म से (**अन्यः**) दूसरा कोई भी (**परः**) उत्तम पदार्थ (**जातः**) प्रकट (**नास्ति**) अर्थात् नहीं है, (**य अविवेश भुवनानि विश्वा**) जो सब विश्व अर्थात् सब जगहों में व्याप्त हो रहा है, (**प्रजापतिः प्रजयासꣳरराणः**) वही सब जगत का पालनकर्त्ता और अध्यक्ष है, जिसने (**त्रीणिज्योꣳषि**) अग्नि, सूर्य, बिजली इन तीन ज्योतियों को प्रजा के प्रकाश होने के लिए (**सचते**) रच के संयुक्त किया है और जिसका नाम (**षोडशी**) है, अर्थात् १. ईक्षण=जो यथार्थ विचार, २. प्राण=जो कि सब विश्व का धारण करने वाला, ३. श्रद्धा=सत्य में विश्वास, ४. आकाश, ५. वायु, ६. अग्नि, ७. जल, ८. पृथिवी, ९ इन्द्रिय, १०. मन अर्थात् ज्ञान, ११. अन्न, १२. वीर्य अर्थात् बल और पराक्रम, १३. तप अर्थात् धर्मानुष्ठान सत्याचार, १४. मन्त्र अर्थात् वेद विद्या, १५. कर्म अर्थात् सब चेष्टा, १६. नाम अर्थात् दृश्य और अदृश्य पदार्थों की संज्ञा। ये ही सोलह कला कहलाती हैं। ये सब ईश्वर ही के बीच में हैं, इससे उसको षोडशी कहते हैं। इन षोडश कलाओं का प्रतिपादन प्रश्नोपनिषद् के छठे प्रश्न में लिखा है (**ऋ० भू० वेदविषय-विचारविषयः**)॥ ८। ३६॥

भाष्यसार—**गृहाश्रमियों के लिये परमेश्वर ही उपास्य**—परमात्मा से बढ़कर कोई भी पदार्थ उत्तम नहीं है, न कोई पदार्थ उसके तुल्य है, वह सब स्थानों में अविष्ट अर्थात् सर्वत्र व्यापक है, वही सब लोकों का स्रष्टा और धर्ता है, वही विश्व का अध्यक्ष है, वही दाता, न्यायकारी, सच्चिदानन्द, नित्य शुद्ध-बुद्ध-मुक्त स्वभाव है, वही सूक्ष्म से सूक्ष्म और महान् से महान् है, १. इच्छा, २. प्राण, ३. श्रद्धा, ४. पृथिवी, ५. जल, ६. अग्नि, ७. वायु, ८. आकाश, ९. इन्द्रियाँ, १०. मन, ११. अन्न, १२. वीर्य, १३. तप, १४. मन्त्र, १५. लोक और १६ नाम इन प्रशस्त सोलह कलाओं से सम्पन्न होने से सर्वशक्तिमान् है, वही सूर्य, विद्युत् तथा अग्नि नामक तीनों ज्योतियों में समाया हुआ है। गृहाश्रम की कामना करने वाले जनों को योग्य है कि वे इस परमेश्वर को छोड़कर अन्य को उपास्य कदापि न मानें॥ ८। ३६॥ ❀

इन्द्रश्चेत्यस्य विवस्वानृषिः। **सम्राड्माण्डलिकौ राजानौ**=स्पष्टम्। साम्नी त्रिष्टुप्। तयोरहमित्यस्य विराडार्ची त्रिष्टुप्। धैवतः॥

अथ गृहस्थोपयोगिराजविषयमाह॥

अब गृहाश्रम के उपयोगी राजविषय का उपदेश किया जाता है॥

इन्द्रश्च सम्राड् वरुणश्च राजा तौ ते भक्षं चक्रतुरग्रऽ एतम् ।
तयोरहमनु भक्षं भक्षयामि वाग्देवी जुषाणा सोमस्य तृप्यतु सह प्राणेन स्वाहा ॥ ३७ ॥

पदार्थः—(इन्द्रः) परमैश्वर्य्ययुक्तः (**च**) साङ्गोपाङ्गराज्याङ्गसहितः (**सम्राट्**) सम्यग्राजते स चक्रवर्ती (**वरुणः**) श्रेष्ठः (**च**) माण्डलिकः प्रतिमाण्डलिकश्च (**राजा**) न्यायादिगुणैः प्रकाशमानः (**तौ**) (**ते**) तव प्रजाजनस्य (**भक्षम्**) भजनं सेवनम् (**चक्रतुः**) कुर्य्याताम् । अत्र लिङर्थे लिट् (**अग्रे**) (**एतम्**) (**तयोः**) रक्षकयो राज्ञोः (**अहम्**) (**अनु**) पश्चात् (**भक्षम्**) सेवनम् (**भक्षयामि**) पालयामि (**वाक्**) वाणी (**देवी**) दिव्या (**जुषाणा**) प्रसन्ना सेवमाना सती (**सोमस्य**) विद्यैश्वर्य्यस्य (**तृप्यतु**) प्रीणातु (**सह**) (**प्राणेन**) बलेन (**स्वाहा**) सत्यया वाचा ॥ अयम्मन्त्रः शत० ४ । ४ । ५ । ८ व्याख्यातः ॥ ३७ ॥

प्रमाणार्थ—(**चक्रतुः**) यहां लिङ् अर्थ में लिट् लकार है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । ४ । ५ । ८) में की गई है ॥ ८ । ३७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे प्रजाजन ! य **इन्द्रः** परमैश्वर्ययुक्तः **च** साङ्गोपाङ्गराज्याङ्ग-सहितः **सम्राट्** सम्यग्राजते स चक्रवर्ती **वरुणः** श्रेष्ठः [**च**] माण्डलिकः प्रतिमण्डलिकश्च **राजा** न्यायादि-गुणैः प्रकाशमानः **अस्ति, तावग्रे ते**=**तव** प्रजाजनस्य **भक्षं** भजनं=सेवनं **चक्रतुः** कुर्य्याताम् ।

अहं तयोः रक्षकयो राज्ञोः **एतं भक्षं** भजनं=सेवनम् **अनु** पश्चात् **भक्षयामि** पालयामि ।

या सोमस्य विद्यैश्वर्य्यस्य **प्राप्तये जुषाणा** प्रसन्ना सेवमाना सती **देवी** दिव्या **वाक्** वाणी **अस्ति तया स्वाहा** सत्यया वाचा **प्राणेन** बलेन **सह सर्वो जन-स्तृप्यतु** प्रीणातु ॥ ८ । ३७ ॥

भाषार्थ—हे प्रजा जन ! जो (**इन्द्र**) परम ऐश्वर्य से युक्त (**च**) और साङ्गोपाङ्ग राज्य के अङ्गों सहित (**सम्राट्**) चक्रवर्ती राजा है और जो (**वरुणः**) श्रेष्ठ [**च**] माण्डलिक एवं प्रतिमाण्डलिक (**राजा**) न्याय आदि गुणों से प्रकाशमान राजा है, वे दोनों पहले (**ते**) तुझ प्रजा-जन की (**भक्षम्**) सेवा (**चक्रतुः**) करें ।

मैं (**तयोः**) उन रक्षक दोनों राजाओं के (**एत**) इस उक्त (**भक्षम्**) सेवा के (**अनु**) उपरान्त (**भक्षयामि**) पालन करता हूँ ।

जो (**सोमस्य**) विद्या-ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (**जुषाणा**) प्रीतिपूर्वक सेवन की जाती हुई (**देवी**) दिव्य (**वाक्**) वाणी है उस (**स्वाहा**) सत्य वाणी के (**प्राणेन**) बल से सब जनता (**तृप्यतु**) तृप्त होवे ॥ ८ । ३७ ॥

[**हे प्रजाजन ! य इन्द्रश्च सम्राड् वरुणः** [**च**] **राजास्ति, तावग्रे ते**=तव भक्षं चक्रतुः]

भावार्थः—प्रजायां द्वौ ससभौ राजानौ भवितुं योग्यौ—एकश्चक्रवती द्वितीयो माण्डलिक-श्चैतौ श्रेष्ठन्यायविनयादिभ्यां प्रजाः संरक्ष्य पुन-स्ताभ्यः करं सङ्गृह्णीयाताम् ।

भावार्थ—प्रजा में सभा वाले दो राजाओं का होना योग्य है—एक चक्रवर्ती राजा और दूसरा माण्डलिक राजा हो । ये दोनों श्रेष्ठ न्याय और विनय आदि से प्रजा की रक्षा करें और उससे कर संग्रह किया करें ।

[**या सोमस्य प्राप्तये जुषाणा देवी वागस्ति तया** स्वाहा प्राणेन सह सर्वो जनस्तृप्यतु]

सर्वस्मिन् व्यवहारे विद्यावृद्धिं सत्यवचनं चाचा-रेताम् । त एवं धर्मार्थ कामैः प्रजाः सन्तोष्य स्वयं सन्तुष्टौ स्याताम् ।

सब व्यवहारों में विद्या की वृद्धि और सत्यमय आचरण किया करें । इस प्रकार वे धर्म, अर्थ और काम से प्रजा को सन्तुष्ट करके स्वयं सन्तुष्ट रहें ।

[अहं तयोरेतं भक्षमनु भक्षयामि]

आपत्काले राजा प्रजां, प्रजा च राजानं संरक्ष्य परस्परमानन्देताम् ॥ ८ । ३७ ॥

आपत्ति के समय में राजा प्रजा की और प्रजा राजा की रक्षा करके दोनों परस्पर आनन्दित रहें ॥ ८ । ३७ ॥

भा० पदार्थः—भक्षम्=करम् ।

भाष्यसार—**गृहस्थोपयोगी राजविषय**—प्रजा में पृथक्-पृथक् सभा वाले दो राजा हों। एक परमैश्वर्य से युक्त साङ्गोपाङ्ग राज्य के अङ्गों से सम्बद्ध चक्रवर्ती सम्राट् हो। दूसरा अति श्रेष्ठ, न्याय विनय आदि गुणों से प्रकाशमान माण्डलिक एवं प्रतिमाण्डलिक राजा हो। वे दोनों प्रजा की रक्षा किया करें और प्रजा से कर-संग्रह करें। आपत्ति के समय में राजा प्रजा की और प्रजा राजा की सेवा करे, रक्षा करें। इस प्रकार राजा और प्रजा परस्पर आनन्द में रहें। दोनों राजा विद्या रूप ऐश्वर्य की प्राप्ति एवं वृद्धि के लिये दिव्य देववाणी का सेवन करें। उससे सत्यभाषण की शक्ति तथा प्राणशक्ति को प्राप्त करके सब जनों को तृप्त करें ॥ ८ । ३७ ॥

अग्ने पवस्वेत्यस्य वैखानः । **राजादयो गृहपतयः**=स्पष्टम् । भुरिक् त्रिपाद् गायत्री । षड्जः । उपयामेत्यस्य स्वराडार्च्यनुष्टुप् । अग्नेवर्चस्विन्नित्यस्य भुरिगार्च्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनः प्रकारान्तरेण तदेवाह ॥

प्रकारान्तर से गृहाश्रम के उपयोगी राजविषय का फिर उपदेश किया है ॥

अग्ने पवस्व स्वपाऽअस्मे वर्चः सुवीर्य्यम् । दधद्रयिं मयि पोषम् ।
उपयामगृहीतोऽस्यग्नये त्वा वर्चसऽएष ते योनिरग्नये त्वा वर्चसे ।
अग्ने वर्चस्विन्वर्चस्वाँस्त्वं देवेष्वसि वर्चस्वानहं मनुष्येषु भूयासम् ॥ ३८ ॥

पदार्थः—(**अग्ने**) विज्ञानादिगुणप्रकाशक सभापते राजन् ! (**पवस्व**) शुन्ध (**स्वपाः**) शोभनान्यपांसि=कर्म्माणि यस्य तद्वन् ! (**अस्मे**) अस्मभ्यम् (**वर्चः**) वेदाध्ययनम् (**सुवीर्य्यम्**) सुष्ठु वीर्य्यम्वलं यस्मात् (**दधत्**) धरन् सन् (**रयिम्**) धनम् (**मयि**) पालनीये जने (**पोषम्**) पुष्टिम् (**उपयामगृहीतः**) राजव्यवहाराय स्वीकृतः (**असि**) (**अग्नये**) विज्ञानमयाय न्यायव्यवहाराय (**त्वा**) त्वाम् (**वर्चसे**) तेजसे (**एषः**) (**ते**) तव (**योनिः**) राज्यभूमिर्निवसतिः, (**अग्नये**) विज्ञानमयाय परमेश्वराय (**त्वा**) त्वाम् (**वर्चसे**) स्वप्रकाशाय वेदप्रवर्त्तकाय (**अग्ने**) तेजोमय (**वर्चस्विन्**) बहु वर्चोऽध्ययनं विद्यते यस्मिन् (**वर्चस्वान्**) सर्वविद्याध्ययनयुक्तः (**त्वम्**) (**देवेषु**) विद्वद्वर्य्येषु (**असि**) भवसि (**वर्चस्वान्**) प्रशस्तविद्याध्ययनः (**अहम्**) प्रजासभासेनाजनः (**मनुष्येषुः**) मनस्विषु । **मनुष्याः कस्मान्मत्वा कर्माणि सीव्यन्ति मनस्यमानेन सृष्टा मनस्यतिः पुनर्मनस्वीभावे मनोरपत्यम्मनुष्यो वा ॥ निरु० ३ । ७ ॥** (**भूयासम्**) ॥ **अयं मन्त्रः शत० ४ । ५ । ४ । ९—१० व्याख्यातः ॥ ३८ ॥**

प्रमाणार्थ—(**मनुष्येषु**) निरु० (३ । ७) में 'मनुष्य' शब्द की निरुक्ति इस प्रकार की है—"मनुष्य को मनुष्य क्यों कहते हैं ? इसलिए कि वे समझ कर कर्मों को सीते हैं, परमात्मा ने मनुष्य को विचारपूर्वक बनाया, मनस्यति मनुस्वि—अर्थ का द्योतक है । मनु का अपत्य भी मनुष्य कहलाता है" । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । ५ । ४ । ९-१०) में की गई है ॥ ८ । ३८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे स्वपाः ! शोभनान्यपांसि=कर्माणि यस्य तद्वन् **वर्चस्विन्** बहु वर्चः=अध्ययनं विद्यते यस्मिन् **अग्ने** विज्ञानादिगुणप्रकाशक सभापते राजन् **त्वमस्मे** अस्मभ्यं **सुवीर्यं** सुष्ठु वीर्यं=बलं यस्मात् **वर्चः** वेदाध्ययनं **मयि** पालनीये जने **रयिं** धनं **पोषं** पुष्टिं **च दधत्** धरन् **सन् पवस्व** शुन्ध ।

भाषार्थ—हे (**स्वपाः**) उत्तम कर्म करने वाले (**वर्चस्विन्**) अत्यन्त अध्ययन करने वाले (**अग्ने**) विज्ञान आदि गुणों के प्रकाशक सभापति राजन् ! आप (**अस्मे**) हमारे लिये (**सुवीर्यम्**) उत्तम वीर्य अर्थात् बल के हेतु (**वर्चः**) वेदाध्ययन को, और (**मयि**) मुझ पालन के योग्यप्रजाजन में (**रयिम्**) धन और (**पुष्टिम्**) पुष्टि को (**दधत्**) स्थापित करते हुये (**पवस्व**) शुद्ध करो ।

त्वमुपयामगृहीतः राज्यव्यवहाराय स्वीकृतः **असि, त्वां अग्नये** विज्ञानमयाय परमेश्वराय **वयं** स्वीकुर्म्मः ।

आप (**उपयामगृहीतः**) राज्य के व्यवहार के लिये हम से स्वीकार किये गये हो अतः आपको (**अग्नये**) विज्ञानमय परमेश्वर की प्राप्ति के लिये हम स्वीकार करते हैं ।

ते=**तवैष योनिः** राज्यभूमिर्निवसतिः **त्वा** त्वां **वर्चसे** स्वप्रकाशाय वेदप्रवर्त्तकाय **अग्नये** विज्ञानमयाय न्यायव्यवहाराय **सम्प्रेरयामः** ।

(**ते**) आपकी (**एषः**) यह (**योनिः**) राज्यभूमि आप का निवास है अतः (**त्वाम्**) आपको हम लोग (**वर्चसे**) स्वप्रकाशस्वरूप, वेदज्ञान के प्रवर्त्तक, (**अग्नये**) विज्ञानमय न्यायपूर्ण व्यवहार के लिये प्रेरित करते हैं ।

हे [**अग्ने**] तेजोमय [**वर्चस्विन्**] बहु वर्चः=अध्ययनं विद्यते यस्मिन् **सभापते** ! **यथा त्वं देवेषु** विद्वद्वर्य्येषु **वर्चस्वान्** सर्वविद्याऽध्ययन युक्तः **असि** भवसि **तथाहं** प्रजासभासेनाजनः **मनुष्येषु** मनस्विषु **वर्चस्वान्** प्रशस्तविद्याऽध्ययनः **भूयासम्** ॥ ८ । ३८ ॥

हे [**अग्ने**] तेजस्वी [**वर्चस्विन्**] सुशिक्षित सभापते ! जैसे आप (**देवेषु**) विद्वद्वरों में (**वर्चस्वान्**) सब विद्याओं से युक्त (**असि**) हो वैसे (**अहम्**) मैं प्रजा, सभा तथा सेना का व्यक्ति (**मनुष्येषु**) सब मनस्वी जनों में (**वर्चस्वान्**) प्रशस्त विद्या का अध्ययन करने वाला (**भूयासम्**) बनूँ ॥ ८ । ३८ ॥

[हे...**अग्ने त्वमस्मे सुवीर्यं वर्चो मयि रयिं पोषं च दधत् सन् पवस्व**]

भावार्थः—राजादिसभ्यजनानामिदमुचितमस्ति–मनुष्येषु सर्वाः सद्विद्याः सद्गुणाँश्च वर्द्धयेयुः

भावार्थ—राजा आदि सभ्य जनों को यह उचित है कि मनुष्यों में सब सद्विद्या और सद्गुणों को बढ़ावें ।

[हे...**सभापते ! यथा त्वं देवेषु वर्चस्वानसि तथाहं मनुष्येषु वर्चस्वान् भूयासम्**]

यतस्सर्वे श्रेष्ठगुणकर्मप्रचारेषुत्तमा भूयासुरिति ॥ ८ । ३८ ॥

जिससे सब लोग श्रेष्ठ गुण कर्म और प्रचार में उत्तम होवें ॥ ८ । ३८ ॥

भा० पदार्थः—सुवीर्यं वर्चः=सद्विद्या ।

भाष्यसार—**गृहस्थोपयोगी राजविषय**—सभापति राजा स्वयं शोभन कर्मों वाला हो, उसका अध्ययन गम्भीर हो, वह विज्ञान आदि गुणों का प्रकाशक हो । इन गुणों से युक्त राजा तथा उसके सभासदों को उचित है कि वे मनुष्यों में उत्तम बलवर्द्धक सत्य वेदविद्या को धन और पुष्टि को स्थापित करके उन्हें पवित्र करें । मनुष्यों में सद्गुणों को बढ़ावें ।

प्रजा-जनों को उचित है कि वे राज्य-व्यवहार के लिये सभापति राजा स्वीकार करें। विज्ञानमय परमेश्वर की प्राप्ति के लिये भी सभापति राजा स्वीकार करना आवश्यक है। प्रजाजनों को चाहिये कि वे स्वप्रकाश स्वरूप, वेदवाणी के प्रवर्त्तक परमेश्वर की प्राप्ति के लिये तथा विज्ञानमय न्याय पूर्ण व्यवहार के लिये सभापति राजा को प्रेरित करते रहें।

जैसे तेजस्वी विद्यावान् सभापति राजा श्रेष्ठ विद्वानों में वर्चस्वी होवे वैसे प्रजा-जन भी श्रेष्ठ गुण, कर्मों में तथा वेद विद्या के प्रचार में उत्तम वर्चस्वी होवे ॥ ८ । ३८ ॥

उत्तिष्ठन्नित्यस्य वैखान। **राजादयो गृहस्थाः**=स्पष्टम् ॥ उत्तिष्ठन्नित्यस्योपेत्येतस्य चार्षी गायत्री। षड्जः। इन्द्रेत्यस्यार्ष्युष्णिक्। ऋषभः॥

पुनस्तदेवाह ॥

प्रकारान्तर से गृहाश्रम के उपयोगी राजविषय का फिर उपदेश किया है॥

उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वी शिप्रे ऽअवेपयः। सोममिन्द्र चमू सुतम्।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वौजस ऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वौजसे।
इन्द्रौजिष्ठौजिष्ठस्त्वं देवेष्वस्योजिष्ठोऽहं मनुष्येषु भूयासम् ॥ ३९ ॥

पदार्थः—(**उत्तिष्ठन्**) सद्गुणकर्मस्वभावेषूर्ध्वन्तिष्ठन् (**ओजसा**) प्रशस्तशरीरात्मसभासेनाबलेन सह (**पीत्वी**) पीत्वा। स्नात्व्यादयश्च ॥ अ० ७। १। ४६॥ इतीकारादेशः (**शिप्रे**) हनुप्रभृत्यङ्गानि। शिप्रे इत्युपलक्षणान्येषाञ्च शिप्रे हनुनासिके ॥ निरु० ६। १७॥ (**अवेपयः**) वेपय अत्र लोडर्थे लङ् (**सोमम्**) ऐश्वर्य्यं सोमवल्ल्यादिरसं वा (**इन्द्र**) ऐश्वर्य्याय द्रवन्। ऐश्वर्य्ये रममाण वा। इन्द्रवे द्रवतीति वेन्दौ रमत इति वा ॥ निरु० १०। ८॥ (**चमू**) सेनया। अत्र सुपां सुलुक् ॥ अ० ७। १। ३९ ॥ इति तृतीयैकवचनस्य लुक् (**सुतम्**) सम्पादितम् (**उपयामगृहीतः**) (**असि**) (**इन्द्राय**) ऐश्वर्य्याय (**त्वा**) (**ओजसे**) पराक्रमाय (**एषः**) (**ते**) (**योनिः**) ऐश्वर्य्यकारणम् (**इन्द्राय**) परमैश्वर्य्यप्रदाय राज्याय (**त्वा**) (**ओजसे**) अनन्तपराक्रमाय (**इन्द्र**) दुःखविदारक विद्वन्! (**ओजिष्ठ**) अतिशयेनौजस्विन् (**ओजिष्ठः**) अतिपराक्रमी (**त्वम्**) (**देवेषु**) विजिगीषमाणेषु राजसु (**असि**) (**ओजिष्ठः**) अतिशयेन पराक्रमी (**अहम्**) (**मनुष्येषु**) (**भूयासम्**) ॥ अयं मन्त्रः शत० ४। ४। ५। १० व्याख्यातः ॥ ३९ ॥

प्रमाणार्थ—(**पीत्वी**) यहाँ 'स्नात्थादयश्च' (अ० ७। १। ४९) इस सूत्र से ईकार-आदेश है। (**शिप्रे**) यह शब्द अन्य अङ्गों का उपलक्षण है। निरु० (६। १७) में 'शिप्र' का अर्थ ठोढ़ी और नासिका है। (**इन्द्र**) इस शब्द की निर्वचन निरु० (१०। ८) में इस प्रकार किया है—इन्द्र को इन्द्र इस लिए कहते हैं कि वह चन्द्र के लिये गति करता है और चन्द्र में रमण करता है"। (**चमू**) यहां 'सुपां सुलुक्०' (अ० ७। २९) इस सूत्र से तृतीया-एकवचन का लुक् है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४। ४ ५। १०) में की गई है॥ ८। ३९॥

सपदार्थान्वयः—हे **इन्द्र**! ऐश्वर्याय द्रवन् सभापते! **त्वं चमू** सेनया **सुतं** सम्पादितं **सोमम्** ऐश्वर्य सोमवल्ल्यादिरसं वा **पीत्वी** पीत्वा **ओजसा** प्रशस्तशरीरात्मसभासेनाबलेन **सहोत्तिष्ठन्** सद्गुणकर्मस्वभावेषूर्ध्वं तिष्ठन् **सन् युद्धादिकर्मसु**

भावार्थ—हे (**इन्द्र**) ऐश्वर्य के लिये चेष्टा करने वाले सभापते! आप (**चमू**) सेना द्वारा (**सुतम्**) सम्पादित (**सोमम्**) ऐश्वर्य वा सोमलता आदि के रस का (**पीत्वी**) पान करके (**ओजसा**) प्रशंसनीय शरीर, आत्मा, सभा और सेना के बल

शिप्रे हनुप्रभृत्यङ्गानि **अवेपयः** वेपय ।

सहित (**उत्तिष्ठन्**) उत्तम गुण, कर्म, स्वभावों में ऊँचे उठकर युद्ध आदि कार्यों में (**शिप्रे**) हनु [**ठोड़ी**] आदि अङ्गों को (**अवेपयः**) कम्पित करो ।

अस्माभिस्त्वमुपयामगृहीतोऽसि, ते=**तवैष योनिः** ऐश्वर्यकारणम् **अस्त्यतस्त्वां स्वस्थतयेन्द्राय** ऐश्वर्य्याय **ओजसे** पराक्रमाय **परिचरामः । ओजसे** अनन्त पराक्रमाय **इन्द्राय**=**परमेश्वराय** परमैश्वर्य प्रदाय राज्याय **त्वां प्रणोदयामः** ।

हमसे आप (**उपयामगृहीतः**) राज्य व्यवहार के लिये स्वीकार किये गये (**असि**) हो, (**ते**) आपका (**एषः**) यह राज्य-व्यवहार (**योनिः**) निवास है इसलिये आपकी स्वस्थ चित्त से (**इन्द्राय**) ऐश्वर्य तथा (**ओजसे**) पराक्रम की प्राप्ति के लिए सेवा करते हैं, और—(**ओजसे**) अनन्त पराक्रम तथा (**इन्द्राय**) परम ऐश्वर्य के दाता ईश्वर एवं राज्य की प्राप्ति के लिए आपको प्रेरित करते हैं ।

हे **ओजिष्ठ** अतिशयेनौजस्विन् **इन्द्र** ! दुःख-विदारक विद्वन् **यथा त्वं देवेषु** विजिगीषमाणेषु राजसु **ओजिष्ठः** अतिपराक्रमी **असि तथाऽहं मनुष्येष्वोजिष्ठः** अतिशयेन पराक्रमी **भूयासम्** ॥ ८ । ३९ ॥

हे (**ओजिष्ठ**) अत्यन्त ओजस्वी (**इन्द्र**) दुःख विनाशक विद्वान् ! जैसे आप और (**देवेषु**) विजय की कामना करने वाले राजाओं में (**ओजिष्ठः**) अत्यन्त पराक्रमी (**असि**) हो वैसे मैं (**मनुष्येषु**) मनुष्यों में (**ओजिष्ठः**) अत्यन्त पराक्रमी (**भूयासम्**) बनूं ॥ ८ । ३९ ॥

[**हे···सभायते त्वं···सुतं सोमं पीत्वी ओजसा सहोत्तिष्ठन्**]

भावार्थः—राज्यपुरुषाणां योग्यमस्ति—भोजनाच्छादनादिपरिकरैश्शरीरबलमुन्नयेयुर्व्यभिचारादिदोषेषु कथंचिन्न प्रवर्त्तेरन्,

भावार्थ—राजपुरुषों को योग्य है कि भोजन-आच्छादन आदि साधनों से शरीर-बल को बढ़ावें, व्यभिचार आदि दोषों में किसी प्रकार भी प्रवृत्त न हों,

[**इन्द्राय**=**परमेश्वराय त्वां प्रणोदयामः**]

परमेश्वरोपासनं च यथोक्तव्यवहारेण च कुर्य्युरिति ॥ ८ । ३९ ॥

और परमेश्वर की उपासना यथोक्त व्यवहार से किया करें ॥ ८ । ३९ ॥

भाष्यसार—**गृहाश्रमोपयोगी राजविषय**—सभापति राजा ऐश्वर्य के लिये सदा चेष्टा करने वाला हो और वह सेना के द्वारा सिद्ध किये हुए ऐश्वर्य अथवा सोमलता आदि के रस का पान करके शरीर, आत्मा, सभा और सेना के प्रशस्त बल से युक्त रहे, व्यभिचार आदि दोषों में कभी न फंसे, उत्तम गुण, कर्म, स्वभावों में ऊँचा उठकर युद्ध आदि कार्यों में शत्रु के ठोड़ी आदि अङ्गों को कम्पित करे ।

प्रजा-जनों को उचित है कि वे नियमानुसार सभापति राजा स्वीकार करें, क्योंकि ऐश्वर्य का कारण राजा ही होता है । अतः स्वस्थ भावना से ऐश्वर्य तथा बल पराक्रम की प्राप्ति के लिये राजा की परिचर्या करे । अनन्त पराक्रम, परमेश्वर की उपासना तथा परमेश्वर के साधक राज्य की कामना के लिये राजा को प्रेरित करते रहे ।

राजा अत्यन्त ओजस्वी तथा दुःखों का विदारण करने वाला विद्वान् हो । वह विजय की कामना रखने वाले राजाओं में अत्यन्त पराक्रमी हो वैसे उसकी प्रजा भी अत्यन्त पराक्रमी होवे ॥८।३९॥

अदृश्रमित्यस्य प्रस्कण्वः । **गृहपतयो राजादयः**=गृहस्था राजादयः ॥
अदृश्रमित्यस्य सूर्य्यत्यस्य चार्षी गायत्री । उपयामगृहीतोऽसीत्यस्य
स्वराडार्षी गायत्री । षड्जः ॥

पुनः प्रकारान्तरेण तदेवाह ॥

प्रकारान्तर से गृहाश्रम के उपयोगी राजविषय का फिर उपदेश किया है ॥

अदृश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ२ ऽ अनु । भ्राजन्तो अग्नयो यथा ।
उपयामगृहीतोऽसि सूर्य्याय त्वा भ्राजायैष ते योनिः सूर्य्याय त्वा भ्राजाय ।
सूर्य्य भ्राजिष्ठ भ्राजिष्ठस्त्वं देवेष्वसि भ्राजिष्ठोऽहं मनुष्येषु भूयासम् ॥ ४० ॥

पदार्थः—(अदृश्रम्) पश्येयम् अत्र लिङर्थे लुङ् । उत्तमैकवचनप्रयोगो बहुलं छन्दसीति रुडागमः । ऋदृशोऽङि गुणः ॥ अ० ७ । ४ । १६ ॥ इति प्राप्तौ गुणाभावश्च (अस्य) जगतः (केतवः) ज्ञापकाः (वि) विशेषेण (रश्मयः) किरणाः (जनान्) मनुष्यादीन् प्राणिनः (अनु) (भ्राजन्तः) प्रकाशमानाः (अग्नयः) सूर्य्यविद्युत्प्रसिद्धास्त्रयः (यथा) (उपयामगृहीतः) (असि) (सूर्य्याय) सूर्य्य इव विद्यादिसद्गुणैः प्रकाशमानाय (त्वा) (भ्राजाय) जीवनादिप्रकाशाय (एषः) (ते) (योनिः) (सूर्य्याय) चराचरात्मने जगदीश्वराय (त्वा) (भ्राजाय) सर्वत्र प्रकाशमानाय (सूर्य्य) सूर्य्यस्येव न्यायविद्यासु प्रकाशमान (भ्राजिष्ठ) अतिशयेन सुशोभित (भ्राजिष्ठः) (त्वम्) (देवेषु) अखिलविद्यासु प्रकाशमानेषु विद्वत्सु (असि) (भ्राजिष्ठः) (अहम्) (मनुष्येषु) विद्यान्यायाचरणे प्रकाशमानेषु मानवेषु (भूयासम्) ॥ अयम्मन्त्र शत० ४ । ५ । ४ । ११–१२ व्याख्यातः ॥ ४० ॥

प्रमाणार्थ—(अदृश्रम्) यहाँ लिङ् अर्थ में लुङ् लकार है । उत्तम पुरुष के एकवचन का प्रयोग है और 'बहुलं छन्दसि' (अ० ७ । १ । ८) इस सूत्र से 'रुट्' का आगम है । 'ऋदृशोऽङि गुणः' (अ० ७ । ४ । १६) इस सूत्र से गुण प्राप्त था किन्तु यहाँ गुण का अभाव है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । ५ । ४ । ११-१२) में की गई है ॥ ८ । ४० ॥

सपदार्थान्वयः—यथाऽस्य जगतः पदार्थान् [वि] भ्राजन्तः विशेषेण प्रकाशमानाः रश्मयः किरणाः केतवः ज्ञापकाः अग्नयः सूर्य्य-विद्युत्प्रसिद्धास्त्रयः सन्ति तथैव जनान् मनुष्यादीन् प्राणिनः [अनु]=अन्वहमदृश्रं पश्येयम् ।

त्वमुपयामगृहीतोऽसि, यस्य ते=तवैव योनि-रस्ति तं [त्वा]=त्वां भ्राजाय जीवनादिप्रकाशाय सूर्य्याय सूर्य्य इव विद्यादिसद्गुणैः प्रकाशमानाय प्रचोदयामि । तं [त्वा]=त्वां भ्राजाय प्रकाश-मानाय सर्वत्र प्रकाशमानाय सूर्य्याय=परमात्मने चराचरात्मने जगदीश्वराय नियोजयामि ।

भाषार्थ—जैसे इस जगत् के पदार्थों को ([वि] भ्राजन्तः) विशेष रूप से प्रकाशित करती हुई (रश्मयः) किरण रूप (केतवः) पदार्थों की ज्ञापक (अग्नयः) सूर्य, विद्युत् और लोक प्रसिद्ध ये तीन अग्नियाँ हैं वैसे ही (जनान्) मनुष्य आदि प्राणियों को [अनु] प्रतिदिन (अदृश्रम्) देखूँ ।

आप (उपयामगृहीतः) राज्य-व्यवहार के लिए हमसे स्वीकार किए गए (असि) हो, (ते) आपका (एषः) यह राज्य-व्यवहार (योनिः) निवास है, अतः [त्वा] आपको (भ्राजाय) जीवन आदि प्रकाशक (सूर्याय) सूर्य के समान विद्यादि शुभ गुणों से प्रकाशमान बनने के लिए प्रेरित करता हूँ । तथा [त्वा] आपको (भ्राजाय) सर्वत्र प्रकाशमान

(**सूर्याय**) चराचर के आत्मा जगदीश्वर की प्राप्ति के लिए आज्ञा देता हूँ।

हे **भ्राजिष्ठ** अतिशयेन सुशोभित **सूर्य्य** सूर्य्यस्येव न्यायविद्यासु प्रकाशमान! **यथा त्वं देवेषु** अखिलविद्यासु प्रकाशमानेषु विद्वत्सु **भ्राजिष्ठोऽसि, तथाऽहं मनुष्येषु** विद्यान्यायाचरणे प्रकाशमानेषु मानवेषु भूयासम् ॥ ८।४०॥

हे (**भ्राजिष्ठ**) अत्यन्त शोभायमान (**सूर्य**) सूर्य के समान न्याय-विद्याओं में प्रकाशमान राजन्! जैसे आप (**देवेषु**) सब विद्याओं में प्रकाशमान विद्वानों में (**भ्राजिष्ठ**) अत्यन्त शोभायमान (**असि**) हो वैसे (**अहम्**) मैं (**मनुष्येषु**) विद्या और न्यायाचरण में प्रकाशमान मनुष्यों में सुशोभित (**भूयासम्**) होऊँ॥ ८।४०॥

[यथास्य जगतः पदार्थान् [वि] भ्राजन्तो रश्मय...सन्ति तथैव जनान् [अनु]=अन्वहमदृश्रम्]

पदार्थः—अत्रोपमालङ्कारः॥ यथेह सूर्य्यकिरणाः सर्वत्र प्रसृताः प्रकाशन्ते तथा राजप्रजासभाजनाश्शुभगुणकर्मस्वभावेषु प्रकाशमानास्सन्तु, कुतो?—

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है॥ जैसे संसार में सूर्य की किरणें सर्वत्र फैलकर प्रकाश करती हैं वैसे राजा, प्रजा और सभा के के लोग शुभ गुण, कर्म, स्वभावों में प्रकाशमान रहें, क्योंकि—

[हे भ्राजिष्ठ सूर्य! यथा त्वं देवेषु भ्राजिष्ठोऽसि तथाऽहं मनुष्येषु भूयासम्]

नहि मनुष्यशरीरं प्राप्य कस्यचिदुत्साह पुरुषार्थसत्पुरुषसंगयोगाभ्यासाचरितस्य जनस्य धर्म्मार्थकाममोक्षसिद्धिः शरीरात्मसमाजोन्नतिश्च दुर्लभाऽस्ति,

मनुष्य-शरीर को प्राप्त करके उत्साह, पुरुषार्थ, सत्पुरुषों का संग और योगाभ्यास करने वाले किसी भी पुरुष के लिए धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि तथा शरीर आत्मा और समाज की उन्नति को प्राप्त करना कठिन नहीं है।

[तात्पर्यमाह—]

तस्मात्—सर्वैर्मनुष्यैरालस्यं त्यक्त्वा नित्यं प्रयतितव्यम्॥ ८।४०॥

इसलिये—सब मनुष्य आलस्य को छोड़कर नित्य प्रयत्न करें॥ ८।४०॥

भाष्यसार—**१. गृहाश्रमोपयोगी राजविषय**—जैसे विशेष रूप से प्रकाशमान सूर्य की किरणें सर्वत्र फैलकर प्रकाश करती हैं, पदार्थों की ज्ञापक होती है, सूर्य, विद्युत् और प्रसिद्ध अग्नि तीन रूपों में दृष्टिगोचर होती हैं वैसे राजा, प्रजा और सभा के सदस्य लोग शुभ गुण, कर्म, स्वभावों में सदा प्रकाशमान रहें, विराजमान रहें।

प्रजा-जनों को उचित है कि वे राज्य-व्यवहार के लिए नियमानुसार सभापति राजा स्वीकार करें क्योंकि राज्यव्यवहार का कारण राजा है। जीवन आदि के प्रकाशक सूर्य के समान विद्यादि शुभ गुणों से प्रकाशमान रहने के लिए प्रेरणा करते रहें तथा सर्वत्र प्रकाशमान, चराचर के आत्मा जगदीश्वर की उपासना में भी नियुक्त रखें।

अत्यन्त शोभायमान, सूर्य के समान न्याय तथा विद्यादि गुणों में प्रकाशमान सभापति राजा समस्त विद्याओं में प्रकाशमान विद्वानों से बढ़कर हो। वैसे उसकी प्रजा भी विद्या और न्यायाचरण में प्रकाशमान मनुष्यों में सबसे बढ़कर हो। क्योंकि मनुष्य-शरीर को प्राप्त करके प्रत्येक व्यक्ति उत्साह,

पुरुषार्थ सत्संग और योगाभ्यास करके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि तथा शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति को प्राप्त कर सकता है ॥

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि जैसे सूर्य की किरणें सर्वत्र प्रकाश करती हैं वैसे सब मनुष्य शुभ गुण, कर्म, स्वभावों में प्रकाशमान रहें ॥ ८। ४०॥

प्रस्कण्वः। **सूर्य्यः**=**जगदीश्वरः**। पूर्वस्य निचृदार्षी। उपयामेत्यस्य स्वराडार्षी गायत्री च। षड्जः॥

अथेश्वरपक्षे गृहस्थकर्म्माह ॥

अब ईश्वरपक्ष में गृहस्थ के कर्म का उपदेश किया जाता है॥

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्य्यम्।
उपयामगृहीतोऽसि सूर्य्याय त्वा भ्राजायैष ते योनिः सूर्य्याय त्वा भ्राजाय ॥ ४१ ॥

पदार्थः—(उत्) (उ) वितर्के (त्यम्) अमुम् (जातवेदसम्) यो जातान् वेत्ति विन्दते वा जाता वेदसो=वेदाः पदार्था वा यस्मात्तम् (**देवम्**) शुद्धस्वरूपम् (**वहन्ति**) प्रापयन्ति (**केतवः**) किरण इव प्रकाशमाना विद्वांसः (**दृशे**) द्रष्टुम् (**विश्वाय**) सर्वजगदुपकाराय (**सूर्यम्**) चराचरात्मानमीश्वरम् (**उपयामगृहीतः**) उपगतैर्यमैर्य्यमैः स्वीकृतः (**असि**) (**सूर्य्याय**) प्राणाय सवित्रे वा (**त्वा**) त्वाम् (**भ्राजाय**) प्रकाशकाय (**एषः**) कार्यकारणसंगत्या यदनुमीयते (**ते**) तव (**योनिः**) असमं प्रमाणम् (**सूर्य्याय**) ज्ञानसूर्य्य स्य प्राप्तये (**त्वा**) त्वाम् (**भ्राजाय**)॥ **अयं मन्त्रः शत० ४। ३। ४। ६ व्याख्यातः ॥ ४१ ॥**

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४। ३। ४। ६) में की गई है॥ ॥ ८। ४१॥

सपदार्थान्वयः—**यं जातवेदसं** यो जातान् वेत्ति विन्दते वा, जाता वेदसः=वेदाः पदार्था वा यस्मात्तं **देवं** शुद्धस्वरूपं **सूर्य्यं जगदीश्वरं** चराचरात्मानमीश्वरं **विश्वाय** सर्वजगदुपकाराय **दृशे** द्रष्टुं **केतवः** किरणा इव प्रकाशमाना विद्वांसः **उद्वहन्ति** प्रापयन्ति, उसवितक **त्यम्** अमुं **जगदीश्वरं वयं प्राप्नुयाम।**

हे **जगदीश्वर**! **यस्त्वमस्माभिर्भ्राजाय** प्रकाशकाय **सूर्य्याय** प्राणाय सवित्रे वा **उपयामगृहीतः** उपगतैर्य्यमैः=यमैः स्वीकृतः **असि तं त्वा**=**त्वां सर्वे तदर्थं गृहणन्तु।**

यस्य ते=**तवैष** कार्यकारणसंगत्या यदनुमीयते **योनिः** असमं प्रमाणम् **अस्ति, तं** [**त्वा**]=**त्वां**

भाषार्थ—जिस (**जातवेदसम्**) जात मात्र को जानने वाले एवं प्राप्त अथवा जिससे चारों वेद वा सब पदार्थ उत्पन्न हुये हैं उस (**देवम्**) शुद्ध स्वरूप (**सूर्यम्**) चराचर के आत्मा जगदीश्वर को (**विश्वाय**) सब जगत् के उपकार के निमित्त (**दृशे**) देखने के लिये (**केतवः**) सूर्य-किरणों के समान प्रकाशमान विद्वान् लोग (**उद्वहन्ति**) प्राप्त करते हैं, (**उ**) विचारपूर्वक (**त्यम्**) उस जगदीश्वर को हम लोग प्राप्त करें।

हे जगदीश्वर! आप हमसे—(**भ्राजाय**) प्रकाशक (**सूर्याय**) प्राण वा। ज्ञान-सूर्य की प्राप्ति के लिये (**उपयामगृहीतः**) यम—नियम आदि से स्वीकार किये गये (**असि**) हो, सो (**त्वा**) आप को सब लोग उक्त प्रयोजन के लिये ग्रहण करें।

जिस (**ते**) आपके ज्ञान में (**एषः**) यह कार्य-कारण की संगति से अनुमान करना (**योनिः**)

भ्राजाय सूर्य्याय ज्ञान सूर्य्यस्य प्राप्तये **कारणं विजानीमः** ।। ८ । ४१ ।।

अतुल प्रमाण है, सो [**त्वा**] आपको तथा (**भ्राजाय**) प्रकाशमान (**सूर्याय**) ज्ञान-सूर्य की प्राप्ति के लिये कारण [**प्रकृति**] को जानें ।। ८ । ४१ ।।

[यं......सूर्यं=जगदीश्वरं विश्वाय दृशे केतव उद्वहन्ति......त्वं जगदीश्वरं वयं प्राप्नुयाम]

भावार्थः—यथा वेदविदो विद्वांसो वेदाऽनुकूल-मार्गेण परमेश्वरं विज्ञाय श्रेष्ठ विज्ञानेन तदुपासनं कुर्वन्ति तथैव स ईश्वरः सर्वैरुपासनीयः । न तादृशेन ज्ञानेन विनेश्वरोपासना भवितुं शक्या, कुतो ? विज्ञानमेव परमेश्वरोपासनावधिरिति ।। ८ । ४१ ।।

भावार्थ—जैसे वेद के वेत्ता विद्वान् लोग वेदानुकूल मार्ग से परमेश्वर को जानकर श्रेष्ठ विज्ञान से उसकी उपासना करते हैं वैसे ही वह ईश्वर सबके लिये उपासनीय है । वैसे ज्ञान के बिना ईश्वर की उपासना नहीं हो सकती क्योंकि विज्ञान ही परमेश्वर-उपासना की अवधि है ।। ८ । ४१ ।।

भा० पदार्थः—केतवः=वेदविदो विद्वांसः । उद्वहन्ति=तदुपासनं कुर्वन्ति ।।

भाष्यसार—**ईश्वर और गृहस्थ कर्म**—ईश्वर जातमात्र सब पदार्थों को जानता है, सब जातमात्र पदार्थों में विद्यमान है, सब वेद और सब पदार्थ उसी से उत्पन्न हुये हैं । इसलिये वह 'जात वेदाः' कहलाता है । शुद्धस्वरूप होने से ईश्वर का नाम 'देव' है । चराचर का आत्मा होने से ईश्वर का नाम 'सूर्य' है । इस जगदीश्वर को सूर्य की किरणों के समान विद्यादि गुणों से प्रकाशमान वेदज्ञ विद्वान् लोग सकल जगत् के उपकार की दृष्टि से प्राप्त करते हैं, श्रेष्ठ विज्ञान से उसकी उपासना करते हैं । विद्वानों के समान यह ईश्वर सबके लिये उपास्य है ।

प्राण-विज्ञान वा सूर्य-विज्ञान की प्राप्ति के लिये यमनियम आदि से जगदीश्वर को ग्रहण करें । ईश्वर के ग्रहण में कार्य-कारण की संगति के द्वारा इसका अनुमान अतुल प्रमाण है । ज्ञान-सूर्य की प्राप्ति में ईश्वर को ही कारण समझें क्योंकि विज्ञान की अवधि परमेश्वर की उपलब्धि पर्यन्त है ।। ८ । ४१ ।।

●

कुसुरुविन्दुः । **पत्नी**=**स्पष्टम्** । स्वराड्ब्राह्म्युष्णिक् । ऋषभः ।।

अथ गृहस्थकर्म्मणि पत्न्युपदेशविषयमाह ।।

अब गृहस्थ के कर्म्म में पत्नी विषयक उपदेश किया जाता है ।।

आजिघ्र कलशं मह्या त्वा विशन्त्विन्दवः ।
पुनरूर्जा निवर्त्तस्व सा नः सहस्रं धुक्ष्वोरुधारा पयस्वती पुनर्माविशताद्रयिः ।। ४२ ।।

पदार्थः—(**आ**) (**जिघ्र**) (**कलशम्**) नूतनं घटम् (**महि**) महागुणविशिष्टे पत्नि (**आ**) (**त्वा**) (**विशन्तु**) (**इन्दवः**) सोमाद्योषधिरसाः (**पुनः**) (**ऊर्जा**) पराक्रमेण (**नि**) (**वर्त्तस्व**) (**सा**) (**नः**) अस्मान् (**सहस्रम्**) असंख्यम् (**धुक्ष्व**) प्रपूर्द्धि (**उरुधारा**) उर्वी धारा=विद्यासुशिक्षाधारणा यस्याः सा (**पयस्वती**) प्रशस्तानि पयांस्यन्नान्युदकानि वा यस्यां सा (**पुनः**) (**मा**) माम् (**आ**) (**विशतात्**) (**रयिः**) धनम् ।। अयं मन्त्रः शत० ४ । ५ । ८ । ६-६ व्याख्यातः ।। ४२ ।।

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । ५ । ८ । ६-९) में की गई है ।। ८ । ४२ ।।

सपदार्थान्वयः—हे महि ! महा-

भाषार्थ—हे (**महि**) महान गुणों से युक्त

गुणविशिष्टे **पत्नि ! या त्वमुरुधारा** उर्वी धारा=विद्यासुशिक्षाधारणा यस्याः सा **पयस्वती** प्रशस्तानि पयांसि=अन्नान्युदकानि वा यस्यां सा **असि, सा** गृहस्थशुभकर्मसु **कलशं** नूतनं घटम् **आजिघ्र, पुनस्त्वा**=त्वां **सहस्रम्** असंख्यम् **इन्दवः** सोमाद्योषधिरसाः **आ विशन्तु, पुनरुर्जा** पराक्रमेण **नः**=**अस्मान् धुक्ष्वः** प्रपूर्द्धि, **पुनर्म्मा**=**मां रयिः** धनम् **आ-विशतात्,** **यतस्त्वं दुःखान्नि वर्त्तस्व** ॥ ८ । ४२ ॥

(**पत्नि**) पत्नी ! जो तू (**उरुधारा**) विद्या और उत्तम शिक्षा को धारण करने वाली तथा (**पयस्वती**) प्रशंसनीय अन्न वा जलों वाली (**असि**) है, सो तू गृहस्थ के कार्यों में (**कलशम्**) नवीन घड़े का (**आजिघ्र**) उपयोग कर, फिर (**त्वा**) तुझे (**सहस्रम्**) असंख्य (**इन्दवः**) सोम आदि औषधियों के रस (**आविशन्तु**) प्राप्त हो, (**पुनः**) फिर (**ऊर्जा**) बल पराक्रम से (**नः**) हमें (**धुक्ष्व**) परिपूर्ण कर, (**पुनः**) फिर (**मा**) मुझे (**रयिः**) धन (**आविशतात्**) प्राप्त हो जिससे तू दुःख से (**निवर्त्तस्व**) दूर रहे ॥ ८ । ४२ ॥

[**हे···पत्नि !···त्वमुरुधारा पयस्वत्यसि, त्वा=त्वां सहस्रमिन्दव आविशन्तु, पुनरुर्जा नः=अस्मान् धुक्ष्व**]

भावार्थः—विदुषीणां स्त्रीणां योग्यताऽस्ति—यादृशान् सुपरीक्षितान् पदार्थान् स्वयं भुञ्जीरन् तादृशानेव पत्ये दद्युः, यतो बुद्धिबलविद्यावृद्धिः स्यात् ।

भावार्थ—विदुषी स्त्रियों को योग्य है कि वे जैसे सुपरीक्षित पदार्थ स्वयं सेवन करें वैसे ही अपने पति को देवें, जिससे बुद्धि, बल और विद्या की वृद्धि होवे ।

[**पुनर्म्मा=मां रयि राविशतात्**]

धनादिपदार्थानामुन्नतिं च कुर्य्यः ॥ ८ । ४२ ॥

और-धन आदि पदार्थों की भी उन्नति करें ॥ ८ । ४२ ॥

भा० पदार्थः—ऊर्जा=बुद्धिबलविद्यावृद्धया । रयिः=धनादिपदार्थाः ॥

भाष्यसार—**गृहस्थ कर्म में पत्नी विषयक उपदेश**—पति अपनी पत्नी से कहता है कि हे पत्नि ! तू महान गुणों से युक्त है, विद्या और सुशिक्षा को तूने धारण किया है, प्रशस्त अन्न-जल निर्माण की विद्या को जानती है, इसलिये गृहस्थ के कार्यों में तू नवीन कलश (घड़ा) को सूंघ अर्थात् सब पदार्थों की परीक्षा कर । परीक्षा करके कलशों में नाना सोम आदि रसों को डाल । उनके सेवन से बुद्धि, बल, पराक्रम और विद्या की वृद्धि कर ।

पत्नी को उचित है कि वह जैसे पदार्थ स्वयं खाये-पीवे वैसे ही पति को भी खाने के लिये दिया करे । पति और पत्नी दोनों धन आदि पदार्थों की उन्नति करें जिससे दुःखों की निवृत्ति होवे ॥ ८ । ४२ ॥

कुसुरुविन्दुः । **पत्नी**=**स्पष्टम्** । आर्षीपंक्तिः । पञ्चमः ॥

पुनः प्रकारान्तरेण तदेवाह ॥

प्रकारान्तर से गृहस्थ के कर्म में पत्नी विषयक फिर उपदेश किया है ॥

इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतेऽदिते सरस्वति महि विश्रुति ।
एता ते ऽ अघ्न्ये नामानि देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात् ॥ ४३ ॥

पदार्थः—((**इडे**) स्तोतुमर्हे (**रन्ते**) रमणीये (**हव्ये**) स्वीकर्तुमर्हे (**काम्ये**) कमनीये (**चन्द्रे**)

आह्लादकारके (**ज्योते**) सुशीलेन द्योतमाने (**अदिते**) आत्मस्वरूपेणाविनाशिनि (**सरस्वति**) प्रशस्तं सरो=विज्ञानं विद्यते यस्यास्तत्सम्बुद्धौ (**महि**) पूज्यतमे (**विश्रुति**) विविधाः श्रुतयः=श्रवणानि तद्वति (**एता**) एतानि (**ते**) तव (**अघ्न्ये**) हन्तुं=तिरस्कर्तुमयोग्ये (**नामानि**) गौणिक्य आख्याः (**देवेभ्यः**) दिव्यगुणेभ्यो दिव्यगुणयुक्तपतिभ्यः (**मा**) माम् (**सुकृतम्**) सुष्ठु कर्तव्यं कर्म (**ब्रूतात्**) ब्रूहि ॥ **अयं मन्त्रः शत० ४ । ५ । ८ । १० व्याख्यातः ॥ ४३ ॥**

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । ५ । ८ । १०) में की गई है ॥ ८ । ४३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अघ्न्ये** ! हन्तुं=तिरस्कर्तुमयोग्ये **अदिते** ! आत्मस्वरूपेण विनाशिनि **ज्योते** ! सुशीलेन द्योतमाने **इडे** ! स्तोतुमर्हे **हव्ये** ! स्वीकर्तुमर्हे **काम्ये** ! कमनीये **रन्ते** रमणीये **चन्द्रे** ! आह्लादकारके **विश्रुति** ! विविधाः श्रुतयः=श्रवणानि तद्वति **महि** ! पूज्य तमे **सरस्वति** ! प्रशस्तं सरः=विज्ञानं विद्यते यस्यास्तत्—सम्बुद्धौ, **पत्नि** ! **ते** तव **एता** एतानि **नामानि** गौणिक्य आख्याः **सन्ति, त्वं देवेभ्यः** दिव्यगुणेभ्यो दिव्यगुण-युक्तपतिभ्यः **मा** मां **सुकृतं** सुष्ठु कर्त्तव्यं कर्म **ब्रूतात्** ब्रूहि ॥ ८ । ४३ ॥

भाषार्थ—हे (**अघ्न्ये**) हनन=तिरस्कार के अयोग्य, (**अदिते**) आत्म-स्वरूप से अविनाशिनी, (**ज्योते**) सुशीलता से प्रकाशमान, (**इडे**) स्तुति के योग्य (**हव्ये**) स्वीकार करने योग्य, (**काम्ये**) कामना के योग्य, (**रन्ते**) रमण करने के योग्य, (**चन्द्रे**) आह्लादित करने वाली, (**विश्रुति**) विविध श्रवणों से युक्त अर्थात् सुप्रसिद्ध (**महि**) पूज्यतम (**सरस्वति**) प्रशंसनीय सर=विज्ञान वाली, पत्नी ! (**ते**) तेरे (**एता**) **ये** (**नामानि**) गौणिक नाम है, अतः तू (**देवेभ्यः**) दिव्य गुण वाले विद्वानों से शिक्षा को प्राप्त हुई (**मा**) मुझे (**सुकृतम्**) उत्तम कर्त्तव्य कर्म का (**ब्रूतात्**) उपदेश कर ॥ ८ । ४३ ॥

[हे······**सरस्वति पत्नि** !······**त्वं देवेभ्यो मां सुकृतं ब्रूतात्**]

भावार्थः—या विद्वद्भ्यः शिक्षां प्राप्तवती विदुषी स्त्री सा यथोक्तया शिक्षया शिक्षेत्, यतस्सर्वा अधर्ममार्गे न प्रवर्त्तेरन् । परस्परं विद्यावृद्धिं स्वतनयान् कन्याश्च शिक्षिताः कुर्य्युः ॥ ८ । ४३ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् पुरुषों से शिक्षा को प्राप्त हुई विदुषी स्त्री हो वह यथोक्त शिक्षा से सबको शिक्षित करे, जिससे सब स्त्रियाँ अधर्म मार्ग में प्रवृत्त न हों, स्त्री-पुरुष परस्पर विद्या की वृद्धि करें, अपने पुत्रों और कन्याओं को शिक्षित करें ॥ ८ । ४३ ॥

भा० पदार्थः—देवेभ्यः=विद्वद्भ्यः ॥

भाष्यसार—**गृहस्थ कर्म में पत्नी विषयक उपदेश**—तिरस्कार के अयोग्य होने से पत्नी का नाम 'अघ्न्या' है। आत्म-स्वरूप से अविनाशी होने से 'अदिति', सुशीलता से प्रकाशित होने से 'ज्योता', स्तुति के योग्य होने से 'इडा', कामना करने के योग्य होने से 'काम्या', रमण करने योग्य होने से 'रन्ता', चित्त के लिये आह्लादकारी होने से 'चन्द्रा', बहुश्रुत होने से 'विश्रुति', पूज्यतम होने से 'मही', प्रशस्त विज्ञान वाली होने से पत्नी का नाम 'सरस्वती' है।

पति अपनी पत्नी से कहता है कि हे पत्नि ! तेरे ये गौणिक नाम हैं। तूने दिव्य गुणों वाले विद्वानों से शिक्षा को प्राप्त किया है। इसलिये यथोक्त शिक्षा से मुझे शिक्षित कर। सब स्त्रियों को शिक्षित कर जिससे वे अधर्म-मार्ग में प्रवृत न हों। हम दोनों परस्पर विद्या की वृद्धि करके अपने पुत्रों और कन्याओं को शिक्षित करें ॥ ८ । ४३ ॥

शासः । **इन्द्रः**=सेनापतिः । भुरिगनुष्टुप् । गान्धारः । उपयामेत्यस्य विराडार्षी गायत्री । षड्जः ॥

सिंहावलोकन्यायेन गृहस्थधर्म्मे राजपक्षे किंचिदाह ॥

अब सिंह जैसे पीछे लौट कर देखता है इस प्रकार गृहस्थ कर्म्म के निमित्त राजपक्ष में कुछ उपदेश किया है ॥

वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।
यो ऽ अस्माँ २ ऽ अभिदासत्यधरं गमया तमः ।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विमृध ऽ एष ते योनिरिन्द्राय त्वा विमृधे ॥ ४४ ॥

पदार्थः—(**वि**) विशेषेण (**नः**) अस्माकम् (**इन्द्र**) सेनाध्यक्ष ! (**मृधः**) शत्रून् (**जहि**) (**नीचा**) दुष्टकारिणः (**यच्छ**) निगृह्णीहि (**पृतन्यतः**) आत्मनः सेनामिच्छतः (**यः**) (**अस्मान्**) (**अभिदासति**) सर्वत उपक्षयति । दसु उपक्षये । अत्र वर्णव्यत्ययेनाकारस्य स्थान आकारः (**अधरम्**) अधोगतिम् (**गमय**) अत्र संहितायाम् ॥ अ० ६ । ३ । ११४ ॥ इति दीर्घः (**तमः**) अन्धकारम् (**उपयामगृहीतः**) सेनादिसामग्रीसंगृहीतः (**असि**) (**इन्द्राय**) ऐश्वर्य्यप्रदाय (**त्वा**) (**विमृधे**) विशिष्टा मृधः=शत्रवो यस्मिंस्तस्मै संग्रामाय (**एषः**) (**ते**) (**योनिः**) (**इन्द्राय**) परमानन्दप्राप्तये (**त्वा**) त्वाम् (**विमृधे**) विगतशत्रवे ॥ अयं मन्त्रः शत० ४ । ५ । ६ । ४ व्याख्यातः ॥ ४४ ॥

प्रमाणार्थ—(**अभिदासति**) यह रूप 'उपक्षय' अर्थ वाली 'दसु' धातु का है । यहाँ वर्ण-व्यत्यय से अकार के स्थान में आकार है । (**गमया**) गमय । यहाँ 'संहितायाम्' (अ० ६ । ३ । ११४) इस सूत्र से दीर्घ है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । ५ । ६ । ४) में की गई है ॥ ८ । ४४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **इन्द्र**=**सेनापते** ! सेनाध्यक्ष त्वं **नः**=**अस्माकं विमृधः** विशेषेण शत्रून् **जहि** । **पृतन्यतः** आत्मनः सेनामिच्छतः **नीचा**=**नीचान्** दुष्टकारिणः **यच्छ** निगृह्णीहि । **यः शत्रु-रस्मानभिदासति** सर्वतः उपक्षयति **तं तमः** अन्धकारं **सूर्य्य इवाधरम्** अधोगतिं **गमय** ।

यस्य ते=**तवैष योनिरस्ति स त्वमस्माभिरुप-यामगृहीतः** सेनादिसामग्री संगृहीतः **असि** । **अत एवेन्द्राय** ऐश्वर्य्यप्रदाय **विमृधे** विशिष्टा मृधः=शत्रवो यस्मिंस्तस्मै संग्रामाय [**त्वा**] **त्वां स्वीकुर्म्मो विमृधे** विगतशत्रवे **इन्द्राय** परमानन्दप्राप्तये **त्वा त्वां नियोजयामश्च** ॥ ८ । ४४ ॥

भाषार्थ—हे (**इन्द्र**) सेनापते एवं सेना-ध्यक्ष ! आप (**नः**) हमारे (**विमृधः**) विशेष शत्रुओं को (**जहि**) मारो । और (**पृतन्यतः**) अपनी सेना की इच्छा करने वाले (**नीचा**) नीच दुष्टों को (**यच्छ**) पकड़ो । (**यः**) जो शत्रु (**अस्मान्**) हमें (**अभिदा-सति**) सब ओर से क्षीण करता है उसे (**तमः**) अन्धकार को सूर्य के समान (**अधरम्**) नीचे (**गमय**) गिराओ ।

जिस (**ते**) आप का (**एषः**) यह उक्त आचरण (**योनिः**) निवास है सो आप हमसे (**उपयामगृहीतः**) सेना आदि सामग्री से युक्त होने से ग्रहण किये गये (**असि**) हो, अतः (**इन्द्राय**) ऐश्वर्य को देने वाले (**विमृधे**) विशेष शत्रुओं से युक्त संग्राम को जीतने के लिये [**त्वा**] आपको सेनापति स्वीकार करते हैं तथा (**इन्द्राय**) परमानन्द की प्राप्ति के लिये (**त्वा**) आपको (**नियोजयामः**) आज्ञा देते हैं ॥ ८ । ४४ ॥

[हे इन्द्र=सेनापते ! त्वं नः=अस्माकं वि+मृधो जहि, पृतन्यतो नीचा=नीचान् यच्छ, यः शत्रुरस्मानभिदासति तं तमः सूर्य इवा धरं गमय]

भावार्थः—यो दुष्टकर्मशीलपुरुषोऽनेकधा बलमुन्नीय सर्वान् पीडयितुमिच्छति तं राजा सर्वथा दण्डयेत्, यदि स प्रबलतरोपाधिशीलतां न त्यजेत् तर्हि राष्ट्रादेनं दूर गमयेद् विनाशयेद् वा ।।८।४४।।

भावार्थ—जो दुष्ट कर्म करने वाला पुरुष अनेक प्रकार से अपने बल को बढ़ाकर सबको पीड़ा देना चाहे उसे राजा सब प्रकार से दण्ड दे, यदि वह अपने प्रबलतर दुष्ट स्वभाव को न छोड़े तो उसे राष्ट्र से निकाल देवे अथवा मार डाले ।। ८ । ४४ ।।

भाष्यसार—**सिंहावलोक न्याय से गृहस्थधर्म में राजपक्ष**—सेनापति को उचित है कि वह शत्रुओं का हनन करें, और जो दुष्ट कर्म करने वाला पुरुष अपनी सेना (**बल**) को बढ़ाकर सबको पीड़ा देना चाहे उस दुष्ट को पकड़ कर वश में रखे, और जो शत्रु सब ओर से हानि पहुँचाये तथा अपनी प्रबलतर उपाधियों को न छोड़े तो जैसे सूर्य अन्धकार को दूर भगा देता है अथवा नष्ट कर देता है वैसे उसे राष्ट्र से निकाल देवे अथवा मार डाले ।

प्रजा जनों को योग्य है कि सेना आदि सामग्री से सम्पन्न पुरुष को नियमानुसार सेनापति स्वीकार करें क्योंकि ऐश्वर्य को देने वाले संग्राम के लिये सेनापति का होना आवश्यक है । प्रजा जन शत्रुओं को दूर भगाने के लिये तथा परम-आनन्द की प्राप्ति के लिये सेनापति को नियुक्त करें ।। ८ । ४४ ।।

वाचस्पतिमित्यस्य शास । **ईश्वरसभेशौ राजानौ**=स्पष्टम् । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् । उपयामेत्यस्य स्वराडर्ष्यनुष्टुप् । आद्यस्य धैवतः परस्य गान्धारः ।।

अथ गृहस्थकर्म्मणि राजविषयमीश्वरविषयं चाह ।।

अब गृहस्थ कर्म्म में राजा और ईश्वर विषय का उपदेश किया है ।।

वाचस्पतिं विश्वकर्म्माणमूतये मनोजुवं वाजे ऽ अद्या हुवेम ।
स नो विश्वानि हवनानि जोषद्विश्वशम्भूरवसे साधुकर्म्मा ।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विश्वकर्म्मणऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा विश्वकर्म्मणे ।। ४५ ।।

पदार्थः—(**वाचः**) देववाण्याः (**पतिम्**) स्वामिनं पालकं वा (**विश्वकर्म्माणम्**) विश्वानि=सर्वाणि धर्म्माणि कर्म्माणि यस्य तम् (**ऊतये**) रक्षणाय (**मनोजुवं**) मनोगतिम् (**वाजे**) विज्ञाने युद्धे वा (**अद्य**) अस्मिन्नहनि । निपातस्य च ।। अ० ६ । ३ । १३६ ।। इति दीर्घः (**हुवेम**) आह्वयेम (**सः**) (**नः**) अस्माकम् (**विश्वानि**) अखिलानि (**हवनानि**) प्रार्थनावाग्दत्तानि (**जोषत्**) जुषेत । अत्र व्यत्ययेन परस्मैपदम् (**विश्वशम्भूः**) विश्वं=सर्वं शं=सुखं भावयति (**अवसे**) प्रीतये (**साधुकर्म्मा**) साधूनि=श्रेष्ठानि कर्म्माणि यस्य (**उपयामगृहीतः**) (**असि**) (**इन्द्राय**) ऐश्वर्य्याय (**त्वा**) त्वाम् (**विश्वकर्म्मणे**) अखिलकर्म्मणोत्पादनाय (**एषः**) (**ते**) (**योनिः**) (**इन्द्राय**) शिल्पविद्यैश्वर्य्याय (**त्वा**) त्वाम् (**विश्वकर्म्मणे**) अखिलकर्म्मसाधनाय ।। अयं मन्त्रः शत० ४ । ६ । ४ । ५ व्याख्यातः ।। ४५ ।।

प्रमाणार्थ—(**अद्या**) अद्य । यहां 'निपातस्य च' (अ० ६ । ३ । १३६) इस सूत्र से दीर्घ है । (**जोषत्**) यहाँ व्यत्यय से परस्मैपद है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । ६ । ४ । ५) में की गई है ।। ८ । ४५ ।।

सपदार्थान्वयः—**वयमद्य** अस्मिन्नहनि **वाजे** विज्ञाने युद्धे वा **वाच ऊतये** रक्षणाय यं **वाचा** देववाण्याः **पति** स्वामिनं पालकं वा **विश्वकर्म्माणं** विश्वानि=सर्वाणि धर्म्माणि कर्म्माणि यस्य तं **मनोजुवं** मनोगतिं **हुवेम** आह्वयेम, **यः साधुकर्म्मा** साधूनि=श्रेष्ठानि कर्माणि यस्य **विश्वशम्भूः** विश्वं=सर्वं शं=सुखं भावयति, [सः] **सभापतिर्नः** अस्माकम् **अवसे** प्रीतये **विश्वानि** अखिलानि **हवनानि** प्रार्थनावाग्दत्तानि **जोषत्** जुषेत ।

भाषार्थ—हम (**अद्य**) आज (**वाजे**) विज्ञान वा युद्ध में (**ऊतये**) रक्षा के लिये जिस (**वाचः**) देववाणी के (**पतिम्**) स्वामी वा पालक, (**विश्वकर्माणम्**) सब धर्म उक्त कर्म करने वाले, (**मनोजुवम्**) मन के समान गतिशील पुरुष को (**हुवेम**) पुकारते हैं, जो (**साधुकर्म**) श्रेष्ठ कर्मों का अनुष्ठान करने वाला (**विश्वशम्भूः**) सब सुखों को उत्पन्न करने वाला है [सः] वह सभापति (**नः**) हमारी (**अवसे**) प्रीति के लिये (**विश्वानि**) सब (**हवनानि**) (हवनानि) प्रार्थना-वचनों को (**जोषत्**) प्रीतिपूर्वक स्वीकार करे ।

यस्य ते=तवैष **योनिरस्ति यस्त्वमुपयामगृहीतोऽसि, अतस्त्वां विश्वकर्मणे** अखिलकर्मणोत्पादनाय **इन्द्राय** ऐश्वर्याय **हुवेम** आह्वयेम, **विश्वकर्म्मणे** अखिलकर्म्मसाधनाय **इन्द्राय** शिल्पविद्यैश्वर्याय **त्वां सेवेमहि, चेत्युपाश्लिष्टोऽन्वयार्थः** ॥ ८ । ४५ ॥

जिस (**ते**) आपका (**एषः**) यह उक्त व्यवहार (**योनिः**) निवास है सो आप (**उपयामगृहीतः**) उक्त व्यवहार की सिद्धि के लिये सभापति स्वीकार किये गये हो अतः आप को (**विश्वकर्मणे**) सब कर्मों के उत्पादक (**इन्द्राय**) ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (**हुवेम**) पुकारते हैं, (**विश्वकर्मणे**) सब कर्मों की सिद्धि के लिये (**इन्द्राय**) शिल्पविद्या रूप ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये आपकी सेवा करते हैं । इस मन्त्र का अन्वयार्थ उपाश्लिष्ट है । अतः ईश्वर परक अर्थ भी समझ लेवें ॥ ८ । ४५ ॥

[**वयमद्य**···**वाचस्पतिं विश्वकर्माणं**···**हुवेम, यः साधुकर्मा विश्वशम्भूः** [सः] **सभापतिर्नोऽवसे विश्वानि हवनानि जोषत्**]

भावार्थ—अत्र श्लेषालङ्कारः ॥ यः परमेश्वरो न्यायाधीशो वा ऽस्मदनुष्ठितानि कर्म्माणि विदित्वा तदनुसारेणास्मान्नियच्छति, यः कस्याप्यकल्याणं मधर्मकं कर्म च न करोति, ययोः सहायेन मनुष्यो योगक्षेमव्यवहारविद्याः प्राप्य धर्मशीलो जायेत, स एवास्माभिः परमार्थ व्यवहारसिद्धये सेवनीयोऽस्ति ॥ ८ । ४५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष अलङ्कार है ॥ जो परमेश्वर वा न्यायधीश हमारे किये कर्मों को जान कर उनके अनुसार हमारा नियमन करता है, जो किसी का अकल्याण और अन्याय नहीं करता, जिनके सहाय से मनुष्य योगक्षेम और व्यवहारविद्या को प्राप्त करके धार्मिक हो जाता है, वही परमेश्वर वा न्यायाधीश हमारे लिये परमार्थ वा व्यवहार की सिद्धि के लिये सेवनीय है ॥ ८ । ४५ ॥

भाष्यसार—**१. गृहस्थकर्म में ईश्वर**—हम लोग आज विज्ञान में अपनी रक्षा के लिये देव-वाणी के स्वामी, सब शुभ कर्मों के उपदेश करने वाले, मन से भी अधिक वेगवान राजा परमेश्वर को पुकारते हैं क्योंकि वह श्रेष्ठ कर्मों का उपदेष्टा है, सबका कल्याण करने वाला है, हमसे प्रीति करने के लिये हमारी प्रार्थना को प्रेमपूर्वक सुनता है ।

प्रीतिपूर्वक बर्ताव ही उसका निवास-स्थान है । यम-नियमों के पालन से उसे ग्रहण (प्राप्त) किया जा सकता है । सब कर्मों को उत्पन्न करने वाले ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये हम ईश्वर को पुकारते हैं क्योंकि ईश्वर के सहाय से ही मनुष्य योगक्षेम को प्राप्त करके धर्मशील होता है । सब कर्मों के साधक शिल्प विद्या आदि ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये एवं परमार्थ की सिद्धि के लिये हम ईश्वर की उपासना करते हैं ।।

२. गृहस्थकर्म में सभापति (राजा)--आज हम लोग युद्ध में देववाणी के पालक सब धर्मयुक्त कर्म करने वाले, मन के समान वेगवान् न्यायाधीश सभापति राजा को पुकारते हैं । जो श्रेष्ठ कर्मों का करने वाला और सबको सुख देने वाला है जो कभी भी किसी के प्रति अन्याय नहीं करता वह न्यायाधीश राजा हम लोगों से प्रीति करने के लिये हमारे सब प्रार्थना वचनों को प्रेम-पूर्वक सुनता है ।

न्यायाधीश राजा का न्यायचरण ही निवास है । न्यायपूर्ण व्यवहार की सिद्धि के लिये न्याया-धीश को सब प्रजा जन स्वीकार करें । सब कर्मों के उत्पादक ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये राजा से प्रार्थना करें । सब कर्मों के साधक शिल्पविद्या रूप ऐश्वर्य की सिद्धि के लिये न्यायाधीश राजा की सेवा करें ।

३. अलङ्कार— इस मन्त्र में श्लेष अलङ्कार से परमेश्वर और न्यायाधीश राजा अर्थ का ग्रहण है ।। ८ । ४५ ।।

विश्वकर्म्मन्नित्यस्य शासः । **विश्वकर्मेन्द्रः=अखिलसाधुकर्मयुक्तो राजा** ।। भुरिगार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः । उपयामेत्यस्य विराडार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ।।

अथ राजधर्ममुपदिशति ।।

अब राजधर्म्म का उपदेश किया जाता है ।।

विश्वकर्म्मन् हविषा वर्द्धनेन त्रातारमिन्द्रमकृणोरवध्यम् ।
तस्मै विशः समनमन्त पूर्वीरयमुग्रो विहव्यो यथासत् ।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विश्वकर्म्मण ऽ एष ते योनिरिन्द्राय त्वा विश्वकर्म्मणे ।। ४६ ।।

पदार्थः—(**विश्वकर्म्मन्**) अखिलसाधुकर्मयुक्त (**हविषा**) आदातव्येन (**वर्द्धनेन्**) वृद्धिनिमित्तेन न्यायेन सह (**त्रातारम्**) रक्षितारम् (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्य्यप्रदम् (**अकृणोः**) कुर्य्याः (**अवध्यम्**) हन्तुमनर्हम् (**तस्मै**) (**विशः**) प्रजाः (**सम्**) (**अनमन्त**) नमन्ते । लडर्थे लुङ् (**पूर्वीः**) प्राक्तनैर्धार्मिकैः प्राप्तशिक्षाः । अत्र पूर्वसवर्णादेशः (**अयम्**) सभाधिकृतः (**उग्रः**) दुष्टदलने तेजस्वी (**विहव्यः**) विविधानि हव्यानि=साधनानि यस्य (**यथा**) (**असत्**) भवेत् (**उपयामगृहीतः**) इत्यादि पूर्ववत् ।। अयं मन्त्रः शत० ४ । ६ । ४ । ६ व्याख्यातः ।। ४६ ।।

प्रमाणार्थ—(**अनमन्त**) नमन्ते । यहां लट् अर्थ में लुङ् लकार है । (पूर्वीः) यहां पूर्वसवर्ण-आदेश है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । ६ । ४ । ६) में की गई है ।। ८ । ४६ ।।

सपदार्थान्वयः—हे विश्वकर्मन् ! अखिल साधु कर्मयुक्त त्वं **वर्द्धनेन** वृद्धिनिमित्तेन न्यायेन सह **हविषा** आदातव्येन **यमवध्यं** हन्तुमनर्हम् **इन्द्रं** परमैश्वर्य्यप्रदं **त्रातारं** रक्षितारम् **अकृणोः**

भावार्थ—हे (विश्वकर्मन्) सब उत्तम कर्मों से युक्त प्रजा आप (**वर्द्धनेन**) वृद्धि के निमित्त (**हविषा**) ग्रहण करने के योग्य न्याय से जिस (**अवध्यम्**) वध न करने के योग्य (**इन्द्रम्**) परम

कुर्य्याः, **तस्मै पूर्वीः** प्रावतनैर्धार्मिकैः प्राप्तशिक्षाः **विशः** प्रजाः **सम्-अनमन्त** नमन्ते ।

ऐश्वर्य के दाता इन्द्र को (**त्रातारम्**) रक्षक (**अकृणोः**) बनाते हो, अतः आपको (**पूर्वीः**) पूर्वज धार्मिक जनों से शिक्षा को प्राप्त हुई (**विशः**) प्रजा (**सम्-अनमन्त**) नमस्ते करती हैं ।

यथाऽयं सभाधिकृतः **उग्रः** दुष्टदलने तेजस्वी **विहव्यः** विविधानि हव्यानि=साधनानि यस्य **असत्** भवेत् **तथा विधेहि** ।

जिस प्रकार (**अयम्**) यह सभा अधिकारी (**उग्रः**) दुष्टों के दलन करने में तेजस्वी तथा (**विहव्यः**) विविध साधनों वाला (**असत्**) हो वैसा आप उपाय करो ।

उपयामेत्यस्यान्वयः पूर्ववद्योजनीयः ।। ८ । ४६ ।।

'उपयाम' इत्यादि मन्त्रांश का अन्वय पूर्ववत् समझें ।। ८ । ४६ ।।

[हे विश्वकर्मन् ! त्वं--यमवध्यमिन्द्रं त्रातारमकृणोस्तस्मै पूर्वीर्विशः सम्—अनमन्त]

भावार्थः—अस्मिन् संसारे केचिदपि सर्वजगद्रक्षितारमीश्वरं सभाध्यक्षं च नैव तिरस्कुर्य्युः किन्तु—तदनुमतौ वर्त्तेरन् ।

भावार्थ—इस संसार में कोई भी सब जगत् के रक्षक ईश्वर का और सभाध्यक्ष राजा का तिरस्कार न करे किन्तु सब उनकी अनुमति के अनुसार बर्ताव करें ।

न प्रजाविरोधेन कश्चिद्राजापि समृध्नोति । न चैत योराश्रयेण विना प्रजा धर्म्मार्थकाममोक्षसाधकानि कर्म्माणि कर्तुं शक्नुवन्ति, तस्मादेतावीश्वरमाश्रित्य परस्परोपकाराय धर्मेण वर्त्तेयाताम् ।। ८ । ४६ ।।

प्रजा के विरोध से कोई भी राजा समृद्धि को प्राप्त नहीं हो सकता । ईश्वर और राजा के आश्रय के बिना प्रजा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के साधक कर्मों को नहीं कर सकती, अतः राजा और प्रजा दोनों ईश्वर के आश्रय से एक-दूसरे के उपकार के लिये धर्मपूर्वक बर्ताव किया करें ।। ८ । ४६ ।।

भा० पदार्थः—अवध्वम्=तिरस्कर्तुमनर्हम् । इन्द्रम्=ईश्वरं सभाध्यक्षं च । त्रातारम्=सर्वजगद्रक्षितारम् ।

भाष्यसार—राजधर्म—सब उत्तम कर्मों से युक्त प्रजाजन वृद्धि के हेतु एवं ग्रहण करने के योग्य न्यायाचरण से ईश्वर और सभाध्यक्ष को स्वीकार करें । इस संसार में ईश्वर और सभाध्यक्ष तिरस्कार करने योग्य नहीं हैं क्योंकि ये दोनों परम ऐश्वर्य के दाता और सब जगत् के रक्षक हैं । सब लोग इनकी अनुमति में रहें । जैसे सुशिक्षित धार्मिक पूर्वज लोग इनका सत्कार करते रहे हैं वैसे सब लोग सत्कार करें ।

प्रजा को योग्य है कि वह जिस प्रकार से यह सभाध्यक्ष राजा दुष्टों के दलन करने में तेजस्वी एवं विविध साधनों से सम्पन्न हो सके वैसा प्रयत्न करे, क्योंकि प्रजा के विरोध से कोई भी राजा कदापि समृद्ध नहीं हो सकता । ईश्वर और राजा के आश्रय के बिना प्रजा भी धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के साधक कार्यों को नहीं कर सकती, इसलिये राजा और प्रजा ईश्वर का आश्रय करके एक-दूसरे के उपकार के लिये धर्मपूर्वक बर्ताव किया करें ।। ८ । ४६ ।।

उपयामगृहीतोऽसीत्यस्य शासः । **विश्वकर्म्मेन्द्रः**=अखिलसाधुकर्मयुक्तो ऽध्यापकः

विराड् ब्राह्मी बृहती । मध्यमः ॥

पुनः प्रकारान्तरेण तदेवाह ॥

प्रकारान्तर से राजधर्म का फिर उपदेश किया है ॥

उपयामगृहीतोऽस्यग्नयें त्वा गायत्रच्छन्दसं गृह्णामीन्द्राय त्वा त्रिष्टुप्छन्दसं गृह्णामि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जगच्छन्दसं गृह्णाम्यनुष्टुप्तेऽभिगरः ॥ ४७ ॥

पदार्थः—(**उपयामगृहीतः**) साङ्गोपाङ्गसाधनैः स्वीकृतः (**असि**) (**अग्नये**) अग्न्यादिपदार्थविज्ञानाय (**त्वा**) त्वाम् (**गायत्रच्छन्दसम्**) गायत्रीछन्दोऽर्थविज्ञापकम् (**गृह्णामि**) वृणोमि (**इन्द्राय**) परमैश्वर्य्यप्राप्तये (**त्वा**) त्वाम् (**त्रिष्टुप्छन्दसम्**) त्रिष्टुप्छन्दोऽर्थबोधयितारम् (**गृह्णामि**) (**विश्वेभ्यः**) अखिलेभ्यः (**त्वा**) त्वाम् (**देवेभ्यः**) दिव्यगुणकर्म्मस्वभावेभ्यः (**जगच्छन्दसम्**) जगच्छन्दोऽवगमकम् (**गृह्णामि**) (**अनुष्टुप्**) अनुष्टोभते=स्तम्भात्यज्ञानं यः (**ते**) तव (**अभिगरः**)अभिगतस्तवः ॥अत्र मन्त्रः शत० ११ । ५ । ६ । ७ व्याख्यातः ॥ ४७ ॥

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (११ । ५ । ६ । ७) में की गई है ॥ ८ । ४७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **विश्वकर्म्मन्**! अहं यस्य ते=तवानुष्टुप् अनुष्टोभते=स्तम्भात्यज्ञानं यः **अभिगिरः** अभिगतस्तवः **अस्ति**, **तं गायत्रच्छन्दसं** गायत्रीछन्दोऽर्थविज्ञापकं **त्वा** त्वाम् **अग्नये** अग्न्यादि पदार्थविज्ञानाय **गृह्णामि** वृणोमि ।

त्रिष्टुप्छन्दसं त्रिष्टुप्छन्दोऽर्थबोधयितारं **त्वा** त्वाम् **इन्द्राय** परमैश्वर्यप्राप्तये **गृह्णामि** वृणोमि ।

जगच्छन्दसं जगच्छन्दोऽवगमकं **त्वा** त्वां **विश्वेभ्यः** अखिलेभ्यः **देवेभ्यः** दिव्यगुणकर्मस्वभावेभ्यः **गृह्णामि** वृणोमि । **एतदर्थमस्माभिस्त्वमुपयामगृहीतः** साङ्गोपाङ्गसाधनैः स्वीकृतः **असि** ॥ ८ । ४७ ॥

भाषार्थ—हे (**विश्वकर्मन्**) सब उत्तम कर्मों से युक्त अध्यापक ! मैं (**ते**) जो आपका (**अनुष्टुप्**) अज्ञान का स्तम्भन (**रोक**) करने वाला (**अभिगिरः**) व्यापक स्तवन है उस (**गायत्रछन्दसम्**) गायत्री छन्द के अर्थ को बतलाने वाले (**त्वा**) आपको (**अग्नये**) अग्नि आदि पदार्थों के विज्ञान के लिये (**गृह्णामि**) चुनता हूँ ।

(**त्रिष्टुप्छन्दसम्**) त्रिष्टुप् छन्द के अर्थ का बोध कराने वाले (**त्वा**) आपको (**इन्द्राय**) परम ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए (**गृह्णामि**) चुनता हूँ ।

(**जगच्छन्दसम्**) जगती छन्द को समझाने वाले (**त्वा**) आपको (**विश्वेभ्यः**) सब (**देवेभ्यः**) दिव्य गुण, कर्म, स्वभावों की प्राप्ति के लिये (**गृह्णामि**) चुनता हूँ। इसलिये हमसे आप (**उपयामगृहीतः**) साङ्गोपाङ्ग साधनों से स्वीकार किये गये (**असि**) हो ॥ ८ । ४७ ॥

[अनुवृत्तिमाह—]

भावार्थः—अत्र मन्त्रे पूर्वस्यान्मंत्राद्विश्वकर्म्मन्निति पदमनुवर्त्तते ।

भावार्थ—इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से 'विश्वकर्मन्' पद की अनुवृत्ति है ।

[हे विश्वकर्मन् !···**गायत्रच्छन्दसं त्वाग्नये गृह्णामि**···एतदर्थमस्माभिस्त्वमुपयामगृहीतोऽसि]

मनुष्यैरग्न्यादिविद्यासाधनक्रियाविज्ञापकानां गाय-

सब मनुष्य अग्नि आदि विद्या के साधन एवं

र्यादिछन्दोऽन्वितानामृग्वेदादीनां बोधायाध्यापकः सेवनीयोऽस्ति, न ह्येतेन विना कस्यचिद्विद्या-प्राप्तिर्भवितुं शक्या ॥ ८ । ४७ ॥

क्रिया को बतलाने वाले, गायत्री आदि छन्दों से अन्वित ऋग्वेद आदि के बोध के लिये अध्यापक की सेवा करें क्योंकि इसके बिना किसी को विद्या की प्राप्ति नहीं हो सकती ॥ ८ । ४७ ॥

भाष्यसार—**राजधर्म**—सभापति राजा को उचित है कि वह सब कर्मों को जानने वाले, अज्ञान का स्तम्भन करने वाले, सर्वत्रस्तुति के योग्य, गायत्री छन्द का अर्थ समझाने वाले, अध्यापक को अग्नि आदि पदार्थविद्या को जानने के लिये वरण करे। त्रिष्टुप् छन्द का अर्थ-बोध कराने वाले अध्यापक को परम ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये वरण करे। जगती छन्द का अर्थ समझाने वाले अध्यापक को सब दिव्य गुण कर्म स्वभावों की प्राप्ति के लिये वरण करे। तात्पर्य यह है कि गायत्री आदि छन्दों से अन्वित ऋग्वेदादि वेद अग्नि आदि विद्या के साधन और क्रिया को बतलाने वाले हैं। उनके बोध के लिये वे वेद-अध्यापक की सब सङ्गोपाङ्ग साधनों से सेवा करें क्योंकि अध्यापक के बिना विद्या की प्राप्ति सम्भव नहीं ॥ ८ । ४७ ॥

व्रेशीनां त्वेत्यस्य देवा ऋषयः। **प्रजापतयः**=**गृहस्थाः** ॥ याजुषी त्रिष्टुप्। कुक्ननानामित्यस्य याजुषी जगती। भन्दनानामित्यस्य मदिन्तमानामित्यस्य मधुन्तमानामित्यस्य च याजुषी त्रिष्टुप्। शुक्रं त्वेत्यस्य साम्नी बृहती छन्दांसि। तेषु त्रिष्टुभो धैवतः। जगत्या निषादः। बृहत्या मध्यमश्च स्वराः ॥

अथ गार्हस्थ्यकर्म्मणि पत्नी पतिमुपदिशति ॥

अब गार्हस्थ्य कर्म्म में पत्नी अपने पति को उपदेश देती है ॥

व्रेशीनां त्वा पत्मन्नाधूनोमि। कुकूननानां त्वा पत्मन्नाधूनोमि।
भन्दनानां त्वा पत्मन्नाधूनोमि। मदिन्तमानां त्वा पत्मन्नाधूनोमि।
मधुन्तमानां त्वा पत्मन्नाधूनोमि। शुक्रं त्वा शुक्रऽआधूनोम्यह्नो रूपे सूर्य्यस्य रश्मिषु ॥ ४८ ॥

पदार्थः—(**व्रेशीनाम्**) दिव्यानामपामिव निर्मलविद्यासुशीलव्याप्तानाम्। एत वै दैवीरापस्तद्याश्चैव दैवीरापो याश्चेमा मानुष्यस्ताभिरेवास्मिन्नेतदुभयीभी रसं दधाति ॥ शत० ११।५।६।८॥ (**त्वा**) त्वाम् (**पत्मन**) धर्मात्पतनशील (**आ**) (**धूनोमि**) समन्तात्कम्पयामि। अत्रान्तर्गतो णिच् (**कुकूननानाम्**) भृशं शब्दविद्यया नम्राणाम्। कुङ् शब्दे इत्यस्माद्यङि गुणाभावेऽभ्यस्ततः कुकूयपदान्नम् धातोरौणादिको नक् प्रत्ययश्च ततः षष्ठीबहुवचनम् (**त्वा**) (**पत्मन्**) (**आ**) (**धूनोमि**) (**भन्दनानाम्**) कल्याणाचरणानाम् (**त्वा**) (**पत्मन्**) (**आ**) (**धूनोमि**) (**मदिन्तमानाम्**) अतिशयितानन्दितानां परस्त्रीणां समीपे (**त्वा**) (**पत्मन्**) चञ्चलचेतः (**आ**) (**धूनोमि**) (**मधुन्तमानाम्**) अतिशयेन माधुर्यगुणोपेतानाम्। वा छन्दसि सर्वे विधयो भवन्ति ॥ अ० १।४।६। भा० ॥ इति नुडागमः (**त्वा**) (**पत्मन्**) (**आ**) (**धूनोमि**) (**शुक्रम्**) शुद्धं वीर्यवन्तम् (**त्वा**) (**शुक्रे**) (**आ**) (**धूनोमि**) (**अह्नः**) दिनस्य (**रूपे**) (**सूर्यस्य**) (**रश्मिषु**) ॥ अयं मन्त्रः शत० ११।५।६।८-६ व्याख्यातः ॥ ४८ ॥

प्रमाणार्थ—(**व्रेशन्तीनाम्**) का यहाँ दिव्यजलों के समान अर्थ किया है। यही अर्थ शतपथ (११।५।६।८) में भी किया है। (**धूनोमि**) यहाँ अन्तर्भावित 'णिच्' हुआ है। (**कुकूननाम्**) 'कुकूय' शब्द 'कुङ् शब्दे' धातु से यङ् प्रत्यान्त है और छन्दस गुणाऽभाव है। और 'नम्' धातु से औणा-

दिक नक् प्रत्यय से षष्ठी बहुवचन में 'कुक्कननाम' रूप बना है। (**मधुन्तमानाम्**) यहाँ 'वा छन्दसि सर्वे विधयो भवन्ति' (**अ० १।४।६ भा०**) वार्तिक से नुडागम हुआ है। इस मन्त्र की व्याख्या शतपथ (११।५।६।८-६) में की है।

सपदार्थान्वयः—हे **पत्मन्**! धर्मात् पतनशील! **वेशीनां**=**अपामिव वर्तमानानां** पत्नीनां दिव्यानामपामिव निर्मलविद्यासुशीलव्याप्तानां **मध्ये व्यभिचारेण वर्तमानं त्वा** त्वाम् **अहमाधूनोमि** समन्तात् कम्पयामि।

हे **पत्मन् कुकूननानां** भृशं शब्दविद्यया नम्राणां **समीपे मौर्ख्येण वर्तमानं त्वा** त्वाम् **अहमाधूनोमि** समन्तात् कम्पयामि।

हे **पत्मन्**! **भन्दनानां** कल्याणचरणानां **सन्निधावधर्मचारित्वेन प्रवृत्तं त्वा** त्वाम् **अहम् धूनोमि** समन्तात् कम्पयामि।

हे **पत्मन्**! चञ्चलचेतः **मदिन्तमानां** अतिशयितानन्दितानां परस्त्रीणां (समीपे) **सनीडे दुःखदायित्वेन चरन्तं त्वा** त्वाम् **अहमाधूनोमि** समन्तात् कम्पयामि।

हे **पत्मन्**! **मधुन्तमानाम्** अतिशयेन माधुर्यगुणोपेतानां **समर्यादं कुचारिणं त्वा** त्वाम् **अहमाधूनोमि** समन्तात् कम्पयामि।

हे **पत्मन्**! **अह्नः** दिनस्य **रूपे सूर्य्यस्य रश्मिषु च गृहे संगतिमीप्सुं** शुक्रं शुद्धं वीर्यवन्तं **त्वा शुक्रे आधूनोमि** समन्तात् कम्पयामि॥ ८। ४८॥

भाषार्थ—हे (**पत्मन्**) धर्म से गिरने वाले पतिदेव! (**वेशीनाम्**) दिव्य जलों के समान निर्मल विद्या और सुशीलता से युक्त पत्नियों के मध्य में व्यभिचार की भावना से विद्यमान (**त्वा**) आपको मैं (**आधूनोमि**) सब ओर से कम्पित करती हूँ, भयभीत करती हूँ।

हे (**पत्मन्**) धर्म से गिरने वाले पतिदेव! (**कुकूननानाम्**) शब्द विद्या से अत्यन्त नम्र स्त्रियों के समीप मूर्खता से विद्यमान (**त्वा**) आपको मैं (**आधूनोमि**) सब ओर से कम्पित करती हूँ। दूर हटाती हूँ।

हे (**पत्मन्**) धर्म से गिरने वाले पतिदेव! (**भन्दनानाम्**) कल्याणमय आचरण करने वाली स्त्रियों के पास अधर्माचारी होकर प्रवृत्त होने वाले (**त्वा**) आपको मैं (**आधूनोमि**) सब ओर से कम्पित करती हूँ। दूर हटाती हूँ।

हे (**पत्मन्**) चंचल चित्त वाले पतिदेव! (**मदिन्तमानाम्**) अत्यन्त आनन्दित परस्त्रियों के पास दुःखदायी होकर विचरण करने वाले (**त्वा**) आपको मैं (**आधूनोमि**) सब ओर से कम्पित करती हूँ। दूर हटाती हूँ।

हे (**पत्मन्**) धर्म से गिरने वाले पतिदेव! (**मधुन्तमानाम्**) अत्यन्त मधुरता से युक्त स्त्रियों के समीप कुत्सित आचरण वाले (**त्वा**) आपको मैं (**आधूनोमि**) सब ओर से कम्पित करती हूँ। दूर हटाती हूँ।

हे (**पत्मन्**) धर्म से गिरने वाले पतिदेव! मैं (**अह्नः**) दिन के (**रूपे**) प्रकाश में और (**सूर्यस्य**) सूर्य की (**रश्मिषु**) किरणों में घर पर संगम के अभिलाषी (**शुक्रम्**) शुद्ध वीर्य वाले (**त्वा**) आपको (**शुक्रे**) शुक्र प्राप्ति के लिये (**आधूनोमि**) सब ओर से कम्पित करती हूँ। उक्त अधर्म से दूर हटाती हूँ॥ ८। ४८॥

[हे पत्मन् ! अह्वो रूपे सूर्यस्य रश्मिषु च गृहे संगतिमीप्सुं शुक्रं त्वा शुक्रे आवृनोमि]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ यथा सूर्यस्य रश्मीन् प्राप्य जगत्पदार्थाः शुद्धा जायन्ते तथैव दुराचारी सुशिक्षां दण्डं च प्राप्य पवित्रो भवति।

गृहस्थैरत्यन्तदुष्टो व्यभिचारव्यवहारः सदैव निवर्तनीयः, कुतोऽस्य शरीरात्मबलनाशकत्वेन धर्मार्थकाममोक्षाणां प्रतिबन्धकत्वात् ॥ ८ । ४८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा-अलङ्कार है ॥ जैसे सूर्य की किरणों को प्राप्त करके जगत् के पदार्थ शुद्ध हो जाते हैं वैसे ही दुराचारी पुरुष उत्तम शिक्षा और दण्ड को प्राप्त करके पवित्र हो जाता है।

गृहस्थों को चाहिये कि वे अत्यन्त निकृष्ट व्यभिचार कर्म से सदा दूर रहें क्योंकि यह शरीर और आत्मा के बल का नाशक होने से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का बाधक है ॥ ४ । ४८ ॥

भाष्यसार—१. **गृहस्थकर्म में पत्नी का पति को उपदेश**—पत्नी अपने पति से कहती है कि हे धर्म से पतित पते! दिव्य जल के समान निर्मल विद्या और सुशीलता से युक्त स्त्रियों के मध्य में व्यभिचारभाव से विद्यमान, शब्दविद्या के कारण अत्यन्त नम्र स्त्रियों के समीप मूर्खता से वर्तमान, कल्याणमय आचरण वाली स्त्रियों के पास अधर्मचारी होकर प्रवर्त्तमान, अत्यन्त आनन्द से युक्त पर-स्त्रियों के समीप दुःखदायी भाव से विद्यमान, अत्यन्त मधुरता गुण से युक्त स्त्रियों के पास कुत्सित आचरण से विद्यमान आपको मैं इस अत्यन्त निकृष्ट व्यभिचार कर्म से दूर हटाती हूँ।

जैसे सूर्य की किरणों को प्राप्त करके जगत के पदार्थ शुद्ध हो जाते हैं वैसे आप मेरी इस उत्तम शिक्षा को और दण्ड को प्राप्त करके पवित्र होओ। यह व्यभिचार कर्म शरीर और आत्मा के बल का नाशक होने से हमारे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में बाधक है।

२. **अलङ्कार**—मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि शब्द लुप्त होने से वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि जैसे सूर्य की किरणों से जगत् के पदार्थ शुद्ध होते हैं वैसे उत्तम शिक्षा और दण्ड से दुराचारी पुरुष पवित्र हो जाते हैं ॥ ८ । ४८ ॥

ककुभमित्यस्य देवाः । **विश्वेदेवा प्रजापतयः**=**विद्वांसो गृहस्थाः** । विराट् प्राजापत्या जगतीः । निषादः । यत्ते सोमेत्यस्य भुरिगार्ष्युष्णिक् धैवतः ॥

अथ गृहस्थान्राजपक्षे पुनरुपदिशति ॥

अब फिर गृहस्थों को राजपक्ष में फिर उपदेश किया जाता है ॥

क॒कु॒भꣳरू॒पं वृ॑ष॒भस्य॑ रोचते बृ॒हच्छु॒क्रः शु॒क्रस्य॑ पु॒रो॒गाः सोमः॒ सोम॑स्य पु॒रो॒गाः ।
यत्ते॑ सोमादा॑भ्यं॒ नाम॒ जागृ॑वि॒ तस्मै॑ त्वा गृह्णामि॒ तस्मै॑ ते सोम॒ सोमा॑य॒ स्वाहा॑ ॥ ४९ ॥

पदार्थः—(**ककुभम्**) दिग्वच्छुद्धम् (**रूपम्**) (**वृषभस्य**) सुखाभिवर्षकस्य सभापतेः (**रोचते**) प्रकाशते (**बृहत्**) (**शुक्रः**) शुद्धः (**शुक्रस्य**) शुद्धस्य धर्म्मस्य (**पुरोगाः**) पुरःसराः (**सोमः**) सोमगुणसम्पन्नः (**सोमस्य**) ऐश्वर्य्यगुणयुक्तस्य गृहाश्रमस्य (**पुरोगाः**) पुरोगामिनः (**यत्**) यस्य (**ते**) तव (**सोम**) प्राप्तैश्वर्य्य विद्वन्! (**अदाभ्यम्**) अहिंसनीयम् (**नाम**) ख्यातिः (**जागृवि**) जागरूकम् (**तस्मै**) (**त्वा**) त्वाम् (**गृह्णामि**) (**तस्मै**) (**ते**) तुभ्यम् (**सोम**) सत्कर्म्मसु प्रेरक! (**सोमाय**) शुभकर्म्मसु प्रवृत्ताय (**स्वाहा**) सत्या वाक् ॥ अयम्मंत्रः शत० ११ । ५ । ६ । १०–११ व्याख्यातः ॥ ४९ ॥

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (११।५।६।१०–११) में की गई है ॥ ८।४६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **सोम** ! प्राप्तैश्वर्य विद्वन् **यद्**यस्य **वृषभस्य** सुखाभिवर्षकस्य सभापतेः बृहत्ककुभं दिग्वच्छुद्धं **रूपं रोचते** प्रकाशते स त्वं **शुक्रस्य** शुद्धस्य धर्मस्य **पुरोगाः** पुरःसरः **शुक्रः** शुद्धः **सोमस्य** ऐश्वर्य्यगुणयुक्तस्य गृहाश्रमस्य **पुरोगाः** पुरोगामी **सोमः** सोमगुणसम्पन्नः भव ।

यत्ते=तवादाभ्यम् अहिंसनीयं **नाम** ख्यातिः **जागृवि** जागरूकम् **अस्ति, तस्मै नाम्ने त्वा** त्वां **गृह्णामि** ।

हे **सोम** ! सत्कर्मसु प्रेरक **तस्मै सोमाय** शुभकर्मसु प्रवृत्ताय **ते**=**तुभ्यं स्वाहा** सत्यावाक् **अस्तु** ॥ ८।४६ ॥

भाषार्थ—हे (**सोम**) ऐश्वर्यवान् विद्वान् पुरुष ! यदि इस (**वृषभस्य**) सुख की वर्षा करने वाले सभापति का (**बृहत्ककुभम्**) दिशा के समान शुद्ध रूप (**रोचते**) प्रकाशित होता है तो आप (**शुक्रस्य**) शुद्ध धर्म का (**पुरोगाःशुक्रः**) विशुद्ध नेता बनो तथा (**सोमस्य**) ऐश्वर्य से युक्त गृहाश्रम का (**पुरोगाः सोमः**) सोम के गुणों से युक्त नेता बनो ।

और जो (**ते**) तेरी (**अदाभ्यम्**) अमर (**नाम**) ख्याति(**जागृवि**) जागरूक है, उस ख्याति के कारण (**त्वा**) आपको सभापति स्वीकार करता हूँ ।

हे (**सोम**) शुभ कर्मों में प्रेरणा करने वाले सभापते ! उक्त गुणों से युक्त (**सोमाय**) शुभ कर्मों में लगे हुये (**ते**) आपके लिये (**स्वाहा**) सत्य वेदवाणी हो ॥ ८।४६ ॥

[हे सोम ! यद् यस्य···बृहत्ककुभं रूपं **रोचते स त्वं शुक्रस्य पुरोगाः शुक्रः, सोमस्य पुरोगाः सोमो भव, यत्ते=तवादाभ्यं नाम जागृव्यस्ति, तस्मै नाम्ने त्वा गृह्णामि, हे सोम ! तस्मै सोमाय ते=तुभ्यं स्वाहास्तु**]

भावार्थः—सभाप्रजाजनैर्यस्य पुण्या प्रशंसा, सौन्दर्य्यगुणयुक्तं रूपं, विद्या, न्यायो, विनयः, शौर्य्यं, तेजः, पक्षपातराहित्यं, सुहृत्तोत्साह, आरोग्यं, बलं, पराक्रमो, धैर्यं, जितेन्द्रियता, वेदादिशास्त्रे श्रद्धा, प्रजापालनप्रियत्वं च वर्तते, स एव सभाधिपती राजा मन्तव्यः ॥ ८।४६ ॥

भावार्थ—सभा और प्रजा जनों को योग्य है कि वे जिसकी पुण्य प्रशंसा, सुन्दरता से युक्त रूप, विद्या, न्याय, विनय, शौर्य, तेज, पक्षपात का अभाव, मित्रता, उत्साह, नीरोगता, बल, पराक्रम, धैर्य, जितेन्द्रियता, वेदादि शास्त्रों में श्रद्धा और प्रजा के पालन में प्रीति होवे उसी को सभापति राजा मानें ॥ ८।४६ ॥

भाष्यसार—**गृहस्थों को राजपक्षीय उपदेश**—सभा और प्रजा के जन कहते हैं कि हे ऐश्वर्य को प्राप्त विद्वान् सभापते ! आप सुख की वर्षा करने वाले हो, दिशाओं से समान आपका शुद्धरूप है अर्थात् आप सुन्दर रूपवान् हो, आप शुद्ध धर्म के नेता अर्थात् विद्या, न्याय, विनय, शौर्य, तेज, पक्षपात से शून्य इन शुद्ध गुणों से भूषित हो, ऐश्वर्य गुण से युक्त गृहाश्रम के भी नेता अर्थात् मित्रता, उत्साह, आरोग्य, बल, पराक्रम, धैर्य, जितेन्द्रियता इन सोम्य गुणों से अलङ्कृत हो, आपकी तिरस्काररहित ख्याति सर्वत्र जागरूक है अर्थात् आपकी पुण्य प्रशंसा है, आप सबको शुभ कर्मों में प्रेरित करने वाले और स्वयं शुभ कर्मों में प्रवृत्त हो, सत्यवाणी अर्थात् वेदादि शास्त्रों में आपकी श्रद्धा है, वेदानुकूल प्रजापालन में आपका प्रेम है, इसलिये हम आप को ही समाधिपति राजा मानते हैं ॥ ८।४६ ॥

देवाः । **प्रजापतयः**=राजानः । स्वराडार्षी जगती । निषादः ॥

पुनः प्रकारान्तरेण राजविषयमाह ॥

प्रकारान्तर से राजविषय का फिर उपदेश किया है ॥

उशिक् त्वं देव सोमाग्नेः प्रियं पाथोऽपीहि वशी त्वं देव सोमेन्द्रस्य प्रियं पाथोऽपीह्यस्मत्सखा त्वं देव सोम विश्वेषां देवानां प्रियं पाथोऽपीहि ॥ ५० ॥

पदार्थः—(**उशिक्**) कामयमानः (**त्वम्**) (**देव**) दिव्यगुणसम्पन्न (**सोम**) सकलैश्वर्य्याढ्य (**अग्नेः**) सद्विदुषः (**प्रियम्**) प्रीतिजनकम् (**पाथः**) रक्षणीयमाचरणम् । **पाथ इति पदनामसु पठितम् ॥ निघं० ४ । ३ ॥** (**अपि**) निश्चयार्थे (**इहि**) प्राप्नुहि जानीहि वा (**वशी**) जितेन्द्रियः (**त्वम्**) (**देव**) दातः (**सोम**) ऐश्वर्य्योन्नतौ प्रेरक (**इन्द्रस्य**) परमैश्वर्य्ययुक्तस्य धार्म्मिकस्य राज्ञः (**प्रियम्**) सुखैस्तर्प्पकम् (**पाथः**) ज्ञातव्यं कर्म्म (**अपि**) (**इहि**) (**अस्मत्सखा**) वयं सखायो यस्य सः (**त्वम्**) (**देव**) विद्यासु द्योतमान (**सोम**) विद्यैश्वर्य्यसहित (**विश्वेषाम्**) सर्वेषाम् (**देवानाम्**) धार्म्मिकाणामाप्तानां विदुषाम् (**प्रियम्**) कमनीयम् (**पाथः**) विज्ञानाचरणम् (**अपि**) (**इहि**) ॥ **अयम्मन्त्रः शत० ११ । ५ । ६ । १२ व्याख्यातः ॥ ५० ॥**

प्रमाणार्थ—(**पाथः**) यह शब्द निघं० (४ । ३) में पद नामों में पढ़ा है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (११ । ५ । ६ । १२) में की गई है ॥ ८ । ५० ॥

सपदार्थान्वयः—हे **देव** दिव्यगुणसम्पन्न **सोम** सकलैश्वर्याढ्य **राजन्** ! **त्वम् उशिक्** कामयमानः **भवन्**, **अग्नेः** सद्विदुषः **प्रियं** प्रीतिजनकं **पाथः** रक्षणीयमाचरणम् **अपि**+**इहि** निश्चयेन प्राप्नुहि जानीहि वा ।

हे **देव** दातः **सोम** ! ऐश्वर्य्योन्नतौ प्रेरक **त्वं वशी** जितेन्द्रियः भूत्वेन्द्रस्य परमैश्वर्य्ययुक्तस्य धार्मिकस्य राज्ञः **प्रियं** सुखैस्तर्प्पकं **पाथः** ज्ञातव्यं कर्म **अपि**+**इहि** निश्चयेन प्राप्नुहि जानीहि वा ।

हे **देव** विद्यासु द्योतमान **सोम** ! विद्यैश्वर्य्यसहित **त्वमस्मत्सखा** वयं सखायो यस्य सः **विश्वेषां** सर्वेषां **देवानां** धार्म्मिकाणामाप्तानां विदुषां **प्रियं** कमनीयं **पाथः** विज्ञानाचरणम् **अपि**+**इहि** निश्चयेन प्राप्नुहि जानीहि वा ॥ ८ । ५० ॥

भाषार्थ—हे (**देव**) दिव्य गुणों से युक्त (**सोम**) सकल ऐश्वर्य से भरपूर राजन् ! आप (**उशिक्**) कामना करते हुये (**अग्नेः**) श्रेष्ठ विद्वान् के (**प्रियम्**) प्रीतिकारक (**पाथः**) रक्षा के योग्य आचरण को (**अपि**+**इहि**) निश्चय से प्राप्त करो वा जानो ।

हे (**देव**) दाता (**सोम**) ऐश्वर्य की उन्नति के लिये प्रेरणा करने वाले राजन् ! आप (**वशी**) जितेन्द्रिय होकर (**इन्द्रस्य**) परम ऐश्वर्य से युक्त धार्मिक राजा के (**प्रियम्**) सुखों से तृप्त करने वाले (**पाथः**) ज्ञातव्य कर्म को (**अपि**+**इहि**) निश्चय से प्राप्त करो वा जानो ।

हे (**देव**) सब विद्याओं में प्रकाशमान (**सोम**) विद्या रूप ऐश्वर्य से युक्त राजन् ! आप (**अस्मत्सखा**) हमारे सखा बनकर **विश्वेषाम्**) सब (**देवानाम्**) धार्मिक आप्त विद्वानों के (**प्रियम्**) कामना के योग्य (**पाथः**) विज्ञानमय आचरण को (**अपि**+**इहि**) निश्चय से प्राप्त करो वा जानो ॥ ८ । ५० ॥

[**हे देव सोम ! त्वमस्यत्सखा विश्वेषां देवानां प्रियं पाथोऽपीहि**]

भावार्थः—राज्ञो राजपुरुषाणां सभ्यानां

भावार्थ—राजा, राजपुरुष, और सभासदों

चोचितमस्ति—पुरुषार्थेन, संयमेन, मित्रतया, धार्मिकाणां वेदपारगाणां मार्गे गच्छेयुर्नहि सत्पुरुषसंगानुकरणाभ्यां विना कश्चिद् विद्यां, धर्म्मं, सार्वजनिकप्रियतामैश्वर्य्यं च प्राप्तुं शक्नोति ॥ ८ । ५० ॥

को उचित है कि वे पुरुषार्थ, संयम और मित्रता से धार्मिक वेदज्ञ विद्वानों के मार्ग पर चलें क्योंकि सत्पुरुषों के संग और अनुकरण के बिना कोई भी विद्या, धर्म, सब जनों के प्रेम और ऐश्वर्य को प्राप्त नहीं कर सकता ॥ ८ । ५० ॥

भा० पदार्थः—देवानाम्=धार्मिकाणां वेदपारगाणाम् ॥

भाष्यसार—**गृहस्थों को राजविषयक उपदेश**—प्रजा जन राजा से कहते हैं कि हे राजन् ! आप दिव्य गुणों से सम्पन्न हो, सकल ऐश्वर्य से भरपूर हो, प्रजा की कामना करने वाले हो, इसलिये श्रेष्ठ विद्वानों के प्रीतिकारक आचरण का पुरुषार्थ से अनुकरण करो। आप दाता हो और हमें ऐश्वर्य को उन्नति के लिये प्रेरित करने वाले हो। आप संयम से जितेन्द्रिय होकर परम ऐश्वर्य से युक्त धार्मिक राजाओं के, सुखों से तृप्त करने वाले कर्मों का अनुकरण करो। आप सब विद्याओं में प्रकाशमान हो, विद्या रूप ऐश्वर्य से भूषित हो इसलिये मित्रता से हम सब जनों के सखा होकर धार्मिक, वेद के पारंगत, आप्त विद्वानों के प्रिय विज्ञान को प्राप्त करो क्योंकि सत्पुरुषों के संग और सत्पुरुषों के अनुकरण के बिना कोई भी व्यक्ति विद्या, धर्म और ऐश्वर्य को प्राप्त नहीं कर सकता और न ही सब जनों का प्रिय हो सकता है ॥ ८ । ५० ॥

देवाः । **प्रजापतयो गृहस्थाः=स्पष्टम्** । आर्षी जगती । निषादः ॥

अथ गार्हस्थ्यविषये विशेषमाह ॥

अब गृहस्थ विषयक विशेष उपदेश किया जाता है ॥

इह रतिरिह रमध्वमिह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा ।
उपसृजन्धरुणं मात्रे धरुणो मातरं धयन् । रायस्पोषमस्मासु दीधरत् स्वाहा ॥ ५१ ॥

पदार्थः—(इह) अस्मिन्गृहाश्रमे (रतिः) रमणम् (इह) (रमध्वम्) (इह) (धृतिः) सर्वेषां व्यवहाराणां धारणा (इह) (स्वधृतिः) स्वेषां पदर्थानां धारणम् (स्वाहा) सत्य वाक् क्रिया वा (उपसृजन्) समीपं प्रापयन्निव (धरुणम्) धर्त्तव्यं पुत्रम् (मात्रे) मान्यकर्त्र्यै (धरुणः) धर्त्ता (मातरम्) मान्य प्रदाम् (धयन्) तस्याः पयः पिबन् (रायः) धनस्य (पोषम्) पुष्टिम् (अस्मासु) (दीधरत्) धारय । अत्र लोडर्थे लुङडभावश्च (स्वाहा) सत्यया वाचा ॥ अयम्मंत्रः शत० ४ । ६ । ९ । ८-९ व्याख्यातः ॥ ५१ ॥

प्रमाणार्थ—(दीधरत्) धारय। यहां लोट् अर्थ में लुङ् लकार है और अट् का अभाव है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । ६ । ९ । ८-९) में की गई है ॥ ८ । ५१ ॥

सपदार्थान्वयः—हे गृहस्थाः ! **युष्माकमिह** अस्मिन् गृहाश्रमे **रतिः** रमणम्, **इह धृतिः** सर्वेषां व्यवहाराणां धारणा, **इह स्वधृतिः** स्वेषां पदार्थानां धारणं **स्वाहा** सत्या वाक् क्रिया वा **चास्तु यूयमिह रमध्वम्** ।

भावार्थ—हे गृहस्थो ! तुम्हारा (इह) इस गृहाश्रम में (रतिः) रमण, (इह) इस में (धृतिः) सब व्यवहारों का धारण, (इह) इसमें (स्वधृतिः) अपने अपने पदार्थों का धारण और (स्वाहा) सत्य वाणी वा सत्य कर्म हो। तुम लोग इस गृहाश्रम में रमण करो।

हे गृहिस्त्व भपत्यस्य मात्रे मान्यकर्त्र्यै **यं धरुणं**=

हे गृहस्थ ! तू (अपत्यस्य) बालक की (मात्रे)

गर्भं धर्त्तव्यं पुत्रम् **उपसृजन्** समीपं प्रापयन्निव स्वगृहे रमस्व, **स धरुणः** धर्त्ता **मात्रे** मान्य कर्त्र्यै **मातरं** मान्यप्रदां **धयन्** तस्याः पयः पिबन् **इव अस्मासु रायः** धनस्य **पोषं** पुष्टिं **स्वाहा** सत्यया वाचा **दीधरत्** धारयेत् ॥ ८ । ५१ ॥

माता के लिये (**यम्**) जिस (**धरुणम्**) धारण करने योग्य गर्भ को (**उपसृजन्**) प्राप्त कराता हुआ अपने घर में रमण करता है वह (**धरुणः**) बालक (**मात्रे**) माता के लिये (**मातरं धयन्**) माता का दूध पीता हुआ हमारे मध्य में (**रायः**) धन की (**पोषन्**) पुष्टि को (**स्वाहा**) सत्यवाणी से (**दीध-रत्**) धारण करे ॥ ८ । ५१ ॥

[हे गृहस्थाः ! युष्माकमिह रतिः, इह धृतिः, इह स्वधृतिः स्वाहा चास्तु]

भावार्थः—यावद्राजादयः सभ्याः प्रजाजनाश्च सत्ये, धैर्य्ये, सत्येनोपार्जितेषु पदार्थेषु, धर्म्मे व्यवहारे च न वर्त्तन्ते तावत्प्रजासुखं राज्यसुखं च प्राप्तं न शक्नुवन्ति ।

भावार्थ—जब तक राजा आदि, सभासद् और प्रजा जन सत्य, धैर्य, सत्य से कमाये पदार्थों में तथा धर्मयुक्त व्यवहार में प्रवृत्त नहीं होते हैं तब तक प्रजासुख और राज्यसुख को प्राप्त नहीं कर सकते हैं ।

[**धरुणो मात्रे मातरं धयन्निवास्मासु रायः पोषं स्वाहा दीधरत्**]

यावद्राजपुरुषाः प्रजा पुरुषाश्च पितृपुत्रवत्परस्परं प्रीत्युपकारं न कुर्वन्ति तावत्सुखं क्वा ॥ ८ । ५१ ॥

जब तक राजपुरुष और प्रजाजन पिता-पुत्र के समान परस्पर प्रीतिपूर्वक उपकार नहीं करते हैं तब तक सुख कहाँ ? ॥ ८ । ५१ ॥

भाष्यसार—**गृहस्थविषयक विशेष उपदेश**—गृहस्थों को उचित है कि वे इस गृहाश्रम में रमण करें, सब धर्मयुक्त व्यवहारों को धारण करें, सत्य से कमाये हुये अपने पदार्थों को धारण करें, सत्यभाषण, सत्याचरण और धैर्य अदि गुणों को धारण करें, क्योंकि इन गुणों को धारण किये विना वे प्रजासुख और राज्य सुख को प्राप्त नहीं कर सकते ।

गृहस्थ पुरुष बालक की माता के लिये गर्भ का सर्जन करे और अपने घर में सुख से रमण करे । वह बालक माता के स्तनों का पान करके पुष्टि को प्राप्त हो । राजपुरुष और प्रजाजन माता-पिता और पुत्र के समान परस्पर अत्यन्त प्रीति से धन और पुष्टि को प्राप्त हों, परस्पर उपकार किया करें । परस्पर प्रीति के लिये सदा सत्यभाषण करें । जब तक ऐसा नहीं करते तब तक सुख कहाँ ? ॥ ८ । ५१ ॥

देवाः । **प्रजापतिः**=**राजा** । भुरिगार्षी बृहतीः । मध्यमः ॥

पुनरपि गृहस्थविषये विशेषमाह ॥

फिर भी गृहस्थों के विषय में विशेष उपदेश किया है ॥

स॒त्रस्य॒ ऽ ऋद्धि॑र॒स्यग॑न्म॒ ज्योति॑र॒मृता॑ ऽ अभूम ।
दिवं॑ पृथि॒व्या ऽ अध्यारु॑हा॒माविदाम दे॒वान्त्स्व॒र्ज्योतिः ॥ ५२ ॥

पदार्थः—(**सत्रस्य**) संगतस्य राजव्यवहाररूपस्य यज्ञस्य (**ऋद्धिः**) सम्यग् वृद्धिः (**असि**) (**अगन्म**) प्राप्नुयाम (**ज्योतिः**) विज्ञानप्रकाशम् (**अमृताः**) प्राप्तमोक्षाः (**अभूम**) भवेम । **अत्रोभयत्र** लिङर्थे लुङ् (**दिवम्**) सूर्यादिम् (**पृथिव्याः**) भूम्यादेश्च जगतः (**अधि**) उपर्य्युत्कृष्टभावे (**आ**) समन्तात् (**अरुहाम**)

प्रादुर्भवेम । अत्र विकरणव्यत्ययः (**अविदाम**) विन्देमहि (**देवान्**) विदुषो दिव्यान् भोगान् वा (**स्वः**) सुखम् (**ज्योतिः**) विज्ञानविषयम् ॥ अयं मन्त्रः शत० ४ । ६ । ६ । ११-१२ व्याख्यातः ॥ ५२ ॥

प्रमाणार्थ—(**अगन्म**) प्राप्नुयाम (**अभूम**) भवेम । यहाँ दोनों स्थान पर लिङ् अर्थ में लुङ् लकार है । (**अरुहाम**) यहाँ विकरण प्रत्यय (**शप्**) का व्यत्यय (**श**) है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । ६ । ६ । ११-१२) में की गई है ॥ ८ । ५२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् ! त्वं **सत्रस्य** संगतस्य राज्यव्यवहाररूपस्य यज्ञस्य **ऋद्धिः** सम्यग् वृद्धिः **असि,** त्वत्सङ्गेन **वयं ज्योतिः** विज्ञान-प्रकाशम् **अगन्म** प्राप्नुयाम, **अमृताः** प्राप्तमोक्षाः **अभूम** भवेम **दिवं** सूर्यादिं **पृथिव्याः** भूम्यादेश्च जगतः **अधि+आ+अरुहाम** उपर्युत्कृष्टतया समन्तात् प्रादुर्भवेम, **देवान्** विदुषो दिव्यान् भोगान् वा **ज्योतिः** विज्ञानविषयं **स्वः** सुखं **चाविदाम** विन्देमहि ॥ ८ । ५२ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! आप (**सत्रस्य**) सुसंगत राज्य-व्यवहार रूप यज्ञ की (**ऋद्धिः**) उत्तम वृद्धि (**असि**) हो, आपके संग से हम लोग (**ज्योतिः**) विज्ञानमय प्रकाश को (**अगन्म**) प्राप्त करें, (**अमृताः**) मोक्ष को प्राप्त करने वाले (**अभूम**) हों, (**दिवम्**) सूर्य आदि (**पृथिव्याः**) और भूमि आदि जगत् के (**अधि+आ+रुहाम**) ऊपर उत्तम रीति से चारों ओर प्रकट हों, (**देवान्**) विद्वानों वा दिव्यभोगों को (**ज्योतिः**) विज्ञान के विषय को (**स्वः**) और सुख को (**अविदामः**) प्राप्त करें ॥ ८ । ५२ ॥

[हे विद्वन् ! त्वं सत्रस्य ऋद्धिरसि, त्वत्संगेन वयं **ज्योतिरगन्म, अमृता अभूम,** देवान् ज्योतिः स्वश्चाविदाम]

भावार्थः—यावत्सर्वेषां रक्षको धार्मिको राजाऽऽप्तो विद्वाँश्च न भवेत्तावत्कश्चिन्निर्विघ्नो विद्यामोक्षानुष्ठानं कृत्वा तत्सुखं प्राप्तुन्नार्हति, न च मोक्षसुखादधिकतरं किंचित्सुखमस्ति ॥ ८ । ५२ ॥

भावार्थ—जब तक सब का रक्षक धार्मिक राजा आप्त विद्वान् न होवे तब तक कोई निर्विघ्न विद्या और मोक्ष का अनुष्ठान करके उसके सुख को प्राप्त नहीं कर सकता, और मोक्ष सुख से बढ़कर कोई सुख नहीं है ॥ ८ । ५२ ॥

भा० पदार्थः—ज्योतिः=विद्याम् ।

भाष्यसार—**गृहस्थ विषयक विशेष उपदेश**—प्रजाजन कहते हैं कि हे सबके रक्षक, धार्मिक आप्त विद्वान् राजन् ! आप राज्यव्यवहार रूप यज्ञ की उत्तम वृद्धि हो अर्थात् बढ़ाने वाले हो, आप के संग से हम लोग विज्ञान (विद्या) रूप प्रकाश को प्राप्त करें, अमृत हो जावें अर्थात् मोक्षसुख को प्राप्त करें । विज्ञान की वृद्धि से भूमि और सूर्यादि में विचरण करें । विद्वानों और दिव्यभोगों को प्राप्त करें । विज्ञान और सब सुखों को प्राप्त करें किन्तु मोक्ष सुख से बढ़कर कोई सुख नहीं है ॥ ८ । ५२ ॥

युवमित्यस्य देवाः । **गृहपतयः=गृहस्थाः** । पूर्वस्यार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः स्वरः ।
दूरेचेत्यस्यासुर्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । अस्माकमित्यस्य प्राजापत्या
बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । भूर्भुवरित्यस्य विराट् प्राजापत्या
पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

गृहस्थ विषयक फिर विशेष उपदेश किया है ॥

युवं तमिन्द्रापर्वता पुरोयुधा यो नः पृतन्यादप तन्तमिद्धतं वज्रेण तन्तमिद्धतम् ।
दूरे चत्ताय छन्त्सद् गहनं यदिनक्षत् ।
अस्माकꣳ शत्रून् परि शूर विश्वतो दर्म्मा दर्षीष्ट विश्वतः ।
भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याम सुवीरा वीरैः सुपोषाः पोषैः ॥ ५३ ॥

पदार्थः—(**युवम्**) युवाम् (**तम्**) (**इन्द्रापर्वता**) सूर्य्यमेघसदृशौ सेनापतिसेनाजनौ । अत्र सुपां सुलुक् ॥ अ० ७ । १ । ३९ ॥ इत्याकारः (**पुरोयुधा**) पूर्वं युध्येते तौ (**यः**) (**नः**) अस्माकम् (**पृतन्यात्**) पृतनां=सेनामिच्छेत् (**अप**) (**तन्तम्**) शत्रुम् (**इत्**) एव (**हतम्**) हन्यताम् (**वज्रेण**) शस्त्रास्त्रविद्याबलेन (**तन्तम्**) (**इत्**) एव (**हतम्**) विनश्यतम् (**दूरे**) (**चत्ताय**) आह्लादाय (**छन्त्सत्**) ऊर्जेत् (**गहनम्**) कठिनं सैन्यम् (**यत्**) (**इनक्षत्**) व्याप्नुयात् । इनक्षदिति व्याप्तिकर्मसु पठितम् ॥ निघं० २ । १८ ॥ (**अस्माकम्**) (**शत्रून्**) (**परि**) सर्वतः (**शूर**) शृणाति शत्रून् तत्सम्बुद्धौ (**विश्वतः**) सर्वतः (**दर्म्मा**) शत्रुविदारयिता (**दर्षीष्ट**) विदारय (**विश्वतः**) (**भूः**) भूमौ (**भुवः**) अन्तरिक्षम् (**स्वः**) सुखे (**सुप्रजाः**) प्रशस्तसन्तानाः (**प्रजाभिः**) (**स्याम**) (**सुवीराः**) बहुश्रेष्ठवीरयुक्ताः (**वीरैः**) उत्तमबलयुक्तैः पुरुषैः (**सुपोषाः**) अनुत्तमपुष्टयः (**पोषैः**) पुष्टिभिः ॥ अयं मन्त्रः शत० ४ । ५ । ११ । १४ व्याख्यातः ॥ ५३ ॥

प्रमाणार्थ—(**इन्द्रापर्वता**) यहाँ 'सुपां सुलुक्०' (अ० ७ । १ । ३९) इस सूत्र से आकार-आदेश है । (**इनक्षत्**) यह पद निघं० (२ । १८) में व्याप्त्यर्थक क्रियाओं में पढ़ा है । इस मंत्र की व्याख्या शत० (४ । ५ । ११ । १४) में की गई है ॥ ८ । ५३ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे पुरोयुधा !** पूर्वं युध्येते तौ **इन्द्रापर्वता** सूर्य्यमेघसदृशौ सेनापतिसेना-जनौ ! **युवं** युवां **यो यो नः** अस्माकं **पृतन्यात्** पृतनां=सेनामिच्छेत् [**तम्**] **तन्तं** शत्रुं **वज्रेण** शस्त्रास्त्रविद्याबलेन **इत्** एव **अपहतं** हन्याताम् ।

तद् **गहनं**=**शत्रुदलं** कठिनं सैन्यम् **अस्माकं सैन्यमिनक्षत्** व्याप्नुयात् ।

यच्च छन्त्सत् ऊर्जेत् **तन्तं** शत्रुं **चत्ताय**= आनन्दाय आह्लादाय **इत्** एव **हतं**=**दूरे प्रापयतं** विनश्यतम् ।

हे **शूर** ! शृणाति शत्रून् तत्सम्बुद्धौ **सभापते** ! **दर्म्मा** शत्रुविदारयिता **त्वमस्माकं शत्रून् विश्वतः** सर्वतः **परिदर्षीष्ट** विदारय **यतो वयं** [**भूः**] भूमौ [**भुवः**] अन्तरिक्षम् [**स्वः**] सुखे **प्रजाभिः सुप्रजाः** प्रशस्तसन्तानाः **वीरैः** उत्तमबलयुक्तैः पुरुषैः **सुवीराः** बहुश्रेष्ठवीरयुक्ताः **पोषैः** पुष्टिभिः **सुपोषाः** अनुत्तमपुष्टयः **विश्वतः** सर्वतः **स्याम** ॥ ८ । ५३ ॥

भाषार्थ—हे (**पुरोयुधा**) युद्ध काल में आगे लड़ने वाले (**इन्द्रापर्वतौ**) सूर्य और मेघ के सदृश सेनापति और सेना के लोगो ! (**युवम्**) तुम दोनों जो-जो (**नः**) हमारी सेना से युद्ध करना चाहे [**तम्**] उस (**तन्तम्**) शत्रु का (**वज्रेण**) शस्त्र-अस्त्र-विद्या के बल से (**इत्**) ही (**अपहतम्**) हनन करो । और—

वह (**गहनम्**) विकट शत्रुदल हमारे सेनादल में (**इनक्षत्**) व्याप्त हो जाये, मिल जाये । और—

जो (**छन्त्सत्**) अपना बल बढ़ावे उस (**तन्तम्**) शत्रु को (**चत्ताय**) प्रजा के आनन्द के लिये (**इत्**) ही (**हतम्**) दूर हटाओ, विनष्ट करो ।

हे (**शूर**) शत्रुओं का हिंसन करने वाले शूर सभापते ! आप (**दर्म्मा**) शत्रुओं का विदारण करने वाले होकर हमारे शत्रुओं का (**विश्वतः**) सब ओर से (**परिदर्षीष्ट**) विदारण करो । जिससे हम लोग [**भूः**] भूमि [**भुवः**] अन्तरिक्ष [**स्वः**] द्युलोक में (**प्रजाभिः**) प्रजा से (**सुप्रजाः**) उत्तम सन्तान वाले, (**वीरैः**) उत्तम बल से युक्त पुरुषों से (**सुवीराः**)

अति श्रेष्ठ वीरों वाले, (**पोषैः**) नाना पुष्टिकारक पदार्थों से (**सुपोषाः**) अत्युत्तम पुष्टि वाले (**विश्वतः**) सब ओर से (**स्याम**) हों ॥ ८ । ५३ ॥

[हे पुरोधेन्द्रापर्वता युवं यो यो नः पृतन्यात् [तम्] तन्तं वज्रेणेदपहतं······यतो वयं······प्रजाभिः सुप्रजाः, वीरैः सुवीराः, पोषैः सुपोषा विश्वतः स्याम]

भावार्थः—यावत् सभापतिसेनापती प्रगल्भौ सन्तौ सर्वकार्येषु पुरस्सरौ न स्यातां तावत् सेनावीरा हर्षतो युद्धे न प्रवर्तन्ते, नह्येतेन कर्मणा विना कदाचिद् विजयो जायते।

यावदजातशत्रवः सभापत्यादयो न जायेरन् न तावत् प्रजाः पालयितुं शक्नुवन्ति, न च सुप्रजाः सन्तः सुखिनः स्युः ॥ ८ । ५३ ॥

भावार्थ—जब तक सभापति और सेनापति चतुर होकर सब कामों में अग्रणी नहीं होते तब तक सेना के वीर हर्ष से युद्ध में प्रवृत्त नहीं होते, इस कार्य के बिना कभी विजय नहीं हो सकती।

जब तक सभापति आदि शत्रुरहित नहीं हो जाते तब तक वे प्रजा का पालन नहीं कर सकते, और उत्तम प्रजा वाले होकर सुखी नहीं रह सकते ॥ ८ । ५३ ॥

भाष्यसार—**गृहस्थ विषयक विशेष उपदेश**—प्रजाजन कहते हैं, हे सूय के समान तेजस्वी सेनापते ! तथा मेघ के समान शत्रु सेना को आच्छादित करने वाले वीर सैनिको ! युद्ध में आगे रहो, सब कार्यों में अग्रणी रहो, जो जो हमारे लिये अपनी सेना तैयार करे, अर्थात् बल बढ़ा कर युद्ध की कामना करे उस उस शत्रु का वज्र से हनन करो। और ऐसा प्रयत्न करो कि शत्रु का बल हमारी सेना में व्याप्त हो जाये, हमारी सेना बन जाये। और जो कोई शत्रु अपने बल को बढ़ावे उसे हमारे हर्ष के लिये दूर हटाओ, अथवा नष्ट कर डालो।

हे शत्रुओं का हिंसन करने वाले शूर सभापते ! आप भी युद्धादि कार्यों में चतुर होकर सर्वत्र अग्रणी रहो। जिससे सेनापति तथा वीर सैनिक भी हर्षपूर्वक युद्ध में प्रवृत्त रहें। आपके इस कार्य के बिना कभी विजय नहीं हो सकती। आप शत्रुओं का विदारण करके अजातशत्रु बन जाओ क्योंकि तक शत्रु शेष हैं तब तक आप भूमि, अन्तरिक्ष और द्युलोक में सुखपूर्वक हमारा पालन नहीं कर सकते और हम लोग भी उत्तम सन्तानों वाले, श्रेष्ठ वीरों वाले और अत्यन्त पुष्ट नहीं हो सकते ॥ ८ । ५३ ॥

वसिष्ठः । **परमेष्ठी प्रजापतिः**=उत्कृष्टस्थानी गृहस्थः सभापतिश्च ।
साम्न्युष्णिक्। ऋषभः ॥

पुनर्गार्हस्थ्यकर्म्माह ॥

गृहस्थ कर्म का फिर उपदेश किया है ॥

प॒र॒मे॒ष्ठ्य॒भिधी॑तः प्र॒जाप॑तिर्वा॒चि व्याहृ॑ताया॒मन्धो॒ऽअच्छे॑तः ।
स॒वि॒ता स॒न्यां वि॒श्वक॑र्म्मा दी॒क्षायां॑ पू॒षा सो॑मक्र॒यण्या॑म् ॥ ५४ ॥

पदार्थः—(**परमेष्ठी**) परमे=प्रकृष्टे स्वरूपे तिष्ठतीति (**अभिधीतः**) निश्चितः (**प्रजापतिः**) प्रजायाः स्वामी (**वाचि**) वेदवाण्याम् (**व्याहृतायाम्**) उपदिष्टायां सत्याम् (**अन्धः**) अद्यते यत्तदन्धोऽन्नम् ।

अदेर्नुम्-धौ च ॥ उ० ४। २०६ ॥ अनेनादुधातोरसुनि नुम् धश्च । अन्ध इत्यन्नना० ॥ निघं० २ । ७ ॥ उपलक्षणं चान्येषां पदार्थानाम् (**अच्छेतः**) अच्छं=निर्मलं स्वरूपमितः=प्राप्तः (**सविता**) जगदुत्पादकः (**सन्याम्**) सत्यं नीयते यया तस्याम् (**विश्वकर्म्मा**) सर्वोत्तमकर्म्मा सभापतिः (**दीक्षायाम्**) नियमधारणारम्भे (**पूषा**) पोषको वैद्यः (**सोमक्रयण्याम्**) सोमाद्योषधीनां ग्रहणे ॥ अयम्मन्त्रः शत० १२ । ६ । १ । १-८ व्याख्यातः ॥ ५४ ॥

प्रमाणार्थ—(**अन्धः**) यह शब्द 'अदेर्नुम्-धौ च' उणा० (४ । २०६) इस सूत्र से 'अद्' धातु से 'असुन्' प्रत्यय के परे रहते 'नुम्' का आगम और धकार का आदेश करने पर सिद्ध होता है । 'अन्धः' शब्द निघं० (२ । ७) में अन्न-नामों में पढ़ा है । यह शब्द अन्य पदार्थों का उपलक्षण है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१२ । ६ । १ । १-८) में की गई है ॥ ८ । ५४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे गृहस्थाः । युष्माभिर्यदि **व्याहृतायाम्** उपदिष्टायां सत्वां **वाचि** वेदवाण्यां **परमेष्ठी** परमे=प्रकृष्टे स्वरूपं तिष्ठतीति **प्रजापतिः** प्रजापाः स्वामी, **अच्छतेः** अच्छं=निर्मलं स्वरूपमितः=प्राप्तः **विश्वकर्म्मा** सर्वोत्तमकर्म्मा सभापतिः **दीक्षायां** नियमधारणारम्भे, **सोमक्रयण्यां** सोमाद्योषधीनां ग्रहणे **पूषा** पोषको वैद्यः, **सविता** जगदुत्पादकः **सन्यां** सत्यं नीयते यया तस्यां **चाभिधीतः** निश्चितः **अन्धः** अद्यते यत्तदन्धः=अन्नं **च** **प्राप्तं तर्हि सततं सुखिनः स्युः** ॥ ८ । ५४ ॥

भाषार्थ—हे गृहस्थो ! तुम लोगों ने यदि (**व्याहृतायाम्**) उपदेश की हुई (**वाचि**) वेदवाणी में (**परमेष्ठी**) उत्तम स्वरूप में विराजमान (**प्रजापतिः**) प्रजा के स्वामी को, (**अच्छेतः**) निर्मल स्वरूप को प्राप्त (**विश्वकर्मा**) सबसे उत्तम कर्म करने वाले सभापति को (**दीक्षायाम्**) दीक्षा अर्थात् नियम-धारण के आदि में, (**सोमक्रयण्याम्**) सोम आदि औषधियों के ग्रहण करने में (**पूषा**) पोषक वैद्य को और (**सविता**) जगत् के उत्पादक को (**सन्याम्**) सत्य की प्राप्ति में (**अभिधीतः**) निश्चित किया है और (**अन्धाः**) अन्न को प्राप्त किया है तो तुम लोग सुखी रहोगे ॥ ८ । ५४ ॥

[हे गृहस्थाः ! युष्माभिर्यदि व्याहृतायां वाचि प्रजापति ··· अभिधीतोऽन्नं च प्राप्तं तर्हि सततं सुखिनः स्युः]

भावार्थः—यदीश्वरो वेदविद्यायाः, स्वस्य, जीवानां, जगतश्च गुणकर्मस्वभावान् न प्रकाशयेत्तर्हि कस्यापि मनुष्यस्य विद्यैतेषां विज्ञानं च न स्यात्, एताभ्यां विना कुतः सततं सुखं च ॥ ८ । ५४ ॥

भावार्थ—यदि ईश्वर वेदविद्या, अपने, जीवों और जगत् के गुण, कर्म, स्वभाव को प्रकाशित न करे तो किसी भी मनुष्य को विद्या और इनका ज्ञान नहीं हो सकता, और इनके विना सतत सुख कहाँ ? ॥ ८ । ५४ ॥

भाष्यसार—**गृहस्थ के कर्म**—ईश्वर उपदेश करता है कि हे गृहस्थो ! तुम लोग मुझ से उपदेश की गई वेदवाणी की प्राप्ति में परमेष्ठी प्रजापति को निश्चित करो, दीक्षा अर्थात् नियमों को धारण करने से पहले निर्मल स्वरूप को प्राप्त हुये, सबसे उत्तम कर्मों वाले सभापति को निश्चित करो, सोम आदि औषधियों को ग्रहण करते समय पूषा अर्थात् वैद्य को निश्चित करो, सत्य की प्राप्ति में सविता अर्थात् जगत् के उत्पादक ईश्वर को निश्चित करो ।

परमेष्ठी प्रजापति ने वेदविद्या का ऋषियों के हृदय में प्रकाश किया है । जगत् की उत्पत्ति करना आदि अपने गुण कर्म स्वभावों को भी उसने बतलाया है । सभापति, वैद्य आदि जीवों के गुण, कर्म, स्वभावों को भी उसने प्रकाशित किया है । औषधि आदि कार्य जगत् के गुणों का उसी ने उपदेश किया है । क्योंकि परमेश्वर के वेद उपदेश के विना कोई भी मनुष्य विद्यावान् नहीं हो सकता और न ही

ईश्वर, जीव और जगत् के गुण, कर्म, स्वभाव को जान सकता है। विद्या और विज्ञान के विना सुख कहाँ से मिल सकता है ॥ ८ । ५४ ॥

वसिष्ठः । **इन्द्रादयो**ः=विद्युदादयः । आर्षी पङ्क्ति । पञ्चमः ॥

पुनार्गार्हस्थ्यविषयमाह ॥

गृहस्थ विषय का फिर उपदेश किया है ॥

इन्द्र॑श्च म॒रुत॑श्च क्र॒याय॒ोपोत्थि॒तोऽसु॑रः पण्यमा॑नो मि॒त्रः क्री॒तो विष्णु॑ः शिपिवि॒ष्ट ऽ ऊ॒रावास॑न्नो॒ विष्णु॒र्न॒रन्धि॑षः ॥ ५५ ॥

पदार्थः—(**इन्द्रः**) विद्युत् (**च**) पृथिव्यादयः (**मरुतः**) वायवः (**च**) जलादिकम् (**क्रयाय**) व्यवहारसिद्धये (**उपोत्थितः**) समीपे प्रकाशित इव (**असुरः**) मेघः । **असुर इति मेघना० ॥ निघं० १ । १० ॥** (**पण्यमानः**) स्तूयमानः (**मित्रः**) सुहृत् (**क्रीतः**) व्यवहृतः (**विष्णुः**) व्याप्तो धनञ्जयः (**शिपिविष्टः**) शिपिषु=पदार्थेषु प्रविष्टः (**ऊरौ**) आच्छादने (**आसन्नः**) सर्वेषां निकटः (**विष्णुः**) हिरण्यगर्भः (**नरन्धिषः**) नरान्दिधेष्टि शब्दयति ॥ **अयम्मन्त्रः शत० १२ । ३ । १ । ६-१३ व्याख्यातः ॥ ५५ ॥**

प्रमाणार्थ—(**असुरः**) यह शब्द निघं० (१ । १०) में मेघ-नामों में पढ़ा है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१२ । ३ । १ । ६-१३) में की गई है ॥ ८ । ५५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः ! यूयं विद्वद्भिर्यः क्रयाय** व्यवहारसिद्धये **इन्द्रः** विद्युत्, [**च**] पृथिव्यादयः, **मरुतः** वायवः, [**च**] जलादिकं, **असुरः** मेघः, **पण्यमानः** स्तूयमानः **मित्रः** सुहृत्, **शिपिविष्टः** शिपिषु=पदार्थेषु प्रविष्टः **विष्णुः** व्याप्तो धनञ्जयः, **नरन्धिषः** नरान् दिधेष्टि शब्दयति **विष्णुः** हिरण्यगर्भः [**ऊरौ**] आच्छादने **चैवासन्नः** सर्वेषां निकटः **उपोत्थितः** समीपे प्रकाशित इव **क्रीतः** व्यवहृतः **अस्ति तं विजानीत** ॥ ८ । ५५ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग विद्वानों ने जो (**क्रयाय**) व्यवहारसिद्धि के लिये (**इन्द्रः**) विद्युत्, [**च**] और पृथिवी आदि, (**मरुतः**) वायु, [**च**] और जल आदि, (**असुरः**) बादल, (**पण्यमानः**) स्तुति के योग्य (**मित्रः**) मित्र, (**शिपिविष्टः**) पदार्थों में प्रविष्ट=व्याप्त (**विष्णुः**), धनञ्जय, (**नरन्धिषः**) नरों को शाब्दित करने वाले (**विष्णुः**) हिरण्यगर्भ को ही (**ऊरौ**) अच्छादन रूप में (**आसन्नः**) सबके निकट एवं (**उपोत्थितः**) समीप में प्रकाशित वस्तु के समान (**क्रीतः**) व्यवहार में स्वीकर किया है उसे जानो ॥ ८ । ५५ ॥

[**हे मनुष्याः ! यूयं विद्वद्भिर्यः क्रयायेन्द्रः...क्रीतोऽस्ति तं विजानीत**]

भावार्थः—मनुष्यैः परब्रह्मप्रकाशितानामग्न्यादीनां पदार्थानां सकाशात् क्रियाकौशलेनोपयोगं गृहीत्वा गार्हस्थ्यव्यवहारास्साधनीयाः ॥ ८ । ५५ ॥

भावार्थ—सब मनुष्य परब्रह्म से प्रकाशित अग्नि आदि पदार्थों से क्रिया कौशल के द्वारा उपयोग लेकर गृहस्थ के व्यवहारों को सिद्ध करें ॥ ८ । ५५ ॥

भाष्यसार—**गृहस्थ विषयक उपदेश**—परब्रह्म ने गृहस्थों से व्यवहार की सिद्धि के लिये विद्युत्, पृथिवी, वायु, जल, मेघ, स्तुति के योग्य मित्र, सब पदार्थों में प्रविष्ट व्यापक धनञ्जय (**वायु**), नरों में शब्द को उत्पन्न करने वाला हिरण्यगर्भ (**आकाश**) प्रकाशित किया है जो सबको आच्छादित करने

वाला एवं सबके निकट है। विद्वान् गृहस्थ लोग क्रिया-कौशल से इन पदार्थों से उपयोग ग्रहण किया करें ॥ ८। ५५ ॥

वसिष्ठः। **विश्वेदेवा गृहस्थाः**=विद्वांसो गृहस्थाः। आर्षी बृहती। मध्यमः ॥

पुनस्तदेवाह ॥

गृहस्थ विषय का फिर उपदेश किया है ॥

प्रोह्यमाणः सोमऽ आगतो वरुणऽआसन्द्यामासन्नोऽग्निराग्नीध्रऽइन्द्रो हविर्द्धानेऽथर्वोपावह्रियमाणः ॥ ५६ ॥

पदार्थः—(**प्रोह्यमाणः**) प्रकृष्टतर्केणाऽनुष्ठितः। **प्रोह्यमाण इति पदं महीधरेण भ्रान्त्या पूर्वस्मिन् मन्त्रे पठितम्** (**सोमः**) ऐश्वर्यसमूहः (**आगतः**) समन्तात्प्राप्तः सहायकारी पुरुष इव (**वरुणः**) जलसमूहः (**आसन्द्याम्**) यानासनविशेषे (**आसन्नः**) समीपस्थः (**अग्निः**) (**आग्नीध्रे**) प्रदीपनसाधन इन्धनादौ (**इन्द्रः**) विद्युत् (**हविर्द्धाने**) हविषां=ग्रहीतुं योग्यानां पदार्थानां धारणे (**अथर्वा**) अहिंसनीयः (**उपावह्रियमाणः**) क्रियाकौशलेनोपयोज्यमानः ॥ **अयम्मन्त्रः शत० १२। ६। १। १४-१८ व्याख्यातः ॥ ५६ ॥**

प्रमाणार्थ—(**प्रोह्यमाणः**) महीधर ने भ्रान्ति से इसको पूर्व मन्त्र में पढ़ा है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१२। ६। १। १४-१८) में की गई है ॥ ८। ५६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे गृहस्थाः! **युष्माभिरस्यामीश्वरस्य सृष्टावासन्द्यां** यानासनविशेषे **आगत** समन्तात् प्राप्तः सहायकारी पुरुष इव **प्रोह्यमाणः** प्रकृष्टतर्केणाऽनुष्ठितः **सोमः** ऐश्वर्यसमूहः **वरुणः** जल सभूहः **आग्नीध्रे** प्रदीपन साधन इन्धनादौ [**आसन्नः**] समीपस्थः **अग्निरुपावह्रियमाणः** क्रियाकौशलेनोपयोज्यमानः **अथर्वा** अहिंसन्नीयः **हविर्द्धाने** हविषां-ग्रहीतुं योग्यानां पदार्थानां धारणे **इन्द्रः** विद्युत् **सततमुपयोजनीयः** ॥ ८। ५६ ॥

भाषार्थ—हे गृहस्थो! तुम लोग इस ईश्वर की सृष्टि में (**आसन्द्याम्**) यान के आसन-विशेष में (**आगतः**) सब ओर से प्राप्त सहायक पुरुष के समान, (**प्रोह्यमाणः**) उत्तम तर्क से व्यवहार में लाया हुआ (**सोमः**) ऐश्वर्य का ढेर रूप (**वरुणः**) जल तथा (**आग्नीध्रे**) प्रदीपन के साधन इन्धन आदि के [**आसन्न**] समीपस्थ (**अग्नि**) अग्नि (**उपावह्रियमाणः**) क्रिया-कौशल से उपयोग में लाने योग्य है तथा (**अथर्वा**) हिंसा के अयोग्य तथा (**हविर्द्धाने**) ग्रहण करने योग्य पदार्थों को धारण करने में समर्थ जो (**इन्द्र**) विद्युत् है वह सदा उपयोग के योग्य है ॥ ८। ५६ ॥

[**हे गृहस्थः! युष्माभिः···प्रोह्यमाणः सोमः सततमुपयोजनीयः**]

भावार्थः—नहि तर्केण विना काचिद्विद्या कस्यचिद् भवति, नहि विद्यया विना कश्चित् पदार्थेभ्य उपयोगं ग्रहहीतुं शक्नोति ॥ ८। ५६ ॥

भावार्थ—तर्क के विना कोई विद्या किसी को प्राप्त नहीं होती, और विद्या के विना कोई व्यक्ति पदार्थों से उपयोग ग्रहण नहीं कर सकता ॥ ८। ५६ ॥

भाष्यसार—**गृहस्थ विषयक उपदेश**—गृहस्थ जनों को उचित है कि वे ईश्वर की इस सृष्टि में, यान आदि की रचना में, सहायक पुरुष के समान तर्क से, ऐश्वर्य की राशि रूप जल का,

इन्धन आदि में अग्नि का, क्रिया कौशल के द्वारा उपयोग लेने योग्य, जो विद्युत् है उसका ग्राह्य पदार्थों के धारण करने में उपयोग लेवें। पदार्थों के उपयोग में तर्क मुख्य है । तर्क के बिना कोई विद्या प्राप्त नहीं हो सकती और विद्या के बिना कोई व्यक्ति पदार्थों से उपयोग नहीं ले सकता ॥ ८। ५६ ॥

वसिष्ठः। **विश्वेदेवाः**=सर्वे विद्वांसः ॥ भुरिक् साम्नी बृहती । मध्यमः ॥

अथ गार्हस्थ्यकर्म्मणि विद्वत्पक्षे किञ्चिदाह ॥

अब गृहस्थ कर्म्म में विद्वानों के पक्ष में कुछ उपदेश किया है ॥

विश्वे॑ दे॒वा ऽ अ॒ꣳशुषु॒ न्यु॑प्तो॒ विष्णु॑राप्रीत॒पाऽआ॑प्या॒य्यमा॑नो य॒मः सू॒यमा॑नो॒ विष्णुः॑ सम्भ्रि॒यमा॑णो वा॒युः पू॒यमा॑नः शु॒क्रः पू॒तः शु॒क्र क्षी॑र॒श्रीर्म॒न्थी स॑क्तु॒श्रीः ॥ ५७ ॥

पदार्थः--(**विश्वे**) सर्वे (**देवाः**) विद्वांसः (**अंशुषुः**) विभक्तेषु सांसारिकेषु पदार्थेषु (**न्युप्तः**) नित्यं स्थापितो व्यवहारः (**विष्णुः**) व्यापिका विद्युत् (**आप्रीतपाः**) समन्तात् प्रीतान्=कमनीयान् पदार्थान्पाति=रक्षति (**आप्याय्यमानः**) वृद्ध इव (**यमः**) यच्छति सोऽयं सूर्य्यः (**सूयमानः**) उत्पद्यमानः (**विष्णुः**) व्यापकः (**सम्भ्रियमाणः**) सम्यक् पोषितः (**वायुः**) प्राणः (**पूयमानः**) पवित्रीकृतः (**शुक्रः**) वीर्य्यसमूहः (**पूतः**) शुद्धः (**शुक्रः**) आशुकर्त्ता (**क्षीरश्रीः**) यः क्षीरादीनि श्रृणाति (**मन्थी**) मथ्नातीति (**सक्तुश्रीः**) यः सक्तूनि=समवेतानि द्रव्याणि श्रयति ॥ अयं मन्त्रः शत० १२। ६। १। १९-२६ व्याख्यातः ॥ ५७ ॥

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१२। ६। १। १९–२६) में की गई है ॥८।५७॥

सपदार्थान्वयः—हे **विश्वे** सर्वे **देवाः** विद्वांसः ! **युष्माभिरंशुषु** विभक्तेषु सांसारिकेषु पदार्थेषु **न्युप्तः** नित्यं स्थापितो व्यवहारः **आप्रीतपाः** समन्तात् प्रीतान्=कमनीयान् पदार्थान् पाति=रक्षति, **विष्णुः** व्यापिका विद्युत्, **आप्याय्यमानः** वृद्ध इव **यमः** यच्छति सोऽयं सूर्यः, **सूयमानः** उत्पद्यमानः **विष्णुः** व्यापकः, **संम्भ्रियमाणः** सम्यक्पोषितः **वायुः** प्राणः, **पूयमानः** पवित्रीवृतः **शुक्रः** वीर्य्यसमूहः **पूतः** शुद्धः, **शुक्रः** आशुकर्त्ता **मन्थी** मथ्नातीति **सेवमानः सन् क्षीरश्रीः** यः क्षीरादीनि श्रृणाति **सक्तुश्रीः** यः सक्तूनि=समवेतानि द्रव्याणि श्रयति **च जायते** ॥ ८। ५७ ॥

भाषार्थ—हे (**विश्वे**) सब (**देवाः**) विद्वान् पुरुषो ! आप लोगों से– (**अंशुषु**) नाना सांसारिक पदार्थों में (**न्युप्तः**) नित्य स्थापित किया हुआ व्यवहार, (**आप्रीतपाः**) सब ओर से कमनीय पदार्थों की रक्षा करने वाली (**विष्णुः**) व्यापक बिजली, (**आप्याय्यमानः**) बढ़ा हुआ (**यमः**) सूर्य, (**सूयमानः**) उत्पन्न होने वाला (**विष्णुः**) व्यापक जल, (**सम्भ्रियमाणः**) अच्छी प्रकार पोषण किया हुआ (**वायुः**) प्राण, (**पूयमानः**) पवित्र किया हुआ (**शुक्रः पूतः**) शुद्ध वीर्य तथा (**शुक्रः**) आशुकारी (**मन्थी**) मन्थन करने वाला व्यक्ति—सेवन किये हुये ये पदार्थ (**क्षीरश्रीः**) दुग्ध आदि पदार्थों को पकाने वाले और (**सक्तुश्रीः**) उपयोगी पदार्थों को प्राप्त कराने वाले होते हैं ॥ ८। ५७ ॥

[हे **विश्वे देवाः** ! **युष्माभिरंशुषु न्युप्तः** आप्रीतपा विष्णुः ··· जायते]

भावार्थः—मनुष्यैर्युक्तिविद्याभ्यां सेविता विद्युदादयः पदार्थाः शरीरात्मसमाजसुखप्रदा जायन्ते ॥ ८। ५७ ॥

भावार्थ—मनुष्यों के द्वारा युक्ति और विद्या से सेवन किये विद्युत् आदि पदार्थ शरीर, आत्मा और समाज के लिये सुखदायक होते हैं ॥ ८। ५७ ॥

अन्यत्र व्याख्यात—यमः सूयमानो०, यहां वायु, विद्युत्, सूर्य के यम नाम हैं (संस्कारविधिअन्त्येष्टिप्रकरणम्) ॥ ८ । ५७ ॥

भाष्यसार—गृहस्थ कर्म और विद्वान्—विद्वान् गृहस्थों को उचित है कि वे शरीर, आत्मा और समाज को सुख देने वाले विद्युत् आदि पदार्थों का विद्या और युक्ति से सेवन करें क्योंकि संसार के विभिन्न पदार्थों में ही विद्वानों का व्यवहार नित्य स्थापित है। विद्युत् पदार्थों में व्यापक है और जो कमनीय पदार्थों की सब ओर से रक्षा करती है। सूर्य सब की वृद्धि का हेतु है। जल व्यापक है और उत्पन्न होने वाले हैं। प्राण पोषण के योग्य हैं। पवित्र किया हुआ वीर्य शुद्ध हो जाता है। आशुकारी व्यक्ति मन्थन कार्य उपयोगी होता है। जो इन विद्युत् आदि पदार्थों का युक्ति और विद्या से उपयोग जानते हैं वे दुग्ध आदि पदार्थों को पकाने वाले तथा सत्तु आदि विविध द्रव्यों को प्राप्त करने वाले होते हैं ॥ ८ । ५७ ॥

वसिष्ठः । **विश्वेदेवाः**=**सर्वे विद्वांसः** । भुरिगार्षी जगती । निषादः ॥

पुनः प्रकारान्तरेण विद्वद्विषयमाह ॥

फिर प्रकारान्तर से विद्वानों के विषय में उपदेश किया है ॥

विश्वे देवाश्चमसेषून्नीतोऽसुर्होमायोद्यतो रुद्रो हूयमानो वातोऽभ्यावृत्तो नृचक्षाः । प्रतिख्यातो भक्षो भक्ष्यमाणः पितरो नाराशंसाः ॥ ५८ ॥

पदार्थः—(**विश्वे**) सर्वे (**देवाः**) विद्वांसः (**चमसेषु**) मेघेषु । चमस इति मेघना० ॥ निघं० १ । १० ॥ (**उन्नीतः**) ऊर्ध्वं नीतः सुगन्धादिपदार्थः (**असुः**) प्राणः (होमाय) दानायादानाय वा (**उद्यतः**) प्रयत्नेन प्रेरितः (**रुद्रः**) जीवः (**हूयमानः**) स्वीकृतः (**वातः**) बाह्यो वायुः (**अभ्यावृतः**) आभिमुख्येनाङ्गीकृतः (**नृचक्षाः**) नॄन् मनुष्यान् चष्ट इति (**प्रतिख्यातः**) ख्यातं ख्यातं प्रतीति (**भक्षः**) भोज्यसमूहः (**भक्ष्यमाणः**) भुज्यमानः (**पितरः**) ज्ञानिनः (**नाराशंसाः**) नारानाशंसन्ति नराशंसानामिम उपदेशकाः ॥ अयं मन्त्रः शत० १२ । ३ । १ । २७-३३ व्याख्यातः ॥ ५८ ॥

प्रमाणार्थ—(**चमसेषु**) 'चमस' शब्द निघं० (१ । १०) में मेघ-नामों में पढ़ा है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१२ । ३ । १ । २७-३३) में की गई है ॥ ८ । ५८ ॥

सपदार्थान्वयः—**यैर्होमाय** दानायादानाय वा **यज्ञविधानेन चमसेषु** मेघेषु **सुगन्ध्यादिरुन्नीतः** ऊर्ध्वं नीतः सुगन्धादिपदार्थः, **असुः** प्राणः **उद्यतः** प्रयत्नेन प्रेरितः **रुद्रः** जीव **हूयमानः** स्वीकृतः, **नृचक्षाः** नॄन्=मनुष्यान् चष्ट इति **प्रतिख्यातः** ख्यातं ख्यातं प्रतीति, **वातः** बाह्यो वायुः **अभ्यावृतः** आभिमुख्येनाङ्गीकृतः, **तच्छोधितो भक्ष्यमाणः** भुज्यमानः **भक्षः** भोज्यसमूहः **कृतस्ते विश्वे** सर्वे **देवाः** विद्वांसः **नाराशंसाः** नरानाशंसन्ति नराशंसाना मिम उपदेशकाः **पितरः** ज्ञानिनः **च वेद्याः** ॥ ८ । ५८ ॥

भाषार्थ—जिन्होंने (**होमाय**) दान वा आदान क्रिया के लिये यज्ञानुष्ठान से (**चमसेषु**) बादलों में (**उन्नीतः**) सुगन्ध आदि पदार्थों को ऊपर पहुँचाया है, (**असुः**) प्राण को (**उद्यतः**) प्रयत्न से प्रेरित किया है, (**रुद्रः**) जीव को (**हूयमानः**) स्वीकार किया है, (**नृचक्षाः**) मनुष्यों को उपदेश करने वाले वा देखने वाले ईश्वर को (**प्रतिख्यातः**) प्रत्येक पदार्थ में बतलाया है, (**वातः**) बाह्य वायु को (**अभ्यावृतः**) सम्मुखता से अङ्गीकार किया है, यज्ञ से शुद्ध किये (**भक्ष्यामाणः**) भोज्य पदार्थों को (**भक्षः**) भक्ष्य रूप में स्वीकार किया है वे (**विश्वे**)

सब लोग (देवाः) विद्वान् (नाराशंसाः) श्रेष्ठ नरों को प्रशंसा करने वालों के उपदेशक, और (पितरः) ज्ञानी हैं, ऐसा समझें ॥ ८ । ५८ ॥

[यैर्होमाय यज्ञविधानेन चमसेषु सुगन्ध्यादिरुन्नीतः'''ते विश्वे देवा नाराशंसाः पितरश्च जायन्ते]

भावार्थः—ये विद्वांसः परोपकारबुद्धिया विद्यां विस्तार्य्य सुगन्धिपुष्टिमधुरतारोगनाशकगुण-युक्तानां द्रव्याणां यथावन्मेलनं कृत्वाऽग्नौ हुत्वा वायुवृष्टिजलोषधीः सेवित्वा शरीरारोग्यं जनयन्ति त इह पूज्यतमाः सन्ति ॥ ८ । ५८ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् लोग परोपकार-बुद्धि से विद्या का विस्तार करके सुगन्धि, पुष्टि, मधुरता, रोगनाशक गुणों से युक्त द्रव्यों को यथा-वत् मिलाकर उन्हें अग्नि में होम करके वायु, वर्षाजल और औषधियों के सेवन से शरीर को नीरोग करते हैं वे इस जगत् में पूज्यतम हैं ॥ ८ । ५८ ॥

भा० पदार्थः—नाराशंसाः=पूज्यतमाः ॥

भाष्यसार—**विद्वान् गृहस्थ**—जो गृहस्थ परोपकार-बुद्धि से विद्या का विस्तार करके सुगन्धित, पुष्टिकारक, मधुर, रोगनाशक आदि गुणों से युक्त द्रव्यों को होम के लिये यथावत् मिला अग्नि में आहुति देते हैं और उन्हें मेघों में ऊपर पहुँचाते हैं वे सब प्राणियों के प्राण को बलवान् बनाते हैं, सब जीवों को अपनाते हैं मनुष्यों के द्रष्टा ईश्वर को प्रत्येक पदार्थ में विद्यमान देखते हैं, वायु को सब ओर से शुद्ध करते हैं, जल आदि पेय तथा औषधि आदि भक्ष्य पदार्थों को शुद्ध करते हैं, वे देव और पितर लोग सबके पूज्यतम हैं ॥ ८ । ५८ ॥

सन्न इत्यस्य वसिष्ठः ऋषिः । **विश्वेदेवाः**=**सर्वे विद्वांसः** । आर्षी बृहती । निषादः ।
यापत्येते इत्यस्य विराडार्षी गायत्री ॥ षड्जः ॥

अथ गार्हस्थ्यकर्म्मणि यज्ञादिव्यवहारमाह ॥

अब गृहस्थ के कर्म्म में यज्ञादि व्यवहार का उपदेश किया जाता है ॥

सन्नः सिन्धुरवभृथायोद्यतः समुद्रोऽभ्यवह्रियमाणः सलिलः प्रप्लुतो ययोरोजसा स्कभिता रजांसि वीर्येभिर्वीरतमा शविष्ठा । या पत्येते ऽ अप्रतीता सहोभिर्विष्णू ऽ अगन्वरुणा पूर्वहूतौ ॥ ५९ ॥

पदार्थः—(**सन्नः**) अवस्थापितः । सन्न इति पदं महीधरेण भ्रान्त्या पूर्वस्य मन्त्रस्यान्ते स्वीकृतम् (**सिन्धुः**) नदी । सिन्धव इति नदीना० ॥ निघं० १ । १३ ॥ (**अवभृथाय**) पवित्रीकरणाय यज्ञान्तस्नानाय वा (**उद्यतः**) उत्कृष्टतया यतः (**समुद्रः**) अन्तरिक्षम् । समुद्र इत्यन्तरिक्षना० ॥ निघं० १ । ३ ॥ (**अभ्यवह्रियमाणः**) भुज्यमानः (**सलिलः**) शुद्धं जलं विद्यते यस्मिन् सः । अर्शआदित्वादच् । सलिलमित्युदकना० ॥ निघं० १ । १२ ॥ (**प्रप्लुतः**) प्रकृष्टगुणैः प्राप्तः (**ययोः**) होतृयजमानयोः प्रशंसिता गुणाः सन्ति (**ओजसा**) बलेन (**स्कभिता**) स्तम्भितानि धृतानि (**रजांसि**) लोकाः (**वीर्य्येभिः**) (**वीरतमा**) अतिशयेन वीरौ । अत्र सर्वत्राकारादेशः (**शविष्ठा**) अतिशयेन नित्यबलसाधकौ (**या**) यौ (**पत्येते**) श्रेष्ठैः प्राप्येते (**अप्रतीता**) अप्रतीतगुणौ (**सहोभिः**) बलादिभिः (**विष्णू**) व्याप्तिशीलौ (**अगन्**) गच्छन्तु प्राप्नुवन्तु । अत्र गमधातोर्लोडर्थे लुङ् । मन्त्रे

घसह्वरणश० ॥ अ० २ । ४ । ८० ॥ इति च्लेर्लुगनुनासिकलोपश्च (वरुणा) श्रेष्ठौ (पूर्वहूतौ) पूर्वैः शिष्टैर्विद्वद्भिराहूतौ । अयम्मन्त्रः शत० १२ । ६ । १ । ३४—३६ व्याख्यातः ॥ ५६ ॥

प्रमाणार्थ—(सन्नः) इस पद को महीधर ने भ्रान्ति से पूर्व मन्त्र के अन्त में स्वीकार किया है। (सिन्धुः) यह शब्द निघं० (१ । १३) में नदी नामों में पढ़ा है। (समुद्रः) यह शब्द निघं० (१ । १३) में अन्तरिक्ष-नामों में पढ़ा है। (सलिलः) यहाँ 'अश आदिभ्योऽच्' [अ० ५ । २ । १२७] इस सूत्र से 'अच्' प्रत्यय है। 'सलिल' शब्द निघं० (१ । १२) में जल नामों में पढ़ा है। (वीरतमा) यहाँ सर्वत्र आकार-आदेश है। (अगन्) यहां 'गम्' धातु से लोट्-अर्थ में लुङ् लकार है। 'मन्त्रे घसह्वरणश०' (अ० २ । ४ । ८०) इस सूत्र से च्लि का लुक् और अनुनासिक का लोप है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१२ । ६ । १ । ३४-३६) में की गई है ॥ ८ । ५६ ॥

सपदार्थान्वयः—**यैरवभृथाय** पवित्रीकरणाय यज्ञान्त स्नानाय वा **अभ्यवह्रियमाणः** भुज्यमानः **सलिलः** शुद्धं जलं विद्यते यस्मिन् सः, **उद्यतः** उत्कृष्टतया यतः **सिन्धुः** नदी **सन्नः** अवस्थापितः, **समुद्रः** अन्तरिक्षं, **प्रप्लुतः** प्रकृष्टगुणैः प्राप्तः **क्रियते, ययोः** होतृयजमानयोः प्रशंसिता गुणाः सन्ति **ओजसा** बलेन **रजांसि** लोकाः **स्कभिता=स्कभितानि** स्तम्भितानि=धृतानि, **या** यौ **वीर्येभिर्वीरतमा** अतिशयेन वीरौ **शविष्ठा** अतिशयेननित्यबलसाधकौ, **सहोभिः** बलादिभिः **अप्रतीता** अप्रतीतगुणौ **विष्णू** व्याप्तिशीलौ **वरुणा** श्रेष्ठौ **पूर्वहूतौ** पूर्वैः=शिष्टैर्विद्वद्भिराहूतौ **प्रत्येते** श्रेष्ठैः प्राप्येते, **तावगन्** गच्छन्तु=प्राप्नुवन्तु **ते सुखिनो भवन्ति** ॥ ८ । ५६ ॥

भाषार्थ—जो लोग (**अवभृथाय**) को पवित्र करने वा यज्ञान्त स्नान करने के लिये (**अभ्यवह्रियमाणः**) उपभोग के योग्य (**सलिलः**) शुद्ध जल वाली (**उद्यतः**) सुनियमित (**सिन्धुः**) नदी को (**सन्नः**) स्थापित करने एवं (**समुद्रः**) अन्तरिक्ष को (**प्रप्लुतः**) यज्ञ से उत्तम गुणों वाला प्राप्त करते हैं, और (**ययोः**) प्रशंसित गुणों वाला होता और यजमान के (**ओजसा**) बल से (**रजाँसि**) लोकों को (**स्कभिता**) धारण किये रहते हैं, और (**या**) जो होता और यजमान (**वीर्येभिः**) वीर-कर्मों से (**वीरतमा**) अत्यन्त वीर तथा (**शविष्ठा**) सदा अत्यन्त बल के साधक हैं, (**सहोभिः**) बल आदि गुणों के कारण (**अप्रतीता**) अपने गुणों की स्वयं प्रसिद्धि न करने वाले (**विष्णू**) व्याप्ति-स्वभाव वाले, (**वरुणौ**) श्रेष्ठ और (**पूर्वहूतौ**) शिष्य विद्वान् लोग जिन्हें निमन्त्रित करते हैं तथा (**पत्येते**) जिन्हें श्रेष्ठ लोग प्राप्त करते हैं उन्हें (**अगन्**) आप प्राप्त करें, जो ऐसा करते हैं वे सुखी होते हैं ॥ ८ । ५६ ॥

[यैरवभृथायाभ्यवह्रियमाणः सलिलः······क्रियते······ते सुखिनो भवन्ति]

भावार्थः—मनुष्याणां यज्ञादिव्यवहारेण विना गार्हस्थ्यकर्मणि सुखं न जायते ॥ ८ । ५६ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को यज्ञ आदि व्यवहार के विना गृहस्थ के कार्यों में सुख नहीं होता ॥ ८ । ५६ ॥

भाष्यसार—**गृहस्थकर्म में यज्ञादि व्यवहार**—जो विद्वान् गृहस्थ लोग पवित्र करने के लिये एवं यज्ञान्त स्नान के लिये सागर और अन्तरिक्ष को यज्ञ से उत्तम गुणवान् बनाते हैं वे गृहस्थ कर्म में सुखी रहते हैं।

होता और यजमान के यज्ञानुष्ठान आदि प्रशंसनीय गुणों के बल से लोक स्थिर हैं। ये होता

और यजमान अपने वीर कर्मों से वीर हैं, अत्यन्त बलवान् हैं, सहन-शक्ति आदि गुणों के कारण अपने गुणों की स्वयं प्रसिद्धि करने वाले नहीं हैं, यज्ञ आदि कर्मों में व्याप्त रहने वाले हैं, समाज में श्रेष्ठ कहलाते हैं, शिष्ट विद्वान् लोग इन्हें यज्ञादि शुभ कार्यों में निमन्त्रित करते हैं और श्रेष्ठ पुरुष इनके पास आते हैं। जो गृहस्थ लोग होता और यजमान होकर यज्ञादि व्यवहार करते हैं वे सदा सुखी रहते हैं ॥ ८ । ५६ ॥

वसिष्ठः । **विश्वेदेवाः=सर्वे विद्वांसो दिव्यभोगाश्च** । स्वराट् साम्नी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तदेवाह ॥

गृहस्थ कर्म में यज्ञ आदि व्यवहार का फिर उपदेश किया है ॥

देवान् दिवमगन्यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्टु मनुष्यानन्तरिक्षमगन्यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्टु पितॄन् पृथिवीमगन्यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्टु यं कं च लोकमगन्यज्ञस्ततो मे भद्रमभूत् ॥ ६० ॥

पदार्थः—(**देवान्**) दिव्यभोगान् (**दिवम्**) विद्याप्रकाशम् (**अगन्**) प्राप्नुवन्ति । अत्र लिङर्थे लुङ् (**यज्ञः**) पूर्वोक्तस्सर्वैः संगमनीयः (**ततः**) तस्मात् (**मा**) माम् (**द्रविणम्**) विद्यादिकम् (**अष्टु**) प्राप्नोतु (**मनुष्यान्**) (**अन्तरिक्षम्**) मेघमण्डलम् (**अगन्**) (**यज्ञः**) (**ततः**) (**मा**) (**द्रविणम्**) धनादिकम् (**अष्टु**) (**पितॄन्**) ऋतून् (**पृथिवीम्**) (**अगन्**) (**यज्ञः**) (**ततः**) (**मा**) (**द्रविणम्**) प्रत्युतुसुखकरम् (**अष्टु**) (**यम्**) (**कम्**) (**च**) (**लोकम्**) (**अगन्**) गच्छन्तु (**यज्ञः**) (**ततः**) (**मे**) मम (**भद्रम्**) भजनीयं कल्याणम् (**अभूत्**) भवतु ॥ अयं मन्त्रः शत० ४ । ५ । ७ । ८ व्याख्यातः ॥ ६० ॥

प्रमाणार्थ—(**अगन्**) यहां लिङ् अर्थ में लुङ् लकार है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (४ । ५ । ७ । ८) में की गई है ॥ ८ । ६० ॥

सपदार्थान्वयः—**विद्वांसो यो यज्ञः** पूर्वोक्तस्सर्वैः संङ्गमनीयः **दिवं** विद्याप्रकाशं **देवान्** दिव्यभोगान् **प्रापयति तमगन्** प्राप्नुवन्ति, **ततः** तस्मात् **मा** मां **द्रविणं** विद्यादिकम् **अष्टु** प्राप्नोतु ।

यो यज्ञोऽन्तरिक्षं मेघमण्डलं **मनुष्यानाप्नोति, तमगन्** प्राप्नुवन्ति **ततः** तस्मात् **मा** मां **द्रविणं** धनादिकम् **अष्टु** प्राप्नोतु।

यो यज्ञः पृथिवीं पितॄन् ऋतून् **प्रापयति तमगन्** प्राप्नुवन्ति **ततः** तस्मात् **मा** मां **द्रविणं** प्रत्यृतु-सुख-करम् **अष्टु** प्राप्नोतु ।

भाषार्थ—जो (**यज्ञः**) पूर्वोक्त सब से प्राप्त करने योग्य यज्ञ है वह (**दिवम्**) विद्या के प्रकाश को एवं (**देवान्**) दिव्य भोगों को प्राप्त कराता है, उसे विद्वान् लोग (**अगन्**) प्राप्त करें, (**ततः**) उस यज्ञ से (**मा**) मुझे (**द्रविणम्**) विद्या आदि पदार्थ (**अष्टु**) प्राप्त हों ।

जो यज्ञ (**अन्तरिक्षम्**) मनुष्यों को मेघमण्डल प्रदान करता है, उसे विद्वान् लोग (**अगन्**) प्राप्त करें, (**ततः**) उस यज्ञ से (**मा**) मुझे (**द्रविणम्**) धन आदि पदार्थ (**अष्टु**) प्राप्त हों ।

जो यज्ञ (**पृथिवी**) पृथिवी को (**पितॄन्**) सब ऋतु में पहुँचाता है उस यज्ञ को विद्वान् लोग (**अगन्**) प्राप्त करें (**ततः**) उस यज्ञ से (**मा**) मुझे (**द्रविणम्**) प्रत्येक ऋतु में सुखकारक पदार्थ (**अष्टु**) प्राप्त हों ।

यो यज्ञः यं कं च लोकमगन् गच्छतु **ततो मे** मम **भद्रं** भजनीयं कल्याणम् **अभूत्** भवतु ॥ ८ । ६० ॥

जो यज्ञ (**यं कं च लोकम्**) जिस किसी लोक में (**अगन्**) पहुँचे उससे (**मे**) मेरा (**भद्रम्**) कल्याण (**अभूत्**) हो ॥ ८ । ६० ॥

[**विद्वांसो यां यज्ञो दिवं देवान् प्रापयति तमगन्, ततो मा द्रविणमष्टु**]

भावार्थः— यस्माद्यज्ञात् सर्वाणि सुखानि जायन्ते तस्यानुष्ठानं सर्वैर्मनुष्यैः कुतो न कार्य्यमिति ॥ ८ । ६० ॥

भावार्थ—जिस यज्ञ से सब सुख उत्पन्न होते हैं उसका अनुष्ठान सब मनुष्य क्यों न करें ? ॥ ८ । ६० ॥

भाष्यसार—गृहस्थ कर्म में यज्ञादि व्यवहार—जो यज्ञ विद्याप्रकाश और दिव्य भोगों को प्राप्त कराता है, उससे गृहस्थ विद्या और दिव्य भोगों को प्राप्त करे । जो यज्ञ मेघमण्डल प्राप्त कराता है अर्थात् मेघों को उत्पन्न करता है उससे गृहस्थ अन्न-धन आदि को प्राप्त करें । जो यज्ञ पृथिवी पर ऋतुयें पहुँचाता है, ऋतुओं का निर्माण करता है उससे गृहस्थ ऋतु-अनुकूल सुखों को प्राप्त करें । जो यज्ञ जिस किसी लोक में पहुँचता है उससे गृहस्थ कल्याण को ही प्राप्त करता है । तात्पर्य यह है कि जब यज्ञ से सब सुख उत्पन्न होते हैं फिर सब मनुष्य उसका अनुष्ठान क्यों न करें ॥ ८ । ६० ॥

वसिष्ठः । **विश्वेदेवाः**=जगदुत्पत्तिहेतवः ॥ साम्न्युष्णिक् । ऋषभः ॥

अस्य जगत उत्पत्तौ कति कारणानि सन्तीत्याह ॥

इस जगत् की उत्पत्ति में कितने कारण हैं, इस विषय का उपदेश किया है ॥

चतुस्त्रिꣳशत्तन्तवो ये वितत्निरे य ऽ इमं यज्ञꣳ स्वधया ददन्ते ।
तेषां छिन्नꣳ सम्वेतद्दधामि स्वाहा घर्मो ऽ अप्येतु देवान् ॥ ६१ ॥

पदार्थः—(**चतुस्त्रिशत्**) अष्टौ वसव एकदश रुद्रा द्वादशादित्या इन्द्रः प्रजापतिः प्रकृतिश्चेति (**तन्तवः**) सूत्रवत्समवेतुं शीलाः (**ये**) (**वितत्निरे**) (**ये**) (**इमम्**) (**यज्ञम्**) सौख्यजनकम् (**स्वधया**) अन्नादिना (**ददन्ते**) (**तेषाम्**) (**छिन्नम्**) द्वैधीकृतम् (**सन्**) (**उ**) वितर्के (**एतत्**) (**दधामि**) (**स्वाहा**) सत्यया क्रियया वाचा वा (**घर्म्मः**) यज्ञः **घर्म्म इति यज्ञना० ॥ निघं० ३ । १७ ॥** (**अपि**) निश्चये (**एतु**) (**देवान्**) विदुषः ॥ अयम्मन्त्रः शत० १२ । ६ । १ । ३७ व्याख्यातः ॥ ६१ ॥

प्रमाणार्थ—(**घर्मः**) यह शब्द निघं० (३ । १७) में यज्ञ-नमों में पढ़ा है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१२ । ६ । १ । ३७) में की गई है ॥ ८ । ६१ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **चतुस्त्रिंशत्** अष्टौ वसवः, एकादश रुद्राः, द्वादशादित्याः, इन्द्रः, प्रजापतिः प्रकृतिश्चेति **तन्तवः** सूत्रवत्समवेतुं शीलाः **यज्ञं** सौख्य जनकं वितत्निरे, **ये च स्वधया** अन्नादिना **इमं ददन्ते, तेषां छिन्नं=यद् द्वैधीकृतं तदेतत् स्वाहा** सत्यया क्रियया वाचा वा [**सं+दधामि**]=**संदधाति, उ इति वितर्के घर्म्मः** यज्ञः **देवान्** विदुषः **अपि+एतु** निश्चयेनैतु ॥ ८ । ६१ ॥

भाषार्थ—जो (**चतुस्त्रिंशत्**) आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, इन्द्र, प्रजापति और प्रकृति ये चौंतीस (**तन्तवः**) सूत्र के समान परस्पर ओत-प्रोत होकर इस (**यज्ञम्**) जगत् रूप सुखकारक यज्ञ को (**वितत्निरे**) फैला रहे हैं, और जो (**स्वधया**) अन्न आदि से (**इमम्**) इस यज्ञ का (**ददन्ते**) दान करते हैं उनके जो (**छिन्नम्**) छिन्न-भिन्न हुए कार्यों को (**एतद्**) यह (**स्वाहा**) सत्य कर्म वा वाणी

से [**सं+दधामि**], संयुक्त कर देता है। (उ) और विचार यह है कि उक्त (**घर्मः**) यज्ञ (**देवान्**) विद्वानों को (**अपि+एतु**) निश्चय से प्राप्त हो॥ ८।६१॥

[**चतुस्त्रिंशत् तन्तवो यज्ञं वितत्निरे**]

भावार्थः—अस्य प्रत्यक्षस्य जगतश्चतुस्त्रिंशत् तत्त्वानि कारणानि सन्ति, तेषां गुण-दोषान् ये जानन्ति तानेव सुखमेति ॥ ८।६१॥

भावार्थ—इस प्रत्यक्ष जगत् के चौंतीस तत्त्व कारण हैं, उनके गुणों और दोषों को जो जानते हैं, उन्हें ही सुख प्राप्त होता है॥ ८।६१॥

भा० पदार्थः—यज्ञम्=जगत्॥

भाष्यसार—**जगत् की उत्पत्ति में कितने कारण हैं**—आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, इन्द्र, प्रजापति और प्रकृति ये चौतीस तत्त्व जगत् की उत्पत्ति में कारण हैं, जो तन्तु (**सूत्र**) के समान परस्पर ओत-प्रोत हैं। यह जगत् एक सौख्य-उत्पादक यज्ञ है। ये चौंतीस कारण तन्तु ही इसका विस्तार करते हैं। और जो लोग अन्नादि से इस यज्ञ को करते हैं, दान करते हैं, उनके छिन्न भिन्न हुये भी कार्य इस सत्यकर्म और सत्यवाणी से फिर संयुक्त हो जाते हैं, पूर्ण हो जाते हैं। विद्वान् लोग विचार से इस तथ्य को निश्चित जानकर यज्ञ को प्राप्त हों। इस चौंतीस तत्त्वों वाले जगत् (**यज्ञ**) के गुण-दोषों को जानकर सुख को प्राप्त करें॥ ८।६१॥ ●

यज्ञस्येत्यस्य वसिष्ठः। **यज्ञः=स्पष्टम्**। स्वराडार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

पुनर्यज्ञविषयमाह॥

यज्ञ विषय का फिर उपदेश किया है॥

यज्ञस्य दोहो विततः पुरुत्रा सो ऽअष्टधा दिवमन्वाततान।
स यज्ञ धुक्ष्व महि मे प्रजायांꣳ रायस्पोषं विश्वमायुरशीय स्वाहा॥ ६२॥

पदार्थः—(**यज्ञस्य**) (**दोहः**) प्रपूर्णः सामग्रीसमूहः (**विततः**) विस्तीर्णः (**पुरुत्रा**) पुरुषु=पदार्थेषु (**सः**) (**अष्टधा**) दिग्भिरष्टप्रकारः (**दिवम्**) सूर्य्यप्रकाशम् (**अन्वाततान**) आच्छाद्य विस्तारयति (**सः**) सूर्य्यप्रकाशः (**यज्ञ**) यः संगम्यते तत्सम्बुद्धौ (**धुक्ष्व**) (**महि**) महान्तं महद्वा (**मे**) मम (**प्रजायाम्**) (**रायः**) धनादेः (**पोषम्**) पुष्टिम् (**विश्वम्**) सर्वम् (**आयुः**) जीवनम् (**अशीय**) प्राप्नुयाम् (**स्वाहा**) सत्यवाग्युक्तया क्रियया॥ ६२॥

सपदार्थान्वयः—हे [**यज्ञ**]=**यज्ञसम्पादक विद्वन्**! यः संगम्यते तत्सम्बुद्धौ **यो यज्ञस्य पुरुत्रा** पुरुषु=पदार्थेषु **विततः** विस्तीर्णः **अष्टधा** दिग्भिरष्ट प्रकारः **दोहः** प्रपूर्णः सामग्रीसमूहः अस्ति, **तं त्वं दिवं** सूर्य्यप्रकाशम् **अन्वाततान** आच्छाद्य विस्तारय **सः** सूर्य्यप्रकाशः **त्वं त यज्ञं धुक्ष्व**।

भाषार्थ—हे [**यज्ञ**] संग करने के योग्य, यज्ञानुष्ठान करने वाले विद्वान् पुरुष! जो (**यज्ञस्य**) यज्ञ का (**पुरुत्रा**) पदार्थों में (**विततः**) विस्तृत (**अष्टधा**) दिशाओं के कारण आठ प्रकार का (**दोहः**) पूर्ण सामग्री का समूह है उसे तू (**दिवम्**) सूर्य के प्रकाश को (**अन्वाततान**) आच्छादित करके फैला दे और (**सः**) उक्त सूर्य प्रकाश वाला तू उस यज्ञ को (**धुक्ष्व**) पूर्ण कर।

यो मे=मम प्रजायां विश्वं सर्वं महि महान्तं महद्वा रायः धनादेः पोषं पुष्टिम् आयुः जीवनं चान्वातनोति, तमहं स्वाहा सत्यवाग्युक्तया क्रियया अशीय प्राप्नुयाम् ॥ ८ । ६२ ॥

जो (मे) मेरी (प्रजायाम्) प्रजा में (विश्वम्) सब से (महि) महान् (रायः) धन आदि की (पोषम्) पुष्टि और (आयुः) दीर्घ जीवन का विस्तार करता है उसे मैं (स्वाहा) सत्यवाणी से युक्त क्रिया से (अशीय) प्राप्त करता हूँ ॥ ८ । ६२ ॥

[हे [यज्ञ]=यज्ञसम्पादक विद्वन् ! यो यज्ञस्य पुरुत्रा विततो ऽष्टाधा दोहोऽस्ति तं त्वं दिवमन्वाततान,··· यो मे=मम प्रजायां विश्वं महि रायस्पोषमायुश्चान्वाततान, तमहं स्वाहा शीय]

भावार्थः—मनुष्यैः सदा यज्ञारम्भपूर्त्ती कृत्वा प्रजाभ्यो महत्सुखं प्रापयणीयमिति ॥ ८ । ६२ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि वे सदा यज्ञ का आरम्भ और पूर्ति करके प्रजा को महान् सुख पहुँचावें ॥ ८ । ६२ ॥

भाष्यसार—**यज्ञ**—यज्ञ करने वाला विद्वान् गृहस्थ यज्ञ को सब पदार्थों में फैलावे, यज्ञ का आठ प्रकार से दोहन करे अर्थात् पूर्व आदि चार दिशा और आग्नेयी आदि चार उपदिशा इन आठों दिशाओं में यज्ञ को प्रपूर्ण करे, यज्ञ से सूर्य के प्रकाश (**किरण**) को ढक देवे, क्योंकि यज्ञ से पवित्र हुआ सूर्य का प्रकाश जगत् को सुख से प्रपूर्ण करता है। यह यज्ञ प्रजा में महान् धनादि की पुष्टि और आयु को बढ़ाता है। अतः सब मनुष्य सत्यवाणी से यज्ञ का आरम्भ और पूर्ति करके प्रजा को महान् सुख पहुँचावें ॥ ८ । ६२ ॥

कश्यपः । **यज्ञः=स्पष्टम्** ॥ स्वराडार्षी गायत्री । षड्जः ॥

मनुष्यैः किंवद्यज्ञः सेवनीय इत्यह ॥

मनुष्य किस के तुल्य यज्ञ का सेवन करें, यह उपदेश किया है ॥

आपवस्व हिरण्यवदश्ववत्सोम वीरवत् । वाजं गोमन्तमाभर स्वाहा ॥ ६३ ॥

पदार्थः—(**आ**) समन्तात् (**पवस्व**) पवित्रीकुरु (**हिरण्यवत्**) हिरण्यादिना तुल्यम् (**अश्ववत्**) अश्वादिभिः समानम् (**सोम**) ऐश्वर्य्यमिच्छुक गृहस्थ (**वीरवत्**) प्रशस्तवीरसदृशम् (**वाजम्**) अन्नादि-पदार्थमयं यज्ञम् । **अत्रार्शआदित्वादच्** (**गोमन्तम्**) प्रशस्तेन्द्रियादिसम्बन्धम् (**आ**) (**भर**) धर (**स्वाहा**) सत्यया वाचा सत्यक्रियया वा ॥ ६३ ॥

प्रमाणार्थ—(**वाजम्**) 'वाज' शब्द में मत्वर्थ में 'अर्शआदित्वाद्' 'अच्' प्रत्यय होता है।

सपदार्थान्वयः—हे **सोम** ! ऐश्वर्य-मिच्छुक गृहस्थ ! **त्वं स्वाहा** सत्यया वाचा सत्य-क्रियया वा **हिरण्यवत्** हिरण्यादिना तुल्यम् **अश्ववत्** अश्वादिभिः समानं **वीरवत्** प्रशस्तवीरसदृशं **गोमन्तं** प्रशस्तेन्द्रियादिसम्बन्धं **वाजम्=अन्नम्** अन्नादि-पदार्थमियं यज्ञम् **आ-भर** समन्ताद् धर, **तेन जगदा-पवस्व** समन्तात् पवित्रीकुरु ॥ ८ । ६३ ॥

भाषार्थ—हे (**सोम**) ऐश्वर्य के इच्छुक गृहस्थ ! तू (**स्वाहा**) सत्यवाणी वा सत्यक्रिया से (**हिरण्यवत्**) सुवर्ण आदि पदार्थों के तुल्य (**अश्ववत्**) अश्व आदि पशुओं के समान (**वीरवत्**) प्रशंसित वीरों के तुल्य (**गोमन्तम्**) प्रशस्त इन्द्रिय आदि से सम्बन्धित (**वाजम्**) अन्नादि पदार्थमय यज्ञ को (**आ-भर**) सब ओर से धारण कर, उस यज्ञ से

जगत् को (**आपवस्व**) सब ओर से पवित्र कर ॥ ८ । ६३ ॥

[हे सोम ! त्वं स्वाहा हिरण्यवदश्ववद्वीरद्'''''वाजमन्त्रमाभर, तेन जगदावस्व]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः ॥ मनुष्यैः पुरुषार्थेन सुवर्णादिधनमासाद्याश्वदयो रक्षणीयास्तदनन्तरं वीराश्च, कुतो यावदेतां सामग्रीं नाभरन्ति तावद्गृहाश्रमारब्धव्या यज्ञमप्यलं कर्त्तुं न शक्नुवन्ति ॥ ८ । ६३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है ॥ मनुष्यों को चाहिए कि वे पुरुषार्थ से सुवर्ण आदि धन को प्राप्त करके अश्व आदि पशुओं की और तत्पश्चात् वीर-पुरुषों की रक्षा करें, क्योंकि जब तक इस सुवर्ण आदि सामग्री को धारण नहीं करते तब तक गृहाश्रम को आरम्भ करने वाले गृहस्थ यज्ञ के करने में भी समर्थ नहीं हो सकते ॥ ८ । ६३ ॥

भाष्यसार—**किसके समान यज्ञ का सेवन करें**—ऐश्वर्य के इच्छुक गृहस्थ को योग्य है कि वह जिस सत्यता से सुवर्ण आदि धन को प्राप्त करता है, अश्व आदि पशु और प्रशस्त वीरों की रक्षा करता है उसी सत्यनिष्ठा से इन्द्रियों को बल देने वाले अन्नादि पदार्थों के हेतु यज्ञ को धारण करे। और उससे सब जगत् को पवित्र करे। गृहस्थ के लिये सुवर्ण आदि सामग्री को धारण करना भी आवश्यक है क्योंकि सुवर्ण आदि के विना वह यज्ञ करने में समर्थ नहीं हो सकता ॥ ८ । ६३ ॥

[पूर्वापराध्यायार्थसंगतिमाह—]

अस्मिन्नाध्याये गृहस्थ-धर्मसेवनाय ब्रह्मचारिण्या कन्यया कुमारब्रह्मचारिस्वीकरणं, गृहाश्रमधर्मवर्णनं, राजप्रजासभापत्यादिकृत्यमुक्तमत एतदध्यायोक्तार्थस्य पूर्वाध्यायोक्तार्थेन सह संगतिरस्तीति बोद्धव्यम् । ८ ॥

इस अध्याय में—गृहस्थ धर्म का सेवन करने के लिये ब्रह्मचारिणी कन्या के द्वारा कुमार ब्रह्मचारी को स्वीकार करना, (१) गृहाश्रम धर्म का वर्णन, (२-३६ तथा २-४३) राजा, प्रजा और सभापति आदि के कर्मों का उपदेश (३७-४०) किया है इसलिये इस अध्याय में प्रतिपादित अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति है, ऐसा जानें ॥ ८ ॥

इति श्रीयुतपण्डितसुदर्शनदेवाचार्यकृते दयानन्द-यजुर्वेदभाष्य-भास्करे ऽष्टमोऽध्यायः ॥

॥ ओ३म् ॥

* अथ नवमाऽध्यायारम्भः *

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व ॥ १ ॥

य० ३० । ३ ॥

इन्द्राबृहस्पती । **सविता=सम्राट्** । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

विद्वद्भिश्चक्रवर्ती कथं कथमुपदेष्टव्य इत्युपदिश्यते ॥

विद्वान् लोग चक्रवर्ती राजा को कैसा कैसा उपदेश करें, यह उपदेश किया है ॥

देव॑ सवितः॒ प्रसु॑व य॒ज्ञं प्रसु॑व य॒ज्ञप॑तिं॒ भगा॑य ।
दि॒व्यो ग॑न्ध॒र्वः कै॑त॒पूः केतं॑ नः पुनातु वा॒चस्पति॒र्वाजं॑ नः स्वदतु स्वाहा॑ ॥ १ ॥

पदार्थः—(**देव**) दिव्यगुणसम्पन्न (**सवितः**) सकलैश्वर्यसंयुक्त सम्राट् (**प्र**) (**सुव**) ईर्स्व (**यज्ञम्**) सर्वेषां सुखजनकं राजधर्मम् (**प्र**) (**सुव**) (**यज्ञपतिम्**) राजधर्मपालकम् (**भगाय**) समग्रैश्वर्य्याय (**दिव्यः**) प्रकाशमानेषु क्षत्रगुणेषु भवः (**गन्धर्वः**) गां=पृथिवीं धरतीति । **पृषोदरादिना गोशब्दस्य गम्भावः** (**केतपूः**) यः केतं=प्रज्ञां पुनाति=पवित्रीकरोति सः (**केतम्**) प्रज्ञाम् । **केतमिति प्रज्ञाना० ॥ निघं० ३ । ६ ॥** (**नः**) अस्माकं प्रजाराजपुरुषाणाम् (**पुनातु**) शुन्धतु (**वाचस्पतिः**) अध्ययनाध्यापनोपदेशैर्वाण्याः पालकः (**वाजम्**) अन्नम् (**नः**) अस्माकम् (**स्वदतु**) आभुनक्तु (**स्वाहा**) वेदवाचा ॥ **अयं मन्त्रः शत० ५ । १ । १ । १६ व्याख्यातः ॥ १ ॥**

प्रमाणार्थ—(**गन्धर्वः**) यहां 'पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्' (**अ० ६ । ३ । १०६**) इस सूत्र से 'गो' शब्द को 'गम्' आदेश है । (**केतम्**) यह शब्द निघं० (३ । ६) में प्रज्ञा-नामों में पढ़ा है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । १ । १ । १६) में की गई है ॥ ६ । १ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **देव** दिव्यगुण-सम्पन्न **सवितः** ! सकलैश्वर्यसंयुक्त सम्राट् ! **त्वं भगाय** समग्रैश्वर्य्याय **स्वाहा** वेदवाचा **यज्ञं** सर्वेषां सुखजनकं राजधर्मं **प्रसुव** ईर्स्व, **यज्ञपतिं** राजधर्म-पालकं **प्रसुव** ईर्स्व, **यतो दिव्यः** प्रकाशमानेषु क्षत्र-गुणेषु भवः **गन्धर्वः** गां=पृथिवीं धरतीति **केतपूः** यः केतं=प्रज्ञां पुनाति=पवित्रीकरोति सः **वाचस्पतिः**

भाषार्थ—हे (**देव**) दिव्य गुणों से सम्पन्न (**सवितः** !) सकल ऐश्वर्य से संयुक्त सम्राट् ! आप (**भगाय**) समग्र ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये (**स्वाहा**) वेदवाणी से (**यज्ञम्**) सबके लिये सुखदायक राज-धर्म का (**प्रसुव**) प्रचार करो, (**यज्ञपतिम्**) राज-धर्म के पालक को (**प्रसुव**) प्रेरित करो, जिससे (**दिव्यः**) प्रकाशमान क्षत्रिय के गुणों में वर्तमान

=प्रजाराजजनेः अध्ययनाध्यापनोपदेशैर्वाण्याः पालकः स्वाहा वेदवाचा नः अस्माकं प्रजाराजपुरुषाणां केतं प्रज्ञां पुनातु शुन्धतु, नः अस्माकं स्वाहा वेदवाचा वाजम् अन्नं स्वदतु आभुनक्तु ॥ ९ । १ ॥

(गन्धर्वः) पृथिवी को धारण करने वाले (केतपूः) प्रज्ञा को पवित्र करने वाले (वाचस्पतिः) अध्ययन, अध्यापन और उपदेश से वेदवाणी के रक्षक प्रजाजन और राजपुरुष (स्वाहा) वेदवाणी से (नः) हम प्रजाजनों की (केतम्) प्रज्ञा=बुद्धि को (पुनातु) पवित्र करें, (नः) हमारे (स्वाहा) वेदविद्या के उपदेश से (वाजम्) अन्न का (स्वदतु) आस्वादन करें ॥ ९ । १ ॥

[हे···सवितः ! त्वं···यज्ञपतिं प्रसुव, यतो···वाचस्पतिः=प्रजावराजजनः···वाजं स्वदतु]

भावार्थः—न्यायेन प्रजापालनं विद्याप्रदानकरणमेव राज्ञां यज्ञोऽस्ति ॥ ९ । १ ॥

भावार्थ—न्याय से प्रजा का पालन तथा विद्या प्रदान करना ही राजाओं का यज्ञ है ॥ ९ । १ ॥

भाष्यसार—**विद्वानों का चक्रवर्ती सम्राट् को उपदेश**—हे चक्रवर्ती सम्राट् ! आप दिव्य गुणों से सम्पन्न हो, सकल ऐश्वर्य से युक्त हो, समग्र ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये वेदवाणी द्वारा राजधर्म का प्रचार करो, राजधर्म के पालकों को प्रचारार्थ भी प्रेरित करो। जिससे राजा और प्रजाजन क्षत्रियोचित दिव्यगुणों से युक्त हों, पृथिवी को धारण करने वाले हों, बुद्धि को पवित्र करने वाले हों; अध्ययन, अध्यापन और उपदेश से वेदवाणी के पालक हों, वे वेदवाणी से हमारी बुद्धि को शुद्ध करें, तथा वेदविद्या का उपदेश करके हमारे स्वादिष्ठ अन्नों का सेवन करें ॥

बृहस्पतिः । **इन्द्रः=सम्राट्** ॥ ध्रुवसदमिति पूर्वस्यार्षीपंक्तिः । पञ्चमः ।
अप्सुसदमित्यस्य विकृतिः मध्यमः ॥

मनुष्याः कीदृशं राजानं स्वीकुर्य्युरित्याह ॥

मनुष्य किस प्रकार के पुरुष को राजा स्वीकार करें, यह उपदेश किया है ॥

ध्रुवसदं त्वा नृषदं मनःसदमुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् । अप्सुषदं त्वा घृतसदं व्योमसदमुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् । पृथिविसदं त्वाऽन्तरिक्षसदं दिविसदं देवसदं नाकसदमुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् ॥ २ ॥

पदार्थः—(**ध्रुवसदम्**) ध्रुवेषु=विद्याविनययोगधर्मेषु सीदन्तम् (त्वा) त्वाम् (**नृसदम्**) नायकेषु सीदन्तम् (**मनःसदम्**) मनसि=विज्ञाने तिष्ठन्तम् (**उपयामगृहीतः**) उपगतैर्यमानामिमैः सेवकैः पुरुषैः स्वीकृतः (**असि**) भवसि (**इन्द्राय**) परमैश्वर्ययुक्ताय जगदीश्वराय (त्वा) त्वाम् (**जुष्टम्**) जुषमाणम् (**गृह्णामि**) स्वीकरोमि (**एषः**) (**ते**) तव (**योनिः**) कारणम् (**इन्द्राय**) राज्यैश्वर्याय (**त्वा**) (**जुष्टतमम्**) अतिशयेन जुषमाणम् (**अप्सुसदम्**) जलेषु गच्छन्तम् (त्वा) (**घृतसदम्**) आज्यं प्राप्नुवन्तम (**व्योमसदम्**) विमानैर्व्योम्नि गच्छन्तम् (**उपयामगृहीतः**) उपयामैः=प्रजाराजजनैः स्वीकृतः (**असि**) (**इन्द्राय**) ऐश्वर्यधारणाय (**त्वा**) (**जुष्टम्**) प्रीतम् (**गृह्णामि**) (**एषः**) (**ते**) (**योनि**) (**इन्द्राय**) दुष्टशत्रुविदारणाय (**त्वा**) (**जुष्ठतम्**) (**पृथिविसदम्**) पृथिव्यां गच्छन्तम् । अत्र ङ्यापोः सञ्ज्ञाछन्दसोर्बहुलम् अ० ६ । ३ ।

६३ ॥ इति पूर्वपदस्य ह्रस्वः (त्वा) (**अन्तरिक्षसदम्**) अवकाशे गमकम् (**दिविसदम्**) न्यायप्रकाशे व्यवस्थितम् (**देवसदम्**) देवेषु=धार्मिकेषु विद्वत्स्ववस्थितम् (**नाकसदम्**) अविद्यमानं कं=सुखं यस्मिन् तदकमेतन्नास्ति यस्मिन्परमेश्वरे धर्मे वा तत्रस्थम् (**उपयामगृहीतः**) साधनोपसाधनैः संयुक्तः (**असि**) (**इन्द्राय**) विद्यायोग-मोक्षैश्वर्य्याय (**त्वा**) (**जुष्टम्**) (**गृह्णामि**) (**एषः**) (**ते**) (**योनिः**) निवसतिः (**इन्द्राय**) सर्वैश्वर्य्यसुखप्राप्तये (**त्वा**) (**जुष्टतमम्**) ॥ अयं मन्त्रः शत० ५ । १ । २ । ३–६ व्याख्यातः ॥ २ ॥

प्रमाणार्थ—(**पृथिविसदम्**) यहाँ 'ङ्यापोः संज्ञाछन्दसोर्बहुलम्' (अ० ६ । ३ । ६३) इस सूत्र से पूर्व पद को ह्रस्व हो गया है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । १ । २ । ३–६) में की गई है ॥ ६ । २ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **सम्राट्**! **अहमिन्द्राय** परमैश्वर्ययुक्ताय जगदीश्वराय **यस्त्वमुपायमगृहीतः** उपगतैर्यमानामिमैः सेवकैः पुरुषैः स्वीकृतः **असि** भवसि, तं **ध्रुवसदं** ध्रुवेषु=विद्याविनययोग-धर्मेषु सीदन्तं **नृषदं** नायकेषु सीदन्तं **मनः-सदं** मनसि=विज्ञाने-तिष्ठन्तं **जुष्टं** जुषमाणं **त्वा** त्वां **गृह्णामि** स्वीकरोमि । **यस्यैष ते** तव **योनिः** कारणम् **अस्ति, तं जुष्टतमम्** अतिशयेन जुषमाणं **त्वा** त्वाम् **इन्द्राय** राज्यैश्वर्य्याय **गृह्णामि** स्वीकरोमि ।

भावार्थ—हे सम्राट्! मैं (**इन्द्राय**) परम ऐश्वर्य से युक्त जगदीश्वर की प्राप्ति के लिये—जो आप (**उपयामगृहीतः**) यमों का सेवन करने वाले उपासक पुरुषों से आप स्वीकार किये गये (**असि**) हो, उस (**ध्रुवसदम्**) ध्रुव अर्थात् विद्या, विनय, योग और धर्म में (**नृषदम्**) नेताओं में तथा (**मनःसदम्**) विज्ञान में विराजमान एवं (**जुष्टम्**) प्रीति और सेवा करने योग्य (**त्वा**) आपको (**गृह्णामि**) स्वीकार करता हूँ। (**एषः**) यह गुणवृन्द ही (**ते**) आपको स्वीकार करने का (**योनिः**) कारण है, सो (**जुष्टतमम्**) अत्यन्त प्रीति और सेवा करने योग्य (**त्वा**) आपको (**इन्द्राय**) राज्य-ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (**गृह्णामि**) स्वीकार करता हूँ।

हे राजन्! अहमिन्द्राय ऐश्वर्य्यधारणाय **यस्त्वमुपयामगृहीतः** उपयामैः=प्रजा-राजजनैः स्वीकृतः **असि** भवसि, **तमप्सुसदं** जलेषु गच्छन्तं **घृतसदम्** आज्यं प्राप्नुवन्तं **व्योमसदं** विमानैर्व्योम्नि गच्छन्तं **जुष्टं** प्रीतं **त्वा** त्वां **गृह्णामि** स्वीकरोमि,

हे राजन्! मैं—(**इन्द्राय**) ऐश्वर्य को धारण करने के लिये जो आपको (**उपयामगृहीतः**) प्रजा-जन और राजपुरुषों ने स्वीकार किया (**असि**) है, सो (**अप्सुसदम्**) जलों में गति करने वाले (**घृतसदम्**) घृत आदि पदार्थों को प्राप्त करने वाले (**व्योमसदम्**) विमानों से आकाश में गति करने वाले (**जुष्टम्**) प्रसन्न रहने वाले (**त्वा**) आपको मैं (**गृह्णामि**) स्वीकार करता हूँ।

हे सर्वरक्षक सभाध्यक्ष! यस्यैष ते तव **योनिः** कारणम् **अस्ति, तं जुष्टतमं त्वेन्द्राय** दुष्टशत्रु विदारणाय **गृह्णामि** स्वीकरोमि।

हे सब के रक्षक सभाध्यक्ष सम्राट्! (**एषः**) यह गुणवृन्द (**ते**) आपको स्वीकार करने का (**योनिः**) कारण है, सो (**जुष्टतमम्**) प्रीति और सेवा के योग्य (**त्वा**) आपको (**इन्द्राय**) दुष्ट शत्रुओं के विदारण के लिये (**गृह्णामि**) स्वीकार करता हूँ।

हे सार्वभौम राजन्! अहमिन्द्राय विद्यायोग-मोक्षैश्वर्य्याय **यस्त्वमुपयामगृहीतः** साधनोपसाधनैः

हे सार्वभौम चक्रवर्ती सम्राट्! मैं (**इन्द्राय**) विद्या, योग और मोक्ष रूप ऐश्वर्य की प्राप्ति के

संयुक्तः **असि** भवसि, **पृथिविसदं** पृथिव्यां गच्छन्तम् **अन्तरिक्षसदम्** अवकाशे गमकं **दिविसदं** न्यायप्रकाशे व्यवस्थितं **देवसदं** देवेषु=धार्मिकेषु विद्वत्स्ववस्थितं **नाकसदम्** अविद्यमानं क=सुखं यस्मिन् तदकमेतन्नास्ति यस्मिन् परमेश्वरे धर्मे वा तत्रस्थं **जुष्टं त्वा** त्वां **गृह्णामि** स्वीकरोमि ।

लिये, जो आप (**उपयामगृहीतः**) साधन-उपसाधनों से संयुक्त (**असि**) हो तथा (**पृथिविसदम्**) पृथिवी पर चलने वाले (**अन्तरिक्षसदम्**) आकाश में गति करने वाले (**दिविसदम्**) न्याय के प्रकाश में स्थित (**देवसदम्**) देव=धार्मिक विद्वानों में विराजमान (**नाकसदम्**) दुःखरहित परमेश्वर वा धर्म में स्थित (**जुष्टम्**) प्रीति से युक्त (**त्वा**) आपको (**गृह्णामि**) स्वीकार करता हूँ ।

हे सर्वसुखप्रद प्रजापते ! यस्यैष ते तव **योनिः** कारणम् **अस्ति, तं जुष्टतमं त्वेन्द्राय** सर्वैश्वर्य्यसुखप्राप्तये **गृह्णामि** स्वीकरोमि ॥ ६ । २ ॥

हे सब सुखों के दाता प्रजापते । (**एषः**) यह गुणवृन्द (**ते**) आपको स्वीकार करने का (**योनिः**) कारण है, सो (**जुष्टतमम्**) प्रीति और सेवा के योग्य (**त्वा**) आपको (**इन्द्राय**) सब ऐश्वर्यजन्य सुखों की प्राप्ति के लिये (**गृह्णामि**) स्वीकार करता हूँ ॥ ६ । २ ॥

[हे सम्राट् ! अहमिन्द्राय . . . त्वां गृह्णामि]

भावार्थः—हे राज प्रजाजनाः ! यथा सर्वव्यापकेन परमेश्वरेण सकलैश्वर्याय जगन्निर्माय सर्वेभ्यः सुखं दीयते तथा यूयमप्याचरत, यतो धर्मार्थकाममोक्षफलानां प्राप्तिः सुगमा स्यात् ॥ ६ । २ ॥

भावार्थ—हे राजन् और प्रजाजनो ! जैसे सर्वव्यापक परमेश्वर सकल ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये जगत् का निर्माण करके सबको सुख देता है, वैसे तुम भी आचरण करो, जिससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप फलों की प्राप्ति सुगमता से हो सके ॥ ६ । २ ॥

भाष्यसार—**मनुष्य किस प्रकार के पुरुष को राजा स्वीकार करें**—यम-नियमों का सेवन कराने वाले, पुरुष परम ऐश्वर्य से युक्त जगदीश्वर की प्राप्ति के लिये विद्या, विनय, योग और धर्म में विराजमान, नेताओं में शोभायमान, विज्ञान में स्थित, प्रीति और सेवा करने योग्य पुरुष को सम्राट् स्वीकार करें ।

प्रजाजन और राज पुरुष ऐश्वर्य को धारण करने के लिये जलों में गति करने वाले, घृत आदि पदार्थों को प्राप्त कराने वाले विमानों से आकाश में गमन करने वाले पुरुष को प्रीतिपूर्वक राजा स्वीकार करें । दुष्ट शत्रुओं के विदारण के लिये उसे सर्वरक्षक सभाध्यक्ष मानें ।

प्रजाजन विद्या, योग और मोक्ष रूप ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये सब साधन-उपसाधनों से सम्पन्न, पृथिवी और आकाश में गमन करने वाले, न्याय के प्रकाश में विराजमान, धार्मिक विद्वानों की सभा में विराजमान, नाक अर्थात् दुखरहित परमेश्वर वा धर्म में अवस्थित पुरुष को प्रीतिपूर्वक सार्वभौम राजा स्वीकार करें ।

सब ऐश्वर्यों के सुखों को प्राप्त करने के लिये सब सुखों के दाता प्रजापति को स्वीकार करना आवश्यक है । जैसे सर्वव्यापक परमेश्वर सब ऐश्वर्यों को प्रदान करने के लिये जगत् का निर्माण करके,

सबको सुख प्रदान करता है, वैसे राजा और प्रजा-जन भी सबको सुख प्रदान करें। जिससे उन्हें धर्म, अर्थ काम और मोक्ष रूप फलों की शीघ्र प्राप्ति हो सके ॥ ९ । २ ॥

बृहस्पतिः । **इन्द्रः**=**राजा**। अतिशक्वरी । पञ्चमः ॥

पुनः प्रजाजनैः कथंभूतो जनो राजा माननीय इत्युपदिश्यते ॥

फिर प्रजाजनों को कैसा पुरुष राजा मानना जाहिये, यह उपदेश किया है ॥

अपाᳬं रसमुद्वयसᳬंसूर्ये सन्तᳬं समाहितम् ।
अपाᳬं रसस्य यो रसस्तं वो गृह्णाम्युत्तममुपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा जुष्टं
गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् ॥ ३ ॥

पदार्थः—(**अपाम्**) जलानाम् (**रसम्**) सारम् (**उद्वयसम्**) उत्कृष्टं वयो=जीवनं यस्मात्तम् (**सूर्ये**) सवितृप्रकाशे (**सन्तम्**) वर्त्तमानम् (**समाहितम्**) सम्यक् सर्वतो धृतम् (**अपाम्**) जलानाम् (**रसस्य**) सारस्य (**यः**) (**रसः**) वीर्य्यं धातुः (**तम्**) (**वः**) युष्मभ्यम् (**गृह्णामि**) (**उत्तमम्**) श्रेयांसम् (**उपयामगृहीतः**) साधनोपसाधनैः स्वीकृतः (**असि**) (**इन्द्राय**) परमेश्वराय (**त्वा**) (**जुष्टम्**) प्रीत्या वर्त्तमानम् (**गृह्णामि**) स्वीकरोमि (**एषः**) (**ते**) तव (**योनिः**) गृहम् (**इन्द्राय**) परमैश्वर्य्याय (**त्वा**) (**जुष्टतमम्**) ॥ **अयं मन्त्रः शत० ५ । १ । २ । ७ व्याख्यातः ॥ ३ ॥**

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । १ । २ । ७) में की गई है ॥ ९ । ३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **राजन् ! अहमिन्द्राय** परमेश्वराय **वः** युष्मभ्यं **सूर्ये** सवितृ प्रकाशे **सन्तं** वर्तमानं **समाहितं** सम्यक् सर्वतो धृतम् **उद्वयसम्** उत्कृष्टं वयः=जीवनं यस्मात्तम् **अपां** जलानां **रसं** सारं **गृह्णामि** स्वीकरोमि ।

योऽपां जलानां **रसस्य** सारस्य **रसः** वीर्य्यं धातुः **तमुत्तमं** श्रेयांसं **वः** युष्मभ्यं **गृह्णामि** स्वीकरोमि । [**यस्त्वमुपयामगृहीतः**] साधनोपसाधनैः संयुक्तः [**असि**] **यस्यैष ते** तव **योनिः** गृहम् **अस्ति**, **तं** [**जुष्टं**] प्रीत्या वर्त्तमानम् **इन्द्राय** परमैश्वर्याय **जुष्टतमं त्वा गृह्णामि** स्वीकरोमि ॥ ९ । ३ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! मैं (**इन्द्राय**) परमेश्वर-प्राप्ति के लिये (**वः**) तथा आपके लिये (**सूर्ये**) सूर्य के प्रकाश में (**सन्तम्**) वर्तमान, (**समाहितम्**) सब ओर विद्यमान (**उद्वयसम्**) उत्कृष्ट आयु=जीवन के साधन (**अपाम्**) जलों के (**रसम्**) सार को (**गृह्णामि**) स्वीकार करता हूँ।

जो (**अपाम्**) जलों के (**रसस्य**) सार के (**रसः**) रस रूप वीर्य धातु है, उस (**उत्तमम्**) श्रेष्ठ धातु को (**वः**) आपके लिए (**गृह्णामि**) स्वीकार करता हूँ। जो आप [**उपयामगृहीतः**] साधन उपसाधनों से युक्त [**असि**] हो, सो (**एषः**) यह गुणवृन्द (**ते**) आपका (**योनिः**) निवास है, सो (**जुष्टम्**) प्रीतियुक्त एवं (**इन्द्राय**) परम ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (**जुष्टतमम्**) प्रीति और सेवा के योग्य (**त्वा**) आपको (**गृह्णामि**) स्वीकार करता हूँ ॥ ९ । ३ ॥

[हे राजन् ! **अहमिन्द्राय···अपां रसं गृह्णामि, योऽपां रसस्य रसस्तमुत्तमं वो गृह्णामि**]

भावार्थः—राजा स्वभृत्यप्रजाजनान् शरीरात्मबलवर्धनाय ब्रह्मचर्यौषधविद्यायोगाभ्याससेवने

भावार्थ—राजा अपने सेवकों एवं प्रजा जनों को शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाने के

नियुञ्जीत, यतः सर्वे रोगरहिताः सन्तः पुरुषार्थिनः स्युः ॥ ६ । ३ ॥

लिये ब्रह्मचर्य, औषधि, विद्या और योगाभ्यास के सेवन करने में लगाये, जिससे सब रोग-रहित होकर पुरुषार्थी हों ॥ ६ । ३ ॥

भाष्यसार—**प्रजा कैसे पुरुष को राजा मानें**—प्रजाजन सूर्य के प्रकाश में विद्यमान, उत्तम रीति से सब ओर से धारण-पोषण करने वाले, उत्कृष्ट जीवन के हेतु जलों के सार को ग्रहण करें, जलों के सारभूत वीर्य को शरीर-बल की वृद्धि के लिये धारण करें, यम-नियम आदि साधन-उपसाधनों से आत्मबल की वृद्धि के लिये योगाभ्यास किया करें। जो राजा सब प्रजाजनों को शरीर और आत्मा के बल की वृद्धि के लिये ब्रह्मचर्य, औषध, विद्या और योगाभ्यास के सेवन में लगाये, उसे ही उक्त शरीर बल आदि परम ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये प्रीतिपूर्वक राजा मानें। जिससे सब प्रजाजन नीरोग होकर पुरुषार्थी बनें। ॥ ६ । ३ ॥

बृहस्पतिः । **राजधर्मराजादयः**=राजधर्मः, राजादयश्च ॥ भुरिक्कृतिः । निषादः ॥

मनुष्यैराप्तं विद्वांसं सुपरीक्ष्य संगन्तव्य इत्युपदिश्यते ॥

मनुष्यों को चाहिये कि आप्त विद्वान् की अच्छे प्रकार परीक्षा करके उसका सङ्ग करें, यह उपदेश किया है ॥

ग्रहा॑ऽ ऊर्जाहुतयो व्यन्तो विप्रा॑य म॒तिम् । तेषां॒ विशि॑प्रियाणां॒ वो॒ऽहमि॒षमू॒र्ज॑ᳬ॑ सम॑ग्रभमुपया॒मगृ॑हीतो॒ऽसीन्द्रा॑य त्वा॒ जुष्टं॑ गृह्णाम्ये॒ष ते॒ योनि॒रिन्द्रा॑य त्वा॒ जुष्ट॑तमम् । स॒म्पृचौ॑ स्थः॒ सं मा॑ भ॒द्रेण॑ पृङ्क्तं वि॒पृचौ॑ स्थो॒ वि मा॑ पा॒प्मना॑ पृङ्क्तम् ॥ ४ ॥

पदार्थः—(**ग्रहाः**) ग्रहीतारो=गृहाश्रमिणः (**ऊर्जाहुतयः**) ऊर्जा=बलप्राणनकारिका आहुतयो=ग्रहणानि दानानि वा येषां ते (**व्यन्तः**) वेदविद्यासु व्याप्नुवन्तः (**विप्राय**) मेधाविने (**मतिम्**) बुद्धिम् (**तेषाम्**) (**विशिप्रियाणाम्**) विविधे धर्म्मे कर्मणि हनुनासिके येषाम्। शिप्रे हनुनासिके वा ॥ निरु० ६ । १ । ७ ॥ (**वः**) युष्मभ्यम् (**अहम्**) गृहस्थो राजा (**इषम्**) अन्नम् (**ऊर्जम्**) पराक्रमम् (**सम्**) (**अग्रभम्**) गृहीतवानस्मि (**उपयामगृहीतः**) राज्यगृहाश्रमसामग्रीसहितः (**असि**) (**इन्द्राय**) पुरुषार्थे द्रवणाय (**त्वा**) (**जुष्टम्**) सेवमानम् (**गृह्णामि**) (**एषः**) (**ते**) (**योनिः**) सुखनिमित्तम् (**इन्द्राय**) शत्रुविदारकाय बलाय (**त्वा**) (**जुष्टतमम्**) अतिशयेन प्रसन्नम् (**सम्पृचौ**) राजगृहाश्रमव्यवहाराणां सम्यक् पृङ्क्तारौ राजप्रजाजनौ (**स्थः**) भवतम् (**सम्**) (**मा**) माम् (**भद्रेण**) भजनीयेन सुखप्रदेनैश्वर्येण (**पृङ्क्तम्**) स्पर्शं कुरुतम् (**विपृचौ**) विगतसम्पर्कौ (**स्थः**) स्यातम् (**वि**) (**मा**) माम् (**पाप्मना**) अधर्मात्मना जनेन (**पृङ्क्तम्**) ॥ **अयं मन्त्रः शत० ५ । १ । २ । ८ व्याख्यातः ॥ ४ ॥**

प्रमाणार्थ—(**शिप्रे**) निरु० (६ । १ । ७) के अनुसार 'शिप्रे' शब्द का अर्थ ठोढी और नासिका है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । १ । २ । ८) में की गई है ॥ ६ । ४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे प्रजाराजपुरुष ! **यथाऽहं** गृहस्थो राजा **विप्राय** मेधाविने **मतिं** बुद्धिं **व्यन्तः** वेदविद्यासु व्याप्नुवन्तः **ऊर्जाहुतयः** ऊर्जा=बलप्राणनकारिकां आहुतयः=ग्रहणानि दानानि वा येषां ते **ग्रहाः** ग्रहीतारो=गृहाश्रमिणः **सन्ति, यथा**

भावार्थ—हे प्रजाजन और राजपुरुष ! जैसे (**अहम्**) मैं—गृहस्थ राजा (**विप्राय**) मेधावी सन्तान के लिये (**मतिम्**) बुद्धि को, (**व्यन्तः**) वेद-विद्याओं में व्याप्त (**ऊर्जाहुतयः**) बल और प्राण के वर्द्धक आदान-प्रदान वाले (**ग्रहाः**) गृहाश्रमी लोग

तेषां विशिप्रियाणां विविधे धर्मे कर्मणि हनुनासिके येषां **मतिं** बुद्धिम् **इषम्** अन्नम् **ऊर्ज्जं** पराक्रमं **च** [**वः**] युष्मभ्य **समग्रभं** गृहीतवानस्मि, **तथा त्वमपि गृहाण**।

हैं, और जैसे उन (**विशिप्रियाणाम्**) विविध प्रकार के धर्म कर्म में मुख (**वाणी**) और नासिका (**प्राण**) का उपयोग करने वाले गृहस्थों के (**मतिम्**) बुद्धि (**इषम्**) अन्न और (**ऊर्जम्**) पराक्रम को [**वः**] तुम्हारे लिये (**समग्रभम्**) ग्रहण कर चुका हूँ वैसे तू भी ग्रहण कर।

हे विद्वन्! यथा त्वमुपयामगृहीतः राज्यगृहाश्रम-सामग्रीसहितः **असि, तथाऽहमपि भवेयं, यथांऽहं** गृहस्थो राजा **इन्द्राय** पुरुषार्थे द्रवणाय **जुष्टं** सेवमानं **त्वा गृह्णामि, तथा त्वमपि मां गृहाण**।

हे विद्वान्! जैसे आप (**उपयामगृहीतः**) राज्य एवं गृहाश्रम की सामग्री से युक्त (**असि**) हो वैसे मैं भी होऊँ, जैसे (**अहम्**) मैं गृहस्थ राजा (**इन्द्राय**) पुरुषार्थ में चलने के लिये (**जुष्टम्**) सेवा के योग्य (**त्वा**) आपको (**गृह्णामि**) ग्रहण करता हूँ वैसे आप भी मुझे ग्रहण करें।

यस्यैष ते योनिः सुखनिमित्तम् **अस्ति, तमिन्द्राय** शत्रुविदारकाय बलाय **जुष्टतमम्** अति अतिशयेन प्रसन्नं **त्वाहं यथा गृह्णामि, तथा त्वमपि मां गृहाण**।

(**एषः**) यह परस्पर का व्यवहार (**ते**) आपके (**योनिः**) सुख का निमित्त है सो (**इन्द्राय**) शत्रु विदारक बल की प्राप्ति के लिये (**जुष्टतमम्**) अत्यन्त प्रसन्न रहने वाले (**त्वा**) आपको मैं जैसे (**गृह्णामि**) ग्रहण करता हूँ वैसे आप भी मुझे ग्रहण करें।

यथा स त्वं च युवां धर्म्ये व्यवहारे सम्पृचौ राजगृहाश्रमव्यवहाराणां सम्यक् पृङ्क्तारौ राज-प्रजाजनौ **स्थः** भवतं **तथा भद्रेण** भजनीयेन सुख-प्रदेनैश्वर्येण **मा=मां संपृङ्क्तं** स्पर्शं कुरुतम्।

जैसे वह प्रजाजन और तू राजपुरुष अर्थात् तुम दोनों धर्मयुक्त व्यवहार में (**सम्पृचौ**) राज-व्यवहार और गृहाश्रम के व्यवहारों से सम्पर्क रखने वाले (**स्थः**) हो वैसे (**भद्रेण**) सेवन करने योग्य सुखप्रद ऐश्वर्य से (**मा**) मुझे (**सम्पृङ्क्तम्**) संयुक्त रखो।

यथा युवां पाप्मना अधर्मात्मना जनेन **विपृचौ** विगतसम्पर्कौ **स्थः** स्यातं, **तथाऽनेन मा=मामपि विपृङ्क्तम्**॥ ९। ४॥

जैसे तुम दोनों (**पाप्मना**) अधर्मात्मा पुरुष से (**विपृचौ**) सम्पर्क नहीं रखते (**स्थः**) हो वैसे इस अधर्मात्मा से (**मा**) मुझे भी (**विपङ्क्तम्**) वियुक्त रखो, अलग रखो॥ ९। ४॥

[**हे प्रजाराजपुरुष! यथाहं—विप्रायमतिं व्यन्त······ग्रहाः सन्ति, यथा तेषां······मतिं······**[वः] **समग्रभं तथा त्वमपि गृहाण**]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः॥ ये राजाप्रजाजना गृहस्था मेधाविने सन्तानाय विद्यार्थिने वा विद्याप्रज्ञां जनयन्ति,

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है॥ जो राजपुरुष और प्रजा-जन गृहस्थ हैं, वे मेधावी सन्तान वा विद्यार्थी में विद्या-बुद्धि उत्पन्न करते हैं,

[यथा''''''युवां धर्म्ये व्यवहारे सम्पृचौ स्थस्तथा भद्रेण मा=मां सम्पृङ्क्तं, यथा युवां पाप्मना विपृचौ स्थस्तथाऽनेन मा=पामपि विपृङ्क्तम्]

दुष्टाचारात् पृथक् स्थापयन्ति, कल्याणकारकं कर्माचरयन्ति, असत्संगं विहाय सत्संगं सेवयन्ति, त स्त्वाभ्युदयनिःश्रेयसे लभन्ते नातो विपरीताः ॥ ६ । ४ ॥

उसे दुष्ट-आचरण से अलग रखते हैं, कल्याण-कारक कर्म कराते हैं, कुसङ्ग से पृथक् करके सत्सङ्ग का सेवन कराते हैं, वे ही अभ्युदय और निःश्रेयस को प्राप्त करते हैं, उससे विपरीत आचरण करने वाले नहीं ॥ ६ । ४ ॥

भा० पदार्थः—विप्राय=मेधाविने सन्तानाय, विद्यार्थिने वा । मतिम्=विद्याप्रज्ञाम् ।

भाष्यसार—१. **मनुष्य आप्त विद्वान् का सुपरीक्षापूर्वक संग करें**—जैसे वेद विद्याओं में व्याप्त, बल और प्राण को बढ़ाने वाले, अपनी इन्द्रियों को धर्मयुक्त कर्मों में प्रवृत्त करने वाले गृहाश्रमी लोग अपनी मेधावी सन्तान अथवा विद्यार्थियों में विद्याबुद्धि उत्पन्न करते हैं, उन्हें अन्न प्रदान करते हैं, उनके पराक्रम को बढ़ाते हैं वैसे राजा, राजपुरुष तथा प्रजा-जन भी किया करें ।

जैसे आप्त विद्वान् पुरुष राज्य एवं गृहाश्रम की सामग्री से युक्त होता है वैसे गृहस्थ राजा भी पुरुषार्थ में आगे बढ़ने के लिये प्रीतिपूर्वक आप्त विद्वानों को ग्रहण करे, सुपरीक्षापूर्वक उनका संग करे । शत्रुओं का विदारण करने वाले बल की प्राप्ति के लिये आप्त विद्वानों को स्वीकार करें । आप्त विद्वान् भी शत्रुओं के विनाश के लिये राजा को स्वीकार करें ।

जैसे गृहस्थ प्रजाजन तथा आप्त विद्वान् धर्मयुक्त गृहाश्रम के व्यवहारों में तथा राज-व्यवहारों में मिलकर चलते हैं वैसे सुखद ऐश्वर्य के निमित्त राजा उनसे मिलकर चले । और जैसे वे अधर्मात्मा पापी जन से अलग रहते हैं वैसे उससे राजा भी पृथक् रहे, पापीजनों का संग न करे । प्रजा को भी पापियों से पृथक् रखे, उसे कल्याणकारक कर्मों में लगावे, कुसंग से छुड़ाकर सत्संग का सेवन करावे । ऐसा करने से ही राजा और प्रजा अभ्युदय और निःश्रेयस को प्राप्त कर सकते हैं, अन्यथा नहीं ॥

२. **अलङ्कार**--मन्त्र में उपमा वाचक शब्द लुप्त है अतः वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है । उपमा यह है कि राजा प्रजाजनों तथा आप्त विद्वानों के समान धर्माचरण करे तथा पापाचरण से पृथक् रहे ॥ ६ । ४ ॥ ●

बृहस्पतिः । **सविता**=सकलजगदुत्पादकईश्वरः ॥ भुरिगष्टिः । मध्यमः ॥

अथ किमर्थः सेनापतिरत्र प्रार्थनीय इत्याह ॥

अब किसलिये सेनापति से प्रार्थना करनी चाहिये, यहाँ यह उपदेश किया है ॥

इन्द्र॑स्य॒ वज्रो॑ऽसि वा॒ज॒सास्त्वया॒ऽयं वाज॑ꣳ सेत् ।
वाज॑स्य॒ नु प्र॑स॒वे मा॒तरं॑ म॒हीमदि॑तिं॒ नाम॒ वच॑सा करामहे ।
यस्या॑मि॒दं विश्वं॒ भुव॑नमावि॒वेश॒ तस्या॑ नो दे॒वः स॑वि॒ता धर्म॑ साविषत् ॥ ५ ॥

पदार्थः—(**इन्द्रस्य**) परमैश्वर्य्ययुक्तस्य राज्ञः पुरुषः (**वज्रः**) वज्र इव शत्रुच्छेदकः (**असि**) भवसि (**वाजसाः**) यो वाजान्=संग्रामान् विभजति सः (**त्वया**) रक्षकेण सेनापतिना सह (**अयम्**) जनः (**वाजम्**) संग्रामम् (**सेत्**) सिनुयात् । अत्र सिञ् बन्धन इत्यस्माल्लङि विकरणलुगडभावश्च (**वाजस्य**) संग्रामस्य

(**नु**) क्षिप्रम् (**प्रसवे**) ऐश्वर्य्ये (**मातरम्**) मान्यप्रदाम् (**महीम्**) पृथिवीम् (**अदितिम्**) अखण्डिताम् (**नाम**) प्रसिद्धौ (**वचसा**) वेदोक्तन्यायोपदेशकवचनेन (**करामहे**) कुर्य्याम। अत्र लेटि व्यत्ययेन शप् अथवा भ्वानिर्मन्तव्यः (**यस्माम्**) पृथिव्याम् (**इदम्**) प्रत्ययालम्बनम् (**विश्वम्**) सर्वम् (**भुवनम्**) जगत् (**आविवेश**) आविष्टमस्ति (**तस्याम्**) (**नः**) अस्माकम् (**देवः**) सर्वप्रकाशकः (**सविता**) सकलजगदुत्पादकः (**धर्म**) धारणम् (**साविषत्**) सवेत्। अत्र सिब्बहुलं णिद् ॥ अ० ३। १। ३४ भा० वा० ॥ इति सिपि वृद्धिः ॥ अयं मन्त्रः शत० ५। १। ४। ३-४ व्याख्यातः ॥ ५ ॥

प्रमाणार्थ—(**सेत्**) सिनुयात्। यहां बन्धन अर्थ वाली 'सिञ्' धातु से लङ् लकार में विकरण-प्रत्यय का लुक् और अट् का अभाव है। (**करामहे**) यहां लेट् लकार में व्यत्यय से 'शप्' है अथवा 'कृ' धातु का भ्वादि में पाठ मान लेना चाहिए। (**साविषत्**) यहां 'सिब्बहुलंणित्०' (अ० ३। १। ३४) इस भाष्य वार्तिक से 'सिप्' के णित् होने से वृद्धि है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५। १। ४। ३-४) में की गई है ॥ ९। ५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे वीर ! **यस्यां** पृथिव्यां **त्वमिन्द्रस्य** परमैश्वर्ययुक्तस्य राज्ञः पुरुषः [**तस्य**] **वाजसाः** यो वाजान्=संग्रामान् विभजति सः **वज्रः** वज्र इव शत्रुच्छेदकः **असि** भवसि, **तेन त्वया** रक्षकेण सेनापतिना **सहाऽयं** जनः **वाजं** संग्रामं **सेत्** सिनुयात्,—

यत्रेदं प्रत्ययालम्बनं **विश्वं** सर्वं **भुवनं** जगत् **आविवेश** आविष्टमस्ति, **यत्र देवः** सर्वप्रकाशकः **सविता** सकलजगदुत्पादकः **नः** अस्माकं **धर्म** धारणं **साविषत्** सवेत्, **तस्यां नाम** प्रसिद्धौ **वाजस्य** संग्रामस्य **प्रसवे** ऐश्वर्ये **मातरं** मान्यप्रदाम् **अदितिम्** अखण्डितां **महीं** पृथिवीं **वचसा** वेदोक्त न्यायोपदेशकवचनेन **नु** क्षिप्रं **करामहे** कुर्याम ॥ ९। ५ ॥

भाषार्थ—हे वीर सेनापते ! (**यस्याम्**) जिस पृथिवी पर आप (**इन्द्रस्य**) परम ऐश्वर्य से युक्त राजपुरुष के, (**वाजसाः**) संग्रामों का विभाजन करने वाले (**वज्रः**) वज्र के समान शत्रुओं के छेदक (**असि**) हो, उस (**त्वया**) आप रक्षक सेनापति के साथ (**अयम्**) यह राजपुरुष (**वाजम्**) संग्राम का (**सेत्**) प्रबन्ध करे। और—

जिस पृथिवी पर (**इदम्**) यह सुख का आश्रय (**विश्वम्**) सब (**भुवनम्**) जगत् (**आविवेश**) विस्तृत है, और जिस पृथिवी पर (**देवः**) सबका प्रकाशक (**सविता**) सकल जगत् का उत्पादक ईश्वर (**नः**) हमारे (**धर्म**) धर्म को (**साविषत्**) पैदा करता है, (**तस्याम्**) उस (**नाम**) प्रसिद्ध भूमि पर (**वाजस्य**) संग्राम के (**प्रसवे**) ऐश्वर्य के निमित्त (**मातरम्**) माननीय (**अदितिम्**) अखण्डित (**महीम्**) पृथिवी को (**वचसा**) वेदोक्त न्याय का उपदेश करने वाले वचन से (**नु**) शीघ्र (**करामहे**) हम संयुक्त करें ॥ ९। ५ ॥

[**वाजस्य प्रसवे मातरमदितिं महीं वचसा नु करामहे**]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ हे मनुष्याः ! येयं भूमिर्भूतानां सौभाग्यजननी, मातृवत्पालिका ऽऽधारभूता प्रसिद्धाऽस्ति, तां विद्या-न्यायधर्मयोगेनराज्याय यूयं सेवध्वम् ॥ ९। ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ हे मनुष्यो ! जो यह भूमि प्राणियों के सौभाग्य को पैदा करने वाली, माता के समान पालक, सबकी आधारभूत प्रसिद्ध है उसका विद्या, न्याय, और धर्मपूर्वक राज्य के लिये सेवन करो ॥ ९। ५ ॥

भाष्यसार—**१. सेनापति से प्रार्थना**—हे वीर सेनापते ! आप इस पृथिवी पर परम ऐश्वर्य से युक्त राजा के पुरुषों के लिये संग्राम का विभाजन करने वाले हो, वज्र के समान शत्रुओं का छेदन करने वाले हो, इसलिये मैं सैनिक आपके साथ संग्राम का सेवन करूँ। जिस पृथ्वी पर सुख का अवलम्बभूत यह सब जगत् विस्तृत है, जिस पर सबका प्रकाशक, सकल जगत् का उत्पादक ईश्वर हमारे लिये वेद-धर्म को उत्पन्न करता है, उस पृथिवी पर संग्राम के ऐश्वर्य के निमित्त आप से प्रार्थना करते हैं। आप और हम प्रजाजन मिलकर प्राणियों के सौभाग्य को उत्पन्न करने वाली, माता के समान पालक, सबका आधारभूत इस अखण्ड पृथिवी को विद्या, न्याय तथा धर्म के योग से राज्य के लिये सेवन करें।

२. अलङ्कार—मन्त्र में उपमा वाचक शब्द लुप्त है अतः वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि राजपुरुष वीर सेनापति के समान संग्राम का सेवन करें। राज्य के लिये पृथिवी का सेवन करें ॥ ६। ५ ॥

बृहस्पतिः । **अश्वः**=**बलवान् गृहस्थः** । भुरिग्जगती । निषादः ॥

पुनः स्त्रीपुरुषैः कथं भवितव्यमित्याह ॥

फिर स्त्री पुरुषों को कैसा होना चाहिये, यह उपदेश किया है ॥

अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तिष्वश्वा भवत वाजिनः ।
देवीरापो यो व ऽ ऊर्मिः प्रतूर्तिः ककुन्मान् वाजसास्तेनायं वाजꣳसेत् ॥ ६ ॥

पदार्थः—(**अप्सु**) प्राणेषु (**अन्तः**) मध्ये (**अमृतम्**) मरणधर्मरहितं कारणमल्पमृत्युनिवारकं वा (**अप्सु**) जलेषु (**भेषजम्**) रोगनाशकमौषधम् (**अपाम्**) उक्तानाम् (**उत**) अपि (**प्रशस्तिषु**) गुणानां प्रशंसासु (**अश्वाः**) वेगवन्तः (**भवत**) (**वाजिनः**) वाजः=प्रशस्तः पराक्रमो बलं वा येषान्ते (**देवीः**) दिव्य-गुणाः (**आपः**) अन्तरिक्षे व्याप्तिशीलाः (**यः**) (**वः**) युष्माकम् (**ऊर्मिः**) आच्छादकस्तरंगः (**प्रतूर्तिः**) प्रकृष्टा तूर्णगतिर्यस्य सः (**ककुन्मान्**) प्रशस्ताः ककुतः=लौल्या गुणा विद्यन्ते यस्मिन् । अत्र ककधातोरौणादिक उतिः ॥ उ० १ । ९४ ॥ (**वाजसाः**) वाजान्=संग्रामान् सनन्ति=संभजन्ति येन सः (**तेन**) (**अयम्**) सेनापतिः (**वाजम्**) संग्राममन्नं च (**सेत**) संबन्धीयात् ॥ अयं मन्त्रः शत० ५ । १ । ६ व्याख्यातः ॥ ६ ॥

प्रमाणार्थ—(**ककुन्मान्**) यहां 'कक्' धातु से उणादि का उणा० (१ । ९४) सूत्र से 'उति' प्रत्यय है। इस मन्त्रः की व्याख्या शत० (५ । १ । ४ । ६) में की गई है ॥ ६ । ६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे देवीः ! दिव्य-गुणसम्पन्नाः **आपः** अन्तरिक्षे व्याप्तिशीलाः **देवा विद्वांसश्च ! यूयं—यो वः** युष्माकं **समुद्रस्य** । **ककुन्मान्** प्रशस्ताः ककुतः=लौल्या गुणा विद्यन्ते यस्मिन् **वाजसाः** वाजान्=संग्रामान् सनन्ति=संभजन्ति येन सः **प्रतूर्त्तिः** प्रकृष्टा तूर्णगतिर्यस्य सः **ऊर्मिः** आच्छादकस्तरङ्गः **इव पराक्रमोऽस्ति, यदप्सु** प्राणेषु **अन्तः** मध्ये **अमृतं** मरणधर्मरहितं करणमल्पमृत्यु निवारकं वा [**उत**] **अप्सु** जलेषु **भेषजं** रोगनाशकमौषधं **चाऽस्ति, येनाऽयं** सेनापतिः **वाजं** सङ्ग्राममन्नं च **सेत्**

भाषार्थ—हे (**देवीः**) दिव्यगुणों से युक्त (**आपः**) अन्तरिक्ष में व्याप्त जल के समान शान्त विदुषी और विद्वान् पुरुषो ! तुम लोग—जो (**वः**) तुम्हारा समुद्र के समान (**ककुन्मान्**) प्रशस्त चञ्चल गुणों वाला, (**वाजसाः**) संग्रामों का संसेवन करने वाला, (**प्रतूर्त्तिः**) उत्कृष्ट तीव्र गति वाला (**ऊर्मिः**) तरङ्ग के समान सबको आच्छादित करने वाला पराक्रम है और जो (**अप्सु-अन्तः**) प्राणों में (**अमृतम्**) मरण धर्म से रहित, मूल कारण, वा अल्पायु को निवारण करने वाला अमृत नामक गुण है,

सम्बध्नीयात्, तेनायान् उक्तानाम् **प्रशस्तिषु** गुणानां प्रशंसासु **वाजिनः** वाजः=प्रशस्तः पराक्रमो बलं वा येषां ते **अश्वाः** वेगवन्तः **इव भवत** ॥ ६ । ६ ॥

[उत] और जो (**अप्सु**) जलों में (**भेषजम्**) रोग नाशक औषध का गुण है जिससे (**अयम्**) यह सेनापति (**वाजम्**) संग्राम और अन्न का (**सेतृ**) प्रबन्ध करता, है इसलिये (**अपाम्**) जल के (**प्रशस्तिषु**) गुणों की प्रशंसा में (**वाजिनः**) प्रशस्त बल वा पराक्रम वाले (**अश्वाः**) वेगवान् अश्वों के समान (**भवत**) बनो ॥ ६ । ६ ॥

[हे देवीरापो देवा विद्वांसश्च यूयं यो वः समुद्रस्य···ऊर्मिरिव पराक्रमोऽस्ति, यदप्सु···अमृतं [उत] अप्सु भेषजं चास्ति,···तेनापां प्रशस्तिषु··· अश्वा इव भवत]

भावार्थः--अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ स्त्रियः सागर इव गम्भीरा, जलमिव शान्तस्वभावा वीरप्रसवाः सदौषधसेविन्यो जलादिपदार्थाभिज्ञाः स्युरेवं ये पुरुषा वायुजलवेत्तृभिः सह संप्रयुञ्जते, तास्ते चारोगाः सन्तो विजयिनश्च स्युः ॥ ६ । ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है॥ स्त्रियाँ सागर के समान गम्भीर, जल के समान शान्त स्वभाव वाली, वीरों को उत्पन्न करने वाली, उत्तम औषधों का सेवन करने वाली, जल आदि पदार्थों को जानने वाली हों, इसी प्रकार जो पुरुष वायु और जल के गुणों को जानने वाले पुरुषों से संयुक्त होते हैं, वे स्त्री और पुरुष नीरोग होकर विजयी होते हैं ॥ ६ । ६ ॥

भा० पदार्थः--आपः=जलमिव शान्तस्वाभावाः (**स्त्रियः**) ।

भाष्यसार—१. **स्त्री और पुरुष कैसे हों**—स्त्रियाँ दिव्य गुणों से युक्त अर्थात् सागर के समान गम्भीर, जल के समान शान्त स्वभाव वाली, वीरों को उत्पन्न करने वाली, उत्तम औषधों को सेवन करने वाली, जल आदि पदार्थों के गुणों को जानने वाली हों।

पुरुष विद्वान् हों, जो समुद्र के समान चंचलता गुण से युक्त हों अर्थात् आलसी न हों, संग्रामों का सेवन करने वाले, अत्यन्त तीव्र गति वाले, समुद्र की तरङ्ग के समान सबको आच्छादित करने वाले पराक्रमी हों। प्राणों में जो अमृत नामक गुण है, जिससे अल्पायु में मृत्यु का निवारण होता है, उससे संग्राम का सेवन करें। जलों में जो रोगनाशक औषध के तुल्य गुण है, उससे अन्न का विधिवत् सेवन करें। प्राण और जल के प्रशस्त गुणों को जानकर पुरुष—प्रशस्त पराक्रम और बल वाले अश्व के समान वेगवान् बनें। जो पुरुष प्राण (**वायु**) और जल के गुणों के वेत्ता पुरुषों के साथ संग करके उनके गुणों को जानकर उनका ठीक-ठीक प्रयोग करते हैं वे नीरोग होकर सदा विजयी होते हैं ॥

२. **अलङ्कार**—मन्त्र में उपमावाचक शब्द लुप्त है, अतः वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि स्त्री और पुरुष सागर के समान गम्भीरता आदि गुणों से युक्त हों ॥ ६ । ६ ॥

बृहस्पतिः । **सेनापतिः**=**स्पष्टम्** । भुरिगुष्णिक् । ऋषभः ॥

मनुष्याः कथं किं कृत्वा वेगवन्तो भवेयुरित्याह ॥

मनुष्य किस प्रकार वेगवान् (**बलवान्**) बने, इस विषय का उपदेश किया है ॥

वातो॑ वा॒ मनो॑ वा गन्ध॒र्वाः स॒प्तवि॑ꣳशतिः । ते ऽ अग्रे॒ऽश्वमयुञ्जँ॒स्ते ऽ अ॒स्मिन् ज॒वमाद॑धुः ॥७॥

पदार्थः—(वातः) वायुः (वा) इव (मनः) स्वान्तम् (वा) इव (गंधर्वाः) ये वायव इन्द्रियाणि च धरन्ति त (सप्तविंशतिः) एतत्संख्याकाः (ते) (अग्रे) (अश्वम्) व्यापकत्ववेगादिगुणसमूहम् (अयुञ्जन्) युञ्जन्ति (ते) (अस्मिन्) जगति (जवम्) वेगम् (आ) (अदधुः) ॥ अयं मन्त्रः शत० ५।१।४।८ व्याख्यातः ॥ ७ ॥

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५।१।४।८) में की गई है ॥ ६।७ ॥

सपदार्थान्वयः—ये विद्वांसो वातः वायुः वा इव मनः स्वान्तं वा इव यथा सप्तविंशतिः एतत्संख्याकाः गन्धर्वाः ये वायव इन्द्रियाणि च धरन्ति ते [ते] अस्मिन् जगत्यग्रे ऽश्वं व्यापकत्व वेगादिगुणसमूहम् अयुञ्जन् युञ्जन्ति ते खलुजवं वेगम् आदधुः ॥ ६।७ ॥

भाषार्थ—जो विद्वान् पुरुष (वातः) वायु के (वा) समान तथा (मनः) मन के (वा) समान (सप्तविंशतिः) सत्ताईस (गन्धर्वाः) प्राणवायु और इन्द्रियों को धारण करने वाले हैं [ते] वे (अस्मिन्) इस जगत् में (अग्रे) प्रथम (अश्वम्) व्यापकता एवं वेगादि गुणों का (अयुञ्जन्) उपयोग करते हैं और (ते) वे (खलु) ही (जवम्) वेग को (आदधुः) धारण करते हैं ॥ ६।७॥

[ये विद्वांसो वातो मनो वा यथा सप्तविंशतिर्गन्धर्वाः [ते] अस्मिन् जगत्यग्रेऽश्वम-युञ्जन्, ते खलु जवमादधुः]

भावार्थः—यान्येकः समष्टिर्वायुः प्राणाऽपानव्यानोदानसमाननागकूर्मकृकलदेवदत्त धनंजया दश, द्वादशं मनस्तत्सहचरितानि श्रोत्रादीनि दशेन्द्रियाणि, पञ्च सूक्ष्म भूतानि च मिलित्वा सप्तविंशतिः पूर्वमीश्वरेणास्मिन् जगति वेगवन्ति निर्मितानि ।

य एतानि यथागुणकर्मस्वभावं विज्ञाय यथायोग्यं कार्य्येषु संप्रयुज्य स्वस्त्रीभिरेव साकं रमन्ते ते ऽखिलमैश्वर्य्यं जनयित्वा राज्यं कर्त्तुमर्हन्ति ॥ ६।७ ॥

भावार्थ—जो-एक समष्टि वायु, प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय, ये दस, बारहवाँ मन, तत्सम्बद्ध श्रोत्र आदि दस इन्द्रियाँ, पाँच सूक्ष्म भूत ये सब मिलकर सत्ताईस हैं जो पहले ईश्वर ने इस जगत् में वेगवान् बनाये हैं ।

जो इन्हें गुण, कर्म, स्वभाव से जानकर यथायोग्य कार्यों में प्रयोग करके अपनी स्त्री के साथ ही रमण करते हैं वे सकल ऐश्वर्य को उत्पन्न करके राज्य कर सकते हैं ॥ ६।७॥

भा० पदार्थः—वातः=समष्टिर्वायुः ।

भाष्यसार—मनुष्य कैसे वेगवान् बनें—ईश्वर ने इस जगत् में एक समष्टि वायु, दस प्राण, एक मन, मन से सम्बद्ध श्रोत्र आदि दस इन्द्रियाँ, पाँच सूक्ष्म भूत ये सत्ताईस पदार्थ वेगवान् रचे हैं, जो गन्धर्व कहलाते हैं। जो इनके गुण, कर्म, स्वभाव को जानकर यथायोग्य इनका प्रयोग करते हैं, तथा केवल अपनी स्त्री के साथ ही रमण करते हैं वे वेगवान (बलवान्) बन सकते हैं। सकल ऐश्वर्य को उत्पन्न करके राज्य कर सकते हैं । सेनापति बन सकते हैं ॥

बृहस्पतिः । **प्रजापतिः**=राजा । भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

तं राजानं विद्वांसः किंकिमुपदिशेयुरित्याह ॥

उस राजा को विद्वान् लोग क्या-क्या उपदेश करें ॥

वातंरथ्ंहा भव वाजिन युज्यमांन् ऽ इन्द्रंस्येव् दक्षिणः श्रियैधि ।
युञ्जन्तुं त्वा मुरुतों विश्ववेंदस् ऽ आ तें त्वष्टां पत्सु जवं दंधातु ॥ ८ ॥

पदार्थः—(**वातरंहाः**) वायुवद्रंहो=वेगो यस्य सः (**भव**) (**वाजिन्**) शास्त्रोक्त क्रियाकुशलता-बोधयुक्त (**युज्यमानः**) समाहितः सन् (**इन्द्रस्येव**) यथा परमैश्वर्य्ययुक्तस्य राज्ञः (**दक्षिणः**) दक्षः=प्रशस्तं बलं गतिर्विद्यते यस्य तस्य (**श्रिया**) शोभायुक्तया राज्यलक्ष्म्या देदीप्यमानया राज्ञ्या वा (**एधि**) वृद्धो भव (**युञ्जन्तु**) प्रेरताम् (**त्वा**) त्वाम् (**मरुतः**) विद्वांसो मनुष्याः (**विश्ववेदसः**) सकलविद्यावेत्तारः (**आ**) (**ते**) तव (**त्वष्टा**) वेगादिगुणविद्यावित् (**पत्सु**) पादेषु (**जवम्**) वेगम् (**दधातु**) ॥ अयं मन्त्रः शत० ५ । १ । ४ । ६ व्याख्यातः ॥ ८ ॥

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की शत० (५ । १ । ४ । ६) में की गई है ॥ ६ । ८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **वाजिन्**! शास्त्रोक्तक्रियाकुशलताबोधयुक्त । **यं त्वा** त्वां **विश्ववेदसः** सकलविद्यावेत्तारः **मरुतः** विद्वांसो मनुष्याः **राज्य-शिल्पकार्य्येषु युञ्जन्तु** प्रेरताम्, **त्वष्टा** वेगादिगुण-विद्यावित् **ते=तव पत्सु** पादेषु **जवं** वेगम् **आदधातु**, **स त्वं वातरंहाः** वायुवद्रंहः=वेगो यस्य सः **भव**। **युज्यमानः** समाहितः सन् **त्वं दक्षिणः** दक्षः= प्रशस्तं बलं, गतिर्विद्यते यस्यतस्य **इन्द्रस्य** यथा परमैश्वर्य्ययुक्तस्य राज्ञः **इव श्रिया** शोभायुक्तया राज्यलक्ष्म्या देदीप्यमानया राज्ञ्या या **सहैधि** वृद्धो भव ॥ ६ । ८ ॥

भाषार्थ—हे (**वाजिन्**) शास्त्रोक्त कर्म-कुशलता को जानने वाले पुरुष ! जिस (**त्वा**) तुझको (**विश्ववेदसः**) सकल विद्याओं के वेत्ता (**मरुतः**) विद्वान् मनुष्य राज्य के शिल्प कार्यों में (युञ्जन्तु) प्रेरित करें, और (**त्वष्टा**) वेग आदि गुणों की विद्या को जानने वाला विद्वान् (**ते**) आपके (**पत्सु**) चरणों में (**जवम्**) वेग को (**आदधातु**) स्थापित करे, सो आप (**वातरंहाः**) वायु के समान वेगवान्(**भव**)बनो । (**युज्यमानः**) समाधियुक्त होकर आप (**दक्षिणः**) प्रशस्त बल एवं गति वाले बनकर (**इन्द्रस्य**) परम ऐश्वर्य से युक्त राजा के समान (**श्रिया**) शोभायुक्त राज्यलक्ष्मी अथवा देदीप्यमान रानी के साथ (**एधि**) वृद्धि को प्राप्त करें ॥ ६ । ८ ॥

[हे वाजिन् !···**त्वा विश्ववेदसो मरुतो राज्यशिल्पकार्येषु युञ्जन्ति, त्वष्टा ते=तव पत्सु जवमादधतु, युज्यमानस्त्वं···श्रिया सहैधि**]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः ॥ हे राजस्त्री-पुरुषाः ! यूयं निरभिमानिनो निर्मत्सरा भूत्वा, विद्वत्संगेन राज्यधर्मं पालयित्वा, विमानादियानेषु स्थित्वा, ऽभीष्टदेशेषु गत्वा, नित्यं जितेन्द्रियाः सन्तः प्रजाः सततं प्रसाद्य, श्रीमन्तो भवतः ॥ ६ । ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है ॥ हे राजा सम्बन्धी स्त्री-पुरुषो ! तुम लोग निरभिमानी, ईर्ष्या-द्वेष से रहित होकर, विद्वानों के संग से राज्यधर्म का पालन करके, विमान अदि यानों में बैठकर, अभीष्ट देशों में जाकर, नित्य जितेन्द्रिय बन, प्रजा को सदा प्रसन्न करके, श्रीमान् (**धनवान्**) बनो ॥ ६ । ८ ॥

भाष्यसार—**राजा को विद्वान् क्या-क्या उपदेश करें**—हे राजन् ! तथा राजा से सम्बन्धित स्त्री पुरुषो ! तुम लोग निरभिमानी बनो, ईर्ष्या द्वेष से दूर रहो, सकल विद्याओं के वेत्ता विद्वानों के संग से राज्य के कर्त्तव्यों का पालन करो, शिल्पविद्या को बढ़ा कर विमान आदि यानों की रचना करो, वेग आदि गुणों की विद्या के ज्ञाता विद्वान् से उक्त विद्या ग्रहण करके अपने पैरों में वेग को

धारण करो अर्थात् विमान आदि यानों में बैठ कर अभीष्ट देश में गमन करो, वायु के समान वेगवान् बनो, समाहित अर्थात् जितेन्द्रिय होकर प्रशस्त बल वाले बनो और प्रजा को सदा प्रसन्न रखो। परम ऐश्वर्य से युक्त होकर सुन्दर राज्यलक्ष्मी से सदा देदीप्यमान रहो, अपनी रानी के सहित वृद्धि को प्राप्त करो।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि राजा लोग वायु के समान वेगवान् हों ॥ ६ । ८ ॥

बृहस्पतिः । **वीरः=बलवान् राजा** ॥ धृतिः । ऋषभः ॥

पुनः स राजा कीदृशो भवेदित्याह ॥

फिर वह राजा कैसा होवे, यह उपदेश किया है ॥

जवो यस्ते वाजिन्निहितो गुहा यः श्येने परीत्तो ऽ अचरच्च वाते ।
तेन नो वाजिन बलवान् बलेन वाजजिच्च भव समने च पारयिष्णुः ।
वाजिनो वाजजितो वाजꣳ सरिष्यन्तो बृहस्पतेर्भागमवजिघ्रत ॥ ९ ॥

पदार्थः—(**जवः**) वेगः (**यः**) (**ते**) तव (**वाजिन्**) प्रशस्तशास्त्रयोगाभ्यासकृत्यसहित (**निहितः**) स्थितः (**गुहा**) गुहायां=बुद्धौ (**यः**) वेगः (**श्येने**) पक्षिणीव (**परीत्तः**) सर्वतो दत्तः (**अचरत्**) चरति (**च**) (**वाते**) वायाविव (**तेन**) (**नः**) अस्माकम् (**वाजिन्**) वेगवन् (**बलवान्**) बहुबलयुक्तः (**बलेन**) सैन्येन पराक्रमेण वा (**वाजजित्**) संग्रामं विजयमानः (**च**) (**भव**) (**समने**) संग्रामे (**च**) (**पारयिष्णुः**) दुःखात्पारयिता (**वाजिनः**) प्रशस्तवेगयुक्ताः (**वाजजितः**) संग्रामं जयन्तः (**वाजम्**) बोधमन्नादिकं वा (**सरिष्यन्तः**) प्राप्स्यन्तः (**बृहस्पतेः**) महतां वीराणां पालयितुः सेनाध्यक्षस्य (**भागम्**) सेवनम् (**अव**) अधोऽर्थे (**जिघ्रत**) सुगन्धान् बोधान् वा गृह्णीत ॥ **अयं मन्त्रः शत० ५ । १ । ४ । १० व्याख्यातः ॥ ९ ॥**

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । १ । ४ । १०) में की गई है ॥ ६ । ६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **वाजिन्** ! वेगवन सेनाध्यक्ष राजन् ! **ते**=तव **यो जवः** वेगः **गुहा** गुहायां=बुद्धौ **निहितः** स्थितः **यः श्येने** पक्षिणि **इव परीत्तः** सर्वतो दत्तः **वाते** वायौ **इवाचरत्** चरति **च तेन नः** अस्माकं **बलेन** सैन्येन पराक्रमेण वा **बलवान्** बहुबलयुक्तः **भव** ।

हे वाजिन् ! वेगवन् ! **तेन च समने** सङ्ग्रामे **पारयिष्णुः** दुःखात् पारयिता **वाजजित्** संग्रामं विजयमानः **च भव** ।

हे वाजिनः=**योद्धारः** प्रशस्तवेगयुक्ताः ! यूयं

भावार्थः—हे (**वाजिन्**!) वेगवान् सेनाध्यक्ष राजन् ! (**ते**) आपका (**यः**) जो (**जवः**) वेग (**गुहायाम्**) बुद्धि में (**निहितः**) स्थित है, और जो (**श्येने**) बाज पक्षी के समान (**परीत्तः**) सब ओर से भयप्रदान करता है, और जो (**वाते**) वायु के समान (**अचरत्**) विचरण करता है इसलिये (**नः**) हमारे (**बलेन**) सेना वा पराक्रम से (**बलवान्**) अत्यन्त बलवान् बनो।

हे (**वाजिन्**!) वेगवान् राजन् ! अपने वेग और बल से (**समने**) संग्राम में (**पारयिष्णुः**) दुःख से पार करने वाले और (**वाजजित्**) संग्राम को जीतने वाले (**भव**) बनो ।

हे (**वाजिनः**!) प्रशस्त वेग से युक्त योद्धाओ !

बृहस्पतेः महतां वीराणां पालयितुः सेनाध्यक्षस्य [**भागम्**]=**सेवनं प्राप्य वाजं** बोधमन्नादिकं वा **सरिष्यन्तः** प्राप्स्यन्तः **सन्तः** [**वाजजितः**] संग्रामं जयन्तः **भवत । सुगन्धानवजिघ्रत** सुगन्धान् बोधान् वा गृह्णीत ॥ ६ । ६ ॥

तुम (**बृहस्पतेः**) महान् वीरों के पालक सेनाध्यक्ष की [**भागम्**] सेवा को प्राप्त करके (**वाजम्**) बोध वा अन्न आदि को (**सरिष्यन्तः**) प्राप्त करते हुये [**वाजजितः**] संग्रामो को जीतने वाले बनो और (**अवजिघ्रत**) नाना सुगन्ध वा बोध को ग्रहण करो ॥ ६ । ६ ॥

[हे वाजिन्=सेनाध्यक्ष राजन् ! ते=तव यो जवः'''श्येने इव परीत्तो वाते इवाचरच्च ते नो बलेन बलवान् भव]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ राजा पूर्णं शरीरात्मबलं संप्राप्य श्येनवद्वायुवच्छत्रुविजये यशस्वी भूत्वा स्वामात्यान् सेनास्थान् सर्वान् भृत्याँश्च सुशिक्षितान् बलसुखयुक्तान् धार्मिकान् सततं रक्षेत्,

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ राजा पूर्ण शरीर बल और आत्मबल को प्राप्त करके बाज पक्षी और वायु के समान शत्रुओं के विजय में यशस्वी होकर अपने मन्त्रियों तथा सब सुशिक्षित बल और सुख से युक्त धार्मिक सैनिकों की सदा रक्षा करे ।

[हे वाजिन् !'''वाजजिच्च भव, हे वाजिनः ! यूयं बृहस्पतेः [भागं]=सेवनं प्राप्य'''[वाजजितः] भवत]

सर्वे राजप्रजाजनाः शत्रुन् विजित्य परस्परं प्रीणन्तु ॥ ६ । ६ ॥

सब राजपुरुष तथा प्रजाजन शत्रुओं को जीतकर परस्पर प्रेम से रहें ॥ ६ । ६ ॥

भाष्यसार—१. **राजा कैसा हो**—सेनाध्यक्ष राजा शरीरबल और आत्मबल से परिपूर्ण हो । उसका जो छुपा हुआ बल है तथा जो बाज-पक्षी एवं वायु के समान प्रकट बल है, उससे राजा शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके यशस्वी बने । अपने सैनिकों तथा सेवक-जनों को भी राजा बलवान् बनावे और उन्हें सुखी रखे । सैनिकों और सेवकों को बलवान् बनाकर राजा स्वयं अत्यन्त बलवान् बनता है ।

बलवान् राजा संग्राम में दुःख से पार करने वाला तथा संग्राम का विजेता होता है । महान् वीरों के पालक सेनाध्यक्ष राजा की प्रशस्त बल वाले योद्धा लोग सेवा करें, उसकी आज्ञा का पालन करें । संग्राम को जीत कर राजा से उत्तम सुगन्धित अन्न आदि पदार्थों एवं विज्ञान (बोध) को प्राप्त करें । परस्पर प्रीति से रहे ॥

२. **अलङ्कार**—मन्त्र में उपमावाचक शब्द लुप्त है, अतः वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है । उपमा यह कि राजा बाज-पक्षी और वायु के समान वेगवान् (बलवान्) हो ॥ ६ । ६ ॥

बृहस्पतिः । **इन्द्राबृहस्पती**=**सम्राड्जगदीश्वरश्च** । विराडुत्कृतिः । षड्जः ॥

मनुष्यैर्विदुषामेवाऽनुकरणं कार्य्यं न मूढानामित्युपदिश्यते ॥

मनुष्य लोगों को उचित है कि विद्वानों का अनुकरण करें मूढ़ों का नहीं, यह उपदेश किया है ॥

देवस्याहꣳ सवितुः सवे सत्यसवसो बृहस्पतेरुत्तमं नाकꣳरुहेयम् ।
देवस्याहꣳ सवितुः सवे सत्यसवस इन्द्रस्योत्तमं नाकꣳरुहेयम् ।
देवस्याहꣳ सवितुः सवे सत्यप्रसवसो बृहस्पतेरुत्तमं नाकमरुहम् ।
देवस्याहꣳ सवितुः सवे सत्यप्रसवस ऽ इन्द्रस्योत्तमं नाकमरुहम् ॥ १० ॥

पदार्थः—(**देवस्य**) सर्वतः प्रकाशमानस्य (**अहम्**) सभाध्यक्षो राजा (**सवितुः**) सकलजगत्-प्रसवितुः परमेश्वरस्य (**सवे**) प्रसूते जगति (**सत्यसवसः**) सत्यं सव=ऐश्वर्यं जगतः कारणं कार्यं च यस्य तस्य (**बृहस्पतेः**) बृहतां=प्रकृत्यादीनां पालकस्य (**उत्तमम्**) सर्वथोत्कृष्टम् (**नाकम्**) अविद्यमानदुःखं सर्वसुखयुक्तं तत्स्वरूपं मोक्षपदम् (**रुहेयम्**) (**देवस्य**) सर्वसुखप्रदातुः (**अहम्**) परोपकारी (**सवितुः**) सकलैश्वर्यप्रसवितुः (**सवे**) ऐश्वर्य्ये (**सत्यसवसः**) सत्यन्याययुक्तस्य (**इन्द्रस्य**) परमैश्वर्य्यसहितस्य सम्राजः (**उत्तमम्**) प्रशस्तम् (**नाकम्**) अविद्यमान दुःखं भोगम् (**रुहेयम्**) (**देवस्य**) अखिलविद्याशुभगुणकर्म्मस्वभावद्योतकस्य (**अहम्**) विद्यामभीप्सुः (**सवितुः**) समग्रविद्याबोधप्रसवितुः (**सवे**) विद्याप्रचारैश्वर्ये (**सत्यप्रसवसः**) सत्योऽविनाशी प्रसवः=प्रकटो बोधो यस्मात्तस्य (**बृहस्पतेः**) बृहत्या वेदवाण्याः पालकस्य (**उत्तमम्**) (**नाकम्**) सर्वदुःख-प्रणाशकमानन्दम् (**अरुहम्**) आरूढोऽस्मि (**देवस्य**) धनुर्वेदादियुद्धविद्याप्रापकस्य (**अहम्**) योद्धा (**सवितुः**) शत्रुविजयप्रसवितुः (**सवे**) प्रेरणे (**सत्यप्रसवसः**) सत्यानां न्यायविजयादीनां प्रसवो यस्मात् तस्य (**इन्द्रस्य**) दुष्टशत्रुविदारकस्य (**उत्तमम्**) विजयाख्यम् (**नाकम्**) सर्वसुखप्रदम् (**अरुहम्**) आरूढोऽस्मि ॥ **अयं मन्त्रः शत० ५ । १ । ५ । २-५ व्याख्यातः ॥ १० ॥**

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । १ । ५ । २-५) में गई है ॥ ९ । १० ॥

सपदार्थान्वयः—हे **प्रजाराजजनाः** ! **यथाऽहं** सभाध्यक्षो राजा **सत्यसवसः** सत्यं सवः=ऐश्वर्यं जगतः कारणं कार्यं **च** यस्य तस्य **देवस्य** सर्वतः प्रकाशमानस्य **बृहस्पतेः** बृहतां=प्रकृत्यादीनां पालकस्य **सवितुः** सकलजगत्प्रसवितुः **जगदीश्वरस्य सवे** प्रसूते जगति **उत्तमं** सर्वथोत्कृष्टं **नाकम्** अविद्यमानदुःखं सर्वसुखयुक्तं तत्स्वरूपं मोक्षपदं **रुहेयम्** ।

हे **राजाऽमात्यपुरुषाः** ! **यथाहं** परोपकारी **सत्यसवसः** सत्यन्याययुक्तस्य **देवस्य** सर्वसुखप्रदातुः **सवितुः** सकलैश्वर्यप्रसवितुः **इन्द्रस्य** परमैश्वर्यसहितस्य **सम्राजः सवे** ऐश्वर्ये **उत्तमं** प्रशस्तं **नाकम्** अविद्यमानदुःखं भोगं **रुहेयम्**—

हे **अध्येत्रध्यापका विद्याप्रिया जनाः** ! **यथाऽहं** विद्यामभीप्सुः **सत्यप्रसवसः** सत्यः=अविनाशी प्रसवः=प्रकटो बोधो यस्मात्तस्य **सवितुः** समग्रविद्याबोधप्रसवितुः **देवस्य** अखिलविद्याशुभगुण-कर्म्मस्वभावद्योतकस्य **बृहस्पतेः** बृहत्याः=वेदवाण्याः पालकस्य **सवे** विद्या प्रचारैश्वर्ये **उत्तमं नाकं** सर्वदुःखप्रणाशकमानन्दम् **अरुहम्** आरूढोऽस्मि—

भाषार्थ—हे प्रजा जन और राजपुरुषो ! जैसे (**अहम्**) मैं सभाध्यक्ष राजा (**सत्यसवसः**) जगत् के कारण-कार्य रूप सत्य ऐश्वर्य वाले (**देवस्य**) सर्वत्र प्रकाशमान (**बृहस्पतेः**) बृहत्=प्रकृति आदि के पालक (**सवितुः**) सकल जगत् के उत्पादक जगदीश्वर के (**सवे**) उत्पन्न किये इस जगत् में (**उत्तमम्**) सर्वथा उत्कृष्ट (**नाकम्**) दुःख रहित सब सुखों से युक्त ईश्वरस्वरूप मोक्षपद को (**रुहेयम्**) प्राप्त करता हूँ—

हे राजा के मन्त्री लोगो ! जैसे (**अहम्**) मैं परोपकारी पुरुष (**सत्यसवसः**) सत्य और न्याय से युक्त (**देवस्य**) सब सुखों के दाता (**सवितुः**) सकल ऐश्वर्य को उत्पन्न करने वाले (**इन्द्रस्य**) परम ऐश्वर्यवान् सम्राट् के (**सवे**) ऐश्वर्य में (**उत्तमम्**) प्रशस्त (**नाकम्**) दुःख रहित भोग को (**रुहेयम्**) प्राप्त करता हूँ—

हे विद्या से प्रेम करने वाले छात्र और अध्यापक लोगो ! जैसे (**अहम्**) मैं विद्याभिलाषी (**सत्य-प्रसवसः**) सत्य=अविनाशी बोध को उत्पन्न करने वाले (**सवितुः**) समग्र विद्याबोध के उत्पादक (**देवस्य**) सब विद्या आदि शुभ गुण कर्म स्वभावों को प्रकाशित करने वाले (**बृहस्पतेः**) वेदवाणी के पालक आचार्य के (**सवे**) विद्याप्रचार रूप ऐश्वर्य

में (**उत्तमम्**) प्रशस्त (**नाकम्**) सब दुःखों के विनाशक आनन्द को (**अरुहन्**) प्राप्त कर चुका हूँ—

हे विजयाभिकांक्षिणो योद्धारो वीराः! यथाऽहं योद्धा **सत्यप्रसवसः** सत्यानां=न्यायविजयादीनां प्रसवो यस्मात् तस्य **देवस्य** धनुर्वेदादियुद्धविद्याप्रापकस्य **सवितुः** शत्रुविजयप्रसवितुः **इन्द्रस्य** दुष्टशत्रुविदारकस्य **सवे** प्रेरणे **उत्तमं** विजयाख्यं **नाकं** सर्वसुखप्रदम् **अरुहं** आरूढोऽस्मि **तथा यूयमप्यारोहत** ॥ ९ । १० ॥

हे विजय की कामना करने वाले वीर योद्धाओ! जैसे (**अहम्**) मैं योद्धा (**सत्यप्रसवसः**) सत्य=न्याय, विजय आदि को प्रकाशित करने वाले (**देवस्य**) धनुर्वेद आदि युद्ध विद्या को प्राप्त कराने वाले (**सवितुः**) शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाले (**इन्द्रस्य**) दुष्ट शत्रुओं का विदारण करने वाले सेनाध्यक्ष की (**सवे**) प्रेरणा में (**उत्तमम्**) श्रेष्ठ (**नाकम्**) सब सुखों को देने वाले विजय को (**अरुहम्**) प्राप्त कर चुका हूँ, वैसे तुम भी प्राप्त करो ॥ ९ । १० ॥

[हे प्रजाराजजनाः ! यथाऽहं······सवितुर्जगदीश्वरस्य सव उत्तमं नाकं रुहेयं······तथा यूयमप्यारोहत]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ राजप्रजाजनैः परस्परमविरोधनेश्वरचक्रवर्त्तिराज्यसमग्रविद्याः सम्भज्य सर्वाण्युत्तमानि सुखानि प्राप्तव्यानि, प्रापयितव्यानि च ॥ ९ । १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है॥ राजपुरुष और प्रजाजन परस्पर अविरोध से ईश्वर, चक्रवर्त्ती राज्य और सकल विद्याओं का संसेवन करके सब उत्तम सुखों को प्राप्त करें और करावें ॥ ९ । १० ॥

भा० पदार्थः—नाकम्=ईश्वर चक्रवर्त्तिराज्यसमग्रविद्याः, सर्वाण्युत्तमानि सुखानि ॥

भाष्यसार—**१. मनुष्य विद्वानों का ही अनुकरण करें; मूढ़ों का नहीं**—जगदीश्वर सच्चे ऐश्वर्य वाला है अर्थात् उसके रचे जगत् के कारण और कार्य सत्य हैं, वह सर्वत्र प्रकाशमान है, वह प्रकृति आदि का पालक है, उस जगदीश्वर के उत्पन्न किये इस संसार में सभाध्यक्ष विद्वान् राजा सर्वथा उत्कृष्ट, दुःखरहित, सब सुखों से युक्त मोक्ष को प्राप्त करे। राजपुरुष तथा प्रजाजन सम्राट् का अनुकरण करें।

सम्राट् सत्य और न्याय से युक्त हो, सब सुखों का दाता हो, सकल ऐश्वर्य को उत्पन्न करने वाला हो, परम ऐश्वर्य से युक्त हो। उसके ऐश्वर्यसम्पन्न राज्य में परोपकारी विद्वान् उत्तम दुःखरहित भोगों को प्राप्त करता है। राजपुरुष और मन्त्रिगण उक्त परोपकारी विद्वान् का अनुकरण करें।

बृहस्पति=वेदवाणी के पालक विद्वान् का ज्ञान सत्य और प्रत्यक्ष होता है, वह सकल विद्याओं के बोध का उत्पादक है, सब विद्या तथा शुभ गुण कर्म, स्वभाव का प्रकाशक है। विद्या का जिज्ञासु उस बृहस्पति विद्वान् के विद्याप्रचार रूप ऐश्वर्य का सेवन करके उत्तम, सब दुःखों के विनाशक आनन्द को प्राप्त करता है। विद्या से प्रेम करने वाले छात्र और अध्यापक बृहस्पति और उक्त विद्या-जिज्ञासु का अनुसरण करें।

इन्द्र=दुष्ट शत्रुओं का विदारण करने वाला सेनापति सत्य अर्थात् न्याय और विजय आदि का उत्पादक तथा धनुर्वेदादि में प्रतिपादित युद्धविद्या का प्रापक, शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाला होता है। सब सैनिक उसकी प्रेरणा (**आज्ञा**) में रह कर सब सुखों को प्रदान करने वाले विजय को प्राप्त करें। विजय की आकांक्षा करने वाले योद्धा उनका अनुकरण करें।

२. अलङ्कार—मन्त्र में उपमावाचक शब्द लुप्त है, अतः वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि प्रजाजन और राजपुरुष सभाध्यक्ष राजा आदि के समान आचरण करें ॥ ६। १०॥

बृहस्पतिः। **इन्द्राबृहस्पती**=राजा, उपदेशकश्च ॥ जगती निषादः ॥

अथोपदेष्टविधिमाह ॥

अब उपदेष्टाओं की विधि का उपदेश किया है ॥

बृह॑स्पते॒ वाजं॑ जय॒ बृह॒स्पत॑ये॒ वाचं॑ वदत॒ बृह॒स्पतिं॒ वाजं॑ जापयत ।
इन्द्र॒ वाजं॑ ज॒येन्द्रा॑य॒ वाचं॑ वद॒तेन्द्रं॒ वाजं॑ जापयत ॥ ११ ॥

पदार्थः—(**बृहस्पते**) सकलविद्याप्रचारकोपदेशक (**वाजम्**) विज्ञानं संग्रामं वा (**जय**) (**बृहस्पतये**) अध्ययनाध्यापनाभ्यां विद्याप्रचाररक्षकाय (**वाचम्**) वेदसुशिक्षाजनितां वाणीम् (**वदत**) अध्यापयतोपदिशत वा (**बृहस्पतिम्**) सम्राजमनूचानमध्यापकं वा (**वाजम्**) विद्याबोधं युद्धं वा (**जापयत**) उत्कर्षेण बोधयत (**इन्द्र**) विद्यैश्वर्यप्रकाशक शत्रुविदारक वा (**वाजम्**) परमैश्वर्य्यं शत्रुविजयाख्यं युद्धं वा (**जय**) उत्कर्ष (**इन्द्राय**) परमैश्वर्यप्रापकाय (**वाचम्**) राजधर्मप्रचारिणीं वाणीम् (**वदत**) (**इन्द्राम्**) (**वाजम्**) (**जापयत**) उत्कृष्टतां प्रापयत ॥ **अयं मन्त्रः शत० ५। १। ५। ८-६ व्याख्यातः ॥ ११ ॥**

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५। १। ५। ८-६) में की गई है ॥ ६। ११॥

[उपदेशका योद्धारश्च]

सपदार्थान्वयः—हे **बृहस्पते**!=**सर्व-विद्याध्यापकोपदेशक** वा सकलविद्याप्रचारकोपदेशक! त्वं **वाजं** विज्ञानं **जय** उत्कर्ष।

हे **विद्वांसः**! **यूयमस्मै बृहस्पतये** अध्ययनाध्यापनाभ्यां विद्याप्रचाररक्षकाय **वाचं** वेदसुशिक्षाजनितां वाणीं **वदत** अध्यापयतोपदिशत वा **इमं बृहस्पतिम्** अनूचानमध्यापकं **वाजं** विद्याबोधं **जापयत** उत्कर्षेण बोधयत।

हे **इन्द्र**! विद्यैश्वर्यप्रकाशक! त्वं **वाजं** परमैश्वर्यं **जय** उत्कर्ष।

हे **युद्ध विद्याकुशला विद्वांसः**! **यूयमस्मा इन्द्राय** परमैश्वर्यप्रापकाय **वाचं** राजधर्मप्रचारिणीं वाणीं **वदत**, **इममिन्द्रं वाजं जापयत** उत्कृष्टतां प्रापयत ॥ ६। ११॥

भावार्थ—हे (**बृहस्पते**!) सब विद्याओं के अध्यापक वा उपदेशक एवं प्रचारक पुरुष! तू (**वाजम्**) विज्ञान को (**जय**) बढ़ा।

हे विद्वानो! तुम इस (**बृहस्पतये**) अध्ययन-अध्यापन के द्वारा विद्या के प्रचार के रक्षक पुरुष को (**वाचम्**) वेद की सुशिक्षा से युक्त विद्या को (**वदत**) पढ़ाओ वा उपदेश करो, और इस (**बृहस्पतिम्**) अनूचान अध्यापक को (**वाजम्**) विद्या-बोध का (**जापयत**) ऊँचा ज्ञान प्रदान करो।

हे (**इन्द्र**) विद्या-ऐश्वर्य के प्रापक! तू (**वाजम्**) इस परम ऐश्वर्य को (**जय**) बढ़ा।

हे युद्धविद्या में कुशल विद्वानो! तुम इस (**इन्द्राय**) उक्त परम ऐश्वर्य के प्रापक अध्यापक वा उपदेशक को (**वाचम्**) राजधर्म की प्रचारक विद्या का (**वदत**) उपदेश करो, और इस (**इन्द्रम्**) अध्यापक वा उपदेशक को (**वाजं जापयत**) समुन्नत करो।

[राजा]

हे **बृहस्पते**=**सर्वविद्याध्यापक**! सकलविद्याप्रचारक! त्वं **वाजं** संग्रामं **जय** उत्कर्ष।

हे (**बृहस्पते**!) सब विद्याओं के अध्यापक वा प्रचारक राजन्! आप (**वाजम्**) संग्राम को (**जय**) जीतो।

हे **विद्वांसः ! यूयमस्मै बृहस्पतये** अध्ययनाध्यापनाभ्यां विद्याप्रचार रक्षकाय **वाचं** वेदसुशिक्षाजनितां वाणीं **वदत** अध्यापयतोपदिशत वा **इमं बृहस्पतिं** सम्राजं **वाजं** युद्धं **जापयत** उत्कर्षेण बोधयत ।

हे विद्वानो ! तुम इस (**बृहस्पतये**) अध्ययन-अध्यापन के द्वारा विद्याप्रचार के रक्षक राजा के लिये (**वाचम्**) वेद की सुशिक्षा से युक्त वाणी को (**वदत**) पढ़ाओ वा उपदेश करो, और (**इमम्**) इस (**बृहस्पतिम्**) सम्राट् को (**वाजम्**) युद्ध का (**जापयत**) उत्तम बोध कराओ ।

हे **इन्द्र** शत्रुविदारक ! **त्वं वाजं** शत्रुविजयाख्यं युद्धं **जय** उत्कर्ष ।

हे (**इन्द्र**) शत्रुओं का विदारण करने वाले राजन् ! आप (**वाजम्**) शत्रुविजय के लिये युद्ध को (**जय**) बढ़ाओ ।

हे **युद्धविद्याकुशला विद्वांसः ! यूयमस्मा इन्द्राय** परमैश्वर्यप्रापकाय **वाचं** राजधर्मप्रचारिणीं वाणी **वदत, इममिन्द्रं वाजं जापयत** उत्कृष्टतां प्रापयत ॥ ९ । ११ ॥

हे युद्धविद्या में कुशल विद्वानो ! तुम इस (**इन्द्राय**) परम ऐश्वर्य के प्रापक राजा के लिये (**वाचम्**) राजधर्म की प्रचारक विद्या का (**वदत**) उपदेश करो और इस (**इन्द्रम्**) राजा को (**वाजंजापयत**) समुन्नत करो ॥ ९ । ११ ॥

[हे बृहस्पते=**सर्वविद्याध्यापक ! त्वं** वाजं **जय**]

भावार्थः—अत्र श्लेषालङ्कारः ॥ राजा तथा प्रयतेत यथा वेदविद्याप्रचारः शत्रुविजयश्च सुगमः स्यात् ।

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष अलङ्कार है ॥ राजा ऐसा प्रयत्न करे कि जिससे वेदविद्या का प्रचार और शत्रुओं पर विजय सुगम हो ।

[हे बृहस्पते=**सर्वविद्याध्यापकोपदेशक वा त्वं वाजं जयः**]

उपदेशका योद्धारश्चेत्थं प्रयतेरन् यतो राज्ये वेदादिशास्त्राध्ययनाऽध्यापनप्रवृत्तिः स्वराजा विजयालङ्कृतो भवेद्, येन धर्मवृद्धिरधर्महानिश्च सुतिष्ठेत् ॥ ९ । ११ ॥

उपदेशक और योद्धा लोग ऐसा प्रयत्न करें कि जिससे राज्य में वेदादि शास्त्रों के अध्ययन-अध्यापन की प्रवृत्ति वाला अपना राजा विजय से अलङ्कृत हो, जिससे धर्म की वृद्धि और अधर्म की हानि स्थिर हो ॥ ९ । ११ ॥

भाष्यसार—**१. उपदेशक-विधान**—ईश्वर उपदेश करता है कि सकल विद्याओं को पढ़ाने वाले तथा उपदेश करने वाले अध्यापक और उपदेशक हों, जो विज्ञान की वृद्धि करें । विद्वान् लोग बृहस्पति अर्थात् पठन-पाठन से विद्याप्रचार की रक्षा करने वाले पुरुषों को वेद-वाणी का उपदेश करें । बृहस्पति अर्थात् अनूचान विद्वान् को विद्या का बोध करायें । इन्द्र अर्थात् विद्या रूप ऐश्वर्य का प्रकाश करने वाले विद्वान् परम-ऐश्वर्य को बढ़ावें । युद्धविद्या में कुशल विद्वान् लोग इन्द्र अर्थात् परम ऐश्वर्य के प्रापक विद्वान् राजा को राजधर्म का प्रचार करने वाली वेदवाणी का उपदेश करें और इन्द्र को उत्तम रीति से राज-विद्या का बोध करावें ।

सब विद्याओं का प्रचारक राजा संग्राम को जीते । विद्वान् लोग बृहस्पति अर्थात् पठन-पाठन से विद्याप्रचार के रक्षक राजा को वेद-वाणी का उपदेश करें । और इस सम्राट् को युद्धविद्या का उत्तम बोध करायें । इन्द्र अर्थात् शत्रुओं का विदारण करने वाला राजा शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिये युद्ध को बढ़ावे । युद्धविद्या में कुशल विद्वान् लोग इन्द्र अर्थात् परम ऐश्वर्य के प्रापक राजा को राजधर्म की

प्रचारक वाणी का उपदेश करें और इसे राजविद्या को उत्तम रीति से प्राप्त करायें ।।

राजा वेदविद्या प्रचार तथा शत्रुओं को विजय करने के लिये सदा प्रयत्नशील रहे । उपदेशक लोग राज्य में वेदादि शास्त्रों का प्रचार करें तथा योद्धा भी ऐसा यत्न करें, जिससे अपना राजा सदा विजयश्री से अलङ्कृत रहे जिससे राज्य में धर्म की वृद्धि और अधर्म की हानि सदा हो ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में श्लेष-अलङ्कार है । अतः मन्त्र के उपदेशक, योद्धा तथा राजा परक दो अर्थ हैं ।। ९ । ११ ।।

बृहस्पतिः । **इन्द्राबृहस्पती**=परमैश्वर्यवान् वेदशास्त्रपालकश्च ।।
स्वराडतिधृतिः । षड्जः ।।

अथ मनुष्यैः सर्वदा सर्वथा सत्यं वक्तव्यं श्रोतव्यं चेत्याह ।।

मनुष्यों को उचित है कि वे सदा सब प्रकार से सत्य ही बोलें, यह उपदेश किया है ।।

एषा वः सा सत्या संवागभूद्यया बृहस्पतिं वाजमजीजपताजीजपत बृहस्पतिं वाजं वनस्पतयो विमुच्यध्वम् । एषा वः सा सत्या संवागभूद्ययेन्द्रं वाजमजीजपताजीजपतेन्द्रं वाजं वनस्पतयो विमुच्यध्वम् ।। १२ ।।

पदार्थः—(**एषा**) उक्ता वक्ष्यमाणा च (**वः**) युष्माकम् (**सा**) (**सत्या**) यथार्थोक्ता (**संवाक्**) राजनीतिनिष्ठा सम्यग्वाणी (**अभूत्**) भवतु (**यया**) (**बृहस्पतिम्**) वेदशास्त्रपालकम् (**वाजम्**) वेदशास्त्र-बोधम् (**अजीजपत**) उत्कर्षयत (**अजीजपत**) (**बृहस्पतिम्**) बृहतो राज्यस्य पालकम् (**वाजम्**) संग्रामम् (**वनस्पतयः**) वनस्य=किरणसमूहस्येव न्यायस्य पालकाः । वनमिति रश्मिनामसु पठितम् ।। निघं० १ । ५ ।। (**वि**) (**मुच्यध्वम्**) मुक्ता भवत । विकरणव्यत्ययेन श्यन् (**एषा**) पूर्वापरप्रतिपादिता (**वः**) युष्माकम् (**सा**) (**सत्या**) सत्यभाषणयुक्ता (**संवाक्**) विनयपुरुषार्थयोः सम्यक् प्रकाशिनी वाणी (**अभूत्**) भवेत (**यया**) (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्यवते पुरुषाय (**वाजम्**) युद्धम् (**अजीजपत**) जापयते (**अजीजपत**) सम्यक् प्रापयत (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्ययुक्तमुत्तमश्रीप्रापकमुद्योगम् (**वाजम्**) वेगयुक्तम् (**वनस्पतयः**) वनानां=जङ्गलानां पालकाः (**वि**) (**मुच्यध्वम्**) ।। अयं मन्त्रः शत० ५ । १ । ५ । ११-१२ व्याख्यातः ।। १२ ।।

प्रमाणार्थ—(**वनस्पतयः**) 'वन' शब्द निघं० (१ । ५) में रश्मि-नामों में पढ़ा है । (**विमुच्यध्वम्**) यहां विकरण-व्यत्यय से ('**श' को**) 'श्यन्' हो गया है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । १ । ५ । ११-१२) में की गई है ।। ९ । १२ ।।

सपदार्थान्वयः—हे **वनस्पतयः** ! वनस्य=किरणसमूहस्येव न्यायस्य पालकाः ! **यूयं यया बृहस्पतिं** वेदशास्त्रपालकं **वाजं** वेद-शास्त्र-बोधम् **अजीजपत** उत्कर्षयत, **बृहस्पतिं** बृहतो राज्यस्य पालकं [**वाजं**] संग्रामम् **अजीजपत**, [**विमुच्यध्वं**] मुक्ता भवत, **सैषा** उक्ता वक्ष्यमाणा च **वः युष्माकं संवाक्** राजनीतिनिष्ठा सम्यग्वाणी **सत्या** यथार्थोक्ता **अभूत्** भवतु ।

भाषार्थ—हे (**वनस्पतयः**) किरणों के समान न्याय के पालक राजा जनो ! तुम लोग (**यया**) जिस वाणी से (**बृहस्पतिम्**) वेद-शास्त्र के पालक को (**वाजम्**) वेदशास्त्र के ज्ञान का (**अजीजपत**) उपदेश करते हो, (**बृहस्पतिम्**) बृहद् राज्य के पालक [**वाजम्**] संग्राम का (**अजीजपत**) उपदेश करते हो और [**विमुच्यध्वम्**] दुःखों से मुक्त रहते हो, वह (**एषा**) उक्त और वक्ष्यमाण (**वः**)

हे **वनस्पतयः** ! वनानां=जङ्गलानां पालकाः ! **यूयं यया इन्द्रं** परमैश्वर्य्यवते पुरुषाय **वाजं** युद्धम् **अजीजपत** जापयत, इन्द्रं परमैश्वर्य्ययुक्तमुत्तमश्रीप्रापकमुद्योगं [वाजं] वेगयुक्तं **अजीजपत्** सम्यक् प्रापयत, [विमुच्यध्वम्] **सैषा** पूर्वाऽपरप्रतिपादिता **वः** युष्माकं **संवाक्** विनयपुरुषार्थयोः सम्यक् प्रकाशिनी वाणीः **सत्या** सत्यभाषणयुक्ता **अभूत्** भवेत् ॥ ९ । १२ ॥

तुम्हारी (**संवाक्**) राजनीति से युक्त उत्तम वाणी (**सत्या**) सत्य (**अभूत्**) हो।

हे (**वनस्पतयः**) जङ्गलों की रक्षा करने वाले राजाओ ! तुम लोग (**यया**) जिस वाणी से (**इन्द्रम्**) परम ऐश्वर्यवान् पुरुष को (**वाजम्**) युद्ध का (**अजीजपत**) उपदेश करते हो, और (**इन्द्रम्**) परम ऐश्वर्य से युक्त उत्तम लक्ष्मी के प्रापक उद्योग को एवं [**वाजम्**] युद्ध को (**अजीजपत**) प्राप्त कराते हो और [**विमुच्यध्वम्**] दुःखों से मुक्त करते हो वह (**एषाः**) यह पूर्व-अपर प्रतिपादित (**वः**) तुम्हारी (**संवाक्**) विनय और पुरुषार्थ को उत्तमता से प्रकाशित करने वाली वाणी (**सत्या**) सत्यभाषण युक्त (**अभूत्**) हो ॥ ९ । १२ ॥

[हे वनस्पतयः !···सैषा वः संवाक् सत्याऽभूत्]

भावार्थः—नैव कदाचिदपि राजा राजामात्यभृत्याः प्रजाजनाश्च स्वकीयां प्रतिज्ञां वाचं चासत्यां कुर्य्युः । यावतीं ब्रूयुस्तावतीं तथ्यामेव कुर्य्युः । यस्य वाणी सर्वदा सत्याऽस्ति स एव सम्राट् भवितुमर्हति, यावदेवं न भवति तावद्राजप्रजाजना विश्वसिताः सुखस्योत्कर्षका श्च भवितुं नार्हन्ति ॥ ९ । १२ ॥

भावार्थ—राजा तथा राजा के मन्त्री, भृत्य और प्रजाजन अपनी प्रतिज्ञा तथा वाणी को कभी मिथ्या न करें । जितनी वाणी बोलें उतनी को सत्य ही करें । जिसकी वाणी सदा सत्य होती है वही सम्राट् हो सकता है, जब तक ऐसा नहीं होता तब तक राजा तथा प्रजा विश्वास को प्राप्त करके सुख की वृद्धि करने वाले नहीं हो सकते ॥ ९ । १२ ॥

भाष्यसार—**सत्यभाषण**—सूर्य की किरणों के समान न्याय का पालन करने वाले राजा लोग जिस वाणी से बृहस्पति अर्थात् वेद-शास्त्रों के पालक विद्वान् को समुन्नत करते हैं, एवं वेद-शास्त्र के ज्ञान को बढ़ाते हैं , विशाल राज्य के पालक सम्राट् को युद्ध का उपदेश करते हैं तथा जिससे दुःखों से मुक्त होते हैं उनकी वह राजनीति-निष्णात-वाणी सदा सत्य हो ।

वन आदि के पालक राजा लोग जिस वाणी से इन्द्र अर्थात् परम ऐश्वर्यवान् पुरुष को युद्ध का उपदेश करते हैं, परम ऐश्वर्य रूप उत्तम श्री (**लक्ष्मी**) को प्राप्त कराने वाले उद्योग को जिस वाणी से शीघ्र प्राप्त कराते हैं तथा दुखों से मुक्त होते हैं वह विनय और पुरुषार्थ को प्रकाशित करने वाली वाणी सदा सत्यभाषण-युक्त हो ।

राजा, राजा के मन्त्री, भृत्य और प्रजा कभी भी असत्य भाषण न करें, परस्पर असत्य प्रतिज्ञा न करें । जितनी वाणी बोलें उतनी सत्य ही बोलें तथा वैसा ही आचरण करें । जिसकी वाणी सत्य भाषणयुक्त है, वही सम्राट् बन सकता है । सत्यभाषण के विना राजा और प्रजा का परस्पर विश्वास नहीं हो सकता तथा सुख की वृद्धि कदापि नहीं हो सकती ॥ ९ । १२ ॥

बृहस्पतिः । **सविता**=ईश्वरः । जगती । निषादः ।

राजपुरुषैर्धार्मिकजनानामनुकरणं कर्त्तव्यं; नेतरेषामित्याह ॥

राजपुरुष धर्म्मात्मा पुरुषों का अनुकरण करें अन्यों का नहीं, यह उपदेश किया है ॥

देवस्याहꣳ स॑वि॒तुः स॒वे स॒त्यप्र॑सवसो॒ बृह॒स्पते॑र्वाज॒जितो॒ वाजं॑ जेषम् ।
वाजि॑नो वाज॒जि॒तोऽध्व॑न स्कभ्नु॒वन्तो॒ योज॑ना॒ मिमा॑नाः॒ काष्ठां॑ गच्छत ॥ १३ ॥

पदार्थः—(**देवस्य**) सर्वप्रकाशकस्य जगदीश्वरस्य (**अहम्**) शरीरात्मबलयुक्तः सेनापतिः (**सवितुः**) सकलैश्वर्य्यप्रदस्य (**सवे**) उत्पादितेऽस्मिन्नैश्वर्ये (**सत्यप्रसवसः**) सत्यानि प्रसवांसि=जगत्स्थानि कारणरूपेण नित्यानि यस्य तस्य (**बृहस्पतेः**) वेदवाण्याः पालकस्य (**वाजजितः**) संग्रामं विजयमानस्य (**वाजम्**) संग्रामम् (**जेषम्**) जयेयम् लेडुत्तमैकवचने प्रयोगः (**वाजिनः**) विज्ञानवेगयुक्ताः (**वाजजितः**) संग्रामं जेतुं शीलाः (**अध्वनः**) शत्रोर्मार्गान् (**स्कभ्नुवन्तः**) प्रतिष्टम्भनं कुर्वन्तः (**योजना**) योजनानि=बहून् क्रोशान् (**मिमानाः**) शत्रून् प्रक्षेपमाणाः (**काष्ठाम्**) दिशम् (**गच्छत**) ॥ अयं मन्त्रः शत० ५ । १ । ५ । १५–१७ व्याख्यातः ॥ १३ ॥

प्रमाणार्थ—(**जेषम्**) जयेयम् । यह लेट् लकार के उत्तम पुरुष के एकवचन का प्रयोग है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । १ । ५ । १५–१७) में की गई है ॥ ९ । १३ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे वीराः ! यथाऽहं** शरीरात्मबलयुक्तः सेनापतिः **सत्यप्रसवसः** सत्यानि प्रसवांसि=जगत्स्थानि कारणरूपेण नित्यानि यस्य तस्य **सवितुः** सकलैश्वर्य्यप्रदस्य **देवस्य** सर्वप्रकाशकस्य जगदीश्वरस्य **वाजजितः** संग्रामं विजयमानस्य **बृहस्पतेः** वेदवाण्याः पालकस्य **सवे** उत्पादितेऽस्मिन्नैश्वर्य्ये **वाजं** सङ्ग्रामं **जेषं** जयेयं, **तथा यूयमपि** जयत ।

भाषार्थ—हे वीरो ! जैसे (**अहम्**) मैं शरीर और आत्मा के बल से युक्त सेनापति (**सत्यप्रसवसः**) जिसके जगत् में विद्यमान सब उत्पन्न पदार्थ कारण रूप में सत्य=नित्य हैं (**सवितुः**) जो सकल ऐश्वर्य का देने वाला है (**देवस्य**) जो सबका प्रकाशक है (**वाजजितः**) जो संग्राम की विजय कराने वाला है (**बृहस्पतेः**) उस वेदवाणी के पालक जगदीश्वर के (**सवे**) उत्पन्न किये इस ऐश्वर्य के निमित्त (**वाजम्**) सङ्ग्राम को (**जेषम्**) विजय करता हूँ वैसे तुम लोग भी विजय करो ।

हे वाजिनः विज्ञानवेगयुक्ताः **वाजजितः** सङ्ग्रामं जेतुंशीलाः **जनाः ! यथा यूयं योजना** योजनानि= बहून् क्रोशान् **मिमानाः** शत्रून् प्रक्षेपमाणाः **अध्वनः** शत्रोर्मार्गान् **स्कभ्नुवन्तः** प्रतिष्टम्भनं कुर्वन्तः **काष्ठां** दिशं **गच्छत, तथा वयमपि गच्छेम** ॥ ९ । १३ ॥

हे (**वाजिनः!**) विज्ञान और वेग वाले (**वाजजितः**) संग्राम को विजय करने वाले पुरुषो ! जैसे तुम लोग (**योजनाः**) योजन अर्थात् कई कोस (**मिमानाः**) शत्रुओं को खदेड़ कर तथा (**अध्वनः**) शत्रु के मार्गों को (**स्कभ्नुवन्तः**) रोक कर (**काष्ठम्**) अपनी दिशा को प्राप्त करते हो, वैसे हम भी प्राप्त करें ॥ ९ । १३ ॥

[हे वीराः ! यथाऽहं······वाजं जेषं तथा यूयमपि जयत]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ योद्धारः सेनाऽध्यक्षसहायपालनाभ्यामेव शत्रून् जेतुं शक्नुवन्ति,

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ योद्धा लोग सेनाध्यक्ष की सहायता तथा पालन से ही शत्रुओं को जीत सकते हैं, और—

[हे······वाजजितो जनाः ! यथा यूयं······अध्वनः स्कम्नुवन्तः काष्ठां गच्छत तथा वयमपि गच्छेम]

शत्रूणां मार्गान् प्रतिबद्धुं च प्रभवन्ति, यस्यां दिशिशत्रवो विकुर्वते, तत्र तान् वशं नयेयुः ॥ ६ । १३ ॥

शत्रुओं के मार्गों को रोक सकते हैं, जिस दिशा में शत्रु उपद्रव करें उन्हें वहीं वश में करें ॥ ६ । १३ ॥

भाष्यसार—१. **राजपुरुष धार्मिक जनों का ही अनुकरण करें**—जगदीश्वर सबका प्रकाशक है। जगत् का कारण प्रकृति नित्य है, जिससे ईश्वर जगत् की रचना करता है, वह सकल ऐश्वर्य का देने वाला है, संग्राम को विजय कराने वाला है, वेदवाणी का पालक है। इस ईश्वर के उत्पन्न किये इस ऐश्वर्यसम्पन्न जगत् में शरीर और आत्मा के बल से युक्त सेनापति संग्राम को विजय करे। वीर पुरुष सेनापति का अनुकरण करें।

विज्ञान और वेग से युक्त, संग्राम को जीतने हारे योद्धा लोग सेनाध्यक्ष की सहायता और पालन से शत्रुओं को जीतें, उन्हें कोसों दूर भगावें, शत्रुओं के मार्गों को रोकें, जिस दिशा में शत्रु उपद्रव करें, उन्हें वहीं वश में करें। वीर योद्धाओं का अन्य सैनिक भी अनुकरण करें ॥

२. **अलङ्कार**—मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि शब्द लुप्त है अतः यहाँ वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि सेनापति के समान सब सैनिक सङ्ग्राम को विजय करें ॥ ६ । १३ ॥

दधिक्रावाः । **बृहस्पतिः=सुशिक्षितः सेनापतिः** । जगती । निषादः ॥

यदा सेनासेनेशौ सुशिक्षतौ परस्परं प्रीतियुक्तो स्यातां तदैव विजयलाभः स्यादित्याह ॥

जब सेना और सेनापति सुशिक्षित होकर परस्पर प्रीति करने वाले होते हैं तभी विजय की प्राप्ति होती है, यह उपदेश किया है ॥

ए॒ष स्य वा॒जी क्षि॑प॒णिं तु॑रण्यति ग्री॒वायां॑ ब॒द्धो ऽ अ॑पिक॒क्ष ऽ आ॒सनि॑ ।
क्रतुं॑ द॒धि॒क्रा ऽ अनु॑ स॒ꣳसनि॑ष्यदत् प॒थामङ्का॒ꣳस्यन्वा॒पनी॑फणत् स्वाहा॑ ॥ १४ ॥

पदार्थः—(**एषः**) वीरः (**स्य**) असौ । **अत्र स्यश्छन्दसि बहुलम् ॥ अ० ६ । १ । १३३ ॥ इति सोर्लोपः** (**वाजी**) वेगवान् (**क्षिपणिम्**) दूरे क्षिपन्ति शत्रून्यया तां सेनाम् (**तुरण्यति**) त्वरयति (**ग्रीवायाम्**) कण्ठे (**बद्धः**) (**अपिकक्षे**) निश्चितपार्श्वावयवे (**आसनि**) आस्ये (**क्रतुम्**) कर्म (**दधिक्राः**) यो दधीन्=धारकान् क्राम्यति स दधिक्राः अश्वः । **दधिक्रा इत्यश्वनामसु पठितम् ॥ निघं० १ । १४ ॥** (**अनु**) (**संसनिष्यदत्**) अतिशयेन प्रस्रवन् । **अत्र स्यन्दू धातोर्यङ्लुक् शतृप्रत्ययेऽभ्यासस्य निक् निपात्यते** (**पथाम्**) मार्गाणाम् (**अंकांसि**) लक्षणानि (**अनु**) (**आपनीफणत्**) अतिशयेन गच्छन् (**स्वाहा**) सत्यया वाचा ॥ **अयं मन्त्रः शत० ५ । १ । ५ । १६ व्याख्यातः ॥ १४ ॥**

प्रमाणार्थ—(**स्यः**) यहां 'स्यश्छन्दसि बहुलम्' (**अ०** ६ । १ । १३३) इस सूत्र से 'सु' का लोप है। (**दधिक्राः**) यह शब्द निघं० (१ । १४) में अश्व-नामों में पढ़ा है। (**संसनिष्यदत्**) यहां 'स्यन्दू' धातु से 'यङ् लुक्' करके 'शतृ' प्रत्यय के परे रहते अभ्यास को 'निक्' आगम निपातित है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । १ । ५ । १६) में की गई है ॥ ६ । १४ ॥

सपदार्थान्वयः—**यथैषः** वीरः **स्यः**=**असौ वाजी** वेगवान् **आसनि** आस्ये **ग्रीवायां** कण्ठे **बद्धः क्रतुं** कर्म [**अनु**] **संसनिष्यदत्** अतिशयेन

भाषार्थ—जैसे (**एषः**) यह वीर (**स्यः**) उक्त घोड़ा जो (**वाजी**) वेगवान् तथा (**आसनि**) मुख और (**ग्रीवायाम्**) कण्ठ से बन्धा हुआ (**क्रतुम्**)

प्रस्रवन् **अपिकक्षे** निश्चिप्तपार्श्वावयवे **पथां** मार्गाणाम् **अङ्कांसि** लक्षणानि **अनु-आ-पनीफणत्** अतिशयेन गच्छन् **दधिक्राः** यो दधीन्=धारकान् क्राम्यति स दधिक्राः=अश्वः **क्षिपणिं** दूरे क्षिपन्ति शत्रून् यया तां सेनां [**तुरण्यति**]=**गच्छति** त्वस्यति, **तथा सेनेशः स्वाहा** सत्यया वाचा **स्वसेनां पराक्रमयेत्** ॥ ६ । १४ ॥

कर्म में ([**अनु**] संसनिष्यदत्) अत्यन्त गति करता हुआ तथा (**अपिकक्षे**) पार्श्ववर्ती (**पथाम्**) मार्गों के (**अङ्कांसि**) चिह्नों को (**अनु-आपनीफणत्**) प्राप्त करता हुआ (**दधिक्राः**) धारण करने वालों को इधर-उधर ले जाने वाला घोड़ा (**क्षिपणिम्**) शत्रुओं को दूर हटाने वाली सेना को [**तुरण्यति**]= त्वरा से युक्त करता है वैसे सेनापति (**स्वाहा**) सत्यवाणी से अपनी सेना का (**पराक्रम येत्**) संचालन करे ॥ ६ । १४ ॥

[यथैवः···वाजी···क्षिपणिं [तुरण्यति]=गच्छति तथा सेनेशः स्वाहा स्वसेनां पराक्रमेयत्]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ सेनापतिरक्षिता वीरा अश्ववद्धावन्तः सद्यः शत्रून् हन्तुं शक्नुवन्ति, सेनापतिः सुकर्मकारिभिः सुशिक्षितैर्वीरैः सहैव युद्ध्यमानः सन् प्रशंसितोविजयते; नाऽन्यथा ॥ ६ । १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ सेनापति से रक्षा को प्राप्त हुए वीर घोड़ों के समान दौड़ते हुए शत्रुओं का शीघ्र हनन कर सकते हैं, और सेनापति उत्तम कर्म करने वाले सुशिक्षित वीरों के साथ ही युद्ध करता हुआ प्रशंसनीय होकर विजय को प्राप्त करता है, अन्यथा नहीं ॥ ६ । १४ ॥

भाष्यसार—१. **विजयलाभ**—जैसे वेगवान् घोड़ा मुख एवं कण्ठ से बंधा हुआ अपने कर्म में अत्यन्त गति करता है, तथा कक्ष भाग में बंधा हुआ मार्ग-चिह्नों पर चलता हुआ, अश्वारोही को इधर-उधर ले जाने वाला घोड़ा सेना को गतिशील करता है। सेनापति से सुरक्षित वीर सैनिक उक्त घोड़े के समान दौड़ते हुये शत्रुओं का शीघ्र हनन कर सकते हैं। सेनापति को चाहिये कि वह सत्यवाणी से अपनी सेना को शत्रुओं पर आक्रमण करने की आज्ञा दे। सेनापति उत्तम कर्म करने वाले, सुशिक्षित वीर सैनिकों के सहाय से ही युद्ध में विजय को प्राप्त करता है तथा प्रशंसा को भी प्राप्त करता है; अन्यथा नहीं। सुशिक्षित सेना और सेनापति परस्पर प्रीतियुक्त होकर विजय को प्राप्त करें।

२. **अलङ्कार**—मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि शब्द लुप्त है अतः वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि वीर सैनिक तथा सेनापति घोड़े के समान अपनी सेना को गतिशील बनावें ॥ ६ । १४ ॥

दधिक्रावा। **बृहस्पतिः**=सेनापतिः। जगती। निषादः ॥

सेनापत्यादयः कथं पराक्रमेरन्नित्युपदिश्यते ॥

सेनापति आदि कैसे पराक्रम करें, इस विषय का उपदेश किया है ॥

उ॒त स्मा॑स्य॒ द्रव॑तस्तुरण्य॒तः प॒र्णं न वेरनु॑वाति प्रग॒र्धिनः॑ ।
श्ये॒नस्ये॑व॒ ध्रज॑तो ऽ अङ्कसं॒ परि॑ दधि॒क्राव्णः॑ स॒होर्जा तरि॑त्रतः॒ स्वाहा॑ ॥ १५ ॥

पदार्थः—(**उत**) अपि (**स्म**) एव (**अस्य**) (**द्रवतः**) द्रवीभूतस्य (**तुरण्यतः**) शीघ्रं गच्छतः (**पर्णम्**) पत्रं पक्षो वा (**न**) इव (**वेः**) पक्षिणः (**अनु**) (**वाति**) गच्छति (**प्रगर्धिनः**) प्रकर्षेणाभिकाङ्क्षिणः

(श्येनस्येव) (ध्रजतः) गच्छतः (अंकसम्) लक्षणान्वितं मार्गम् (परि) (दधिक्राव्णः) अश्वस्य (सह) (ऊर्जा) पराक्रमेण (तरित्रतः) अतिशयेन संप्लवतः (स्वाहा) सत्यया क्रियया ॥ अयं मन्त्रः शत० ५ । १ । ५ । २० व्याख्यातः ॥ १५ ॥

प्रमाणार्थ--इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । १ । ५ । २०) में की गई है ॥ ९ । १५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे राजजनाः ! **य ऊर्जा** पराक्रमेण **स्वाहा** सत्यया क्रियया [**सह**] **अस्य द्रवतः** द्रवीभूतस्य **तुरण्यतः** शीघ्रं गच्छतः **वेः** पक्षिणः **पर्णं** पत्रं पक्षोवा **न** इव, **उत** अपि **प्रगर्धिनः** प्रकर्षेणाभिकाङ्क्षिणः **ध्रजतः** गच्छतः **श्येनस्येव, तरित्रतः** अतिशयेन संप्लवतः **दधिक्राव्णः** अश्वस्य **इवाङ्कसं** लक्षणान्वितं मार्गं **पर्यनुवाति** गच्छति **स्म** एव, **स एव शत्रुं जेतुं शक्नोति** ॥ ९ । १५ ॥

भावार्थ—हे राजपुरुषो ! जो (**ऊर्जा**) पराक्रम और (**स्वाहा**) सत्य कर्म के (**सह**) साथ इस (**द्रवतः**) गतिशील (**तुरण्यतः**) शीघ्र गति करने वाले (**वेः**) पक्षी के (**पर्णम्**) पंख के (**न**) समान, (**उत**) और–(**प्रगर्धिनः**) अत्यन्त अभिलाषी (**ध्रजतः**) गतिशील (**श्येनस्य**) बाज पक्षी के (**इव**) समान, (**तरित्रतः**) अत्यन्त प्लवन करने वाले (**दधिक्राव्णः**) अश्व के समान (**अङ्कसम्**) अङ्कित मार्ग पर (**पर्यनुवाति**) चलता (**स्म**) ही है, वह ही शत्रु को जीत सकता है ॥ ९ । १५ ॥

[य ऊर्जा [सह] स्वाहा...वेः पर्णं न...श्येनस्येव...दधि क्राव्ण इवाङ्कसं पर्यनुवाति...स एव शत्रुं जेतुं शक्नोति]

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलु० ॥ ये वीरा नीलकण्ठपक्षिवच्छ्येनवदश्ववच्च पराक्रमन्ते तेषां शत्रवः सर्वतो निलीयन्ते ॥ ९ । १५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ जो वीर नीलकण्ठ, तथा बाज पक्षी के समान पराक्रम करते हैं, उनके शत्रु सब ओर से छुप जाते हैं ॥ ९ । १५ ॥

भाष्यसार—१. **सेनापति आदि कैसे आक्रमण करें**—जो सेनापति आदि वीर पुरुष शीघ्र गति करने वाले नीलकण्ठ पक्षी के समान, अत्यन्त पराक्रम के अभिलाषी गतिमान बाज पक्षी के समान, उछलने-कूदने वाले घोड़े के समान गतिशील होकर पराक्रम करते हैं, वे ही शत्रु को जीत सकते हैं । पराक्रमी वीरों के शत्रु सब ओर से विलीन हो जाते हैं ॥

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में नीलकण्ठ और बाज पक्षी उपमान हैं । मन्त्र में उनके साथ उपमावाचक 'न' और 'इव' पद पढ़े हैं अतः उपमा अलङ्कार है । यहां दधिक्रावा (**घोड़ा**) पद भी उपमान है । उसके साथ किसी उपमा वाचक पद का प्रयोग नहीं अतः वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है । उपमा यह है कि सेनापति आदि वीर पुरुष नीलकण्ठ, बाज पक्षी और घोड़े के समान पराक्रम करें ॥ ९ । १५ ॥

वसिष्ठः । **बृहस्पतिः=राजा** । भुरिक् पंक्तिः । पञ्चमः ॥

के प्रजापालने शत्रुविनाशने च शक्तिमन्तो भवन्तीत्याह ॥

कौन पुरुष प्रजा के पालने और शत्रुओं के विनाश करने में समर्थ होते हैं, यह उपदेश किया है ॥

शन्नो भवन्तु वाजिनो हवेषु देवताता मितद्रवः स्वर्काः ।
जम्भयन्तोहिं वृकꣳ रक्षाꣳसि सनेम्यस्मद्युयवन्नमीवाः ॥ १६ ॥

पदार्थः—(**शम्**) सुखम् (**नः**) अस्माकम् (**भवन्तु**) (**वाजिनः**) प्रशस्तयुद्धविद्याविदः सुशिक्षि-

तास्तुरङ्गाः (**हवेषु**) सङ्ग्रामेषु (**देवताता**) देवानां=विदुषां कर्मसु । अत्र देवात्तातिल् ॥ अ० ४ । ४ । १४२ ॥ सुपां सुलुक् ॥ अ० ७ । १ । ३६ ॥ इति डादेशश्च (**मितद्रवः**) ये परिमितं द्रवन्ति=गच्छन्ति ते (**स्वर्काः**) शोभनोऽर्कोऽन्नं सत्कारो वा येषान्ते । अर्क इत्यन्ननामसु पठितम् ॥ निघं० २ । ७ ॥ (**जम्भयन्तः**) गात्राणि विनमयन्तः (**अहिम्**) मेघमिव चेष्टमानमुन्नतम् (**वृकम्**) चौरम् (**रक्षांसि**) हिंसकान् दस्यून् (**सनेमि**) सनातनम् । सनेमीति पुराणनामसु पठितम् ॥ निघं० ३ । १७ ॥ (**अस्मत्**) (**युयवन्**) युवन्तु=पृथक् कुर्वन्तु । अत्र लेटि शपः श्लुः (**अमीवाः**) ये रोगवद्वर्त्तमानाः शत्रवस्तान् ॥ अयं मन्त्रः शत० ५ । १ । ५ । २२ व्याख्यातः ॥ १६ ॥

प्रमाणार्थ—(**देवताता**) यहां 'देवत्तातिल्' (**अ० ४ । ४ । १४२**) इस सूत्र से तातिल् और 'सुपां सुलुक्०' (**अ० ७ । १ । ३६**) इस सूत्र से 'डा' आदेश है। (**स्वर्काः**) 'अर्क' शब्द निघं० (२ । ७) में अन्न-नामों में पढ़ा है। (**सनेमि**) यह शब्द निघं० (३ । १७) में पुराण-नामों में पढ़ा है (**युवयन्**) यहाँ लेट्-लकार में 'शप्' के 'श्लु' है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । १ । ५ । २२) में की गई है ॥ ९ । १६ ॥

सपदार्थान्वयः—**ये मितद्रवः** ये परिमितं द्रवन्ति=गच्छन्ति ते **स्वर्काः** शोभनोऽर्कः=अन्नं सत्कारो वा येषां ते **अहिं** मेघमिव चेष्टमानमुन्नतं **वृकं** चौरं **रक्षांसि** हिंसकान् दस्यून् **च जम्भयन्तः** गात्राणि विनमयन्तः **वाजिनः=वीरा** प्रशस्तयुद्ध विद्या विदः सुशिक्षितास्तुरङ्गाः **नः** अस्माकं **देवताता** देवानां=विदुषां कर्मसु **हवेषु** संग्रामेषु **सनेमि** सनातनं **शं** सुखं **भवन्तु, तेऽस्मदमीवाः इव वर्त्तमानानरीन्** [अमीवाः=ये रोगवद् वर्त्तमानाः शत्रवस्तान्] **युयवन्** युवन्तु= पृथक् कुर्वन्तु ॥ ९ । १६ ॥

भाषार्थ—जो (**मितद्रवः**) परिमित गति करने वाले (**स्वर्काः**) उत्तम अन्न वाले वा सत्कार के योग्य योद्धा हैं वे (**अहिम्**) मेघ के समान चेष्टा करने वाले उच्च कोटि के (**वृकम्**) चोर के और (**रक्षांसि**) हिंसक दस्युओं के (**जम्भयन्तः**) शरीरों को मरोड़ते हुये (**वाजिनः**) प्रशस्त युद्ध विद्या को जानने वाले वीर पुरुष एवं सुशिक्षित घोड़े (**नः**) हमारे (**देवताता**) विद्वान् लोगों के कर्त्तव्य कर्म (**हवेषु**) संग्रामों में (**सनेमि**) सनातन (**शम्**) सुख को देने वाले (**भवन्तु**) हों, और वे (**अस्मत्**) हमारे (**अमीवाः**) रोगों के समान वर्त्तमान शत्रुओं को (**युयवन्**) पृथक् करें ॥ ९ । १६ ॥

[ये···वीरा नो···शं भवन्तु, ते ऽस्मदमीवा इव वर्त्तमानानरीन् युयवन्]

भावार्थः—ये श्रेष्ठाः प्रजापालने तत्परा व्याधिवच्छत्रूणां विनाशका न्यायकारिणो राजजनाः सन्ति, त एव सर्वेषां सुखं कर्त्तुं शक्नुवन्ति ॥ ९ । १६ ॥

भावार्थ—जो श्रेष्ठ, प्रजा के पालन में तत्पर, रोगों के तुल्य शत्रुओं का विनाश करने वाले, न्यायकारी राजपुरुष हैं, वे ही सबको सुख प्रदान कर सकते हैं ॥ ९ । १६ ॥

भाष्यसार—**प्रजा के पालन और** शत्रुओं के विनाश में कौन समर्थ हैं—जो वीर योद्धा लोग परिमित गति करने वाले हैं, जो उत्तम अन्न का सेवन करने वाले तथा सत्कार के योग्य हैं, मेघ के समान चेष्टा करने वाले चोर और डाकुओं के गात्रों को मरोड़ने वाले और युद्ध विद्या में कुशल हैं वे संग्रामों में सनातन सुख प्रदान करने वाले होते हैं, और वे ही प्रजा का पालन और शत्रुओं का विनाश करने में समर्थ होकर सबको सुख प्रदान कर सकते हैं; दूसरे नहीं ॥ ९ । १६ ॥

नाभानेदिष्टः । बृहस्पतिः=राजा । जगती । निषादः ॥

प्रजाजनाः स्वरक्षार्थमेव करं दद्युस्तदर्थमेव राजजना गृह्णन्तु नान्यथेत्याह ॥

प्रजाजन अपनी रक्षा के लिये ही कर देवें और इसीलिये राजा लोग उसे ग्रहण करें, अन्यथा नहीं, यह उपदेश किया है ॥

ते नो॒ऽअर्व॑न्तो हवन॒श्रुतो॒ हव॒ं विश्वे॑ शृण्वन्तु वा॒जिनो॑ मि॒तद्र॑वः ।
स॒ह॒स्र॒सा मे॒धसा॑ता सनि॒ष्यवो॑ म॒हो ये धन॑ꣳ समि॒थेषु॑ जभ्रि॒रे ॥ १७ ॥

पदार्थः—(ते) (नः) अस्माकम् (अर्वन्तः) जानन्तः (हवनश्रुतः) ये हवनानि=ग्राह्याणि शास्त्राणि शृण्वन्ति ते (हवम्) अध्ययनाध्यापनजन्यं बोधशब्दसमूहमर्थिप्रत्यर्थिनां विवादं च (विश्वे) सर्वे विद्वांसः (शृण्वन्तु) (वाजिनः) प्रशस्तप्रज्ञाः (मितद्रवः) ये मितं=शास्त्रप्रमितं विषयं द्रवन्ति ते (सहस्रसाः) ये सहस्रं विद्याविषयान् सनन्ति ते (मेधसाता) मेधानां=संगमानां सातिर्दानं येषु । अत्र सप्तमीबहुवचनस्य सुपां सुलुक् ॥ अ० ७ । १ । ३९ ॥ इति डादेशः (सनिष्यवः) आत्मनः सनिं=संविभागमिच्छवः । सनिशब्दात्क्यचि लालसायां सुक् तत उः (महः) महत् (ये) (धनम्) श्रियम् (समिथेषु) सङ्ग्रामेषु । समिथ इति सङ्ग्रामनामसु पठितम् ॥ निघं० २ । १७ ॥ (जभ्रिरे) भरेयुः । अत्राभ्यासस्य वर्णव्यत्ययेन बस्य जः ॥ अयं मन्त्रः शत० ५ । १ । ५ । २३ व्याख्यातः ॥ १७ ॥

प्रमाणार्थ—(मेधसाता) यहाँ सप्तमी बहुवचन का 'सुपां सुलुक्०' (अ० ७ । १ । ३९) इस सूत्र से 'डा' आदेश है । (सनिष्यवः) यहाँ लालसा अर्थ में 'सनि' शब्द से 'क्यच्' प्रत्यय है, 'सु' का लुक् होने पर [क्याच्छन्दसि अ० ३ । २ । १७० सूत्र से] 'उ' प्रत्यय है । (समिथेषु) 'समिथ' शब्द निघं० (२ । १७) में संग्राम नामों में पढ़ा है । (जभ्रिरे) यहां वर्ण-व्यत्यय से अभ्यास के बकार को जकार है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । १ । ५ । २३) में की गई है ॥ ९ । १७ ॥

सपदार्थान्वयः—येऽर्वन्तः जानन्तः हवनश्रुतः ये हवनानि=ग्राह्याणि शास्त्राणि शृण्वन्ति ते **वाजिनः** प्रशस्तप्रज्ञाः **मितद्रवः** ये मितं=शास्त्राप्रमितं विषयं द्रवन्ति ते **सहस्रसाः** ये सहस्रं विद्याविषयान् सनन्ति ते **सनिष्यवः** आत्मनः सनि=संविभागमिच्छवः **राजजना मेधसाता** मेधानां=सङ्गमानां सातिर्दानं येषु **समिथेषु** सङ्ग्रामेषु **नः** अस्माकं **महः** महत् **धनं** श्रियं **जभ्रिरे** भरेयुः, **ते विश्वे** सर्वे विद्वांसः **अस्माकं हवम्** अध्ययनाध्यापनजन्यं बोधसमूहमर्थिप्रत्यर्थिनां विवादं च **शृण्वन्तु** ॥ ९ । १७ ॥

भाषार्थ—जो-(अर्वन्तः) ज्ञानवान्, (हवनश्रुतः) ग्रहण करने योग्य शास्त्रों को सुनने वाले, (वाजिनः) उत्तम प्रज्ञा वाले, (मितद्रवः) शास्त्र द्वारा प्रमाणित विषय को प्राप्त करने वाले, (सहस्रसाः) नाना विद्या-विषयों का सेवन करने वाले, (सनिष्यवः) अपने उचित भाग की कामना करने वाले राजा लोग हैं वे-(मेधसाता) जिन में सङ्गमों का दान किया जाता है उन (समिथेषु) संग्रामों में (नः) हमारे (महः) महान् (धनम्) धन [कर] को (जभ्रिरे) धारण करें, और (ते) वे (विश्वे) सब विद्वान् राजा लोग हमारे (हवम्) अध्ययन-अध्यापन से उत्पन्न बोध को तथा वादी प्रतिवादियों के विवाद को (शृण्वन्तु) सुना करें ॥ ९ । १७ ॥

[ये...नो महो धनं जभ्रिरे ते विश्वेऽस्माकं हवं शृण्वन्तु]

भावार्थः—य इमे राजपुरुषा अस्माकं सकाशात् करं गृह्णन्ति, तेऽस्मान् सततं रक्षन्तु, नो

भावार्थ—जो ये राजपुरुष हमसे कर ग्रहण करते हैं, वे हमारी निरन्तर रक्षा करें,

चेन्मा गृह्णन्तु, वयमपि तेभ्यः करं नैव दद्याम । अतः प्रजारक्षणायैव करदानं दुष्कर्मिभिः सह योद्धुं च, नान्यदर्थमिति निश्चयः ॥ ६ । १७ ॥

अन्यथा कर ग्रहण न करें, और हम भी उन्हें कर न देवें । अतः प्रजा की रक्षा के लिये तथा दुष्ट शत्रुओं के साथ युद्ध करने के लिये ही कर दिया जाता है, अन्य कार्य के लिये नहीं, यह निश्चय है ॥ ६ । १७ ॥

भा० पदार्थः—धनम्=करम् । जभ्रिरे=गृह्णीयुः ॥

भाष्यसार—कर-प्रदान—जो राजपुरुष-ज्ञानी, ग्रहण करने योग्य शास्त्रों का श्रवण करने वाले, उत्तम प्रज्ञा वाले, शास्त्र द्वारा प्रमाणित विषय को ग्रहण करने वाले, नाना विद्याओं का सेवन करने वाले, अपने उचित भाग की कामना करने वाले हैं उन्हें प्रजाजन अपनी रक्षा के लिये एवं दुष्ट शत्रुओं के साथ युद्ध करने के लिये ही कर प्रदान करें। राजपुरुष भी प्रजा की रक्षा के लिये ही कर ग्रहण करें । विद्वान् राजपुरुष प्रजा के पठन-पाठन का निरक्षण किया करें तथा वादी-प्रतिवादी के विवाद को भी सुना करें ॥ ६ । १७ ॥

वसिष्ठः । **बृहस्पतिः=राजा** । निचृत् त्रिष्टुप् । निषादः ॥

अथैते परस्परस्मिन् कथं वर्त्तेरन्नित्युपदिश्यते ॥

अब ये राजा और प्रजा के पुरुष आपस में कैसे वर्त्तें, यह उपदेश किया है ॥

वाजेवाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्रा ऽ अमृता ऽ ऋतज्ञाः ।
अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः ॥ १८ ॥

पदार्थः—(**वाजेवाजे**) सङ्ग्रामे सङ्ग्रामे (**अवत**) पालयत (**वाजिनः**) वेगवन्तः (**नः**) अस्मान् (**धनेषु**) (**विप्राः**) विद्यासुशिक्षाजातप्रज्ञाः (**अमृताः**) स्वस्वरूपेण नाशरहिताः प्राप्तजीवन्मुक्तिसुखाः (**ऋतज्ञाः**) ये ऋतं=सत्यं जानन्ति ते (**अस्य**) प्रत्यक्षस्य (**मध्वः**) मधुनो=मधुरस्य रसस्य । **अत्र कर्मणि षष्ठी** (**पिबत**) (**मादयध्वम्**) हृष्यत (**तृप्ताः**) प्रीणिताः (**यात**) गच्छत (**पथिभिः**) मार्गैः (**देवयानैः**) देवा=विद्वांसो यान्ति यैर्धर्म्यैः ॥ **अयं मन्त्रः शत० ५ । १ । ५ । २४ व्याख्यातः** ॥ १८ ॥

प्रमाणार्थ—(**मध्वः**) यहां कर्म-कारक में षष्ठी विभक्ति है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । १ । ५ । २४) में की गई है ॥ ६ । १८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **ऋतज्ञाः** ये ऋतं=सत्यं जानन्ति ते **अमृताः** स्वस्वरूपेण नाशरहिताः प्राप्तजीवन्मुक्तिसुखाः **वाजिनः** वेगवन्तः **विप्राः** विद्यासुशिक्षाजातप्रज्ञाः । **यूयं वाजेवाजे** संग्रामे संग्रामे **नः** अस्मान् **अवत** पालयत, **अस्य** प्रत्यक्षस्य **मध्वः** मधुनः=मधुरस्य रसस्य **पिबत, अस्माकं** [**धनेषु**]=**धनैस्तृप्ताः** प्रीणिताः **सन्तो मादयध्वं** हृष्यत, **देवयानैः** देवाः=विद्वांसो यान्ति यैर्धर्म्यैः **पथिभिः** मार्गैः **सततं यात** गच्छत ॥ ६ । १८ ॥

भावार्थ—हे (**ऋतज्ञाः**) ऋत=सत्य को जानने वाले, (**अमृताः**) आत्म स्वरूप से नाश रहित, जीवन्मुक्ति-सुख को प्राप्त, (**वाजिनः**) वेगवान्, (**विप्राः**) विद्या और सुशिक्षा से उत्पन्न उत्तम बुद्धि वाले विद्वानो ! तुम लोग—(**वाजे वाजे**) प्रत्येक संग्राम में (**नः**) हमारा (**अवत**) पालन करो, और (**अस्य**) इस (**मध्वः**) मधुर रस का (**पिबत**) पान करो, तथा हमारे [**धनेषु**] धनों से (**तृप्ताः**) तृप्त होकर (**मादयध्वम्**) हर्षित रहो, और (**देवयानैः**) विद्वानों के धर्मयुक्त मार्गों से निरन्तर (**यात**) गमन करो ॥ ६ । १८ ॥

[हे···विप्रा ! यूयं···देवयानैः पथिभिः सततं यात]

भावार्थः—राजपुरुषैः वेदादीनि शास्त्राण्यधीत्य, सुशिक्षया यथार्थं बोधं प्राप्य, धार्मिकाणां विदुषां मार्गेण सदा गन्तव्यं, नेतरेषाम् । शरीरात्मबलपालनेनैव सततमानन्दितव्यम्,

भावार्थ—राजपुरुष वेदादि शास्त्रों को पढ़कर, सुशिक्षा से यथार्थ बोध को प्राप्त करके, सदा धार्मिक विद्वानों के मार्ग पर चलें, दुष्टों के मार्ग पर कभी न चलें । शरीर और आत्मा के बल के पालन से ही सदा आनन्द में रहें ।

[अस्माकं [धनेषु]=धनैस्तृप्ता मादयध्वम्]

प्रजाजनाः स्वधनैरेतान् सततं तर्पयन्तु ॥ ९ । १८ ॥

प्रजाजन अपने धन से इन्हें सदा तृप्त रखें ॥ ९ । १८ ॥

आ० पदार्थः—देवयानैः पथिभिः=धार्मिकाणां विदुषां मार्गेण । धनेषु=स्वधनैः ।

भाष्यसार—**राज-पुरुष और प्रजा-पुरुषों का परस्पर वर्त्ताव**—राजपुरुष—सत्य को जानने वाले, जीवन काल में मुक्ति सुख को प्राप्त करने वाले, शरीर और आत्मा के बल के पालन से वेगवान्, वेदादि शास्त्रों के अध्ययन से तथा उत्तम शिक्षा से यथार्थ बोध को प्राप्त करने वाले हों । वे प्रत्येक सङ्ग्राम में प्रजा का पालन करें । प्रजाजन भी उन्हें मधुर रस का पान करावें । अपने धनों से तृप्त करके उन्हें हर्षित करें । राजपुरुष भी सदा धार्मिक विद्वानों के मार्ग पर चलें, दुष्ट जनों के मार्ग पर कभी न चलें । शरीर और आत्मा के बल की रक्षा करके सदा आनन्द में रहें ॥ ९ । १८ ॥

वसिष्ठः । **प्रजापतिः**=धार्मिको राजा विद्वांश्चः । निचृद्धृति । ऋषभः ॥

मनुष्यैर्धर्माचरणेन किं किमेष्टव्यमित्याह ॥

मनुष्यों को धर्माचरण से किस किस पदार्थ की इच्छा करनी चाहिये, यह उपदेश किया है ॥

आ मा वाजस्य प्रसवो जगम्यादेमे द्यावापृथिवी विश्वरूपे ।
आ मा गन्तां पितरा मातरा चा मा सोमो ऽ अमृतत्वेन गम्यात् ।
वाजिनो वाजजितो वाजꣳ ससृवाꣳसो बृहस्पतेर्भागमवजिघ्रत निमृजानाः ॥ १९ ॥

पदार्थः—(**आ**) (**मा**) माम् (**वाजस्य**) वेदादिशास्त्रार्थप्रसूतज्ञानबोधस्य (**प्रसवः**) प्रकृष्टैश्वर्य्यसमूहः (**जगम्यात्**) भृशं प्राप्नुयात् (**आ**) (**इमे**) (**द्यावापृथिवी**) प्रकाशभूमी राज्यार्थे (**विश्वरूपम्**) विश्वानि=सर्वाणि रूपाणि ययोस्ते (**आ**) (**मा**) माम् (**गन्ताम्**) प्राप्नुतः । **अत्र विकरणलुक** (**पितरामातरा**) पिता च माता च ते । **अत्र पितरामातरा च छन्दसि ॥ अ० ६ । ३ । ३३ ॥ इति पूर्वपदस्याऽऽनङ् । उत्तरपदस्याऽकारादेशश्च निपात्यते** (**च**) सुसहायः (**आ**) (**मा**) माम् (**सोमः**) सोमवल्ल्याद्योषधिगणः (**अमृतत्वेन**) सर्वरोगनिवारकत्वेन सह (**गम्यात्**) प्राप्नुयात् (**वाजिनः**) प्रशस्तबलिनः (**वाजजितः**) विजितसङ्ग्रामाः (**वाजम्**) सङ्ग्रामम् (**ससृवांसः**) प्राप्तवन्तः (**बृहस्पतेः**) बृहत्याः सेनायाः स्वामिनः (**भागम्**) भजनीयम् (**अव**) (**जिघ्रत**) (**निमृजानः**) नितरां शुन्धन्तः ॥ **अयम्मन्त्रः शत० ५ । १ । ५ । २६-२७ व्याख्यातः ॥ १९ ॥**

प्रमाणार्थ—(**गन्ताम्**) यहां विकरण-प्रत्यय (**शप्**) का लुक् है । (**मातरापितरा**) यहां 'मातरापितरा च छन्दसि' (अ० ६ । ३ । ३३) इस सूत्र से पूर्वपद को 'आनङ्' और उत्तर पद को ओकार-आदेश निपातित है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । १ । ५ । २६-२७) में की गई है ॥ ९ । १९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे पूर्वोक्ता विद्वांसः ! **येषां भवतां सहायेन वाजस्य** वेदादिशास्त्रार्थप्रसूतज्ञानबोधस्य **प्रसवः** प्रकृष्टैश्वर्यसमूहः **मा** माम् [**आ**] **जगम्यात्**=समन्तात् **प्राप्नुयात्** भृशं प्राप्नुयात्,

इमे विश्वरूपे विश्वानि=सर्वाणि रूपाणि ययोस्ते **द्यावापृथिवी** प्रकाशभूमी राज्यार्थे **चामृतत्वेन** सर्वरोगनिवारकत्वेन सह **सोमः** सोमवल्ल्याद्योषधिगणः [**मा**] माम् [**आ**]+**गम्यात्** प्राप्नुयात्,

पितरामातरा पिता च माता च ते **च** सुसहायः [**मा**] माम् [**आ**] **गन्तां** प्राप्नुतः,

ते वाजिनः प्रशस्तबलिनः **वाजजितः** विजितसङ्ग्रामाः **वाजं** सङ्ग्रामं **ससृवांसः** प्राप्तवन्तः **निमृजानाः** नितरां शुन्धन्तः **सन्तो यूयं बृहस्पतेः** बृहत्याः सेनायाः स्वामिनः **भागं** भजनीयम् **अव**+**जिघ्रत** ॥ ६ । १९ ॥

भाषार्थ—हे पूर्वोक्त विद्वानो ! आप लोगों के सहाय से (**वाजस्य**) वेदादि शास्त्रों के अर्थ से उत्पन्न ज्ञान रूप बोध का (**प्रसवः**) उत्तम ऐश्वर्य-समूह (**मा**) मुझे ([**आ**] **जगम्यात्**) सब ओर से पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हो, और—

(**इमे**) ये (**विश्वरूपे**) सब रूपों वाले (**द्यावापृथिवी**) राज्य के लिये जो प्रकाश और भूमि हैं वे तथा (**अमृतत्वेन**) सब रोगों के निवारक गुण के साथ (**सोमः**) सोमलता आदि औषधि गण [**मा**] मुझे ([**आ**]+**गम्यात्**) प्राप्त हो, और

(**पितरामातरा**) माता और पिता और (**च**) उत्तम सहायक जन [मा] मुझे ([**आ**] **गन्ताम्**) प्राप्त हों।

सो (**वाजिनः**) प्रशस्त बल वाले, (**वाजजितः**) सङ्ग्रामों के विजेता, (वाजम्) सङ्ग्राम को (**ससृवांसः**) प्राप्त हुये (**निमृजानाः**) सर्वथा शुद्ध होकर तुम लोग (**बृहस्पतेः**) विशाल सेना के स्वामी अर्थात् सेनापति की (भागम्) सेवा को (**अव**+**जिघ्रत**) प्राप्त करो ॥ ६ । १९ ॥

[हे···विद्वांस !···भवतां सहायेन वाजस्य प्रसवो मा [आ] जगम्यात्=समन्तात् प्राप्नुयात्,···द्यावापृथिवी चामृतत्वेन सोमः [मा] [आ] गम्यात्] पितरामातेरा च [मा] [आ] गन्ताम्]

भावार्थः—ये मनुष्याः—विद्वत्संगेन विद्यासुशिक्षे प्राप्य धर्ममाचरन्ति तानिहामुत्र परमैश्वर्य्यसाधकं राज्यं, विद्वांसौ मातापितरौ, रोगराहित्यं च प्राप्नोति।

भावार्थ—जो मनुष्य—विद्वानों के संग से विद्या और सुशिक्षा को प्राप्त करके धर्म का आचरण करते हैं उन्हें इस लोक और परलोक में परम ऐश्वर्य का साधक राज्य, विद्वान् माता-पिता, और नीरोगता प्राप्त होती है।

[ते वाजिनः···सन्तो यूयं बृहस्पतेर्भागमवजिघ्रत]

ये विदुषां सेवनं कुर्वन्ति, ते शरीरात्मबलं प्राप्ताः सन्तः सर्वाणि सुखानि प्राप्नुवन्तिः, नातो विरुद्धाचरणा एतत्सर्वमाप्तुं शक्नुवन्ति ॥ ६ । १९ ॥

जो विद्वानों की सेवा करते हैं, वे शरीर और आत्मा के बल को प्राप्त होकर सब सुखों को प्राप्त करते हैं, इसके विरुद्ध आचरण करने वाले लोग यह सब प्राप्त नहीं कर सकते ॥ ६ । १९ ॥

भा० पदार्थः—द्यावापृथिवी=परमैश्वर्यसाधकं राज्यम्। पितरामातरा=विद्वांसौ मातापितरौ। वाजिनः=शरीरात्मबलं प्राप्ताः। बृहस्पतेः=विदुषः। भागम्=सेवनम् ॥

भाष्यसार—**धर्माचरण से क्या क्या** प्राप्त करें—मनुष्य-विद्वानों के संग से वेदादि शास्त्रों का अध्ययन करें, उत्तम विद्या और शिक्षा को प्राप्त करें, परम ऐश्वर्य को प्राप्त करें, इस लोक में परम ऐश्वर्य के साधक राज्य को प्राप्त करें, सब रोगों की निवारक सोमलता आदि औषधियों को प्राप्त

करके नीरोगता को सिद्ध करें, परलोक में विदुषी माता और विद्वान् पिता को प्राप्त करें, विद्वानों की सेवा से शरीर और आत्मा के बल को प्राप्त करें, संग्रामों में विजय प्राप्त करें, बाह्य और आन्तरिक शुद्धि को प्राप्त हों ॥ ९ । १९ ॥

वसिष्ठः । **प्रजापतिः**=विद्वान् ॥ भुरिक्कृतिः । निषादः ॥

विद्यासुशिक्षितया वाचा मनुष्याणां किं किं प्राप्नोतीत्याह ॥

विद्या और सुशिक्षा से युक्त वाणी से मनुष्यों को क्या-क्या प्राप्त होता है, यह उपदेश किया है ॥

आपये स्वाहा स्वापये स्वाहाऽपिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा वसवे स्वाहाऽहर्पतये स्वाहाऽह्ने मुग्धाय स्वाहा मुग्धाय वैनंशिनाय स्वाहा विनंशिन ऽ आन्त्यायनाय स्वाहाऽऽन्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाऽधिपतये स्वाहा ॥ २० ॥

पदार्थः—(**आपये**) सकलविद्याव्याप्तये (**स्वाहा**) सत्या क्रिया (**स्वापये**) सुखानां सुष्ठुप्राप्तये (**स्वाहा**) धर्म्या क्रिया (**अपिजाय**) निश्चयेन जायमानाय (**स्वाहा**) पुरुषार्थयुक्ता क्रिया (**क्रतवे**) प्रज्ञायै (**स्वाहा**) अध्ययनाध्यापनप्रवर्त्तिका क्रिया (**वसवे**) विद्यानिवासाय (**स्वाहा**) सत्यां वाणीम् (**अहर्पतये**) पुरुषार्थेन गणितविद्यया दिवस्पालकाय (**स्वाहा**) कालविज्ञापिका वाणी (**अह्ने**) दिनाय (**मुग्धाय**) प्राप्त-मोहनिमित्ताय (**स्वाहा**) विज्ञानयुक्ता वाक् (**मुग्धाय**) मूर्खाय (**वैनंशिनाय**) विनाशशीलेषु कर्मसु भवाय (**स्वाहा**) चेतयित्रीं वाणीम् (**विनंशिने**) विनष्टुं शीलाय (**आन्त्यायनाय**) अन्त्यं=नीचमयनं=प्रापणं यस्य तस्मै (**स्वाहा**) नष्टकर्मनिवारिका वाणी (**आन्त्याय**) अन्ते भवाय (**भौवनाय**) भुवनेषु प्रभवाय (**स्वाहा**) पदार्थविज्ञापिका वाक् (**भुवनस्य**) संसारस्य (**पतये**) स्वामिन ईश्वराय (**स्वाहा**) योगविद्याजनिता प्रज्ञा (**अधिपतये**) सर्वाधिष्ठातॄणामुपरि वर्त्तमानाय (**स्वाहा**) सर्वव्यवहारविज्ञापिका वाक् ॥ **अयं मन्त्रः शत० शत० ५ । २ । १ । २ व्याख्यातः ॥ २० ॥**

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । २ । १ । २) में की गई है ॥ ९ । २० ॥

सपदार्थान्वयः—**हे विद्वांसः ! यूयं यथां मामापये** सकलविद्याव्याप्तये **स्वाहा** सत्या क्रिया, **स्वापये** सुखानां सुष्ठुप्राप्तये **स्वाहा** धर्म्या क्रिया, **अपिजाय** निश्चयेन जायमानाय **स्वाहा** पुरुषार्थयुक्ता क्रिया, **क्रतवै** प्रज्ञायै **स्वाहा** अध्ययनाध्यापनप्रवर्तिका क्रिया, [**वसवै**] विद्यानिवासाय [**स्वाहा**] सत्यां वाणीम्, **अहर्पतये** पुरुषार्थेन गणितविद्यया दिवस्पालकाय **स्वाहा** कालविज्ञापिका वाणी, **मुग्धाय** प्राप्तमोहनिमित्ताय **अह्ने** दिनाय **स्वाहा** विज्ञानयुक्ता वाक्, **मुग्धाय** मूर्खाय **वैनंशिनाय** विनाशशीलेषु कर्मसु भवाय **स्वाहा** चेतयित्रीं वाणीम्, **आन्त्यायनाय** अन्त्यं=नीचमयनं=प्रापणं

भाषार्थ—हे विद्वानो ! तुम लोग जैसे मुझे (**आपये**) सकल विद्याओं की प्राप्ति के लिये (**स्वाहा**) सत्य कर्म, (**स्वापये**) सुखों की उत्तम प्राप्ति के लिये (**स्वाहा**) धर्मयुक्त कर्म, (**अपिजाय**) निश्चय से विजय प्राप्ति के लिये (**स्वाहा**) पुरुषार्थ युक्त कर्म, (**क्रतवै**) बुद्धि की प्राप्ति के लिये (**स्वाहा**) अध्ययन-अध्यापन में प्रवृत्त करने वाले कर्म, [**वसवे**] विद्या में निवास के लिये [**स्वाहा**] सत्य वाणी, (**अहर्पतये**) पुरुषार्थ से गणितविद्या के द्वारा दिन के पालक सूर्य को जानने के लिये (**स्वाहा**) कालगति को बतलाने वाली वाणी, (**मुग्धाय**) मोह के निमित्त को प्राप्त (**अह्ने**) दिन

यस्य तस्मै **विनंशिने** विनष्टुंशीलाय **स्वाहा** नष्टकर्म-निवारिका वाणी, **आन्त्याय** अन्ते भवाय **भौवनाय** भुवनेषु प्रभवाय **स्वाहा** पदार्थविज्ञापिका वाक्, **भुवनस्य** संसारस्य **पतये** स्वामिने=ईश्वराय **स्वाहा** योगविद्याजनिता प्रज्ञा, **अधिपतये** सर्वाधिष्ठातॄणा-मुपरि वर्त्तमानाय **च स्वाहा** सर्वव्यवहारविज्ञापिका वाक् **प्राप्नुयात्, तथा प्रयतध्वम्** ॥ ९ । २० ॥

को जानने के लिये (**स्वाहा**) विज्ञान-युक्त वाणी, (**मुग्धाय, वैनंशिनाय**) विनाशशील कर्मों में वर्त्त-मान मुग्ध मूर्ख के लिये (**स्वाहा**) चेतना-युक्त वाणी, (**आन्त्यायनाय, विनंशिने**) नीचता को प्राप्त विनाशशील, मेरे लिये (**स्वाहा**) नीच कर्मों से हटाने वाली वाणी, (**आन्त्याय**) अन्त में विद्यमान अर्थात् नित्य तथा (**भावनाय**) लोकों में जन्म लेने वाले मेरे लिये (**स्वाहा**) पदार्थ विज्ञान का बोध कराने वाली वाणी, (**भुवनस्य**) संसार के (**पतये**) स्वामी ईश्वर की प्राप्ति के लिये (**स्वाहा**) योगविद्या से (उत्पन्न) बुद्धि, और (**अधिपते**) सब अधिष्ठाताओं के ऊपर वर्तमान रहने वाले, मेरे लिये (**स्वाहा**) सब व्यवहारों को जनानी वाली वाणी प्राप्त हो; वैसा प्रयत्न करो ॥ ९ । २० ॥

[**हे विद्वांसः ! यूयं यथा मायापये स्वाहा**···**प्राप्नुयात् तथा प्रयतध्वम्**]

भावार्थः—मनुष्यैः सकलविद्याप्राप्त्यादि प्रयोजनाय विद्यासुशिक्षायुक्ता वाणीप्राप्तव्या, यतः सर्वाणि सुखानि प्राप्नुयुः ॥ ९ । २० ॥

भावार्थ—मनुष्य-सकल विद्याओं की प्राप्ति आदि प्रयोजन के लिये विद्या और सुशिक्षा से युक्त वाणी को प्राप्त करें, जिससे सब सुख प्राप्त हो ॥ ९ । २० ॥

भाष्यसार—**विद्या और सुशिक्षा से युक्त वाणी से क्या-क्या प्राप्त होता है**—विद्वान लोग ऐसा प्रयन्न करें कि अपनी विद्या और सुशिक्षा से युक्त वाणी से मनुष्यों को सकल विद्याओं की प्राप्ति, धर्माचरण से सब सुखों की प्राप्ति, पुरुषार्थ से विजय-प्राप्ति, अध्ययन-अध्यापन से प्रज्ञा की प्राप्ति, सत्य वाणी से विद्या-निवास की प्राप्ति, काल विज्ञापक वाणी से गणित के द्वारा दिनपति (सूर्य) की प्राप्ति, विज्ञान युक्त वाणी से मोह के निमित्त दिन की प्राप्ति, चेतना युक्त वाणी से विनाशशील कर्मों में प्रवृत्त मूर्ख जनों के कल्याण की प्राप्ति, दुष्कर्मों से हटाने वाली वाणी से विनाशशील नीच मनुष्यों के उत्थान को प्राप्ति, पदार्थ विज्ञापक वाणी से नित्य और अनित्य गुणों की प्राप्ति, योगविद्या से उत्पन्न बुद्धि से संसार के स्वामी ईश्वर की प्राप्ति, सब व्यवहारों को बतलाने वाली वाणी से अधिपति भाव की प्राप्ति करावें। और सब मनुष्य सकल विद्या आदि उक्त प्रयोजनों की सिद्धि के लिये विद्वानों की विद्या और सुशिक्षा से युक्त वाणी की प्राप्त करें। जिससे सब सुखों की प्राप्ति होवे ॥ ९ । २० ॥

वसिष्ठः । **यज्ञः=धर्म्येश्वराज्ञापालनादिः** । अत्यष्टिः । गान्धारः ॥

अथ मनुष्यान्प्रतीश्वर आहेत्युपदिश्यते ॥

पुनः मनुष्यों के प्रति ईश्वर उपदेश करता है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

आयुर्य॒ज्ञेन॑ कल्पतां प्रा॒णो य॒ज्ञेन॑ कल्पतां॒ चक्षु॑र्य॒ज्ञेन॑ कल्पता॒ᳬ श्रोत्रं॑ य॒ज्ञेन॑ कल्पतां पृ॒ष्ठं य॒ज्ञेन॑ कल्पतां य॒ज्ञो य॒ज्ञेन॑ कल्पताम् । प्र॒जाप॑तेः प्र॒जाऽअ॑भूम॒ स्व॒र्देवाऽअगन्मा॒मृता॑ऽअभूम ॥२१॥

पदार्थः—(**आयुः**) जीवनम् (**यज्ञेन**) धर्म्येणेश्वराज्ञापालनेन (**कल्पताम्**) समर्थताम् (**प्राणः**) जीवनहेतुर्बलकारी (**यज्ञेन**) धर्म्येण विद्याभ्यासेन (**कल्पताम्**) (**चक्षुः**) चष्टेऽनेन तत् (**यज्ञेन**) शिष्टाचरितेन प्रत्यक्षविषयेण (**कल्पताम्**) (**श्रोत्रम्**) शृणोति येन तत् (**यज्ञेन**) शब्दप्रमाणाभ्यासेन (**कल्पताम्**) (**पृष्ठम्**) प्रच्छनम् (**यज्ञेन**) संवादाख्येन (**कल्पताम्**) (**यज्ञः**) यजधातोरर्थः (**यज्ञेन**) ब्रह्मचर्याद्याचरणेन (**कल्पताम्**) (**प्रजापतेः**) विश्वम्भरस्य जगदीश्वरस्येव धार्मिकस्य राज्ञः (**प्रजाः**) तदधीनपालनाः (**अभूम**) भवेम (**स्वः**) सुखम् (**देवाः**) विद्वांसः (**अगन्म**) प्राप्नुयाम (**अमृताः**) प्राप्तमोक्षसुखाः (**अभूम**) भवेम ॥ **अयं मन्त्रः शत०** ५ । २ । १ । ४ **व्याख्यातः** ॥ २१ ॥

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । २ । १ । ४) में की गई है ॥ ९ । २१ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! युष्माकमायुः** जीवनं **सततं यज्ञेन** धर्म्येणेश्वराज्ञापालनेन **कल्पतां** समर्थताम् । **प्राणः** जीवनहेतुर्बलकारी **यज्ञेन** धर्म्मेण विद्याभ्यासेन **कल्पतां, चक्षुः** चष्टेऽनेन, तद् **यज्ञेन** शिष्टाचरितेन प्रत्यक्षविशेषेण **कल्पतां श्रोत्रं** शृणोति येन तत् **यज्ञेन** शब्दप्रमाणाभ्यासेन **कल्पतां, पृष्ठं** प्रच्छनं **यज्ञेन** संवादाख्येन **कल्पतां** समर्थतां [**यज्ञः**] यजधातोरर्थः [**यज्ञेन**] ब्रह्मचर्याद्याचरणेन [**कल्पताम्**],

यथा वयं प्रजापतेः विश्वम्भरस्य जगदीश्वरस्येव धार्मिकस्य राज्ञः **प्रजाः** तदधीनपालनाः **अभूम भवेम, देवाः** विद्वांसः **सन्तोऽमृताः** प्राप्तमोक्षसुखाः **अभूम** भवेम, **स्वः** सुखम् **अगन्म** प्राप्नुयाम, **इति यूयं निश्चिनुत** ॥ ९ । २१ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम्हारा (**आयुः**) जीवन निरन्तर (**यज्ञेन**) धर्मयुक्त ईश्वर की आज्ञा का पालन करने से (**कल्पताम्**) समर्थ हो, (**प्राणः**) जीवन का हेतु, बलकारी प्राण (**यज्ञेन**) धर्मयुक्त विद्याभ्यास से (**कल्पताम्**) समर्थ हो, (**चक्षुः**) चक्षु इन्द्रिय (**यज्ञेन**) शिष्टों के आचरण रूप प्रत्यक्ष विशेष से (**कल्पताम्**) समर्थ हो, (**श्रोत्रम्**) श्रोत्र इन्द्रिय (**यज्ञेन**) शब्दप्रमाण रूप वेदाभ्यास से (**कल्पताम्**) समर्थ हो, (**पृष्ठम्**) प्रश्न करना रूप (**यज्ञेन**) संवाद से (**कल्पताम्**) समर्थ हो, [**यज्ञः**] यज धातु के अर्थ—देवपूजा, संगतिकरण और दान [**यज्ञेन**] ब्रह्मचर्य आदि के आचरण से [**कल्पताम्**] समर्थ हों।

जैसे—हम लोग (**प्रजापतेः**) विश्वम्भर जगदीश्वर के समान धार्मिक राजा की (**प्रजाः**) पालन करने योग्य प्रजा (**अभूम**) हो, (**देवाः**) विद्वान् बनकर (**अमृताः**) मोक्ष सुख को प्राप्त करने वाले (**अभूम**) हों, (**स्वः**) सुख को (**अगन्म**) प्राप्त करें; ऐसा तुम निश्चय करो ॥ ९ । २१ ॥

[हे मनुष्याः !······यथा वयं प्रजापतेः प्रजा अभूम, देवाः सन्तोऽमृता अभूम, स्वरगन्मेति यूयं निश्चिनुत]

भावार्थः—ईश्वरः सर्वान् मनुष्यानिदमाज्ञापयति—यूयं मत्सदृशस्य सत्यगुणकर्मस्वभावस्यैव प्रजा भवतेतरस्य क्षुद्राऽऽशयस्य च कदाचित्प्रजाभावं मा स्वीकुरुत ।

यथा मां न्यायाधीशं मत्वा, मदाज्ञायां वर्तित्वा, सर्वं स्वं धर्मेण सहचरितं कृत्वाऽऽभ्युदयिकनिश्श्रेयसे सुखे नित्यं प्राप्नुतः, तथा यो हि धर्मेण न्यायेन

भावार्थ—ईश्वर सब मनुष्यों को आज्ञा देता है कि तुम लोग मेरे सदृश सत्य गुण-कर्म स्वभाव वाले राजा की प्रजा बनो, अन्य क्षुद्राशय पुरुष के प्रजाभाव को कभी स्वीकार मत करो।

जैसे मुझे न्यायाधीश मान, मेरी आज्ञा में रह कर, अपने सर्वस्व को धर्म से संयुक्त करके अभ्युदय और निःश्रेयस सुखों को नित्य प्राप्त करते हो वैसे

युष्मान् निरन्तरं पालयेत् तं च सभेशं राजानं मन्यध्वम् ॥ ६ । २१ ॥

जो पुरुष धर्मयुक्त न्याय से तुम्हारा सदा पालन करे उसी को सभापति राजा मानो ॥ ६ । २१ ॥

भा० पदार्थः—प्रजापतेः=यो हि धर्मेण न्यायेन युष्मान् निरन्तरं पालयेत् [**तस्य**] । स्वः=अभ्युदयिकनिश्श्रेयसे सुखे ॥

भाष्यसार—**मनुष्यों के लिये ईश्वर की आज्ञा**—ईश्वर मनुष्यों को आज्ञा देता है कि हे मनुष्यो ! तुम लोग धर्मयुक्त ईश्वर की आज्ञा के पालन से आयु को, धर्मयुक्त विद्याभ्यास से जीवन के हेतु बलकारी प्राण को, शिष्ट जनों के द्वारा किये प्रत्यक्ष विशेष से चक्षु को, शब्द प्रमाण के अभ्यास से श्रोत्र को, संवाद से प्रश्न-उत्तर को, ब्रह्मचर्य आदि के आचरण से देवपूजा, संगतिकरण और दान को समर्थ बनाओ, बढ़ाओ ।

तुम लोग मेरे सदृश सत्य गुण कर्म स्वभाव वाले पुरुष की ही प्रजा बनो, क्षुद्राशय पुरुष के निमित्त प्रजाभाव को कभी स्वीकार मत करो। जैसे तुम लोग मुझे न्यायाधीश मानकर, मेरी आज्ञा में रहकर, अपने सर्वस्व को धर्म से संयुक्त करके, विद्वान् बन कर अभ्युदय और निःश्रेयस अर्थात् मोक्षसुख को प्राप्त करते हो वैसे जो पुरुष धर्मयुक्त न्याय से तुम्हारा सदा पालन करे उसे ही सभापति राजा मानो; अन्य को नहीं ॥ ६ । २१ ॥

वसिष्ठः । **विशः=स्पष्टम्** । निचृदत्यष्टिः । गान्धारः ॥

ईश्वराज्ञातो मनुष्यैरिह कथं वर्तितव्यमित्युपदिश्यते ॥

ईश्वर की आज्ञा के अनुकूल मनुष्यों को संसार में कैसे वर्तना चाहिये, यह उपदेश किया है ॥

अस्मे वों ऽ अस्त्विन्द्रियमस्मे नृम्णमुत क्रतुरस्मे वर्चांᳬसि सन्तु वः ।
नमों मात्रे पृथिव्यै नमों मात्रे पृथिव्या ऽ इयं ते राड्यन्तासि यमनो ध्रुवोऽसि धरुणः ।
कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा ॥ २२ ॥

पदार्थः—(**अस्मे**) अस्माकमस्मभ्यं वा (**वः**) युष्माकं युष्मभ्यं वा (**अस्तु**) भवतु (**इन्द्रियम्**) मनआदीनि (**अस्मे**) में (**नृम्णम्**) धनम् (**उत**) अपि (**क्रतुः**) प्रज्ञा कर्म वा (**अस्मे**) मे (**वर्चांसि**) प्रकाशमानाध्ययनानि । वर्च इत्यन्ननाम० ॥ निघं० २ । ७ ॥ (**सन्तु**) (**वः**) युष्माकं युष्मभ्यं वा (**नमः**) अन्नादिकम् (**मात्रे**) मान्यनिमित्तायै (**पृथिव्यै**) विस्तृतायै भूमये (**नमः**) जलादिकम (**मात्रे**) (**पृथिव्यै**) (**इयम्**) (**ते**) तव (**राट्**) राजमाना (**यन्ता**) नियन्ता (**असि**) (**यमनः**) उपयन्ता (**ध्रुवः**) निश्चलः (**असि**) (**धरुणः**) धर्त्ता (**कृष्यै**) कृषन्ति=विलिखन्ति भूमिं यया तस्यै (**त्वा**) त्वाम् (**क्षेमाय**) रक्षणाय (**त्वा**) (**रय्यै**) श्रियै (**त्वा**) (**पोषाय**) पुष्टये (**त्वा**) ॥ अयं मन्त्रः शत० ५ । २ । १ । १५–२५ व्याख्यातः ॥ २२ ॥

प्रमाणार्थ—(**वर्चांसि**) 'वर्चः' शब्द निघं० (२ । ७) में अन्न-नामों में पढ़ा है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । २ । १ । १५–२५) में की गई है ॥ ६ । २२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्य ! अहमीश्वरः **कृष्यै** कृषन्ति=विलिखन्ति भूमिं यया तस्यै **त्वा** त्वां, **क्षेमाय** रक्षणाय **त्वा** त्वां, **रय्यै**

भावार्थ—हे मनुष्य ! मैं ईश्वर—(**कृष्यै**) कृषि कार्य के लिये (**त्वा**) तुझे, (**क्षेमाय**) रक्षा के लिये (**त्वा**) तुझे, (**रय्यै**) श्री=धनादि के लिये

श्रियै **त्वा** त्वां, **पोषाय** पुष्टये **त्वा** त्वां **नियुञ्जामि ।**

यस्त्वं ध्रुवः निश्चलः **यन्ता** नियन्ता **असि, धरुणः** धर्त्ता **यमनः** उपयन्ता **असि, यस्य ते**= तत्रेयं **राट्** राजमाना **अस्ति, अस्यै मात्रे** मान्यनिमित्तायै **पृथिव्यै** विस्तृतायै भूमये **नमः** अन्नादिकम्, **अस्यै मात्रे** मान्यनिमित्तायै **पृथिव्यै** विस्तृतायै भूमये **नमः** जलादिकं **विधेहि ।**

(**त्वा**) तुझे, (**पोषाय**) पुष्टि के लिये (**त्वा**) तुझे नियुक्त करता हूँ ।

जो तू—(**ध्रुवः**) निश्चल (**यन्ता**) नियन्ता (**असि**) है, (**धरुणः**) सबको धारण करने वाला (**यमनः**) पुरुषार्थी (**असि**) है, सो (**ते**) तेरी (**इयम्**) यह (**राट्**) प्रकाशमान पृथिवी है इस (**मात्रे**) मान के योग्य (**पृथिव्यै**) विस्तृत भूमि के लिये (**नमः**) अन्न आदि को तथा इस (**मात्रे**) मान के योग्य (**पृथिव्यै**) विस्तृत भूमि के लिये (**नमः**) जल आदि को उत्पन्न कर ।

सर्वे यूयं—यदस्मे अस्माकमस्मभ्यं वा **इन्द्रियं** मन आदीनि **तद्वः** युस्माकं युष्मभ्यं वा **अस्तु, यदस्मे** मे **नृम्णं** धनं **तद्वः** युष्माकं युस्मभ्यं वा **अस्तु, उत**=**अपि योऽस्मे** मे **क्रतुः** प्रज्ञा कर्म वा, **स वः** युष्माकं युष्मभ्यं वा **अस्तु, यान्यस्माकं वर्चांसि** प्रकाशमानाऽध्ययनानि **तानि वः** युष्माकं युष्मभ्यं वा **सन्तु यदेतत्सर्वं वः** युष्माकं युष्मभ्यं वा **अस्तु, तदस्माकमस्तु, इत्येवं परस्परं यूयं समाचरत** ॥ ९ । २२ ॥

तुम सब लोग जो (**अस्मे**) हमारी (**इन्द्रियम्**) मन आदि इन्द्रियाँ हैं वे (**वः**) तुम्हारी (**अस्तु**) हों, जो (**अस्मे**) मेरा (**नृम्णम्**) धन है वह (**वः**) तुम्हारा (**अस्तु**) हो, (**उत**) और जो (**अस्मे**) मेरी (**क्रतु**) बुद्धि वा कर्म है, वह (**वः**) तुम्हारे लिये (**अस्तु**) हो, जो हमारे (**वर्चांसि**) प्रकाशमान अध्ययन आदि हैं वे (**वः**) तुम्हारे लिये (**सन्तु**) हों, जो यह सब (**वः**) तुम्हारा वा तुम्हारे लिये (**अस्तु**) हो वह सब हमारा हो, इस प्रकार तुम परस्पर आचरण करो ॥ ९ । २२ ॥

[**हे मनुष्य ! अहमीश्वरः कृष्यै त्वा···नियुञ्जामि**]

भावार्थः—मनुष्यान् प्रतीश्वरस्येयमाज्ञाऽस्ति—भवन्तः सदैव सत्कर्मसु प्रयतन्ताम्, आलस्यं मा कुर्वताम् ।

भावार्थ—मनुष्यों के लिये ईश्वर को यह आज्ञा है कि आप लोग सदा सत्कर्मों में प्रयत्नशील रहो, आलस्य मत करो ।

[**अस्यै मात्रै पृथिव्यै नमः···विधेहि···यदेतत्सर्वं वोऽस्तु तदस्माकमस्तु, इत्येव परस्परं यूयं समाचरत**]

पृथिव्याः सकाशदन्नादीन्युत्पाद्य संरक्ष्यै तत्सर्वं परस्परमुपकाराय यथा स्यात् तथाऽनुतिष्ठन्तु, कदाचिद् विरोधं मा कुर्वन्तु, तथा तद्धितं विदधताम् ॥ ९ । २२ ॥

पृथिवी से अन्न आदि उत्पन्न करके तथा उनकी रक्षा करके परस्पर उपकार के लिये जैसे हो वैसा आचरण करो, कभी विरोध मत करो, अपितु परस्पर हित किया करो ॥ ९ । २२ ॥

भाष्यसार—**ईश्वर आज्ञा से मनुष्य कैसे वर्ताव करें**—ईश्वर आज्ञा देता है कि हे मनुष्य ! मैं तुझे कृषि-कार्य में नियुक्त करता हूँ । तू कृषि से उत्पन्न अन्न आदि की रक्षा कर । लक्ष्मी और पुष्टि को प्राप्त कर । ईश्वर की इस आज्ञा के अनुसार सब मनुष्य कृषि आदि सत्कर्मों में प्रयत्नशील रहें । आलस्य कभी न करें ।

ईश्वर की आज्ञा से सब मनुष्य शुभकर्मों में निश्चल रहें, नियन्ता बनें, सब का धारण-पोषण करने वाले हों। ईश्वर की रची यह पृथिवी मनुष्य की माता है, माता के समान पालन करने वाली है। इससे अन्न आदि उत्पन्न करके उनकी रक्षा करें। सब मनुष्य मन, धन, बुद्धि वा कर्म से परस्पर उपकार करें। विद्या आदि सर्वस्व परस्पर उपकार के लिये हों। परस्पर विरोध कभी न करें अपितु ऐसा आचरण करें जिससे एक-दूसरे का हित ही हो ॥ ६ । २२ ॥

वसिष्ठः । **प्रजापतिः**=राजा । स्वराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ।

पुनस्तैरत्र कथं भवितव्यमित्याह ॥

फिर मनुष्यों को इस विषय में कैसा होना चाहिये, यह उपदेश किया है ॥

वाजस्येमं प्रसवः सुषुवेऽग्रे सोमꣳ राजानमोषधीष्वप्सु ।
ताऽअस्मभ्यं मधुमतीर्भवन्तु वयꣳराष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः स्वाहा ॥ २३ ॥

पदार्थः—(**वाजस्य**) बोधस्य सकाशात् (**इमम्**) (**प्रसवः**) ऐश्वर्ययुक्तः (**सुषुवे**) प्रसुव= उत्पादये (**अग्रे**) पूर्वम् (**सोमम्**) सोममिव सर्वदुःखप्रणाशकं (**राजानम्**) विद्यान्यायविनयैः प्रकाशमानं स्वामिनम् (**ओषधीषु**) पृथिवीस्थासु यवादिषु (**अप्सु**) जलेषु वर्त्तमानाः (ताः) (**अस्मभ्यम्**) (**मधुमतीः**) प्रशस्ता मधवो=मधुरादयो गुणा विद्यन्ते यासु ताः (**भवन्तु**) (**वयम्**) अमात्यादयो भृत्याः (**राष्ट्रे**) राज्ये (**जागृयाम**) सचेतना=अनलसाः सन्तो वर्त्तेमहि (**पुरोहिताः**) सर्वेषां हितकारिणः (**स्वाहा**) सत्यया क्रियया सह ॥ **अयं मन्त्रः शत० ५ । २ । २ । ५ व्याख्यातः ॥ २३ ॥**

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । २ । २ । ५) में की गई है ॥ ६ । २३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! **यथा-हमग्रे पूर्वं प्रसवः** ऐश्वर्य्ययुक्तः **सन् वाजस्य** बोधस्य सकाशात् **इमं सोमं** सोममिव सर्वदुःखप्रणाशकं **राजानं** विद्यान्यायविनयैः प्रकाशमानं स्वामिनं **सुषुवे** प्रसुवे=उत्पादये—

यथां तद्रक्षणेन या ओषधीषु पृथिवीस्थासु यवादिषु **अप्सु** जलेषु वर्त्तमानाः **ओषधयः सन्ति, ता अस्मभ्यं मधुमतीः** प्रशस्ता मधवः=मधुरादयो गुणा विद्यन्ते यासु ताः **भवन्तु**—

यथा स्वाहा सत्यया क्रियया सह **पुरोहिताः** सर्वेषां हितकारिणः **वयम्** अमात्यादयोभृत्याः राष्ट्रे राज्ये **सततं जागृयाम** सचेतनाः=अनलसाः सन्तो वर्तेमहि, **तथा यूयमपि वर्त्तध्वम्** ॥ ६ । २३ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (**अग्रे**) पहले (**प्रसवः**) ऐश्वर्य से युक्त होकर (**वाजस्य**) ज्ञान से इस (**सोमम्**) सोम के समान सब दुःखों के नाशक (**राजानम्**) विद्या, न्याय और विनय से प्रकाशमान राजा को (**सुषुवे**) उत्पन्न करता हूँ—

जैसे—उसकी रक्षा से जो (**ओषधीषु**) पृथिवीस्थ यव [जौ] आदि औषधियों में एवं (**अप्सु**) जलों में वर्तमान औषधियाँ हैं वे हमारे लिये (**मधुमतीः**) प्रशस्त मधुर आदि गुणों से युक्त (**भवन्तु**) हों—

जैसे—(**स्वाहा**) सत्याचरण से (**पुरोहिताः**) सबके हितकारी (**वयम्**) हम मन्त्री आदि सेवक लोग (**राष्ट्रे**) राज्य में सदा (**जागृयाम**) पुरुषार्थी होकर वर्ताव करें, वैसे तुम प्रजा जन भी वर्ताव किया करो ॥ ६ । २३ ॥

[हे मनुष्याः ! यथाहमग्रे······इमं सोमं राजानं सुषुवे, यथा तद्रक्षणेन या······ओषधयः सन्ति ता अस्मभ्यं मधुमतीर्भवन्तु]

भावार्थः—शिष्टा मनुष्याः सर्वविद्याचातुर्य्या-

भाषार्थ—शिष्ट जन सब विद्याओं में चतुर,

राग्यसहितं सौम्यादिगुणालंकृतं राजनं संस्थापयेयुः, तद्रक्षको वैद्य एवं प्रवर्त्तेत यथाऽस्य शरीरे बुद्धावात्मनि च रोगावेशो न स्यात् ।

आरोग्यवान् सोम्यता आदि गुणों से अलंकृत पुरुष को राजा बनावें और उसका रक्षक वैद्य ऐसा यत्न करे कि जिससे राजा के शरीर बुद्धि और आत्मा में कोई रोग प्रवेश न कर सके ।

[यथा······पुरोहिता वयं राष्ट्रे सततं जागृयाम तथा यूयमपि वर्त्तध्वम्]

इत्यमेव राजवैद्यो सर्वानमात्यादीन् भृत्यानरोगान् संपादयेताम्, यत एते राज्यस्य सज्जनपालने दुष्टताडने सदा प्रयतेरन् । राजा प्रजा च पितापुत्रवत् सदा वर्तेयाताम् ॥ ९ । २३ ॥

इसी प्रकार राजा और वैद्य दोनों अपने सब मन्त्रियों तथा भृत्यों को निरोग करें, जिससे ये लोग राज्य के सज्जनों का पालन और दुष्टों के ताड़न में सदा प्रयत्नशील रहें। राजा और प्रजा सदा पिता पुत्र के समान वर्ताव करें ॥ ९ । २३ ॥

भा० पदार्थः—सोमम्=सौम्यादिगुणालङ्कृतम् । सुषुवे=संस्थापये ॥

भाष्यसार—**मनुष्य कैसे हों**—शिष्टजनों का कर्त्तव्य है कि वे प्रथम ऐश्वर्य-सम्पन्न हों तथा अपने ज्ञान से सब विद्याओं में चतुर, आरोग्यवान्, सोम के समान सब दुःखों के नाशक एवं सोम्यता आदि गुणों से अलङ्कृत, विद्या, न्याय, विनय आदि गुणों से प्रकाशमान पुरुष को राजा बनावें। उसकी रक्षा में एक वैद्य को नियुक्त करें जो पृथिवीस्थ और जलस्थ औषधियों का ज्ञाता हो। वह प्रशस्त मधुर आदि गुणों से युक्त औषधियों से ऐसा प्रयत्न करे कि जिससे राजा के शरीर, बुद्धि और आत्मा में कोई रोग प्रवेश न कर सके ।

राजा और वैद्य मिलकर ऐसा प्रयत्न करें कि जिससे सबके हितकारी मन्त्री आदि राजा के सेवक लोग सदा नीरोग रहें। जिससे वे सदा आलस्य रहित (**पुरुषार्थी**) होकर सज्जनों का पालन और दुष्टों का ताड़न करते रहें। राजा और प्रजा परस्पर पिता-पुत्र के समान वर्ताव करें ॥ ९ । ३२ ॥

वसिष्ठः । **प्रजापतिः**=सम्राट् । भुरिग्जगती । निषादः ॥

राजा किमाश्रित्य केन किं कुर्य्यादित्युपदिश्यते ॥

राजा किसका आश्रय लेकर किस के साथ क्या करे, यह उपदेश किया है ॥

वाजस्येमां प्रसवः शिश्रिये दिवमिमा च विश्वा भुवनानि सम्राट् ।
अदित्सन्तं दापयति प्रजानन्त्स नो रयिꣳसर्ववीरं नियच्छतु स्वाहा ॥ २४ ॥

पदार्थः—(**वाजस्य**) राजस्य (**इमाम्**) भूमिम् (**प्रसवः**) प्रसूतः (**शिश्रिये**) समाश्रये (**दिवम्**) देदीप्यमानां राजनीतिम् (**इमा**) इमानि (**च**) (**विश्वा**) सर्वाणि (**भुवनानि**) गृहाणि (**सम्राट्**) यो राजधर्मे सम्यग्राजते सः (**अदित्सन्तम्**) राजकरं दातुमनिच्छन्तम् (**दापयति**) (**प्रजाजन्**) प्रज्ञावान् सन् (**सः**) (**नः**) अस्माकं प्रजास्थानाम् (**रयिम्**) धनम् (**सर्ववीरम्**) सर्वे वीरा यस्मात्तत्(**नि**) नितराम् (**यच्छतु**) गृह्णातु (**स्वाहा**) धर्म्यया वाचा ॥ **अयं मन्त्रः शत० ५ । २ । २ । ६ व्याख्यातः ॥ २४ ॥**

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । २ । २ । ६) में की गई है ॥ ९ । २४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! यथा वाजस्य राज्यस्य मध्ये **प्रसवः** प्रसूतः **सम्राट्** यो

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**वाजस्य**) राज्य में (**प्रसवः**) उत्पन्न (**सम्राट्**) राजधर्म में

राजधर्मे सम्यग्राजते सः **अहमिमां** भूमिं **दिवं** देदीप्यमानां राजनीतिम् **इमा** इमानि **विश्वा** सर्वाणि **भुवनानि** गृहाणि **च** **शिश्रिये** समाश्रये **तथा यूयमप्येनामेतानि चाश्रयत्** ।

उत्तम रीति से प्रकाशमान सम्राट् में—(**इमाम्**) इस भूमि, (**दिवम्**) देदीप्यमान राजनीति और (**विश्वा**) सब (**भुवनानि**) घरों में (**शिश्रिये**) निवास करता हूँ वैसे तुम लोग भी इस भूमि, राजनीति और इन घरों में निवास करो। और—

यः स्वाहा धर्म्यया वाचा **प्रजानन्** प्रज्ञावान् सन् **अदित्सन्तं** राजकरं दातुमनिच्छन्तं **दापयति, स नः** अस्माकं प्रजास्थानां **सर्ववीरं** सर्वे वीरा यस्मात्तद् **रयिं** धनं **नियच्छतु** । नितरां गृह्णातु ॥ ९ । २४ ॥

जो (**स्वाहा**) धर्मयुक्त वाणी से (**प्रजाजन**) बुद्धिमान होकर (**अदित्सन्तम्**) राजकर देने की इच्छा न रखने वाले से (**दापयति**) राजकर दिलाता है वह (**नः**) हम प्रजा-जनों के (**सर्ववीरम्**) सब वीरों की प्राप्ति के हेतु (**रयिम्**) धन को (**नियच्छतु**) सर्वथा ग्रहण करे ॥ ९ । २४ ॥

[हे मनुष्याः !···वाजस्य मध्ये प्रसवः सम्राडहमिमां दिवमिमा विश्वा भुवनानि च शिश्रिये]

भावार्थः—हे मनुष्याः ! यो मूलस्य राज्यस्य मध्ये सनातनीं राजनीतिं विदित्वा राज्यं संरक्षितुं शक्नुयात् तमेव चक्रवर्तिनं राजानं कुरुत।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो मूल राज्य के मध्य में सनातन राजनीति को जानकर राज्य का संरक्षण कर सके उसी को चक्रवर्ती राजा बनाओ।

[यः···प्रजानन्नदित्सन्तं दापयति, स नः सर्ववीरं रयिं नियच्छतु]

यः करस्य दातारं करं दापयेत् सोऽमात्यो भवितुमर्हेत् ।

जो कर देने वाले से कर दिलावे वह मन्त्री बनने के योग्य है।

यः शत्रून् निग्रहीतुं शक्नुयात् तं सेनापतिं कुरुत ।

जो शत्रुओं को पकड़ सके उसे सेनापति बनाओ ।

यो विद्वान् धार्मिको भवेत् तं न्यायाधीशं कोशाध्यक्षं वा कुरुत ॥ ९ । २४ ॥

जो विद्वान् धार्मिक हो उसे न्यायाधीश वा कोशाध्यक्ष बनाओ ॥ ९ । २४ ॥

भा० पदार्थः—सम्राट्=चक्रवर्ती राजा। दिवम्=सनातनीं राजनीतिम् । प्रजानन्=विद्वान् धार्मिकः ॥

भाष्यसार—**राजा किसके आश्रय से किस के साथ क्या करे**—राज्य में चक्रवर्ती सम्राट् राजधर्म में उत्तम रीति से प्रकाशमान हो। वह सनातन राजनीति के आश्रय से इस भूमि एवं सब भुवनों के राज्य का संरक्षण करे। जो धर्मयुक्त वाणी से भूषित अर्थात् धार्मिक हो और प्रज्ञावान् (विद्वान्) हो उसे न्यायाधीश वा कोशाध्यक्ष बनावे। जो व्यक्ति राजकर देना नहीं चाहता उससे जो राजकर दिलाने में समर्थ हो उस व्यक्ति को मन्त्री बनावे। और जो व्यक्ति शत्रुओं को निग्रह (गिरफ्तार) कर सके उसे सेनापति बनावे ॥ ९ । २४ ॥

वसिष्ठः । **प्रजापतिः**=राजा । स्वराट्त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुना राजा कीदृशो भवेदित्याह ॥

राजा कैसा हो, इस विषय का फिर उपदेश किया है ॥

वाज॑स्य॒ नु प्र॑स॒व आब॑भूवे॒मा च॒ विश्वा॒ भुव॑नानि स॒र्वतः॑ ।
सने॑मि॒ राजा॒ परि॑याति वि॒द्वान् प्र॒जां पुष्टिं॑ व॒र्धय॑मानो ऽ अ॒स्मे स्वाहा॑ ॥ २५ ॥

पदार्थः—(**वाजस्य**) वेदादिशास्त्रोत्पन्नबोधस्य (**नु**) शीघ्रम् (**प्रसवः**) यः प्रसूते सः (**आ**) समन्तात् (**बभूव**) भवेत् (**इमा**) इमानि (**च**) (**विश्वा**) सर्वाणि (**भुवनानि**) माण्डलिकराजनिवासस्थानानि (**सर्वतः**) (**सनेमि**) सनातनेन नेमिना=धर्मेण सह वर्त्तमानं राज्यमण्डलम् (**राजा**) वेदोक्तराजगुणैः प्रकाशमानः (**परि**) (**याति**) प्राप्नोति (**विद्वान्**) सकलविद्यावित् (**प्रजाम्**) पालनीयाम् (**पुष्टिम्**) पोषणम् (**वर्धयमानः**) (**अस्मे**) अस्माकम् (**स्वाहा**) सत्यया नीत्या ॥ **अयं मन्त्रः शत० ५ । २ । २ । ७ व्याख्यातः** ॥ २५ ॥

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । २ । २ । ७) में की गई है ॥ ९ । २५ ॥

सपदार्थान्वयः—**यो वाजस्य** वेदादिशास्त्रोत्पन्नबोधस्य **स्वाहा** सत्यया नीत्या **प्रसवः** यः प्रसूते सः **विद्वान्** सकलविद्यावित् **आ+बभूव** समन्ता भवेत्, **इमा** इमानि **विश्वा** सर्वाणि **भुवनानि** माण्डलिकराजनिवासस्थानानि **सनेमि** सनातनेन नेमिना=धर्मेण सह वर्त्तमानं राज्यमण्डलं **च प्रजां** पालनीयां **पुष्टिं** पोषणं **नु** शीघ्रं [**सर्वतः**] **वर्धयमानः परियाति** प्राप्नोति, **सोऽस्मे** अस्माकं **राजा** वेदोक्तराजगुणैः प्रकाशमानः **भवतु** ॥ ९ । २५ ॥

भाषार्थ—जो (**वाजस्य**) वेदादि शास्त्रों से उत्पन्न बोध की (**स्वाहा**) सत्य नीति से (**प्रसवः**) उत्पन्न होने वाला (**विद्वान्**) सकल विद्याओं को जानने वाला विद्वान् (**आ+बभूव**) हो, वह (**इमानि**) इन (**विश्वा**) सब (**भुवनानि**) माण्डलिक राजाओं के निवास-स्थानों को और (**सनेमि**) सनातन धर्म से युक्त राज्यमण्डल को तथा (**प्रजाम्**) पालन के योग्य प्रजा को और (**पुष्टिम्**) पोषण को (**नु**) शीघ्र [**सर्वतः**] सब ओर से बढ़ाकर (**परियाति**) प्राप्त करता है वह (**अस्मे**) हमारा (**राजा**) वेदोक्त राज-गुणों से प्रकाशमान राजा (**भवतु**) बने ॥ ९ । २५ ॥

[**यो**···**स्वाहा**···**विद्वानाबभूव, इमा विश्वा भुवनानि सनेमि च प्रजां पुष्टिं नु** [**सर्वतः**] **वर्धयमानः परियाति सोऽस्मे राजा भवतु**]

भावार्थः—ईश्वरोऽभिवदति—हे मनुष्याः ! यूयं यः प्रशंसितगुणकर्मस्वभावो राज्यं रक्षितुं समर्थो भवेत् तं सभाध्यक्षं कृत्वाऽऽप्तनीत्या साम्राज्यं कुरुतेति ॥ ९ । २५ ॥

भावार्थ—ईश्वर उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! तुम लोग जो व्यक्ति उत्तम गुण-कर्म-स्वभाव वाला एवं राज्य की रक्षा करने में समर्थ हो उसे सभाध्यक्ष बनाकर आप्त-नीति से राज्य करो ॥ ९ । २५ ॥

भा० पदार्थः—स्वाहा=आप्तनीत्या । विद्वान्=प्रशंसित गुणकर्मस्वभावः । राजा=सभाध्यक्षः ॥

भाष्यसार—**राजा कैसा हो**—राजा वेदादि शास्त्रों का ज्ञाता, सच्ची आप्त नीति का वेत्ता, प्रशंसित गुण, कर्म, स्वभाव वाला एवं सकल विद्याओं का ज्ञाता विद्वान् हो । सब भुवनों अर्थात् माण्डलिक राजाओं के निवास-स्थानों को, राज्यमण्डल को, प्रजा तथा पुष्टिकारक पदार्थों को बढ़ाने वाला हो । राज्य की रक्षा करने में समर्थ हो ।

जो इन वेदोक्त राजगुणों से प्रकाशमान हो उसे ही प्रजाजन सभाध्यक्ष राजा बनाकर आप्त-जनों की नीति से राज्य करें ॥ ९ । २५ ॥ ●

तापसः । **सोमाग्न्यादित्यविष्णुबृहस्पतयः**=सोमादिगुणसम्पन्नो राजा ॥
अनुष्टुप् । गांधारः ॥

पुनः कीदृशं राजानं स्वीकुर्य्युरित्युपदिश्यते ॥

फिर कैसे राजा को स्वीकार करें, इस विषय का उपदेश किया है ॥

सोमꣳ राजानमवसेऽग्निमन्वारभामहे ।
आदित्यान्विष्णुꣳसूर्य्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिꣳ स्वाहा ॥ २६ ॥

पदार्थः—(**सोमम्**) सोमगुणसम्पन्नम् (**राजानम्**) धर्माचरणेन प्रकाशमानम् (**अवसे**) रक्षणाद्याय (**अग्निम्**) अग्निमिव शत्रुदाहकम् (**अन्वारभामहे**) (**आदित्यान्**) विद्याऽर्जनाय कृताऽष्टचत्वारिंशद्वर्षब्रह्मचर्य्यान् विदुषः (**विष्णुम्**) व्यापकं परमेश्वरम् (**सूर्य्यम्**) सूरिषु=विद्वत्सु भवम् (**ब्रह्माणम्**) अधीतसाङ्गोपाङ्गचतुर्वेदम् (**च**) (**बृहस्पतिम्**) बृहतामाप्तानां पालकम् (**स्वाहा**) सत्यया वाण्या ॥ २६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः! यथा वयं **स्वाहा** सत्यया वाण्या **अवसे** रक्षणाद्याय **सहवर्त्तमानं विष्णुं** व्यापकं परमेश्वरं **सूर्य्यं** सूरिषु=विद्वत्सु भवं **ब्रह्मणम्** अधीतसाङ्गोपाङ्गचतुर्वेदं **बृहस्पतिं** बृहताम्=आप्तानां पालकम् **अग्निम्** अग्निमिव शत्रुदाहकं **सोमं** सोमगुणसम्पन्नं **राजानं** धर्माचरणेन प्रकाशमानं **आदित्यान्** विद्याऽर्जनाय कृताष्टाचत्वारिंशद्वर्षब्रह्मचर्य्यान् विदुषः **चाऽन्वारभामहे, तथा यूयमप्यारभध्वम्** ॥ ९ । २६ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (**स्वाहा**) सत्यवाणी से (**अवसे**) रक्षा आदि के लिये साथ रहने वाले (**विष्णुम्**) व्यापक परमेश्वर की, (**सूर्यम्**) विद्वानों में विराजमान (**ब्रह्माणम्**) साङ्गोपाङ्ग चारों वेदों के अध्येता को, (**बृहस्पतिम्**) आप्त जनों के पालक (**अग्निम्**) अग्नि के समान शत्रुओं के दाहक (**सोमम्**) सोम्य गुणों से सम्पन्न (**राजानम्**) धर्माचरण से प्रकाशमान राजा को, और (**आदित्यान्**) विद्या अर्जन के लिये अड़तालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य पालन करने वाले विद्वानों को (**अन्वारभामहे**) स्वीकार करते हैं, वैसे तुम लोग भी स्वीकार करो ॥ ९ । २६ ॥

[वयं स्वाहा ऽवसे···अग्निं···राजानमादित्यांश्चान्वारभामहे]

भावार्थः—ईश्वराज्ञाऽस्तिसर्वे मनुष्या रक्षणाद्याय ब्रह्मचर्यादिना विद्यापारगान् विदुषस्तन्मध्य उत्तमं सूर्यादिगुणसम्पन्नं राजानं च स्वीकृत्य सत्यां नीतिं वर्धयन्त्विति ॥ ९ । २६ ॥

भावार्थ—ईश्वर की आज्ञा है कि सब मनुष्य रक्षा आदि के लिये ब्रह्मचर्य आदि से विद्या में पारंगत विद्वानों को तथा उनके मध्य में श्रेष्ठ, सूर्य आदि गुणों से सम्पन्न राजा को स्वीकार करके सत्य-नीति को बढ़ावें ॥ ९ । २६ ॥

भा० पदार्थः—स्वाहा=सत्यनीत्या । अग्निम्=सूर्यादिगुणसम्पन्नम् [**राजानम्**] । आदित्यान्=ब्रह्मचर्यादिना विद्यापारगान्=विदुषः ॥

भाष्यसार—**कैसे राजा को स्वीकार करें**—प्रजाजन सत्य नीति से रक्षा आदि के लिये सदा साथ रहने वाले, व्यापक परमेश्वर के समान, विद्वानों में रहने वाले, साङ्गोपाङ्ग चारों वेदों के ज्ञाता, आप्त-जनों के पालक, अग्नि के समान शत्रुओं का दहन करने वाले एवं सूर्य के गुणों से सम्पन्न, सोम्य गुणों से शोभायमान, धर्माचरण से प्रकाशमान पुरुष को राजा स्वीकार करें ।

विद्या अर्जन के लिये अड़तालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले अर्थात् ब्रह्मचर्य आदि से विद्या में पारंगत विद्वानों को भी स्वीकार करें तथा सत्य-नीति को बढ़ावें ॥ ९ । २६ ॥

तापसः । **अर्य्यमादिमन्त्रोक्ताः**=न्यायकर्त्रादयो मनुष्याः ॥ स्वराडनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुना राजा कान्कस्मिन्प्रेरयेदित्याह ॥

फिर राजा किन को किस में प्रेरित करे, इस विषय का उपदेश किया है ॥

अर्य्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय ।
वाचं विष्णुꣳ सरस्वतीꣳ सवितारं च वाजिनꣳ स्वाहा ॥ २७ ॥

पदार्थः—(**अर्यमणम्**) पक्षपातराहित्येन न्यायकर्त्तारम् (**बृहस्पतिम्**) सकलविद्याध्यापकम् (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्य्ययुक्तम् (**दानाय**) (**चोदय**) प्रेरय (**वाचम्**) देववाणीम् (**विष्णुम्**) सर्वाधिष्ठातारम् (**सरस्वतीम्**) बहुविधं सरो=वेदादिशास्त्रविज्ञानं विद्यते यस्यास्तां विज्ञानयुक्तामध्यापिकां स्त्रियम् (**सवितारम्**) वेदविद्यैश्वर्य्योत्पादकम् (**च**) (**वाजिनम्**) प्रशस्तबलवेगादियुक्तं शूरवीरम् (**स्वाहा**) सत्यया नीत्या ॥ अयं मन्त्रः शत० ५ । २ । २ । ९ व्याख्यातः ॥ २७ ॥

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । २ । २ । ९) में की गई है ॥ ९ । २७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे राजन् ! त्वं स्वाहा सत्यया नीत्या **दानायार्य्यमणं** पक्षपातराहित्येन न्यायकर्त्तारं **बृहस्पतिं** सकलविद्याऽध्यापकम् **इन्द्रं** परमैश्वर्ययुक्तं **वाचं** वेदवाणीं **विष्णुं** सर्वाधिष्ठातारं **सवितारं** वेदविद्यैश्वर्य्योत्पादकं **वाजिनं** प्रशस्तबलवेगादियुक्तं शूरवीरं **सरस्वतीं** बहुविधं सरः=वेदादिशास्त्रविज्ञानं विद्यते यस्यास्तां विज्ञानयुक्तामध्यापिकां स्त्रियं **च सत्कर्मसु सदा चोदय** प्रेरय ॥ ९ । २७ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! आप (**स्वाहा**) सत्य नीति से (**दानाय**) दान करने के लिये (**अर्यमणम्**) पक्षपात रहित न्यायकर्त्ता को, (**बृहस्पतिम्**) सकल विद्याओं के अध्यापक को, (**इन्द्रम्**) परम ऐश्वर्य से युक्त पुरुष को, (**वाचम्**) वेदवाणी को, (**विष्णुम्**) सबके अधिष्ठाता पुरुष को, (**सविस्तारम्**) वेदविद्या से ऐश्वर्य के उत्पादक मनुष्य को, (**वाजिनम्**) प्रशस्त बल एवं वेग आदि गुणों से युक्त शूरवीर को, और (**सरस्वतीम्**) नाना प्रकार के सर= वेदादि शास्त्रों के विज्ञान से युक्त अध्यापिका स्त्री को शुभ कर्मों में सदा (**चोदय**) प्रेरित कीजिये ॥ ९ । २७ ॥

[**हे राजन् ! त्वं स्वाहा दानायार्यमणं·····सरस्वतीं च सत्कर्मसु सदा चोदय**]

भावार्थः—ईश्वरोऽभिवदतिराजा स्वयं धार्मिको विद्वान् भूत्वा सर्वान् न्यायाधीशान् मनुष्यान् विद्याधर्मवर्धनाय सततं प्रेरयेद्, यतो विद्या-धर्मवृद्धचाऽविद्याऽधौ निवृत्तौ स्याताम् ॥ ९ । २७ ॥

भावार्थ—ईश्वर उपदेश करता है कि राजा स्वयं धार्मिक विद्वान् होकर सब न्यायाधीश मनुष्यों को विद्या और धर्म की वृद्धि के लिये सदा प्रेरित करे, जिससे विद्या और धर्म की वृद्धि तथा अविद्या और अधर्म की निवृत्ति होवे ॥ ९ । २७ ॥

भा० पदार्थः—दानाय=विद्याधर्मवर्धनाय । अर्यमणम्=न्यायाधीशम् ॥

भाष्यसार—राजा किन्हें किस में प्रेरित करे—राजा प्रथम स्वयं धार्मिक विद्वान् हो। वह सत्य-नीति से विद्या और धर्म की वृद्धि के लिये पक्षपात रहित होकर न्याय करने वाले न्यायाधीशों को प्रेरित करे। बृहस्पति अर्थात् सकल विद्याओं के अध्यापक को, इन्द्र अर्थात् परम ऐश्वर्य से सम्पन्न पुरुष को, वेद-वाणी को, विष्णु अर्थात् सबके अधिष्ठाता को, सविता अर्थात् वेद विद्या से ऐश्वर्य को उत्पन्न करने वाले पुरुष को, वाजी अर्थात् उत्तम बल, वेग आदि गुणों से युक्त शूरवीर को, और सरस्वती अर्थात् वेदादि शास्त्रों के विज्ञान से भरपूर अध्यापिका स्त्री को भी शुभ कर्मों में लगावे। जिससे विद्या और धर्म की वृद्धि तथा अविद्या और अधर्म की निवृत्ति होवे ॥ ६। २७ ॥ ●

तापसः । **अग्निः=विद्वान् राजा** ॥ भुरिगनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनः स राजा किं किं कुर्य्यादित्याह ॥

फिर वह राजा क्या क्या करे, यह उपदेश किया है ॥

अग्ने ऽ अच्छा वदेह नः प्रति नः सुमना भव ।
प्र नो यच्छ सहस्रजित् त्वꣳ हि धनदा ऽ असि स्वाहा ॥ २८ ॥

पदार्थः—(**अग्ने**) विद्वन् (**अच्छ**) सम्यक् निपातस्य च ॥ अ० ६ । ३ । १३६ ॥ इति दीर्घः (**वद**) सत्यमुपदिश (**इह**) अस्मिन् समये (**नः**) अस्मान् (**प्रति**) (**नः**) अस्मान् (**सुमनाः**) सुहृद्भावः (**भव**) (**प्र**) (**नः**) अस्मभ्यम् (**यच्छ**) देहि (**सहस्रजित्**) असहायः सन् सहस्रं योद्धॄन् जेतुं शीलः (**त्वम्**) (**हि**) यतः (**धनदाः**) ऐश्वर्य्यदाता (**असि**) (**स्वाहा**) सत्यया वाण्या ॥ अयं मन्त्रः शत० ५ । २ । २ । १० व्याख्यातः ॥ २८ ॥

प्रमाणार्थ—(**अच्छा**) अच्छ। यहां 'निपातस्य च' (अ० ६। ३। १३६) इस सूत्र से दीर्घ है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५। २। २। १०) में की गई है ॥ ६। २८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने**! विद्वन्! **त्वमिह** अस्मिन् समये **स्वाहा** सत्यया वाण्या **नः** अस्मान् **अच्छ** सम्यक् **वद** सत्यमुपदिश, **नः**= **अस्मान् प्रति सुमनाः** सुहृद्भावः **भव**।

त्वं हि यतः **सहस्रजित्** असहायः सन् सहस्रं योद्धॄन् जेतुं शीलः **धनदाः** ऐश्वर्यदाता **असि**, **तस्मान्नः** अस्मभ्यं **सुखं प्रयच्छ** ॥ ६। २८ ॥

भाषार्थ—हे (**अग्ने**!) विद्वान् राजन्! आप (**इह**) इस समय (**स्वाहा**) सत्य वाणी से (**नः**) हमें (**अच्छ**) अच्छा (**वद**) सत्य उपदेश कीजिये, और (**नः**) हमारे प्रति (**सुमनाः**) सौहार्द्र (**भव**) रखिये।

आप (**हि**) क्योंकि (**सहस्रजित्**) अकेले ही सहस्रों योद्धाओं को जीतने वाले तथा (**धनदाः**) ऐश्वर्य के दाता (**असि**) हो, अतः (**नः**) हमें सुख प्रदान कीजिये ॥ ६। २८ ॥

[हे अग्ने त्वमिह!···नोऽच्छ वद, नः=अस्मान् प्रति सुमना भव, त्वं हि···धनदा असि]

भावार्थः—ईश्वर आह—राजा प्रजासेना-जनान् प्रति सदा सत्यं प्रियं च वदेत्, तेभ्यो धनं दद्याद् गृह्णीयाच्च।

भावार्थ—ईश्वर उपदेश करता है कि राजा प्रजाजनों और सैनिकों के प्रति सदा सत्य और प्रिय भाषण करे, उन्हें धन देवे और उनसे ग्रहण भी करे।

[त्वं हि सहस्रजित् ··· असि, तस्मान्नः सुखं प्रयच्छ]

शरीरात्मबलं वर्धित्वा नित्यं शत्रून् जित्वा धर्मेण प्रजाः पालयेदिति ॥ ९ । २८ ॥

अपने शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाकर, नित्य शत्रुओं को जीतकर धर्म से प्रजा का पालन करे ॥ ९ । २८ ॥

भा० पदार्थः--अग्ने=राजन् । अच्छ=सत्यं प्रियं च ।

भाष्यसार—**राजा क्या क्या करे**--विद्वान् राजा अपने समय में सत्य-वाणी से प्रजाजनों और सैनिक जनों को उत्तम रीति से सत्य उपदेश करे। उनके प्रति सत्य और प्रिय भाषण करे। उनसे अत्यन्त सुहृदभाव रखें। शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाकर अकेला ही सहस्रों योद्धाओं को जीते। प्रजाजनों और सैनिकों को ऐश्वर्य (**धन**) देवे तथा उनसे धन ग्रहण भी करे। धर्म से प्रजा का पालन करके उसे सुख प्रदान करे ॥ ९ । २८ ॥

तापसः । **अर्य्यमादिमन्त्रोक्ताः**=न्यायधीशादयः ॥ भुरिगार्षी गायत्री । षड्जः ॥

राजा मात्रादयश्च प्रजाः किंकिमुपदिशेयुरित्याह ॥

प्रजा और सन्तानों को राजा और माता आदि क्या-क्या उपदेश करें, यह उपदेश किया है ॥

प्र नो॑ यच्छत्वर्य्य॒मा प्र पू॒षा प्र बृह॒स्पतिः॑ । प्र वाग्दे॒वी द॑दातु न॒ स्वाहा॑ ॥ २९ ॥

पदार्थः—(**प्र**) (**नः**) अस्मभ्यम् (**यच्छतु**) ददातु (**अर्य्यमा**) न्यायाधीशः (**प्र**) (**पूषा**) पोषकः (**प्र**) (**बृहस्पतिः**) विद्वान् (**प्र**) (**वाक्**) विद्यासुशिक्षितवाणीयुक्ता (**देवी**) देदीप्यमानाऽध्यापिका माता (**ददातु**) (**नः**) अस्मभ्यम् (**स्वाहा**) सत्यविद्यायुक्तां वाणीम् ॥ **अयं मन्त्रः शत० ५ । २ । २ । ११ व्याख्यातः ॥ २९ ॥**

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या (५ । २ । २ । ११) में की गई है ॥ ९ । २९ ॥

सपदार्थान्वयः—**यथाऽर्यमा** न्यायधीशः **नः अस्मभ्यं सुशिक्षां प्र+यच्छतु** ददातु, **यथा पूषा** पोषकः **पुष्टिं प्रददातु, यथा बृहस्पतिः** विद्वान् **स्वाहा** सत्यविद्यायुक्तां वाणीं **प्रार्पयतु, तथा वाग्** विद्यासुशिक्षितवाणीयुक्ता **देवी**=देदीप्यमानाऽध्यापिका माता [**नः**]=**अस्मभ्यं विद्यां [प्र] ददातु** ॥ ९ । २९ ॥

भाषार्थ—जैसे (**अर्यमा**) न्यायाधीश (**नः**) हमें सुशिक्षा (**प्रयच्छतु**) प्रदान करे, जैसे (**पूषा**) पोषक वैश्य पुष्टि प्रदान करे, जैसे (**बृहस्पतिः**) विद्वान् ब्राह्मण (**स्वाहा**) सत्य विद्यायुक्त वाणी अर्पित करे, वैसे (**वाक्**) विद्या और सुशिक्षा वाली वाणी से युक्त, (**देवी**) विद्या से देदीप्यमान अध्यापिका माता [**नः**] हमें विद्या ([**प्र**] **ददातु**) प्रदान करे ॥ ९ । २९ ॥

[**अर्यमा नः=अस्मभ्यं सुशिक्षां प्रयच्छतु,······बृहस्पतिः स्वाहा प्रार्पयतु, वाग् देवी=माता [नः]=अस्मभ्यं विद्यां [प्र] ददातु**]

भावार्थः—अत्राऽऽह जगदीश्वरः—राजादयः सर्वे पुरुषा मात्रादिस्त्रियश्च सर्वदा प्रजाः पुत्रादीन् प्रति सत्यमुपदेशं कुर्य्युर्विद्यां सुशिक्षां च सततं ग्राहयेयुर्यतः प्रजाः सदाऽऽनन्दिताः स्युः ॥ ९ । २९ ॥

भावार्थ—यह जगदीश्वर उपदेश करता है कि राजा आदि सब पुरुष और माता आदि स्त्रियाँ सदा प्रजा और पुत्र आदिकों के प्रति सत्य उपदेश करें, विद्या और सुशिक्षा को सदा ग्रहण करावें जिससे प्रजा सदा आनन्दित रहे ॥ ९ । २९ ॥

भाष्यसार—१. **राजा का प्रजा को उपदेश**—राजा उपदेश करता है कि हे प्रजा जनो ! मैं तुम्हें उत्तम शिक्षा प्रदान करता हूँ, पोषक बनकर तुम्हारा पोषण करता हूँ, सत्य विद्यायुक्त वाणी से सत्य उपदेश करता हूँ, वैसे तुम भी किया करो। जिससे तुम सदा आनन्दित रहो।

२. **माता का पुत्रों को उपदेश**—माता प्रथम विद्या और सुशिक्षा से युक्त वाणी वाली हो, दिव्य गुणों से देदीप्यमान देवी हो। वह अपने पुत्र आदिकों को सत्य उपदेश करती है। विद्या और सुशिक्षा को ग्रहण कराती है। जिससे प्रजा (**सन्तान**) सदा आनन्दित रहती है ॥ ६ । २६ ॥

तापसः । **सम्राट्=राजा** । जगती । निषादः ॥

पुनः क्व कीदृशं राजानं कुर्य्युरित्युपदिश्यते ॥

फिर कहाँ कैसे व्यक्ति को राजा बनावें, इस विषय का उपदेश किया है ॥

देवस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वे॒ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम् ।
सर॑स्वत्यै वा॒चो य॒न्तुर्य॒न्त्रियै॑ दधा॒मि बृह॒स्पते॑ष्ट्वा साम्रा॑ज्येना॒भिषि॑ञ्चाम्यसौ ॥ ३० ॥

पदार्थः—(**देवस्य**) प्रकाशमानस्य (**त्वा**) त्वाम् (**सवितुः**) सकलजगत्प्रसवितुरीश्वरस्य (**प्रसवे**) जगदुत्पादे (**अश्विनोः**) सूर्याचन्द्रमसोर्बलाकर्षणाभ्यामिव (**बाहुभ्याम्**) भुजाभ्याम् (**पूष्णः**) पोषकस्य वायोर्धारणपोषणाभ्यामिव (**हस्ताभ्याम्**) कराभ्याम् (**सरस्वत्यै**) विज्ञानसुशिक्षायुक्तायाः । अत्र षष्ठ्यर्थे चतुर्थी (**वाचः**) वेदवाण्याः (**यन्तुः**) नियन्तुः (**यंत्रियै**) शिल्पविद्यासिद्धानां यन्त्राणामर्हे=योग्ये निष्पादने (**दधामि**) धरामि (**बृहस्पतेः**) परविदुषः (**त्वा**) (**साम्राज्येन**) सम्राजो भावेन (**अभि**) आभिमुख्ये (**सिञ्चामि**) सुगन्धेन रसेन मार्ज्मि (**असौ**) अदो नामा ॥ अयं मन्त्रः शत० ५ । २ । २ । १२–१५ व्याख्यातः ॥ ३० ॥

प्रमाणार्थ—(**सरस्वत्यै**) यहां षष्ठी के अर्थ में चतुर्थी विभक्ति है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । २ । २ । १२–१५) में की गई है ॥ ६ । ३० ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अखिलशुभगुणकर्मस्वभावयुक्त विद्वन् ! असौ** अदोनामा **अहं सवितुः** सकलजगत्प्रसवितुरीश्वरस्य **देवस्य** प्रकाशमानस्य **जगदीश्वरस्य प्रसवे** जगदुत्पादे **सरस्वत्यै** विज्ञानसुशिक्षा युक्तायाः **वाचः** वेदवाण्याः **अश्विनोः** सूर्याचन्द्रमसोर्बलाकर्षणाभ्यामिव **बाहुभ्यां** भुजाभ्यां **पूष्णः** पोषकस्य वायोर्धारणपोषणाभ्यामिव **हस्ताभ्यां** कराभ्यां **त्वा** त्वां **दधामि** धरामि ।

यन्तुः नियन्तुः **बृहस्पतेः** परमविदुषः **यन्त्रियै** शिल्पविद्यासिद्धानां यन्त्राणामर्हे=योग्ये निष्पादने **साम्राज्येन** सम्राजो भावेन **त्वा** त्वाम् **अभिषिञ्चामि** अभिमुखं सुगन्धेन रसेन भार्ज्मि

भाषार्थ—हे सब शुभ गुण, कर्म, स्वभावों से युक्त विद्वान् सम्राट् ! (**असौ**) वह पूर्वोक्त मैं —(**सवितुः**) सकल जगत् के उत्पादक, (**देवस्य**) प्रकाशमान जगदीश्वर की (**प्रसवे**) सृष्टि में (**सरस्वत्यै**) विज्ञान की सुशिक्षा से युक्त (**वाचः**) वेदवाणी से, (**अश्विनोः**) सूर्य और चन्द्रमा के बल और आकर्षण के समान (**बाहुभ्याम्**) अपनी भुजाओं से, (**पूष्णः**) पोषक वायु के धारण और पोषण के समान (**हस्ताभ्याम्**) अपने हाथों से (**त्वा**) आपको (**दधामि**) धारण करता हूँ। और—

(**यन्तुः**) नियन्ता (**बृहस्पतेः**) परम विद्वान् के (**यन्त्रियै**) शिल्प विद्या से सिद्ध यन्त्रों को योग्यतापूर्वक निर्माण करने के लिये (**साम्राज्येन**) सम्राट् भाव से (**त्वा**) आपको (**अभिषिञ्चामि**) सम्मुख

॥ ६ । ३० ॥

होकर सुगन्धित जल से अभिषेक करता हूँ ॥ ६ । ३० ॥

[हे अखिल गुण कर्मस्वभावयुक्त विद्वन् !···अहं···जगदीश्वरस्य प्रसवे···अश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां त्वा दधामि, यन्तुर्बृहस्पतेर्यन्त्रिये साम्राज्येन त्वाभिषिञ्चामि]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ मनुष्यैरीश्वरप्रियं, बलवीर्यपुष्टियुक्तिं, प्रगल्भं, सत्यवादिनं, जितेन्द्रियं, धार्मिकं, प्रजापालनक्षमं विद्वांसं सुपरीक्ष्य सभाया अधिष्ठातृत्वेनाभिषिच्य राजधर्म उन्नेयः ॥ ६ । ३० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ मनुष्य—ईश्वर प्रेमी, बल वीर्य और पुष्टि से युक्त, चतुर, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, धार्मिक, प्रजापालन में समर्थ विद्वान् को परीक्षा-पूर्वक सभा का अधिष्ठाता अभिषिक्त करके राज-धर्म की उन्नति करें ॥ ६ । ३० ॥

भाष्यसार—**कहाँ कैसे पुरुष को राजा बनावें**—सकल जगत् के उत्पादक जगदीश्वर की इस सृष्टि में सब शुभ गुण, कर्म, स्वभाव से युक्त विद्वान् पुरुष को राजा बनावें। वह राजा ईश्वर का प्रेमी, विज्ञान और सुशिक्षा से युक्त वेदवाणी का ज्ञाता, सूर्य और चन्द्रमा के बल और आकर्षण के समान बलवान् भुजाओं वाला, पोषक वायु के धारण और पोषक रूप हाथों के समान पुष्टियुक्त हो। प्रत्येक राजकार्य में चतुर हो, जो प्रजा का नियन्ता बन सके, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, धार्मिक, बृहस्पति अर्थात् परम विद्वान् हो, प्रजा के पालन में समर्थ हो, शिल्प से सिद्ध यन्त्रों का योग्य निष्पादन करने वाला हो। उसे परीक्षापूर्वक सभा का अधिष्ठाता सम्राट् मानें और उसका राज्याभिषेक करके राजधर्म की उन्नति करें ॥ ६ । ३० ॥

तापसः । **अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः**=**राजादयः** ॥ अत्यष्टिः । गान्धारः ॥

राजा प्रजाः प्रजाश्च राजानं सततं वर्द्धयेयुरित्याह ॥

राजा प्रजा को और प्रजा राजा को निरन्तर बढ़ाया करें, इस विषय का उपदेश किया है ॥

अ॒ग्निरेका॑क्षरेण प्रा॒णमुद॑जय॒त् तमुज्जै॑षम॒श्विनौ॒ द्व्य॒क्षरेण द्वि॒पदो॑ मनु॒ष्या॒नुद॑जयता॒ं तानुज्जै॑षं विष्णु॒स्त्र्य॒क्षरेण॒ त्रीँल्लो॒कानुद॑जय॒त्तानुज्जै॑ष॒ꣳ सोम॒श्चतु॑रक्षरेण॒ चतु॑ष्पदः प॒शूनुद॑जय॒त्तानुज्जै॑षम् ॥ ३१ ॥

पदार्थः—(**अग्निः**) अग्निरिव वर्त्तमानो राजा (**एकाक्षरेण**) ओमित्यनेन विज्ञापकेन दैव्या गायत्र्या छन्दसा (**प्राणम्**) शरीरस्थं वायुमिव प्रजाजनम् (**उत्**) उत्कृष्टया नीत्या (**अजयत्**) जयेदुत्कर्षेत् (**तम्**) (**उत्**) (**जेषम्**) जयेयमुत्कर्षेयम् (**अश्विनौ**) सूर्याचन्द्रमसाविव राजराजपुरुषौ (**द्व्यक्षरेण**) दैव्या उष्णिहा (**द्विपदः**) (**मनुष्यान्**) मननशीलान् (**उत्**) (**अजयताम्**) (**तान्**) (**उत्**) (**जेषम्**) (**विष्णुः**) परमेश्वर इव न्यायकारी (**त्र्यक्षरेण**) दैव्याऽनुष्टुभा (**त्रीन्**) जन्मस्थाननामवाच्यान् (**लोकान्**) दर्शनीयान् (**उत्**) (**अजयत्**) (**तान्**) (**उत्**) (**जेषम्**) (**सोमः**) ऐश्वर्यमिच्छुः (**चतुरक्षरेण**) दैव्या बृहत्या (**चतुष्पदः**) (**पशून्**) हरिणादीनारण्यान् (**उत्**) (**अजयत्**) (**तान्**) (**उत्**) (**जेषम्**) ॥ अयं मंत्रः शत० ५ । २ । २ । १७ व्याख्यातः ॥ ३१ ॥

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । २ । २ । १७) में की गई है ॥ ६ । ३१ ॥

सपदार्थान्वयः—हे राजन् ! **अग्निः** अग्निरिव वर्त्तमानो राजा **भवान् यथा एकाक्षरेण** ओमित्यनेन विज्ञापकेन दैव्या गायत्र्या छन्दसा **प्राणं** शरीरस्थं वायुम् **इव यं प्रजाजनमुदजयद्** उत्कृष्टया नीत्या जयेदुत्कर्षेत्, **तथा तमहमप्युज्जेषम्** उत्कृष्टया नीत्या जयेयमुत्कर्षेयम् ।

हे **राजजनावश्विनौ** ! सूर्याचन्द्रमसाविव राज-राजपुरुषौ ! **भवन्तौ यथा द्वयक्षरेण** दैव्या उष्णिहा **यान् द्विपदो मनुष्यान्** मननशीलान **उज्जयताम्** उत्कृष्टया नीत्या जयतामुत्कर्षतां **तथा तानहमपि-उज्जेषं** जयेयमुत्कर्षेयम् ।

हे **सर्वप्रधानपुरुष** ! **विष्णुः** परमेश्वर इव न्यायकारी **भवान् यथा त्र्यक्षरेण** दैव्याऽनुष्टुभा **यान् त्रीन्** जन्मस्थाननामवच्यान् **लोकान्** दर्शनीयान् **उदजयत्** उत्कृष्टया नीत्या जयेदुत्कर्षेत् **तथा तानहमप्युज्जेषं** जयेयमुत्कर्षेयम् ।

हे **न्यायधीश** ! **सोमः** ऐश्वर्य्यमिच्छुः **भवान्यथा चतुरक्षरेण** दैव्या बृहत्या **यांश्चतुष्पदः** पशून् हरिणा-दीनारण्यान् **उदजयत्** उत्कृष्टया नीत्या जयेदुत्कर्षेत **तथा तानहमप्युज्जेषं** जयेयमुत्कर्षेयम् ॥ ९ । ३१ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! (**अग्निः**) आप अग्नि के समान हो, जैसे आप (**एकाक्षरेण**) 'ओम्' इस ईश्वर के ज्ञापक एकाक्षर शब्द से एवं इस दैवी गायत्री छन्द के समान (**प्राणम्**) शरीरस्थ प्राण-वायु के समान जिस प्रजाजन को (**उदजयत्**) उत्कृष्ट नीति से ऊँचा उठाते हो, वैसे उसे मैं भी (**उज्जेषम्**) उत्कृष्ट नीति से ऊँचा उठाऊँ ।

हे (**अश्विनौ**) सूर्य और चन्द्रमा के समान राजा और राजपुरुषो ! आप जैसे—(**द्वयक्षरेण**) दैवी उष्णिक छन्द के समान जिन (**द्विपदः**) दो पैरों वाले (**मनुष्यान्**) मननशील मनुष्यों को (**उज्जयताम्**) ऊँचा उठाते हो वैसे उन्हें मैं भी (**उज्जेषम्**) ऊँचा उठाऊँ ।

हे सर्वप्रधान पुरुष ! (**विष्णुः**) आप परमेश्वर के समान न्यायकारी हो, सो आप जैसे (**त्र्यक्षरेण**) दैवी अनुष्टुम् छन्द के समान जिन (**त्रीन्**) नाम, जन्म, स्थान रूप (**लोकान्**) दर्शनीय लोकों को (**उदजयत्**) उन्नत करते हो वैसे उन्हें मैं भी (**उज्जेषम्**) उन्नत करूँ ।

हे न्यायाधीश ! (**सोमः**) आप ऐश्वर्य के इच्छुक हो सो आप जैसे (**चतुरक्षरेण**) दैवी बृहती छन्द के समान जिन (**चतुष्पदः**) चार पैरों वाले हरिण आदि आरण्य पशुओं को (**उदजयत्**) बढ़ाते हो, वैसे उन्हें मैं भी (**उज्जेषम्**) बढ़ाऊँ ॥ ९ । ३१ ॥

[हे राजन् !···**भवान् यथा एकाक्षरेण प्राणमिव यं प्रजाजनमुदजयत्तथा तमहमप्युज्जषम्,**······]

भावार्थः—यदि राजा सर्वान् प्रजाजनानुन्नयेत्तर्हि प्रजा-पुरुषास्तं कथं नोन्नयेयुर्नोचेन्न ॥ ९ । ३१ ॥

भावार्थ—यदि राजा सब प्रजाजनों की उन्नति चाहे तो प्रजाजन भी उसे क्यों न बढ़ावें । यदि राजा उन्नति न चाहे तो प्रजा भी उसको न बढ़ावे ॥ ९ । ३१ ॥

भाष्यसार—**राजा और प्रजा परस्पर को बढ़ावें**—राजा अग्नि के समान बढ़ने वाला होता है वह एक अक्षर वाले दैवी गायत्री नामक 'ओम्' इस छन्द के दृष्टान्त से शरीरस्थ एक प्राण के समान प्रजाजन को उत्तम नीति से उन्नत करे, उसे बढ़ावे वैसे प्रजाजन भी राजा को उन्नत किया करे ।

राजा और राजपुरुष 'अश्विनौ' हैं, सूर्य और चन्द्र के समान उन्नत हैं । वे दोनों दो अक्षरों वाले दैवी उष्णिक् छन्द के समान दो चरणों वाले मनुष्यों को उत्तम नीति से उन्नत करें प्रजाजन भी उन्हें उन्नत किया करें ॥

परमेश्वर के समान न्यायकारी प्रधान पुरुष तीन अक्षरों वाले दैवी अनुष्टुप् छन्द के समान नाम, जन्म, स्थान इन तीनों लोकों को उत्तम् नीति से उन्नत करे, वैसे प्रजानन भी उसे उन्नत किया करें ।

ऐश्वर्य का इच्छुक न्यायाधीश चार अक्षर वाले दैवी बृहती छन्द के समान जैसे चार चरणों वाले हरिण आदि जङ्गली पशुओं को उन्नत करे, वैसे प्रजाजन भी उन्हें बढ़ाया करें ॥ ९ । ३१ ॥

पूषेत्यस्य तापसः । **पूषादयो मन्त्रोक्ताः**=**सर्वपोषकादयोराजा प्रजाजनाश्च** ॥
कृतिः । निषादः ॥

पुना राजप्रजाजनाः किंवत्किं कुर्यु रित्याह ॥

फिर राजा और प्रजाजन किन के समान क्या करें, इस विषय का उपदेश किया है ॥

पूषा पञ्चाक्षरेण पञ्च दिश ऽ उदंजयत्ता ऽ उज्जेषथं सविता षडक्षरेण षड् ऋतूनुदंजयत्तानुज्जेषं मरुतः सप्ताक्षरेण सप्त ग्राम्यान् पशूनुदंजयँस्तानुज्जेषं बृहस्पतिरष्टाक्षरेण गायत्रीमुदंजयत्तामुज्जेषम् ॥ ३२ ॥

पदार्थः—(**पूष**) चन्द्र इव सर्वस्य पोषकः (**पञ्चाक्षरेण**) दैव्या पंक्त्या (**पञ्च**) चतस्रः पार्श्वस्था एका अधऊर्ध्वस्था (**दिशः**) (**उत्**) (**जेषम्**) (**सविता**) सूर्य इव (**षडक्षरेण**) दैव्या त्रिष्टुभा (**षट्**) (**ऋतून्**) वसन्तादीन् (**उत्**) (**अजयत्**) (**तान्**) (**उत्**) (**जेषम्**) (**मरुतः**) वायव इव (**सप्ताक्षरेण**) दैव्या जगत्या (**सप्त**) गोऽश्वमहिषोष्ट्राजाविगर्दभान् (**ग्राम्यान्**) ग्रामे भवान् (**पशून्**) गवादीन् (**उत्**) (**अजयन्**) (**तान्**) (**उत्**) (**जेषम्**) (**बृहस्पतिः**) अनूचानो=विद्वानिव (**अष्टाक्षरेण**) याजुष्याऽनुष्टुभा (**गायत्रीम्**) यथा गायन्तं त्रायते तां नीतिम् (**उत्**) (**अजयत्**) (**ताम्**) (**उत्**) (**जेषम्**) ॥ ३२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे राजन् ! **पूषा** चन्द्र इव सर्वस्य पोषकः **भवान् यथा पञ्चाक्षरेण** दैव्या पंक्त्या **याः पञ्च** चतस्रः पार्श्वस्था एका अध ऊर्ध्वस्था **दिश उदजयत्, तथाऽहमपिता उज्जेषम्** ।

हे राजन् ! **सविता** सूर्य इव **भवान् यथा षडक्षरेण** दैव्या त्रिष्टुभा **यान् षड्ऋतून्** वसन्तादीन् **उदजयत्तथा तानहमप्युज्जेषम्** ।

हे **सभ्या जनाः** ! **मरुतः** वायव इव **भवन्तो यथा सप्ताक्षरेण** दैव्या जगत्या **यान् ग्राम्यान्** ग्रामे भवान् **सप्त** गोऽश्वमहिषोष्ट्राजाविगर्दभान् **पशून्** गवादीन् **उदजयन्, तथा तानहमप्युज्जेषम्** ।

भाषार्थ—हे राजन् ! (**पूषा**) आप चन्द्र के समान सबके पोषक हो, सो आप जैसे (**पञ्चाक्षरेण**) दैवी पङ्क्ति छन्द के समान जो (**पञ्च**) पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चार और ऊपर-नीचे की एक अर्थात् पाँच दिशाओं (**उदजयत्**) जीतते हो वैसे मैं भी उन्हें (**उज्जेषम्**) जीतूँ ।

हे राजन् ! (**सविता**) आप सूर्य के समान हो, सो आप जैसे (**षडक्षरेण**) दैवी त्रिष्टुप् छन्द के समान जिन (**षड्ऋतून्**) वसन्त आदि छः ऋतुओं को (**उदजयत्**) उत्कृष्ट बनाते हो वैसे उन्हें मैं भी (**उज्जेषम्**) उत्कृष्ट बनाऊँ ।

हे सभ्य जनो ! (**मरुतः**) आप वायुओं के समान हो, सो आप जैसे (**सप्ताक्षरेण**) दैवी जगती के समान जिन (**ग्राम्यान्**) ग्रामीण (**सप्त**) गौ, अश्व, भैंस, ऊँट, बकरी, भेड़ और गधा इन सात (**पशून्**) गौ आदि पशुओं (**उदजन्**) बढ़ाते हो वैसे उन्हें मैं

हे विद्वान् सभाध्यक्ष ! **बृहस्पतिः** अनूचानो विद्वानिव **भवान् यथाऽष्टाक्षरेण** याजुष्याऽनुष्टुभा **यां गायत्रीं** यया गायन्तं त्रायते तां नीतिम् **उदजयत्ताम**हमप्युज्जेषम् ॥ ९ । ३२ ॥

भी (**उज्जेषम्**) बढ़ाऊँ ।

हे विद्वान् सभाध्यक्ष ! (**बृहस्पतिः**) आप अनूचान् विद्वान् के समान हो सो आप जैसे (**अष्टाक्षरेण**) याजुषी अनुष्टुप् छन्द के समान जिस (**गायत्रीम्**) स्तोता की रक्षा करने वाली राजनीति को (**उदजयत्**) उत्कृष्ट बनाते हो उसे मैं भी (**उज्जेषम्**) उन्नत करूँ ॥ ९ । ३२ ॥

[हे राजन् ! पूषा भवान्, सविता भवान्, हे सभ्याजना मरुतो भवन्तः, हे विद्वन् सभाध्यक्ष ! बृहस्पतिर्भवान्......उदजयत्......अहमप्युज्जेषम्]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ यो राजा सर्वस्य पोषकः समस्तदिक् सुकीर्त्ति रैश्वर्यवान् सुसभ्यः पशुपालको वेदविद् भवेत्तं सर्वे राजप्रजासेनाजना उत्कर्षयेयुः ॥ ९ । ३२ ॥

भावार्थ—यहाँ वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ जो राजा सबका पोषक, समस्त दिशाओं का स्वामी, उत्तम कीर्त्ति वाला, ऐश्वर्यवान्, सभा के कार्यों में अति चतुर, पशुओं का पालक और वेदों का ज्ञाता हो उसे सब राजपुरुष, प्रजा और सैनिक लोग बढ़ावें ॥ ९ । ३२ ॥

भा० पदार्थः—पूषा=सर्वस्य पोषकः, समस्तदिक्, सुकीर्त्तिः ॥ सविता=ऐश्वर्यवान् । मरुतः=सुसभ्याः, पशुपालकाः ॥ बृहस्पतिः=वेदविद् ॥

भाष्यसार—**१. राजा और प्रजा किन के समान क्या करें**—राजा चन्द्र के समान सबका पोषक (**पूषा**) है। पाँच अक्षरों वाले दैवी पंक्ति छन्द के समान वह पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण ये चार तथा ऊपर-नीचे की एक अर्थात् पांच दिशाओं को विजय करता है, समस्त दिशाओं का स्वामी बनकर उत्तम कीर्ति वाला होता है, वैसे प्रजाजन भी उक्त दिशाओं को विजय करें।

राजा सूर्य के समान ऐश्वर्यवान् (**सविता**) है। छः अक्षरों वाले दैवी त्रिष्टुप् छन्द के समान वह वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त और शिशिर इन वसन्त आदि छः ऋतुओं को उत्कृष्ट बनाता है वैसे प्रजा जन भी उन्हें उत्कृष्ट किया करें।

सभ्य लोग वायु के समान सुखदायक हैं। सात अक्षरों वाले दैवी जगती छन्द के समान वे गौ, घोड़ा, भैंस, ऊँट, बकरी और गधा इन सात ग्रामीण **पशुओं** को बढ़ाते हैं वैसे प्रजा जन भी उन्हें बढ़ाया करें।

सभाध्यक्ष राजा, अनूचान वेदज्ञ विद्वान् (बृहस्पति) के समान है। आठ अक्षरों वाले याजुषी अनुष्टुप् छन्द के समान आठ अक्षरों वाली गायत्री अर्थात् स्तोता की रक्षा करने वाली राजनीति को उन्नत बनाता है वैसे प्रजाजन भी उसे उन्नत किया करें ॥

२. अलङ्कार—मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि शब्द लुप्त है अतः वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि राजा और प्रजा चन्द्र आदि के समान सबके पोषक आदि गुणों को धारण करें ॥ ९ । ३२ ॥

तापसः । **मित्रादयो मन्त्रोक्ताः**=स्पष्टम् ॥ कृतिः । निषादः ॥

राज्ञः सत्याचाराऽनुकरणं प्रजया, प्रजायाश्च राज्ञा कार्य्यमित्याह ॥

राजा के सत्याचार का अनुकरण प्रजा और प्रजा के सत्याचार का अनुकरण राजा किया करे, यह उपदेश किया है ॥

मित्रो नवाक्षरेण त्रिवृतꣳ स्तोममुदजयत तमुज्जेषं वरुणो दशाक्षरेण विराजमुदजयत्तामुज्जेषमिन्द्र ऽ एकादशाक्षरेण त्रिष्टुभमुदजयत्तामुज्जेषं विश्वे देवा द्वादशाक्षरेण जगतीमुदजयँस्तामुज्जेषम् ॥३३ ॥

पदार्थः--(**मित्रः**) सर्वस्य सुहृत् (**नवाक्षरेण**) याजुष्या बृहत्या (**त्रिवृतम्**) कर्मोपासनाज्ञानयुक्तम् (**स्तोमम्**) स्तोतुं योग्यम् (**उत्**) (**अजयत्**) (**तम्**) (**उत्**) (**जेषम्**) (**वरुणः**) श्रेष्ठः (**दशाक्षरेण**) याजुष्या पंक्त्या (**विराजम्**) विराट्छन्दोवाच्यम् (**उत्**) (**अजयत्**) (**ताम्**) (**उत्**) (**जेषम्**) (**इन्द्रः**) परमैश्वर्यवान् (**एकादशाक्षरेण**) आसुर्य्या पंक्त्या (**त्रिष्टुभम्**) त्रिष्टुप्छन्दो वाच्यम् (**उत्**) (**अजयन्**) (**ताम्**) (**उत्**) (**जेषम्**) (**विश्वे**) सर्वे (**देवाः**) विद्वांसः (**द्वादशाक्षरेण**) साम्न्या गायत्र्या (**जगतीम्**) एतच्छन्दोऽभिहितां नीतिम् (**उत्**) (**अजयन्**) (**ताम्**) (**उत्**) (**जेषम्**) ॥ ३३ ॥

सपदार्थान्वयः--हे **राजन्** ! **मित्रः** सर्वस्य सुहृत् **भवान् यथा नवाक्षरेण** याजुष्या बृहत्या छन्दसा **यं त्रिवृत्तं** कर्मोपासनाज्ञानयुक्तं **स्तोमं** स्तोतुं योग्यम् **उदजयत्तथा तमहमप्युज्जेषम्** ।

हे प्रशंसनीय सभेश ! **वरुणः** श्रेष्ठः **भवान् यथा दशाक्षरेण** याजुष्या पङ्क्त्या छन्दसा **यां विराजं** विराट्छन्दोवाच्यम् **उदजयेत्तथा [ताम्] हमप्युज्जेषम्** ।

हे परमैश्वर्यप्रद ! **इन्द्रः** परमैश्वर्यवान् **भवान् यथैकादशाक्षरेण** आसुर्या पङ्क्त्या **यां त्रिष्टुभं** त्रिष्टुप्छन्दो वाच्यम् **उदजयत्तथा तामहमप्युज्जेषम्** ।

हे सभाजनाः ! **विश्वे** सर्वे **देवाः** विद्वांसः **भवन्तो यथा द्वादशाक्षरेण** साम्न्या गायत्र्या **यां**

भावार्थ--हे राजन् ! आप (**मित्रः**) सब प्राणियों के मित्र हो, सो आप जैसे (**नवाक्षरेण**) नौ अक्षरों वाले याजुषी बृहती छन्द से जिस (**त्रिवृत्तम्**) कर्म, उपासना और ज्ञान इन तीनों से युक्त (**स्तोमम्**) स्तुति योग्य विद्वान् को (**उदजयत्**) उत्कृष्ट करते हो (**तम्**) उसे मैं भी (**उज्जेषम्**) उत्कृष्ट करूँ ।

हे प्रशंसा के योग्य सभापते ! आप (**वरुणः**) श्रेष्ठ हो, सो आप जैसे (**दशाक्षरेण**) दस अक्षरों वाले याजुषी पंक्ति छन्द से तथा (**विराजम्**) विराट् छन्द से प्रतिपादित जिस नीति को (**उदजयत्**) उत्कृष्ट करते हो [**ताम्**] उसे मैं भी (**उज्जेषम्**) उत्कृष्ट करूँ ।

हे परम ऐश्वर्य के दाता राजन् ! आप (**इन्द्रः**) परम ऐश्वर्यवान हो, सो आप जैसे (**एकादशाक्षरेण**) ग्यारह अक्षरों वाले आसुर्य पंक्ति छन्द से, तथा (**त्रिष्टुभम्**) त्रिष्टुप् छन्द से प्रतिपादित जिस नीति को (**उदजयत्**) उत्कृष्ट करते हो (**ताम्**) उसे मैं भी (**उज्जेषम्**) उत्कृष्ट करूँ ।

हे सभासदो ! आप (**विश्वे**) सब (**देवाः**) विद्वान् हो, सो आप लोग जैसे (**द्वादशाक्षरेण**)

जगतीम् एतच्छन्दोऽभिहितां नीतिम् **उदजयँस्ताम-हमप्युज्जेषम्** ॥ ९ । ३३ ॥

बारह अक्षरों वाले साम्नी गायत्री छन्द से तथा (**जगतीम्**) जगती छन्द से प्रतिपादित जिस नीति को (**उदजयत्**) उत्कृष्ट बनाते हो (**ताम्**) उसे मैं भी (**उज्जेषम्**) उत्कृष्ट बनाऊँ ॥ ९ । ३३ ॥

[हे राजन् ! मित्रो भवान् यथा नवाक्षरेण छन्दसा यं त्रिवृत्तं स्तोममुदजयत्तथा तमहमप्युज्जेषम्]

भावार्थः—राजजनाः सर्वेषु प्राणिषु मैत्रीं विधाय सुशिक्षयोत्कृष्टान् विदुषः सम्पादयेयुर्यतस्ते ऐश्वर्यभागिनो भूत्वा राजभक्ता भवेयुः ॥९। ३३ ॥

भावार्थ—राजपुरुष सब प्राणियों से मैत्री करके उत्तम शिक्षा के द्वारा उत्कृष्ट विद्वानों को तैयार करें, जिससे वे लोग ऐश्वर्य सम्पन्न होकर राजा के भक्त बनें ॥ ९ । ३३ ॥

भाष्यसार—**राजा और प्रजा परस्पर सत्याचरण का अनुकरण करें**—राजा सबका मित्र है। वह नौ अक्षरों वाले याजुषी बृहती छन्द से कर्म, उपासना और ज्ञान से युक्त विद्वान् को स्तुति के योग्य बनाता है, वैसे प्रजाजन भी राजा का अनुकरण किया करें।

सभापति राजा प्रशंसा के योग्य एवं श्रेष्ठ (**वरुण**) है। वह दस अक्षरों वाली याजुषी पंक्ति छन्द के दृष्टान्त से जिस विराट् छन्द से प्रतिपादित राजनीति को उन्नत करता है वैसे प्रजाजन भी राजा का अनुकरण किया करें।

राजा स्वयं परम ऐश्वर्यवान् तथा परम ऐश्वर्य को देने वाला (इन्द्र) है। वह ग्यारह अक्षरों वाली आसुरी पंक्ति छन्द के दृष्टान्त से त्रिष्टुप् छन्द से प्रतिपादित राजनीति को उन्नत करता है, वैसे प्रजाजन भी राजा का अनुकरण किया करें।

सब विद्वान् लोग सभ्य हों, और वे बारह अक्षरों वाली साम्नी गायत्री छन्द के दृष्टान्त से जगती छन्द से प्रतिपादित राजनीति को उन्नत करें वैसे प्रजाजन भी सभ्य विद्वानों का अनुकरण किया करें।

राजपुरुष सब प्रजाजनों के साथ मैत्री करें और उन्हें उत्तम शिक्षा के द्वारा विद्वान् बनावें। जिससे वे ऐश्वर्य का सेवन करने वाले होकर राजभक्त रहें ॥ ९ । ३३ ॥

तापसः। **वस्वादयो मन्त्रोक्ता देवताः**=स्पष्टम् ॥ वसव इत्यस्य निचृज्जगती। निषादः। आदित्या इत्यस्य निचृद्धृतिः। ऋषभः॥

पुनरपि राजप्रजाधर्मकृत्यमाह ॥

फिर राजा और प्रजा के धर्म्म कार्य्य का उपदेश किया है ॥

वसवस्त्रयोदशाक्षरेण त्रयोदशꣳ स्तोममुदजयँस्तमुज्जेषꣳ रुद्राश्चतुर्दशाक्षरेण चतुर्दशꣳ स्तोममुदजयँस्तमुज्जेषम्। आदित्याः पञ्चदशाक्षरेण पञ्चदशꣳ स्तोममुदजयँस्तामुज्जेषमदितिः षोडशाक्षरेण षोडशꣳ स्तोममुदजयत्तमुज्जेषं प्रजापतिः सप्तदशाक्षरेण सप्तदशꣳ स्तोममुदजयत्तमुज्जेषम् ॥ ३४ ॥

पदार्थः--(**वसवः**) कृतचतुर्विंशतिवर्षब्रह्मचर्य्येण गृहीतविद्याः (**त्रयोदशाक्षरेण**) आसुर्यानुष्टुभा (**त्रयोदशम्**) दशप्राणजीवमहत्तत्वानां सङ्ख्यापूरकमव्यक्तं कारणम् (**स्तोत्रम्**) स्तोतुं योग्यम्

(उत्) (**अजयन्**) (**तम्**) (**उत्**) (**जेषम्**) (**रुद्राः**) कृतेन चतुश्चत्वारिंशद्वर्षब्रह्मचर्य्येणाधीतविद्याः (**चतुर्दशाक्षरेण**) साम्न्युष्णिहा (**चतुर्दशन्**) दशेन्द्रियमनोबुद्धिचित्तानां संख्यापूरकमहङ्कारम् (**स्तोमम्**) स्तवनीयम् (**उत्**) (**अजयन्**) (**तम्**) (**उत्**) (**जेषम्**) (**आदित्याः**) समाचरितेनाष्टचत्वारिंशद्वर्षपरिमित-ब्रह्मचर्य्येण गृहीतसमस्तविद्याः (**पञ्चदशाक्षरेण**) आसुर्य्या गायत्र्या (**पञ्चदशम्**) चत्वारो वेदाश्चत्वार उपवेदाः षडङ्गानि च मिलित्वा चतुर्दशविद्यास्तासां संख्यापूरकं क्रियाकौशलम् (**स्तोमम्**) स्तोतुमर्हम् (**उत्**) (**अजयन्**) (**तम्**) (**उत्**) (**जेषम्**) (**अदितिः**) अविद्यमाना दितिर्नाशो यस्याः सा राजपत्नी (**षोडशाऽक्षरेण**) साम्न्यानुष्टुभा (**षोडशम्**) प्रमाणादिपदार्थसमूहम् (**स्तोमम्**) प्रशंसनीयम् (**उत्**) (**अजयत्**) (**तम्**) (**उत्**) (**जेषम्**) (**प्रजापतिः**) प्रजायाः पालकः (**सप्तदशाक्षरेण**) निचृदार्च्या गायत्र्या (**सप्तदशम्**) चत्वारो वर्णाश्चत्वार आश्रमाः श्रवणमनननिदिध्यासनानि च कर्माणि । अलब्धस्य लिप्सा, लब्धस्य प्रयत्नेन रक्षणं, रक्षितस्य वृद्धिः, वृद्धस्य सन्मार्गे सर्वोपकारके सत्कर्मणि व्ययकरणमेव चतुर्विधः पुरुषार्थः, मोक्षाऽनुष्ठानं चेति सप्तदशम् (**स्तोमम्**) अतिप्रशंसनीयम् (**उत्**) उत्कृष्टरीत्या (**अजयत्**) उत्कर्षेत् (**तम्**) (**उत्**) उत्कृष्टरीत्या (**जेषम्**) ॥ **मन्त्रोऽयं शत० ५ । २ । २ । १७ व्याख्यातः ॥ ३४ ॥**

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । २ । २ । १७) में की गई है ॥ ९ । ३४ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे राजादयः सभ्या** वसवः=**विद्वांसो जनाः** ! कृतचतुर्विंशतिवर्षब्रह्म-चर्येण गृहीतविद्याः **भवन्तो यथा त्रयोदशाक्षरेण** आसुर्याऽनुष्टुभा **यं त्रयोदशं** दशप्राणजीवमहतत्त्वानां संख्यापूरकमव्यक्तं कारणं **स्तोमं** स्तोतु योग्यम् **उदजयंस्तथा** [तम्] **अत्रहमप्युज्जेषम्**।

हे **बलवीर्य्यवन्तः पुरुषार्थिनो रुद्राः** ! कृतेन चतुश्चत्वारिंशद्वर्षब्रह्मर्य्येणाधीतविद्याः । **भवन्तो यथा चतुर्दशाक्षरेण** साम्न्युष्णिहा **यं चतुर्दशं** दशेन्द्रिय मनोबुद्धिचित्तानां संख्याः पूरकमहङ्कारं **स्तोमं** स्तवनीयम् **उदजयंस्तथा तमहमप्युज्जषम्** ।

हे पूर्णविद्यया शरीरात्माऽखिलबला आदित्याः! समाचरितेनाष्टचत्वारिंशद्वर्षपरिमितब्रह्मचर्येण गृही-तसमस्तविद्याः ! **भवन्तो यथा पञ्चदशाक्षरेण** आसुर्या गायत्र्या **यं पञ्चदशं** चत्वारो वेदाश्चत्वार उपवेदाः षडङ्गानि चमिलित्वा चतुर्दशविद्यास्तासां

भाषार्थ—हे (**वसवः**) चौबीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य से विद्या ग्रहण करने वाले राजा आदि विद्वान् सभासदो ! आप जैसे (**त्रयोदशाक्षरेण**) तेरह अक्षरों वाले आसुरी अनुष्टुप् छन्द के समान जिस (**त्रयोदशम्**) दस प्राण, जीव, महत्तत्व अव्यक्त=कारण इन तेरह (**स्तोमम्**) स्तुति योग्य पदार्थों को (**उदजयन्**) उत्तम रीति से उत्कृष्ट बनाते हो वैसे मैं भी (**उज्जेषम्**) उन्हें उत्कृष्ट बनाऊँ।

हे (**रुद्राः**) बलवान्, वीर्यवान्, पुरुषार्थी एवं चवालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य से विद्या ग्रहण करने वाले विद्वानो ! आप जैसे (**चतुर्दशाक्षरेण**) चौदह अक्षरों वाले साम्नी उष्णिक् छन्द के समान जिस (**चतुर्दशम्**) दस इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार इन चौदह (**स्तोतम्**) स्तुति के योग्य पदार्थों को (**उदजयन्**) उत्तम रीति से उत्कृष्ट बनाते हो वैसे (**तम्**) उन्हें मैं भी (**उज्जषम्**) उत्कृष्ट बनाऊँ ॥

हे (**आदित्याः**) पूर्ण विद्या से शारीरिक और आत्मिक पूर्ण बल वाले एवं अड़तालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य से समस्त विद्याओं को ग्रहण करने वाले विद्वानो ! आप जैसे (**पञ्चदशक्षरेण**) पन्द्रह अक्षरों वाले आसुरी गायत्री छन्द के समान जिस

संख्यापूरकं क्रियाकौशलं **स्तोमं** स्तोतुमर्हम् **उदजयँस्तथा तमहमत्युज्जेषम् ।**

(**पञ्चदशम्**) चार वेद, चार उपवेद, छः अङ्ग, ये चौदह विद्या तथा पन्द्रहवाँ क्रियाकौशल रूप (**स्तोतम्**) स्तुति करने योग्य इन पन्द्रह पदार्थों को (**उदजयन्**) उत्तम रीति से उत्कृष्ट बनाते हो वैसे मैं भी (**तन्**) उन्हें (**उज्जेषम्**) उत्कृष्ट बनाऊँ ।

हे सभाध्यक्षस्य राज्ञः पत्न्यदिते=**अखण्डितैश्वर्य्या** अविद्यमाना दितिः=नाशो यस्याः सा राजपत्नी **भवती यथा षोडशाऽक्षरेण** साम्न्याऽनुष्टुभा **यं षोडशं** प्रमाणादिपदार्थसमूहं **स्तोमं** प्रशंसनीयम् **उदजयत् तथा तमहमप्युज्जेषम् ।**

हे (**अदिते**) सभाध्यक्ष राजा की अखण्डित ऐश्वर्य वाली एवं नाशरहित पत्नी ! आप जैसे (**षोडशाक्षरेण**) सोलह अक्षर वाले साम्नी अनुष्टुप् छन्द के समान जिस (**षोडशम्**) प्रमाण आदि सोलह (**स्तोमम्**) प्रशंसनीय पदार्थों को (**उदजयत्**) उत्तम रीति से उत्कृष्ट बनाती हो वैसे (**तम्**) उन्हें मैं भी (**उज्जेषम्**) उत्कृष्ट बनाऊँ ।

हे सर्वाभिरक्षक सज्जन नरेश ! प्रजापतिः प्रजापाः पालकः **भवान् यथा सप्तदशाक्षरेण** निचृदार्च्या गायत्र्या **यं सप्तदशं** चत्वारो वर्णाश्चत्वार आश्रमाः श्रवणमनन निदिध्यासनानि, [साक्षात्कारश्च] कर्माणि अलब्धस्य लिप्सा, लब्धस्य प्रयत्नेन रक्षणं, रक्षितस्य वृद्धिः, वृद्धस्य सन्मार्गे सर्वोपकारके सत्कर्मणि व्ययकरणमेव चतुर्विधः पुरुषार्थः, मोक्षानुष्ठानं चेति सप्तदशं **स्तोमम्** अतिप्रशंसनीयम् **उदजयत्** उत्कृष्टरीत्योत्कर्षत्, **तथा तमहमप्युज्जेषम्** ॥ ९ । ३४ ॥

हे (**प्रजापतिः**) सबके रक्षक सज्जन नरेश ! एवं प्रजा के पालक राजन् ! आप जैसे (**सप्तदशाक्षरेण**) सत्रह अक्षरों वाले निचृद्आर्ची गायत्री छन्द के समान जिस (**सप्तदशम्**) चार वर्ण, चार आश्रम; श्रवण, मनन, निदिध्यासन और साक्षात्कार कर्म, अप्राप्त को प्राप्त करने की इच्छा, प्राप्त की प्रयत्न से रक्षा, रक्षित को बढ़ाना, बढ़ाये हुए को सन्मार्ग, सर्वोपकारक सत्कर्म में व्यय करना यह चार प्रकार का पुरुषार्थ, और मोक्ष का अनुष्ठान इन सत्रह (**स्तोमम्**) अति प्रशंसनीय पदार्थों को (**उदजयत्**) उत्तम रीति से उत्कृष्ट बनाते हो वैसे (**तम्**) उन्हें मैं भी (**उज्जेषम्**) उत्कृष्ट बनाऊँ ॥ ९ । ३४ ॥

[हे राजादयः सभ्या वसवः=विद्वांसो जनाः! भवन्तो यथा...स्तोममुदजयँस्तथा [तम्] अहमप्युज्जेषम्...]

भावार्थः—हे मनुष्याः ! एतैश्चतुर्भिर्मन्त्रैर्यावान् राजप्रजाधर्मो विहितस्तमनुष्ठाय यूयं सुखिनो भवत ॥ ९ । ३४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! इन चार मन्त्रों से जितना राजधर्म और प्रजाधर्म का विधान किया है उसका आचरण करके तुम लोग सुखी रहो ॥ ९ । ३४ ॥

भाष्यसार—**राजधर्म और प्रजाधर्म** का आचरण—राजा आदि सभ्य एवं चौबीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य पालन करके विद्या को ग्रहण करने वाले विद्वान् (वसु) लोग, तेरह अक्षरों वाले आसुरी अनुष्टुप् छन्द के दृष्टान्त से, दस प्राण, जीव, महत्तत्व और अव्यक्त प्रकृति इन तेरह स्तुति योग्य पदार्थों को उत्कृष्ट बनाते हैं ।

बलवान्, वीर्यवान्, पुरुषार्थी, चवालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य-पालन करके विद्या अध्ययन करने वाले विद्वान् (रुद्र) लोग, चौदह अक्षरों वाले साम्नी उष्णिक् छन्द के दृष्टान्त से, दस इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार इन चौदह स्तुति योग्य पदार्थों को उत्कृष्ट बनाते हैं ।

पूर्ण विद्या के द्वारा शारीरिक और आत्मिक बल से परिपूर्ण, अड़तालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य-पालन करके समस्त विद्याओं को ग्रहण करने वाले विद्वान् (**आदित्य**) लोग, पन्द्रह अक्षरों वाले आसुरी गायत्री छन्द के दृष्टान्त से, चार वेद, चार उपवेद, छः वेदाङ्ग और क्रियाकौशल इन पन्द्रह स्तुति योग्य पदार्थों को उत्कृष्ट बनाते हैं।

सभाध्यक्ष राजा की पत्नी जिसका ऐश्वर्य अखण्ड है, वह सोलह अक्षरों वाले साम्नी अनुष्टुप् छन्द के दृष्टान्त से, १. प्रमाण, २. प्रमेय, ३. संशय, ४. प्रयोजन, ५. दृष्टान्त, ६. सिद्धान्त, ७. अवयव, ८. तर्क, ९. निर्णय, १०. वाद, ११. जल्प, १२. वितण्डा, १३. हेत्वाभास, १४. छल, १५. जाति, १६. निग्रह-स्थान, इन प्रमाण आदि सोलह स्तुति योग्य पदार्थों को उत्कृष्ट बनाती है।

सबका रक्षक, सज्जन, नरेश प्रजा का पालक (**प्रजापति**) है। वह सत्रह अक्षरों वाले निचृद् आर्ची गायत्री छन्द के दृष्टान्त से, चार वर्ण, चार आश्रम; श्रवण, मनन, निदिध्यासन, साक्षात्कार ये चार कर्म; अप्राप्त को प्राप्त करने की इच्छा, प्राप्त की प्रयत्न से रक्षा, रक्षित की वृद्धि, संवृद्ध का सन्मार्ग एवं सबके उपकारक शुभ कर्म में व्यय करना यह चार प्रकार का पुरुषार्थ और मोक्ष की प्राप्ति का अनुष्ठान करना इन सत्रह स्तुति योग्य पदार्थों को उत्कृष्ट बनाता है।

इस प्रकार राजा और प्रजा इन (३१-३४) चार मन्त्रों में प्रतिपादित अपने धर्मों का अनुष्ठान करके सदा सुखी रहें॥

छन्द	अक्षर	ग्राह्य वस्तु (स्तोम)
१. दैवी गायत्री	१	ओम्।
२. दैवी उष्णिक्	२	द्विपाद मनुष्य।
३. दैवी अनुष्टुप्	३	नाम, जन्म, स्थान।
४. दैवी बृहती	४	हरिण आदि चतुष्पाद जंगली प्राणी।
५. दैवी पंक्ति	५	पूर्वादि चार तथा नीचे-ऊपर की एक, पाँच दिशा।
६. दैवी त्रिष्टुप्	६	वसन्त आदि छः ऋतु।
७. दैवी जगती	७	गौ, घोड़ा, भैंस, ऊँट, बकरी, भेड़, गधा ये सात।
८. याजुषी अनुष्टुप्	८	आठ प्रकार की नीति।
९. याजुषी बृहती	९	उत्तम, मध्यम, निकृष्ट भेद से ९ प्रकार के ज्ञान कर्म, उपासना।
१०. याजुषी पंक्ति	१०	१० प्रकार की राजनीति।
११. आसुरी पंक्ति	११	११ प्रकार की राजनीति।
१२. साम्नी गायत्री	१२	१२ प्रकार की राजनीति।
१३. आसुरी अनुष्टुप्	१३	दस प्राण, जीव, महतत्त्व, अव्यक्त प्रकृति।
१४. साम्नी उष्णिक्	१४	दस इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार।
१५. आसुरी गायत्री	१५	चार वेद, चार उपवेद, छः वेदाङ्ग, क्रिया कौशल।
१६. साम्नी अनुष्टुप्	१६	प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति, निग्रह स्थान, ये सोलह पदार्थ।

१७. निचृदार्ची गायत्री १७ चार वर्ण, चार आश्रम; श्रवण, मनन, निदिध्यासन, साक्षात्कार चार कर्म, चार प्रकार का पुरुषार्थ और मोक्षानुष्ठान ॥ ९ । ३४॥

वरुणः । **विश्वेदेवाः**=राजादि विद्वांसः ॥ निचृदुत्कृतिः । षड्जः ॥

कीदृग्जनः साम्राज्यं सेवितुं योग्यो जायत इत्याह ॥

कैसा मनुष्य चक्रवर्ती राज्य को सेवन करने योग्य होता है, इस विषय का उपदेश किया है ॥

एष तें निर्ऋते भागस्तं जुषस्व स्वाहाऽग्निनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पुरःसद्भ्यः स्वाहा यमनेत्रेभ्यो देवेभ्यो दक्षिणासद्भ्यः स्वाहा विश्वदेवनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पश्चात्सद्भ्यः स्वाहा मित्रावरुणनेत्रेभ्यो वा मरुन्नेत्रेभ्यो वा देवेभ्य ऽ उत्तरासद्भ्यः स्वाहा सोमनेत्रेभ्यो देवेभ्य ऽ उपरिसद्भ्यो दुवस्वद्भ्यः स्वाहा ॥ ३५ ॥

पदार्थः—(**एषः**) पूर्वापरप्रतिपादितः (**ते**) तव (**निर्ऋते**) नितरामृतं=सत्यमाचरणं यस्मिन् तत्सम्बुद्धौ (**भागः**) भजनीयः=सेवितुं योग्यः (**तम्**) (**जुषस्व**) सेवस्व (**स्वाहा**) सत्यां वाचम् (**अग्निनेत्रेभ्यः**) अग्नेः प्रकाश इव नेत्रं=नयनं येषान्तेभ्यः (**देवेभ्यः**) धार्मिकेभ्यो विद्वद्भ्यः (**पुरःसद्भ्यः**) ये पुरः=पूर्व सभायां राष्ट्रे वा सीदन्ति तेभ्यः (**स्वाहा**) धर्म्यां क्रियाम् (**यमनेत्रेभ्यः**) यमस्य=वायोर्नेत्रं=नयनमिव नीतिर्येषां तेभ्यः (**देवेभ्यः**) विपश्चिद्भ्यः (**दक्षिणासद्भ्यः**) ये दक्षिणस्यां दिशि सीदन्ति तेभ्यः (**स्वाहा**) दानक्रियाम् (**विश्वदेवनेत्रेभ्यः**) सर्वविद्वत्तुल्या नेत्रा=नीतिर्येषां तेभ्यः (**देवेभ्यः**) दिव्यसुखप्रदेभ्यः (**पश्चात्सद्भ्यः**) ये पश्चात्सीदन्ति तेभ्यः (**स्वाहा**) उत्साहकारिकां वाचम् (**मित्रावरुणनेत्रेभ्यः**) प्राणापानतुल्येभ्यः (**वा**) पक्षान्तरे (**मरुन्नेत्रेभ्यः**) मरुतामृत्विजां प्रजास्थानां सज्जनानां वा नेत्रमिव नायकत्वं येषां तेभ्यः (**वा**) (**देवेभ्यः**) दिव्यन्यायप्रकाशकेभ्यः (**उत्तरासद्भ्यः**) य उत्तरस्यां दिशि सीदन्ति तेभ्यः (**स्वाहा**) दौत्यकुशलताम् (**सोमनेत्रेभ्यः**) सोमस्य=चन्द्रस्यैश्वर्य्यवती नेत्रं=नयनमिव नीतिर्येषां तेभ्यः (**देवेभ्यः**) सकलविद्याप्रचारकेभ्यः (**उपरिसद्भ्यः**) सर्वोपरि विराजमानेभ्यः (**दुवस्वद्भ्यः**) विद्याविनयधर्मेश्वरान् सेवमानेभ्यः (**स्वाहा**) आप्तवाणीम् ॥ अयं मन्त्रः शत० ५ । २ । ३ । ३-१० ॥ ५ । २ । ४ । १–५ व्याख्यातः ॥ ३५ ॥

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । २ । ३ । ३–१० ॥ ५ । २ । ४ । १–५) में की गई है ॥ ९ । ३५ ॥

पदार्थान्वयः—हे **निर्ऋते** ! नितरामृतं=सत्याचरणं यस्मिन् तत्सम्बुद्धौ **राजन्** ! **ते**=**तव य एषः** पूर्वापर प्रतिपादितः **भागः**=भजनीयः सेवितुं योग्यः **न्यायोऽस्ति**, **तमग्निनेत्रेभ्यः** अग्नेः प्रकाश इव नेत्रं=नयनं येषां तेभ्यः **देवेभ्यः** धार्मिकेभ्यो विद्वद्भ्यः **स्वाहा** सत्यां वाचं,

भाषार्थ—हे (**निर्ऋते**) नितान्त सत्य आचरण करने वाले राजन् ! (**ते**) आपका जो (**एषः**) यह पूर्व और आगे प्रतिपादित (**भागः**) सेवन करने योग्य न्याय है, उसे (**अग्निनेत्रेभ्यः**) अग्नि के प्रकाश के समान नेत्र=नीति वाले (**देवेभ्यः**) धार्मिक विद्वानों के लिये (**स्वाहा**) सत्य वाणी को, और—

पुरःसद्भ्यः ये पुरः=पूर्वं सभायां राष्ट्रे वा सीदन्ति तेभ्यः **देवेभ्यः स्वाहा** धर्म्यां क्रियाम्,

(**पुरःसद्भ्यः**) जो सभा वा राष्ट्र में पूर्व विराजमान (**देवेभ्यः**) विद्वान् हैं उनके लिये (**स्वाहा**) धर्मयुक्त कर्म को, और—

यमनेत्रेभ्यः यमस्य=वायोर्नेत्रं=नयनमिव नीतिर्येषां तेभ्यः **दक्षिणासद्भ्यः** ये दक्षिणस्यां दिशिसीदन्ति तेभ्यः **देवेभ्यः** विपश्चिद्भ्यः **स्वाहा** दानक्रियाम्,

(**यमनेत्रेभ्यः**) यम=वायु की नीति के समान जिनकी नीति है उन (**दक्षिणासद्भ्यः**) दक्षिण दिशा में प्रबन्ध के लिये विराजमान (**देवेभ्यः**) विद्वानों के लिये (**स्वाहा**) दान कर्म को, और—

विश्वदेवनेत्रेभ्यः सर्वविद्वत्तुल्या नेत्रा=नीतिर्येषां तेभ्यः **पश्चात्सद्भ्यः** ये पश्चात्सीदन्ति तेभ्यः **देवेभ्यः** दिव्यसुखप्रदेभ्यः **स्वाहा** उत्साहकारिकां वाचम्,

(**विश्वदेवनेत्रेभ्यः**) सब विद्वानों के तुल्य जिनकी नीति है, उन (**पश्चात्सद्भ्यः**) पश्चिम दिशा में विराजमान (**देवेभ्यः**) दिव्य सुखों को देने वाले विद्वानों के लिये (**स्वाहा**) उत्साहवर्द्धक वाणी को, और—

मित्रावरुणनेत्रेभ्यः प्राणापानतुल्येभ्यः **वा** पक्षान्तरे **मरुन्नेत्रेभ्यः** मरुताम्=ऋत्विजां प्रजास्थानां सज्जनानां वा नेत्रमिव नायकत्वं येषां तेभ्यः **वा, उत्तरासद्भ्यः** य उत्तरस्यां दिशि सीदन्ति तेभ्यः **देवेभ्यः** दिव्यन्यायप्रकाशकेभ्यः **स्वाहा** दौत्यकुशलताम् ।

(**मित्रावरुणनेत्रेभ्यः**) प्राण और अपान के तुल्य (**वा**) अथवा (**मरुन्नेत्रेभ्यः**) मरुत्=ऋत्विजों अथवा प्रजा के श्रेष्ठ जनों की नीति के समान जिनकी नीति है उनके लिये अथवा (**उत्तरासद्भ्यः**) जो उत्तर दिशा में विराजमान हैं उन (**देवेभ्यः**) दिव्य न्याय को प्रकाशित करने वाले विद्वानों के लिये (**स्वाहा**) दूतकर्म की कुशलता को, और

सोमनेत्रेभ्याः सोमस्य=चन्द्रस्यैश्वर्य्यवती नेत्रं=नयनमिव नीतिर्येषां तेभ्यः **उपरिसद्भ्यः** सर्वोपरिविराजमानेभ्यः **दुवस्वाद्भ्यः** विद्याविनयधर्मेश्वरान् सेवमानेभ्यः **देवेभ्यः** सकलविद्याप्रचारकेभ्यः **स्वाहा** आप्त वाणीं **च** प्राप्य **त्वं धर्मेण राज्यं सदा जुषस्व** सेवस्व ॥ ९ । ३५ ॥

(**सोमनेत्रेभ्य**) सोम=चन्द्र की ऐश्वर्यवती नीति के समान जिनकी नीति है उन (**उपरिसद्भ्यः**) सब के ऊपर विराजमान (**दुवस्यद्भ्यः**) विद्या, विनय, धर्म और ईश्वर का सेवन करने वाले (**देवेभ्यः**) सकल विद्याओं के प्रचारक विद्वानों के लिये (**स्वाहा**) आप्त जनों की वाणी को प्राप्त करके, आप धर्मपूर्वक राज्य का सदा (**जुषस्व**) सेवन कीजिये ॥ ९ । ३५ ॥

[हे···राजन् ! ते=तव भागः=भजनीयो न्यायोऽस्ति, ते···देवेभ्यः···प्राप्य त्वं धर्मेण रांज्यं सदा जुषस्व]

भावार्थः—हे राजन् सभाध्यक्ष ! यदा भवान् सर्वतो विद्वद्वरेभ्यः परिवृतः, प्राप्तशिक्षः, कृतसभो, रक्षितसेनः, सुसहायः, सन् सनातन्या वेदोक्तया राजधर्मनीत्या प्रजाः पालयेत्तदेवेहामुत्र च सुखमेव प्राप्नुयात् ।

भावार्थ—हे सभाध्यक्ष राजन् ! जब आप सब ओर से श्रेष्ठ विद्वानों से घिरे हुए सुशिक्षित, सभा करने वाले, सेना के रक्षक, उत्तम सहायक होकर सनातनी वेदोक्त राजधर्म की नीति से प्रजा का पालन करें, तभी इस लोक और परलोक में सुख को प्राप्त कीजिये ।

एतद्विरुद्धश्चेत्तर्हि ते कुतः सुखमिति, नहि मूर्खसहायः सुखमेधते, न खलु विद्वदुपदेशानुगामी कदाचित्सुखं जहात्यस्मद्राजा सदैव विद्याधर्माप्त-सहायेन राज्यं रक्षेत् ।

यदि आप इसके विरुद्ध आचरण करेंगे तो सुख कहाँ ? क्योंकि मूर्ख जिसके सहायक हैं वह सुख से नहीं बढ़ता, और विद्वानों के उपदेश का अनुगामी कभी सुख को नहीं छोड़ता, अतः हमारा राजा सदा विद्या, धर्म और आप्त जनों के सहाय से राज्य की रक्षा करें ।

यस्य सभायां राज्ये वा पूर्णविद्या धार्मिका वर्त्तन्ते, मिथ्यावादिनो व्यभिचारिणोऽजितेन्द्रियाः परुषवाचोऽन्यायचाराः स्तेना दस्यवश्च न सन्ति, स्वयमप्येवं भूतोऽस्ति, स एव चक्रवर्त्तिराज्यं कर्त्तु-मर्हति नातो विरुद्धो जन इति बोध्यम् ॥ ६ । ३५ ॥

जिसकी सभा वा राज्य में पूर्ण विद्या वाले धार्मिक विद्वान् होते हैं, मिथ्यावादी व्यभिचारी, अजितेन्द्रिय, कठोर वचन बोलने वाले, अन्याय-कारी, चोर और डाकू नहीं होते और जो स्वयं भी ऐसा है वही चक्रवर्ती राज्य कर सकता है; इससे विरुद्ध व्यक्ति राज्य नहीं कर सकता, ऐसा समझें ॥ ६ । ३५ ॥

भाष्यसार— कैसा मनुष्य साम्राज्य की सेवा के योग्य होता है—नितान्त सत्य का आचरण करने वाला राजा, सेवन करने योग्य न्याय को तथा सत्य वाणी को नीतिमान धार्मिक विद्वानों से, सभा वा राज्य में विद्यमान विद्वानों से धर्माचरण को, दानकर्म को, उत्साह को बढ़ाने वाली वाणी को, दूतकर्म सम्बन्धी कुशलता को, आप्त जनों की वाणी को प्राप्त करके धर्माचरण से राज्य की सेवा कर सकता है ।

विद्वान्	बैठने की दिशा
१. अग्निनेत्र विद्वान्	पुरःसद् (पूर्व)
२. यमनेत्रविद्वान्	दक्षिणासद् (दक्षिण)
३. विश्वदेवनेत्र विद्वान्	पश्चात्सद् (पश्चिम)
४. मित्रावरुणने/मरुन्नेत्र विद्वान्	उत्तरासद् (उत्तर)
५. सोमनेत्र विद्वान् (सर्वोपरि विराजमान)	उपरिसद् (ऊपर की दिशा) ॥ ६ । ३५ ॥

वरुणः । **विश्वेदेवाः**=विद्वांसः । विकृतिः । मध्यमः ॥

मनुष्याः सर्वत्र भ्रमणं विधाय विद्या गृह्णीयुरित्युपदिश्यते ॥

मनुष्य सर्वत्र भ्रमण करके विद्याओं को ग्रहण करें, इस विषय का उपदेश किया है ॥

ये दे॒वा ऽ अ॒ग्निने॑त्राः पु॒रः॒सद॒स्तेभ्यः॒ स्वाहा॒ ये दे॒वा य॒मने॑त्रा दक्षि॒णा॒सद॒स्तेभ्यः॒ स्वाहा॒ ये दे॒वा वि॒श्वदे॑वनेत्राः पश्चा॒त्सद॒स्तेभ्यः॒ स्वाहा॒ ये दे॒वा मि॒त्रावरु॑णनेत्रा वा म॒रुन्ने॑त्रा वोत्त॒रा॒सद॒स्तेभ्यः॒ स्वाहा॒ ये दे॒वाः सोम॑नेत्रा ऽ उप॒रि॒सदो॒ दुव॑स्वन्त॒स्तेभ्यः॒ स्वाहा॑ ॥ ३६ ॥

पदार्थः—(ये) (**देवाः**) विद्वांसः (**अग्निनेत्राः**) अग्नौ=विद्युदादौ नेत्रं=नयनं विज्ञानं येषान्ते (**पुरःसदः**) ये सभायां राष्ट्रे वा पुरः=पूर्वस्यान्दिशि सीदन्ति (**तेभ्यः**) (**स्वाहा**) सत्यां वाचम् (**ये**) (**देवाः**) योगिनो न्यायाधीशाः (**यमनेत्राः**) यमेष्वहिंसादिषु योगाङ्गेषु नीतिषु वा नेत्रं=प्रापणं येषां ते (**दक्षिणासदः**) ये दक्षिणस्यां दिश्यवतिष्ठन्ते (**तेभ्यः**) (**स्वाहा**) सत्यां क्रियाम् (**ये**) (**देवाः**) सर्वविद्याविदः (**विश्वदेवनेत्राः**) विश्वेषु देवेषु नेत्रं=प्रज्ञानं येषान्ते (**पश्चात्सदः**) ये पश्चिमायां दिशि सीदन्ति (**तेभ्यः**) (**स्वाहा**) आन्वीक्षिकीं विद्याम् (**ये**) (**देवाः**) सर्वेभ्यः सुखदातारः (**मित्रावरुणनेत्राः**) प्राणोदानवत्सर्वान् धर्म्मं नयन्तः (**वा**) (**मरुन्नेत्राः**) मरुति=ब्रह्माण्डस्थे वायौ नेत्रं=नयनं येषां ते (**वा**) अधऊर्ध्वस्थाः (**उत्तरासदः**) ये प्रश्नोत्तराणि समादधाना उत्तरस्यान्दिशि सीदन्ति (**तेभ्यः**) (**स्वाहा**) सर्वोपकारिणीं विद्याम् (**ये**) (**देवाः**) आयुर्वेदविदः (**सोमनेत्राः**) सोमलतादिष्वोषधीषु नेत्रं=नयनं येषान्ते (**उपरिसदः**) ये उपरि=उत्कृष्ट आसने व्यवहारे वा सीदन्ति ते (**दुवस्वन्तः**) दुवो=बहुविद्याधर्मपरिचरणं विद्युते येषु (**तेभ्यः**) (**स्वाहा**)धर्मौषधिविद्याम् ॥ **अयं मन्त्रः शत० ५ । २ । ४ । ६ व्याख्यातः ॥ ३६ ॥**

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । २ । ४ । ६) में की गई है ॥ ३६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे सभाध्यक्ष-राजन् ! त्वं **ये ऽग्निनेत्राः** अग्नौ=विद्युदादौ नेत्रं =नयनं=विज्ञानं येषां ते **पुरःसदः** ये सभायां राष्ट्रे वा पुरः=पूर्वस्यां दिशि सीदन्ति **देवाः** विद्वांसः **सन्ति, तेभ्यः स्वाहा** सत्यां वाचं **जुषस्व ।**

ये यमनेत्राः यमेषु=अहिंसादिषु योगाङ्गेषु नीतिषु वा नेत्रं=प्रापणं येषां ते **दक्षिणासदः** ये दक्षिणस्यां दिश्यवतिष्ठन्ते **देवाः योगिनो** न्यायाधीशाः **सन्ति, तेभ्यः स्वाहा** सत्यां क्रियां **जुषस्व ।**

ये पश्चात्सदः ये पश्चिमायां दिशि सीदन्ति **विश्वदेवनेत्राः** विश्वेषु देवेषु नेत्रं=प्रज्ञानं येषां ते **देवाः** सर्वविद्याविदः **सन्ति, तेभ्यः स्वाहा** आन्वीक्षिकीं विद्यां **जुषस्व ।**

ये उत्तरासदः ये प्रश्नोत्तराणि समादधाना उत्तरस्यां दिशि सीदन्ति **वा=अधऊर्ध्वस्था मित्रावरुणनेत्राः** प्राणोदानवत् सर्वान् धर्म्मं नयन्तः **वा मरुन्नेत्राः** मरुति=ब्रह्माण्डस्थे वायौ नेत्रं= नयनं येषां ते **देवाः** सर्वेभ्यः सुखदातारः **सन्ति, तेभ्यः स्वाहा** सर्वोपकारिणीं विद्या [**जुषस्व**]

भाषार्थ—हे सभाध्यक्ष राजन् ! आप (**ये**) जो (**अग्निनेत्राः**) अग्नि=विद्युत् आदि विषयक नेत्र=विज्ञान वाले, (**पुरःसदः**) सभा वा राष्ट्र में पूर्व दिशा में विराजमान (**देवाः**) विद्वान् हैं, (**तेभ्यः**) उनके लिये (**स्वाहा**) सत्य वाणी का (**जुषस्व**) सेवन करो, और—

(**ये**) जो (**यमनेत्राः**) यम=अहिंसा आदि योगाङ्गों को अथवा नीतियों को प्राप्त, (**दक्षिणासदः**) दक्षिण दिशा में विराजमान, (**देवाः**) योगी न्यायाधीश हैं, (**तेभ्यः**) उनके लिये (**स्वाहा**) सत्यकर्म का (**जुषस्व**) सेवन करो और—

(**ये**) जो (**पश्चात्सदः**) पश्चिम दिशा में विराजमान (**विश्वदेवनेत्राः**) सब देवों में जिनका नेत्र=विज्ञान विद्यमान है तथा (**देवाः**) जो सब विद्याओं के वेत्ता हैं (**तेभ्यः**) उन विद्वानों के लिये (**स्वाहा**) आन्वीक्षिकी=न्याय विद्या का (**जुषस्व**) सेवन करो, और—

(**ये**) जो (**उत्तरासदः**) प्रश्न-उत्तरों का समाधान करने वाले हैं वे उत्तर दिशा में विराजमान (**वा**) अथवा नीचे और ऊपर स्थित (**मित्राः-वरुणनेत्राः**) प्राण और उदान के समान सबको धर्म की ओर ले जाने वाले, अथवा (**मरुन्नेत्राः**) ब्रह्माण्ड स्थ वायु के समान नीति वाले (**देवाः**) सब को सुख देने वाले विद्वान् हैं (**तेभ्यः**) उनके

लिये (स्वाहा) सर्वोपकारक विद्या को [जुषस्व] सेवन करो, और

[ये] [सोमनेत्राः] सोमलतादिष्वोषधीषु नेत्रं =नयनं येषां ते [उपरिसदः] य उपरि=उत्कृष्ट-आसने व्यवहारे वा सीदन्ति ते [दुवस्वन्तः] दुवः= बहुविद्याधर्मपरिचरणं विद्यते येषु [देवाः] आयुर्वेदविदः [सन्ति] [तेभ्यः] [स्वाहा] धर्मौषधिविद्यां जुषस्व ॥ ९ । ३६ ॥

(ये) जो (सोमनेत्राः) सोमलता आदि औषधियों के समान नीति वाले, [उपरिसदः] उत्तम आसन वा व्यवहार में विराजमान [दुवस्वन्तः] विद्या और धर्म का अत्यन्त सेवन करने वाले, [देवाः] आयुर्वेद के वेत्ता विद्वान् हैं [तेभ्यः] उनके लिये [स्वाहा] धर्म और औषधिविद्या का (जुषस्व) सेवन करो ॥ ९ । ३६ ॥

[हे सभाध्यक्षराजन् ! त्वं ये ऽग्निनेत्राः'''देवाः सन्ति तेभ्यः स्वाहा जुषस्व''']

भावार्थः—हे राजादयो मनुष्याः ! यूयं —यदा धार्मिकाः सुशीला विद्वांसो भूत्वा सर्वदिक्स्थानां सर्वविद्याविदामाप्तानां विदुषां परीक्षासत्कारार्थं सर्वा विद्या प्राप्नुयात्, तदैते भवत्समीपमागत्य, युष्माभिः सह संगत्य, धर्मार्थकाममोक्षाणां सिद्धिं कुर्युः ।

भावार्थ—हे राजा आदि मनुष्यो ! तुम लोग जब धार्मिक, सुशील विद्वान् होकर पूर्व आदि सब दिशाओं में विद्यमान, सकल विद्याओं के वेत्ता आप्त विद्वानों की परीक्षा और सत्कार के लिये सब विद्याओं को प्राप्त करोगे, तभी ये आप के पास आकर, तुम से मिल कर, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि करेंगे ।

ये देशदेशान्तरं द्वीपद्वीपान्तरं [गत्वा] विद्याविनय सुशिक्षाक्रियाकौशलानि गृह्णन्ति त एव सर्वेषां सुसुखैरलङ्कर्त्तारः स्युः ॥ ९ । ३६ ॥

जो राजा देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर में जाकर विद्या, विनय, सुशिक्षा और क्रियाकौशल को ग्रहण करते हैं, वे ही सब लोगों को उत्तम सुखों से अलङ्कृत् करने वाले होते हैं ॥ ९ । ३६ ॥

भाष्यसार—मनुष्य सर्वत्र भ्रमण करके विद्या ग्रहण करें—राजा आदि मनुष्य धार्मिक, सुशील विद्वान् होकर, पूर्व दिशा में विद्यमान विद्युत् आदि विज्ञान के वेत्ता, विद्वानों से सत्य विद्या को ग्रहण करें । दक्षिण दिशा में विद्यमान, अहिंसा आदि योग के अङ्गों को प्राप्त, योगी, न्यायाधीश विद्वानों से सत्याचरण को, ग्रहण करें । पश्चिम दिशा में विद्यमान, सब विद्वानों में प्रज्ञान को स्थापित करने वाले, सकल विद्याओं के वेत्ता विद्वानों से आन्वीक्षिकी (**न्यायविद्या**) को ग्रहण करें । उत्तर दिशा में विद्यमान, प्रश्न-उत्तर करने वाले अथवा नीचे और ऊपर की दिशा में विद्यमान, प्राण-उदान के समान सबको धर्म की ओर ले जाने वाले, अथवा वायु के समान सब ब्रह्माण्ड को सुख देने वाले विद्वानों से सर्वोपकारक विद्या को ग्रहण करें । उत्तम आसन वा उत्तम व्यवहार में विराजमान, सोम लता आदि औषधियों के ज्ञाता, नाना विध विद्या और धर्म का सेवन करने वाले विद्वानों से धर्म और औषधि विद्या को ग्रहण करें ।

भाव यह है कि राजा आदि लोग सब दिशाओं में विद्यमान, सकल विद्याओं के वेत्ता, आप्त विद्वानों की परीक्षा और सत्कार के लिये सब विद्याओं को प्राप्त करें । देश-देशान्तर और द्वीप द्वीपान्तर में जाकर विद्या, विनय, सुशिक्षा, और क्रिया कौशल को ग्रहण करें । तभी वे सब लोगों को उत्तम सुखों से अलङ्कृत कर सकते हैं ॥ ९ । ३६ ॥

देववातः । **अग्निः**=**विद्वान् राजा** ॥ निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनरपि राजादिभिः कथं वर्त्तितव्यमित्युपदिश्यते ॥

राजा आदि किस प्रकार वर्ताव करें, यह उपदेश किया है ॥

अग्ने सहस्व पृतना ऽ अभिमातीरपास्य । दुष्टरस्तरन्नरातीर्वर्चो धा यज्ञवाहसि ॥ ३७ ॥

पदार्थः—(**अग्ने**) सकलविद्याविद्विद्वन् राजन् ! (**सहस्व**) क्षमस्व (**पृतनाः**) बलसुशिक्षान्विता वीरमनुष्यसेनाः (**अभिमातीः**) अभिमानहर्षयुक्ताः (**अप**) (**अस्य**) दूरे प्रक्षिप (**दुष्टरः**) दुःखेन तरितुं=संप्लवितुं योग्यः (**तरन्**) शत्रुबल संप्लवन् (**अरातीः**) अदानशीलान् शत्रून् (**वर्चः**) विद्यावलन्यायदीपनम् (**धाः**) धेहि (**यज्ञवाहसि**) यज्ञान्=संगतान् राजधर्मादीन् वहन्ति यस्मिन् राज्ये तस्मिन् ॥ **अयं मन्त्रः शत० ५ । २ । ४ । १६ व्याख्यातः ॥ ३७ ॥**

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । २ । ४ । १६) में की गई है ॥ ९ । ३७ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे अग्ने !** सकलविद्याविद्विद्वन् राजन् ! **दुष्टरः** दुःखेन तरितुं=संप्लवितुं योग्यः **तरन्** शत्रु-बलं संप्लवन् **त्वं यज्ञवाहसि** यज्ञान्=संगतान् राजधर्मादीन् वहन्ति यस्मिन् राज्ये तस्मिन् **अभिमातीः** अभिमानहर्षयुक्ताः [**पृतनाः**] बलसुशिक्षान्विता वीरमनुष्यसेनाः [**सहस्व**] क्षमस्व, [**अरातीः**] अदानशीलान् शत्रून् **अपास्य** दूरे प्रक्षिप, **वर्चः** विद्यावलन्यायदीपनं **धाः** धेहि ॥ ९ । ३७ ॥

भाषार्थ—हे (**अग्ने**) सकल विद्याओं को जानने वाले विद्वान् राजन् ! आप (**दुष्टरः**) शत्रुओं से दुःख से पार करने योग्य हो, सो आप (**तरन्**) शत्रु सेना को पार करते हुये (**यज्ञवाहसि**) यज्ञ अर्थात् राजधर्म आदि के प्राप्ति-स्थान अपने राज्य में (**अभिमातीः**) अभिमान एवं हर्ष से युक्त [**पृतनाः**] बल और सुशिक्षा से युक्त वीर जनों की सेनाओं को [**सहस्व**] सहन करो, और [**अरातीः**] अदानशील शत्रुओं को (**अपास्य**) दूर हटाओ, तथा (**वर्चः**) विद्या, बल और न्याय के प्रकाश को (**धाः**) धारण करो ॥ ९ । ३७ ॥

[हे अग्ने ! दुष्टरस्तरँस्त्वं यज्ञवाहस्यभिमातीः [पृतनाः] [सहस्व]. [अरातीः] अपास्य वर्चो धाः]

भावार्थः—राजादयः, सभासेनादयः स्वकीयेन दृढेन, विद्यासुशिक्षायुक्तेन, धृतेन सैन्येन सहिताः, स्वयमजयाः सन्तः, शत्रून् विजयमानाः पृथिव्यां कीर्तिं प्रसारयेयुः ॥ ९ । ३७ ॥

भावार्थ—राजा आदि, सभा तथा सेना आदि दृढ़ता, विद्या और उत्तम शिक्षा के योग से धारण की हुई सेना से स्वयं अजेय होकर, शत्रुओं को जीतकर पृथिवी पर कीर्ति का प्रसार करें ॥ ९ । ३७ ॥

भाष्यसार—**राजा आदि कैसे वर्ताव करें**—सकल विद्याओं का वेत्ता विद्वान् राजा ऐसा वर्ताव रखे कि उसे शत्रु पार न कर सकें और वह शत्रुओं की सेना को पार कर सके । राजधर्म आदि को प्राप्त कराने वाले उसके राज्य में, अभिमान और हर्ष से युक्त, बल और उत्तम शिक्षा से भूषित वीरों की सेना हो । वह उक्त सेना के बल से शत्रुओं को दूर भगावे । विद्या, बल और न्याय के प्रकाश को फैलावे ।

राजा अपनी दृढ़ता से, सभा की विद्या और उत्तम शिक्षा से, सेना के धारण से युक्त होकर स्वयं अजेय बने, शत्रुओं पर विजय प्राप्त करे, और पृथिवी पर अपनी कीर्ति का प्रसार करे ॥ ९ । ३७ ॥

देववातः । **रक्षोघ्नः**=रक्षसां हन्ता राजा ॥ स्वराड्ब्राह्मी बृहती । मध्यमः ॥

प्रजाजना इह कीदृशं सभाधीशं राजानं स्वीकुर्युरित्याह ॥

प्रजाजन राज्य में कैसे सभाधीश राजा को स्वीकार करें, इस विषय का उपदेश किया है ॥

देवस्यं त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
उपाꣳशोर्वीर्येण जुहोमि हतꣳ रक्षः स्वाहा रक्षसां त्वा वधायावधिष्म
रक्षोऽवधिष्मामुमसौ हतः ॥ ३८ ॥

पदार्थः—(**देवस्य**) प्रकाशितन्यायस्य (**त्वा**) त्वाम् (**सवितुः**) ऐश्वर्य्योत्पादकस्य सेनेशस्य (**प्रसवे**) ऐश्वर्ये (**अश्विनोः**) सूर्य्याचन्द्रमसोरिव सभासेनापत्योः (**बाहुभ्याम्**) (**पूष्णः**) पुष्टिकर्त्तुर्वैद्यस्य (**हस्ताभ्याम्**) (**उपांशोः**) उप=समीपेऽनीति तस्य । **अत्रान धातोरुः शुगागमश्च** (**वीर्य्येण**) सामर्थ्येन (**जुहोमि**) गृह्णामि (**हतम्**) विनष्टम् (**रक्षः**) राक्षसम् । **रक्षो रक्षितव्यमस्माद्रहसि क्षणोतीति वा रात्रौ नक्षत इति वा ॥** निरु० ४ । १८ ॥ (**स्वाहा**) सत्यया क्रियया (**रक्षसाम्**) दुष्टानाम् (**त्वा**) त्वाम् (**बधाय**) विनाशाय (**अवधिष्म**) हन्याम (**रक्षः**) दुष्टाचारम् (**अवधिष्म**) ताडयेम (**अमुम्**) परोक्षम् (**असौ**) दूरस्थः (**हतः**) विनष्टः ॥ **अयं मन्त्रः शत० ५ । २ । ४ । १७–२० व्याख्यातः ॥ ३८ ॥**

प्रमाणार्थ—(**उपांशोः**) 'अन' धातु से 'उ' प्रत्यय और 'शुक्' का आगम होने से 'उपांशु' शब्द सिद्ध होता है । (**रक्षः**) इस शब्द की निरुक्ति निरु० (४ । १८) में इस प्रकार है—"राक्षस को राक्षस इसलिए कहते हैं कि इससे बचना चाहिए, एकान्त में यह हिंसा करता है, अथवा यह प्रायः रात में घूमता फिरता है ।" इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । २ । ४ । १७–२०) में की गई है ॥ ९ । ३८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे राजन् ! **अहं स्वाहा** सत्यया क्रियया **सवितुः** ऐश्वर्य्योत्पादकस्य सेनेशस्य **देवस्य** प्रकाशितन्यायस्य **प्रसवे** ऐश्वर्ये **उपांशोः** उप=समीपेऽनीति, तस्य **वीर्य्येण** सामर्थ्येन, **अश्विनोः** सूर्य्याचन्द्रमसोरिव सभासेनापत्योः **बाहुभ्यां**, **पूष्णः** पुष्टिकर्त्तुर्वैद्यस्य हस्ताभ्यां, **रक्षसां** दुष्टानां **बधाय** विनाशाय **त्वा** त्वां **जुहोमि** गृह्णामि ।

यथा त्वया [**अमुम्**] परोक्षं रक्षः राक्षसं=हतं विनष्टं **तथा वयमप्यवधिष्म** हन्याम ।

यथासौ दूरस्थः हतः विनष्टः **स्यात, तथा वयमेतं** [**रक्षः**] दुष्टाचारम् **अवधिष्म** ताडयेम ॥ ९ । ३८ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! मैं (**स्वाहा**) सत्य कर्म से (**सवितुः**) ऐश्वर्य के उत्पादक सेनापति के (**देवस्य**) प्रकाशित न्याय के (**प्रसवे**) ऐश्वर्य में (**उपांशोः**) समीपस्थ सेना के (**वीर्येण**) सामर्थ्य से, (**अश्विनोः**) सूर्य और चन्द्रमा के समान सभा और सेनापति की (**बाहुभ्याम्**) भुजाओं से, (**पूष्णः**) पुष्टि—कर्त्ता वैद्य के (**हस्ताभ्याम्**) हाथों से, (**रक्षसाम्**) दुष्टों के (**बधाय**) विनाश के लिये (**त्वा**) आपको (**जुहोमि**) स्वीकार करता हूँ ।

जैसे आपने [**अमुम्**] उस (**रक्षः**) राक्षस को (**हतम्**) नष्ट किया है वैसे हम भी राक्षसों को (**अवधिष्म**) नष्ट करें ।

जैसे (**असौ**) वह दूरस्थ राक्षस (**हतः**) नष्ट हो वैसे हम लोग इस [**रक्षः**] दुष्टाचारी राक्षस का (**अवधिष्म**) ताड़न करें ॥ ९ । ३८ ॥

[हे राजन् ! अहं ······रक्षसां बधाय त्वा जुहोमि]

भावार्थः—प्रजास्थजनाः स्वरक्षणाय,

भावार्थ—प्रजा जन अपनी रक्षा के लिये,

दुष्टनिवारणाय, विद्याधर्मप्रवृत्तये च सुशीलं राजानं स्वीकुर्युः ॥ ९ । ३८ ॥

दुष्टों के निवारण के लिये तथा विद्या और धर्म के प्रसार के लिये सुशील राजा को स्वीकार करें ॥ ९ । ३८ ॥

भाष्यसार—**प्रजा जन यहाँ कैसे सभाधीश राजा को स्वीकार करें**—हे सभाधीश राजन् ! आप सत्याचरण से युक्त हो, ऐश्वर्य को उत्पन्न करने वाले सेनापति के तथा न्याय को प्रकाशित करने वाले न्यायाधीश के ऐश्वर्य से सम्पन्न हो, प्राण के सामर्थ्य से युक्त हो, आपके सभापति और सेनापति सूर्य और चन्दमा के समान दो भुजायें हैं, पोषक वैद्य आपके हाथ हैं । आपकी इस शक्ति से अपनी रक्षा के लिये, दुष्टों के विनाश (**निवारण**) के लिये, विद्या और धर्म के प्रसार के लिये हम प्रजा जन आपको राजा स्वीकार करते हैं ।

जैसे आप दुष्ट-जनों का ताड़न करते हैं वैसे हम लोग भी दुष्टाचारी लोगों का ताड़न करें ॥ ९ । ३८ ॥

देववातः । **रक्षोघ्नः**=**रक्षसां हन्ता राजा** ॥ अतिजगती । निषादः ॥

सभ्यैर्मनुष्यै राजा क्व-क्व प्रेरयितव्य इत्याह ॥

सभ्य मनुष्य राजा को किस-किस विषय में प्रेरणा करें, इस विषय का उपदेश किया है ॥

स॒वि॒ता त्वा॑ स॒वाना॑ᳪ᳭ सु॒व॒ता॒म॒ग्निर्गृ॒हप॑तीना॒ᳪ᳭ सोमो॒ वन॒स्पती॑नाम् ।
बृ॒ह॒स्पति॒र्वा॒चऽइन्द्रो॒ ज्यैष्ठ्या॑य रु॒द्रः प॒शुभ्यो॑ मि॒त्रः स॒त्यो वरु॑णो॒ धर्म॑पतीनाम् ॥ ३९ ॥

पदार्थः—(**सविता**) ऐश्वर्य्यस्य प्रसविता (**त्वा**) त्वाम् (**सवानाम्**) ऐश्वर्य्याणाम् (**सुवताम्**) प्रेर्ताम् । अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदम् (**अग्निः**) प्रकाशयुक्तः (**गृहपतीनाम्**) गृहाऽऽश्रमपालकानाम् (**सोमः**) सोम्यगुणसम्पन्नो वैद्यकविषय औषधिराजः (**वनस्पतीनाम्**) पिप्पल्यादीनाम् (**बृहस्पतिः**) पूर्णविद्यः=आप्तः (**वाचे**) वेदाऽर्थसुशिक्षायुक्तवाणीविज्ञानाय (**इन्द्रः**) परमैश्वर्य्ययोगारूढो वृद्धः (**ज्यैष्ठ्याय**) अतिशयेन वृद्धस्य भावाय (**रुद्रः**) शत्रूणां रोदयिता शूरवीरः (**पशुभ्यः**) गवादीनाम् (**मित्रः**) सर्वस्य सुहृत् (**सत्यः**) सत्पुरुषेषु भवः (**वरुणः**) धर्म्माऽऽचरणेन श्रेष्ठः (**धर्म्मपतीनाम्**) धर्म्मस्य रक्षितॄणाम् ॥ अयं मन्त्रः शत० ५ । ३ । ३ । १० व्याख्यातः ॥ ३९ ॥

प्रमाणार्थ—(**सुवताम्**) प्रेर्ताम् । यहां व्यत्यय से आत्मनेपद है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । ३ । ३ । १०) में की गई है ॥ ९ । ३९ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे सभेश राजन !** यस्त्वं **सवानाम्** ऐश्वर्य्याणां **सविता** ऐश्वर्य्यस्य प्रसविता **इव**, **गृहपतीनां** गृहाऽऽश्रमपालकानाम् **अग्निः** प्रकाशयुक्तः इव, **वनस्पतीनां** पिप्पल्यादीनां **सोमः** सोम्यगुणसम्पन्नो वैद्यकविषय ओषधिराजः **इव**, **धर्मपतीनां** धर्मस्य रक्षितॄणां **सत्यः** सत्पुरुषेषु भवः **वरुणः** धर्माचरणेन श्रेष्ठः **मित्रः** सर्वस्य सुहृत् **इव**, **वाचे** वेदाऽर्थसुशिक्षायुक्त वाणीविज्ञानाय **बृहस्पतिः** पूर्णविद्य आप्तः इव, **ज्यैष्ठ्याय** अतिशयेन वृद्धस्य

भाषार्थ—हे सभापति राजन् ! जो आप (**सवानाम्**) ऐश्वर्यों के (**सविता**) उत्पादक सूर्य के समान ही (**गृहपतीनाम्**) गृहस्थों की (**अग्नि**) प्रकाशयुक्त अग्नि के समान हो, (**वनस्पतीनाम्**) पिप्पली आदि औषधियों के (**सोमः**) सोम्यगुणों से युक्त वैद्यक विषय में औषधियों के राजा सोमलता के समान हो, (**धर्मपतीनाम्**) धर्म के रक्षकों के (**सत्यः**) सत्पुरुषों में विद्यमान सत्य हो, (**वरुणः**) धर्माचरण से श्रेष्ठ हो, (**मित्रः**) सबके मित्र के समान

भावार्थ **इन्द्रः** परमैश्वर्य्ययोगारूढो वृद्धः **इव, पशुभ्यः** गवादीनां **रुद्रः** शत्रूणां रोदयिता शूरवीरः **इवाऽसि,** **तं त्वा** त्वाम् **आप्त उपदेष्टा प्रजापालने सुवतां** प्रेरतम् ॥ ९ । ३९ ॥

हो, **(वाचे)** वेदार्थ सम्बन्धी सुशिक्षा युक्त वाणी के विज्ञान के लिये **(बृहस्पतिः)** पूर्ण विद्वान् आप्त पुरुष के समान हो, **(ज्यैष्ठ्याय)** अत्यन्त बड़प्पन के लिये **(इन्द्रः)** परमैश्वर्य रूप योग में आरूढ़ वृद्ध पुरुष के समान हो, **(पशुभ्यः)** गौ आदि पशुओं के लिये **(रुद्रः)** शत्रुओं को रुलाने वाले शूरवीर के समान हो, रक्षक हो, सो **(त्वा)** आप को आप्त विद्वान् उपदेशक प्रजापालन के लिये **(सुवताम्)** प्रेरित करे ॥ ९ । ३९ ॥

[हे सभेश राजन् ! यस्त्वं'''धर्मपतीनां सत्यो वरुणो मित्र इव'''असि, ते त्वा आप्त उपदेष्टा प्रजापालने सुवताम्]

भावार्थः—हे राजँस्त्वं—ये त्वामधर्मान्निवर्त्य, धर्मानुष्ठाने प्रेरयेयुस्तेषामेव सङ्गं सदा कुरु; नेतरेषाम् ॥ ९ । ३९ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! आप, जो लोग आपको अधर्म से हटाकर, धर्माचरण में प्रेरित करें, उन्हीं का सङ्ग करो, अन्यों का नहीं ॥ ९ । ३९ ॥

भाष्यसार—**सभासद् लोग राजा को किस किस विषय में प्रेरित करें**—सभासद् लोग राजा को प्रेरित करें कि राजन् ! आप सब ऐश्वर्यों के उत्पादक हो तथा गृहाश्रमी जनों में प्रकाशक अग्नि के समान बनो, पिप्पली आदि बनस्पतियों में औषधियों के राजा सोम के समान बनो, धर्म के रक्षकों में सत्य, श्रेष्ठ धर्माचारी, सब के मित्र बनो, वेदार्थ सम्बन्धी उत्तम शिक्षा से युक्त वाणी को जानने के लिये बृहस्पति अर्थात् पूर्ण विद्यावान् आप्त पुरुष बनो, अत्यन्त ज्येष्ठभाव लड़प्पन के लिये इन्द्र अर्थात् परम ऐश्वर्य रूप योग समाधि को प्राप्त वृद्ध पुरुष बनो, गौ आदि पशुओं की रक्षा के लिये रुद्र अर्थात् शत्रुओं को रुलाने वाले शूरवीर बनो।

सभ्य आप्त विद्वान् उपदेशकों का कर्त्तव्य है कि वे राजा को प्रजा के पालन में प्रेरित करें। राजा को भी चाहिये कि जो लोग उसे अधर्म से निवारण करके धर्माचरण में प्रेरित करें राजा उन्हीं का सङ्ग सदा करे, अन्यों का सङ्ग कभी न करे ॥ ९ । ३९ ॥

देववातः । **मन्त्रभावः**=स्पष्टम् ॥ भुरिग् ब्राह्मी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

कस्मै कस्मै प्रयोजनाय कथंभूतो राजा स्वीकार्य्य इत्याह ॥

फिर किस प्रयोजन के लिये कैसे राजा को स्वीकार करें, इस विषय का उपदेश किया है ॥

इमं देवा ऽअसपत्नꣳ सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय । इममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विश ऽएष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानाꣳ राजा ॥ ४० ॥

पदार्थः—**(इमम्)** समक्षे वर्तमानम् **(देवाः)** धार्मिका विद्वांसः । **(असपत्नम्)** अजातशत्रुम् **(सुवध्वम्)** दिष्पादयत **(महते)** महागुणविशिष्टाय **(क्षत्राय)** क्षत्रियाणां पालनाय **(महते)** **(ज्यैष्ठ्याय)** ज्येष्ठत्वाय **(महते)** **(जानराज्याय)** जनानां राजसु भवाय **(इन्द्रस्य)** परमैश्वर्य्ययुक्तस्य पुरुषस्य **(इन्द्रियाय)**

धनाय (**इमम्**) (**अमुष्यपुत्रम्**) प्रतिष्ठितस्य धार्मिकस्य विदुषः सन्तानम् (**अमुष्यै**) अमुष्या धार्मिकाया विदुष्याः (**पुत्रम्**) पवित्रमपत्यम् (**अस्यै**) वर्त्तमानायाः (**विशे**) प्रजायाः (**एषः**) सर्वैः स्वीकृतः (**वः**) युष्माकं क्षत्रियादीनाम् (**अमी**) परोक्षे वर्त्तमानाः (**राजा**) न्यायप्रकाशकः (**सोमः**) सोम इव प्रजासु वर्त्तमानः (**अस्माकम्**) (**ब्राह्मणानाम्**) ब्रह्मणः=परमेश्वरस्य वेदचतुष्टयस्य वा सेवकानाम् (**राजा**) ॥ **अयं मन्त्रः शत० ५ । ३ । ३ । ११ व्याख्यातः ॥ ४० ॥**

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । ३ । ३ । ११) में की गई है ॥ ६ । ४० ॥

सपदार्थान्वयः—हे **प्रजास्था देवाः** धार्मिका विद्वांसः ! **यूयं एषः** सर्वैः स्वीकृतः **सोमः** सोम इव प्रजासु वर्त्तमानः **वः** युष्माकं क्षत्रियादीनाम् **अस्माकं च ब्रह्मणानां** ब्राह्मणः=परमेश्वरस्य वेदचतुष्टय्यस्य वा सेवकानां **राजा** न्यायप्रकाशकः, **येऽमी परोक्षे वर्त्तन्ते** परोक्षे वर्त्तमानाः **तेषाञ्च राजाऽस्ति, तमिमं** समक्षे वर्त्तमानम् **अमुष्य पुत्रं** प्रतिष्ठितस्य धार्मिकस्य विदुषः सन्तानम् **अमुष्यै** अमुष्या धार्मिकाया विदुष्याः **पुत्रं** पवित्रमपत्यम्, **अस्यै** वर्त्तमानायाः **विशे** प्रजायाः, **इममेव महते** महागुणविशिष्टाय **क्षत्राय** क्षत्रियाणां पालनाय, **महते** महागुणविशिष्टाय **ज्यैष्ठ्याय** ज्येष्ठत्वाय, **महते** महागुणविशिष्टाय **जानराज्याय** जनानां राजसु भवाय, **इन्द्रस्य** परमैश्वर्य्ययुक्तस्य पुरुषस्य **इन्द्रियाय** धनाय, **असपत्नम्** अजातशत्रुं **सुवध्वं** निष्पादयत ॥ ६ । ४० ॥

भाषार्थ—हे प्रजा में स्थित (**देवाः**) धार्मिक विद्वानो ! तुम लोग जो (**एषः**) यह सब प्रजाजनों से स्वीकृत (**सोमः**) चन्द्र के समान प्रजा में वर्तमान (**वः**) तुम क्षत्रिय आदि जनों का और हम (**ब्राह्मणानाम्**) ब्रह्म=परमेश्वर अथवा चारों वेदों के सेवकों का (**राजा**) न्यायप्रकाशक राजा है, और जो (**अमी**) परोक्ष में विद्यमान प्रजाजन हैं, उनका भी (**राजा**) राजा है, सो (**इमम्**) इस (**अमुष्य**) प्रतिष्ठित धार्मिक विद्वान् के (**पुत्रम्**) पुत्र को, (**अमुष्यै**) प्रतिष्ठित धार्मिक विदुषी के (**पुत्रम्**) पवित्र पुत्र को, (**अस्यै**) इस (**विशे**) प्रजा के पालन के लिये, (**इमम्**) इसे ही (**महते**) महान् गुणों से युक्त (**क्षत्राय**) क्षत्रियों के पालन के लिये, (**महते**) महान् गुणों से युक्त (**ज्यैष्ठ्याय**) बड़प्पन की प्राप्ति के लिये, (**महते**) महान् गुणों से युक्त (**जानराज्याय**) प्रजा-जनों के राजा बनने के लिए, (**इन्द्रस्य**) परम ऐश्वर्य से युक्त पुरुष के (**इन्द्रियाय**) धन की वृद्धि के लिये (**असपत्नम्**) अजातशत्रु (**सुवध्वम्**) बनाओ ॥ ६ । ४० ॥

[हे प्रजास्था देवाः ! यूयं य एष सोमो वो ऽस्माकं च ब्राह्मणानां राजा···अस्ति, तमिममुष्य पुत्रमुष्यै पुत्रं महते क्षत्राय, ज्यैष्ठ्याय, जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियायासपत्न सुवध्वम्]

भावार्थः—हे राजप्रजाजनाः ! यो विद्वद्भ्यां मातापितृभ्यां सुशिक्षितः, कुलीनो, महागुणकर्मस्वभावो, जितेन्द्रियत्वादिगुणयुक्तः, सेविताऽष्टाचत्वारिंशद्वर्षब्रह्मचर्यविद्यासुशिक्षः, पूर्णशरीरात्मबलः, प्रजापालनप्रियो विद्वानस्ति तं सभाध्यक्षं राजानं कृत्वा साम्राज्यं सेवध्वम् ॥ ६ । ४० ॥

भावार्थ—हे राजपुरुष और प्रजाजनो ! जो विदुषी माता और विद्वान् पिता से सुशिक्षित, कुलीन, महान् गुण-कर्म-स्वभाव वाला, जितेन्द्रियता आदि गुणों से युक्त, अड़तालीस वर्ष ब्रह्मचर्य सेवन से विद्या और सुशिक्षा को प्राप्त, शरीर, बल और आत्मबल से परिपूर्ण, प्रजापालन में प्रीतिमान् विद्वान् है, उसे सभाध्यक्ष राजा बनाकर साम्राज्य का सेवन करो ॥ ६ । ४० ॥

अन्यत्र व्याख्यात—(क) हे (**देवाः**) विद्वानो राजप्रजाजनो ! तुम (**इमम्**) इस

प्रकार के पुरुष को (**महते क्षत्राय**) बड़े चक्रवत्तिराज्य (**महते ज्यैष्ठ्याय**) सबसे बड़े (**महते जानराज्याय**) बड़े बड़े विद्वानों से युक्त राज्य पालने और (**इन्द्रस्येन्द्रियाय**) परम ऐश्वर्ययुक्त राज्य और धन के पालने के लिए (**असपत्नꣳ सुवध्वम्**) सम्मति करके सर्वत्र पक्षपातरहित पूर्णविद्याविनययुक्त सब के मित्र सभापति राजा को सर्वाधीश मान के सब भूगोल को शत्रुरहित करो (**सत्यार्थ समु० ६**) ॥

(ख) देखो ग्रहों का चक्र कैसा चलाया है, कि जिसने विद्या-हीन मनुष्यों को ग्रस लिया है ॥ "इमं देवा असपत्नꣳ सुवध्वम्" यह मन्त्र राज-गुण विधायक है (**सत्यार्थ० समु० ११**) ॥

(ग) "इमं देवा असपत्नम्०" अब ईश्वर सब मनुष्यों को राज-व्यवस्था के विषय में आज्ञा देता है कि--हे विद्वान् लोगो ! तुम इस राजधर्म को यथावत् जानकर अपने राज्य का ऐसा प्रबन्ध करो, कि जिससे तुम्हारे देश पर कोई शत्रु न आ जाए। (**महते क्षत्राय**) हे शूरवीर लोगो ! अपने क्षत्रिय-धर्म, चक्रवत्ति राज्य, श्रेष्ठकीत्ति, सर्वोत्तम राज्य-प्रबन्ध के अर्थ (**महते जानराज्याय**) सब प्रजा को विद्वान् करके ठीक-ठीक राज्य-व्यवस्था में चलाने के लिए तथा (**इन्द्रस्येन्द्रियाय**) बड़े ऐश्वर्य, सत्य, न्याय के प्रकाश करने के अर्थ (**सुवध्वम्**) अच्छे-अच्छे राज्य-सम्बन्धी प्रबन्ध करो, कि जिनसे सब मनुष्यों को उत्तम सुख बढ़ता जाए (**ऋ० भू० राजप्रजाधर्मविषयः**) ॥

(घ) इसी प्रकार से अल्पबुद्धि मनुष्यों ने 'इमं देवा असपत्नम्०' इत्यादि मन्त्रों का सूर्यादि ग्रहपीडा की शान्ति के लिये ग्रहण किया है। सो उनको केवल भ्रम-मात्र हुआ है। मूल अर्थ से कुछ सम्बन्ध नहीं। क्योंकि उन मन्त्रों में ग्रह-पीडा-निवारण करना यह अर्थ ही नहीं है। 'इमं देवा०' इसका अर्थ राजधर्म विषय में लिख दिया है (**ऋ० भू० ग्रन्थप्रामाण्याऽप्रामाण्यविषयः**) ॥ ६ । ४० ॥

भाष्यसार—**किस किस प्रयोजन के लिये कैसे राजा को स्वीकार करें**—क्षत्रिय अर्थात् राजपुरुष और परमेश्वर तथा वेद के सेवक ब्राह्मण अर्थात् धार्मिक विद्वान् एवं प्रजाजन, जो पुरुष सोम्य गुणों से युक्त हो उसे सब मिलकर राजा स्वीकार करें। वह राजा धार्मिक विदुषी माता का तथा प्रतिष्ठित धार्मिक विद्वान् का सुशिक्षित पुत्र हो। वह कुलीन, गुण-कर्म-स्वभाव से महान्, जितेन्द्रिय, विद्या और सुशिक्षा से युक्त, शरीरबल और आत्मबल से परिपूर्ण, प्रजापालन में प्रीतिमान् विद्वान् हो। उसे प्रजापालन के लिये, महान् गुणों से युक्त क्षत्रियों की रक्षा के लिये, महान् गुणों से युक्त ज्येष्ठभाव (**बड़प्पन**) की प्राप्ति के लिये, महान् गुणों से युक्त जनों के राज्य की प्राप्ति के लिए, परम ऐश्वर्यवान् पुरुषों के धन की प्राप्ति के लिये उक्त गुणों से युक्त राजा को स्वीकार करें।

[पूर्वापराध्यायार्थसंगतिमाह—]

अस्मिन्नध्याये राजधर्मवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वाध्यायार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति जानन्तु ॥ ६ ॥

इस अध्याय में राजधर्म का वर्णन होने से पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति है, ऐसा जानो ॥ ६ ॥

इति श्रीयुतपण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते दयानन्द-यजुर्वेदभाष्य-भास्करे
नवमोऽध्यायः सम्पूर्णः ॥

॥ ओ३म् ॥

ॐ अथ दशमाऽध्यायारम्भः ॐ

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व ॥ १ ॥

य० ३० । ३ ॥

वरुणः । **आपः**=**जलम्** ॥ निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

अथ मनुष्यैर्विदुषामनुकरणेन पदार्थेभ्यः उपयोगो ग्राह्य इत्याह ॥

अब मनुष्य विद्वानों का अनुकरण करके पदार्थों से उपयोग ग्रहण करें, यह उपदेश किया है ॥

अ॒पो दे॒वा मधु॑मतीरगृभ्ण॒न्नूर्ज॑स्वती रा॒ज॒स्व॒श्चिता॑नाः ।
याभि॑र्मि॒त्रावरु॑णाव॒भ्यषि॑ञ्च॒न् याभि॒रिन्द्र॒मन॑य॒न्नत्यरा॑तीः ॥ १ ॥

पदार्थः—(**अपः**) जलानि प्राणान्वा (**देवाः**) विद्वाँसः (**मधुमतीः**) प्रशस्तमधुरादिगुणयुक्ताः (**अगृभ्णन्**) गृह्णीत (**ऊर्जस्वतीः**) बलपराक्रमप्रदाः (**राजस्वः**) राजजनिकाः (**चितानाः**) संज्ञाकारिण्यः । अत्र विकरणलुग्व्यत्ययेनात्मनेपदं च (**याभिः**) (**मित्रावरुणौ**) प्राणोदानौ (**अभि**) (**असिंचन्**) सिंचन्ति (**याभिः**) क्रियाभिः (**इन्द्रम्**) विद्युतम् (**अनयन्**) प्राप्नुवन्ति (**अति**) (**अरातीः**) शत्रून् ॥ अयं मन्त्रः शत० ५ । ३ । ४ । २—३ व्याख्यातः ॥ १ ॥

प्रमाणार्थ—(**चितानाः**) यहाँ विकरण का लुक् और व्यत्यय से आत्मनेपद है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । ३ । ४ । २--३) में की गई है ॥ १० । १ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः** ! **यूयं**-**विपश्चितो देवाः** विद्वांसः **याभिः** क्रियाभिः **मित्रा-वरुणौ** प्राणोदानौ **अभ्यसिञ्चन्** सिञ्चन्ति, **याभिः** क्रियाभिः **इन्द्रं** विद्युतम् **अरातीः** शत्रून् **चाऽति-अनयन्** प्राप्नुवन्ति, **ताभिर्मधुमतीः** प्रशस्तमधुरा-दिगुणयुक्ताः **ऊर्जस्वतीः** बलपराक्रमप्रदाः **चितानाः** संज्ञाकारिण्यः **राजस्वः** राजजनिकाः **अपः** जलानि प्राणान् वा **अगृभ्णन्** गृह्णीत ॥ १० । १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम (**देवाः**) विद्वान् लोग (**याभिः**) जिन क्रियाओं से (**मित्रावरुणौ**) प्राण और उदान को (**अभ्यसिञ्चन्**) सींचते हैं, और (**याभिः**) जिन क्रियाओं से (**इन्द्रम्**) विद्युत् को तथा (**अरातीः**) शत्रुओं को (**अति**+**अनयन्**) ग्रहण करते हैं, उन क्रियाओं से (**मधुमतीः**) प्रशस्त मधुर आदि गुणों से युक्त, (**ऊर्जस्वतीः**) बल-पराक्रम को प्रदान करने वाले, (**चितानाः**)

चेतना देने वाले (राजस्वः) राजा बनाने वाले (अपः) जल वा प्राणों को (अगृभ्णन्) ग्रहण करो ॥ १० । १ ॥

[देवा—अरातीः···अति+अनयन्···अपो ऽगृभ्णन्]

भावार्थः—मनुष्यैर्विद्वत्सहायेना ऽपः सुपरीक्ष्योपयुज्यन्ताम्, शत्रून् निवर्त्य प्रजया सह प्राणवत् प्रियत्वे वर्त्तितव्यमाभ्य उपकारो नेयः ॥ १० । १ ॥

भावार्थ—मनुष्य—विद्वानों की सहायता से जल की परीक्षा करके उसका उपयोग करें, शत्रुओं का निवारण करके प्रजा के साथ प्राणों के समान प्रियभाव से वर्ताव करें, जल से उपकार ग्रहण करें ॥ १० । १ ॥

भाष्यसार—**मनुष्य विद्वानों का अनुकरण करके पदार्थों से उपयोग लें**—जैसे विद्वान् लोग प्राणायाम आदि क्रियाओं से प्राण और उदान को बढ़ाते हैं, शिल्प क्रियाओं से विद्युत् को प्राप्त करते हैं, शत्रुओं का निवारण करते हैं, प्रशस्त मधुर आदि गुणों से युक्त, बल पराक्रम को प्रदान करने वाले, संज्ञा (**चेतना**) को उत्पन्न करने वाले, अभिषेक से राजा को उत्पन्न करने वाले जल को ग्रहण करते हैं, वैसे सब मनुष्य विद्वानों का अनुकरज करें। उनकी सहायता से जल आदि पदार्थों का परीक्षापूर्वक उपयोग करें, उनसे उपकार ग्रहण करें। राजा लोग शत्रुओं का निवारण करके प्रजा के साथ प्राणों के समान प्रियभाव से वर्ताव करें ॥ १० । १ ॥

●

वरुणः । **वृषा=विज्ञानं राज्यं च** ॥ स्वराड् ब्राह्मी पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

अथ विद्वांसः कीदृशं राजानं प्रति किं किं याचेरन्नित्याह ॥

अब विद्वान् लोग कैसे राजा से क्या क्या मांगें, यह उपदेश किया है ॥

वृष्णं ऽ ऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा वृष्णं ऽ ऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि वृषसेनोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा वृषसेनोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि ॥ २ ॥

पदार्थः—(वृष्णः) सुखवर्षकस्य विज्ञानस्य (ऊर्मिः) प्रापकः । अर्त्तेरूच्च ॥ उ० ४ । ४४ ॥ इति ऋधातोर्मिः (असि) (राष्ट्रदाः) राष्ट्रं ददातीति (राष्ट्रम्) राज्यम् (मे) मह्यम् (देहि) (स्वाहा) सत्यया नीत्या (वृष्णः) सुखवर्षकस्य राज्यस्य (ऊर्मिः) ज्ञाता (असि) (राष्ट्रदाः) राज्यप्रदाः (राष्ट्रम्) न्यायप्रकाशितम् (अमुष्मै) राज्यपालकाय (देहि) (वृषसेनः) वृषा=बलयुक्ता सेना यस्य सः (असि) (राष्ट्रदाः) राज्ञां कर्मप्रदाः (राष्ट्रम्) राज्यम् (मे) प्रत्यक्षाय मह्यम् (देहि) (स्वाहा) सुष्ठुवाचा (वृषसेनः) हृष्टपुष्टसेनः (असि) (राष्ट्रदाः) (राष्ट्रम्) (अमुष्मै) परोक्षाय जनाय (देहि) ॥ अयं मन्त्रः शत० ५ । ३ । ४ । ५–६ व्याख्यातः ॥ २ ॥

प्रमाणार्थ—(ऊर्मिः) यहाँ 'अर्त्तेरूच्च' उणा० (४ । ४४) इस सूत्र से 'ऋ' धातु से 'मि' है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । ३ । ४ । ५–६) में की गई है ॥ १० । २ ॥

सपदार्थान्वयः—हे राजन् ! यतस्त्वं

भाषार्थ—हे राजन् ! क्योंकि आप (वृषणः)

वृषणः सुखवर्षकस्य विज्ञानस्य **ऊर्मिः** प्रापकः **राष्ट्रदाः** राष्ट्रं ददातीति **असि, तस्मान्मे** मह्यं **स्वाहा** सत्यया नीत्या **राष्ट्रं** राज्यं **देहि** ।

सुख की वर्षा करने वाले विज्ञान के (**ऊर्मिः**) प्राप्त कराने वाले तथा (**राष्ट्रदाः**) राष्ट्र के दाता (**असि**) हो, अतः (**मे**) मुझे (**स्वाहा**) सत्य नीति से (**राष्ट्रम्**) राज्य (**देहि**) दीजिये ।

वृषणः सुखवर्षकस्य राज्यस्य **ऊर्मिः** ज्ञाता **राष्ट्रदाः** राज्यप्रदाः **असि, अमुष्मै** राज्यपालकाय **राष्ट्रं** न्यायप्रकाशितं **देहि** ।

(**वृषणः**) सुख की वर्षा करने वाले राज्य के (**ऊर्मिः**) ज्ञाता तथा (**राष्ट्रदाः**) राज्य प्रदान करने वाले (**असि**) हो, सो आप (**अमुष्मै**) राज्य-पालक को (**राष्ट्रम्**) न्याय से प्रकाशित राज्य (**देहि**) दीजिये ।

राष्ट्रदाः राज्ञां कर्मप्रदाः **वृषसेनः** वृषा=बलयुक्ता सेना यस्य सः **असि, स्वाहा** सुष्ठु वाचा [**मे**] प्रत्यक्षाय मह्यं **राष्ट्रं** राज्यं **देहि** ।

(**राष्ट्रदाः**) राजाओं को कार्य प्रदान करने वाले, और (**वृषसेनः**) बलवान सेना वाले (**असि**) हो, सो (**स्वाहा**) उत्तम वाणी से [**मे**] मुझे (**राष्ट्रम्**) राज्य (**देहि**) दीजिये ।

राष्ट्रदा वृषसेनः हृष्टपुष्टसेनः **असि,** त्वम**मुष्मै** परोक्षाय जनाय **राष्ट्रं देहि** ॥ १० । २ ॥

(**राष्ट्रदा वृषसेनः**) राजाओं के कार्यदाता तथा हृष्ट-पुष्ट सेना वाले आप (**अमुष्मै**) उस परोक्ष जन को (**राष्ट्रम्**) राज्य (**देहि**) दीजिये ॥ १० । २ ॥

[हे राजन् !……त्वं……**मे स्वाहा राष्ट्रं देहि, राष्ट्रदा असि, अमुष्मै राष्ट्रं देहि**]

भावार्थः—यो मनुष्यो दुष्टान् जित्वा, प्रत्यक्षान् श्रेष्ठान् सत्कृत्य राज्याधिकारं राज्यश्रियं ददाति स चक्रवर्ती भवितुं योग्यो जायते ॥ ६ । २ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य—दुष्टों को जीत कर, प्रत्यक्ष श्रेष्ठों का सत्कार करके उन्हें राज्य-अधिकार एवं राज्य-लक्ष्मी प्रदान करता है वह चक्रवर्ती सम्राट बनने के योग्य होता है ॥ ६ । २ ॥

भाष्यसार—विद्वान् लोग किस राजा से क्या क्या माँगें—जो राजा सुख की वर्षा करने वाले विज्ञान का प्रापक हो, राष्ट्र का दाता हो, उससे विद्वान् लोग सत्य नीति से राज्य की याचना करें। जो राजा सुख की वर्षा वरने वाले राज्य का ज्ञाता हो, और राज्य प्रदान करने वाला हो, उससे राज्य के पालक विद्वान् लोग न्याय से प्रकाशित राज्य की याचना करें। जो राजा अन्य राजाओं को कार्य प्रदान करने वाला तथा बलवान् सेना वाला हो उससे मधुर वाणी से राज्य की याचना करें।

जो राजा दुष्टों को जीतकर और श्रेष्ठों का सत्कार करके उन्हें राज्याधिकार और राज्यलक्ष्मी प्रदान करने वाला हो उसे चक्रवर्ती सम्राट् बनावें ॥ १० । २ ॥

X वरुणः । **अपां पतिर्वै:=प्राणानां रक्षको राजा** ॥ पूर्वस्याभिकृतिः । ऋषभः । देहीत्यस्य निचृज्जगती निषादः ॥

पुना राजाऽमात्यसेनाप्रजाजनाः परस्परं कथं वर्त्तेरन्नित्युपदिश्यते ॥

राजा, मन्त्री, सेना और प्रजा के पुरुष परस्पर कैसे वर्ताव करें, इस विषय का उपदेश किया है ॥

अर्थेत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहार्थेत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तौजस्वती स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहौजस्वती स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापः परिवाहिणीं स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहापः परिवाहिणीं स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापां पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहाऽपां पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देह्यपां गर्भोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहाऽपां गर्भोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि ॥ ३ ॥

पदार्थः—(**अर्थेतः**) येऽर्थं यन्ति (**स्थ**) भवत (**राष्ट्रदाः**) राज्यप्रदाः सभासदः (**राष्ट्रम्**) राज्यम् (**मे**) मह्यम् (**दत्त**) (**स्वाहा**) सत्यया वाचा (**अर्थेतः**) (**स्थ**) (**राष्ट्रदाः**) (**राष्ट्रम्**) (**अमुष्मै**) (**दत्त**) (**ओजस्वतीः**) विद्याबलपराक्रमयुक्ता राजस्त्रियः (**स्थ**) (**राष्ट्रदाः**) (**राष्ट्रम्**) (**मे**) मह्यम् (**दत्त**) (**स्वाहा**) न्याययुक्तया नीत्या (**ओजस्वतीः**) जितेन्द्रियाः (**स्थ**) (**राष्ट्रदाः**) (**राष्ट्रम्**) (**अमुष्मै**) (**दत्त**) (**आपः**) जलप्राणवत् प्रियाः (**परिवाहिणीः**) स्वसहशान् पतीन् परिवोढुंशीलाः (**स्थ**) (**राष्ट्राः**) (**राष्ट्रम्**) (**मे**) (**दत्त**) (**स्वाहा**) विनययुक्तया वाण्या (**आपः**) (**परिवाहिणीः**) (**स्थ**) (**राष्ट्रदाः**) (**राष्ट्रम्**) (**अमुष्मै**) (**दत्त**) (**अपाम्**) पूर्वोक्तानाम् (**पतिः**) पालकः (**असि**) (**राष्ट्रदाः**) (**राष्ट्रम्**) (**मे**) (**देहि**) (**स्वाहा**) प्रियया वाचा (**अपाम्**) प्राणानाम् (**पतिः**) रक्षकः (**असि**) (**राष्ट्रदाः**) (**राष्ट्रम्**) (**अमुष्मै**) (**देहि**) (**अपाम्**) (**गर्भः**) अन्तर्हितः (**असि**) (**राष्ट्रदाः**) (**राष्ट्रम्**) (**मे**) (**देहि**) (**स्वाहा**) युक्तिमत्या वाचा (**अपाम्**) (**गर्भः**) स्तोतुं योग्यः (**असि**) (**राष्ट्रदाः**) (**राष्ट्रम्**) (**अमुष्मै**)(**देहि**) ॥ **अयं मन्त्रः शत० ५ । ३ । ४ । ७-११ व्याख्यातः ॥ ३ ॥**

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । ३ । ४ । ७-११) में की गई है ॥ १० । ३ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! ये यूयमर्थेतः** येऽर्थं यन्ति **सन्तः स्वाहा** सत्यया वाचा **राष्ट्रदाः** राज्यप्रदाः सभासदः **स्थ** भवत, **ते मे** मह्यं **राष्ट्रं** राज्यं **दत्त**।

ये यूयमर्थेतः येऽर्थं यन्ति **सन्तो राष्ट्रदाः** राज्यप्रदाः सभासदः **स्थ** भवत, **तेऽमुष्मै राष्ट्रं** राज्यं **दत्त** ॥

या यूयं स्वाहा न्याययुक्तया नीत्या **ओजस्वतीः** विद्या-बल-पराक्रमयुक्ता राजस्त्रियः **सत्यो राष्ट्रदाः** राज्यप्रदाः सभासदः **स्थ, ते मे** मह्यं **राष्ट्रं** राज्यं **दत्त**।

या ओजस्वतीः जितेन्द्रियाः **राष्ट्रदाः** राज्यप्रदाः सभासदः **स्थ** भवत, **ता अमुष्मै राष्ट्रं** राज्यं **दत्त**।

भाषार्थ—हे राजा लोगो ! जो तुम—(**अर्थेतः**) अर्थ को प्राप्त करने वाले होकर (**स्वाहा**) सत्य वाणी से (**राष्ट्रदाः**) राज्य प्रदान करने वाले सभासद् (**स्थ**) हो, सो आप (**मे**) मुझे (**राष्ट्रम्**) राज्य (**दत्त**) प्रदान करो । और—

जो तुम—(**अर्थेतः**) अर्थ को प्राप्त करने वाले होकर (**राष्ट्रदाः**) राज्य प्रदान करने वाले सभासद् (**स्थ**) हो, सो आप (**अमुष्मै**) उसे (**राष्ट्रम्**) राज्य (**दत्त**) प्रदान करो ।

हे राजा की स्त्रियो ! जो तुम—(**स्वाहा**) न्याययुक्त नीति से (**ओजस्वती**) विद्या, बल और पराक्रम से युक्त होकर (**राष्ट्रदाः**) राज्य प्रदान करने वाली सभासद् (**स्थ**) हो, सो आप (**मे**) मुझे (**राष्ट्रम्**) राज्य (**दत्त**) प्रदान करो । और—

जो तुम—(**ओजस्वतीः**) जितेन्द्रिय (**राष्ट्रदाः**) राज्य प्रदान करने वाली सभासद् (**स्थ**) हो, सो

आप (**अमुष्मै**) उसे (**राष्ट्रम्**) राज्य (**दत्त**) प्रदान करो।

या यूयं स्वाहा प्रियया वाचा **परिवाहिणीः** स्वसदृशान् पतीन् परिवोढुं शीलाः [**आपः**] जल-प्राणवत् प्रियाः **राष्ट्रदाः** राज्यप्रदाः सभासदः **स्थ** भवत, **ता मे** मह्यं **राष्ट्रं** राज्यं **दत्त**।

जो तुम—(**स्वाहा**) प्रिय वाणी से (**परिवाहिणीः**) अपने सदृश पतियों को प्राप्त करने वाली (**आपः**) जल और प्राण के समान प्रिय तथा (**राष्ट्रदाः**) राज्य प्रदान करने वाली सभासद् (**स्थ**) हो, सो आप (**मे**) मुझे (**राष्ट्रम्**) राज्य (**दत्त**) प्रदान करो।

या यूयं परिवाहिणीः स्वसदृशान् पतीन् परिवोढुं शीलाः **आपः** जलप्राणवत्प्रियाः **राष्ट्रदाः** राज्यप्रदाः सभासदः **स्थ** भवत, **ता अमुष्मै राष्ट्रं** राज्यं **दत्त**।

जो तुम (**परिवाहिणीः**) अपने सदृश पतियों को प्राप्त करने वाली (**आपः**) जल और प्राण के समान प्रिय तथा (**राष्ट्रदाः**) राज्य प्रदान करने वाली सभासद (**स्थ**) हो, सो आप (**अमुष्मै**) उसे (**राष्ट्रम्**) राज्य (**दत्त**) प्रदान करो।

यस्त्वं राष्ट्रदाः राज्यप्रदः सभासद् **अपरां** पूर्वोक्तानां **पतिः** पालकः **असि, स मे** मह्यं **राष्ट्रं** राज्यं **देहि**।

हे राजन्! जो आप (**राष्ट्रदाः**) राज्य प्रदान करने वाले सभासद् होकर (**अपाम्**) पूर्वोक्त जल के (**पतिः**) पालक (**असि**) हो, सो आप (**मे**) मुझे (**राष्ट्रम्**) राज्य (**देहि**) दीजिये। और—

यस्त्वं स्वाहा राष्ट्रदाः राज्यप्रदाः सभासदः **अपां** पूर्वोक्तानां **पतिः** पालकः **असि, सोऽयुष्मै राष्ट्रं देहि**।

जो आप (**स्वाहा**) सत्यवाणी से (**राष्ट्रदाः**) राज्य प्रदान करने वाले सभासद् होकर (**अपाम्**) पूर्वोक्त जल के (**पतिः**) पालक (**असि**) हो सो आप (**अमुष्मै**) उसे (**राष्ट्रम्**) राज्य (**देहि**) दीजिए। और—

यस्त्वं स्वाहा युक्तिमत्या वाचा **राष्ट्रदाः** राज्य-प्रदाः सभासदः **अपां** प्राणानां **गर्भः** अन्तर्हितः **असि, स त्वं मे** मह्यं **राष्ट्रं** राज्यं **देहि**।

जो आप (**स्वाहा**) युक्ति-युक्त वाणी से (**राष्ट्रदाः**) राज्य प्रदान करने वाले सभासद् होकर (**अपाम्**) प्राणों की (**गर्भः**) गर्भ के समान रक्षा करने वाले (**असि**) हो, सो आप (**मे**) मुझे (**राष्ट्रम्**) राज्य (**देहि**) दीजिए। और—

यस्त्वं राष्ट्रदाः राज्यप्रदाः सभासदः **अपां** जलानां **गर्भः** स्तोतुं योग्यः **असि, सोऽयुष्मै राष्ट्रं** राज्यं **देहि**॥ १० । ३ ॥

जो आप (**राष्ट्रदाः**) राज्य प्रदान करने वाले सभासद होकर (**आपाम्**) जल की (**गर्भः**) स्तुति करने वाले (**असि**) हो, सो आप (**अमुष्मै**) उसे (**राष्ट्रम्**) राज्य (**देहि**) दीजिये ॥ १० । ३ ॥

[हे मनुष्याः ! ये यूयम् स्वाहा राष्ट्रदाः स्थ ते मे राष्ट्रं दत्त…]

भावार्थः—ये पुरुषा राजानो, या राजस्त्रियश्च स्युस्ताः स्योत्कर्षार्थं परोत्कर्षसहनं, सर्वान् मनुष्यान् विद्यासुशिक्षायुक्तांश्च कृत्वा राज्यभागिनो राज्यसेविन्यश्च स्युः। न खल्वीर्ष्यया परेषां हानि-

भावार्थ—जो राजा लोग और राजाओं की स्त्रियाँ होवें वे अपनी उन्नति के लिये दूसरों की उन्नति को सहन करें तथा सब मनुष्यों को विद्या और सुशिक्षा से युक्त करके राज्य के सेवक और

करणात् स्वराज्यभ्रंशमाकारयेयुः ।। १० । ३ ।।

राज्य की सेविका बनें। ईर्ष्या से दूसरों की हानि करके अपने राज्य के पतन को आमन्त्रित न करें ।। १० । ३ ।।

भाष्यसार—**राजा और प्रजा का परस्पर वर्ताव**—राजा-तत्त्व को समझने वाले लोगों से; विद्या, बल और पराक्रम से युक्त राजस्त्रियों से, जितेन्द्रिय लोगों से, अपने सदृश पतियों से विवाह करने वाली, जल और प्राणों के समान प्रिय स्त्रियों से, जो उसे राज्य प्रदान करने वाले उसके सभासद् हैं उनसे राज्यप्राप्ति की कामना करे। यदि राजा अपनी उन्नति चाहे तो इन विद्वान् सभासदों की रक्षा किया करे। दूसरों की उन्नति को सहन करे। सब मनुष्यों को विद्या और सुशिक्षा से युक्त करके राज्य की सेवा करे। ईर्ष्या से प्रजा हानि करके राज्य के पतन को कभी आमन्त्रित न करे। राजपत्नी भी प्रजा के साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार करे। इस प्रकार राजा, मन्त्री, सेना और प्रजाजन सब मिलकर राष्ट्र को उन्नत करें ।। १० । ३ ।।

वरुणः । **सूर्य्यादयः**=न्याया विद्याप्रकाशकादयः । पूर्वस्य जगती । निषादः ।
सूर्य्यवर्चस इति द्वितीयस्य स्वराट् पङ्क्तिः । पञ्चमः । व्रजक्षित इति तृती-
यस्य शविष्ठा इति चतुर्थस्य च स्वराट् विकृतिः । मध्यमः । व्रजक्षित-
स्थेत्यस्य स्वराट् संकृतिः । गान्धारः । शक्वरीस्थेत्यस्य भुरिगाकृतिः ।
पञ्चमः । मधुमतीरित्यस्य भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवतः ।।

मनुष्याः कीदृशा भूत्वा कस्मै कस्मै किं किं प्रदद्युरित्याह ।।

मनुष्यों को कैसा हो के किस किस के लिये क्या क्या देना चाहिये, यह उपदेश किया है ।।

सूर्य्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा सूर्य्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त सूर्यवर्चस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा सूर्यवर्चस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त मान्दा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा मान्दा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त व्रजक्षित स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा व्रजक्षित स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त वाशा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा वाशा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त शविष्ठा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा शविष्ठा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त शक्वरी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा शक्वरी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त जनभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा जनभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त विश्वभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा विश्वभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापः स्वराज स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त । मधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्तां महि क्षत्रं क्षत्रियाय वन्वाना ऽ अनाधृष्टाः सीदत सहौजसो महि क्षत्रं क्षत्रियाय दधतीः ।। ४ ।।

पदार्थः—(सूर्यत्वचसः) सूर्यस्य त्वचः=संवार इव त्वचो येषान्ते (स्थ) भवथ (राष्ट्रदाः) (राष्ट्रम्) (मे) (दत्त) (स्वाहा) (सूर्यत्वचसः) (स्थ) (राष्ट्रदाः) (राष्ट्रम्) (अमुष्मै) (दत्त) (सूर्यवर्चसः)

सूर्यस्य प्रकाश इव वर्चो=विद्याध्ययनं येषां ते **(स्थ)** **(राष्ट्रदाः)** **(राष्ट्रम्)** **(मे)** **(दत्त)** **(स्वाहा)** **(सूर्यवर्चसः)** **(स्थ)** **(राष्ट्रदाः)** **(राष्ट्रम्)** **(अमुष्मै)** **(दत्त)** **(मान्दाः)** ये जनान् मन्दयन्त्यानन्दयन्ति त एव मान्दाः **(स्थ)** **(राष्ट्रदाः)** **(राष्ट्रम्)** **(मे)** **(दत्त)** **(स्वाहा)** **(मान्दाः)** **(स्थ)** **(राष्ट्रदाः)** **(राष्ट्रम्)** **(अमुष्मै)** **(दत्त)** **(व्रजक्षितः)** व्रजान्=गवादिस्थित्यर्थान् देशान् क्षियन्ति=निवासयन्ति ते **(स्थ)** **(राष्ट्रदाः)** **(राष्ट्रम्)** **(मे)** **(दत्त)** **(स्वाहा)** **(व्रजक्षितः)** **(स्थ)** **(राष्ट्रदाः)** **(राष्ट्रम्)** **(अमुष्मै)** **(दत्त)** **(वाशाः)** य उशन्ति=कामयन्ते ते **(स्थ)** **(राष्ट्रदाः)** **(राष्ट्रम्)** **(मे)** **(दत्त)** **(स्वाहा)** **(वाशाः)** **(स्थ)** **(राष्ट्रदाः)** **(राष्ट्रम्)** **(अमुष्मै)** **(दत्त)** **(शविष्ठाः)** अतिशयेन बलवन्तः **(स्थ)** **(राष्ट्रदाः)** **(राष्ट्रम्)** **(मे)** **(दत्त)** **(स्वाहा)** **(शविष्ठाः)** **(स्थ)** **(राष्ट्रदाः)** **(राष्ट्रम्)** **(अमुष्मै)** **(दत्त)** **(शक्वरीः)** शक्तिमत्यः **(स्थ)** **(राष्ट्रदाः)** **(राष्ट्रम्)** **(मे)** **(दत्त)** **(स्वाहा)** **(शक्वरीः)** **(स्थ)** **(राष्ट्रदाः)** **(राष्ट्रम्)** **(अमुष्मै)** **(दत्त)** **(जनभृतः)** ये जनान् बिभ्रति ते **(स्थ)** **(राष्ट्रदाः)** **(राष्ट्रम्)** **(मे)** **(दत्त)** **(स्वाहा)** **(जनभृतः)** **(स्थ)** **(राष्ट्रदाः)** **(राष्ट्रम्)** **(अमुष्मै)** **(दत्त)** **(विश्वभृतः)** ये विश्वं बिभ्रति ते **(स्थ)** **(राष्ट्रदा)** **(राष्ट्रम्)** **(मे)** **(दत्त)** **(स्वाहा)** **(विश्वभृतः)** **(स्थ)** **(राष्ट्रदाः)** **(राष्ट्रम्)** **(अमुष्मै)** **(दत्त)** **(आपः)** सकलविद्याधर्मव्यापिनः **(स्वराजः)** ये स्वं राजन्ते ते **(स्थ)** **(राष्ट्रदाः)** **(राष्ट्रम्)** **(अमुष्मै)** **(दत्त)** **(मधुमतीः)** मधुरादिगुणयुक्ता ओषध्यः **(मधुमतीभिः)** मधुरादिगुणयुक्ताभिर्वसन्तादिभिर्ऋतुभिः **(पृच्यन्ताम्)** परिपच्यन्ताम् **(महि)** महत्पूज्यं **(क्षत्रम्)** क्षत्रियाणां राज्यम् **(क्षत्रियाय)** क्षत्रस्य पुत्राय **(वन्वानाः)** याचमानाः **(अनाधृष्टाः)** शत्रुभिरधर्षिताः **(सीदत)** **(सहौजसः)** ओजसा=बलेन सह वर्त्तमानाः **(महि)** **(क्षत्रम्)** **(क्षत्रियाय)** **(दधतीः)** धरमाणाः ॥ अयं मन्त्रः शत० ५ । ३ । ४ । १२—२१ व्याख्यातः ॥ ४ ॥

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । ३ । ४ । १२-२१) में की गई है ॥ १० । ४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे राजपुरुषाः ! **यतो यूयं सूर्यत्वचसः** सूर्यस्य त्वचः=संवार इव त्वचो येषां ते **सन्तः स्वाहा राष्ट्रदाः** राज्यप्रदाः सभासदः **स्थ** भवथ, **तस्मान्मे** मह्यं **राष्ट्रं** राज्यं **दत्त** ।

भाषार्थ—हे राजाजनो ! क्योंकि आप **(सूर्यत्वचसः)** सूर्य के समान अपने तेज से सबको आच्छादन करने वाले होकर **(स्वाहा)** सत्यवाणी से **(राष्ट्रदाः)** राज्य प्रदान करने वाले सभासद् **(स्थ)** हो, सो अतः **(मे)** मुझे **(राष्ट्रम्)** राज्य **(दत्त)** दीजिए । और—

यतः सूर्यत्वचसः सूर्यस्य त्वचः=संवार इव त्वचो येषां ते **सन्तो यूयं राष्ट्रदाः** राज्यप्रदाः सभासदः **स्थ** भवथ, **तस्मादमुष्मै राष्ट्रं दत्त** ।

क्योंकि **(सूर्यत्वचसः)** सूर्य के समान अपने तेज से सबको आच्छादन करने वाले होकर तुम **(राष्ट्रदाः)** राज्य प्रदान करने वाले **(स्थ)** हो, अतः **(अमुष्मै)** उसे **(राष्ट्रम्)** राज्य **(दत्त)** प्रदान करो । और—

यतो यूयं सूर्यत्वचसः सूर्यस्य प्रकाश इव वर्चो=विद्याऽध्ययनं येषां ते **सन्तः स्वाहा राष्ट्रदाः स्थ, तस्मान्मे राष्ट्रं दत्त** ।

क्योंकि आप **(सूर्यत्वचसः)** सूर्य के प्रकाश के समान विद्या-प्रकाश वाले होकर **(स्वाहा)** सत्यवाणी से **(राष्ट्रदाः)** राज्य प्रदान करने वाले **(स्थ)** हो, अतः **(मे)** मुझे **(राष्ट्रम्)** राज्य **(दत्त)** प्रदान करो ।

यतो यूयं मान्दाः ये जनान् मन्दयन्त्यानन्दयन्ति

क्योंकि आप **(मान्दाः)** प्रजा-जनों को आनन्दित

त एव मान्दाः **सन्तः स्वाहा राष्ट्रदाः स्थ, तस्मान्मे राष्ट्रं दत्त।**

करने वाले होकर (**स्वाहा**) सत्यवाणी से (**राष्ट्रदाः**) राज्य प्रदान करने वाले (**स्थ**) हो, अतः (**मे**) मुझे (**राष्ट्रम्**) राज्य (**दत्त**) प्रदान करो।

यतो यूयं मान्दाः ये जनान् मन्दयन्त्यानन्दयन्ति त एव मान्दाः **सन्तो राष्ट्रदा** राज्यप्रदाः सभासदः **स्थ, तस्मादमुष्मै राष्ट्रं दत्त।**

क्योंकि आप (**मान्दाः**) प्रजा-जनों को आनन्दित करने वाले होकर (**राष्ट्रदाः**) राज्य प्रदान करने वाले सभासद् (**स्थ**) हो, अतः (**अमुष्मै**) उसे (**राष्ट्रम्**) राज्य (**दत्त**) प्रदान करो।

यतो यूयं व्रजक्षितः व्रजान्=गवादिस्थित्यर्थान् देशान् क्षियन्ति=निवासयन्ति ते **सन्तः स्वाहा राष्ट्रदाः स्थ, तस्मान्मे राष्ट्रं दत्त।**

क्योंकि आप (**व्रजक्षितः**) व्रज अर्थात् गौ आदि पशुओं के देशों को बसाने वाले होकर (**स्वाहा**) सत्यवाणी से (राष्ट्रदाः) राज्य प्रदान करने वाले (**स्थ**) हो, अतः (मे) मुझे (राष्ट्रम्) राज्य (**दत्त**) प्रदान करो।

यतो यूयं व्रजक्षितः व्रजान्=गवादिस्थित्यर्थान् देशान् क्षियन्ति=निवासयन्ति ते **सन्तो राष्ट्रदाः** राज्यप्रदाः सभासदः **स्थ, तस्मादमुष्मै राष्ट्रं दत्त।**

क्योंकि आप (**व्रजक्षितः**) व्रज अर्थात् गौ आदि पशुओं के देशों को बसाने वाले होकर (**राष्ट्रदाः**) राज्य प्रदान करने वाले सभासद् (**स्थ**) हो, अतः (**अमुष्मै**) उसे (**राष्ट्रम्**) राज्य (**दत्त**) प्रदान करो।

यतो यूयं वाशाः य उशन्ति=कामयन्ते ते **सन्तः स्वाहा राष्ट्रदाः स्थ** भवथ, **तसमान्मे** मह्यं **राष्ट्रं** राज्यं **दत्त।**

क्योंकि आप (**वाशाः**) प्रजा की कामना करने वाले होकर (**स्वाहा**) सत्यवाणी से (**राष्ट्रदाः**) राज्य प्रदान करने वाले (**स्थ**) हो, अतः (**मे**) मुझे (**राष्ट्रम्**) राज्य (**दत्त**) प्रदान करो।

यतो यूयं वाशाः य उशन्ति=कामयन्ते ते **राष्ट्रदाः** राज्यप्रदाः सभासदः **स्थ, तस्मादमुष्मै राष्ट्रं** राज्यं **दत्त।**

क्योंकि आप (**वाशाः**) प्रजा की कामना करने वाले होकर (**राष्ट्रदाः**) राज्य प्रदान करने वाले (**स्थ**) हो, अतः (**अमुष्मै**) उसे (**राष्ट्रम्**) राज्य (**दत्त**) प्रदान करो।

यतो यूयं शविष्ठाः अतिशयेन बलवन्तः **सन्त स्वाहा राष्ट्रदाः** राज्यप्रदाः सभासदः **स्थ, तस्मान्मे राष्ट्रं** राज्यं **दत्त।**

क्योंकि आप (**शविष्ठाः**) अत्यन्त बलवान् होकर (**स्वाहा**) सत्यवाणी से (**राष्ट्रदाः**) राज्य प्रदान करने वाले (**स्थ**) हो, अतः (**मे**) मुझे (**राष्ट्रम्**) राज्य (**दत्त**) प्रदान करो।

यतो यूयं शविष्ठाः अतिशयेन बलवन्तः **राष्ट्रदाः** राज्यप्रदाः सभासदः **स्थ** भवथ, **तस्मादमुष्मै राष्ट्रं दत्त।**

क्योंकि आप (**शविष्ठाः**) अत्यन्त बलवान् होकर (**राष्ट्रदाः**) राज्य प्रदान करने वाले (**स्थ**) हो, अतः (**अमुष्मै**) उसे (**राष्ट्रम्**) राज्य (**दत्त**) प्रदान करो।

यतो यूयं शक्वरीः शक्तिमत्यः **सत्यः स्वाहा राष्ट्रदाः** राज्यप्रदाः सभासदः **स्थ, तस्मान्मे** मह्यं

हे राजस्त्रियो! क्योंकि आप (**शक्वरीः**) शक्तिमती होकर (**स्वाहा**) सत्यवाणी से (**राष्ट्रदाः**)

राष्ट्रं राज्यं **दत्त** ।

राज्य प्रदान करने वाली (**स्थ**) हो, अतः (**मे**) मुझे (**राष्ट्रम्**) राज्य (**दत्त**) प्रदान करो।

यतो यूयं शक्वरीः शक्तिमत्यः **राष्ट्रदाः** राज्यप्रदाः सभासदः **स्थ** भवथ, **तस्मादमुष्मै राष्ट्रं** राज्यं **दत्त** ।

क्योंकि आप (**शक्वरीः**) शक्तिमती होकर (**राष्ट्रदाः**) राज्य प्रदान करने वाली (**स्थ**) हो, अतः (**अमुष्मै**) उसे (**राष्ट्रम्**) राज्य (**दत्त**) प्रदान करो।

यतो यूयं जनभृतः ये जनान् बिभ्रति ते **सन्तः स्वाहा राष्ट्रदाः** राज्यप्रदाः सभासदः **स्थ, तस्मान्मे राष्ट्रं दत्त** ।

हे राजजनो ! क्योंकि आप (**जनभृतः**) प्रजाजनों का धारण-पोषण करने वाले होकर (**स्वाहा**) सत्यवाणी से (**राष्ट्रदाः**) राज्य प्रदान करने वाले सभासद् (**स्थ**) हो, अतः (**मे**) मुझे (**राष्ट्रम्**) राज्य (**दत्त**) प्रदान करो।

यतो यूयं जनभृतः ये जनान् बिभ्रति ते **राष्ट्रदाः** राज्यप्रदाः सभासदः **स्थ** भवथ, **तस्मादमुष्मै राष्ट्रम्** राज्यं **दत्त** ।

क्योंकि आप (**जनभृतः**) प्रजाजनों का धारण-पोषण करने वाले (**राष्ट्रदाः**) राज्य प्रदान करने वाले सभासद् (**स्थ**) हो, अतः (**अमुष्मै**) उसे (**राष्ट्रम्**) राज्य (**दत्त**) प्रदान करो।

यतो यूयं विश्वभृतः ये विश्वं बिभ्रति ते **सन्तः स्वाहा राष्ट्रदाः** राज्यप्रदाः सभासदः **स्थ, तस्मान्मे राष्ट्रं दत्त** ।

क्योंकि आप (**विश्वभृतः**) विश्व का धारण पोषण करने वाले होकर (**स्वाहा**) सत्यवाणी से (**राष्ट्रदाः**) राज्य प्रदान करने वाले सभासद् (**स्थ**) हो, अतः (**मे**) मुझे (**राष्ट्रम्**) राज्य (**दत्त**) प्रदान करो।

यतो यूयं विश्वभृतः ये विश्वं बिभ्रति ते **राष्ट्रदाः** राज्यप्रदाः सभासदः **स्थ** भवथ, **तस्मादमुष्मै राष्ट्रं** राज्यं **दत्त** ।

क्योंकि आप (**विश्वभृतः**) विश्व का धारण-पोषण करने वाले होकर (**राष्ट्रदाः**) राज्य प्रदान करने वाले सभासद् (**स्थ**) हो, अतः (**अमुष्मै**) उसे (**राष्ट्रम्**) राज्य (**दत्त**) प्रदान करो।

यतो यूयमापः सकलविद्याधर्मव्यापिनः **स्वराजः** ये स्वं राजन्ते ते **सन्तो राष्ट्रदाः** राज्यप्रदाः सभासदः **स्थ, तस्मान्मे राष्ट्रं दत्त** ।

क्योंकि आप (**आपः**) सकल विद्या और धर्म को प्राप्त करने वाले तथा (**स्वराजः**) अपने गुणों से प्रकाशमान होकर (**राष्ट्रदाः**) राज्य प्रदान करने वाले सभासद् (**स्थ**) हो, अतः (**मे**) मुझे (**राष्ट्रम्**) राज्य (**दत्त**) प्रदान करो।

यतो यूयमापः सकलविद्याधर्मव्यापिनः **स्वराजः** ये स्वं राजन्ते ते [**राष्ट्रदाः स्थ**], **तस्मादमुष्मै राष्ट्रं** राज्यं **दत्त** ।

क्योंकि आप (**आपः**) सकलविद्या और धर्म को प्राप्त करने वाले तथा (**स्वराजः**) अपने गुणों से प्रकाशमान [**राष्ट्रदा**] राज्य प्रदान करने वाले सभासद् [**स्थ**] हो, अतः (**अमुष्मै**) उसे (**राष्ट्रम्**) राज्य (**दत्त**) प्रदान करो।

हे **सज्जनाः** स्त्रियः ! युष्माभिः **क्षत्रियाय** क्षत्रस्य पुत्राय **महि** महत्पूज्यं **क्षत्रं** क्षत्रियाणां राज्यं

हे श्रेष्ठ स्त्रियो ! तुम—(**क्षत्रियाय**) क्षत्रियों के लिये (**महि**) परम पूजा के योग्य (**क्षत्रम्**) राज्य

वन्वानाः याचमानाः **सहौजसः** ओजसा=बलेन सह वर्त्तमानाः **क्षत्रियाय क्षत्रं दधतीः** धरमाणाः **अनाधृष्टाः** शत्रुभिरधर्षिताः **मधुमतीः** मधुरादिगुणयुक्ता ओषध्यः **मधुमतीभिः** मधुरादिगुणयुक्ताभिर्वसन्तादिभिर्ऋतुभिः **सुखानि पृच्यन्तां** परिपच्यन्ताम्।

को (**वन्वानाः**) मांग कर (**सहौजसः**) ओजस्विनी होकर (**क्षत्रियाय**) क्षत्रिय के लिये (**क्षत्रम्**) राज्य को (**दधतीः**) धारण करने वाली (**अनाधृष्टाः**) शत्रुओं से अपराजित (**मधुमतीः**) मधुरादि गुणों से युक्त औषधियों के समान सुखदायक होकर (**मधुमतीभिः**) मधुर आदि गुणों से युक्त वसन्त आदि ऋतुओं से सुखों को (**पृच्यन्ताम्**) सिद्ध करो।

हे सज्जनाः पुरुषाः ! यूयमीदृशीः स्त्रियः सीदत =प्राप्नुत ॥ १० । ४॥

हे सज्जन पुरुषो ! तुम लोग ऐसी स्त्रियों को (**सीदत**) प्राप्त करो ॥ १० । ४ ॥

[**हे राजपुरुषाः ! यतो यूयं सूर्यत्वचसः, मान्दाः, व्रजक्षितः, वाशाः, शविष्ठाः, शक्वरीः, विश्वभृतः स्वराजः सन्तो राष्ट्रदाः स्थ, तस्मान्मे राष्ट्रं दत्त**]

भावार्थः—हे स्त्रीपुरुषाः ! ये मनुष्याः सूर्यवन्न्यायप्रकाशकाः, सूर्य इव विद्यादीपकाः, सर्वेषामानन्दप्रदा, गवादिपशुरक्षकाः, शुभगुणैः कमनीया, बलवन्तः, स्वसदृशस्त्रियः, विश्वम्भराः स्वाधीनाः सन्ति, तेऽन्येभ्यो राज्यं दातुं सेवितुं च शक्नुवन्ति; नेतर इति यूयं विजानीत ॥ १० । ४ ॥

भावार्थ—हे स्त्री-पुरुषो ! जो मनुष्य सूर्य के समान न्याय के प्रकाशक, और सूर्य के समान विद्या के दीपक, सबको आनन्द देने वाले, गौ आदि पशुओं के रक्षक, शुभ गुणों से कामना के योग्य, बलवान्, गुणों के सदृश स्त्री वाले, विश्व का धारण-पोषण करने वाले, और स्वाधीन हैं वे दूसरों को राज्य दे सकते हैं और राष्ट्र की सेवा कर सकते हैं; अन्य नहीं। ऐसा तुम समझो ॥ १० । ४ ॥

भा० पदार्थः—सूर्यत्वचसः=सूर्यवन्न्यायप्रकाशकाः, सूर्य इव विद्यादीपकाः। मान्दाः=सर्वेषामानन्दप्रदाः। व्रजक्षितः=गवादिपशुरक्षकाः। वाशाः=शुभगुणैः कमनीयाः। शविष्ठाः=बलवन्तः। शक्वरीः=स्वसदृशस्त्रियः। विश्वभृतः=विश्वम्भराः। स्वराजः=स्वाधीनाः ॥

भाष्यसार—**मनुष्य कैसे हों**—मनुष्य सूर्य के समान न्याय का प्रकाश करने वाले तथा सूर्य के समान ही विद्या को प्रदीप्त करने वाले हों। सब लोगों को आनन्द देने वाले हों। गौ आदि पशुओं के रक्षक हों। शुभ गुणों के कारण सब लोगों के कमनीय हों। अत्यन्त बलवान हों। अपने सदृश शक्ति आदि गुणों वाली स्त्रियों से विवाह करने वाले हों। लोगों का धारण-पोषण करने वाले हों। विश्व का धारण-पोषण करने वाले हों। सकल विद्या और धर्म को प्राप्त करने वाले हों। ऐसे मनुष्य दूसरों को प्रदान कर सकते हैं। राष्ट्र की सेवा कर सकते हैं, दूसरे नहीं।

स्त्रियाँ क्षत्रियों के लिये राज्य की कामना करें। वे स्त्रियाँ बलवती हों। क्षत्रियों के लिये राज्य को धारण करने में समर्थ हों। शत्रुओं से कभी पराजित न हों। औषधियों तथा वसन्त आदि ऋतुओं के समान मधुर गुण से युक्त होकर सुखों को सिद्ध करने वाली हों। श्रेष्ठ पुरुष ऐसी स्त्रियों को ही प्राप्त करें ॥ १० । ४ ॥

वरुणः। **अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः**=विद्युदादयः ॥ भुरिग् धृतिः। ऋषभः ॥

राजन्यैराप्तराज्ञामेवाऽनुकरणं कार्यं नेतरेषां क्षुद्राशयलुब्धान्यायाजितेन्द्रियाणामिति उपदिश्यते ॥

क्षत्रियों को आप्त राजाओं का ही अनुकरण करना चाहिये, दूसरे क्षुद्राशय, लोभी, अन्यायकारी, अजितेन्द्रियों का नहीं, यह उपदेश किया है ॥

सोम॑स्य॒ त्विषि॑रसि॒ तवे॑व मे॒ त्विषि॑र्भूयात् । अ॒ग्नये॒ स्वाहा॒ सोमा॑य॒ स्वाहा॑ सवि॒त्रे स्वाहा॒ सर॑स्वत्यै॒ स्वाहा॑ पू॒ष्णे स्वाहा॒ बृह॒स्पत॑ये॒ स्वाहेन्द्रा॑य॒ स्वाहा॒ घोषा॑य॒ स्वाहा॒ श्लोका॑य॒ स्वाहाꣳशा॑य॒ स्वाहा॒ भगा॑य॒ स्वाहा॑र्य॒म्णे स्वाहा॑ ॥ ५ ॥

पदार्थः—(**सोमस्य**) ऐश्वर्य्यस्य (**त्विषिः**) ज्योतिः (**असि**) (**तवेव**) यथाभवतस्तथा (**मे**) मम (**त्विषिः**) विज्ञानप्रकाशः (**भूयात्**) (**अग्नये**) विद्युदादये (**स्वाहा**) सत्यवाक्प्रियाचरणयुक्ता विद्या (**सोमाय**) औषधविज्ञानाय (**स्वाहा**) वैद्यकपुरुषार्थविद्या (**सवित्रे**) सूर्य्यविज्ञानाय (**स्वाहा**) ज्योतिर्विद्या (**सरस्वत्यै**) वेदार्थसुशिक्षाविज्ञापिकायै वाचे (**स्वाहा**) व्याकरणाद्यङ्गविद्या (**पूष्णे**) प्राणपशुपालनाय (**स्वाहा**) योगव्यवहारविद्या (**बृहस्पतये**) बृहतां=प्रकृत्यादीनां पत्युरीश्वरस्य विज्ञानाय (**स्वाहा**) ब्रह्मविद्या (**इन्द्राय**) इन्द्रियाधिष्ठातुर्जीवस्य बोधाय (**स्वाहा**) विवेकविद्या (**घोषाय**) सत्प्रियभाषणादियुक्तायै वाण्यै (**स्वाहा**) तथ्योपदेशे वक्तृत्वविद्या (**श्लोकाय**) तत्वसंघातसत्काव्यगद्यपद्यछन्दोनिर्माणादिविज्ञानाय (**स्वाहा**) तत्वकाव्यशास्त्रादिविद्या (**अंशाय**) परमाण्ववगमाय (**स्वाहा**) सूक्ष्मपदार्थविद्या (**भगाय**) ऐश्वर्याय (**स्वाहा**) पुरुषार्थविद्या (**अर्यम्णे**) न्यायाधीशत्वाय (**स्वाहा**) राजनीतिविद्या ॥ **अयं मन्त्रः शत० ५।३।५।३–६ व्याख्यातः ॥ ५ ॥**

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५।३।५।३–६) में की गई है ॥ १०।५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे राजन्! यथा त्वं **सोमस्य** ऐश्वर्यस्य **त्विषिः** ज्योतिः **असि, तथाऽहमपि भवेयम्। यतस्तवेव** यथाभवतस्तथा **मे** मम **त्विषिः** विज्ञानप्रकाशः **भूयात्।**

यथा भवताऽग्नये विद्युदादये **स्वाहा** सत्यवाक्प्रियाचरणयुक्ता विद्या, **सोमाय** औषधविज्ञानाय **स्वाहा** वैद्यकपुरुषार्थविद्या, **सवित्रे** सूर्य्यविज्ञानाय **स्वाहा** ज्योतिर्विद्या, **सरस्वत्यै** वेदार्थसुशिक्षाविज्ञापिकायै वाचे **स्वाहा** व्याकरणाद्यङ्गविद्या, **पूष्णे** प्राणपशुपालनाय **स्वाहा** योगव्यवहारविद्या, **बृहस्पतये** बृहतां=प्रकृत्यादीनां पत्युरीश्वरस्य विज्ञानाय **स्वाहा** ब्रह्मविद्या, **इन्द्राय** इन्द्रियाऽधिष्ठातुर्जीवस्य बोधाय **स्वाहा** विवेकविद्या, **घोषाय** सत्यप्रियभाषणादियुक्तायै वाण्यै **स्वाहा** तथ्योपदेशे वक्तृत्वविद्या, **श्लोकाय** तत्त्वसंघातसत्काव्यगद्यपद्य छन्दोनिर्माणादिविज्ञानाय **स्वाहा** तत्त्वकाव्य-

भाषार्थ—हे राजन्! जैसे आप (**सोमस्य**) ऐश्वर्य की (**त्विषिः**) ज्योति (**असि**) हैं, वैसे मैं क्षत्रिय भी होऊँ, जिससे (**तवेव**) आपके समान (**मे**) मेरा भी (**त्विषिः**) विज्ञान-प्रकाश (**भूयात्**) हो।

जैसे आप (**अग्नये**) विद्युत् आदि के लिये (**स्वाहा**) सत्यभाषण तथा प्रियाचरण से युक्त विद्या को, (**सोमाय**) औषध-विज्ञान के लिये (**स्वाहा**) वैद्यक और पुरुषार्थ विद्या को, (**सवित्रे**) सूर्यविज्ञान के लिये (**स्वाहा**) ज्योतिर्विद्या को, (**सरस्वत्यै**) वेदार्थ की सुरक्षा को बतलाने वाली वाणी की प्राप्ति के लिये (**स्वाहा**) व्याकरण आदि वेदाङ्ग की विद्या को, (**पूष्णे**) प्राण तथा पशुओं के पालन के लिये (**स्वाहा**) योग तथा व्यवहार विद्या को, (**बृहस्पते**) प्रकृति आदि के पति= ईश्वर के विज्ञान के लिये (**स्वाहा**) ब्रह्मविद्या को, (**इन्द्राय**) इन्द्रियों के अधिष्ठाता जीव के बोध के

शास्त्रादिविद्या, **अंशाय** परमाण्ववगमाय **स्वाहा** सूक्ष्मपदार्थविद्या, **भगाय** ऐश्वर्य्याय **स्वाहा** पुरुषार्थ-विद्या, **अर्य्यम्णे** न्यायाधीशत्वाय **च स्वाहा** राज-नीतिविद्या **गृह्यते, तथा मयाऽपि गृह्यते** ॥ १० । ५ ॥

लिये (**स्वाहा**) विवेकविद्या को (**घोषाय**) सत्य और प्रिय भाषण आदि युक्त वाणी की प्राप्ति के लिये (**स्वाहा**) सत्य-उपदेश में वक्तृत्व विद्या को, (**श्लोकाय**) तत्त्वसंघात, श्रेष्ठ काव्य, गद्य, पद्य, छन्दोरचना आदि के विज्ञान के लिये (**स्वाहा**) तत्त्वज्ञान तथा काव्यशास्त्र आदि की विद्या को, (**अंशाय**) परमाणुओं को समझने के लिये (**स्वाहा**) सूक्ष्म पदार्थ विद्या को, (**भगाय**) ऐश्वर्य-प्राप्ति के लिये (**स्वाहा**) पुरुषार्थ विद्या को, और (**अर्य्यम्णे**) न्यायाधीश बनने के लिये (**स्वाहा**) राजनीति विद्या को ग्रहण करते हो, वैसे मैं भी ग्रहण करता हूँ ॥ १० । ५ ॥

[हे राजन् ! यथा त्वं सोमस्य त्विषिरसि, तथाऽहमपि भूयासम्, यथा भवताऽग्नये स्वाहा······गृह्यते, तथा मयापि गृह्यते]

भावार्थः—मनुष्यैरिदमाशंसितव्यं यथाऽऽप्तानां राज्ञां शुभगुणकर्मस्वभावाः सन्ति तथैव नो भूयासुरिति ॥ १० । ५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को यह कामना करनी चाहिये कि जैसे आप्त राजाओं के शुभ गुण कर्म स्वभाव हैं वैसे ही हमारे हों ॥ १० । ५ ॥

भाष्यसार—क्षत्रिय आप्त राजाओं का ही अनुकरण करें—आप्त राजा ऐश्वर्य की ज्योति तथा विज्ञान का प्रकाशक होता है । वह विद्युत् आदि विज्ञान की प्राप्ति के लिये सत्यभाषण एवं प्रियाचरण की विद्या को, औषध-विज्ञान के लिये वैद्यकविद्या और पुरुषार्थ विद्या को, सूर्यविज्ञान के लिये ज्योतिष विद्या को, वेदार्थ को जानने के लिये व्याकरण आदि वेदाङ्ग की विद्या को, प्राणों की रक्षा के लिये योग विद्या तथा पशुपालन के लिये व्यवहार विद्या को, ईश्वर के विज्ञान के लिये ब्रह्म विद्या को, जीव के बोध के लिये विवेक विद्या को, सत्य तथा प्रिय भाषण के लिये वक्तृत्व विद्या (भाषणकला) को, तत्त्वसमूह को जानने के लिये तत्त्वज्ञान तथा श्रेष्ठ काव्य, गद्य, पद्य और छन्दोरचना के लिये काव्यशास्त्र आदि की विद्या को, परमाणुओं को समझने के लिये सूक्ष्म पदार्थ विद्या को, ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये पुरुषार्थ विद्या को, न्यायाधीश होने के लिये राजनीति विद्या को ग्रहण करता है ।

क्षत्रियों को उचित है कि वे इन शुभ गुण कर्म स्वभाव से युक्त आप्त राजाओं का ही अनुकरण करें, दूसरे क्षुद्राशय, लोभी, अन्यायी, अजितेन्द्रिय (लम्पट) राजाओं का अनुकरण कभी न करें ॥ १० । ५ ॥

वरुणः । **आपः**=**विद्वत्कुमारकुमार्यः** । स्वराड् ब्राह्मी बृहती । मध्यमः ॥

यथा कुमारा ब्रह्मचर्येण विद्यां गृह्णीयुस्तथैव कुमारोऽपि पठेयुरित्याह ॥

जैसे कुमार ब्रह्मचर्य से विद्या ग्रहण करें वैसे कुमारियाँ भी पढ़ें, इस विषय का उपदेश किया है ॥

प॒वित्रे॑ स्थो वैष्ण॒व्यौ॑ सवि॒तुर्वः॑ प्रस॒व ऽ उत्पु॑ना॒म्यच्छि॑द्रेण प॒वित्रे॑ण॒ सूर्य॑स्य र॒श्मिभिः॑ ।
अनि॑भृष्टमसि वा॒चो बन्धु॑स्तपो॒जाः सोम॑स्य दा॒त्रम॑सि॒ स्वाहा॑ राज॒स्वः॑ ॥ ६ ॥

पदार्थः—(**पवित्रे**) शुद्धाचरणे (**स्थः**) स्याताम् (**वैष्णव्यौ**) सकलविद्यासुशिक्षाशुभगुण-

स्वभावव्यापिनौ (**सवितुः**) सकलजगत्प्रसवितुरीश्वरस्य (**वः**) युष्मान् ब्रह्मचारिणीर्विद्यार्थिनीः कुमारिकाः (**प्रसवे**) प्रसूतेऽस्मिन् जगति (**उत्**) उत्कृष्टतया। (**पुनामि**) पवित्री करोमि (**अच्छिद्रेण**) अविच्छिन्नेन= निरन्तरेण (**पवित्रेण**) विद्यासुशिक्षाजितेन्द्रियत्वब्रह्मचर्यादिभिः पवित्रीकारकेण व्यवहारेण (**सूर्य्यस्य**) अर्कस्य (**रश्मिभिः**) किरणैरिव (**अनिभृष्टम्**) नित्यं भृष्टं=पतिरहितमाचरितवान् (**असि**) (**वाचः**) वेदवाण्याः (**बन्धुः**) भ्राता (**तपोजाः**) ब्रह्मचर्यादितपसा जातः (**सोमस्य**) औषधिगणस्य (**दात्रम्**) दाति रोगान् येन तद्वान् (**असि**) (**स्वाहा**) सत्यक्रियया (**राजस्वः**) राजवीरप्रसविकाः॥ अयं मन्त्रः शत० ५। ३। ५। १६-१८ व्याख्यातः॥ ६॥

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५। ३। ५। १६-१८) में की गई है॥ १०। ६॥

सपदार्थान्वयः—हे सभेश राजन्! **यतस्त्वं वाचः** वेदवाण्याः **अनिभृष्टं** नित्यं भृष्टं=पतिरहितमाचरितवान् [तत्प्रतिषेधः] **बन्धुः** भ्राता **असि, सोमस्य** ओषधिगणस्य **दात्रं** दाति रोगान् येन तद्वान् **तपोजाः** ब्रह्मचर्यादितपसा जातः **असि, तवाऽऽज्ञया सवितुः** सकलजगत्प्रसवितुरीश्वरस्य **प्रसवे** प्रसूतेऽस्मिन् जगति **वैष्णव्यौ** सकलविद्यासुशिक्षा-शुभगुणस्वभावव्यापिनौ **पवित्रे** शुद्धाचरणे **स्थः** स्याताम्।

भाषार्थ—हे सभापति राजन्! क्योंकि आप (**वाचः**) वेदवाणी के (**अनिभृष्टम्**) भ्रष्ट पापाचरण से रहित (**बन्धुः**) भ्राता (**असि**) हो, (**सोमस्य**) औषधियों के सेवन से (**दात्रम्**) रोगों का निवारण करने वाले तथा (**तपोजाः**) ब्रह्मचर्य आदि तप से युक्त (**असि**) हो, आपकी आज्ञा से (**सवितुः**) सकल जगत् के उत्पादक ईश्वर के (**प्रसवे**) उत्पन्न किये इस जगत् में (**वैष्णव्यौ**) सकल विद्या, उत्तम शिक्षा और शुभ गुण, कर्म, स्वभाव को प्राप्त करने वाले कुमार और कुमारी (**पवित्रे**) शुद्ध आचरण वाले (**स्थः**) हों।

हे **अध्यापिकपरिचारिका अध्येत्र्यश्च स्त्रियः! यथाऽहं सवितुः प्रसवे सूर्यस्य** अर्कस्य **रश्मिभिरिव** किरणैरिव **अच्छिद्रेण** अविच्छिन्नेन=निरन्तरेण **पवित्रेण** विद्यासुशिक्षाजितेन्द्रियत्वब्रह्मचर्यादिभिः पवित्रीकारकेण व्यवहारेण **वः** युष्मान् ब्रह्मचारिणीर्विद्यार्थिनीः कुमारिकाः **उत्पुनामि** उत्कृष्टतया पवित्रीकरोमि, **तथा यूयं स्वाहा** सत्क्रियया **राजस्वः** राजवीरप्रसविकाः **भवत**॥ १०। ६॥

हे अध्यापिकाओं की सेविकाओ और अध्ययन करने वाली स्त्रियो! जैसे मैं राजा, (**सवितुः**) ईश्वर के (**प्रसवे**) जगत् में (**सूर्यस्य**) सूर्य की किरणों के समान (**अच्छिद्रेण**) निरन्तर (**पवित्रेण**) विद्या, सुशिक्षा, जितेन्द्रियता, ब्रह्मचर्य आदि पवित्र-कारक व्यवहार से (**वः**) तुम ब्रह्मचारिणी विद्या अभिलाषिणी कुमारियों को (**उत्पुनामि**) उत्तम रीति से पवित्र करता हूँ, वैसे तुम भी (**स्वाहा**) सत्याचरण से (**राजस्वः**) वीर राजाओं को उत्पन्न करने वाली बनो॥ १०। ६॥

[हे राजन्!···**तवाऽऽज्ञया सवितुः प्रसवे वैष्णव्यौ पवित्रे स्थः, हे अध्यापकपरिचारिका** अध्येत्र्यश्च स्त्रियः! **यथाऽहं सवितुः प्रसवे···व उत्पुनामि तथा यूयं···राजस्वो भवत**]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः॥ हे राजादयो राजपुरुषाः! यूयमस्मिन् जगति यथा कुमाराध्यापने सज्जना नियुज्यन्ते तथा पवित्रविद्या-परीक्षाकारिकाः स्त्रियः कन्यानामध्यापने नियङ्-

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है॥ हे राजा आदि राजपुरुषो! तुम लोग—इस जगत् में जैसे कुमारों के पढ़ाने में श्रेष्ठ जनों को नियुक्त करते हो, वैसे पवित्र आचरण

ध्वम् । यत एत इमाश्च विद्यासुशिक्षाः प्राप्य, युवत्यः सत्यः, स्वसदृशैः प्रियैर्वरैः पुरुषैः सह स्वयंवरं विवाहं कृत्वा वीरपुरुषान् जनयेयुः ॥ १० । ६ ॥

वाली विद्या की परीक्षक स्त्रियों को कन्याओं के पाने में नियुक्त करो, जिससे यह कुमार और कुमारियाँ विद्या और सुशिक्षा को प्राप्त करके, युवती होकर, अपने सदृश, प्रिय, वर, पुरुषों के साथ स्वयंवर विवाह करके वीर पुरुषों को उत्पन्न करें ॥ १० । ६ ॥

भाष्यसार—१. **कुमारों के समान कुमारियाँ भी ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़ें**—भ्रष्टाचरण से रहित सभापति राजा वेदवाणी का बन्धु होता है । वह औषधियों के तुल्य सब रोगों का निवारण करता है। ब्रह्मचर्य आदि तप से पवित्र होता है । वह अपनी आज्ञा से इस ईश्वर के जगत् में जैसे कुमारों की शिक्षा के लिये श्रेष्ठ जनों को नियुक्त करे वैसे सकल विद्या, सुशिक्षा तथा शुभ गुण, कर्म, स्वभाव से युक्त पवित्र आचरण वाली, विद्या की परीक्षक स्त्रियों को कन्याओं की शिक्षा के लिए नियुक्त करे।

अपनी अध्यापिकाओं की सेवा करने वाली, विद्या की अभिलाषिणी कुमारियों को इस जगत् में राजा, जैसे सूर्य की किरणें पदार्थों को पवित्र करती हैं, वैसे निरन्तर विद्या, सुशिक्षा, जितेन्द्रियता, ब्रह्मचर्य आदि पवित्रताकारक व्यवहार के उपदेश से पवित्र करे । और ये कुमारियाँ विद्या और सुशिक्षा को प्राप्त कर, युवती होकर, अपने सदृश प्रिय वरों के साथ स्वयंवर विवाह करके वीर पुरुषों को जन्म दें ॥

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि शब्द लुप्त है अतः वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है । उपमा यह है कि राजा कुमारों के समान कुमारियों के भी अध्ययन की व्यवस्था करें ॥ १० । ६ ॥ ●

वरुणः । **वरुणः**=राजा । विराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

राज्ञामिदमावश्यकं यत्सर्वस्याः प्रजायाः स्वकुलस्य चापत्यानि ब्रह्मचर्येण विद्यासुशिक्षान्वितानि कार्य्याणीत्याह ॥

राजाओं को यह अवश्य चाहिये कि वे सब प्रजा और अपने कुल के बालकों को ब्रह्मचर्य्य से विद्या और सुशिक्षा से युक्त करें, यह उपदेश किया है ॥

सधमादो॑ द्यु॒म्निनी॒राप॑ऽए॒ताऽअना॑धृष्टाऽअप॒स्यो॒ वसा॑ना ।
प॒स्त्या॒सु च॑क्रे॒ वरु॑णः स॒धस्थ॑म॒पाᳪ शिशु॑र्मा॒तृत॑मास्व॒न्तः ॥ ७ ॥

पदार्थः—(**सधमादः**) याः सह माद्यन्ति=हृष्यन्ति ताः (**द्युम्निनीः**) प्रशस्तं द्युम्नं=धनं यशो वा विद्यते यासां ताः (**आपः**)जलानीव शान्ताः (**एताः**) प्राप्तविद्यासुशिक्षाः (**अनाधृष्टाः**) धर्षितुमयोग्याः (**अपस्यः**) अपःसु=कर्म्मसुसाध्वचः । **अत्र सुपां सुलुक्** । इति शसः स्थाने सुः (**वसानाः**) वस्त्राभूषणैराच्छादिताः (**पस्त्यासु**) गृहशालासु (**चक्रे**) कुर्यात् (**वरुणः**) वरो राजा (**सधस्थम्**) सहस्थानम् (**अपाम्**) व्याप्तविद्यानां स्त्रीणाम् (**शिशुः**) बालकः (**मातृतमासु**) अतिशयेन शास्त्रोक्तशिक्षया मानकर्त्रीषु धात्रीषु (**अन्तः**) समीपे ॥ **अयं मन्त्रः शत० ५ । ३ । ५ । १९ व्याख्यातः ॥ ७ ॥**

प्रमाणार्थ—(**अपस्यः**) यहाँ 'सुपां सुलुक्०' [अ० ७ । १ । ३९] इस सूत्र से 'शस्' के स्थान में 'सु' है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । ३ । ५ । १९) में की गई है ॥ १० । ७ ॥

अपदार्थान्वयः—यो **वरुणः** वरो राजा **भवेत्**, स **एताः** प्राप्तविद्यासुशिक्षा **सधमादः** याः सह माद्यन्ति=हृष्यन्ति ताः, **द्युम्निनीः** प्रशस्तं द्युम्नं=धनं यशो वा विद्यते यासां ताः, **अनाधृष्टाः** धर्षितुमयोग्याः, **आपः** जलानीव शान्ताः **वसानाः** वस्त्रऽऽभूषणैराच्छादिताः, **पस्त्यासु** गृहशालासु **अपस्वः** अपःसु=कर्म्मसु साध्व्यः **स्त्रियो विदुष्यो भवेयुस्तासामपां** व्याप्तविद्यानां स्त्रीणां **यः शिशुः** बालकः, **तं मातृतमासु** अतिशयेन शास्त्रोक्तशिक्षया मानकर्त्रीषु धात्रीषु **अन्तः** समीपे **सधस्थं**=**समीपस्थं** सहस्थानं शिक्षार्थं [**चक्रे**] रक्षेत् कुर्य्यात् ॥ १० । ७ ॥

भाषार्थ—जो (**वरुणः**) श्रेष्ठ राजा हो, वह (**एताः**) विद्या और सुशिक्षा को प्राप्त, (**सधमादः**) साथ हर्षित रहने वाली, (**द्युम्निनीः**) प्रशस्त धन वा यश वाली, (**अनाधृष्टाः**) पराजित न होने वाली, (**आपः**) जल के समान शान्त, (**वसानाः**) वस्त्र और आभूषणों को धारण करने वाली, विदुषी स्त्रियाँ (**पस्त्यासु**) घरों में (**अपस्वः**) उत्तम कर्म करने वाली हों। उन (**अपाम्**) विद्या को प्राप्त स्त्रियों के जो (**शिशुः**) बालक हों, उन्हें (**मतृतमासु**) शास्त्रोक्त शिक्षा से अत्यन्त मान करने वाली धाइयों के (**अन्तः**) पास (**साधस्थम्**) निकटवर्ती स्थान में में शिक्षा के लिये [**चक्रे**] रखे ॥ १० । ७ ॥

[**यो वरुणो भवेत्, स एताः**···**स्त्रियो विदुष्यो भवेयुस्तासामपां यः शिशुस्तं मातृतमास्वन्तः सधस्थं शिक्षार्थं [चक्रे] रक्षेत्**]

भावार्थः—राज्ञा प्रयत्नेन स्वराज्ये सर्वाः स्त्रियो विदुष्यः कार्य्यास्तासां सकाशाज्जाता बालका विद्यायुक्तधात्र्यधीनाः कार्य्याः। यतो न कस्याप्यपत्यं विद्यासुशिक्षाहीनं, स्त्री निर्बला च स्यात् ॥ ॥ १० । ७ ॥

भावार्थ—राजा प्रयत्न से अपने राज्य में सब स्त्रियों को विदुषी करे, उनसे उत्पन्न बालकों को विद्या से युक्त धाइयों के अधीन करे, जिससे किसी का बालक विद्या और सुशिक्षा से हीन न हो और स्त्री निर्बल न हो ॥ १० । ७ ॥

भाष्यसार—**१. राजा और विद्या-सुशिक्षा**—श्रेष्ठ राजाओं के लिये यह आवश्यक है कि वे प्रयत्न से अपने राज्य में स्त्रियों को विदुषी बनावें, समस्त प्रजा के तथा अपने कुल के भी बालकों को विद्यावती धाइयों के अधीन करके उन्हें विद्या और सुशिक्षा से युक्त करें, जिससे किसी की सन्तान विद्या और सुशिक्षा से रहित न रहे और स्त्रियाँ निर्बल न हों।

२. विदुषी स्त्रियाँ—विद्या और सुशिक्षा को प्राप्त हुई, अपने पतियों के साथ सदा हर्षित रहने वाली, उत्तम धन और यश वाली, किसी से पराजित न होने वाली, जल के समान शान्त स्वभाव वाली, वस्त्र और आभूषणों को धारण करने वाली, गृहकार्यों में कुशल विदुषी स्त्रियाँ हों ॥ १० । ७ ॥

वरुणः। **यजमानः**=**स्पष्टम्** । स्वाराट् कृतिः। निषादः ॥

सर्वाः प्रजाः सर्वथा योग्यं सभेशं राजानं सततं सर्वतो रक्षेयुरित्याह ॥

सब प्रजापुरुषों को योग्य है कि सब प्रकार से योग्य सभापति राजा की निरन्तर सब ओर से रक्षा करें, यह उपदेश किया है ॥

क्षत्रस्योल्बमसि क्षत्रस्य जराय्वसि क्षत्रस्य योनिरसि क्षत्रस्य नाभिरसीन्द्रस्य वार्त्रघ्नमसि मित्रस्यासि वरुणस्यासि त्वयायं वृत्रं वधेत्। दृवासि रुजासि क्षुमासि। पातैनं प्राञ्चं पातैनं प्रत्यञ्चं पातैनं तिर्यञ्चं दिग्भ्यः पात ॥ ८ ॥

पदार्थः—(**क्षत्रस्य**) राजकुलस्य (**उल्वम्**) बलम् (**असि**) (**क्षत्रस्य**) क्षत्रियस्य (**जरायु**)

वृद्धावस्थाप्रापकम् (**असि**) (**क्षत्रस्य**) राजन्यस्य (**योनिः**) निमित्तम् (**असि**) (**क्षत्रस्य**) राज्यस्य (**नाभिः**) बन्धनम् (**असि**) (**इन्द्रस्य**) सूर्यस्य (**वार्त्रघ्नम्**) मेघविनाशकम् (**असि**) (**मित्रस्य**) सुहृदः (**असि**) (**वरुणस्य**) श्रेष्ठस्य (**असि**) (**त्वया**) राज्ञा (**अयम्**) वीरः (**वृत्रम्**) मेघमिव न्यायावरकं शत्रुम् (**वधेत्**) हन्यात् (**दृवा**) यः शत्रून् दृणाति । **अत्र अन्येषामपि दृश्यते ॥ अ० ३ । २ । ७५ ॥ इति क्वनिप्** (**असि**) (**रुजा**) शत्रूणां रोगकारकः । **अत्रौणादिकः कनिन्** (**असि**) (**क्षुमा**) सत्योपदेशकः । **अत्रौणादिको मनिन् किच्च** (**असि**) (**पात**) रक्षत (**एनम्**) राजानम् (**प्राञ्चम्**) प्राक्प्रबन्धस्य कर्त्तारम् (**पात**) (**एनम्**) सेनाध्यक्षम् (**प्रत्यञ्चम्**) पश्चात्स्थितम् (**पात**) (**एनम्**) पार्श्वस्थं वीरम् (**तिर्य्यञ्चम्**) तिरश्चीनम् (**दिग्भ्यः**) सर्वाभ्य आशाभ्यः (**पात**) ॥ ८ ॥

प्रमाणार्थ—(**दृवा**) यहां 'अन्येषामपि दृश्यते' (अ० ३ । २ । ७५) इस सूत्र में 'क्वनिप्' प्रत्यय है । (**रुजा**) यहां उणादि का 'कनिन्' प्रत्यय है । (**क्षुमा**) यहाँ उणादि का 'मनिन्' प्रत्यय और वह कित् है ॥ १० । ८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे राजन् ! यस्त्वं **क्षत्रस्य** राजकुलस्य **उल्वं** बलम् **असि**, **क्षत्रस्य** क्षत्रियस्य **जरायु** वृद्धावस्थाप्रापकम् **असि**, **क्षत्रस्य** राजन्यस्य **योनिः** निमित्तम् **असि**, **क्षत्रस्य** राज्यस्य **नाभिः** बन्धनम् **असि**, **इन्द्रस्य** सूर्यस्य **वार्त्रघ्नं** मेघविनाशकम् **असि**, **मित्रस्य** सुहृदः **मित्रोऽसि**, **वरुणस्य** श्रेष्ठस्य **वरोऽसि**, **दृवा** यः शत्रून् दृणाति **असि**, **रुजा** शत्रूणां रोगकारकः **असि**, **क्षुमा** सत्योपदेशकः **असि** ।

यस्त्वया राज्ञा **सह** [**अयम्**] वीरः **वृत्रं** मेघमिव न्यायावरकं शत्रुं **वधेत्** हन्यात्, **तमेनं** राजानं **प्राञ्चं** प्राक्प्रबन्धस्य कर्त्तारं **सर्वे यूयं दिग्भ्यः** सर्वाभ्य आशाभ्यः **पात** रक्षत, **तमेनं** सेनाध्यक्षं **प्रत्यञ्चं** पश्चात्स्थितं **पात**, **तमेनं** पार्श्वस्थं वीरं **तिर्य्यञ्चं** तिरश्चीनं **पात** ॥ १० । ८ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! जो आप (**क्षत्रस्य**) राजकुल के (उल्वम्) बल (**असि**) हो, (**क्षत्रियस्य**) क्षत्रियों को (जरायुः) वृद्ध करने वाले (**असि**) हो, (**क्षत्रस्य**) क्षत्रियों के (योनिः) कारण (**असि**) हो, (**क्षत्रस्य**) राज्य की (नाभिः) बन्धन (**असि**) हो, (**इन्द्रस्य**) सूर्य के (वार्त्रघ्नम्) मेघों का विनाश करने वाले (**असि**) हो, (मित्रस्य) मित्रों के मित्र (**असि**) हो, (**वरुणस्य**) श्रेष्ठों के श्रेष्ठ (**असि**) हो, (**दृवा**) शत्रुओं का विदारण करने वाले (**असि**) हो, (**रुजा**) शत्रुओं के रोगों के उत्पादक (**असि**) हो, (**क्षुमा**) सत्य के उपदेशक (**असि**) हो ।

जो (त्वया) आप के साथ [अयम्] यह वीर पुरुष (**वृत्रम्**) मेघ के तुल्य न्याय को छुपाने वाले शत्रु का (वधेत्) वध करे, उस (एनम्) राजपुरुष की जो (प्राञ्चम्) पहले प्रबन्ध करने वाला है, तुम सब (दिग्भ्यः) सब ओर से (पात) रक्षा करो, और (**एनम्**) इस सेनाध्यक्ष की जो (**प्रत्यञ्चम्**) पीछे विद्यमान है, (**पात**) रक्षा करो, और (**एनम्**) पास में स्थित इस वीर की जो (तिर्यञ्चम्) वक्र-गति वाला है, (**पात**) रक्षा करो ॥ १० । ८ ॥

[हे राजन् ! यस्त्वं क्षत्रस्योल्वमसि.....। यस्त्वया सह [अयम्] वृत्रं वधेत् तमेनं प्रञ्चं सर्वे यूयंदिग्भ्यः पात]

भावार्थः—यत् पुत्रीपुत्रेषु स्त्रीनरेषु च विद्यावर्धनं कर्मास्ति, तदेव राज्यवर्धकं, शत्रुविनाशकं, धर्मादि प्रवर्त्तकं च भवति । अनेनैव सर्वेषु

भावार्थ—जो पुत्री और पुत्रों में, स्त्री और पुरुषों में विद्या को बढ़ाने वाला कर्म है, वही राज्य को बढ़ाने, शत्रुओं का विनाश करने, और धर्म

कालेषु, सर्वासु दिक्षु रक्षणं भवति ॥ १० । ८ ॥

आदि में प्रवृत्त करने वाला है। इसी से ही सब कालों में और सब दिशाओं में रक्षा होती है ॥ १० । ८ ॥

भाष्यसार—**प्रजा राजा की रक्षा करे**—सब प्रजा-जनों को उचित है कि वे सब प्रकार से योग्य सभापति राजा की सदा सब ओर से रक्षा किया करें, क्योंकि राजा राजकुल का बल है, क्षत्रियों को बढ़ाने वाला है, क्षत्रियों को उत्पन्न करने वाला है, राज्य का प्रबन्धक है, जैसे सूर्य वृत्र=मेघ का विनाश करने वाला है वैसे राजा पुत्री और पुत्रों में, स्त्री और पुरुषों में अविद्या-अन्धकार को नष्ट करने वाला तथा विद्याप्रकाश को फैलाने वाला है। क्योंकि अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि रूप कर्म ही राज्य का वर्धक, शत्रुओं का विनाशक और धर्म आदि में प्रवृत्ति का हेतु है। राजा मित्रों का मित्र, श्रेष्ठों में भी श्रेष्ठ है, शत्रुओं का विदारक है, शत्रुओं के रोगों का वर्द्धक है, सत्य का उपदेशक है।

जो वीर पुरुष राजा के साथ मिलकर, जैसे मेघ सूर्य के प्रकाश को आच्छादित कर लेता है इसी प्रकार जो शत्रु न्याय-प्रकाश को अच्छादित करके अन्याय करते हैं, उनका जो वीर पुरुष राजा के साथ मिलकर वध करें, उन वीर राजपुरुषों की प्रजाजन सब कालों और दिशाओं में रक्षा किया करें ॥ १० । ८ ॥

वरुणः । **प्रजापतिः**=**राजा विद्वाँश्च** । भुरिगष्टिः । **मध्यमः** ॥

मनुष्यैः सुशीलतयाऽऽप्तविद्वदादयोऽवश्यं प्राप्तव्या इत्याह ॥

मनुष्यों को चाहिये कि सुशीलता से करके आप्त विद्वान् आदि श्रेष्ठ पुरुषों को अवश्य प्राप्त होवें, इस विषय का उपदेश किया है ॥

आविर्मर्य्या ऽ आवित्तो ऽ अग्निर्गृहपतिरावित्त ऽ इन्द्रो वृद्धश्रवा ऽ आवित्तौ मित्रावरुणौ धृतव्रतावावित्तः पूषा विश्ववेदा ऽ आवित्ते द्यावापृथिवी विश्वशम्भुवावावित्तादितिरुरुशर्म्मा ॥ ९ ॥

पदार्थः—(**आविः**) प्राकटये (**मर्य्याः**) मर्य्या इति मनुष्यना० ॥ निघं० २ । ३ ॥ (**आवित्तः**) प्राप्तपूर्णभोगो लब्धप्रतीतो वा । वित्तो भोगप्रत्यययोः ॥ अ० ८ । २ । ५८ ॥ अनेनायं निपातितः (**अग्निः**) पावक इव विद्वान् (**गृहपतिः**) गृहाणां पालकः (**आवित्तः**) (**इन्द्रः**) शत्रुविदारकः सेनाधीशः (**वृद्धश्रवाः**) वृद्धं श्रवः=सर्वशास्त्रश्रवणं यस्य सः (**आवित्तौ**) (**मित्रावरुणौ**) सुहृद्वरौ (**धृतव्रतौ**) धृतानि व्रतानि=सत्यादीनि याभ्यां तौ (**आवित्तः**) (**पूषा**) पोषको वैद्यः (**विश्ववेदाः**) विश्वं=सर्वमौषधं विदितं येन सः (**आवित्ते**) (**द्यावापृथिवी**) विद्युद्भूमी (**विश्वशम्भुवौ**) विश्वस्मै शं=सुखं भावुके (**आवित्ता**) (**अदितिः**) विदुषी माता (**उरुशर्म्मा**) उरूणि=बहूनि सुखानि यस्याः सा ॥ अयं मन्त्रः शत० ५ । ३ । ५ । ३१–३७ व्याख्यातः ॥ ९ ॥

प्रमाणार्थ—(**मर्य्याः**) यह शब्द निघं० (२ । ३) में मनुष्य-नामों में पढ़ा है। (**आवित्तः**) 'वित्त' शब्द 'वित्तो भोगप्रत्यययोः' (अ० ८ । २ । ५८) इस सूत्र से निपातित है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । ३ । ५ । ३१–३७) में की गई है ॥ १० । ९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मर्य्याः** मनुष्याः ! **युष्माभिर्यदि गृहपतिः** गृहाणां पालकः **अग्निः** पावक इव विद्वान् **आविरावित्तः** प्रकटं प्राप्तपूर्णभोगो

भाषार्थ—हे (**मर्य्याः**) मनुष्यो ! यदि (**गृहपतिः**) गृहस्थ (**अग्निः**) विद्वान् पुरुष (**आविरावित्तः**) प्रकट रूप में पूर्ण भोगों को तथा

लब्धप्रतीतो वा, **वृद्धश्रवाः** वृद्धं श्रवः=सर्वशास्त्र-श्रवणं यस्य सः **इन्द्रः** शत्रुविदारकः सेनाधीशः **आविरावित्तः** प्रकटं प्राप्तपूर्णभोगो लब्धप्रतीतो वा, **धृतव्रतौ** धृतानि व्रतानि=सत्यादीनि याभ्यां तौ **मित्रावरुणौ** सुहृद्वरौ **आविरावित्तौ** प्रकटं प्राप्तपूर्ण-भोगौ लब्धप्रतीतौ वा, **विश्ववेदाः** विश्वं=सर्व-औषधं विदितं येन सः **पूषा** पोषको वैद्यः **आविरा-वित्तः** प्रकटं प्राप्तपूर्णभोगो लब्धप्रतीतो वा, **विश्व-शम्भुवौ** विश्वस्मै शं=सुखं भावुके **द्यावापृथिवी** विद्युद्भूमी **आविरावित्ते** प्रकटं प्राप्तपूर्णभोगे लब्ध-प्रतीते वा, **उरुशर्म्मा** उरूणि=बहूनि सुखानि यस्याः सा **अदितिः** विदुषी माता **चाक्रविरावित्ता** प्रकटं प्राप्तपूर्णभोगा लब्धप्रतीता वा **स्यात्तर्हि सर्वाणि सुखानि प्राप्यन्ते** ॥ १० । ९ ॥

प्रसिद्धि को प्राप्त करने वाला, (**वृद्धश्रवाः**) सब शास्त्रों का श्रवण करने वाला विद्यावृद्ध (**इन्द्रः**) शत्रुओं का विदारण करने वाला सेनापति (**आवि-रावित्तः**) प्रकट रूप में पूर्ण भोगों तथा प्रसिद्धि को प्राप्त करने वाला, (**धृतव्रतौ**) सत्यभाषण आदि व्रतों को धारण करने वाले (**मित्रावरुणौ**) दो श्रेष्ठ मित्र (**आविरावित्तौ**) प्रकट रूप में पूर्ण भोगों को तथा प्रसिद्धि को प्राप्त करने वाले, (**विश्ववेदाः**) सब औषधों का वेत्ता (**पूषा**) वैद्य (**आविरावित्तः**) प्रकट रूप में पूर्ण भोगों को तथा प्रसिद्धि को प्राप्त करने वाला, (**विश्वशम्भुवौ**) विश्व के लिये सुख के हेतु (**द्यावापृथिवी**) विद्युत् और भूमि (**आविरावित्ते**) प्रकट रूप में पूर्ण भोगों तथा प्रसिद्धि को प्राप्त कराने वाले, और (**उरुशर्मा**) नाना सुखों वाली (**अदितिः**) विदुषी माता (**आविरावित्ता**) प्रकट रूप में पूर्ण भोगों तथा प्रसिद्धि को प्राप्त करने वाली होवे तो तुम लोग सुखों को प्राप्त कर सकते हो ॥ १० । ९ ॥

[हे मर्त्याः ! युष्माभिर्यदि गृहपतिरग्निराविरावित्तो······विश्वशम्भुवौ द्यावापृथिव्याविरावित्ते उरुशर्माऽदितिश्चाविरावित्ता स्यात्तर्हि सर्वाणि सुखानि प्राप्यन्ते]

भावार्थः--यावन्मनुष्याः सद्विदुषः, सतीं विदुषीं मातरं, सत्यपदार्थविज्ञानं च नाप्नुवन्ति, तावत् सुखवृद्धिं दुःख निवृत्तिं च कर्त्तुं न शक्नुवन्ति ॥ १० । ९ ॥

भावार्थ—जब तक मनुष्य श्रेष्ठ विद्वानों, श्रेष्ठ विदुषी माता और सत्य पदार्थ विज्ञान को प्राप्त नहीं होते हैं तब तक वे सुख की वृद्धि और दुःख की निवृत्ति नहीं कर सकते ॥ १० । ९ ॥

भा० पदार्थः—अग्निः=सद्विद्वान् । द्यावापृथिवी=सत्यपदार्थाः । अदितिः=सती विदुषी माता ॥

भाष्यसार—**आप्त विद्वानों आदि को अवश्य प्राप्त करें**—सब मनुष्यों को उचित है कि वे सुशीलता से गृहस्थ, अग्नि के समान अविद्या अन्धकार को नष्ट करने वाले आप्त विद्वानों को प्राप्त करें अर्थात् उन्हें पूर्ण भोग्य पदार्थ प्रदान करें, उनकी लोक में प्रसिद्धि करें। इसी प्रकार सब शास्त्रों का श्रवण करने वाले विद्यावृद्ध, शत्रु विदारक सेनापति को, सत्य भाषण आदि व्रतों को धारण करने वाले श्रेष्ठ मित्रों को, सब औषधों के ज्ञाता वैद्यों को, पूर्ण भोग्य पदार्थ प्रदान करें तथा उनकी लोक में प्रसिद्धि करें। विद्युत् भूमि आदि सब सत्य पदार्थों का विज्ञान प्राप्त करें, इनसे पूर्ण भोगों को प्राप्त करें, इनके गुणों की लोक में प्रसिद्धि करें। नाना सुखों से भरपूर विदुषी माता को पूर्ण भोग्य पदार्थ प्रदान करें तथा उसकी सर्वत्र कीर्ति का विस्तार करें।

जब तक मनुष्य इन आप्त विद्वानों तथा विदुषी माता आदि की सेवा और स्तुति नहीं करते और विद्युत तथा भूमि आदि सत्य पदार्थों का विज्ञान प्राप्त नहीं करते, तब तक सुखों की वृद्धि और दुःखों की निवृत्ति कदापि नहीं कर सकते ॥ १० । ९ ॥

वरुणः । **अन्नमानः**=स्पष्टम् । विराडार्षी पंक्तिः । पञ्चमः ।।

पुनर्मनुष्यैः किं कृत्वा किं किं प्राप्तव्यमित्युपदिश्यते ।।

फिर मनुष्य क्या करके किस किस को प्राप्त हों, यह उपदेश किया है ।।

अवेष्टा दन्दशूकाः प्राचीमारोह गायत्री त्वावतु रथन्तरꣳ साम त्रिवृत् स्तोमो वसन्त ऽ ऋतुर्ब्रह्म द्रविणम् ॥ १० ॥

पदार्थः—(**अवेष्टाः**) विरुद्धस्य संगन्तारः (**दन्दशूकाः**) परदुःखप्रदाये दंशनशीलाः (**प्राचीम्**) पूर्वां दिशम् (**आ**) (**रोह**) प्रसिद्धो भव (**गायत्री**) पठितं गायत्रीछन्दः (**त्वा**) त्वाम् (**अवतु**) प्राप्नोतु (**रथन्तरम्**) रथैस्तरन्ति येन तत् (**साम**) सामवेदः (**त्रिवृत्**) त्रिभिर्मनोवाक्शरीरबलानां बोधकारकः (**स्तोमः**) स्तूयमानः (**वसन्तः**) (**ऋतुः**) (**ब्रह्म**) वेदो जगदीश्वरो ब्रह्मवित्कुलं वा (**द्रविणम्**) विद्याद्रव्यम् ।। **अयं मन्त्रः शत० ५ । ४ । १ । १—३ व्याख्यातः ।। १० ।।**

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । ४ । १ । १-३) में की गई है ।। १० । १० ।।

सपदार्थान्वयः—हे राजन् ! **यस्त्वं**—**ये ऽवेष्टाः** विरुद्धस्य संगन्तारः **दन्दशूकाः** परदुःखप्रदाये दंशनशीलाः **सन्ति, तान् जित्वा प्राचीं** पूर्वां **दिशन् आरोह** प्रसिद्धो भव, **तं त्वा** त्वां **गायत्री** पठितं गायत्रीछन्दः, **रथन्तरं** रथैस्तरन्ति येन तत् **साम** सामवेदः, **त्रिवृत्** त्रिभिर्मनोवाक्शरीरबलानां बोधकारकः **स्तोमः** स्तूयमानः, **ऋतुर्वसन्तो, ब्रह्म** वेदो जगदीश्वरो ब्रह्मवित्कुलं वा, **द्रविणं** विद्याद्रव्यं **चावतु** प्राप्नोतु ।। १० । १० ।।

भाषार्थ—हे राजन् ! आप—जो (**अवेष्टाः**) विरुद्ध लोगों का संग करने वाले, (**दन्दशूकाः**) डसने वाले अर्थात् दूसरों को दुःख देने वाले शत्रु हैं, उन्हें जीतकर (**प्राचीन्**) पूर्व दिशा में (**आरोह**) प्रसिद्ध होवो, सो (**त्वा**) आपको (**गायत्री**) पढ़ा हुआ गायत्री छन्द, (**रथन्तरम्**) रथों से तरने योग्य (**साम**) सामवेद, (**त्रिवृत्**) तीन वेदों से मानसिक, वाचिक और शारीरिक बलों का बोध कराने वाला (**स्तोमः**) स्तुति योग्य ज्ञान, (**ऋतुर्वसन्तः**) वसन्त ऋतु, (**ब्रह्म**) वेद, जगदीश्वर अथवा ब्रह्मवेत्ता कुल और (**द्रविणम्**) विद्या रूप द्रव्य (**अवतु**) प्राप्त होवे ।। १० । १० ।।

[हे राजन् ! **यस्त्वं—ये ऽवेष्टा दन्दशूकाः सन्ति तान् जित्वा'''आरोह, तं त्वा गायत्री'''द्रविणं चावतु**]

भावार्थः—ये मनुष्या विद्यासु प्रादुर्भवन्ति ते शत्रून् विजित्यैश्वर्यं प्राप्नुवन्ति ।। १० । १० ।।

भावार्थ—जो मनुष्य विद्याओं में प्रकट होते हैं, वे शत्रुओं को विजय करके ऐश्वर्य को प्राप्त करते हैं ।। १० । १० ।।

भाष्यसार—**क्या करके क्या प्राप्त करें**—राजा आदि लोग गायत्री मन्त्र को पढ़ने वाले, सामवेद के ज्ञाता तथा ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद इन तीनों से मानसिक, वाचिक और शारीरिक बलों का बोध कराने वाले, वसन्त आदि ऋतुओं को समझने वाले, वेद, ईश्वर ब्रह्मवेता कुल, और विद्या को प्राप्त करने वाले होकर; जो विरुद्ध लोगों का संग करने वाले अर्थात् विरोधी और डसने वाले अर्थात् दूसरों को दुःख देने वाले शत्रु हैं, उन्हें जीतकर कीर्ति को प्राप्त करें ।। १० । १० ।।

वरुणः । **यजमानः**=**राजा** । आर्ची पंक्तिः । पञ्चमः ॥

पुनः स सभेशः किं कृत्वा किं कुर्यादित्याह ॥

फिर वह सभापति राजा क्या करके क्या करे, यह उपदेश किया है ॥

दक्षिणामारोह त्रिष्टुप् त्वावतु बृहत्साम पञ्चदश स्तोमो ग्रीष्म ऽ ऋतुः क्षत्रं द्रविणम् ॥ ११ ॥

पदार्थः—(**दक्षिणाम्**) दिशम् (**आ**) (**रोह**) (**त्रिष्टुप्**) एतच्छन्दोऽभिहितं विज्ञानम् (**त्वा**) त्वाम् (**अवतु**) प्राप्नोतु (**बृहत्**) महत् (**साम**) सामवेदभागः (**पञ्चदशः**) प्राणेन्द्रियभूतानां पञ्चदशानां पूरकः (**स्तोमः**) स्तोतुं योग्यः (**ग्रीष्मः**) (**ऋतुः**) (**क्षत्रम्**) क्षत्रियधर्मरक्षकं कुलम् (**द्रविणम्**) राज्योद्भवं द्रव्यम् ॥ अयं मन्त्रः शत० ५ । ४ । १ । ४ व्याख्यातः ॥ ११ ॥

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । ४ । १ । ४) में की गई है ॥ १० । ११ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् राजन् ! यं त्वा त्वां **त्रिष्टुप् छन्दः** एतच्छन्दोऽभिहितं विज्ञानं, **बृहत्** महत् **साम** सामवेदभागः, **पञ्चदशः** प्राणेन्द्रियभूतानां पञ्चदशानां पूरकः **स्तोमः** स्तोतुं योग्यः, **ग्रीष्मः ऋतुः क्षत्रं** क्षत्रियधर्मरक्षकं कुलं, **द्रविणं** राज्योद्भवं द्रव्यं **चाऽवतु** प्राप्नोतु । **स त्वं दक्षिणां दिशमारोह**=**शत्रून् विजयस्व** ॥ १० । ११ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् राजन् ! (**त्वा**) आपको (**त्रिष्टुप्छन्दः**) त्रिष्टुप् छन्द से विहित विज्ञान, (**बृहत्**) महान् (**साम**) सामवेद का भाग (**पञ्चदशः**) पाँच प्राण, पाँच इन्द्रियाँ, पाँच भूत ये पन्द्रह (**स्तोमः**) स्तुति योग्य पदार्थ, (**ग्रीष्म ऋतु**) ग्रीष्म ऋतु, (**क्षत्रम्**) क्षत्रिय धर्म का रक्षक कुल, और (**द्रविणम्**) राज्य से उत्पन्न द्रव्य (**अवतु**) प्राप्त होवे । सो आप (**दक्षिणाम्**) दक्षिण दिशा में (**आरोह**) चढ़ाई करो, शत्रुओं पर विजय प्राप्त करो ॥ १० । ११ ॥

[हे विद्वन् राजन् ! यं त्वा त्रिष्टुप् छन्दो···क्षत्रं द्रविणं चावतु, स त्वं दक्षिणां दिशामारोह=शत्रून् विजयस्व]

भावार्थः—यो राजा प्राप्तविद्यः क्षत्रियकुलं वर्धयेत् स एव शत्रुभिः कदापि न तिरस्क्रियेत ॥ १० । ११ ॥

भावार्थ—जो राजा विद्या को प्राप्त होकर क्षत्रिय कुल को बढ़ाता है वही शत्रुओं से कभी अपमानित नहीं होता है ॥ १० । ११ ॥

भाष्यसार—**सभापति राजा क्या करके क्या करे**—विद्वान् सभापति राजा त्रिष्टुप् आदि छन्दों द्वारा विहित विज्ञान को प्राप्त करके, महान् सामवेद के भाग को जानकर, पाँच प्राण (**प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान**), पाँच इन्द्रियाँ (**घ्राण, रसना, चक्षु, त्वचा, श्रोत्र**) पाँच भूत (**पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश**) इन पन्द्रह पदार्थों की स्तुति=यथार्थ गुणों को समझ कर पूर्ण विद्वान् होवे । क्षत्रिय धर्म के रक्षक कुल को बढ़ावे । राज्य से उत्पन्न द्रव्य को प्राप्त करे । इस प्रकार साधन सम्पन्न होकर राजा शत्रुओं पर विजय प्राप्त करे । जो राजा ऐसा करता है वह शत्रुओं से कभी तिरस्कृत नहीं होता ॥ १० । ११ ॥

वरुणः । **यजमानः**=**राजपुरुषः** । निचृदार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

राजपुरुषैर्नित्यं वैश्यकुलं वर्द्धनीयमित्याह ॥

राजपुरुषों को चाहिये कि वैश्य कुल को नित्य बढ़ावें, यह उपदेश किया है ॥

प्रतीचीमारोह जगती त्वावतु वैरूपꣳ साम सप्तदश स्तोमो वर्षा ऽ ऋतुर्विड् द्रविणम् ॥ १२ ॥

पदार्थः—(**प्रतीचीम्**) पश्चिमां दिशम् (**आ**) (**रोह**) (**जगती**) एतच्छन्दोभिहितमर्थम् (**त्वा**) त्वाम् (**अवतु**) (**वैरूपम्**) विविधानि रूपाणि यस्मिन् तत् (**साम**) सामवेदांशः (**सप्तदशः**) पञ्च कर्मेन्द्रियाणि पञ्च विषयः पञ्च महाभूतानि कार्य्यं कारणं चेति सप्तदशानां पूरकः (**स्तोमः**) स्तुतिसमूहः (**वर्षाः**) (**ऋतुः**) (**विट्**) वणिग्जनः (**द्रविणम्**) द्रव्यम् ॥ अयं मन्त्रः शत० ५ । ४ । १ । ५ व्याख्यातः ॥ १२ ॥

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । ४ । १ । ५) में की गई है ॥ १० । १२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे राजन् ! यं त्वा त्वां **जगती** एतच्छन्दोऽभिहितमर्थं **वैरूपं** विविधानि रूपाणि यस्मिन् तत् **साम** सामवेदांऽशः **सप्तदशः** पञ्च कर्मेन्द्रियाणि पञ्च विषयाः पञ्च महाभूतानि कार्य्यं कारणं चेति सप्तदशानां पूरकः **स्तोमः** स्तुतिसमूहः **ऋतुर्वर्षाः द्रविणं** द्रव्यं **विट्** वणिग्जनः चावतु, स त्वं **प्रतीचीं दिशं** पश्चिमां दिशम् **आरोह, धनं च लभस्व** ॥ १० । १२ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! (**त्वा**) आपको (**जगती**) जगती छन्द से प्रतिपादित पदार्थ, (**वैरूपम्**) विविध रूपों वाला (**साम**) सामवेद का अंश, (**सप्तदशः**) पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच विषय, पाँच महाभूत, कार्य और कारण ये सतरह (**स्तोमः**) स्तुति योग्य पदार्थ, (**ऋतुर्वर्षाः**) वर्षा ऋतु, (**विट्**) वैश्यजन, और (**द्रविणम्**) द्रव्य (**अवतु**) प्राप्त होवे । सो आप (**प्रतीचीम्**) पश्चिम दिशा पर (**आरोह**) चढ़ाई करो, और धन को प्राप्त करो ॥ १० । १२ ॥

[हे राजन् ! यं त्वा···द्रविणं विट् चावतु, स त्वं प्रतीचीं दिशमारोह, धनं च लभस्व]

भावार्थः—ये राजपुरुषा राजनीत्या वैश्यानुन्नयेयुस्ते श्रियमाप्नुयुः ॥ १० । १२ ॥

भावार्थ—जो राजपुरुष राजनीति से वैश्यों को उन्नत करते हैं वे श्री (धन) को प्राप्त करते हैं ॥ १० । १२ ॥

भा० पदार्थः—विट्=वैश्यः ॥

भाष्यसार—**राजपुरुष वैश्य कुल को बढ़ावें**—राजपुरुषों को चाहिये कि वे जगती छन्द से प्रतिपादित पदार्थों को, विविध रूपों वाले सामवेद के भाग को, पाँच कर्म इन्द्रियाँ (**पाणि, पाद, पायु, उपस्थ, जिह्वा**), पाँच विषय (**गन्ध, रूप, रस, स्पर्श, शब्द**), पाँच महाभूत (**पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश**), कार्य (**स्थूल जगत्**), कारण (**स्थूल जगत् का कारण प्रकृति**) इस सतरह प्रकार के स्तोम को और वर्षा ऋतु को प्राप्त करें । राजा लोग राजनीति से वैश्य कुल की वृद्धि करें और उससे नाना प्रकार के द्रव्य और धन को प्राप्त करें ॥ १० । १२ ॥

वरुणः । **यजमानः**=सेनापतिः । आर्ची पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

पुना राजादिनरैः किं लब्धव्यमित्याह ॥

फिर राजा आदि पुरुषों को क्या प्राप्त करना चाहिये, यह उपदेश किया है ॥

उदीचीमारोहानुष्टुप् त्वावतु वैराजꣳ सामैकविꣳश स्तोमः शरदृतुः फलं द्रविणम् ॥ १३ ॥

पदार्थः—(**उदीचीम्**) उत्तराम् (**आ**) (**रोह**) (**अनुष्टुप्**) यया पठित्वा पुनः सर्वा विद्या

अन्येभ्यः स्तुवन्ति सा (**त्वा**) (**अवतु**) (**वैराजम्**) यद्विविधैरर्थै राजते तदेव (**साम**) (**एकविंशः**) षोडश कलाश्चत्वारः पुरुषार्थाऽवयवाः कर्त्ता चेति तेषामेकविंशतेः पूरणः (**स्तोमः**) स्तुतिविषयः (**शरत्**) (**ऋतुः**) (**फलम्**) सेवाफलदं शूद्रकुलम् (**द्रविणम्**) ॥ **अयं मंत्रः शत० ५ । ४ । १ । ६ व्याख्यातः ॥ १३ ॥**

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । ४ । १ । ६) में की गई है ॥ १० । १३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे सभापते ! **त्वमुदीचीम्** उत्तरां **दिशमारोह** । **यतोऽनुष्टुप्** यया पठित्वा पुनः सर्वा विद्या अन्येभ्यः स्तुवन्ति सा **वैराजं** यद्विविधैरर्थै राजते तदेव **सामैकविंशः** षोडश कलाश्चत्वारः पुरुषार्थाऽवयवाः कर्त्ता चेति तेषामेकविंशतेः पूरणः **स्तोमः** स्तुतिविषयः **ऋतुः शरद् द्रविणं फलं** सेवाफलदं शूद्रकुलं **च त्वाऽवतु** ॥ १० । १३ ॥

भाषार्थ—हे सभापति राजन् ! आप (**उदीचीम्**) उत्तर दिशा पर (**आरोह**) चढ़ाई करो क्योंकि (**अनुष्टुप्**) पढ़कर जिससे सब विद्याओं का दूसरों के लिए उपदेश करते हैं वह स्तुति विद्या, (**वैराजम्**) विविध अर्थों से प्रकाशमान (**साम**) सामवेद का भाग, (**एकविंशः**) सोलह कला, पुरुषार्थ के चार अवयव और एक कर्त्ता=जीव ये (**स्तोमः**) स्तुति के विषय, (**ऋतु शरद्**) शरद् ऋतु, (**द्रविणम्**) द्रव्य और (**फलम्**) सेवा-फल प्रदान करने वाला शूद्रकुल आपको (**अवतुः**) प्राप्त होवे ॥ १० । १३ ॥

[**हे सभापते ! त्वमुदीचीं दिशमारोह, यतो˙˙˙एक विंशः स्तोमः˙˙˙फलं च त्वाऽवतु**]

भावार्थः—ये जना आलस्यं विहाय सर्वदा पुरुषार्थमेवानुतिष्ठन्ते ते सच्छूद्रान् प्राप्य फलवन्तो जायन्ते ॥ १० । १३ ॥

भावार्थ—जो लोग आलस्य को छोड़कर सदा पुरुषार्थ का ही अनुष्ठान् करते हैं, वे श्रेष्ठ शूद्र-जनों को प्राप्त करके फलवान् होते हैं ॥ १० । १३ ॥

भाष्यसार—**१. राजा आदि क्या प्राप्त करें**—राजा आदि पुरुष स्वयं विद्या को पढ़ कर सब विद्याओं का दूसरे के लिये उपदेश करें, सोलह कला, चार प्रकार का पुरुषार्थ, और एक कर्त्ता जीव इस इक्कीस प्रकार के स्तोम को प्राप्त करें, शरद् ऋतु, नानाविध द्रव्य और सेवाफल प्रदान करने वाले शूद्रकुल को प्राप्त करें ।

जो लोग आलस्य छोड़ कर सदा पुरुषार्थ ही करते हैं, वे सेवक जनों को प्राप्त करके सदा सफल होते हैं ॥

२. सोलह कला— ईक्षण (**विचार**) २. प्राण ३. श्रद्धा ४. आकाश ५. वायु ६. अग्नि ७. जल ८. पृथिवी ९. इन्द्रिय १०. मन ११. अन्न १२. वीर्य (**पराक्रम**) १३. तप (**धर्मानुष्ठान**) १४. मन्त्र (**वेदविद्या**) १५. कर्म (**चेष्टा**) १६. लोक (**आर्याभि० २ । १४**) ॥

३. चार प्रकार का पुरुषार्थ—अप्राप्त को प्राप्त करने की इच्छा । प्राप्त की रक्षा । रक्षित की वृद्धि । अभिवृद्ध का परोपकार में उपयोग ॥ १० । १३ ॥

वरुणः । **छन्दस्मान्तः**=स्पष्टम् । भुरिग्जगती । निषादः ॥

मनुष्यैरुत्कृष्टविद्याऽनेके पदार्था विज्ञातव्या इत्याह ॥

मनुष्यों को चाहिये कि उत्तम विद्या से अनेक पदार्थों को जानें, यह उपदेश किया है ॥

ऊर्ध्वामारोह पङ्क्तिस्त्वावतु शाक्वररैवते सामनी त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशौ स्तोमौ हेमन्तशिशिरावृतू वर्चो द्रविणं प्रत्यस्तं नमुचेः शिरः ॥ १४ ॥

पदार्थः—(ऊर्ध्वाम्) दिशम् (आ) (रोह) (पङ्क्तिः) (त्वा) (अवतु) (शाक्वररैवते) शाक्वरं च रैवतं च ते (सामनी) (त्रिणवत्रयस्त्रिशौ) ये त्रयश्च कालाः नवाङ्कविद्याश्च त्रयश्च त्रिंशच्च वस्वादयः पदार्था व्याख्याता याभ्यान्तयोः पूरणौ तौ (स्तोमौ) स्तुतिविशेषौ (हेमन्तशिशिरौ) (ऋतू) (वर्चः) विद्याध्ययनम् (द्रविणम्) द्रव्यम् (प्रत्यस्तम्) प्रतिक्षिप्तम् (नमुचेः) न मुञ्चति परपदार्थान् दुष्टाचारान् वा यः स्तेनस्तस्य (शिरः) उत्तमांगम् ॥ अयं मन्त्रः शत० ५ । ४ । १ । ७ व्याख्यातः ॥ १४ ॥

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । ४ । १ । ७) में की गई है ॥ १० । १४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे राजन् ! यद्यूर्ध्वां दिशमारोह, तर्हि त्वा पङ्क्तिः शाक्वररैवते शाक्वरं च रैवतं च ते सामनी त्रिणवत्रयस्त्रिशौ ये त्रयश्च कालाः, नवाङ्कविद्याश्च, त्रयश्च त्रिंशच्च वस्वादयः पदार्था व्याख्याता याभ्यान्तयोः पूरणौ तौ स्तोमौ स्तुतिविशेषौ हेमन्तशिशिरावृतू वर्चः विद्याऽध्ययनं द्रविणं द्रव्यं चाऽवतु, नमुचेः न मुञ्चति परपदार्थान् दुष्टाचारान् वा यः स्तेनस्तस्य शिरः उत्तमाऽङ्गं च प्रत्यस्तं प्रतिक्षिप्तं स्यात् ॥ १० । १४ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! आप यदि (ऊर्ध्वाम्) ऊपर की दिशा में (आरोह) आरोहण करें तो (त्वा) आपको (पङ्क्त) पंक्ति छन्द से प्रतिपादित पदार्थ, (शाक्वररैवते) शाक्वर और रैवत नामक (सामनी) सामवेद के भाग, (त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ) तीन काल, नौ अङ्कों की विद्या, तैंतीस वसु आदि पदार्थ (स्तोमौ) जो स्तुति के विषय हैं, (हेमन्तशिशिरावृतू) हेमन्त और शिशिर ऋतु, (वर्चः) विद्या का अध्ययन और (द्रविणम्) द्रव्य (अवतु) प्राप्त होवे। और (नमुचेः) दूसरे के पदार्थों वा दुष्ट आचरणों को न छोड़ने वाले चोर का (शिरः) शिर (प्रत्यस्तम्) कट जावे ॥ १० । १४ ॥

[हे राजन् !···त्वा पङ्क्तिः शाक्वररैवते सामनी···हेमन्तशिशिरावृतू वर्चो द्रविणं चाऽवतु]

भावार्थः—ये मनुष्या अन्वृतु योग्याऽऽहारविहारास्सन्तो विद्यायोगाभ्याससत्सङ्गान् समाचरन्ति, ते सर्वेष्वृतुषु सुखं भुञ्जते ।

भावार्थ—जो मनुष्य ऋतु अनुकूल योग्य आहार विहार करने वाले होकर विद्याभ्यास, योगाभ्यास और सत्सङ्ग करते हैं वे सब ऋतुओं में सुख भोगते हैं।

[नमुचेः शिरश्च प्रत्यस्तं स्यात्]

न चैभ्यः कश्चिच्चौरः पीडां दातुं शक्नोति ॥ १० । १४ ॥

और—इन्हें कोई चोर पीडा नहीं दे सकता ॥ १० । १४ ॥

भा० पदार्थः—वर्चः=विद्यायोगाभ्यासः । नमुचेः=चोरस्य ॥

भाष्यसार—१. **उत्तम विद्या से अनेक पदार्थों को जाने**—मनुष्यों को चाहिये कि वे पंक्ति छन्द से प्रतिपादित पदार्थों को विद्या से जानें। शाक्वर और रैवत नामक सामवेद के भागों का अध्ययन करें। तीन काल, नौ अङ्क, वसु आदि तैंतीस देवताओं को विद्या से जानें। हेमन्त और शिशिर आदि ऋतुओं के अनुकूल योग्य आहार-विहार करके सुखों को भोगें। विद्याभ्यास, योगाभ्यास, और

श्रेष्ठ जनों का सङ्ग करें। विद्या से नाना द्रव्यों को प्राप्त करें। दूसरे के पदार्थों को तथा दुष्ट-आचरणों को न छोड़ने वाले चोरों के शिर का छेदन करें।

२. **तीन काल**—भूत। भविष्यत्। वर्तमान ॥

३. **नौ अङ्क**—१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९ ॥

४. **वसु आदि तैंतीस**—आठ वसु—पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्रमा, सूर्य और नक्षत्र। ग्यारह रुद्र—प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय और जीवात्मा। बारह आदित्य—चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्त्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ, फाल्गुन ये संवत्सर के बारह महीने। एक इन्द्र=विद्युत्। एक प्रजापति=यज्ञ ॥ ८+११+१२+२=३३ देवता ॥ १० । १४ ॥

वरुणः। **परमात्मा**=स्पष्टम्। निचृदार्षी पंक्तिः। पञ्चमः ॥

राजप्रजाजनैरीश्वरवद्वर्त्तित्वा परस्परेषां रक्षणं विधेयमित्याह ॥

राजा और प्रजापुरुषों को उचित है कि ईश्वर के समान वर्ताव करके आपस में एक दूसरे की रक्षा करें, यह उपदेश किया है ॥

सोम॑स्य॒ त्विषि॑रसि॒ तवे॑व मे॒ त्विषि॑र्भूयात्। मृ॒त्योः पा॒ह्योजो॑ऽसि॒ सहो॑ऽस्य॒मृत॑मसि ॥ १५ ॥

पदार्थः—(**सोमस्य**) ऐश्वर्यस्य (**त्विषिः**) दीप्तिः (**असि**) (**तवेव**) (**मे**) (**त्विषिः**) (**भूयात्**) (**मृत्योः**) मरणात् (**पाहि**) (**ओजः**) पराक्रमयुक्तः (**असि**) (**सहः**) बलवान् (**असि**) (**अमृतम्**) मरणधर्मरहितम् (**असि**) ॥ **अयं मन्त्रः शत० ५ । ४ । १ । ११—१४ व्याख्यातः ॥ १५ ॥**

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । ४ । १ । ११-१४) में की गई है ॥ १० । १५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे परमाप्त! **यथा त्वं सोमस्य** ऐश्वर्य्यस्य **त्विषिः** दीप्तिः **असि, ओजः** पराक्रमयुक्तः **असि, सहः** बलवान् **असि, अमृतं** मरणधर्मरहितम् **असि, तथाऽहं भवेयम्, तवेव मे त्विषिरोजः सहोऽमृतं च भूयात्।**

त्वं मृत्योः मरणाद् **मां पाहि** ॥ १० । १५ ॥

भाषार्थ—हे परम आप्त ईश्वर! जैसे आप (**सोमस्य**) ऐश्वर्य के (**त्विषिः**) दीपक (**असि**) हो, (**ओजः**) अनन्त पराक्रम से युक्त (**असि**) हो, (**सहः**) अनन्त बलवान् (**असि**) हो, (**अमृतम्**) मरण धर्म से रहित (**असि**) हो; वैसा मैं भी हो होऊँ अर्थात् (**तव+इव**) आपके समान मेरा (**त्विषिः**) तेज, (**ओजः**) पराक्रम, (**सहः**) बल और (**अमृतम्**) मृत्यु से निर्भयता (**भूयात्**) होवे।

आप (**मृत्योः**) मृत्यु से (**माम्**) मेरी (**पाहि**) रक्षा कीजिये ॥ १० । १५ ॥

[**हे परमाप्त! यथा त्वं सोमस्य त्विषिरसि**···**तथाऽहं भवेयम्,**···**त्वं मृत्योर्मां पाहि**]

भावार्थः—हे पुरुषाः! यथाऽऽप्ताः स्वेष्टं [**इच्छन्ति तथा**] प्रजाभ्योऽपीच्छेयुः, यथा प्रजा राजपुरुषान् रक्षेयुस्तथा राजपुरुषा प्रजाजनान् सततं

भावार्थ—हे पुरुषो! जैसे आप राजा लोग अपने प्रति प्रियाचरण चाहते हैं, वैसे प्रजा के लिये भी चाहें, और जैसे प्रजा राजपुरुषों की रक्षा करती

रक्षन्तु ॥ १० । १५ ॥

है, वैसे राजपुरुष प्रजाजनों की सदा रक्षा करें ॥ १० । १५ ॥

भाष्यसार—राजा और प्रजा का वर्ताव—परम आप्त जगदीश्वर जैसे ऐश्वर्य का प्रकाशक है, अनन्त पराक्रम से युक्त है, अनन्त बलवान् है, अमृत अर्थात् मरणधर्म से रहित है वैसे राजा और प्रजाजनों को उचित है कि वे भी ऐश्वर्य के प्रकाशक, पराक्रमी, बलवान् और मृत्यु से निर्भय होवें।

जैसे आप्त राजा लोग प्रजा से अपने प्रति प्रिय व्यवहार चाहते हैं, वैसे प्रजा के प्रति प्रिय व्यवहार करें। राजा और प्रजा परस्पर मृत्यु आदि दुःखों से रक्षा किया करें ॥ १० । १५ ॥

वरुणः। **मित्रावरुणौ=उपदेशक-सेनापती** ॥ स्वराडार्षी जगती। निषादः ॥

अथ विद्वद्भिर्निष्कपटतयाऽज्ञाः सत्यमुपदिश्य विद्वांसो मेधाविनः संपादनीया इत्याह ॥

अथ विद्वानों को चाहिये कि वे निष्कपट होकर और अज्ञानी पुरुषों के लिये सत्य का उपदेश करके उनको मेधावी विद्वान् बनावें, यह उपदेश किया है ॥

हिर॑ण्यरूपाऽउ॒षसो॒ विरो॒कऽउ॒भावि॑न्द्रा॒ऽउदि॒॑थः सूर्य॑श्च
आरो॑हतं वरुण मित्र॒ गर्त्त॒ तत॑श्चक्षाथा॒मदि॑तिं॒ दितिं॑ च मि॒त्रोऽसि॒ वरु॑णोऽसि ॥ १६ ॥

पदार्थः—(**हिरण्यरूपौ**) ज्योतिःस्वरूपौ (**उषसः**) प्रभातान् (**विरोके**) विविधतया रुचिकरे व्यवहारे (**उभौ**) (**इन्द्रौ**) परमैश्वर्य्यकारकौ (**उत्**) (**इथः**) प्राप्नुथः (**सूर्य्यः**)(**च**) चन्द्र इव (**आ**) (**रोहतम्**) (**वरुण**) शत्रुच्छेदक उत्कृष्टसेनापते (**मित्र**) सर्वस्य सुहृत् (**गर्तम्**) उपदेशकगृहम्। **गर्त्त इति गृहनामसु० ॥ निघं० ३ । ४ ॥** (**ततः**) तदनन्तरम् (**चक्षाथाम्**) उपदिशेताम् (**अदितिम्**) अविनाशिनं पदार्थम् (**दितिम्**) नाशवन्तम् (**च**) (**मित्रः**) सुखप्रदः (**असि**) (**वरुणः**) सर्वोत्तमः (**असि**) ॥ **अयं मन्त्रः शत० ५ । ४ । १ । १५–१७ व्याख्यातः ॥ १६ ॥**

प्रमाणार्थ—(**गर्त्तम्**) यह शब्द निघं० (३ । ४) में गृह-नामों में पढ़ा है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । ४ । १ । १५–१७) में की गई है ॥ १० । १६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **उपदेशक मित्र** सर्वस्य सुहृत्! **यतस्त्वं मित्रः** सुखप्रदः **असि, हे वरुण** शत्रुच्छेदक उत्कृष्ट सेनापते! **यतस्त्वं वरुणः** सर्वोत्तमः **असि, ततः** तदनन्तरं **तौ युवां गर्त्तम्** उपदेशक-गृहम् **आरोहतम्, अदितिम्** अविनाशिनं पदार्थं **दितिं** नाशवन्तं **च चक्षाथाम्**।

हे **हिरण्यरूपौ** ज्योतिःस्वरूपौ **उभाविन्द्रौ!** परमैश्वर्यकारकौ! **यथा विरोके** विविधतया रुचिकरे व्यवहारे **सूर्यश्चन्द्रश्च** चन्द्र इव **उषसः** प्रभातान् **विभातः, तथा युवामुदिथः** प्राप्नुथः, **विद्याः प्रभातम्** ॥ १० । १६ ॥

भाषार्थ—हे (**मित्र!**) सबके मित्र उपदेशक! आप (**मित्रः**) सुखदायक (**असि**) हो, हे (**वरुण**) शत्रुओं का उच्छेद करने वाले श्रेष्ठ सेनापते! आप (**वरुणः**) सब से उत्तम (**असि**) हो, (**ततः**) इसलिये, तुम दोनों (**गर्त्तम्**) उपदेशक के घर (**आरोहतम्**) जाओ, (**अदितिम्**) अविनाशी और (**दितिम्**) नाशवान् पदार्थों का (**चक्षाथाम्**) उपदेश करो।

हे (**हिरण्यरूपौ**) ज्योतिःस्वरूप (**इन्द्रौ**) परम ऐश्वर्य के उत्पादक उपदेशक और सेनापते! जैसे (**विरोके**) विविध रुचिकर व्यवहार में (**सूर्यः**) सूर्य और (**चन्द्रः**) चन्द्रमा जैसे (**उषसः**) ज्योतियों को प्रकाशित करते हैं, वैसे तुम दोनों (**उदिथः**) उदय

को प्राप्त होवो और विद्याओं को प्रकाशित करो ॥ १० । १६ ॥

[हे हिरण्यरूपावुभाविन्द्रौ ! यथा……सूर्यश्चन्द्रश्चोषसो विभातस्तथा युवामुदियो विद्याः प्रभातम्]

भावार्थः—यत्र देशे सूर्य्यचन्द्रवदुपदेशका व्याख्यानैः सर्वा विद्याः प्रकाशयन्ति, तत्र सत्याऽसत्यपदार्थबोधेन सहितत्वात् कश्चिदप्यविद्यया न विमुह्यति, यत्रेदं न भवति तत्रान्धपरम्पराग्रस्ता जनाः प्रत्यहमवनतिं प्राप्नुवन्ति ॥ १० । १६ ॥

भावार्थ—जिस देश में सूर्य और चन्द्रमा के समान उपदेशक लोग व्याख्यानों से सब विद्याओं को प्रकाशित करते हैं, वहाँ सत्य और असत्य पदार्थों के बोध से युक्त होने से कोई भी अविद्या से मोहित नहीं होता, और जहाँ यह नहीं है, वहाँ अन्ध-परम्परा में ग्रस्त लोग प्रतिदिन अवनति को प्राप्त होते हैं ॥ १० । १६ ॥

भाष्यसार—**विद्वान् निष्कपटता से उपदेश करें**—विद्वान् उपदेशक सबके मित्र हैं, सबको सुख देने वाले हैं। शत्रुओं का उच्छेद करने वाला सेनापति सर्वोत्तम पुरुष है। विद्वान् उपदेशक तथा सेनापति दोनों मिलकर उपदेशक के घर जावें। वहाँ दोनों मिलकर अविनाशी और नाशवान् अर्थात् नित्य और अनित्य पदार्थों के विषय में वार्तालाप करें। इस प्रकार ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों मिलकर नित्य=ईश्वर जीव, प्रकृति तथा अनित्य भौतिक जगत् के पदार्थों की विद्या को ग्रहण करें।

विद्वान् उपदेशक (**ब्राह्मण**) और सेनापति (**क्षत्रिय**) दोनों विद्या की ज्योति से प्रकाशित हैं, ज्योतिस्वरूप हैं, परम ऐश्वर्य के उत्पादक हैं। जैसे सूर्य और चन्द्र ज्योति को प्रकाशित करते हैं वैसे जिस देश में विद्वान् उपदेशक अपने व्याख्यानों से विद्याओं को प्रकाशित करते हैं, वहाँ सत्य और असत्य का बोध हो जाने से कोई भी मनुष्य अविद्या से मोहित नहीं होता। और जहाँ विद्वान् उपदेशक नहीं होते वहाँ अन्ध परम्परा में ग्रस्त होकर लोग प्रतिदिन अवनति को ही प्राप्त होते हैं ॥

अतः विद्वानों का कर्त्तव्य है कि वे निष्कपट भाव से अज्ञानी लोगों को सत्य का उपदेश करके उन्हें मेधावी विद्वान् बनावें ॥ १० । १६ ॥

वरुणः । **क्षत्रपतिः=राजा** । आर्षीपंक्तिः । पञ्चमः ॥

एतत्प्रवृत्तये कीदृशो राजाभिषेचनीय इत्याह ॥

पूर्वोक्त कार्य्यों की प्रवृत्ति के लिये कैसे पुरुष को राजा बनावें, यह उपदेश किया है ॥

सोम॑स्य त्वा द्यु॒म्नेना॒भिषि॑ञ्चाम्य॒ग्नेर्भ्राज॑सा॒ सूर्य॑स्य॒ वर्च॒सेन्द्र॑स्येन्द्रि॒येण॑ । क्ष॒त्राणां॑ क्ष॒त्रप॑तिरे॒ध्यति॑ दि॒द्यून् पा॑हि ॥ १७ ॥

पदार्थः—(**सोमस्य**) चन्द्रस्येव (**त्वा**) (**द्युम्नेन**) यशःप्रकाशेन (**अभि**) आभिमुख्ये (**सिंचामि**) अधिकरोमि (**अग्नेः**) अग्नितुल्येन (**भ्राजसा**) तेजसा (**सूर्य्यस्य**) सवितुरिव (**वर्चसा**) अध्ययनेन (**इन्द्रस्य**) विद्युत इव (**इन्द्रियेण**) मनआदिना (**क्षत्राणाम्**) क्षत्रकुलोद्भवानाम् (**क्षत्रपतिः**) (**एधि**) भव (**असि**) (**दिद्यून्**) विद्याधर्मप्रकाशकान् व्यवहारान् (**पाहि**) सततं रक्ष ॥ अयं मन्त्रः शतः ५ । ४ । २ । २ व्याख्यातः ॥ १० । १७ ॥

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । ४ । २ । २) में की गई है ॥ १० । १७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे प्रशस्तगुणकर्म-स्वभावयुक्त राजन् ! **यथाऽहं यं त्वां सोमस्य** चन्द्रस्य **इव द्युम्नेनः** यशःप्रकाशेन **अग्नेः** अग्नितुल्येन **इव भ्राजसा** तेजसा **सूर्य्यस्य** सवितुः **इव वर्चसा** अध्ययनेन **इन्द्रस्य** विद्युत **इव इन्द्रियेण** मन आदिना **त्वाऽभिषिञ्चामि** आभिमुख्येनाऽधिकरोमि, **तथा स त्वं क्षत्राणां** क्षत्रकुलोद्गतानां **क्षत्रपतिरत्येधि** भव, **दिद्यून्** विद्याधर्मप्रकाशकान् व्यवहारान् **पाहि** सततं रक्ष ॥ १० । १७ ॥

भाषार्थ—हे उत्तम गुण, कर्म, स्वभाव से युक्त राजन् ! जैसे मैं—(**सोमस्य**) चन्द्रमा के समान (**द्युम्नेन**) यश के प्रकाश से, (**अग्नेः**) अग्नि के समान (**भ्राजसा**) तेज से, (**सूर्यस्य**) सूर्य के समान (**वर्चसा**) विद्या-प्रकाश से, (**इन्द्रस्य**) विद्युत् के समान (**इन्द्रियेण**) मन आदि से (**त्वा**) आपको (**अभिषिञ्चामि**) अभिषेकपूर्वक राज्याधिकार देता हूँ=राजा बनाता हूँ, वैसे आप (**क्षत्राणाम्**) क्षत्रियों के (**क्षत्रपतिः**) क्षत्रपति (**अति+एधि**) बनो, और (**दिद्यून्**) विद्या और धर्म के प्रकाशक व्यवहारों की (**पाहि**) रक्षा कीजिये ॥ १० । १७ ॥

[हे प्रशस्तगुण कर्मस्वभावयुक्त राजन् !···सोमस्येव द्युम्नेन···त्वाऽभिषिञ्चामि]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ मनुष्या—यः सोमादिगुणयुक्तो विद्वान् जितेन्द्रियो-जनो भवेत तं राजत्वे स्वीकुर्वन्तु ।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा-अलङ्कार है ॥ सब मनुष्य—जो चन्द्रमा आदि के गुणों से युक्त, विद्वान्, जितेन्द्रिय पुरुष हो, उसे राजा स्वीकार करें ।

[स त्वं क्षत्राणां क्षत्रपतिरत्येधि, दिद्यून् पाहि]

स च राज्यं प्राप्यातिप्रवृद्धः सन् विद्याधर्म-प्रकाशकान् राजा-प्रजाजनान् सततमतिवर्द्धयेत् ॥ १० । १७ ॥

और वह—राज्य को प्राप्त करके बड़ा क्षत्रपति होकर विद्या और धर्म के प्रकाशक राजपुरुषों और प्रजाजनों को सदा बढ़ावे ॥ १० । १७ ॥

भाष्यसार—**१. कैसे राजा का अभिषेक करें**—पूर्व मन्त्र में बतलाया गया है कि विद्वान् लोग निष्कपट भाव से उपदेश करके अज्ञानी लोगों को मेधावी विद्वान् बनावें। इस कार्य की सिद्धि के लिये राजा का सहयोग परम आवश्यक है। इस मन्त्र में बतलाया है कि उक्त कार्य की सिद्धि के लिये ऐसे पुरुष का राजा बनाने के लिये अभिषेक करें जो प्रशस्त गुण, कर्म, स्वभाव से युक्त हो। जो चन्द्रमा के समान यश के प्रकाश से, अग्नि के समान तेज से, सूर्य के समान विद्या के प्रकाश से, विद्युत् के समान मन आदि इन्द्रियों से विभूषित हो, अर्थात् जो विद्वान् और जितेन्द्रिय हो।

अभिषेक के उपरान्त क्षत्रियों के क्षत्रपतिराजा का कर्त्तव्य है कि वह स्वयं प्रवृद्ध बने, विद्या और जितेन्द्रियता आदि धर्मों का प्रकाश करने वाले राजपुरुषों और प्रजाजनों को सदा बढ़ाया करें॥

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि लुप्त है, अतः वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि राजा चन्द्र के समान यशस्वी, अग्नि के समान तेजस्वी, सूर्य के समान विद्या से प्रकाशमान और विद्युत् के समान मन आदि इन्द्रियों का विजेता हो ॥ १० । १७ ॥

देववातः । **यजमानः=उपदेशकः** । स्वराट् ब्राह्मी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

सत्योपदेशकैर्विद्वद्भिर्बाल्याऽवस्थामारभ्य सुशिक्षया सर्वे राजकन्याकुमाराः श्रेष्ठाचाराः संपादनीया इत्याह ॥

सत्य के उपदेशक विद्वानों को चाहिये कि बाल्यावस्था से लेके अच्छी शिक्षा से राजाओं की कन्या और पुत्रों को श्रेष्ठ आचार से युक्त करें, यह उपदेश किया है ॥

इमं देवाऽअसपत्नꣳसुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय।
इममुमुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विशऽएष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानाꣳ राजा ॥ १८ ॥

पदार्थः—(इमम्) (देवाः) वेदशास्त्रविदः सेनापतयः (**असपत्नम्**) अजातशत्रुम् (**सुवध्वम्**) प्रेर्ध्वम् (महते) सत्कर्त्तव्याय (**क्षत्राय**) क्षत्रियकुलाय (**महते**) (**ज्यैष्ठ्याय**) विद्याधर्मवृद्धानां भावाय (**महते**) (**जानराज्याय**) जनानां राज्ञां माण्डलिकानामुपरि प्रभवाय (**इन्द्रस्य**) ऐश्वर्य्ययुक्तस्य धनिकस्य (**इन्द्रियाय**) धनवर्धनाय (**इमम्**) (**अमुष्य**) सद्गुणसम्पन्नस्य राजपूतस्य (**पुत्रम्**) तनयम् (**अमुष्यै**) प्रशंसनीयाया राजपुत्र्याः । अत्र षष्ठ्यर्थे चतुर्थी (**पुत्रम्**) पवित्रगुणकर्मस्वभावैर्मातापितृपालकम् (**अस्यै**) वर्त्तमानायाः सुशिक्षितव्यायाः (**विशे**) प्रजायाः (**एषः**) (**वः**) युष्माकं पालनाय (**अमी**) धार्मिका राजपुरुषाः (**राजा**) सर्वत्रविद्याधर्मसुशिक्षाप्रकाशकः (**सोमः**) शुभगुणः प्रसिद्धः (**अस्माकम्**) (**ब्राह्मणानाम्**) ब्रह्मवेदभक्तानाम् (**राजा**) वेदेश्वरोपासनया प्रकाशमानः ॥ अयं मन्त्रः शत० ५ । ३ । ३ । १२ तथा ५ । ४ । २ । ३ व्याख्यातः ॥ १८ ॥

प्रमाणार्थ—(**अमुष्यै**) यहाँ षष्ठी अर्थ में चतुर्थी-विभक्ति है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । ३ । ३ । १२ तथा ५ । ४ । २ । ३) में की गई है ॥ १० । १८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे देवाः वेदशास्त्रविदः सेनापतयः ! **यूयं—य एषः=उपदेशकः सेनेशो वा वः** युष्माकं पालनाय **अस्माकं च ब्राह्मणानां** ब्रह्मवेद-भक्तानां **राजा** सर्वत्र विद्याधर्म-सुशिक्षा-प्रकाशकः **अस्ति, येऽमी=राजपुरुषा** धार्मिका राजपुरुषाः **सन्ति, तेषां सोमः** शुभगुणः प्रसिद्धः **राजा** वेदेश्वरोपासनया प्रकाशमानः **अस्ति, तमिमममुष्य** सद्गुणसम्पन्नस्य राजपूतस्य **पुत्रं** तनयम्, **अमुष्यै** प्रशंसनीयाया राजपुत्र्याः **पुत्रं** पवित्रगुणकर्मस्वभावैर्मातापितृपालकम्, **अस्यै** वर्त्तमानायाः सुशिक्षितव्यायाः **विशे** प्राजायाः, **महते** सत्कर्त्तव्याय **क्षत्राय** क्षत्रियकुलाय, **महते** सत्कर्त्तव्याय **ज्येष्ठ्याय** विद्याधर्मवृद्धानां भावाय, **महते** सत्कर्त्तव्याय **जानराज्याय** जनानां राज्ञां माण्डलिकानामुपरि प्रभवाय, **इन्द्रस्य** ऐश्वर्य्ययुक्तस्य धनिकस्य **इन्द्रियाय** धनवर्धनाय, **असपत्नम्** अजातशत्रुं **सुवध्वं** प्रेर्ध्वम् ॥ १० । १८ ॥

भाषार्थ—हे (**देवाः**) वेदशास्त्रों के वेत्ता सेनापति लोगो ! तुम—जो (**एषः**) यह उपदेशक वा सेनापति (**वः**) आपके पालन के लिये है और (**अस्माकम्**) हम (**ब्राह्मणानाम्**) ब्रह्म और वेद के भक्त लोगों के लिये (**राजा**) सर्वत्र विद्या, धर्म और सुशिक्षा का प्रकाशक है; और जो (**अमी**) वे धार्मिक राजपुरुष हैं, उनका (**सोमः**) शुभ गुणों वाला (**राजा**) वेद और ईश्वरोपासना से प्रकाशमान राजा है । सो इस (**अमुष्य**) श्रेष्ठ गुणों से सम्पन्न राजपूत के (**पुत्रम्**) पुत्रों को तथा (**अमुष्यै**) प्रशंसनीय राजपुत्री के (**पुत्रम्**) अपने पवित्र गुण, कर्म, स्वभाव से माता पिता के पालक पुत्र को; (**अस्यै**) इस सुशिक्षा के करने योग्य (**विशे**) प्रजा के (**महते**) सत्कार के योग्य (**क्षत्राय**) क्षत्रिय कुल के लिये, (**महते**) सत्कार के योग्य (**ज्यैष्ठ्याय**) विद्यावृद्ध और धर्मवृद्ध जनों के लिये, (**महते**) सत्कार के योग्य (**जानराज्याय**) माण्डलिक राजा जनों के ऊपर प्रभावी होने के लिये, (**इन्द्रस्य**) ऐश्वर्य से युक्त धनवान् के (**इन्द्रियाय**) धन की वृद्धि के लिये (**असपत्नम्**) अजातशत्रु राजा को (**सुवध्वम्**) प्रेरित करो ॥ १० । १८ ॥

[हे देवाः ! यूयं य एषः=उपदेशकः सेनेशो वा वो ऽस्माकं च ब्राह्मणानां राजाऽस्ति···
तमिमममुष्यपुत्रं···असपत्नं सुवध्वम्]

भावार्थः—यद्युपदेशका राजपुरुषाश्च सर्वस्योन्नतिं चिकीर्षेयुस्तर्हि प्रजाराजजना राजपुरुषोन्नतिं कुतो न कर्त्तुमिच्छेयुः।

यदि राजप्रजाजना वेदेश्वराज्ञां विहाय स्वेच्छया प्रवर्तेरन् तर्ह्येषामनुन्नतिः कुतो न भवेत् ॥ १० । १८ ॥

भावार्थ—यदि उपदेशक और राजपुरुष सबकी उन्नति करना चाहें तो प्रजा और राजा लोग राजपुरुषों की उन्नति करना क्यों न चाहें।

यदि राजा और प्रजा जन वेद रूप ईश्वर की आज्ञा को छोड़कर स्वेच्छा से चलें तो उनकी अवनति क्यों न हो ॥ १० । १८ ॥

भाष्यसार—**विद्वानों की राजकुमारों को शिक्षा**—वेदशास्त्रों के वेत्ता सेनापति राजा क्षत्रियों तथा ब्रह्म और वेद के भक्त ब्राह्मण जनों का पालक होकर सर्वत्र विद्या, धर्म और सुशिक्षा से प्रकाशित करने वाला होता है। और जो धार्मिक राजपुरुष हैं उन्हें अपने वेद और ईश्वरोपासना आदि शुभ गुणों से प्रकाशित करता है।

सत्य का उपदेश करने वाले विद्वानों का कर्त्तव्य है कि वे उक्त शुभ गुणों से प्रकाशमान राजा के कुमार और कुमारियों को उत्तम शिक्षा करें कि तुम श्रेष्ठ आचरण वाले बनो। पवित्र गुण, कर्म, स्वभाव से युक्त होकर माता-पिता के पालक बनो। प्रजा को सुशिक्षा प्रदान करो। महान् क्षत्रिय कुल के रक्षक बनो। सत्कार के योग्य विद्यावृद्ध और धर्मवृद्ध जनों के पालक बनो। राजा होकर माण्डलिक राजा जनों के ऊपर अपना प्रभाव रखो। ऐश्वर्यसम्पन्न धनवानों की धन की वृद्धि करो। इन सब कार्यों की सिद्धि के लिये तुम अजातशत्रु बनो।

इस प्रकार विद्वान् उपदेशक तथा सेनापति आदि राजपुरुष सब की उन्नति की कामना करें। प्रजा और राजा भी राजपुरुषों की सदा उन्नति चाहें। वे इस वेदाज्ञा एवं ईश्वराज्ञा को छोड़कर स्वेच्छा से चलेंगे तो उनकी अवनति ही होगी ॥ १० । १८ ॥

देववातः । **यज्ञमानः**=**राजशिल्पी** ॥ विराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनरत्र राजप्रजाजनैः कीदृशानि यानानि रचनीयानीत्याह ॥

फिर इस जगत् में राजा और प्रजाजनों को किस प्रकार के यान बनाने चाहियें, यह उपदेश किया है ॥

प्र पर्वतस्य वृषभस्य पृष्ठान्नावश्चरन्ति स्वसिचऽइयानाः
ताऽआववृत्रन्नधरागुदक्ताऽअहिं बुध्न्यमनु रीयमाणाः
विष्णोर्विक्रमणमसि विष्णोर्विक्रान्तमसि विष्णोः क्रान्तमसि ॥ १९ ॥

पदार्थः—(**प्र**) (**पर्वतस्य**) मेघस्य। **पर्वत इति मेघना० ॥ निघं० १ । १० ॥** (**वृषभस्य**) वर्षकस्य (**पृष्ठात्**) उपरिभागात् (**नावः**) सागरोपरि नाव इव विमानानि (**चरन्ति**) (**स्वसिचः**) याः स्वैर्जलैर्जलेन सिच्यन्ते ताः (**इयानाः**) गन्त्र्यः (**ताः**) (**आ**) (**अववृत्रन्**) अर्वाचीनो वृत्रइवाचरन्। **अत्राचारे सुबन्तात्क्विप्** (**अधराक्**) मेघादधस्तात् (**उदक्ताः**) पुनरूर्ध्वं गच्छन्त्यः (**अहिम्**) मेघम् (**बुध्न्यम्**) बुध्नेऽन्तरिक्षे भवम् (**अनु**) पश्चात् (**रीयमाणाः**) चालनेन गच्छन्त्यः (**विष्णोः**) व्यापकस्येश्वरस्य (**विक्रमणम्**) विक्रमतेऽस्मिंस्तत् (**असि**) (**विष्णोः**) व्यापकस्य वायोः (**विक्रान्तम्**) विविधतया क्रान्तम् (**असि**) (**विष्णोः**) व्यापकस्य विद्युद्वस्तुनः (**क्रान्तम्**) क्रमाधिकरणम् (**असि**) ॥ **अयं मन्त्रः शत० ५ । ४ । २ । ५-६ व्याख्यातः ॥ १९ ॥**

प्रमाणार्थ—(**पर्वतस्य**) 'पर्वत' शब्द निघं० (१।१०) में मेघ-नामों में पढ़ा है। (**अववृगेन्**) यहाँ सुबन्त से आचार-अर्थ में 'क्विप्' प्रत्यय है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५।४।२।५-६) में की गई है ॥ १० । १९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **राजशिल्पिन्**! **यदि त्वया याः स्वसिचः** याः स्वैर्जनैर्जलेन सिच्यन्ते ताः **इयानाः** गन्त्र्यः **उदक्ताः** पुनरूर्ध्वं गच्छन्त्यः **अहिं** मेघं **बुध्न्यं** बुध्ने=ऽन्तरिक्षे भवम् **अनु** पश्चाद् **रीयमाणाः** चालनेन गच्छन्त्यः **नावः** सागरोपरि नाव इव विमानानि **वृषभस्य** वर्षकस्य **प्रपर्वतस्य** मेघस्य **पृष्ठात्** उपरिभागात् **प्रचरन्ति**।

भाषार्थ—हे राजा के शिल्पी! यदि तुझ से बनाई गई जो (**स्वसिचः**) अपने सेवक जनों से जल से सींची हुई, (**इयानाः**) गति करने वाली, (**उदक्ताः**) बार बार ऊपर जाने वाली, (**अहिं बुध्न्यम्**) अन्तरिक्ष में विद्यमान मेघ के (**अनु**) पीछे (**रीयमाणाः**) चलाने से गति करती हुई (**नावः**) सागर के ऊपर चलने वाली नौकाओं के समान जो विमान हैं वे (**वृषभस्य**) वर्षा करने वाले (**प्रपर्वतस्य**) मेघ के (**पृष्ठात्**) ऊपर (**प्रचरन्ति**) विचरण करते हैं।

याभिस्त्वं विष्णोः व्यापकस्येश्वरस्य **विक्रान्तं** विविधतया क्रान्तम् **असि, विष्णोः** व्यापकस्य वायोः **विक्रमणं** विक्रमतेऽस्मिंस्तद् **असि, विष्णोः** व्यापकस्य विद्युद्रूस्तुनः **क्रान्तं** क्रमाऽधिकरणम् **असि, या अधराक्** मेघादधस्ताद् **आववृत्रन्** अर्वाचीनो वृत्र इवाऽऽचरन् **तास्त्वं साध्नुहि** ॥ १० । १९ ॥

जिन नौकाओं से तू (**विष्णोः**) व्यापक ईश्वर के समान (**विक्रान्तम्**) विविध गति वाला (**असि**) है, (**विष्णोः**) व्यापक वायु के समान (**विक्रमणम्**) विशेष गति वाला (**असि**) है, (**विष्णोः**) व्यापक विद्युत् के समान (**क्रान्तम्**) गति का आधार (**असि**) है। जो नौकायें (**अधराक्**) नीचे (**आववृत्रन्**) मेघ के समान विचरण करती हैं उन्हें तू सिद्ध कर ॥ १० । १९ ॥

[**हे राजशिल्पिन्**!······**याः स्वसिच इयाना उदक्ता अहिं बुध्न्यमनु रीयमाणा नावो वृषभस्य प्रपर्वतस्य पृष्ठात् प्रचरन्ति**······**या अधरागाववृत्रंस्तास्त्वं साध्नुहि**]

भावार्थः—यथा मेघो वर्षित्वा भूमितलं प्राप्याकाशमाप्नोति, तज्जलं नदीर्गत्वाऽन्ततः समुद्रं प्राप्नोति, तत्पृष्ठे नावो गच्छन्ति।

भावार्थ—जैसे मेघ वर्षा करके भूतल को प्राप्त होकर, आकाश को प्राप्त होता है, वह जल नदियों में जाकर अन्त में समुद्र में पहुँचता है, उसकी पीठ पर नौकायें चलती हैं।

या अप्स्वन्तरर्थाद् यासामुपर्यधो जलं भवति, तद्वत्सर्वैः शिल्पिभिर्विमानानि नावश्च यानानि रचयित्वा भूमिजलाऽन्तरिक्षमार्गेणाभीष्टे देशे गमनागमने यथेष्टे कार्य्ये।

जिन नौकाओं के ऊपर और नीचे के भाग में जल रहता है वैसे सब शिल्पी लोग विमान, और नौका रूप यान बना कर स्थल, जल और आकाश के मार्ग से अभीष्ट देश में यथेच्छ यातायात करें।

यावदेतानि न साध्नुवन्ति तावद् द्वीपद्वीपान्तरं गन्तुं कश्चिदपि न शक्नोति।

जब तक यानों को सिद्ध नहीं करते तब तक द्वीपद्वीपान्तर में कोई नहीं जा सकता।

यथा पक्षिण इदं शरीरमयं संघातं गमयन्ति तथैव विचक्षणैः शिल्पिभिरेतदाकाशं यानैर्विक्रमणीयम् ॥ १० । १९ ॥

जैसे पक्षी इस शरीरमय संघात को लेकर आकाश में उड़ते हैं वैसे चतुर शिल्पी लोग इस आकाश में यानों से गति करें ॥ १० । १९ ॥

भाष्यसार—राजा और प्रजा कैसे यान बनावें—राजा और शिल्पी प्रजा जनों को उचित है कि वे जल से सिक्त अर्थात् जल में चलने वाले नौका आदि यानों की रचना करें। जो नौकायें अन्तरिक्ष में विद्यमान मेघ के पीछे संचालन से चलती हैं। जो वर्षा करने वाले मेघ की पीठ पर विचरण करती हैं, इसका अभिप्राय यह है कि मेघ वर्षा करता है, वह जल नदियों में जाता है और अन्त में समुद्र में पहुँच जाता है। समुद्र की पीठ पर जो नौकायें चलती हैं वे वास्तव में मेघ की पीठ पर ही चल रही हैं। क्योंकि वह जल मेघों का ही है।

शिल्पी जन आकाश में गति करने वाले विमानों की भी रचना करें। स्थल-यानों को भी सिद्ध करें। जो यान व्यापक ईश्वर, व्यापक वायु और व्यापक विद्युत् के समान पथ को व्याप्त करने वाले हों। जिनसे स्थल, जल और आकाश के मार्ग से अभीष्ट देश में यथेच्छ यातायात करें।

जैसे पक्षी अपने शरीर को लेकर आकाश में उड़ जाते हैं वैसे चतुर शिल्पी लोग यानों के द्वारा आकाश में गमन करें।

राजा और प्रजा जन जब तक यानों को सिद्ध नहीं करते तब तक द्वीपद्वीपान्तर में कदापि नहीं जा सकते, अतः नौका और विमान आदि यानों को सिद्ध करें ॥ १० । १९ ॥

देववातः। **प्रजापतिः**=**जगदीश्वर**। स्वराडतिधृतिः। षड्जः ॥

मनुष्यैरीश्वरोपासनाऽऽज्ञापालनेन सर्वाः कामनाः प्राप्तव्या इत्याह ॥

मनुष्यों को चाहिये कि ईश्वर की उपासना और उसकी आज्ञा पालने से सब कामनाओं को प्राप्त करें, यह उपदेश किया है ॥

प्रजा॑पते॒ न त्वदे॒तान्य॒न्यो विश्वा॑ रू॒पाणि॒ परि॒ ता ब॑भूव। यत्का॑मास्ते जुहु॒मस्तन्नो॑ ऽ अस्त्व॒यम॒मुष्य॑ पि॒ताऽसाव॒स्य पि॒ता व॒यꣳ स्या॑म॒ पत॑यो र॒यी॒णाꣳ स्वाहा॑। रुद्र॒ यत्ते॒ क्रिवि॒ पर॒ं नाम॒ तस्मि॑न् हु॒तम॑स्यमे॒ष्टम॑सि॒ स्वाहा॑ ॥ २० ॥

पदार्थः—(**प्रजापते**) प्रजायाः स्वामिन्नीश्वर ! (**न**) निषेधे (**त्वत्**) तव सकाशात् (**एतानि**) जीवप्रकृत्यादीनि वस्तूनि (**अन्यः**) भिन्नः पदार्थः (**विश्वा**) सर्वाणि (**रूपाणि**) इच्छारूपादिगुणविशिष्टानि (**परि**) (**ता**) तानि (**बभूव**) अस्ति (**यत्कामाः**) यस्य यस्य कामः=कामना येषान्ते (**ते**) तव (**जुहुमः**) गृह्णीमः (**तत्**) (**नः**) अस्मभ्यम् (**अस्तु**) भवतु (**अयम्**) (**अमुष्य**) प्रत्यक्षस्य जनस्य (**पिता**) पालकः (**असौ**) सः (**अस्य**) प्रत्यक्षवर्त्तमानस्य (**पिता**) रक्षकः (**वयम्**) (**स्याम**) भवेम (**पतयः**) स्वामिनः पालकाः (**रयीणाम्**) विद्याचक्रवर्त्तिराज्योत्पन्नश्रियाम् (**स्वाहा**) सत्यया क्रियया (**रुद्र**) दुष्टानां रोदयितः (**यत्**) (**ते**) तव (**क्रिवि**) कृणोति=हिनस्ति येन तत्। **नकारस्थाने वर्णव्यत्ययेनेकारः** (**परम्**) प्रकृष्टम् (**नाम**) (**तस्मिन्**) (**हुतम्**) (**असि**) (**अमेष्टम्**) अमायां=गृहे इष्टम् (**असि**) (**स्वाहा**) सत्यया वाचा ॥ **अयं मन्त्रः शत० ५।४।२।८-१० व्याख्यातः ॥ २० ॥**

प्रमाणार्थ—(**क्रिवि**) यहाँ वर्ण-व्यत्यय से नकार के स्थान में इकार है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५।४।२।८-१०) में की गई है ॥ १०। २० ॥

सपदार्थान्वयः—हे **प्रजापते** ! प्रजायाः स्वामिन्नीश्वर ! **यान्येतानि** जीवप्रकृत्यादीनि वस्तूनि **विश्वा** सर्वाणि **रूपाणि** इच्छा-

भाषार्थ—हे (**प्रजापते**) प्रजा के स्वामी ईश्वर ! जो (**एतानि**) ये जीव, प्रकृति आदि (**विश्वा**) सब (**रूपाणि**) इच्छा, रूप आदि गुणों

रूपादि-गुणविशिष्टानि **सन्ति, [ता]**=तानि **त्वत्** तव सकाशाद् **अन्यः** भिन्नः पदार्थः **न परिबभूव** अस्ति ।

ते=तव सकाशाद् **यत्कामाः** यस्य यस्य कामः= कामना येषान्ते **सन्तो वयं जुहुमः** गृह्णीमः, तत्तव कृपया **नः** अस्मभ्यम् **अस्तु** भवतु ।

यथा त्वममुष्य=परोक्षस्य **जगतः** प्रत्यक्षजनस्य **पिता** पालकः **[अयम्]**=असौ सः **भवानस्य**= समक्षस्य **विश्वस्य** प्रत्यक्षवर्तमानस्य, **पिता** रक्षकः **असि, तथा वयं स्वाहा** सत्यया क्रियया **रयीणां** विद्याचक्रवर्त्तिराज्योत्पन्नश्रियां **पतयः** स्वामिनः पालकाः **स्याम** भवेम ।

हे **रुद्र** ! दुष्टानां रोदयितः ! **ते**=तव **यत् क्रिवि** कृणोति=हिनस्ति येन तत् **परं** प्रकृष्टं **नामाऽस्ति [तस्मिन्]** यस्मिँस्त्वं **हुतमस्यमेष्टम्** अमायां=गृहे इष्टम् **असि, तं वयं स्वाहा** सत्यया वाचा **जुहुमः** गृह्णीमः ॥ १० । २० ॥

से युक्त पदार्थ हैं **[ता]** उन्हें **(त्वत्)** आपसे **(अन्यः)** भिन्न दूसरा कोई पदार्थ **(न परिबभूव)** व्याप्त नहीं करता है । अतः—

(ते) आप से **(यत्कामाः)** जिस जिस पदार्थ की कामना वाले होकर हम लोग **(जुहुमः)** आपकी उपासना करें, वह वह कामना आपकी कृपा से **(नः)** हमारे लिए **(अस्तु)** सिद्ध होवे ।

जैसे आप **(अमुष्य)** परोक्ष जगत् के तथा इस जीव के **(पिता)** पालक हो **[अयम्]** सो आप **(अस्य)** इस प्रत्यक्ष जगत् के **(पिता)** रक्षक **(असि)** हो, वैसे हम लोग **(स्वाहा)** सत्य आचरण से **(रयीणाम्)** विद्या, चक्रवर्ती राज्य से उत्पन्न लक्ष्मी के **(पतयः)** पालक स्वामी **(स्याम)** होवें ।

हे **(रुद्र)** दुष्टों को रुलाने वाले ईश्वर ! **(ते)** आपका जो **(क्रिवि)** हिंसक **(परम्)** उत्तम **(नाम)** नाम है, जिसमें आप **(हुतम्)** सबको आहुत करने वाले **(असि)** हो, **(अमेष्टम्)** घर में पूजा के योग्य **(असि)** हो, सो आपको हम लोग **(स्वाहा)** सत्य-वाणी से **(जुहुमः)** ग्रहण करते हैं ॥ १० । २० ॥

[हे प्रजापते ! यान्येतानि विश्वारूपाणि सन्ति [ता]=तानि त्वदन्यो न परिबभूव, त्वममुष्य=परोक्षस्य जगतः पिता [अयम्]=असौ भवानस्य=समक्षस्य विश्वस्य पिताऽसि, हे रुद्र ! ते=तव यत्··· परं नामाऽस्ति···अमेष्टमसि, तं वयं···जुहुमः ।]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ हे मनुष्याः ! यः सर्वस्मिन् जगति व्याप्तः, सर्वान् प्रति मातापितृवद् वर्तमानो दुष्टदण्डक उपासितु-मिष्टोऽस्ति तं जगदीश्वरमेवो पाध्वमेवमनुष्ठानेन युष्माकं सर्वे कामा अवश्यं सेत्स्यन्ति ॥ १० । २० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ हे मनुष्यो ! जो सब जगत् में व्याप्त है, सबके प्रति माता-पिता के समान वर्तमान है, दुष्टों को दण्ड देने वाला और उपासना के योग्य है, उस जगदीश्वर की ही उपासना करो । इस प्रकार अनुष्ठान से तुम्हारी सब कामनायें अवश्य सिद्ध होंगी ॥ १० । २० ॥

भा० पदार्थः—पिता=मातापितृवद् वर्तमानः । रुद्रः=दुष्टदण्डकः । अमेष्टम्=उपासितु-मिष्टम् ॥

भाष्यसार—१. **ईश्वर की उपासना से सब कामनाओं की प्राप्ति**—ईश्वर प्रजा का स्वामी है । जो इच्छादि गुणों से युक्त जीव, रूप आदि गुणों से विशिष्ट प्रकृति पदार्थों को सब ओर से व्याप्त कर रहा है अर्थात् ईश्वर सब जगत् में व्यापक है । जिस जिस पदार्थ की कामना वाले हम लोग उसकी उपासना करते हैं उसकी कृपा से वह वह कामना हमारी सिद्ध हो जाती है ।

ईश्वर परोक्ष और प्रत्यक्ष जगत् का पालक है । वह सबके प्रति माता-पिता के समान वर्ताव

करता है। हम लोग ईश्वरोक्त सत्याचरण से विद्या और चक्रवर्ती राज्य से प्राप्त लक्ष्मी के पति बनते हैं।

ईश्वर दुष्टों को रुलाने वाला है अर्थात् दुष्टों को दण्ड देने वाला है इसलिये उसका नाम रुद्र है। पापी जनों का हिंसक होने से उसका नाम 'क्रिवी' है। सृष्टिकाल में सब जगत् को देने वाला और प्रलय समय में सब जगत् को अपने में लेने वाला है अतः ईश्वर 'हुत' कहलाता है। उपासना के योग्य होने से वह 'अमेष्टम्' है। इसलिये सब मनुष्य ईश्वर की ही उपासना करें जिससे सब कामनायें अवश्य सिद्ध हों ॥ १० । २० ॥

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा वाचक शब्द लुप्त है, अतः वाचक लुप्तोपमा-अलङ्कार है। उपमा यह है कि ईश्वर सबके प्रति माता-पिता के समान वर्ताव करता है ॥ १० । २० ॥

देववातः। **क्षत्रपतिः=राजा**। भुरिग्ब्राह्मी बृहती। मध्यमः ॥

पुनर्विद्वद्भिः किं कर्त्तव्यमित्याह ॥

फिर विद्वान् पुरुषों को क्या करना चाहिये, इस विषय का उपदेश किया है ॥

इन्द्रस्य वज्रोऽसि मित्रावरुणयोस्त्वा प्रशास्त्रोः प्रशिषा युनज्मि।
अव्यथायै त्वा स्वधायै त्वाऽरिष्टो अर्जुनो मरुतां प्रसवेन जयापाम मनसा समिन्द्रियेण ॥ २१ ॥

पदार्थः—(**इन्द्रस्य**) परमैश्वर्य्यस्य (**वज्रः**) विज्ञापकः (**असि**) (**मित्रावरुणयोः**) सभासेनेशयोः (**त्वा**) त्वाम् (**प्रशास्त्रोः**) सर्वस्य प्रशासनकर्त्रोः (**प्रशिषा**) प्रशासनेन (**युनज्मि**) समादधे (**अव्यथायै**) अविद्यमानपीडायै क्रियायै (**त्वा**) (**स्वधायै**) स्ववस्तुधारणलक्षणायै राजनीत्यै (**त्वा**) (**अरिष्टः**) अहिंसितः (**अर्जुनः**) प्रशस्तं रूपं विद्यतेऽस्य सः। अर्शआदित्वादच्। अर्जुनमिति रूपना० ॥ निघं० ३ । ७ ॥ (**मरुताम्**) ऋत्विजाम् (**प्रसवेन**) प्रेरणेन (**जय**) उत्कर्ष (**अपाम्**) आप्नुयाम (**मनसा**) मननशीलेन (**सम्**) (**इन्द्रियेण**) इन्द्रेण=जीवेन जुष्टेन प्रीतेन वा ॥ अयं मन्त्रः शत० ५ । ४ । ३ । ४–१० व्याख्यातः ॥ २१ ॥

प्रमाणार्थ—(**अर्जुनः**) यहां 'अर्श आदिभ्योऽच्' [अ० ५ । २ । १२७] इस सूत्र से 'अच्' प्रत्यय है। 'अर्जुन' शब्द निघं० (३ । ७) में रूप-नामों में पढ़ा है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । ४ । ३ । ४–१०) में की गई है ॥ १० । २१ ॥

सपदार्थान्वयः—हे राजन्! यस्त्वमरिष्टः अहिंसितः **अर्जुनः** प्रशस्तं रूपं विद्यतेऽस्य सः **इन्द्रस्य** परमैश्वर्यस्य **वज्रः** विज्ञापकः **असि, यं त्वा** त्वाम् **अव्यथायै** अविद्यमानपीडायै क्रियायै **प्रशास्त्रोः** सर्वस्य प्रशासनकर्त्रोः **मित्रावरुणयोः** सभासेनेशयोः **प्रशिषा** प्रशासनेन **अहं युनज्मि** समादधे।

भाषार्थ—हे राजन्! आप (**अरिष्टः**) हिंसा रहित, (**अर्जुन**) प्रशस्त रूपवान् हो, (**इन्द्रस्य**) परम ऐश्वर्य के (**वज्रः**) विज्ञापक=उपदेशक (**असि**) हो। सो (**त्वा**) आपको (**अव्यथायै**) पीडा दूर करने के लिये (**प्रशास्त्रोः**) सबके प्रशासक (**मित्रावरुणयोः**) सभापति और सेनापति सम्बन्धी (**प्रशिषा**) शिक्षा से मैं (**युनज्मि**) समाहित करता हूँ।

मरुताम् ऋत्विजां **प्रसवेन** प्रेरणेन **स्वधायै**

(**मरुताम्**) ऋत्विजों की (**प्रसवेन**) प्रेरणा से

स्ववस्तुधारणलक्षणायै राजनीत्यै **यं त्वा युनज्मि** समादधे, **मनसा** मननशीलेन **इन्द्रियेण** इन्द्रेण=जीवेन जुष्टेन=प्रीतेन वा **यं त्वा वयं समापाम** आप्नुयाम, **स त्वं जय**=दुष्टान् जित्वोत्कर्व ॥ १० । २१ ॥

(**स्वधायै**) अपनी वस्तुओं को धारण करना रूप राजनीति प्राप्ति के लिये (**त्वा**) आपको (**युनज्मि**) समाहित करता हूँ (**मनसा**) मननशील (**इन्द्रियेण**) जीव के द्वारा प्रीतिपूर्वक (**त्वा**) आपको हम (**समापाम**) प्राप्त करें। सो आप (**जय**) दुष्टों को जीत कर उन्हें श्रेष्ठ बनाओ ॥ १० । २१ ॥

[हे राजन् !...त्वाम् अव्यथायै प्रशास्त्रोर्मित्रावरुणयोः प्रशिषाऽहं युनज्मि,...स्वधायै...त्वा युनज्मि]

भावार्थः--विद्वद्भी राजा प्रजापुरुषाश्च धर्मार्थं सदा प्रशासनीयाः, यत एते पीडां राजनीतिविरुद्धं कर्म नाचरेयुः ।

भावार्थ--विद्वान् लोग राजा और प्रजा जनों को धर्म के लिये सदा शिक्षा करें, जिससे ये लोग हिंसात्मक और राजनीति से विरुद्ध कर्म न करें।

[स त्वं जय=दुष्टान् जित्वोत्कर्ष]

सर्वतः प्राप्तबलाः शत्रून् जयेयुः । येन कदाप्यैश्वर्य्यस्य हानिर्न स्यात् ॥ १० । २१ ॥

सब ओर से बल को प्राप्त करके शत्रुओं को जीतें, जिससे कभी भी ऐश्वर्य की हानि न होवे ॥ १० । २१ ॥

भाष्यसार--**विद्वानों का कर्त्तव्य**--सभापति राजा और सेनापति सबके प्रशासक होते हैं। विद्वान् लोग उन्हें ऐसी शिक्षा करें कि जिससे वे अहिंसक, प्रशस्त रूपवान् और परम ऐश्वर्य के प्रकाशक हों। वे धार्मिक जनों को पीडित न करें तथा राजनीति के विरुद्ध कर्मों का आचरण न करें। मननशील पुरुषों से बल को प्राप्त करके दुष्ट शत्रुओं को जीतें और उन्हें श्रेष्ठ बनावें। जिससे उनके ऐश्वर्य की हानि कभी न हो ॥ १० । २१ ॥

देववातः । **इन्द्रः=राजा** ॥ निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

प्रजाजनै राजप्रसङ्गे कथं वर्तितव्यमित्याह ॥

प्रजापुरुषों को राजा के साथ कैसे वर्ताव करना चाहिये, यह उपदेश किया है ॥

मा त॑ ऽ इन्द्र ते व॒यं तु॑राषा॒ड॒युक्ता॑सो ऽ अब्र॒ह्म॒ता विद॑साम ।
तिष्ठा॒ रथ॒मधि॒ यं व॑ज्रह॒स्ता र॒श्मीन्दे॑व यमसे॒ स्वश्वा॑न् ॥ २२ ॥

पदार्थः--(**मा**) निषेधे (**ते**) तव (**इन्द्र**) सभेश राजन् ! (**ते**) तव (**वयम्**) राजप्रजाजनाः (**तुराषाट्**) तुरान्=त्वरितान् शत्रून् सहते (**अयुक्तासः**) अधर्मकारिणः (**अब्रह्मता**) वेदेश्वरनिष्ठारहितता (**वि**) (**दसाम**) उपक्षयेम (**तिष्ठ**) अत्र द्व्यचोतस्तिङः ॥ अ० ६ । ३ । १३५ ॥ इति दीर्घः (**रथम्**) (**अधि**) (**यम्**) (**वज्रहस्त**) वज्रतुल्यानि शस्त्राणि हस्तयोर्यस्य तत्सम्बुद्धौ (**आ**) (**रश्मीन्**) अश्वनियमार्था रज्जूः (**देव**) (**यमसे**) नियच्छसि (**स्वश्वान्**) शोभनाश्च तेऽश्वाश्च तान् ॥ अयं मन्त्रः शत० ५ । ४ । ३ । १४ व्याख्यातः ॥ २२ ॥

प्रमाणार्थ--(**तिष्ठा**) तिष्ठ । यहाँ 'द्व्यचोऽतस्तिङः' (अ० ६ । ३ । १३५) इस सूत्र से दीर्घ है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । ४ । ३ । १४) में की गई है ॥ १० । २२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे देव ! इन्द्र ! सभेश राजन् ! **वज्रहस्त** ! वज्रतुल्यानि शस्त्राणि हस्तयोर्यस्य तत्सम्बुद्धौ ! **वयं** राजप्रजाजनाः **ते**= **तव सम्बन्धेऽयुक्तासः** अधर्मकारिणः **मा न भवाम**, **ते=तवाऽब्रह्मता** वेदेश्वरनिष्ठारहितता माऽस्तु, **विदसाम** उपक्ष्येम ।

भाषार्थ—हे (**देव**) दिव्य गुणों से युक्त (**इन्द्र**) सभापति (**वज्रहस्त**) हाथों में वज्र के समान शस्त्रों वाले राजन् ! (**वयम्**) हम राजपुरुष और प्रजाजन (**ते**) आपके सम्बन्ध में (**अयुक्तासः**) अधर्म करने वाले (**मा**) न हों, और (**ते**) आपकी (**अब्रह्मता**) वेद और ईश्वर सम्बन्धी श्रद्धा कम (**मा**) न हो जिससे हम लोग आपकी (**विदसाम**) उपेक्षा करें ।

यस्तुराषाट् तुरान्=त्वरितान् शत्रून् सहते त्वं **यान् रश्मीन्** अश्वनियमार्था रज्जूः **स्वश्वान्** शोभनाश्च तेऽश्वाश्च तान् **[आ] यमसे** नियच्छसि, **यं रथमधितिष्ठ, तांस्तं च वयमप्यधितिष्ठेम** ॥ १० । २२ ॥

आप (**तुराषाट्**) शीघ्रकारी शत्रुओं को नष्ट करने वाले हो, सो जिन (**रश्मीन्**) लगाम वाले (**स्वश्वान्**) उत्तम घोड़ों को (**[आ] यमसे**) वश में करते हो और (**यम्**) जिस (**रथम्**) रथ में (**अधितिष्ठ**) बैठते हो, हम लोग भी उन घोड़ों को वश में करें तथा रथ में बैठें ॥ १० । २२ ॥

[हे देवेन्द्र !······वयं ते=तव सम्बन्धेऽयुक्तासो भवाम]

भावार्थः—राजप्रजाजना राज्ञा सहायोग्यं व्यवहारं कदाचिन्न कुर्य्युः । राजा चैतैः सहान्यायं न कुर्यात् ।

भावार्थ—राजपुरुष और प्रजाजन राजा के साथ अयोग्य व्यवहार कभी न करें, और राजा इनके साथ अन्याय न करे ।

[**ते=तवाऽब्रह्मता माऽस्तु, त्वं यान्**······**स्वश्वान् [आ] यमसे, यं रथमधितिष्ठ तांस्तं च वयमप्यधितिष्ठेम**]

वेदेश्वराज्ञानुष्ठानाः सन्तः सर्वेसमानयानासनव्यवहाराः स्युः ।

वेद रूप ईश्वर की आज्ञा का अनुष्ठान करके सब तुल्य यान और आसन व्यवहार वाले हों ।

[मा······विदसाम]

न कदाचिदालस्ये, प्रमादे, वेदेश्वरनिन्दामये नास्तिकत्वे वा वर्त्तेरन् ॥ १० । २२ ॥

आलस्य-प्रमाद, वेद और ईश्वर की निन्दा रूप नास्तिकपन में कभी न रहें ॥ १० । २२ ॥

भाष्यसार—**प्रजा का राजा के प्रति वर्ताव**—सभापति राजा दिव्य गुणों से युक्त है, उसके हाथों में वज्र के समान शस्त्र हैं । इसलिये राजपुरुष और प्रजाजन राजा के साथ अधर्म=अयोग्य व्यवहार कभी न करें । और राजा का भी कर्त्तव्य है कि वह इनके साथ अन्याय न करे । राजा वेद और ईश्वर के प्रति श्रद्धा से रहित न हो, जिससे प्रजाजन उसकी उपेक्षा करें अथवा वे भी वेद और ईश्वर के प्रति निष्ठाशून्य हो जावें अपितु सब वेद और ईश्वर में निष्ठावान् हों । आलस्य और प्रमाद में न पड़े रहें । वेद और ईश्वर के निन्दक होकर नास्तिक न बनें ।

राजा शीघ्रकारी शत्रुओं का मर्षण करने वाला हो । वह अपने लगाम वाले उत्तम घोड़ों को वश में रखे । रथ में बैठे । राजपुरुष और प्रजाजन भी अपने घोड़ों को वश में रखें तथा रथ में बैठें । अभिप्राय यह है कि यान और आसन सम्बन्धी व्यवहारों में सब समान रहें । भेदभाव न रखें ॥ १० । २२ ॥

देववातः । **अग्न्याद्यो मन्त्रोक्ताः**=धर्मविज्ञानयुक्तगृहस्थादयः ।
जगती । निषादः ॥

अथ माताऽपत्यानि परस्परं कीदृशं संवदेयुरित्याह ॥

अब माता और पुत्र आपस में कैसे संवाद करें, यह उपदेश किया है ॥

**अग्नये गृहपतये स्वाहा सोमाय वनस्पतये स्वाहा मरुतामोजसे स्वाहेन्द्रस्येन्द्रियाय स्वाहा ।
पृथिवि मातर्मा मा हिंसीर्मो ऽ अहं त्वाम् ॥ २३ ॥**

पदार्थः—(**अग्नये**) धर्मविज्ञानाढ्याय (**गृहपतये**) गृहाश्रमस्वामिने (**स्वाहा**) सत्यां नीतिम् (**सोमाय**) सोमलताद्यायौषधिगणाय (**वनस्पतये**) वनानां पालकायाश्वत्थप्रभृतये (**स्वाहा**) वैद्यकशास्त्र-बोधजनितां क्रियाम् (**मरुताम्**) प्राणानामृत्विजां वा (**ओजसे**) बलाय (**स्वाहा**) योगशान्तिदां वाचम् (**इन्द्रस्य**) जीवस्य (**इन्द्रियाय**) नेत्राद्याय अन्तःकरणाय वा (**स्वाहा**) सुशिक्षायुक्तां वाचमुपदिष्टिम् (**पृथिवि**) भूमिवत्पृथुशुभलक्षणे (**मातः**) मान्यकर्त्रि जननि (**मा**) निषेधे (**मा**) माम् (**हिंसीः**) कुशिक्षया मा हिंस्याः (**मो**) (**अहम्**) (**त्वाम्**) ॥ अयं मन्त्रः शत० ५ । ४ । ३ । १५–२१ व्याख्यातः ॥ २३ ॥

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । ४ । ३ । १५–२१) में की गई है ॥ १० । २३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **प्रजाजनाः** ! **यथा राजजना वयं गृहपतये** गृहाश्रमस्वामिने **अग्नये** धर्मविज्ञानाढ्याय **स्वाहा** सत्यां नीतिं **सोमाय** सोमलताद्यायौषधिगणाय **वनस्पतये** वनानां पालकाऽश्वत्थप्रभृतये **स्वाहा** वैद्यकशास्त्रबोधजनितां क्रियां **मरुतां** प्राणानामृत्विजां वा **ओजसे** बलाय **स्वाहा** योगशान्तिदां वाचम् **इन्द्रस्य** जीवस्य **इन्द्रियाय** नेत्राद्याय अन्तःकरणाय वा **स्वाहा** सुशिक्षायुक्तां वाचमुपदिष्टिं **चरेम, तथा यूयमप्याचरत** ।

हे **पृथिवि** भूमिवत्पृथु=शुभलक्षणे **मातः** ! मान्यकर्त्रि जननि ! **त्वं मा मां मा न हिंसीः** कुशिक्षया हिंस्याः, त्वामहं **च मो हिंस्याम्** ॥ १० । २३ ॥

भाषार्थ—हे प्रजा जनो ! जैसे हम राजा लोग (**गृहपतये, अग्नये**) धर्म और विज्ञान से भरपूर गृहाश्रमी के लिये (**स्वाहा**) सत्यनीति को, (**सोमाय**) सोमलता आदि औषधियाँ और (**वनस्पतये**) वनों के पति अश्वत्थ=पिप्पल आदि के लिये (**स्वाहा**) वैद्यक शास्त्र के बोध से उत्पन्न क्रिया को, (**मरुताम्**) प्राणों वा ऋत्विक् जनों के (**ओजसे**) बल के लिये (**स्वाहा**) योग और शान्ति देने वाली वाणी को, (**इन्द्रस्य**) जीव के (**इन्द्रियाय**) नेत्र आदि इन्द्रियों वा अन्तःकरण के लिये (**स्वाहा**) सुशिक्षा से युक्त उपदेशमय वाणी को (**चरेम**) व्यवहार में लाते हैं वैसे तुम लोग भी आचरण करो ।

हे (**पृथिवि**) भूमि के समान बहुत शुभ लक्षणों वाली (**मातः**) मान के योग्य जननी ! आप (**मा**) मेरी (**मा हिंसीः**) कुशिक्षा से हिंसा मत करो, और अप्रियाचरण से मैं भी आपकी (**मो**) हिंसा न करूँ ॥ १० । २३ ॥

[हे प्रजाजनाः ! यथा राजजना वयं गृहपतयेऽग्नये स्वाहा ... चरेम, तथा यूयमप्याचरत]

भावार्थः— राजादिराजजनैः प्रजाहिताय,

भावार्थ—राजा आदि राजपुरुष प्रजा के

प्रजाजनैरेतेषां सुखाय, सर्वस्योन्नतये च परस्परं वर्त्तितव्यम् ।

हित के लिये और प्रजाजन राजा आदि के सुख के लिये और सबकी उन्नति के लिये परस्पर व्यवहार किया करें ।

[हे'''मातस्त्वं मा मा हिंसीः, त्वामहं च मो हिंस्याम्]

माता कुशिक्षयाऽविद्यादानेन स्वसन्तानान् नष्टबुद्धीन् कदाचिन्न कुर्य्यात्, सन्तानाश्च मातुरप्रियं नाचरेयुः ॥ १० । २३ ॥

माता कुशिक्षा से अविद्या का दान करके अपने सन्तानों की बुद्धि को नष्ट न करे और सन्तान माता के प्रति अप्रिय आचरण कभी न करें ॥ १० । २३ ॥

भाष्यसार—**१. राजा और प्रजा का व्यवहार**—राजा धर्म और विज्ञान से भरपूर गृहाश्रमी जनों के लिये सत्य नीति का उपदेश करे । सोमलता आदि औषधियों तथा अश्वत्थ (**पिप्पल**) आदि वनस्पतियों का वैद्यक शास्त्र के अनुसार प्रजा के लिये उपयोग करे । प्राणों की बलवृद्धि के लिये योग की शिक्षा देने वाली वाणी का तथा ऋत्विक् जनों की बलवृद्धि के लिये सुख-शान्ति देने वाली वाणी का व्यवहार करे । मनुष्यों की नेत्र आदि इन्द्रियों तथा अन्तःकरण की पवित्रता के लिये सुशिक्षा से युक्त उपदेशमय वाणी का वर्ताव करे । प्रजाजन भी राजा के प्रति ऐसी ही वाणी का व्यवहार किया करें ।

२. माता और पुत्र का परस्पर व्यवहार—माताभूमि के समान शुभ लक्षणों से युक्त होने से सम्मान के योग्य है । माता कुशिक्षा के द्वारा सन्तानों की हिंसा न करे अर्थात् अविद्या के उपदेश से अपने सन्तानों की बुद्धि को नष्ट न करे । सन्तानों को भी उचित है कि वे माता के प्रति अप्रिय आचरण कभी न करें । माता की उत्तम शिक्षा को मानकर सदा उसकी आज्ञा में रहें ॥ १० । २३ ॥

वामदेवः । **सूर्य्यः**=**परमात्मा** । भुरिगार्षी जगती । निषादः ॥

मनुष्यैरीश्वरोपासनेन न्यायसुशिक्षे कार्य्ये इत्याह ॥

मनुष्य ईश्वर की उपासनापूर्वक सबके लिये न्याय और अच्छी शिक्षा करें, यह उपदेश किया है ॥

हꣳसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ।
नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजाऽऋतजाऽअद्रिजाऽ ऋतं बृहत् ॥ २४ ॥

पदार्थः—(हꣳसः) यः संहन्ति सर्वान् पदार्थान् स जगदीश्वरः (**शुचिषत्**) यः शुचिषु=पवित्रेषु पदार्थेषु सीदति सः (**वसुः**) वस्ता वासयिता वा (**अन्तरिक्षसद्**) योऽन्तरिक्षेऽवकाशे सीदति (**होता**) दाता ग्रहीताऽत्ता वा (**वेदिषत्**) वेद्यां=पृथिव्यां सीदति (**अतिथिः**) अविद्यमाना तिथिर्यस्य तद्वन्मान्यः (**दुरोणसत्**) यो दुरोणे=गृहे सीदति सः । दुरोण इति गृहना० ॥ निघं० ३ । ४ ॥ (**नृषत्**) यो नृषु सीदति सः (**वरसत्**) यो वरेषूत्तमेषु पदार्थेषु सीदति सः (**ऋतसत्**) य ऋतेषु=सत्येषु प्रकृत्यादिषु सीदति सः (**व्योमसत्**) यो व्योमनि सीदति सः (**अब्जाः**) योऽपो जनयति (**गोजाः**) यो गाः=पृथिव्यादीन् जनयति (**ऋतजाः**) यः सत्यविद्यामयं वेदं जनयति (**अद्रिजाः**) यो मेघपर्वतवृक्षादीन् जनयति सः (**ऋतम्**) सत्यस्वरूपम् (**बृहत्**) महद् ब्रह्म ॥ अयं मन्त्रः शत० ५ । ४ । ३ । २२ व्याख्यातः ॥ २४ ॥

प्रमाणार्थ—(**दुरोणसद्**) 'दुरोण' शब्द निघं० (३ । ४) में गृह-नामों में पढ़ा है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । ४ । ३ । २२) में की गई है ॥ १० । २४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! भवन्तो यः परमेश्वरो **हंसः** यः संहन्ति सर्वान् पदार्थान् स जगदीश्वरः **शुचिषद्** यः शुचिषु=पवित्रेषु पदार्थेषु सीदति सः **वसुः** वस्ता वासयिता वा **अन्तरिक्षसद्** योऽन्तरिक्षेऽवकाशे सीदति सः **होता** दाता ग्रहीताऽत्ता वा **वेदिषत्** वेद्यां=पृथिव्यां सीदति **अतिथिः** अविद्यमाना तिथिर्यस्य तद्वन्मान्यः **दुरोणसत्** यो दुरोणे=गृहे सीदति सः **नृषत्** यो नृषु सीदति सः **वरसत्** तो वरेषूत्तमेषु पदार्थेषु सीदति सः **ऋतसद्** य ऋतेषु=सत्येषु प्रकृत्यादिषु सीदति सः **व्योमसत्** यो व्योमनि सीदति सः **अब्जाः** योऽपो जनयति **गोजाः** यो गाः=पृथिव्यादीन् जनयति **ऋतजाः** यः सत्यविद्यामयं वेदं जनयति **अद्रिजाः** यो मेघ-पर्वत-वृक्षादीन् जनयति सः **ऋतं** सत्यस्वरूपं **बृहत्** महद् ब्रह्म **अस्ति, तमेवोपासीरन्** ॥ १० । २४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग जो परमेश्वर (**हंसः**) सब पदार्थों को संघात रूप में बनाने वाला, (**शुचिषत्**) पवित्र पदार्थों में विद्यमान (**वसुः**) सब में बसने तथा सबको बसाने वाला, (**अन्तरिक्षसत्**) अन्तरिक्ष=अवकाश में विद्यमान, (**होता**) सब पदार्थों का दाता ग्रहण वा प्रलय करने वाला, (**वेदिषत्**) पृथिवी में विद्यमान, (**अतिथिः**) अतिथि के समान मान के योग्य, (**दुरोणसत्**) घर में विद्यमान, (**नृषत्**) मनुष्यों में विद्यमान, (**वरसत्**) उत्तम पदार्थों में विद्यमान, (**ऋतसत्**) ऋत=प्रकृति आदि सत्य पदार्थों में विद्यमान, (**व्योमसद्**) आकाश में विद्यमान, (**अब्जाः**) जलों का उत्पादक, (**गोजाः**) पृथिवी आदि का जनक, (**ऋतजाः**) सत्यविद्या से पूर्ण वेद का प्रकाशक, (**अद्रिजाः**) मेघ, पर्वत और वृक्ष आदि का उत्पादक—(**ऋतम्**) सत्यस्वरूप (**बृहत्**) महान् ब्रह्म है; उसी की उपासना करो ॥ १० । २४ ॥

[**हे मनुष्याः ! भवन्तो यः परमेश्वरो हंसः शुचिषद्**...**ऋतं बृहदस्ति, तमेवोपासीरन्**]

भावार्थः—मनुष्यैः सर्वव्यापकं पवित्रकरं ब्रह्मैवोपास्यमस्ति, न खल्वेतस्योपासनेन विना किञ्चिदपि पूर्णं धर्मार्थकाममोक्षजं सुखं भवितुं शक्यम् ॥ १० । २४ ॥

भावार्थ—मनुष्य—सर्वव्यापक पवित्रकर्त्ता ब्रह्म की ही उपासना करें, क्योंकि उसकी उपासना के बिना किसी को भी धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष से उत्पन्न पूर्ण सुख प्राप्त नहीं हो सकता ॥ १० ।२४ ॥

भा० पदार्थः—शुचिषद्=पवित्रकरं ब्रह्म ॥

भाष्यसार—**१. ब्रह्म का स्वरूप**—सत्य स्वरूप ब्रह्म सब पदार्थों को संघात रूप देने वाला, सबको पवित्र करने वाला एवं पवित्र पदार्थों में विद्यमान है। सब पदार्थों में बसने वाला और सबको बसाने वाला है। अन्तरिक्ष में विद्यमान है। सृष्टिकाल में सब पदार्थों का दाता और प्रलय समय में सब पदार्थों को ग्रहण करने वाला अथवा सब का भक्षण करने वाला है । पृथिवी में विद्यमान है। जिसकी तिथि नियत नहीं उस अतिथि=अभ्यागत के समान मान के योग्य है। सब नरों में विद्यमान है। सब श्रेष्ठ पदार्थों में विद्यमान है। प्रकृति आदि सब सत्यपदार्थों में विद्यमान है। आकाश में विद्यमान है। जल, पृथिवी आदि तथा सत्य विद्यामय वेद को उत्पन्न करने वाला वही है। मेघ, पर्वत और वृक्ष आदि को भी वही उत्पन्न करता है। अर्थात् ब्रह्म सर्वव्यापक और सृष्टिकर्त्ता है।

२. ब्रह्म की उपासना—सर्वव्यापक परब्रह्म की सब मनुष्य उपासना करके न्याय और सुशिक्षा का प्रसार करें। ब्रह्म की उपासना के बिना कोई भी मनुष्य पूर्ण सुख को प्राप्त नहीं कर सकता १० । २४ ॥

वामदेवः । **सूर्यः**=**परमात्मा** । आर्षी जगती । निषादः ॥

मनुष्यैः किमर्थं ब्रह्मोपासनीयमित्युपदिश्यते ॥

मनुष्य ईश्वर की उपासना क्यों करे, यह उपदेश किया है ॥

इयदस्यायुरस्यायुर्मयि धेहि युङ्ङसि वर्चोऽसि वर्चो मयि धेह्यूर्गस्यूर्जं मयि धेहि ।
इन्द्रस्य वां वीर्यकृतो बाहू ऽ अभ्युपावहरामि ॥ २५ ॥

पदार्थः—(**इयत्**) एतावत्परिमाणम् (**असि**) (**आयुः**) जीवनम् (**असि**) (**आयुः**) (**मयि**) जीवात्मनि (**धेहि**) (**युङ्**) समाधाता (**असि**) (**वर्चः**) स्वप्रकाशम् (**असि**) (**वर्चः**) (**मयि**) (**धेहि**) (**ऊर्क्**) बलवान् (**असि**) (**ऊर्जम्**) (**मयि**) (**धेहि**) (**इन्द्रस्य**) परमैश्वर्य्यस्य (**वाम्**) युवयो राजप्रजाजनयोः (**वीर्य्यकृतः**) यो वीर्य्यं करोति तस्य (**बाहू**) बाधते याभ्यां बलवीर्य्याभ्यां तौ (**अभ्युपावहरामि**) अभितः सामीप्येऽर्वाक् स्थापयामि ॥ अयं मन्त्रः शत० ५ । ४ । ३ । २५–२७ व्याख्यातः ॥ २५ ॥

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । ४ । ३ । २५–२७) में की गई है ॥ १० । २५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे ब्रह्मन् ! त्वमायुः जीवनम् असि, इयत् एतावत्परिमाणम् **आयुर्मयि** जीवात्मनि धेहि, **त्वं युङ्** समाधाता असि, **वर्चः** स्वप्रकाशम् असि, **योगजं वर्चो मयि धेहि, त्वमूर्क्** बलवान् असि, **ऊर्जं मयि धेहि** ।

भाषार्थ—हे ब्रह्मन् ! आप (**आयुः**) मेरा जीवन (**असि**) हो, (**इयत्**) परिमित (**आयुः**) जीवन (**मयि**) मुझ जीवात्मा में (**धेहि**) स्थापित कीजिये । आप (**युङ्**) समाधि प्रदान करने वाले (**असि**) हो, (**वर्चः**) स्वप्रकाश स्वरूप (**असि**) हो, सो योग से उत्पन्न (**वर्चः**) प्रकाश को (**मयि**) मुझ जीवात्मा में (**धेहि**) स्थापित कीजिये । आप (**ऊर्क्**) बलवान् (**असि**) हो, (**ऊर्जम्**) बल को (**मयि**) मुझ जीवात्मा में (**धेहि**) स्थापित कीजिये ।

हे **राजप्रजाजनौ** ! **वीर्य्यकृतः** यो वीर्य्यं करोति तस्य **इन्द्रस्य**=**ईश्वरस्य** परमैश्वर्य्यस्य **आश्रयेण वां युवयोः** युवयोः राजप्रजाजनयोः **बाहू**=**बलवीर्य्ये** बाधते याभ्यां बलवीर्याभ्यां तौ **अहमभ्युपावहरामि** अभितः सामीप्येऽर्वाक् स्थापयामि ॥ १० । २५ ॥

हे **राजपुरुष और प्रजा-जनो** ! (**वीर्यकृतः**) बल को उत्पन्न करने वाले (**इन्द्रस्य**) परमैश्वर्यवान् ईश्वर के आश्रय से (**वाम्**) तुम्हारे (**बाहू**) बल और वीर्य को मैं (**अभ्युपावहरामि**) सब ओर से तुम्हारे समीप स्थापित करता हूँ ॥ १० । २५ ॥

[**हे ब्रह्मन् ! त्वमायुरसि, इयदायुर्मयि धेहि ।**···**इन्द्रस्य**=**ईश्वरस्याश्रयेण**···**बाहू**=
बलवीर्य्ये अहमभ्युपावहरामि]

भावार्थः—य आत्मस्थं ब्रह्मोपासते ते शोभनं जीवनादिकमश्नुवते । नहि केनचिदीश्वरस्याश्रयमन्तरा पूर्णौ बलपराक्रमौ लभ्येते ॥ १० । २५ ॥

भावार्थ—जो लोग आत्मा में स्थित ब्रह्म की उपासना करते हैं वे उत्तम जीवन आदि को प्राप्त करते हैं । ईश्वर के आश्रय के विना कोई पूर्ण बल और पराक्रम को नहीं प्राप्त कर सकता ॥ १० । २५ ॥

भाष्यसार—**ब्रह्म की उपासना क्यों करें**—ब्रह्म जीवात्मा का जीवन है, वह जीवात्मा को परिमित आयु प्रदान करता है, ब्रह्म सदा समाहित है, स्वप्रकाशस्वरूप है । ब्रह्म जीवात्मा को योगज

प्रकाश प्रदान करता है। ब्रह्म बलवान् है वह आत्मा को बल प्रदान करता है। परम ऐश्वर्यवान् ईश्वर जीव के बल वीर्य को बढ़ाता है। अतः ब्रह्म जीव के लिये उपासना के योग्य है। आत्मा में स्थित ब्रह्म की जो उपासना करते हैं, वे उत्तम आयु, आत्मप्रकाश, बल और वीर्य को प्राप्त करते हैं। ईश्वर के आश्रय के विना कोई पूर्ण बल और पराक्रम को प्राप्त नहीं कर सकता ॥ १० । २५ ॥

वामदेवः । **आसन्दी राजपत्नी**=न्यायकर्त्री राजपत्नी। भुरिगनुष्टुप् । गान्धारः ॥

स्त्रीणां न्यायो विद्यासुशिक्षे च स्त्रीभिरेव कार्य्यं नराणां नरैश्चेत्याह ॥

स्त्रियों का न्याय विद्या और सुशिक्षा स्त्रियाँ ही करें, और पुरुषों का पुरुष करें, इस विषय का उपदेश किया है ॥

स्योनासि सुषदासि क्षत्रस्य योनिरसि। स्योनामासीद सुषदामासीद क्षत्रस्य योनिमासीद ॥ २६ ॥

पदार्थः—(स्योना) सुखरूपा (असि) (सुषदा) या शोभने व्यवहारे सीदति सा (असि) (क्षत्रस्य) राजन्यायस्य (योनिः) गृहे न्यायकर्त्री (असि) (स्योनाम्) सुखकारिकाम् (आ) (सीद्) (सुषदाम्) शुभसुखदात्रीम् (आ) (सीद) (क्षत्रस्य) क्षत्रियकुलस्य (योनिम्) (आ) (सीद) ॥ अयं मन्त्रः शत० ५ । ४ । ४ । २-४ व्याख्यातः ॥ २६ ॥

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत०(५ । ४ । ४ । २–४) में की गई है ॥ १० । २६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे राज्ञि ! यतस्त्वं **स्योना** सुखरूपा **असि, सुषदा** या शोभने व्यवहारे सीदति सा **असि** [**क्षत्रस्य**] राजन्यायस्य [**योनिः**] गृहे न्यायकर्त्री [**असि**] [**त्वं**] [**स्योनां**] सुखकारिकां **सुषदां** शुभसुखदात्रीं **क्षत्रस्य** क्षत्रियकुलस्य **योनिं**=**राजनीतिमासीद** ॥ १० । २६ ॥

भाषार्थ—हे रानी ! तू (स्योना) सुखरूप (असि) है, (सुषदा) उत्तम व्यवहार में विद्यमान (असि) है, [क्षत्रस्य] राजसम्बन्धी [योनिः] घर में न्याय करने वाली [असि] है । सो [त्वम्] तू [स्योनाम्] सुखकारक [सुषदाम्] उत्तम सुख देने वाली (क्षत्रस्य) क्षत्रिय कुल की (योनिम्) राजनीति को (आसीद्) प्राप्त हो ॥ १० । २६ ॥

[हे राज्ञि !···त्वं···[क्षत्रस्य] [योनिरसि] [त्वं]···योनिं=राजनीतिमासीद]

भावार्थः—राजपत्नी सर्वासां स्त्रीणां न्यायसुशिक्षे च सदैव कुर्यात्, नैतासामेते पुरुषैः कारयितव्ये । कुतः ? पुरुषाणां समीपे स्त्रियो लज्जिता भीताश्च भूत्वा यथावद् वक्तुमध्येतुं च न शक्नुवन्त्यतः ॥ १० । २६ ॥

भावार्थ—राजपत्नी सब स्त्रियों का न्याय और शिक्षा सदा करें, इनका न्याय और शिक्षा पुरुष न करें । क्योंकि पुरुषों के समीप स्त्रियाँ लज्जित और भयभीत होकर यथावत् न बोल सकती हैं और न पढ़ सकती हैं ॥ १० । २६ ॥

भाष्यसार—**स्त्रियों का न्यायादि स्त्रियाँ ही करें**—राजपत्नी सब स्त्रियों को सुख देने वाली, उत्तम व्यवहार करने वाली हो। स्त्रियों का न्याय राजपत्नी किया करे। वह न्याय से सब सुखों को उत्पन्न करने वाली और उत्तम सुखों को देने वाली हो। क्षत्रिय कुल की राजनीति की ज्ञात्री हो । स्त्रियों का न्याय, विद्या और सुशिक्षा स्त्रियाँ ही करें, पुरुष न करें, क्योंकि पुरुषों के पास स्त्रियाँ लज्जित और भयभीत सी होकर यथावत् नहीं बोल सकतीं और न पढ़ सकती हैं ॥ १० । २६ ॥

शुनःशेपः । **वरुणः=राजा** । पिपीलिका मध्या विराड्गायत्री । षड्जः ॥

राजवद्राजपत्न्योऽपि राजधर्ममाचरेयुरित्याह ॥

राजा के समान रानी भी राजधर्म का आचरण करें, यह उपदेश किया है ॥

निषसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्या॒स्वा । साम्राज्याय सुक्रतुः ॥ २७ ॥

पदार्थः—(**नि**) नित्यम् (**ससाद**) सीदतु (**धृतव्रतः**) धृतानि सत्याचरणब्रह्मचर्य्यादीनि व्रतानि येन सः (**वरुणः**) पुरुषोत्तमः (**पस्त्यासु**) न्यायगृहेषु (**आ**) समन्तात् (**साम्राज्याय**) सम्राजां भावाय कर्मणे वा (**सुक्रतुः**) शोभना क्रतुः=प्रज्ञा क्रिया वा यस्य सः ॥ **अयं मन्त्रः शत० ५ । ४ । ४ । ५ व्याख्यातः** ॥ २७ ॥

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । ४ । ४ । ५) में की गई है ॥ १० । २७ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे राज्ञि ! यथा तव धृतव्रतः** धृतानि सत्याचरण-ब्रह्मचर्यादीनि व्रतानि येन सः **सुक्रतुः** शोभना क्रतुः=प्रज्ञा क्रिया वा यस्य सः **वरुणः** पुरुषोत्तमः **पतिः साम्राज्याय** सम्राजां भावाय कर्म्मणे वा **पस्त्यासु** न्याय-गृहेषु **आनिषसाद** समन्तात् नित्यं सीदतु, **तथा तत्र त्वमपि न्यायं कुरु** ॥ १० । २७ ॥

भाषार्थ—हे रानी ! जैसे आपका (**धृतव्रतः**) सत्याचरण और ब्रह्मचर्य आदि व्रतों को धारण करने वाला, (**सुक्रतुः**) उत्तम बुद्धि और कर्म वाला, (**वरुणः**) पुरुषोत्तम पति–(**साम्राज्याय**) सम्राट्-भाव से तथा तत्सम्बन्धी कर्म करने के लिये (**पस्त्यासु**) न्यायालयों में (**आ+निषसाद**) नित्य विराजमान होता है, वैसे उन न्यायालयों में तू भी न्याय कर ॥ १० । २७ ॥

[हे राज्ञि ! **यथा तव······पतिः साम्राज्याय पस्त्यासु आनिषसाद तथा तत्र त्वमपि न्यायं कुरु**]

भावार्थः—यथा सम्राट् साम्राज्यं पालितुं न्यायासने स्थित्वा पुरुषाणां सत्यं न्यायं कुर्यात् तथा राजपत्नी स्त्रीणां नित्यं न्यायं कुर्य्यात् ।

भावार्थ—जैसे सम्राट् साम्राज्य की रक्षा के लिये न्यायासन पर बैठ कर पुरुषों का सच्चा न्याय करे वैसे राजपत्नी स्त्रियों का नित्य न्याय किया करे।

अतः किमागतम् ?—यादृशो नीतिविद्याधर्म-युक्तः स्वामी पुरुषाणां न्यायं कुर्यात्तादृश्यैव तत्स्त्रिया भवितव्यमिति ॥ १० । २७ ॥

इससे क्या सिद्ध हुआ कि जैसा नीतिमान्, विद्यावान् और धर्मात्मा राजा पुरुषों का न्याय करे वैसी ही उसकी स्त्री भी होवे ॥ १० । २७ ॥

भा० पदार्थः—साम्राज्याय=साम्राज्यं पालितुम् ।

भाष्यसार—**राजा के समान राजपत्नी**—सम्राट् सत्याचरण और ब्रह्मचर्य आदि व्रतों को धारण करने वाला अर्थात् धर्मात्मा हो, उत्तम बुद्धि और कर्म वाला अर्थात् नीतिमान् और विद्यावान् हो । वह सम्राट् भाव से राजसम्बन्धी न्याय आदि कर्म करने के लिये न्यायालयों में न्यायासन पर बैठ कर पुरुषों का ठीक ठीक न्याय करे । वैसे राजपत्नी स्त्रियों का नित्य न्याय किया करे । इसका अभिप्राय यह है कि सम्राट् के समान राजपत्नी भी नीतिमती, विद्यावती और धर्मात्मा होकर राजधर्म का अनुष्ठान करे ॥ १० । २७ ॥

शुनःशेपः । **यज्ञमानः**=राजा ॥ धृतिः । ऋषभः ॥

पुनः स राजा कीदृशो भूत्वा कस्मै किं कुर्य्यादित्युपदिश्यते ॥

फिर वह राजा कैसा हो के किसके लिये क्या करे, इस विषय का उपदेश किया है ॥

अभिभूरस्येतास्ते पञ्च दिशः कल्पन्तां ब्रह्मँस्त्वं ब्रह्मासि सवितासि सत्यप्रसवो वरुणोऽसि सत्यौजा ऽ इन्द्रोऽसि विशौजा रुद्रोऽसि सुशेवः । बहुंकार श्रेयस्कर भूयस्करेन्द्रस्य वज्रोऽसि तेन मे रध्य ॥ २८ ॥

पदार्थः—(**अभिभूः**) दुष्टानां तिरस्कर्त्ता (**असि**) (**एताः**) (**ते**) (**पञ्च**) पूर्वादयश्चतस्रोऽध ऊर्ध्वा चैका (**दिशः**) (**कल्पन्ताम्**) सुखयुक्ता भवन्तु (**ब्रह्मन्**) प्राप्तब्रह्मविद्य (**त्वम्**) (**ब्रह्मा**) चतुर्वेदाखिलराजप्रजासुखनिमित्तानां पदार्थानां निर्माता (**असि**) (**सविता**) ऐश्वर्योत्पादकः (**असि**) (**सत्यप्रसवः**) सत्येन कर्मणा प्रसवः=ऐश्वर्यं यस्य सः(**वरुणः**) वरस्वभावः (**असि**) (**सत्यौजाः**) सत्यमोजो=बलं यस्य सः (**इन्द्रः**) सुखानां धाता (**असि**) (**विशौजाः**) विशा=प्रजया सहौजः=पराक्रमो यस्य सः (**रुद्रः**) शत्रूणां दुष्टानां रोदयिता (**असि**) (**सुशेवः**) शोभनं शेवं=सुखं यस्य सः । **शेवमिति सुखना० ॥ निघं० ३ । ६ ॥** (**बहुकार**) बहूनां सुखानां कर्त्तः (**श्रेयस्कर**) कल्याणकर्त्तः (**भूयस्कर**) पुनःपुनरनुष्ठातः (**इन्द्रस्य**) ऐश्वर्यस्य (**वज्रः**) प्रापकः (**असि**) (**तेन**)(**मे**) मह्यम् (**रध्य**) संराध्नुहि ॥ **अयं मन्त्रः शत० ५ । ४ । ४ । ६-२१ व्याख्यातः ॥ २८ ॥**

प्रमाणार्थ—(**सुशेवः**) 'शेव' शब्द निघं० (३ । ६) में सुख-नामों में पढ़ा है । इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । ४ । ४ । ६-२१) में की गई है ॥ १० । २८ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे बहुकार** बहूनां सुखानां कर्त्तः **श्रेयस्कर** कल्याणकर्त्तः **भूयस्कर** पुनः पुनरनुष्ठातः **ब्रह्मन्** ! प्राप्तब्रह्मविद्य ! **यथा यस्य ते**=**तव एताः पञ्च** पूर्वादयश्चतस्रोऽध ऊर्ध्वा चैका **दिशः कल्पेरन्, तथा मम भवत्पत्न्याः कल्पन्तां** सुख-युक्ता भवन्तु ।

यथा त्वभभिभूः दुष्टानां तिरस्कर्त्ता **असि, ब्रह्मा** चतुर्वेदाऽखिलराजप्रजासुखनिमित्तानां पदार्थानां निर्माता **असि, सविता** ऐश्वर्य्योत्पादकः **असि, सत्यप्रसवः** सत्येन कर्मणा प्रसवः=ऐश्वर्य्यं यस्य सः **वरुणः** वरस्वभावः **असि, सत्यौजाः** सत्यमोजो=बलं यस्य सः **इन्द्रः** सुखानां धाता **असि, विशौजाः** विशा=प्रजया सहौजः=पराक्रमो यस्य सः **सुशेवः** शोभनं शेवं=सुखं यस्य सः **रुद्रः** शत्रूणां=दुष्टानां रोदयिता **असि, इन्द्रस्य** ऐश्वर्यस्य **वज्रः** प्रापकः

भावार्थ—हे (**बहुकार**) नाना सुखों को उत्पन्न करने वाले, (**श्रेयस्कर**) कल्याणकारी, (**भूयस्कर**) बार बार शुभकर्मों का अनुष्ठान करने वाले (**ब्रह्मन्**) ब्रह्म विद्या को प्राप्त राजन् ! जैसे (**ते**) आपके लिये ये (**पञ्च**) पूर्व आदि चार तथा नीचे-ऊपर की एक=पांच दिशायें सुखयुक्त हों वैसे मुझे आपकी पत्नी के लिये भी (**कल्पन्ताम्**) सुख युक्त हों ।

जैसे आप (**अभिभूः**) दुष्टों का तिरस्कार करने वाले, (**ब्रह्मा**) चारों वेदों तथा सब राजा प्रजा के सुखों के हेतु पदार्थों के निर्माता (**असि**) हो, (**सविता**) ऐश्वर्य के उत्पादक (**असि**) हो, (**सत्य-प्रसवः**) सत्य कर्म से ऐश्वर्य को उत्पन्न करने वाले (**वरुणः**) श्रेष्ठ स्वभाव वाले (**असि**) हो, (**सत्यौजाः**) सत्य बल वाले (**इन्द्रः**) सुखों को धारण करने वाले (**असि**) हो, (**विशौजाः**) प्रजा के सहाय से पराक्रमी, (**सुशेवः**) उत्तम सुख वाले (**रुद्रः**) दुष्टों को रुलाने

असि, तथाऽहमपि भवेयम् ।

वाले (असि) हो, (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य को (वज्रः) प्राप्त कराने वाले (असि) हो । मैं आपकी पत्नी भी वैसी बनूं ।

यथाऽहं येन तुभ्यमृद्धिसिद्धिं कुर्य्यां तथा त्वं तेन मे मह्यं रध्य संराध्नुहि ॥ १० । २८ ॥

जैसे मैं जिस हेतु से आपके लिये ऋद्धि=ऐश्वर्य की सिद्धि करूँ वैसे आप उसी हेतु से (मे) मेरे लिये (रध्य) ऐश्वर्य को सिद्ध कीजिये ॥ १० । २८ ॥

[हे······ब्रह्मन् ! यथा······ते=तवैताः पञ्च दिशिः कल्पेरन् तथा मम भवत्पत्न्याः कल्पन्ताम् ।
यथा त्वम्······ब्रह्मा······सत्यप्रसवः······सुशेवः······असि······तथाऽहमपि भवेयम्]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ यथा पुरुषः सर्वदिक्, सुकीर्तिर्वेदप्रवीणः, सत्यकारी, सर्वस्य सुखप्रदो, धार्मिको जनो भवेत् तथा तत्पत्नी स्यात् ।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ जैसे पुरुष दिग्विजयी, कीर्तिमान्, वेद में प्रवीण, सत्याचरण करने वाला, सबको सुख देने वाला धार्मिक हो वैसी उसकी पत्नी भी होवे ।

[यथाऽहं······तुभ्यमृद्धिसिद्धिं कुर्यां तथा त्वं······मे रध्य]

ते राजधर्मं स्वीकृत्यास्माद् वहुसुखं वहुश्रियं च प्राप्नुवन्तु ॥ १० । २८ ॥

सब लोग राजधर्म को स्वीकार करके नाना सुख और नाना ऐश्वर्य को प्राप्त करें ॥ १० । २८ ॥

भा० पदार्थः—ब्रह्मा=वेदप्रवीणः । सत्यप्रसवः=सत्यकारी । सुशेवः=सर्वस्य सुखप्रदः ॥

भाष्यसार—१. **राजा कैसा हो**—राजा बहुत सुखों का उत्पादक, कल्याणकारी, शुभ कर्मों का बार बार अनुष्ठान करने वाला, ब्रह्मविद्या को जानने वाला, सब दिशाओं को विजय करने वाला, कीर्तिमान्, दुष्टों का तिरस्कार करने वाला, चारों वेदों का ज्ञाता तथा सब सुखदायक पदार्थों का निर्माता, सत्याचरण से ऐश्वर्य का उत्पादक, श्रेष्ठ स्वभाव वाला, सत्य बल वाला, सुखों को धारण करने वाला, प्रजा के सहयोग से पराक्रमयुक्त, सबको उत्तम सुख देने वाला, दुष्ट शत्रुओं को रुलाने वाला और ऐश्वर्य को प्राप्त कराने वाला धार्मिक पुरुष हो । उसकी पत्नी भी ऐसी ही हो ।

स्त्री-पुरुष राजधर्म को स्वीकार करके नाना सुख और नाना ऐश्वर्य को प्राप्त करें ॥

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि शब्द लुप्त है अतः वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि राजा के समान राजपत्नी भी कीर्ति आदि गुणों से भूषित हों ॥ १० । २८ ॥

शुनःशेपः । **अग्निः=विद्युत्, भौतिको राजा च** । स्वराडार्षी जगती । निषादः ॥

पुना राजप्रजाजनाः किंवत् किंकुर्युरित्याह ॥

फिर राजा और प्रजा के जन किसके समान क्या करें, यह उपदेश किया है ॥

अ॒ग्निः पृ॒थुर्धर्म॑ण॒स्पति॑र्जु॒षा॒णो ऽ अ॒ग्निः पृ॒थुर्धर्म॑ण॒स्पति॒राज्य॑स्य वे॒तु स्वाहा॑ ।
स्वाहा॑कृ॒ताः सूर्य॑स्य र॒श्मिभि॑र्यतध्वꣳ सजा॒ताना॑ मध्य॒मेष्ठ्या॑य ॥ २९ ॥

पदार्थः—(**अग्निः**) सूर्यइव (**पृथुः**) विस्तीर्णपुरुषार्थः (**धर्मणः**) धर्मस्य (**पतिः**) पालयिता (**जुषाणः**) सेवमानः (**अग्निः**) विद्युदिव (**पृथुः**) महान् (**धर्मणः**) न्यायस्य (**पतिः**) रक्षकः (**आज्यस्य**) घृतादेर्हविषः (**वेतु**) व्याप्नोतु (**स्वाहा**) सत्यया क्रियया (**स्वाहाकृताः**) याः स्वाहा=सत्यां क्रियां कुर्वन्ति

ताः (**सूर्यस्य**) (**रश्मिभिः**) (**यतध्वम्**) (**सजातानाम्**) जातैः सह वर्त्तमानानाम् (**मध्यमेष्ठ्याय**) मध्ये=पक्षपातरहिते भवे न्याये तिष्ठति तस्य भावाय ॥ **अयं मन्त्रः शत० ५ । ४ । ४ । २२–२३ व्याख्यातः ॥ २९ ॥**

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । ४ । ४ । २२–२३) में की गई है ॥ १० । २९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे राजन् राज्ञि वा! **यथा पृथुः** विस्तीर्णपुरुषार्थः **धर्मणः** धर्मस्य **पतिः** पालयिता **जुषाणः** सेवमानः **अग्निः** सूर्य इव **सजातानां** जातैः सह वर्त्तमानानां **मध्यमेष्ठ्याय** मध्ये=पक्षपातरहिते भवे न्याये तिष्ठति तस्य भावाय **स्वाहा** सत्यया क्रियया **आज्यस्य** घृतादेर्हविषः **वेति, सूर्यस्य रश्मिभिः सह हविः प्रसार्य्य सुखयति, तथा धर्मणः** न्यायस्य **पतिः** रक्षकः **पृथुः** महान् **जुषाणः** सेवमानः **अग्निः** विद्युदिव **भवान् राष्ट्रं वेतु** व्याप्नोतु । **तथा च**—

हे **स्वाहाकृताः** ! याः स्वाहा=सत्यां क्रियां कुर्वन्ति ताः **सभासत्स्त्रियः ! यूयमपि [यतध्वं] प्रयतध्वम्** ॥ १० । २९ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! वा रानी ! जैसे—(**पृथुः**) विस्तृत पुरुषार्थ वाला (**धर्मणः**) अपने धर्म का (**पतिः**) पालक (**जुषाणः**) सेवन करने योग्य (**अग्निः**) भौतिक अग्नि (**सजातानाम्**) प्राणियों के (**मध्यमेष्ठ्याय**) पक्षपात रहित न्याय के दृष्टान्तभाव के लिये (**स्वाहा**) सत्य क्रिया से (**आज्यस्य**) घृतादि की हवियों को प्राप्त करता है तथा सूर्य की किरणों के साथ हवि को प्रसारित करके सुख पहुँचाता है, वैसे—(**धर्मणः**) न्याय के (**पतिः**) रक्षक, (**पृथुः**) महान् (**जुषाणः**) सेवक (**अग्निः**) विद्युत् के समान आप राष्ट्र को (**वेतु**) प्राप्त कीजिये ।

हे (**स्वाहाकृताः**) सत्याचरण करने वाली सभासद् स्त्रियो ! तुम भी [**यतध्वम्**] ऐसा ही प्रयत्न करो ॥ १० । २९ ॥

[हे राजन्'''**यथा'''अग्निः सजातानां मध्यमेष्ठयाय'''आज्यस्य वेति, सूर्यस्य रश्मिभिः सह हविः प्रसार्य सुखयति तथा'''अग्निर्भवान् राष्ट्रं वेतु**]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ हे राजप्रजाजनाः ! यूयं—यथा सूर्यप्रसिद्धविद्युदग्निवद् वर्त्तित्वा, पक्षपातं विहाय समानजन्मसु मध्यस्थाः सन्तो न्यायं कुरुत, तथाऽयमग्निः सवितृप्रकाशे वायौ च सुगन्धं द्रव्यं प्राप्य वायुजलौषधिशुद्धिद्वारा सर्वान् प्राणिनः सुखयति, तथा न्याययुक्तैः कर्मभिः सहचरिता भूत्वा सर्वाः प्रजाः सुखयत ॥ १० । २९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ हे राजपुरुषो और प्रजाजनो ! तुम लोग—जैसे सूर्य, प्रसिद्ध अग्नि और विद्युत् के समान वर्ताव करके, पक्षपात को छोड़कर, समान आयु वालों में मध्यस्थ होकर न्याय करते हो, वैसे यह अग्नि सूर्य के प्रकाश में और वायु में सुगन्धित द्रव्य को पहुँचाकर वायु, जल और औषधियों की शुद्धि से सब प्राणियों को सुख देती है, वैसे न्याययुक्त कर्मों के अनुष्ठान से सब प्रजा को सुखी करो ॥ १० । २९ ॥

भा० पदार्थः—सजातानाम्=समानजन्मनाम् । मध्यमेष्ठ्याय=मध्यस्थः सन् ॥

भाष्यसार—**राजा और प्रजा क्या करे**—अग्नि मनुष्य के लिये पुरुषार्थ का विस्तारक है, अपने प्रकाश आदि धर्मों का पालक है, सेवन करने के योग्य है, अन्य भूतों के साथ पक्षपात रहित भाव से रहता है, अपनी सत्य चेष्टा से घृत आदि की हवि को प्राप्त करता है और उसे सूर्य की किरणों के द्वारा सर्वत्र फैलाकर प्राणियों को सुख देता है । राजा और प्रजाजन सूर्य, प्रसिद्ध स्थूल अग्नि और

विद्युत् के समान परस्पर व्यवहार करें । अर्थात् न्याय आदि अपने धर्मों के पालक बनें, पुरुषार्थ का विस्तार करने वाले होकर महान् बनें, परस्पर सेवक बनें, अपने समान आयु वालों में मध्यस्थ होकर पक्षपात छोड़कर न्याय करें । जैसे अग्नि सूर्य के प्रकाश में और वायु में सुगन्धित द्रव्य को फैलाकर वायु, जल और औषधियों की शुद्धि से सब प्राणियों को सुख पहुँचाता है, वैसे न्याययुक्त कर्मों का आचरण करके राजा लोग सब प्रजा को सुखी करें । सत्याचरण करने वाली सभासद् स्त्रियाँ भी ऐसा ही प्रयत्न किया करें ।। १० । २९ ।।

शुनःशेपः । **सवित्रादिमन्त्रोक्ताः**=वाय्वादयः । स्वराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप् । धैवतः ।।

कीदृग्गुणैः सह राज्ञा राज्या वा भवितव्यमित्युपदिश्यते ।।

राजा वा रानी को कैसे गुणों से युक्त होना चाहिये, इस विषय का उपदेश किया है ।।

सवित्रा प्रसवित्रा सरस्वत्या वाचा त्वष्ट्रा रूपैः पूष्णा पशुभिरिन्द्रेणास्मे । बृहस्पतिना ब्रह्मणा वरुणेनौजसाऽग्निना तेजसा सोमेन राज्ञा विष्णुना दशम्या देवतया प्रसूतः प्रसर्पामि ।। ३० ।।

पदार्थः—(**सवित्रा**) प्रेरकेण वायुना (**प्रसवित्रा**) सकलचेष्टोत्पादकेनेव शुभकर्मणा (**सरस्वत्या**) प्रशस्तविज्ञानक्रियायुक्तया (**वाचा**) वेदवाण्येव सत्यभाषणेन (**त्वष्ट्रा**) छेदकेन प्रतापिना सूर्य्येणेव न्यायेन (**रूपैः**) सुखस्वरूपैः (**पूष्णा**) पृथिव्या । **पूषेति पृथिवीना० ।। निघं० १ । १ ।।** (**पशुभिः**) गवादिभिरिव प्रजायाः पालनेन (**इन्द्रेण**) विद्युदिवैश्वर्य्येण (**अस्मे**) अस्माभिः (**बृहस्पतिना**) बृहतां पालकेन=चतुर्वेदविदा विदुषेव विद्यासुशिक्षाप्रचारेण (**ब्रह्मणा**) वेदार्थज्ञानेन ज्ञापनेनेवोपदेशकेन (**वरुणेन**) वरेण जलसमूहेनेव शान्त्या (**ओजसा**) बलेन (**अग्निना**) पावकेन (**तेजसा**) तीक्ष्णेन ज्योतिषेव शत्रुदाहकत्वेन (**सोमेन**) चन्द्रेण प्रकाशमानेनेवाह्लादकत्वेन (**राज्ञा**) प्रकाशमानेन (**विष्णुना**) व्यापकेन परमेश्वरेणेव शुभगुणकर्मस्वभावेन (**दशम्या**) दशानां पूरिकया (**देवतया**) देदीप्यमानया सह (**प्रसूतः**) प्रेरितः (**प्र**) प्रगतः (**सर्पामि**) चलामि ।। **अयं मन्त्रः शत० ५ । ४ । ५ । २ व्याख्यातः ।। ३० ।।**

प्रमाणार्थ—(**पूष्णा**) 'पूषा' शब्द निघं० (१ । १) में पृथिवी-नामों में पढ़ा है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । ४ । ५ । २) में की गई है ।। १० । ३० ।।

सपदार्थान्वयः—हे **प्रजाराजजनाः** ! यथाऽहं **प्रसवित्रा** सकलचेष्टोत्पादकेनेव शुभकर्मणा **सवित्रा** प्रेरकेण वायुना, **सरस्वत्या** प्रशस्तविज्ञान-क्रियायुक्तया **वाचा** वेदवाण्येव सत्यभाषणेन, **त्वष्ट्रा** छेदकेन प्रतापिना सूर्य्येणेव न्यायेन **रूपैः** सुखस्वरूपैः, **पूष्णा** पृथिव्या **पशुभिः** गवादिभिरिव प्रजायाः पालनेन, **इन्द्रेण** विद्युदिवैश्वर्य्येण **अस्मे** अस्माभिः, **ब्रह्मणा** वेदार्थज्ञानेन ज्ञापनेनेवोपदेशकेन **बृहस्पतिना** बृहतां पालकेन चतुर्वेदविदा विदुषेव विद्यासुशिक्षा-प्रचारेण, **ओजसा** बलेन **वरुणेन** वरेण=जलसमूहे-

भावार्थ—हे प्रजा और राजपुरुषो ! जैसे मैं—(**प्रसवित्रा**) सकल चेष्टाओं के उत्पादक शुभ-कर्मों के (**सवित्रा**) प्रेरक वायु से, (**सरस्वत्या**) प्रशंसनीय विज्ञान की क्रिया से युक्त (**वाचा**) वेद-वाणी के समान सत्यभाषण से, (**त्वष्ट्रा**) छेदक, प्रतापी सूर्य के समान न्याय के द्वारा (**रूपैः**) सुख-स्वरूप से, (**पूष्णा**) पृथिवी के द्वारा, (**पशुभिः**) गौ आदि पशुओं के समान प्रजा के पालन से, (**इन्द्रेण**) विद्युत् के समान ऐश्वर्यवान् (**अस्मे**) अपने लोगों से, (**ब्रह्मणा**) वेदार्थ के ज्ञाता और उपदेशक (**बृहस्प-**

नेव शान्त्या, **तेजसा** तीक्ष्णेन ज्योतिषेव शत्रुदाहकत्वेन **अग्निना**, पावकेन **राज्ञा** प्रकाशमानेन **सोमेन** चन्द्रेण प्रकाशमानेनेवऽऽह्लादकत्वेन **दशम्या** दशानां पूरिकया **देवतया** देदीप्यमानया सह, **विष्णुना** व्यापकेन परमेश्वरेणेव शुभगुणकर्मस्वभावेन **च सह प्रसूतः** प्रेरितः **सन् प्रसर्पामि** प्रगत्य चलामि, **तथा यूयमपि प्रसर्प्पध्वम्** ॥ १० । ३० ॥

तिना) बड़ों के रक्षक, चारों वेदों के वेत्ता विद्वान् के समान विद्या और सुशिक्षा के प्रचार से, (**ओजसा**) बलवान् (**वरुणेन**) जल के समान शान्ति से, (**तेजसा**) तीक्ष्ण ज्योति के समान शत्रुओं के दहकते (**अग्निना**) अग्नि से, (**राज्ञा**) प्रकाशमान (**सोमेन**) चन्द्रमा के समान आह्लादक गुण से, (**दशम्या**) दसवें (**देवतया**) देदीप्यमान देवता (**विष्णुना**) व्यापक परमेश्वर के समान शुभ गुण, कर्म, स्वभाव से (**प्रसूतः**) प्रेरित होकर (**प्रसर्पामि**) प्रगति करता हूँ, वैसे तुम लोग भी प्रगति करो ॥ १० । ३० ॥

[हे प्रजाराजजनाः ! यथाऽहं···त्वष्ट्रा···बृहस्पतिना···च सह प्रसूतः सन् प्रसर्पामि तथा यूयमपि प्रसर्प्पध्वम्]

भावार्थः—यो जनः सूर्य्यादिगुणयुक्तः पितृवत्प्रजापालकः स्यात् स राजा भवितुं योग्यः । यश्चैवं पुत्रवद् वर्त्तमानो भवेत् स प्रजा भवितुमर्हति ॥ १० । ३० ॥

भावार्थ—जो पुरुष सूर्य आदि के गुणों से युक्त और पिता के समान प्रजा का पालक हो वह राजा बनने के योग्य होता है, और जो इस प्रकार पुत्र के समान वर्ताव करे वह प्रजा बन सकती है ॥ १० । ३० ॥

भा० पदार्थः—त्वष्ट्रा=सूर्यगुणेन । बृहस्पतिना=पितृवत्प्रजापालकेन ॥

भाष्यसार—**राजा कैसा हो**—राजा सकल शुभ कर्मों का उत्पादक तथा प्रेरक वायु के समान शुभ कर्मों में निरत रहने वाला हो । प्रशस्त विज्ञान से युक्त वेदवाणी के समान सत्यभाषण करने वाला हो । अन्धकार के उच्छेदक, प्रतापवान् सूर्य के समान न्यायाचरण से स्वयं सुखी तथा प्रजा के लिये सुखदायक हो । गौ आदि पशुओं के पालन से पृथिवीस्थ प्रजा का पालक हो । विद्युत् के समान ऐश्वर्यवान् होकर अपनी प्रजा को भी ऐश्वर्यवान् करने वाला हो । स्वयं वेदार्थ का ज्ञाता तथा वेदार्थ का उपदेष्टा होकर चारों वेदों के ज्ञाता विद्वान् के समान विद्या और सुशिक्षा के प्रचार से पिता के समान प्रजा का पालक हो । जल के समान शान्ति से बलवान् हो । अग्नि के समान शत्रुओं का दाहक हो । चन्द्रमा की चाँदनी के समान प्रजा के चित्त का आह्लादक हो । सर्वव्यापक परमेश्वर के समान शुभ गुण, कर्म, स्वभाव से देदीप्यमान हो ।

जो पुरुष इन गुणों से युक्त हो वही राजा बन सकता है । और जो राजा के प्रति पुत्र के समान वर्ताव करे वह प्रजा हो सकती है ॥ १० । ३० ॥

शुनःशेपः । **क्षत्रपतिः**=राजा । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनर्मनुष्याः कीदृशा भूत्वा किं कुर्युरित्युपदिश्यते ॥

फिर मनुष्य कैसे हो के क्या करें, यह उपदेश किया है ॥

अश्विभ्यां पच्यस्व सरस्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय सुत्राम्णे पच्यस्व ।
वायुः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ्क्सोमो अतिस्रुतः । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ३१ ॥

पदार्थः—(**अश्विभ्याम्**) सूर्याचन्द्रमोभ्यामिवाऽध्यापकोपदेशकाभ्याम् (**पच्यस्व**) परिपक्वो भव (**सरस्वत्यै**) सुशिक्षितायै वाचे (**पच्यस्व**) (**इन्द्राय**) परमैश्वर्य्याय (**सुत्राम्णे**) सुष्ठु रक्षकाय (**पच्यस्व**) (**वायुः**) वायुरिव (**पूतः**) (**पवित्रेण**) शुद्धेन धर्माचरणेन निर्दोषः (**प्रत्यङ्**) प्रत्यञ्चतीति पूजितो भव (**सोमः**) ऐश्वर्य्यवान् सोमगुणसंपन्नो वा (**अतिस्रुतः**) अत्यन्तज्ञानवान् (**इन्द्रस्य**) परमेश्वरस्य (**युज्यः**) युक्तः (**सखा**) मित्रः ॥ **अयं मन्त्रः शत० ५ । ५ । ४ । २०-२२ व्याख्यातः ॥ ३१ ॥**

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । ५ । ४ । २०-२२) में की है ॥ १० । ३१ ॥

सपदार्थान्वयः—हे राजप्रजाजन ! **त्वमश्विभ्यां** सूर्य्याचन्द्रमोभ्यामिवाऽध्यापकोपदेशकाभ्यां **पच्यस्व** परिपक्वो भव, **सरस्वत्यै** सुशिक्षितायै वाचे **पच्यस्व** परिपक्वो भव, **सुत्राम्णे** सुष्ठु-रक्षकाय **इन्द्राय** परमैश्वर्य्याय **पच्यस्व** परिपक्वो भव ।

पवित्रेण शुद्धेन धर्माचरणेन निर्दोषः [**वायुः**]= **वायुरिव पूतः प्रत्यङ्** प्रत्यञ्चतीति पूजितो भव, **सोमः** ऐश्वर्य्यवान् सोमगुणसम्पन्नो वा **अतिस्रुतः** अत्यन्तज्ञानवान् **इन्द्रस्य** परमेश्वर **युज्यः** युक्तः **सखा** मित्रः **भव** ॥ १० । ३१ ॥

भाषार्थ—हे राजपुरुष और प्रजा जन ! तू (**अश्विभ्याम्**) सूर्य और चन्द्रमा के समान अध्यापक और उपदेशक से (**पच्यस्व**) पवित्र बन, (**सरस्वत्यै**) सुशिक्षित वाणी से (**पच्यस्व**) पवित्र बन, (**सुत्राम्णे**) श्रेष्ठ रक्षक (**इन्द्राय**) परम ऐश्वर्य के लिये (**पच्यस्व**) प्रयत्न कर ।

(**पवित्रेण**) शुद्ध धर्माचरण से [**वायुः**] वायु के समान पवित्र होकर (**प्रत्यङ्**) पूजा के योग्य बन, (**सोमः**) ऐश्वर्यवान् अथवा चन्द्र के गुणों से सम्पन्न तथा (**अतिस्रुतः**) अत्यन्त ज्ञानवान् होकर (**इन्द्रस्य**) परमेश्वर का (**युज्यः**) योगयुक्त (**सखा**) मित्र बन ॥ १० । ३१ ॥

[हे राजप्रजाजन ! त्वमश्विभ्यां पच्यस्व, सरस्वत्यै पच्यस्व,···पवित्रेण [वायुः]=वायुरिव पूतः प्रत्यङ् ···इन्द्रस्य युज्यः सखा भव]

भावार्थः—मनुष्या आप्तयोरध्यापकोपदेशकयोः सकाशात् सुशिक्षां प्राप्य शुद्धैर्धर्माचरणैः स्वात्मानं पवित्रीकृत्य योगाङ्गैरीश्वरमुपास्यैश्वर्य्याय प्रयत्य परस्परं सखायो भवन्तु ॥ १० । ३१ ॥

भावार्थ—मनुष्य-आप्त-अध्यापक और उपदेशकों से सुशिक्षा को प्राप्त करके, शुद्ध धर्माचरणों से आत्मा को पवित्र करके, योगाङ्गों के अनुष्ठान से ईश्वर की उपासना कर, ऐश्वर्य के लिये प्रयत्न कर परस्पर मित्र बनें ॥ १० । ३१ ॥

भा० पदार्थः—अश्विभ्याम्=आप्ताध्यापकोपदेशकाभ्याम् ।

भाष्यसार—**मनुष्य क्या करें**—सूर्य और चन्द्रमा के समान विद्या आदि शुभगुणों से प्रकाशमान आप्त अध्यापक और उपदेशक लोगों से उत्तम शिक्षा को प्राप्त करें । उत्तम रीति से रक्षा करने वाले परम ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करें । विशुद्ध धर्माचरण से अपनी आत्मा को पवित्र करके सुगन्धित वायु के समान सबको पवित्र करें । पूजा के योग्य बनें । ऐश्वर्यवान् बनें तथा सोम्य गुणों से सम्पन्न हों । अत्यन्त ज्ञानवान् हों । योगाङ्गों के अनुष्ठान से परमेश्वर के योगयुक्त=योगी सखा हों ॥ १० । ३१ ॥

शुनःशेपः । **क्षत्रपतिः=राजा** । निचृद्ब्राह्मी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

राजादिसभ्यैः प्रजायै किंवत्किं किङ्कर्तव्यमित्याह ॥

राजा आदि सभा के पुरुष प्रजा के लिये किस के तुल्य क्या करें, यह उपदेश किया है ॥

कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय।
इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमऽउक्तिं यजन्ति।
उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे॥ ३२॥

पदार्थः—(**कुवित्**) बह्वैश्वर्य्यः। कुविदिति बहुना० ॥ निघं० ३ । १ ॥ (**अङ्ग**) योऽङ्गति=जानाति तत्सम्बुद्धौ (**यवमन्तः**) बहवो यवा विद्यन्ते येषां ते कृषीबलाः (**यवम्**) (**चित्**) अपि (**यथा**) (**दान्ति**) लुनन्ति (**अनुपूर्वम्**) क्रमशः (**वियूय**) बुसानिकं पृथक्कृत्य (**इहेह**) अस्मिन्नस्मिन्व्यवहारे (**एषाम्**) कृषीबलानाम् (**कृणुहि**) कुरु (**भोजनानि**) (**ये**) (**बर्हिषः**) वृद्धाः (**नमउक्तिम्**) नमसोऽन्नस्योक्ति=वचनम् (**यजन्ति**) संगच्छन्ते (**उपयामगृहीतः**) ब्रह्मचर्यनियमैः स्वीकृतः (**असि**) (**अश्विभ्याम्**) व्याप्तविद्याभ्यां शिक्षकाभ्याम् (**त्वा**) त्वाम् (**सरस्वत्यै**) विद्यायुक्तवाचे (**त्वा**) (**इन्द्राय**) उत्तमैश्वर्य्याय (**त्वा**) (**सुत्राम्णे**) सुष्ठुत्राणाय ॥ अयं मन्त्रः शत० ५ । ५ । ४ । २४ व्याख्यातः ॥ ३२ ॥

प्रमाणार्थ—(**कुवित्**) यह शब्द निघं० (३ । १) में अधिक-नामों में पढ़ा है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । ५ । ४ । २४) में की गई है॥ १० । ३२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे अङ्ग ! योऽङ्गति=जानाति तत्सम्बुद्धौ **राजन् ! यः** कुवित् बह्वैश्वर्य्यः **त्वमश्विभ्यां** व्याप्तविद्याभ्यां शिक्षकाभ्याम् **उपयामगृहीतः** ब्रह्मचर्य्यनियमैः स्वीकृतः **असि, तं सरस्वत्यै** विद्यायुक्तवाचे **त्वा** त्वाम्, **इन्द्राय** उत्तमैश्वर्य्याय **त्वा**, [**सुत्राम्णे**] सुष्ठुत्राणाय **त्वा, वयं स्वीकुर्मः**।

ये बर्हिषः वृद्धाः **नमउक्तिम्** नमसोऽन्नस्योक्ति वचनं **यजन्ति** संगच्छन्ते, **तेभ्यः सत्कारेण** [**भोजनानि**]=**भोजनादीनि देहि**।

यथा यवमन्तः बहवो यवा विद्यन्ते येषान्ते कृषीवलाः **इहेह** अस्मिन्नस्मिन्व्यवहारे **यवमनुपूर्वं** क्रमशः **दान्ति** लुनन्ति, **बुसाच्चित्** अपि **यवं वियूय** बुसादिकं पृथक्कृत्य **रक्षन्ति, तथैषां** कृषीवलानां **सत्याऽसत्ये विविच्य रक्षणं कृणुहि** कुरु ॥ १० । ३२ ॥

भाषार्थ—हे (**अङ्ग**) ज्ञानवान् राजन् ! आप (**कुवित्**) बहुत ऐश्वर्य वाले हो, (**अश्विभ्याम्**) विद्या को प्राप्त शिक्षकों द्वारा (**उपयामगृहीतः**) ब्रह्मचर्य आदि नियमों के पालन से स्वीकार किये गये (**असि**) हो, सो (**सरस्वत्यै**) विद्यायुक्त वाणी के लिये (**त्वा**) आपको, (**इन्द्राय**) उत्तम ऐश्वर्य के लिये (**त्वा**) आपको, [**सुत्राम्णे**] सुरक्षा के लिये (**त्वा**) आपको हम लोग स्वीकार करते हैं।

जो (**बर्हिषः**) वृद्ध लोग (**नमउक्तिम्**) अन्न विषयक वचन (**यजन्ति**) कहते हैं उन्हें सत्कार-पूर्वक [**भोजनानि**] भोजन आदि दीजिये।

जैसे (**यवमन्तः**) किसान लोग (**इहेह**) इस कृषि-व्यवहार में (**यवम्**) जौ को (**अनुपूर्वम्**) क्रमशः (**दान्ति**) काटते हैं, (**बुसाच्चित्**) और भूसे से (**यवम्**) जौ को (**वियूय**) अलग करके (**रक्षन्ति**) रखते हैं, वैसे (**एषाम्**) इन किसानों की सत्य और असत्य का विवेक करके रक्षा (**कृणुहि**) रक्षा कीजिये॥ १० । ३२ ॥

[हे···राजन् !···यथा यवमन्त इहेह यवमनुपूर्वं दान्ति, बुसाच्च यवं वियूय रक्षन्ति, तथैतेषां सत्याऽसत्ये विविच्य रक्षणं कृणुहि]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः॥ यथा कृषीवलाः परिश्रमेण पृथिव्याः सकाशादनेकानि फलादीन्युत्पाद्य, संरक्ष्य भुञ्जते, निस्सारं त्यजन्ति, यथाविहितं भागं राज्ञे ददति, तथैव राजादिभिर्जनैरति-

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है॥ जैसे किसान लोग परिश्रम से पृथिवी से नाना फल आदि उत्पन्न कर, उनकी रक्षा करके खाते हैं और असार भाग को छोड़ देते हैं और निर्धारित

श्रमेणैतान् संरक्ष्य, न्यायेनैश्वर्यमुत्पाद्य, सुपात्रेभ्यो दत्त्वाऽऽनन्दोभोक्तव्यः ॥ १० । ३२ ॥

भाग राजा को देते हैं, वैसे राजा आदि लोग अत्यन्त पुरुषार्थ से इनका संरक्षण करके, न्याय से ऐश्वर्य को उत्पन्न कर, सुपात्रों को दान करके आनन्द को भोगें ॥ १० । ३२ ॥

भाष्यसार—**१. राजा आदि सभासद् प्रजा के लिये क्या करें**—आप्त अध्यापक और उपदेशक ये दोनों शिक्षक ब्रह्मचर्य आदि नियमों की शिक्षा से राजा को ज्ञानवान् और बहु-ऐश्वर्यवान् बनावें। और प्रजाजन विद्या तथा उत्तम ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये तथा सुरक्षा के लिये राजा को स्वीकार करें। वृद्ध लोग राजा से अन्न आदि पदार्थों की याचना करें और राजा उन्हें सत्कारपूर्वक भोजन, वस्त्र आदि प्रदान करे।

जैसे किसान लोग कृषि-व्यवहार में परिश्रम से पृथिवी से नाना जौ आदि अन्न तथा फलों को उत्पन्न करते हैं। उनका संरक्षण करते हैं और उनका सेवन (**भक्षण**) करते हैं। और जो भूसा आदि असार भाग होता है, उसे छोड़ देते हैं, वैसे राजा आदि सभासद् लोग अत्यन्त पुरुषार्थ से इनकी रक्षा करें। अन्न और भूसे के तुल्य सत्य-असत्य का विवेचन करके न्याय से ऐश्वर्य को उत्पन्न करें। उत्पन्न ऐश्वर्य को सुपात्रों को दान करें। इस प्रकार राजा और प्रजा आनन्द को भोगें।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में 'चित्' शब्द उपमावाचक है, अतः उपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि जैसे किसान अन्न और भूसे को अलग करता है वैसे राजा लोग सत्य और असत्य का विवेचन करके किसान आदि प्रजाजनों की रक्षा करें ॥ १० । ३२ ॥

शुनःशेपः । **अश्विनौ=सभासेनाऽध्यक्षौ** । निचृदनुष्टुप् । गांधारः ॥

सभासेनेशाभ्यां प्रयत्नतो वणिग्जनाः संरक्ष्या इत्याह ॥

सभा और सेनापति प्रयत्न से वैश्यों की रक्षा करें, यह उपदेश किया है ॥

युवꣳ सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा । विपिपाना शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम् ॥ ३३ ॥

पदार्थः—(**युवम्**) युवाम् (**सुरामम्**) सुष्ठु रमन्ते यस्मिन् तम् (**अश्विना**) सूर्य्याचन्द्रमसाविव सभासेनेशौ (**नमुचौ**) न मुञ्चति स्वकीयं कर्म यस्तस्मिन् (**आसुरे**) असुरस्य=मेघस्याऽयं व्यवहारस्तस्मिन्। असुर इति मेघना० ॥ निघं० १ । १० ॥ (**सचा**) सत्यसमवेतौ (**विपिपाना**) विविधं राज्यं रक्षमाणौ (**शुभः**) कल्याणकरस्य व्यवहारस्य (**पती**) पालयितारौ (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्यवन्तं धनिकम् (**कर्मसु**) कृष्यादिक्रियासु प्रवर्त्तमानम् (**आवतम्**) रक्षतम् ॥ अयं मन्त्रः शत० ५ । ५ । ४ । २५ व्याख्यातः ॥ ३३ ॥

प्रमाणार्थ—(**आसुरे**) 'असुर' शब्द निघं० (१ । १०) में मेघ-नामों में पढ़ा है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५ । ५ । ४ । २५) में की गई है ॥ १० । ३३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **सचा** सत्समवेतौ **विपिपाना**! विविधं राज्यं रक्षमाणौ **शुभः** कल्याणकरस्य व्यवहारस्य **पती** पालयितारौ **अश्विना**! सूर्य्याचन्द्रमसाविव सभासेनेशौ! **युवं** युवां **नमुचौ** न मुञ्चति स्वकीयं कर्म यस्तस्मिन् **आसुरे** असुरस्य=मेघस्याऽयं व्यवहारस्तस्मिन् **कर्मसु**

भाषार्थ—हे (**सचा**) सत्य से संयुक्त **विपिपाना**! विविध राज्य के रक्षक, (**शुभः**) कल्याणकारी व्यवहार के (**पती**) पालक (**अश्विनौ**) सूर्य और चन्द्रमा के समान सभापति और सेनापति लोगो! (**युवम्**) तुम दोनों—(**नमुचौ**) अपने कर्म को न छोड़ने वाले (**आसुरे**) मेघ के व्यवहार में

कृष्यादिक्रियासु प्रवर्त्तमानं **वर्तमानं सुरामं** सुष्ठु रमन्ते यस्मिन् तम् **इन्द्रं** परमैश्वर्य्यवन्तं धनिकं **सततमावतं** रक्षतम् ॥ १० । ३३ ॥

तथा (**कर्मसु**) कृषि आदि कार्यों में लगे हुये (**सुरामम्**) अत्यन्त रमण करने योग्य (**इन्द्रम्**) परम ऐश्वर्यवान् धनिक पुरुष की सदा (**आवतम्**) रक्षा करो ॥ १० । ३३ ॥

[हे...अश्विना ! युवं... कर्मसु वर्तमानं सुराममिन्द्रं सततमावतम्]

भावार्थः—दुष्टेभ्यः श्रेष्ठानां रक्षणायैव राजभावः प्रवर्त्तते । नहि राजरक्षणेन विना कस्यचित् कर्मचारिणः कर्मणि निर्विघ्नेन प्रवृत्तिर्भवितुं योग्याऽस्ति, न च खलु प्रजाजनाऽऽनुकूल्यमन्तरा राजपुरुषाणां सुस्थिरता जायते । तस्माद्—वन-सिंहवत् परस्परं सहायेन सर्वे राजप्रजाजनाः सदा सुखिनः स्युः ॥ १० । ३३ ॥

भावार्थ—दुष्टों से श्रेष्ठों की रक्षा के लिये ही राजा की आवश्यकता है । राजा के संरक्षण के विना किसी कर्मचारी की कर्म में निर्विघ्न प्रवृत्ति नहीं हो सकती, और न ही प्रजा-जनों की अनुकूलता के विना राजपुरुषों में स्थिरता उत्पन्न हो सकती है, अतः वन-सिंह सम्बन्ध के समान परस्पर सहयोग से सब राजा और प्रजाजन सदा सुखी रहें ॥ १० । ३३ ॥

भाष्यसार—**राजा वैश्य-जनों की रक्षा करे**—सूर्य और चन्द्रमा के समान विद्यादि शुभगुणों से प्रकाशमान सभापति राजा और सेनापति दोनों सत्य से संयुक्त रहें । विविध राज्य की रक्षा करें । कल्याणकारी व्यवहारों के पालक हों । जैसे मेघ अपने वर्षा आदि व्यवहारों को नहीं छोड़ते वैसे कृषि आदि कर्मों में सदा प्रवृत्त रहने वाले, उत्तम सुख देने वाले, परम ऐश्वर्यवान्, धनिक वैश्य जनों की सभापति राजा और सेनापति लोग प्रयत्न से रक्षा करें । क्योंकि दुष्टों से श्रेष्ठजनों की रक्षा के लिये ही राजा की आवश्यकता होती है । राजा के संरक्षण के विना कोई भी कर्मचारी अपने कार्य में निर्विघ्न होकर प्रवृत्त नहीं हो सकता । प्रजा की अनुकूलता के विना राजपुरुष भी स्थिर नहीं रह सकते । जैसे वन से सिंह और सिंह से वन संरक्षित है वैसे राजा और प्रजा परस्पर सहायक होकर सदा सुखी रहें ॥ १० । ३३ ॥

शुनःशेपः । ***अश्विनौ***=**सभासेनाऽध्यक्षौ** ॥ भुरिक् पंक्तिः ॥ पञ्चमः ॥

राजप्रजे पितापुत्रवद्वर्त्तेयातामित्याह ॥

राजा और प्रजा को पिता पुत्र के समान वर्ताव करना चाहिये, यह उपदेश किया है ॥

पुत्रमिव पितराविश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्द्‌ꣳसनाभिः ।
यत्सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥ ३४ ॥

पदार्थः—(**पुत्रमिव**) यथाऽपत्यानि (**पितरौ**) जननीजनकौ (**अश्विना**) सभासेनेशौ (**उभा**) द्वौ (**इन्द्र**) सर्वसभेश राजन् ! (**आवथुः**) सर्वं राज्यं रक्षेथाम् (**काव्यैः**) कविभिः=परमविद्वद्भिर्धार्मिकैर्निर्मितैः (**दंसनाभिः**) कर्मभिः (**यत्**) यः (**सुरामम्**) शोभन आरामो येन रसेन तम् (**व्यपिबः**) विविधतया पिब (**शचीभिः**) प्रज्ञाभिः (**सरस्वती**) विद्यासुशिक्षिता वागिव पत्नी (**त्वा**) त्वाम् (**मघवन्**) पूजितधनवन् (**अभिष्णक्**) उपसेवताम् । भिष्णज् उपसेवायामिति कण्ड्वादिधातोर्लङि विकरणव्यत्ययेन यको लुक् । अन्यत्कार्य्यं स्पष्टम् ॥ अयं मन्त्रः शत० ५ । ५ । ४ । २६ व्याख्यातः ॥ ३४ ॥

प्रमाणार्थ—(**अभिष्णक्**) यहाँ कण्ड्वादिगण की उपसेवा अर्थ वाली 'भिष्णज्' धातु से

लङ् लकार में विकरण का व्यत्यय और 'श्नक्' का लुक् है। शेष कार्य स्पष्ट है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (५।५।४।२६) में की गई है ॥ १०। ३४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मघवन्** पूजित-धनवन् **इन्द्र** ! सर्वसभेश राजन् ! [यत्]=**यस्त्वं शचीभिः** प्रज्ञाभिः **सुरामं** शोभन आरामो येन रसेन तं **व्यपिबः** विविधतया पिब, **तं त्वा** त्वां **सरस्वती** विद्यासुशिक्षिता वागिव पत्नी **अभिष्णक्** उपसेवताम्।

भाषार्थ—हे (**मघवन्**) पूजित धनवान् (**इन्द्र**) सब सभाओं के स्वामी राजन् ! आप (**शचीभिः**) बुद्धि के निमित्त (**सुरामम्**) उत्तम सुख देने वाले रस को (**व्यपिबः**) विविध प्रकार से पीजिये, सो (**त्वा**) आपकी सरस्वती विद्या और सुशिक्षा से युक्त वाणी के समान पत्नी (**अभिष्णक्**) सेवा करे।

हे **अश्विना** ! सभासेनेशौ ! **राजाऽऽज्ञापितौ** [उभा]=उभौ द्वौ **सेनापति-न्यायाधीशौ** ! **युवां काव्यैः** कविभिः=परमविद्वद्भिर्धार्मिकैः निर्मितैः **दंसनाभिः** कर्मभिः **पितरौ** जननी-जनकौ **पुत्रमिव** यथाऽपत्यानि **राज्यमावथुः** सर्वं राज्यं रक्षेथाम् ॥ १० । ३४ ॥

हे (**अश्विनौ**) न्यायाधीश सभापति और सेनापति लोगो ! राजा की आज्ञा को प्राप्त करके [**उभौ**] तुम दोनों (**काव्यैः**) परम विद्वान् धार्मिक पुरुषों से रचे काव्यों से प्रतिपादित (**दंसनाभिः**) कर्मों से, जैसे (**पितरौ**) माता-पिता (**पुत्रमिव**) पुत्र की रक्षा करते हैं वैसे सब राज्य की (**आवथुः**) रक्षा करो ॥ १० । ३४ ॥

[हे······इन्द्र !······वे त्वा सरस्वत्यभिष्णक्]

भावार्थः—सर्वशुभगुणयुक्तो राजधर्ममाश्रितो धार्मिकोऽध्यापको युवा सन् हृद्यां, स्वसदृशीं, विदुषीं, सुलक्षणां, रूपलावण्यादिगुणैः सुशोभितां स्त्रियमुद्वहेत्। या सततं पत्यनुकूला भवेत्, स्वयं च तदनुकूलः स्यात्।

भावार्थ—सब शुभ गुणों से युक्त, राज धर्म को प्राप्त, धार्मिक, अध्यापक, युवा होकर, हृदय को प्रिय लगने वाली, अपने सदृश गुणों वाली, विदुषी, उत्तम लक्षणों वाली, रूप आदि गुणों से सुशोभित स्त्री के साथ विवाह करे। जो सदा पति के अनुकूल रहे और पुरुष भी उसके अनुकूल रहा करे।

[हे अश्विना······युवां काव्यैर्दंसनाभिः पितरौ पुत्रमिव राज्यमावथुः]

सामात्यभृत्यस्त्रीकः प्रजास्वाप्तरीत्या पितृवद् वर्त्तेत, प्रजाश्च पुत्रवत्। परस्परं प्रेम्णा सहाऽऽह्लादिताः सर्वे स्युरिति ॥ १० । ३४ ॥

राजा अपने मन्त्री, भृत्य और स्त्री के सहित प्रजा में आप्त विद्वानों की रीति से पिता के समान वर्ताव रखें, और प्रजा अपने आपको पुत्र समझे। इस प्रकार परस्पर प्रेम से सब प्रसन्न रहें ॥ १० । ३४ ॥

भा० पदार्थः—सरस्वती=हृद्या, स्वसदृशी, विदुषी, सुलक्षणा, रूपलावण्यादिगुणैः सुशोभिता स्त्री ॥

भाष्यसार—**राजा और प्रजा का परस्पर व्यवहार**—सब सभाओं का अध्यक्ष राजा धन आदि सब शुभगुणों से सम्पन्न, राजधर्म को जानने वाला धार्मिक विद्वान् हो। वह बुद्धि की प्राप्ति के लिये उत्तम रसों का पान करे। युवा होकर प्रिया, अपने सदृश गुणों वाली, विदुषी, उत्तम लक्षणों से

युक्त, रूप आदि गुणों से सुशोभित स्त्री के साथ विवाह करे। स्त्री सदा पति के अनुकूल रहे और पति भी स्त्री के अनुकूल रहा करे।

सर्वसभाध्यक्ष राजा सेनापति, न्यायाधीश, मन्त्रिगण, भृत्य और अपनी पत्नी इन सब को आज्ञा करे कि तुम लोग प्रजा में धार्मिक आप्त-विद्वानों की रीति से व्यवहार करो। जैसे माता-पिता अपने पुत्र की रक्षा करते हैं वैसे प्रजा की रक्षा करो। परस्पर प्रेम से वर्ताव करके सदा प्रसन्न रहो ॥ १० । ३४ ॥

[पूर्वापराध्यायार्थसंगतिमाह—]

अत्र राजप्रजाधर्मोक्तत्वादेतदर्थस्य पूर्वाध्यायार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति बोध्यम् ॥ ३४ ॥

इस अध्याय में राजधर्म और प्रजाधर्म का उपदेश होने से इस अध्याय की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति समझें ॥ ३४ ॥

इति श्रीयुतपण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते दयानन्द-यजुर्वेदभाष्य-भास्करे दशमोऽध्यायः सम्पूर्णः ॥

आर्ष ग्रन्थ ही पढ़ें

महान् विषय है—जो महाशय महर्षि लोगों ने सहजता से महान् विषय अपने ग्रन्थों में प्रकाशित किया है, वैसा इन क्षुद्राशय मनुष्यों के कल्पित ग्रन्थों में नहीं।

थोड़ा समय लगता है—महर्षि लोगों का आशय जहाँ तक हो सके वहाँ तक सुगम और जिसके ग्रहण में समय थोड़ा लगे, इस प्रकार का होता है।

मोतियों का पाना है—'आर्ष ग्रन्थों का पढ़ना ऐसा है कि जैसे एक गोता लगाना बहुमूल्य मोतियों का पानां।' (स० प्र०, ३ स०)

ऋषि सब जानते थे—'ऋषि-प्रणीत ग्रन्थों को इसलिए पढ़ना चाहिये कि वे बड़े विद्वान् सर्वशास्त्रविद् धर्मात्मा थे।' (स० प्र०, ३ स०)

बुद्धि धन देते हैं–'शीघ्र वृद्धि, धन और हित की वृद्धि करने हारे शास्त्र और वेद हैं, उनको नित्य सुनें।'

आर्ष ग्रन्थ

४ वेद, ४ उपवेद, ४ ब्राह्मण, १० उपनिषद्

६ उपाङ्ग—पूर्व मीमांसा (व्यास भाष्य), वैशेषिक (गौतम भाष्य, प्रशस्तपाद भाष्य), न्याय (वात्स्यायन भाष्य), योग (व्यास भाष्य), सांख्य (भागुरि भाष्य), वेदान्त (वात्स्यायन वा बौधायन भाष्य)।

६ अङ्ग—पाणिनीय शिक्षा सूत्र रूप; व्याकरण (अष्टाध्यायी, महाभाष्य) निघण्टु निरुक्त कल्प (यज्ञ, योग्य संस्कार ग्रन्थ तथा षड्-दर्शन भी कल्प अङ्ग हैं)। छन्द (पिंगल सूत्र); ज्योतिष (सूर्य सिद्धान्त आदि)। प्रक्षिप्त श्लोक छोड़कर मनुस्मृति; इतिहास-वाल्मीकिरामायण, महाभारत।

'ऋषि प्रणीत पुस्तकों के स्वाध्याय से ये सब मूर्तिपूजादि भ्रान्त धारणाएँ स्वयं नष्ट हो जाएँगी।'—गुरु विरजानन्द

अनार्ष ग्रन्थ न पढ़ें

झूठा झगड़ा मचाया—"आजकल के अनार्ष-नवीन ग्रन्थों को पढ़ने और प्राकृत (हिन्दी) भाषा वालों ने ऋषि-प्रणीत ग्रन्थ न पढ़कर नवीन क्षुद्रबुद्धि-कल्पित संस्कृत और भाषा के ग्रन्थ पढ़कर एक-दूसरे की निन्दा में तत्पर हो के झूठा झगड़ा मचाया है।"

॥ ओ३म् ॥

आर्ष साहित्यप्रचार ट्रस्ट के प्रकाशन

सत्यार्थप्रकाश स्थूलाक्षर--साइज २२ × ३०÷८ पृ० ८५६, कागज सफेद बढ़िया, सुन्दर छपाई, सजिल्द । मूल्य १०) फुल कपड़ा जिल्द ११) २५ पैसे मोटा टाइप ।

सत्यार्थप्रकाश पुस्तक साइज—पृष्ठ ८५६ कागज सफेद बढ़िया मूल्य अजिल्द ३) ६० पैसे सजिल्द ४) ।

सत्यार्थप्रकाश गुटका साइज—२२ × ३०÷३२; पृष्ठ ८६४, कागज सफेद बढ़िया सुन्दर छपाई, अजिल्द २), सजिल्द २ रु० ३० पै०, पूरी कपड़ा जिल्द, २ रु० ७० पै० ।

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका—२० × २६÷८, पृष्ठ ४००, मू० सजिल्द ४ रु० ७५ पै० अजिल्द ४ रु० प्रथम संस्करण का फोटो आफसट प्रिन्ट ।

सत्यार्थप्रकाश और संस्कारविधि के द्वितीय संस्करण से छपे फोटो आफसट प्रिन्ट संस्करण समाप्त हो गये हैं ।

दयानन्द लघुग्रन्थ-संग्रह—सम्पादक श्री पं० सुदर्शनदेव आचार्य

इसमें महर्षि-रचित १—वेदविरुद्ध मत-खण्डन, २—वेदान्तध्वान्तनिवारण, ३—शिक्षापत्रीध्वान्तनिवारण, ४—वेदभाष्य के नमूने का अंक, ५—भ्रांतिनिवारण, ६—पंचमहायज्ञविधि, ७—आर्योद्देश्यरत्नमाला, ८—व्यवहारभानु, ९—भ्रमोच्छेदन, १०—अनुभ्रमोच्छेदन, ११—गोकरुणानिधि, १२—स्वीकार पत्र, १३—आर्यसमाज के नियमोद्देश्य तथा उपनियम (लाहौर में बने हुए) तथा बम्बई में बने इन चौदह ग्रन्थों का संग्रह है । वर्तमान समय में इन ग्रन्थों के विषयों का प्रचार नहीं । अतः इनमें से कई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों के विषयों का भी प्रायः लोगों को पता नहीं । पाठक ऋषि के समस्त ग्रन्थों का सरलता से अध्ययन करके उनके बहुमूल्य विचारों से इस ग्रन्थ द्वारा लाभ प्राप्त कर सकेंगे । पृष्ठ ४४८, मू० अजिल्द ३), सजिल्द ३ रु० ५० पैसे ।

दयानन्द शास्त्रार्थ संग्रह—साइज १८ × २२÷८ पृष्ठ २८८, मूल्य अजिल्द ३) ।
सत्यार्थप्रकाश के संशोधनों की समीक्षा—साइज २० × ३०÷१६, पृ० २०८; मू० अजिल्द ५० पैसे ।
गोकरुणानिधि—साइज २० × ३०÷१६; पृष्ठ ३२; मू० १२ पै० ।
पंचमहायज्ञविधि—साइज २० × ३०÷१६; पृ० ५२; मू० २५ पैसे, कवर-सहित ।
व्यवहारभानु—साइज २० × ३०÷१६; पृ० ५६; मू० २५ पैसे मोटे कवर-सहित ।
आर्योद्देश्यरत्नमाला—साइज २० × ३०÷१६; पृ० १६; मूल्य ८ पैसे, कवर-सहित ।

महर्षिवेद-भाष्य-विबोध—लेखक—श्री पं० सुदर्शनदेव आचार्य । साइज २०" × २६"÷८; पृष्ठ ७६, मूल्य ७५ पैसे । महर्षि-कृत वेदभाष्य एवं उसकी रीति तथा विशेषता को ठीक-ठीक प्रतिपादित करते हुए उनके भाष्य को समझने के लिए यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय को व्याख्या सहित नमूने के रूप में प्रस्तुत किया गया है ।

आर्याभिविनय—[पदार्थ प्रदीप टीका सहित] । **टीकाकार**—श्री पं० सुदर्शनदेव आचार्य एम० ए० ।

महर्षि ने इस ग्रन्थ में व्याख्या धारा-प्रवाह भाषा में लिखी है । यत्र तत्र मन्त्र के अंश भी उद्धृत किये हैं । इस प्रदीप टीका से मन्त्र के प्रत्येक पद का महर्षि व्याख्यानुसार क्या अर्थ है यह ज्ञान भी सरलता से हो जायेगा । आर्षवेदार्थ ही एक मात्र प्रामाणिक है मूल्य २) । साइज २०" × ३०" =१६ पृष्ठ २०० मू० अजिल्द २), सजिल्द २) ५० पैसे ।

आर्य संगीतसागर—२४९ उत्तमोत्तम संगीतों का संग्रह । १ रु० ४० पैसे, सजिल्द ।

महर्षि दयानन्दसरस्वतीजीवनचरित्र—अमरशहीद पं० लेखराम द्वारा संकलित मौलिक, प्रामाणिक, सर्वोत्तम उर्दूभाषा का सर्वप्रथम हिन्दी में अनुवाद। साइज २०"×३०"÷८, पृष्ठ १०४०, बढ़िया सफेद कागज, सुन्दर छपाई, फुल कपड़े की जिल्द, मूल्य प्रचारार्थ १६ रुपया।

दयानन्द सन्ध्या हवन पद्धति—लेखक—श्री पं० सुदर्शनदेव आचार्य।

ऋषि-पद्धति क्या है ? यह बोध तथा ऋषि-विधि का समन्वय उसके समस्त ग्रन्थों के वचनों द्वारा कराया गया है। ऋषि के प्रामाणिक शुद्ध मन्त्रार्थ को ही व्याख्या सहित इस ग्रन्थ में दिया गया है। प्रत्येक मन्त्र के साथ आर्य भाषा में कविता द्वारा ऋषि के मन्त्रार्थ का रसास्वादन कराया गया है। परिशिष्ट में ईश्वर-स्तुति, प्रार्थनोपासना क्या है, इसका विवेचन ऋषि-वचनों से करके तत्सम्बन्धी ऋषि-ग्रन्थों में आये लगभग ३० मन्त्रों को व्याख्या सहित दिया गया है। साइज.२०"×३०"=१६ पृष्ठ १६२ कागज ३१ पौंड मैपलिथो मूल्य अजिल्द २), सजिल्द २) ५० पैसे।

प्रमाणसूची—ऋषि दयानन्द के सत्यार्थप्रकाश से लेकर वेदभाष्य पर्यन्त सम्पूर्ण ग्रन्थों तथा समस्त जीवन चरित्रों, पत्र विज्ञापन, उपदेशमञ्जरी और शास्त्रार्थों में उद्धृत वेदादि ग्रन्थों के क्रम से तथा मतवादियों के ग्रन्थों के अप्रमाण वचनों को पृथक्-पृथक् ग्रन्थों के नामोल्लेख पूर्वक अकारादि क्रम से बड़े पुरुषार्थ से यह सूची तैय्यार की गई है। एवं समस्त प्रमाणों की एकत्रित सूची भी अकारादि क्रम से इस ग्रन्थ में होगी। इसकी सहायता से स्वाध्यायशील आर्य विद्वान् किसी भी प्रामाणिक तथा अप्रामाणिक वचन का ऋषिकृत व्याख्यान बड़ी सरलता से प्राप्त कर सकते हैं।

नोट—पचास रुपये की पुस्तकें एक साथ लेने पर २५ प्रतिशत कमीशन दिया जायेगा।

शीघ्र प्रकाशित होने वाले ग्रन्थ

दयानन्द-यजुर्वेदभाष्य-भास्कर—इस प्रथम भाग के समान सम्पूर्ण यजुर्वेदभाष्य के तीन भाग और छाप रहे हैं। सम्पूर्ण का मूल्य १००) ३० जून तक पेशगी देने पर ६०) होगा कागज मैपलिथो ३० पौं० लगेगा।

दयानन्द-ऋग्वेदभाष्य-भास्कर—दयानन्द-यजुर्वेदभाष्य-भास्कर के समान सम्पूर्ण ऋषि दयानन्द कृत ऋग्वेद भाष्यभास्कर भी नौ भागों में छपेगा।

दयानन्द वैदिक कोश—महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने वेदभाष्य तथा सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका आदि ग्रन्थों में वैदिक पदों के बड़े ही महत्त्वपूर्ण और प्रामाणिक अर्थ किए हैं। आर्य विद्वान्, स्वाध्याय-प्रेमी आर्य महानुभाव तथा अन्य मतावलम्बी लोग भी एक ऐसे कोश की आवश्यकता अनुभव करते रहे हैं जिसमें महर्षि कृत सभी पदों का अर्थ उपलब्ध हो सके। सभी विद्वानों, स्वाध्याय-प्रेमियों तथा शोधार्थियों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि महर्षि के वेदभाष्य तथा उनके अन्य समस्त ग्रन्थों में से पदों के अर्थ को संकलित करके 'दयानन्द वैदिक कोश' तैयार किया गया है। कोश में अनेक प्रकार की विशेषताएं होंगी जो यहाँ स्थानाभाव से नहीं लिखी जा रही हैं।

इन 'दयानन्द-यजुर्वेदभाष्य-भास्कर' तथा 'दयानन्द वेदार्थ कोश' पुस्तकों का अग्रिम मूल्य देने वालों को मूल्य में छूट दी जायेगी।

नोट—दयानन्द सन्देश—मासिक पत्रिका—१. जिसमें महर्षिकृत वेदभाष्य के समझने में जो कठिनाई अनुभव की जा रही है उसे दूर करने का पूरा पूरा प्रयत्न किया जायेगा। २. महर्षि के ग्रन्थों में एक विषय से सम्बन्धित बिखरे हुए महत्त्वपूर्ण विचार रूपी मोतियों का संग्रह प्रकाशित होगा। ३. महर्षि के सिद्धान्तों पर होने वाली शंकाओं का समाधान इस पत्रिका में होगा। ४. इत्यादि अन्य विषय भी होंगे। मूल्य ४) वार्षिक कृपया अवश्य ग्राहक बनें।

प्रधान—आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
४५५, खारी बावली, दिल्ली-६

वेद है कल्याणी वाणी, सर्वज्ञ [illegible]

जिसके अर्थज्ञान में है, पहुँच अनूचान की॥

शुद्ध अन्तःकरण जिसका तपस्वी होवे महान्।

पक्षपात करे नहीं, विद्वानों में पावे मान॥

ऋषि पद पाया जिसने, करके पूरा ब्रह्म ज्ञान।

विद्या बुद्धि शुद्ध जिसकी, उसको अनूचान जान॥

बन के अनूचान समझा, वेद दयानन्द ने।

सत्य का प्रकाश किया, पड़े थे सब अन्ध में॥

विश्व भर को आर्य करना वेद का आदेश है।

पढ़ो वेद, जानो ब्रह्म, "दयानन्द-सन्देश" है॥